



मिताक्षरा सटीक

पर्यादा

सर्वादा परिपाटी समाचार

पर्यादा

प्रायश्चित्तकाण्ड

इससे मयम आचारकाण्ड व प्यवहारकाण्ड भी उपस्थित हैं ॥

विसर्ग

जलदान प्रकार व आदौच सूतकदिनावधि कथन व सय शौचव्यवस्थाकथन
व जगदुत्पत्ति प्रपंचविस्तार कथन व बुद्ध्यादि समवाय व प्रायश्चित्त कर-
णवोप व नरकादिनामस्वरूप व अतिपातक और पातकादिलक्षण भेद
व सकामसुरापानादि महापातक प्रायश्चित्त कथन व स्वर्णविहारादि
प्रायश्चित्त व अवकृष्टवध प्रायश्चित्त कथन व प्रत्येकघटों के स्वरूप
व नियमादि सविस्तार वर्णित हैं ॥

निसर्ग

सर्वैश्वर्य सम्पन्न सकलकलाचातुरीपूरी विद्याविलासी श्रीमान् मुंशी
नवलकिशोर (सी आई ई) की आज्ञानुसार सर्वविद्यालङ्कृत विद्वद्भू-
शिरोमणि सकल गुणगणमण्डलीमण्डन आगरानिवासी पण्डित दुगा-
प्रसादजीने अत्यंत परिश्रम से सम्पूर्ण विद्वज्जनों के निमिच्छा
अति मनोहर व लालित्यपूर्वसे सरलभाषामें अनुवाद किया ॥

प्रथमवार

स्थान लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर ने छापेखाने में छापींगई

अप्रैल सन् १८८८ ई०

प्रकट हो कि इस पुस्तक को अत्यंत से निज पच से उच्चा प्रकार द्रष्टव्य है इसलिये
विना आशा दृष्टकारजाने के कोई छापने का अधिकारी नहीं है

विज्ञापन ॥

इस महीने अर्थात् मार्च सन् १८८८ ई० पर्यन्त जो पुस्तकें बेचने के लिये तय्यार हैं उनमेंसे कुछ इस सूचं में लिखी हैं और उनका मूल बहुत किरायत से घटाके नित्य हुआ है और ध्योपारियों के लिये और सस्ती होंगी जिनकी ध्योपार की इच्छा हो वह मुशोन-खलिशोर के छापेखाने मुकामलखनऊ जहरतगंज के उत भेजकर कीमतका निर्णय कर लें ॥

नामकिताय	नामकिताय	नामकिताय	नामकिताय
(अ) अमरकोपतीनौकांड अध्यात्मरामायणभाषा टीकासहित अमृतसागरबहाव छोट्टा अरियमेटिक तीनो भाग	ऐक्ट२६ सन् १८८० ई० ऐक्टमजमचाअयधल- गान१६ सन् १८६८ ई० ऐक्ट१८ सन् १८६० ई० ऐक्ट२४ सन् १८८० ई० ऐक्ट१६ सन् १८८३ ई०	गंगमहिता गरुडपुराणप्रतकल्प गणितप्रकाश चारो भाग (च) चित्रचन्द्रिका चाणक्यनीति चौरासीवार्तिक (छ) छन्दोर्णवपिगल (ज) जातकालकार जातकभरण जगद्गोद जातकचन्द्रिका (त) तुलासीकृत रामायण तथरीहुल्लरूपदूर्ववना० (द) दुर्गास्तोत्रमूल व सटीक दुर्गायननवकारण देवीभागवतभाषावार होस्क १	दास्तानअमीरहुमना दैवज्ञाभरण दोहायलीरत्नावली (न) निर्णयसिधु नाममाहात्म्य नानार्थनवसहस्रावली नवीनमसह नवरत्नभाष्य नियतभाषा नारीरोध (प) परमार्थसार प्रेमसागर पारमभाग प्रेमरत्न प्रेमामृतसार पद्मवतभाषा पञ्चमन्त्र१६४५ पटवारियोंकीपुस्तकके तीनों भाग प्रबोधचन्द्रोदयनाटक प्रवर्तितपिथीना०व०के०
(इ) इलाजुगुरया ईशावास्यबाजसनेय स- हितोपनिषत् इतिहास तिमिरनाशक इगरे स्तानकाइतिहास	(क) कायमयकुलभास्कर कायस्थविनोद कर्मविपाकसहिता कृष्णबाललीला कालिजर्महाहात्म्य कृष्णसागर कथा श्रीगंगाजी कैवल्यकल्पद्रुम कृष्णप्रिया कविकुलकम्पतरु कवितरंग केनोपनिषत् कायस्थसह कवित्वरत्नाकर दोभाग कृष्णचालीसी (ग) गुन्का तीनोखण्ड		
(उ) उमावर्तिदिग्विजय			
(ऐ) ऐक्ट १ सन् १८८६ ई० ऐक्ट १२ सन् १८८१ ई० ऐक्ट १० सन् १८८२ ई० ऐक्ट १४ सन् १८८२ ई० ऐक्ट १० सन् १८८२ ई० ऐक्ट १० सन् १८८६ ई० ऐक्ट १० सन् १८८२ ई० ऐक्ट २० सन् १८८६ ई०			

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्त काण्डका विज्ञापन॥



पाठक महाशयों को ध्यातव्य है कि इस ग्रन्थ की रचना और द्वापेद्वारा प्रकाश होने मध्ये यद्यपि राजा महाराजे आदि अनेक सज्जनों की कृपा दृष्टि धन दान की सहायता द्वारा प्राप्त हुई परन्तु अन्तिम सिद्धि की कतेर (विजय) केवल मुनीश्वरकिशोर साहब (सो भाई है) स्वयंभूत लखनऊ के हाथ होनहार थी वे स्वयंभूत विक्रमादित्य के समस्त १६४४ वज्रोत्तमो अयातिस में मुनी साहब ने पूरा कराकर प्रकाश किया अने को मुनीश्वरकिशोर जय चाहें तभी बारम्बार इसको द्वापे कि जिससे उन सत्र सामान्य विद्वानों का उपकार होय जिनको ऐसा ग्रन्थ अत्यन्त खर्च होय नहीं आसता था—इसकी रचना का प्रारम्भ सन् १८०० ईसवी में मर्यादा प्रिय पंडित दुर्गाप्रसाद गुरु कान्यकुब्ज ने निज इच्छाचार से आगरा जैनमण्ड में श्री यमुना तटपर किया जिन की जन्मभूमि शहर शाहाबाद जिना हर्दीई मुल्क अवध राज लखनऊ में थी ताको बाल अवस्था में विद्याभ्यास से सत्यतः करि आगरा में मुखवासो हुये—अपने रचेहुये वादलेख (मसौदा) की प्रशंसा होनी चाहिके द्वापे का व्यवस्थान कल्पना करिके सन अठारह सौ उन्नासो अस्सी तक सत्र पाठवर्ष में जैसे जैसे आचार व्यवहार दो कांडों का स्वाधीनता से द्वापेने कुछ शुनिक प्रकाश करि पाई—उसी अवसर में श्रीमन्महाराजा मेद पाटेश्वर श्री सज्जनसिंह उदयपुर अधिष्ठित धीरेसे ने धन दान की सहायता देकर व्यवहार मर्यादा परिपाटी बृहत्कांड पूरा करवाया किंतु उस समय व्यवहार शास्त्र अवनिकन की आकाशा उनको विशेष थी चाहते थे कि शीघ्र पूरा होय इसी हेतु मध्यम काल में सहायता उदय हुई थी—इसी प्रकार रहित आचार कांड राजाधिराज शाह पूरा मेवाड ने पूरा करवाया—तथापि सात वर्ष में दो कांडों की समाप्ति करिके कर्ता के बितने उपराम लिया और व्यवहार कांड के अन्तिम समस्या लिखी कि अग्निने बहुत बड़े प्रायश्चित्त कांड का प्रारम्भ नहीं करेंगे कि जब तक कोई धरणी बल अपने ऊपर इसका पूरा भार न केने—किंतु वही पूरा भार आज मुनी नवलकिशोर ने अपने ऊपर स्वीकार सहित मेना पर्याप्त उक्त समस्या लिखे पीछे यह कर्तने इस कांडका रीति यौगि सन् १८५० तक पाच वर्ष छोटे मेटे सेवक आदि विद्याओं के अद्भुत यथो का पांडु लेख निर्माण करते हुये पूर्ण तुल्य प्कासन वृत्ति से कालक्षेप किया—यद्यपि इसी मध्यम काल में पराएकारी मुनी नवल किशोर ने योगेश्वरि का पितामह करतेहुये बंध कर्ता को अपने सम्मिर्षों के द्वारा तथा धिट्टियों से आवाहनका संवोधन मेजिके अग्निनाथ प्रकट करी की कि लखनऊ में आकर अपना अधूरा ग्रन्थ पूरा करी तथापि (अत्यशक्तिसे नयन प्रतिया) इस आयुह में रचयिता ने यही उत्तर भेजा कि आगरा में प्रारम्भ होचुका वा समाप्ति भी इसी जगह होनी चाहते हैं वल्कि उदयपुर क महाराजा धीरेसे ने जब जब आवाहन के आवापन भेजे कि राजकीय यथानय का अधिष्ठातृ पद स्वीकार हो तो शंभु चले आये या अपने इष्ट मित्रों को भेजा जो इस कार्य को करवें—तबहू केवल इसी प्रतिज्ञा के प्रतिग्रह से अपने मित्र वशीधर बाजरेया जिनकी नेकरी यहां छुटिचुकी थी सेहसे उनकी कैफियत की रिपोर्ट भेजि मज्जी कगकर उस पदपर उदयपुर भेजिदिया आगरा नहीं छोड़ा—तबसे आप जो लखनऊ बुगाने बिना यहां बैठेही प्रतिज्ञा पूरी करें तो प के कोई अटक न रहेगी—इस पर श्रीमान् मुनी नवलकिशोरने यथकर्ता के साथ अपने दो संघर्ष माने कि जहां पर शासनी सुस्थान होने से जिस आगरे का मैं पहला निवासी और जहा मेरे बहुत यथिया स्वजन इष्ट मित्र वकीन व ईश्वर मुनी गिरिधर लाल आदि इष्ट भी उपस्थित है और जहां मेने (भार्यग विद्याधम नाम) महत् पाठशाला का प्रारम्भ निज धार्मिकभार्यग घने के निमित्त से करवाया जिसके प्रबंध में श्री मुनी गिरिधरलाल साहब वकील बदालत आगरा आदि संघर्ष

सितासरा स० प्रायश्चित्तकांड का विज्ञापन ।

३

कुछ निचे द्वापै—इसोलिए तोनि वार शोधिके व्यर्थ बिदुमाच को भी हरिताल से पान्ति भेटि देता हे कि दर्पण क तुय पठाजाय (यद्यपि पिदुनो के निरुक्त किसी एक अक्षर या भाषा का भुनसे रहिजाना कुछ अशुद्धिमें नहीं माना जाता क्योंकि एतना तो अत्यन्त शोचने पर भी कहीं दृष्टिछूक से रहिजाता हे) परब सेसी दया पर भी निशे उठामी केयन हम यापे ठहिरी कि प्रायश्चित्तिके लोभ कुछ भाषा या अक्षर अपनी कीर से अधिक

अंश	अक्षर	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१०	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
११	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१२	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१३	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१५	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१६	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१७	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२०	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२१	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२२	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२३	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२५	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२६	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२७	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
२९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३०	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३१	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३२	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३३	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३५	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३६	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३७	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
३९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४०	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४१	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४२	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४३	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४५	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४६	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४७	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
४९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५०	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५१	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५२	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५३	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५५	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५६	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५७	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
५९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६०	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६१	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६२	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६३	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६५	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६६	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६७	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
६९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७०	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७१	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७२	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७३	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७५	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७६	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७७	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
७९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८०	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८१	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८२	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८३	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८५	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८६	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८७	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
८९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९०	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९१	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९२	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९३	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९४	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९५	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९६	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९७	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९८	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
९९	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ
१००	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ	अक्षरार्थ

धर देत और कहों किरले अक्षर का निज प्रमाद या सातुर्थ से पलाटि भी देते है—इसका दृष्टान्त केम इस कांड के पहिले पृष्ठ में भूमिका के प्रत्येक मात है उनक द्वितीय श्लोक में (योहस्य जगत सृष्टा) यही तीसरा पाद हे तहा सृष्ट के स्थान पर सृष्ट बदलि के धर दिया—इसी तरह बहुधा प्राचान पक्षि बाक्यों में अक्षर भाषा को अधिकता और व्यत्यय देखिपरा इसका भी प्रमाण महा बोंस काटे का चक्र देखो जो विद्वानो क समझने के अशुद्ध शब्द एवों से चुनिकर जुदा बना—यह नमूना केयन इस प्रेरणा (ताकीद) के निमित्त से इस संग्रह धरा गया है कि येमाहो अशुद्ध शब्द चक्रों में सर्वत्र समुक्ति अपनी अपनी जिल्दों शोयिलेना—तहा प्रतिपृष्ठते केवल एक अशुद्धि शोयने का परिश्रम जति छोटी बात समुक्ति—परमादार मुशी नवगकिशोर के महान् गुणपर यह धन्यवाद करना चाहिये कि जिसने ऐसे अलभ्य रत्न ग्रंथ का पूरा करवाका छोडे मुख्य से प्रकाश किया जो पहिले बहुत मोल देने की शक्ति या इच्छा हाति हुयेभी हाय नही आता या सम्भूत मूल रूप हाय आता तो समुझा नही जाता था—उक्त मुनी व रेशम येसही उदार चरितो सहित सर्वशय सदा धिर्जीव रहे शोय पायात् इति—

सन् १८४४ विक्रमो ॥

सन् १८८६ ई० जनवरी ॥

शण्डित दुगाप्रसाद चर्मगस्थो

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का प्रथम सूचीपत्र ॥

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ	पंक्ति	परिच्छेद	विषय	पृष्ठ	पंक्ति
१	मंगलाचरण—यथस्यास्य प्रदीपनं च	१	३		(इति अध्यात्मप्रकरणं विदुः)		
२	यथस्यास्य भूमिकाच—तत्र किंचिद्वस्तुवर्णयते				(परिच्छेदमयं समाप्तं)	२६६	
३	मृतकाल वृद्धादीनां दाहादिकर्म विवेकः	१	१० २१		कर्मविपाकानां सर्वेषां विवेकः	२४०	५
	प्रथमः परिच्छेदः	२	२५ २		सदाः कर्तव्यं प्रायश्चित्तधिकारिणां लक्षणानि	२५९	१८
४	लान्तमरणयोः सूतकभेदाप्रवर्णनं भेदात्		२३		अकृतप्रायश्चित्तपुण्यसामयिनः कन्यामतत्त्वानि	२५०	९
	द्वितीयः परिच्छेदः	३३	१		(इति नरकादिगति विषयिकं च परिच्छेदः)		
५	सदाः शौचानां व्यवस्थाभेदाः तृतीयः परिच्छेदः		३३		(मयं प्रकरणं समाप्तं)	२६३	
६	मृतकं विनापि अगुचिस्थं दोषभेदाः	३०	१ २४		पंचमहापातकानां नाम लक्षणनिर्णयः	२६४	२
७	शुद्धिसम्पादनहेतु सामान्यानां स्वरूपसंख्या	८१	१ २५		अतिपातक पातकादीनां लक्षण भेदाः	२७२	२
	भेदाः		२६		उपपातकादीनां सर्वेषां नाम लक्षणभेदाः	२८०	११
	(इत्याद्यौचप्रकरणं पंचपरिच्छेदमयं समाप्तं)	८६	१३		(इति महापातकादि सर्वनिमित्तानां)		
८	आपत्कालिकजीविकादि वृत्त्यंतर धर्मभेदाः	८३			(प्रकरणं च परिच्छेद मयं समाप्तं)	२८०	
९	वानप्रस्थायाम् धर्मभेदाः	८३	११ २०		ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्त भेदाः	२८०	१५
	(इति प्रकरणं द्विपरिच्छेदमयं समाप्तं)	१०१	१ ७		असमाप्तेषु द्वादशवर्षे कृत्वा कर्म सिद्धि		
	आपद्धर्मसंहर्तृ		२८		कारणानि	३०६	२०
१०	संन्यासयहो परित्राजकस्वरूप लक्षणभेदाः	११८	२६		उक्तप्रायश्चित्तस्य विध्यन्तपानुकूल्य भेदाः	३१५	१४
११	संन्यासि हृदिज्ञानात्प्राप्तिकारिण्यमाः	११८	१५ ३०		अन्यथापि ब्रह्मव्य प्रायश्चित्तस्यातिदेशः	३२८	२
१२	परमात्मनः नृप्रियह्वय प्रकाराः	११३	४		(इति ब्रह्महत्याप्रकरणं चतुःपरिच्छेदः)		
१३	गर्भस्थस्य शारीरक व्यवस्थाचान	१४३	२४		(मयं समाप्तं)	३३३	
१४	ब्रह्मोपासनायाः प्रकार भेदाः	१६०	५ ३५		सुरापाने सकामकृत्यापे प्रायश्चित्त भेदाः	३३४	२
१५	इश्वरस्य विग्रहरूपिताया निरूपणं	१८०	१४ ३२		अकामतः सुरासवादीनां प्रायश्चित्तभेदाः	३४०	१५
१६	पूर्वाज्ञाया जगदुत्पत्तेः प्रपंच विस्तारः	८५	८ ३३		सुरेतर गदाजातानां प्रायश्चित्त भेदाः	३४६	३
१७	कर्मबीजानां विषाक प्रपंच विवेकः	१६१	२३		(इति सुरापान प्रायश्चित्त प्रकरणं)		
१८	बीजव्यापदिकमनन्तर सर्वव्यापित्वाप्रकाश	१६०	६		(समाप्तं च परिच्छेदमयं)	३५१	
१९	मोक्षपदार्थं देवादिद्योनिवत् वागच्छतांत्या	२०४	१५ ३४		मुखावधार प्रायश्चित्तभेदाः	३५१	१६
	दि विवेकः		३५		अज्ञानान्मुखावधार प्रायश्चित्तं	३५६	७
२०	इश्वरस्य सर्वगतस्य प्रत्यक्ष लक्षणनिर्वाच	२११	१२		(इति सुरेतरस्य प्रायश्चित्त प्रकरणं)		
२१	तत्त्वानामुत्पत्तिक्रमः स्वर्गादिमार्गं विवेकः	२१०	२		(समाप्तं द्विपरिच्छेदमयं)	३६४	
	एवास्मिन्	२२३	२ ३६		अनन्यादि गुरुदाशम्य प्रायश्चित्तभेदाः	३६४	७
२२	अविद्याद्यष्ट त्रिभूति प्रापक योगाभ्यासेन				(इति गुरुलब्धप्रकरणं परिच्छेदमयं समाप्तं)	३७५	
	मोक्षसाधन	२२३	१५ २०		संश्रान्ति प्रायश्चित्तभेदाः	३८१	६

मिताक्षरा सं. प्रायश्चित्तकांड का प्रथम सूचीपत्र ।

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ	श्लोक	विषय	पृष्ठ	श्लोक
३८	पतितस्य कन्यायाः पवित्रहे प्रतिप्रसवधर्मः (इति संसर्ग प्रायश्चित्त प्रकार्यं) (समाप्त द्विपरिच्छेदमय)	३८४	१४ ११	परिवित प्रायश्चित्ति- वायु-प्रायश्चित्त- लवणक्रियाच प्रायश्चित्त- (इत्युपपातकचयं) (इत्युपपातक चयायाःकरणसमाप्त) (परिच्छेदेकमयं)	४०६	१६
३९	स्त्रीयूद्धादि प्रायश्चित्त विधानं—प्रतिलोम जातिवध प्रायश्चित्तानिच (इ तत्प्रकरणं परिच्छेदेकमयसमाप्त) (इत्युपपातकहापातकादीना वृहत्प्रकरणं) (चेनपि १६ परिच्छेदमय समाप्त)	४०९	१२	अविद्यादिष्व- वयस्योपपातक प्रायश्चित्त भेदाः अकुलटा कुलटादिमन्द स्त्री वध भेदाना प्रायश्चित्त भेदाः (इति ब्राह्मणेतर नराहिंसामय इव-) (रणं समाप्त द्विपरिच्छेदात्मकं)	४०९	१७
४०	गोहत्यायाः प्रायश्चित्ते कदेश विभागः	४०९	१३	नरेतर सर्वशक्तिहिंसाया प्रायश्चित्तभेदाः (इति नरेतर सर्वशक्तिहिंसा प्रकार्यं) (समाप्त परिच्छेदेकमय)	४१०	१८
४१	सज्जाम गोवधादि प्रायश्चित्ताना भेदाः	४०९	१६	बुलादि सर्ववदनस्यति दिवाशन प्रायश्चित्त भेदाः पुश्वत्यादिप्रमियादप्रपुश्वस्यप्रायश्चित्तभेदाः (इति स्वावर हिंसादि प्रकार्यं) (यमाप्त द्विपरिच्छेदमयं)	४११	१९
४२	बहुकर्तृमिहंननादि गोवध भेदाना प्राय- श्चित्तभेदाः बन्धन दाहवाहादिकर्म देशेर्गोवध भेदाना प्रायश्चित्त भेदाः (इति गोवध प्रायश्चित्त प्रकार्यवस्तुः) (परिच्छेदमयं समाप्त)	४१६	१४	वीर्यस्वंदनस्यवने प्रतिनिवालाकनादेः नि- दितोपलोचनस्यनालिक्यच प्रायश्चित्तभेदाः अयर्कोष्ठ ब्रह्मचर्यादीना प्रायश्चित्त भेदाः (सबल हिंसा यवादश्च) ब्रह्मचारिणो ब्रत नियम भगेवि प्रायश्चित्त भेदाः मिथ्यादोषा रोषकस्य-मिथ्यामिश्रदत्तस्यच प्रायश्चित्त भेदाः रजस्वलाद्यगमयामने-रजस्वनायागव नियम भगेवि प्रायश्चित्त भेदाः (इति ब्रतनाप प्रकार्यं पञ्चपरिच्छेद मयसमाप्तम्)	४१२	२०
४३	गोवध प्रायश्चित्तस्य यातिदेशिक विधयाः सर्वोपपातकेष्वेव (प्रकरणावसौ स्वयमेव)	४१९	१५	मुतविक्रयाद्यनिष्ट विक्रयोपजोवनस्य प्राय- श्चित्त भेदाः अयाव्य ब्राह्म्यादि याजन-जेटायावन-मारयो वाटनाद्यमिदं य- यरागनत्याग रूपाया	४१३	२१
४४	संस्कार विहीन ब्राह्म्याना प्रायश्चित्तानि (प्रकरणावसौ स्वयमेव)	४२६	१७			
४५	वीर्योपपातकप्रायश्चित्त—स्वर्ग-न्येयव्याति रिक्तवीर्योपपातः (प्रकरणावसौ स्वयमेव)	४२६	१८			
४६	अयमयविक्रय ब्रह्मचर्यादिक्रियायाः प्रायश्चित्त अनाहिताग्निता यादश्च (प्रकरणावसौ स्वयमेव)	४३१	१९			
४७	परिवेचादीना भूतका ध्यापकादीनाच प्राय- श्चित्तभेदाः (प्रकरणावसौ स्वयमेव)	४४८	२०			
४८	नचेतुपुपचसु प्रकार्य नियमः					
४९	परदार गमन प्रायश्चित्तभेदाः—जनन्याद्य गम्यागमन व्यातिरिक्त विधयोऽन्वयेऽथ	४५३	२१			
५०	स्त्रीकाच व्यभिचरिताना प्रायश्चित्तप्रकारा (इति पाठ्याय प्रायश्चित्त प्रकार्यं) (समाप्त द्विपरिच्छेदमय)	४६०	२२			

मितासरा स० प्रायश्चित्तकाण्ड का प्रथम सूचीपत्र ।

३

परिच्छेद	विषय	श्रुति	पंक्ति	विषय	श्रुति	पंक्ति
६४	निमित्तानां प्रायश्चित्त भेदाः पितृमातृ सुतत्याग कन्यादूषणादि दशोपपा- तक विशेषाणां प्रायश्चित्त भेदाः	५१३	३	सत्कार विधिश्च पर्वदोनुमत् प्रायश्चित्त ग्रहण विधानं (इति सर्वप्रायश्चित्तानां साधारण विधि- प्रकरणं समाप्तं परिच्छेदमर्थं)	६४६	४
६५	स्वाध्याय त्यागाद्युपपातकाष्टक निमित्त वि- शेषाणां प्रायश्चित्त भेदाः (इत्यौचित्य त्यागप्रकरणं चतुःपरिच्छेद- मर्थं समाप्तम्)	५१७	१८	गुरुपापानां रहस्य प्रायश्चित्त विचार- ग्रहणस्य प्रायश्चित्त विधानं संहितः प्रहस्यस्य व्यतिरिक्तं महापातकानां रहस्य प्रायश्चित्त विधानं	६४७	५
६६	दुष्कृतनाशकानामोपपातकस्य प्रायश्चित्त भेदाः	५१९	२०	उपपातकादीनां रहस्य प्रायश्चित्त भेदाः सर्वपातकादि हरसाधारणविषयं च होमादीनां स्वरूप प्रकाशः (इति सर्वप्रायश्चित्तप्रकरणं चतुः- परिच्छेदमर्थं समाप्तम्)	६४८	६
६७	आत्मविक्रयाद्युपपातक चतुष्टयस्य प्राय- श्चित्त भेदाः	५२०	२	संतपन कृच्छ्रस्थानेकत्र भेदानालक्षणानि यत्कृच्छ्र-तपकृच्छ्र-पादकृच्छ्राद्यानां कृच्छ्र- व्रत भेदानां लक्षणानि	६४९	७
६८	असंतपित्यह भयान्विक्रय अनाश्रमवासा- द्युपपातक षट्कस्य प्रायश्चित्त भेदाः (इत्यनिष्टमं सेवनादि प्रकरणं समाप्तं परिच्छेदमर्थं)	५२०	७	आवापस्य कृच्छ्रादीनां बहुभेदानां स्वरूपा- णि विधानं च	६५०	८
६९	जात्येव स्वभावेन वा दुष्टगुणनाशनाशनाम- न्त्येवप्रायश्चित्तभेदाः	५२१	१२	वैद्यापणसोमायनमासिकव्रतभेदानां विधानं पूर्वाक्त व्रतादीनां सर्वेषां अनुष्ठान समयो- चितक्रियाविधि प्रकाशः (इति सर्वकृच्छ्रादिव्रत भेदानां दानजप- होमादीनां च स्वरूप विधायकं प्रकरणं च परिच्छेदमर्थं समाप्तम्)	६५१	९
७०	अशुचिभिः संस्पृष्टस्यान्नपानादेर्भक्षणे प्राय- श्चित्त भेदाः	५२१	१०	सर्वेष्वेव सर्वेपरिव्रतभेदेः समस्त्येवैवा- साधितेः शुद्धिर्भाष्यतीति व्रतहोम जपदा- नादीनां सर्वसाधारण विचारः (इत्यनादिशुद्धिद्वय प्रायश्चित्तोपायेषु आ- देहिक इत्याद्यानां युक्ति विचार प्रकरणं समाप्तं परिच्छेदमर्थं)	६५२	१०
७१	भावेन कालेन वा दूषिताद्यन्न भोजन प्रायश्चित्त भेदाः	५२३	११	केवलं धर्माद्येव चाद्याय कृच्छ्रादीनां र- हस्यप्रकरणसाधनत्व प्रकाशः—धर्मशास्त्रस्यो- क्तं यथार्थं च	६५३	११
७२	आद्यान्नभोजन दोषस्यप्रायश्चित्त भेदाः	५२३	१०			
७३	परिग्रहदोष दूषितान्नभोजनस्य प्रायश्चित्त भेदाः (इत्यभक्ष्य भक्षण प्रकरणं समाप्तं पञ्च परिच्छेदमर्थं)	५२३	११			
७४	जातिभ्रंश करणीनां—अनुकानां च पापानां प्रायश्चित्त भेदाः (इतिप्रकीर्ण विशेषपापानांप्रकरणं समाप्तं परिच्छेदमर्थं)	५२३	१२			
७५	सर्वेषां प्रायश्चित्तस्थलेषु—अनुकप्राय- श्चित्तस्थलेषु च—त्यागात्मक युक्तिविचारः	५२३	१३			
७६	पतितस्य त्यागविधिः—कृतप्रायश्चित्तस्य	५२३	१४			

इति श्रीमहाप्रियव्रतवर्मशास्त्रे प्रायश्चित्तकाण्डस्य लघुसूचीपत्रं समाप्तम् ॥

अथ मिताक्षरा स० प्रायश्चित्त कांडस्य दृष्टसूचनं द्वितीयं ॥

आशयानां व्यवस्थक्रमः	श्रु	पति
मगलाक्षरं ।	१	६
यय की भूमिका ।	१	१०
दाहादि कर्म विवेकमयः ।	२	२५
प्रथमः परिच्छेदः	३	२६
दो वर्षसे जोड़े प्रेतको गन्धमाला आदि अलकृत करे • यामसे बाहर छोड़ि गाडे ॥	४	१३
अशुद्ध अग्निसे दाहका निषेध ॥	४	२०
चोटीरखे बालको को अग्निदाह दियाजाय ॥	४	२८
तीनवर्ष के भीतर चोटीरखे बिना भी अग्निदाह जलदान होय ॥	५	२
तीन वर्ष के भीतर भी दात जमिजाने में क्रियाकर्म का विनाश ॥	५	१८
यथोपयोग होने वादि मरनेसे पूरा कर्म क्रियाजाय ॥	५	१८
अग्निहोत्री आदि कुलके भेदसे भी जुदे विधान है ॥	५	२०
दाह क्रिया में भी जुदे जुदे भेद हैं ॥	६	१२
किन अग्निसे से कौन पुरुष जलाय जायें ॥	७	२६
अग्नि या लकड़ी आदि में शुद्धका हाथ न लगने दें ॥	८	२
प्रेतको ध्यान कराके चन्दन कुल आदिसे संस्कृत क्रिये पीछे पुषादि अधिकारी लोग जलायें ॥	८	२
मंगीची वा सजाती लोग मुर्देको लेजायें गेर नहीं ॥	८	२
किस वर्षका मुर्दा किस दिवसारे निकाषा जाय ॥	८	१६
मृतकदेह न मिलने में पुनर्विधान से दाहदेना ॥	८	२४
जलाजली दान करनेके प्रकार भेद भी अनेक हैं ॥	९	१६
नाना • आचर्य मरेहैं या समुद्र भानजा अत्युक्त मित्र मरेहैं तिनको जल देनेका अतिदेश धर्म ॥	१०	२५
उक्त जलदान का विधान प्रेतोंके नाम सहित होय ॥	११	३
ग्रहचारी और पति आदि किसीको जलाजली न दें ॥	११	५
पति आदि मरे प्रेतोंको जलदान कोई भी न करे ॥	१२	२६
(आत्मघाती आदि अनेक पतितोंके लक्षणभेद)		
अग्निहोत्री को अपमैतसे मरे तिसकी यज्ञशाना आदि क्या करीजाय ॥	१३	२
इन सब निषिद्धोंका कर्म करनेवाला के प्रायश्चित्त	१३	१८
धिले आत्मघातिये का कर्म भी क्रतोव्य है—तहा कर्मकर्ता प्रायश्चित्ती भी न ठहरे ॥	१६	१९
पति आदि कुछ निषिद्धों का दाहकर्म नाशयज्वलि करनेसे होसका है तिसका विधान यहां देखो ॥	१६	२४
घण्टाटे मरजाय तिसका जुदा विधान होने बाद नाशयज्वलि ॥	१८	०
नाशयज्वलि कर्मका पूरा विधान ॥	१८	५
मुर्दों कोफने आदि समये में गोक उठा करता है तिसकी शान्तिका उपाय ॥	१९	२४
फूफने आदि छान कर्कि घरमें किसरीति से छुर्से ॥	२१	६
मुर्दके प्राणी को गेरहैं तिनको श्रुति इन प्रकार से छोती है ॥	२१	१८
ग्रहचारी भी धिले प्रेतों काये धारयता है निज नियमों साथ ॥	२२	२

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

शुद्ध पक्षः

मृतकी धारमें मृतकभर क्या क्या नियम साधेजायें कितने पिंड द्वियेजायें ।	२३	१५
दूधपर होकेंमें जल दूध आदि लटकाने के नियम ।	२६	८
मृतकी धाल मूडाने के नियम ।	२७	२१
बिरले कर्म धर्म मृतकमें भी होते रहिते हैं वो किस ढंगसे ।	२८	७
अमरीच की मृतकमें जानिके चौर जिना जाने अन्नखाने के दोषदोष ।	३१	२
ब्रिवाह आदि बड़ेउत्सव चौर यद्येमें मृतक होजाने पर भी अन्नखानेका प्रति प्रवक्तृकी आदेशविधान ।	३२	१३
मृतकमें कित बोधेक्षि मृतकदोष नहीं लगता है ।	३३	२६
बिरानेमुदके संस्कारसे कितना मृतक असवर्था या अमरीचको लगता चौर कितन कर्मकोहानि उसके होतीहै ।	३४	१८
बिदेयका मृतक अपनी अश्वधिओतिजाने बाद वो मुनिपावे तिसको कितना मृतक लगता है ।	३२	२४
जनन मरण दोनोंके मृतकमें सब तरहकी अवधी का होताहै सो सब भागेदूध परिच्छेदमें ठूंडना ।	३३	१
बिदेयमें रहिते हुयेका जन्ममृतक या मृतकमृतक मुनिपाने से कितने दिन मृतक मानाजाय ।	३४	१५
गर्भहीमें जलकनरे या पैदाहोके मरे तिसका मृतक कितना कियेको ।	३५	२६
पुत्रजन्म होनेमें माता या पिताको कितनी अशुद्धि चौर उनके उपराल सपिंडको कितना मृतक होताहै ।	३६	२२
कन्या नहीं केवल पुत्रही पैदा होनेमें पहिला दिवस पक्षि होताहै ऐसे मृतकमें प्रथमदिवस दान आदि ब्राह्मण भी लेचकें हैं ।	३७	२१
जन्मके मृतकमें भी पक्षाज भोजन करलेवे तिसको चान्द्रायण धृतपकमहीन भरकरना चाहिये ।	३७	२६
पुत्रजन्मका पहिला छठा दशमा दिन भी उत्तम कहला इनमें जागण चौर चन्मदानाम देवताओंका यागपूजन भी होता है ।	३७	२८
यक मृतक होतेहुये बीसमें दूसरा मृतक मरण या जन्मका आपरे तब कितने दिनमें मृतक शुद्धहोने ।	३८	१५
गर्भ गिरिजाने या मरणजन्म होने या जन्म लेके मरणानेमें माता यापिता आदि किबकिसको कितना मृतक ।	३९	१७
अग्निहोत्र आदि घेदेत योतकनी के निमित्तउद्यः शौचकी व्यवस्था ।	४४	२८
नालच्छेदन कर्मसे अनन्तर मृतक लगिजाता किन्तु पहिले नहीं ।	४५	४
रजस्वला स्त्रियोंका मृतक के दिनमें शुद्ध होता है कि जिनके थोड़ेदिनका गर्भ निचुड़ि गया तिससे या दूधके दिना भी रोजत जाय ।	४५	८
भयानक वरसे पीडित रजस्वलाकी जान शुद्धि कैसे होय या अन्य कोई रोगी को मृतकसे खान करना चाहै तिसका क्या प्रकार ।	४६	२६
रजस्वला या प्रसूतीनारीमरणाय तहांउसकी क्रिया कैसेहोय चौर घरके यज्ञ करनेवालेका नियमकेवल ।	४७	१५
प्रसूती या मौत या रक्तार्घ्य होजाने में किसदिन किस वेरासे मृतक लगा करता है ।	४७	२९
बिरले प्रेतिका मृतक नहीं मानाजाता किन्तु सदाशौच होजाता है ।	४८	५
देशान्तरमें मरणय सपिंडका चर्चा बहुतकाल पीछे मुनिपाने या शोध भी मुनिपानेमें किसकेलिसे कितना मृतक माना जाय ।	४७	२७
देशान्तर कितनी दूर कहाता है तिसके लक्षण उहां देलो ।	४८	१७
जनेउदार चाहे किसी अवस्था का भरे तिसके मृतक मानने की व्यवस्था ऊपर कही गई सो संधेच बाह्यण की समुपनी ।	४९	१७
रुषी आदि तीनों वर्गके मरने मध्ये कितने दिन मृतक होय ।	४९	१७

आशयानां व्यवसायक्रमः	श्रु	पंक्ति
तेनैवैपरिच्छेदमे सज्जनकेकेनाम लक्ष्य कहेजाये कि जो जो प्रायश्चित्त न करनेवालोंको मिलते हैं ।	२५०	२
पाप को धिनाचाहे अज्ञानतामें होगया तिसका दोष प्रायश्चित्तसे मिटिजाता किंतु चाहना से किपे पाप का प्रायश्चित्त करनेसे दलनाही फनहे कि संसारमे शुद्धि मानीजायगी परन्तुक्रमे नरकभोग बनारहेगा ।	२५१	१३
इसी बातपर सन्देहसे द्वितर्कवाद का समाधान ।	२५२	६
(इति नरकादिनां प्रकरं त्रिपरिच्छेदमयं)	२५३	२४
बीजैवैपरिच्छेदमे पापों महापातकियेके जुदेनाम और लक्षणभेद उनके पातकोंसहित निवेद्य क्रिये जायेगे-इति महापातकानि ।	२५४	२
मन्त्रोभैपरिच्छेदमे महापातकमे कुछ नोचे अतिपातक और इनसेनोचे पातक नामके पाप इन दोनो के लक्षणभेद कहेजायेगे जिनसे अतिपातको और पातको पुरुष पहिचाने जाये ।	२५५	२
ब्रह्महत्याके समान पातकों का लक्षण ।	२५६	६
गुरूपान के समान पातकों का लक्षण ।	२५७	१३
गुरुपे को चोरी के समान पातकों का लक्षण ।	२५८	४
गुरुदारा संगम के समान पातकों का लक्षण ।	२५९	६
गुरुदार संगमके समान पातकों अतिदेश जिन पातकों पर दियागया तिनके लक्षण ।	२६०	१३
द्विजोभैपरिच्छेदमे गोमूत्रद्वेषणसे पचासकेलगभग उपपातक और इनसेभीछोटे अनुपातक आदि सबको लक्षण कहे जायेगे ।	२६१	११
गोहत्या आदि अनेक उपपातकों के लक्षण ।	२६२	१६
चर्च आदि वर्णाका वध करना और पतारें दाप संगम करना स्त्रियोंका यथकरण आदि अनेक उपपातकों के लक्षण ।	२६३	२३
धान्य आदिको चोरी • दिना माता पुर्षोंका त्यागदेना और कन्या को दूषित करना आदि अनेक उपपातकों के लक्षण ।	२६४	१६
सुरगपाद बहुपादवासी यंत्रोंकायनाना • मद्यपस्तोषेधन • नियम त्यागदेना • स्त्रियोषेजीविकाकरना • हीनियोषेधन • नीचसे मेची आदि अनेक उपपातक ।	२६५	२१
अभिचार आदिकी शिवायाने असतुगान्धो का मिश्रण या भार्यावैविदेना आदि अनेक उपपातकोंकेलक्षण ।	२६६	१०
जातिभ्रंशकर संकरकरण आदि उपपातकों के लक्षण ।	२६७	१६
यद्ये छेदे सभी पातकोंके छुटेछुटे संश्रामेड बकटे करिके घृष्टद्विष्टुनेकहे सो मय जोदरभेड होजातेहैं ।	२६८	७
कायाघानने ठन्ठो पादरके मुण्ड पातकभेड माने और ठन्ठो पांचका धर्मावा ठण्ड ठण्ड समुक्रम जानाते ।	२६९	१८
यद्ये यत्र शास्त्रायेका विशाद है इममें छे दे पातक भी यद्ये पातकोंके तुल्य होजाते हैं नय छोटोका अभ्यास धाम्भ्या कियाजाय तिमको माप तोनहे ।	२७०	२३
(इति महापातकादीनां लक्षण प्रकरण त्रिपरिच्छेदमयं)	२७१	१३
मन्त्रोभैपरिच्छेदमे ग्रन्थ त्रिपरिच्छेदमय अनेकवाति कहेजायेगे क्योंकि ब्रह्महत्या महापातक जो पाप राख का होनासे तिमके छुटे छुटे कर्मायेके प्रायश्चित्त भी अनेक है ।	२७२	१६
यद्ये यत्र अर्थ पादनममे घटत वडा शास्त्रार्थ है ।	२७३	७
इत्यार के मायिक नोग रहना प्रायश्चित्त करे ।	२७४	२०
विनिगो हायता जपने हाप मे माप नहीं न मनसे नेरवाना आदि किंतु ऐसा कुछ बचमान कि या	२७५	२०

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पङ्
विषयपर आपत्ती यह मरणया तिसका प्रायश्चित्त ॥	१८८	८
सहायक। ये उपपन्न धिरेने समतिदेने या उत्साह दिनानेवने आदि चोर भी अपराधी हेनेहे तिन	१८९	४
समके सहित सहायकेके लक्षण यहां देखो ॥	१९०	१५
बालक बूढे रोमी आदि हत्यारे को बुरका आधा प्रायश्चित्त ॥	१९१	१५
जहाँ देा तीन आदि पापको का सन्निपात एकसाथ आनिपरे तहा प्रायश्चित्तोके सन्निपातका निर्वाह निर्णयः	१९२	१५
बधायती व्यवस्था को अनेक मुनि बधनेवे निर्णय करी जायगो ॥	१९३	१५
व्यवस्था बधायत का तोड़निघोट ॥	१९४	१५
जुद्धासर्वपरिच्छेदमें डमकारकोकिस्वरूप कहेजायेंगे जिनके बारहबर्ष आदिमें मध्यहुये प्रायश्चित्त किसी	१९५	१५
समय बीचही में समाप्त होजाते चोर पुरी साधना के समान फल देते हैं ॥	१९६	१५
उत्तीसवेंपरिच्छेदमें सबीप्रह्वहत्याके बारहबर्षमें प्रायश्चित्त के बदले कई प्रकार चोर भी दशमें	१९७	१५
कि जिनमें प्रायश्चित्तोका स्वाधीनता होगी किसी एक प्रकारका स्वीकार करें ॥	१९८	१५
अग्निप्रवेश रूप प्रायश्चित्त प्रायश्चित्तका विधान है कि जिसका बर्तया समाप्त नहीं रहा ॥	१९९	१५
एक यह प्रायश्चित्त है कि जहाँ दुस्तरा राख चलतेहैं। तिनके बीच में बैठके प्राण देदे पट्टा मरने	२००	१५
॥ तुल्य होकर देखने लोता रहजाय ॥	२०१	१५
तीसरा यह प्रायश्चित्त है कि जो बैठ पड़ा बिटुनूरो से जनमें रहिके सहिताका बाठ करे ॥	२०२	१५
चौथा यह प्रायश्चित्त है कि जो घनवानुद्धि से १५ प्रकारे दानकरे ॥	२०३	१५
वेनुबधनामेवकी की याया करना यह भी एक निमित्त भेदी प्रायश्चित्त है ॥	२०४	१५
प्रायश्चित्त ब्राह्मण हत्यारे के प्रायश्चित्त कहेगये चोरी आदि हत्यारों इन्तों को दूनी आदि अपराधो	२०५	१५
से स्वीकार करें ॥	२०६	१५
चली आदि वहीके प्रायश्चित्तों का विशेष निर्णय ॥	२०७	१५
प्रतिशेमितपन्न जाते। का प्रायश्चित्त निर्णय-चोर गृहस्थोसे उपपन्न आशयों के लेग को हत्यारे सुये	२०८	१५
है। तिनके प्रायश्चित्त ॥	२०९	१५
तीसवें परिच्छेद में ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त बिजो उन पापको पर भी आदिदेश उतारा जायगा जो	२१०	१५
साक्षात् ब्रह्मबध नहीं है ॥	२११	१५
यद्यमें लगेहुये लची या वैश्य को मारे वे। ब्रह्महत्या जाने प्रायश्चित्त करें-जिसेने मर्मका सधकिया	२१२	१५
या आचैयी स्त्री का बध कियाहै। ॥	२१३	१५
राष्ट्र आदि सेआकर मार ठानेपर समुदात हुआ किसी हेतुसे बिना बध किये लोटिपादे सोमी यही	२१४	१५
प्रायश्चित्तकरे ॥	२१५	१५
निसे नियमसे दूना प्रायश्चित्त चाहिये जिसेने यद्यमें लगेहुये पुरुष व स्त्रिया बध करीहो ॥	२१६	१५
(इति ब्रह्महत्या प्रायश्चित्त प्रकरणं चतु परिच्छेदमय)	२१७	१५
(इति आचार्य प्रणव दण्डपरिच्छेदमय)	२१८	१५
इक्तोसर्वे परिच्छेदमें उन महापातकेके प्रायश्चित्त आनेवालों की इच्छासहित निधिदु मंदिरा पोरा	२१९	१५
उपपन्न होयें ॥	२२०	१५
असंस्कृत बालक मुरासानकरें तिनके माता पिता आदि प्रतिनिधि होके प्रायश्चित्तकरें ॥	२२१	१५
बतीसवपरिच्छेदमें इच्छाकेबिना घोले आदिसे मुख पीजानेके प्रायश्चित्त अनेक भेद है ॥	२२२	१५

आशयाना व्युत्पत्त्यर्थम्	पृष्ठ	पंक्ति
तेहसर्वपरिच्छेदमें सवनरक्षिकेनाम लक्षण कहेजायेंगे कि वे जो प्रायश्चित्त न करनेवालोंका मिलते हैं ।	२६०	२
याप वे बिनाचाहे अज्ञानरामें होगया तिसका दोष प्रायश्चित्तसे मिटिजाता किंतु चाहनासे किये पाप का प्रायश्चित्त करनेसे इतनाही फलहै कि सप्तारमें शुद्धि मानीजायगी परलोकमें नरकभोग बन्नाहोगा ।	२५६	१३
इसी वातावर सन्दर्भसे वितर्कवाद का समाधान ।	२८२	६
(इति नरकादिगति प्रकरण चिपरिच्छेदमथ)	२८३	४४
चौबीसवेंपरिच्छेदमें पांचो महापातकियोंके जुदेनाम और लक्षणभेद उनके पातकोसहित निर्णय किये जायेंगे-इति महापातकानि ।	२६४	२
पच्चीसवेंपरिच्छेदमें महापातकसे कुछ नीचे अतिपातक और इनसेनीचे पातक नामके पाप इन दोनो के लक्षणभेद कहेजायेंगे जिनसे अतिपातको और पातको पुरुष पहिचाने जायें ।	२७२	२
ब्रह्महत्याके समान पातको का लक्षण ।	२८२	६
मुरापात के समान पातको का लक्षण ।	३०१	१३
मुष्य की चोरी के समान पातको का लक्षण ।	३०५	४
गुरुद्वारा सगम क समान पातको का लक्षण ।	३०६	६
गुरुद्वारा सगमके समान पातकोका अतिदेश जिन पातको पर दियागया तिनके लक्षण ।	३०८	१३
अन्धौषर्वपरिच्छेदमें तीसरेद्वैधाने पचासकेलगभग उपपातक और उनसेभीछोटे अनुपातक आदि सयके लक्षण कहे जायेंगे ।	३८०	६३
गोहत्या आदि अनेक उपपातको के लक्षण ।	३८०	१६
सर्प आदि वर्णोंका बध करना और बराह द्वारा बध करना स्त्रियोंका बधकरना आदि अनेक उपपातको के लक्षण ।	३८१	२३
धान्य आदिकी चोरी • विष माया पुषोंका त्यागदेना और कन्या को दूषित करना आदि अनेक उपपातको के लक्षण ।	३८२	१६
मुहुरादि बहुप्रायश्चित्तो यजोपासना • मदापस्त्रोषधन • नियम त्यागदेना • स्त्रियोंसेजीविकाकरना • हीनियोनिषेधन • नीचसे मैत्री आदि अनेक उपपातक ।	३८३	२१
व्यभिचार आदिकी शिक्षामाने अपमृगास्त्री का विचारना या भार्यावैधित्वा अदि अनेक उपपातकोजनलक्षण ।	३८३	२२
आतिशयकर स्फुराकण्य आदि उपपातको के लक्षण ।	३८३	१६
घडे डेटे सभी पातकोक जुदेनुदे सधामेद इच्छा करि बृहद्विष्णुने कहे वो मय चौदहभेद होजातिहै ।	३८६	२
क्राध्यायनने ठन्डो चोटहके मुख्य पाचहोमेद मान और ठन्डो पाचका वर्णोवा ठाक ठाक समुक्तम आताहै ।	३८६	१८
यद्वा एक शास्त्रादिका विवाद । समम डेटे पातक भी घडे पातकोके तुल्य होजात है वय डेटोका आभ्यास बारम्बार क्रियाजात्र तिसको माप तोनहै ।	३८६	२४
(इति महापातकानां लक्षण प्रकरण चिपरिच्छेदमथ)	३८०	१४
सतरहवेंपरिच्छेदमें सप्तशतियाकप्रायश्चित्त अनेकवर्तिकाहेजायेंगे क्योंकि ब्रह्महत्या महापातक जो आस तत्त्व का रताहै तिसके छुदे जुदे कर्त्तव्येन प्रायश्चित्त भी अनेक है ।	३८०	१५
यद्वा एक अर्थ यादनाममें बहुत बड़ा शास्त्रार्थ है ।	३८०	२०
हत्यारे के सहायक लोग इतना प्रायश्चित्त करें ।	३८०	२०
निमित्तो हत्याए विधने हाथ से माप नहीं न मनसे मरवाना चाह्या किन्तु बेषा कुछ अपमान कि या	३८०	२०

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
जातिस्मरणं ते न हेतुः परं भी चित्ते कर्मणि यह भक्ति हेतुर्नाह ।	२५५	५२
अकालमृत्युं होजाने के संदेह मध्य समाधान ।	२५६	२०
भोवाहीवर वज्रलोचक जन्मकामार्ग यत्न छोड़ी तन्वी मिलती है ।	२५७	५९
मुक्ति के अभाव में स्वर्ग प्राप्त होनेके मार्ग भी अनेक देखियाँ ।	२५८	१६
मृत्यु लोकही में आकर जन्महोनेके मार्गोंको बहिष्कार ।	२५९	६
अनीश्वरवादी भी वही संसार में होते जो परलोक आदि झूठा जानते हैं ।	२६०	६
अठारहवें परिच्छेदमें अनीश्वर वादियोंकामत कहलनकियाजायगा जो पंचभूतों में बने देहको चेतन्य मानते और देहोंमें ईश्वर कोई नहीं—तिनको ईश्वर के प्रत्यक्ष चिह्न समझावेगे कि वही शब्द देहों आदि जगत् में सर्वत्र बरसो मत्ता से उपस्थित होरहा है ।	२६०	२
उन्नीसवें परिच्छेदमें यह ब्रह्मज्ञानहै कि आधा के वाससे महातत्त्व बुद्धिर्पादित होतोस तत्त्व नियन्त्रणसे उत्पन्न होते और उही क्रमसे प्रलय होतेहैं—तद्वाकितने लोक स्वर्गमें जाते या मरणलोक में या कि तने फिर लौटि लौटि दूसरी सृष्टिमें भी जातेहैं इत्यादि प्रकारोंसे ईश्वरही अपनी वाक्ति प्रकाश करनेको नानाद्वय धरता है ।	२६१	५
स्वर्गके भागी पुरुष प्रलयकाल में भी स्वर्गही के जाते हैं तिनके पदुआनेका यह मार्गहै ।	२६२	६
उन्नीसवाँ अध्याय गृहस्थीधर्म जाननेवाले प्रलय नहीं होते किन्तु अगमते बुद्धिपूर्वकवाची राखेजाते हैं वही लौटि जातेहैं ।	२६३	६
और भी अष्टाशोडशार तपस्वी जो वेदशास्त्रादि शास्त्रीका शीशराजे रहित अथवा प्रत्यक्षमानहो ।	२६४	२५
वेदही ब्रह्मज्ञान का मूलहै उस आश्रमों को जानना चाहिये ।	२६५	१८
परब्रह्म तक जातिद्वये मार्गों में जेवा कृप होजाता और जिनकी रक्षा तथा सहायता से पहुँचते हैं ।	२६६	६
स्वर्ग भोगशौचों को जेवा मार्ग मिलता और जेवें कृप प्रलटते हैं ।	२६७	२४
बीसवें परिच्छेदमें योगाभ्यास का निरूपण किया जायगा जिससे अविमोहि आदि सिद्धि प्राप्त होती और पूरा मोक्ष मिलता है ।	२६८	१४
साधन किया योग सिद्ध होजाने की वरिदा ।	२६९	१९
योगाभ्यास जिस पर न श्रौचके निषेध लिये दूसरा सुखम उपाय देखे ।	२७०	२०
(इति षष्ठाध्यायसमाप्त्यनन्तरः १३ चिदशेषपरिच्छेदमर्थः)	२७१	१०
बत्तीसवें परिच्छेदमें कर्मविशेषोंकल दर्शावेगे कि प्रायश्चित्त न करनेवाले महापातकों आदि कर्मों का कल भोगे पोखे बिसा अन्य लेते हैं ।	२७२	५
कर्मही के अनुसार नीचयोगी पशुपक्षी आदि या चंडाल आदिको मिलते हैं ।	२७३	१६
मनुष्य के अच्छे कुलमें जन्म होनेपर भी बहिनो छोटे कर्म के बोधाश प्रभावही से अंग भंग मर्रा रेतो आदि होते हैं ।	२७४	१९
अमुकामुक पाप कर्मों से अमुकामुक योगी मिलता है जो मनुष्य से उपातल योगी हो ।	२७५	०
और भा अक्षय्य योगी जोरों बिये दुर्बों के भेदसेही मिलती हैं ।	२७६	११
कहीं काभातर में कुकर्मों का फल भोगि बुद्धे पोखे अनेक जन्मांतर से घनी मुषी बिद्वान् उत्तम कुलमें भी उत्पन्न होते हैं ।	२७७	२६
चाँदसवें परिच्छेद में उन पुरुषोंके स्वरूपदेखावेगे जो तत्कालही प्रायश्चित्तकर्मके अधिकारीहोतेहैं ।	२७८	१८

आशयाना व्यवसायक्रम*	पृष्ठ	पंक्ति
जोय और चेतना जिनका हृदय में निवास है पुनि उषा जगह गतगोहा आदि जनेको का निवास है उन सन्तों की व्यवस्था वैद्यक शास्त्र से ।	१००	६
लठारिण और पिनोके परस्पर जो विरोधमय सदेह तिसका निर्णय निर्विकार है (इसी के अंशक भी देखा १०१ पृष्ठ में दशमे अक्षरे प्रारम्भ हुआ है) ।	१०४	१०
शरीरका भीतरली नाहिया और बाह्ये मुखके आलेको खस्य आदि और कस्यो सात मर्मस्थान सन्तम म दोसो अन्धिया भी ।	१०४	१३
रोमकूपी की सण्या और भीतरली यातु आदि द्रव्यरूपी टीली बतरी सब चीजोके परिमाण ।	१०६	२
चारहवें परिच्छेदमें वह रूप दर्शावेगे जो योगोजनको हृदयमें ध्यान करना चाहिये जो दीर्घयोगीति के समान अपने हृदय में रहित है ।	१०७	१४
योगध्यान की धारणा सीखाने की साधनासे इतने उपाय*करे जो ठगम दर्जेका योग साधा चाहे ।	१०९	१६
शब्दब्रह्म की उपासना इस रीतिसे करनी चाहिये जो मध्यम दर्जेका योग है ।	१०९	१६
तेरहवें परिच्छेदमें सत्त्वविद्या कही जायगी जिससे परमेश्वर की विश्वरूपिता जानीजाय कि जागृत और परब्रह्मका परस्पर सम्बन्ध कैसा ।	१०९	२०
परमेश्वर चापही अन्नरूपसे यत्नोका रूप है कि फिर यत्नोका रूप है कि अन्नरूप होजाता है उची अन्न के बीर्यसे मैथुनी सृष्टि होता है निरानो भी सज सृष्टि छोटी यत्नो से ।	१०९	२३
मेसपाने मध्ये यद्विषय यत्ना का समाधान ।	११०	२४
बौद्धहवें परिच्छेदमें पूर्वोक्त जगत्की उत्पत्ति जो परमात्मासे हुई कहिये के तिसके विस्तार का प्रपञ्च कहा जायगा कि इस तौर से होती है ।	१११	२६
यह सबदेहद्वयी प्रकृति कि सेवा श्रुतिमान् होके पापद्वयी देहमें कहीं अन्तलेता और इन्द्रिया के होते भी पहिले जन्मोका देहादि भोगमाद क्यों नहीं ।	११३	३
चरी प्रश्नका उत्तर समाधान सहित ।	११४	७
कर्मके परिपाकफल मिलेके इसीदेहसे मिलेके दोनो लोकमें बहुतैजि परलोकही । जाकर मिलाकरतेहैं ।	११६	१४
पदहवें परिच्छेदमें पूर्वोक्तकर्म से कौन कलप्राप्त होनेको प्रकार ध्येरेवार विस्तार से दर्शावेगे कि उनसे सेवी भोग मिलता है ।	११६	३
सतीगुणी रोगगुणी तमोगुणी तीनों भातिके मनुष्यों के लक्षण और कहा । उनको जन्म जाकर मिलता है वे न्यान भी ।	१००	१६
पहिले किये प्रश्नोके सब उत्तर लुटे लुटे आगे समुदायेगे ।	१०१	२३
मालहयपरिच्छेदमें यहज्ञान कहाजायगा कि परमात्मासृष्टि जीववैति सायही शेष सब जगत्में व्याप्त होजाता है तिससे कोई यत्नु या कोई जोय सेवा नहीं कि जिसमें श्वस्वर न देखिये ।	१०२	१४
परमात्मा सबजगत्की सज प्रकृतिसे बनाता रहित है	१०२	१२
जगत् के सज देहमें परमात्मा बैठा उपका पहिंचानना बड़ा मुबल है इन प्रमाणों का रोचो ।	१०	२०
लिसजीवात्माका स्वभाव अहंकार मयहोकर परमात्माका नहीं पहिंचानता तिसकी येसी गति होतीहै ।	१०६	६
उसी विकृत जीवात्माकी सृष्टि तिसी कालात्मा से कौन उपायनासे होसकी है जब साथे तमों ।	१०८	४
सत्रहवें परिच्छेदमें यहदर्शावेगे अष्टाध्यात्म विद्या जन्मने आदि सन्तों से अनेक जीवात्मा पहिले जन्मों की दया भी जानते और फिरले मोक्षपद पातेहैं इत्यादि ।	१११	१२

मितासरा स० प्रायश्चित्तकाराड का द्वितीय सूचीपत्र ।

१२

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
अतिपात को आदिका संयोग भवेत् तिनके प्रायश्चित्त भेद ॥	३८३	१०
अदानीयं परिच्छेदं दत्तं योनबंधनकाप्रति प्रत्यक्षहारायमा किं पतितये विवाह संबंधकरना मनेहेऽपुका	३८४	१४
उसमें इतनी आचाहे कि उसकी कन्या दशरतिसे विवाहि होजाय तोकुशुदापनही ॥	३८५	१६
पतित होने का दशमं संतान लड़कीया लड़का उत्पन्न होने की व्यवस्था ॥	३८६	१०
(इति संयोग प्रायश्चित्त प्रकारं द्विपरिच्छेदमयं)		
उत्तमानोर्ध्वं परिच्छेदं चारि वर्गोपे नान्ते प्रतियोगजातो पुर्णको अध करने के प्रायश्चित्त० और	३८८	२
स्त्री शुद्धमादिका संबंध के बिना प्रायश्चित्त का विधान कहाजायगा ॥	३८९	२५
शुद्ध स्त्री मुख सब जातोके लोग चकृष्ट जातोलाग इनकी संबंध बिनामी प्रायश्चित्त करनेका अ-		
धिकार ॥	३९०	२
(इति प्रकारं परिच्छेदिकमयं)		
(इत्यग्रे महापातकादि प्रायश्चित्त प्रकारानां बृहत्प्रकरणं १६ जनबंधन परिच्छेदमयं)	४०१	२
जातोर्ध्वपरिच्छेदसे उपपातकोके प्रायश्चित्त प्रारंभ किये जायगें -तत्तनमें प्रथम मोहत्याके प्रायश्चित्त	४०२	१०
छेदने है जो अनेक भेदके होंगे सो मध्य इच्छा बिना देशयोगसे मरजाने मध्ये नियतहै ॥		
इकतालीसवें परिच्छेदमें उसी इत्यग्रे के प्रायश्चित्त होंगे जिसने इच्छा सहित जानि बुद्धि गाय		
मारी याजिसपर इच्छा बिना भी ऐसी गऊ मरजाय जो जिसका स्वामी उत्तम गुण वाला पुरुष हो		
या वह गाय आपही उत्तम गुणवालीहो ॥	४०३	१६
अति बहु या दुर्बल या रोगिनि या बूढ़ीगाय जिसने मारीहो तिसका प्रायश्चित्तभेद ॥	४०४	२८
उत्तम स्वामीको गाय मारने मध्ये प्रायश्चित्त जुटाहै ॥	४०५	८
उत्तम स्वामीकी गाय जिसने इच्छासहित मारीहो तिसका प्रायश्चित्त बिगेपहै ॥	४०६	८
पूर्वोक्त सप्तस्य योगियकी गाय मारने मध्ये औरभी विशेष प्रायश्चित्तहै गायकी उत्तमतासे ॥	४०७	८
योग्यकी इत्यादिकाना प्रायश्चित्त मोहत्यापर गौतमने उतार दिया ॥	४०८	१६
किन शस्त्रोंमे मोहत्या करी इसके निर्णय ऐसी प्रायश्चित्तोंमें कुछ भेदहै ॥	४०९	१४
अयातोर्ध्वं परिच्छेदं मोहभक्त अनेक भेदोंवाले जुदे प्रायश्चित्त हयि -किन्तु अति बूढ़ी याअक		
आदिकाजुदागमें गिरके भारदेनेका एक गायको अनेक मित के मारें ऊँधि घेरिके एकही पुरुष		
अनेकमारे इत्यादि ॥	४१०	१४
अति बूढ़ी दुर्बल आदि मरजानेका आधा प्रायश्चित्तहै ॥	४११	१४
गामिन गाय मारने मंगम हत होनेसे दूसरामी प्रायश्चित्त कितना चाहिये ॥	४१२	१४
ऊँधि घेरि अनेक गाय मारनेके प्रायश्चित्तभेद ॥	४१३	१२
दाना वाप आदि बहुत खजद देनेसे मारनेका प्रायश्चित्त ॥	४१४	२
किमी उपाधि रूपी निमित्त के द्वारा गायमारनेका प्रायश्चित्त ॥	४१५	२१
तंगातावर्धं परिच्छेद में उस मोहत्याके प्रायश्चित्त होंगे जो बांधने छोगने जोतने दाबने गिरा		
देने आदि कामके ध्यस्तिक्रमसे मरगतमें गाय डेल मरजाय ॥	४१६	७
अधन जोत नाथ लोउना आदिमें कोईके मरजानेके प्रायश्चित्त ॥	४१७	२०
अति दामने अतिवाहने अति छोगने आदि कठिनतासे मरजानेका यडा प्रायश्चित्तहै ॥	४१८	१४
इतने प्रकारके बंधनोंसे न बांधना चाहिये अथानक मर जातोहै ॥	४१९	१२

आशयानां व्यवसायक्रम,	पृष्ठ	पंक्ति
विना जाने घोखा से अनेकवार खगम किया हो • रूप दोनों के प्रायश्चित्त ॥	३७१	०
इसी बनेनी बिमाता को इच्छा सहित भोगनेमध्ये प्रायश्चित्त यहाँ और तीनसे चौहतर ॥ शुद्धमे	३७१	०
सातवाँ पंक्ति से चौदहवीं तक देखो ॥	३७१	१६
पिता की शुद्धी माया का बाधको का घेटा विना जाने किसी घोखाने भोगे तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७१	१७
जिसमे उसी शुद्धा बिमाता को जाने बिना चक्रवार से उपरालु कईवार भोगा हो तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७१	१८
इसी बिमाता शुद्धा को जानिकर कामना से भोगने मध्ये प्रायश्चित्त का विचार ॥	३७१	१९
ब्राह्मणों का पुत्र चौधविंश्या बिमाता को जानिबूझि इच्छा से भोगनेपर उताहूँहोके बीर्य सींचने से	३७१	२०
पहिले लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७१	२१
इसी चौधिया बिमाता को समूँमे बिना किसी के छोड़ेसे सगम करने पर उताहूँहोके बीर्यपात से पहिले	३७१	२२
लौटिजाने का प्रायश्चित्त ॥	३७१	२३
जो ब्राह्मण अपने पिताकी बनेनी माया का जानतेहुये इच्छा से भोगने पर उताहूँ होके बीर्य सींचनेसे	३७१	२४
प्रथम लौटिजाय उसका प्रायश्चित्त ॥	३७१	२५
इसीबनेनी बिमाताको नजानिक भोगन पर उताहूँहोके बीर्यपातसे पहिले लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७१	२६
जो ब्राह्मण अपने पिताकी शुद्धीमायाको जानतेहुये इच्छा से भोगने पर उताहूँहोके मुख्यसगमसे पहिले	३७१	२७
लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७१	२८
इसी शुद्धा बिमाता को नजानिके इच्छा बिना भोगने पर उताहूँहोके बीर्य सींचे बिना लौटिजाय	३७१	२९
तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७१	३०
स्त्रियो का भी पुरुष के मूल्य महापातक और प्रायश्चित्त ॥	३७१	३१
जो स्त्रियो अपना इच्छा बिना ब्रह्मतासे भोगीकायें तिनका प्रायश्चित्त जुदादे ॥	३७१	३२
यहाँ तक महा पातको का निषेधा होगया—यहाँ से आगेवागे उनसे कुछ नीचे अतिपातको के प्राय	३७१	३३
श्चित्त कहेजायेंगे ॥	३७१	३४
महापातकेसे उपरालु अतिपातक और पातक दोभेदोकेप्रायश्चित्तसकमानहैं जिनमें पुषब्रह्म कुफीआदि	३७१	३५
रिपते की स्त्रियो ॥	३७१	३६
ब्रह्मकीदि अत्यजाति की स्त्रियो से प्रसंग होनेका प्रायश्चित्त ॥	३७१	३७
इसी से बाधमे वसपनाते रिपते की स्त्रियोका प्रसंग—तिनमे दानी का सम्पादित स्वर्गका पुत्र शिष्य	३७१	३८
की माया निक्षिप्रा सेप कुछ आदिमी निनताहैं	३७१	३९
कन्या वृषभ आदि महापाप का अपराध (वस्तिप्रा ५) कूट ॥	३७१	४०
(इति आगम्यागमनविषयिक गुरुतत्प्रायश्चित्त शिक्केदेकमय)	३७१	४१
सौतीसवैपरिच्छेदने चासमोतकसमर्पणी या महापातकीहितहैं तिनकेप्रायश्चित्त भेदकहेजायेंगे—इसोसेसमर्पणी	३७१	४२
केलपण भी—फिर तनचारिसे उपरालुभी समर्पणी जो होराहैं तिनके भा प्रायश्चित्त—समर्पणी नहीं कहाताहै	३७१	४३
जो एकदा पातकी से हेनमेल करे ॥	३७१	४४
समर्पणी के समर्पणी जो हेनमेल जाने मे बाधहेनमेल करें तिनकेभी प्रायश्चित्त भेद ॥	३७१	४५
समर्पणी हेनमेन ॥ जितने लक्षण भेदहैं ॥	३७१	४६
जितानोदेर या कितनेदिन समर्पणी देने से समर्पणी पतित होताहै ॥	३७१	४७
इच्छा सहित किये देलमेन का प्रायश्चित्त—ग्रहातक महापातकियो के हेनमेनका प्रायश्चित्त है ॥	३७१	४८

आशयानां व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पंक्त
अतिपात को अतिवृत्ति सस्ये भवेत् तिनक प्रायश्चित्त भेदः ।	३८३	१०
अश्लीलवेषपरिच्छेदमे योनभयधकाप्रति प्रसवकहमायया कि पतितसे विवाह संबधकरना मनेहोचुका		
उसम इतनी आचाहे कि उसकी कन्या इसरीतिसे विवाह लाजाय तौकुदोपनही ।	३८४	१४
परितहाने का दशमे क्षीन लडकीया लडका उत्पन्नहोने की व्यवस्था ।	३८५	१३
(इति सस्ये प्रायश्चित्त प्रकारण द्विपरिच्छेदमय)	३८६	४०
उन्ताभाससे परिच्छेदमे चारि अंधोसे नाचे प्रतिनोमजारी पुस्योका सध करने के प्रायश्चित्त और		
स्यो गूदभादिके मर्षों के बिना प्रायश्चित्त का विधान कहाजायगा ।	३८८	५
गूद स्यो मुखे सय जातों ६ लोग भवकूप जातोलोग इनको मर्षों बिनाभी प्रायश्चित्त करनेका अ-		
धिकार ।	३८९	५५
(इति प्रकारण परिच्छेदकमय)	४०१	३
(इत्यथैव महापातकादि प्रायश्चित्त प्रकारणानां बृहत्प्रकरण १६ जनविशति परिच्छेदमय)	४०१	१०
प्रातीसर्वपरिच्छेदसे उपशान्तकों के प्रायश्चित्त प्रारम्भ किये जायगे -तनमे प्रथम गोहत्याके प्रायश्चित्त		
छेदते है जो अनेक भेदके होंगे से। सब इच्छा बिना देवयोगसे मरवाने मध्ये नियतहै ।	४०१	१२
इकतामीमर्षे परिच्छेदमे उसी हाथारे के प्रायश्चित्त होंगे जिसने इच्छा सहित जानि बूझि नाथ		
मारी थाजिसपर इच्छा बिना भी सेसी गज मरवाय जो जिसका स्वामी उत्तम गुण वाला पुस्य हो		
या ब्रह्म गाय आपही उत्तम गुणवालीहो ।	४०२	१३
अति बध्ना या दुर्बल या रोगिन आ बूढीगाय जिसने मारीहो तिनका प्रायश्चित्तभेद ।	४०३	२८
उत्तम स्वामीकी गाय मारने मध्ये प्रायश्चित्त जुदाहै ।	४०४	८
उत्तम स्वामीकी गाय जिसने इच्छासहित मारीहो तिनका प्रायश्चित्त विनयेहै ।	४०५	३
पूर्वोक्त सप्तमस्य मोचिपक्षी गाय मारने मध्ये औरभी विशेष प्रायश्चित्तहै गायकी उत्तमतासे ।	४०६	८
यैश्वकी इत्यायाका प्रायश्चित्त गोहत्यापर गौतमने उतार दिया ।	४०७	१६
जिन शस्त्रोंसे गोहत्या करी इसके निर्वाण सेभी प्रायश्चित्तमें कुछ भेदहै ।	४०८	१३
सयालोसर्षे परिच्छेदमे गोत्रपक्षे अनेक भेदोवाले जुदे प्रायश्चित्त होंगे -किन्तु अति बूढी या नरक		
आदिकाजुडागर्भे गिरके मारदेनेका एक गायकी अनेक मिलि के मारें, कृषि घेरिके मकही पुस्य		
अनेकमारी इत्यादि ।	४१६	५
अति बूढा दुर्बल आदि मरवानेका चाचा प्रायश्चित्तहै ।	४१६	१३
गर्भिन गाय मारने मेगर्भ हरा होनेसे दूसरामो प्रायश्चित्त कितना चाहिये ।	४१७	१३
कृषि घेरि अनेक गाय मारनेके प्रायश्चित्तभेद ।	४१८	२३
दाना चारा आदि बहुत खपाह देनेसे मारनेका प्रायश्चित्त ।	४१९	८
जिसो उपाधि कृषि निमित्त के द्वारा गाधमारनेका प्रायश्चित्त ।	४१९	२१
तैगानासर्षे परिच्छेद मे उस गोहत्याके प्रायश्चित्त हीमि जो घाघने करेने जोगने दाघने चिदा		
दने आदि कामके व्यतिक्रमसे अक्षततमे गाय जैल मरवाय ।	४२३	०
बधन जौत नाथ लेउना आदिमें कृषिके मरवानेके प्रायश्चित्त ।	४२३	२०
अति दाघने अतिमाहने अति जोगने आदि क उन्तासे मरवानेका मठा प्रायश्चित्त ।	४२४	१७
इतने प्रकारसे बधनीसे न बांधना चाहिये अज्ञानक मर जातोहै ।	४२६	१२

आश्रयाना व्यवस्थाक्रमः

	पृ	पंक्ति
घंटा बाधने वा आभूषण पहिराने आदि उपायसे यदि गाय मारीजाय तोभी प्रायश्चित्त है ।	४२८	२०
मशाले देकर अतिशय दूध निचोड़ने या शित्तामें अति दमन करने या चनेकों को शकही पंचनमे बाधने आदि ध्यातक्रमसे मरजानेका प्रायश्चित्त ।	४२९	३
जंगल आदिमें प्रयोचित रक्षा न करने आदि गफनतसे मरजानेका प्रायश्चित्त ।	४२९	१७
भिरले काममें गाय मरजाने सेभी दोष नहोइ न प्रायश्चित्त है ऐसे अपवादोंकी व्यवस्थाभी अनेक है ।	४२९	१०
उक्त अपवादों (छूटों) मेंभी एक विशेष नियम देखो ।	४२९	२०
हाथ आदि टूटि जानेमें मरनेसे प्रायश्चित्त करने परभी प्रायश्चित्त ।	४२९	२६
जिमकी गाय मारीगई तिसको येसोबाध या उतना मूल्य देनेका नियम ।	४३०	१३
वयंप्रायश्चित्तकोविभागचारोंबसोपरयत्नमुको-क्योंक्यहांतकब्राह्मण प्रायश्चित्तकीव्यवस्थाकहीगई-	४३०	२३
स्त्री बाधक बूढ़े रोगी आदिके प्रायश्चित्तों का विचार ।	४३१	११
(इति गौतम प्रायश्चित्त प्रकरणं चतुःपरिच्छेदमयं)	४३१	०
चतुर्दशपरिच्छेदमें सभी उपपातकोंपर गौतमके प्रायश्चित्तोंका अति देश उत्तरा वायव्य कि	४३१	१३
येही प्रायश्चित्त अन्य उपपातकों में ।	४३१	१६
इच्छा सहित क्रिये उपपातकों की व्यवस्था ।	४३१	१६
उपपातकों पर गौतम प्रायश्चित्त का अतिदेश उत्तरने मध्ये एक तर्कवाद है ।	४३१	१०
पैतालीमयें परिच्छेदमें ब्राह्मण प्रकृपा प्रायश्चित्त कहाजायगा तो ऐश्वर्यिकोंके यशोपवीत संस्कारसे	४३१	१०
निलीनहोय तिसको ब्राह्मण मिटिचुने ।	४३१	१०
जिनके बाप दादे आदि अनेक पीढ़ियोंसे संस्कार विनाजात्यता बनीआतीहै तिनकेभी प्रायश्चित्त	४३१	१०
से फिर संस्कार होसकते हैं ।	४३१	१०
द्वितीयपरिच्छेदमें उनचोरोंके प्रायश्चित्त होने का मुख्यलक्षणेसे उपरालू धान आदि सामान्य	४३१	११
चोरोंकरें जिसके भेद अनेक है ।	४३१	११
ब्राह्मण की चोरी बनी या लची आदि अन्यवर्गों की इस भेद से प्रायश्चित्तों में भेद है ।	४३१	११
छांटी बड़ी चोरी के अनुसार प्रायश्चित्तों के भेद ।	४३१	११
कामनाके बिना किसी धर्मि आदिसे चोरीकरी तिसका प्रायश्चित्त ।	४३१	११
मुख्य मुख्य की चोरी के समान को चोरियों कहातीहै तिनको व्यवस्था पौर प्रायश्चित्त का भेद ।	४३१	११
जानो पीना बनी तैयार भोजनकी चीसोके करनेमध्ये प्रायश्चित्त ।	४३१	११
नृग मांस मूत्रा अन्न गुड तैवआदि अनेक चीसों सेबोहनेका प्रायश्चित्त ।	४३१	११
अधि मुक्ता प्रवाल रजत रास आदि अनेक चीसों के प्रायश्चित्त ।	४३१	११
पैतालीमयें परिच्छेदमें रोमि उपपातकोंके प्रायश्चित्त करनेवायेंसे एकचलो के न जोधनेमध्ये-टुपरा	४३१	११
अनाहिताग्नितपका • तमरा अपरम विक्रय का ।	४३१	११
देयतायोज्य चतुः चरित्रिकाचतुः वितरी का चतुष्टयसे माय मनुष्यों का अस्पृश्य जानना इनके न	४३१	११
उद्धार करने के प्रायश्चित्त ।	४३१	११
अनाहिताग्नितपका प्रायश्चित्त-जिनके कुंभमें अग्निका रखावन बनापाता हो घड़ीमुख्य अंगिको रखायना	४३१	११
न राते तिसका ।	४३१	११
अपव्ययतप अपांज्य आ शीर्ष सेवनी ब्राह्मण आदिके निषिद्ध है तिनके सेवने का प्रायश्चित्त ।	४३१	११

सितासरा स० प्रायश्चित्तकाण्ड का द्वितीय सूचीपत्र ।

१६४

आशयाना व्यवस्थाक्रम

	पृष्ठ	पंक्ति
अडतालीसपरिच्छेदमस्येतौ दोहोऽपवातकटे जिनकेअनेकभेदहोतेहेअथातुपरिवेदनकर्मक उपपातक		
में परिचिता परिचितौ आदिबड़े पातको • कोर दूसरे भूतकाध्यापन के प्रातश्चित्त महेजोयें ॥	४४८	=
परिचिता यहपुण्य से। यह भाता क विवाह से पहिले अपनकरे तिसका सवाई माच हो जान का		
प्रायश्चित्त ॥	४४८	१३
जिवाह तकहोआने कोदशमे परिवेदनी कन्या जो प्रथम छोटे को विवाहोजाय • परिदायी यह पुरुष		
जो येसो कन्याका दानकरे • परियष्टापडित जो येना विवाह कराये इनसबके प्रायश्चित्त ॥	४४९	०
यह बहिनके विवाह सेपहिलेछोटोबहिन विवाहोजाय से अथेदिधिपूकहाती हे शत्यादि अनेको		
के प्रायश्चित्त एकसाधहो कहगये ॥	४५०	१९
पर्याहित जेठभाई जिनके अग्निस्वायनान होतिहुये छोटोभाई अग्निस्वायन करे तो यह छोटोभाई		
पर्याधानु कहाये दोनो के प्रायश्चित्त ॥	४५०	१०
दिधिपू यहछोटोबहिन जिसमे प्रथम छोटो धियाहीजाय • यहछोटो अथेदिधिपूकहातीहे • जिसको		
निवाहीगरे से अथेदिधिपूकहाती कहायो त ने के प्रायश्चित्त ॥	४५०	१०
भूतका ध्यापक • भूता ध्यापित • जो मजुरा देनेकर यहे पकाये तिनके प्रायश्चित्त यह दूसरा उपपातकहे		
उपर एकहाके अनेक भेदकहे ॥	४५१	१०
(पंक्ति बहुभेद विधायिक साधारण प्रकार पक्ष परिच्छेदमय)	४५०	२६
उहू सवंपरिच्छेदनेपरस्त्रीगमन प्रायश्चित्तको अनेकभेदहोगे • यह परस्त्रीगमन उपपातको में तिनकोहे •		
उपस्त्रियोका सची इसमेंनहीहे जिनके प्रायश्चित्त गुरुआरागमन के नामसे महापातकोमिच्छाहुके ॥	४५१	०
कामसे गमन करना पराई द्वारा सजातिके अनुकान आदि उत्तम मध्यम दण्डके भेदोसे प्रायश्चित्तभेद ॥	४५२	१०
ब्राह्मण सची आदि शीर्षिक जो विद्याकयह में लगेहोया सवह करचुके हो तिनकी द्वारा गमनकरने		
क प्रायश्चित्त भेद ॥	४५२	२०
आयिष ब्राह्मणका विवाहित भायो सचिया या योना या गूढाहो तिसके अनुकानमें सगम आदि		
भेदो से प्रायश्चित्त ॥	४५३	९
कोई दनो किसी सचीकी विवाहिता भाया सचिया या योनी या गूढा के अनुकाल आदि उत्तम		
लक्षणयानी मे गमनकरे तिनके प्रायश्चित्त भेद ॥	४५३	५०
कोई वैश्य किसी वैश्यकी विवाहिता योनी या गूढा को पूयात उत्तम गुणयानी हो तिसमें गमन		
करे तनके प्रायश्चित्त भेद ॥	४५४	२३
कोई गूढ किसी गूढकी विवाहिता गूढो भायोम विमर तिसका प्रायश्चित्त ॥	४५४	२५
इच्छा रहित एक रात्रिके सियार या दुःख आदि सगम करे तिनके पूयात शायश्चित्तोंकी चर्चा		
वकि जाती हे ॥	४५४	०६
इच्छा यिना घोवा आदिमे तसो प्रकारको उत्तम गुणयानी स्त्रिया या शीर्षिक निप्र सची आदि को		
चहा भोगीजायें तां। बुधाल प्रायश्चित्तों में न्यूनता हाता हे ॥	४५५	११
पूरात ब्राह्मण आदि उत्तरो स्त्रियोको अनुकान के यिना कमको इच्छा रहित भागे तिनके प्राय-		
श्चित्तोंमें कुछ भेद हे ॥	४५५	१५
इसमें भी तीनों यणक अपनेसे नीचे वसो की विवाहिता भायात तिनके भोगे मयसे प्रायश्चित्तों में		
कुछ औभी भेदो ॥	४५५	२५

अवस्थाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
तिथिमें भी यदि दृष्टा विना धोखेमें समझ लियेहों तिनके प्रायश्चित्त भी बुद्ध है ।	४४४	२६
धर्म कर्म में बिहोत किसी सजातीको भार्या यदि कोई सजाती ब्राह्मण आदि भोगे तिसमें जुदा एक नियम है ।	४४५	१६
व्याभिचारिणी स्त्रियः जो इहाँ भोगे कोइहो तिनमें समझ करने मध्ये प्रायश्चित्तों में कुछ भेद है ।	४४५	२०
उत्तम गुणवान् ब्राह्मणकी भार्या जो व्याभिचारिणी या नहीं व्याभिचारिणीहो तिनमें समझ करने के दो तरह प्रायश्चित्त है—ब्राह्मणके समान अन्य वर्णको क्षत्री सजाती के भोगमें उपभोग ।	४४५	१०
गनी सन्यासिनि आदि उत्तम स्त्रियों के भोगमें प्रायश्चित्त ।	४४५	२४
व्याभिचार से ब्रह्मनाम रानी सन्यासिनि आदि के भोगमें छोटा प्रायश्चित्त है ।	४४५	२८
गनी सन्यासिनि आदि जो निषट स्त्रीहोइहो। अर्थात् तनि पुरुषसे ब्रह्मनाम होकर चौथे आदि वा- रोसे चिगडो हो तिनके भोगमें अति छोटा प्रायश्चित्त ।	४४६	१६
गर्भ रक्षितने का प्रायश्चित्त अनुलोम मैथु-की दशमि अर्थात् ऊंचे वर्णके पुरुष ने नीचे वर्णको स्त्रीके गर्भ धरहो तिसका ।	४४६	२५
प्रतिशोम दूषित स्त्रिया जो नीचे वर्ण के पुरुषों से ब्रह्मनाम होचुको तिनमें जो पुरुष गर्भ धरे या बहालो आदि मनोम जाती की स्त्रियों में गर्भ धरे तिसका प्रायश्चित्त ।	४४७	१०
गर्भ जनि जाने बाद उरध्व होजानेमें अधिक प्रायश्चित्त है ।	४४७	२२
शुद्धिनीके पेटसे गर्भ टपकाने मध्ये जुदा प्रायश्चित्त है ।	४४७	२४
प्रतिशोम व्याभिचार का प्रायश्चित्त जो ऊंचे वर्णको स्त्रियों में नीचे वर्णके पुरुष मैथुन करें ।	४४७	२४
अथवा व्याभिचारिणी ऊंचे वर्णको स्त्रियों में प्रतिशोम मैथुन जो नीचे वर्णके पुरुषकरे तिनका प्रायश्चित्त	४४७	२६
घोत्रिनि रक्षकनि बिहीमरिनि आदि अथ जातीकी स्त्रियों ब्राह्मण जो एक बार संगम करे या चर्चा आदि कामना से करे तिनके प्रायश्चित्त ।	४४७	२६
उरही चढाली घीबिनि आदि में जो दृष्टा विना घोखा आदि से संगम करे ऐसे तीन वर्णोंके प्रायश्चित्त यह एकवारके संगमको व्यवस्था कही ।	४४७	२७
उरही अथ जातीकी स्त्रियोंमें चौकेसे बारबार जिसने भगमकिया तिसका यज्ञ प्रायश्चित्त है—तथा जानि ब्रूमि एक बारके भोगमें भी ।	४४८	१०
उरही चढाली आदिमें संगमसे गर्भ रहिजाने का प्रायश्चित्त बहुत बड़ा है जो भगिनि आदि अनि मनोनिमि चर्चा वर्णके पुरुषोंसे कहा गया ।	४४८	१४
अथवाति भगि आदि जिसके धारमें किसी हेतुसे पुषा या कुछदिन बसाहो तिसके प्रायश्चित्त यज्ञ पर प्रप्त से लिखे गये ।	४४८	२६
पक्षमासे परिच्छेद में सन्धी स्त्रियोंके प्रायश्चित्त करे वायगे चौ पण्ये पुरुषोंने भोगमकरे दृष्टा या अनिच्छाके भेद से—यथा उन स्त्रियों का प्रसव नपाडे जिनका चर्चा २६ परिच्छेदमें थायुका ।	४४९	१६
जा स्त्रिया अपने सन्धी पुरुष से या ऊंचे वर्णके पुरुष से भगम करे तिनका प्रायश्चित्त ।	४४९	१९
जा स्त्री चपना से नीचे वर्णके पुरुष याद्व संगम करे तिनका प्रायश्चित्त ।	४४९	१९
दृष्टा विना प्रयत्ना आदि कारणों में जो स्त्री नीचे वर्णों से भोगा चाय तिसके प्रायश्चित्त भेद ।	४४९	१९
गोनी बर्दको स्त्रियों कही शुद्ध के संगम में या शुद्ध होमकनी कही गई है ।	४५०	१८
वर्षा गर्भ रहि जाने में भी स्त्रियों की शुद्धि होनी कही गई है ।	४५०	८

प्रायश्चित्तानां व्यवस्थाक्रमः.	पृष्ठ	पंक्ति
कहा शूद्र क वीज से रहकर पैदा होय तहा उसय जिवो का फिर प्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् त्यागही करना कहोहे ।	४७१	२८
द्विजाती माचकी भार्या अपने पतिसे बीजसे सगर्भा होय तिसका यदि शूद्र आदिका प्रयत्नता से सगम होय तिसका जुदा नियम है ।	४७२	३
कही चटान आदि अत्यन्तके सगम से भी स्त्रियोंको मुक्ति प्राप्तचित्त से होजानी कहोहे ।	४७३	१६
चारों वर्षकी स्त्रियां जो पालके बीजसे सगर्भा होते हुये चटान आदि अत्यन्त से भोगानायें तिनके जुदे नियम है ।	४७४	१७
जिस स्त्री ने कामना सहित अत्यन्तों के साथ मैथुन और मोचन किया तिसने जुदे नियम है ।	४७५	१०
उन्ही सन्वेषनोका सम्भूत निषेध यह । देखो जो जो इसोपरिच्छेदमें प्रारम्भे यथातक दियोगे ।	४७६	११
(इति पारदार्यं प्रायश्चित्त प्रकरणं द्विपरिच्छेदमथ)	४७७	३
दक्षयाननेपरिच्छेदमें जुदेजुदे तीनवषपातकोके प्रायश्चित्तउद्देश्योः १ परिबन्दिता २ वाधुष्य दोष ३ लघ्वश्रिया दोष ४ तानि विषय छोटी व्यवस्थाके हेतुसे एकही परिच्छेद में रखे गये ।	४७८	१८
परिवन्दिता प्रायश्चित्त महा । देखो जिसका स्वल्प ४८ के परिच्छेद में आदुका या कि जिस केहे भाई के निराश्र से रहित छोटेका दोषाग्र ।	४७९	२२
वाधुष्य वह पुत्र जो अशुचित्त पतिका प्याज बहुत क्षिप्त लगाने आदि प्रकार से जाय तिसका प्रायश्चित्त ।	४८०	१
लघ्वश्रिया का प्रायश्चित्त भी वाधुष्य के सम्यही देखो ।	४८१	३
(इति परिवन्दितादि त्रयवचन प्रकरणं परिच्छेदमथ)	४८२	२०
वाशनने परिच्छेदमें चर्चो आदि शूद्रप्रमत्त तीन वर्षोंमें किसीपुरुषका वधकरनेवाला कि प्रायश्चित्त भेदछटे आयेंगे ।	४८३	७
शिशुचार समुक्त सन्यास चर्चो आदिके भारिका प्रायश्चित्त ।	४८४	१०
इच्छा सहित चर्चो आदिका वध किया है । तिनमें प्रायश्चित्त ।	४८५	८
शौचिय चर्चो आदि जो विद्याके अध्ययन में लगे या पठितुक्त है । तिनको इच्छा सहित भारनेवाले के प्रायश्चित्त ।	४८६	१८
होना गुणमें युक्त चर्चो आदि जो शौचिय लवण और शिशुचार आदि मद्गुप्त लक्षणसे भरे हुए है । तिनका वध करने मध्ये प्रायश्चित्त भेद ।	४८७	८
शौचिय चर्चो आदि जो यज्ञा आरम किये है । तिनका वध करने के प्रायश्चित्त भेद ।	४८८	२०
निषट्ट यज्ञा में बैठे हुये आचम्य चर्चो आदि वध करने मध्ये प्रायश्चित्त का सङ्पादन ।	४८९	११
दुर्बल चर्चो आदि जो कुमारी विदित होयें तिनका वध करने के प्रायश्चित्त छोटेरे यथातक उक्त क प्रायश्चित्त करे गये जो मालेजाला मुद प्राप्त हो ।	४९०	२६
ब्राह्मण में उषागु कोई चर्चो आदि वधकर्ता है । तिसके प्रायश्चित्तों में कुछ भेदछटे उन्हे परिने पायेपर ।	४९१	१०
तिरयननेपरिच्छेदमें चारोंवर्षकी उनस्त्रियोंकेवधपर प्रायश्चित्तभेदकहेये जो मन्द १ मध्यम २ द्रुतः ३ तीन भाग की हो-अर्थात्-सगान पैदा करने के उसय गुणमें हीन रंध्याआदि या किचित् व्यभिचारसे कलङ्कित या अत्यन्त खेरियी आदि ।	४९२	८

आशयानां व्याख्यानक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
मन्त्रे प्रथम अतिछोटी स्त्रियों के वधपर प्रायश्चित्त—किर ॥	४८१	८
एक अङ्गुली व्यवस्थाका निर्वाय जो चौथेमें अनिपप ॥	४८२	२२
किंचित् ध्यामिचार मे दृष्टित जो अति छोटी न हो तिनका वध करने के प्रायश्चित्त भेद (इनके मध्यमा कहना चाहिये) ॥	४८४	६
निकम्मा या मंदा कहे जो लोनों में श्रेष्ठ है तिनके वध करने का प्रायश्चित्त हारोत के वचन के कुछ बड़ा है ॥	४८५	१६
इच्छाके बिना देवदेग मे वधकिया हो तिनके लिये चाहे प्रायश्चित्तका नियम है ॥	४८७	२५
सर्वसिद्धांत कुरो निर्वाह—इसमें आचर्यो • मंदा • मध्यमा • अति छोटी इन चारों को व्यवस्था समुचित लेना ॥	४८८	७
(इति ब्राह्मणतन्त्रादिना प्रकरणं द्विपरिच्छेदमर्थ)	४८८	१७
चौवनमें परिच्छेद में मनुष्य मे उपरालू सब औषो की हिंसा मध्ये प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे जो हाथी मे लैकर मच्छर लोह धरालू होतेहो ॥	४८८	१४
बिनहाड़े के जन्तु या हाड़ीवाले अतिमूलन जन्तुकोका समूह वध करने मध्ये प्रायश्चित्त ॥	४८८	१६
बिल्लो • मोह • मेहक • नेउरा • और उड़नेवाले काकपक्षी आदि अनेक पक्षीको वध करनेके प्रायश्चित्त ॥	४८९	१७
हाथी • गदहा • घंकरा • आदि चौपाये • तया • तोता • कौब • सारस आदि श्रेष्ठ पक्षियोंके वध करनेका प्रायश्चित्त भेद ॥	४९१	१६
वानर • हंस • बाज • गिद्ध • और मांसमखी जीव जो जलमें या स्थलमें होतेहो और मांस नामकपक्षी आदि जीवोंके वधमध्ये प्रायश्चित्त ॥	४९२	७
साप आदि सरीसृप • ऊँट • घागरा • घोडा आदि और मनुष्य केवल हिनरों की आतिमाच जो के भी पशुगुण्य है • इनके वधकरने के प्रायश्चित्त ॥	४९३	४
वन प्रायश्चित्तों की अत्यन्त में दूसरे प्रायश्चित्त बताते है ॥	४९४	३
अति मूलजंतु जो कन कून पत्ते लकड़ी आदि में होतेहो तिनके नाश करनेका प्रायश्चित्त ॥	४९६	७३
उन मन्त्र जीवोंके वधपर प्रायश्चित्त जो अपराध करने के प्रतिवार में मारेहो (अवराधकर दृष्टांत केमे कुमेने काटिलामा • काकने ऊपर हगिदिया ॥	४९८	८४
(इतिनरार मर्मप्राक्षिहिंसा इकारणं परिच्छेदिकमर्थ)	४९९	१४
वधवर्गपरिच्छेद में मयतरफकी वनमति वृथा काटने या तोहने या उखाड़ि कराने आदि किसी प्रकार मे प्रियार करनेके प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे ॥	४९९	४
वधवर्गपरिच्छेद में उम मुन्य के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो किनी मनीन वधुषवोआदि क थये या मनुष्यहो मे काटि आघाताय—श्रीकि मारनेका प्रमंग घना आताहो रहा मारनेवाला किमंसे काटि छाया भी जागहो ॥	५१३	२०
पुनर्वना ध्यामिगिरी श्रेण्या आदिमी प्रायश्चित्तोत्त के समय काटि खातोहो या वन्दर गदहा ऊँट कक आदिमे काटिछायाजाय तिनके प्रायश्चित्त ॥	५१६	२७
म्रिया जो दुने आदिमे काटीजायें तिनके खुदे प्रायश्चित्त है उनमें जो दण नियम से संयुक्त हो तिनके लिये विशेष नियम है ॥	५१७	१७
एवमथा रोने जो म्रिया कृता गर्भ कक आदि काटीजायें तिनके खुदे प्रायश्चित्त है ॥	५१७	२४

आशयाना व्यवसायक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
पुरुष को कुना आदि मलीन जीवेषि केवल सूघि लिपाङ्गाय या जोभमे चाटि लियाजाय तिसके जुदे प्रायश्चित्त है ॥	४१६	६
जिस पुरुष के देहमें कुता आदिके काटने ॥ घोटने या चोरही किसी चाट कोडा आदि के मड़ि- जानेसे राधिमं कोड़े भी परे तहाका छुटा प्रायश्चित्त है ॥	४१९	१४
(इति स्थावर हिमादि प्रकरणं द्विपरिच्छेदमयं)	४१७	१३
समाजन्तं परिच्छेदं उन प्रायश्चित्तके भेद कहेजायेंगे जो देहका मातवा घालुबीय किसीतरहसे बिगाडि देनेमें लगते हैं या जलमें मुहकाया देखिलेने • या कोई अगुचि वस्तु देखिलेने • या नि- दित उपजीवन • या मान्तिक्ता प्रकट करने में लगते हैं ॥	४१८	७
दूधा घीमपातन के प्रायश्चित्तभेद अनेक हैं ॥	४१८	८
जन्मे दूया देखनेका प्रायश्चित्त १ अगुचिवस्तु देखनेकेका प्रायश्चित्त २ यवत्य यवन को केवल हावी ठट्टेकी अपलतामे घोसा हो तिसका भी प्रायश्चित्त ३ तांजे यकसाय ॥	४१९	२६
निन्दित अर्थसे उपजीवन कर्मका प्रायश्चित्त • इसमें स्त्री पुत्र बालकपादिका येचना या विक्रयाना दलानोलिना आदिभी ग्राह्य है ॥	४२०	२६
मान्तिक्तापर आकूठहोने या ठमकेद्वारा जीवनभूमिकरनेकाप्रायश्चित्त उसोनिन्दित अर्थकेसाथमें देना ॥	४२१	३
अट्टावनपेरिच्छेदमें ब्रह्मचारी आदि को भी खंडित करिके सबकीबी छरिरेहो तिनके प्रायश्चित्त होगे-बौर वानप्रस्थ संन्यासी को आश्रम छोड़िभाने या फिरिके घर बसाये तिनके भी प्रायश्चित्त ॥	४२२	८
अबकीबी ब्रह्मचारी आदिका प्रायश्चित्त ॥	४२२	१८
ब्रह्मचारी को स्त्री सम्य के बिना भी वीर्यका रुन्दन करे या दिनमें सोवे या स्वप्नमें वीर्य त्यागे तिसके प्रायश्चित्त ॥	४२३	२३
वानप्रस्थ या संन्यासी को वीर्य खंडित करे या निजआश्रम के ब्रत भगकरे तिनके प्रायश्चित्त ॥	४२४	२६
संन्यासी को संन्यास छोड़ि फिरिके घरघराकर आप गृहस्थोवने तिसका प्रायश्चित्त पुनः संस्कार भी बिरले संन्यासी आदि भग्नव्रत होकर पीछे प्रायश्चित्त करने से भी गृहस्थो में नहीं शामिल होसकतेहैं (अर्थात् ऊपरके प्रायश्चित्तश्रुति शामिल होसकते हैं ॥	४२५	११
शास्त्रीय मरणाकूठ प्रच्युतानो व्रतभग्न प्रायश्चित्त भेदाः यह दोनोयात यकूप है ॥	४२६	१३
अशास्त्रीय मरणाकूठस्य प्रायश्चित्तं—इसमें आत्मघातियेकि प्रायश्चित्त भेदरे कि जे कोई भिनमौत मरनेपर उताकू होकर बाँधजाय ॥	४२६	१४
आत्मघाती को निपट किसी वतानेसे आपही मरगये तिनके प्रायश्चित्त उनके पुषादिख अधिकांशिके ॥	४२७	१
व्रतलोप शब्दके अर्थका निर्णय जो अनेक वातावर जैनता से ॥	४२७	२
वनमसिधैं परिच्छेद में ब्रह्मचारीके व्रतभग्न होने मध्ये प्रायश्चित्तहोगे कि जिसमज्जबारीके यथोक्त नियम पखिटा होजायें-बौर ब्रह्मचारी विद्यार्थी के मरने से मुकुतामी प्रायश्चित्त कहाजायगा ॥	४२७	२८
ब्रह्मचारी को मांस आदि मद्य करे तिसके प्रायश्चित्त ॥	४२८	७
गुरुने प्रतिज्ञा आसखकरे तिसके प्रायश्चित्त ॥	४२८	७
यथोपयोग आदि खरिखत होजाय तिसके प्रायश्चित्त ॥	४२८	८
यथोपयोग काधेपर हुये बिना भोजन या शका लघुशका आदि कर्म करे तिसका प्रायश्चित्त ॥	४२९	७
अन्य कोशेकेमात्र पोषामेंखाने-या जानिकुकि रक्षासाहित श्रेष्ठमाष खादनेके यहप्रायश्चित्तहै ॥	४२९	१२

आश्रयानां ध्येयस्वाक्रमः	श्रु	पति
रोगहोनेकी दशमे जो वेदा अपाद्या दे सो रसरोगकी शक्ति चर्तहके सामखनेका दोष नहीं पर गुरुक आश्रानेने ।	४२६	७४
ग्रहचारको यदि कुता आदि मनीनकीय काटिछाय तिमके प्रायश्चित्तका प्रसव ।	१६०	९६
गुरुका भेदाभ्या शिष्य कही वेहह आदिमें मरजाय तिमका प्रायश्चित्त गुरुपर ।	१६०	९९
प्राणहिंसाहोलापर भी हिंसाकादोष बिरने म्यलपर नहोहे तिमकेवर्य हिंसामात्रका अपवाद यहाटेगी ।	१६८	९०
नाटिमें परिच्छेदमें उपवासीका प्रायश्चित्त कदाशायना जिनसे किमोपर भूटा दोष लगाया हो-भो		
उसका भी कि जिसपर भूटा दोष लगाया जाय ।	४४०	९
मिथ्याभिज्ञान प्रायश्चित्त-भूटा दोष लगाने का प्रायश्चित्त ।	४४०	८
मिथ्याभिज्ञानस्य प्रायश्चित्त-जिसपर भूटा दोष लगाया तिमके भी प्रायश्चित्तकी चकुरत होतीहे ।	४४०	९२
इसके प्रायश्चित्त पूया कही करना चाहिजे इसी संदेहका निषेध ।	४४४	४
रक्तमर्दिषपरिच्छेदमें समयवैति प्रायश्चित्तहोने को पुरुषको रजस्यना संगम करनेने या भाईको भाया		
गमन करने से लगते-भोर एही को उस दशा में लगते हैं जो रजस्यना होत दूसरी रजस्यना से		
भिडजाय या चंडाल कुते आदिना छुड़जाय ।	४४४	९०
अपराधगमन के प्रायश्चित्त-यहा कदाया भाई को भाया । या अपनी भाया को रजस्यनाहो । या		
गर्मिको हो । या पतिता । या मद्यपा । या चंडालो आदि रजस्यना हो ।	४४४	९३
रजस्यना संगम करने का विशेष नियम । रक्तमर्मिको भोर पतिता भोर चंडालो आदि भी शामिलहे ।	४४४	९३
भाई को भाया गमन करनेपर छेडा प्रायश्चित्त कटा जानेका निर्वय परम कारण के साथ ।	४४४	९८
रजस्यना स्त्री को दूसरी रजस्यना अपनी संगीना आदि किसीको छुड़जाय तिसके प्रायश्चित्त ।	४४६	९८
जुदे जुदे सवौकी दो स्त्री रजस्यना होत परस्पर छुड़जायें तिन दोनो के प्रायश्चित्त ।	४४७	४
चंडाल आदि मनीन प्राणीसे जो कोई रजस्यना छुड़जाय तिमके प्रायश्चित्त भेद ।	४४८	४
रोगिनी अथमथे रजस्यना यदि कुता मूकर फाक आदि से छुड़जाय तिसके जुदे प्रायश्चित्त हे ।	४४८	७५
रजस्यना भोजन करत हुये कुता या चण्डाल आदि मनीनको छुड़जाय तिमका जुदा प्रायश्चित्त हे ।	४४८	९०
दो रजस्यना भोजन करती समय आपसीमें भिडजायें उन दोनोके प्रायश्चित्त भेद ।	४४९	९४
भोजन के दिन किसी रजस्यना को यदि कुता गर्दम आदि काटि गाय या नक से सूचिजाय या		
चिमगादर आदि नोच गयी छुड़जाय तिसके प्रायश्चित्त का प्रसव ।	४४९	९८
(रति वतनेप प्रसव संघ परिच्छेद मय)	४४०	४
शान्तिमें परिच्छेदमें भुताधिक्य आदि सोटे विरुद्ध से उपखोजन करनेके प्रायश्चित्त कहेजायेंगे-आदि		
शब्दगे-स्त्री-कन्या-पुरुष-माय-पुण्य-वागोवा-देवालय-तानाव-तीर्थआदिआविशयभी जानना	४४०	९०
मृगादि विरुद्ध का प्रायश्चित्त । चंडा-चंडाल आदि बिरानिसे विना विरुद्ध किया हो ।	४४०	९६
अकान आदि प्रसन्न विषयोंमें जो मृग आदिका विरुद्ध किया तिमका प्रायश्चित्त ।	४४१	५
या । आदि शब्दसे देवानय यागीना पुण्य सोयें आदि भी समयने भोर सज नररकी मगान मग		
का विरुद्ध समुक्तिनेना ।	४४१	९
नगर भोर कन्यापुत्र पुत्र आदिका विरुद्ध या दृष्टा नहिदा मोग मानवसे कियात तिमका प्रायश्चित्त ।	४४१	९८
विषय के शिने विना व्यर्थ व्यर्थ करने के निमित्त विगने ऊर्ध्वात कोई घण्टा या श्राव्य देखा हो		
तिसके प्रायश्चित्त ।	४४२	५

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पं क्र
परिच्छेद में चारि उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—उनमें एक अयाज्यपात्रक पाथा पश्चात्तक १ दूसरे वेदकी वृथा व्यर्थ करनेवाले वेदपाठोंका २ तीसरे भार्य उन्नाटन आदि प्रयोगों में चयास्वी का ३ चौथे शरागतका रक्षा न करनेवाले धनधान्य जनान् का ४	४४३	७
इन चारों उपपातकोंके मिले भुजे प्रायश्चित्तों के लक्षण भेद ॥	४४३	१०
इनमें प्रथमके दो पुरुषों का एकही प्रायश्चित्त है और दोनोंका एकहीसा पापहै जो मंत्रोंमें संघर्षरक्षता है।	४४३	२२
इन्हीं चारोंमें पिछले दोपुरुषों का प्रायश्चित्त एकहीसा अभेदहै अथान् वेदभागी और शरागतके त्यागोंका।	४४३	२९
पढ़ने पढ़ाते समय गुरु शिष्य दोनोंके बीचमें यदि मुषा आदि कोई जीव निरपिपाय तत्ता अन-ध्याय होकर प्रायश्चित्त होना कहा है ॥	४४३	३६
चौसठवें परिच्छेद में १० दण्ड उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—उनमें प्रथम पितृ मातृ मृत गुरु त्याग • कन्यादूषण • परिबंदकयाजन • कुटिलता • निजप्रतीके निग्रह तोड़िदेना • मद्यप स्त्री का सेवन • परिबंदक को कन्या देना आदि ॥	४४३	३८
पिता माता पुत्र गुरु आदि का करण के बिना त्याग देनेजाने का प्रायश्चित्त ॥	४४३	४०
किसी कुमार कन्याको दूषित करने या उसमें कोई दूषण आरोपित करनेवाला प्रायश्चित्त ॥	४४३	४२
कौमार अवस्था में द्वारा त्यागिदेनेवाले, दूषणों के शांतहोनेवाले, कूट व्यवहारी आदि चनेक पापों लोगोंके प्रायश्चित्त प्रसंगमात्र में दर्शाये गये ॥	४४३	४८
कुटिलता और परिबंदक को कन्या देना या उसको यजन कराना और मद्यप स्त्रीका सेवन करना और स्वीकृत प्रतीके निग्रह तोड़िदेना आदि क प्रकारके प्रायश्चित्त एक साथही यहाँ दिये ॥	४४३	५०
पैंसठवें परिच्छेद में आठउपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—प्रथम स्वाध्यायमात्याग • अग्निहोत्र कात्याग • मुतादि संस्कारकी उपेक्षा • वन्द्युओं का अपमान आदि आठनाम लुटे लुटे चालेंगे ॥	४४३	५६
स्वाध्याय को पढ़ा वेद शास्त्र या नचापाठ आदि हो तिसके निषट त्यागिदेने या भुनक् देनेका प्रायश्चित्त ॥	४४३	६०
अग्निहोत्रकी त्यागना जिसके कुलमें चली जातीहो वही उसको त्यागिदे तिसके प्रायश्चित्त ॥	४४३	६४
पुत्री पुत्र आदि का विवाह द्विराममन यौवप्रीति मुखन आदि संस्कारों के योग्य हो तिनके करने में जिम्मा या निषट उपेक्षा करे तिसके प्रायश्चित्त ॥	४४३	६८
आयश्चित्तोंद्वारा समीचीन के प्रसंगमें ही तिनका पानन को समर्थ होतिहूये मन्त्रों तिसका प्रायश्चित्त ॥	४४३	७२
स्वियेकर्म द्वारा निमित्तश्रद्धिकों या हिमाम्बु के प्रसंगमें अंगिका करे या यशोकरव विषय भोग आदि सबधी श्रद्धाधिके से अंगिका करे तिनके प्रायश्चित्त भेद ॥	४४३	७६
(इति आचिन्त्यानां परित्याग प्रकरणं चतुःपरिच्छेदमथ)	४४३	८०
स द्रष्टव्य परिच्छेद में दुर्य्यसना की धत लमिजान के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे और ठगाने प्रथम में सद्यसनाका भी निषम किया जायगा ॥	४४३	८४
द्विपेक्षक ब्राह्मणेन्द्रक्ष्मण उपपातकों का प्रचिनाने कहे तिनका प्रायश्चित्त यहाँ व्यसनों के प्रसंग में दर्शाया गया ॥	४४३	८८
असठवें परिच्छेद में चारि उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—उनमें प्रथम आत्मनिग्रह • मूत्रक देना • स्त्रीजाति या स्त्रीन प्रकृत गुरुक मेवा ३ स्त्रीनयोनिका सेवन ४ ॥	४४३	९२
आत्मनिग्रह और मूत्रप्रेषों इन दोनोंके प्रायश्चित्त ॥	४४३	९६

सितासरा न० प्रायश्चित्तकाराड का द्वितीय सूचीपत्र ।

२२

आशयाना व्ययस्वाक्रमः

भोजन में घाल सकली जाना आदि शिजाय या कोई अपवित्रवस्तु भिदिजाय तिसके खाइलेने का
 प्रायश्चित्त या पशु पक्षी आदिका छूटा सूछा खाइ तिसके भी ।
 विष्टा मूत्र आदिसे दूषित कलमूल आदि चीजें खाइलेनेक प्रायश्चित्त ।
 भोजनका तैयार पत्र जो किसी अपवित्र प्राणीमात्रने खर्य किया हो या बनाने वालेने किया भृष्टकी
 रीतिसे बनाया हो । तिसके खाइलेनेके प्रायश्चित्त ।
 रजस्वला या अशुद्धाल आदि अनि मलानका छुआ पत्र भक्षण करनेका प्रायश्चित्त ।
 गूद आदि नीचका छुआ धिगाडा पत्र खानेके प्रायश्चित्त ।
 छूटा पातिले घेठि भोजन करनेका प्रायश्चित्त ।
 परीसी छुई रघोई पत्तन आदि पर मर्षाधि किये बिना भोजन करनेका प्रायश्चित्त • या धर्मोदाय
 से परीसे या फूटे पाचमे परीसे या खड़े भोजन करे इत्यादि अनेक प्रायश्चित्त ।
 मृतक आदि परेठुये जलाशय क्षुप आदिका जलपीने या स्नान करनेके प्रायश्चित्त ।
 चाडान आदिके क्षुप कुण्ड आदिमें जलपीने या स्नान करनेका प्रायश्चित्त ।
 पुष्करिणी ललेया घड़े गडहिले आदिके पानी पर यह छुदो व्यग्रम्या है ।
 चण्डाल अर्पण आदिके वासनमें धरेहुये पानी दही दूध आदि खानेपीने का प्रायश्चित्त ।
 पिमाड आदिके जलमें जाकर देह घोये या गर्भक जलपीये तिसके बुद्ध प्रायश्चित्त है ।
 उपवासके लक्षण समुक्ति पानेमें भ्राति जड़ी होय तब यह शिष्य देखे ।
 इकहतरिधं परिच्छेदमें उस अन्न का भोजन करनेके प्रायश्चित्त भेद हेमि जो भागदुष्ट • कालदुष्ट
 बाधो आदि • शक्तिभोजन • बह्व्य आदि समयोपर कालदूषित • अनुत्प्रायश्चित्त • फूटेपाच आदि
 का भोजन • क्रियादुष्ट • ।
 भावदुष्ट अन्न आदि चीजोंका भक्षण करिलेने के प्रायश्चित्त ।
 शक्ति भोजन जो अतिक्रुप शकासे दूषित होय तिसके भोजन का प्रायश्चित्त ।
 कालदूषित अन्न जो बामी तिजासी आदि अतिकाल घरा रहिने से कोई चीज बिगड़वाय तिसके
 भोजन का प्रायश्चित्त ।
 यष्टकौ खेप या यष्टकके मूत्तकमें या और किसी समुक्तिकाल में या मध्या आदि समयो पर मभी
 अन्नकाल दूषित होजाते हैं उस वेला पर खानेके प्रायश्चित्त भेद ।
 गुणदुष्ट चीजोंक प्रायश्चित्त जो काको चिको आदि अनेक भ्राति होते हैं जिनको दवाइने उपयुक्त
 खाने में बुरा गुण होता हो ।
 फूटे टूटे फटे आदि पाचोमे या बहुतरारे खाने पाचोमे भी भोजन का निषेध है तिनमें खाइ लेने
 का प्रायश्चित्त ।
 हाथ घुमेडिके देने आदि क्रियादुष्ट भोजन भी अनेक भ्राति होते हैं तिनमें खाइलेनेका प्रायश्चित्त ।
 गूदके हाथसे दिया परीमा अन्न चाटे आलसका हो या खना हो या गूदका पत्र ग्राह्यके हाथ
 से भी दियाजाय इनके खानेके प्रायश्चित्त ।
 बह्वरघं परिच्छेदमें सब तरहके आर्द्रका नेता आदि कुत्तिलपत्र खानेखाने समयोके प्रायश्चित्त
 कहेचार्यो जिमके भेद अनेक हैं ।
 नयोन आलू जो मरे मुख के मासकमें रोज रोज होते हैं उनको आदि लेकर आर्षिक और पाचय
 पचन पाटिके छुदे छुदे प्रायश्चित्त है ।

पृष्ठ	पंक्ति
४२६	००
४३०	६
४६०	२०
४६८	२
४६८	१६
४६८	६
४६८	१६
४६८	०३
४००	२१
४०१	१२
४०१	००
४०१	१८
४०१	३०
४०३	११
४०३	२२
४०४	२१
४०४	१४
४०८	१६
१०	८
४०६	२०
४१०	८
४१०	०४
४११	१०
४११	१८

आशयाना व्युत्पत्त्याक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
अतिथि अभ्यागत जिनके द्वारपर भूँका बैठाने का भोजन करनेसे से महा प्रायश्चित्त संगता है यह वचन प्रसंगसे कहा गया ।	६९०	१८
अपमेयते मरेहुयाका आहु खादलेने के प्रायश्चित्त विशेष ।	६९४	३
अपान्तेय पुरुष को पानिसे बाहर कियेगये हो तिनके मग्नेका यद्वात्र खादलेनेके प्रायश्चित्त विशेष ।	६९४	१६
आम आहुके लक्षण को कष्टे अन्न देखे आहु हेराहै उस दशमे कि जिसको पक्षी रक्षय्यवाहोया पक्षी निपट न होय इत्यादि में ।	६९५	१०
महाचारी या भेदि ब्राह्मण को किसी मद्य दि अनुष्ठान में रहाहो वही यदि आहुका नैत्र दिया अन्न खाय तिसका प्रायश्चित्त ।	६९५	१६
आमयाहुमें कच्चा सोधा अन्न दिया हुआ जो पाये तिनको सभी प्रायश्चित्तों का आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये ।	६९५	३०
अनुक्त आहुतका प्रायश्चित्त—अर्थात् जिस किसी आहुके नामसे कोई प्रायश्चित्त कहीं न लिखादेखा जाय तिनके भोजन का यह छोटा प्रायश्चित्त ।	६९६	३
घातकर्म आदि संस्कारों के अंगभूत को अभ्युदय आहु नेतेहै तिनमें भोजन करनेका प्रायश्चित्त ।	६९६	१०
संघर्षी आदि परो मे बरस्वर व्यवहार को लचारी से जिसमें निंद्य भोजन करना पराहो तिसका प्रायश्चित्त किसी मुक्तारके द्वारा मो रोगा है ।	६९६	२१
सोमतीक्ष्ण्य कर्म को गर्भाधानसे छठे आठवें मास होताहै इत्यादि संस्कारों में अन्न भोजन करने का प्रायश्चित्त ।	६९०	३
विहसर्ग परिच्छेद में उन्नीके प्रायश्चित्त नेगे जिनने परित्यक्त दोषमय अन्न पाया हो—किंतु बहुधा मनुष्यों के कष्टेग्राला अन्न या उनकी हठोयत का अन्न दुपित कहाला है तिसके भोजन का प्रायश्चित्त ।	६९०	१५
अभोष्य भोजन करने का प्रायश्चित्त ।	६९०	३४
जयदेवी जिनको चढवाल स्त्री च्य आदिने अन्नादि भोजन या कोई घृणी चीज खराब या मोहत्या आदि करपाये तिनके प्रायश्चित्त विशेष ।	६९१	१०
मृताको लोगके परित्यक्त (कष्टे) में रहित अन्नका भोजन करने के प्रायश्चित्त ।	६९२	१५
अपुषादिकोका अन्न खानेवाले के प्रायश्चित्त विशेष । आदि कहिने से अनेक पुरुष शामिल है उन सबही का अन्न पाया मने है ।	६९३	३४
(वरिष्ठ अमृत्य प्रायश्चित्त प्रकारों पंचपरिच्छेदमयं समाप्तम्)	६९५	११
शोहमर्ष परिच्छेद में प्रकारों बाधके प्रायश्चित्त को प्रधान है मो तो वही कहे वाच्ये—प्रथम-जाति मर्त्यकर्म अकरो करण-अपापी करण-अनिना करण-इन नामोंक उपशासकोका प्रायश्चित्त कहा जायगा ।	६९६	३
जाति मर्त्यकर्म आदि पापों भाति उपशासकोके लक्षण और प्रायश्चित्त यकहीमाय ।	६९६	१०
प्रकीर्ण नाम अनेकछोट उपशासकों के लक्षण और प्रायश्चित्तों के भेद भी यकहीमाय ।	६९८	१२
छोट गटरा का गटरापर बैठने और नगे बैठि नहाने या भोजन करने का दिनमें स्था से जेयुन मानेका प्रायश्चित्त ।	६९९	३
गुरुने अपमानमें उपशाल दिना याज्ञपये पातां विशादने रहाने किंतु चीतनेके सापका प्रायश्चित्त ।	६९९	१५

सिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकाराड का द्वितीय सूचीपत्र ।

२४

आश्रयानां व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पंक्ति
ब्राह्मणके दण्डा मारनेको ठठाने या मारदेने या रक्त चलाइदेने या भोतरी चोटकोबोझा पैदाकरि देने मध्ये जुदे जुदे प्रायश्चित्त है ॥	६९६	९३
मलमूत्र लगी देहको एक दिन राति भर जो कोई सेवन करे चाहै जलके न मिलनेसे या जलहोते हुये बीमारो आदि किसी हेतुसे बिना यौक्तिकये रहिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	६९७	९४
अग्नि या जलमें सूतने, हगने, यूकने आदि का प्रायश्चित्त ॥	६९८	९५
श्रौत वेदांत कर्मिणोच आदि कर्म और स्मार्तकर्म जो स्मृतियोंके अनुसार नित्यहीमआदि होते हैं और ज्ञातक पुत्रके नियम जो आचारमें कहिषुके श्रुतका लोप या भंग करनेवालेके प्रायश्चित्त पंचमहायज्ञ जो गृहस्थों के नित्य नियम होते हैं तिनको भेटिदेने या कुछ दिन छोड़िदेने का प्रायश्चित्त ॥	६९९	९६
अग्निहोत्र कर्मवान् पुत्रके चेटोभार्या ओतोरहिते यदि छोटी कोरमे तिसकोअग्निहोत्र की अग्नि से जनाने वाले का प्रायश्चित्त ॥	७००	९७
कौथसे कोई पुत्र अथवा भार्या को अगम्या कष्टके दोष लगावे तिसका प्रायश्चित्त ॥	७०१	९८
स्नान किये बिना जो भोजन आदि करे या स्नानक होने जलके बिना रीतालीतालियेकरे तिसका प्रायश्चित्त ॥	७०२	९९
जो नार की पतितमें विषमरीति से परोसे कि बिरलोंको और चीज बहुतांको चन्दायस्त श्रद्धादिभेद करनेके प्रायश्चित्त ॥	७०३	१००
जलका बांध या पुल तोड़े या कन्याके विवाहमें माजीमार या समान धरतीमार्ग आदि पर लंघा नीचाकरे तिसके प्रायश्चित्त ॥	७०४	१०१
आकाश में इंद्रधनुष देखे या ओरोंको दिखावे श्रद्धादि कई बातोंको छोटाया प्रायश्चित्त ॥	७०५	१०२
धर्मवान् पुत्र स्त्री चरित्तल खंडाल अपवित्रोंसे यातचित्त न करे यदि प्रयोजनसे योडी बहुतकरती परे तिसका प्रायश्चित्त करे ॥	७०६	१०३
अपने घरको धन लाभ स्त्री आदिसे उपद्रव करे या उनकामों में विघ्नदारे तिसका प्रायश्चित्त ॥	७०७	१०४
यज्ञोपवीत कांधे या कानपरहीनेबिना जो स्नान भोजन या मग्नमूत्रआदि कर्मकरे तिसका प्रायश्चित्त भोजन के अन्तमें जल पिबेबिना ठठि खड़ाहोय या कुत्ता आदि योषाचमन कियेबिना रहिजाय तिसके प्रायश्चित्त ॥	७०८	१०५
राजा और प्रधान मंत्री ह्रासिकका प्रायश्चित्त जो दबडटेने योग्य अपराधीको छोड़िदें या अदंडको दबडकरें ॥	७०९	१०६
दूषित पतितमें भोजनकरे कि विषमें कोई और पतित आदि बैठेहा तो उनभोजनकर्ता सबपतित का प्रायश्चित्त ॥	७१०	१०७
नीले वस्त्र पहिरने या नीनका कोई काम करने आदि के प्रायश्चित्त-विषमें सोभाग्यवती स्त्रियोंके मध्ये योडी दूटवे सो प्रतिप्रवय जानना ॥	७११	१०८
स्त्रियों से उपपन्न बिरले पुत्र और बिरले काम और बिरले वस्त्र भी सेवेह कि जिनकेविषे नीन का प्रतिप्रवय दियाजया है ॥	७१२	१०९
आइया होके ठाव लकड़ी की खाट या छड़ाई या चौकी पीठी या सवारी का ठांच माधानमें तिसके प्रायश्चित्त ॥	७१३	११०

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	श्रु	पति
ब्राह्मण को गस्त्रबांधनेकी प्रति रक्षता हो सो चर्याके साथ किसी स्थानमें प्राणोंके लोभसे पीठि देकर भरो० या फलदेनेवाले वृक्षको काटे ये दोनों पाप बराबरहैं दोनोंका एकही प्रायश्चित्त ॥	६३०	६
परस्पर दो चरते या चोटे बातकरते विशेषे कीचमें जो निकसजाय० या ब्राह्मण अग्नि इन दो के बीच या पति पत्नीके बीच० या गल ब्राह्मणके बीचसे० तिसके प्रायश्चित्त ॥	६३०	११
बाह्यली यदि मर्तोंसे बिरलेदेश विशेषों की याचा करनेवालोंका प्रायश्चित्त (केवल तीर्थका निमित्त एक छोट्टिजे समुक्तना)	६३०	३०
मुख में सिद्ध देखिरना या खोटा स्वप्न दिखाईदेना यादि निमित्तों के प्रायश्चित्त ॥	६३०	८
मुख के समुक्त जो मुते या घिसा जो अपनाभी देखिले या अग्नि में पेरसके या धाटके नीचेअग्नि धरि सोये या कुशासे पैरमाजे इनके प्रायश्चित्त ॥	६३०	१०
नमस्कार पालातन शरममौचर यादि अभिवादन के मुख्य कायदे छोट्टिजे अभिवादन करै तिसके प्रायश्चित्त और मुख्य निषेधों का नियुंय ॥	६३०	१३
(इति प्रकीर्ण प्रायश्चित्तप्रकरणं परिच्छेदकमप्य)	६३०	१३
७५ परिच्छेद यत् कालतू हे इत्यन्ये कि इसमें उक्त अनुक्त सभीप्रायश्चित्तों का न्याय विचारजाय तिसके समी प्रायश्चित्तोंके विचार समय समयमें युक्ति शोधनी चाहिये ॥	६३०	१३
७६ परिच्छेदमे द्वाविधौ जानीचायेंगो—यक तो जोब्रह्म प्रायश्चित्त न करनाचाहै तिसकेद्विपरीति से त्यागिदेना ॥	६३१	१
दूसरे को प्रायश्चित्त पुराकरिचाये तिसका इधरीतिसे स्वरूपकरना तिसकीछे घरके कामोंमें शामिल करना दासी छट विधत्त ॥	६३१	४
कृत प्रायश्चित्त पुरुषस्य प्रत्यावर्तनीयधिः—तप नूतनघटविधानच ॥	६३१	१३
स्त्रीपुण्यतिदेशः—पूजाकृत् दीनेः विधानकः अतिदेश पातक्रिनी स्त्रियोपर भों उत्तरते है ॥	६३१	२८
तथापि स्त्रियोके निमित्त पर कुछ और विशेष धर्म है ॥	६३१	५
अतिपतिता भी स्त्रिया कुछ होनीहैं तिनके लक्षण यह देखो ॥	६३१	१२
बिरले बेधे पतिता भी हैतिहैं कि प्रायश्चित्त कर्म यानेपर भी हैत मेंत उनसे न करेन उनकेलिये नूतनघट चरवाणा चाहिये ॥	६३२	२
नूतन घटकीविधि होअनेनादि पापीकी परीचा करनी होता है कि प्रायश्चित्त करने से यह शुद्ध भया क्या नही ॥	६३२	२८
अतहततयें परिच्छेदमें यह आचारदीयायगी कि आपोनेम प्रायश्चित्तका विचार अपने आप न करें किन्तु महा द्रोहा जेमा पापहो तेसी वडा छोटी समझेहो निर्णय करवायें—उन सजसमाधिके डेनयातिदेपो ॥	६३२	१५
समादपास किमश्रकार से वृक्षनेजाय तिसका नियुंय ॥	६३०	०
परपुं धर्मसमाका डेन केगोहो जियमें ब्रह्मनेजाय० येसा होय ॥	६३०	२६
येसा समा न डेनमें दूसरा डेन यहोहो है—इसके भी न मिनने में यकहो पविडत पो धर्मगान्ध ॥	६३२	१८
में अति निवृत्त होय सभा स्वरूप मानाजाय ॥	६३०	२०
समाधि यथापत द्रोहापन परतर्कनये निर्णयमार ॥	६३१	१
प्रायश्चित्त निवृत्त कनेमध्यो द्यामबोला राधा जिना कितनीम्वोधोता है ॥	६३१	२८
दशनेन द्रव्यभरतानिष श्रुते (तत्समुत्पाद्यवन्) इत्यादि मन्त्रका यवन देपो ॥	६३०	०

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
(इति सर्वप्रकाश प्रायश्चित्तानां साधारण विधिप्रकरणं चित्रिच्छेदमयं)	६६३	२०
अठहत्तरवै परिच्छेद मे रहस्य प्रायश्चित्तोका साधारण प्रकार कहानायगा कि जिसने क्षिपेपाप	६६४	१
जियेहो प्रायश्चित्त भी क्षिपेकरै • उनमें एक क्षिपे ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त भी इसी में ॥	६६४	१०
क्षिपे पापोंके प्रायश्चित्तका विचारमात्र ॥	६६६	२३
सुगुप्त ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त विधान ॥	६६६	२३
उन्नासोवे परिच्छेद मे ब्रह्महत्या से उपराल महापातक जो गुप्त कियेहो तिनके छुदे छुदे रहस्य	६६७	५
प्रायश्चित्त कहेजायेंगे ॥	६६७	५
सुरामदापाप का रहस्य प्रायश्चित्त जो क्षिपेके बिनाजाने छोडा आदिसे पीनया हो या जानि बुझि	६६७	८
पीकर पछिताना किया जो तिसको ॥	६६७	८
सुरयस्तेय कर्मका रहस्य प्रायश्चित्त • जिसने ब्राह्मणका सुवर्णवरिके गुप्तपछिताना कियाहो तिसको ॥	६६७	१०
गुहदारगमनका रहस्य प्रायश्चित्त • जिसने गुप्तही घोडा आदिमें जननी आदि गुहवार संगम करीहो	६६७	१६
तिसको (इति महापातकानि)	६६७	१६
असोपरिच्छेद में उपपातको के रहस्य प्रायश्चित्त कहेजायेंगे जो किमोने क्षिपि के कोई उपपातक	६६७	८
किया हो तिसको—उपपातकोके सप्त लक्षण यहाँ समुझने जो गोपध आदि प्रकीर्ण पर्यन्त पहिले	६६७	८
प्रकाश प्रायश्चित्तोके निमित्त कर्षेन होचुके ॥	६६७	८
सभी उपपातक आदि पाप जो गुप्ताश्वर होजायेंहो तिनके प्रायश्चित्त एक साथभी देखो इसमें भेद	६६७	१६
भी पातक पतनीय आदि अनेक हैं ॥	६६७	१६
अथवा भक्ष्यश्रादि अनेक अनुपातक जो क्षिपे होगये तिनके प्रायश्चित्त रहस्योका भेद यहाँ देखो ॥	६६७	१६
अग्निशयतुच्छपाप जो दिनरातिमें बतते फिरते आदि अज्ञानतासे अनेक होजातेहैं तिनका प्रायश्चित्त	६६७	१६
इत्यादिके परिच्छेद में उनमेंके नाम चिह्न दर्शाये कि जिनका जप करना रहस्य प्रायश्चित्तो में	६६७	१६
कहिजुने—और बहुधा मच बेसे भी दर्शावेंगे जिनका चर्चा कहीं नहीं आया तो भी उनके जपने में	६६७	१६
सर्प पापिका नाशहासला है—इसीमें वेदाभ्यास और सूर्यशानी ध्यानीका रहस्य प्रायश्चित्त साधारण	६६७	१६
पापोंपर एकही रूपसे ॥	६६७	१६
सर्प पापिक करनेवाले अतिशयमें जो मचहै तिनके नाम लक्षण ॥	६६७	१६
गायत्रीसे तिनकाहोम होना भी सब पापोंके हरने में समर्थ है इसकेसाथ तिन आदि उत्तम दानोंके	६६७	१६
स्वरूप भी देखा ॥	६६७	१६
वेदका अभ्यास यावत्तयागा या अन्य श्रद्धा में मुनिपुत्रानी ध्यानी ब्रह्म जो किसीने पीडा देना	६६७	१६
नहीं चाहता • देवयोग से कदाचित् कोई मद्वापातक भी अनिच्छा से होजाय • तिसका छुदा एक	६६७	१६
प्रायश्चित्त ॥	६६७	१६
(इति सर्वरहस्य प्रायश्चित्त प्रकरणं चतु परिच्छेदमयं)	६६७	१६
प्रायश्चित्तोके द्वाविध स्वरूप में चदेह खड्गहोनेका संयोग ॥	६६७	१६
पयासीन परिच्छेद न० वृच्छ आदि जलाका एक भेद जो सातवण कराना है तिसकेरूपमेंद जाने	६६७	१६
जायेंगे कि येदेविधानसे छुदेनामही होजातेहैं—और समस्तत्रतमापके लक्षणमनयमसी इधमें ॥	६६७	१६
सभी प्रायश्चित्तोके आरम्भ में चहुरी नियमोंके नाम लक्षण ॥	६६७	१६
सोतवन व्रतकीविधि और उसका भेद यतिसातव आदिदत्त इतनी रीतिसे होताहै • इसके पोंच	६६७	१६

पृष्ठ	पंक्ति	पुनर्निर्मितविषयमेवः
१६०	१४	इति प्रायश्चित्त निमित्तानां सहापातकादीनां नाम लक्षणा विवेक प्रकरणां त्रिपरिच्छेदमयं ॥ इस प्रकरण में १४ । १४ । २६ ये तीन परिच्छेद हैं इन तीनों में महापातकों से लेकर तुच्छ उपपातों पर्यन्त सब तरहके निमित्तोंका निर्णयनाम लक्षणे। सहित कियागया है—अद्यापि तीसवें प- रिच्छेदके अन्तमें दशपरिच्छेदोंका प्रकरण कहाजायगा तिसके महाप्रकरण समुक्तेना कि यहतीति प्रकरणोंका एक बड़ा प्रकरण है तिसके कुछ दोपनहीं (इचण्टिके चोदहकी पंक्ति सायही लिखितेना)
१६१	२४	भ्रामकता—इन तीन पंक्तियोंका पाठ जो भ्रामकता प्रतीत होता है उस भ्रांतिका भंजन आगे २० १६० पृष्ठमें दशवीं १० पंक्तिसे विचारें किन्तु उसीके अनुचारपाठ यहां भी समझो—यहां जो बशिष्ठ के वचन में—रजस्वला शब्द जुड़ा होनेसे कुछ भ्रांतिसी प्रतीत होती है उसका भी समास ऐसा भा- नना कि (रजस्वला च ऋतुस्नातानाचचेद्योमाहुः) अर्थात् जुदी जुदी रजस्वलाको तथैव ऋतुस्नातको भी आचयो कहिते हैं। तहां मुख्यतो ऋतुस्नातानाम ऋतुमतीसे प्रयोजन है उसीके अन्तगत रज- स्वला होनेके दिवस भी अपेक्षित ठहरे किन्तु केवल रजस्वला या उससे स्नान के समीची दिवसों से तात्पर्य यहां नहीं है ऋतुमतीसे प्रयोजन ठीक है उसीका समाखेदोसे प्रचेताने वचनसे ४६४ पृष्ठकी सबसे निचली पंक्तिमें उसी ऋतुमती कहा है उसीके विपरीत यह। ऋतुमती जानना—यह, वच साधारणोंके बोध है नु लिखनापरा अन्यथा चिन्तकीजन आपही ध्यानमान है (इन्हीं तीन पंक्तियोंका पाठ परिवर्तन भी अगुप्त गुप्त चक्रोंमें देखा)
१६२	२५	चतुः परिच्छेदमयं ॥ इस प्रकरण में सताइसकी आदिसे तीसके अन्ततक चारिहें परिच्छेद हैं जिनमें केवल ब्रह्म- हत्याकी व्यवस्था करीगई (इस षुटिको बारैसवीं पंक्ति सायही मिलाकर आगुपर लिखितेना) ।
१६३	२६	इति साधारणा प्रकरणांच दशपरिच्छेदमयं ॥ (इस षुटिके बारैस पंक्तिमें नीचे चार तैरैसवींके ऊपर दोनेके बीचमें स्थापन करना)
१६४	१०	अर्थ विशेष—ये दोनो पंक्तियोंके अन्तमें बशिष्ठने कहा है कि राजा आप न आरिखके तो चेतने। शेदुम्यारस्य सेषिदे तिसके अपने आचरी चार मरिसाय—इस कथनसे साज यहो अर्थ मिलता है कि तमंचा गुपंचा आदि गोली चक्रदधाला आनेयशस्त्र सेषिदे जिसको चार अपने हाथमें भेजिके राज गुप्तहोय—अद्यापि मिलावरा में (शेदुम्यारतामयं) शेदुम्यार तावेकाशस्त्र सेसकहा है क्योंकि शेदुम्यार ताज निमकावना शेदुम्यार कहार्ये—तथापि यह ध्योरा नहीं होता है कि तावेका शेषा कोर शस्त्र भंगार में होता है या नहीं जो अपने किसी विशेष नामसे विख्यात हो चार निजसेद्वारा चार अपने हाथसे अरसके शरंच गुपंचा आदि आनेयशस्त्र अद्यापि लाहेके होतेहैं। तोभी उनकानाम शेदुम्यार इस मतलब में बशिष्ठजीने माना होगा कि गुलरका फलभी शेदुम्यार कहलाता है जिसके स- मान गोनी भी गोमहातो जो गुपंचा आदिमें भरीजागी चार गुलिका गुटिका नामिसे या वही हो जा गोम गोल्क नामोसे प्रसिद्ध है तथा तावेखि सज्जाधर्म भी आप्त्तमें अतिशय भावने प्रयत्निते (इसपाठका धान्त् मानिके ३५८ पृष्ठ में अवश्य नीचे खानी जगपर स्थापनकरना)

प्रश्न	पक्ष	युगनिर्मितविषयभेदाः
४५२	२३	<p>इति साधारणां प्रकरणा पंचपरिच्छेदमयं नचैतेषु पंचमुपरिच्छेदेयु प्रकरणात्त्व नियमः ॥</p> <p>अर्थात् चत्वारिंश परिच्छेदकी आदिषे यहां भरतालिष परिच्छेद के अनन्तर पाच परिच्छेदोका साधारण मिला कुला प्रकरण बेसानाम यद्यपि बोधमात्र के निमित्तसे लिखि दियागया तो भी इन पाचोमे विषय अपना अपना जुवावे लिखवे प्रकरणकानाम अर्था सहित नहीं सिद्ध होताहै क्योंकि प्रकरण उन्को सबका एक होताहै जिनके विषय एक समान हो—इसीलिये इन पाचोके छुदे छुदे पाच प्रकरण समझने चाहिये—इसका व्योरा पारदार्थ्य प्रकरणकेठिकानेपर फिर भी दर्शावेगे तब समुझि लेना • इसके लिये ४८६ प्रष्टुदेखो (इस चुटिको तेरेस व पत्तिके नीचे लिखिनेना)</p>
४६३	१६ २५	<p>अर्थवाद—एन दोनो पत्तिके देखो • तहां कर्मसाधन होसकने आदि गुणका तात्पर्य केवल यहीहै कि फरके काम धन्योमें समर्थ और निपुणहोय तथा पत्तिके मैथुन और सेवा आदि प्रयोजन वालीहो निश्चिन्ना या कोनिहोना या भूमी धरिरी केठिन आदि होवेवे निकम्मी न हो (परंतु उस उत्तम गुणसे रहित होय को स्थियोका माधिकधर्म प्रसिद्धहै जिसके द्वारा चत्तान्दुरी रज पैदाहोति है वही आचर्यो कह्योती है उसके धधपर इनमे भी बदे प्रायश्चित्त चाहिये से तीसमें परिच्छेद मे लिखिचुके तहां देखो (इस पाठको ४६१ प्रष्टुमें सबसे नीचे स्थापन करना चाहिये यह किसी की चुटि नहींहै ॥</p>
४६०	२८	<p>यहां संदेह होयराह कि जिनको यहां निकम्मी कहा उन्कोही ४८५ प्रष्टुमें—तदपि (कर्मसाधन त्वादपि गुणयोगिनी) यह कहिचुके तो फिर कर्मसाधन होसकने की सम्भावना आदि उत्तम गुणसे युक्त होनेपरभी निकम्मी उनके कथोहो—भूमी निकम्मी उनका परम उत्तम गुण समुमानेके निमित्त सेही कहलगाया तहां मदा मध्यमा कहिके भी समुझिनेना क्योंकि कर्मका साधनत्व आदि गुणसेयुक्त होनेका व्योरा उरी ४६३ प्रष्टुकी अपेक्षा ऊपर लिखलगया गिबके देखो वेवे भूयोगे समुक्त होनेपरभी निकम्मी या मदा मध्यमा कह्योती है क्योंकि आचर्योवे मद कोतीहै (इस पाठको २८ पत्तिके बीच मे एकहीहै इन चारिअहरीके जाने चुटिकाजिके हाथियेपर लिखना लिखके जाने । ४६६) यही प्रष्टुमें भ्रामकपाठ—पचोसर्वा भक्तिसे लेकर बराबर के आठ नय अनेकोहै, यद्यपि उनमें बहुत कौर पद नहीं है तथापि उनके बिशाम अलायन है कि प्रायश चतुर्दशके दूसरे चतुर्से भिदाहिये और चरय वा आधे चरयपर व्यर्थ बिशामहै कि जहापर बिशाम ॥ होना चाहिये यह भजमे चहो भ्रामकता होतीहै एउते समय दुखदेतोहै—ये यह यज्ञ निदगेनका समुमानाच भगवानाते हैं कि जेमी पाचोमे पाठके प्रष्टुमें भ्रामकता हुई तेसो और भी बहुधा स्वनेपर शक्तो में दिगार, देरी का पाठु-निपिके निमित्त डेलसे अन्य या दुरी परन्तु अब कोरे उमका उबाय सेवा गरी दे निषकी समन्या किसी चक्रमे स्थापना करीजायके—केवच यही श्लोक दे कि जेसे निर्मातने एक पुण्य मे स्थारी मे देयादेकर अष्टे जुदे किये और व्यर्थ विषमोक्त मग्नक आपस में कोडिके मुनार्थ किये तेमे यमी मर्त्यसनी सादृमान अथनी क्रिस्दमें मुधारिमें ॥</p>
४६८	२९	<p>चानेकरा—पचो कचोचरतालिषके प्रष्टुमें सातवोपत्ति देखो उसमे शंभुकी यवन से राज भटानन में सादिर करनकहा से सेवा उन्को पाचोम समुझना कि निनमें राजवदो (रात्रमुष्ट) सेवा हो किंउ समही अपराधो में न जाहिरकरे—इस लिये ६२१ दुरो रकपठिके प्रष्टुमें २० यताइसपत्ति देखो</p>

आश्रयाना व्यनम्याक्रम	शृ	पति
पंचतर्पण लक्षण भी देखो ॥	००१	५०
महासातपन रात्र कहे रीतिसे होताहे सात बारह पंद्रह ब्रह्मीय दिनके भेदसे जुटेजुटे रूपसे ति- नमें एक अति सातपन भी कहाता है ॥	०००	५०
तिरासाँव परिच्छेदमें अनेक कृच्छ्रों के रूपकहेजायेंगे । तिनमें एकपर्व कृच्छ्र पादकृच्छ्र तपकृच्छ्र शोतकृच्छ्र अर्चकृच्छ्र दिवाव्रत नक्षत्रत अयाचितमोजी फिर इनके भी अनेकभेद होंगे ॥	००८	१५
पर्वकृच्छ्रके रूपमें अनेकभेद इनरीतिसे होतेहैं ॥	००८	२५
तपकृच्छ्र भी अनेक भाँतका इनरीतिसे होताहै ॥	००८	१६
पादकृच्छ्र—यहकईभाँतिके रातमिलिके एकहोताहै । तिनकेनाम दिवाव्रत रात्रिव्रत अयाचितव्रत उपवास इनके भी लक्षण उन्नीके साथहैं ॥	०१०	१०
प्राजापत्य भी उनी पादकृच्छ्रसे बनताहै फिर उसके चारिभेद हैं ॥	०१४	४
अर्चकृच्छ्र और पूराकृच्छ्र या पादानकृच्छ्र इनके विरोधपर व्यपस्था कही ॥	०१४	२६
उपवास नामके साधारण व्रतका स्वरूप निर्णय सहित ॥	०१५	१२
जोरासाँव परिच्छेद में प्राजापत्यकृच्छ्र आदि अनेक कृच्छ्रही इसक्रमसेकहेजायेंगे प्रथम प्राजापत्य- ही में लक्षण भेद धीर्घमें शिशुकृच्छ्र अतिष्ठकृच्छ्र कृच्छ्रातिकृच्छ्र पराक सौम्यकृच्छ्र शुलभपुरुष इनके भेद अनेक हैं ॥	०१६	२
प्राजापत्यकृच्छ्रके लक्षणभेद इनरीतिसे अनेक होतेहैं ॥	०१६	६
शिशुकृच्छ्रके लक्षण प्राजापत्यहीके प्रथम में आगये हैं ॥	०१७	५
अतिकृच्छ्र भी अनेकभाँतिका इनप्रकारोंसे होताहै ॥	०१०	३
कृच्छ्रातिकृच्छ्र और पराक इनरीतिसे होताहै ॥	०२१	२
सौम्यकृच्छ्र भी दैत तरहका होताहै ॥	०२१	१०
शुलभ पुरुषनाम कृच्छ्रव्रतके लक्षण भी कईभाँतसे होतेहैं ॥	०२१	२३
पचासाँव परिच्छेद में चाद्रायण सोमायन सामिकव्रतक्रमेद कहेजायेंगे प्रथम यवमध्य चाद्र- मय विषातिकाव्यचाद्रायण साधारणचाद्रामय यतिचाद्रायण शिशुपाद्रायण कृषिचाद्रायण सोमायन इसी क्रमसे ॥	०२२	१४
चाद्रायण व्रतके कईभेद एकसाथही देखो ॥	०२२	२१
साधारण चाद्रायण के अनेक होत ॥	०२८	१
कृषि चाद्रायणका स्वरूप ॥	०२८	१३
सोमायन व्रत भी एक महीने में कईतरह से होताहै ॥	०२८	२३
द्विमासीय परिच्छेद में अनुष्ठान विधिपरवर्णन होगी जो सभी प्रायश्चित्तोंके आरम्भ समयकामश्रांति कि प्रायश्चित्तके दिनमें रोज रोज क्याकरना चाहिये ॥	०२२	५
यवन मयेम छोटा विधान जो प्रायश्चित्त के आरम्भ में मूएठन होताहै ॥	०३०	१६
यवनकर्मक्रममें पञ्चगुण भी न्याय कहलगा है ॥	०३२	११
यह प्रायश्चित्तों के आरम्भ और समाप्ति के समय भी व्यावृत्तिहोम आदि ॥	०३६	२८
पापका नाशकरनेवाले कुछ और भी आश्रय हैं जो प्रायश्चित्तोंका चरमानेवाये ॥	०४०	५
इनपापघोषा स्थान प्रायश्चित्तोंके अवस्य करना चाहिये ॥	०४१	८

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
सनासिर्वेपरिच्छेदमें वह व्यवस्थाकही जायगी कि सभीपापोंपर सबतरहके व्रत होम दान आदिका बदले से बर्तावा होसकता है अर्थात् जिन व्रतादिकोंका जिनपापोंपर नहीं लगनाया तिनपरभी लगिसकते हैं ॥	७४२	१३
इसपरिच्छेद के सिद्धांत का विवेकपाहले आँचा ॥	७४३	२
जिन प्रकारों से बदला कियाजाता है सो यहाँ से देखो ॥	७४४	१८
प्रायश्चिन और पापोंका योग जिसरीति से मिलनाया जाताहै सो देखो ॥	७४५	३
कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रतके (प्रत्याम्नाय) बदल यहाँ देखो ॥	७४६	११
भारह ११ मोदान वाले प्रायश्चित्त के (प्रत्याम्नाय) बदल यहाँ देखो ॥	७४७	५
महीनाभर दूधपीके रहनेवाले व्रतपर (प्रत्याम्नाय) बदल देखो ॥	७४८	१५
पापके व्रतके (प्रत्याम्नाय) बदल यहाँ देखो ॥	७४९	२०
तत्कृच्छ्रके प्रत्याम्नायो मध्ये संदेह का निवारण ॥	७५०	१३
परस्पर मुख्य व्रतमेंदेह की तुल्यता निरूपण करने का न्याय ॥	७५१	३
प्राजापत्यों के स्थान पर अन्यव्रतों का (प्रत्याम्नाय) बदल सर्वपापोंपर ॥	७५२	१०
प्राजापत्य आदि व्रतोंके अभ्यासे ब्रह्मभोजकाभी प्रत्याम्नाय कहागयाहै जो अतिरोगी आदि व्रतको न करसके और धनीहोय तिसके ॥	७५३	२२
चान्द्रायणके अभ्यासे उसके स्थानीमूर्ता प्रत्याम्नायोका विचार ॥	७५४	१८

इति सूचीपत्रं समाप्तम् ॥

अथ संवेहनिवारणां पुनर्निर्मितभेदानां संग्रहचक्रं ॥

पृष्ठ	पंक्ति	वृत्तिपाठ या भ्रामक पाठोंके बीच या विश्रायन आदि पाठोंके जुड़े जुड़े भेद यहाँ सोचिनेना ॥
१४३	२५	अथ परमात्मनः शरीरग्रहणाप्रकारप्रदर्शकोऽयपरिच्छेदः (१०) दशमः इस परिच्छेद में महाप्रकार जानाजायगा कि ईश्वर प्रायः अजन्मा होते हुये भी संसार देखोमें जिसप्रकार जन्मेताहै (यह इतनी वृत्ति देखेही जति मोटे और बारीक पत्रों से चोखसपंक्तिसे नीचे लिखिलेना) ॥
२५६	२९	पुरुषको आदिकी व्यवस्थाका तात्पर्य आगे ३५ वृत्तन परिच्छेदमें २०० दोषोंमलहतरि मूलरत्नसे समझिलेना (इस वृत्तिको आर्यसंपत्तिकेनीचे तैर्दशवों के स्थानपर लिखिलेना)
२६३	२२	इतिपापात्मनां नरकादिगति विपर्ययिकं प्रकरणां त्रिपरिच्छेदमयं ॥ इस प्रकार में तीनही परिच्छेद हैं—प्रथम आगे तीसरे परिच्छेद के अन्तमें दशपरिच्छेदोंका एक प्रकरण मानाजायगा कि जिसमें ये भी तीन विनेजायगे—तहा उसको महाप्रकरण समझा चाहिये—तिसरे ब्रह्मोपनिषद्के प्रारम्भसे तैर्दशवोंके अन्ततक यहाँपर रहने तीन परिच्छेदोंका जुटा प्रकरण कहागया कि इसमें सत्र तरहके कपिषों को रक्षोत्तम और वल्गोक में नरक आदि भोग जो जो मिलते हैं उन्हेंका वर्णन किया गयाहै (इसवृत्तिसे तैर्दश पंक्तिनेनीचे लिखिलेना)

प्रश्न	पक्ष	पुनर्निर्मितविषयभेदा
		यदा देवलका वचन हे (स्वयत्तुग्राह्यवायुः) इत्यादि इसकी व्याख्या को कुछ कहातिथोरे सो भी यह। यद्यपि वचन से भीमान करिके काम चानाव कोकि हेनो। वचन का एकही तात्पर्य है— (यह इतना प्रियेनेह तेहजो पक्षिमें वृटिमानिके आयुपर लिखिलेना)
६६०	१०	आहुत करेगा यह तात्पर्य है—इसैपरतातिथ के पुष्टमे सातवीपक्षि देखे। यद्यपि वचन हे (तत्त्वगुहाध्यानाजसमत्) इत्यादि इसी वचनकी व्याख्या कहा को कुछ लिखे। हे। तिसका भी भीमान यहाँ देवल के वचन से करना चाहिये क्योंकि कहा को यद्यपि वचन ही वही यह। देवलका तात्पर्य हे और सिद्धात दोनोका यहोहे कि जिन पाषाणिके अथवा में राजवादी (राजमुद्रा) न हेताहे। न होसका हे। तिनके मध्ये प्रायश्चित्तका योग्यताहेनो। को राज अदालत में प्रकाश करना या करवाना कुछ आवश्यक नहोहे—परन्तु जहाँ पाषाणिक सहित पाषाणिक और प्रायश्चित्त भी न करनाचाहे और मज्जनेकी मुद्रासहे अपनी प्रकृति को भी न मुद्राई बलि बारम्बार पाषाणिक का अभ्यास करे तो फिर सभी पाषाणिके कि राज अदालतके सम्मुख पाषाणिके बड़े बड़े दूधूजनेके समकाकर प्रायश्चित्त करवानाच ॥ (यह इतना लेख विशेष दर्शनी पक्षिकी वृटिमानिकर आयुपर लिखनेना चाहिये)
६६१	११	समुकलेना—यथात् जिस व्रतकी साधना जितनेदिन होतीहे। उसके बदले उतनेही दिनांतक उक्तवर्षया रोज रोज जिमाने इसका दृष्टात जेथे आद्याय मे तांशदिनतक सोयीष प्राप्ति ॥ ० ॥ (यह इतना लेख ग्यारहवीं पक्षिमें वृटिमानिके आयुपर लिखनेना चाहिये)
६६२	१२	ने समुकया—परन्तु जेसा अति निर्धनके प्राणापत्य के बदले बारह ब्राह्मण कहैगये तैसा अन्यत्रोके ऊपरले हिंसा से बितने होसके तितने उनमें भी इन्हीं बारहके अनुसार लेखा कोहिके समुकिलेना ॥ ० ॥ (यह इतनालेख उन्नीसवीं पक्षिमें वृटिमानिके आयुपर लिख लेना)
		मिताक्षरा सटीक प्रायश्चित्तकांड—इस यथकानाम निर्माताका निर्माप किया (मर्यादापरिपाटी समाचार), धर्मशास्त्र ठीक ठीकही जैसा सन् १००३ ई० से लेकर आचार और व्यवहार के दैकाटोपर कृषिकुला को प्राचीन गृहकोके पास वह मौजूद हैं उनके ऊपर याज्ञवल्क्यस्मृति और मिताक्षरा मर्यादा परिपाटी से तर्जिनाम समस्या क्रियेगयेये यद्यपि इसकांड प्रायश्चित्त के पृष्ठोपर मिताक्षरा सटीक दृष्टावस्था किसी यातिसे निर्माता के अनुश्रुति हेनेमें से इसकाट से कुछ दोष वा गल्ती न समझना कभी दुर्भाग मुद्रित हेनेमें परिवर्तन कियाजायगा—यद्यपि ये मिताक्षराका पुस्तक लेख इसमें प्रधानतासे लेकर याकी और उधोका सारांग लिखनवाटे कि को को याति मिताक्षरा में भी नहीयाँ उनको व्यवस्था मम मर्यादा परिपाटी में मिलसके—और भी मिताक्षरा में प्रकरके क परिच्छेद आदि प्रत्यभेद को कुछ नहोये से सब इसमें अपने रचयिता के उद्योग से निमाक क्रिये गये जिसे व्यवस्था ठुठनेअने का सुममता दोष—आन्विक विधि को सकलयाकी होती हे से ममोडा कहाती हे—और सब देनाअभिन्न भिन्न आचार्यकी रीतिहे औरपरिपाटी कहाताहे को गुटमुल पुस्तके से लेकर कमागतनी आदि हे ये दोनो मिलिके (मर्यादापरिपाटी) बना इन्हीं दोनोका अच्छा बारह धर्ममान होय या चर्चा कियागया जिय धर्मशास्त्र में से (मर्यादा परिपाटी समाचार) धर्मशास्त्र हमनामसे यथा नाम तथा मुद्रा साधेनाम हेताहे ॥



मिताक्षरा सटीक ॥

तीसराप्रायश्चित्तकाण्ड ॥

श्रीगुरुंनुप्रणम्यादौ परमात्मपदाभिषम् । तद्वचोमंत्रप्रभूतात्मा शुद्धिगत्वाविशेषतः १ ॥
 ध्यात्वातर्जशरिरस्थं जगदीशानिरञ्जनम् । योहास्यजगत अष्टा चराचरमप्यस्यतु २ ॥
 योगीश्वरंयाज्ञवल्क्यं मिथिलापतिपूजितम् । येनलोकोपकाराय कृतेयधर्मसंहिता ३ ॥
 विज्ञानेश्वरनामानं प्रणम्यचपुनःपुनः । मिताक्षराकृतायेन विद्वज्जनप्रमोदिनी ४ ॥
 श्रीमर्यादाप्रियस्तस्या मर्यादापरिपाटिका । भाषाटीकाप्रकुर्याण शुक्लोदुर्गाप्रसादकः ५ ॥
 आचारव्यवहाराम्नां निवृत्याग्नेतनोतिच । प्रायश्चित्ताभिधकांडं क्रमप्राप्तमलापहम् ६ ॥
 प्रायश्चित्तमपेक्षुना मात्मशुद्ध्यभिलाषिनाम् । सौगम्येनैववोथाय परार्थेवाविचारिणाम् ७ ॥

प्रायश्चित्त काण्डका प्रारम्भ किया चाहते हैं तहां पहिले यहवात भी प्रकाश करनी आवश्यक ठहरी कि प्रायश्चित्त काण्डमें क्यावस्तु वरानकरेंगे—ऐसे समझो कि आचारकाण्ड में गृहस्थायमीमात्र सबहीके नित्य और वैमित्तिकधर्म वरानक्तिये थे उनमें भी राजास्वतः गिनती होचुका क्योकिवहभी एक गृहस्थीहैं—फिर उसी आचारकाण्ड में ३०८ श्लोक से लेकर व्यवहारकाण्ड पर्यंत एक गृहस्थी विशेष जो अभियेक आदि गुरांसि संयुक्तहोने करके राजा प्रसिद्ध होताहै तिसके गुरा धर्म सबसे जुदेभी दशयिगये क्योकि सब गृहस्थियोंकी अपेक्षा उसमे राजस्वपीशुरा विशेषहै तिस गुराकेधर्म प्रजापालन आदि उसकेलिये अधिक होतेहैं—अब इस प्रायश्चित्तकाण्डमें उन्ही पूर्वोक्त सर्वधर्मोंका अपवाद (अर्थात्छूट इस्तिस्ना) वरानकरेंगे—इसीलियेउन धर्मोंका अधिकार संकुचितकरने (रोकिदेने)वाला आशीर्चका नियम पहिले कहेंगे ॥ तहां आशीर्चशब्दके अर्थसे वहकाल उतना समझना जिसमें अशुद्धहोने आदि कार-राओंसे ज्ञान ध्यानआदि पूर्वोक्त धर्मोंका अवरोधहो और यही उस अपवादका स्वस्व

करें इसका अग्नि संस्कार और जलदान क्रिया भी न करनी चाहिये किन्तु जैसे जंगल में लकड़ी छोड़कर बेफिकर होजाते हैं तैसे इसे गड़हिले में दाबकर तिस पीछे (आद्य आदि उर्ध्वर्देहक कर्म जो आचारकांड में आद्य प्रकरणांके द्वारा करने कहि च्युके तिनसे) उदासीन होकर तीन दिन उदासी में बितावें (ध्यान से सोचना चाहिये इस कथन से अपवाद का स्वरूप सिद्ध होगया कि जो आचार अध्याय में करना कहाथा वह इसको छोड़कर औरों पर समझना इसीको हृत्था इस्तिस्नाय कहते हैं इसी तरह सर्वत्र प्रायश्चित्तकांड में आचार व्यवहार दोनोंके अपवाद अनेक भाँति बरान होते रहेंगे कि जहाँ जहाँ जिस जिस प्रकारके अपवादका प्रयोजन हो) ॥ दोबर्थ से कम अवस्थाके धृत लगाकर गाहना और यमगाथा पढ़ते हुये गाहना ये दोनोंवात यमस्मृति से सिद्ध होती हैं = यथाह यमः = ऊर्न द्विवार्षिकं प्रेतं धृता क्तं निखनेद्विहः यमगाथा गायमानो यमसूक्त मनुस्मरन् = अर्थात्—वै वर्थ से ऊने प्रेतको धी से चुपडि यमगाथा गाते हुये घाम से बाहर खोदिगाई और यमसूक्तका स्मरण उच्चारण करते हुये जो ॥०॥ देवतः—चांडालाग्नि रमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हि चित्त पतितताग्निश्च तान्निश्च न शिष्टग्रहणोचिताः = अर्थात्—देवतमुनिका यह वचन है कि जिस प्रेतको अरणाकोयकी अग्नि न मिलने से लौकिक अग्नि लेनी परै तहां उत्तमकुल जातिवालेको इतनी अग्नि न लेनी चाहिये. शक्तो किसी चांडाल से दूसरे जो अग्नि आपही प्रत्यक्ष में अपवित्र हो जैसे पजावे आदि में लगी हुई तीसरे सूतिकाके पास जहां जमसूतक हुआ हो तिसकी अग्नि चौथे पतित के हाथ से न लेनी पांचवें किसी चित्त से भी न लेनी चाहिये ॥ अग्नि संस्कार और जलदान सह्ये लौगाक्षिने यह अग्रोक्त विशेषता दर्शाई है = यथाह लौगाक्षिः = तृथीमेवो दक्तं कृत्यां तृथी संस्कारमेव च सर्वथां कृतं चूडानामन्यथापीच्छयादयम् = अर्थात्—सभी बालक जिनका चूडाकर्म भुंडन हो चुका हो तिनको तो नियम से अवश्य ही अग्नि दाह और जलदान करना चाहिये लेकिन विनामंत्रके घुपके करना चाहिये. अन्यथा पिजड़ा चूडाकर्म न हो चुका हो परन्तु नामकरणा हो चुका हो ऐसे बालकों के मरने में यदि कर्ता पुरुषोंकी इच्छा हो तो अग्नि दाह और जलदान दोनों विनामंत्रके करें अपने प्रेतका अश्रु दय चाहि सोचिके अन्यथा कुछ आवश्यक नियम नहीं केवल इच्छा पर आरुढ़ है चाहें करें या न करें ॥ इसी नियमके अनुरूप मनु ने कुछ और विशेषता कही है = यथाह मनुः = नाशिवर्यस्य कर्तव्यानां वैरुदक क्रिया जात दंतस्य वा कृत्यान्नाग्निवापिहाते स ति = अर्थात्—बिना तीनवर्थ पूरे हुये की उदक दान क्रिया बांधवोंकी न करनी चाहिये (केवल उदक क्रिया कदन से अग्नि दाह भी समझ लेना क्योंकि इन दोनों का

जोडा है) कहीं विकल्प से तीनवर्ष के भीतरभी जिसकेदोत जमिचुके हों अग्निदाह उदकदान करो या न करो इसी प्रकार नामकरणाहोजानेवाले के तीनवर्ष भीतर करो या न करो किंतु कर्ता की इच्छापर आरुद्ध है आवश्यक नियम नहीं है परंतु तीन वर्षका जो नियम आवश्यक ठहराया तिससे यह अभिप्राय सिद्ध होता है कि चूहा कर्म यद्यपि किसी के कुलपरिपारी से तीन वर्षके उपरांत पाँचसात वर्षतक होताहो तिससे न होनेपाया तौभी तीनवर्ष से उपरांत मरे प्रेत को अग्निदाह और जलदान अवश्य बिना मंत्रोंके चुपके करदेनाचाहिये = मनुके इस वचनसेलौगासिके पूर्वोक्त वचन में इतना भेदहै कि लौगासिने तीन वर्षभीतरभी चूहाकर्महोजानेवादि अग्निदाह और जलदान का आवश्यककीय नियम किया और इसमें मनुने तीनवर्ष के उपरांत चूहा न होनेपरभी आवश्यक नियम ठहराया क्योंकि चूहाकर्मका विशेषकर कोई एकसमयटीकतहीहै तिसकोदेशकालवस्तुके अनुसारविवेचन करिलेनाचाहिये= ऊर्ध्वोक्त सभी वचनोंका अभिप्रायलेकरयहक्रम स्थापनहुआहै किजबतकनामकरणा कर्मसंस्कार न हुआहो तिससे पहिलेमरें सो खोदिके गाढाजायउदकदानभी नकिया जाय फिर नामकरणाके उपरांत तीनवर्ष भीतर विकल्पहै कि चाहें अग्निदाहजलदान करों या न करों तिसपीछे जबतक जनेऊ न हुआहो तिसकेमरनेमें अग्निदाह जलदान दोनों अवश्यकियेजायेंगे परंतु बिनामंत्रके चुपके कियेजायेंगे और तीनवर्ष के भीतर जिसका चूहाकर्म होचुकाहो तिसकाभी यही नियम समुभक्ता फिरजनेऊ होजानेवादि जोमरें तिसकी (आहिताग्न्याहृत् विधिसे) जलायकर सब कर्म ऊर्ध्वहैदिकभी किये जायें जोकुछ लोकमें होतेहैं तिसजलानेमें कई भौंतिका विचारहै कि जनेऊवाले कई तरहके होतेहैं उनका जुदाजुदा विधान अपनी कुल परंपारीसे होताहै अर्थात् एक तौ सामान्य कुलका लड़का किजसके कुलमें अग्निहोत्र नहींहोता औरदाहकर्मभी अग्नि होत्रियोंकी रीतिसे नहींहोताहो दूसराबह लड़का किजसकेघर अग्निहोत्र तौ नहींहै परंतु अग्निहोत्रियों की रीतिसे दाहकर्म की परिपारी चली आतीहै तीसरा वहकि जिसकेघर अग्निहोत्रकी स्थापना रहितोहो चौथा वह कि जिसकेघर अग्निहोत्र की स्थापनाहै औरवह अपने आपभी आहिताग्निहो क्योंकि विवाहभी होचुका तिससे उसने अग्निकी स्थापनाभी जुदी अपनी करीहोगी—इन्हीं भेदोंके अनुसार दाहक्रियामेंभी कईभेदहोतेहैं क्योंकि जोपुरे अग्निहोत्री हैं तिनकादाह उसी अग्नि कुंडकी अग्निसे होता और यज्ञके पाव आदिभी मुर्दाके साथही जलायेनातेहैं इत्यादि विधान उनकी कुल पद्धतियोंमें प्रसिद्धहैं बिरलेकुलोंमें अग्निहोत्रके न होनेपरभी थोड़ीवातें

उसी रीतिकी चलीआतीहैं क्योंकि पहिले कभी अग्निहोत्र उनके होताथा इत्यादि सब भेदोंका तात्पर्य योगीश्वर ने (उपेतश्चेत्-आहितान्यावृताथर्वत) इतने अक्षरों से समुभायाहै कि जिसकी जैसी परिपाटीहो उसीके प्रयोजनसे दाहकर्मकरै—इसका यह दृष्टांत है कि जिसके अग्निहोत्र का वितान हो और भूमिजोयरा प्रोक्षरा आदि विधि करनी आवश्यक हो तो वही करना या जिसके अग्निहोत्र का वितान आदि न हो तो वहलुप्त प्रयोजनहै कि पात्र योजन आदि विधान उसका न करनाहीगा • यह समस्तवार्ता प्रासंगिक है—अब उसी प्रवृत्तको दर्शाते हैं कि उपनीत जनेऊ होचुके का दाहलौकिक अग्निके विधानसे होताहैपरंतु जो अग्निहोत्रीकेकुलमेंउपनीत होनेपरभी अनाहितान्निपुरुषसुरै तो गृह्याग्निसे और लौकिकाग्निके दाहसेभी जलायाजाताहै किंतु उसका विवाह और यज्ञाग्नि संबंध नहोनेसे आहवनीय आदि अग्नि नहीं हैं ॥ उसीअग्निसे या दूसरी अग्नि से भी • यह अनन्तर विधान भी वृद्ध याज्ञवल्क्य ने प्रकाश किया है = यथा—आहितान्निर्यथान्यायं दग्धवस्त्रिभिर्भागिभिः अनाहि-
ताग्नि रक्तेन लौकिकेनापरोजनः—अर्थात्—आहितान्नि जो अग्निहोत्री हो सो तीनों भाँति की अग्नियों में किसी अग्नि से यद्योचित न्याय के अनुसार जलायाजाय अर्थात् तीनों मौजूद होते जो उत्तमहो उसीसे जलाना चाहिये अनाहितान्नि जो अग्निहोत्री के घर जन्म होतेहुये अग्निमान न हो सो एकही गृह्याग्नि से जलाया जाय और बाकी सामान्य जन लौकिक अग्निसेजलाया जाय ॥ अग्नीनां भेदाः—
प्रसंग से आवश्यक जानिके अग्नियों के भेद भी दर्शाते हैं—यद्यपि अग्नि ती-
नही मुख्य और प्रसिद्ध हैं तथापि उनके भेद अनेक हैं और यथार्थ में सर्वत्र अग्नि एकही है कि जिसके संस्कार भेद वा स्थान कर्म भेद से नामभेद भी हो-
जातेहैं • इसका दृष्टांत है कि जैसे एक लौकिकअग्नि वहीकहाता जो लोकमें जहाँ-
तहाँ प्रसिद्धरहता और कोईसा संस्कार उसका शास्त्रोक्त विधानसे न किया गयाहो
इसकेभी स्थानकर्म भेदसे अनेक नाम होतेहैं जैसे भाद्र भट्ठी आदिमें होनेसे—फिर
वही अग्नि जो निरंतर किसी के घर में रहिता हो तो आवश्यक यह नाम होजाता
क्योंकि आवश्यक नामहै घरका (परंतुघरमें रहते भी जबतक कोईसा संस्कार न किया
जाय तबतक दोनों नाम रहतेहैं अर्थात् आवश्यक और लौकिकभी कहाताहै) इसीतर
ह लौकिक अग्निके स्थान भेदसे अनेक नाम होतेहैं—फिर उभी आवश्यकनाम अ-
ग्निकी जब किसी यज्ञ विशेष के लिये यद्वा नैस्तिक पाक यज्ञोंके लिये घरका मा-
लिक संस्कारोंसे कल्पितकरै तब गार्हपत्य नाम कहाता है क्योंकि गृहपति जो घर

का स्वामी है वही उसका संस्कार यजन करनेसे यजमान ठहिरा और उसी गार्हपत्य अग्नि को नामांतरसे गृह्याग्नि भी कहते हैं—फिर उसी गार्हपत्य में से थोड़ा अग्नि लेकर जब किसीके विवाह में होमसंस्कार से संयुक्त किया जाय जिसे साक्षी बनाकर वर वधू को प्रतिज्ञा वचन दिये जाते हैं तब उसका और नाम भेद भी विवाहाग्नि ऐसा कहाने लगता और वही वैवाहिक अग्नि आगे को सदा सर्वदा उन वर वधू के घर में रक्षासे रहती है कि जबतक वह पत्नी जीवै किंतु मर जाने से उसी अग्नि में फंकी जाती है फिर अन्य विवाह करनेसे अग्नि स्थापन होता है (आचार मर्यादा परिपाटी में ८६ प्रलोक देखो)—फिर उसी गार्हपत्य अग्नि से से थोड़ी लेकर जुदेकुंड या वेदी में वेदोक्त कर्म अग्नि होय आदि किसी होमके निमित्तसे स्थापन करके संस्कार करी जाय तो यह अग्नि आहवनीय कहाता और वैतानिक भी कहाता और इस भांतिके वेदोक्त अनेक अग्नि सब योतारिण के नामसे प्रसिद्ध होते हैं इसी प्रकार अनंतरोक्त वैवाहिक और गार्हपत्य भी स्मार्त अग्नि के नामसे प्रसिद्ध होते हैं इसी प्रकार ऊपर कहे आवस्य पर्यंत लौकिक अग्नि के नामसे प्रसिद्ध होते सो लिख चुके हैं तिससे अग्नि के मुख्य भेद तीन ही कहे जाते हैं (अन्यथा भेद तो अनेक अभी लिखने शेष हैं) इसी लिये आचार मर्यादा परिपाटी में योगीश्वरने यह कहाया कि (कर्मस्मार्त विवाहाग्नीकूर्वीत प्रत्यहं गृही दायकालाहते वा पिश्रोत वैतानिकादियु) अर्थात् गृहस्थीका सदा यह धर्म है कि प्रतिदिन स्मार्त कर्मोंको विवाह की संचित करी अग्नि में किया करै यथादाय भाग होनेके समय जो हिंसावांट में पाई हो तिस अग्नि में करै और वेदोक्त योतकर्मोंको वैतानिक आदि अग्नियों में करै—और जो अनेक अग्नि लिखने शेष रहे तिन में एक दक्षिणाग्नि के नामसे कहाता उसका यह लक्षण है कि जो कहीं से मांगला को रसोई आदि पाकयज्ञ में प्रवृत्त करा जाय सो इस दक्षिणाग्नि जन्मकेवल मांगि लाता है कि जो कई भाँतिसे होता है क्योंकि या तो किसी दूसरे गृहस्थीके गार्हपत्य में से लाई जाती है या घनवाय वैश्यक कुलसे या भाइसे से इत्यादि ले आनेका विधान है—यह सब चर्चा प्रासंगिकथा अब उसी प्रकृतका वर्णन करैगे जो चितासंबंधी हो रहाया ॥ ० ॥ यमस्मृतिमें यह भी नियम कहा है कि शूद्रके हाथसे आग या लकड़ी आदि प्रमथान भूमि तक न पहुँचावै = यथाह यमः = यस्याऽऽनयति शूद्रोऽग्निं तदांकाष्टं हवींयिच । प्रेतत्वं हि सदा तस्य सचाधर्मोऽलप्यते = अर्थात्—जिसे द्विजाती के शूद्र पुरुष अग्नि लाता है या फूस काय या हवींयि अर्थात् होम और पिंडोंकी सामग्री आदि लाता है तिसको सदा प्रेतत्व बना रहता और कत्ताने वाला या वह शूद्र भी

अधर्मसे लिप्त होता है ॥ ० ॥ दाहकर्म भी स्नान आदि कराने पीछे करना चाहिये
 जैसा यह वचन है = प्रेतदहेच्छुभैर्गवैः स्नापितं स्रग्भिर्भयितम् = अर्थात्—प्रेतको स्नान
 कराये हुये माला आदिसं विभूयित उत्तम गंध द्रव्यै सहित जलावै ॥ प्रचेतस्मृति
 में प्रचेताने भी कहा है = यथा = स्नानं प्रेतस्य पुत्रार्थैर्वस्त्रार्थैः पूजनं ततः । नग्नदेहं दहेन्
 र्वाकिंचिद् यंपरित्यजेत् = अर्थात्—पुत्रादिकों के द्वारा प्रेतका स्नान और वस्त्रादि सा-
 मग्रीसे पूजन भी होय किंतु तंगीदेह नहीं जलावै और चट्टास हुये वस्त्रमें से कुछ देने
 योग्य फाड़िके छोड़िदे जो प्रमशान के निवासी पावेंगे ॥ ० ॥ मनुने प्रेतको लेजाने
 मध्ये भी विशेषता कही है = यथा—न विप्रं स्तेयुतिथस्तस्मृतं शूद्रेणाहारयेत् । अस्त्रग्या
 ह्याहुतिः सात्याच्छूद्रसंपर्कदूयिता = अर्थात्—अपने जाती मौजूद होते हुये मरे ब्राह्मण
 को शूद्रके कंधे न पहुंचावै क्योंकि जो आहुति उसको स्वर्ग पहुंचाने हेतु दीजायगी
 वह शूद्रके संसर्गसे दूयित अस्वर्ग्य होजायगी (इस वचनमें अपनों के होते हुये यह
 कथन केवल गोवियों पर नहीं कहा समझना किंतु जातिमात्र पर विवक्षा
 करी है कि ब्राह्मण मात्र किसीकी होते हुये ऐसा अनर्थ न होनेदेवै क्योंकि अस्वर्ग्य
 शयके भागी वेभी होते हैं जो अनर्थ देखें इसी प्रकार अन्य वर्गोंमें समझना ॥ ० ॥
 जहाँ ग्रामके चारों खूंट मार्ग खुलेंगे या शहर पनाह के दरवाजे पुरमें बने हों तहाँ
 भी किस द्वारको कैसा मुर्दा निकास जाय यह भी नियम किया है = यथा—दक्षिणो
 नमृतशूद्रं पुरद्वारेणानिर्हरेत् । पश्चिमोत्तरपूर्वेस्तु यथासंख्यं द्विजातयः = अर्थात्—मरे
 हुये शूद्रको पुरके दक्षिण द्वारसे निकास और पश्चिम उत्तर पूर्व इन द्वारों से यथा
 क्रमके अनुसार द्विजातियों के मुर्दे निकास जायें—किंतु पश्चिम द्वार से वैश्य और
 उत्तर द्वारसे क्षत्री और पूर्वद्वारसे ब्राह्मण निकास जाय* तात्पर्य इससे यही है कि
 बिना प्रकाश किये स्वतः प्रकाश होसक्ता है कि अमुक वर्ग का मुर्दा निकास ॥ न
 ग्रामाभिमुखं प्रेतं हरिर्गतिहारी तोषि = अर्थात्—हारीतने यह भी कहा कि ग्रामके स-
 न्मुख मुर्दा न लेजायें ॥ ० ॥ कदाचित् कोई विदेश में रहित मरजाय जिसका शरीर
 पुत्रादिकोंको न मिलसके परंतु दाह मिलेहों तो उन हाडोंमेंही प्रतिहति पुतलविधान
 करे या दाह भी न मिले तो पराशरीसिद्धी पुतलविधान शौनकादि गृह्योक्तमार्गसे क-
 राकर दाह आदि संस्कार करे (पराशर अध्याय चरेपत्ते और शरकराडोंसे नराकार मुर्दाकी
 नकल बनानी पुतल विधान कहा जाता है) और सुतक भी दर्शादिन आदि जैसा होता है
 सो सब इसमें नाने— इस नियम का प्रमाण आगे वाशयजीका वचन देखी = यथाह
 वाशयः = आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्निधेत पुनः संस्कारं कृत्वा शववदाशौचमिति =

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

अर्थात्—जो आहिताग्निः पुरुष अग्निहोत्री होकर विदेश में रहिते मरजाय पुत्रादि कोंको अग्निदाह देनेका अवसर न मिले तिसका फिर पुत्तल विधानके द्वारा अग्नि संस्कार करके मुर्दा की तरह सूतक माने ॥ और जो अनाहिताग्नि पुरुष अग्निहोत्री नहींहै सो विदेशमें मरे तिसका सूतक तीनरात्रि मानाजाय—इसके भी प्रसारामे यह वचनहै—यथा=सुषिष्टैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यप्रचतथाग्निना । असौत्तर्गाथिलोकायत्वाहे त्युक्त्यासर्वाधैः ॥ एवंपराशरंदग्ध्वा विरात्रिमशुचिर्भवेत्—अर्थात्—परांनर नामक पुत्तल बनाने पीछे जल मिलायेहुये अच्छे तंदुल थव आदिके पिसानोंसे थोपिलीपि के अग्निसे जलाना योग्यहै और उन्हींमने पिसानोंके बने पिण्डसे (यहकाहिकर कि यहमृतक और पिण्ड स्वर्गलोक प्राप्त होनेके निमित्तत्वाहा) इस भाँति मंत्रसे स्वाहा कहिकर बांधवोंसहित कर्त्ता पुरुष पराशर को जलाइकर तीनरात्रितक अशुचिनाम सूतकीरहे ॥ यहाँतक मृतक संस्कारकहागया कि इसतरह गाढ़े या जलावे ॥ संस्कार के आगे फिर क्या करना चाहिये सो नीचे अभी कहते हैं १ । २ परन्तु दाह के दिवसजो कुछ और करना होता है तिसकी व्यवस्था आगे पाँचमी अधिकोक्ति में ब्यौरेवार देखना ॥ इतिशवदाहविधानं ॥

(अथ जलदानप्रकारः)

सप्तमाह्नमाह्नापि ज्ञातयोभ्युपयंत्यपः । मपनःशोशुचदयमनेनपितृर्विमुखाः १ ॥

अर्थः—सातमें या दशमें दिवसके अनन्तर ज्ञातीयजन (अपनःशोशुचदयं) इस मंत्रसे दसिरामुख होकर जलका अभ्युपगम करतेहैं+इसमें अभ्युपगमन कहिनेसे उस के प्रयोजन अनुसार ज्ञान और जलदानकर्म समुक्ताजाताहैं क्योंकि चौथेश्लोकमें इसी तीसरे और पाँचमेंका अति देशधर्म नाना आदिपर बताकर उदक क्रिया करनी कहेंगे और पाँचमें श्लोकमें भी जलदानविधि स्पष्ट भावसे कहेंगे (अतिदेश उसकानाम है कि जो कोई साधर्म किसी एक दोके नामसे कहिकर औरोंपर भी बतायाजाय कि जैसा यहाँ तैसा वहाँ भी होना चाहिये ॥ ३ ॥

३अधिकोक्तिः—उक्त जलदान विधि नियम तिथियों में करनाचाहिये समतिथियों में नहीं—यथाह गौतमः—प्रथमतृतीयपंचमसप्तमनवमेयूष्कक्रिया=अर्थात्—पहिले तीसरे पाँचमें सातमें नवमें दिवसोंमें उदक क्रियाहोय ॥ सो यह स्नानके अनन्तरकरना चाहिये—यथाहशातातपः—शरीरमग्नौसंयोज्यानवेसमाराग्रापोभ्युपयंतीति=अर्थात् मृतकदेह को अग्नि में संयुक्त करके फिर उसकीतर्पन देखते हुये जलका अभ्युपगम

करें ॥ प्रचेताने कुछ और भी विशेषता कही—यथा= प्रेतस्य वांघवीयया वृद्धमुदकमव
तीर्य नोदर्ययेरुदकांते प्रसिंचेयुरपसव्ययज्ञोपवीतवाससो दक्षिणाभिमुखो ब्राह्मणास्यो
दक्षुखाः प्राङ्मुखो राजन्य वैश्वयोरिति= अर्थात् प्रेतके वांघवलोक जैसा उत्तमज
लाशय या राहिरा जलमिलै उसमें गोतालगाके गरीरको नमलें घिसें जलदे किनारे
अंजलियाँ सींचें दाहने कंधे जनेऊ अंगौछा से अपसव्य होकर दक्षिणमुख होकर यह
नियम सबका सामान्य है उसमें यह विशेषता भी करसक्ते हैं कि ब्राह्मणको मुर्दाको
उत्तरमुख होकर और सभी वैश्यके मुर्दाको पूर्वमुख होकर • किंतु शूद्रको लिये कोई नियम
यद्यपि नहीं कहा गया है तथापि शीघ्र प्रायश्चित्तकी दिशा केवल बुद्धिसे कल्पना होती
है तिसका निर्णय देशाचारसे कर्तव्य है ॥ बिष्णुकी स्मृतिमें तबतक रोजरोज अंजली
देनी कही है कि जबतक सूतक माना जाय= यथाह बिष्णुः—यावदाशौचं तावत् प्रेतस्यो
दकंपिराडं च द्युरिति= अर्थात्—जबतक आशौच रहै तब तक प्रेतके लिये जल और
पिराड भी देते रहें ॥ प्रचेतस्मृतिमें रोजरोज अंजलियों की वृद्धि करनी कही है जैसा
यह प्रचेताका वचन है—दिनेदिनेऽंजलीनूपुराणि प्रदद्यात् प्रेतकारणात् तावद्वृद्धिः प्रक
र्तव्या यावत् पिराडः समाप्यते= अर्थात्—प्रेत के निमित्तसे दिनदिन प्रति जलभरी हुई
अंजलियाँ देवें और जबतक दशमापिराड पूरा हो तबतक एक अंजली रोज बढ़ाता रहें ॥ १० ॥
ऊर्ध्वोक्त बोधकारोंमें कुराई बड़ाईके हेतुसे यद्यपि तर्कावितर्क रूपी शास्त्रार्थ बड़ा होता है
तथापि जो बड़ा अनुकल्प कहा तिसमें बहुत ज्ञान उदाने के हेतुसे बहुधा प्रयत्न नहीं सिद्ध
होती है—परन्तु जिसको यह अभिलाषा हो कि मेरे प्रेतका अभ्युदय होगा सो इसबड़े ही
अनुकल्प को सार्वै जिसपर न सावाजाय सो—उसीछोटे अनुकल्पका अवलम्बेवै कि
एकही—दिनमें निपटारा हो जैसा याज्ञवल्क्य और शौतम के वचनों से लिखा गया ॥
अंजलीदान दोनों हाथ मिलाकर करना चाहिये= यथा वाशयः= सव्योत्तराभ्यां पाणि
भ्यामुदकक्रियां कुर्वीरव= अर्थात्—बायें दाहिने दोनों हाथों से उदक क्रिया करें ॥ ३ ॥
दशमें दिनकी शुद्धक्रियाका विधान आगे १७ सबह के श्लोकसे देखें ॥

(उक्तस्य वक्ष्यमाणस्य चातिदेशः)

एवंमातामहाचार्य प्रेतानामुदकक्रिया । कामोदकं सप्तप्रत्तास्वस्वीत्यम्बुरास्विनाम् २ ॥

अर्थः—ऐसेही नाना आचार्य इन प्रेतों की उदकक्रिया • कामोदकनाम इच्छा
से उदक देना चाहें तो सव्य निच प्रत्ता बिवाही बहिन बेटी आदि स्त्रीय भानजा
यसुर कस्विज याग करानेवाला इनको भी प्रेतों की जलदेवें जो प्रेतका अभ्युदय
चाहता हो किन्तु इच्छाके न होनेमें न देनेसे कुछ योग्यभागी नहीं होता ॥ ४ ॥

अधिकोक्ति=जलदानके नियम ऊपर कहेगये सो किसप्रकारसे करना चाहिये तिसका प्रकार पाँचमें मूल श्लोकसे कहेंगे और उसी पाँचमें अधिकोक्ति में सविस्तर व्याख्यान लिखेंगे कि जिससे कुछ संदेह न रहसके ॥

(उदकदाने गुणविधिः)

सहस्रप्रतिचतसृदकं नामगीत्रेण वा गम्यताः । न ब्रह्मचारिणः कुर्युदकं पतितस्तथा ५ ॥

अर्थः—सकल एकही बार सींचते हैं जलांजली (प्रेतके) नामगोत्रसे (बांधवलो ग सपिंड और समानोदक) वाक्नारागी धामे हुये अर्थात् (सौमी होकर) ब्रह्मचारी तथा (जातिसे) पतित बांधव जलांजली न करें (यह विधिमें अपवाद है कि ये दोनों जलदान के अधिकारी नहीं ॥ ५ ॥

५ अधिकोक्तिः=(अमुकनामा प्रेतोऽमुकगोत्रः दृश्यतु) इस संज्ञसे एक बार जलांजली छोड़नी, मूल श्लोक में योगीश्वर ने कही परंतु कहीं देशाचार वा इच्छा के अनुसार ब्रिकल्प भी तीन अंजलीसे होता है अर्थात् नामगोत्रका संब एकही बार कहि कर तीन अंजली देना भी दीकहे ॥ क्योंकि प्रचेतस् स्मृतिमें तीनवार जल देनेका नियम है जैसा यह प्रचेताश्रम का वचन है—विप्रत्येकक्रतुः प्रेतस्त्वप्यतु—अर्थात्—अमुकनामा प्रेतस्त्वप्यतु इस पूर्वोक्त संब के प्रत्येक उच्चारण में तीन अंजली करें ॥ यह नियम तो तीसरी अधिकोक्तिमें प्रचेताके वचनसे लिख चुके हैं कि शेष रोज एकअंजली की एहि होती रहे ॥ उन्हीं प्रचेताने यह और भी विशेषविधि बरान करी है—यथा—नदीकूलंततो गत्वा शौचं कृत्वा यथार्थवत् । वस्त्रसंशोधयेदादौ ततः स्नानं समाचरेत् ॥ सञ्जलस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः । पाया रातत आदाय विप्रेद्याद्वा श्रमलीव ॥ द्वादशक्षयिष्येदद्याद्द्वैत्रयेण च दश स्मृताः । विंशदश द्वादश दत्त्वास्ततः संप्रविशेदगृहम् ॥ ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत्—अर्थात्—सबसे पहले द्विजवाह दिये पीछे नदी किनारे जाकर यथोचित शौच करिके पहिले कपड़े धोवें तिस पीछे स्नान करें ॥ फिर धोती सहित स्नान किये हुये पवित्र और मनको सावधान किये उसी जगह से एक पर्यन्त लेके एक ठिकाने जलके किनारे धरें उसको प्रेत मानिके जो ब्राह्मण प्रेतही तो दश १० अंजली छोड़ें सबी प्रेतको बारह १२ अंजली दें वैश्य प्रेत को पंद्रह १५ देनी कहीं शूद्र प्रेतको तीस ३० अंजली देनी चाहिये तिस पीछे घरकी जायें फिर दुबारा स्नान करना चाहिये और घरका शौच भी लीपा पोती करावें ॥ ० ॥ ऊपर मूल श्लोकके उत्तरार्द्धमें योगीश्वरने जो अपवाद कहा तिसके मध्ये यहां और भी विशेष-

ता निर्णाय करते हैं कि ब्रह्मचारी यद्यपि सजाती सगोवीहों तौभी अपने ब्रह्मचर्य के समावर्तन कर्मकी अवधि तक जलदान आदि कुछ न करें किंतु ब्रह्मचर्य से निपटारा हुये पीछे सूतक सानिके जलदान आदि शुद्धक्रिया उन्हीं सर्पण्डोंकी फिर करें जो जो ब्रह्मचर्यके भीतर सरगये थे . ऐसेही पतित जो द्विजातियोंके कर्माधिकारसे गिर चुके अर्थात् जातिपातसे बाहरहों वेभी जलदान आदि अशौचकर्म नकरें पण्तु जब कभी प्रायश्चित्त आदि प्रकारोंसे जे कोई जाति पाति में मिलाये जाय तो पहिले सरें हुआओं को फिर पीछे जलदान आदि करें और सूतक साने यह सूतक सिर्फ तीन दिन होता है—यथाह मनुः—आदिष्टीनोदकंकुर्यादाव्रतस्यसमापनात् । समाप्तेतूदकंक त्वाग्निरात्रमशुचिर्भवेत् = अर्थात्—आदिष्टी नाम ब्रह्मचारी का और उसका भी कि जो जातिसे पतितहोके किसी प्रायश्चित्त आदि प्रयोगमें लगाहो . क्योंकि आदिष्टी वह कहाता है जिसको कुछ आदेश कियागयाहो जैसाब्रह्मचारी को आदेश किया जाताहै कि अपोशान कर्मकरों दिन में मत सोना इत्यादि व्रतके नियम और पतित को आदेश किया जाताहै कि अशुक् प्रायश्चित्त करो—इसब्याख्याके अनुसार मनु कहते हैं किदोनों आदिष्टी जलदानको न करें जबतक उनके व्रत समाप्तहों किंतु समाप्त होजाने बाद जलदान करके तीनरात्रि सूतकोबने ॥ इसी प्रकारनिपट नपुंसक आदि भी जलदान के आधिकारी नहीं हैं = यथाहउडमनुः—स्त्रीवाद्यानोदकंकुर्युः स्तेनाव्रात्याविधर्मिणाः गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैवथोयितः = अर्थात्—स्त्रीव्रादि और स्तेनचोर और व्रात्य संस्कार विहीन और विधर्मि जो पराये धर्मका आग्रह लेकर धर्म हुयेहों . एवं गर्भ गिराने वाली और भर्तृके प्राण हरने वाली या उस से परा द्रोह रखने वाली और मद्यपान करनेवाली स्त्रियाँ भी जलदान आदि न करें . स्त्रीव के साथ जो आदि शब्दकहा तिससे कुटी कलंकी आदि औरभी समझने ॥ इस अपवाद में जो जो अनधिकारी कहे तिनमें एक ब्रह्मचारी को अपेसा अपवाद का कुछ प्रति प्रसव है सोभी आगे पंद्रहवें मूल श्लोक और उसीकी अविकीर्ति में देखो क्योंकि उसकी देखे बिना व्यवस्था में असिद्धि खड़ीहैरती ॥ ५ ॥

(अकर्मधानमृतकाः)

पापंघ्यनाश्रिताः स्तेनाभर्तृघ्न्य कामगादिकाः।सुराप्यभ्रातृमत्यागिन्योनशोचोदकभाजनाः५ ॥

अत्ररार्थः—पाखंडी अनाश्रित स्तेन . भर्तृघ्नी कामगा आदि स्त्रियोभी तथा सुरापी आत्मत्यागिनी भी आशौच तथा उदकपाव नहीं हैं ॥ ६ ॥

अभिप्रायः—नरकपाल आदि (वेदवाद्य) चिह्नों को धारण करतेहुये जे कोई पुरुष उदर पूरणावृत्तिलेते हैं सो पाखण्डी कहाते हैं अनाश्रित जो किसी आयुष्य को सहारे न हों स्तेन जो सोना आदि उत्तम द्रव्य चुरावें या अपहार करें भर्तृघ्नी स्त्रियाँ कि जिन्होंने पतिको वियदेकर या किसीप्रकार माराहो कामरा जो कुजरा कहाती हैं इनकी आदि लेकर औरभी समझनी जो गर्भ गिराती या गिरवाती हों या ब्राह्मरा का या बालकों का बध करतीहों इत्यादि सुरापी जो कोईसा मद्यपीतो हैं अर्थात् जिस मद्यका पीना जिसजाति को नियिद्ध हो उसके पीनेवाली सुरापी ठहरती है अन्यथा नहीं आत्म त्यागिनो जिसने अपने आत्मा को जलमें डुबाया वा अग्निमें गिराया वा विय भक्षरायादिप्रकारांसे या फाँसीसेत्यागिदिशाहो (सुरापी आदि जो स्त्रियाँ कहीं उस प्रकारके पुरुषभी समझिलेना) ये सभी मरने पीछे सूतक या जलदान के भागी नहींहैं अर्थात् इनके मरनेमें सपिंड लोग सूतक न मानें और जलदान आदिकर्मभी न करें = इन्हीं दो कर्मोंका नियेधकरनेसे यह तात्पर्यभी त्वतः सिद्ध होजाता है कि अग्निदाह माघ यथा संभव इनको भी कराय देना चाहिये ॥ इसका मुख्यतात्पर्य आगे दूरजाके इक्कीस सामूलप्रलोक और उसीकीअधिकोक्तिमेंदेखना ॥

६ अधिकोक्तिः—अभिप्राय रूपी पाठमें जिन पापों के प्रभाव से ऊर्ध्व दैहिक क्रिया का प्रतिषेध किया सोभी इच्छा पूर्व या बुद्धिपूर्व पाप करनेवालोंका नियम समझना क्योंकि अगिले वचन का यही तात्पर्य है यथाह गौतमः = प्रायोश्नाश कश्चाग्निवियोदकोद्वनप्रपतनेश्चेच्छताम = अर्थात्—प्रायो नाम महा प्रस्थान किंतु मरजाना इच्छतां इच्छा करते हुयोंका भी (उदकदान आदिमें प्रतिषेधजानों) किन प्रकारोंसे इच्छा सहित मरजाने वाले अनाशक लंघनसे गच्छोंसे अग्निसे विय भक्षरासे उद्वन गलफंदा लगानेसे प्रपतन पर्वत आदि ऊर्ध्व चढिके गिर परने से ॥

तात्पर्यः इच्छासे मरजाना इस कथन का यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि जो बिना इच्छाकिये अग्निविय आदिमें खोखासे मरगाह हों तिसका जलदान आदि कर्म करना चाहिये क्योंकि प्रसाद गफजत आदिसे उस भांतिकी अकाल मृत्यु होजाने से सूतक पुरुष दोषी नहीं था = तथाह अगिरा = अथ कश्चित्प्रसादेन प्रियेताग्न्युदकादिभिः तस्याग्नीर्विधातव्य कर्तव्याचोदकक्रिया = अर्थात्—यदि कोई प्रसाद नाम धोखे मेही अग्नि जल आदि के द्वारा मरजाय तिसका सूतक मानना और जलदान आदि क्रिया भी करना चाहिये ॥ = और भी बिरली भाँति की अकालमृत्यु होनेमें किया कर्मका प्रतिषेध किया गया है = यथा = चांडालादुदकात्सर्पादाह्नगाद्वैद्युतादपि

दंष्ट्रभ्यश्चपशुभ्यश्च सरापापकर्मणाम् ॥ उदर्कापिंडदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते
 नोपतिथति तत्सर्वं सन्तरिक्षे विनश्यति = अर्थात्-पापकर्मा पुरुषोंका सरना जो चां-
 डाल को हाथसे या जलसे या सर्पसे या ब्राह्मणोंके हाथसे या वैद्युत बिजली गि-
 रनेसे या दाढ़वाले सिंह बराह आदिसे या पशुओंसे हो तो जलदान और पिंडदान
 जो इन प्रेतोंको दीजिये सो सब अंतरिक्षही में विनाश होजाता किंतु पापों के प्र-
 भावसे उनके पास तक नहीं पहुँचने पाता तिससे करना व्यर्थ है ॥ इस प्रकार की
 मृत्युभी इच्छा पूर्वहुई हो तो कर्मके अधिकारी नहीं समझने क्योंकि गौतम ने जो
 अपने वचन में इच्छा जाह्न कही थी सो इन वचनोंमें पापकर्म के विशेषरूपसे इच्छा
 सिद्ध होतीहै इसपर ये दृष्टांत हैं कि जो अपने दर्पसे कोपयुक्त होकर चांडाल आदि-
 कोंको मारने गया जलजोषों को मारनेगया या भयानक पुवाहके देखते हुये तैरने
 गया इत्यादि सबतरह पापकर्मकी इच्छादर्हरी यदि उन्हींके हाथसे यह आपमारा
 गया तो अपने मारेजानेकी इच्छा उसने जानबूझिकेकरी यह तात्पर्यहै इसीलिये
 उसके पिंडदानका नियेध (विधिका अतिक्रम करनेके निमित्तसे) कियागया क्योंकि
 (सर्वत एवात्मानं गोपायेदिति) यह श्रुतिजो प्रसिद्ध है कि सबघोरसेही आत्माकी रक्षा
 किएरहै सो यहविधि उसने न मानी ॥ पापकर्मके विशेषरूप से यह दूसरा तात्पर्यहै
 कि जिसने पुण्यकर्मके हेतुसे उन्हींप्रकारोंमें अपने प्राराधेदिये हों तिसका क्रिया
 कर्मकरना चाहिये यहाँ पुण्यकर्मका दृष्टांतजैसेकिसी डूबतेहुयेको उभारनेके निमित्त
 गोतालगाया अथपि उसकेप्राण वचादिये परन्तु आपडूबिगया तो यह पुण्यकर्मसे
 जल के द्वारा मृत्युहुई पापकर्मसे नहीं इसीप्रकार सबमें दृष्टांत समुझिलेने जैसेसाँपने
 घोंखेमें काटिखाया तो सरजानेसे क्रियाकर्म करना चाहिये यदि साँपको पकड़ते
 या मारते पालते काटाजाय तो यहपापकर्मके हेतुसे क्रियाकर्मका भागोनहीं इत्या-
 दि ॥ ० ॥ यह जो सूतक न मानना कहा सो दसदिन आदिनियमोंका प्रतियेध कि प्राहै
 अर्थात् थोड़े कालतक इनका भी सूतक मानाजाताहै सो सब सद्यःशौचका नियम
 आगे इक्कीसने मूलप्रलोकमें योगीश्वर आप दर्शान करेगे = जिनका जलदान और
 सूतक नियेध किया तिनको अग्निदाह का भी प्रतियेध करते हैं = यथाह्वयसः =
 नाशोचनोदकं नायुनदाहाद्यंतकर्म च ब्रह्मदंडद्वतानां च नृकृत्यत्कटवारणम् = अर्थात्-
 ब्रह्मदंड कहिये ब्राह्मणकायाप तिसने मरेहुँचा तथा ओं भी पुत्रोंका पापियों
 का न सूतक न जलदानहै न आंसू डालिके रोनाहै न दाहआदि अंतकर्म हैं न उनका
 कटवारण किन्तु धिकरी रथी विमान आदि कवेपर धारणाकरे ॥ परंतु (आहिताग्नि

अग्निभिर्दहंतियज्ञपात्रैश्च) यहश्रुति जो प्रसिद्ध है कि अग्निहोत्री को अग्निश्रोत्रोंसे और यज्ञके पात्रोंसे जलातेहैं सो इस प्रसिद्धि से यह न समझिलेना कि श्रुतिसे प्रतिपादन हुई अग्नि तथा यज्ञपात्रोंकी आज्ञालोप होती है तिससे अनन्तरोक्त दाहका नियेध जो स्मृतियोंका धर्म है सो ब्रह्मदंड से मरेहुये अग्निहोत्रियोंपर नहीं आरूढ होता है— क्योंकि अग्निहोत्री पर भी वहीधर्म आरूढ होता है—इस हेतुसे कि अन्यस्मृती में चांडालआदिके हाथमरे अग्निहोत्रीके अग्नि तथा यज्ञके पात्रोंकाभी विधान कहा है— यथा = वेदान्तप्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यंचतुष्यथे पात्राणि तु वहेदग्नीं यजमानेष्ट्यामृते = अर्थात्—यजमान कहिये अग्निहोत्री यदि वृथा मरजाय किन्तु ब्राह्मण के शापसे या चांडाल आदि के हाथसे मरे तब उसका वितान लेकर जलप्रवाह में फेंके तथा आवसथ्य नामक अग्नि जो उसके वितान वा निवास में स्थापन हुई हो सो लेकर चौंराहे में छोड़िदे और यज्ञके पात्र लेकर अग्नि में जलाय देवें = इसी प्रकार उसके मरे शरीर काभी नियम कहा है = यथा = आत्मनस्त्यागिनां नास्ति परितानांतथा कि या तेयामपितथा रांगां तातो ये संस्थापनहितम्—अर्थात्—अग्निहोत्री भी यदि आत्मघाती हो या पतित होजाय तिनका किया कर्म दाह आदि नहीं हो किन्तु उनकाभी रांगा के प्रवाह में स्थापन करना योग्य है कि जैसा औरों का—इन वचनों के प्रसारा से अग्निहोत्री और अग्निहोत्री सभीके दाह आदि कर्मों का प्रतिषेध ऊपर कियाया यह समझिलेना ॥ ० ॥ तिसपर भी यदि कोई अपने मुर्दा के स्नेह आदि आप्रह से कदाचित् प्रतिषेध का अतिक्रम करे किन्तु नियेध को न मानकर दाह आदि कुछ उपकार करे तब उसको उसी अतिक्रम का प्रायश्चित्त करना चाहिये = तथा च य-चन = हस्तवाग्निमुदकान् स्पर्शद्वहनं कथाय उज्जुच्छेदाद्यु पातंचतप्लवच्छेराशुच्छा ति = अर्थात्—अग्निदाह देकर या जलांजली देकर या उसके साथ ज्ञान करिके या उस मुर्देका स्पर्श करिके या कंधा देकर या उसकी कथा कहिकर या रथीकी रसीकाटकर या आँसू बहायकर तप्लवच्छ नामक प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होता है अर्थात् कोईसी एकह बात करने में प्रायश्चित्त लगाता है परंतु उसी दशा में कि जि-सने जानिबूझि के ऐसा कियाहो = किन्तु = जिसने बिनाजाने धोखेसे ऐसा किया हो तिसके लिये दूसरा प्रायश्चित्त है = यथाह संवर्तः = स्थामन्यतमप्रेतं यो वहेत दहेतवा कशोदकक्रियां कृत्वा कच्छं सांतपनंचरेत्—अर्थात्—इन पूर्वोक्त पापी प्रेतों में यदि किसीको जो कोई कंधे लावे या दाहरेवे या कशोदक क्रियाकरके कच्छसान्त-पन प्रायश्चित्त करे तब शुद्ध होय—परन्तु—जिसने अनन्तरोक्तकाम न किये हो केवल

बन्धुजनो सहित भोजनकरै = परंतु = जो सर्पकाटेसे मरा हो तिसको लिये यह अग्रोक्त विशेषता समुभंजी कि-जबताई संवत्सर पूरा होय तबतक पुराणोक्त विधिसे प्रत्येक पंचमीको नागपूजा करके वर्ष पूरा होजाने बाद सोनेका बनाहुआ सर्प देवे तथा सा सात राजदान करै तिस पीछे सब ऊर्ध्व देहिक कर्मकरै ॥ ० ॥ नारायणवलि का अनुक्रम जो ऊपर लिखचुके तिसका स्वरूप वैष्णवपुराण में कहाँ है = यथा = एका दशीसमासाद्यशुक्लपक्षस्यवैतिथिय विष्णोसमर्चयेद्देवं यमदैवस्वतंतथा दशपिंडान्वृताभ्यक्तान्दर्भेभ्युमधुसंयुताश्च तिलमिश्रा-प्रदद्याद्देवं यतोदक्षिणामुखः विष्णोबुद्धौसमासाद्यनयंभसिततःक्षिपेत् नामगोवधहंतश्च पुष्पैश्चर्चनंतथा धूपदोषप्रदानंचभक्ष्यभोज्यंतथापस्म निमंत्रयेत्तद्विप्रान्पंचसप्ततवापिवा विद्यातपःसमृद्धान्वैकुण्ठोत्पन्नान्समाहितान् अपरेहनिमंत्राज्ञेमेध्याह्नेसमुपोयितःविष्णोरभ्यर्चनं कृत्वाविप्रान्स्तानुपवेशयेत् उदङ्मुखान् यथाङ्ग्येष्टं पितृरूपमनुस्मरन् मनोनिवेश्यविष्णोवैसर्वकुथदितंद्रितः आवाहनादियत्प्रोक्तं देवपूर्वसदाचरेत् तप्तान्नजास्वाततोविप्रान् तृप्त्युवाचयाविधिहविष्यच्यं जनेनेवतिलादिहहितेन च पंचपिराडान्प्रदद्याच्चदेवैस्त्रयमनुस्मरन् प्रथमं विष्णोवेदद्याद्भस्मोर्चाश्चिदाय च यमायमानुचाराय चतुर्थं पिंडमुत्सृजेत् मृतंसंकीर्त्यमंसागोवधपूर्वमतः परम विष्णोर्नामगृहीत्वैवं पंचमं पूर्ववत् क्षिपेत् विप्रानाचम्य विधिवद्दक्षिणाभिः समर्चयेत् गवाचस्वेराभूम्या च प्रेतंतं मनसा स्मरन् ततस्तिलांभोविप्रान्स्तुहस्तैर्दर्भसमन्वितैः क्षिपेद्युगोवधपूर्वतुनामबुद्धौ निवेश्य च हविर्गंधतिलांभस्तुतस्मै दद्यात्समाहिताः सिन्धुत्यजनेः साहं पशून् चान्द्वितीतवाग्यतः सर्वविष्णोभते स्थित्वा यो दद्यादात्मघातिने स मुदरतितक्षिप्रनाथकार्याविचारणा-अथति-शुक्लपक्षकी एकादशी पायकर विष्णु देवका पूजनकरै तथा यमराजको और वैवस्वतको पूजै फिर दशपिंड शीको स ने सहित तिलमिलेहुये कुशाओंके ऊपर विष्णुको निमित्त दानकरै दक्षिणा मुख वैदिके विष्णुको निज बुद्धिमें समझेहुये फिर सर्व कर्म समाप्त होनेपर नदीके जलमें फेंकि आवे तहां विष्णुको दशपिराड देते हुये प्रेतकानां गोबल्ले कर पुष्पोंसे अर्चन भी पिंडों पर करते हुये धूपदोष देवै और भक्ष्यभोज्य आदि और भी पदार्थ चढ़ावै तिसपीछे रात्रि समश्रपांच या सात या नौ ब्राह्मणों को निमंत्रणा भेजे जो विद्या तपस्या से संयुक्त अच्छे कुलके हों तिनको और सावधान होकर भोजन में आसकते हों तिनको फिर कर्ता पुरुष आप ब्रती रहिकर दूसरा दिवस होनेपर मध्याह्न समय विष्णुका पूजन करके नीते हुये ब्राह्मणों को उत्तर मुख बैठावै और जैसा अधिक उत्तमहो उसमें अधिक प्रेत पितर का रूप समझे और अपना मन विष्णुमें लगायकर निरा-

लक्ष्मी होता सब कर्म करै आवाहन आदिजो कर्म करना कहासो सब देव शब्द पर्वक साधै । फिर भोजन से तृप्तहुये जानिके ब्राह्मणों से यह वृत्ति कि आप अच्छे तृप्त हुये जो तृप्ति प्रीति रही समुझै तौ उसको भी- पूजाकरै । फिर खीर व्यंजन मासमें तिल सहित आदि मिलेहुयेसे पाँचपिण्ड बनावै सो देवहीका रूप स्मरणा करतेहुये पहिला पिण्ड विष्णुके निमित्त देवै दूसरा ब्रह्माको तीसरा शिवके लिये चौथा अगुचरों सहित यमके लिये समर्पणा करै फिर पाँचमा पिण्ड हाथमेंलेते अपने मनमें प्रेतका नामगोध याद करके और विष्णुका नाम उच्चारणा करके पर्वरीतसे यह पिण्ड भी छोड़ै तिस पीछे ब्राह्मणोंको विधिबद्ध आचमन कराय के अनेक दक्षिणाओं से समर्चन करै पर उनमें एक सबसे बड़ेबड़े उत्तम विप्रको सोना चांदीसे पूजै और गऊ तथा बछ और पृथ्वीसे भी संतुष्ट करै प्रेतका नामलेताहुआ तिसपीछे वै ब्राह्मण भी तिल जल कृपा हाथोंमें लेकर प्रेतका गोवनाम कहिकर तर्पणा करै अर्थात् सावधान चित्तसे प्रेतके निमित्त में इविष्य गन्ध तिल जल समर्पणा करै । तिसपीछे कर्त्तापुरुष भी अपने मित्र भृत्य कुटुम्बी जनों सहित भोजनकरै घासीको जीतेहुये किन्तु मुखसे कोई क्रूर वचन न काढ़ै । इसप्रकारसे जो कोई विष्णुके मतमें स्थितहोकर जिसकिसी आत्म घातीको देवै वह तत्कालही उसका उदार कारेता है इसमें कुछ विचारकरना आवश्यक नहीं है ॥ ० ॥ सर्पकाटे प्रेतके निमित्त सोनेका नाग बनाकर देना सुमंतुने भविष्यत्पुराणा में कहा है = यथा = सुवर्गाभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव राक्ष । व्यासाय दत्त्वा विधिवत्पितुरा नृणामानुयात = अर्थात् - एकभार सोने से बना नाग विधि से दान करके तथा गोदान भी व्यास विप्रको देकर पिता के श्रृंगसे उदार होवै = इस व्यवस्था का पकाहट्टचाहिकर इक्षीसमा मूल प्रलोक अधिकोक्ति सहित देखना ॥ ६ ॥ इसभाँति उदकदान आदि विधि और उसका अणवादभोजताया अन्न इसके आगे क्या करना चाहिये सो लिखते हैं ६ ॥

(शोकशान्तिनियमाः)

कृतोदकान्समुत्तीर्णान्मुदुशाङ्कलसंस्थितान् । स्नातानपवदेयस्नानतिहासे पुरातनेः ७ ॥

अर्थः — उदकदान किये और स्नानसे निवृत्तहुये वंशुओं मृदु गाड़ल नवीन जसो घासके अंकुर सहित भूमिपर बैठे विश्रामलेते हुयोंको शोकमें डूबे देखि बड़ेबड़े बुद्धिमान् पुरुष अपवाद करै अर्थात् पुराने इतिहासोंको सुनातेहुये रोनापीटना नियेध कर के शोकशान्तिकरै कि संसार में सदासे यहीरीति चली आतीहै कोई अमरनहीं ॥ ७ ॥ यही वार्ता अगले चारप्रलोकों से वर्णन करैगे ॥

आंसूडाले या मुर्देको छुआहो तिसका प्रायश्चित्त छोटासा जुदा हे= यथा=तच्छ्रु-
 केवलस्पर्शमनुवापातितं यदि पूर्वोक्तानामकारीचे देकारत्रसभोजनम्=अर्थात्-निय-
 मुदी केवल स्पर्श किया आ यदि उसकोलिये रोयाहो और वह पूर्वोक्त कामों का-
 करनेवाला ठहरे तो एक रात्रि निराहार व्रतकरै=सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसका
 हे कि जो कठिन प्रायश्चित्तोंके करनेमें अशक्तहो=औरभी अशक्तों का प्रायश्चित्त
 आगे कहिते हैं=यथाह सुमन्तुः=बंधनच्छेदनेवामांसंभेद्यहारास्त्रियवरांच=अर्थात्-
 मुर्देकी लपेही रस्सीका बन्धन कालने में एक महीनाभर भिक्षामोंगि खातारहै और
 वियवराभी करै जिसके लक्ष्मा आगेदूर जाके बर्णनहोगे=ऐसेहीयादि और स्मृति-
 योंके वचन कहीं इसीवार्ताके संबंधी मिलैं तो उनकीभी व्यवस्था कल्पित करलेनी
 चाहिये॥ ० ॥ छठसूल प्रलोकसे लेकर यहाँतक जो जो श्रुतक्रियाकारने योग्य नहीं
 ठहरे तिनका थोडा अपवाद भी कहिना श्रेयस्वाहै कि अमुकामुक्त मुर्दे छोड़के वह
 नियम समुभक्तना=इसीलिये पूर्वोक्तदाहकर्म आदिका नियम उनके लिये न समुभक्तना
 जो अपने अंगीकृत अनुष्ठान में अत्यंत असमर्थ या जीर्णदेह वानप्रस्थ आदि कोई
 अपने प्रारा त्यागिदैं किन्तु उनको स्मृतियों से आज्ञा पाईजातीहै=तथाचवचनं =
 रुद्धःशौचस्मृत्यर्लुप्तः प्रत्याख्यातभियक्क्रियः । आत्मानंधातयेद्यस्तु श्रृंगयग्न्यनशना
 स्नुभिः ॥ तस्याप्राशमाशौचं द्वितीयेत्वस्ति संचयः । तृतीयेतूदकं हत्वा चतुर्थेयादसाच-
 रेव=अर्थात्-जो अति बड़ाहोकर नित्यशौच किया न कर सकने से या अति रोगी
 होकर असाध्य रोगहोने से वैद्य से निपट कोरा उत्तर पायाहो ऐसा पुरुष यदि अपने
 शरीरको बिनाशकरावै सींगवालोंसे या अग्नि से या लंघनसे या जलसे तो उसका
 तीन रात्रिभर अशौच सूतक भी होनाचाहिये तथा दूसरेदिन अस्थि संचय क्रिया फिर
 तीसरे दिन शुद्धस्नान आदि जलदान करके चौथेदिन याहकरै=इस वचनमें देह का
 बिनाशकरना चारप्रकारोंसे कहागया तो इन्हीं चार प्रकारोंसे शास्त्रकी आज्ञानिष्ठ
 होतीहै=अन्यथा जो औरही किसी मार्गसे निज देहका बंधकरै तिसके लिये पूर्वोक्त
 सभी नियम बाक्य समुभक्तने परन्तु यह अपेक्षा श्रेय रही कि फिर उनके लिये क्या
 करना चाहिये जो उनकी भी सुगति होजाय=तहाँ रुद्ध याजशल्क्य और छागालेय
 मुनि दोनों का एकही वचन है सां देखो=यथाहृतः=नारायणावलिः कार्यलोकराजंभि
 यान्नरेःतथातेयांभवेच्छौचं नान्यथेत्यत्रवीथ्यम.तस्मात्तेश्चोपिदातःग्रमन्नेवमदक्षिणां=
 अर्थात्-दोनो महात्मा कहितेहैं कि सासाद यमरात्रका यह कथनहै समुप्योंकोलोक
 निन्दाके भयहेतुमेउनकानारायणावलि विधानकरनाचाहिये तो फिरउभकेसाग्रउनका

भी सूतक सानाजाय किन्तु उसीकेसंबंधसे उनकोभी दक्षिणासहित अन्नदेनाचाहिये
अन्यथा नहीं=एवं=व्यासजीनेभी यही दृढकियाहै=यथा=नारायणांसमुद्दिश्य शिव-
वायुप्रदीयते । तस्यशुद्धिकरं कर्म तद्वैचैतदन्यथा=अर्थात्-नारायणकी नामसे उद्देश
करिके या शिवको उद्देश करिके जो कुछ किया और दियाजाताहै वही कर्म उसप्रेत
की शुद्धिकारकहोता है यह अन्यथा न समझना=नारायणवल्लिः कारणं-जैसा ऊ-
परकहिचुके उसकेअनुसार नारायणवल्लिकर्म जोहै सोइप्रेतकीशुद्धिकरनेकेद्वाराश्राद्ध
आदि संप्रदानरूपकी योग्यता उत्पन्नकरताहै इसलिये उनकाभीऊर्ध्वदेहिकसबकर्म
करनाचाहिये=इसीहेतुसे=यद्विशत स्मृतिकेमतसेभी आद्यआदिऊर्ध्वदेहिककर्मक-
रनेकी अनुज्ञा देखि पडती है=यथा=गोब्राह्मणादितानांचपतितानांतथैवच ऊर्ध्वसंघ-
स्मरारक्षुर्गार्हपत्यमोर्ध्वदेहिकस=अर्थात्-गऊसे ब्राह्मण से मारेहुये तथा पतित प्रेतों
काऊर्ध्व देहिक कर्म सब एकवर्थ उपरांत करै=तो इसनियमके अनुसार एक वर्गके
उपरांतही नारायण वल्लिकरके सर्व कर्मसाधै ॥ ० ॥ अथनारायण वल्लिप्रकारः--
कोईसी एकादशी जो शुक्लपक्ष की हो तिसके रोज, विष्णु और वैवस्वत, यम इन
तीनोंको पद्धति की विधिसे पूजिकर इनके मन्मुख सद्गत घी तिल मिले हुये दस पिंड
विष्णु के हृष से प्रेतको याद करते हुये प्रेतके नाम गोवका उच्चारण करिके आप
दक्षिणा मुख बैठाहुआ दक्षिणा को अग्रभाग से फैले हुये कुशाग्रों पर उक्त पिंडोंको
धरिके गन्धआदिसे पिंडोंको पजिके पिंडप्रवाहणपर्यंत कर्मसाधनकिये पीछे नदीके
प्रवाह में फेंक दें (किंतुपत्नीआदि किसी स्त्रीको ये पिंडन दियेजायें) फिरउसीराति
को विधम संख्यासेपाँच सातआदि विद्वान् कुलवास्तपयुकब्राह्मणोंकोनिर्मग्नितकरके
आप निराहार व्रतीरहैं, दूसरा दिन उदयहोनेमें मध्याह्नमसय विष्णुका आराधन करके
एकीद्विष्ट पद्धतिके विधानसे निर्मग्नित ब्राह्मणोंके चरणाप्रसालनआदि तृप्तिकाप्रश्न
करने पर्यंत कर्म निपटायके फिर (पिंडपितृयज्ञातृतोत्सेखनादि अवनेजनपर्यंत) च-
पके सौनी भूत कर्म करिके ब्रह्मा विष्णु शिव और परिवार सहित यमराज को भी
चारों पिंड जुदे जुदे समर्पण करके फिर नाम गोव सहित प्रेतको स्मरण करके और
विष्णुका नाम उच्चारण करिके पाँचमा पिण्डदेवै-तिस पीछे ब्राह्मणों को आच-
मन करने पर अनेक दक्षिणाग्र्यों से संतुष्ट करके उनमेंसे अति शुभावान एक ब्राह्मण
को अपने प्रेतका स्वरूप समझि स्मरण करते हुये गऊ चरती सोना चाँदी आदि उ-
त्तम द्रव्योंसे अतिशय संतुष्ट करके तिसपीछे पवित्रा धारण किये हाथों से ब्राह्मणों
के द्वारा प्रेतके लिये तिल आदि संयुक्त जलदान तर्पण कराय के कर्तापुरुष अपने

अभिप्रायः—यहाँ इसवचनसे यह भी आज्ञा पाई जाती है कि जब मुर्दाको फूँक नहाय धोयकर लौटें तो बीचमें किसी उत्तम धरती पर बैठ के थोड़ासा विभ्राम करें तहाँ रोतेहुयों को समुझाकर शोकशान्ति करें। इसीलिये मृदुशाह्वल अर्थात् नवीन हरीघास जमी धरती पर बैठना कहा ॥ ७ ॥

(शोकशान्त्युपायः)

मानुष्येकदलीस्तंभनिःसारेसारमार्गणम् । करोति यः स तं मूढोजलबुद्बुदसाग्निभे ८ ॥

पंचधासंभृतः कायो यदि पंचत्वमागतः । कर्मभिः स्वशरीरांस्त्वैतत्तत्कापरिदेवना ९ ॥

गंत्रीयसुमतीनाशमुदभिर्देयतानिच । फेनप्रव्यः कर्पनासंमर्त्यलोको न पात्यति १० ॥

इत्सेन्माश्रुवापवेमुं कप्रतोभुंकेयतोऽवशः । अतो नरोदितव्यंहिक्रियाः कार्याः स्वशक्तितः ११ ॥

अर्थः—रोतेहुयोंको इस भाँति समझावें कि मनुष्यका शरीर जैसा केलेकाखंभ भीतरसे घोंथाहोता किन्तु कुछसार नहीं होता है ऐसे निःसार देहमें सारवस्तुका टूटना जो कोड़े करने लगता है वह बड़ा मरुत है क्योंकि ससस्त संसारही जलफेनके बताशे बुल बुले तुल्यहोता जो सरासावर्मे बिनाश होसक्ता है तिससे संसारका स्वरूप खूब समुझिके रोना न चाहिये चुपके होजाओ ॥ ८ ॥ मनुष्यकी काया पाँच वस्तुओंसे (पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश-इनके संयोगसे) बनी है सो जब अपने पूर्वजन्मकृत कर्माँके वेगसे संयोग जुदाहोकर पंचत्वकी पहुँचगया तो इस दशममें परिदेवना दृशा क्योंकरनी ॥ ९ ॥ मरजाना कोड़े अचंभा नहीं है क्योंकि पाँचोंतत्त्व समेत पृथ्वी भी एक दिन नाशकी पहुँचनेवाली तथा इतने बड़े समुद्रभी नाशमान हैं और देवता जो अमर कहाते या बूढ़े नहीं होते सुने हैं अवश्य किसी रोज न होवे अर्थात् महाप्रलय के समय पर कुछ भी न रहेगा तो यह सत्यलोक जो फेनके समान कहा सो क्योंकर नहीं नाशहोगा तिससे शोकदूर करो ॥ १० ॥ अन्यथा जो नहीं चुपके होते हैं तो भी बड़ा दोष है कि रोने से कफ आँश आदि जो बान्धव लोरा छोड़ते हैं सो सब प्रेत की बियशहोकर खानापरता है इससे निपटरोनाही न चाहिये किंतु अपनी शक्तिके अनुरूप उसके क्रियाकर्मकरने चाहिये तिनमें तत्परहोना है उठि खड़े होइ घरको चली ॥ ११ ॥

८-११ अधिकोक्तिः—केवलमानुष्यशब्दकहा तिससे जरापुज अण्डज आदि सभी जीव समुझने क्योंकि मनुष्य प्रधान होनेसे सबका उपलक्षणा है उसके द्वारा सारे संसारही का स्थापत्व प्रकट किया गया इसीहेतु आगे दशममें श्र्लोकमें मर्त्यलोक शब्द कहा है ॥ ८ ॥ पूर्व जन्मांतर में जो पुराय अथवा पाप कर्म संघट्ट किये जाते हैं वही कर्म दूसरे जन्म का बीज कहाते हैं क्योंकि उन्हींके भोगने को यह जन्म लेनापरता है

जो पृथ्वी आदि पांच पदार्थों से बना तिसके पूर्वकर्मोंका भोग पूरा होजानेसे यदि शरीर छूटिगया तो यह आश्चर्य नहीं है क्योंकि पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व शरीर से भिन्न होकर निज निज महा तत्त्वमें मिलजातेहैं ६॥ १० ॥ ११ ॥ शोक शांत किये पीछे जैसे घरको जाना चाहिये सो नीचे वर्णन करेंगे ॥

(अथगृहगमनप्रकारः)

इतिसंभृत्यगच्छेयुर्यहंवाल्पुरासराः । विदश्यनिम्बपत्ताणिनियताहारिवेश्मनः १२ ॥

याचम्याग्न्यादितलिलंगोमपंगौरत्तपान् । प्रविशेषु तमालम्यकृत्वाऽश्मनिपदंशनैः १३ ॥

अर्थः—ऊपर कही रीतिके इतिहासों को सुनिके शाइल भूमिसे उठिकर छोटे बालकोंको आगेलेकर घरकोजाय तहाँ घरकेद्वार आगेसब इकट्ठे एकसनहोकर खड़े हों औरनीबके पत्ते दाँतोसे काटि खुतर आचमन करें ॥ १२ ॥ आचमन किये पीछे अग्नि आवि तथा जल गोबर पीलीसरसों इनको छुडकर और पत्थरकी सिलापर पेरवरिके धीरे धीरे सावधानीसे घरमें घुसैं ॥ १३ ॥

१२।१३ अधिकोक्तिः—अग्नि आदि जो कड़ा सो उस आदिशब्द से शांखोक्त अन्यवस्तुभी स्पर्श करनी कहीहैं=यथाहंशांख=दूर्वाप्रवालमग्निवृक्षमौषा=अर्थात्—पूर्वाक्तचौजें या दूब सुगा अग्नि वृक्षमइनको छुडकर सिलापरपेरवरि घरमेंघुसैं अर्थात् जहाँ जिसके जैसीरीति प्रवृत्तहो उन्ही चौजोंको विकल्पसे ससक्तना ॥ १२ । १३ ॥

(उक्तनियमस्यातिदेशः)

प्रवेक्षानाविकंकर्मप्रेततत्स्पर्शानामपि । इच्छतातत्क्षणाच्छुद्धिः परेषां भ्रान्तसंपन्नात् १४ ॥

अन्तरार्थः—प्रवेशआदि कर्म प्रेतसंस्पर्शियों को भी तत्क्षणा शुद्धि चाहनेवालों परजनोंको ज्ञान प्राणायामसे शुद्धि ॥ १४ ॥

अभिप्रायः—नीब के पत्ते चाबना आदि घरमें घुसना पर्यंतजो कर्म ऊपर निज सिद्धों के निमित्त करना कहा सो गैरोंको भी करना चाहिये जो साथ गयेहों और प्रेतका स्पर्श कियाहो अर्थात् प्रेतके आभयरा उतारना आदि छुनेका कोइसा पुराय अर्थ कियाहो ऐसे अर्थापंड गैर जनों कोभी नीबके पत्ते खुटकना आदि कर्तव्य है परंच उनकी अनेक दिन सुतक मानना आवश्यक नहींहै-इसी लिये दूसरेअध्याय में यह कहा है कि परजन जो तत्काल शुद्धहोजाना इच्छा करें तिनका अपने घर जाके स्नान और संयम कहिये प्राणायाम ये दोनों कर्म करनेसे शुद्धि होजाती है ॥ यद्यपि नीबके पत्ते आदि इस क्रमसे घरमें जाना पर्यंत कहाथा और इस मूलश्लो-

क में आदि शब्द प्रवेश के साथ जोड़ा गया तो भी यह विपरीत न समझना किंतु का-
व्य की मर्यादा से प्रतिलोम अभिप्राय प्रकट किया है कि घर में घुसने से लेकर इधर
नीव चानेतक जो कुछ करना कहा गया तिसका अतिदेश और जनों पर भी समझना
यह लेख सांगलिक है ॥ १४ ॥

१४ अधिकोक्ति-तत्काल शुद्धि होजानेका प्रमाण वाक्य यहाँ लिखते हैं = यथाह
पाराशरः=अनाथं ब्राह्मणं प्रेत्येव हति द्विजातयः परंपदेयजफलमनुपूर्व लभन्ति । न ते या
मशुभं किंचित्पापं वा शुभकर्मणां जलावगाहनात्त्याग्यः शौचं विधीयते = अर्थात्—
किसी अनाथको या ब्राह्मण प्रेतको जेकोई द्विजाती लोग कंवे धरते हैं वे प्रत्येक पा
धरने में यज्ञफल पाते हैं उनको ऐसे शुभकर्मों से न कुछ अशुभ है न कोई सापाप है किन्तु
उनको जल में गोता लगाने से ही तत्काल शुद्धि होजाती है ॥ स्नेह आदि से पराया मुर्दा
लेजाने मर्त्ये मनुने विशेषता प्रकट करी है = यथा = अर्सापिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निहंत्य वंधुवध
विशुद्ध्यति शिराशे रामा मरुतांश्च चान्दवान् यद्यन्नमत्तिते या तु दशाहेनैव शुद्ध्यति अतदन्न
जमद्वैवनचेतस्मिदगृहे वसेत् = अर्थात्—इन वचनों का यह तात्पर्य है कि जो कोई ब्राह्मण
अपने अर्सापिण्ड द्विजाती गैरके प्रेतको प्रीतिभावसे बंधुके ही तुल्य कांधे धरे या सातावे
ठीक सपिण्डों को ही कांधे धरे और उसके सूतक में अन्न भोजन करे और उसी
घर निवास करे तिसको भी घर मनुष्यों की तरह दशदिनका सूतक होकर शुद्धि हो
ती है या जो मुर्दा लेजाने के सिवाय केवल निवास उसके घर करे किन्तु भोजन से
साथी न हो तिसको तीन राविका सूतक होता है पर जो कोई केवल मुर्दा कांधे धरे
किंतु न उसके घर वसे न अन्न भोजन करे उसको एक ही दिनका सूतक होता है सो
यह नियम केवल अपने अपने वर्णमात्र में समझना—किंतु—अन्य वर्णों का मुर्दा
कांधे धरने से उसी वर्ण के समान सूतक इसको भी लगता है = यथाह गौतमः = अवरप्रचेद
राः पूर्ववर्णा मुपस्पृशेत् पूर्वो वाऽवरं तत्र च छवोक्तमाशौचं (विप्रस्य शुद्धिर्न हिरा मास
माशौचं शूद्रस्य तु विप्रान् हिरा दशरात्रमित्येवं शववदाशौचं कार्यमित्यर्थः = अर्थात्—पि-
छलावर्णों जो पहले वर्णों को उपस्पर्श करे या पहिला वर्ण पिछले को तदो उस मरे हुये
के वर्णों को कहा सूतक इसे करना चाहिये (यहां पर उपस्पर्श का अर्थ मुर्दा को नासमझना)
यह दृष्टांत है कि शूद्र जो ब्राह्मण का मुर्दा लेजाय तो दशदिन सूतकी वने या ब्रा-
ह्मण जो शूद्र का मुर्दा तोवे वह एक महीना तक सूतक माने इसी प्रकार और वर्णों भी
समुचित हैं—इसका विधेय निर्णय आगे सबहद्यों अविकोक्तिके अंत में देखना फिर
छवीसवीं अधिकोक्ति भी देखो ॥ १४ ॥

(ब्रह्मचारिणंप्रत्याह)

आचार्यपित्र्युपाध्यायाग्निर्वत्यापिब्रतीव्रती । सकटान्नं चनाग्नीपात्रचतैः सह संवसेत् १५ ॥

अर्थः—आचार्य (जिसके लक्षणा आचारअध्याय में कहि चुके) पिता माता-उपाध्याय (जिसके लक्षणा आचार में) इन तीनोंको निहृत्य अपि कौंधेधरिके भी व्रती जो ब्रह्मचारी है सो व्रती बनारहताहै अर्थात् उसका व्रत नहीं भंग होताहै परंतु सकटान्न जो कड़े का सूतकी अन्नहो तिसको नहीं खाय न सूतकी सपिण्डी के साथ बसे क्योंकि इन बातोंसे ब्रह्मचर्य भंग होताहै ॥ १५ ॥

१५ अधिकोक्तिः—ऊर्ध्वोक्त नियमसे यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि आचार्य पिता माता उपाध्याय इनचारके उपराल किसी सपिण्ड भाई आदिकी रथीमें हाथ लगाने से ब्रह्मचारीका व्रत भंग होताहै इसीलिये वशिष्ठका अग्रोक्त वचन है—यथा=यथा-ब्रह्म-चारिणाः श्वकर्मिणो ब्रताच्चित्तिरन्यथा मातापितोरिति=अर्थात्—मुर्देका काम करने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य व्रतसे निवृत्ति होजाती है व्रत नहीं रहता परंतु मात पितासे अन्यथा यह नियम है ॥ १५ ॥

(आग्नीचिनां नित्यनियमाः कर्माधिकारिणश्च)

क्रीतलव्वाशनभूमौ त्वपेयुस्तेष्टपक्षपक्ष् । पिंडयज्ञावृतावेधं प्रेतापात्रं दिनप्रथम् १६ ॥

अन्तरार्थः—वे सब धरतीमें जुदे जुदे सोवें क्रीतलव्वाशन होकर प्रेतकोलिये तो ॥ दिनतक पिण्डयज्ञकी आरुद्रसे अन्नदेय है ॥ १६ ॥

अभिप्रायः—क्रीतनाम खरीदा हुआ गेज गेज या लव्धनाम जो बिना माँगे अन्नादिक मिलजाय वही सब सूतकी भोजनकरें और वेही सब सपिण्ड लोग धरती पर जुदेजुदे सोवें और तीनदिन प्रेतको भी अन्न देतेरहें पिण्डयज्ञकी आरुद्र मर्यादा से अर्थात् पिण्डपितृ यज्ञकी प्रक्रिया जैसी प्रसिद्ध है कि अपसव्य दासरा मुख होकर इत्यादि रीतोंसे—परंतु इसवचन में तोनिहीं पिण्डदेने सिद्धहुये तिससे अधिकोक्ति में देखो ॥ १६ ॥

१६ अधिकोक्तिः—क्रीत और अयाचित्तत्त्वभोजनका नियम कहनेसे यह भाव सिद्ध हुआ कि जो खेसा न मिलै तो निराहार भी रहजाय पर धर्म धरे हुयेको न छुवें छेड़ें—इसी लिये वशिष्ठका अग्रोक्त वचन है—यथा=यथान्त्रजित्वा अन्नः प्रस्तरं ग्रहमन प्रनंत आसीत् वकी तो तप्यन्नेन वाचतेरत्=अर्थात्—दाह दिये पीछे धरोंको जायकार नीचे धरती में प्रस्तर कृशासन चराई आदि ढ़गामय बिछावने पर सोवें किंतु खात आदि

ऊचेपर नहीं=इसमें मनुने कुछ और विशेषता कही है=यथा=अक्षर लवणाच्चास्य
 निर्मज्जेयुप्रचतेग्रहम् सांसाशनचंचाशनीयुःशयीरंश्चपृथक्सितो=अर्थात्—ऐसा अन्न
 भोजनकरे जो खार या खारी लवणा से विहीन हो और तीनदिन गोता लगाके स्नान
 करे और सांभका भोजन न करे और सब जुदे जुदे धरतीपर सोवे=गौतम ने भी वि-
 शेष कहा है=यथा=अवःशय्याशयिनोव्रह्मचारिणाःशवकर्मिणाः=अर्थात्—सुईका
 कर्म करनेवाले खाते नीचेसोवें तथा ब्रह्मचर्यसे रहें । प्रेतको अन्नदेने मध्ये अगिता
 वचन विशेष है=यथाहमरीचिः= प्रेतपिराडंयहर्दिद्याहर्ममंत्रविवर्जितम् प्रागुदीच्यांच
 लकृत्वास्नातःप्रयत्मानसः=अर्थात्—घरसे बाहर उबोची दिशा में पहले स्नान करके
 मन सावधान कियेहुये खीर वृत्ताइके प्रेतको पिराडदेवैकुशा और मंत्रसे विवर्जित=
 कुशा और मंत्र बिना जो देनाकहा सो उस प्रेतको समझना जिसका जनेऊ न हुआ
 हो यह भेद अगिले प्रचेता के वचन से जाना जायगा=यथा=असंस्कृतानांभूमौपिंड
 दद्यात्संस्कृतानांकुशेषु=अर्थात्—संस्कार से रहित प्रेतोंको धरतीपर पिराड देवै सं-
 स्कार होचुकरनेवालों को कुशा बिछाकरदेवै ॥ ० ॥ कर्मकरनेवालीका विशेष नियम
 जो गृह्य परिशिष्ट में लिखा सो अब कहतेहैं=यथा=असगोत्रःसगोत्रोवायदिस्रीयदिव
 पुमाव प्रथमेहानियोदद्यात्सदशाहंसमापयेत्=अर्थात्—चाहे सगोत्री वा असगोत्री हो
 प्रथमदिन जोकोई पिंडदेवै वही दशदिनका कर्म समाप्तकरे ॥ पिंडोंका द्रव्य नियम
 भोगुनःपुच्छ ऋयिने कहाहै=यथा=शालिनासक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथनिर्बपेत् । प्रथ
 मेऽहनिग्रहव्यंतदेवस्याहशाहिकम् ॥ तृणानिप्रसेकंपृष्ठपंच धूपदीपंतथैवच=अर्थात्—
 भातसे या सत्तुओं से अथवा शाकैःसेही प्रेत के निमित्त पिंडदेवै परंतु जिस द्रव्यसे
 पहले भोज दियाजाय वही द्रव्य दश दिन तक होय और सोन साचे हुये जल प्रसेक
 फूल धूप दीप भी देवै ॥ धरती या पत्थर पर देनेका नियम विकल्प से समझना=य-
 थाह शैवः=भूमौमाल्यपिंडपानीयमुपलेवाद्युः=अर्थात्—फलमाला पिराड पानी यह
 सब धरती या पत्थर पर देवै ॥ यहां पर दद्युः सबको अर्थात् देवै इस बहुवचन से यह
 शंका न करनी चाहिये कि जैसे जलांजली देनी सबको कही थी उसी प्रकार पिंड
 आदि भी सबकोई दे सकते हैं क्योंकि यह काम केवल पुत्रहीको या किसी एकदाह
 देनेवाले को कर्तव्य है अर्थात् पुत्र न होनेमें जो कोई अतिशय निकटका संपिंडहो सो
 करसकता है उसके भी न होने में प्रेत की माता का संपिंड आदि जो निकट समुक्ता
 जाताहो वही करे=इसमें जो आदि शब्द कहा तिसके अधिकारी अगले गौतम के व-
 चन में देखो=यथाह गौतम=पुत्रामावेसंपिंडा मातृसपिराडाः शिष्यादद्युस्तदभावे

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

२५

ऋत्विगाचार्यो=अर्थात्—पुत्रके अभावमें प्रेतका सर्पिंड पुन उसके भी अभावमें प्रेत की माताके सर्पिंड पुन उनके भी अभाव में प्रेत के शिष्य शागिर्द देवें उनके भी न होनेमें ऋत्विक् वा आचार्य पिंडदेवें ॥ परंतु जहां पुत्र अनेकहों तहां जेठा पुत्र कर्म करे सबनहीं=तथाह मरोचि=सर्वैरनुमत्तिकात्वाज्येयैर्नैवतुयत्कृतम् । द्रव्येराचाविभक्तोत्सर्वैरेवकृतंभवेत् = अर्थात्—जुदे जुदे भी सब पुत्रोंसे अनुमति और द्रव्यकी सहाय लेकर जो कर्म जेठे पुत्रने किया हो यद्वा अनुमति बिना भी अविर्भाक्त धनसे जेठे ने कियाहो सो सबका किया कहाता है ॥ ० ॥ वराभिदसे पिंडोंकी संख्यामें भी नियम भेद कहाहै = यथाह ब्रियाः = ब्राह्मरास्यदर्शपिंडाः सत्रियस्य द्वादशैवेत्येव माशौच दिवससंख्यया = अर्थात्—ब्राह्मरा के दर्शपिंड और सत्रीके बारह पिराड इसी प्रकार जिस वराका जितने दिन सूतकहो उसी संख्यासे पिराडहों अर्थात् जहांतक शुद्धहोने का दिवस आवे तबतक जलदान और रक्त पिराड रोज रोज प्रेतको दियाजाय = यही प्रमारा अन्यस्मृतिमें कहाहै = यथा = नवभिर्दिवसेदद्यान्नवपिराडान्समाहितः । दश संपिराडमुत्सृज्यरात्रिशेषे शुचिर्भवेत् = अर्थात्—यहां केवल ब्राह्मरा वरासे उदाहरण दर्शाते हैं इसी तरह अन्य वराओंके शुद्ध होने योग्य अवधि समुझी जायगी कि नव दिनोंसे नौपिराड सावधानी सहित देतारहें फिर दशमा पिराड देकर केवल रात्रि शेष रहिते दिन दिनमें शुद्ध होजावें = शुद्ध होजाना यह तात्पर्यहै कि अगले दिन ब्राह्मरा निमंत्रणार्थ जो आह कियाजायगा उसके योग्य यह शुद्धि समुझी जायगी ॥ योगीश्वरके मूलश्लोक में केवल तीनदिन तीन पिराड देने कहेगये और यहां अधिकोक्तिमें अन्यस्मृतियों से दश बारह आदि पिराड देने सिद्ध हुये तौ इन छोटे बड़े दो भांति के नियमोंकी व्यवस्था उसी तरह कल्पित करलेनी चाहिये कि जैसी तीसरी अधिकोक्ति के अंतमें जलदान मध्ये लिखिचुके अर्थात् जहां प्रेतका उपकार अधिक चाहाजाय तहां अधिक पिराडोंका नियम धंगीकार करना या जहां अधिक कर्म कनेका अवसर आदि न मिलने से कठिनाई समुझी जाय तहां तीनपिराडोंके नियमसे निर्वाह करना यह सिद्धांतहै ॥ ० ॥ तथापि जहां यह भांति खड़ीहोय कि यद्यपि शुद्धकर्म थोड़े दिनमें कर सकनेका अवकाशहै परंतु पिराड पूरम्पूर देनाचाहतेहैं तहां शातात्पस्मृति का वचन धंगीकार करना = यथाह शातात्पः = आशौचस्यतद्वासेपि पिराडान्दद्यादशैवतु = अर्थात्—आशौच नाम सूतक चाहें थोड़े दिन माना जाय परंच पिराड पूरे दसदेने चाहिये ॥ इसी लिये योगीश्वरके वचनानुसार तीनदिन सूतक मान ने वालोंका निर्वाह पारस्करने दर्शाया है = यथा = प्रथमैदिवसेदद्यान्नवपिराडाः

साहितैः । द्वितीये चतुरोदयादस्थिसंचयनंतथा ॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादिसालये
तथा = अर्थात्—जो तीनिही दिन सूतक मानै तो सावधानी से पहिले दिवस तीन
पिराड देने चाहिये दूसरे दिन चारपिराड देवै पुनि उसी दिन अस्थि संचय कर्म करे
फिर तीसरे दिवस तीनपिराड देकर पं.के कपड़े धोकर शुद्ध होजावै तो यहभी दसदिन
के समान कर्म दहरता है = इस अधिकोक्तिमें वर्णन करो व्यवस्था सभी वर्णों की
तुल्यात्मक साधारण है ॥ १६ ॥

(अथ सिक्वजल वंधनादि विशेषं नित्यकर्मादि विवेकश्च)

जलमेकाहमाकारेस्याप्यंक्षीरंचमृणमये । + वेतानौपासनाः कार्याः क्रियाश्चभुतिनोदनात् ५७ ॥

अर्थः—आकाराशमें एकदिन जलदूध भी मृत्पात्रोंमें जुदा जुदा स्थापन करना चा-
हिये किंतु छाँकेमें धरि के वृषादि पर लटकाना चाहिये । वितान संबंधी उपासना
क्रियायें भी करनी चाहिये शु. तिकी आज्ञासे अर्थात् वितान अग्निर्नयों के विस्तार
का नाम है जो अग्निहोषिणोंके वेद विहित मार्गसे स्थापन होती है किं जिनमें सांभ
सबरे दोनों समय नित्य होम होता रहता है उसकी क्रियायें वेतानौपासना कहाती है
तिसका त्याग सूतकमें भी नहीं होता क्योंकि शु. ति वेदकी आज्ञा यही है = इसका
विशेष वयोरा अधिकोक्ति में देखो ॥ १७ ॥

१७ अधिकोक्तिः—जल और दूध जुदे पात्रोंमें एकदिन जो कहा तिसका कोई
दिवस ठीक निप्रचय नहीं किया तिससे पहिला दिवस पायागया कि दाहबिये पीछे
उसी दिन सायंकालको लटकावै = पारस्कारने इस कर्म का निमित्त भी प्रकाश किया
है = यथा = प्रेतावस्त्राहीत्युदकस्यायं पिवचेदमित्यसीर = अर्थात्—अये प्रेत इसमें
जान करु इसलिये जल स्थापन हो. यह दुग्ध पान करी इसलिये दूधका स्थापन ॥० ॥
फूल बीनना किंतु अस्थिसंचय कर्म करना यद्यपि १६ की अधिकोक्तिमें दूसरे दिन
काहिले के हैं तथापि इसके कई भेद हैं सो अगिले संवर्तके वचनमें देखो = यथाह सं-
वर्तः = प्रथमेऽह्नद्वितीयेया सप्तमेनवमेतथा । अस्थिसंचयनं कार्यं दिने तद्गोवजैः सह =
अर्थात्—पहिले दिवस या तीसरे या सातवें या नववें दिन अस्थिसंचय करना सो दिन
में करना और प्रेतके शोशियोंकी साध लेकर करना = इसके सिवाय विरली स्मृति
में दूसरे दिन काने कहे तथा वैष्णवशास्त्र में चौथे दिनभी करने कहे और गंगा जल
में छोड़ने कहे हैं—इन सब कहे दिवसोंमें जो जिसके घरकी परिपाटीसे प्रसिद्ध हो सो
उसी दिन करे यह तात्पर्य है ॥ अंगिराने इस कर्मके साथ देवयाग भी करना कहा है =

=यथा = अस्थिसंचयनेयागो देवानांपरिकीर्तितः । प्रेतीभूतंतमुद्दिश्य यः शुचिर्न करोति चेत् ॥ देवतानांतु यजनंतं शपंत्य धेवताः । शमशानवासिनो देवाः शवानांपस्कीर्तिताः = अर्थात्—अस्थि संचय कर्मके दिवस देवताओंका याग अर्थात् यज्ञ पूजन करना कहा है उसी प्रेतके उद्देश करके जो कोई शुद्ध चित्त होकर देवताओंका यजन इसमें नहीं करता उसको अवश्यही देवता श्राप देती हैं (देवता इसमें गणेशादि वा इन्द्रादि नहीं समुभने किन्तु) शमशानभूमि को रहनेवाले मुर्दाओं की देवता कहातीं जो पहिले वहांपर फूंक गये हों—इसका ग्रही तात्पर्य है कि फूल बीनते समय पहिले शमशानके देवता और अपने मुख्य प्रेतके नामसे धूप दीप पुष्प साला दूध और पिंड रूप अक्षसे पूजे ॥ ० ॥ अब दशवे दिनका शुद्धकर्म मुंडन आदि की विधि कहते हैं = यथाह देवलः = दशमेऽर्हनि संप्राप्ते स्नानं ग्रामार्हार्ह भवेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशप्रमथ्युत्तरानि च = अर्थात्—दशवां दिन प्राप्त होने से बस्ती से बाहर जाके शुद्ध स्नान किया जाय तहां अशुद्ध वस्त्र त्यागि दिये जायें और बाल बाढी मूछ नख भी त्यागि दिये जायें ॥ यह सामान्य भावसे दशवां दिन कहा सो उन सभी दिवसों का उदाहरण समुभना जो जिस वराके नियमसे अविक अवधिमें या किसीके परम्परा से या किसी आवश्यकता से थोड़ी अवधि में करने का दिन ठहराया जाय = सो यह विकल्प अगले स्मृत्यंतर वचन से स्पष्ट होता है = यथा = द्वितीयेऽर्हनि कर्तव्यं क्षुरकर्म प्रयत्नतः । तृतीयेऽपंचमेवापि सप्तमे वा प्रदानतः = अर्थात्—यहां प्रदान शब्दसे आद्यप्रदान जो एकादशादिक प्रसिद्ध है तिसरे भीतर भीतर ये सब दिवस हो सकते हैं कि या तो दूसरे दिनही क्षौरकर्मको यत्नसे करें या तीसरे या पांचवें या सातवें दिन जहां जैसा संभव हो ॥ ० ॥ अब उसका निराय कर्तव्य है कि मुंडनकीन करावें तिसके लिये यह आपस्तम्ब का वचन देखो—यथा= अनुभाविनांच परिव्रापनं = अर्थात्—(श्रावदुःखमनुभवतीत्यनुभाविनः संपिंडाः) जो मुर्देका दुःख अतिशय मानते हैं वेही संपिण्ड अनुभावी कहाते हैं तिन सबका मुंडन होना चाहिये किन्तु मुर्दासे छोटी अवस्था वालोंका पूरा मुंडन कियाजाय यह भी तात्पर्य इसी वचन के अर्थसे सिद्ध होता है कि (अनुपशचाद्भवतीत्यनुभाविनः) जो मृतक से पीछे पैदा हुये हों वे अनुभावी कहाते हैं अर्थात् उससे छोटे हों तिनका परिव्रापन किन्तु पूरा मुण्डन=विरले आचार्योंका यह मत है कि अनुभावी शब्दसे पुनसम्भूत कर्मांकि पूरे मुंडन या सर्वभद्रकी जल्दत उन्हींको होती है (यहां परिव्रापन या पूरा मुंडन या सर्वभद्र कहने से दाढी मूछतक मुंडाना सिद्ध होता है) सर्वभद्र मुंडन अर्थात् सातकर्मों

में होता है—यथाग्रंथांतरवचनं—गंगार्याभास्करक्षेत्रेमातापित्रोर्गुरुमृतौ । आधानकाले सोमेचवपनंसप्तसंस्तृतम्—अर्थात्—गंगातटपर-भास्करक्षेत्र में-माता और पिता केसरने-गुरु के सरने में-आधान काल में अर्थात् अग्नि के स्थापन समय जो अग्निहो-वियों का विधान है-सोमतीर्थ में अर्थात् सोमनामतीर्थ या सोमयागरूपी तीर्थमें भी इन सात स्थानोंपर सर्वभद्ररूपी वपनहोना कहा है ॥ यहां तक आधेमूल प्रलोकपर अधिकोक्ति पूरीहुई उसीका यह चिह्न है ॥ । अब उत्तरार्धकी अधिकोक्ति लिखते हैं क्योंकि पूर्वाद्ध से जो सूतक में अशुचित्व कहा तिसते सभीकर्म श्रौत और स्मार्तों का करना तबतक नियिद्ध समझागया परन्तु जो बिरले कर्म सूतक में भी कियेजाते हैं तिनकी आज्ञा इसमें दर्शावैगे (वैतानोपासनाः कार्यः क्रियाश्च श्रुतिनोदनात्) विधान अग्नियोंका विस्तार कर्म कहाता है तिसमें जो क्रिया हों सो वैताना कहाती हैं-दुष्टांत जैसे वैताग्निनाम अग्निसे जो क्रिया वेदोक्त होतीहों या अग्निहोत्रकी अग्नि में होतीहों या अभावस पूर्णमासी आदिके वेदोक्त यज्ञों में अग्निसाध्य क्रिया होती हों तिनकी उपासना साधन करने के हेतु से (वैतानोपासनारूपी यह नाम दहरा) ऐसी सब क्रियायें सूतक में करनी बंदनहीं होती किंतु करना चाहिये क्योंकि श्रुति नोदनात् श्रुतिकी आज्ञा होने से इनको सूतक नहीं लगता= श्रुतिकी आज्ञाके यह अशुक्त उदाहरता हैं = यथा = यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् = तथा = अहरहः स्वा-हाकुर्यात् = अर्थात्—यह श्रुति कहती है कि जबतक जीवें अग्निहोत्र में होमकर-तारहैं = तथा दूसरी यह श्रुतिहै कि = दिनदिनप्रतिस्वाहा करै = तो इस आज्ञा से सूतकमें भी कोई दिन स्वाहासे खाली नहीं रहसकता (आज्ञाभावेकेन चिदाकायाविनाश्रुत्योपासनहोमोऽपि चोद्यते) अर्थात् होम थोरय अन्नके अभाव में किसी एकका-पद आदि द्रव्यसेभी श्रुत्योपासन होम कहाताहै ॥ अब उस बातपर ध्यान देना चाहि-ये कि योगीश्वर के मूलप्रलोक में श्रुतिकी आज्ञावाली क्रियायें करनी कहीं तिसते श्रौतकर्म मात्र सब सूतकमें होंगे किंतु स्मार्तकर्मोंकी दान आदि क्रियाओंका अनुया-न करना नियिद्ध दहरा = इसी बातपर वैशाखपाद का अशुक्त वचन है = यथा = स्मार्तकर्मपरित्यागोराहोऽन्यत्र सूतको । श्रौतकर्मणि तत्कालं ज्ञातः शुद्धिं सवाप्नुयात् = अर्थात्—राहुसे अन्यत्र सूतक में स्मार्त कर्मों का परित्यागहै परंच श्रौत कर्मकरने स-ध्ये तत्कालही ज्ञान करके शुद्धहोजाताहै ॥ ० ॥ सूतक में श्रौतकर्मों का करना कहा सोभी नित्य और नैमित्तिक अभिप्रायसे कहागया है अर्थात् सामान्य सब कर्मोंका नहीं यह ध्वन्यर्थ अगले वचन से संसिद्धहोगा = यथाह्यपैठो नसिः = नित्यानिविनि-

मिताक्षरा त० प्रायश्चित्तकांड ।

२६

वर्तरेवैतानवर्ज्यशालाग्नीचैके = अर्थात्—सूतकर्म नित्यकर्म श्रोतस्मार्त सन्नर्तक
जाय परंच नैस्तिक श्रोत कर्मों में वैतानकर्म नित्य होते हैं जो तीन प्रकार की अग्नि से
साधनहो तिनको छोड़कर यह नियम समुक्तना और एकोंके विचारसे वहकर्मभीकि
जो शालाग्नि में अर्थात् गृह्याग्नि में आवश्यक नित्य होतेहों होते होंगे क्योंकि उ-
नके लिये मृतक नहींहैं = और = जोजो काम्य कर्महैं कि कामना से उत्पन्न किये
जातेहों तिनको सूतक लगताहै इस हेतुसे उनका करना नियिद्धहै = इसी अभिप्रायसे
समुने यह कहाहै कि=प्रत्यहेन्नाग्निषु क्रियाः = अग्निमें जो क्रिया साधन होती हैं
तिनको नहीं रोके- किंतु-जो विना अग्निके पंचमहा यज्ञ आदिकर्म नित्य होते हैं
तिनको निवृत्ति करै=संबर्तने इसका विशेषनिराण कियाहै=यथा = होमंतत्र प्रकुर्वी
तशृण्वान्नेन फलेन वा पंचयज्ञविधानेन तनुज्जयन्मृत्युजन्मनोः=अर्थात्-तहांसूतकर्म अप-
पना नित्य होम जो आवश्यक है सो करै किंतु सूखे अन्नसे करै या फलसे करै (सूखा
अन्न पिसेहुये चावल आदि या सूखेफल मेवा आदिसे) परंतु पंचयज्ञोंका विधान जो
है सो नहींकरै मृत्युसूतक और जन्मसूतक इनदोनोंमें ॥ यद्यपि अग्नि में होनेवालेक-
र्मोंकी आज्ञा ऊपर लिखी गईथी और यहां पंचयज्ञों में वैश्वदेव कर्म जो अग्नि से
होता तिसका नियेध पंचयज्ञों के नियेध से होगया कि अग्निसाध्य होनेपरभी वै-
श्वदेव न करना चाहिये-फिर-इसको जुदे वचन से भी संबर्तने नियिद्ध किया है=य-
था=विप्रोदशाहमासीतवैश्वदेवविर्जितः=अर्थात्-ब्राह्मण दशादिन वैश्वदेव कर्म से
वर्जितहोके रहे ॥ ० ॥ संध्या वंदनभी नित्य कर्महै तिसका निराण कर्तव्यहै (सूत
केकर्मणात्यागसंध्यादीनां विधीयते) अर्थात् सूतक में संध्या आदि कर्मोंका त्याग
रखना कहाहै-यद्यपि इसी वचन से संध्यावंदन का नियेध पाया गया तथापि सूर्य
नारायण को जलांजली देना आदि स्तुत्यकर्म करना पैटीनसिने दश्याहै=यथा=सु-
तकेसावित्र्यार्चाजलिं प्रक्षिप्यप्रदक्षिणां कृत्वासूर्यं प्रायश्चमस्कुर्वीत=अर्थात्—सूत-
कर्म सूर्यको अंजली भी गायत्री पढ़िकर फेंके और प्रदक्षिणाकाके सूर्यका ध्यान
करते हुये नमस्कार करै ॥ ० ॥ यद्यपि योगीश्वर के मूलप्रलोक में (वैतानीपासनाः
कार्याः) यह सामान्य भावसे कहागया किंतु दोइसी विशेषता इसमें नहीं प्रकाश
हुई तथापि जो क्रिया मृतकर्म करनी कहीं सो सब अन्य पुरुष के द्वारा कयानी
चाहिये क्योंकि (अन्यरतानिद्वयः) यह पैटीनसि का वचन है कि ये इतने कर्म
नूतको के सिवाय कोई अन्य पुरुष करै=यही तात्पर्य दृष्टरूपति ने भी कहा है =
यथा = सूतकेमृतकेदेवअशक्तौग्राहभोजने प्रवासादिनिमित्त्युदावपेक्षतुहापथेय॥

अर्थात्—जननसूतक और भूतक सूतक और रोग आदिसे अशक्ति होनेमें औरग्राह
 को रोज ब्रह्मभोज के अनवकाश में इसी प्रकार कहीं विदेशको जाने आदि निमित्तों
 में और को हाथसे होम करावै परकर्मकी हानि न करे ॥ ० ॥ बिस्ले स्मार्त कर्म भी
 सूतकमें करने कहे हैं = यथाहजातुकार्यः = सूतकेतुमुत्पन्नेस्मार्तकर्मकथंभवेत्
 पिंडयज्ञांचरुहोममसगोत्रेराकारयेत्—अर्थात्—सूतके उत्पन्न होने में यदि कोई कर्म
 ऐसीही आवश्यक आनिपरै जो स्मार्तहो किंतु स्मृतियों की आज्ञा के अनुसार परम
 धर्म गिना जाताहो तो वह स्मार्त कर्म कैसे होवै (इस प्रश्नका यह उत्तर है कि)
 पिंडयज्ञ नाम ग्राह जो आग्नि आदि महीनामें आवश्यक हैं तथा चरुहोम अर्थात्
 हव्यान्न होम जिसका बड़ा उपाय और महत् भी पहिले से निश्चय होचुका था था
 कोईसा नियमात्मक नित्य होम जो निरंतर होता रहताथा बीचही में सूतक होगया
 इसी प्रकार कोई बड़ा यज्ञ नागप्रतिष्ठा आदि जो पहिले से प्रारंभ था सो सब उसी
 सूतक में असगोत्री पुरुषके द्वारा करावै किंतु न आपकरै न अपने सगोत्रीसे करावै =
 अब = शेषरहा यह संदेह कि गौके हाथ से किये कर्म का फलभागी कौन होगा
 इसके मध्ये सदा शिवजी का यह वचनहै = यथा = देवैपित्र्ये च वारिण्ये राजद्वारे
 विशेषतः यद्विदध्यात्प्रतिनिधितः तन्निर्यतुः कतिभवेत्—अर्थात्—विशेषकर देवकर्म जप
 होम यज्ञ आदि ब्राह्मण वरणीसे और पितर कर्म श्राद्ध गयाश्राद्ध आदि जो आचार्य
 वा पुरोहित से कराया जाय और वारिण्य व्यापार कर्मजो गुमाश्रतों वा मुनीमोंके
 द्वारा किया जाय तथा राजद्वार में जो मुख्तार वकीलोंके द्वारा काम होते हैं इनसभी
 में जो कुछ काम कोई प्रतिनिधि करै सो नियंता स्वामी का करना गिनाजाता किंतु
 भले बुरे फलका भागी वही मालिक होता है जिसने किसीको मुख्तार बनायाही ॥
 यहां सूतक के प्रसंग में यद्यपि सांगोपांग विद्वान तथा अपने धर्मसे कर्म करने का
 अधिकार सूतकी जनकी नहीं ठहिरा तथापि अपना द्रव्य लगाकर प्रतिनिधि के
 द्वारा प्रधान कर्मका करना निश्चितरहा क्योंकि द्रव्य अपनाही अपना होताहै वह
 औरके उत्पादन करनेसेभी अपना नहीं ठहिरता—इन्होंने कारणों से यह वचन पहिले
 कहाथा कि (श्रौतकर्मसिा तत्कालं आतः शुद्धिमवाप्नुयात्) = और जो यह वचन है
 कि = दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते—अर्थात्—सूतकमें दानदेना और प्रतिग्रह
 लेना और होमकरना और स्वाध्याय नाम अपना पाठ पढ़ना आदि यहसब निवर्तित
 होजाता है—इसमें जो होमका रुक्मिजाना कहा सो कामना संबंधी काम्यहोमके अ-
 भिप्राय से वा वैद्यदेव रूपी होम के अभिप्राय से समझना जिसका नियेध पहिले

इसी अधिकोक्ति में हो चुका है ॥ ० ॥ अस गोत्रीके सूतक में अन्न भोजन का नियेध है=यथाहयसः=उभयवदशाहनिष्ठ तस्यान्नं भुज्यते सूतकेतुकलस्यान्नमदोयं सगुरव्रवीत् त=अर्थात्-जिसके सूतकहो उसके कृतमात्र का अन्न दशदिन नहीं खाया जाता उभयव नाम जनन सरा दोनों सूतक में (यहाँ दशदिन के उपलसरा से उतने दिन समझने जो जिसवर्णाके सूतक में नियतहों) परंतु अपने सगोत्री कलका अन्न अदो यिलहे सूतक में भोजन करना चाहिये यह मनुका संमत यमने प्रकट किया ॥ ० ॥ बिनाजाने या जान बूझ भोजन करने में किसको दोष होता है यह भेद यद्विंशत् के मतसे दर्शाते हैं = यथा = उभाभ्यामपरिज्ञातेसूतकं नैव दोषकृतं शक्येनापि परिज्ञातेभोक्तुर्दोषमुपायहेत् = अर्थात्-विदेशमें होने आदि कारणां से दोनोंको सूतक नामालूमहो तो अन्नका दोष देनेवाले या खानेवाले किसीको नहीं होता पर जो दाता या भोक्ता दोमें किसी एकहूको सूतक मालूम हो तो केवल खानेवालेको दोष लगता है यह जनन सरा दोनों सूतक में समझना ॥ ० ॥ विवाह आदि उत्सवों में जो अन्न पक्वान्न सूतकसे पहिले सिद्धहो चुकाहो और सूतक उसी घरमें नहो किंतु गृहांतरमें पक्वान्न सिद्धहुआहो तो वह अन्न ब्राह्मण आदि भोजन करसकते हैं=यथाह एहस्पतिः=विवाहोत्सवयज्ञेयुत्वंतरामृतसूतके पूर्वसंकल्पितार्थेयुनदोषःपरिकीर्तितः = अर्थात्-विवाह या और किसी बड़े उत्सव या यज्ञोंमें उसघरके अंतरसे जनन यासररा का सूतक उत्पन्न होय तो पहिले संकल्पित या सिद्ध किये पदार्थों में सूतक दोष नहीं लगता = इसी वार्तापर यद्विंशन्मत में औरभी कुछ विशेषता कहीगई है = यथा = विवाहोत्सवयज्ञेयुत्वंतरामृतसूतके परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः भुज्जानेयुतुविप्रेयुत्वंतरामृतसूतके अन्येयोहोदकाचांताः सर्वेते शुचयः स्मृताः = अर्थात्-विवाह उत्सव यज्ञों में गृहांतर से सूतक उत्पन्न होने में दूसरे घरमें बनाधरा अन्न असगोत्री परजनों के हाथ से दिलायाजाय तो अच्छे द्विजोत्तम भोजन करें दोष नहीं है इसी प्रकार सूतकी घरसे जुदे घरमें जिमाये हुये ब्राह्मण असगोत्री के घरके जलसे आचमन कराये जाय तोनेसब पवित्रहै उनको कोई दोष या प्रायश्चित्त नहीं लगता ॥ ० ॥ अब यह निर्णय करना चाहिये कि सूतकी घरमें किन पदार्थोंको सूतक नहीं लगता = तथाह मरीचिः=लवणमधु मांसंच पुण्यमलफलेयुच । शाकका यत्ततोष्पसुर्वाधिसर्पिःपयःसुच । तिलौषधाजिनेचैवपक्षापकोत्तयग्रहः परायेयुचैवमर्बे युनाशौचमृतसूतके=अर्थात्-नमक और मनुष्यद्वसे मद्य सहित मोठारस पुण्यपरस आदि चीजें समझनी और मांस प्रसिद्धहै, रवं फूल, मूल, फल, शाक, लकड़ी, तरा भूसा

आदि और जल जो सूतकी घरमें कूपजराड तलाव आदिमें हों और दही घी दूध तिल दवाई मृगचर्म पक्षेअन्न जिनका भेद नीचे लिखेंगे कक्षेअन्न तंदुल आदि इन सबमें दोय नहीं है पर स्वयंग्रह से अर्थात् जो दस्त सूतकी ने न छुई हो मुखसे वतादी लेनेवालेने आपही उढाली सो स्वयंग्रह कहाताहै परंच पराय वस्तु जो बेचने खरीदनेसे व्यापार से रहितो हों बाजार से दिलाई जाय इन सब द्रव्यों को सूतक नहीं लगता तिससे इनका देनालेना नियत नहीं समझा—इनमें पक्षेअन्न पक्वान्न जो कहे गये या कक्षेअन्न तंदुल आदि सो यह सब प्रवृत्त सूतकी का विषय निश्चित हुआहै कि यदि सूतकी बहुतसा बौटने नर्ताने पर उद्यत हुआ हो और अपना हाथ नहीं लगाया हो इसी लिये स्वयंग्रह भी ऊपर कहिचुके या गोरके हाथसे लेना दोय नहीं ठहरता = इसी आशयपर यह अंगिला वचन है = यथाह अंगिरा = अन्नसवप्रवृत्तानामासनन सर्गहितम् । भुक्तापक्वान्नमेतेयां विरावंतुपयःपिबेत् = अर्थात्—जो सूतकी अन्न सबके मार्गसे बहुतसा बौटने पर प्रवृत्तहुयेहों तिनका कक्षा अन्न तिल चावर आदिअन्निय है परंच उनका पक्काअन्न स्वायकार तीनराति पयः पानका प्रायश्चित्त करै—इस वचन में पक्षेअन्नका बहुतबडादोय कहा सो निज सूतकीके हाथसे पकाये अन्नका सिद्धांत है और ऊपर सर्गादि के वचन में पक्वान्न को सूतक नहीं लगता कहा सो वह जुवा बिययया कि और का पकाया वा बाजारसे दिलायाहुआ लेनेवाला आपही स्वयंग्रह की रीतिसे लैआवै तो कुछ दोय नहीं था ॥ • ॥ चौदहवीं अधिकोक्ति के अनुसार किसी असवर्गा या असगोत्री को यदि किसी दुर्ग के संसर्गसे सूतक लगाहो तिसकी विशेषता अंगिराने दर्शाई है = यथा = आशौचंयस्यसंसार्यापतेदृगृहमेधिनः क्रिया स्तनलुप्यतेगृह्याराचनतद्भवेत् = अर्थात्—जिसकिसी गृहस्थी पुरुष को किसी के सवर्ग से सूतक आपरै तो उसके घरकी सब क्रिया नहीं लोयहोती है न उसके अन्य घरवालोंको सूतकहोता किन्तु केवल उसके देहनायको लगताहै ॥ औरभीजिसकिसी गृहस्थी को स्थानांतरीय सूतक बीतिजाने पीछे सुनिपरै तो उसका निर्गमभीअंगिराने किया है = यथा = अतिक्रान्तिदशाहेतुष्यचाज्जानातिचेदृगृही । विरावंतुक्तस्तनल दृव्यस्यकर्हिचिद् = अर्थात् — दशदिनआदि नियत अवधि बीतिजाने बाद जो कोई गृहस्थी जानिपावै कि मुझको सूतकहुआया पर सुनानहीं तो अब उसकोकेवल तीन राति का सूतक गरीरसे संववराखैगा किन्तु उसके अन्य द्रव्योंको सूतकतोनातिभी नहोगा ॥ १७ ॥ काहें विदेशमेंसरेहुये सपिण्डकी स्वर जो बहुत ॥ काल पीछेमिली हो तिसकाभी सूतकादिवर्त्तावा नीचेकी ण्विच्छेदमेंदेखना ॥ अंतप्रथमःपरिच्छेदः ॥

अथ आशौचसूतकयोर्दिनावधिकथनेद्वितीय परिच्छेदः २॥

—*—

इस दूसरे परिच्छेद में जन्म और मरण दोनों के सूतकों
सम्बन्धे सवतरहकी अवधि कही जायेंगी ॥

(जननमरणयोर्ज्ञाते श्रवणे वा सूतक नियमाः)

त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमिष्यते ।। ऊनद्विवर्षं उभयोः सूतकं मातुरेव हि ॥ १८ ॥

अत्रारथः—तीनरात्र या दशरात्र श्रवका आशौच इच्छा करते हैं दो वर्षसे ऊने
में (माता पिता) दोनोंको हि यथा सूतक माताकोही ॥ १८ ॥

अभिप्रायः—इस वचन के अर्थ कई तरहसे लगते हैं इसी हेतु बहुत गूढ़ अन्वय
लगता है तिससे खूब ध्यानदेकर शोचो-शवनान् मुर्देका तिसके निमित्तका आशौच
सूतक श्रावकहाता है दूसरा पद सूतक जा उत्तरार्द्ध में आया तिससे केवल जन्मसूतक
भी समझा जाता और बिले समय जन्म मरण दोनोंके सूतक सकही पदसे समुक्त
जाते हैं जहाँ जैसा प्रयोजन हो वही अर्थ लगाया जाता है यहाँ पर योगेश्वर कहिते हैं
कि—तीनरात्र या दशरात्र मुर्देका सूतक नानने को मन्वादि ऋषीश्वर इच्छा करते हैं
सामान्य सभी गोत्रियोंके निमित्तमें इस भेदसे कि मातृपीडितक सपिराडलोगदशरात्र
मानें और उनसे उपरालू आठवीं पीढीसे ले चौदह के भीतर जो समानोदक हों सो
केवल तीनरात्रमानें (यहाँपर मुर्दा कहिनेसे प्रामृतक समझना कि जिसको अग्नि
का दाह दिया गया हो क्योंकि उत्तरार्ध में गाड़ने योग्य छोटी अवस्था का वृत्तान्त
जुदा कहेंगे—और भी यह व्यवस्था सिर्फ ऐसे मुर्दाकी समझनी जो देशांतर में मरा
सुना गया हो क्योंकि प्रत्यक्ष में समीप मरेदेखे हुये की व्यवस्था सबह प्रलोक तक
वर्णन होचुकी) और विशेष व्यौरा इसीका अधिकोक्ति में समझना यह सब पूर्वार्ध
का अभिप्राय कहागया है पूर्वार्धमें सपिराडोंको दशदिन वतायेगये ती सामान्यभाव
में सभी सपिराड समझेगये तिससे उत्तरार्द्धमें बिले समीपी सपिराडोंका जुदा नियम
दर्शाते हैं कि—दो वर्षसे ऊने बालक मरनेमें (उभयोर्मातापित्रोः) मातापिता दोही को,

दशरात्रि का सूतक लगै किन्तु सभी सर्पिण्डों को नहीं क्योंकि अन्य सर्पिण्डों को सूतक आगे तेईसके मूलश्लोकसे कह्यो (सूतकेमातुरेवहि) सूतकमें अर्थात् पुत्रजन्म होतेही मराउत्पन्न होय तहाँ केवल माताही को दशरात्रि सूतक लगै पिता को नहीं क्योंकि पिताके निमित्त आगे बीसके श्लोक से जुदा नियम कह्यो- अथवा (सूतकं मातुरेवहि) ऐसा पाठहोने से यह केवल दृष्टांत है कि हि यथा जैसे सूतक नाम जनन कालका अस्पृश्य लक्षणा केवल माताको होता है कि उसको न छूना चाहिये तैसेही दो बर्यसे ऊने बालक मरने में माता पिता दोनोंको अस्पृश्य रखी सूतक लगता है कि दोनोंको न छूना चाहिये अन्य सर्पिण्डोंको छूनेका कुछ बोध नहीं (जब कि सर्पिण्डों को छूने मध्य बोधका नियम किया तौ सर्पिण्डोंसे उपराल समानोदक अवश्य ही स्पर्श करने योग्य रहिरे) इन बातों के विशेष द्योरे अधिकोक्ति में समझना जहाँ अनेक स्मृतियों के बचन दिये जायेंगे—परन्तु छोटे बच्चों के सूतक नियम आगे तेईसवें मूल श्लोक से देखना (इस आशौच के प्रकरणा में जहाँ कहीं केवल रात्रि या दिन कहाजाय तहाँ रात्रि दिन दोनों मिलके समझने ॥ १८ ॥

१८ अधिकोक्तिः—योगीश्वर के मूलश्लोक में जैसा शाव—शब्दसे मरणाशौच समझाजाताहै तैसा उत्तरार्ध में सूतकशब्दसे जननाशौचभी जुदासमझाजाताहै सोइन दोनों पदोंसे योगीश्वरने जनन मरणा दोनोंके आशौच सूतक सकही श्लोकमें समझा किये हैं कि तीन या दश रात्र की व्यवस्था जो कुछ अभिप्राय में लिखचूके सो सब जन्म मरणा दोनोंके निमित्त यथा संभव समझ लेनी = वह दोनों जब कभी कोई सक भी उत्पन्न होकर विदितहोजाय तभी सूतक लगता है अर्थात् उत्पन्न होनेपरभी जिस किसीको मालूम न होसके तिसको सूतकनहीं लगता यह तात्पर्यहै इसीलिये अगलें बचनहैं—यथा=निर्देशजातिमरणां शुत्वापुत्रस्यजन्मचेत्यादिलिंगदर्शनात्=यथा=विगतं तुविदेशस्थंशुक्रायाद्योद्वानिर्देशं। यच्छेयदशरात्रस्यतावदेवाशुचिर्भवेदित्यादिवाक्यारंभ सामर्थ्याच्च • उत्पत्तिमाश्रयेत्वेद्याशौचस्यदशाहाद्याशौचकालनियमास्तत्तत्प्रवृत्ति कासव=अर्थात्—ये दृष्टांत हैं कि जैसे निर्देश नाम निकसि गये दशदिन जिसके ऐसा जो जातिका मरणा हो या सेसाही पुत्रका जन्महो ताहि सुनिके • इत्यादि बचन का लिंग स्वरूप देखनेसे=तथैव = दूसरा दृष्टांतहै कि विदेशमें दिकेहुयेको यदि कोई अनिर्देश मरामुनै अर्थात् मौतको दशादिन पूरे न वीतेहों बीचही में सुनै तहाँ जो दश रात्रका शेषकाल रहाहो उन्हीं दिनोंतक अशुद्धहै • इत्यादिवाक्य आरंभकी सामर्थ्य सेभी सर्वथा निश्चित होताहै कि • सूतक उत्पन्न होने मात्रकी अपेसा से आशौच के

दशदिन आदि वराभेद से जो नियम कहि चुके सो सब जन्म या मरणा होनेके समय से आवश्यकहै—इसीहेतुसे अनिर्देशमरणा सुननेमें कि जिसको दशदिवस न बीतेहों तो श्रेय दिवसोंका सूतक सिद्धहोता है तिससे यह तात्पर्य निकसताहै कि श्रेय काल से लेकर पूरा सूतक न आरंभ करै। इस कारणसे मरणा या जन्म जब सुननेमें आवै तभी से सुनने वालेके निकट मरणा या जन्म हुआ समझा जाय और उतने दिनतक माना जाय जैसा योगीश्वर के मूलश्लोक पर अभिप्राय लिखागयाहै कि तीन रात्र या दश रात्र समानोदक सपिण्डके भेदसे = इसीके प्रमाणमें यह वचन है = यथा = दशा हंशावमाशौचसपिण्डेयुचिधीयते। जननेप्येवमेवस्याक्षिपुणांशुदिमिच्छताम् ॥ जन्म न्येकोदकानांतुत्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। शवस्पृशोविश्रायतिव्यहृत्तृदकदायिनः = अर्थात्—सुनेहुये मुर्देका आशौच दशदिन सपिण्डों में किया जाताहै। ऐसेही जन्म सूतकमें दशदिन कियाजाय जो अच्छी शुद्धिचाहते हों। और जन्म सूतकमें सकोदक समानोदकों की शुद्धि तीनरात्रि से कही जातीहै। और तदकदायी समानोदक त्रयस्य मुर्दाको स्पर्श करके भी तीनही दिनमें शुद्धहोजाते हैं = और भी स्मृत्यंतर वचन जो अग्रोक्तहै कि = चतुर्थेदशरात्रस्यात्परांनिशाःपुंसिपंचमे। यथेचतुर्हृच्छुद्धिःसप्तमेत्व हरेवतु = अर्थात्—चौथी पीढीतक दशरात्रिका सूतकहोय पाँचवींतक केरात्रि मानी जाय और छठीपीढीमें चारहीदिनसे शुद्धिहोती सातवें पुरुषमें एकही दिन मानाजाय सो यह गाथा की रीति से कहा नियम आदर करने योग्य नहीं हैं। यद्यपि यह भी कहि सकते हैं कि गाथा नहीं एक नियमहै तथापि जैसे विवाह में मधुपर्क समय पशुका आलंभन करना एक धर्म ही कहा गयाहै पर वह लोकविद्वेयी धर्महोने से बर्तावा नहीं किया जाता है (अस्वर्ग्यलोकविद्विष्टधर्मसम्याचरेत्तु) जैसा मनु का यह वचनहै कि जिस धर्ममें स्त्रियां न मिलसके या वह लोक में विद्वेय बढानेवालाहो ऐसा धर्म भी नहीं आचरै—यहाँ सातवें सपिण्ड समीपीको एकहीदिनसूतक जिसने बताया तो ऐसा नियम आदरकरने योग्यनहीं है—क्योंकि योगीश्वरने आठवें पुरुष को आदि लेकर समानोदकों को तीन दिन सूतक होना कहा यह बहुत बड़ा अन्तर है तिससे जो कुछ अभिप्राय में लिखचुके सोई आदरणीय है ॥ ० ॥ अभिप्रायनामक पाठमें साता पिताके सूतक में कुछ भेद बताया था उसका भी प्रमाण यह अग्रोक्त पौरयमुनिकावचन है—यथा—गर्भम्यंप्रेतेमातुर्दशाहंजातउभयोः कृतेनाग्निमोदराणांच = अर्थात्—गर्भहीमें बालकमरै तो माताको दश दिन सूतकहोय जो जन्मलेकर तत्काल मरै तो माता पिता दोनों को दशदिन जो नामकरणा होकर मरै तो सहोदर भाइयों

को भी दश दिन का आशौच लगे ॥ ० ॥ औसभी सूतक में छूना न छूना कहा तिस
 का भी प्रमारा यह देवल का वचन है—यथा=स्वाशौचकालाद्विज्ञेयस्पर्शनंचविभाग
 तः । शूद्रविट्सर्वविप्राणां यथाशास्त्रंप्रचोदितस्य = अर्थात्—शूद्र वैश्य सभी ब्राह्मणा
 इनके जैसे सूतक शास्त्रमें आज्ञाकियेगयेहैं तैसे निज निज आशौच कालके तिहाई
 भागसे उपरांत अंगछूना समझो = देवल का यह वचनभी अनुपनीत मुर्देका नियम
 समझना जो यज्ञोपवीत होनेके भीतर मराहो और जनेऊहुये उस मृतक मध्ये समझ-
 ना जिसका पूरा सूतक बीति जाने पर सुनागया और दुवारा माना गया हो क्योंकि
 जनेऊवाले मृतकमध्ये देवलने जुदा वचन कहा है = यथा = दशाहादिविभागेनकृते
 संचयनेकमादाध्वरास्पृशन्मिच्छातिवराणानांतत्त्वदर्शनं॥विचतुःपंचदशभिःस्पृश्यावर्णाः
 क्रमेणाह । भोज्यान्नोदशभिर्बिप्रःशेषाद्विचतुः = अर्थात्—दशदिन आदि जिसवर्णा
 का जितना सूतक होताहै तिसके क्रमसे तिहाई दिवस बीतने और अस्थिसंचय क-
 रनेपर सूतकियों का शरीर छूना कहा है तत्त्वदर्शी जानेंगे, उसी का यह व्यौरा है
 कि तीन-चार-पाँच-दश-ये वर्णों क्रमसे स्पर्श करने योग्य दिवस हैं—क्योंकि ब्राह्मणा
 केदश दिनकी तिहाई तीन माने, क्षत्री के बारह दिनकी तिहाई चार हुये, वैश्यके पं-
 दह दिनकी तिहाई पाँच हुये, शूद्र के तीस दिनकी तिहाई दशदिन हुये, इसी प्रकार
 ब्राह्मणा का अन्नभी दशदिन बीति बाद खाने योग्य और शेष वर्णों का दो तीन छे
 दिन उपरालू बीति जानेपर समझना ॥ १८ ॥ दिनमें सरे या रातिमें तिसका दिवस
 गणना कबसे करनी यह विचार आगे २० की अधिकोक्ति के अंतमें देखना ॥ ० ॥
 यद्यपि जन्म सूतक मरणा के साथभी कहिचुके परन्तु समझ में आंति खड़ी होती सो
 संदेह निवारणा पूर्वक अब केवल जन्म सूतक बरान करते हैं ॥ १८ ॥

(जनने चास्पृश्यत्वसूतकनियमाः)

पित्रोस्तुसूतकंमातुस्तद्वदृशनाद्ध्रुवम् † तदहर्नप्रदुष्येतपूर्वेषांजन्मकारणात् ॥ १९ ॥

अर्थः—जननमात्र का सूतक (न छूने योग्य) माता पिता दोही सपिंडों को
 लगता है सर्व सपिंडों को नहीं—योंसे भी माता को ध्रुवं दशदिन पर्यंत निश्चय रूपसे
 अवश्य बना रहताहै कि उसको न छूना चाहिये क्योंकि उसके द्वारा रक्तका दर्शन
 होनेके हेतुसे जैसी कुछ विशेषता अस्पृश्यत्व की होती है तैसी पिताको नहीं किंतु
 पिताका अस्पृश्यत्व स्नान करने मात्रसे निरुक्त होजाताहै अधिकोक्ति में देखना—
 वह दिवस दूयित नहीं है (जिसमे जन्म होय) क्योंकि पूर्वपुत्र्य पिता पितामह

आदि का जन्म होने के कारणों से अर्थात् पुत्र रूप से आपही पहिले पुरया जन्म लेतेहैं तिमके संगल हेतुसे दान करने आदिका अधिकार नहीं मिट सकता यह अधिकोक्ति में देखना ॥ १६ ॥

१६ अधिकोक्तिः—माता पिता के मृतक में कुछ भेद ऊपर कहागया तिमका योरा वशिष्ठने स्पष्ट करके कहाहै = यथा = नाशीर्चविद्यतेपुंसः संसर्गचेत्तगच्छति रजस्तवाशुचिर्जयेतचपुंसिनविद्यते = अर्थात्—पुरुष को जन्ममृतक उस दशार्ध में नहीं लगता जो मृतिका के संसर्ग तक नहीं पहुँचे क्योंकि उस घरमें रक्तका संसर्ग है सोई अशुचि समझना वह रक्त पुरुष में नहीं होता = इसी हेतुसे पिता शोधभी स्पर्शकरने योग्य हो सकता है = यथाह संवर्तः = जातेपुत्रपितुःस्नानसर्चैलंतुविधीयते माता शुद्धेदशाहेनस्नानात्स्पर्शनंपितुः = अर्थात्—पुत्र पैदा होने में पिताको सर्चैलस्नान करना कहा है माता दशदिन में शुद्ध होगी और पिता को स्नान करने सेही छूने का बोध नहीं रहा = माताको दशदिन में शुद्धहोना कहा सो स्पर्श करनेआदि व्यवहारों मध्ये समझना किंतु अदृष्टार्थ रूप कर्मकराने मध्ये जुदा नियमई = तदाहपैदीनसिः = मृतिकापुत्रवन्तीविशतिरात्रेसाकर्मणिकारयेत् सासेनस्त्रीजननीन = अर्थात्—पुत्र वाली मृतिका से बीस दिन बाद गृहस्थीके काम कारवै और कन्या पैदा करनेवाली सेमहीना भरमें = जन्ममृतक में सर्पिंडों को न छूने योग्य बोध नहीं होता यह अंगिरानेभी कहा है = यथा = मृतकेमृतिकावर्ज्यं संस्पर्शेननिषिध्यते संस्पर्शमृतिकाया स्तुस्नानमेवविधीयते = अर्थात्—मृतकमें मृतिका के सिवाय किसी और सर्पिंड का छूना निषेध नहींहै परंतु मृतिका स्त्रीको स्पर्श होजानेमें केवल स्नानकरना कहा है—
 १—उत्तरार्ध मूलश्लोक में पुत्रजन्मका दिवसमात्र निर्देय कहाथातिसकानियम वृद्ध याज्ञवल्क्यस्मृतिमेंकहाहै = यथा = कुमारजन्मदिवसेविप्रैः कार्यः प्रतिग्रहः हिरण्यभरावाश्चाजवासः शय्यासनादियु त्वसर्वप्रतिग्राह्यं कृतान्नं नंतु भक्षयेत् भक्षयित्वा तु तन्मोहा तद्विजापचांद्रायणां चरेत् = अर्थात्—कुमार जन्म के दिवस में ब्राह्मणों को दान का प्रतिग्रह करना चाहिये सोना चाँदी गऊ घोडा वकरा कपड़े शय्यापलंग आसन बैठका आदि किन्तु उस दिन सब तरहका दानलेनाकहाहै परन्तु बनायाहुआ अन्न न भोजन करे अर्थात् ऐसे अन्न को यदि कोई ब्राह्मण अपने सोह अज्ञान स भक्षणा करे तो चांद्रायणा विधिसे प्रायश्चित्त करे = व्यासनेकुछ और भी विरोधता इसमें कही है = यथाह = मृतिकावासनिलयाजन्मदानासदेवताः । तासांयाराभिर्मित्तं शुचिर्जन्म निकीर्त्तता ॥ प्रथमेदिवसेयष्टेदशमेचैवसर्वदा । त्रिष्येत्युनकुर्वीतमृतकपुत्रजन्मनि =

अर्थात्—जन्म देनेवाले जन्मदा इसी नामके देवता जो सुतिकाके घरमें निवास रखते हैं तिनके यागपूजन निमित्तसे दान करनेआदिकामों योग्य पवित्रता जन्मके दिवसमें कहीहै सो केवल जन्महोके दिवसमें नहीं किन्तु प्रथमदिवस छठेदिवस दशवेदिवस इनमेंसूतक न माने परंतु जो पुत्रहीका जन्महो किन्तु कन्याके जन्मका यह नियम नहीं है ॥ सार्कसडेयने जन्मदा देवताओं का पूजन और जागरण भी करना कहाहै = यथा = रसगोयातथायटीनिशातवविशेयतः । रात्रौजागरणार्थजन्मदानांतयावलिः ॥ पुरुषाःशस्त्रहस्ताश्चतुत्यगीतैश्चयोजितःरात्रौजागरणंकुर्युदशम्यांचैवसूतके = अर्थात् —सूतकमें छठी की राति विशेष करके रक्षाकरनी चाहिये रात्रिमें जागरण काना चाहिये तथा जन्मदानास देवताओं को बलिदेनाचाहिये और उस रात्रिमें पुरुष शस्त्रों को हाथमेंरखें तथा स्त्रियों चतुत्यगीतआदि सहित जागरणकरें यही सनकमंदशर्वांरात्रि में भी करें इसअधिकोक्तिके सव नियमसभी वर्णोंके साधारणहै कुछ भेद नहीं ॥ १६॥ अबउस प्रकारका सूतक वर्णान्न होगा जो एक सूतकमें दूसरा सूतक होजाय तहाँ किस अवधिमें जाकर शुद्ध कियाहोगी ॥ १६ ॥

(अशौचाम्यंतराशौचांतरं)

अंतराजन्ममरणेषोपाहोभिर्विमुक्त्यति २० (पूर्वार्ध) ।

अर्थः—बीच में जन्म मरणा होने में शेष दिवसों से विमुक्ति होती=अभिप्राय इसका यहहै कि (प्रति निमित्त नैमित्तिक) न्यायसे यह भी संभव होताहै कि पहिले सूतकमें दूसरा सूतक होजाय तो दूसरा अपनी अवधि पर जाके शुद्ध होय तिसका नियम इस अद्वामें कियाहै कि जिस वर्णका जितना सूतक होताहो या जिसअवस्था में जितना होताहो उतने दिनका आशौच वर्तमान होतहुये उसी में दूसरा सूतक चाहें जनन का या मरणाका ऐसा आनि परें कि पहिलेकी बराबर दिवस इसके भी उचित हों या पहिले की अपेक्षा इसका छोडा सूतक ठहरे परन्तु पहिलेकी अंत्य अवधि से बाहर बढ़िजाने योग्य दिवस हों तो वो सूतक जुदे जुदे न मानेजाय— किंतु उन्हींशेष दिवसोंकी अवधिपर दोनोंकीशुद्ध दोग्निष्ठा करनी होगी जो पहिले सूतकमें चाकीरहे अर्थात् जुदे जुदेदिवसोंमेंदोशुद्धक्रिया न होंगी—परंतु—जोदूसरा सूतक पहिलेकी अपेक्षा बडाहो (दृष्टांत जैसे पहिले किसी अनुपनीतकी मृत्युहुई जिसका तीनिहीदिन सूतक ठहिराहो उसीके बीच किसी ऐसे की मृत्युहुई कि जिसका दशदिन का सूतकहोगा तो यह उससे बडा गहिरा) तो इस बड़ेकी शुद्ध क्रिया छोटे के साथ न होगी किंतु

छोटे की वड़े के साथ जाकर उसीके दिवसों पर होगी—अधिकोक्तिमें देखना ॥ २० ॥
इति पूर्वार्धश्लोकः ॥

२० अधिकोक्तिः—छोटे वड़े अशौचकी व्यवस्था उद्धाने स्पष्ट करी है—यथा=स्वल्पाशौचसम्यग्धेतुदीर्घाशौचं भवेद्यदि । न पूर्वरात्रिशुद्धिः स्यात्स्वकालेनैव शुद्ध्यति=अर्थात्—छोटे आशौचके बीच यदि बड़ा आशौच पैदा होजाय तो पहिले के साथ शुद्धि न होगी किन्तु बड़ा अपने समय पर शुद्ध होगा—यमोप्याह=अहोर्द्विसदाशौचं पृथगेन ससापयेत्=अर्थात्—यसने भी कहा है कि दिवसोंसे चद्रतीवाले आशौच को पीछेसे निज कालमें समाप्त करे ॥ ० ॥ यद्यपि योगीश्वर के मूल वचनमें क्लृप्तेद नहों खोला सामान्य भावसे कहा है कि बीच में जन्म या मरणा होजाय—तौभी यह भेद समझना योग्य है कि—जहाँ पहिला सूतक जन्म का मौजूद है उसके बीच मुर्दे का सूतक होजाय तहाँ वह नियम नहीं मानना उचित है कि पहिले वाकी दिवसों के साथ दूसरा भी शुद्ध होजाय=इसका दूसरा धर्मिराने स्पष्ट किया है—यथा=सूतके मृत कंचेस्स्यान्मृतत्वद्वयसूतकम् । तथा विहित्यमृतकं शौचं कुर्यान्नसूतकम्=अर्थात्—यदि जन्म सूतकमें मरणा सूतक होजाय या मरणा में जन्म सूतक होय तहाँ मृतकशौच के आधार में जन्म शौच भी करना चाहिये किन्तु जन्मशौच के साथ मृतकशौच न करे—परन्तु=मरणा सूतक में जन्म सूतक आएँ तो पहिलेके साथ पिछला शुद्ध हो सक्ता है—तथा च यद्विश्वं सतम्=शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् । शावेन शुद्ध्यते सूतिर्न सूतिः शावशौचिनी=अर्थात्—मुर्दे का सूतक उत्पन्न होनेके बीचमें जो जन्म का सूतक आनिपरै तो पहिले उत्पन्नहुये शावशौच के साथ सूतिकाभी शुद्ध होती है परंतु सूति-का शावसूतक को नहीं शौचन कर सक्ती है तिससे जन्म सूतकमें यदि मरणा सूतक आजाय तो पूर्वशेष कालसे शुद्धि न करनी चाहिये ॥ ० ॥ कहीं दोनो सूतक एकहीसे होनेपर भी पूर्व शेषकाल से शुद्धि करने का अपवाद है—यथा स्मृत्यंतरवचनं=मातर्यं प्रेप्रमीतायामशुद्धौ प्रियर्तोपिता, पितुः शेषे सा शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पत्निसागिष=अर्थात्—माता पहिले मरी हो उसके अशुद्ध कालके भीतर जो पिता भी मरजाय तो (माता के शेष दिवसों साथ पिता की शुद्धि क्रिया न होगी) पिताके शेष दिवस बीतने में उसी साथ माताकी भी शुद्धिक्रिया करनी होगी तथैव जो पिता पहिले मरा हो उसके सूतक बीच पीछेसे माता मरै तौभी पूर्वशेष दिवसों से माता की शुद्ध क्रिया न होगी किन्तु पिता के पूर्वशेष दिन परे होनेमें उसकी क्रिया समाप्त करके माताकी पत्निसागि क्रिया करे (पत्निसागि उसरात्रिका नाम है जो आगे पीछे बौद्धिक बीचमें हो) अर्थात्

केवल एक रात्रिही बीच देकर साता की शुद्धक्रिया दूसरे दिनमें करें ॥ ० ॥ जहाँ एकही दिनमें दो सूतकों का सन्निपात होय तिसका नियम गौतमने पूर्व नियमों के अपवाद रूप से कहा है—यथाहगौतमः—रात्रिशेषे सति द्वाभ्यां प्रभाते सति तिसृभिः— अर्थात्—जहाँ समस्त रात्रिशेष रहिते दिनदिनमें कुछ आगे पीछे दो अशौच होजाय तहाँ पहिला सूतक नियत समय पर समाप्त करके दूसरे को दो रात्रि बीचदेकर पीछे करें। इसी प्रकार जहाँ रात्रि में एक सूतक लगे पीछे उसी रात्रिके पिछलेपहर प्रभात समय दूसरा सूतक होजाय तहाँ पहिलेकी शुद्धक्रिया नियत कालपर समाप्त करके तीनरात्रि बीचदेकर पीछे से दूसरे की शुद्ध क्रिया करें। सो (यह गौतम का कथन योगीश्वर के नियम का अपवाद समझना कि इस दयाको छोड़ि के योगीश्वर वाला नियम अन्यत्र माना जायगा) = यही नियम शातातपने भी कहा है = यथा—रात्रिशेषे द्वयहाच्छुद्धिरासिशेषे शुचिस्थिहाव = अर्थात्—सब रात्रि शेषरहने में दो दिन पीछे दूसरेकी शुद्धि होय एक प्रहर राति शेष रहने में तीन दिन पीछेसे दूसरेकी शुद्धक्रिया होय किंतु पहिले मरेकी अपने नियत दिनपर होगी ॥ परंतु सूतकों का सन्निपात आपढ़ने से प्रेतकी क्रिया करनी नहीं सिर सकती है यहभी शातातपने कहा है = यथा = अंतर्दशाहे जननात्पश्चात्स्यान्मरणाद्यदि प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिंडदानं त्वंबुभिः प्रारब्धे प्रेतपिंडे तु मध्ये चैज्जननं भवेत् तथैवाशौचपिंडांस्तु शोयां दद्याद्यथाविधि—अर्थात्—जन्मसूतक होनेके पाछे दश दिन भीतर यदि किसीका मरणा होय तहाँ प्रेतके नामसे पिंडदान गेज अपने बंधुवों सहित करना चाहिये तथैव जहाँ पहिले प्रेतके पिंडप्रारंभ होजानेके बीचमें जन्म सूतक लगै तहाँभी जो पिंड शेषरहै या जितना शौचकाल शेष रहाहो सो यथाविधि सँ पूरा करें (नसूतिः शावशोभिनी यह वचन ऊपर लिखा गया सो भी इसी व्यवस्था के समान है) ॥ इसीप्रकार जहाँ दोनों सूतक मरणा से उत्पन्न हुयेहों ऐसे सन्निपातमें भी प्रेतोंके क्रिया कर्म करने चाहिये—तथैव जहाँ दो भौतिक दो सूतक एकही दिन जन्म और मरणा से उत्पन्न हों तहाँभी जन्म के जात कर्म आदि सब करने चाहिये = तदाह प्रजापतिः = अशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्मयदा भवेत् कर्तुं तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति = अर्थात्—मरणा का आशौच उत्पन्न होनेके बीच में जो पुत्र जन्म होय तो इस दूसरे सूतक में जातकर्म आदि जो करने अवश्यकहों तिनके लिये कर्ता पुरुषको तात्कालिकशुद्धि होती है (अर्थात् जितना काल कर्म करनेमें लगताहै उतनी देर कर्ताको सूतक नहीं लागता माना जाता है) वाको और जुटुंवी और सूतिका स्त्रीकी संशुद्धि उस अवधि

पर होगी जो पहिले मरणा सूतक मध्येशुद्धिक्रिया का दिन दहिराहो, किंतु सूतिका के दशदिन यद्यपि कई दिन पीछे पूरेहोगे तथापि सूती श्रावशौच के साथ शुद्धहो-जायगी—यह सब नियम योगीश्वर के मूलश्लोक से तुल्यात्मक है और (नसूतिः श्रावशौचिनी) यह वचन जो इसी अधिकोक्ति में लिखा गया तिसके भी समान है ॥ २० ॥ इति पूर्वार्ध श्लोकः ॥

(अब उत्तरार्ध श्लोक में उस प्रकार का सूतक बर्णन होगा जो गर्भके दिन पूरे हुये बिना गर्भ गिरजाय तहाँ कितना सूतक माना जाय—ऊपर तथा नीचेकी दोनों अधिकोक्तियों के नियम सभी वर्गोंको बराबर है कुछ भेद नहीं)

(गर्भस्त्राव सूतक नियमाः)

गर्भस्त्रावेमासतुल्यानिशाशुद्धेस्तुकारणम् २०

अर्थः—गर्भ गिरजाने में मासों के तुल्य रात्रियाँ शुद्धि का कारणा हैं—अभिप्राय इसका यहकि जितने महीने का गर्भ होकर गिराहो उतनी संख्या से रात्रें किंतु उतने दिनका सूतक माना जाय तब शुद्धिका स्नान होय ॥ २० ॥

२० अधिकोक्तिः—गर्भस्त्राव होनेमें पुरुषोंको स्नान करने मात्र से उसी दिनशुद्धि होजाती है यह वृद्ध वशिष्ठने कहा है = यथा = गर्भस्त्रावेमासतुल्यारात्रयः स्त्रीणां स्नानमात्रमेवपुस्तयस्य = अर्थात्—गर्भ गिरने में महीनाओं के बराबर रात्रें शुद्ध होने की स्त्रियोंके निमित्त होतीहैं किंतु पुरुषको स्नान मात्र शुद्धिका हेतुहै ॥ स्त्रियों की शुद्धि योगीश्वर ने महीनों के समान रात्रियोंसे कही—परंतु गौतमने (व्यहंच) यहपद अपने किसी वचन में कहाहै कि तीन दिन सामान्य भाव से नियमात्मक समझ लेने-इसपर मिताक्षरा का श्रीमद्विज्ञानेश्वराचार्य तर्कना दृढ करते हैं कि यह नियम तीन महीनासे ड़वर गर्भ गिरने में समझना—क्योंकि—अगले मरीचि के वाक्यसे यही तात्पर्य पाया जाताहै = यथाह मरीचिः = गर्भस्तुत्यांयथासासमचिरेतूतमेवयः राजन्येतु चतुराश्वैश्येपंचाहमेवतुअष्टाहेनतुशूद्रस्यशुद्धिरेयाप्रकीर्तिता (अचिरेसासवयादवाक् गर्भस्त्रावेतूतमेवब्राह्मणाजाती विरात्रमित्यर्थः एतच्चयरासासपर्यंतद्रष्टव्यं सप्तमाद्विपुनः परिपूरांमेवप्रसयाशौचंकार्यमित्तिचविज्ञानेश्वरः) अर्थात् मरीचि के वचन में अचिर शब्द अल्पकालका बोधक प्रसिद्ध है और विज्ञानेश्वर की पंक्ति में (अचिरे सासव यादवाक्) यह प्रत्यक्ष लेखहै कि तीन महीना के भीतर गर्भस्त्राव होनेमें महीनों के समान दिवस शुद्धिके निमित्त में समझने और (अचिरेतु स्वल्पकालेगर्भनिपतने)

किंतु थोड़े कालका गर्भनिपात होनेमें उत्तम जाति ब्राह्मण के तीन रात्रिका सूतक नियमात्मक समझना एवं सत्रीके चार दिनका और वैश्य के पाँच दिनका और शूद्र की आठ दिन में शुद्धि होनी कही है = ये नियमात्मक दिवस भी छे महीने पर्यंत का गर्भ गिरने मध्ये समझने किंतु सातवें महीना से लेकर पूरा गर्भगिरनेमें वही पूरासूतक मानना जो पूरे जन्म के होनेपर माना जाता क्योंकि इतने महीनोंका गर्भ पूरे छे महीने जीवता भी निकसता देखागयाहै तब उसदशा में लोग उसको जन्म होना कहते हैं चाहे थोड़ी देर पीछे मरिही जाताहो यह सब कथन भी विज्ञानेश्वराचार्यका है = और इसके प्रसारा हेतु स्मृत्यंतर वचन भी आगे लिखते हैं = यथा = यस्मात्प्राग्भ्यंतरेया बहुगर्भसावोभवेद्यदा तदासाससमस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तं तासां शौचमिष्यते सद्यः शौचं सपिंडानां गर्भस्य पतनसति = अर्थात् — छे महीना के भीतर जो गर्भसाव होजाय तब उनस्त्रियोंकी शुद्धि महीनों के समान दिवसोंसे कहीहै इसके उपरांत के गर्भमध्ये अपनी जाति का कड़ा हुआ आशौच उन स्त्रियोंका होता है जो पूरे जन्मका नियत हो परंतु अन्य सपिंडोंको गर्भगिरनेमें सद्यः शौच कहाहै कि तत्काल स्नान से शुद्धहों = सपिंडोंका यह सद्यः शौच विधानभी उसदशामें समुभक्तना जो पतला गर्भ निचुड़गयाहो किंतु पिंडी बंधी न हो यह विज्ञानेश्वरका कथनहै = औरभी वशिष्ठ का वचन है = यथा = ऊनद्विवायिकेप्रेते गर्भस्य पतने च सपिंडानां विराधं = अर्थात् — दो वर्षसे ऊनाबालकमरने या गर्भकैगिरनेमेंभी सपिंडोंको तीनदिनका सूतकहै = सो — यह तीन दिनका सपिण्डोंका नियम उस गर्भके गिरनेमें समझना जो पाँचवें छे महीनामें कठिन पिराडहोकर गिराहो क्योंकि इसमें पतन शब्दका प्रयोगहै स्व। वशब्दका नहीं यह भेद भी अशोक वचन में समझो = यथाहमरीचिः = अचतुर्थाद्विवेसावः पातः पंचम वर्जनम् । पाते सातुर्थासासपिवादीनां दिनत्रयम् = अर्थात् — चौथे महीना पर्यंत जो गर्भ गिरता है सो गर्भसाव कहाता है कि गर्भ निचुड़गया पाँचवें छे महीना पर्यंत गिरने से गर्भपात कहाता है क्योंकि वहाँ तक निचुड़ने योग्य पतला नहीं रहिता छेसे ऊपर गर्भगिरनेमें प्रसक्त कहाती है कि मरवाबालक पैदाहुआ किंतु यहाँपर गर्भ गिरना नास नहीं रहिता तिससे इसमें पूरा दशदिन का सूतक मानाजाय परंतु साव होने में साता को तीन रात्रिका सूतक होय अन्य सपिण्डोंको इसमें सूतक वर्जित है और पात होने में साता को जितने महीने हों उतने दिनका सूतक और पिता आदि सपिण्डोंको तीन दिनका होय — ऊपर नीचेकी सभी वचनों को मिलाकर अविरोधसे

व्यवस्था कल्पित करनेकी पर विशेषकर देशाचार कुलाचार पर दृष्टिदेना पाणिडत्य का विश्वास है कि जो वचन जिस देश या जिस कुलकी परिपाटीसे तुल्य हो उसीको उस जगह पर स्वीकार करना ॥ ० ॥ जो गर्भ सातवें महीना से लेकर किसी महीना में जीवता जन्म लेकर तत्काल मरै या पेटही से मरा पैदाहोय तिसके लिये सपिण्ड लोग पूरा सूतक जो जन्म को निमित्त में दशदिन आदि होता है वही मानें क्योंकि छे महीना से उपरांत जन्म होने या गर्भ गिरने में प्रसूति कहाती है यह अभी ऊपर लिखचुके हैं और भी अग्रोक्त वचन प्रसारा है—यथाहमरीचिः=जातमृतेमृतजातेवास पिंगडानां दशाहमिति=अतः सूतके चेत्येव स्थानादाशौचं सूतकवर्धितं पारस्करवचनं च—अत्रार्थे (ओत्थानादासूतिकाया उत्थानादशौचमिति यावत् सूतकवर्धितं शिशुपरम निमित्तोदकदानरहितमित्यर्थ इति मितासराकारः = अर्थात्—जन्म होकर मरने में या मरा जन्म होने में सपिण्डों को दश दिन सूतक यह मरीचिने कहा=और=इसी से यदि सूतक मेंही (शिशुमरजाय) तहाँ आउत्थानात् ओत्थान की अवधि से सूतकवत् आशौच कियाजाय यह पारस्कर का वचन है—यहाँ ओत्थान की अवधि जो कही तिसका यह तात्पर्य है कि सूतिका स्त्रीका उत्थान अर्थात् बड़ा नहान जितने दिन में होता हो जैसे दश दिन प्रसिद्ध हैं सूतक उठि जाने के उसी दिन आशौच किया जाय सोभी सूतकवत् कियाजाय जैसा प्रसूतीका स्नान प्रसिद्ध है अर्थात् सूतक में बचा जो मरचुका तिसको जलदान आदि मरणा क्रिया का आशौच न करे=यही नियम वृहन्मनु में स्पष्ट करके कहागया है=यथा=दशाहभ्यन्तरे बाले प्रसीपे तस्य बांधवैः । आवाशौचं न कर्तव्यं मृत्याशौचं विधीयते=अर्थात्—बचा जन्म लेनेसे दशदिन के बीच में जो किसी विषय मरै (सो तत्कालही मरा कहाता क्योंकि दश दिनतक उसी सूतकका समय वर्तमान रहताहै) तो उस मरेबचे के बांधव सपिण्डोंको सूतक निमित्तका स्नान शौच न करना चाहिये जन्म निमित्तका स्नान शौच किया जाता है=ऐसाही और एकस्मृत्यंतरवचन है=यथा=अंतर्दशाहोपरतस्य सूतकाहोधि रेवाशौचं=अर्थात्—दशदिनके भीतर मरेहुयेका शौचकर्म सूतकके दिवसोंसे किया जाय—इत्यादि बहुधा वचनों के समूह से सर्वथा यही निश्चित हुआहै कि सपिण्डों को जन्मनिमित्तका आशौच न मेटना चाहिये ॥ ० ॥ इसीवार्ता मध्ये जो अग्रोक्त वृहद्विष्णुका वचन है कि=जातेमृतेमृतजातेवाकुलस्य सद्यः शौचम्=अर्थात्—जन्महोके मरै या मराजन्ममें तो कुलके लोगोंको सद्यः शौच किंतु उसी समय स्नान करके शुद्ध होजाना—सो इस वचनका तात्पर्य केवल यहहै कि बचा मरने के निमित्तका स्नान

भी उसी समय करडाले कुछ प्रसूती के शौचका येव इसमें नहीं है कि दशदिन पूरे होनेपर प्रसूतीका सूतक नहीं उतारै=तथाचपास्करः=गर्भयदिविपत्तिः=म्यादशाहंसु तर्कभवेत् (सपिंडानांप्रसवनिमित्तस्यविद्यमानत्वात्) जीवन्मजातोयदिप्रेयात्कथयत्वं विशुद्ध्यति (इतिप्रेताशौचाभिप्रायः=अर्थात्—पास्करने यह भेद खोलाहै कि जो गर्भही में मरगा होजाय तब तो दशदिनका जन्मसूतक मानानाय क्योंकि जन्म का होना यह संबंधरूपी निमित्त सपिंडोंके लिये विद्यमान है, जो जीवता जन्म लेकर पोछे मरै तो शीघ्रही स्नानसे विशुद्धि होजाती है यह मरने के निमित्तका जुदा स्नान बताया=शंखोपि=प्राङ् नामकरणात्सद्यःशौचम्=अर्थात्शंखनेभी कहाहै कि नामकरणा से पहिले जो मरै तिसका सद्यःशौच कियाजाय=और जो कात्यायन का यह वचन है कि=अनिष्टत्तेदशाहेतुपंचत्वंयदिगच्छति । सद्यःशौचविशुद्धिःस्यात्प्रेतंनो दकिकिया=अर्थात्—जन्मसे दशदिन बीते बिना जो मरजाय तिसकी तत्काल विशुद्धि होय न तो प्रेतकर्म है न जलदान क्रिया-और जो (नप्रेतंनैवसूतकं) यह पादांतर मानाजाय तो यह अर्थ है कि नतो प्रेतकर्म करै न सूतक अर्थात् पिता आदि को छूनेका दोष भी नहीं लागै=अथवा=इसी पादांतर में दूसरा अर्थ भी मितासराकारने दर्शाया है कि-दशदिन बीते बिना यदि वध्वा मरै तो शीघ्रही विशुद्धि होजाय किंतु प्रेतका सूतक नहीं मानाजाय और न सूतक अर्थात् जो उन्हीं दिवसोंमें कोई और सपिराड जन्मै तो उस जन्मेहुयेका दृढिसूतक भी नहीं मानना किंतु पहिले वर्तमान सूतकके दिवसोंसेही शौच स्नान किया जाय ॥ ० ॥ इसीवार्ता सधे जोदृहन्मनुका वचन और दृहत्प्रचेताकावचन आगे लिखतेहैं तिनमें किंचिद्विचार भेदहै सो देखी=यथाह दृहन्मनुः=जीवन्मजातो यदिततोमृतःसूतकसंवत् । सूतकंसकलंमातुः पित्रादीनांविवात्रकम्=दृहत्प्रचेताच=सुहृत्जीवतोवालःपंचत्वंयदिगच्छति । मातुःशुद्धिर्दशाहेनसद्यःशुद्धास्तुगोविदाः=अर्थात्—जीवता जन्मलेकर तिस पोछे जो मराही तो जन्महीका सूतक मानाजाय किन्तु पूरा सूतकमाताको और पिता आदि को तीन दिनकाहो (इसमें यह व्यवस्थाहै कि जन्म होनेवाद नाल कारनेसे पहिले जो मरै तो पिता आदि को जन्म निमित्त का सूतक तीन दिनहोय)=और दृहत् प्रचेता का यह कथनहै कि=जन्म लेनेवाद दो घड़ी जीता रहिकर जो बालक मरजाय तो माता दशदिन में शुद्ध होगी और गोत्री लोग सद्यः शुद्ध होजायेंगे (इसमें जो सद्यः शौचकहा सो अग्निहोत्र आदि वेद्योक्त श्रौत कर्मोंके निमित्त में समझना किंतु स्मार्त धर्म के मार्गसे तीनिही दिन ठीक हैं=क्योंकि=यही तात्पर्य श्रौतक वचनोंसे प्रायजाताहै

यथाह शंखः = अग्निहोत्रार्थस्नानोपस्पर्शनात्तत्कालंशौचं = अर्थात् — अग्निहोत्र कर्मकी जरूरत के लिये स्नान और आचमन करनेसे से तत्कालही शौच होजाता है॥ नाभि बर्धन किंतु नाल छेदन कर्म होजाने पीछे जो वच्चा मरें तो सर्पिण्डों को परा सूतक जन्म निमित्त का होताहै = तदाह जैमिनिः = यावन्नक्षिद्यतेनालंतावन्ना य्नोतिसूतकय । छिन्नेनालंततःपश्चात्सूतकंविधीयते = अर्थात्—जब ताजीनाल नहीं काटाजाता तब ताजी सूतक नहीं लगता नाल कटे पीछे सूतक लगा कहाता है ॥०॥ अथात्र रजस्वलाप्रायश्चित्तं—यहांसूतकियोंके प्रायश्चित्त प्रसंगसे रजस्वला स्त्रीओं के प्रायश्चित्त दर्शित हैं = यथाहमनुः = रात्रिभिमर्षितुल्याभिमर्षत्वावेषिषु द्याति । रजस्युपरतेसाध्वीस्नानेनस्त्रीरजस्वला = अर्थात्—जो गर्भपेटमेंजमिकरपीछे बहिजाय तो महीनोंके तुल्य रात्रियोंसे वह स्त्री शुद्धहोतीहै दृष्टांत जैसे प्रथम मासमें गर्भ त्राव होजाय तो एक रात्रि बीते स्नान करे इत्यादि दूसरे तीसरे मासमें समुक्ति लेना-परंतु जो रजस्वला मावहुईहो तो निषट रक्त सुखिजानेपर देव कर्म आदि धर्मों के योग्यशुद्धिहोती है चाहें तितने अधिक दिनोंतक सूखें, किंतु छूने आदि व्यवहारों के योग्य तो चौथे दिनही रक्त सूखे बिना भी स्नान करके शुद्ध होजाती है= तदाह रुद्रमनुः—चतुर्थेऽहनि सशुद्धाभवतिव्यावहारिकी=तथास्मृत्यंतरमपि=शुद्धाभर्तुश्चतुर्थेऽहनिस्नानेनस्त्रीरजस्वला देवेकर्मणिगणियेचपंचमेऽहनिशुद्धाति=अर्थात्—चौथे दिन शुद्धहोती है व्यवहार मात्रके योग्य ऐसेही अन्यस्मृति का वचन है कि=रजस्वला स्त्री भर्तृके व्यवहार योग्य चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होजाती है-पर देव कर्म औ पितर कर्मके योग्य पाँचवें दिन होतीहै (यहाँपाँचवाँदिन इसलिये नियत कियाहै किबहुधा स्त्रियोंका रक्त पाँचवें दिन निःशेष होजाता है अन्यथा प्रायशः विरली स्त्रियों के दशदिनतक भी न सूखताहो इसीलिये ऊपरले मनुके वचन में रजस्युपरते समस्या करीगवैहै कि जब कभी रजकी निवृत्तिहो तभी देव कर्म के योग्य शुद्धि होगी)=जिस स्त्रीको रजोदर्शन के दिनसे लेकर सव्रह्म दिनके भीतर फिरके रजोदर्शन होय तो उसमेंअपविषता नहींमानी जायगी जो सव्रह्म दिनके बाद अठारहवें दिवस होय तोएक दिनकी अशुद्धि मानीजायगी उन्नीसवें दिनहोनेसे दोदिनमें शुद्धि होगी इसको उपरालू बीसवें दिनको आदिलेकर किसी दिनमें होय तो तीन दिन से शुद्धि होगी = तथाहात्रिः = रजस्वलार्यादस्तातापुनरेवरजस्वला अष्टादशादिनादवागशुचि त्वंनविद्यते एकोनविंशतेरवागेकाहंस्य ततोऽष्टम विंशत्प्रभृत्युत्तरेयुजिरावमशुर्चर्म वेद = अर्थ ऊपरलिखचुके वहीदेखो = एक जो स्मृत्युत्तर वचन है कि चौदहाँदिनके

भीतरही रजस्वला होय तो अशुद्धि नहीं मानी जाय किंतु चौदहवें को आदिलेका
 मानी जाय सो यह अनंतरोक्त का विरोधी नियम नहीं है क्योंकि इसमें स्नानके दिन
 से ध्रुवालिया है ॥ अशुद्धि नहीं मानीजाय यह नियम उस स्त्रोको समझना जिसके
 सदैव वीसदिन पीछे मासिक-वर्महोता रहता हो और कभी देवयोगसे अठारहदिन के
 पहले होजाय अन्यथा जो स्त्री यौवनकी भरीहुई होनेसे अठारह दिन के भीतरही र-
 जोवर्म बहुतइत से सदैव करतीहो तिसको तीनदिन अशुद्धि माने पीछे स्नान करना
 होगा=तथाच वशिष्ठः= रजस्वलाविराजिमशूचिर्भवतिसाचनाञ्जीतनाभ्यञ्जीतनाप्लु-
 स्नायावप्रवःशयीत नदियास्त्रप्यात नग्रहान्बीक्षेतनग्निसंपृशेत् नाभ्योयान्नरज्जुंलजेत्
 नचदन्तान्बाधयेत् नहसेन्नकिंचिदाचरेत् अखर्वेरापावेरापिवेदंजलिता वःप्राप्रगालो
 हितायसेनवेतित्विज्ञायते=अर्थात्—वशिष्ठ ने कहा है कि रजस्वला तीन रायि तक
 अशुद्ध होतीहै वह उन दिनों में न आँखि आँजे न उबटना करे न जलोमें स्नान करे न
 खाद पर सोवे किंतु पृथ्वीपर सोवे और दिनमें न सोवे ताराग्रहोंको न देखे अग्नि को
 न छुवे न उप्पा भोजन करे सीवना परोवना आदिभी न करे दाँतभी न धोवे हँसनेही
 न कुछ कास धंदा करे अथर्वपात्र से जो छिद्रआदि रहितहो उसी से पानीपीये या
 हाथकी झंजली से पीये या ताँबे के पात्रसे पीये यह समझमें आताहै=धर्मिगिराने कुछ
 और विशेषता कहीहै=यथा=हस्तेऽभ्यामृन्मसंयेवाहविर्भुंक्षितिशायिनी रजस्वला
 चतुर्थेऽह्निस्नात्वाशुद्धिमवाप्नुयात् =अर्थात्—रजस्वला हाथ में धरके भोजनकरे या
 मटरी के वासन में हविष्य भोजन करे वरतीमें सोवे और चौथे दिन स्नानकरके शुद्ध
 होय=पाराशर ने भी विशेषता कही है=यथा=स्नानेनैर्मित्तिकेप्राप्ते नारीयदिरजस्व-
 ला पात्रांतरिततोयेनस्नानं कृत्वाव्रतंचरेत् सित्कगात्राभवेदग्निःसांगोपांगाकथंचन तवस्त्र
 पोहनं कुर्यान्नायन्याहासश्चचारयेत्=अर्थात्—मासिक रजोवर्म के निमित्त का स्नान
 समय प्रातः होने में जो नारी रजस्वला होय तो वह किसी पात्रमें भरे धरे जल से स्नान
 करके व्रताचरणा करे और स्नानका यह अर्थ है कि किसी प्रकार सांगोपांग जल के
 छ टे लेकर कास चलावे किंतु न कपड़े न चोटी न चोती आदि वस्त्र बदलके पहरे=उप-
 नाने डवर होनेमें कुछ और विशेषता कहीहै=यथा=द्वराभिभूतायानारी रजसाचपरिहृ-
 ता कथं तस्याभवेच्छी चंशुद्धिः स्यात्कोनकर्मणा चतुर्थेऽह्नि संप्राप्ते स्पृष्टेदन्याहुतांश्चि
 यमसासचैलावगाह्याः पश्नात्वास्नात्वापुनःस्पृशेत् दशह्वादशह्नुवोवाआचमंचपुनःपुनः
 अतेचवासंसांत्यास्ततःशुद्धासवेचसा दद्याच्छक्याततोदानं पुरायाहेनविशुद्धाति=अ-
 र्थात्—जोस्त्री डवरसे थिरोहुई कपड़ों सेहोजाय तिसकास्नान कैसे होसकेऔर किस

कर्मसे शुद्धि उसकी होय। सो कहिते हैं कि ज्वर के वेगमें स्नान तौ न होगा पान्थु चौथा दिन होनेमें कोई और स्त्री उस रजस्वला को स्पर्शकारके प्रतिनिधिवनै और नदी तटारामें वस्त्रों सहित उसके बदले गोता लगाकर बार बार उसको छूवती जाय और बीच बीच आचमन भी करती जाय ऐसे दशवारह बेर स्नान आचमन करके कूने पीछे वस्त्रों का त्याग करावै तौ वह रजस्वला भी शुद्ध हो जायगी और शक्ति के अनुग्रह प कुछ दान देवै फिर पुरायाह वाचन कराके शुद्ध होती है ॥ यह प्रतिनिधि रूपी स्नान का प्रकार और भी सब रोगीमात्र के निमित्त में समझना केवल रजस्वला को नहीं=क्योंकि= पाराशर में सभी रोगियों के निमित्त से कहा है= यथा= आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेन ततः शुष्येत्स आतुरः=अर्थात्=जहां किसी रोगी को स्नान की आवश्यकता खड़ी हो जाय तब दूसरा कोई निरोग पुंस्य स्नान कर कर के दशवार उसको छूवै तौ वह रोगी शुद्ध हो जाय ॥ ० ॥ जहां कहीं रजस्वला या प्रसूती स्त्री की मौत हो जाय तहां स्नान का प्रकार यह अग्रोक्त है = यथा = स्तुतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वति याज्ञिकाः कुम्भे सलिलमादाय पंचगव्यं तथैव च पुराय र्भिर्भक्षितं व्यापोवाचा शुद्धिलभेततः तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि=रजस्वला यास्तु = पंचभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलां वस्त्रांतरा वृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम्= अर्थात्=प्रसूती स्त्री मर जाने में याज्ञिक लोग कैसे करते हैं इस प्रश्नका यह उत्तर है कि मट्टी के घड़े में जल लेकर तथा पंचगव्य लेकर पवित्र ऋचाओं से जल अभि मंत्रित करके वचन से शुद्धि प्राप्त करै तिस पीछे उसी जल से मुर्दे को स्नान करायके जैसी विधि हो तैसे दाह करे = रजस्वला का यह विधान है कि = मरी हुई प्रेता रजस्वला को पंचगव्यों से स्नान करायके दूसरे सुखे बस्त्र से लपेटिके विधिपूर्वक दाह कर्म करे ॥ ० ॥ यहाँ तक स्नान शुद्धि के निमित्त जो दिवस कहे गये कि इतने दिन पीछे शौच करना चाहै प्रसूती का हो या मृत्यु का या रजस्वला का हो उसकी अवधि कवसे गिनी जाय यह व्योरा अब लिखते हैं सर्वत्र समझलेना = तदाह कथ्यपः = उदितेतु यदा सूर्यो नारीणां दृश्यते रजः जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्वरी अर्द्धराश्रव धिः कालः श्रुतः कादौ विधीयते रात्रिं कुर्यात्त्विभागां तु द्वौ भागौ पूर्वसंख्यतु उत्तरांशः प्रभातेन युज्यते ऋतुसूतके रात्रावेव समुत्पन्ने भूते रजसिसूतके पूर्वमेव दिवं ग्राह्यं यावच्चोदयते रविः = अर्थात्=इसमें दो तीन भाँतिके कल्प कहे हैं तिनको ध्यान देकर शौचो कि= जब सूर्य की उदय होनेवाले छायों का रजोदर्शन होय या किसी का जन्म होय या मरणा होय तौ उस दिनकी संध्यासे आनेवाली रात्रि उधी दिनके साथ समझनी और

उसी दिनसे लेकर तीन या दश या जितने दिन कहेहों सो गिनिलेने एकयह सामान्य कल्प कहा। एवं जो आधीरातिके पहिले कृष्णमरणा आदि हुआ हो तौ भी उसीपड़िले दिवस को लेकर गिनती करनी क्योंकि सुतक आदि कामों में आधीरात तक उसी दिन की अवधि मानो जाती है (इसी से यह तात्पर्य स्वतः सिद्ध होगया कि जो आधी के उपरांत मृत्यु या जन्म या रजो दर्शन हुआ हो तौ वह आधीरात दूसरे दिन के साथ समझनी और उसके लिये आगामी आधादिन भी दुपहर तक उसी रात्रिके साथ समझना दूसरा कल्प इसी नियम से माना जासक्ता है जिसकी इच्छा वा देश कृलकी रीतिहो तौ वह इसी कल्प को मानौं। इसीलिये (यस्याहस्तस्यशर्वरी) यह श्लोको में कहागया कि जिस राति का दिन हो उसी दिन को राति समझनी या जिसदेशमें जैसा दिन मानाजाताहो तौ उसीदिनकेअनुसार उसकीशर्वरीभी समझनी) तीसरा कल्प यह भी है कि रात्रिके तीन भाग मानिके दो भाग तौ बीते दिनके साथ समझने और तीसरा भाग शेष रात्रि को आगामी दिन के साथ समझना रजोदर्शन और सुतक में एक कल्प यह भी है कि जहाँ तक सूर्यउदय नहुये हों सामान्य भाव से रात्रि भर में किसी समय मरणा या रजोदर्शन या प्रसुत हुआ हो तौ पहिलाही दिन मानना किन्तु आगामी का प्रयोजन इसमें नहीं है—इन सब कई भौतिक के कारणों में जिस देश की जैसी परिपाटी हो तैसा कल्प स्वीकार करना यह सिद्धांत है ॥ ० ॥ अब यह नियम करना शेष रहा कि मरणा के दिन से अवधि लेनी या दाह के दिन से सो कहिते हैं कि जो आहिताग्नि अग्निहोत्री मरा हो तौ दाह आदि संस्कार के दिनसे अवधि लेनी और अनाहिताग्नि जो अग्निहोत्री कोई मराहो तौ सौतके दिन से अवधि माननी परंतु अस्थिसंचय कर्म दोनों का दाहके दिनसे गिनाजाय सो यह भेद अंगिरा ने कहाहै = यथा = अग्निमतउत्क्रांतेः सारणेः संस्कारकर्मणाः शुद्धिः संचयनं दाहा न्यूताहस्त्युत्थातिथिः = अर्थात्—अग्निमान का सौत के दिनसे शुद्धिका दिवस लियाजाय और अग्निमान का संस्कार कर्मके दिन से और संचयन कर्म दाहके दिन से दोनोंका और मरनेका दिन संध्याह जो तिथि हो उसके अनुकूल समझना ॥ उक्त वचन में अग्निहोत्री का सुतक मानना जो दाह कर्म के होने बाद कहा तिससे यह तात्पर्यभी उत्पन्नभया कि जिसका आहिताग्नि पिता कहीं देशांतरमें मरे तौपुत्रादिकोंको पुत्तल विधान रूपी संस्कार करनेसे पहिले संध्यावंदन आदि कर्मों का नियेध नहीं है—तथाचपैदोनसिः—अग्निमतउत्क्रांते राशीर्वाहद्विजातिषु दाहादग्निमतो विधादिदेशस्येष्टे सति = अर्थात्—द्विजाती लोगों में अग्नि मानका मरणाके दिनसे

आशौचलगै और अग्निमानका दाहके दिनसे जानौ जो बिदेश में बैठा हुआ मरा हो २०॥

(ऊपर के नियमों में दशदिन आदि का सूतक जो सपिण्ड आदि को कहा गया सो बिरली मौतविशेषमें न होना चाहिये यह अपवाद नीचे कहेंगे)

(सद्यःशौचमाग्निनोपिकेचित्प्रेताः)

हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम् २१ (पुनर्दश्लोकः)

अर्थः—नृपः गऊः विप्रोंसे मरेहुयों और आत्मघातियों का अन्वसही शौचहो= अर्थात् दाह या मौत देख सुनिकर तत्कालही स्नान करके सपिण्ड लोग शुद्धहो जायें किन्तु दशदिन आदि की आवश्यकता और योग्यता इनके नहीं है । किन्तु इस अपेक्षा में कहिते हैं कि राजाने फाँसी आदि किसी प्रकार से मृत्यु दण्ड देकर जिनका बन्ध किया हो तिनके तथा गऊ जैल आदि सींगवाले या दाढ़वाले पशुओंसे मारे गये हों तिनके तथा विप्रोंके शापसे जो मरे हों तिनके और आत्मघाती जो आपही फाँसी लगाकर या विय भसरा या शस्त्र आदि किसी प्रकार से मरि गये हों तिनके लिये सपिण्डोंको सद्यः शौच करना योग्य है ॥ २१ ॥

२१ अधिकोक्तिः—विज्ञानेश्वराचार्य कहते हैं कि विप्रके हाथ मारा जाना कहने से चाँडाल के हाथसे भी मारेजाने का उपलक्षण समझ लेना (इस व्यवस्थाकी दृढ़ताके लिये पूर्व लिखित छठा मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्ति परमी ध्यानदेकर विचारो) यह व्यवस्था गौतम ने स्पष्टरूप से दर्शाई है—यथा= यो ब्राह्मण इतानामन्वक्षं राजक्रोधाद्यायुडे प्रायोनाशकशस्त्राग्निवियोद्धं धनप्रपतनैश्चैच्छताम्= अर्थात्—गऊसे ब्राह्मण से हतहुयों का और युद्धबिना राज क्रोधसे मौत पाये हुयों का और युद्ध बिना किसी प्राणाघाती शस्त्रसे आपही इच्छाकरके मरे या अग्नि में जल मरे या विय खाकर मरे या जलमें डुबि मरे या रसी बाँध लटकते मरे या ऊँचे से गिर के मरे इन सबमें यह समझ लेना कि इच्छासे चाहिकर किसीके ऊपर या मृया प्राणादे दिये हों तो ये आत्मघाती कहाते हैं इनके लिये सपिण्डों को अन्वसही सद्यः शौच करना चाहिये (यहाँपर इच्छासे करने का यह तात्पर्य है कि जो बिना चाहे दैवयोग से रसी मौत हुई हों तिनके लिये यह नियम नहीं है) (एवं जो राज के क्रोध से कहा तिसका भी यह तात्पर्य है कि जो राजाके क्रोध बिना दैवयोग से घोखे में उसके हाथ मौत मिली हो तिसका भी यह नियम नहीं है) (एवं बिना युद्धके शस्त्रों से मरा हो इस कथन का भी यह तात्पर्य है कि जो युद्ध में जाकर किसी शस्त्र से मरा हो

तिसका भी यह नियम नहीं है) किंतु युद्ध में जो मारे गये तिनके लिये एक दिन का सूतक लिखा है = यथा = ब्राह्मणार्थविषयज्ञानां योयितांगोयहेपि च आहर्वेपहतानां चणकरावसशौचकम् = अर्थात्—ब्राह्मण की रक्षा आदि उपकार करते हुये जो किसी प्रकार की अपश्रुत्य से मरेहों एवं स्त्रियोंकी रक्षा करते जो मरेहों या गऊके अंगुष्ठ में अर्थात् गऊकी रक्षा या चिकित्सा आदि उपकार करनेमें या गोशुद्ध नामगऊ के बाँधने छोड़ने आदि साधारण काम करते हुये उसके द्वारा मरेहों या आहव नामगऊ में मारे गये इन सबका एकदिन रातिका सूतक होना चाहिये किन्तु सद्यःशौच नहीं— तथापि यह नियम केवल उन युद्ध वालोंका समझना जो युद्ध में घायल होकर तत्काल मरेहों किन्तु कालांतर में प्राणा छोड़ेहों—क्योंकि—रणाभूमिपर प्राणा छोड़नेवालेकी श्रुत्यभी यज्ञसमान होती है तिससे मनुने उसको सद्यःशौचभागी कहा वरनविशेषक्रिया कर्मकी आवश्यकता भी उसके लिये नहीं राखी—यथाह मनुः—उद्यत्तैराहवे शस्त्रैः सवधर्म इतस्य च सद्यःसंत्यजे यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः—अर्थात्—संग्रामकी भूमि पर उद्यत हुये शस्त्रोंसे सघोषमसे जो मराहो तिसका यज्ञउसीसमय खड़ा होता और इसी प्रकार सद्यःशौच भी होजाता है यही मर्यादा इसकी नियत है—अर्थात् ऐसे वीर पुरुषों का ब्रह्मभोज स्नानी यज्ञ तत्काल किया जाता है सूतक पातकों का बिचार इसमें नहीं क्योंकि उसकी स्मृत्याषा का उत्सव रूपी यज्ञ माना जाता है प्रेतयज्ञ नहीं इसीलिये सपिंड लोकाभी तत्काल सद्यःशौचके अधिकारी होतेहैं ॥ आगे उत्तरार्ध मूल श्लोक से यह कहेंगे कि जो कोई सपिंड विदेश में बैठा किसी सपिंड का मरना कुछ काल बीते सुने तो कितना सूतक माने ॥ २१ ॥ यहाँ तक सद्यः शौच के भागी प्रेतसाध कहे गये कि इनके लिये सब कोई शीघ्र युद्ध होसकता है—किंतु जो सर्व-यही सद्यःशौच के अधिकारी कर्तापुरुष भी होतेहैं तिनका नियमआगे सप्ताहस मूल श्लोक से देखना ॥ २१ ॥ जन्म या मरणा का सुन पानाही सूतक चढ़नेका निमित्त बहिराया गया कदाचित् कोई विदेश में बैठा हुआ घरकी खबर सक दो दिन पीछे सुने तिसमें कुछ अपवाद कहा चाहते हैं कि उसको भी सुनि पाने के दिन से लेकर दश दिन आदि न मानने चाहिये ॥

(अतिकालजमाशौचं)

(देशांतरस्थसपिंडे सूतकनियमः)

प्रापितेकालक्षेपः स्यात्पूणंदत्त्वोदकं शुचिः २१

अर्थः—प्रापित में शेषकालही सूतकहोय पूराकालमें उदकदेकर शुद्ध होय=अ-

र्थात्—यदि कोई सपिंड कहीं ऐसे विदेशमें बैठा हो जो मरे या पैदा हुयेकी खबर पहिले रोज न सुनिसके किन्तु कई दिन षोडे सुनें तो दण दिन आदि सूतकों का जितना काल शेष रहा हो उसीको बिताकर अशुद्धिहोगी-और जिसने सूतक पूरा होजाने बाद सुनिपाया हो वह सुनते मार जलदान करके पवित्र होगा (परंतु जलदान केवल प्रेत-को होता है तिससे यह पिछला नियम प्रेतही के निमित्त में समझना कि स्नान करके जलदान करे अन्यथा जो जन्मका सूतक पूरा होजाने बाद सुना हो तो जलदानके अ-भावसे स्नानकी भी जरूरत नहीं रहती यह भेद अधिकोक्ति में देखा ॥ २१ ॥

२१ अधिकोक्तिः—मनुराह—निर्देशजातिमरणांशुत्वापुत्रस्यजन्मवासवासाजल-माप्लुत्यशुद्धोभवतिमानवः—अर्थात्—दणदिन बीतजाने बाद जातिका मरना सुनिके या पुत्रका जन्म सुनिके कपड़ों सहित जलमें स्नान करिके मनुष्य शुद्ध होता है ॥ यो-गीश्वर के इसी उत्तरार्द्ध मूल श्लोक में पहिला पाद जन्म मरणा दोनों के नियम मध्ये समझना और पिछला केवल मरणा के सूतक मध्ये समझना क्योंकि जलदान करके शुद्ध होजाना कहा सो जलदान केवल प्रेतके निमित्त में होता है तो यह तात्पर्य नि-कसा कि जन्म का सूतक पूरा होजाने के बाद जो विदेशमें बैठा हुआ सपिंड सुनें तो उसको सूतक नहीं रहा समझना किन्तु स्नान मायमी न करना चाहिये—परंतु जो उस जन्म लेनेवाले पुत्रके पिताने विदेशमें रहते सूतक पूरा होजाने बाद सुना हो तो पिता को उस दणमें भी स्नानकरके शुद्ध होती है—ऐसा अतन्तरोक्त मनुके वचनमें लिख चुके हैं सो देखो कि दणदिन बीते पुत्रका जन्म सुनिके स्नान करे—और—पुत्र शब्द कहने से यह भी सिद्धांत ठहरा कि जिसका पुत्र नहीं ऐसा कोई सपिंड जो दणदिन बीते बाद जन्म सुनें तो उसको स्नान की आवश्यकता नहीं रहती—क्योंकि—जो ऐसा सिद्धांत न होता तो मनुके वचनमें पाठमी (निर्देशजातिमरणांशुत्वाजन्मचर्चनिर्देशः) ऐसा होता सो नहीं है—और उसी सिद्धांत के अनुकूल आगे देवलका वचन है—यथा—नाशुद्धिः प्रस वाशीचेवयतीतेर्यदिनेर्वाप । तस्माद्विपत्तावेवतिकांताशौचमितिस्थितिः—अर्थात्—देवलनेस्पष्ट कहा है कि जन्मसूतककेदिन बीतजानेमें सुननेसेभी अशुद्धि नहीं लगती है तिससे भीतही में पूरा होजा ने पर भी अशौच होता यह सत्यदानियत है ॥ ० ॥ योगीश्वर का मूल श्लोक किरली पुस्तकों में पाठांतर से भी देखा गया है कि जिसके अर्थ में कुछ भेद है—यथा (प्रीयितेकालशेषःस्यादशेषेऽयहस्यतु । सर्वेषां वस्त्रेषु र्गो प्रेतैर्देवत्वोदकशुचिः) अर्थात् जो प्रेत विदेशमें मरा हो तो सभी वस्त्रोंके लिये सुनने के समयसे जोकाल सूतक में शेष रहा हो उसीको पूरा करके शुद्ध स्नान करना उचित है.

और जो श्रेय नहीं रहा किन्तु सूतक पूरा होजाने बाद सुनाहो तो सभी वर्गोंको समान भाव तीनदिन का सूतक चाहिये और जो एक वर्ष पूरा होजाने बाद विदेशस्थ का मरना सुनाजाय तो सभी ब्राह्मण आदि वर्गों का एकही नियम है कि सुनते सार स्नान पूर्वक जलवेकशुद्ध होजायेंगे और इसका भी प्रमाण अशोक मनुका वचन है— यथाह—संवत्सरेव्यतीतेतुस्मृद्वैवापोविशुद्ध्यति—अर्थात्—संवत्सर बीतिजाने पर सुनने में जल स्पर्शही करके शुद्ध होजाता है—सो यह पाठांतर में तीन दिन का नियम दश दिन के बाद तीन महीना के भीतर खबर पाने में समझना और पूर्वोक्त मूल पाठमें कहाभया सद्यःशौच उस दशार्धे बतावा करना जो नौमहीना बीतिजाने बाद वर्ष भीतर कभी खबर मिली होती जल दानमात्र से तत्काल शुद्ध होजायगी = और जो अशोक वचन है = यथाह वशिष्ठः = ऊर्ध्वदशाहाच्छुक्त्वेकारात्रं = अर्थात्—दश दिन उपरांत खबर मिलने में एक रात्रिका सूतक होय—सो यह एकदिनका उस दशार्धे मानना जो छेमास के उपरांत नौमासके भीतर खबर मिले = एक यह गौतमका वचन है = यथा = श्रुत्वात्तच्छुक्त्वेदशम्याःपसिराणी = अर्थात् दशईरातिके उपरांत सुनिके एक पसिराणी नामक रात्रिमात्रका सूतक होय किन्तु जिसकेसाथ एक दिन पहिला और एक पिछला भी मिलायाजाय सो पसिराणी कहाती है सो इस हिसाब से दश ग्यारह या बारह प्रहरका सूतक उहरा सो यह सो नियम उस दशार्धे समझना जो तीन महीना के उपरांत छे महीनाके भीतर कभी खबर मिले ॥ इन सब भेदों को चूड़ बाण्ड्य में स्पष्ट किया है सो देखीं = यथा = मासत्रयोविंशत्या त्व रामासेपसिराणीतथा । अहस्तनवमादवर्गोर्ध्वस्नानेनशुद्ध्यति = अर्थात्—तीन मास के भीतर सुननेमें तीन दिन का सूतक होय तथा छेमास के भीतर में पसिराणी अर्थात् छे दिनका सूतक और नवमासके भीतर में एक दिन रात्रिका सूतक होय फिर नौ महीना उपरांत खबर मिलने में स्नानमात्रसे तत्काल शुद्ध होजातीहै ॥ ० ॥ ये सब नियम जो कहेगये सो माता पिताको सिवाय अन्य संपिंडोंके समझने-क्योंकि उन के मध्ये पैतृनसिने जुदा नियम किया है = यथा = पितरोच्चेन्मृतोस्यातांदूरस्थोपि हिपुत्रकः । श्रुत्वातद्दिनमारभ्य दशाहंसतकीभवेत् = अर्थात्—माता पिता यदि मरे-हों और पुत्र बड़ीदूर बैठाहो तो उनकी खबर सुनिके उसी दिवसको लेकर दशदिन तक सूतकी होय = स्मृत्यन्तरे प्रमारांतु = महाशरुनिपातेतु आर्द्रवस्त्रोपवासिना । अतीतेऽर्धेपितृकृत्यप्रेतकार्ययथाविधि = अर्थात्—माता पिता के देहपात होने में वर्ष बीति जाने पर भी सुनने से आर्द्र वस्त्रोपवासी होकर पुत्र को यथा विधि से

मिताक्षरा स० प्राचीनचतुर्कांड ।

॥३

सब करना चाहिये अर्थात् सूतक मानना जलदान करना आदि किया बर्ध वीति जाने परभी करे किन्तु स्नानसाध करनेसे पुत्रकी शुद्धि नहीं होती जैसी अन्यसपिराडों को कही थी ॥ ० ॥ माता से उपरालू सावसी जो पिताकी दूसरी आदि पत्नी मरी हो तिसके मध्ये भी स्मृत्यन्तर में विशेषता कही है—यथा=पितृपरन्यासपेतायां मातृवर्ज्याद्विजोत्तमः संवत्सरेव्यतीतेपित्रावमशुचिर्भविव=अर्थात्—माता को छोड़िके और कोई पिताकी पत्नी जो मरी हो तो द्विजातियों में अशुच्य संवत्सर वीतिजाने बाद सुननेपरभी तीनदिन सूतक मानें ॥ ० ॥ अब एक यह विषय नियम दर्शाते हैं कि अतिशय दूरनिवासी कोईसपिंड जो देशांतर में बसिगया हो तिसका मरना दश दिन पीछे तीनमास के भीतर भी सुनिके मध्यः शौच करना योग्य है=तथाच वचनं=देशांतरमृतं शुभ्राक्षीवैखानसेयती मृतेस्नानेन शुद्ध्यन्ति गर्भस्त्रावेच गोशिरा=अर्थात्—देशान्तर में किसी सपिराड को मरा सुनिके उसके गोत्री लोग स्नानही से तत्काल शुद्ध होजाते हैं तथैव क्षीव या वैखानस वानप्रस्थ तापस या यती संन्यासी इनके मरने में (दूरनगीचवर्गोद्देशां) गोत्रीलोग स्नान मात्रसेही शुद्ध होजाते हैं तथैव निज गोत्र में गर्भस्त्राव गर्भ गिरजाने पर भी स्नान करके शुद्ध होजाते हैं—यहां गोत्री लोगों का नियम दर्शाया तिससे पुत्र पौत्रोंका जुदा नियम समझना जैसा पहिले लिख चुके हैं ॥ ० ॥ इस वचन में देशान्तर कहागया तिसके लक्षणा भी समझने चाहिये कि देशांतर कितनी दूरहोताहै=तदाह उद्हरपतिः=महानद्यंतरं यत्र गिरिर्वाग्न्यवसायकः वाचोयत्र विभिद्यंत तद्देशांतरमुच्यते देशांतरं वदत्येकैयस्य योजनमायतम चरवारिंश द्वादशान्येविंशदन्त्येतथैव च=अर्थात्—जहाँ कोई बड़ी नदी बीचमें उतरती हो या बीच में कोई पहाड़ही आहकर्ता हो तिसको दूसरादेशकहना (परंतु जहाँ नदी या पहाड़ बीचमें न हो तहाँ क्योंकर देशांतर समझाजाय सो कहते हैं कि (जहाँकी बोलीमें भेद हों वहभी देशांतर कहाजाता है (अथवा जहाँ बोलीमें भेद कुछ न हो न कोई नदी पहाड़ बीचमें हो तहाँभी देशांतर का यह चिह्न है कि) जो कोई सादियोजन अर्थात् २४० कोस के अन्तर से बसिगया हो तो वह देशांतर में बड़ा समझ लेना और भी पुराने लोगोंने ४० चालीस योजन अर्थात् १६० कोस पर भी विदेश कहाहै कि जहाँ राज दूसरा हो, अन्यथा और बहुत लोगोंने तीसही योजन अर्थात् १२० कोस दूरी अंतरको दूसरा देशमानाहै तिनका यह सिद्धांत है कि जिस देशकामार्ग कदिन होने से बहुत न चलता हो न वहाँके समाचार शीघ्र आसके हों तो एकसौ बीसही कोस पर दूसरादेश कहना चाहिये ॥ ० ॥ अबतक यहनियम जो लिखागया कि सूतक वीति

जाने बाद सुनें सो इतने दिवस मानें सो सब उस मुर्दा के निमित्त में समझना जो जनेऊदार सरा हो किन्तु कुछ अवस्था छोटी बड़ी आदि होनेमध्ये भेद नहीं हैं—इसका व्यापार व्याघ्रपादने दर्शाया है—यथा—तुल्यवयसि सर्वेषामति कालं तितथैव च उपनीतं वियमन्तस्मिन्नेवाति कालजम्—अर्थात्—आगे तेईसवें मूल श्लोकमें जो अवस्थाभेदसे नियम करेंगे कि तीनवर्ष की अवस्था भीतर या दौत जमने से पहिले मरें तो इतने दिन माने जायें सो वह नियम सभी ब्राह्मण आदि बरोंका तुल्य है हाथ भेद उसमें नहीं और जो दशदिन आदि की सूतक अवधि बीतिजाने बाद सुनने में तीन दिवस आदिका सूतक मानना कहा गया वह भी सर्व बरोंका तुल्य रूप सकही नियम है परंतु जो उपनीत जनेऊदार मरें तिसका सूतक वियम है अर्थात् ब्राह्मण के दशदिन क्षत्रीके बारहदिन इत्यादि प्रसिद्ध है उसी जनेऊदार के मरने में अति कालज सूतक भी समझना जो ऊपर बरान हो चुका है कि इतनेदिन बीते बाद सुननेसे इतनेदिनका सूतक मानें तीन बरोंमें कोई बराहो सबका एक नियम है जनेऊदार होनेसे तथैव चौथे शूद्र में जनेऊके स्थान उसका व्याह समझना ॥०॥ ऊपर जहाँजहाँ दशदिन का सूतक सर्पिण्डों को बताया सो केवल ब्राह्मण बरोंका नियम था इसीलिये नीचेके श्लोक में क्षत्री आदि बरोंको दशदिन के मध्ये अपवाद सूचित करेंगे ॥ २१ ॥

(चत्रियादीनां सूतकाऽवधिः) .

क्षत्रस्य द्वादशाहानि विंशः पंचदशैव तु । त्रिंशदिनानि शूद्रस्य तदर्थं न्यायवार्तेन ॥ २२ ॥

अर्थः—क्षत्रीके बारहदिन वैश्यके पंद्रहदिन शूद्रके तीसदिन और न्यायवर्ती शूद्र के उससे आधा पंद्रहदिनका सूतक होय—अर्थात्—इन बरोंमें यदि किसी सर्पिण्डका जन्म होय या किसी सर्पिण्डका मरण होजाय तहाँ पूर्वाक्त दशदिन से अपेक्षा नहीं किन्तु अत्रोक्त बारह पंद्रह तीस दिनोंका सूतक मानें और शूद्र जो न्यायवर्ती अर्थात् द्विजातियों की सेवा और पाकयज्ञ आदि दहलों में निरत हो तो १५ दिनका सूतक माना जाय तीसका नहीं ॥ २२ ॥

२० अधिकोक्तिः—विज्ञानेश्वर कहते हैं कि इस ठीकहुये नियमके सन्मुख पारि-
शेष्य मार्गसे वह नियम जो अतारहवें मूलश्लोक से (विराजं दशरात्रं वा) कहि चुके
सो केवल ब्राह्मण के निमित्त में समझा जाता है कि दशदिन उसीके लिये—परंतु—
स्मृत्यंतर में कर्मिष्ठ क्षत्री आदिको भी दशदिन आदिके अशौचकल्प कहे गये हैं—
यथाह पराशरः = क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्म निरत शुचिः तथैव द्वादशाहेन वैश्य शत्रिभ्यः

वापुन्यात्=तथाचशातातप=एकादशाद्वाद्वाज्ज्योवैश्योद्वादशभिस्तथा शूद्रोविंशति
 रात्रेराशुद्युतमृतसूतके=अर्थात्—जो अपने कर्मधर्म में निरत हो ऐसा सखी भी दश
 दिनमें शुद्धहोय वैसाही वैश्य बारह दिनमें शुद्धिपावै यह पराशरने कहा=तैसाही
 शातातप कहतेहैं कि=मरणा याजन्मके होनेमें ग्यारहदिनसे सखी और बारहदिनोंसे
 वैश्य और शूद्र बीसदिन से शुद्धहोय=वशिष्टने और भी अधिकदिन बताये हैं=यथा=
 पंचदशरात्रेराजन्मोविंशतिरात्रेरावश्यः=अर्थात्—पंद्रह रात्रियों से सखी और बीस
 रात्रियोंसे वैश्यका आशौच होय=अंगिराने सभी वर्गोंको बराबर दशदिनका सूतक
 बताया सो भी शातातपके कथनका पता देकर=यथा = सर्वेयामेववरानांसूतकंमृ
 तकेतथा दशाहाच्छुद्धिरेतेयामितिशातातपोब्रवीत् = अर्थात्—जन्मतथामरणा में इन
 सभी वर्गोंका (कि जिनकासूतकजुदाजुदा वर्णन होचुका) उन्हीं सबकी सामान्य
 भाव दशदिनसे शुद्धि होतीहै यह शातातपनेकहाथा ॥ इसभांतिसे अनेक ऊंचेनीचे
 शौचके कल्पदर्शित हुयेहैं तिनका संसारमें अच्छाप्रचार न होनेसे व्यवस्था कल्पित
 करना कुछआवश्यक नहींहै इसलिये व्यवस्थाका रूप डोलनहीं दर्शातेहैं यह विज्ञा-
 नेश्वरनेकहा—और भाषार्थ इसका यहीहै कि जिस स्थलमें जैसा प्रचारहो तैसासमझ
 लेना ॥ ० ॥जहाँ कहीं ब्राह्मण आदि किसी वर्गके सखी आदि सपिंड हों, तिनका
 शौच नियम हारीत आदि स्मृतियों के अनुसार होवाचाहिये क्योंकि उन्हीं में यह
 निर्राय अच्छा कियाहै = यथा हारीतः = दशाहाच्छुध्यतेविप्रो जन्महानीस्त्रयोनि
 यु यद्भिस्त्रिभिर्येकेनसप्तविट्शूद्रयोनियु= अर्थात्—जन्म या मरणा होने में ब्राह्मण
 दशदिन में बही शुद्ध होताहै जो अपनीही ब्राह्मणी योनि में जन्मा हो अन्यथा जो
 ब्राह्मण सखी योनि में जन्मा हो तो उस योनिका सपिण्डस्य सूतक छे दिन का लगे
 एवं जो वैश्य योनि में जन्मा हो तो उस योनि का सपिण्डस्य सूतक तीन दिनका हो
 एवं जो शूद्र योनि में जन्मा हो तो एकही दिनका सूतक = विष्णुरप्याह = सवित्र
 सविट्शूद्रयुसपिण्डेयुयद्वावित्राजान्या वैश्यत्तशूद्रसपिण्डेयुयद्वावेराशुभिः होनवर्या
 नांतूत्कृत्युसपिण्डेयुजातेयुमृतेयुवा तदाशौचन्यपगमेशुद्धिः = अर्थात्—सखीके यदि
 वैश्य या शूद्र सपिण्डों में जन्म या मरणा हो तो उस सखी सपिण्ड को यथा क्रम से
 छे दिन या तीन दिनसे शुद्धि होती है एवं जो वैश्यके शूद्र सपिण्डों में जन्म या मरणा
 हो तो उस वैश्य को छे दिन में शुद्धि होती है—अब इससे विपरीत जहाँ ऊँचे वर्ग के
 सपिण्डों में जन्म या मरणा होय तहाँ नीचे वर्ग की तब शुद्धि होगी जब उस ऊँचे
 वर्ग का सूतक मिटिजाय ॥ बोवायन ने इनको भी सामान्यभाव दशदिन का सूतक

व्रताया है = यथा = सर्वविदूशूद्रजातीयाद्येस्युर्विप्रस्यवांववाः तेषामशौचेविप्रस्य
 दशाहाच्छुद्धिरिह्यते = अर्थात् - सभी वैश्य शूद्र जातिके लोग जो ब्राह्मणके बांवव
 अर्थात् सपिराड होयें तो उनके घृत्त सतक में ब्राह्मण सपिराड की शुद्धि दशादिन में
 कही जाती है—ये सो भाँति के नियम जो दहिरे तिनकी व्यवस्था आपद अनापद
 काल के अनुसार कल्पित करनी चाहिये ॥ ० ॥ दाम दासी जो गुलाम और बाँदी
 कहाते हैं तिनका शौच स्वामी के शौच साथ होजाता है स्पर्श करने योग्य और कर्म
 के अधिकार योग्य दासी को एक महीना तक सतक बनारहिता है = तदाहंगिराः =
 दासीदामप्रचसर्वेर्वैयस्यवरांस्ययोभवेत् तद्वरांस्यभवेच्छौचं दास्यांभासस्तुसतक
 स = अर्थात्—दासी और दाम चाहें किसी जातिके हों किन्तु जिस वराके दासत्व
 में रहते हों उसी वरा का जो शौचहो सो उनको होय परन्तु दासीमें अपना सतक एक
 मासतक रहिके ॥ ० ॥ प्रतिलोमानांत्वाशौचाभावस्यप्रतिलोमाधर्महीनाइतिस्मरणात्
 केवलवृत्तौप्रसवेच सलापकर्मणार्थमूत्रपुरीयोस्सर्वाव शौचंभवेत्येवइतिविज्ञानेच्चरा
 चार्यः = अर्थात्—श्रीमद्विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि प्रतिलोमजाती धर्म हीन कहातेहैं
 इसस्मृतिकेप्रसिद्धहोनेसेप्रतिलोम जातियोंमें आशौचकाअभावहै तथापि केवलमरणा
 और जन्म होने से मलीनता दूरकरनेकेअर्थ इगने मूतनेकेतरह शौचभी होताहै ॥ २२ ॥

(बालकादीनांमरणाशौचभेदाः)

भादंतजन्मनःतद्यथाचूडात्रैशिकीस्मृता । त्रिरात्रमात्रतादेशादशरात्रमतःपरम् २३ ॥

अक्षरार्थः—दाँत जन्मेतक सद्यही • चूडाकर्म तक त्रैशिकी कही है • व्रता देश
 तक तीनरात्र • इससे परे दशरात्र जानी ॥ २३ ॥

• अग्निप्रायः—जबतक दाँत न जन्मेहों तबतक मरनेवाले बच्चेका आशौच सद्यही
 उसके सपिराडों को कर्तव्यहै • दाँतजन्मे वाद जबतक मुण्डनकर्म न हुआहो तबतक
 मरनेवालेकी अशुद्धि एक दिन राति की साननी चाहिये • मुण्डन से उपरांत जनेऊ
 होनेसे पहिलेपहिले जो मरै तिसका तीनदिनतक सतकहोनाचाहिये • जनेऊ होजाने
 से बाद मरनेवालेका दशादिन पूरासतक होताहै—और विशेषतयाअधिकोक्तिमेंदेखो २३ ॥
 २३अधिकोक्तिः—(इस अधिकोक्ति में एकही वातपर बहुधा वचन अनेकभाँति
 से दशांशे जायेंगे जिस किसी को समझने में कुछ आँति खड़ीहो सो अधिकोक्ति के
 अंतमें जाकर उन्हीं सबकी सार व्यवस्था को विचारौ) मूल श्लोक में सद्यः शौचके
 लिये यद्यपि दाँतजन्मे बिना का नियम सामान्य भावसे कहागया तथापि उनबालकों

को निमित्त में समझना जिनको अग्निदाह न कियाजाय—क्योंकि वैशाखमास में यही तात्पर्य रपट कहागया है = यथा = अदंतजातेवालेप्रेतसद्यसवनास्थानि संस्कारोदकक्रिया = अर्थात्—दांत जमे बिना बालक प्रेतहोजाने में सद्यही शौच कियाजाय न इसका अग्नि संस्कार होवे न जलदान कियाजाय = और जो दांतजमे बिना मरे को अग्निदाह किसी कारणा से कियाजाय तिसके लिये एक दिन रात्रि का सूतक अगिले चौबीस के मूल प्रलोक में देखौ उसीका प्रमारा भी अग्रोक्त यम का वचन है (इतिविज्ञानेधरः) = यथाह यमः = अदंतजातेतनयेऽग्निशौर्गर्भच्युतेतथा सपिराडानांतुसर्वेयामहोरात्रमशौचकम् = अर्थात्—बिना दांतोंका पुत्र मरने में तथा मराबच्चा गर्भसे गिरजाने में भी सभी सपिराडों को एक दिन रात्रिका अशौच लगाता है = और भी नासकरणा से पहिले मरजानेमें अवश्यभाव सद्यः शौच कानियम शंख-स्मृति मे नियत है क्योंकि उसको अग्निदाह कभी नहीं होता = यथा = प्राङ् नाम करणात्सद्यःशौचं) : (चूडाकर्मचोटीधारणा प्रथम वर्ष वा द्वितीय वर्ष में भी होताहै= तथाचवचनं=चूडाकर्मद्विजातीनांसर्वेयामेववर्षमंतःप्रथमेद्वेद्वेत्तोयेवाकर्तव्यं श्रुतिचोदना त्=अर्थात्—चूडाकर्म सभी द्विजाती लोगों का निज धर्मके अनुसार पहिले वर्ष में या तीसरे में करना चाहिये श्रुतिकी आज्ञासे) तो इस नियमसे यह व्यवस्था सिद्ध होती है कि दांत जमने से उपरांत पहिले वर्ष भीतर जबतक चूडाकर्म न हुआहो तब तक मरजानेमें एकदिन रात्रिका सूतक मानाजाय-तहांदूसरायह विचार भी कर्त्तव्यहै किजिनके तीनवर्षमें चूडाकर्महोताहो तिनकेदांतजामि आनेपर जो तीनवर्ष भीतरतक चूडाकर्महुये बिना मृत्यु होजाय तौभी एकही दिनका सूतक रहेगा = इसी व्यवस्था का प्रमारा भी अग्रोक्त विष्णु का वचन है = यथा = दंतजातेऽप्यकृतचूडेऽहोरात्रेणा शुद्धिः = अर्थात्—दांत जमने पर भी चौटी धरे बिना मरजाने में एक दिन रात्रि से शुद्धि होतीहै ॥ ० ॥ जिसका गुडन और चूडाकर्म होचुका हो ऐसा बालक जनेऊ होनेसे पहिले कभी मरजाय तिसका सूतक तीन दिन होता है क्योंकि ऐसे बालकों को अग्निदाह भी अवश्य किया जाताहै यह विधान भी पहली दूसरी अधिकोक्ति में लोणाक्षि के वचनसे देखौ ॥ और जो अग्रोक्त मनु का वचन है कि = शृणामकृत चूडानामशुद्धिर्नैशिकीस्मृता । निवृत्तचूडकानांतु विरात्राच्छुद्धिरिष्यते = अर्थात्—बिना चौटी धरे मनुष्योंके मरने में एक दिन रात्रिकी अशुद्धि कहीहै और जिनका चूडाकर्म से निपटारा होचुका तिनके मरनेमें तीन दिन रात्रिसे शुद्धि करीजाती है-सो इस वचन का भी वही तात्पर्यहै-जो अभी ऊपर कहा गया ॥ और जो उन्हीं मनुका

यह दूसरा वचन है = ऊनद्विवार्यिकंप्रेतं निदम्युर्वीधवावहिः । अरायेकाष्टवत्यक्ता
 सिपेयुस्त्र्यहनेवतु = अर्थात्—दो वर्षसे ऊने प्रेतको शाससे बाहर गाँहिके तीन दिन
 सूतक माने-सो उन लोगोंके अभिप्रायसे तीनदिनकहेहैं कि जिनके वर्ष भीतर चूड़ा
 होजाता है = इसी प्रकार वशिष्ठका वचन है कि = ऊनद्विवर्षंप्रेते गर्भपतनेवासर्पिं
 डानां त्रिरात्रं—इसमें भी तीन दिन उसी अभिप्रायसे कहेहैं कि वर्ष भीतर चौदीधरबुकी
 होगी ॥ और जो अंगिरा का यह वचन है कि = यद्यप्यक्तचूडोवैजातदंतप्रचर्तस्थि
 तः । तथापि दाहयित्वैनमशौचं न्यहमाचरेत् = अर्थात्—यद्यपि किसी लड़के का
 चूड़ाकर्म न हुआहो परंतु दांत जमने बाद मरें तौभी इसको जलाइके तीनदिन सूतक
 मानावै-सो यह ऐसे घरोंका नियम समुभक्ता कि जिनके तीनवर्ष से उपरांत भी चू-
 ढाकर्म न हुआहो क्योंकि बहुधा कुलोंको परिपाली ऐसी भीहैं कि पांचवें सातवें
 वर्ष तक चौदी धरी जातीहैं वरन अशोक स्वन्यर्थ भी उन्ही अंगिराके द्वितीय वचन
 से स्पष्ट होताहै = यथा = विप्रेन्यूनत्रिवर्षेतृते शुद्धिस्तु नैशिकी = अर्थात्—तीनवर्ष
 से ऊने ब्राह्मणा के मरनेमें एक दिन रातिमें शुद्धिहोतीहै—अब यह विचार करौ कि
 उन्ही अंगिरा ने इस वचन में तीन वर्ष भीतर में एक दिन का सूतक बताया तिससे
 पहिले वचन में आपही सिद्ध होगया कि तीन दिन का सूतक बताया तिससे
 अबस्था में सूचित किया परंतु ऐसा भी न समुभिलेना कि यह एक दिनका सूतक
 बिना दांत बालेका कहा होगा क्योंकि तीनवर्षके भीतर तक कोई बालक बिना दांत
 जमे नहीं रहता तिससे दांत जमने बाद तीन वर्षके भीतर का यह नियम समुभक्ता-
 अन्यथा जो दांतों से पहिले का भी अर्थ मानोगे तौ विप्राके वचन से विरोध खड़ा
 होगा क्योंकि विप्राने दांत जनने बाद बिना मुंडनके मरनेमें एक दिनका सूतक ब-
 द्याया है तिससे वही व्याख्या उत्तम है जो पहिले कही गई ॥ और जो कश्यप का
 यह वचन है कि = वालानामदंतजातानां त्रिरात्रे वा शुद्धिः = अर्थात्—बिना दांत जमे
 बालकों के मरने में तीन दिन रातिसे शुद्धि होती है—सो यह तीन दिन केवल माता
 पिताके निमित्तमें समुभक्ते किंतु सब सर्पिणों को नहीं-क्योंकि माता पिता को बीज
 तथा रक्तके द्वारा संतान में जन्य जनक सम्बन्ध की उपावि विशेष होनेसे सूतकभी
 अधिक होना कहा है = तथा च स्मरणां = निरस्यतु पुमाश्च शुक्रमुपस्पृश्याद्विशुद्धः ।
 वैजिकादभिसम्बन्धादनुरुद्धादध्वज्यहम-उतिजन्यजनकसम्बन्धोपाधिकतया त्रिरात्रं नि
 यमात् = अर्थात्—पुरुष अपने वीर्यको निकासिकेही ज्ञान करनेसे पवित्र होताहै
 (इसी परम कारणासे संतानमें) अपने बीजका सम्बन्ध होने से उसके नष्ट होजाने

पीछे अशुद्धताक्षणी अथ सूतक तीन दिन रोकी - यह स्पष्ट प्रमाण है तिससे कश्यप के वचन में भी यही तात्पर्य समुक्तता ॥ सर्ववचनानां सारव्यवस्था—ऊर्ध्वोक्त सभी वचनोंकी सारसे यह अनुक्रम सिद्ध होता है कि नामकरणा दूसरे दिन दूतीन होने से पहिले मरै तिसका सद्यः शौच उसी समय स्नान चाहिये-नामकरणा होजाने से उपरांत दांत जमने से पहिले मरै तिसका एक दिन राति का सूतक मानै सो उत दश में कि जो इसको अग्निदाह किया गया हो अन्यथा अग्नि संस्कार को न करते में इस का भी सद्यः शौच करना चाहिये- जिसको दांतभी जमिचुके और कुलकी परिपाटी से प्रथम वर्यमें चूडाकर्म होताहो तिसकर्म के हुये बिना मरजाय तो एक दिन राति का सूतक माना जाय- दांत जमने और पहिला वर्य पूरा होजाने से चूडाकर्म भी हो चुकाहो तिसको तीन वर्षके भीतर मरजाने में तीनदिन रात्रों का सूतक माना जाय परंतु जिसका चूडाकर्म न हुआहो तिसको तीनवर्य भीतर भी एकही दिनका सूतक जानौ- तीन वर्यकी अवस्था पूरी होजाने उपरांत भी जिसका चूडा न हुआहो तिस का भी तीनदिन सूतक है- जिसका यज्ञोपवीतभी होचुका तिसके मरने में पूरा दश दिन आदि सूतक जो जिस वर्णका आवश्यक है सो करना चाहिये ॥ २३ ॥

(स्त्रीणां वयोवस्थाविशेषेणापवादः)

अहस्त्वदनकन्यासुवालेपुचविशेषनम् २४ (इतिपूर्वार्ध)

अचरार्थः—अदत्ताकन्याओंमें और बालकोंमें भी एक दिन विशेषनकाहो ॥ २४ ॥

अभिप्रायः—बिनादई कन्यारों कि जिनका धानदान फलदान सगाई जब तक न हुई हो परंतु चूडाकर्म होचुकाहो तिनकी मरजाने से सर्पिडों को एक दिन शुद्ध होने का सूतक होताहै और बालक लड़के कि जिनको दांत न जमेहों तिनको यदि अग्नि दाह दिया जाय तो एक दिन शुद्ध होने का कारण है (पर जो अग्निदाह न किया जाय तो तेईसर्वे मूलश्लोकवाली व्यवस्था मानी जायगी ॥ २४ ॥

२४ अधिकोक्तिः—सगाई हुये बिना कन्याका सूतक जो सर्पिडों को एकदिन का बताया तहां कन्याकी सर्पिडता केवल तीन पीढीतक होतीहै इससे आगे नहीं = तदाह वशिष्ठः = अप्रतनानांतु स्त्रीणां विपुरुषी विज्ञायते = अर्थात् बिना विवाही स्त्रियोंकी सर्पिडता तीनपुरुष तक जानी जातीहै—जिसकन्याका चूडाकर्म न हुआ हो तिसके मरने में सद्यः शौचहोना कहाहै कि जबतक स्वकाई न हुईहो = तयाच आपस्तंबः = अहतचूडायांतु कन्यायांसद्यः शौचविधीयते = अर्थात् बिनाकिये चूडा

कर्मकी कन्या मरने में उसी समय स्नान किया जाय ॥ जिस कन्याकी सगाई हो चुकी पर विवाह अबतक न हुआ हो तो भी उसके मरजाने में दोनों कुलको तीनदिन सूतक होता है = यथाहमनु-स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहोऽष्टौ त्र्यहोऽष्टौ वाः । यथोक्तं नैव कल्पेन शुद्ध्यति तु सनाभयः = अर्थात्—असंस्कृत स्त्रियां कि जिनकी सगाई हो जाने पर भी विवाहरूपी संस्कार न हुआ हो तिनके बांधव जो पतिके सपिंडहों सो भी तीनदिन में शुद्ध होते हैं और सनाभि जो पिता के पसवाले सपिंड हैं सो भी यथोक्त कल्पसे तीनही दिन में शुद्ध होते हैं किन्तु स्त्रियोंके विवाहसे पहिले मरजाने में दश दिन आदिका पूरा सूतक नहीं माना जाता है—इसीलिये मरौचि ने तीनदिन के हेतु में असंस्कृताका लक्षणाभी व्यौरेधार कहा है—यथा—वारिपूर्वप्रदत्ता तु यानैव प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया विराजसुभयोः स्मृतम् = अर्थात्—प्रदत्तानामदेनीकही कन्यादी क होजाने पर भी जो कुलके साथ संकल्पसे नहीं प्रतिपाद न हुई हो सो असंस्कृत जाननी और उसीके मरनेमें दोनों (पिता और पतिके) कुलों को तीन दिन अशौच होना कहा है = विवाह के होजाने बाद स्त्रियोंके सूतक मध्ये पिताके घर विप्रा ने विशेष नियम कहा है = यथा = संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे तत्प्रसवमरणाच्चैति पितृगृहे स्यात् तदैकरात्रं विराजं वा = अर्थात्—विवाह रूपी संस्कारसे संयुक्त स्त्रियों का सूतक पिताके कुलको नहीं लगता सो उस दशाने कि जो सूतक वाला हेतु पति के घर उत्पन्न हो अन्यथा जो पिता के घरमें कन्या के प्रसूत होय वा कन्या का मरना होजाय तो एक या तीन दिनका सूतक पिताके कुलको लगता है अर्थात् प्रसूत में एक दिनका मरना में तीन दिनका समुभ्रना ॥ ० ॥ यह जो ऊपर अवस्था के भेद से अशौच की व्यवस्था कही सो सामान्य सभी वर्गोंको समुभ्रनी किंतु इसमें वर्ण भेदसे कुछ भेद नहीं समुभ्रना क्योंकि (जैसा वार्डसर्वे मलप्रलोक में सभी आदि शब्दों का प्रयोगाद्यतेना) इसमें किसी वर्गका संकेत नहीं किया—इसी हेतुसे मनु ने मनुस्मृति में जहां सर्व वर्गोंकी एकही व्यवस्था कही तहां (चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुप-वर्गः) ऐसा भेद खोलिके कहि दिया है कि चारों वर्गोंका यह नियम है = ऐसेही अगिरा ने भी अपनी स्मृति संहिता में (अविशेषेणा वर्णानामर्वाकसंस्कारकर्मणाः । विराजानुभवेच्छुद्धिः कन्यास्वह्माविधीयते) यह स्पष्ट करिके कहा है कि संस्कार कर्म से पहिले सभी वर्गोंको अविशेषतासे यह नियम समुभ्रना कि तीनरात्रियोंसे सबकी शुद्धि होती है और कन्याओंके मरनेमें सभी वर्गोंकी एक दिनसे शुद्धि होती है = व्याघ्रपादका यह वचन है कि (त्र्यहोऽष्टौ त्र्यहोऽष्टौ वाः) अर्थात् वयमि

नाम अवस्था भेदसे जो नियम सूतकमें कहीं लिखा गयाहो कि इतनी अवस्था तक इतना सूतक सानना होगा जैसा तेईस मूलश्लोक पूर्वार्ध में देखीं सो सब नियम सभी वर्णोंको तुल्यहै कुछ ऊंच नीच का भेद उसमें नहीं-तथैव अतिक्रान्त नाम जो बहुत काल कीति जाने बाद सुना गया तिसके जो नियम कहीं इक्कीस की अधिकोक्ति आदि में लिखे गये सोभी सर्व वर्णों के सामान्य हैं-तौ इन सभी वचनों के प्रमाणा से ऊपरली व्यवस्था भी सभी वर्णोंकी समझनी जो इसी अधिकोक्ति के प्रारंभ से चरान होती रही-जैसे सोरहवें श्लोक वा-उसी की अधिकोक्ति वाले नियम सभी वर्णों के सामान्यकहे थे-या जैसा समानोदकों का आशौच सभी वर्णों को सामान्य कहागया था-या जैसे बीसवें मूल श्लोक के दोनों अर्धसे अधिकोक्ति पर्यंत के सब नियम सभी वर्णोंको सामान्य कहे गये थे-या जैसे इक्कीसके उत्तरार्ध मूलश्लोक से अधिकोक्ति पर्यंत के सब नियम सभी वर्णोंको सामान्यकहे गयेथे-या जैसा आगे बरान होने वाले नियम गुरु आदि के सूतक मध्ये सभी वर्णोंके सामान्य कहेजायेंगे-तेईही अवस्था भेद के सूतक भी सभी वर्णों को बराबरहोने योग्य हैं यह व्यवस्था टीक हो चुकी ॥ ० ॥ तथापि ऋष्ययुग आदिके वचन इसके विरोधी देखि परतेहैं= यथा = सवेद्यद्विभक्ततेचौलेवैष्येनवभिरुच्यते ऊर्ध्वविषयचक्षुःतृत्वाद्दशादेविधीयते-तथा-यद्यविरात्रविप्राणामाशौचंसंप्रदृश्यतेतत्रशुद्धादशाहःयत्रानवसत्रवैश्ययो रित्यादीनि अन्यान्यपिबचनानिर्गति=अर्थात्-इन वचनोंमें वर्ण भेदसे यह कहाहै कि-तीन वर्ण से उपरान्त चौलकर्म हुये सभी के मरने में छे दिनोंसे शुद्ध हों और वैश्य के मरने में नौ दिनोंसे कहते हैं और शूद्रके मरनेमें बारह दिनका अशुद्धकाल विधान किया है-तथा-दूसरा भी यह वचनहै कि जहाँ ब्राह्मणों का तीन दिन अशौच माना जाता हो तहाँ शूद्रका बारह दिन वैश्यका नौदिन सभी का छे दिन से करना चाहिये यहप्रायश देखनेमें आता है-दोनों वचन का एकही तात्पर्य है इनके समान और भी अनेक स्मृतियोंमें वचनहैं तिन सबको विगीतरूप जानिके अर्थात् ऐसीरीति निन्दित समझके प्राचीन आचार्य धारेश्वर, विश्वरूप-मेघातिथि-आदि अनेक धर्मशास्त्र के संग्रहीता गुरुओं ने आदर पूर्वक प्रमाणा में नहीं लाकर छोड़दिये और वही व्यवस्था संगीकार करी जो ऊपर अभी लिखि चुके हैं (कोई अपनी तीव्रबुद्धि से यह तर्कना न खड़ीकरौ कि जिन वचनों की रीतिका प्रचार नहीं रहा तौ फिर यहाँ लिखने और व्याही विस्तार बढ़ाने से क्या सिद्धि हुई केवल वही व्यवस्था लिखते जिस का प्रचार है-सुनौ जब किसी स्थलपर कोई पुरुष उन्हीं वचनों को सुनाकर

अच्छी रीति में भंग डारने लगे तब इस खगडन मगडनके समझे बिना तुमसे क्या उत्तर वानि आवै तिससे यहविस्तारही कार्यसाधक होगा कि (संग्रहत्यागनविनर्हि-चाने) अच्छी बुरी दोनों रीतिका स्वरूप समझ बुझिके अच्छीका स्वीकार और बुरीका निरादर भी करसकौंगे) इसी लिये पीछेसे विज्ञानेश्वरने यह लिखा है कि जहाँ किसी अवसर में कोई बृद्धिमान उन्हीं वचनों को अविगोत ठहरावै किन्तु आदर के योग्य सिद्धकरै कि वह भी किसी देशकालकी मर्यादा से निर्माणा हुयेथे अनादर क्योंकरना- तहाँसत्रीआदिबर्गोंके आर्त अनार्त समयके अनुसारव्यवस्था कल्पितकरनी चाहिये अर्थात् जो किसी प्रबल विपत्ति में फँसेहों तो वही साधारण पक्ष जो सभी वर्गों का एक है सो अंगीकार करना जो ऐसी विपत्ति में न फँसे सावधान हों तो यह अधिक दिनोंवाला पक्ष भी स्वीकार होसकता है ॥ इस चौबीस के श्लोक पूर्वार्ध से योगीश्वरने जो कुछ नियम कहा सो आगे उत्तरार्ध से शुरु आदि के सूतक में आति देश करै रे ॥ २४ ॥

(गुर्वादीनांमरणेपि उक्तनियमस्यातिदेशः)

गुर्वेतावस्थानुचानमातुल्यश्रोत्रियेषुच २४

अचरार्थः—शुरु अन्तेवासी अनूचान मातुल्य श्रोत्रिय इनमें भी एकदिन ॥ २४ ॥
अभिप्रायः—यहाँपर शुरु उपाध्यायकी समझना अन्तेवासी वह शिष्य है जो शुरु के पासही सदा रहिके विद्या पढताहो अनूचान जो अनु वचन में समर्थ किन्तु अंगों सहि वेद में चिचक्षरा हो यहाँ मातुल्य मामा के नामसे और भी बन्धुलोग जो अपने या अपने पिता के और माता के भी जो लहंगहा नाते में होतेहों योनि संबंधी समझे जाते हैं सो सो व्यवहारा ध्यायमें वर्णन होचुके तहाँ देखी श्रोत्रियसक शाखा ध्यायी को समझना इनमें से कोई मराहो तो वही एकदिन रात्रिका सूतक मानना जो पूर्वार्ध में कन्या के निमित्त लिखागया था—शुरु कहनेसे मुख्य शुरु पिता भी होताहै तिसका ध्यायी अधिकोक्ति में ॥ २४ ॥

२४अधिकोक्तिः—एक शाखा ध्यायी को श्रोत्रिय कहा तिसका प्रसारा बौधायनका वचन है—यथा—एकांशाखामधीते श्रोत्रियः—अर्थात्—जो ब्राह्मण वेद की एक शाखा पढे सो श्रोत्रिय होताहै ॥ यद्यपि शुरुका सूतक ऊपर कहिचुके परन्तु शुरु शब्द से पिता भी समझाजाता वरन मुख्य शुरु पिताही होताहै तिसका सूतक ऊपर के शुरु शब्द से एक दिनका नहीं समझना किन्तु पिता के मरने में पूरा दशदिन का

मितासरा सं प्रायश्चित्तकांड ।

६३

सूतक आवश्यक है क्योंकि पिता पुत्र में सपिण्डता रूपी संबंध बहुत प्रबल है सो ये दशदिन भी सामान्य पिता के मरने में समझने किन्तु विशेष पिता जो महाशुरु के लक्षणों से संयुक्त हो तिसके मरने में दो दिन और भी अधिक हैं—तथाचञ्चलायनः= द्वादशरात्रं वामहाशुरुदामध्ययने वर्जयेत्—अर्थात्—पुत्रों के लिये जो पिताका सूतक दशदिन कहि चुके तिसमें यह पक्षांतर भी आञ्चलायन दर्शाते हैं कि यद्वा महाशुरुओं के मरने में बारह दिन तक दान और अक्षयन कर्म बर्जित रखें ॥ महाशुरु के लक्षणों से संयुक्त पिता यह कहाता है जिसने पुत्रों को जन्म देकर और उनके सब संस्कार करके वेद विद्यार्थे अच्छे पढ़ाय गुणार्थके फिर उन्हीं पुत्रों के लिये कोईसी जीविका वृत्ति भी कल्पित करदी हो कि जिसके द्वारा सदासर्वदा निर्वाह चलै तो यह पिता महाशुरु कहाता है सामान्य पिता केवल शुरुही कहाते हैं कि जिन से ऐसा उपकार पुत्रोंका न होसका हो केवल जन्म देने से शुरु कहाता है (यथाह विज्ञानेश्वराचार्यः) (यस्तु पितापुत्रानुत्पाद्य संस्कृत्य वेदानध्याप्य वेदार्थं ग्राहयित्वा वृत्तिं च विदवा तिस्य महाशुरुत्वा तदुपरमे द्वादशरात्रं वा महाशुरुयु दामध्ययने वर्जयेत् इत्याञ्चलायनेनोक्तं द्रष्टव्यं)—अर्थ लिख चुके बहो देखो और (पिता सक होता है • आञ्चलायनके वचनमें महाशुरुयु यह बहुत्व भी आचुका तिसका यह तात्पर्य है कि जहाँ किसी और होने अज्ञोक्त उपकार पिताके स्थानीभूत बनिके किये हों यद्वा स्थानीभूत न होनेपर भी पिताके तुल्य उपकार किये हों तो वही महाशुरु हो सकता है तिससे बहु वचन का होना उचित है ॥ आचार्यके मरने में तीन दिन सूतक मानना मनुने कहा है—यथा = विरात्रिमाहाराशौ च माचार्ये संस्थिते सति तस्य पुत्रैश्च पत्न्यां च दिवारात्रि संस्थितिः—अर्थात्—आचार्य के मरने में तीन रात्रि का आशौच कहते हैं और जो उसकी स्त्री या पुत्र मरें तो एक दिन रात्रि की मर्यादा है ॥ जो कोई अपने आचार्य आदि का दाह कर्म आदि कर्त्तव्य देहिक करै तो इनका भी पूरा दशरात्रि का सूतक मानना चाहिये—तदप्याह मनुः—गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेव संभारभवे प्रेताहारैः संसृतं दशरात्रेन विशुद्ध्यति—अर्थात्—यदि कोई शिष्य अपने गुरु का पितृमेव यज्ञ अर्थात् अग्नि संस्कार आदि कर्म आरंभ करै तो वह भी प्रेतके आहरण करनेवालोंके समान दशदिन में शुद्ध होता है ॥ सत्रह्यचारी और श्रोत्रिय जो समान ग्रामी अर्थात् अपने गाँव में रहता हो तिसका भी एक दिन सूतक होता है—तदाह आञ्चलायनः—एकाहं सत्रह्य चारिणा समान ग्रामी श्रोत्रिये—अर्थात्—अपना सत्रह्यचारी जो एकही अपने आचार्य से जनेऊ दिया गया हो तिसके मरनेमें एक दिनका सूतक मानना तथा एक

मिताक्षरा म० प्रायश्चित्तकाण्ड ।
 भेद से व्यवस्था कल्पित करनेकी चाहिये तो कुछ विरोध नहीं है ॥ २४ ॥ मूलश्लोक
 में एक दिन कहा या उसी एक दिवका अतिदेश अगले प्रतीक में भी कहेंगे ॥ २५ ॥
 (पूर्वनियमस्यैवातिदेशः)

अनोरसेपुत्रेषुभार्यालन्यगतामुच्च२५ (इतिपूर्वार्धः)

अर्थाः—अनोरस पुत्रोंमें और अन्यपुरुषगता भार्याओंमें भी वही एकदिन सूतक हो—अर्थात्—वृत्तक संधज आदि जो बारह पृथ व्यवहार मर्यादा परिषादी में वर्णित हुये सो अनोरस नहीं अनोरस कहते हैं तिनको मरनेमें या उनमें यथा संभव किसीका जन्महोनेमें वही एकदिन सूतकहै जो पहिले श्लोकमें कहि चुके-तथैव अपत्नी भार्या जो और किसी के वैदग्ध्य हैं तिनको उस घर में मरनेसे भी मुख्य पतिको एक दिन सूतक है (परन्तु जो जंचजाति छोड़ नीच जाति के बैठे हो तिसको मरने में यह नियमनहीं समझना किन्तु ऊंचे वर्ण या समानवर्णोंके बैठे हो उसीका यह नियम है) क्योंकि प्रतिलोम जातिके बैठेवाली का सूतक पहिले पतिको नहीं लगता यह छठे मूल श्लोक में नित्येव हो चुका तहाँ देखीं भार्या अपने पति की सपिराड होती है उसका सूतक सपिराडतासे पूरा दशदिनहोना योग्यया तो और के बैठेजानेसे एकही दिन का रहगया जो समान या ऊंची जातिके बैठेहो—तोभी यह उस दशममें समझना कि जित्त भार्या से पहिले पति को किसी तरह का समागम शयनता हो—पति के सिवाय किसी और पतिके भाई आदि सपिराड को निषेध सूतक ऐसी स्त्रियों का नहीं है अधिकोक्ति देखौ ॥ २५ ॥

२५ अधिकोक्तिः = अग्रप्रजापतिः = अन्याश्रितेयुदारैर्यु परपत्नीयुतेयुच । गो विराःस्नानशुद्धांस्त्र्युस्त्रिरात्रैर्वैतस्मिता = अर्थात्—प्रजापति का वचनहै कि जो और किसीके बैठे हुये स्त्रियाँ हैं तिनमें पराई पत्नियोंके मरनेमें गोत्री लोग स्नानमात्र से शुद्ध होजायेंगे परंतु उनके पिता तीन रात्रि से शुद्धहोंगे ॥ स्त्रैरिणी आदि स्त्रियाँ जिसके नोरसेयुपुत्रेयुजातेयुचमृतेयुच । परपूर्वाभिभार्यासुप्रसूतासुमृतासुचेतिविरात्रमग्रप्रजातं = अर्थात्—अनोरस पुत्रोंके मरने या जन्म होनेमें भी और भी पर पूर्वा भार्याओंके मरने या प्रसूत होनेमें भी तीन दिन सूतकहो जो पहिले किसी वचनमें कहा होगा—यहांपर विद्वान् उन्हीं को तीन दिन कहें जिनको योगीश्वरने एक दिन कहा था तो यह व्यवस्थाभी समीप और विदेशको भेदसे दोनों टीक समझनी कि जो विदेशमें मरा तिस-

मितासरा स० प्रायश्चित्तकाण्ड ।

६७

का एकही दिनमानै जो समीप सरा तिसके तीन दिन मानै (परपूर्वा स्त्रियां वे कहाती हैं जिनके पहिला पिछला दो पतिहों) पतिहत्वाऽप्यष्टमस्तुह्ययानियेवते परपूर्वे तिसाप्रोक्ता = अर्थात्-परपूर्वा वह कहाती हैं जो अपने खोटे पतिको छोड़िके उत्तम किसी दूसरे को रोवन करें ॥ परपूर्वा स्त्रियोंके प्रसूत या मरने का सूतक उनके पिता को यद्यपि तीन दिन कहा गया परंतु बहिन भाई आदि अन्य संपिण्डोंको एकही दिन का जैसा मरीचि का यह वचन है कि = सूतकेमृतकेचैवशिराग्रपरपर्वयोः एकाहस्तु संपिंडानांशिराग्रंयत्र्येपितुः = अर्थात्-परपूर्वा स्त्रियोंके प्रसूतहोने या मरनेमें पहिले पिछले दोनों पतिको तीन दिन सूतक होय और एक दिन उन्हींको संपिण्डोंको सूतक है कि जहां उनके पिताको तीनदिनकहेगये-यह पूर्वार्द्धकी अधिकोक्ति पूरीहुई ॥२५॥

(देशाधिपस्यमरणाशौचं)

निवासराजनिप्रेते तदहःशुद्धिकारणम् २५

अर्थः-निवास का राजा मरने में वही दिन शुद्धिका कारणा है = अर्थात्-जिस देशमें अपना निवासहो उस देशका राजा मरै तो वही दिनसाव शुद्ध होजाने का हेतु है रात्रि इसमें नहीं समझनी किंतु रात्रिमें राजा मरा और उसी रात्रिमें दाहादि कर्म होगये हों तो वही एक रात्रि प्रजामाघके शुद्ध होजाने का हेतुहै ॥ २५ ॥

२५ अधिकोक्तिः-मनुष्याह-प्रेतेराजनिमज्ज्योतिर्यस्यस्या ह्रिययेस्थितः-अर्थात्-मनुष्य जिसके राजमें रहिताहो उस राजाके प्रेत होनेमें मज्ज्योति सूतक रहिता है अर्थात् ज्योतिर्य नाम प्रकाश का कि जो सूर्य चंद्र आदि से होता है तिससे यह तात्पर्य ठहिरा कि जो दिनमें राजा मरै तो जब तक सूर्यका प्रकाश बनारहे तबतक प्रजा को सूतक है जो रात्रि में राजा मरै तो जब तक नक्षत्रों का प्रकाश बना रहे तब तक सूतक है ॥ २५ ॥

(अनुगमनाशौच नियमाः)

ब्राह्मणेनानुगतं व्योमशूद्रेन हि ज. कचित् । अनुगम्यां भस्मिन्नात्वाऽष्टद्वारिष्वृतभुक्तुञ्चिः २६ ॥

अर्थः-ब्राह्मणकारके न शूद्र अनुगतव्यहै न कहींकोई द्विजमात्र. अनुगमनकारके भी जलमें स्नान करके अग्निका स्पर्श करके घृत भोजन से पवित्र होय-अर्थात्-ब्राह्मण जो किसी का संपिण्ड न हो तो असंपिण्ड किसी शूद्रके शुद्ध साथ न जाना चाहिये न किसी द्विजाती की शुद्ध साथ परंतु जो स्नेह आदि कारणों से जाना पड़े

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

६५

सूतक हो (योनिसंबंधा सातुल साहज्वस्त्रीयापितृवस्त्रीयादयः) अर्थात् मामा भावसी
 पूआ आदि रिपते योनि संबंधी कहाते हैं = तथा जाबालिः—एकौदकानांतुयहोगोत्र
 जानासहःस्मृतव साहज्वंधीपुरीमिवेमंडलाधिपतौतथा = अर्थात्—जाबालि कहते हैं
 कि जो समानोदक मरें तिनके लिये तीनदिनका सूतक है इनके उपरालु यदिगोत्री
 मरे हों तो एकहीदिनकहाहे और साताको वंदुमरने में या गुरुको मरने में या मित्रको
 मरनेमें तथा मंडलाधिप एक राजा को मरने में भी कि जो चारसो योजन धरती का
 अधिपतिहो = विष्टास्तु = अर्थात्पिंडेस्त्वेषमनिश्रुतेएकरावम् = अर्थात्—जो अपना
 सर्पिंड नहींहै वही अपने घर में रहके मरै तौभी एक दिनका सूतक है—तथा वृद्धः=
 भगिन्यांसंस्कृतायांतुभ्रातर्यपिचसंस्कृते मित्रेजासातरिप्रेतेदौहित्रैर्भगिनीसुते शालके
 तत्सुतेचैवसद्यःज्ञानेनशुद्ध्यति • ग्रामेश्वरेकुलपतो आश्रयेचतपस्विनि शिष्येपंचत्वमा
 धर्मेऽशुचिर्नक्षदर्शनात् • ग्राममध्यगतोयावच्छब्दवास्त्यतित्कस्यचित् ग्रामस्थतावदाशौ
 चंतिगतेऽशुचितामियात् = अर्थात्—विवाहहृषी संस्कार करी वहिन को मरने में या
 उपनयन हृषी संस्कार किये छोटे भाई को मरने में या मित्र को मरने में या जमाई
 को मरने में या देवताको मरने में याभानज्जेके मरने में या शालेकी मरने में या शालेका
 पुत्र मरजाने में सुनते साव गद्यही स्नान करके शुद्ध होजाता है और ग्रामेश्वर गाव को
 ठाकुर मरने में या कुल पति जो सेना आदि किसी जनसमूह का अधिपता हो तिसको
 मरने से या आश्रय को मरने में या किसी प्रसिद्ध तपस्वी को मरने में या शिष्यको मर-
 जाने में नक्षत्र दर्शन करके शुद्ध होताहै अर्थात् जो रात्रिमें मरना सुनाहो तौ नक्षत्रों को
 दर्शन करिके सो जाने मात्रसं शुद्ध होती है दूसरे दिन स्नान अपने नामली समय पर
 होगा अन्यथा जो दिवस में सुनाहो तौभी नैतिक स्नान करने पश्चात् रात्रि में
 नक्षत्र दर्शन होनेपर सूतक मिला समझा जायगा और विशेष इसमें यही तात्पर्यहै कि
 सूतक निमित्त का स्नान करना आवश्यक नहीं किन्तु स्नानका स्थानीभूत नक्षत्रोंका
 दर्शन कहाहै और भी ग्राम के बीच चाहै किसी जातिका मुर्दाहो ज्यत्तक धँसा रहे
 तबतक ग्राममात्र को सूतक है कि उतनी देर कुछ कामबंधा न कियाजाय फिर उस
 मुर्दाके निकसि जानेमें स्नानकिये बिनाही समस्त ग्राम को पवित्रता प्राप्त होतीहै—
 इन वचनोंको आदि लेकर और भी अनेकस्मृतियों के ऐसे वचनहैं जो यहाँ पर ग्रन्थ
 बहिजाने के संदेह से नहीं लिखे जो यहाँ नहीं लिखेवेही जबकहीं देखिपरें तिनमें
 और लिखेगये तिन में जो जो एक ही विषय पर छोटा बड़ा शीघ्र कल्प कई भेद से
 परस्पर विरोधी देखिपरें तिस को विदेश की खबर पाने या समीपही सौत देखने के

ही दिन समान ग्रामीणा ओविय के मरनेमें भी=यह नियम जोजो एक दिनका कहा
 सो दूर कहीं देशांतर में मरना सुनिके मानना कहा गया किंतु पासही मरने में तीन
 दिन आदिका सूतक नियम जुदा है=तदाहमनु=ओवियेतूपसंपन्नेविराजमशुचिर्भवेत्
 मातुलेपक्षिणीरात्रिं शिष्यात्त्विर्वांधवेयुच=उपसंपन्न ओविय के मरने में तीन दिन
 अशुद्ध होवें और मामा के मरनेमें पक्षिणीरात्रि जिसके आगे पीछे दोनों दिवस मि-
 लेहों ऐसा बारह प्रहर का सूतक होय तथा शिष्य ऋत्विक् बांधव इन के भी मरने
 में बारह प्रहर समझने (उपसंपन्न विशेषण का यह तात्पर्य है कि जो विशेष मैत्री
 भाव रखता हो या घर में आना जाना जिसका अधिक हो इत्यादि प्रकारों से स्नेह
 जिसका प्रत्यक्षहो सो उपसंपन्न है) औरभी (मातुल कहनेसे केवल मामा नहीं किंतु
 माता की बहिन आदि भी समझनी—और बांधव जो कहे सो अपने और पिता के
 और माताके ये तीन भौति बंधुहोतेहैं व्यवहार मर्यादा परिपाटीमें देखी=यहोनियम
 जो कहिचुके तिसका प्रमाण आगे दृढस्फटिका वचन है=यथा=इग्रहमातामहाचा
 र्यश्रीष्वेप्यशुचिर्भवेत्=अर्थात्=नाना आचार्य ओविय इनकेमरनेमें तीनदिन सूतक
 रखें=तथा प्रचेताः=मृतेच्छत्विजयाज्येच विराजेषाविशुध्यति=अर्थात्=प्रचेता न भी
 कहा है कि ऋत्विज याज्य इनके मरने में तीन रात्रि से यिशुद्ध होय=दृढदृढस्फटि-
 स्तु=संस्थितेपक्षिणीरात्रिर्दोहिव्रेभगिनीसुते सस्फुटेतुविराजस्यादित्तिभौव्यवस्थितः
 पिबोरुपरमेस्त्रीसामूढानांतुकथमवेत् विराजेषाविशुद्धिः स्यादित्याहभगवाद्यसः चशुरयो
 भंगिन्यांचमातुजान्यांचमातुले पिबोः स्वसरित्त्वचपक्षिणीक्षपयेन्निशास=तथा=मातु-
 लेचशुरेमिबेशुरीगुर्वगनासुच अशौचंपक्षिणीरात्रिंमृतामातानहीयदि=अर्थात्=धेव
 ते और भानजे के मरने में पक्षिणी रात्रिका बारह प्रहर सूतक मानें परंतु जो इनके
 संस्कार हो चुकेहों तो तीनदिन सूतक मानें यह मर्यादा है=माता पिता के मरने में
 विवाही कन्याओं को केसा सूतक होय इसके मध्ये सासात यमराज का कथनहै
 कि तीनदिन सूतक मानें सासू ससुरके मरने और बहिन के मरने और मामा मामाके
 मरने में तथैव पिता या माता की बहिन के मरने में पक्षिणी रात्रि का बारह प्रहर
 सूतक मानें = तैसा = और यह वचन है कि मामाके मरने या ससुरके मरने या
 निव के मरने या गुरुके मरने या शुरानी के मरने में या जो नानी मरी हो तो भी प-
 क्षिणी रात्रिका बारह प्रहर सूतक मानें = तथाच गौतमः = पक्षिणीमसपिंडेयोनिसं-
 व्रसेसहाध्याविनिच = अर्थात्=जो अपने सपिंड न हों किंतु योनि सन्धन्व के
 रिशतेदार हों तिनके मरने तथा सहाध्यायी के मरने में पक्षिणी रात्रिका बारह प्रहर

साथ जाने से एक दिन रात्रिभर आठपहर तक अशौच लगै और एकवर्गों बीच में अंतर देकर जो शुद्ध है तिसको मुर्दासाथ जाने में सबीको बारह पहर सूतक लगै तथा बैश्यको भी अपने अनन्तर शुद्ध वर्गों के मुर्दासाथ जाने में एकही दिन आठपहर तक अशौच होगा यह कल्पना कर्त्तव्य है ॥ विराने मुर्देको रोने मध्ये पारस्करका वचन है = यथा = मृतस्यवांघ्र्यैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनस्य बर्जयेत्तद्दोषाग्रं दानं यादादिकं मर्च = अर्थात्—किसी मरेहुये के वान्घ्र्यों साथ मिलि के जो कोई रोवै पीटै सो इस परिदेवनको करने के हेतुसे उस दिनका दिवस तथा रात्रिभी दान और याद आदिकर्म करने बर्जित राखै क्योंकि सूतकी उहरा ॥ विराने प्रेत को चण्डार आदि भी करना नियुक्त है क्योंकि शंख ने अशौक्त वचन से प्रायश्चित्त कहा है = यथाह शंखः = कृच्छ्रं पादोऽपि पण्डस्य प्रेतालंकारोऽस्ते अज्ञानादुपवासस्यादशक्तौ स्नानमिष्यते = अर्थात्—असंपिंड किसी गौर सजाती के प्रेतका अलंकार सुधारने करने में कृच्छ्रचां द्राथरा वत.....का एक पाद किन्तु चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये जो इस दोष को जाने बिना सेसा किया हो तो उपवासमात्र करके शुद्ध होय परंतु जिसको कृच्छ्र या उपवास करने की शक्ति किसी हेतुसे न हो सो स्नानमात्र करै ॥ इस अधिकोक्ति के विचार समय चौदहवीं अधिकोक्तिभी देखो तथासबहवीं अधिकोक्ति का अंतिम भाग देखो ॥ २६ ॥

अगले प्रलीक में यह वर्णन करेंगे कि विराने संपिंडोंकोभी संपिंडों का सूतक नहीं लगता तिससे उनके लिये अशौच का अपवाद सम्भवा ॥ २६ ॥



तो नदी तडाग आदि में स्नान द्वारा किये पीछे अग्नि को स्पर्श करे फिर घृतप्राशन करे तब शुद्ध होता है सो यह नियम भी अपनी समान जाति और अपना से ऊँची जातिका विषय समझना ॥ २६ ॥

२६ अधिकोक्ति = मनुष्याह = अनुगम्येच्छया प्रेतं जातिमज्ञातिमेव च स्नात्वा सचैतः स्पृष्ट्वा श्मिन् घृतप्राशय विशुद्धयति = अर्थात्—अपनी इच्छा से जाति या गैर जातिके मुर्दा साथ जायके वस्त्रों सहित स्नान करके और अग्नि का स्पर्श करके घृत आदिके विशुद्ध होता है (अत्र ज्ञातयो मातृसपिंडाः इतरे या तु विहितत्वात्तद्वेद्यः इति विज्ञानेश्वराचार्यः) अर्थात् श्रीमद् विज्ञानेश्वरने यह भी कहा है कि यहाँ पर जाति शब्दसे साता के सपिंड समझने जिनके साथ जानेका यह प्रायश्चित्त कहा क्योंकि ओरों के साथ जानेका नियम कह चुकने से कुछ सीखनी नहीं) समान और ऊँची जाति का नियम यह कहा गया अब नीची जाति के मुर्दा साथ जाने मध्ये स्मृत्यंतर बचन कहते हैं—यथाह पराशरः—प्रेतो भूतंतु व्र. शूद्रब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः अनुगच्छेत्कीयमानं सचि राश्वेयाशुद्धयति विराप्रेतु तत्पक्षीरां नदीं गत्वासमुद्रमासप्राणायामस्ततश्चाघृतप्राशय विशुद्धयति = अर्थात्—सरे हुये शूद्रको लेजाते समय जो कोई ब्राह्मण ज्ञानसे हीन होकर साथ चला जाय सो तीन दिन में शुद्ध होता है तीन रात्रि बौतजाने बाद रेसी नदी से जाकर सोता लगावे जो समुद्रमें जाँस ही हो फिर एकसौ प्राणायाम किये पीछे घी पीकर शुद्ध होता है—यहाँ पर विज्ञानेश्वर कहते हैं (सचि यानुगमनेत्वहोरात्र) कि सभी मुर्दोंके साथ जानेमें ब्राह्मणको एकदिन रातिभर आठपहर तक अशुद्धता रहती है क्योंकि ब्रह्मणोका यज्ञअग्नि नावचनप्रसाराह) यथा—सानुयात्यस्मिन् स्मृष्ट्वा शिराग नाशौचं अस्मिन्धेत्यहोरात्रं शवानुगमने चैवं = अर्थात्—मनुष्यका हाड गोला छुड़कर तीन रात्रिकी अशुद्धता और सूखाहाड छूनेमें एक दिन रात्रि की अशुद्धता और मुर्दा के साथ जाने में भी इसी प्रकार (यद्यपि वैश्यको इस बचन में सभी का प्रसंग नहीं आया है तथापि इस प्रायश्चित्त काराड में विराने लेखपर इस कुछ तक उठाना नहीं चाहते हैं कदाचित्त ऐसा सदिग्धस्थल आचार व्यवहार से होता तो स्तुब्धचित्तो विस्तार दिव्ये विना न रहते विवेकी पुरुष आपही मन न कासकेसे) पुनरपि विज्ञानेश्वरः—वैश्या नुगमने पुनः पक्षिणीतया सचि यस्यानंतरं वैश्यानुगमने अहोरात्रमेकांतरं शूद्रानुगमने पक्षिणीतया वैश्यानुगमने सकाह इत्यहनीयस = अर्थात्—फिर भी विज्ञानेश्वर ने यह लिखा है कि ब्राह्मण जो वैश्यके मुर्दासाथ गमन करे तो पक्षिणीनाम करार विधीवाह प्रहर तक अशुद्धि मानोजाय तथा सभी को भी अपने से अनंतर वरा में वैश्यकी मुर्दा

सवियादीनां शौचं तैराशौचनकार्यमित्यर्थः तथा विद्युद्धतानां गोब्राह्मणक्षत्रा-
र्यैर्विपन्नानां च संबन्धिनो ये सपिराडस्तैरप्याशौचनकार्यं—अथर्वि—प्रलोक में पहिले
पाद का अर्थ जो आधुनिकने लिखा वही विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि महीर्षतियों
को किसीका सूतक न मानना चाहिये सोतीं निःसंदेह अविरोधी हैं तथैव चौथे चरण
का भी अर्थ उभयत्र अविरोधी समझना—किंतु बीचके दो पाद में विरोध है जैसा
विज्ञानेश्वरने यह कहा कि—विजली के मारे हुयोंके संबंधी सपिराड लोग उनका
सूतक न मानें तथा गऊ ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त संग्राम करतेहुये लड़ाईमें जो मरे
हैं तिनका भी सूतक उनके सपिराड लोग न मानें (वसयही इतना विरोध है) इस
विरोधके प्रत्येकपदमें बड़ेबड़े शास्त्रार्थहैं आधुनिक लेखक यद्यपि प्रायश्चित्त विषय
पर शास्त्रार्थ खड़ा करना नहीं चाहता है तथापि लेखनी अपने सद्भाविक स्वभाव से
मानती नहीं है—तिससे शोचना चाहिये कि प्रथम तो यही एक दृष्टा आता है कि
सकस्यलमें दो वस्तु टहरीं अथर्वि राजा तो आपही सूतक न मानें और उसके साथमें
जो अन्यपुरुष कहेगये तिनके सपिराडलोग उनका सूतक न मानें याज्ञवल्क्य योगी-
श्वरका यह तात्पर्य नहीं है क्योंकि जिनका सूतक सपिराडों को न मानना चाहिये
तिनके लक्षणा इक्कीसवीं मूल प्रलोक पूर्वार्ध में कहि चुकेहैं उसीकी अधिकोक्ति भी
देखौ कि वहाँ कुछ और ही नियम कहागया था यहाँ दूसरा कर कहिना सम्भव
नहीं है—यहां केवल उन्हीं कर्त्तालोगोंका चर्चा है कि जिनको आपही किसीका सूतक
न मानना चाहिये दृष्टांत जैसे राजाको किसीका सूतक न मानना कहा तैसा औरोंको
भी समझना— इसके सिवाय इस अर्थमें संग्राम शब्द जो स्वयं आधार भूत है तिसके
साथ गऊ ब्राह्मण का अर्थ मात्र विशेष्य विशेष्यता मानकर इत शब्द के योगसे
निपट उन्हीं का सज्जाना सिद्ध कियागया कि जो सूतक न मानने के अधिकारी
आप जीतेरहकर योगीश्वरने दर्शाये हैं सो यह अर्थ इसी हेतुसे विरुद्ध टहिरा कि हस्त
का अर्थ निपटमाराजानाही नहीं बल्कि ताडित पिला अधमरा आदिभी होते हैं तथैव
संसार में भी देखौ कि विजली की चपेटसे मारेहुये भी बहुधा जीते रहतेहैं उन्हीं का
प्रयोजन यहाँ मुख्य है ऐसेही प्रसिद्ध है कि संग्रामसे भी जो पिटे अधमरे आदि जीते
लोटतेहैं वेभी इत कहातेहैं औरभी गऊ ब्राह्मणके उपकार में लगेहुये मात्र का चर्चा
हेतु गर्भित है उसमें कुछ हतहुयेका सम्बंध नहीं है औरभी इस बात का प्रमारा देखौ
इक्कीसवीं पूर्वार्ध की अधिकोक्ति में (यह वचन (ब्राह्मणार्थविपन्नानां योयितानां
अपेक्षिच आहवेपिहतानां चक्रराजमशौचकं) लिखचुके हैं) उसी जघे गीतस का

अथसद्यःशौचव्यवस्थाकथने तृतीयःपरिच्छेदः ३

—*—

(इस परिच्छेदमात्र में सब तरह के सद्यः शौचकहेजायेंगे कि अमुकामुक मनुष्यों को तत्कालभी शुद्धि प्राप्त होती है कि वे दशदिन आदिके वन्धनमें नहीं रहिसक्ते— तथा बिरलेस्थलभी सद्यःशौचकहेजायेंगे इसीसर्वे मूलश्लोक पूर्वार्धसे उसकी अविकोक्ति में जो सद्यःशौचका प्रसंगथोडासा आयाथा वह केवल उन्हीं प्रेतोंकाप्रसंगथा किजिनके लिये हर कोई सद्यःशौचहोसक्ता)

(केचित्सपिण्डाअपिसद्यःशौचाः)

महीपतिर्नानाशौचं हतानां विद्युता तथा । गोत्राद्वर्णार्थे संग्रामे यस्य चेच्छतिभूमिपः २७

अर्थः—मही पतियों को अशौच नहीं है तथा विजली से मारे हुयों को और राज ब्राह्मण के अर्थ में उपयुक्त और संग्राममें उपस्थित वा हत हुयों को और जिस को भू-पतिचाहै तिसको भी सूतक नहीं = अर्थात्—राजाओंका यदि कोई सगोत्री वा सपिण्ड मरै तौभी उनको सूतक नहीं लगता तथैव जिनको विजलीने सिर्फ चपेट मारी मरने से बचिराये पर स्नान आदि किया करने योग्य शक्ति उनमें नहीं रहो तिससे ऐसी दशा में यदि कोई सपिण्ड उनका मरा हो तौ इन विजलीसे मारे हुयों को भी सूतक नहीं लगता है एवं जे कोई पुरुष राज या ब्राह्मणके किसी ऐसे उपकारमें लगे हो जिनको सूतक मनाने का अवकाश न हो या सूतक मानने से उपकार में विघ्न होना संभव हो तौ इनको भी सूतक नहीं लगता है एवं जे कोई शूर वीर युद्ध में उपस्थित हों या युद्ध से कुछ घायल होकर घर आये हों तिनका कोई सपिण्ड यदि इसी अवसरमें मरै तौ उनको भी सूतक नहीं लगता है एवं जिसकीसी मवी पुरोहित हाकिम अहल्कार आदि को राजाचाहै कि (इसको छुडी देनेसे राज कार्यमें बहुत बड़ी हानि होगी तिससे यह सूतकियोंमें न शामिल हो) तौ इनकेभी सपिण्डोंके मरनेमें इनको सूतक नहीं लगता है ॥ यहाँपर विघेकीजनोंको विचारकरना चाहिये कि आधुनिक लेखकने यही अर्थ अपनी बुद्धिसे ठीकसमझा सो लिखा—परंतु मुख्य मिताराकारने अन्य व्याख्याकरी हैं सोभी लिखे देते हैं कि दोमें जो ठीक हो वही स्वीकारकरना ॥ यथाह विज्ञानेश्वरः—

सधियादीनानां शौचं तैरा शौचनकार्यमित्यर्थः तथा विद्युद्धतानां गोब्राह्मणाक्षराणां
 विपन्नानां च संबंधिनो ये सपिराडास्तेऽप्याशौचनकार्यं—अथति—प्रलोक में पहिले
 पाद का अर्थ जो आधुनिकने लिखा वही विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि महीपतियों
 को किसीका सूतक न मानना चाहिये सोतो निःसंदेह अविरोधी है तथैव चौथे चररा
 का भी अर्थ उभयत्र अविरोधी समझना—किंतु बीचके दो पाद में विरोध है जैसा
 विज्ञानेश्वरने यह कहा कि—विजली के सारे हुयोंके संबंधी सपिराड लोग उनका
 सूतक न मानें तथा गऊ ब्राह्मणाकी रसाके निमित्त संग्राम करतेहुये लड़ाईमें जो मरे
 हों तिनका भी सूतक उनके सपिराड लोग न मानें (वसयही इतना विरोध है) इस
 विरोधके प्रत्येकपदमें बड़ेबड़े शास्त्रार्थ हैं आधुनिक लेखक यद्यपि प्रायश्चित्त नियम
 पर शास्त्रार्थ खड़ा करना नहीं चाहता है तथापि लेखनी अपने सद्भाविक स्तभाव से
 मानती नहीं है—तिससे शोचना चाहिये कि प्रथम तो यही एक दृष्ट्या आता है कि
 एकस्थलमें दो वस्तु ठीकीं अर्थात् राजा तो आपही सूतक न मानें और उसके साथमें
 जो अन्यपुरुष कहेंगये तिनके सपिराडलोग उनका सूतक न मानें याज्ञवल्क्य योगी-
 श्वरका यह तात्पर्य नहीं है क्योंकि जिनका सूतक सपिराडों को न मानना चाहिये
 तिनके लक्षणा इक्कीसवें मूल प्रलोक पूर्वार्ध में कहि चुके हैं उसीकी अधिकोक्ति भी
 देखी कि वहाँ कुछ और ही नियम कहागया था यहाँ दूसरा कर कहिना सम्भव
 नहीं है—यहां केवल उन्हीं कर्त्तालोगोंका चर्चा है कि जिनको आपही किसीका सूतक
 न मानना चाहिये दृष्टांत जैसे राजाको किसीका सूतक न मानना कहा तैसा औरोंको
 भी समझना—इसके सिवाय इस अर्थमें संग्राम शब्द जो स्वयं आधार भूत है तिसके
 साथ गऊ ब्राह्मणा का अर्थ साध विरोध्य विशेषण मानकर इत शब्द के योगसे
 निपट उन्हीं का मरजाना सिद्ध कियागया कि जो सूतक न मानने के अधिकारी
 आप जीतेरहिंकर योगीश्वरने दर्शाये हैं सो यह अर्थ इसी हेतुसे विरुद्ध रहिरा कि इत
 का अर्थ निपटमाराजानाही नहीं बल्कि ताड़ित पिटा अथमारा आदिभी होते हैं तथैव
 संसार में भी देखी कि विजली की चपेटसे सारेहुये भी बहुधा जीते रहिते हैं उन्हीं का
 प्रयोजन यहाँ मुख्य है ऐसेही प्रसिद्ध है कि संग्रामसे भी जो पिटे अथमारे आदि जीते
 लौरेते हैं वेभी इत कहते हैं—औरभी गऊ ब्राह्मणके उपकार में लगेहुये साध का चर्चा
 हेतु गर्भित है उसमें कुछ इतहुयेका सम्बंध नहीं है औरभी इस बात का प्रमाण देखी
 इक्कीसवीं पूर्वार्ध की अधिकोक्ति में (यह वचन (ब्राह्मणां विपन्नानां योयितांगो
 ग्रहेपिच आहवेपि दतानां च एकराधमशौचकं) लिखचुके हैं) उमी जधे गौतम का

वचनहै उनमें हत शब्दसे निपटसरेहुयेकाही अर्थ है पर यहाँ नहीं और उन वचनों से युद्ध में मरेहुयों का नियम सामान्य भावसे कहिचुके हैं यहाँ उसका सम्बन्ध निपट कुछ नहीं है फिर गऊ ब्राह्मण के निमित्त से संग्राम को विशेषता देनेकी अपेक्षा कहाँ रही और भी उसीजघे मनुका वचन देखौ कि संग्राम के मरेहुये का सपराहों को सद्यःशौच और तत्काल यज्ञ करना लिखिचुके फिर उस प्रकारका प्रसंग यहाँ इतनी दूर दुवारा क्यों कर आसक्ता था अर्थात् यह प्रकारा उससे जुदाहै इसका उस का परस्पर भी संबंधनहींहै—और विजलीसे मरजाना आदि अकाल मृत्युका निपटारा छठी अधिकोक्ति में होचुका तहाँ देखौ—किंतु यहाँ विजली से घायलहुये जीवतेका प्रसंग है कि वह सूतक में भी ज्ञान करनेसे मजबूर है तिससे इनअत्रोक्त सब नियमों के प्रसंग में हत शब्दका अर्थही मीत न समझना—अथवा जो आधुनिक निर्राति के विचार में कुछ अंतर पायाजाय तौभी विवेक्ता लोग समायुक्त होकर दो अर्थों में जिसको चाहें तिसको मानें कुछ विशेष्य आग्रह से प्रयोजित अपने को नहीं हैं ॥ अब इसकी अधिकोक्ति देखौ ॥ २७ ॥

२७ अधिकोक्तिः—सहीनाम धरती का पति राजा ऊपर कहागया तहाँ सही शब्दसे यद्यपि सकल पृथ्वी समझी जाती है तथापि समस्त भूगोल का एक राजा होना सम्भव नहींहै इसीलिये योगीश्वर के श्लोक में सहीपतीनां यह अनेक पतियों का बहुवचन कहाहै तिससे एकएक देशके जुदे जुदे भूभराडल निश्चित होते हैं कि जिस किसी देश के पालन में सभी आदि कोई राजा अभियेक से संयुक्त कियागया हो वही सहीपति कहाता है - सहीपतियों को सूतक नहीं लगता यह नियम केवल इसलिये है कि प्रजाकी रक्षा आदि विशेष बड़ेकाम जिनकी राजाके सिवाय कोई और नहीं करसक्ता तिनका बिध्वंस न होजाय तिससे यह भी तात्पर्य है कि जिस राजा को दानमान सत्कार व्यवहार दर्शन आदि जिन विशेष कामों के प्रभाव से अशौच मानने का अवकाश न हो वही राजा केवल उन्ही कामों मध्ये सूतक न माननेका अधिकारी होसक्ताहै अन्यथा पंचमहायज्ञ आदि सभी कामों मध्ये सूतक न मानना कोई नियम नहीं है इसका प्रसारा भी अत्रोक्त मनुका वचन है—यथा= राज्ञोमहात्मिकस्थाने सद्यःशौचंविधीयते प्रजानांपरिसार्य मासनंचावकाराण= अर्थात्—राजाको बहुत बड़े कार्य की आवश्यकता के स्थानपर सद्यःशौच कहाजाता है दृष्टान्त जैसे प्रजाओं की विशेष रक्षा के लिये इसमें आसन भी बड़ा कारणा है—यहाँ आसन शब्द से कई अर्थ लिये जासक्तेहैं जैसे सूतक में आसन सिंहासन गद्दी पर

वैदेविना रक्षाके व्यवहार नहीं निर्णाय होसकेहे या जैसे सूतक होनेपर भी आवश्यक राजगद्दी का तिलक अभियेकोत्सव किये बिना प्रजा वर्ग में गदर खड़ा होजाना सम्भव है या जैसे राजनीति के यत्नपूर्णों में (संविनीविप्रहोयान सासनं धैवमाययः) आसन भी एक गुण है कि शत्रुके दुर्गदेश आदि को घेरिके आसन करि बैठे बिना संप्रति प्रजा को रक्षा होनी सम्भव नहीं है उसीसमय यदि सूतक उत्पन्न हो कोकर माना आसक्ताहै इत्यादि=यही प्रमाण गौतमनेभी कहा है=यथा=राजांचकार्याविघातार्थ=अर्थात्-राजाओं को सूतक नहीं यह केवल इसलिये है कि बड़ेकामों का विघात न होने पावै ॥०॥ यह ऊपर लिखा गया था कि जिसको राजा चाहै तिसको भी सूतक नहीं लगता है इसमें विशेष अपेक्षा संधी पुरोस्ति आदिको होती है सो तो लिखी गई पर उनके सिवाय और भी अनेक ऐसे होतेहैं जिनके बिना राजा के कामनहीं चलसके हैं सो सब अगले वचनों में देखी=यथाह प्रचेताः=कारवःशिल्पि नोर्धैद्या दासीदासास्तथैवच राजानोराजभृत्याश्च सद्य गौचाःप्रकीर्त्तिताः=अर्थात्-प्रचेताने कहाहै कि एक तो कारु पेशेवाले सूपकार आदि और शिल्पी चित्रकार छीपी रंगरेज आदि और वैद्य प्रसिद्धे दास दासी राजालोग तथा राजाओं के भृत्य वर्ग अनेक मुसाहिब सेवक आदि ये सब सद्य गौचा कहेंहे कि उसी समय शुद्ध हो जातेहैं ॥०॥ यह बात समझनी आवश्यक दहरी कि इन लोगोंका अशुद्ध न होना किनब्रातों में मानाजाय किनमेंनहीं सोकहितेहे कि जिसजिसका जोजो मुख्यकर्महै जिसके नामसे प्रसिद्ध हों कि जिसका होना अन्यके द्वारा सम्भव नहीं उसी कर्म के मध्ये सूतक नहीं लगता-इनके दृष्टांत भी प्रत्यक्ष रेल तार डाक आदि कारखानों से समझते इसी लिये अशोक्त विष्णु का वचन है=यथा=नराज्ञांराजकर्मोपातव्रति नां व्रतेनसवित्राणां सघ्नैककारुणांकारुकर्मणि=अर्थात्-राजाओं को मुख्य राजकर्म के मध्ये सूतक नहीं है चांद्रायणा आदि व्रतवालों की अपने व्रतके मध्ये नहीं है सत्र यज्ञ कर्त्ताओं को सत्र में सूतक नहीं कारीगर आदिको अपने मुख्य कामों में सूतक नहीं-जब यह नियत विषय ठहिरा तो यह भी तात्पर्यहै कि नियतकामोंके सिवाय अन्यत्र सूतक इनको भी होताहै दृष्टांत जैसे चिकित्सक चिकित्सा कर्म करने के स्थलपर कुनेयोग्य शुद्ध ठहरैगा अन्यत्र अपने घरमें वह भी अशुद्ध है=यही भाव शातातप ने दर्शायाहै=यथा=मूल्यकर्मकराःशूद्रादासीदासस्तथैवच स्नानेगरीरसंस्कारेऽप्यहकर्मण्य दूयिताः=अर्थात्-मजूरीसे कामकरने वाले शूद्र और दास दामी ये विराने घरके कामों में अपने स्नान मध्ये और शरीरके शुद्धिरूप संस्कारों मध्ये अद्-

यित हैं इनसे काम करानेमें दौनहीं-विज्ञानेय कहते हैं कि इन दासादिकोंकी बुद्धि अशुद्धि मध्ये विशेष उपाय कोई नहीं है कि इनको छूनेसे कोई वचनके द्योति बहुत गृहस्थों के काम धन्धे इनकीविना होभीनहींसके हैं तिससे जिनकासोमें छूनेका वचाउ निषेध न होसक्ता हो उन्हीं में शुद्ध समझना सर्वत्र नहीं-इसी आशयपर किसी स्मृति का यह वचन है-यथा-सद्यः स्पृश्यागर्भदासो भक्तदासस्य हाच्छुचिः-तथा-च कित्सको यत्कुरुते तदन्येन न शक्यते तस्माच्चिकित्सकः स्पर्शोऽशुद्धो भवति नित्यशः-अर्थात्-गर्भदास गृहजात नामक जो घरकी दासीके उदरसे उत्पन्न हो-तिसको किसी कालमें जब स्पर्श लगा हो तो वह शीघ्रही छूने योग्य है क्योंकि वह भी धृक् मनुष्योंके अनु-रूप है उसके छूने बिना बहुतेरे कामोंकी हानि होगी-परन्तु भक्तदास जो अन्नमायपाने के स्वीकारसे दास होता है वह तीनदिनमें शुद्ध होय (यहाँ सद्यः शीघ्रके प्रसंगमें तीनदिन का कोई सिद्धांत विशेष नहीं पाया जाता है या यह श्लोकही असंगत हो विवेकी पुरुष आपही समझें) तथा-यह दूसरा वचन पूर्वोक्त वृथात् में प्रसारित है कि वैद्य जिस चिकित्सा रूपा कामको करता है वह और किसीसे नहीं किया जासक्ता तिससे वैद्य अपने कामके स्थलपर छूनेमें हमेशा शुद्ध माना जाता है ॥ २७ ॥

(अन्योपि सद्यः शौचाः पुरुषविशेषाः कर्मस्थलानि सद्यः शुचीनि)

ऋत्विजादीक्षितानां च यज्ञिककर्मकुर्यताम् । सति व्रतित्वाचारिदातृब्रह्मविदो तथा २८

दाने विद्याहेयज्ञेयसंग्रामे देशविद्वये । आपद्यपि हि कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते २९

अन्यार्थः-यज्ञीय कर्म करतेहुये ऋत्विजों तथा दीक्षितों को और सभी ब्रह्मचारी-दाता-ब्रह्मवेत्ता-२८ इनकोभी सद्यः शौच कहा जाता है और वान हैं-विवाह में-यज्ञमें-संग्राममें-देशविप्लवहोनेमें-कष्टात्मिक आपत्तिमेंभी सद्यः शौच होता है २८, २९ अभिप्रायः-ऋत्विज वे कि जो किसी यज्ञमें वरदा किये गये हों-दीक्षित वे कि जो यज्ञ आदि किसी प्रकार की दीक्षामें संस्कारसे संयुक्त हो रहे हों-और भी (यज्ञियकर्मकर्तृत्वात्) जे कोई पुरुष यज्ञ संबन्धी कार्य में ऐसे लगे हों कि जिनके बिना वह काम किसी और से होना संभव न हो तिनको भी समझलेना-सभी जो सब नाम यज्ञमें लगाहो अर्थात् निरंतर प्रयोग की रीतिसे अन्नदान करने में प्रवृत्त हो चाहें निज अपनी ओरसे या किसी सन्नकर्ता स्वामी ने नियुक्त किया हो तौभी उसको सभी समझना जैसा भगडारा करानेवाला स्वामी और उसी भगडारे का अधिकर्ता-व्रती उनको समझना जो कच्छुचान्द्रायणा आदि व्रतों में प्रवृत्त हों या स्नातक व्रत वाली को निमित्तजो प्रायश्चित्त होते हैं तिनमें लगे हों ऐसेही चातुर्मास्य आदि अनेक महाव्रतों

में लगेहों सो ब्रती कहातेहैं ब्रह्मचारी नैयिक जो विवाह न करै और सदा ब्रह्मचर्यहीमें रहताहो सो और दूसरा ब्रह्मचारी उपरुर्वाणा जो उपनयनसे पशुचात किसी नियमित अवधिके लिये ब्रह्मचर्य बाराण करै और वह भी कि जो विद्या संग्रहके निमित्त किसी गृहपाठशाला में नियमों से नियुक्तहो समझना दाता वह कि जो हमेशा देतारहता तथा ओरोसे दिलवाता हो पर आप किसी से प्रतिग्रह न लेताहो ऐसे वैखानस वान-प्रस्थ आदि बहुत होतेहैं ब्रह्मवेत्ता यती संन्यासी परिव्राजक कहातेहैं और वेभी कि जो वेदांत आदि शास्त्रोंके आराधन में अहर्निश तत्पर किन्तु पठन पाठन आदिमें रंगे रहतेहों या पारायणा आदि प्रयोग में लगेहों समझने (नैयिकब्रह्मचारी दाता वैखान-नस ब्रह्मवेत्ता यती ये तीनों सदाही सर्वत्र शुद्धहोतेहैं किसीविशेष कार्यके स्थल पर कि जैसा बैद्यको चिकित्साके स्यजहीपर शुद्ध कहा तैसी इनकेलिये विशेषता नहीं कही जासक्तीहै २७ ॥ आगे उर्नातिस श्लोकसे जो दान विवाह यज्ञआदि को सतक नहीं लगता कहा तिनके निर्णय इसी अविकोक्ति में देखना और थोडासा निर्णय पहिले सबहवीं अधिकोक्तिमें लिख चुके तहांभी गृहस्पर्ति आदिकेवचन देखो ॥ २६ ॥

२६ अधिकोक्तिः—दान में जो मद्यः शौच होजाना कहा सो केवल उसी द्रव्यकी अपेक्षा में समझना जो पहिले से संकल्प कियाहुआ देतेचले आतेहों जैसा एक सदा-वर्त अक्षपर्वत भगडारा आदि प्रसिद्ध हैं इसीका प्रमाण भी अगोक्त ऋतुस्मरणावाक्य है सो देखौ=पूर्वसंकल्पितद्रव्यदीयमानं न दुप्यति=अर्थात्—पहिला संकल्प कियाद्रव्य जो देरहेहों तिसको दोयनहीं लगता=और भी इसीमध्ये स्मृत्यंतर वचनसे विशेषता है=यथा=विवाहेत्सवयज्ञादिष्वंतरा मृतसूतके शेषमक्षरपरें दैयदातृभोक्तृ प्रचनस्पृशेत=अर्थात्—विवाह में बड़े उत्सवों में यज्ञों में (कि जो जो प्रथम से प्रारंभ हो चुकेहों तिनकी श्रुत्यावधि पूरी होनेकेबोचमें) यदि कोई मरजाय या जन्मे तो उससूतकमेंभी जो पहिले नवे कामों का बचाहुआ अन्न हो तिसमें मृतकियों का स्पर्श बचा कर गैर लोकोके हाथसे दिलाया चाहिये पर मुख्य दाता मालिक और भोजन करनेवाले भी कि जो जो सूतकीहुयेहों तिनका स्पर्श न करै=यही प्रमाण अगिले वाक्यसे मिलता है=तथा स्मृत्यंतरं=यज्ञसंभृतसंभारे विवाहेत्याहकर्मणि इत्यत्र मद्यः शौचं प्रकृतं बोध्यं=अर्थात्—सचय होचुकेहैं संभार सामग्री जिसके ऐसे प्रारंभ कियेहुये किसी यज्ञ या विवाह या श्राद्ध कर्म द्योत्सर्ग आदि में सतक उत्पन्न होजाने पर भी मद्यः शौच कियाजाता है यहपहिले वचनमें आचुका सौंरे समझलेना—इनवचनों में विवाहके उपलक्षणा भागसे और भी बड़ेबड़े संस्कार यज्ञोपवीत मुण्डन आदि समझलेने कि जो

सूतकउत्पन्न होनेसे पहिले प्रारम्भ होचुके जिनके बीचमें सूतक होजाय तौ उनमें भी सद्यःशौच साना जायगा—और भी इन वचनों में यज्ञ शब्दक उपल सारामें किसी दे-
वताकी प्रतिया या बागीचेकी प्रतिया या कोई बड़ा उत्सव उद्यापनआदि बड़ेबड़े
सब काम समुभिल्लेने जो पहिलेसेआरंभ होचुके हों सो सूतक आपरने से रुकि नहीं
सकते किंतु सूतकमें नवीन आरंभ नहीं कियाजाता यह तात्पर्य ठीक है—इतना
भी नियम अगिले वचनसे मिलताहै—तथाह विष्णुः—नदेवप्रतिष्ठोत्सर्गविवाहेयु नदेश
विभ्रमे नापद्यपिचकयायामाशौचं—अर्थात्—विष्णु ऋषि कहिते हैं कि न तौ देव प्र-
तिया में सूतक लगता है न उत्सर्ग व्रतोद्यापन आदि में न विवाह में न देश की भगे-
हरि होनेमें न कष्टरूपी आपाति में सूतक है ॥ योगीश्वर ने मूलश्लोक में संग्राम के
समय भी सद्यःशौच होना कहा उसके अनेक तात्पर्य हैं तिनमें एक यह भी है कि
जैसा आश्वलायन आदि ऋषियों ने युद्धको सज्जकर सेना चलती होनेसमय प्रारथा-
निक शांतिरूपी होम जप यज्ञ करने कहेहैं तिनका भी करना सूतक आपरने से रु-
कता नहीं इसी प्रकार संग्राम के और भी कोई काम नहीं रुकते और यह तात्पर्य
तो प्रत्यक्ष है कि युद्ध करते समय जो किसीको सूतक आपरे तब उसके हेतुसे आ-
वश्यक युद्ध रोका नहीं जाता इसीलिये सद्यः शौच होजाना कहाया ॥ मूलश्लोक
में देशविप्लवके समय भी सूतक नहीं लगता कहा था—देशविप्लव गदर का नास है
जो अपने राजमें उठिखड़ाहो या दूसरा राजा चढ़ि आनेसे लूटमार होरही हो और
जो विस्फोटक सहासारी आदि देशमें अत्यंत भयानक रूपसे फैले हों तौ भी देशवि-
प्लव कहाजाता है इनकी शांतिके उपाय करने योग्य कामोंको सूतक नहींलगता
है तिससे ऐसे कामों में सूतकीलोग भी प्रवृत्त होने कहे हैं इसी लिये सद्यःशौच क-
हाते हैं ॥ देशविप्लव के बिना भी तीर्थ आदि बिरले स्थलों पर मौजूद होनेवालेको
सूतक नहीं सताता है यह अगिले वचनमें देखो = तदाह पेदोनसिः = विवाहदुर्गोय
ज्ञेयुयात्रायांतीर्थकर्मणि नतवसूतकंतद्वत्कर्म यज्ञादिकारयेत् = अर्थात्—विवाह के
स्थलपर जो किसी बराती ने अपने को सूतक लगा सुनि पाया हो यद्वा उसी बरात
का बराती कोई मरजाय या दोनों समधीयों में से किसीके घर तात्कालिक मौत
होजाय तौ भी फेर परने नहीं रुकि सकते हैं न किसी को उस जघेपर उस भांति का
सूतक है कि जैसा कोरी दशामें होताहो—एवं दुर्गस्थान राजभवनमें जेकोई अधिकारी
कार्यकर्ता आदि आवश्यक राजकाजों में लगेहों तिनको सूतक आपरने से भी उस
जघेपर कि जब तक वह जरूरी कार्य पूराहोय नहीं लगिसकता है—एवं यज्ञ होतेहुये

उस स्थलमें यदि कोई सरजाय या सूतक सुनिपावै तो उसजघे उसकी सूतक नहीं लगता है न यज्ञका पूरा करना रुक सकता है-एवं यदि कोई लवी यावामें प्रवृत्त हो तिसको सूतक सुनि पावे या पासही मौत होजाने से भी मार्ग में वैसा सूतक नहीं लगता है कि जैसा घरपर होताहो इसी हेतु पांथ भी सद्यःशौच कहाते हैं- एवं तीर्थ कर्म परिक्रमा स्नान दान याद्व आदि जो जो कुछ होतेहैं तिनके करनेवाले तीर्थया- धियों को उस जघेपर वैसा सूतक नहीं लगताहै कि जैसा घरपर होता तिमसे यात्री अपने यज्ञादि कर्मोंको न रोके चाहें सूतक सुनिपाया यद्वासाथही मौतहुई हो सद्यः शौच करिके तीर्थ संबन्धी यज्ञ करवें॥ कथदशा की आपत्तिमें भी सद्यःशौच कहा था उसका यह तात्पर्य है कि जब कोई असाध्य महा व्याधिसे पीडित होकर मरने की दशापर उपस्थित हो संकर दूर करने के निमित्त से कुछ तुला आदि महा दान करने को समुद्यत हुआ उसी अवसरमें यदि सूतक भी आपरै तो वह सद्यःशौच होकर दानकार्य को करसक्ता है न उसमें दान देनेवाले को विचार है न लेनेवालेको ॥ परंतु ऐसा दान लेने वालेका यह विचार है कि जिसकी जीविका वृत्ति न चलतीहो ला- चार होकर माता पिता स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बके भरण हेतु कुटुंब छोड़ि विदेशभ्रमरा करना पगाहो तो इस प्रतिग्रहके लेनेसे भी सद्यःशौच कहाताहै ॥ तथापि यह सद्यःशौच उसके लिये समुभ्मनी जिसको सद्यःशौच किये बिना पीडा न मिट सकती हो कि जिसके घर दूसरे दिनके योग्य भी अन्नका संचय नहीं रहिताहो किंतु जिस के घर एक दिन खाने योग्य अन्नधन संचित रहा करता हो तिसके लिये एक दिन शतिका सूतक सेसे प्रतिग्रह के लेनेसे होताहै एवं जिसके घर तीनदिन खानेयोग्य अन्नधनका संचय रहिताहो तिसको सेसे प्रतिग्रहसे तीन दिनका सूतक समुभिलेना एवं जिसके चार दिन खाने योग्य अन्न धन संचित रहा करता हो सो कुम्भी धान्य कहाता है कि कुंभमात्र नाजवाला (या बर्य मात्र के निर्वाह योग्य रहिता हो तीभी कुंभीधान्य कहाता है) परच विज्ञानेअने इस व्यवस्थामें चारही दिन का नियम रक्त्वाहै तिसके लिये चारदिनका सूतक होताहै इससे आगे तीनवर्यके निर्वाहयोग्य या तीनसे भी अधिक नाजवाला ब्राह्मण कुशूल धान्य कहाताहै कि खत्ती ब्रुवारी भर नाजवाला तिसके लिये पूरे दशदिनका सूतक उसी प्रतिग्रह के लेनेसे होता है यह समुभि लेना ॥ इसीलिये मनुने अग्रोक्त नियम कियाहै = यथा = कुशूलधान्य कोवास्यात्कुंभीधान्यकणववा त्र्यहहिकोवापिभवेदप्रवस्तनिकणववा (इत्येवंचतुर्विधब्राह्मणगृहस्याभिप्रायेणैवसखाहाये) दशाहंशावमाशीचंसपिरादेयुविदीयते

अवक्संचयनादस्थान्यहमेकाहमेववा = अर्थात्—ब्राह्मण कुसूल धान्यक हो या कुंभीधान्यक हो या अथैहिक तीनदिनको निर्वाह योग्य अन्नवाला हो या अश्व-
 स्तनिक जो उसी दिन कमाकर खालेता हो दूसरे दिनके योग्य संचय न करसके
 (सेसेचारविध गृहस्थो ब्राह्मण के अभिप्रायसे ही उन्हीं मनुने अगिला नियमकहा
 है कि) सर्पिण्डों में मरणा का सूतक दश दिन होता है या अस्थि संचय कर्म से
 पहिले जितनेदिन होतेहों तभी तक सूतक या तीनदिन सूतक या एकदिन सूतक—
 इन्हीं चार प्रकारों को अनन्तरोक्त चारों गृहस्थों के निमित्तयथाक्रमसे समुभिलेना
 किंतु ये संकोच बाले छोटे आशौच कुछ सबके लिये नहींमानेजासकते हैं—औरभी
 स्मृत्यंतर में समानोदकों के निमित्त भी छोटे नियम के आशौच लिखे देखे हैं कि
 पक्षिणी राति के बारह प्रहर एक दिन के आठ प्रहर सद्यःशौच जो तत्काल शुद्ध
 हो जाय—परंतु सोचनाचाहिये कि जब समानोदकता के निमित्तपर लिखे गये तो
 ये नियम जीविका के संकोच मध्ये नहीं जोड़े जासकते हैं—और वहभी कि जोजो
 नियम अभी ऊपर लिख चुके सो उन्हीं ब्राह्मणों के निमित्त में समझने कि जिनकी
 प्रतिग्रह लेने बिना या भिक्षा आदि किसी और वृत्तके साधे बिना पीडा नहीं मिट
 सकती हो किंतु ऐसी पीडा से रहित ब्राह्मणों को भी आशौच का संकोच करना
 योग्य नहीं है फिर अन्य वर्गों की क्या कथा ॥ ० ॥ तर्कविवाद—अब यहाँ से
 आगे एक तर्कना रूपी शंका से विवाद है तिसकी व्यवस्था नैयायिक परिपाटी के
 अनुसार खंडन मराडन से बर्णन करी जायगी—यथा—ननु एकहादब्राह्मणःशुद्धो
 द्योग्निवेदसमन्वितः ग्रहात्केवलवेदस्तुविहीनोदशभिर्दिनै रित्यादिस्मृत्यंतरवचनपर्या
 लोचनयाध्ययनज्ञानानुष्ठानयोगिना नैकाहादिनाशुद्धिरित्येवंकस्मान्नेप्यते-उच्यते—
 दशाहंभावमाशौचसंपिंडेषुविधीयते । इति सामान्यप्राप्तदशाहवाचपरस्सर मेवह्येका
 हादब्राह्मणःशुद्धेर्दितिविवायकंभर्वात—अर्थात् वादी तर्क उवाता है कि (ननु) क्यों
 जो अन्य स्मृतियोंमें ऐसे वचन भी उपस्थित हैं कि ब्राह्मण एकही दिन सूतक मना
 हो शुद्ध होजाय जो अग्निहोत्र और वेदाध्ययन से संयुक्त हो जो केवल वेदही से युक्त
 हो सो तीन दिन से शुद्ध होय जो दोनोंसे विहीन हो सो दश दिनों से शुद्ध होय इ-
 त्यादि अनेक वचनों की पर्यालोचना करने से अध्ययन ज्ञान अनुष्ठानों के संयोग
 वालों को एकही दिन आदिसे शुद्धिपात्रे जाती है इसलिये ऐसाही नियम क्योंनहीं
 माना जाता है—उत्तर कहियतहै कि—सर्पिण्डोंमें मरनेका आशौच दशदिन कहा
 जाता है यह एकही नियम जो सामान्य भावसे सबके लिये पाया जाता है तिसके

(वाधपुरस्सर) रोक रोक पूर्व कही वह वचन सिद्ध नहीं होता कि ब्राह्मण एकही दिनसे शुद्ध होजाय इत्यादि। क्योंकि इसमें यह कारणा है-कि-वाधकस्यचानुपपत्ति निवंधनत्वाद्यवत्यबाधितेऽनुपपत्तिप्रशमो न भवति तावद्वाधनीयं = अर्थात् — वह वचन जो इसका रोकने वाला बाधक तथा आप अबाधित दहरा तिसके भी (अनुपपत्ति निवंधनत्व से) अयुक्त होनेके हेतु से जबताई उसी (अबाधित में) बिना रोकेंहुये में उसकी असत्य रूपी शंका का नाश नहीं होता तबतक वह आपही (बाधनीय) रोकने योग्य दहरता है कि जबतक अपनी सचावर का प्रमाण न देसके—अथवा—यहभी अर्थ होता है कि वह वचन जो बाधित किया गया रोक रोक गया तिसके लिये (आवत्यबाधिते) जितना अबाधित में दूसरे की अनुपपत्ति का नाश नहीं समाता उतनाही वह बाधनीय होता है उससे अविक नही—अतः कियदनेन वाध्यं इत्यपेक्षायां अपेक्षितविशेष समर्पणसमस्य अग्निवेदसमन्वित इति वाक्यशेषस्य दर्शनाद् अग्निवेद विधयेऽग्निहोत्रादि कर्मणि स्वाध्याये च च्यवतिष्ठते न पुनर्दानादावपि गवंचाग्निवेदपदयोः कार्यान्वित्वं भवति । इतरथा येनाग्निवेदसाध्यं कर्म कृतं तस्यैकाहाच्छुद्धिरिति पुरुषविशेषोपलसरात्त्वमेव स्यात् न चैतद्युक्तं = अर्थात् — इस कारणा से आगेजो यह समझा चाहो कि कितना इस करके वह बाध्य होसकता है तो इस अपेक्षा में अपेक्षित पदार्थ का देसकने वाला जो उस वचन में (अग्निवेदसमन्वितः) यहवाक्य शेष रहा तिसके विचारने से यह प्रतीत हुआ कि अग्निहोत्र आदि कर्म और वेदाध्ययन में वह वस्तु उपस्थित है कि इतनाही बाध्यसंबंध है किंतु दानादिकोमें संबंध उसका नहीं और जब यही निश्चित होगया तो उन अग्नि और वेद दोनों पदों का कार्यान्वित्व खड़ा होता है कि इन्ही से कामोंवालेका वह नियम है तिसके स्वीकार में अन्य प्रकार से भी दुरासा आता है कि जिसने अग्नि और वेदवाला कर्म कि या तिसकी एक दिनसे शुद्धहोभी यह किसी बिले पुरुष विशेष का उपलसरात्त्व माना जाय सो भी ठीक नहीं है तिसका हेतु आगेकहेगे—एवंचमति (प्रत्युद्देशाग्निमुक्तियाः) (वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाप्रच्युतिनोदिताः) तथा ब्राह्मणस्य स्वाध्यायादिनित्यवर्त्यसद्यः शौच मित्येवमादिभिर्मन्वादिब्रह्मचरैकवाक्यताभवति ततः उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं भुज्यते इति दशाहपर्यंतं भोजनादिकं प्रतियेव्यक्तियमादिब्रह्मचरैर्विरोधोपसिद्ध्यति = अर्थात् — ऐसा होनेमें भी कोई विशेषता न दहरी क्योंकि अग्रेक्त वचन जो पहिले सब लिख चुकेहैं कि अग्नियों में जो क्रियार्थे होती हैं तिनको नहीं रोकें) वैतानिक उपासना वाली क्रियार्थे भी वेदोक्त करनी चाहिये) तथा

ब्राह्मण को अपना पाद आदि निवृत्त होने के हेतुसे सद्याशीच होना ये सन्वादिकों के ऐसे वचनों से एक वाक्यता भी होती है कि जो तात्पर्य इन वचनों का वही उसका होगा तिससे उपरालू यह वचन भी सत्रहवीं अधिकोक्ति में आचुका है कि दोनों सूतकों में सूतकी कुलका अन्न दश दिन नहीं भोजन करते हैं इसतरह दशदिन पर्यंत भोजनादि का नियेव करते हुये यमादिकों के वचनों से अविवेक भी सिद्ध हो ता है ॥ इसी कारणा से यह सिद्धांत समुक्ति लेना कि आशीच का संकोच विधानजो कुछ कहा गया कि ऐसे थोड़े काल से भी शुद्धि हो सकती है सो वह संकोच किसी बिरले स्थलमें बिरले पुरुष की अपेक्षा सिद्ध होता है सब लोगोंको सामान्य उसका वर्तवा करना व्यवहारिक नहीं है तिससे इसी तर्क विवाद के विस्तार द्वारा संकोच का निवारण करना दर्शाया गया कि जहाँतक होसके सूतकों के संकोच पर अवि क दृष्टि न देनी चाहिये बल्कि यह वेदस्वाध्याय संबंधी सद्यःशीच विधान जो कहा गया सो बहुत वेदके पाठाभ्यास वालेको जहाँ उसके त्यागने सेकने से क्षेय प्रतीत होताहो तहाँ समुक्तना सर्वशून्य नहीं क्योंकि और सब सामान्यके लिये सत्रहवीं अधि-
 कोक्तिमें लिख चुके हुये अग्रोक्त वचनसे स्वाध्यायका भी रोकना कहागया है (दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते) अर्थात् सामान्य मर्यादा यही है किहीम दान प्रतिग्रह स्वाध्याय इनको सूतकमें न जारो रखे—एवं वाईसवें मूलश्लोक सेया उससे पहिले पीछे ब्राह्मण आदिवर्गोंको जिसका जितना सूतक लिखागया सो सब उतने दिनोंके अनंतर ज्ञान करके शुद्ध होते हैं किंतु उसकालका अति क्रम करने मात्रसे नहीं शुद्ध होतेहैं=यथाह मनुः=विप्रःशुद्धात्यपःस्पृष्टास्त्रियोबाहनायुवश्च वैश्यःप्रतोदप्रमीन चार्यपिंशूःकृतक्रियः=अर्थात्—दशदिन आदि स्ववर्गोचित अवधि तक यथोक्त कि यारंक्रियाहुआ ब्राह्मण जलस्पर्शकरके शुद्ध होताहै(यहोजलस्पर्श कहिनेसे ज्ञानया आचमन न समुक्तना किन्तुकोई क्रिया विशेष होगी जो प्रेत कर्म संहिता से मालूम होसक्तहै)एवंसभी सर्वाक्रिया कर्मक्रिये पीछेसवारी औरशस्त्रों का स्पर्श करतेसे शुद्ध जानाजाताहै यहभी कोई क्रिया विशेषहै=एवं वैश्यभी सर्वाक्रियारंक्रियाहुआ पीछेसे आर पैनाचातुक और बागडोर नाथ आदि की स्पर्शरूपी क्रिया विशेष करके शुद्ध समझाजाता है=एवंशूद्र लाटीका स्पर्श करके शुद्ध होताहै= यहाँतक दोनों श्लोक की अधिकोक्ति पूरी हुई॥ ८॥ ८॥ ८॥ यहाँ तक कुलव्यापिनी अशुद्धिके प्रायश्चित्त पूरे हुये कि जिनसे एकमात्र अनेक शुद्ध होतेहैं=इसके आगे प्रत्येक पुरुष व्यापिनी शुद्धि कही जायगी कि जहाँकोई किसीके स्पर्श प्रसंगसे अशुद्ध समझागयाहो ॥ ८०८॥

सूतकांविनाप्यशुचिस्पर्शदोषकथने चतुर्थःपरिच्छेदः ४



इस परिच्छेद में उस भौतिके प्रायश्चित्त कहेजायेंगे कि जो अनेक अशुद्धांका स्पर्शकरै तिनकी शुद्धिहोसके इनवातोंसे हस्वक्तब्रह्मतर रहतीहै ॥

(स्पर्शाद्यशुद्धिशोधनप्रकारः)

उदक्याऽशुचिभिः स्नायात्तत्स्पृष्टस्तेरुपस्पृष्टोत् । अविलंगानिजपेक्षैवगायत्रीमनसात्तरुत् ३० ॥

अन्तरार्थः—उदक्या. अशुचिमात्र. इनसे संस्पृष्टहूआ स्नान करै. तिनसे हुआ उप-स्पर्श न करै अविलंगोंको जपे गायत्री को भी एकवार मनसे जपे ॥ ३० ॥

अभिप्रायः—उदक्या राजस्वला अशुचिमात्र जो जो बहुत अशुद्ध होते हों जैसे मुर्दा चगडाल पतित सूतिका आदि अनेक समुझने और पूर्वोक्त मुर्दाके सूतकी भी समुझने इनमें किसीका स्पर्श जिसको होजाय सोस्नान करके शुद्ध होय—कदाचित् स्नान जिसने नहीं किया ऐसे कुपेहुयों को यदि कोई छुडजाय तिसको स्नान की अपेक्षा यद्यपि नहीं है परन्तु उपस्पर्शन अर्थात् आचमन करै और अविलंग अर्थात् आपोहिद्या आदि संध्या विधान में लिखेहुये मंत्रवाक्य तीनवार जपे और गायत्री भी एक बार मनसे जपे (स्नान किये बिना इतना कर्तव्यभी हाथपैर धोके मुख मंजन करके करना होगा यह समझ लेना और भी इसविधि में शूद्रका पूरा अधिकार नहीं है क्योंकि सध्याकेमंत्र और गायत्री जपनेकी आज्ञा लिखी तिससे तीन वर्णोंका धर्म दर्शाया है विशेषकर ब्राह्मणाका—अन्यथा जिसकी उक्त मंत्रोंका बोध न हो तिसको उसी आचमन के अर्थ से मुखमंजन और हाथ पैर धोना आदि आवश्यक है ॥ ३० ॥

३० अधिकोक्तिः—व्याकरणा काव्यदो रीतिसे एक शंकाहै कि मूल प्रलोक में (उदक्यादिसंस्पृष्ट स्नायात्) इग एकवचनसे निर्देश किये हुये को (ते) इस बहु वचन में कैसे परामर्श किया जाय—उत्तर समाधान—यह शंका यद्यपि दीक्ष है तथापि हेतु गर्भित आशय दुंदने से विरोध नहीं है क्योंकि उदक्या और अशुचियों से कुपेहुये से उपरालू भी अनेक ऐसे हैं कि जिनको स्नान करना चाहिये तिनको

यदि स्नान क्रिये बिना स्पर्श होजाय तोभी आचमन विधि जो ऊपर लिखी सो कर्तव्यहोती है तिनके नाम चित्र अगिले वाक्य से देखौ किन्तु उन्हीं के हेतु गर्भित आशयसे (तैःस्पृष्टःउपस्पृष्टश्च) उनसे हुआ हुआ आचमनकरै यह बहु वचन भी परामर्श होता है विरोध नहीं = तदाह पाराशरः = दुःस्वप्नेमैथुनेवांते विरिक्तेश्वर कर्मणि चित्तियूपशमशानास्थानांस्पर्शनेस्नानमाचरेत् = तथाचमनः=वांतेविरिक्तःस्नात्वातु घृतप्राशनमाचरेत् आचामेदेवभुक्त्वाक्षं स्नानमैथुनिनःस्मृतम्=अर्थात्-खोंद स्वप्न होनेमें या बुरी तरह सोनेमें- मैथुन करने में- बस करके में- दस्त लगेहोनेमें- बार बनवाने में- चित्ता के छूनेमें- यूपनाम पशुहिंसा के स्थानमें गड़े हुये स्तम्भ की छूनेमें- प्रमशान भूमिपर होआनेमें- हाड़ोंकी छूनेमें- स्नान करै तब शुद्धहोय = ऐसाही मनुने कहाहै कि = बसन किया हुआ पुरुष-विरचन जुलाव किया हुआ पुरुष- स्नान करिके घी चाटे तब शुद्ध होय- और अन्न भोजन करिके आचमन कुत्तामांसी करै तब शुद्ध होय- परंतु मैथुन बालेको स्नान करना चाहिये यह कहाहै = परंतु यह स्नान उस मैथुन के साथमें समुक्तना जो स्त्री के ऋतुकाल होने बाव किया गयाहो- अन्यथा ऋतुकालके न होने में जो मैथुन किया जाता है तिसकी शुद्धिस्नान किय बिना भी होसकती है = तदाह टटस्पतिः=अनृतोत्तियदागच्छे च्छौचंमूत्रपुरीषवत्= अर्थात्-ऋतुकाल के अभाव में जो स्त्री से संभोग करै तो राह मूत प्रसालन करने की रीतिसेही शौच करिके शुद्धमाना जासक्ता है-तथापि बिरले कसमयपर मैथुनकरनेसे ऋतुकाल के बिना भी स्नान करना कहा है=तथा स्मृत्यंतर वचनं=अष्टस्यऽचक्षुर्दृष्ट्याद्विवापर्वीरामैथुनसकृत्वासचैलंस्नात्वाचवारुणीभिप्रचमार्जयेत्=अर्थात्-अष्टमी चौदस की रातिमें या दिनमें चाहें कोई भी तिथिहो तोभी या एवं की रातिमें भी जो मैथुन करै यद्यपि स्त्री का ऋतुकाल शुद्धहो तोभी पुरुष अपने वस्त्र धोकर स्नान करै और पहिले अशुचि अंगोंको बारुणी नाम दूर्वा या कुश कांश आदि घासों से रगड़ के शोधि लेवै (यद्यपि ऐसा अर्थभी सुगमतासे होताहै कि बारुणी जो अनेक भांतिकी सदिरा हैं तिनसे धोवै परंतु इसका कोई सिद्धांत खूबी प्रयोजन दीक नहीं मिलता यद्वा ऐसा अर्थ मानाजाय कि बारुणी जो इंद्रवारुणी इन्द्रायन घुमिता इन-जंगली बेल के अत्यन्त कड़वे फल होते हैं तिनसे धोवै तो यह निष्ट असंगत है तिससे दूर्वा आदि वाला अर्थ दीक मानागया कि उसका जूना बनाकर शरीर को रगड़ै तब स्नान करै-यद्यपि कोई यह तर्कना उठावै कि (विद्यस्यविद्यसौ यथं) जैसा वैद्यक शास्त्र के मतमें विद्यही से विय टूटकिया जाता है तैसा उभी

न्याय से अशुद्धि को अशुद्ध वस्तुसे हटाना किंतु मंदिरा से ही धोकर शुद्ध माना जाय-तिसका उत्तर यह दृष्टांतभी प्रसिद्ध है कि कीचसे कीच नहीं धोईजामकती है= यमस्मृति में और भी स्नान का विधान है= यथाह यमः = अजीर्णभ्युदितेवांति तथा प्यस्तमितेरवौ दुःस्वनेदुर्जनस्पर्शस्नानमात्रविधीयते=तथा रुहस्पतिः=मैथुनेकरधूममेच सद्यःस्नानंविधीयते=अर्थात्—यमने यह कहा कि जिसको अन्नादि का अजीर्ण हो-कर उलटा गले कांतक अशुद्धि हो आया हो या जिसने वांति करी हो या जिमने सूर्य के अस्त होते समय बुरा स्वप्ना देखाहो या जिसने दुर्जन चंडाल मलीनआदि का स्पर्श कियाहोसो स्नान मात्र करिके शुद्धहोताहै=तैसा रुहस्पतिने भी कहाकि=मैथुन करके या करधूम नाम मुर्दा फुंकती चिता के धुंएँको सुंघि वा देही में स्पर्श करके शीघ्रही स्नान करना चाहिये विलंब न होने देवै यह विशेषता जानों—यहाँ करधूम के उपलक्षणा में उस धुंएँको भी समुझ लेना जो मलीन घृता फुंकता हो या मलीन कूपाकर्कट से पञ्जाबा आदि फुंकता हो—यह लिखाहुआ स्नानमात्र उसके लिये समझना जिसके वस्त्र बचिकर किसी अंगमात्र में स्पर्श हुआ हो किन्तु वस्त्रों को स्पर्श होने में सचैल स्नान करना चाहिये=तथा चाहच्यवनः=दानंस्वपाकंप्रेत भूधंद्वेवद्रव्योपजीविनंप्रामयाजिनंसोमविक्रयिषांयूपंचितंचितिकाष्टमयंसद्यभांडंसन्ने हंमानुयास्थिशवस्पर्शंरजस्त्रलां महापातकिनंशवंस्पृष्ट्वासचैलमभोऽवगाह्योत्तीर्याग्निंमु पस्पृश्यगायत्रीमखवारंजपेत् घृतंप्राशयधूनःस्नात्वाशिराचामेत्- एतच्चबुद्धिपूर्वविषयं= अर्थात्—च्यवन मुनि कहते हैं कि कृत्तेको छुडकर या कृत्ता सारखानेवाले चंडाल को या प्रेतके धुंएँको या देवता के निमित्तका द्रव्य चढावाआदि से उपजीवन करने वालेको या ग्रामयाजीको या सोमविक्रयी को या यूपनाम पशु हिंसाके स्थान वा खंभको या चिताको या चिता की लकड़ी डेंगरी को या मंदिरा या मंदिरा के वा-सनको या गीलाहाड मनुष्यका या मुर्दाकीस्पर्शकरी किसीचीजको या रजस्त्रलाको या महापातकीको या मुर्देको छुडकर-वस्त्रों सहित जलमें गोतालगाके बहोंसे निक-सिके अग्निमें शरीरको तपाइ के आठवार गायत्री जपे फिर घोचारिके द्वारा स्नान करिके तीनवार आचमन करे तब शुद्धहोय सो यह प्रार्थप्रचत्त उसका है कि जिसने जानि वृत्तिकर इच्छा पूर्व उनको छुआ हो=अन्यथा=विनाजाने धोखा में छुडाने का प्रार्थप्रचत्तस्नानमात्र आगेदेखो=तदाह रुहस्पतिः=शवस्पर्शंदिवाकीर्तिंचितंयूपं रजस्त्रलामस्पृष्ट्वास्वकामतोविप्रःस्नानंरुत्वाविशुद्ध्यति=अर्थात्—मुर्दाकी छुईचढाकोई वस्तु या दिवाकीर्तिनाम नाईको या चिताको या यूपको या रजस्त्रलाको या उनको

बिना मुला लेना होता है इसमें भी कुछ विचार नहीं एवं बिलीको साधारण में कुछ कर स्नान करना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रायश्च इससे बचाना नहीं वनिआता है तिससे भोजन या अनुष्ठान के समय जो छुड़जाय तो स्नान करना उचित है—कृता के स्पर्श का भी यह नियम समुक्तना कि जो नाभिसे ऊपरली देहमें छुड़जाय तो स्नान करे किंतु नीचेकी देह में छुड़जाने से उसी अंग का धो डारना मात्र उचित है क्योंकि उन्हीं अंगों का दूसरा वचन इसपर मौजूद है = यथा = नाभिरुद्धैर्करोमुत्काशुना यद्युपहन्यते तत्रस्नानमधस्ताच्चोत्प्रसाल्याचम्यशुद्ध्यति = अर्थात्—तोदी से ऊपर जो हाथोंकेउपराल कोई अंग कृतासे बिगाड़ा जाय तहां स्नान करना चाहिये जो नीचे का अंग या केवल हाथहीको बिगाड़ा हो तो उतना धोकर आचमन करनेसे शुद्ध हो जाता है—एवं पक्षियोंके स्पर्शमध्ये जातुक्तार्थने विशेषता कही है—यथा = ऊर्ध्वनाभः करोमुत्काशदंगांसस्पृशेत्स्वगः स्नानंतत्रप्रकुर्वीतशेषंप्रसाल्याचम्यशुद्ध्यति—अर्थात्—हाथोंको छोड़िके यदि कोई अङ्ग तोंदीसे ऊपर में काक आदि पक्षीकास्पर्शहोजाय तो स्नान करेवाकी दोनों हाथ या नीचेके अंगमें स्पर्शहुआहो तो धोनेमात्रसे शुद्धहोजाता है— एवं अपविष वस्तुओंके स्पर्श मध्ये विष्णुने विशेषता कही है = यथा = नाभिरधस्तात्प्रबाहुयुक्तार्थिकैर्मलैः सुराभिमर्द्यैर्वापहतो मृतोयैस्तदंगंप्रसाल्याचांतशुद्ध्येत अन्य शोपहतोमृतोयैस्तदंगंप्रसाल्यस्नायात् तैरिन्द्रियेषूपहतस्तुषोण्यस्नात्वापंचराग्वेन दश नक्षत्रोपहतप्रचिति—अर्थात्—कायासे उत्पन्नयुक्तमत्तआदि अनेकका यिकमलहोतेहैं तिनसे जो कोई नाभिके नीचे अंगोंमें या कुहुनीके नीचे पहुंचा आदिमें बिगड़िजाय या सुरासे या मर्द्यों से उन्हीं अंगोंमें बिगड़े तो वही अंग सादी और जलसे धोने तथा आचमन करने से शुद्ध होता है—जो उन अंगोंके सिवाय किसी और अंगमें पूर्वोक्तमलों से बिगड़े तो सादी और जल से मांजि धोकर पीछे स्नान भी करे. कदाचित् नाक कान आदि उत्तम इंद्रियों में उन्हीं मलोंसे बिगड़े तो वह स्नान और निराहार उपास करिके शुद्ध होता है. कदाचित् दांतोंके स्थानपर उन्हीं मलोंसे बिगड़ाहो तो पूर्वोक्त मंजन स्नान व्रत करने के सिवाय पंचगव्य से भी शुद्ध करे— ये सब नियम विराने शरीर के उत्पन्न हुये मलोंसे बिगड़ने मध्ये समुक्तने किंतु अपने मलोंसे नाभिके ऊपर भी बिगड़ने में धोनेमात्र से शुद्ध होजाता है = यथाह देवलः = मानुषास्थिवर्मा विष्टामार्तवंचूचरैतसी सज्जानंशौरिगातंवापि परस्थयदिसंस्पृशेत् स्नात्वाप्रमुञ्ज्यले पादीनाचस्थसशुचिर्भवेत् • तान्येवस्नानिसंस्पृश्यपूतस्यात्परिमार्जनात्—अर्थात्—स- नुप्यक्ता हाड या बसा या बिछा या आर्तव खोरक्त या मूत्र या चीर्य आमज्जा या

लोह जो पराये अंगसे उत्पन्न हुयों को स्पर्श करै तो उस लगे हुये लेप आदि को माजि धोय स्नान करिके आचमन किये पीछे शुद्ध होता है—उन्हीं मलोंको यदि अपनेही शरीर के उत्पन्न हुयोंको स्पर्श करै तो माजने धोने मात्र से शुद्ध होजाता है—
 तथाह शंखः=स्थयाकर्दमतोयेनस्यैवनायेनवातथा नाभेच्छर्ध्वनरःस्पृष्टःसद्यःस्नानेनशुद्धति=अर्थात्—गलियोंकी कीचड़ या जलसे या धूक खँखार आदि से नाभि के ऊपरले अंगों में जो एरुय बिगड़ै तो तत्कालही स्नान करके शुद्ध होता है—यमनेभी विशेषता इसमें कहीहै—यथा=सकर्ममंतुर्व्याप्तुप्रविश्यामसंकल्प जंघयोर्मृत्तिकास्ति सःपादयोर्द्विगुणास्ततः (ग्राम संकरं ग्राम सलिलप्रवाह प्रवेशं सकर्मं प्रविश्येत्यर्थः) अर्थात्—ग्रामसंकर जो कीचड़ भरा ग्रामहो तिसकी व्या कालमें भगाइ कर दोनों जाँघ मड़ी से तीन तीन बार माजै और दोनों पैर छेछे बार मड़ीसे माजै धोवै=परंतु हवा से सूखी हुई कीच आदि में उक्त दोय नहीं है क्योंकि आचार स्यादा परिपाटी में अग्रोक्त वचन आचुका है कि (स्थयाकर्दमतोयानिस्पृष्टान्यंत्यश्ववायसैः मारुतेनैव शुद्ध्यतिपक्षेष्टकचित्तानिच) अर्थात्—गलियों में कीच तथा सैले जल भी जो चंडाल और कुत्ता कौओं से स्पर्श किये अशुद्ध होतेहैं सो वायु के झकोरों से ही शुद्धही जाते हैं जब सूखि जायें तथैव पकोईट और ईटके चिने हुये स्थान भी हवासे पवित्र होतेरहितेहैं=एवं हाडों मध्ये मनुने विशेषता कहीहै—यथा = नारस्पृष्ट्वास्थिसन्नेहं स्नात्वाविप्रोविशुद्ध्यति आचम्यैवतुनिःस्नेहंगास्पृष्ट्वावीक्ष्यवारविन = अर्थात्—मनुष्य का गीला हाड छुइकर ब्राह्मण स्नान करके शुद्ध होता है, परंतु सूखा हाड छुइकर आचमन से ही शुद्ध होजाता है या जलकी प्राप्ति न होसके तो गऊके दर्शनों से ही शुद्ध होताहै जहाँ गऊ भी न मिलै तो सूर्यके दर्शन करके शुद्ध होता है—
 सो यह नियम केवल द्विजातियों के हाड छुजानेमध्ये समभना किन्तु और किसी जाति का हाड जिसने छुआ हो तिसके लिये वशिष्ठ के वचनानुसार प्रायश्चित्त करना चाहिये = यथावशिष्ठः = सानुयास्थिस्रिगंधंस्पृष्ट्वाचिरात्रमाशौच मस्त्रिग्वे त्वहोरात्रं=अर्थात्—मनुष्य का गीला हाड छुइकर तीन दिन तक अशुचि रहता है और सूखा छुने में एकही दिन आशौच मानै = मनुष्यके सिवाय अन्य जीवोंके हाड मध्ये विष्णु का वचन देखो = यथा = भक्ष्यवर्जपचनखण्वंतदस्थिचसस्नेहंस्पृष्ट्वा स्नातःपर्ववस्त्रंप्रक्षालितविभृयात् = अर्थात्—जो खाने योग्य जीव लिखे है तिनको छोड़िके शेष पाँच नखवालेमेरे जीव या उन जीवों के गीले हाड छुइकर स्नान करै और पहिले वस्त्रोंको खूबधोकरपहिरै ॥ इसी प्रकार औरभी अनेक स्नान कनेयोग्य

भी कि जो इसवचनमें नहीं लिखे पहिलेमें कहि चुके हों तिनको इच्छाविनाही यदि कोई विप्र छुवै तो स्नान करिके शुद्धहोताहै पर जानि बुझिके छुने में वही च्यवनोक्त विधि करनी चाहिये ॥ इसीप्रकार जो आगे वचन लिखे जाय तिनमें भी बहुत या थोड़ीके अनुरूप इच्छा या बिना इच्छा की व्यवस्था मानि के सबको तुल्य समझ लेना—तथाचक्रप्रयणः—उदयास्तमयौ स्कंदयित्वा अक्षिस्यन्दने करार्कोशने चित्पारोह रो यूपसंस्पर्शने सचैल स्नानं पुनर्मास इति जपेत् महाव्याहृतिभिः सप्ताध्याहुती जुहुयात्—अर्थात्—उदयहोते या अस्त होतेहुये सूर्यका देखना भी आचारकाण्ड में नियुक्त किया गयाहै तिनके सम्मुख ऐसे दोनों काल में जो स्कंदन करै अर्थात् मलमघ आदि छोड़ै यद्वा अश्वितिल मिलावै या करार्कोशन होने में कि जब किसी सज्जनकी रुथा निंदा आदि कान से सुनी हो या चित्त के ऊपर पैर धराहो या यूपका स्पर्श किया हो तो सचैल स्नान करै तथा पुनर्मास इत्यादि ऋचा मंत्रको जपै फिर सन्ध्या प्रयोग में लिखीहुई सात महाव्याहृतिथों से घीकी आहुति होमें तब शुद्धहोय—स्मृत्यन्तरवचनचयया—स्पृष्टा देवलकं चैव सवासाजलमाविशेत् देवार्चनपरो विप्रो वित्तार्थे वत्सरप्रयत्नं असौ देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः—अर्थात्—देवलक ब्राह्मणको भी कुछ करवत्ता संहत जलमें गोता लगावै तब शुद्ध होय देवलक वह कहाताहै जो धनके लिये देवताकी पूजा में तत्पर होके तीनवर्ष वित्तार्थे सो देवलकनामा ब्राह्मण हव्य और कव्यमें अर्थात् देव पितरोंके कार्यमें लगाना नियुक्त है—तथा ब्रह्मांडपुराणोपि—शैवाक्षपाशुपतान् स्पृष्ट्वा लोका न्यतिक्रान्तिं कान्तिं काव विकर्मस्थान् द्विजाक्षुद्रान् सवासाजलमाविशेत्—तथा—अस्वर्ग्याद्याहुतिः सास्याच्छूद्रसंपर्कं दूयिता इति लिंगाक्षुद्रस्पर्शने नियमः—अर्थात्—शैव जो शिवालयका चढावा आदि खानेवाले योगी आदि या पाशुपत जो ना दिया रीछ बंदर आदिसे जीविका करें या यतिक नास्तिक लोग जो बनेहुये अतीकेनाम से प्रसिद्धपर यथार्थ धर्म से नास्तिक हों या विकर्मस्थ द्विजाती जो वैवर्षिक जाति होने पर भी कुकर्मों में रहें या मलीनशूद्र इनमें से किसी को भी कुछकर वत्ता संहत जलमें गोता लगावै तब शुद्धहोय—तथा—यह वचन जो लिखि चुकेहैं कि शूद्र के संसर्ग से स्पर्शकिये द्रव्योंकी आहुति भी अस्वर्ग्य होजाती है सो इस डोलसे भी शूद्रको छुनेका नियम है—तथा गिराः—यस्तु छायां च पाकस्य ब्राह्मणो ह्यविरोहिततत्त्वज्ञानं प्रकुर्वीत धृतं प्राप्रय विशुद्धाति—अर्थात्—जो कोई ब्राह्मण चांडाल की छायाको आरोहण करे सो खूब अच्छी विधिसे स्नानकरै और घी चांदिके दिग्बुद्धहोताहै—तथा व्याघ्रपादः—चांडालपतितं चैव दूरतः परिवर्जयेत् गोबालच्यजनाद्वर्जि

समाजलमाविशेत् (सतर्कितसंकटस्थतविययं) = अर्थात्-चांडाल और पतित को दूरिही से बचता रहे कितना दूर से कि जितना लंबा वालव्यजन किंतु चमर होता है इतना बीच देकर प्रथमसे बचिजाय कदाचित् इतनी नाप के बीच में आजाय चाहें शरीर का स्पर्श न हुआ हो तो भी वस्त्रों सहित जलमें गोता लगावें तब शुद्ध होय- सो यह चौर की लम्बाई भर बीच देना ऐसी जगहके निमित्तमें समुभूना जहां मार्ग संकोच होनेसे संकट प्रतीत होता हो-अन्यथा जहां भीड़ भाड़ न हो या मार्ग चौड़ा हो तहां इससे अधिक बीच देकर बचना कहा है-तथाचाह वृहस्पतिः=युगंचद्वियुगचैव त्रियुगंचचतुर्युगश्च चांडालसूतिकादक्यापतितानामधःक्रमात् = अर्थात्-यहां युगशब्द से चार हाथ लंबाई का अंतर समुभूना किंतु चांडालसे एक युग बीच देकर इधर की बचिजाना तथा सूतिका से दो युग बीच देकर तथा रत्नस्त्रला से तीन युग बीच देकर तथा पतित से चारयुग अर्थात् सोरह हाथ बीच देकर बचना चाहिये कदाचित् उक्त अंतरोंके भीतर ये चांडाल आदि आजाय तहां स्पर्श होगया समुभूति लेनाचाहें देहसे देह न भिड़ी हो तोभी स्नान करना होगा (इसी आशय से व्यवहार कांडकी मर्यादा बहुधा राज्यस्थानों में प्रवृत्त रहती है कि ये चांडाल आदि आपही अपना योग्य बीच देकर बचते रहें कदाचित् न बचें तो दंडपावें) = पैतृनसिस्तुयथाह=काकोलूक स्पर्शने सचैलस्नानमनुदकमृषुरीयकरासो सचैलस्नानं महाव्याहृतिहोमश्च (अनुदक मृषुरीयकरा इत्येतद्विधकालमृषु पुरीयशौचाकरणापरं) अर्थात् पैतृनसिका कथन है कि काक उलूकके स्पर्श करने में सचैल स्नान करना चाहिये और बिना पानी लिये हगने मूतने में सचैल स्नानके सिवाय महाव्याहृतियोंसे होम भी करें तब शुद्ध हो (बिना पानी हगना मूतना यह उस भांतिका समुभूना जिसने बहुत रिनोसे सेमा कियाहो सकही दिनका नियम नहीं) = तथांगिराः=भासवायसमाजार खरोष्ट्रं चश्व शूकराव अग्नेध्यानचसंस्पृश्य सचैलोजलमाविशेत् = अर्थात्-भास पक्षी काक पक्षी बिल्ली गर्भ कंठ कुत्ता शूकर इनको तथा और भी अपवित्र वस्तुओं को छुइ कर वस्त्रों सहित जलमें घुसें तब शुद्ध होय=इतमें बिल्ली का छूना जो अशुद्ध कहा सो भोजन आदिके समय तथा कोई अनुष्ठान करनेके समय समुभूना क्योंकि लोक में भी यही समाचार है=अन्यथा और सामान्य समयों के निमित्त यह अग्रोक्त वचन भी आखंड है=यथा=साजारश्चैवद्रव्यंच सारुतश्चमदाशुचिः= अर्थात्-बिल्ली और द्रव्य रुपया पैसा आदि और सारुत हवा ये सदाही पवित्र हैं क्योंकि हवा सबके देहाको छूनी चली आतीहै उसमें कोई भेद नहीं बनि आता खव द्रव्य चांडाल को भी हाथ से

पुरुष होते हैं तिनको अन्य स्मृतियों से समझना जहाँ प्रयोजन उनका संभव हो—तो इस भाँति स्नान करने योग्य पुरुषों की बहुतायत के आशय से योगीश्वर के मूल श्लोक में (तैःस्पृष्टः उपस्पृशेत्) यह बहु वचन का निदेश दिया गयाथा विशेष उ-
 समें नहीं है ॥ ० ॥ श्रीमहिम्नानेश्वर व्यवस्था देतेहैं कि मूल श्लोक में (उदकातया
 और अशुचियों से हुआहुआ स्नानकरै परंतु छुयेहुयों से हुआ हुआ पुरुष आचमन
 मात्र करै) यह थोड़ा प्रायश्चित्त दर्शाया था सो वह थोड़ा इस हेतु में समझना
 कि जहाँ चंडाल आदि कोई अशुचि प्राणी जड़वृद्धि वेदोपश होकर बोखा से लपेट में
 आकर भिड़ाहो तिसके भिड़ेहुयोंसे जो कोई भिड़जाय तिसको आचमन मात्र करना
 ठीक है स्नान की अपेक्षा नहीं—परंतु—जहाँ होशियार चंडाल आदि लपेट में आ-
 या हो तिसके छुयेहुयों से यदि कोई भिड़जाय तहाँ इसकोभी स्नानही करनाचाहिये
 किंतु आचमन मात्र से शुद्धहोना ठीक नहीं है यह सिद्धांत अगिले वचन में उत्पन्न
 होता है सो देखो = यथाह मनुः=दिवाकीर्तिमुदकांचपतितसूतिकांतया श्रवंतस्पृष्टि
 नंचैवस्पृष्ट्वास्नानेनशुद्ध्यति (अथतत्स्पृष्टिनंतत्तेयांस्पृष्टानांस्पृष्टिनमितिभावः नश्व
 मात्रस्पृष्टिनं) अर्थात्—नारि, रजस्वला, पतित, सूतिका, मुर्दा, और इनके छूने वाले
 को भी छुइकर स्नान से ही शुद्ध होताहै = परंतु = छूने वालेके छुये हुये को तीसरा
 कोई छुवै तिसको फिर स्नानकी अपेक्षा नहीं किंतु आचमन से ही शुद्ध होता है=
 यथाह संबर्तः=तमेवतुस्पृष्टेद्यत्तुस्नानंतस्यविधीयते ऊर्ध्वमाचमनंप्रोक्तं ब्रह्मराणां
 प्रोक्षणांतथा = अर्थात्—जिसनेचंडाल आदिसेछुयेहुये को हुआहो तिसकोभी स्नान-
 कराया जाता है पर उससे उपरालू कोई तीसरा जो दूसरे को छुइ जाय तिसको आ-
 चमन हाथ पैरोंका प्रक्षालन और वस्त्रादि द्रव्यों को छींटा देना कहा है ॥ सोभी यह
 तीसरेको आचमन विधिउस दशामें समझना जहाँतीसराज्ञान विनाबोखासेभिड़गया
 हो अन्यथा जानिबूझिके भिड़ने वाले तीसरेको भी स्नान करना होगा=तदाहगौतमः=
 पतितचंडालसूतिकादकाश्वस्पृष्टितत्स्पृष्ट्युपस्पर्शनेसचैलमुदको स्पर्शनाच्छुद्योत्=
 अर्थात्—पतित चंडाल सूतिका उदका मुर्दा, इनको स्पर्श करने वाला फिर उसके
 स्पर्श करनेवाले को जो कोई जान बूझिके स्पर्शकरै तीसरा वहभी, ये सब तीनों भाँति
 के पुरुष वस्त्रों सहित जलमें स्नान करनेसेही शुद्धहोयें फिर चौथे छूनेवालेको आचमन
 मात्र चाहिये=यथाह देवलः=उपस्पृश्याशुचिस्पृष्टं ततोयंवापिसानवःहस्तौपादीच
 तोयेनप्रक्षालयाचम्यशुद्ध्यति=अर्थात्—अशुचिमात्र जोजोकहेगायेतिनकेछुयेहुयेतीसरे
 कोभी छुइ कर चौथा मनुष्य हाथ पैर चौथेकी जलआचमनकुलाकरके शुद्धहोताहै॥०॥

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

८६

जहाँ कोई अशुद्धी उदव्या आदि अशुद्धों को भिड़जाय तहाँ देवलने विशेषता कहो हे
 =यथा=चपाकपतितव्यंग मुन्मत्तशवहारकस मूर्त्तिकांभाविकानारीरजसाचपरिप्लुताश्च
 चक्षुर्वराहोश्चप्रार्यान्संस्पृश्यमानवः सचैलःसशिरःकात्वातदानीमेवशुद्ध्यति अशु-
 द्धान्स्त्रयमप्येतानशुद्धस्तुयद्विस्पृशेत् विशुद्ध्यत्युपवासेनतथाकृच्छ्रं गात्रापुनः=अर्थात्-
 चपाकपतितव्यंग कोटीआदि उन्मत्त मतवारा मुर्दा ढोनेवाला मूर्त्तिका भाविका
 दायी जो बालक जन्मावै रजोरक्त से भीगी स्त्री कृत्ता भ्रूणा सुअर जो जो ग्रामनगर
 के रहैया होते हैं वनके नहीं इनको भिड़कर मनुष्य तत्काल ही बख्खों सहित शिरसे
 स्नान करके शुद्ध होता है ॥ और जो इन अशुद्धोंको आपही कोईअशुद्ध रजस्वलाआदि
 भिड़जाय तो निराहार उपवास करनेसे शुद्ध होता है या यथा सम्भव कृच्छ्र चांद्रायणा
 व्रतकालेसेभी अर्थात् चण्डाल आदिके अति स्पर्श में कृच्छ्र व्रत समुभक्ता और कृत्ता
 आदिस्त्रलप स्पर्शमें उपवास मात्र यह यथा संभव का तात्पर्य है ॥ ३० ॥



अथ सर्वसामान्यशुद्धिहेतूनां संख्यानुक्रममादिकथने

पंचमः परिच्छेदः ॥

इस परिच्छेद में उन पदार्थोंकी संख्या आदि श्रावणों किये जायेंगे कि जो
 जो शुद्धि करनेवाले परम कारणा भूत प्रसिद्ध हैं ॥

(शुद्धिहेतूनां संख्यानुक्रमः)

कालोऽग्नि कर्ममृदापुर्मनोऽज्ञानंतपोऽजलम् । पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽस्मिंश्चुद्धिहेतवः ३१

अन्तरार्थः—कालः अग्निः कर्म कर्म मृत्तिका वायु मनः ज्ञान तप जल यद्वितावा-
 निराहार ये सब शुद्धिके कारणा हैं ॥ ३१ ॥

अभिप्रायः—कदाचित् कोई यहसंदेहकरे कि जलसे या मही आदिसे नहाना
 सोना आदि कर्म तो प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं कि इनसे शुद्धि होजायगी परन्तु अब तक

जो गीत गाया कि दश दिन में शुद्ध होय या तीन वा एकही से इत्यादि सो यह कैसा धर्म है कि दृष्टा इतने दिनतक अशुद्ध बर्निके बैठें—इसी संदेहके निवारणामध्ये कालरूपी शुद्धिपर अग्नि आदिको दृष्टांत रूपसे दर्शाते हैं—वरन दूसरायहभी तात्पर्य है कि आचार मर्यादा परिपाटी के द्रव्य शुद्धि प्रकरण में शुद्धि के जो कुछ हेतु कहि चुके हैं या अब यहाँ से आगे जितने हेतु कहे जायेंगे कि इनसेभी अमुकामुक्त शुद्धि होती है तिन सब अगिले पंक्तियों को इकट्ठे करके इसी श्लोक में अनुक्रम किये दते हैं—और कालरूपी हेतु में जो संदेह अभी कहि चुके तिसका एकप्रमाण तो आचार काण्ड में भी १८७ मूलश्लोक पर देखें कि काल बीतने से इस तरह पृथ्वी शुद्ध हो जाती है उसी प्रकार यहाँभी सूक्त आदिमें नियमित काल वितानेसे शरीर शुद्ध होते हैं—उसी काल की शंका मध्ये यहाँ यह दृष्टांत है कि जैसे अग्नि आदि दश कारणा निज निज विषय के स्थलों पर यथा योग्य शुद्धिकारसक्त हैं तैसे काल भी दश दिन आदि जहाँ जितना उचित है उतना समय वितानेसेही शरीरोंको शुद्ध करदेता है यही शास्त्र की आज्ञा है तिससे काल भी शुद्धि करनेको एक परम हेतु है—तहाँ—अग्नि जैसे अशुद्ध भ्रातृ पात्रों को शुद्ध करता या पकेहुये मृत्पात्रों को दुबारा पकाने से अशुद्ध भेंट देता है इत्यादि—कर्म भी शुद्धि का हेतु नामनिमित्त है जैसा आगे कहेंगे या जैसा अन्नमेव के अवभृथ शेषांग कर्म का स्नान आदि अनेक भौति—मट्टी भी शुद्धि का कारणा है साजने लीपने आदि प्रकारों से—वायुभी शुद्धिका हेतु है (सारुतेनैव शुद्ध्यति) यह लिखचुके हैं कि अनेक चीजें केवल हवासेही शुद्ध होती हैं—मन भी एक शुद्धि साधन करनेका हेतु है क्योंकि मन चाहै तो शुद्धि करीजाय यदा मनसेही शुद्ध बाल चाल आदि गुरुओंसे उपदेशलेकर सीखीजाती है या उत्तम शास्त्रोंसे इत्यादि—ज्ञान भी शुद्धिका हेतु इस भाँति है कि अध्यात्मिक वेदांत आदिसे उत्पन्नहुआ ज्ञान मनुष्यकी बुद्धि शुद्ध करदेता है इत्यादि आगे चौतीसवें मूलश्लोक में योगीश्वर आपकहेंगे—तपभी शरीर शुद्ध करने का एक हेतु है जैसे कच्छू आदि प्रायश्चित्तों के व्रत आगे कहेजायेंगे उनको तपसमभूता (प्रजापत्यचरैरुक्चकू) इत्यादि वचन हुँदों—जलभी शरीर आदि सब शोधने का हेतु है (वर्ष्मसां जलं) यह वचन आगे योगीश्वर आपकहेंगे—पत्रचात्तापपक्षि-त्तावा करना भी शुद्धि का हेतु है जैसा कोई जीव पैसे दबिगया तहाँ हरैराम इत्यादि पक्षितावा करने से भी दोष मिटता है और भी (स्न्यापनेनानुतापेन) यह वचन कहीं लिखा है कि अपना पाप कहि स्नान और पक्षितावा करने से घटता है निराहार व्रतभी शुद्धिका हेतु है जैसा (विरायोषोयितोजप्त्वा) इत्यादि वचन आगे योगीश्वर आपकहेंगे ३१॥

अन्तर्गकारिणादानवेगोनद्याचशुद्धिरुत् । शोष्यस्यमृच्चतयचसंन्यासोवैद्विजन्मनाम् ३२ ॥

तपोवेदविदांक्षातिर्विदुषांवर्षमणोजलम् । जपःप्र उन्नपापानांमनस मत्यमुच्यते ३३ ॥

भूतात्मनस्तपोविद्येयुद्धर्ज्ञानविशोधनम् । क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धि परमामता ३४ ॥

अर्थः—अकार्यकारी लोग जो निषिद्ध काम करनेवाले तिनकी शुद्धि बहुत दान करने से होजातीहै- और नदीका किनारा आदि जो महीन हो तिसको शोधने वाला बहुत बर्याका प्रवाहरूपी वेग होताहै- कोई वस्तु जो शोधने योग्य हो तिसके लिये मही और जलभी शुद्धिका हेतु है- द्विजातियों को मन उपराम होनेकी दशामें लिये मही और जलभी शुद्धिका हेतु है कि उसे लेलेनेसे पवित्र होते हैं ३२ ॥ तपोवेदविदां अर्थात् सभ्यासही शुद्धिका हेतु है कि उसे लेलेनेसे पवित्र होते हैं ३२ ॥ तपोवेदविदां अर्थात् वेदवेत्ताओं को तपही शुद्धिका हेतु है यहां तप शब्दसे वेदान्यास किन्तु वेदहीका पाठ मनन आदि आराधन उनका तपहै उसीसे शुद्ध होजाते हैं और कृच्छ्र आदि जो तप कहे सो अन्यसाधारण मनुष्यों को कि जो वेदवेत्ता न हो- सांति विद्वयां अर्थात् विद्वय जो वेद शास्त्रों के गूढार्थ जाननेवाले उत्तम जानी हैं तिनको जब कोई दुर्जन आदि वृथा कलक लगावें तब सांति करना किन्तु सहिलेना यही शुद्धिका हेतु रूप आदि वृथा कलक लगावें तब सांति करना किन्तु सहिलेना यही शुद्धिका हेतु रूप प्रायश्चित्त है सांति शब्दके और भी ऐसे अर्थ हैं कि जब कोई अपना अपकार करे- तिसपर समाकरना या क्रोध आवे तिसको रोकिलेना या अपने में शक्ति होते हुये भी अपराधी को प्रतिकार करने से तरह देजाना इत्यादि- वर्ष्मणोजलं किन्तु वर्ष्म जो शरीर है तिसकी शुद्धिका हेतु जलहै- प्रच्छन्न पापानां जपः अर्थात् ढकेहुये जो पाप किये गये कि उनका बोध किसी से कहा सुनाया नहीं तिनकी शुद्धिका हेतु अघमर्थया आदि सूक्तोका जप होताहै- मनसः सत्य अर्थात् मनकी शुद्धि होनेका हेतु केवल सत्यप्रतिज्ञा है तहाँसतअसत भला बुरा दोनोंतरहके विचारका जो सकलरूप हैं सोई मन कहाताहै इनमें जो बुरे विचारोंसे मनकी अशुद्धि प्राप्त होजातीहै तिसके शुद्ध करनेको प्रायः सत्यवचनरूपी प्रतिज्ञा धारणाकरे यह तात्पर्य है ३३ ॥ भूतात्मनः तपो विद्ये अर्थात् भूतात्माके शुद्ध करनेको तप और विद्या ये दोही परम हेतु हैं तहाँ भूतात्मा देही और प्राणीकी अर्थात् मनुष्यही को कहतेहैं यद्यपि भूतात्मा शब्दके अनेक अर्थहैं पर यहां ऐसे समझना कि पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वभी पंचभूत कहातेहैं और प्राणीकोभी भूतकहते इन दोनोंका सबन्ध इसी सकदेहमें होताहै तिससे इसको भूतात्मा कहा तिस भूतात्मानाम देहऔर प्राणीकी शुद्धि जो कोईदीनदीकचाहे तिस को तप और विद्याको समागधन करनाचाहिये इसमें तपऔर विद्याकेभी अर्थमेंकृच्छ्र भेदहै किन्तु ज्ञानकी लक्षणास्वपी जो ब्रह्महै जिसका जानना वेदांत से होताहै तिस

कास्वरूप समुभित्तेतन्मयहोजानायहीतपहैपरन्तु जिसकोइतनीशक्तिनहोतिसकेलिये तप शब्दसे अपने वर्णाका धर्म अपने कुलका मुख्यधर्म अपने आश्रम का कर्म समु- भूना उनको यही तपहै और विद्या यहाँ कौनसी कि वेदांत में तत्त्वमसि वाक्य से त्वंपदार्थके निरूपणा करनेवाले व्याख्यानोसे जो ज्ञान उत्पन्न होताहै तिसको समु- भूना इन दोनोंके उत्पन्न होनेसे भूतात्मा की अशुद्धि मिटिजाती है ज्ञानंदुष्टे विंशो धनं अर्थात् बुद्धिका शोधने वाला ज्ञानहै किन्तु बुद्धि जब अनेक यद्वा एकही किसी संशय के भ्रमसे विगड़ि के अशुद्ध होजाती है तिसको उत्तम प्रसारा देकर समुभूने समुभूताने का ज्ञान प्राप्त होनेसे भ्रम दूर होताहै तभी उसको शुद्ध हुई कहिते हैं, क्षेत्रज्ञ स्प ईश्वर ज्ञानात् शुद्धिः अर्थात् क्षेत्रज्ञ जो शरीर के भीतर बैठाहुआ आत्माहै तिसकी शुद्धि ईश्वर का स्वरूप ज्ञान होनेसे होतीहै किंतु क्षेत्र नामहै खेतका तो यह शरीर भी एक प्रकार का खेतहै जैसे घसी पर खेतों को किसान खोदने जोतने आदि प्र- कारोंसे बोने योग्य शुद्ध करताहै तैसे पूर्वोक्त तपोविद्याके प्रभावसे शरीररूपी खेत भी शुद्ध हुआ तब कहाजाता है कि जब त्वंपदार्थ रूपी ज्ञान संयुक्त होजाय और त्वंपदार्थका ज्ञान भी तत्त्वमसि आदि वाक्योंके वाचसे उत्पन्न होता उसी को ईश्वर का जानना भी कहिते हैं उसीसे धुक्ति लक्षणांरूपी परम अतिशय शुद्ध क्षेत्रज्ञ की होती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

३२ अधिकोक्तिः—क्षेत्रजैसा शरीर का नाम कहा तैसा क्षेत्रज्ञ उस खेतकी दशा जानने वाला पुन्य रूपी आत्मा जो भीतर इसका अधिपति देवता बना बैठाहै वही शरीर की दशाको पहिंधानता है कि इससमयमेंइतना काम करनेकी शक्ति वर्तमान है उसी कार्यमें इस देहको लगाना चाहिये ऐसा शोचि विचारि के कामों में प्रवृत्त करता रहिता है इसीसे क्षेत्रज्ञ उसका नामहै = यथाह मनुः = योऽस्यात्मनःकारयि तातक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते = अर्थात्—जो इस देहका काम धन्वा करानेवाला प्रेरक है उस को क्षेत्रज्ञ कहिते हैं ॥ शोधने योग्य वस्तुओं के निमित्त ऊपर मड़ीजल कहा था तिसका यह प्रसारा है = अमेद्याक्तस्मृत्योयैः शुद्धिर्गन्धापकर्यगात् = अर्थात्—अ- मेध्य अपवित्र किसी मलसे जो भरी लिपी कोई चीज हो तिसकी शुद्धि मड़ी और बारंवार जलीमें गन्वि लुहाइ डाने से होतीहै ॥ ० ॥ इन तीनों श्लोकसे जो वर्णन किया सो भी इकतीसवें श्लोकमें चर्चा किये हुये काल पर दृष्टांत समुभिलेना कि जैसे अन्य सब शुद्धियां मनुष्यके पुरुषार्थसे सिद्ध होती हैं तैसे काल रूपी शुद्धि स्वयंसिद्ध होतीहै कि उतना नियत काल वीतिजाने पर अशुद्धि मिटिजातीहै इसका

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

६३

दृष्टांत प्रत्यक्ष में ही लोकसे समझना कि जैसे कोई अपराध रूपी लांछन किसी को सजावतगा हो पर ऐसाही कि उसके लिये अवालत में अवधि नियत होतीहै जोउसी अवधि के भीतर अभियुक्त किया जाय तो मुनवाई होसकी थी अन्यथा सीआद गुजर जाने बाद उस बातकी समाप्ति न होगी तो यह तात्पर्य ठहरा कि उतने काल में उस पुरुष की स्वतः शुद्धि होगई ऐसेही परमेश्वर के समस्या किये सूतक आदिका-लों के बीतनेसे ही शुद्धि प्राप्त होती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

दृष्ट्याशौच प्रकरणं प्रथमं १

इस अशुद्धि नामक प्रकरणमें पांच परिच्छेद है सो समझ लेना
(अब यहां से आगे आपत्कालिक धर्म जीविका आदि दृश्यंतर कहा जायगा)

आपत्काले दृत्यंतरनियमादिकथनेष्वपरिच्छेदः ६

इसपरिच्छेद में चारों वर्गोंको आपत्कालिक धर्मके नियम दर्शाये जायेंगे और उन्हीं के प्रसंग में बेचने या न बेचने योग्य द्रव्यों के नियम कहे जायेंगे

(आपदि दृत्यंतर नियमाः)

क्षेत्राण्यकर्मणाजीवेद्विशांप्यापविद्विजः । नित्यार्यतामयात्मानंपावयित्वान्पसेत्पया ३५ ॥

अर्थः—छिज ब्राह्मण आपत्काल में खाद्य कर्मसे जीवै या वैश्योंकेसे-उसआपदा को निस्तीरन करिके फिर आत्मा को पवित्रकारिके सारंगे रखै=अर्थात्—ब्राह्मण जब अपनी वृत्ति याजन अध्यापन आदि से निर्वाह न करसकेतो वही उसको आपत्काल है तिसमें अपने से न्यून वर्रां सधी का कर्म जो शस्त्र बांधना आदि प्रसिद्धहै तिसके द्वारा जीविका करै जो यहभी न करसकेतब उससे न्यून वारिण्य आदि वैश्य कर्मसे निर्वाह करै (परंतु शूद्र की वृत्ति से न जीवै यह अधिकोक्तिमें देखना) इसी उपलक्षणा से अन्य वर्ग भी अपना से अनंतर हीनवर्गका जीविका आपत्काल में करसकते हैं अधिकोक्ति में देखो) इस भाँति उस आपदाको वितायकर पीछे अपने आत्मा को प्रायश्चित्तों से पवित्र करके कि जैसे प्रायश्चित्त आगे वर्गान होगे उनका आचरणाकिये पीछे फिर अपनीमुख्य वृत्तिको करनेलगेया अपनी फिरभी न करसकें तो उही वृत्तिसे धन संचयके द्वारा अपने आत्मा कोअच्छेसुमार्गमेंचलावें अर्थात्उसी निर्दिष्टवृत्तिसेजोदेहुये धनकोसुमार्गवालेश्रेष्ठकारोभेदलाकरअपनेकोपुनोत्तकरै ३५॥

३५ अधिकोक्तिः—ब्राह्मण शूद्रवृत्तिको आपत्काल में भी न करे—तथाचसंनुः= उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्वेत् कथिगोरक्ष्य मास्थायजीवेहैष्यत्यजीविका स=अर्थात्—अपनी तथा सभी की इन दोनों वृत्तियों से न जीसकने की दशा में कैसे हो यह शंका यदि उत्पन्न होय तब खेती और गोओंका राखना आदि वैश्योंकी जीविका से निर्वाह करे=इसी प्रकार सभी जब अपनी वृत्तिसे न जीसके तब अनन्तर बर्ग वैश्यकी वृत्ति से निर्वाह करे ऐसेही वैश्य अपनी वृत्तिसे न जीसके तब अनन्तर बर्ग शूद्रकी वृत्तिसे जीवै पर उससे भी नीच वृत्तिको न करे और यह भी नियम है कि अपना से उत्तम बर्गकी वृत्ति को कदापि न धारण करे=तदाहर्वाशयः=अजीवं तःस्वधर्मेणानंतरापापीयसीवृत्तिमातिथेरन् नतुकदाचिज्ज्यायसीच (ज्यायसीचब्राह्मो वृत्तिः)=अर्थात्—अपने धर्मसे न जीसके हुये कोई बर्ग अपनेसे अन्तरविना निचले कीखोंदी वृत्तिपरभी आरुढ़ होय परन्तु ज्यायसीनाम अपनेसे उत्तम की वृत्तिको कदाचित्त भी न करे (यहां उत्तमवृत्ति ब्राह्मण की समझनी दान लेनायज्ञ कराना आदि) इसका प्रसारा अगिला वचन है=यथासृत्प्यंतरं=उत्कृष्टं वापकृष्टं वा तयोः कर्मन विद्यते मध्यमे कर्मणी हित्वा सर्वसाधारणोहिते=अर्थात्—उत्कृष्टकर्म और अपकृष्टकर्म दोनों उनको दोनोंको नहीं पहुंचते किन्तु नीचके दोकर्म सभी और वैश्यवाले छोड़के तथैव कर्मोंको छोड़ के यह नियम समझना जो सबके साधारण हितकारी हों अभिप्राय इसका यह कि शूद्रको ब्राह्मण का उत्कृष्ट कर्म नहीं और ब्राह्मण को शूद्रका नीच कर्म नहीं उचित परन्तु बीचवाले देवर्गों के कर्मको परस्पर ऊंचनीचका भी बदल होसक्ता है इसके सिवाय जो जो कर्म सबकेही आपत्काल में करने योग्य हैं तिनको सब करसके हैं=किन्तु आपदा से ग्रसित शूद्रभी वैश्यकी वृत्तिसे या नाना भौति के शिल्प कर्मोंसे निर्वाह करे जैसा यह वचन पहिले आचार में आचुका है (शूद्रस्य द्विजशुभ्र यातयाऽजीवनवर्गाम्भवेत् शिल्पैर्विविधैर्जीवेत् द्विजातिहितमाचरेत्) अर्थात्—शूद्रका मुख्य कर्म तो द्विजातियोंकी सेवा है पर उससे न जीसक्ताहुआ वर्गिक्रमैः या द्विजातियों को भलाई करता रहकर विविध भौति के शिल्पोंसे जीवै=इसी बातपर मनु ने भी विशेषता करी है=यथा =यैश्च कर्मप्रचरितैः शुश्रूष्यंते द्विजातयः तानि कारुण्य कर्माणि शिल्पानि विविधानि च=अर्थात्—नगरमें जिनकर्मोंके प्रचार होनेसे द्विजाती लोग आराम पातेहैं वे कर्म कारुण्य लोगोंके अर्थात् अनेक धा कारोगरों के होतेहैं और विविध भौति के शिल्प कर्म भी कारोगरोंके होतेहैं ॥ ॥ जैसा चारोंवर्गोंका यह सब नियम कहा तैसा इसी न्याय से अनुलोमेत्पन्नशंकर जातियों में भी समझ लेना

कि अपनेसे अनन्तर हीनजातिका कर्म आपत्कालमें करसक्त हैं=अनुशौम जाति की उत्पत्ति आचार अश्रयाय के वर्गजाति विवेक प्रकरणा में लिखिचुकेहैं=कदाचित् आपत्काल में ब्राह्मराने अष्टप्रतिग्रह आदि किया हो तिसका दोष मिटाने का नियम आगेदेखो=तदाहमनुः=जपहोमैरपैत्येनोयाजनध्यापनैःकृतम् प्रतिग्रहनिमित्तं त्यागेनतपसेवतु=अर्थात्—असत् याजन असत् अध्यापनसे जो पाप उत्पन्न होय सो जप होमों के करनेसे मिटता है और जो असत् प्रतिग्रह के निमित्त का पापहोय सो द्रव्य त्याग करने किन्तु दोन दुखियाको वर्तइ देने तथा अपने जातीधर्मकर्मरूपी तप करने सेही मिटता है ॥ ३५ ॥

(अविक्रियानिद्रव्याणि)

फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपविरूपः । तिलोदनरसक्षारान्दधिक्षीरघृतजलम् ३६ ॥

शलातवमधुच्छिष्टमधुलाक्षाधर्हिपः । मृक्षर्मपुष्पकुतुपकैश्चतक्रविपक्षितीः ३७ ॥

कैशेयनीललवणमांसैकैश्चक्षुसिकान् । शाकाद्रैर्वधिमिष्याकपशुगन्धस्तथैवच ३८ ॥

वैश्यवृत्त्यापिजीवन्नोविक्रीणीतकदाचन ॥

अर्थः—इतनी चीजें नबेचें फल उपलक्षौमसोममनुष्य, अपूपवीरुध तिल, ओदन रस क्षार दधि क्षीर घृत जल शस्त्र आसव मधुच्छिष्ट मधु लाक्षा बर्हिद्य, शृत्तिका चर्म पुष्प कुतुप केश तक्र विद्य सिति कौशेय नील लवणा मांस एकशफ सीसक शाक आर्द्र औषधि पिरायाक पशु गन्ध—वैश्यवृत्ति से निर्वाह करना परे तो भी ब्राह्मरा इतने द्रव्योंको न कभी बेचें=अर्थात्—फल हरेगीले केले आदि के उपल पत्थर सारिकाय आदि सब समझने, सौम वस्त्र जो सुसा अलसीकी छाति से बुना हो उसके उपलक्षणा में सनकासत आदि भी समझने जैसा अविकोक्ति में मनु का वचन है सोमनाम एकलता विश्य वेलि होतीहै मनुष्य स्त्री पुरुष नपुंसकआदि चाहें किसी प्रकारका हो अपुष पुआके उपलक्षणासे भक्ष्यमात्र और भी समझने वीरुध नामसे वेद्य गिलोह आदि लतारं समझनी तिल प्रसिद्ध हैं ओदन भात कहिने से इसप्रकारके और भी भोज्यान्नमात्र समझने रस कहिनेसे शुद्ध ईखरस शर्कराआदि नींदरस जानने सार जवाखार आदि दधि और क्षीर दुग्धकाहिनेसे उसके विकारवाली अन्य चीजें भी खोया खड़ी आदि समझनी घृत के उपलक्षणा में तेल आदि सब चिकनाई समझलेनी जल पानी शस्त्र तलवार आदि आसव शब्द से नद्यमात्र जो नशा के आखड़ों सब समझने मधुच्छिष्ट सोम मधु महत लाक्षा लाख बर्हिद्यकृगा शृत्तिका मष्टी चर्म चमड़ा पुष्प फूल कुतुपनाम जनके कम्बल केश बाल चमरीगड

आदिके तक्रसहृदा विय जिनसे प्रारागी मरजाता हो-क्षिति धरती-कौशेय रेशम-नील नीलवरी प्रसिद्ध है-लवरा जो खानिसे उत्पन्न हों और वनेहुये सोंचर आदि सब समझने नांस प्रसिद्ध है-एकशफ जिनके सुम दोहरे फटे न हों किन्तु घोड़ा गर्ध्व आदि-सीसक धातुके उपलक्षणा में लोहा पर्यंत साब सब समझने-शाक साग तरकारी सब तरह के-आर्द्र भी जी औषधी जो वर्षात में जमिकर फलपक्वने तक मिटिजाती हों अर्थात् सूखी औषधियों में विक्रय बोध नहीं है-पिण्याक पीना खलि-पशु जो वन के चौपाये प्रसिद्ध हैं-गन्धनाम अतर आदि सुगन्धि की चीजें-अब जो कुछ भेदवाकी रहा सो अधिकोक्तिमें देखें। ये सादे तीन श्लोक एकसाध हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पर्वार्धप्रश्न ॥

३६ अधिकोक्तिः-फलोंका नियेधकिया तिनमें वेर और इंगुदहिगौरा की छोड़ि के समझना-यथाह नारदः-सत्यसीरानिपराणिनिफलानां वदरेणुदेः रज्जुः कार्पासिकं सूत्रं तच्च देविकृतं भवेत्-अर्थात्-आप झड़िपरेहुये पत्ते और फलों में वेर तथा इंगुद तथा रज्जु रस्सी और कपास का सूत सोभी जो बिगड़ा मैला अशुद्ध न हो ॥ अलसी का वस्त्र कहा तिससे सनी आदि के और भी समझने-यथाह मनुः-सर्वचत्तांतवरत्तांशारा क्षौमाविकानिच अपिचेत्स्युररक्तानिफलमूलेतयोषधी-अर्थात्-सब सूत का वस्त्र जो रंगा हो और सनका अलधीका भेडीकी ऊनका ये चाहे न रंगेहों तोभी और फल मूल तथा औषधियाँ जो जंगल से हरीलाकर बेचीजाती हों ॥ केवल रसही से गुड़ आदि का निषेध किया तिमका आगे प्रसारा है-तथाचमनुः-क्षीरं क्षौमं दधिघृतं तैलं मधुगुडौ कृशाश्च-अर्थात्-दूध अलसीका वस्त्र या सूत दही घी तेल सहत गुड़ कृशा ये नवेचें-किन्तु (क्षीरं सविकार मिति गौतमोपि) अर्थात् गौतमने भी कहा है कि दूध उसके बने बिचारों सहित ॥ क्षिति भूनिका नियेध किया तहो इतने और समझने-यथाह सुमंतुः-नित्यं भूमित्रीहि यवाजाद्यश्वर्यं भवेन्ननुहप्रचैके-अर्थात्-धरतीदानजों वकरी आदि घोड़ा बैल गाय आँड़ु विचारभी कभी नवेचें यह एकों का मत सुमन्तु ने लिखा है ॥ पशु जो वनके बताये तिसका भी प्रसारा है-यथामनुः-आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दद्यात्प्रचवयांश्चिच-अर्थात्-वनके सभी पशुओंको और दाहसे फाड़ने वालोंको और वयांश्च पक्षियोंको नवेचें ॥ ये सादे तीन श्लोक यहाँ तक हुये कि वैश्यकी वृत्तिसे निर्वाह करने में भी ब्राह्मण ये चीजें कभी नवेचें किन्तु क्षत्री आदि को यह दोयनहीं है-इसी लिये यद्यपि योगीश्वरने भेदनहीं खोला परन्तु नारदने ब्राह्मण के ही नाम से निषेध किया है-यथा-वैश्यवृत्ताविक्रयंत्राहारास्यपयोदधी-अर्थात्-ब्राह्मणको वैश्यवृत्तिमें भी दहीदूध बेचने योग्य नहीं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पर्वार्धप्रश्न

(अगिलेडेद प्रलोकसे कृष्टप्रतिप्रसवकहाजायगा प्रतिप्रसवउसका नामहै कि जो वार्ते नियेध करीगई उनकोफिर किसीअवसरमें करनेकी आज्ञादीजाय) ॥

(निप्रिद्धस्य प्रतिप्रसवः) ।

धर्मार्थविक्रयनेयास्तिलाधान्येनतत्समाः ३९ ॥

लाक्षालवसमांसानिपतनीयानिविक्रये । पयोदधिचमयचहीनवर्णकराणितु ४०

अर्थः—धर्म के लिये तिल बेचने योग्य है धान्यसे उसीकी बराबर ३९ लाख नमक सांस ये बेचने में जातिसे पतनीयाहै दूध दही मद्य ये हीनवर्णाकरने वालेहै ४०—
अर्थात्—जब रोजका मामली पाक यज्ञ सोई आदिका धर्म नाजके न होने से रुकता हो तब नाज के लिये तिल विक्रय में देने चाहिये सो उसी नाज की बराबर (यहाँ बरानरका अर्थविज्ञानेअने यहकहाहै कि नापि तौलिके बराबर देना परन्तु ऐसा अर्थ ठीक है कि तत्समाः उसी नाज के सोलके समान जितने होसकें सो देना जितने नाज की ज़रूरत हो किन्तु उस ज़रूरत की बराबर से अधिक रोक इत्यसे न बेचने चाहिये अन्यथा तिल और नाज के सोल में बहुत अंतर होनेसे बराबर तौलिके देना कोई ठीक न्याय नहीं है) धर्म के निमित्त बेचने कहे तौ इस धर्म पदसे और भी आवश्यक धंधे जैसे प्राणों की रसाहेतु औषधी मँगाने आदि में भी बेचनेकी आज्ञा सिद्ध होतीहै तहां भी बराबर का यही अर्थ होगा कि जितने दामोंकी औषधीलेनी हो उतनेबेचें अन्यथा एवाई मईगे सोल की सस्ते तिलों की बराबर तौलिके कोई विक्रेता नहीं देगा तब कैसा विरोध खड़ा होगा ३९ ॥ परंतु लाख लवरा सांस इन का नियेध होचुका है कदाचित् इनको बेचें तौ सद्यही पतित ठहरेता है क्योंकि इन के बेचने से डिजाती के कर्मकी हानि होती है वरन दूध दही मद्य इनके बेचने से शूद्र जातिकेही तुल्य होजाता है ॥ ४० ॥

३९ अधिकोक्तिः=मनु=काममुत्पाद्यकृप्यांतुस्वयमेवकथीबलः विक्रीणीततिला नशुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान्—अर्थात्—मनुने किसानोंको यह आज्ञा करीहै कि खेतों में (कृषीबल) किसान आपही शुद्ध साफ तिलों को उत्पन्न करिके यदि इच्छा हो तौ धर्मके अर्थ बेचें परन्तु थोड़े काल के घरे हुये बेचें किंतु बहुत पुराने विगड़े न देवें (यहां धर्मके अर्थका यह तात्पर्य है कि जो कोई होम यज्ञ याद आदि कामों को खरीदे उसीके हाथ बेचें और किसी विदेश के वैपारी आदि को भर्ती न भरावें क्योंकि अपने देशमें ज़रूरत पर तोडा न हो जाय जिससे प्रजा दुखपावें ॥ नारद=अय

तौभेयजस्यार्धेयजहेतोस्तथैवच यद्यवश्यंतुविक्रोयास्तिलाधान्येन तत्समाः (यद्यन्यथाविक्रीणीतेतर्हदोयः) तदाह मनुः=भोजनाभ्यंजनादाना द्यदन्यत्कुरुतेतिलैः कर्मिभूत्वाप्रचविद्यायांपितृभिःसहसज्जति=अर्थात्-नारदने कहा कि अपनी अशक्तिमें कि जब तिलोंके बेचे बिना काम नहीं चलें तब औषधीके अर्थमें तथा यज्ञके हेतुसे भी जो अवश्यही तिल बेचने परें तौ धान्यसे उसकी बराबरबेचें (जो और किसी प्रकार से बेचें तौ दोय है) सोई मनुने यों कहा कि=तिलानको खाने और अभ्यंजन कहिये तेल करने या दान करने इन कामोंके सिवाय जो कुछ और काम तिलों से करें जैसे पशुओंको दाने तुल्य खिला देना आदि तौ वह मनुष्य पितरों सहित कृत्ताके बिंथा से कर्म होकर उसमें पैरता है (यह तलाक़बी) इसका भी यह तात्पर्यहै तिलोंका भोजन या तेल या दान चाहें अपने आप करें या जो कोई इन्हीं कामों के निमित्त चाहें तिसके हाथ बेचें तौ यह तलाक़ उसको न समझनी (अत्रोक्त नारदके वचन में भी धान्यसे उसकी बराबर बेचें इस आज्ञाका यह तात्पर्य नहींहै कि नाजकी बराबर देवेँ और नाज लेकर दवा इरीदने जाय किंतु ऐसा तात्पर्य है कि धान्य शब्द के उपलक्षणार्थ दवाई आदि सब चीजें समुभिलेनी कि जितनी ज़रूरत खड़ी हुईहो और तब शब्दसे ज़रूरत वाली वस्तुके परिमाण का निर्देश कहागयाहै कि जितनी वस्तुकी ज़रूरतहो उतनेके समान तिल बेचने चाहिये अधिक नहीं) तौ इस व्याख्या से अब कोई सा विरोध श्रेय नहीं है अन्यथा जो (तिलाधान्येनतत्समा विक्रोयाः) इसका वही अर्थ जोइंगे कि तिल नाज से उसकी बराबर बेचने जैसी विज्ञानेश्वराचार्यकी यह पंक्तिहै (तत्समाद्रोया परिमिता द्रोयापरिमितेनेत्येवं तेनधान्येनसमाः) कि बत्तीस सेर तिलोंकी बत्तीस सेर नाजसे देवे यह उदाहरण इसी पंक्ति में प्रत्यक्ष है परंतु इसने पूर्वोक्त विरोधों से उपरालू एक और भी यह बड़ा विरोध है कि जो नाजकी बराबर देनेका सिद्धांत ठीक होता तौ मुनीश्वर उसको बदला करना लिखते किंतु विक्रोय पद नहीं लिखते ॥ और जो बदला करने मध्ये एक वचन किसी स्मृति का आगेहै उसका भी यह तात्पर्य नहींहै कि अतिशय न्यूनधिक मूल्यवाली वस्तु बराबर के बदले में दीजाय=यथा=रसोरसौर्निमातव्या नत्वेवलवगारसौकृतानं चकृताच्चेनतिलाधान्येनतत्समाः = अर्थात्-रसों से रस (यद्यपि निमातव्य) बदला करने योग्यहै पर वेही जो सजाती होनेसे मूल्यमें बराबरहों क्योंकि रसों में लवण भी गिनतीहै वह रसोंसे नहीं बदला जासकताहै किन्तु यह दृष्टांत है कि जैसेहतात्त सिद्धान्त सिद्धान्तसेही बदला जायगा औरजैसे (तिलाधान्येन तत्समाः) तिलधान्य में

नहीं उसकी बराबर दिये जासक्ते हैं—यह वचन यद्यपि निश्चित नहीं कि किसग्रन्थ का हो तथापि किसीऐसेभगड़ेके न्यायपर आसृद्ध है कि जहाँ कोईउवार लीहुईवस्तु केबदलेमें इतसे कुछ और वस्तु उसीकीबराबर देनेलोगे तब यहन्याय सुनायाजाय यह व्यवहार से संबंध रखता है (अन्यथा जोतिनाधान्येन तत्समाः इस वाक्यमें ततोया विभक्ति से योजना करनी चाहोगे तो भी पूर्वोक्त व्याख्यासे यह अर्थ सिद्धहोगा कि तिलधान्य से उसकी बराबर दिये जायें अर्थात् उसके मोल की योग्यता के समान दियेजायें तौलके बराबर नहीं और यही न्याय लोकमें भी विदित है ॥ ३६ ॥ नियम छोड़के नियिद्ध चीजोंके बेचने मध्ये मनुने ये दोषप्रकटकिथेहैं—यथा=सद्यःपततिमां सेनलासयालंबरोनच ग्रहेणाशूद्रोभवतिब्राह्मणःसीरविक्रयात् इतरेयामपरायानांवि कयादिहकामतःब्राह्मणःसन्नराशेरावैश्यभावंनिगच्छति=अर्थात्—मांसबेचनेसेब्राह्मण सद्यही तत्काल जातिसे पतित होताहै तथैव लाख औष नमक बेचनेसे भी और दुग्ध बेचनेसे तीनदिनमें शूद्रके तुल्यहोजाताहै इनके सिवाय जोजो और चीजें बेचनेकीनि- येधकरां तिनको अपनी इच्छासे बेचनेमें सातदिन बेचिकेवैश्यकेतुल्यहोजाताहै ४०

(आपद्गतविप्रस्यजीवनानि)

आपद्गतं प्रवृत्तं भुंजानो वापतस्ततः । नलिप्येतैनसाविप्रोज्वलनार्कतमोहिः ४१

कृत्रिगशिल्पभृतिर्विद्याकुतोर्वशकटंगिरिः । सेवाऽनृपेनृपभेदयमापन्नो जीवन्नानितु ४२

अर्थाः—आपद्गत ब्राह्मण प्रतिग्रह लेताहुआ जहाँ तहाँ खाताहुआ भी पापसे नहींलिप्त होताहै अग्नि और सूर्यके समान ४१ ॥ कृयो-शिल्प-भृति-विद्या-कुसीद-शकट-गिरि-सेवा-अनृप-नृप-भेदय-ये जीवन के हेतु हैं आपत्ति में ४२ ॥ अर्थात्—जिस ब्राह्मण के बहुत कुलम्ब होने आदि से निर्वाहमें कठिन्ताहो और वह ब्राह्मण उस आपत्ति में भी सत्री या वैश्यकी वृत्ति न करसक्ता हो तो वह अति हीनसे भी हीन प्रतिग्रह दान आदि लेने और हीन जातियों का अन्न भोजन करनेसे पतित या दोषी नहीं ठहर सक्ता है कि जैसे अग्नि अशुद्ध वस्तुओं को पकाने जलाने से भी या सूर्य अशुचि द्रव्यों को सुखाने आदि से भी दोषी नहीं हो सक्ते हैं तैसे वह ब्राह्मण भी अग्नि और सूर्य के समान है—इस नियम से यह तात्पर्य सिद्ध होताहै कि ब्राह्मण को आपत्काल में भी चिरानी वृत्तिसे अपनी वृत्तिनिन्दित भी ग्र्य है अधिकोक्ति में देखना—अगिले प्रलोक में सामान्य भावसे दश रयारह भेद जीवन के सब लिखते हैं कि उनमें से जो जिस को अच्छी दशा में नियिद्ध हो सो आपत्काल में करसक्ता है यह तात्पर्य समझना ४१ कयो खेती जिसको अपने हाथ से करनी

नियिद्ध हो वह भी आपत्काल में करसक्ता है शिल्प कर्म जिसको सनेकिये सोभी आपत्काल में करसक्ता है भूति प्रेय्यकर्म है कि चिरदो पयो या सदेशा लेकर जाना आना आदि विद्या यह ब्राह्मणाको पढाई लेकर पढ़ानी नियिद्ध है पर आपत्कालमें पढाई लेकर पढ़ावै कूसीद व्याज दंडा खाना नियिद्ध है पर आपत्कालमें करे शकट गाड़ी ऊकड़ा यह भाड़ेको चराना आदि सूत्री या दैश्यको भी आपत्काल में कर्तव्य है गिरि पहाड़ अर्थात् उसमें से लकड़ी आदि चीजें लाकर बेचना आपत्कालमें सेवा नौकरो हाजिरबाशी आदिके द्वारा समर्थोंका सेवन करना यह भी आपत्काल में अनूप नामसे वह धरती कहाती है जहाँ बहुत सा जल वृक्ष लकड़ी कराड़ा आदि प्राप्त होसके तहाँ जा बसना नृप अर्थात् राजा को सेवा यात्रा याचना करनी भैश्य भिक्षा वृत्तिकरणी स्नातक हो तीभी आपत्कालमें नियोव नहीं है क्योंकि आपत्काल में ये सभी जीवन के हेतु हैं इनके क्रिये बिना निर्वाह नहीं होता ॥ ४२ ॥

४९ अधिकोक्तिः=सुरपि=विद्याशिल्पभूतिसेवा शोरक्षाविपरीताऋयिःगिरिमें स्पृक्षसीदंचवशजीवनहेतवः=अर्थात्=विद्याशिल्पभूतिसेवाशोरक्षाविपरीतादुकान खेतीपहाड़भिक्षाकूसीद सूदव्याज ये वश हेतु जीवन के मनुने भी कहे हैं ॥ ० ॥ मनुने ब्राह्मणा को जहाँतक होसके अपनी वृत्ति निंघ भी करणीय आपत्काल में भी कही है=यथा=वरस्त्वर्माविशुराहो सो भी अच्छा पराया धर्म अच्छा हो तीभी ब्राह्मणाको नहीं चाहिये क्योंकि पराये धर्मका आश्रयलेकर ब्राह्मणाशीघ्रही जाति से पतित होजाता किन्तु ब्राह्मणात्व के चिह्न भित्त जतिहैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

(अनाहारपीडितधर्मः)

गुभुक्षितहन्वहस्थित्वाधान्यमब्राह्मणाद्वरेत् । प्रतिशुद्धतवाऽऽत्येवमभियुक्तधर्मतः ४१

तत्पट्टकुलंशालंश्रुतमध्ययनंतपः । ज्ञात्वाराराजकुटुम्बधर्मावृत्तिप्रकल्पयेत् ४२

अर्थः—भरवा तीन दिन रहकर अब्राह्मणाका धान्य इरै लेकर वही कहिदेना चातिये अभियुक्त पकड़े हुये कर्के भी धर्मसे कहिदेना चाहिये ४३ ॥ राजा उसका वृत्त चलन झल शील स्वभाव पढ़ना तपस्या और कुटुम्ब कोभी जानिके धर्म्यावृत्ति कल्पित करै कि जिससे फिर रोसा उसको न करना परै ४४ ॥ अर्थात् जिसके खेती आदि आपत्काल में कोई कान सम्भव न हो और नात्रविवा तीनदिन कहाके हो चुकेहों तो ब्राह्मणा का खाँडे किसी गूद का नाज केवल एक दिनके खाने औरय

या शूद्रका न मिलें तो वैश्यका या ऐसे किसी सगीका चुरावें जो धर्म कर्म से हीन हो पंच इस चुराने को सबसे जाहिर भी करदेवें कि ऐसी लाचार दशमे यहकरना पड़ा यद्वा नाज का मालिक जो इसको पकड़ि के राज में लेजाय तो वहाँ भी सच्चा वृत्तान्त कहिसनावें तब राजा इसके चाल चलन कुल शील आदिकी तहकीकात लेकर समीक्षिये पीछे उसके लिये कोई भी जीविका वृत्ति कल्पित करावें जो उस की दशा के अनुरूप समझी जाय ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

४३ अधिकोक्तिः—मनुः—तथैव सप्तमेभक्ते भक्तानियङ्गवत्तया अत्रस्तनविधानेन हर्तव्यहीनकर्मणाः—अर्थात्—सांभ्र सबेरे दो बार भोजन के मारसे छे बार किन्तु पूरे तीनदिन जिसने भोजन न पाया हो तो वह सातवीं बारके भोजन अर्थात् उतनाही नाज हीन कर्म धर्मका चुरावें जो एकदिन भोजन करने के सिवाय दूसरे दिनको न बचें (तिस ऐसे सच्चे चौरकी जीविका राजा कल्पित करादेवें यह योगीश्वर के वचन में आचुकाहै) राजा भी जीविका कल्पितकरानेविना दियो होताहै—तदाहमनुः—यस्यरा जस्तुविद्ययेभ्रोत्रियःसीदतिसुधा तस्यसीदतितद्रांष्टुर्भुमिसन्ध्याधिपीडितम् = अर्थात्—जिस राजाके राजमें ज्ञानमान परिणत भुख से पीडित होता है तिसका वह राज्य भी दुर्भिक्षऔर महामारी आदि व्याधिसे पीडित होता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥



अथ वानप्रस्थाश्रमधर्म कथने सप्रमःपरिच्छेदः ७

इस परिच्छेदमें वानप्रस्थ जो तीसरा आश्रम कहाता है तिसके सब नियम धर्म कहे जायंगे ॥

(वानप्रस्थाश्रमधर्माः)

सुतविन्यस्तपस्वीकस्तयावानुगतोवनम् । वानप्रस्थोब्रह्मचारिसाम्नि सौषासनोब्रजेत् ४५

अन्तरार्थः—सुत में विन्यास करी पत्नीवाला या तिसको पीछे लगाये ब्रह्मचर्यसे अग्नि सहित सोषासन बनको जाय सो वानप्रस्थ है ॥ ४५ ॥

अभिप्रायः—चार वर्गोंके सिवाय चार आश्रम जो प्रसिद्ध हैं सो उन्हीं वर्गों में सब होतेहैं अर्थात् पहिला ब्रह्मचर्य आश्रम फिर दूसरा गृहस्थ आश्रम तब होता है कि जब ब्रह्मचारी अपना व्याह करके गृहस्थी बनें (आश्रम ठिकाने का नामहै कि

अमुक मनुष्य किस ठिकाने में गिरती है ब्रह्मचारियों में या गृहस्थियों के ठिकाने में यह तात्पर्य है) सो इन दोनों आश्रमके सब धर्म कर्म आचार मर्यादा परिपाटी में लिख चुके हैं अब यहाँ उनका तीसरा आश्रम वानप्रस्थ दर्शाते हैं कि (वनेप्रकर्षे वा नियमेन च तिष्ठति चरतीति वनप्रस्थः वनप्रस्थस्य वानप्रस्थः संज्ञायाम्दैर्घ्यं) वन में प्रस्थित रहें सो वनप्रस्थ है उसी को वानप्रस्थ कहते हैं सो यह वानप्रस्थ गृहस्थीमें से होता है—कैसे होता और कैसे वनमें रहता है तिसके लक्षण ऊपर अक्षरायसे कहि चुके परन्तु अच्छी भाँति समझाने के निमित्त से अभिप्राय अब लिखते हैं कि—गृहस्थ का आश्रम अच्छा भोगि सन्धारि के पुँषोंको जीविका नियत कर देने बाद उन को ससंयुक्ता जानिकर अपनी पत्नी उनको सौंपि दे कि माता को आराम तथा रक्षासे राखना मैं वनवास को जाता हूँ—यद्वा भार्या आपही अपनी इच्छा से पति की सेवा करनी चाहिके साथ जाना चाहै तो उसको भी साथ लेकर ब्रह्मचारी होकर है किन्तु पत्नी से रतिविलास न करे अपना वीर्य स्त्रीचिके साथे पर चलावे—और सागिन वनको जाय अर्थात् बैतान अग्नि जो वेदोक्त अग्निहोत्र की स्थापन घरमें होरही थी तिसको भी साथलिये जावें तथा सोपासनोत्रजेत किन्तु उपासन अग्नि भी गृह्याग्नि के नाम से दूसरी अग्नि होती है तिसको भी साथ लिये जावें फिर वन में रहकर अगले छह-लिस ४६ श्लोकवाले नियमोंको साथे वह वानप्रस्थ कहाता है ॥ ४५ ॥

४५ अधिकोक्तिः—यहाँ यह संदेह न करना कि प्रायश्चित्तोंके प्रसंगमें आश्रम के धर्म क्यों कहिने लगे—क्योंकि यह वानप्रस्थका धर्म जो है सोभी आत्माको शुद्धि कर देनेवाला एक बहुत बड़ा प्रायश्चित्त है इसके आगे संन्यास बरान करैगे सोभी यद्यपि चौथा आश्रम है परन्तु आत्म शुद्धिके प्रभावसे वह भी एक प्रबल प्रायश्चित्त समझना इसी प्रकार जहाँजहाँ जो कुछ इसकाण्डमें बरानि हो सो सर्वथा प्रायश्चित्तहीका रूप समझना कि उसका पाठमात्र भी श्रवण करनेसे मनुष्यों के जन्मांतर पापशोधन होजाते हैं फिर साक्षात् साधना करने वालोंको का कया ॥०॥ चेटाको अपनी भार्या सौंपिके जाय इसकथनसे यह तात्पर्य भी दर्शाया है कि वनवास उसीको लेना चाहिये जिसने गृहस्थी धर्म के द्वारा चेटेपैदा करके और पालि पोयि समर्थ करदिये हों अग्र-या छोटे बालबच्चों वालानहीं—सोभी यह नियम उसके लिये सम्भव है कि जिसने क्रमसे सब चारों आश्रम का फल उठाना चाहा हो—अन्यथा (अविप्लुतब्रह्मचर्यायं यमिच्छेत्तमावसेत्) दूसरा नियम यह भी है कि जिस ब्रह्मचारीने विवाह न करके अपना वीर्य ब्रह्मचर्यसे थाँभाहो सो जिसजिस आश्रमको इच्छा करे तिसमेंवसे अर्थात्

गृहस्थी बनेबिना भी निज इच्छासे बनवास लेकर जानप्रस्थबनै या संन्यास लेकर संन्यासी बनै ॥ ० ॥ गृहस्थी को बनवास लेनाकहा सो उस दशामें संसूचित है कि जब देह उसकी बुढ़ापे से जर्जर होजाय यद्वा पुँषों के पुत्र भी उत्पन्न होजायें तब देह जर्जर न होनेपर भी जाना चाहिये अन्यथा नहीं—यथाह मनुः—गृहस्थस्त्यदापश्येच्च लीपलितमात्मनः अपत्यस्यैववाऽपत्यंतदारगण्यसमाश्रयेत्—अथति—गृहस्थ पुरुषजब अपनी देहकी खालमें बल पहिगये दीली और पकीहुई देखे या संतानके संतानहुई देखे तभी बनवास करै तो उसके बनवास रूपी तपके प्रभाव से संतान की सदा जय होती बनोरहितो है ॥ ० ॥ पुँषोंको पत्नी सोंपिके जानाकहा तिसका यह ध्वन्यर्थ नहीं है कि जिसकी पत्नी मरगई हो सो बनको नहीं जासक्ता क्योंकि पत्नी जीती होती सोंपिके बनवासलेते तिससे वह सोंपिजाना नियम केवल उसका है कि जिसकी पत्नीजीवती हो अन्यथा जिसकी मरचुकी हो तिसको भी बनवास लेना आपस्तंब आदि अनेक मुनीश्वरों ने कहा है—जब कि बड़ी अवस्था में स्त्री मरजाने पर भी बनवास लेना सिद्ध हुआ—और—आचार मर्यादा परिपाटी के ८६ ब्रह्मलोकसे यह कहाया (दाहयित्वाऽग्निहोत्रेणस्त्रियंतुत्तवतीर्षतिः आहरेद्विधिवद्वारानग्नीश्रुचैर्वचिलंवधत्) कि जिसकी भार्या मरजाय तो वह पति अपने अग्निहोत्र की अग्नि से सुलक्षणी स्त्री को जलाय कर देरी न करके शीघ्रता से विधि पूर्वक अपना विवाह करै और अग्निश्यों का (पुनराधान) फेर स्थापन करै जो भार्या को न रहने से सिद्ध गईथी—सो इस वचन से यह विरोध न समझ लेना कि आचार धर्म से विवाह करना आवश्यक लिख चुकेथे अब कोंकर भार्या मरजाने बाद विवाह किये बिना बनको जासक्ता है—क्योंकि इस वचन से विवाह करने की आज्ञा केवल उसको दीगई थी कि जिसकी देह और अवस्था पूर्य होनेसे काम भोगकी वासना खड़ी रही हो या बालक वधे पालने योग्यहों या संतान जिसके न हो और गृहस्थी धर्मकरने की वासना बाक्ती रहीहो और यहाँ जो पत्नीके न होनेपर भी बनवास लेना कहा सो उस दशा में कि जब गृहस्थी धर्मसे खूब तृप्ति होचुकी हो और पुत्र पौत्र भी समर्थ मौजूदहों या अपनी देहजर्जर होचुकीहो तिससे कीइसा विरोध नहीं केवलसमभक्ता अन्तर है ॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर का कथन है कि- साग्निःशोपासनोन्नजेत्- यह वाक्य जो मूल ब्रह्मलोक में कहा गया कि अग्नि सहित या उपासन अग्नि सहितजाय इसमें भी यह तात्पर्य है कि जिसके आधीही अग्निश्यों का स्थापन हो सो तो श्रोताग्निश्यों को और गृह्याग्नि को भी साथ लेजाय और जिसके सब अग्निश्यों का अर्थात् तीनों

का आधान हुआ हो वह केवल एक श्रौताग्नि को लेजाय सबको नहीं ((ये अग्निघों की व्यवस्था अच्छी तरह उन्हीं की समझ में आसक्ती है कि जो अग्निहोत्री हों और अग्निहोत्र आदि यज्ञ विधान की पद्धति पढ़े हों उस विषय के विविधनियधों को जानतेहों क्योंकि यहाँ केवल उनका चर्चाभाव है कुछ पुरा विधि नियध नहीं हैं इसका दृष्टांत जैसे जेदा भाई जिसका अनाहितान्नि हो तो छोटा भाई श्रौताग्नि का आधान न करे यह भी एक नियध है ऐसे और भी अनेक हेतु हैं सो सब उन्हीं यज्ञविधानों से जानेजासके हैं)) जहाँ कहीं ऐसे उक्त कारणां से श्रौताग्नि का आधान न होसका हो तहाँ वह वानप्रस्थ केवल उपासनाग्नि को ही लेजाय इत्यादि विवेचन कर्तव्य है इसीलिये साग्निःसोपासनोत्रजेत यह कहा गया ॥ ७ ॥ अग्नि का साथ लेजाना भी इसी लिये कहा गया कि जो कर्म अग्निहोत्र आदि उसमें होते हैं सो होतेरहें—इसीलिये मनुने वानप्रस्थ के धर्मां साथ यह अशोक नियम कहा है—यथा वैतानिकं च जुहुया दर्शनहोत्रं यथाविधि दर्शनस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च शक्तिः—अर्थात्—वानप्रस्थ वनमें रहते वैतानिक अग्नि होत्र भी यथा विधिसे होमें और दर्शनान अमावस की पर्व तथा पूर्णिमा की पर्वकोभी अपनीशक्तिके अनुसार खाली न जाने देय किंतु उन में जो विशेष यज्ञ होते हैं सोभी करे ॥ अवधितर्कः—क्योंजी पुत्र को पत्नी सौंपिके वनमें गया वहाँ पत्नीविना अग्निहोत्र आदि कर्मका अनुष्ठान क्योंकर होगा किंतु (पत्न्या सह यदृश्यं) सपत्नीक यज्ञ करना कहा है ॥ समाधान—यह तर्क तुम्हारी सत्य है परंतु पत्नीको सौंपि जाना इस आज्ञा की प्रबलता से ही उसके विना करने का अविकार सिद्ध हुआ—और भी यह विधि है कि जिस अग्निहोत्री के यज्ञ छपी व्रतके दिवस पत्नी रजस्वला होकर छूनेयोग्य न हो तो उस दिन उसको साथ बैदारे विना यज्ञ करे तैसा यहाँ वनमें भी समझ लेना कि विना पत्नी के होमक्ता है वरन पत्नी घर बैठी भी यह अनुमान किये रहेगी कि मैं पतिके साथही वनमें उपस्थित और यज्ञादि कर्मों में उसी तरह शामिलहूँ कि जैसे पहले घरके यज्ञ में होती थी तिससे कोई विरोध इसमें नहीं है न यह शंका करनी चाहिये कि जैसे ब्रह्मचारी जिसके स्त्रीका अभाव सदा होताहै तिसके वनमें जाने या विधुर जो स्त्रीसेविहीन या विद्योगी हो सो—वनमेंजाय तिसकेलिये अग्निहोत्रआदिका परिलोप है कि वे दोनों नहींकरते या नहींकरसक्तेहैं तैसैजिसनेपुत्रोंकोपत्नीसौंपी वह भी न करसकेगा ऐसी शंका निपट रूपाहै—क्योंकि—ब्रह्मचारी और विधुर ये दोनों भी अग्निसाध्य कर्मों के अवधिकारी नहीं किंतु अविकारी सिद्ध होते हैं क्योंकि

पंचम मास के उपरान्त आर्वाणिक अग्नि के आवाहन में उनका भी अधिकार देख पड़ता है इस बातका प्रमाण अगिला वचन वशिष्ठ का देखो—यथाह वशिष्ठः=वान प्रस्योजितिशचीराजिनवांसा नफालकृष्टमवितथेत् अकृष्टमूलफलसंचिचितीकृष्टरे ताः स्माशयोदद्यादेवनप्रतिमृत्नीयात् ऊर्ध्वपंचभ्योमासेभ्यः आर्वाणिकेनारिनमावा चाऽऽहितारिनवृक्षमूलिकोदद्यादेवपितृमनुष्येभ्यः सगच्छेत्स्वर्गमानंत्य=अर्थात्—वशिष्ठ ने यह कहा कि वानप्रस्थ बनकर जटा रखाये चीरनाम कोपीन धाँधे या वनके वकल भोजपत्रआदि और अजिन मृगाकाला विस्तर कियेहुये रहें पर हलकेजुते खेत में न टिके बिन बोये जोते जो वन में आपसे उत्पन्न होकर गिरें ऐसे कद मूल फलों को अच्छी शुचिता से बीन लेंधैं धीर्य अपना खींचके साथे में चढायेहुये (ऊर्ध्वरेताः) ब्रह्मचर्यसे धरतीपर सोया करें और किसी से कुछ प्रतिग्रह आदि न लेवें किंतु जहाँतक होसके देताहीरहें उपरान्त पाँच महीनाके आर्वाणिक नाम वैदिक मार्ग से (किंतु लौकिक से नहीं यह तात्पर्य है) वैदिक विधानसे अग्नि का आवाहन करके आहितारिन बनाहुआ उसकी जड़के पास निवास किये पितरों तथा मनुष्यों को भी देताही रहें सो वह ऐसा वानाप्रस्थ आनंत्य स्वर्ग को जावें—अर्थात् ऐसे स्वर्ग में जाता है कि जहाँ उसकी तपस्या का फल नहीं होसकता=इन सब नियमों को योगीश्वर अगिले ४६ के श्लोक में विशेषता से दर्शावेंगे ॥ ४५ ॥

(वानप्रस्थेगुणविधिः)

अफालकृष्टेनाग्निंश्चपितृदेवातिपीनपि । भृत्यांश्चतर्पयेत्तदमभुजटालोमभूवात्मवान् ४६ ॥

अर्थः—प्रमथु जटालोम धारणाकरी देहवा ना अफालकृष्ट अन्नसि अग्नियों को और पितरों तथा देवताओं और अतिथियों और भृत्यों को भी दत्तकरें =अर्थात्—पूर्वाक्तवानप्रस्थ प्रमथु दाढीमूछ जटा शिरपर लोम रोमा जोबगल आदिकहीं शरीर में होतेहो सोभी रखाये हुये तथा रोम के उपलसणमें नख भी रखे समझने आत्मवान् अर्थात् आत्मा जो परमात्माहैं तिसकी उपासनारूपी शुद्ध सेवामें तत्पर बनारहिका हल फालीसे जुते बिना धरती से उत्पन्न जो मुन्यन्न अनेक वन में होते हैं तिनसे उन अग्नियों को दत्त करें जिनका साथ लेजाना पहिले कष्टिकुठेहैं अर्थात् उन में श्रौत वा स्मार्त कर्म करता हैं और पितरोंके निमित्त याद तर्पण आदि भी करता है तथा देवताओंके निमित्त जो जो कर्म आवश्यकहैं सो करताहैं और अतिथि जो सबसे प्रथम दिवस अपूर्व कोई आवें ऐसे अतिथियों को नित्यही आद्विक विधानसे दत्त करता

रहे और च शब्द को ध्वन्यर्थ से भिक्षादान भी उसी अन्नसे करता रहे (अविकोक्तिमें मनु के वचन देखें) और अपि शब्द को ध्वन्यर्थ से भूतों को भी पंचयज्ञ विधान से तृप्त करता रहे और भृत्य जो अपने शिष्यादिकहों तिनको भी उसी अन्नसे अर्थात् जो कुछ करें सो सब वन को उत्पन्न नीवार आदि मुन्यन्त्रों से करें किन्तु खेत को उत्पन्नों से नहीं—और विशेषता अधिकोक्तिमें ॥ ४६ ॥

४६ अधिकोक्तिः—मूलप्रलोक में दूसरे चकार के ध्वन्यर्थ से उनको भी संतृप्त करें जो कोई भूले भटके आयुष्य के पास आपरें—तथा च मनुः=यक्षः स्यात्ततो दद्यादिति भिक्षाचर्याकृतः अमूलफलभिक्षाभी रचयेदाश्रमाभितार=अर्थात्—जो कुछ अपना भोजन होय तिसमें भूतबलि और भिक्षा भी शर्कित के अर्पण किन्तु जल मूल फल भिक्षा इनसे सत्कार करें उनका कि जो आयुष्यपर आगयेहों=इस प्रकार पंचमहायज्ञों को निपटाइके उसका शेष अन्न आपभी प्रसाद भोगें यद्वा तात्पर्य अग्नौ क्त मनुके वचनसे स्पष्ट है—यथा=देवताभ्यश्चतद्वत्त्वावन्त्यं मेध्यतरं हविः शेषमात्मनि युंजीत लवरां चक्षत्यं कृतम्=अर्थात्—वनका उत्पन्न जो अत्यंत पवित्र हृद्य हो सो देवताओं के लिये होमिके (चकार से पितरों को भी) फिर बचा हुआ अपने उदर में पुष्ट करें और नमक जो ऊखर वस्ती से खारी आदि किसी तरहका उत्पन्न हो जिसको धोय नितारिके आपही शुद्ध किया हो सोई बर्तावामें लावें क्योंकि यज्ञों के लिये वन का मुन्यन्न कहा तैसा नमक भी सूचित किया तिससे सभी वस्तु जो ग्राम्य हो किन्तु नगर आदि वस्ती से उत्पन्न हो तिसका आहार करना निषेध ठहरा=तदप्याह मनुः=संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वचैव परिच्छेदम्=अर्थात्—वस्ती से उत्पन्न आहार को बिल्कुल त्यागि के और गृहस्थोंवाला सब सामान भी छोड़िके वनमें बसे ॥ ० ॥ अश्वितर्कः—कोंजी ग्राम्य आहारों का निषेध त्यागकेसे हो सक्ता है अभावस पुराणमासी आदिके वेदोक्त यज्ञ भी धान चाँबर आदि ग्राम्य द्रव्यों से होते हैं जो वनमें भी करने कहे-इसमें यह उत्तर न देना चाहिये कि (अफालकृष्ट) बिना जोते अन्नसे अग्नियों को तृप्त करना कहा तो इसविशेष वचन की सामर्थ्यसे धान आदि ग्राम्य द्रव्योंकी रोक पाई जाती है क्योंकि यह विशेष वचन है स्मृतियोंका और धान आदि की आज्ञा है वेदोक्त श्रुति वचन से तो इस दशापर स्मृति चाहें विशेष वियय वाली हो तो भी उसके द्वारा श्रुति वचन का बाध करना अन्याय ठहरता है और वह (अफालकृष्टविधि) बिना जोते अन्नकी आज्ञा भी स्मार्त अग्नि में होने वाले कर्मोंके वियय पर आकूट है तिससे यहाँ विरोध संभव होता है—समाधान—यह आपने सत्य कहा कि धान आदिसे यज्ञ करने कहे परन्तु

धान आदि भी केवल जुते खेतसे नहीं होते किन्तु बिना जुते भी उत्पन्न होते हैं तिससे कुछ विरोध नहीं है—इसी हेतु मनुने यह कहा है कि—वासतशारदेर्मेधैर्मुन्यन्नैस्त्वयमा हतैः पुरोडाशांश्चक्रंश्चैवर्विचर्विचर्वपेत्पृथक्—अर्थात्—वनके मेध्यमुन्यन्न जो वसंत ऋतुमें उत्पन्न हों या शरद ऋतुमें उत्पन्न हों और आपही चुनिके लावें तिनसे पुरोडास और चक्र भी अर्थात् होम की सामग्री और खीर भी यथोक्त विधि से जुदे जुदे सब कामोंमें लगावें—यहाँ—मुन्यन्न जो कहे सो नीवार वेणु श्यामक आदि अनेक होते हैं आपही उत्पन्न होनेसे मेध्यत्व नाम पवित्रता उनकी स्वतः प्रसिद्ध है तथापि मनु के वचन में जो मेध्य शब्द से विशेषण दिया गया सो इसी लिये कि उन में जो ग्रीहि आदि यज्ञके योग्य हों तिनमें कार्य करें (किन्तु मेघनाम यज्ञ का है तिसके योग्य जो अन्न समभ्राजाय सो मेध्य कहावें—मेधोयज्ञस्तदहमेध्यं) तिससे शंका न करनी चाहिये ॥ १० ॥ मूल श्लोक में लोम शब्द से नख भी स्वीकार किये गये हैं तिसका प्रमत्ता यह अग्रोक्तवचन है—यथाहमनुः=जराप्रचविभृशचिन्त्यंश्मश्रु लोमनखांस्तथा—अर्थात्—हमेशा जराखावें और दादीमूक तथा नखोंको भी ॥ अग्नौ चैवानप्रस्थ को नाज आदि जखरी द्रव्योंका संचय करना भी कहेंगे ॥ ४६ ॥

(वानप्रस्थेधान्यादिसंचयनियमाः)

अहोमासस्पष्टपण्णांवातथासंवत्सरस्थवा । अर्पणसंचयंकुप्यात्कृतमाश्वपुजेत्यजेत् ४७ ॥

अक्षरार्थः—दिन का या महीने वा खसाही वा सालभर का अर्थ संचय करें और किया हुआ आसीज के महीना में त्यागिदे ॥ ४७ ॥

अभिप्रायः—भोजन और भिक्षादेना आदि और यज्ञों में लगाना आदि जो जो सामग्री खर्च उसके होते हों तिनसबके अनुमान से एकदिनके निर्वाह योग्य या महीनाभरके या खसाहीके निर्वाहयोग्य या वर्षमात्र के निर्वाह योग्य अथवा संचय वानप्रस्थ भी करें (या शब्दकीलक्षणासे यह तात्पर्य है कि जहाँ नित्य नया अन्नप्राप्त होसक्ताहो तहाँ एकदिन के योग्य धरावाले अधिक नहीं एवं जिस वनमें जैसी कठि-नता या बर्षाकालमें मिल सकने की कठिनता देखि पस्ती हो तिसके अनुरूप संचय करें किन्तु कठिनतासे अधिक नहीं—यहां संचय करतेहुये कभी अधिक संचयहो भी जाय तो उसको बाँटि बर्ताइ देवें एवं वर्या ऋतु के पीछे ज्वार के महीना में संचय किये हुये सभी को बर्ताइ देवें क्योंकि प्रथम ती वर्या में जीवजन्तु पट्टिनाने से यज्ञ के योग्य नहीं रहता और दूसरे वर्या के बाद नवीन द्रव्यों का संग्रह किया चाहिये तिससे पूर्वसंचित को त्यागि देवें ॥ ४७ ॥

(वानप्रस्थेविशेषनियमाः)

दांतस्त्रिपणस्रापीनिवृत्तश्चप्रतिग्रहात् । स्वाध्यायवान्दानशीलःसर्वसत्त्वहितैरतः४८ ॥

दंतोलूखलिकःकालपकाशीवाइमकुट्टकः । अंतस्मार्तफलस्नेहैःकर्मकुर्यात्तथाक्रियाः ४९ ॥

अर्थः—दांतहो किंतु दर्प से रहित स्वभाव हो-त्रिपणवरास्रायी तीनोंकालमें स्नान किया करे-प्रतिग्रह लेनेसे मुंह फेरे रहे चाहे तैसा लोभलालच कोई आकार दिखावे तोभी-स्वाध्यायवाच किंतु अपने वेदके पाठमें-अभ्यास आवृत्तियों से कतराहै-दानशीलहोय किन्तुफल मूल भिक्षाआदि देतारहै-सभी जीवोंका हितकरतारहै४८॥ दंतोलूखलिक वने अर्थात् ओखली खस्तल आदि न राखे अपने दांतों को गाली मूसर आदि माने और उन्हीं से काटि तोड़ि के भक्षण किया करे-कालप काशी वने अर्थात् नोधार वेणु श्यामा आदिमुन्यन्न और वेर इंगुद आदि फल भी जो केवल कालहीसे पकते और खाने योग्य होजाते हैं अग्नि की अपेक्षा उनमें नहीं रहती तिनको खाकर समर्थ वितार्था करे यद्वाग्नि सेभी पकाकर किसी अवसर में खाय तो कुछ दोय नहीं है परंतु अग्निके वशीभूत न होजाय कि उसमें पकाये बिनाखाही न सकें यह तात्पर्य है, मनु के वचन से अधिकोक्ति में, यद्वा इसी प्रकार जो केवल दांतों से न खासके सो किसीअवसर में पत्थरपर कुटिकेभी खाय पर चक्रीआदिका संग्रह न राखे—एवं श्रौत और स्मार्त कर्म यज्ञ होम आदि तथा भोजन आदि और भी क्रियायें जो अवश्य चिकनाई से होते हों सो सब फलोंको मोगसे उपजे स्नेहों से करे दृष्टांत जैसे महुआकी शुठलीका तेल या बड़हरकी शुठलीका इत्यादि पवित्र फल चिकनाईवाले वनमें बहुत होतेहैं तिनसे काम चलावे पर घृतादिक स्नेहों का वर्तवान करे ॥ ४९ ॥

४९अधिकोक्तिः—कालपक भूगोव वा इतिमनुः—अर्थात्सनुने भी विकल्प दर्शाया है कि अग्निसे पका यद्वा कालहीसे पका भोजन करे ॥ अन्यच्च,मनुरेव=सेषयदृक्षो इवानद्यातस्नेहोपचफलसंभवाच्च—अर्थात्-पवित्र दृक्षोंके फलखाय तथा उनके फलों से उत्पन्न चिकनाइयों को भी खाय ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

(वानप्रस्थस्यान्येपिनियमाः)

चांद्रायणेनयेत्कालंरुद्धैर्वावर्तयेत्सदा । पक्षेगतेवाप्यभ्रीयान्मासेवासनिवागते ५० ॥

सप्याद्रुमोशुचीरात्रोदिविवासंपदेनयेत् । स्थानासनविहारैर्वार्योगाभ्यातेनवातथा ५१ ॥

अचरार्थः—चांद्रायणों से काल को लेवे या सदा रुद्धों से वर्त यद्वा पक्ष बीते

भोजन करै या महीना बीते या दिनके वीति जाने में ५० ॥ रात्रिमें शुचि होके धरती पर सोवै तथा दिन में संप्रदीं से काल बितावै यहा स्थान आसन के विहारों से या योगाभ्यासही से काल बितावै ॥ ५१ ॥

अभिप्रायः—अज्ञोक्त नियम इस तात्पर्य पर दर्शाति हैं कि वानप्रस्थ को दोवार आदि भोजन गृहस्थीकी तरह न करना चाहिये क्योंकि उससे देहका पुरुषार्थ बढ़ता है तिससे इंद्रियां भी प्रबलहोके सताने लगती हैं तिससे—वानप्रस्थ चांद्रायणाव्रतको बारंबार साथै जिसकी विधि आगे कही जायगी अथवा कृच्छ्र नामक प्राजापत्य आदि व्रतोंसे सदा अपने कालको बितावै या यह नियम साथै कि पक्षनाम अथवा उज्जरा पखवारा पूरा होनेपर एकदिन भोजन किया करै या दोनोंपाख बिताकर पूरे एक महीना बाद भोजन कियाकरै अथवाये न होसकै तो दिनसात्र बिताकर केवल रात्रिमें भोजन कियाकरै—यहा अपि शब्दके ध्वन्यर्थ से चौथेकाल आदिका कोई नियमसाथै जैसा अधिकोक्तिमें मनुका वचनहै—इन सबनियमोंमें शक्तिके अनुसार बिकल्प समुत्पल्लेना कि जैसा नियम साधन होसके सो करना चाहिये ५० ॥ और भी सबकामों से निषेधे पीछे जो रातिका समय खाली रहिजाय तिसमें मनको जीते हुये सावधान पवित्र देहसे धरतीपर सोवै इसी प्रकार दिनमें जो कुछ काल नित्य कृत्यों से फालतुं रहि जाय (तहां दिनमें सोउने का नियम पर प्रहं) कदाचित् उसमें भी निद्रा या तंद्रा आकर घेरै तहां निद्रा तंद्राको दूर करना चाहिके पैरोंके अग्रभागसे अर्थात् पाँचों अंगुरियोंके भार चहलकदमी करने लगै किंतु ब्रती पर सेंडी को न लगने देवै सिर्फ अंगुरियोंसे चला किति करिके तीव्र हटावै (दिवा संप्रपदनयेत्) यह इसी पदका अर्थ है) अथवा निद्राके न लगने परभी यदि चित्तको उद्वेग आताहो तो फिर कुछ खड़े कुछ बैठे होकर बारम्बार कालको बितावै यहां स्थानका विहार खड़े होकर दहलने का अर्थ है कि जिसमें सेंडी सहित पूरे पैरसे खड़ा होना और चहलकदमी करना सिद्ध होता है और आसनका विहार बैठिजाने का अर्थ है और सबका तात्पर्य केवल यह ही है कि दिनमें निद्राके बिना भी लोहें नहीं मन बहिलाने के लिये कभी खड़ा कभी बैठे काल बितावै अथवा सब से उत्तम यह उपाय है कि योगाभ्यास करने लगै अर्थात् आसन पर बैठके परमेश्वर के ध्यान सहित बारम्बार प्राणायामों की साधना करने लगै (कदाचित् यह प्रश्न किया जावै कि योगाभ्यास सब पी प्राणायाम कैसे किया जाता होगा तिसका उत्तर आगे चलिके २० वीसवें परिच्छेदमें १६६ तकसी अष्टानवे मूलश्लोकसे आदि लेकर देखना ॥ ५१ ॥

५० अधिकोक्तिः—मनुः—नक्तान्नसमशीयादिवावाऽऽहृत्य शक्तः चतुर्थका

लित्कोवास्यात् यदाप्यष्टमकालिकः (एतेषां कालनियमानां प्रत्ययपेक्षया विकल्पं
 इति मिताक्षरा = अर्थात्—मनुने यह कहा है कि अपनी शक्ति के अनुसार चाहें राति में
 भोजन करने का नियम साधें या दिनमेंहीं एकवार थोड़ा खानेका नियम साधें तिस
 में भी दिनके चौथे कालमें खानेका नियम राखें यदा आठवें कालमें भोजनका नियम
 राखें (मिताक्षराकार कहिते हैं कि इन सब जुड़े जुड़े काल नियमों में से अपनी शक्ति
 के अनुकूल कोई एक नियम साधें फिर चाहें तभी बदलिके दूसरा नियम साधने लगे
 जो पहिले में अड़चल प्रतीत होय इसी लिये विकल्प रखे गये हैं ॥ ५० ॥ इत्या-
 उनके मूलश्लोक में योगाभ्यास का जो चर्चा किया तिसके भी अनेक डोल होते हैं
 उसके मध्ये मनुने यह कहा है कि (विविचाप्रचोपनियदोरात्मसंसिद्धये शुभोः) आत्म
 सिद्धि चाहनेके लिये विविध भौतिकी उपनियदो श्रुतियां १९८० ग्यारहसौ अस्सी
 उपनियदों में चारों वेदके सारांश रूपसे प्रसिद्ध हैं तिनको भी बानप्रस्थ अपने फालतू
 कालमें विचारें फिर उनके द्वारा मनन करिके प्राणायाम ध्यान योग समाधि पर
 आरुढ़ होवें—क्योंकि—उपनियत—यह शब्दही वेदके सारांश का नाम है (और ब्रह्म
 विद्या जो अब्यात्म कहाती है तिसका भी उपनियत नाम है उसकी श्रुतियों तत्व
 मसि आदि वाक्योंको जानना) और भी (अवचोपनियच्छब्दो ब्रह्मविद्यैकगोचरः त
 च्छब्दावयवार्थस्य विद्यायामेव संभवात्) ब्रह्म और आत्माके सासात्कार एकहीरूप
 हीजानेका अर्थ भी उपनियत नाम कहाता है तिससे विशेषकर उपनियदों की आ-
 राधना करें—कदाचित्—यह शंका करी जावें कि बानप्रस्थ के और सब नियम कहे
 गये परंतु ज्ञान आचमन आदि नित्यकार्योंका प्रकार कुछ न कहा गया सो कैसे करें
 तहां ब्रह्मचारी के प्रकार आदि स्थलोंपर आचारकांडमें जैसा ब्रह्मचारीके निमित्त
 पर कहि चुके तैसा यहां इसकी भी वही प्रकार सफुल्लेना—क्योंकि (उत्तरेषां चैत
 दविशेवीति गौतमः) गौतम ने शौचका विधान ब्रह्मचारीके अवलम्बसे कहिकर यह
 कहि दिया है कि पिछले आयुओं को भी यही विधान अवश्य ही जानो ॥ ५१ ॥

(बानप्रस्थस्य साधनविशेषधर्माः)

ग्रीष्मे पंचाग्निमज्यस्यो वर्षासु स्थंडिले शयः । आर्द्रवासास्तु हेमन्तेशक्यावापितपश्चरेत् ५२
 यः कंटकैर्वितुदतिचंदनैर्वदचलिपति । अक्रुद्धोऽपरितुष्टश्च समस्तस्य चतस्य च ५३
 अग्नीन्वाऽप्यात् सात्कृत्वा वृक्षवासो मितवान्नः । बानप्रस्थश्चेत्पेव यथा प्रार्थनैः क्षमा चरेत् ५४
 अर्थः—ग्रीष्म में पंचाग्नि बीच बेंदें—वर्षाओं में स्थंडिल पर बेंदें लेंगे—हेमन्त में भी
 जो वृक्ष परिहरे हुये तपकरें या शक्तिके अनुकूल तपकरें—अर्थात्—गरमी घरसात जाहा

ये तोनिही ऋतु साल भरमें प्रधान होतीहैं इनमें ऐसी रीतसे बानप्रस्थको तपकरना चाहिये कि चैत से असाढ़ तक चार महीने पंचाग्नि तापे अर्थात् जंगल में बैठि के अपने चारों ओर चार अग्नी जलावे ऊपरसे पाँचवीं आगि सूर्यका आताप होय यह पंचाग्नि का स्वरूप है. फिर श्रावणा से कातिक तक चार महीने जब जब कभी बरषा होय तब स्थंडिल एक चबतरा जो बिना छायाकी धरती पर जंगल आदि भूने स्थान में बनायाहो तिसपर बैठे लेटे सभी तरहसे बर्षाओंको बरसते समय अपने मूँहपर भेलें ऐसे चबतरे पर किसी पेड़की छाया भी न होनी चाहिये. फिर हेमंत जाड़ेको ऋतुमें मार्गशीर महीनासे फागुनतक चार महीने भर भीजा कपड़ा पहिने रहाकरे जिसको ऐसा तप करनेवाली शक्ति इतनी न होय सो जितनी उसमें शक्तिहोय उसीको अनु-सूय तपस्या करे परंतु जिस प्रकारसे शरीर दुर्बल होसके सो करना चाहिये ॥ ५२ ॥ दूसरा धर्म कहिते हैं कि—जो कांटों से छेदता है या जो चंदनों से लेप करता है तिस पर न क्रोध करना न संतुष्टि मानना किंतु उसको और उसको भी समान बुद्धि राखे= अर्थात्—बानप्रस्थ के साथ यदि कोई खोट बचन कहि कर या कुछ खोंटा काम करिके उसे ऐसी पोढ़ा देने लगे मानी कांटोंसे छेदता है तिस पर क्रोध भी न करना चाहिये या यदि कोई ऐसी सेवा श्रुय्या आदि भलाई करने लगे जानों शीतल सुगंधिमाद चंदनोंका लेप करता होय तिसपर भी अत्यंत प्रसन्नता अपनी न जाहर करे किंतु दोनोंपर एकहीसी प्रकृति अपनी उदासीन बनीराखे ॥ ५३ ॥ तीसरा धर्म कहितेहैं कि—अग्नियों को आत्मामें समावेश करिके थोड़ा भोजन करतेहुये वृक्षही के नीचे बासकरे तहां बानप्रस्थोंकेही घरोंमें प्राणायामा के लिये भिसा आचरे= अर्थात्—जिन अग्नियों को सेवा करनी ४६ छहलीस मूलप्रलोक में कहि चुके हैं उन्हीं की सेवामें जो तत्पर होरहा हो और उस रीतसे करनेकी समर्थ जिसमें न रही हो तिसके लिये यह और धर्म कहा है कि अग्नियोंको अपने हृदयस्थ आत्मा में स्थापन करिके भोषणो ह्योहि आहिके चाहें तिस वृक्षके नीचे अपनी कुटी मानिके निवास किया करे इसका विशेष नयीरा अधिकोक्ति में देखना ॥ ५४ ॥

५२ अधिकोक्तिः—तपके साथ देहका दुर्बल करना मनुने स्पष्ट कहाहै—यथा= तपश्चरंप्रचोयतरंशोयथेहं हमात्मनः—अर्थात्—बानप्रस्थ बड़ा उपतप करते हुये अपने देहको सुखावे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ पूर्वोक्त अग्नियों को आत्मसाद करना मनुन भी वि-स्पष्ट कहाहै—यथा—अग्नीन्स्वात्मनिवैतानान्समारोध्ययथाविधि अनग्निरनिकेतः स्थान्मुनिर्मूलफलाशनः (अश्विनिर्मोनव्रतयुक्तः फलमूलासंभवेच यावत्प्राणाधारणं

वति तावन्मात्रं भैरव्यानप्रस्थगृहेष्वेवाचरे दिति सितसारा—अर्थात्—जिस किसी वानप्रस्थ ने वनमें कुटी आदिकी रचना सहित श्रौतविधि से यज्ञके वितान में अग्निथों का स्थापन किया होय सो कुछ काल सेवन करके सेवा करने से असमर्थ होजाय अथवा कुटी और अन्नोका संग्रह आदि विस्तार जैसा छेयालीस मूलश्लोक से लेकर पचास तक पाँच श्लोकों में दर्शाया था तिसका बर्तावा करते करते भी घेभर जाय जिससे वैराग्य उत्पन्न होने लगे इसीसे सबआडंबर छोड़िछोड़िके स्वतंत्र नियम धर्मकी साधना किया चाहें तिनके लिये यही चौधन ५४ का मूलश्लोक योगीश्वर ने भी कहा और उन्हींके निमित्तपर मनुभी यह कहते हैं कि—वितानकी स्थापन करी अग्निथों को यथोक्त विधि के साथ अपने हृदय रूपी आत्मा में आप्त करिके अनग्निहोजावै और अनिकेत होजावै कि अग्निभी न रक्खै और कुटीआदि स्थान का बखेडा भी न रक्खै और मुनिस्वरूप होकर कद मूल फल भोजन कियाकरै और वृषो के नीचे विग्राम लेकर चाहें तहाँ इच्छा के अनुसार टिका करै (इसपर सितसाराकार कहते हैं किं मौन-रहनेका व्रतसाधै तिससे मुनि कहावै यह तात्पर्य है) और इन्ही फलमूल आदि के न मिलने में योगीश्वर के मूल श्लोक वालानियम समझना कि प्राणों की धारणावनोंरहने के अर्थसे भिसाको आचरै परंतु भिसाभी सर्वत्र नहीं माँगै किंतु केवल वानप्रस्थोंके घर माँगै जो पहिली रीतिके अनुसार कुटी और अन्न का संग्रह किये स्थानधारी बने वेंदे हों (उनका धर्म देखो ४६ । ४७ श्लोकोमें) अतिथि को भिसा देना उन्हींका यह धर्म है तथा अनिकेतनवानप्रस्थका उन्हींसे भिसालेनेका धर्म है जो अभीवर्णान्तरहोराहै—परंतु—जबसेभी भिसा न मिलसकै तब क्या करना चाहिये तिसका धर्म दूसरा है सो देखो अगले मूलश्लोक में ॥ ५४ ॥

(कश्चिद्ग्रामादपि भिक्षाचरण)

ग्रामादाहृत्य त्रायासानष्टोभुजीतवाग्यत । ५५ पूर्वाध

अर्थः—या ग्राम से भिसा लाकर आत ग्रामों को मौन साथे वाणी को जीतेहुये भोगे—अर्थात्—पूर्वाक्त फल मूल आदि न मिलने पर वानप्रस्थों के घरभी निकट न होयें तिनकी भिसा न मिलसके तब अन्य किसी ग्रामही से जाकर भिसा लावे ॥ १ ॥ ५५

५५ अधिकोक्तिः—पहिले ४६ छेयालीस मूलश्लोकों से स्थानधारी वानप्रस्थों के जो धर्म कहे गयेथे उनमें नीवार श्यामक आदि मुनियों के अन्न भोजन करना

कहा गया था उस नियम का लोप यहाँ समझना यह स्वतः सिद्ध होता है क्योंकि वानप्रस्थों के घरकी भिखा मिलती तौ वह नियम लोप न होता—किंतु—ग्रामसेमों-गो हुई भिसामें गुन्यन्न वाला नियम नहीं चलसक्ता है अर्थात् ग्रामवासी लोगवही भिखा देसक्ते हैं जो आप खाते होंगे कुछ इनके लिये गुन्यन्न लाकर जुदे नहीं पकावेंगे और भिखाभी भात रोटी पूरी आदि पकाये अन्नकी समझना क्योंकि कुटी और झूलहा आदि अग्नियों का जजाल मेस्मिाटि निरग्न होकर वृक्ष तले का निवास करना कहिचुके हैं तिससे कचवेअन्नकी भिखाका अपवाद सिद्ध होता है इसी लिये गिनमाआठ कौर का नियम ऊपर कहागया—परंतु आठ कौर से जिस किसी की प्राराधारणा न होसक्ती हो तहाँ सोरह कवल भोगे जैसा यह वचन है (अष्टोशा साहुनेर्वस्थवानप्रस्थस्ययोऽहः) अर्थात् आठप्रास भिखा भोजन करना मुनिका धर्म है सोरहप्रास वानप्रस्थ के यहभी एक नियम है ग्रन्थान्तर में ॥ १ ॥ ५५ ॥ कदाचित्त यह शंका करीजाय कि वानप्रस्थ कितने दिन कौन कौन से नियमों को राखें सो कुछ अवधि का नियम इसमें नहीं केवल उसकी इच्छा और समर्थ पर आछुद है कि चाहै सदा सर्वदा कुटीचर होके रहै या उससे मन हटजाय तब ५४ चौवन पचपन प्रलोकवाली दशापर आछुद होय अथवा अपने शरीर में समर्थ देखै और सन्यास लेकर चौथे आश्रम का आनंद भोगना चाहै तौफिर आगे ५६ छपन मूल प्रलोक वाली मार्गसे सन्यासी होजाय तिसके लिये इतना नियम है कि (यावताक्तालेनतीव्रतपःशोधितवपुषो विययकयायपरिपाकोभवति पुनश्चमबोद्धवाशंका बोद्धावप्रते तावत्कालं वगवासं कृत्वा तत्समनंतरं सोक्षेमनः कुर्यात्) अर्थात्—जितने दिनों में गाँहिरा तप करने से अपने शरीरकी सुखाय के निर्वल करपावै जिससे काम क्रोध लोभ मोह रूपी विययों का राग पकि जाकर छुटिजाय जिससे आगे को मद नात्सर्ध पैदा होने की शंका बाझी न रहै उतने काल तक वनमें वास करके अनंतर उसके लगमाही मोक्षरूप आश्रम जो सन्यास है तामें मन लगावै—अथवा यह कोई ही समर्थ अपने में न देखै किंतु सर्वथाही बुढापा आदि से असमर्थ होजाय तो फिर सन्यास लेने बिनाही उन प्रकारों से शरीर त्यागै कि जैसा आगे उत्तरार्ध पचपन के मूल या उची की अधिकोक्ति में कहेंगे ॥

(सर्वथाऽसमर्थवानप्रस्थस्य प्राणत्यागरूपं ह्यमाप्रस्थानं)

वायुभक्ष प्रागुदीर्चीगच्छेद्वावर्षतंसंशयात् ५५ ॥

अर्थः—या वायू भक्षहोकर शरीर का संसय होने ताई पूर्व उत्तर कोरा में ईशान

दिशिको चला जावे—अर्थात्—जिस वानप्रस्थ पर अत्यंत बूढ़ापा या प्रबल रोगहोने आदि कारणों से ग्राम जाकर भिक्षा भी न लाई जाय किंतु चलाफिरो आदि कोई भी काम जिसपर न होसके सो ऐसाकरै कि वायुको भक्षणा करते हुये ईशानीदिशा के पर्वती मार्गों में तहांतक सीधा तुक्काके समान चलाजावे कि जहांपर उसकादेह-पात होजाय यही महा प्रस्थान कहा जाता है ॥ ५५ ॥

५५ अधिकोक्तिः—मनुः—अपराजितावास्यायागच्छेद्दिशमजह्मगः—अर्थात्—मनु ने यहभीकहाहै किजो पहिलेकहे नियम न चलसके तो अपराजिता नामकीईशानी दिशामें उपस्थितहोकर शीघ्रपैरों सुत बांधेदिना विचारमार्गके देहांतपर्यंतचलाजाय इसी को महा प्रस्थान भी कहते हैं—यद्यपि—वानप्रस्थ के लिये सर्वत्र यह विधान होसक्ता है कि वह जिस देशमें उपस्थित होय तहां अपने ठिकाने से लेकर ईशानी दिशा को प्रस्थान करै तथापि विशेष कर हिमालय पर्वत इस कार्य के निमित्त में प्रसिद्ध है कि जहां पांडव आदि अनेक महात्मा देह त्यागने को पहुँचेक्योंकि उसमें देह त्यागने से सीधा स्वर्गहीमें जाताहै बल्कि हिमालय के उत्तर भागमें स्वर्गारोहण पथ इस नाम से मार्गही एक सबसे जुदा प्रसिद्ध है उसी को महापथ भी कहते हैं उसीको ठीक महा प्रस्थान जानों क्योंकि स्वर्ग पर चढ़ जाने का मार्ग है इसका ठिकाना भी श्री बद्रीनाथ जी से पचासही साठ कोसके अनुमान अंतर पर सुनाजाता है—बल्कि बृहदा तीर्थ के यात्री लोग अद्यापि उसके दर्शनमात्र के निमित्त जाया करते थे उनमें से बहुतेरे अपनी गृह्णासे देह त्यागने को भी आगे बढ़जाते थे कुछ दिनों से छगरेजी सरकार ने देह त्यागने का निषेध क्रायम करके वहाँके अधिकर्ता पंडालोगों से इत्तारभी लेलियेसुनेजातेहैं कि उस मार्गके दर्शनमात्रकेनिमित्त यात्री जानेपावें लेकिन देहत्यागनेके लियेवहाँसे आगे न बढ़ने पावें कदाचित् इससेविपरीत किसीसालमें एक दो यात्री आगे बढ़जाय तौ प्रतिस्मृति इतनाजुर्माना(घनदंड) पंडा लोगों को देना पड़े इस लिये दर्शन मात्रके लिये भी जोकोई यात्री जाना चाह तेहें सो पंडालोगों की जमानत से जाने पाते हैं अन्यथा नहीं कोंकि धर्मशास्त्र में जो देह त्यागना इसी जघे पर आदेश किया गया सो हर एक मनुष्यों को नहीं केवल वानप्रस्थ का यह धर्म है कि जिसने पूर्वोक्त प्रकारों से तपस्या भी कुछ संचय करी हो और निपट अपने सब झंझों से निर्वल भी होचुका हो ॥ ० ॥ जब कोई वानप्रस्थ इतना निर्वल होचुका हो जिस पर महाप्रस्थान की यात्रा भी न होसके सो औरही प्रकारोंसे देह त्यागै कि जिन प्रकारों की आज्ञा शास्त्रमे लिखीहोय—तथाच स्मृत्यं

तरु=वानप्रस्थोवीराध्वानं ज्वलनां प्रवेशनं भृगुपतनंबानुत्तिष्ठे त=अर्थात्-वानप्रस्थ
अपना देहछोड़नेके लिये चाहें वीरोंके रास्तेमें प्रवेश करें कि जहां दुतरफा तीरंदाजी
आदि शस्त्रोंकी वर्षा होती होय या बहुत बड़े अग्निमें या गहिरें जलमें प्रवेश करें
या पर्वत आदि ऊंचे से गिरि परें तौभी उसको आत्म हत्याका दोष नहीं लगता है=
वर्त्तिक यह फल होताहै कि जो कोई वानप्रस्थ पचासवें मूलश्लोक से लेकर यहां
तक दशार्थे चांद्रायणा आदिसे लेकर शरीर त्यागने पर्यंत क्रमसे सब धर्मोंका साधन
करसके या बिरले किसी एकही बो का सो ब्रह्मलोकमें जाकर पूज्य होताहै=यथा
हसनु=आसामहर्षिचर्यायां त्यक्त्वाऽन्यतमयातनुम वीतशोकभयोविप्रो ब्रह्मलोकेम
हीयते=अर्थात्-इन महाहर्षियों की अनेक धर्मचर्याओंमें किसी एकहू के आश्रय
भूत शरीरको त्यागिकेभयशोकसेकुटिक्राह्यया ब्रह्मलोकमें जाकरपूज्यहोताहै५॥

(अत्र प्रसंगादेव वक्ष्यमाण संन्यासाश्रमस्य प्रशंसायां प्रकर्षः)

मिताक्षराकार कहिते हैं कि ब्रह्मलोकमें पहुँचना कहा सो यह ब्रह्मलोक स्वर्गों
मध्ये किसी एक जुड़े स्थान का नामहै किंतु नित्यब्रह्म को न समुक्ति लेना क्योंकि
उस पूर्णब्रह्म के साथ कहीं लोक शब्दकी योजना होती नहीं मनी और इसमें लोक
शब्द भी लगाहै तिससे और इससे भी कि उस पूर्णब्रह्मके समीप चौथे आश्रम का
संन्यासधर्म साधे बिना मुक्तिपद देना संजूर नहीं होताहै यह चर्चा केवल तीसरे आ-
श्रमके वानप्रस्थ का होरहा है फिर कहितेहैं कि इक्याउन मूलश्लोकमें योगाश्रम
का उपदेश वानप्रस्थको भी चर्चामात्र आयाथा तिसके द्वारा ब्रह्मकी उपासना सिद्ध
होतीहै जो आगे चौथे आश्रम के स्थलपर स्पष्ट करी जायगी उस चर्चा से भी यह
सब समुक्तिलेना कि वानप्रस्थको उस पूर्णब्रह्मकी उपासनासे समोपता मिल सक्ती
होगी क्योंकि ब्रह्मकी उपासना निषट ब्रह्मकी समोपताही नहींदेती किंतु सालोक्य
आदि भेदोंवाली मुक्तिके भी अर्थसे ब्रह्मकी उपासना करी जातीहै (इतना कहिकर
मिताक्षराकार फिर भी संन्यासियों का पक्ष पालन करने पर आग्रह खड़ा करते हैं
(कि) यही आश्रय अगली युत्युक्त व्यवस्था से भी इस संसिद्ध करते हैं सो देखी)
अतरव श्रुती त्रयोधर्मसंक्षेपा इत्युपक्रम्य-यज्ञोऽध्ययनंदान मितिप्रथमः १ तपश्चेति
द्वितीयः २ ब्रह्मचार्याचार्य कुलवासीद्वितीयः ३ अत्यन्तमाचार्यकुल सवात्मान मवसा
दयच्छिति) गार्हस्थ्य १ वानप्रस्थ २ नैष्टिकत्व ३ स्वरूप अभिधाय-सर्व एते पुण्य
लोका भवंतीति त्रयाणां पुराणलोक प्राप्तिमभिधाय-ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेतीति पारिशो
ष्यात् परिव्राजकस्यैव ब्रह्मसंस्थस्य मुक्तिलक्षणा मृतत्व प्राप्तिरभिहिता-यदपि-

श्राद्धकृतसत्यवादीच गृहस्थोपविमुच्यते इति गृहस्थस्यापि सोसप्रतिपादनंतद्ववांतरानु
भूतपरिव्रज्यस्यैवेत्यवगतव्यं=अर्थात्-वे कहते हैं कि जैसा व्योरा ऊपर हमने कहि
समुझाया उसी सबबसे अर्थात् तमें भी यह भूमिका पहिले कहकर कि धर्म के तीन
स्कंध (बड़े मोटे मुद्दे) होते हैं-फिर उन तीनोंके रूप जुदे दर्शाये गये कि नित्यनैमित्तिक
आदि यत्नों का करना और वेद विद्याका अभ्यास राखना और दान करते रहना
यह सब काम गृहस्थी का होता है सो धर्म का पहिला गुदा जानना १ और केवल
तप करना वानप्रस्थका स्वाभाविक काम होता है सो धर्मका दूसरा गुदा जानना २
और ब्रह्मचारी होके सदा अपने आचार्य गुरुके कुलमें वासकर और निपट आचार्य
के कुलहीमें अपने देहको मरणा पर्यंत खपावै यह नैय्यक ब्रह्मचारी का काम है
सो धर्मका तीसरा स्कंध जानौं-मितासराकार कहते हैं कि इस प्रकार धर्मके तीन
स्कंधोंके बहाने से गृहस्थी १ वानप्रस्थ २ नैय्यक ब्रह्मचारी ३ इन तीनों का स्वरूप
समुझाइके-यह कहा गया है कि ये तीनों आश्रमी यदि इसी प्रकार अपने कामों
का वर्तन करै तो ये सभी पवित्र लोकों में जाते हैं इसगति से तीनों की पुराय
लोकों का मिलना समझाय के-यह कहना छोड़ि दिया गया कि ब्रह्म के आरा-
धन में आरूढ होने से सोसत्त्वपी अमृत को पाते-सो इसलिये छोड़ा गया कि चौथा
संन्यास धर्मका आश्रम जो वाक्की रह गया जो परिव्राजकों का ठिकाना बड़ा प्रसिद्ध
है उसी को अमृतत्व मिलता है अर्थात् उस कथन के छोड़ देने से भी यह आशय
सिद्ध होता है कि साक्षात् ब्रह्म के स्वरूप का ध्यान योग आराधन करनेवाला
परिव्राजक नाम संन्यासीही मुक्ति रूपी अमृतत्व को पाता है ग्रहस्थी आदि तीनों
में और कोई नहीं पासता है (यह कहकर मितासराकार फिर कहते हैं कि)
यद्यपि आगे २०५ दोसौपाँचवें मूल श्लोक में योसीन्दर आपही अपने मुखसे यह
कहेंगे कि ऐसे लसराओं वाला गृहस्थी पुरुष भी मुक्ति को पाता है तो भी वह
उसके लिये समझना जो पहिले जन्मों में परिव्राजक होकर संन्यास धर्मका साधन
कर चुका और उस जगह किसी हेतु से मुक्ति उसकी न होसकी हो तो इस जन्म से
गृहस्थी होते भी सोसफल का अधिकारी होजायगा परंतु कुछ नियमात्मक प्रतिज्ञा
नहीं है-अथ मर्यादाप्रियस्तु=योमन्मितासराकार परिव्राजकने वानप्रस्थके प्रसंगसे
बहुत छंदर यह वर्णन किया जिससे संन्यास धर्मका प्रकरणा जो आगे प्रारंभ होनेवा-
ला है तिसकी महिमा जानपडी और महिमा जानपडने से उसमें चित्त लगाने का
उत्साह बढ़ने लगा- तहाँ यह बातें एक जुदी है कि उन्होंने गृहस्थी आदि किसी

को भी मुक्तिभागी न ठहराकर केवल संन्यासी को मुक्तिपाव ठहराया सो भी कुछ अनुचित नहीं क्योंकि श्रीमन्मितासराकार आपड़ी परिव्राजक संन्यासी थे अपने आश्रम का विशेष पक्ष किया तो कुछदोयनहीं किंतु सबकोई अपनीजाति ठिकाने आदि की सहिमा बढ़ाता है तथापि मर्यादा प्रिय को यह चिंता खड़ी हुई कि जिस गृहस्थी को योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने २०५ वीसी पाँचवें मूल श्लोक से डंका की चोट घंटा के घीय तुल्य मोक्ष का अधिकारी ठहराया है तिसको भी मितासराकारने न माना तो फिर यह आशय सिद्धहोता है कि मोक्षफल पानेके लिये सबही को संन्यासी होना चाहिये • तिस में यह सब से बड़ा ध्वराहट है कि जब सभी संन्यासी होजायें तो फिर उनके पालन के कामों को कौन करे कौन करे कि संन्यासी को चलहा चक्की आदि सब कामों का नियेध है परअवतों उनके भिक्षा भोजनआदि गृहस्थी लोग बनाते और संन्यासी आदि सभी आश्रमों का पालन वेही करते हैं फिर कौन किसकी बात बर्मे जब गृहस्थी का अभाव होजाय—इश्वर की इच्छा से गृहस्थी ही गृहस्थी आदि चारों आयम का पालन किया करता है इसीलिये गृहस्थ का आश्रम सब से बड़ा कहाता है—वल्कि दूसरा बड़ापन इसमें और है कि इसी गृहस्थ के पेट में से ब्रह्मचारी जन्म लेताहै इसी में से वानप्रस्थ और इसी मेंसे संन्यासी पैदा होतेहैं अर्थात् एक गृहस्थी को न होने में फिर कोईभी नहीं है इसीहेतु से गृहस्थी का ज्येष्ठाश्रमी नाम-जुदा है कि सबसे जेठा आश्रम यही है—तथाच वचनं=गृहस्थोब्रह्मचारीचवानप्रस्थोऽथभिक्षुकः चत्वारःआयमाःप्रोक्ताःसर्वेगार्हस्थ्यमलकाः=यस्मात्त्रयोऽप्यायमिषोऽज्ञानेनाक्षेपेनचान्वहन् गृहस्थेरेववार्थतेतस्माज्ज्येष्ठा-यमोगृही=अर्थात्—धर्मशास्त्रमें यहवचन प्रमाराहै-गृहस्थो- ब्रह्मचारी- वानप्रस्थ- भिक्षुकसंन्यासी येचार आयम जो प्रसिद्ध हैं तिनसबकोजड़ गृहस्थहीजानों क्योंकि उसके बिना इनकी उत्पत्ति किसी और से नहीं होसक्ती है—इनमे गृहस्थ सबसे जेठा आश्रम होता है इस हेतु से कि जिससे नित्य प्रति रोज रोज तीनों आयम को लोगों को विद्या पढ़ाना आदि ज्ञानदेने तथा अन्न को देने से भी गृहस्थीही घांभता है अर्थात् सबका भार गृहस्थी पर आस्रव और यही उसको झेलता है और किसीमें इतनी दबी हिम्मत नहींहै—कदाचित्—यह कहाचाय कि बहुधा गृहस्थी ऐसे होतेहैं जो किसी प्रकार का सत्कर्म नहीं करसक्ते हैं तिनके लिये सबसे बड़ा सत्कर्मएक यही है कि जिनसे कुछभी न होसके सोतीनों आयमके लोगों को भिक्षादान करके उनके किये सत्कर्म्मोंमें अंगभागी होते रहतेहैं ॥ वानप्रस्थ का प्रकरण पूराहोचुका

उसके प्रसंग से संन्यासी और गृहस्थों की विशेषता भी चमकाई गई अब इससे आगे संन्यास धर्म के प्रकरणा का प्रारंभ किया जायगा वह बहुत बड़ा है सो अनेक परिच्छेदों में जाकर पूरा होगा क्योंकि उसके साथ अध्यात्म रूपी ब्रह्म विद्या का बिस्तार किया जायगा ॥ इति वानप्रस्थधर्मप्रकरणम् ॥

इत्यापद्धम सहितं वानप्रस्थाश्रम प्रकरणं द्वितीयम्

इस प्रकरणा में छटा सातवां दो परिच्छेद है कि उनमें एक छटा परिच्छेद आपत्काल की धर्मांतर आरुद्ध है कि जहां मुख्य धर्मांतर निर्वाह न होता हो तहां आपत्कालिक धर्मांतर निर्वाह किया जाय--उसके बाद सातवां परिच्छेद केवल वानप्रस्थाश्रम के धर्मांतर आरुद्ध है कि जहां कहीं आपत्कालिक मर्यादा से भी कालक्षेप न हो सके तहां गृहस्थ धर्म का आडंबर समर्थपुर्वीक ऊपर छोड़ि छाड़िके बनवासी होकर वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करे-इसमें भी यदि पुर्वीका अभाव देखे तो पत्नी को भी साथ लेजावे या पत्नी भी न हो तो एकाकी चला जाना बहुत उत्तम है ॥

अथ चतुर्थाश्रम धर्मांतरं ॥



अथ संन्यास ग्रहण विधान पूर्वकं परिव्राजक स्वरूप निरूपणोऽयं परिच्छेदः ८

इत परिच्छेद में चौथा आश्रम जो संन्यास कहाता है तिसका भार लादने का विधान जैसा होता है सो सब यथा क्रमसे दर्शाइके परिव्राजक जो संन्यासी अथवा यती कहाते हैं तिनका स्वरूप लक्षण आदि निरूपणा किया जायगा कि इसरीति से ऐसे ऐसे चिह्नों को धारण करे और ऐसे नियमों से भिन्नाचरणा करते हुये अपने योग्य स्थानों पर ठिकते हुये धरित्री का पर्यटन और कालक्षेप करे सो संन्यासी और परिव्राजक भी कहाता है ॥

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड । (संन्यासारंभ)

११६

बनादृष्टहादाकृत्वेऽसिर्ववेदसवक्षिणाम् । प्राजापत्यांतदंतैतानग्नीनारोप्यचात्मानि ५६

अधीतवेदो जपकृतपुत्रवानन्नदोऽग्निमान् । शक्त्याचयज्ञरुक्मोक्षेभ्यः कुर्यात्तुनान्यथा ५७

अर्थः—वन से या घरसे मोक्षमें मनकरै तब प्राजापत्या नाम की इष्टि को सार्ववेद सवक्षिणा मयी करिके तिसके अंतमें जो अग्निमान् हो उन अग्नियों को आत्मा में आरोपित करिके जो वेद पढाहो तौ वेदपाठ करिके भी मोक्ष पर मन धरै जो पुत्रवान् हो सो अन्नदान करिके तथा यज्ञ भी यथाशक्ति करिके संन्यास में मन धरै अन्यथा नहीं=अर्थात्—दोनों प्रलोकोंका संबंध परस्पर मिलाहुआ एक है तिस एकही में जुड़े जुड़े कोई डौलहैं सो कहते हैं कि (यहाँ वन शब्दसे वानप्रस्थका आश्रम समुक्तना गृह शब्दसे घर अर्थात् गृहस्थ का आश्रम जानना मोक्ष कहिने से मोक्षफल देनेवाला संन्यास का आश्रम जानना) वनसे वानप्रस्थका धर्म अच्छा साधिके संन्यास धर्म लेने को मन करै या वानप्रस्थ होने बिना घरही से संन्यास लेना चाहै तब सब से प्रथम यह करना चाहिये कि प्रजापति देवताहै जिसका ऐसे यागका प्रारंभ करै फिर उस यागके अंतमें सार्ववेद सवक्षिणा दान करै अर्थात् जो एकाकी होय सो अपना सर्व धन दक्षिणामें बर्तावे किंतु कोई वस्तु भी न रक्खे परंतु जो वन से संन्यास लेने लगा हो उसपर विशेष धन होना संभव नहींहै तिससे जो कुछ थोड़ा या बहुत अन्नका संचयहो उसीको बर्तावे अथवा गृहस्थी या वानप्रस्थ दोनों से कोई ऐसा हो जिस पर कुछ भी धन देनेको नहो परंतु वेद पढाहो तौ वेदका पारायण पाठ और उसके बड़ें थोड़े सबोंका जपही करै तौभी सार्ववेद स दक्षिणाका फल सिद्ध होगा परंतु जिसके पृथादिक संतान भी उपस्थित होय तिसको सर्वधन दान कर देने की स्वाधीनता नहीं है तिससे यथाशक्ति संभव के अनुसार कुछ अन्नादिक दान दीन दुखिया की देकर अपनी शक्तिके समान यज्ञ पूराकरै परंतु जो पुरुष अग्निमान् अग्निहोत्री होय और संन्यास लेनेलगे सो इस यागसे निपटे पीछे उन अग्नीषीको श्रुतिके कहे विधानसे आत्माके बीच समारोपित कराइके संन्यास धारण करै अन्यथा नहीं यह तात्कालिक विधि कही गई ॥ अन्यथा नहीं इस पदके ध्वन्यर्थसे और यज्ञकृत इस विशेष यागकी शक्ति से भी दूसरा यह तात्पर्य है कि संन्यास लेने से पहिले गृहस्थ के आश्रम द्वारा अपनी शक्तिके अनुसार नित्य नैमित्तिक यज्ञोंकी साधना जिमने की हो अर्थात् गृहस्थीके जो कुछ धर्महोतेहैं सो सब यथा विधिसे आराधन कियेहों वही पुरुष संन्यास लेनेका अधिकारी होताहै सब कोई नहीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

५६ अधिकोक्तिः—सब कोई नहीं इसका यह तात्पर्य है कि गृहस्थी पुरुष पर तीन भौतिकों ज़रूरी होते हैं तिनको प्रथम अच्छीतरह से उद्धार करे वही संन्यासी होकर मोक्ष फल पाता है अन्यथा जिसने तीनों ज़रूरी उद्धार न किये हों सो मोक्षपद पानेका अधिकारी नहीं है—यथाह मनुः—ज्जराणि त्रीण्युपाकृत्य मनोमोक्षनिवेशधेनं अनपाकृत्यमोक्षं तु सेवमानो ब्रजत्ययः—अर्थ—तीनों ज़रूरी शोधिकों तब मोक्षमें मनको लगावे क्योंकि ज़रूरी शोधे बिना मोक्षका सेवन करते हुये भी नरकही को जाता है (तीनों ज़रूरीका स्वरूप आगे इसी वार्ता में देखना उसमें पुत्र का उत्पन्न करना भी एक ज़रूरी शोधना दहिरता है) सत्तावन ५७ के मूल प्रलोकमें पुत्रवाच जो कहागया तिसका दूसरा अर्थ यह भी है कि संतान उत्पादन किये बिना थोड़ी अवस्थावाला पुरुष जिसके सन्तान होसकनेका भरोसा आगे को होय वह संन्यासी न होजाय क्योंकि अभी इस ज़रूरी से छुटकारा नहीं मिला परंतु यह नियम केवल गृहस्थी को समुझना ॥ ० ॥ यदि कोई पुरुष नैष्टिक ब्रह्मचर्य में उपस्थित होतेहुये संन्यास लेना चाहे तिसके लिये संतान पैदाहोने आदिका कुछ नियम नहीं है अर्थात् वह संतान पैदा किये बिनाही संन्यासी होजाय तोभी ज़रूरी नहीं रहा क्योंकि नैष्टिक ब्रह्मचारी बही कहाता है जिसने विवाह न कियाहो तो फिर भायिका संग्रह न होनेसे संतान उत्पादन करने का अधिकारही उसको नहीं रहा (कदाचित् यह कहो कि ब्रह्मचर्यके लिये विवाह करना चाहिये सोभी नहीं क्योंकि विवाह करनेसे उजड़ा रागमें फँसना होगा जिससे विराग जाता रहेगा वैराग्यके न होनेसे संन्यासका लेना भी मारागया) और—यह शंका न करनी चाहिये कि तीनों ज़रूरी उद्धारकरनेकी आज्ञाकूपी विधि प्रसिद्ध है सोई छियोंका संग्रहकराना खींचकेमिदकरतीहो तिससे ब्रह्मचारी को भी दार संग्रहकरके संतानपैदाकरनी चाहिये क्योंकि जहां दैवयोग से ऐसाही वानक मौजूद हो कि ब्रह्मचर्यको विवाह के होजाने पीछे धारणा किया और विद्या वन संचय करने के नियम तुल्य उसकीदाराकिसी और के समोप सोंपी मौजूदहो तो फिर विवाह करनेका आक्षेप आकर्ष भी जरूरी नहींरहा तिससे तात्पर्य केवल वहीहै कि ब्रह्मचारी यदि संन्यास लेना चाहे तिसको यह आवश्यक नहीं है कि संतान पैदाकरे क्योंकि उसका ब्रह्मचर्य खण्डितहोजायगा—यह सब अर्थ मिताक्षराकी इस पंक्तिसे उत्पन्न होताहै कि (यदातु ब्रह्मचर्यात्प्रव्रजति तदा न प्रजोत्पादनादि नियमः अकृतदारपरिग्रहस्य तत्रानविकारात्तारागप्रयुक्तत्वाच्च विवाहस्य न च ज्ञानायापाकरावि विरेचदारानास्तिपतीति शंकनीयं विद्यावनार्जननियमवदन्यप्रयुक्तदारसंभवेत्स्यानाति

पक्षवादितिमिताक्षरा) और इसके ऊपर यह तर्कनांकरनीचाहिये कि संतान पैदा न करनेसे ऋणी बनारहेगा सो अगिली युतिसे विरोधआवैगा क्योंकि युतिमें जन्म लेतेही ऋणीहोनाकहाहै—यथा=जायमानोब्राह्मणास्त्रिभिः ऋणावान् जायते ब्रह्मचर्ये ऋणश्रयिभ्योयज्ञे नदेवेभ्यः प्रजयापितृभ्यः=अर्थात्—उत्पन्न होतेहुये ब्राह्मण तीनसे ऋणीहोताहै तहाँ ब्रह्मचर्य साधनकारिके ऋणियों के ऋणसे छुटकारा पाताहै यज्ञों के करनेसे देवतोंके ऋणसे शुद्ध होताहै संतान पैदा करनेसे पितरोंके ऋणसे छुटजाताहै—यहीपितरोंका ऋण उसपरबनारहेगा यह न कहनाचाहिये—क्योंकि युतिमें(जायमानो—इसपदका अर्थजन्महोते साथही यहनहींहै) न पैदाहोतेके साथही उसपर किसीऋण का भारहै क्योंकि जन्मलेते सारस्त्री संग्रह और अग्निपरिग्रहभी नहीं होसकताहै फिर इसकेहुये बिना यज्ञआदि कार्यों में अधिकारहीनहींपहुँचताहै तबकैसे ऋणीठहरे—तिससे श्रुतिमेंही (जायमानो) इस पदका अर्थ येसाहै कि ब्राह्मण आदि द्विजाती पुरुष अधिकारी जायमान होवें तब यज्ञादि कर्मोंको करें अर्थात् (जन्मजायते शूद्रः) जन्मसे शूद्रही पैदा होताहै शूद्रको यज्ञादि कर्मका अधिकार नहीं तिससे जायमान उसको जानना जिस द्विजाती का उपनयनरूपी संस्कार भी होजाय तभी द्विज कहलाता और तभी संन्यासवन आदि नित्यकर्मका अधिकारी होताहै इसी दृष्टांत से विवाहरूपी संस्कार होजाने पर संतान पैदा करनेका अधिकारी होताहै तभी उसपर संतान पैदा करने मध्ये पितरोंका ऋणभी आकर आरुद्ध होताहै किन्तु विवाह के हुये बिना न उस कामका अधिकार है न पितरों के ऋणका कुछ भारहै इसी दृष्टांत से बाक्ती सब कामोंकी व्यवस्था समझ लेना कि जिस अवस्थाके समय पर जिस कार्यका अधिकार पैदा होताही तभी उस कार्यकी अपेक्षा वहपुरुष जायमान अधिकारी कहा जाताहै—इसीलिये ऊपर लिखी युक्तिका यह तात्पर्य है कि जब जिसका उपनयन संस्कार होय तभी उसको वेदका पढ़ना आवश्यक रहै अर्थात् वेद पढ़नेका ऋण उसपर आरुद्ध हुआ और स्त्री संग्रह तथा अग्निका परिग्रहकरने वाले पर संतान पैदा करनेका भार अन्यथा नहीं ॥० ॥ विरोधपात्तिनिवारणं इस व्यवस्था को पंडितकार गक और भी शंका खड़ी होतीहै कि मूल श्लोकवाले अर्थमें केवल यही कहाया कि वनसे या घरसे संन्यास लेनाचाहै तो फिर यहाँ अधिकोक्ति में यह क्योंकर कहा कि ब्रह्मचर्य से संन्यस्त होना चाहै तिसको संतान पैदा करने का कुछ नियम नहीं—इसमें यही तर्कनाहै कि ब्रह्मचारीका चर्चा मूलमें नहीं था—इसका समाधान सुनो—वनसे वा घरसे इसमें अवश्यरूपी वा शब्दहै सोइ पाक्षिक

हैं कि तीनों वर्गोंको वेदप्रदिके चार आश्रम होते हैं इस वचनके प्रभावसे भी द्विजाती माव का अधिकार कहिते हैं कि तीनों वर्गोंमें जिसकी इच्छा होय सो संन्यास लेसक्ता है केवल शूद्र नहीं ॥ यहां तक संन्यास लेने का दंगही कहा गया किंतु इसी दंग से संन्यास लेचुकने वाले को क्या क्या धर्मवर्तने होंगे सो आगे देखो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

(संन्यासिधर्माः)

सर्वभूतहितःशान्तस्त्रिदंडीसकमंडलुः । एकारामःपरिव्रज्यभिक्षार्थंश्राममाश्रयेत् ५८ ॥

अर्थः—परिव्राजकहोके सर्वभूतों का हित होय शान्त होय त्रिदंडीहोय कर्मण्डल सहित होय एकारामहोय भिक्षाके अर्थ ग्रामका आश्रय लेवै—अर्थात्—संन्यासी सब कर्मों का त्याग करने से कहाता है उसी को परिव्राजकभी इसलिये कहिते हैं कि वह धरती पर फिरने लगताहै कहीं ठिकाना बांध के नहीं ठिकता है इस फिरने के उपलक्षणा से संन्यास के आश्रम को प्रव्रज्याभी कहिते हैं उस प्रव्रज्यापर आरुह होय सो नित्यप्रति सभी प्राणी माव का हितहोय इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके साथ कुछ भलाइका आचरण करनेलगे किंतुयही तात्पर्यहै कि जो कोई कुछ अपनेसाथ प्यारका बर्तावा करे या कोई कुछअप्रियवर्तावाकरे उन दोनों से उदासीन बुद्धिबनी राखे इत्यादि बातोंका व्योरा अधिकोक्ति में ॥ ५८ ॥

५८ अधिकोक्तिः—दोनोंसे उदासीन बुद्धि राखे क्योंकि दुख देने वाली का प्रति-कार करने से किसी प्रकारकी हिंसा करनी परैगी तथा सुखदेने वाले पर अनुग्रह करनेसे उसके किसी शत्रुको कुछ पोढ़ा देनी परैगी इसी से संन्यासी को इन दोनोंबात का नियेध है—तथाच गौतमः—हिंसाऽनुग्रहयोरनारंभो—अर्थात्—हिंसा और अनुग्रह इन दोनों का आरंभ कभी नकरे शान्त होय यह जो ऊपर कहागया तिसका यह तात्पर्य है बाहरकी प्रत्यक्षईंद्रिया और मनकी आदि लेकर भीतर की इंद्रियां दो त-रह की होती हैं तिनमें चंचलता न खड़ी होनेदेय त्रिदंडी होनाभी कहा तिसका यह तात्पर्य है तीन दंड उसके पास रहा करे जो बांसके होते हैं और शौच आदि शुद्धि के लियेकर्मण्डल का राखना कहा सो द्रव्यजलसे भरा चाहिये—तथाच स्मृत्यंतरं—प्रजापत्येष्ट्यन्तरं च वैशाखादंडान्मूर्ध्वप्रसारोदक्षिणेन पाणिना धारयेत् सद्येन सो दकंकमंडलुः—अर्थात्—पूजाकृत प्राजापत्य नामका याग करनेके अनंतर बांस केतीन दंडे जो अपने साथे पर्यंत कनपटी तक लंबेहों तिनको दाहने हाथ में लेकर तत्रनिकसे और बायें हाथमें जलसे भरा कर्मण्डल होय—परंतु—निर्विकल्प नियम नहींहै कि तीन

ही दंड होय विकल्पसे एकभी होता है (एकदंडीविदंडीवेति बौधायनः) जैसा यह बौधायन का कहा विकल्प है कि एक दंडी बने या विदंडी बने विकल्प उसकी इच्छा पर आरुढ है—एवं=चतुर्विंशति सतनामके शास्त्र में भी विकल्प है=यथा=चतुर्थमायमंगच्छेदवहाविद्यापुरायणाः एकदंडीविदंडीवासर्वसंगविवाजितः=अर्थात्—ब्रह्म विद्या जो वेदांत नाम से अध्यात्म विद्या कहाती है तिसमें निपरा और तत्पर होके सन्यास नामके चौथे आयमको पहुँचै किस रीतिसे कि एक दंडी या विदंडी बनिके जाय और सर्व संगों से रहित होके जाय अर्थात् इष्ट! मिव संबंधी नाते गोते आदि सबकाही संग छोड़ि उनका मोह मुहब्बत तोड़े हुये जाय किसी से कुछ वास्ता अपना न बाक्ती रखवे=और=शिखा सूच बना रखने या त्याग देने मध्ये भी ग्रन्थान्तसे विकल्प है कि चाहें बनारखै या निपटत्याग देवै सो सब आगे वचनों में देखो (मुंडःशिखी वेति गौतमः) गौतमने कहा है कि मुंडितहोय या शिखावाह होय (मुंडोऽमोऽपरिग्रह इति वशिष्ठः) वशिष्ठ ने कहाहै कि मुंडा होय और अमम होय अर्थात् किसी प्राणी या किसी जगह स्थान या किसी वस्तु पर मामता अपनी न रखवै कि वह मेरा या यह मेरा और अपरिग्रहभीहोय अर्थात् चाकीचूल्हा सिलवट्टाआदि गृहस्थोवाले उपकरणोंकासंग्रहकभी न करें=यहतौमुंडितऔरशिखी का विकल्प दर्शाया आगे यज्ञोपवीतका विकल्प दर्शाते हैं सो देखो (सशिखान्को शान्निहंत्य विष्टज्ययज्ञोपवीत मितिकाठक्य तः) काठकीययु तियह कहतीहैकि चौड़ी सहितबालोंको कारिके यज्ञोपवीतको विसर्जन करिके सन्यास धारणा करै=तैसा बाष्कल का यह वचन है=कृतवंपुत्रदारांश्चवेदांगानिचसर्बशःकेशाद्यज्ञोपवीत चत्यह्जारुदप्रचेन्मुनिः=अर्थात्—कृतव. पुत्र. स्त्रियां. वेदोंके संगभूत पंचयज्ञ आदि कर्म भी सर्वथा नित्यनैमित्तिक दोनों भोंति=और मुहकेबाल. जनेऊ. इन सबकात्याग करिके अपने स्वरूपको रूपाये सौन साधेहुये विचरै (सौन साधेका यह तात्पर्य नहींहै कि निपट न बोलै किन्तु यह प्रयोजन है कि बहुत न बोलै सिर्फ बोचार शब्द जरूरीमात्र मुखसे निकास करै बाक्ती परमात्मा के ध्यानमें लगा रहा करै और स्वरूपको गूढ किये फिरनेका यह तात्पर्य है कि इतना अधिक न ठहिरै कहीं जिससे वास्तिओं के लोग उसके स्वरूप को यथार्थ भेदभावसे पहिंचान सकैं और चर्या आदि ठहिरने की जरूरत पर भी ऐसे सकांत स्थानोंमें बसतीसेवाहर देवस्थ न आदि पर ठहिरै जहां बसती के लोग बहुधा नहीं आसकैं जो आकर उसके ध्यानमें द्योतकन करै यह बाष्कल मुनिने कहा=तैसा परिशिष्टनाम ग्रन्थका अग्रोक्त वचन है

न्यायसे समुच्चय पक्षका दर्शाने वाला है कि वनसे वा घरसे वा तीसरे ब्रह्मचर्यही से यदि कोई संन्यास लेना चाहै यह अर्थ सूचन करता है और इसीसे दूसरा मुख्य पक्ष भी संसिद्ध होता है—तिससे यह तात्पर्य पाया गया कि हर किसी आयुमका पुरुष अपने आश्रम से अनंतरही संन्यास लेसक्ता है—इसीलिये—जावाल मुनिकी यु तिमैं दोतरह से विकल्प कहा गया है उसमें एक यही पक्ष जो कहि चुके दूसरा मुख्य पक्ष भी उपस्थित है—तथाच्युतिः—ब्रह्मचर्यपरिसमाप्यगृहीभवेत्तृतीयभूत्वा वनीभवेत् वनीभूत्वा प्रव्रजेत्तृतीयदिवेत्तरयात्र ब्रह्मचर्यदिवे प्रव्रजेद् द्वादशाब्दा = अर्थात्—ब्रह्मचर्य धारणा करै उसको अच्छीरीतिसे पूरा करिके गृहस्थी वने गृहस्थको पूरा करिके वानप्रस्थ होय वनके आश्रम को पूरा साधन करिके संन्यास धारणा करै (यही मुख्य पक्षवाला कल्प है) पर जिससे यह चारों आयुम यथा क्रमसे न बनिपरै सो औरही तरह ब्रह्मचर्यही से संन्यास लेलेवै या गृहस्थी वनिके घरहीसे या वीच में गृहस्थ छोड़ि ब्रह्मचारी से वानप्रस्थ वनिकर उसीके अनंतर संन्यास लेवै (सब तरहसे गुंजाइश मिली अब संदेह जातारहा) परंतु यह भी नियम नहीं कि अवश्यभाव से वानप्रस्थ या संन्यासी होजाना क्योंकि गौतम ने गार्हस्थ्यके समुख उपरालू आश्रमों की रोक बाध भी प्रदर्शित किया है = यदाह गौतमः—एकाग्रस्यंत्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्गार्हस्थ्यस्य = अर्थात्—जिन आचार्यों ने चार आयुम दर्शाये उन्हीं ने एकाग्रम्य भी गृहस्थ का प्रत्यक्ष विधान होने से कहा है कि जिसके गृहस्थी आयुम प्रत्यक्ष पूरे विधि विधान से बना चुना देखपड़े जहाँ किसी धर्मकी न्यूनता न समझ परै तिसको एक यही आयुम सेवन करना चाहिये जो सबसे जेठा होता है क्योंकि यह सभी आयुमों की धर्मरक्षा करसक्ता है—इसीसे जेठा पन के वो हेतु इसमें होते हैं वानप्रस्थ प्रकरणा के अन्त में लिख चुके तहाँ देखो—ऊपरली शंका के समाधान पर भी ध्यान करो कि संन्यास धर्म लेने मध्ये समुच्चय विकल्प और बाध भी सबतरह की गुंजायशवालेपक्ष दर्शाये गये तिनसबकी जड़ वेद में दहरी उरी यु ति मूलत्व से कर्ताकी इच्छा बलवान दहरी कि वह जिसमें अपना सुभीता समझै उसीका सेवन करै और जिस रीति से होसके उसी रीति से करै सभी प्रकारों का प्रमारा एक वेदहै तिससे विरोध की संभावना कुछ नहीं है ॥ ० ॥ तीभी विरले विद्वानों की समझ को भद्दी जान उसका दोष पकड़ने के निमित्त से मिताक्षरा कार ने एक फालतु व्याख्यान भी आरोपित किया सो देखो (यत्केप्रिचत्र परिडित मान्यैरुक्तं स्मार्तत्वान्नैथिकादीनां गार्हस्थ्येन श्रौतवाचः गार्हस्थ्यान्विकृतां वक्तुं वा

दिविययतावेति तत्त्वाध्यायाध्ययन वैभुर्यनिवंधन मित्युपेक्षाणीय) अर्थात्—मितासरा कार कहते हैं कि—बिरले किन्हीं परिणत मान्य पुरुषों ने इसी संन्यास लेनेके मध्ये संतान पैदा करके जाना चाहिये इस युक्ति के लिये ऐसा जो कहा है कि नैष्ठिक आदि दोनों ब्रह्मचारी यदि संन्यास लेना चाहें तो प्रथम गृहस्थी बनके विवाह करने के द्वारा संतान उत्पादन करके पितरों का ऋण शोधिके संन्यासी बनें तो इससे कुछ श्रुतिकी आज्ञा नहीं मिलती है क्योंकि यह धर्म स्मार्त है तिससे अथवा यदि विवाह करना आदि विरुद्धही माना जाय तो फिर उस प्रकार के ब्रह्मचारियों को संन्यास लेना कहा गया होगा जो अन्धे नपुंसक आदि क्षणभंग ब्रह्मचारी होजाते हैं जिनको गृहस्थी होने का अधिकारही नहीं होता है ये लोग खेवटके ब्रह्मचर्य से संन्यासी होजायें तो कुछ विरोध नहीं है क्योंकि जिनको विवाहकरनेका अधिकारही नहीं तिन पर पितरोंका ऋणभी नहीं उक्तविद्वानोंका यहविचार है इसकोमितासराकारउपेक्षा कारदेनेकेयोग्य ठहराते हैं कि न मानना चाहिये क्योंकि वे लोग कुछ समझे नहीं और सतर्क सीमांसाकीपंक्ति देकर यहतर्कदर्शातेहैं कि लुले अंधेआदिको जैसे अग्नि क्रिया करने धृत देखनेआदिकामोंकी समर्थ न होनेसे श्रौतकर्मोंका अधिकार नहीं तैसेहीस्मार्तकर्मोंमेंभी जलका घड़ा भरलाना भिसाले आना आदिकामोंकी समर्थ न होने से क्योंकि नैष्ठिकत्व आदि आश्रम का निर्वाह पंग आदिसे होसकेगा ॥ ० ॥ संन्यास लेनेका अधिकारी कौन वर्राहै—इस प्रश्न का उत्तर मितासराकार कहतेहैं कि इस आयम का अधिकारी केवल ब्राह्मण वर्गा होता है क्योंकि मनुने प्रकरणा के आरम्भमेंभी ब्राह्मणका नामवरा और समाप्ति के स्थल परभी उसीका नाम लिखा ये दोनों वचन आगे देखो—यदाह मनुः—आत्मन्यग्नीन्समाग्यब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहाव- तथा-ययवोऽभिहितो धर्मा ब्राह्मणस्य चतुर्विधः (ब्राह्मणः प्रव्रजति इति श्रुतेः प्रायजन्म न स वाधिकारो न द्विजातिमावश्य)—अर्थात्—मनुने कहा है कि अग्नियों को आत्मा में आरोपित करके ब्राह्मण घरसे निकस संन्यास में जावें—तैसे यहभी उन्हीं ने कहा है कि—अस ऋयि लोगों यह ब्राह्मणका धर्म तुमसे चार प्रकार कहा (ब्राह्मण लोग संन्यास में जाते हैं यह श्रुतिभी प्रसिद्ध है तिससे ब्राह्मण वर्गा ही का अधिकार है तीनों द्विजातियों का नहीं)—परंतु—अन्यसंग्रहकार टीकाकार तीनों वर्गोंका अधि- कार बताते हैं क्योंकि धर्मके संस्कार से लेकर वेदका पढ़ना आदिसर्व धर्म तीनों वर्गों के वर्राज होते चलेआते हैं—बल्कि—अथारणां वर्राणाम् वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः इति सूत्रकार वचनाच्च द्विजातिमावस्याधिकारमाहुः—अर्थात्—सूत्रकारका भी यह वचन

हैं कि तीनों वर्गोंको वेदपंडितके चार आयस होते हैं इस वचनको प्रभावसे भी विज्ञातो माव का अधिकार कहिते हैं कि तीनों वर्गमें जिसकी इच्छा होय सो संन्यास लेसक्ता है केवल भूद्र नहीं ॥ यहां तक संन्यास लेने का ढंगही कहा गया किंतु इसी ढंग से संन्यास लेचुकने वाले को क्या क्या धर्मवर्तने होंगे सो आगे देखो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

(संन्यासिधर्माः)

सर्वभूतहितःशान्तिलिदंडीसकर्मदलुः । एकारामःपरिव्रज्यभिक्षार्थीग्राममाश्रयेत् ५८ ॥

अर्थः—परिव्राजक होके सर्वभूतों का हित होय, शांत होय, विवंडी होय, कर्मदल सहित होय, एकाराम होय, भिक्षाके अर्थ ग्रामका आयस लेवै=अर्थात्—संन्यासी सब कर्मों का त्याग करने से कहाता है उसी को परिव्राजकभी इसलिये कहिते हैं कि वह धरती पर फिरने लगाताहै कहीं ठिकाना बांधि के नहीं ठिकता है इस फिरने के उपलक्ष्यता से संन्यास के आयस को प्रव्रज्याभी कहिते हैं उस प्रव्रज्यापर आरुढ़ होय सो नित्यप्रति सभी प्राणी माव का हित होय, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनकी साथ कुछ भलाइका आचरण करनेलगे, किंतुयही तात्पर्यहै कि जो कोई कुछ अपनेसाथ प्यारका वर्तवा करे या कोई कुछ अप्रियवर्तवाकरे उन दोनों से उदासीन बुद्धिबनी राखे इत्यादि बातोंका व्योरा अधिकोक्ति में ॥ ५८ ॥

५८ अधिकोक्तिः—दोनोंसे उदासीन बुद्धि राखे वशीकि दुख देने वाले का प्रति-कार करने से किसी प्रकारकी हिंसा करनी परैगी तथा सुख देने वाले पर अनुग्रह करनेसे उसके किसी शत्रुको कुछ पीडा देनी परैगी इसी से संन्यासी को इन दोनोंबात का नियेध है=तथाच गीतमः=हिंसाऽनुग्रहयोरनारंभी=अर्थात्—हिंसा और अनुग्रह इन दोनों का आरंभ कभी नकरे, शांत होय यह जो ऊपर कहागया तिसका यह तात्पर्य है बाहरली प्रत्यक्षइंद्रिया और मनको आदि लेकर भीतर की इंद्रियां वो त-रह की होती हैं तिनमें चंचलता न खड़ी होनेदेय, विवंडी होनाभी कहा तिसका यह तात्पर्य है तीन बंड उसके पास रहा करे जो बांसके होते हैं, और शौच आदि शुद्धि के लियेकर्मदलु का राखना कहा सो हरवक्त जलसे भरा चाहिये=तथाच स्मृत्यंतरं=प्रजापत्येयचनंतरंवीन वैशाखादंडान्मूर्ध्वप्रमाणंदक्षिणेन पाणिना धारयेत् सद्वेन सो यकंकर्मदलुम्=अर्थात्—पूर्वाक्त प्राजापत्य नामका याग करनेके अनंतर बांस केतीन बंडे जो अपने साथे पर्यंत केनपरी तक लंबेहों तिनको दाहने हाथ में लेकर तत्रानिकरी और चौर्ये हाथमें जलसे भरा कर्मदलु होय-परंतु-निर्विकल्प नियम नहींहै कि तीन

हो दंड होय विकल्पसे एकभी होता है (एकदंडीविदंडीवेति वौधायनः) जैसा यह वौधायन का कहा विकल्प है कि एक दंडी बने या विदंडी बने विकल्प उसकी इच्छा पर आरुह है—एवं=चतुर्विंशति सतनामके शास्त्र में भी विकल्प है=यथा=चतुर्थमायमंगच्छेद्व्रह्मविद्यापरायणाः एकदंडीविदंडीवासर्वसंगविवर्जितः=अर्थात्—ब्रह्म विद्या जो वेदांत नाम से अध्यात्म विद्या कहाती है तिसमें निपरा और तत्पर होके संन्यास नामके चौथे आश्रमकी पहुँचै किस रीतिसे कि एक दंडी या विदंडी बनिके जाय और सर्व संगों से रहित होके जाय अर्थात् इष्ट मित्र संबंधी नाते गोते आदि सबकाही संग छोड़ि उनका मोह मुहुरवत तोड़े हुये जाय किसी से कुछ बास्ता अपना न बाक्री रखवे=और=शिखा सूत्र बना रखने या त्यागि देने मध्ये भी ग्रन्थांतरसे विकल्प है कि चाहें बनारखै या निपट त्यागि देवें सो सब आगे वचनों में देखो (मुंडःशिखी वेति गौतमः) गौतमने कहा है कि मुंडितहोय या शिखाबाध होय (मुंडोऽमोऽपरिग्रह इति वशिष्ठः) वशिष्ठ ने कहाहै कि मुंडा होय और अमम होय अर्थात् किसी प्राणी या किसी जगह स्थान या किसी वस्तु पर नामता अपनी न रखवै कि वह मेरा या यह मेरा और अपरिग्रहभीहोय अर्थात् चाकीचलहा सिलवडाआदि गृहस्थोवाले उपकरणोंकासंग्रहकभी न करें=यहतौमुंडितऔरशिखी का विकल्प बर्शाया आगे यज्ञोपवीतका विकल्प दर्शाते हैं सो देखो (शशिखान्को शास्त्रिकंय विस्वज्ययज्ञोपवीत मितिकाठकयुतिः) काठकीययुति यह कहतीहै कि चोटी सहितवालीको कारिके यज्ञोपवीतको विसर्जन करिके संन्यास धारणा करें=तैसा बाष्कल का यह वचन है=कुटवंपुष्यदारांश्चवेदांगानिचसर्गशःकेशावयज्ञोपवीतं चत्यक्तागृहश्च=मुनिः=अर्थात्—कुटन पुत्र स्त्रियां वेदोंके संगभूत पंचयज्ञ आदि कर्म भी सर्वथा नित्यनैमित्तिक दोनों भाँति और मुंडकेवाल जनेऊ इज सबकात्याय करिके अपने स्वरूपको छिपाये सौन साधेहुये विचरें (सौन साधेका यह तात्पर्य नहींहै कि निपट न बोलै किन्तु यह प्रयोजन है कि बहुत न बोलै सिर्फ दोचार शब्द जरूरीमात्र मुखसे निकास करे बाक्री परमात्मा के ध्यानमें लगा रहा करें और स्वरूपको गुद किये फिरनेका यह तात्पर्य है कि श्रुतना अधिक न टहिरें कहीं जिससे बास्तियों के लोग उसके स्वरूप को यथार्थ भेदभावसे पहिंचान सकें और वर्या आदि टहिरने की जरूरत पर भी ऐसे एकान्त स्थानोंमें बसतीसेवाहर देवस्थ न आदि पर टहिरें जहाँ बसती के लोग बहुधा नहीं आसकें जो आकर उसके ध्यानमें व्यर्थता करैं यह बाष्कल मुनिने कहा=तैसा परिशिष्टनाम ग्रन्थका अग्रोक्त वचन है

कि जिसमें वाक्रीरहे विद्वानोंका प्रतिपादन होता है—यथा=अथयज्ञोपवीत मप्सुज्जु
 होतिभूःस्वाहेति अथदंडमादत्तेसखेमांगोपायेति=अर्थात्-पूर्वोक्तप्राजापत्य यागकिये
 पीछे चलते समय (भूःस्वाहा) इस मंत्रको पाँडकर जलकी वाराओं में उपवीतसूत्र
 को होसि देताहै फिर पूर्वोक्त दंडको हाथमें लेताहै इस मंत्रसे कि (सखेमांगोपाय)
 मित्र मुझे वचाइयो संसार के दुःखोंसे=यहां तक सभी वचनों में जनेऊ का त्याग
 देना सिद्ध हुआ. अगिले देवल के वचन से जनेऊ रखलेना भी सिद्ध होगा इसीसे
 ऊपर इसका विलक्षण कहा गयाथा (और जिसको एकही वस्त्र से निर्वाह करनेकी
 शक्ति निपट न हो सो जाड़ेआदि की ऋतु में दूसरी कथरी भी साथ रखवै = यथा
 ह देवलः=कायायोमुंडस्त्रिदंडीकमंडलु पवित्रपादुकाऽऽसनं धामात्रः=अर्थात्-संन्या-
 सी सूड मुड़ाये हुये सिर्फ इतनी चीजें साथ रखवै=गेरुआ आदि कयाय वस्त्र.तीनदंड-
 कमंडलु जल से भरा पवित्र नाम यज्ञोपवीत सूत्र-पादुका खड़ाऊँ.आसन.कथाकथरी
 एकाराम होय यह योगीश्वरके मूलश्लोकमें कहा तिसका तात्पर्यहै कि और किसी
 संन्यासी को अपनेसाथ नरखवै न किसी संन्यासिनी स्त्रीको साथ रखवै (यहां यह
 संदेह न करना कि पुरुषही संन्यास लेते होंगे क्योंकि (स्त्रीणांचैके इति बौधायन)
 बौधायन मुनिने बिरलोंके मतसे स्त्रियोंकी भी संन्यास लेना कहाहै) किसी संन्यासी
 आदिकी साथ लेनेमें जो दोषहैं तिनको दसने प्रकाश किया है=यथा=एकोभिमुख्य
 योक्तश्चद्वावेवमिद्युनस्मृतसु प्रयोगासःसमाख्यात ऊर्ध्वतुनगरायते राजवार्तादितेयानु
 भिक्षावार्तापरस्परसु अपिपैगुन्यमात्सर्यमन्निकर्यान्नसंशयः=अर्थात्-भिक्षुकनाम सं-
 न्यासी का जैसा लक्षणा कहागया सो सब उसीमें समुभूतना जो एकला असहाय फि-
 रता होय.तिससे जहां दो भिक्षुक इकट्ठे होयें तिनको स्त्री पुरुषके तुल्य सेंधुनी जोड़ा
 कहा गया है.जहां कहीं तीन भिक्षुक एकत्र होयें तिनको ग्रामके समान जानों.इन
 से अधिक जहां चारि पांच आदि इकट्ठे होयें तहां नगर शहर को समान भवभइ
 होता है क्योंकि उनके परस्पर समीप होनेसे राजाओं की वार्ता और भिक्षाकी वार्ता
 पिशुनता की वार्ता मत्सरताकी वार्ता भी अवश्य होने लगतीहै जिससे उँकार आदि
 आत्माके स्वरूप ध्यान भूलजाते हैं संदेह इसमें नहीं है=मूल श्लोक में (परिब्रज्य)
 यही पद आया था इसका यही अर्थहै कि सब कुछ त्यागिको संन्यासी बनाहोय.त-
 मसे-में मेरा आदि जो अभिमान के स्वरूप हैं तिनको लिये जो कुछ लोकाचारी कर्म
 होतेहैं तिनको त्यागि देवें और वेदमें भी जो नित्य और काव्य रूपी कर्म करने कहे
 होयें तिनको त्यागि देवें=तथाच मनुः=सुखाभ्युदयिकंचैवनेः श्रेयसिकमेवच प्रवृत्तं

नितृत्तंचद्विविधं कर्म वैदिकम् इह वा ॥ सुववाकास्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते निष्क्रामं ज्ञानपर्वतु
नितृत्तमुपदिश्यते यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः आत्मज्ञानेशमेच स्याद्देवा
भ्यासे च यत्नवान् (अथ वेदाभ्यासः प्रगावाभ्यासः तत्र यत्नवानित्यर्थः = अर्थात्—सन्तु ने
कहा है कि सुखों का उदय करनेवाले कर्म और निःश्रेयस जो मोक्ष है तिसके देनेवाले
कर्म और इसी तरह दोषांतिके वेदोक्त कर्म हैं प्रवृत्त और नितृत्त (इन्हीं दो नामों से)
तिनका यही अर्थ है कि वेदके जितने यज्ञादि कोई कर्म इहां संसारही में कामना
देनेवाले या परलोक में जाकर कामना पूरी करनेवाले हों सो सब प्रवृत्त कर्म कहते
हैं तथा नितृत्त कर्म उनका नाम है कि जो केवल ज्ञानहीके विचार सहित कामना
से रहित होंके किये जायें अर्थात् जिनका साधन करते समय न तौ इसलोकमें कोई
फल चाहा जाय न परलोकमें जाकर कुछ पावनेकी कामना रखी जाय सो निष्क्राम
होनेसे ही नितृत्त कहि लाते हैं ये सब तरह के श्रुति और स्मृतियों में कहे भये कर्मों
को सर्वथा छोड़ि छोड़िके द्विजोत्तम अपने आत्मज्ञानके प्रभावसे भीतरली इन्द्रियोंका
दमन करि पाने में वेदाभ्यास करनेमें यत्नवाला होय अर्थात् यहां वेदके नाम से प्र-
गाव ओंकार मात्रको जानना तिसका बारंबार जप करने में अभ्यास बढ़ाता रहे = मूल
प्रलोकमें (ग्रामं आश्रयेत्) यह भी कहा गया है कि ग्रामके भीतर भी कदाचित्
प्रवेश करै परंतु भिक्षार्थी हो तभी करै अर्थात् भिक्षा के प्रयोजन बिना ग्राम आदि
वसतीके भीतर कभी न जावै = तथापि इस नियमके होते भी वर्याकाल में गाँवभीतर
जानेया टिकनेका भी दोष कुछ नही है = यथाह शांखः = ऊर्ध्ववार्यिकाभ्यां मासाभ्यां नैकं
स्थानवासीति = अर्थात्—शांख मुनिने अपवाद के द्वारा उपदेश फल उत्पन्न किया है
कि वर्या ऋतुके आवरा भादों इन्हीं दो महीना से उपराल किसी एकही स्थानपर
नटिके अर्थात् इन्हीं दो में टिके = परन्तु जो कोई असमर्थ होय तिसके लिये चार म-
हीने भी टिकिजानेका दोष नहीं देखि परता है = तदाह देवलः = तच्चिरमेकवसेदन्यथ
वर्याकालात् यावत्तादयश्चत्वारो मासावर्याकालः = अर्थात्—वर्या कालके सिवाय
अन्य ऋतुमें संन्यासी बहुतकाल एक जघेपर न ठहरै और वर्याकाल यावत्तादयश्च
चार महीनों में जब जब कभी वर्या देखि परै उसीको समझना तथापि जो शरीर से
अशक्त होय तिसके लिये निरंतर चारोंमास वर्याकाल जानना चाहै निरंतर वर्या
होतीरहै या नहीं भी होतीरहै = यही ध्वन्यर्थ अगिले कराव मुनिके वचनमें समझना =
यथा = एकराजवंसेद् मेनयरेराविपंचकष वर्याभ्यो ॥ १ ॥ न्यववर्यासिमासांस्तु चतुर्वसेत् =
अर्थात्—संन्यासी होय सो छोटे ग्रामोंमें एकही रात्रिके बड़े नगरोंमें पाँचरात्रि टिके

इससे अधिक नहीं परंतु यह नियम वर्या के दिवसों से अन्यत्र सूखेकालमें समझना किन्तु वर्या होतेहुये पाँच दिनसे अधिक भी टिकिजानेमें दोय नहीं वल्कि वर्याकृत में अति वर्या होता जानिके चारमहीना तक निरन्तर भीटिके तौकुछ दोय नहीं (यहाँ यद्यपि अति वर्याके होनेमें समर्थ को भी निरन्तर टिकनेका दोयनहीं कहा परन्तु खंडवर्याके होनेमें निरन्तर चारमहीने टिकिजाने से दोय प्रकट होता है तथापि जो असमर्थहोय तिसको खराब दृष्टिके होने परभी चारमहीनाभर टिकनेका दोयनहीं यह देवलकेवचन से भी सिद्ध होचुका है ॥ किसरीतसे भिसामांगें यहनियम अगिले मूल श्लोकेसे देखो ॥ ५८ ॥

(भिचाचरण प्रकारः)

अप्रमत्तश्चरेद्देह्यस्तायाहेनभिखसितः । रहितेभिक्षुकेर्यमेवात्रामात्रमलोलुपः ५९ ॥

अर्थः—सायाह्र में भिक्षुकों से रहित गावँ में यात्रा मावही भैक्ष्य को चरै अलोलुप अप्रमत्त अनभिलक्षित होके=अर्थात्—भिसा मांगते समय अपने मुँहकी दाणी तथा नेबों की निगाह तथा औरही किसी घंगको समस्या आदि चपलता से रहित होय सो अप्रमत्तहोना कहाता है और अनभिलक्षित होय अर्थात् इयोतिथ बंधक मंत्र यंत्र इंद्रजाल आदि किसी विद्या के लक्षणसे लोगों को रिम्ताय के न माँगें और दिनका पिछला पाँचवाँ भाग जो सायाह्र कहाता है तिसमें माँगें पहिले से नहीं और जिस गाँव में भिक्षुक बहुत न होय तिसही में माँगें और उतनाही माँगें जिससे गरीर और प्राणों की यात्रा बनी रहै बहुत न माँगें और अलोलुप होके माँगें किंतु मोटे खट्टे आदि पदार्थों को न माँगें जैसा मिल जाय उगीसे संतुष्टि मानै ॥ ५९ ॥

५९ अधिकोक्तिः=वशिष्टः=सप्तागाराय संकल्पितानिचरेद्देह्यं=अर्थात्—वशिष्ट ने घरोंका भी नियम किया है कि सातही घरसे भिसा आचरै और सात घर भी असंकल्पित होय अर्थात् ऐसा संकल्प न किया होय कि अमुकही अमुक घरों में आकर कलिह माँगेंगे या देनेवालों ने ऐसा संकल्पनिसंगता की रीति से जाहिर किया होय कि अमुक दिवसमें हमारेही घरसे भिसा लेना तोभी ऐसे संकल्पितघर की भिसा न स्वीकार करें—और—दिनका पाँचवाँ भाग सबसे पीछे जो सायाह्र कहाता है तिसमें माँगने को निकसै यह मूलश्लोक में कहागया तिसका प्रमाणा अगिले मनुके वचनमें समझी=यथाह मनुः=विदूमेसचमुसलेष्टंगारेभुक्तवज्जने दृष्टेश रावसंपातेनित्यं भिसांयतिश्चरेत्—तथा—एककालंचरेद्भिसांप्रसज्जेन्नतुविस्तरे भैक्ष्य

प्रसक्तो ह्यतिविषयेष्वपि सज्जति—अर्थात्—यती संन्यासी नित्यं प्रति ऐसे समय पर उस घर में भिक्षा माँगने जावे जहाँ रसोई का धुआँ बंद हो चुका अर्थात् रसोई का धँदा निपट चुका हो और सुसर ओखली आदि के धँसे अर्थात् ऐसे कामों की खटा पटी निपट-गई हो और दृग्गार घरमें जावे कि जहाँ चूल्हा भट्टी आदि की आँच भी बुझ गई हो और मनुष्यों का खाना पीना भोजन कर्म भी हो चुका हो और भी (शराव) सरपोश आदि वासनों का संपातनाम धरना ढाकना आदि आहट होना निपट चुका हो—इन बातों से व्यन्यर्थ सबका यही है कि यतीको ऐसे घरमें भिक्षाके लिये न धुसना चाहिये जिसमें रोटी चढीका धुआँ होता हो या खावापी होती हो या वासन भँडवा की धरा उठ ई ढाँका मूदी आदि कामों का आहट होता हो किंतु भोजन कर्मसे निपटे हुये निर्दंड घर में जाना चाहिये जिससे उन घरों के स्त्री पुरुष अपना हाथ खाली का अवकाश पायकर एकही आवाज सुनते सार कोई बचा बचाया रोटी टुकड़ा देसकेँ उनको यह न कहिना परै कि हाथ खाली नहीं है सो यह ऐसा बानक प्रायश उसी समय मिल सकता है कि जब तीसरे पहर के पीछे दिन का पाँचवाँ घंटा बाकी रहि जाय। इसी लिये इतनी बड़ी वार्ताका निषेधा मूल श्लोक में योगीश्वर ने (सायान्ते) इन्हीं तीन अक्षरों से दर्शाया—तथा—मनुका एक दूसरा भी बचन है कि भिक्षा एकही काल चरे किंतु विस्तर में न लगे क्योंकि भिक्षा से प्रसक्त होकर विस्तर में लगने से यती पुरुष विषयों में भी लग जाता है और वेही विषय उसके शत्रु होते हैं—इस वचन से मनुने एकही बार माँगना कहा और विस्तर से लगने का निषेध किया उस विस्तर शब्दके अग्रोक्त इतने अर्थ होते हैं इन सबही का नियेव भी समझना कि प्रथम तो विस्तर बिछौना आसन पीढा मोटा आदि का नाम है तिसपर न बैठे सिर्फ खड़े हुये माँगें और विस्तर नाम है वाक्यसमूह का तिसका भी प्रतिषेध है कि बहुतसी बातों के विस्तरमें न लगे सिर्फ भिक्षाही माँगें और विस्तर नाम है शब्दों के समूह का तिसका भी निषेध जानो कि भिक्षा माँगनेका शब्द मुखसे वारं-वार न काटे सिर्फ एकही बार माँगि चुपका हो जाय और विस्तर नाम है आवार का अर्थात् घरती चत्रतरा जिसपर आदमी बैठ सकेँ तिसपर भी यतीको न बैठना चाहिये (इन्हीं सब अर्थोंसे यह तर्क पैदा होती है कि आसन पीढा मोटा और घरती पर बैठने का नियेव किया तो फिर बड़ी देर तक चुपके खड़ा रहना पाया गया सो भी नहीं क्योंकि) विस्तर विस्तार बड़ी देर का भी नाम है तिसमें भी न सज्जे अर्थात् भिक्षा माँगनेका शब्द मुखसे एकवार कहिकर चले जाने मध्ये देरी भी न करे किंतु

शोध चलाजाय (इससे भी यह तर्क पैदा होती है कि जब इसतरह के नियेध दहिरे तो फिर हाथखाली आदि अवकाशोंको न देखिके तत्काल चलाजाय पर लौटिके द्वारा तिवारा फेराकरै-सो भी नहीं क्योंकि (एककालचरेद्विषां सकहीकाल भिक्षा मांगै इस नियमसे दुबारा आदि फेराकरनेका नियेध सबसे पहिले कहिचुकेऔर इसी लिये दूसरे अद्वासे मनुने यह कहाहै (भैक्ष्यप्रसक्तौहिर्यातिर्वियधेऽपि सज्जति) कि यती पुरुष भिक्षाके मध्ये बहुत लालसा बढ़ाने से संसारी विययों में रचता और फँसताहै जिससे योगभय होजाना दुर्घट नहींहै ॥ योगीश्वर ने मूलप्रलोक में अनभि लक्षित होके सांगना कहाहै कि भिक्षा के लिये कोईसा विद्याका लक्षणा अपने साथ न राखै तिसके मध्ये मनुने स्पष्ट व्यौरा दर्शाया है—यथा—नचोत्पातनिमित्ताभ्यां न लक्षणां विद्याया नानुशासनवादाभ्यां भिद्यं लिप्सेतर्कहिंचित्त—अर्थात्—यतीपुरुष कभी भी भविष्य उत्पातोंकी उत्पत्ति और फलोंको सुनाइ के भिक्षापर लालसा न राखै-एवं कभी भी शुभा शुभ प्रकृतिरूपी उत्पत्ति हुये निमित्तों के फल कहिकर या सृणुती आदि प्रश्नफल कहिकर भिक्षा न चाहै-एवं किसीप्रकारके समुद्रिक आदि हाथके लक्षणा कहिकर या कोईसी आज्ञारूपी अनुशासनकी बात देकर भिक्षा न मांगै-एवं किसी वाद विवादका तत्त्व निर्धारण करिके भिक्षा न मांगै-न ज्योतिषकी विद्याका बर्तावा करिके (इसका यह तात्पर्य नहींहै कि इनसे उपराल वैद्यकआदि विद्याओं से सांगना बंद न होगा किन्तु सिद्धांत इसका यहीहै कि जिन विद्याओं के नाम यहाँ नहींकहे तिनसे भी न मांगै क्योंकि संन्यासीको विद्याओंका त्यागकर देना पहिले कहिचुके तिसका यही प्रयोजन है जो यहाँ आकर दृढ किया गया= सायंकाल मांगनेका प्रसंग वर्तमानहै तिसकेमध्ये एक जुदाप्रकार भी देखनेमें आता है=तदाहवशिष्टः=ब्राह्मणकुलेवायत्समेत तदभुंजीत सायंप्रातर्मासवज्र्यम् (तदशक विषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्—वशिष्ट ने जो कहा है कि सांक्ष या सवेरेही जब कभी किसी ब्राह्मणके घरमें जो कुछ मिलिजाय या विकल्पसे औरही किसी द्विजातीके घरमें जो कुछ मिलिजाय सोई भोग में लगावै परन्तु सांस्कको छोड़िके यह नियम जानना अर्थात् किसी ऐसे देशके निवासी ब्राह्मणआदि द्विजाती होंगं जिनके सांस खायाजाता हो वही लाकर भिक्षामें समर्पण करै तो संन्यासीको न खाना चाहिये—इस वचन में सांक्ष या सवेरेका जो विकल्प कहा सो सवेरा कहिने से दोपहर के पहिलेका समय निश्चितभया (इसपर मिताक्षराकारकहिने है कि यह दुपहरसे पहिले भिक्षा भोगलगानेका चर्चा सिर्फ उसकोलिये जानना जो रोसी आदि

होनेसे अशक्तहोय जिसपर सबेरे खाइलेने विना संभक्तक न दहिराजाय पान्च दो-
नोंवार खानेका नियम इसमें नहीं है—भिक्षुकों से खाली गांवमें भिक्षा मांगने जाय
यह मूलश्लोक में योगीश्वरने कहा—इसका यह तात्पर्य है कि पाखराडी आदि न-
कली भिक्षुक जहां बहुतहोयें तहां देनेवालोंको अग्रदा होजाती है तब सबेरे स्वल्पमें
भी यद्वा नहीं करते हैं—इसी वार्तापर मनुने कुछ और भी विशेष नियम किथा है—
तथाच=नतापसेवाह्मणैर्विधोभिरपवाच्यभिः आकीर्णभिक्षुकैरन्येणामुपसन्नजैव=
अर्थात्—ग्रामतौ बहुत बड़ाहोनेसे उसकी दशा अचानक नहीं भी मालूम होसकती है
तिससे एकदोला मुहल्ला आदि शुद्ध समझै बल्कि मनुने इस वचन से सकानहीका
शुद्धभाव देखवा कहा है कि भिक्षालेनेको ऐसे घरमें न जावें जो तपसी या संगिता
ब्राह्मणोंसे गसा हो या काक आदि बहुत पक्षियों से भराहोय या जवानपट्टे लुंगाड़े
आदिमियों से ढंकाहो या कुत्तोंसे रुकाहो या औरही किसीप्रकार के भिखारियों से
घिराहोय ॥ मूल श्लोकमें यह भी कहिचुके हैं कि उतनाही मांगें जिससे प्राणाकी
रक्षा होसके उससे अधिक न मांगें तिसका परिमारा भी संवर्तने दर्शाया है—यथा=
अथोभिक्षाः समादाय मुनिः सप्तचपंचवा अद्भिः प्रसारिताः सर्वास्ततोऽप्रीयाश्च वारयतः=
अर्थात्—भिक्षाके प्रयोजनवाला एकही शब्द मुखसे निकालनेके उपरालू मुनि बना
हुआ अर्थात् (सौन) चुपसावे हुये आठ घरसे भिक्षा या सात घरसे लेकर या बहुत
मैली दोखें तो पांचही घरसेलेकर सबको जलोंसे धोकर तिमपीड़े वारागीको जीति
के भोजनकरें (वारागीका जीतना यहां यही है कि मोटे भोटके अन्नकीनिवा कुछ न करे
महाप्रसाद समझि के भोगें—इसीलिये मूलश्लोक में कहिचुके हैं कि जीभकी लोलु-
पता छोड़िकर खड़ी मोटी आदि न मांगें—कैसा पावलोजाकर भिक्षानांगें सो अगिले
मूलश्लोक में देखो ॥ ५६ ॥

(यत्तेः पात्राणि)

यत्तिपात्राणिमृदेणुदार्वालानुमयानिच । सलिलं शुद्धिरितेपात्राणौ लैश्वर्यवर्षणाम् ६० ॥

अर्थ—यतीके पात्रहोयें मंडी या बांस या काठ या तोमड़ीके बनेहुये—इनबास-
नोंका शुद्धकरना जलसे और गायके बालों से रगड़ना भी होता है ॥ ६० ॥

६० अधिकोक्तिः—मितासराकार कहिहै कि यह शुद्धि का प्रकार सिर्फ भिक्षा
के प्रयोग मध्ये उसका एक अंग समझतों कहा गया कि भिक्षा के जिनपात्रों में प-
वित्र लेपजो भिक्षाके अन्नादि का होजाय तिसको इसी प्रकारसे शोधै अन्यथा इससे
उपरालू किसी प्रकारसे यदि वही पात्र बिगड़ै तो फिर इस रीतिको छोड़िके आधार

सर्वादा परिपारी में द्रव्य शुद्धि प्रकरणा के द्वारा उसके शोवन की रीति देखनी चाहिये—इसी आशय के अनुसार अगला वचन है सो देखो=यदाह मनुः=अतैजसा निपात्राणां तस्य स्युर्निर्वाणानि च तेषामिन्द्रिभ्यस्तं शौचं च मसानां सिवाध्वरे (चमसदृशं तो पादानेन प्रयोगिकी शुद्धिर्दर्शिता इति मिताक्षरा=अर्थात्—उस यती के पात्र होय अतैजस धातुओं से उपराल काठ आदि के परंतु निर्वाण होय जिनमें छेद गड्ढा हिला आदि कुछ न होय जिसमें मैल भरै किंतु साफ चिकने घुटे होय तिनका शौच करना सिर्फ जल से कि जैसे यज्ञों में चमसनामी पात्रों की चिकनाई गरम जल से या ठंडे भी जल से दूर करते हैं (इसमें यज्ञसंबंधी चमस पात्रों का दृष्टांत स्वीकार होने से प्रयोगवती शुद्धि दर्शाई गई यह मिताक्षराने प्रकाश किया=मिताक्षराकार फिर कहते हैं कि जिसके पास दूसरा पात्र न होय सो भोजन भी उसी पात्र में करै यह तात्पर्य देवल के वचन से प्रतीत होता है=यदाह देवलः=तद्वैद्यं गृहीत्वा कांते तेन पात्रेणान्येन वा तुष्णीं सावयामुं जीत=अर्थात्—उस भिक्षा को लेकर सकांत में उठी पात्र से या और पात्र से भोगे सोन साविके और नियम किये हुये अपने पेट के अनुमान भरि भोगे अधिक न हों (इस वचन में और किसी पात्र के कथन से दूसरा पात्र भी सिद्ध होता है इसी से मिताक्षराकार ने भी यह कहा कि जिसके पास दूसरा न होय परंतु दूसरा पात्र पास रखने वाला कोई वचन ऐसा नहीं पाया जिससे दो पात्रों की आज्ञा समझी जाय और पहिले जहाँ संन्यास लेने का प्रारंभ किया तहाँ केवल कमंडल का साथ होना कहा था सो जल का पात्र है यहाँ जो भिक्षा सोंगने के पात्र कहे तिनमें दूसरे पात्र का प्रयोग जन भी कुछ नहीं है तिससे यहाँ देवल के वचन में अन्य पात्र के शब्द से डाक पत्र आदि समझे जाते हैं कि जिससे भिक्षा सोंगने का पात्र भोजन कर्म से जुड़ा न करना परै परंतु जिसपर टांक पत्र आदि नहीं वह उसी भिक्षा पात्र में भोजन करै यह सिद्धांत ठहरा ॥ यहाँ तक संन्यासी का डोल मात्र कहा गया ऐसे संन्यासी को उपासना सख्ये जैसा नियम करना चाहिये सो अगले परिच्छेद से देखना ॥

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

१३३

(अथसंन्यास प्रसंगादेव अध्यात्म प्रकरणं सविस्तरं प्रारभ्यते)

इस प्रकारता में त्रयोदश १३ परिच्छेद होंगे यह याद रखो ॥

अथसंन्यासाग्रमारूढस्य हृदिज्ञानोत्पत्तिसाधनाय त

त्कारणसमूहप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः (९) नवमः ॥

इस परिच्छेदमें ज्ञान के उत्पन्न करने कराने वाले सब कारणों का समूह दर्शाया जायगा जिनको समझनेसे संन्यासी के हृदयमें ज्ञानकी उत्पत्ति होय क्योंकि ज्ञान के उत्पन्न हुये बिना यह आश्रम नहीं चलता किंतु ज्ञानही इसका मूल है ॥

(यतेर्नियमाः)

सनिरुद्धयेन्द्रियग्रामं रागद्वेषोऽग्रहाय च । भयं हि त्वाहि भूतानाममृतीभवति द्विजः ६१ ॥

अर्थः—इन्द्रियोंके भुगुडको रोकिके रागद्वेष दोनोंको छोड़िके भूतोंका भय त्यागिके द्विज पुरुष अमृती होताहै—अर्थात्—द्विज कहनेसे विशेष प्रधानता से ब्राह्मण और बिरले उत्तम वैवर्णिक भी समझने कि जिनहींने संन्यास लिया होय ऐसा पुरुष उस दशामें अमृती अर्थात् मोक्षपानेका अधिकारी होताहै कि जब नेत्र कान आदि सब इन्द्रियोंके समूहको उनके रूपशब्द आदि विषयोंसे (सनिरुद्धय) खूबच्छे रोकिवचाइके और रागजिसका विययभोग प्रियवस्तु की चाहना और प्राप्तिहोतीहै तथा द्वेष जिसका विययभोग अप्रियका निरादर या दूरिकरना होता है इन दोनोंको अत्यंत त्यागिके और चकारके ध्वन्यर्थ से इष्ट्या आदि बाँधों की भी त्यागिके भूतजें संसारी जीवहैं तिनसे अपने अपकारकाडर छोड़िके दुखपानेका भय छोड़िके अन्तःकरणा को निष्कण्ठ भावसे अति शुद्ध करें जिससे अद्वैत आत्म स्वरूप उसको साक्षात्कार प्रतीत होनेलगे तब उस यती पुरुष को मोक्षफल मिलता है ॥ ६१ ॥ किस प्रकार अंतः करणा शुद्धहोय सो कहिते हैं ॥

(अन्तःकरणशुद्धिरेवादीकैर्तत्त्वा)

कर्तव्याश्रयशुद्धिस्तु भिक्षुकेषां विशेषतः । ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात्सातंत्र्यकरणाय च ६२

अर्थः—आश्रय (अंतःकरणा) की शुद्धि ही ज्ञानोत्पत्ति का निमित्त है तिससे

विशेषकर भिक्षुक यती करके स्वातंत्र्य करने के लिये भी करनी चाहिये—अर्थात्—
वियय भोगोंकी अभिलाषा और अप्रिय विययोंका द्वेषभाव इन दोनोंसे उपजे नैयों
करके कलंकित जो आशय नाम अंतःकरा चतुष्टय अर्थात् मनबुद्धि अहंकार चित्त
इन चारोंमें घुसेहुये पाप कलंकों का सयकला आशय की शुद्धि कहिलाती है सो
प्राणायामों के अभ्यास से भिक्षुककी अवश्य करनी चाहिये अपने आत्माके स्वतंत्र
होजानेके लिये, क्योंकि साक्षात् अद्वैत आत्मा का स्वस्वरूपज्ञान उत्पन्न होनेके लिये
द्वैतः करारकी शुद्धिहीना बहुत बड़ा कारणा है ॥ ६२ ॥

६२ अधिकोक्तिः—ऊपर लिखी वार्त्ता से यह सिद्धांत निकला कि धिययों में
मनका राग लराना एक प्रतिबंध बड़ी रुकावट है तिसके मिटिजाने और तिससे उपजे
हुये दोयस्वरूपी प्रतिबन्ध के मिटिजाने में आत्माका ध्यान धारणा आदि साधन करने
को स्वतंत्रता प्राप्त होतीहै यद्यपि यह सबके लिये उपकारी है तथापि भिक्षुक यती
को विशेषकर ऐसी शुद्धिका अनुष्ठान करना चाहिये क्योंकि मोक्षके अधिकारियों
में सबसे बड़ा प्रधान वहीहै और मोक्ष जो पदार्थहै सो अन्तः करारकी शुद्धिहुये बिना
अन्य उपायों से मिलना बड़ा दुर्घटहै—यथाहमनुः—दह्यंतेध्मायमानानां धातूनां हियया
मलाः तथेन्द्रियारां दह्यंते योग्याः प्राणस्थानिग्रहात् = अर्थात्—प्राणा वायुका निग्रह
प्राणायाम तिसकी धारणासे इन्द्रियों के दोय उस तरह जलिजाते हैं कि जैसे लोहा
आदि धातुओं को घमाते हुये उनके मैल भस्म होजाते हैं—तिससे अधिकतर प्राणा-
यानों की धारणासाधन कियाकरै जिसका संक्षेप डील १११ एक सौ ग्यारह मूल
श्लोकमें और विस्तार १६८ एक सौ अट्ठानवे मूल श्लोकसे दर्शाया जायगा तहाँ
तहाँ देखिलेना ॥ ६२ ॥

इन्द्रियों के निरोधका उपाय करना चाहिके संसारके स्वरूपको विचारै सो आपे
कहि के समुभातेहै ॥ ६२ ॥

(संसारस्यानिरूपत्वव्यवधेयम्)

अवेद्यागर्भवासादचर्मजागतयस्तथा । आधयोऽप्याधयः क्लेशाजरा रूपविपर्ययः ६३

भवो जातिरहस्त्रेऽपु प्रियाप्रियविपर्ययः । ध्यानयोगेन संप्रप्येत्सूक्ष्मपात्मात्मनि स्थितः ६४

अर्थः—गर्भ के वास देखने चाहिये तथा कर्मों से उत्पन्न रातियाँ भी अधियाँ
और व्याधियाँ और क्लेशों के भेद और जरा बुढ़ापा से छपों के विपर्यय (६३)
सहसों जाति में जन्म और प्रिय अप्रिय का उलटापन यह सब देखि शौचिके महम
आत्माको आत्मा में स्थितहुआ ध्यान के योगही से अच्छीतरह देखै = अर्थात्—

मन में वैराग्य पैदा करने के लिये नानाभौति गणों के निवास जो मूत्र और विद्या
आदि अनेक सड़ाइय के बीच करने परते हैं शोचने चाहिये (यहाँ चकारके ध्वन्यर्थ
से जनन और मरणा भी जैसे कष्टों से भोगने होते हैं विचारने चाहिये) तथा नियुक्त
आचरणा आदि कर्मों के फलसे उत्पन्न जो महा रोग आदि नरकों में गिरना रूपी
(गतियाँ) चालें भोगनी होती हैं शोचनी चाहिये तथा मनमें जो नानाभौति की
पीडा और चिंतारूपी आघे उत्पन्न हुआ करती हैं शोचनी चाहिये तथा शरीरों में
इवरातिसार आदि बहुधा रोगभेदों से व्याधे लगी रहती हैं शोचना चाहिये तथा क्लेश
भी पाँच प्रकार के सदा लगे रहते हैं (अविद्या अस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशः पंचक्लेशाः)
अर्थात् सबसे पहिला क्लेश अविद्या अज्ञान है जिसका स्वरूप लसरा अधिकोक्ति
में देखना दूसरा क्लेश अस्मिता अहंता ममता रूपी मोह कहाता है तीसरा क्लेश राग
है जो रागवत् या प्रीति या अनुराग भी कहाता है चौथा क्लेश द्वेष है जो रागसे विप-
रीत होता है कि अप्रिय चीजों को न चाहे पाँचवां क्लेश अभिनिवेश है जो प्रायः
स्त्री या बालक या अप्रिय वस्तुमें रहता है इसका स्वरूप अधिकोक्तिमें देखना इन पाँचों
से सर्वदा क्लेश ही उत्पन्न होते रहते हैं तिससे इन कानामही क्लेश धरा गया शोचने चाहिये
तथा जरानाम है बुढ़ापे का वह सब को आनि घेरती है जिससे खालपन जाती और
ढीली हो जाती और खाल में सलबत किन्तु बलभी पड़जाते हैं और उसी जरा के सबब
से मनुष्यों के रूपमें भी विपर्यय अर्थात् उलटापन क्लृप्तता कुबड़ापन आदि होजाता
है विचारना चाहिये (६३) तैसेही यह शोचना चाहिये कि छोडा गवहा शुकर सर्प
आदि नानाभौति की योनियों में जन्म लेना होता है जहां उन्हीं देहों के धर्मरूपी
दुःख भोगने परते हैं तैसे यह भी शोचने कि जोबस्तु प्रिय होती है सो नहीं हाथ लगती जो
अप्रिय होती है वही कर्मों के वेगसे भोगनी परती है तिससे प्रिय अप्रिय का उलटापन भी
सदा दुःखदायी देखि परता है अर्थात् सारा संसार ही दुःखों का रूप है यह सब अच्छीतरह
शोचि विचारि के दुःखों के मूलरूपी संसार को त्यागने के अर्थ से आत्मज्ञान प्राप्त
होने का उपाय जो ब्रह्मियों का जीतना है तिसही में प्रवृत्त होवें (तहाँ क्या करना
चाहिये सो कहिते हैं कि) अपने चित्तरूपी आत्मा की एकाग्रता ध्यान कहाती है
और उसी चित्त की अनेक बाहरली वृत्तियों का निषेध नाम रोकना किन्तु खींचि
के उसीमें मिलायलेना अर्थात् बाहरले विषयों पर नहीं पहुँचने देवें यही योग है तहाँ
ध्यान और योग इन दोनों के अर्थ से जो कुछ रूपक सिद्ध भया हो उसी ध्यान योगसे
अच्छीतरह देखें क्या देखें सूक्ष्मरूपी आत्मा जो अपने सूदन शरीरात् अतः करण में

उपस्थित है वही परब्रह्मरूपी परमात्मा के बीचमें संस्थित हो रहा है यह देखे अर्थात् सर्वत्र सबजीवोंमें ऐसाही प्रतीत करनेलगे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

६३ अधिकोक्तिः—ऊपरकी वार्त्ता में यह युक्ति भी प्रमारा देती है कि (आत्मा द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः—अवद्रष्टव्य इति साक्षात्काररूपदर्शनमनुद्य तत्मावनस्त्वेन श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्य इति श्रवण मनन निदिध्यासनानि विहितानीति मिताक्षराच) अर्थात्—आत्मा जो साक्षात्कार ब्रह्मका स्वरूप है वह देखना चाहिये सुनना चाहिये मानना और मनन करना चाहिये निदिध्यासित करना अर्थात् ध्यानयोग में लगाना चाहिये यह श्रुति ने समझाया—इसपर मिताक्षराकार भी यह कहिते हैं कि साक्षात्कार देखना बहुत कठिन है तिससे उसीके निमित्त में ये तीन उपाय श्रुति ने दर्शाये हैं कि १ आत्मा के व्याख्यान श्रवण करे २ मनन करे ३ निदिध्यासन अर्थात् ध्यानयोग में धारणा करे—परन्तु—यहाँ पर ध्यानयोग कहिते से प्राणायामों को धारणा मत समझी बल्कि जिसध्यान योगका चर्चा यहाँ किया गया तिसका अर्थ उसके स्वरूप से निदिध्यासन जानना निदिध्यासन के दो तीनक अर्थ होते हैं एक तो अपरायत्त बोध जो केवल अपने ज्ञानही के अधीन बोध होय सो निदिध्यासन कहाता है (अपरायत्तबोधो हि निदिध्यासनमुच्यते) दूसरे एक प्रकार के ध्यानरूपी विचारको निदिध्यासन कहिते हैं जो श्रवण और मनन दोनों के फलसे आत्मज्ञानका चिन्तन करते समय ध्यान लगाया जाता है (ताभ्यां निर्विचिकित्स्ये र्वैचित्तस्य स्यापितस्य यत्र एकतानत्वमेतद्विनिदिध्यासनमुच्यते) इसील्लक्षणा का यह भी तात्पर्य है कि आत्मा संवन्धी जो कुछ व्याख्यान शुरु के मुख से पहिले सुना होय वही श्रवण कहाता है फिर सुनेहुये को अच्छी तरह मान्यतासे समझ के विचार रहित प्रमारा मानिकार स्वीकार किया होय वही मनन होता है फिर उसीको एकाग्र चित्त से निरंतर ध्यान लगाये सत्यभाव से धारणा बनी राखे यही निदिध्यासन कहा जाता है (निरंतरविचारोद्युतार्थस्य शरोर्मुखात् तच्च निदिध्यासनं प्रोक्तं चैकाग्रचेरालभ्यते) यद्यपि निदिध्यासन के ये तीनक लक्षणा जुदे करिके सम भाये गये तौभी सिद्धान्त से तात्पर्य भव का एक है जुदाई कुछ नहीं है—अब—योगोचरका मूल श्लोक देखो (ध्यानयोगेन मंपश्येत्) निदिध्यासनरूपी ध्यानके योग में संभ्रज् देखे क्या देखे भीतरला सुदृढ शरीर और प्राण आदि इनसे जुदा जो मूढम रूप आत्मा है सो प्रज्ज कहाता है सो आत्मा में अर्थात् ब्रह्मही में टिका हुआ देता है यह देखे इस प्रकार मे तव ओग त्वम वह ओग तू इन दोनों पदार्थों का अर्थात्

परमात्मा और आत्मा का अभेद अपने हृदय में सन्मुख प्रत्यक्ष देखने लगे कि इसमें और उसमें भेद नहीं है ॥ ० ॥ क्षेत्रज्ञ आत्माका नाम क्षेत्रज्ञ और आत्माभी उसपुरुष का नाम है जो शरीर को उसके कामोंमें प्रवृत्त करवाता रहा करता और इसीसे शरीर का अधिष्ठाता देवता भी कहा जाता है (योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते इति मनुः) क्षेत्र नाम है शरीर का शरीरों की दशा को पहिचाने तिससे क्षेत्रज्ञ कहा जाता है—यथा—क्षेत्रात्प्रानि शरीराणि तेषांचैव यथासुखम् आत्मानवेत्तिसंयोगादतः क्षेत्रज्ञ उच्यते—अर्थात्—क्षेत्रनाम के शरीरों तिनकी जैसी कुछ सुख दुःख आदि व्यवस्था होती है सो सब जीवात्मा भीतर बैठा हुआ जानता है तथैव अपने शरीर के संयोग से ब्रह्मरूप आत्माको भी जानता है इसी जाननेके हेतुसे क्षेत्रज्ञ उसका नाम है (इसकी विशेष पहिचान आगे १४६ तक सो उनचास आदि मूल श्लोकों से देखना ॥ ० ॥ ऊपर मूल श्लोकों अर्थों में पंच क्षेत्रों के नाम जहाँ लिखे गये उनमें पहिला क्षेत्र अधिष्ठा कहा गया था तिसका स्वरूप लक्षण यहाँ समझो कि विद्यारूपी ज्ञान से विरुद्ध विपरीत होय वही अधिष्ठा कहलाती है जिस अधिष्ठा के होने में परमानन्द का स्वरूप नहीं पहिचाना जासक्ता है (क्योंकि उस अधिष्ठा की प्रवृत्तता मलिन सत्त्व में रहती है) उससे मिथ्या और उलटा ज्ञान उत्पन्न होता रहता है तिससे अज्ञान रूपी भ्रांति जो वस्तु है वही उसका स्वरूप जानो इसी लिये यह सबसे पहिला क्षेत्र कहाती है ॥ ० ॥ उन्हीं पंच क्षेत्रों में सबसे पहिला पाँचवाँ क्षेत्र अभिनिवेश कहा गया था उसका यह लक्षण है कि यद्यपि शरीर और इन्द्रियों आदि नाशमान हैं सबकोई जानता है तिसपर आयुभी पूर्ण हो चुकी चाहें अति बूढ़ा शिथिल शरीर होय तौ भी इस प्रकारका अभिनिवेश बना रहता है कि अभी न मरना परे या मैं अभी नहीं मरसक्ता हूँ या यह मेरा अति धारा पुरुष जो निपट मराऊ वरा है यदि अमुक वैद्य आदि इस वेषपर आसके तौ यह बचिरहने सक्ता है इत्यादि नाना भौतिके अभिनिवेश केवल वालकों की बुद्धि में और स्त्रियों को समझ में और उस पुरुष के अज्ञान में भी रहते हैं जो विद्या से विहीन कोरा मूर्ख जडबुद्धि पुरुष होय ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

(साधनायां विशेषः)

नाश्रम कारणं परमं किं यमाणो भवेद्विद्वत् । अतो यदात्मनोऽप्यपरेषां न तदाचरेत् ६५ ॥

सत्यमस्तेषामक्रोधोद्गी शोचं चार्थवृत्तिर्दमः । सपतेन्द्रियता विद्याधर्मः सर्वदा हृतः ६६ ॥

अर्थः—धर्म में आश्रम नहीं कारण है वह करनेहीसे होता है इससे जो अपने को अपय्य होय सो पर जनों के लिये न आचरे—६५—सत्य अस्तेय अक्रोध द्रोः शोच.

धीः वृत्तिः दमः संयतेन्द्रियताः विद्याः यह सब धर्म कहा है—६६=अर्थात्—संन्यास आश्रम के चिह्न जो दंड कमंडल आदि कहिचुके वे चिह्नही उसके धर्मका विशेषकरा कुछ नहीं हैं क्योंकि ये चिह्न तो करनेमें सुगमता से धारण होसकते हैं कुछ कठिनता इनमें नहीं है (अर्थात् उन चिह्नों के होतेहुये बीच में इस आश्रम के धर्मका स्वरूप अपने सूक्ष्म रूपसे दूसराहै सो कहते हैं कि) इसकारणसे यह चाहिये कि अपनेको जो जो बातें अपथ्य प्रतीत होतीहों दृष्टांत जैसे किसीने खोटा वचन सुनाया सो अपने हृदय में वियके तुल्य जाकर लगता है यह अपथ्य ठहरा इसी प्रकार औरभी अनेक बातें समझ लेनी सो सब औरों के साथ न करै बल्कि और जो कोई अपने साथ कुछ खोटाही आचरणा करै सो सब सहिलिया करै तब इस आश्रम का धर्म ठीक होता है तिसके नियम आगे देखौ ॥ ६५ ॥ सत्य बोलै पर ऐसा सत्य न बोलै जिस से किसी के हृदयको दुःख वा उद्वेग पैदा होताहो अस्तेय पराया द्रव्य न हरनेका नियमराखै क्रोध को अपने स्वभावही से निकामिडारै कि जो कोई अपकारकरै तिसपरभी क्रोध न लावै हीः लज्जा को अपने स्वभाव में बनोराखै किंतु संन्यास के नियमों से विपरीत आचरणा करिके निर्लज्ज न बनें शौच अपने शरीर और आहारकीभी शुद्धिपर ध्यान राखै धीः बुद्धि अर्थात् हित अहित दोनों के विचार में बुद्धि को लगी राखै घृते धीरज ऐसे समय पर चाहिये कि जब अपनी चहीती वस्तु से वियोग होय या अप्रिय से संयोग होजाय तभी चित्तविचल होता है तिसको विवेक से समझाय के ठिकाने करै कि जैसा पहिले सावधान होरहाथा तैसा होजाय दम अर्थात् मदका त्यागदेना दम कहाताहै इसकीभी साधनाकरै संयतेन्द्रियता अर्थात् संन्यक प्रकार से इंद्रियों का यत्न वशमें राखना यहांतक कि जिन वियर्थोंको तुच्छता से नाम लेकर प्रतिषेध उनका नहीं किया गयाहो तिनमेंभी प्रवृत्त न होना चाहिये विद्या अर्थात् अध्यात्म विद्याका अभ्यास करै (अविद्याको निज बुद्धिमें न घुसने देखै) त्रिः ससे आत्मज्ञान प्राप्त होताहै इन्हीं सब नियमों की साधना से संन्यास आश्रम का पूरा धर्म सिद्ध होता है ॥ ६६ ॥

६५ अधीकोक्तिः—ऊपर की व्यवस्था से योगीश्वर ने यह तात्पर्य दर्शाया है कि दंड कमंडल आदि ऊपरके चिह्न जो सबलोग देखि सकते हैं तिनके होते हुये भीतर भी अन्तःकरणमें सत्य बोलना आदि इतने शराहोने चाहिये कि जिनके होनेविना केवल ऊपरले चिह्नों से संन्यास नहीं सिद्ध होताहै परंतु (नाश्रमः कारणां) मूलमें इस पदका यह तात्पर्य नहीं है कि दंड कमंडल आदि चिह्नों को न धारण करै

क्योंकि धारणा करने का विधान सबसे पहिलेही आदेश हो चुका है- इसका प्रसारण अगिला वचन है—यथाहमनु—भूयितोऽपि चरेदम्यवतत्रायमेवमनु मनःसर्वेषु भूतेषु नलिं राधर्मकारणान्—अर्थात्—दंड कमराडल आदि सब चिह्नों से सजा हुआ भी जहाँ तहाँ टिकानों पर टिकते हुये अन्तरोय गुणास्त्रपी धर्मको आचरै परंच सभी प्राणी मात्रमें मनकी वृत्ति एकसी समान बनीराखै किंतु इसके बिना सिर्फ दिवावे का चिह्नस्त्र-पी लिंगही संन्यास का धर्म कारणा कुछ नहीं है ॥ ६५।६६ ॥

अध्यात्म विद्या ब्रह्मविद्या जो वेदांत विद्याभी कहलिये है जिसको छहासठिके ६६ मूलश्लोक में विद्या इसी शब्द से दर्शाय चुके हैं कि संन्यासी को उसका अभ्यास करना बहुत आवश्यक है उसके बिना जाने संन्यास का आश्रम नहीं चलता है—तिससे अगिले मूल श्लोकसे उसविद्याका प्रारम्भ करते हैं विस्तार उसका अनेक परिच्छेदों से जाकर पूरा होगा क्योंकि उसका स्वरूप ज्ञान होने के प्रकार भेदभी अनेक हैं ॥

(परमात्मनः सकाशात् जीवात्मानः प्रभवन्ति)

निःसरंति यथाक्लोहपिण्डात्सत्सु फुल्लिङ्गकाः । सकाशादात्मनस्तदात्मानः प्रभवन्ति हि ६७ ॥

अर्थः—जैसे तपाये लोह पिण्डसे फुल्लिङ्ग निसरते हैं तद्वत् आत्माके सकाश से आत्मानः उत्पन्न होते हैं निश्चय जानौ—अर्थात्—यद्यपि परम अर्थ के विचारसे जीव और परमात्मा में कुछ नहीं है तौभी अधिद्याकी उपाधि रूपी भेदसे भिन्नता पाइकर परमात्मा के स्वरूप से असंख्य जीवात्मा पैदा होते हैं तिससे जीव और परमात्मा में कुछ भेद का बहाना माग कहा जाता है—इसका यह दृष्टांत है कि जैसे तपाये हुये लोहे के पिण्ड गोले आदि की दृष्टीडाकी घमक आदि पहुँचनेसे सङ्घर्ष फुल्लिङ्गों विदकारे भराकरते हैं तैसे ही उसीसमान परमात्मा रूपी लोहापिण्डसे असंख्य जीवात्माका भी भ्रूतते हैं—तहाँ जैसे लोहके गोलेमें अग्नि और घोंकनी दृष्टीडाआदि संसारीमाया की उपाधि पहुँचनेसे उसका तेजस्वरूपी सूक्ष्म अंग होकर फुल्लिङ्गों भ्रूतते हैं तैसे ही परमात्मा रूपी ब्रह्मके गोले में अधिद्या रूपी माया से त्रिगुणात्मक उपाधिकी घमक पहुँचने से उसी ब्रह्मके अति छोटे छोटे अंश उससे जुड़े होकर उठने लगते हैं ॥ ६७ ॥

६७ अधिकोक्तिः—यद्यपि लोहके फुल्लिङ्ग लोहका अंग होनेके हेतुसे लोहा कहे जासक्त हैं और उसीतरह ब्रह्मका छोटाअंश होनेके हेतुसे वेणी ब्रह्म कहे जासक्त हैं परंतु मुख्यरूपसे जुड़ेहीजानेके हेतुसे लोहकेअंश फुल्लिङ्गों कहे जाते हैं तैसे ही परमात्मा के स्वरूपसे जुड़े होजाकर उसके छोटे अंश जीवात्मा कहेजाते हैं ॥ यहवार्ता उसवात

परदर्शगर्भ कि जैसा ६४ चौसठि मूलश्लोक उत्तरार्द्ध में कहि चुके हैं कि (ध्यान के योगसे अपने जीवात्माको परमात्मामें बैठा देखें) सो इस कथनसे दोनों भेदका न होना यद्यपि दर्शाया गया तौ भी बढ़ाने सात्रका भेद सिद्ध होता है क्योंकि जो निपट भेदही न होता तौ फिर अभेद किसका सिद्ध किया जाता जब कि भेद कुछ थोड़ा बहुत प्रतीत होता सौजद है तब उसीका अभेदभी समझना परा तिससे भेद मानना भी यद्यपि अनर्थक नहीं है तथापि संन्यास वर्त्मपर आरुढ योगीजनो की अभेदहीकी उपासना करनी योग्य है यह तात्पर्यदर्शित—अर्थात् योगीजनको चौंसठि मूलश्लोकपर यह शंका न करनी चाहिये कि (आत्मा में जीवात्माको बैठा देखें इससे आपही दो वस्तु देखि परती हैं कि एकमें दूसरे को बैठा देखें) किंतु शंका दूर करने को यह ६७ सरसठि मूल श्लोक देखें कि एकही वस्तुके दो भेद होगये सो उसकी उसीमें मिताय देनेसे भेद नहीं रहि सक्ता है ॥ इसी सरसठिके मूलश्लोकपर दूसरे प्रकारसे भी अर्थ किया जाता है कि—योगीजन कदाचित् यह शंका करने लगें कि, सृष्टि और प्रलय इन दोनों के समयपर सभी जीवात्मा जो सेवज भी कहाते सो ब्रह्मही में प्रलीन (लय) होजाते हैं तिससे आपही कुछ भेद नहीं रहिता तो फिर यह चौंसठि मूलश्लोकमें किसके लिये आत्माकी उपासना विधि कही गई—यह शंका दूर करने को समाधान रूपी सरसठि का श्लोक है कि—हाँ—अर्थात् प्रलयके समयपर सूक्ष्मरूप से सब जीव उसी ब्रह्म में लय होते हैं तथापि उसी ब्रह्मके सकाशसे अविद्याकी उपाधि रूपी भेदसे जुवाड़े पाइ के अति सूक्ष्म रूपी असंख्य जीवात्मा फिर दुबारा पैदा होते हैं कि जब जब कभी दूसरी सृष्टि रची जानेका समय उपस्थित होता हो—तिस पीछे वे सब जीवात्मा कभी निज निज कर्मों के बशीभूत होके स्थूल शरीराभिमानी आकर होते हैं अर्थात् निज कर्मोंकी प्रेरणा से इह संसार बिनाशमान में आकर स्थूल कलेवर पाते हैं कि जैसा देह सबके देखने में आता है (किन्तु जबतक सूक्ष्म देह रहिता है तबतक जीवात्माका स्वरूप कोई नहीं देखि पाता है—तिससे—चौंसठि मूलश्लोकमें कही गई उपासना की विधिसे कुछ विशेष भी नहीं है क्योंकि जो उस ब्रह्मसे जुदे होकर संसारमें स्थूलकले-वर के अभिमानी बने तिनको उसकी जुदाईसे उसीकी उपासनाका अविकारदर्शित कि जिससे फिरभी व भी उसमें जाकर मिलें—यहाँ—लोहपिण्डका दृष्टांत इससे दिया गया कि सोना आदि सब धातुओंकी संज्ञालोह कहाती है तथा सब धातुओंकी संज्ञा तैजसभी होती है और सांख्यशास्त्र के सिद्धांत में सत्त्वगुण से उत्पन्न जो वस्तु होय तिसको भी तैजस कहते हैं तहां दोनों तैजसका पृथग्भाव जुदाई एकहीमी बराबर

मिताक्षरा सं० प्रायश्चित्तकांड ।

१४१

समभीजाय ॥ ० ॥ एकशंका और भी उत्पन्न होनेलगी कि ब्रह्मके सकाश से उड़ेहुये असंख्यजीवात्मा जबतक सूक्ष्मदेहवाले रहा करते हैं तबतक उन्हें कोइ देखिनहीं पाता क्या उससे भी अतिसूक्ष्म होतेहोगे जो सकानके भरोखेमें सूर्यको किरणोंसे बसरेगा देखि परतें हैं—सुनो जीवात्माके सूक्ष्मदेह यद्यपि बसरेगा तो अपेक्षा बहुत बड़े हैं तो भी मनुष्य के नैर्घोष ईश्वरकी मायारूपी अज्ञानका पर्दा रहा करता है जिससे उसे देखतेहुये भी देखिनहीं सकते हैं अर्थात् असंख्यजीवात्मा यद्यपि आंखोंके आगे उड़ा करते हैं तथापि प्रायश अतिसूक्ष्म तो देखि ही नहीं पाते किन्तु बिरले विज्ञानी जो उनका रूप देखते हैं वे भी कुछ विवेक नहीं कर सकते हैं कि यह कितना बड़ा और मुख्यरूप कैना है क्योंकि प्रायश जीवात्मा सूक्ष्मरूपसे मनुष्यों तथा सबजीवोंके समीपही कुछ अंतरसे बिहार करते फिरते और स्थूलशरीर धारियोंके आचरण से लते रहिते हैं कि हमको किस देहमें प्रवेश करना चाहिये किसमें अधिक सुभीता होगा तहां भी निजकर्मोंके वशीभूत मायाकी प्रेरणासे जिस प्राणीके स्थूलशरीर पर मनका मोह लगाते हैं उसी धोनि के गर्भोंमें (इसीमानसकर्मके प्रभावसे) जाकर जन्मलेते हैं (गर्भोंमें प्रवेश होनेका प्रकार आगे ७० सत्तरके श्लोकमें देखो) जबतक गर्भोंमें प्रवेश नहीं किया तबतक सूक्ष्मरूप उनका ज्ञानी पुरुष को सिर्फ इतना देखि परता है कि आकाशकी ओर अपने सन्मुख दृष्टि धारणसे आकीशी वरोंके तिलमिले दिखाई देते हैं जो सौंपकी कंचुली सज्जन हलुके और लम्बे लच्छेदार अनेक भोंति के तिरछे बंडे उड़ते वा लटकते से प्रतीत होते हैं यदि उनके ऊपर किंचित भी दृष्टि जमाचाही तभी इधरसे उधर चल जाते हैं इसी लाघवता से विवेक नहीं किया जासक्ता है कि यह एक वा अनेक है और कितना परिमाण इनका ठीक है, इसी प्रकार काज पुरुष को पहिंचानेवाले कालपुरुषकी देखते हैं ॥ ६७ ॥

नीचे यह बात कही जायगी कि जिनको अब तक स्थूल देह नहीं

मिला तिनको भी कर्मही के अनुसार देह मिलता है ॥

(अनुपात्तवप्रपात्ते वज्रानां च कर्मनिबन्धनो देहः)

तत्रात्मा हि स्वयं किंचित्कर्म किंचित्स्वभावतः । करोति किंचिदभ्यासादभ्यासार्थं भयात्मकम् ६८ ॥

अर्थः—तहां किंचित्कर्म आत्मा आपही करता है किंचित् स्वभाव से करता है किंचित् अभ्याससे करता है धर्म अर्थ दोनों रूपवाला कर्म=अर्थात्—तहां स्थूल शरीरका कालेवर धारण करनेमें कुछ कुछ कर्मोंको आत्मा आपही अपनी चेतन्यगति

के प्रभावसे करने लगता है—इसका यह दृष्टांत है कि (यद्यपि आत्मा आपत्तोऽन्यथ १ व्यतिरेक २) (मिलाप और जुदाई) इन दोनोंसे निरपेक्ष वेवास्ता सदा रहित है तथापि इस कलेवरकी रियाजत से अन्वय और व्यतिरेक दोनोंका स्वीकार करने लगता है अर्थात् जैसे जन्मलेतेसारे दूधपीलेना यह मिलापनामका अन्वय दर्शित तिससे दर्शित मानिके प्रसन्न होजाना या दूध न मिलने के व्यतिरेक (जुदाई) में दर्शित न मानिके रोने लगना इत्यादि बहुत कामों को समझलेना ऐसे ऐसे कुछ कर्मों को पैदाहोते के साथही आत्मा अपनी चिच्छाक्तिके प्रभावसे स्वतः करनेलगता है क्योंकि उसी चिच्छाक्तिके प्रभाव से पहिले कल्पांतर जन्मों का अनुभव उसकी भावना में भावित बना रहित है तिससे मामूली कामोंका तत्काल बोध होआता है—इनके सिवाय कुछ कुछ ऐसे भी निरपेक्ष कर्मोंको स्वभावही से करने लगता है जिनकर्मोंसे उसका कोईसा प्रयोजनका संबंधनहीं दृष्टांत जैसे चींटीको उठाकर मुहमें रखलेना यामड़ी खाइलेना इत्यादि बालस्वभाव के बहुधा कामों को समझ लेना, तहाँ स्वभावही से करता है अर्थात् बाल चपलताकी स्वतंत्रता से करता है यह अर्थ जानना—इनके सिवाय वही अवस्थाभरमें धर्म तथा अधर्मरूपी दोनों भौतिके बहुधा कर्म पहिले जन्म के अभ्यास में बराहोकर किया करता है ॥ ६८ ॥

ईदृशप्रतिकोक्तिः—अभ्यासके बराहोकर करता है इस बातका प्रमारा अगिला वचन है—तथाच स्मृत्यंतरं=प्रतिजन्मयदभ्यस्तुं दानमध्ययनंतपः तेनैवाभ्यासयोगेन तदेवाभ्यसते पुनः=अर्थात्—हर एक जन्म पहिले से दान करना या वेदविद्यापढ़ना या तपस्या करना इनमें जो कुछ चार बार अभ्यास किया गया हो उसी अभ्यासके संयोगसे वही कर्म इस देहमें भी आकर अभ्यास किया जाता है—इसका दूसरा प्रमारा मनुका वचन है—यथा=हिंसाहिंसे मृदुकूरधमविमवृता नृते यद्यस्मिन् दोषात्सर्वे तत्तस्य स्वयमाविशतः॥ यंतु कर्मणि गायस्मिन्संन्ययुक्तं प्रथमं प्रभुः सतदेव स्वयं भजे सृज्यमानः पुनः पुनः=अर्थात्—जिस समय प्रभु नवी न सृष्टिको उत्पन्न करता है उस समय सब कर्मोंके द्वन्द्व जोड़े जो प्रसिद्ध हैं तिनसे अपनी प्रजा को संयुक्त करता है उसीका दृष्टांत है कि एक हिंसकर्म दूसरे को पीछावेनवाले जैसे सिंह व्याघ्र विहाल आदिका स्वभावसे उत्पन्न है तैसा बहुधा सन्तुष्टियोंमें भी हिंसकर्म होते हैं इससे विपरीत अहिंसकर्म जिनसे किसीको पीछा न पहुँचै यह एक जोड़ा दर्शित इसीतरह मृदुकूर स्वभावके कर्मोंका जोड़ा है किसी प्राणी में कोमलता और किसीमें कठोरता इत्यादि बहुत जोड़े हैं तिनमेंसे जो कुछ कर्म भला या घरा जिन प्राणियोंके लिये पहिली सृष्टिमें परमेश्वर ने बनाकर सौंपाया वही कर्म और वही स्वभाव

उसी योनिके प्राणीमें यहां भी आकर आपही प्रवेश किया करताहै ॥ इसीप्रकार पहिले जिस कार्य में जिस प्राणी को परमेश्वरने नियुक्त किया था वह प्राणी यहां आकरभी वहीकर्म आपसेआप करनेलगताहै किन्तु यहभी एकअभ्यासहीका प्रभाव है जो कर्ता कर्म दोनोंमें घुमिजाताहै ॥ ० ॥ ऊपर सरसठि के श्लोकवाली उत्पत्ति की देखि सुनिकर यहशंका खड़ी होसकतीहै कि ब्रह्मके सकाससे असंख्य जीवात्मा जो फलभूतों से उद्बनेलगे तिनके देह गेह परिजन आदि न होनेसे कोई कर्म करना असंभव है तो फिर कर्मके होने बिना भी कर्महीके वशीभूत होकर क्योंकर स्थूल शरीर पातेहै कि जिसमें जरायुज अण्डज आदि चारमेवभी होतेहैं—इसकासमाधान—यहां अरसठिके श्लोक से दर्शायागया कि अर्थापि उस अवस्था में देह गेह परिजन आदि न होनेसे क्रियाकर्म दोनोंका अभाव है तो भी धर्म अघर्मका आराधन मनके विचारमाधसे होतारहाकरताहै कि जैसासरसठिकी अधिकोक्तिमें मानसकर्मकहाया कि फिरते हुये जीवात्मा जिस प्राणीके स्थूल शरीरपर मनका मोह जसाते है उसी मानसकर्म के प्रभाव से उस योनिमें जातेहैं—फिर उस मिलेहुये शरीरसे किये गये भले बुरे कर्मोंसे अन्यदेह मिलने लगतेहैं—मानस कर्मके प्रभावसे स्थूलदेह मिलनेका प्रमाण अगिला वचन देखीं—यदाहमनु=वाचिके पक्षिभृगतामानसैरत्यजातिताम= अर्थात्—प्राणीसे किन्ने पापकर्मोंके प्रभावसे पक्षी और चौपाये आदि मृगजीवोंकी योनिमें जन्मताहै तथा मनसे किये पापकर्मोंके प्रभावसे चण्डाल आदि अत्यजातिके मनुष्योंमें जन्मताहै—इसप्रकारसे—जीवोंके कर्मोंकी विचित्रतासे क्रिया और दिवा हुआ जरायुज आदिदेह भेदोंका वैचित्र्य होताहै सदेह न करना चाहिये ॥ ६८ ॥

वरानकरी व्यवस्था में फिर भी एक शका खड़ीहोतीहै—क्योंजी जब ऐसाही मानागया तो फिर कैसेब्रह्महीका चिदश जीवसत्ताकी पाये किन्तु ब्रह्मके नित्यत्व आदिधर्म निर्विकल्प हैं तहां यह व्यवहार कैसा कि बिप्राभिय पैदा भया अविका दत्त पैदाभया इसी शकाका समाधान अगिला श्लोक देखीं ॥

(अजस्यशरीरग्रहणं)

निमित्तमक्षर कर्ताबोद्धावद्गुणीवरी । अज शरीरग्रहणात्सजातइतिकीर्त्यते ६९ ॥

अर्थः—निमित्त-अक्षर-कर्ता-बोद्धा-ब्रह्म-शुणी-वशी-अज —शरीर ग्रहणमात्रेणा कारणात् ससवजातः इतिकीर्त्यते—अर्थात्—सत्य जानौ कि आत्मा जो परमात्मा है सो सकल जगत्तत्ता प्रपंच प्रकट करते समय अविद्या साया के समावेश में आकर

(समवाय्य-समवायी) इन दोनोंका निमित्त आपहेताहै इनमें समवायी तो पुरुषका शरीर जानना जो २५ तत्त्वोंके समवाय्यमिलापसे बनताहै १ और समवाय्य उन्हींतत्त्वों को जानना जो पंच महाभूत आदि चौबीस २४ तत्त्व होतेहैं कि जिनका समवाय्यमेल होकर शरीर बनताहै २ तीसरा संचजजीवात्मा जो चौबीसतत्त्वोंके साथमें पचीसवां तत्त्व माना जाता और वही उन चौबीस तत्त्वों का समवाय्य होसकने में निमित्तरूप होताहै ३ तिससे वह आपही इन तीनोंमें तीन विवकारशा है तथापि कार्योंके समूह में वह आपनहीं रहिता है इसीलिये मूल प्रलोकी आदि में निमित्त यह लक्षणा पहिले कहागया क्योंकि जिस हेतुसे इतने लक्षणा उसमें औरभी है कि अक्षर अविनाशी-कर्ता भी वही आपहै क्योंकि बोद्धा होनेसे अर्थात् जीवके उपभोग तथा सुख दुःखोंके हेतु भूत जो अदृष्टनामक परजन्मके कर्मआदि तिनका जानने समझनेवाला भी वही आपहै तथा ब्रह्मस्वरूप है अर्थात् जगत्का रुंढक विस्तार करसकनेवाला भी आपहै किन्तु दूसरे में यह शक्ति नहीं क्योंकि-शुणो है अर्थात् निर्गुण भी नहीं जिससे तीन शुद्धवाली शक्तिरूपी अविद्या प्रकृति जो प्रधान ओं अच्युत नामैसे प्रसिद्ध है सोई उसके अधीन एकदासीहै (तिससे यद्यपि आप निर्गुण भी कहाता है तथापि अपनी शक्तिरूपी मायाके द्वारा सतोशुण आदि तीनों शुद्धाका वास्तेदारहै) तो भी केवल मायाही इस जगत्का नहीं कारणा है क्योंकि-आत्मा आपही अपने बशोभूत स्वतंत्रहै कुछ मायाके बशमें नहीं क्योंकि-वह अजहै उसको उत्पत्ति किसी ओरसे नहीं-यद्यपि ऐसे अजन्माका जन्म साक्षात्कार होना तो नहीं सिद्ध होताहै तथापि सारीशरीरग्रहणा करनेवाली उपाधिसे यह कहा जाताहै कि जन्मलिया ॥ ६६ ॥

६६ अधिकोक्तिः—आत्माको अक्षर अविनाशी जो कहा तिसपर जिज्ञासू तर्क उठाताहै कि अविनाशी होना तो सत्य है इसमें कुछ संदेह नहीं परन्तु-जगत् रूपी प्रपंच के देखनेसे प्रतीत होताहै कि त्रिशुणावती माया जो प्रकृति भी कहातीहै उसी का कर्तृत्व यह जगत् की रचना माननी चाहिये क्योंकि-सत्त्व-रज-तम-इन तीनों शुद्धा का सम स्वरूप वही कहाती और जगत् है उन्हीं तीनों शुद्धा के विकारों का कार्य रूप जो सुख दुःख मोहादि से भराहुआ दिखाता है तिससे यह स्वरचना उसी प्रकृति की दहिरी पर उस ब्रह्म की नहीं जो आप निर्गुण कहाता है—इस जिज्ञासा के भरेहुये सुतर्कको सुनिकर शास्त्रार्थका विज्ञाता शुरुकहिताहै कि ऐसा सवमानो-जगत् का कर्ता वही आपहै क्योंकि जीवोंके भोगने योग्य सुख दुःखोंका हेतुरूप जो अदृष्ट पहिले जन्मोंका कर्मरूपी भाग्य है तिसका जुड़ेजुड़े भेदोंसे बोद्धा जान ले

वाला जतानेवाला वही है जो कर्मविपाक भृशसंहिताआदिके द्वारा छिपी बातोंको भी स्पष्टकर देता है और प्रकृति है सो अचेतना किन्तु विशेषज्ञानसे विहीन है जिसको विशेषज्ञानही नहीं तिसमें ऐसे जगत्की रचना क्योंकर संभव होसके कि जिसजगत् में असंख्य नाम असंख्यरूप असंख्य नानाभाँतिके प्रकाश और नानाभाँतिके विचित्र भोक्ता जीवोंके जुदेजुदे वर्ग भेद मयसमूहभी अगण्य देखिपरते हैं तिनसबहीके जुदेजुदे भोगोंके अनुकूल भोग्य चीजें और सबके लिये उनके जुदे भोगोंके स्थानभेदभी अनेक भाँतिके इत्यादि और बातोंको संसारमें देखिभाल अपनी बुद्धिसे जानना किन्तु ऐसे उप धोरोंसे भरेहुये जगत् की प्रपंच रूपी रचना क्या अचेतन प्रकृति कर सकेगी- तिससे आत्मा आपही जगत् का कर्ता है इसीलिये दूसरा नाम उसका वल्ल अर्थात् जगत् का वृंहक-विस्तार दर्शाने वाला भी है-और निर्गुण यद्यपि कहाता है परन्तु निर्गुण वह नहीं है क्योंकि तीनों गुण की शक्ति वाली अविद्या प्रकृति जो प्रधान आदि नामोंसेभी विख्यात सो उसकेहाथ मुट्ठीमें रहती है तिससेआप निर्गुण कहावै तौभी शक्ति के द्वारा सतोगुण आदि गुणोंके योगवाला कहाता है और इस बातसे भी यह न जानना कि प्रकृति है सोई कारणा दहिरी क्योंकि वह प्रकृति के बश में नहीं आपही अपने बश में स्वतंत्र है और प्रकृति कदाचित् भी उसकी इच्छा बिना अपनी स्वतंत्रता से वैसा कोई दूसरा जगत् नहीं बनाइ सकती है क्योंकि इसका प्रसारा कोई नहीं है और यह भी न समझना चाहिये कि वह प्रकृति यदि शक्तिरूप दहिर चुकी तो फिर वही कर्ता दहिरी क्योंकि शक्तिवाला कारक जो होता है (जैसा प्रवद-वैधीवारा आदि कोई सा औजार समझी) सो नहीं शक्ति कहिलाता किन्तु उसके प्रेरक को शक्ति उसमें आकर प्रभाव दिखलाती है वही शक्ति कहाती है-तिससे आत्मा आपही जगत् का विविध कारणा होता है तथैव अजन्मा होतेहुये भी शरीर धारणा करने साथ के वहाने से उत्पन्न भया कहाता है (अवस्थांतरयोगागतयोगोपपत्तेः गृहस्थोजातइतिवत्)जैसे कोईपुत्र जिसका जन्म तौ बहुतकाल पहिले कभीहोचुका परन्तु दूसरी अवस्था प्राप्तहोने और भाव्यासंप्रदूकरनके हेतु से उसकी उदयरूपी उत्पत्ति दूसरी मानिके गृहस्थो भया कहिने लगते हैं-और भी आत्मा को निर्गुण केवल इसीलिये कहाजाता है कि तीनों गुण के जुदे प्रभाव जैसे सगरी शरीरों में प्रविष्ट होकर अपने लक्षणाजताते हैं तैसा उस आत्मा के साथ नहीं करसके इसीसे वह तीनों गुणसे परे(जुदा) कहाता है- कुछ निर्गुणका यह अर्थ नहीं कि वह किसी गुणका सर्म नहीं जानता ऐसा नहीं कहिसके क्योंकि वह सर्वज्ञ है ॥६८॥

भला किसमार्गसे किनप्रकारोंसे शरीर ग्रहणकरताहै सो सब आगेसमझातेहैं ॥

(शरीरग्रहणप्रकारः)

सर्गादिसंययाऽऽकाशं वायुं ज्योतिर्जलं महीम् सृजत्येकोत्तरगुणास्तथाऽऽत्मेभवन्नपि ७०

अर्थः—बहुजैसे सर्गकी आदिमें आकाश वायु तेज जल वरित्री इनको एकोत्तर गुणा सहित सृजा करताहै तैसे आपसंसारी होतेहुयेभी इनको साधलेता है=अर्थात्—वह आत्मा परब्रह्म जब जगतकी उत्पत्ति किया चाहताहै तब सबसे प्रथम आकाश आदि पाँचों महाभूतरूपी सामग्री प्रघट करताहै कि इसी मशाले से सब संसारवन्ता रहाकरेगा (तहाँ इन पाँचों में पाँचगुणाभी एकोत्तर अधिक संख्यासे निरूपणाआप करदेता है अर्थात्आकाशमें शब्दही एक गुणाहै पवनमें शब्द और स्पर्शभी दो गुणा होतेहैं अग्नि तेजमें शब्द और स्पर्श और रूपभी ये तीन गुणाहोतेहैं जलमें शब्द और स्पर्श और रूप और रसभी ये चारिगुणा होतेहैं वरती मे शब्द स्पर्शरूप रस और गंधभी ये पाँचों गुणाहोतेहैं) जैसे सृष्टिके प्रारंभ समय पाँचों गुणासहित पाँचों महाभूत रूपी इन्हीं तत्वोंको परमात्मा रचिलेता है तैसे जब आपही जीवरूप होकर संसारी शरीरों में बँदना चाहताहै तबहू किसी गर्भमें जाकर अपने रहनेका शरीरवनातेहुये भी अपने रचे पाँचों गुणा सहित पाँच तत्वोंसेही कुछकुछ मशाले निज अनुमानकी योग्यलेकर गर्भमें घुसता और शरीरको बनाता रहाकरताहै ॥ ७० ॥ वरती आदि पाँच महाभूतों से द्योकर शरीर बनता होगा यह उक्तांत अब कहते हैं ॥

(पृथिव्यादीनां शरीरारंभकत्वं)

आहुत्याऽऽप्यावते सूर्यं सूर्याद्दृष्टिरथोपायः । तदन्नरसरूपेण शुक्लत्वमपि गच्छति ७१

अर्थः—आहुतिसे सूर्य तप्त किया जाताहै सूर्यसे दृष्टि और दृष्टिसे ओषधियां होतोहैं वही अन्नरूपसे रसरूप होकर शरीरों में शुक्लरूपको पहुँचैहै=अर्थात्—ऊपर के सत्तर ७० मूलश्लोक में यह कहा गया कि मट्टी जल अग्नि तेज हवा आकाश इन पाँचों मे से कुछ लेकर शरीर बनाता है सो यह कैसे समझ में आवै कि ये चीज क्ठोंकर गर्भके भीतर जाके पहुँचती हैं क्या जीवात्मा आपही होकर लेजाता होगा—येभी जिज्ञासुताकी भीहुई शंकास्वी तर्कनाका समाधान यहां समझातेहैं कि ढोड़ कर लेजाना कुछ आवश्यक नहीं बल्कि ये सब चीजें माता के शरीरही भीतर सदा मौजूद रहती और पिताके वीर्यद्वारा भी दूसरे शरीरसे निकसिके उसगर्भमें सब चीजें

महा पंच भूतों) को लेकर उनके साथकरा चिदातु जो आपही चैतन्य एक उद्योति के समान है सो मिलिके सबका एक साथही स्वीकार करलेता है क्योंकि शरीर बनाने की प्रक्रिया में वह प्रभुही समर्थ है तिससे अपने भोगका स्थान बनाने का प्रारम्भ (युगपत्) एकदम करदेता है कुछ पहिले पीछे जोड़ तोड़ शोचने की जरूरत उसको नहीं है यह तात्पर्य ठहिरा ॥ ७१ ॥

७२. अधिकोक्तिः—वात पित्त प्रलेप दुष्ट ग्रन्थ पूय सीरा मूत्र पुरीय गंवरेतांश्च बीजानि इतिस्मृत्यंतरं—अर्थात्—ग्रन्थांतर मे वीर्य रक्त के इतने दोष कहेहैं कि वात पित्त क मूत्र के बेगसे बिगड़ाहो या दुष्ट गाँठ जो बंद कहातो है तिससे या पीव राद हो जानेसे या मृत गृहके समान वात आतोहो जिस पिता के वीर्य या माता के रजोरक्त में तो ये सभी वीर्य अबीज होते हैं अर्थात् इनके योगसे गर्भ नहीं जमता है जिस वीर्य में ये दोष कोइनहीं वही शुद्ध जानों इसीलिये मूल प्रलोकमें योगीचरने शुक्ल शरीरात दोनों के विशुद्ध होनेका संयोग बताया—गर्भ स्थान में गर्भ छपी सकान अपने रहने को जीवात्मा बनाता है यह मूलमें कहि चुके—तिसका प्रमाणा भी शारीरक शास्त्रमें कहा है—अथा—स्त्रीपुंसयोगोनीरजसाभिसंसृष्टशुक्रतत्सगानेव सहभूतात्मनाशुरोप्रच सत्वरजस्तमोभिःसहबाधुनाप्रेर्यमाणां गर्भाशये तिष्ठति—अर्थात्—स्त्री पुरुष के संयुक्त समय धीनि में रजोरक्त से मिला हुआ वीर्य तत्कालही पंच भूतों सहित आत्मा और सत्व रज तम तीनों गुणों करके सहित वायुसे घेर्यमाणा इलाया झुलाया हुआ गर्भाशय के नियत स्थानपर टिकताहै ॥ भला उसगर्भमें रहिकर चिदातुछपी जीवात्मा अपने रहने को सकान किस ढंगसे बनाता है अर्थात् उस में क्या क्या रचना करता है सो अगिले प्रलोकों से कहते हैं ॥ ७२ ॥

(इन्द्रियादिसर्वभावानां समूहशक्त्याभासः)

इन्द्रियाणि मनः प्राणो ज्ञानमायुः सुखं धृतिः । धारणा प्रेरणं दुःखमिच्छा अहंकार एव च ७३

प्रयत्न आकृतिर्वर्णः स्वरदेयो भवभावौ । तस्यैतदात्मजं सर्वमनोदरादिमिच्छतः ७४

अर्थः—अनादेः आदिं इच्छतः (अजन्माके शरीरजन्मको चाहतेही) इन्द्रियां मनः प्राणा ज्ञानः आयुस् सुखं धृतिः धारणा प्रेरणा दुःखं इच्छा अहंकार प्रयत्न आकृति वर्ण स्वर देय भव अभव यह सब उसका आत्मज होताहै—अर्थात्—जिस परमात्मा का जन्म किसी ओर से नहींहै इसीसे अनादि कहा जाताहै कि उसकी आदि जन्म कोई नहीं जानता वही जब जन्म रूपी आदिको चाहताहै तब चाहनाके

रहा करता है उसीसे गर्भका शरीरभी बनजाता वहिक शेष चारों तत्त्वभी उस गर्भ में जितनी चाहीजायगी सो सब स्त्रीके शरीर में अधिकता से मौजूद हैं केवल वीर्यही में इनतत्त्वोंको ढंढनेकी अपेक्षा शेषनहीं क्योंकि पुरुषकावीर्य और स्त्रीकारक्तदोनों मिलकर गर्भका पहिला अंकुरजमताहै सो अगिलेकई श्लोकों में समझिलेना—क-
दाचित्त=यहशंका आरोपित करिजाय कि स्त्रियोंके उदरभीतरजीवात्मा अपनाशरीर जो बनाता है सो यह नबेहुये कामोंका करना बहुत सुगम है कि उसी पहिले शरीर का सशाला लेलेकर अपनाधर बनानेलगा किन्तु जब एक भी स्त्री या पुरुषको शरीर पहिले नहीं थे केवल सूक्ष्म रूपी जीवात्माही असंख्य फिरते होगे तब किसके रक्त और वीर्यसे बनाताहोगा—मुनौ धरतीसे आकाशतक पंचमहाभूतभी पहिले निपटनहीं थे जिस परमात्माने उन पाँचोंकी उत्पत्ति एक साथही अपनी इच्छासे प्रकाश करी तिसको स्त्री पुरुष का एक जोड़ा अपनी इच्छा से उत्पन्न करदेना क्या दुर्घट है कि जिसके द्वारा सब जीवात्मा अपने शरीरों को सुगमतासे बनानेलगे इसके लिये मनु-
स्मृतमें स्त्रायंभूमनुकी उत्पत्ति को देखौ पहिले उसीसे सब सृष्टि पैदा होनेलगी सो भी यह चर्चा केवल मानुयो देहों का होरहा है इसके उपरालू सृष्टिकी दशा पर भी ध्यान करौ कि दीमक आदि लाखों प्रकारको जंतु एक साथही धरतीको फाड़ के उत्पन्न होते हैं वे कहाँ आते हैं क्या उनके भी उत्पन्न माता पिता नीचेबैठे हैं जिससे जीवात्मा को उत्पन्न शरीर धारण करनेकी सुगमता है—उसको सभी दशामें सुगमता है कठिनता उसकोकहींभी नहीं क्योंकि जब सर्वशक्तिमानहै तो फिरचाहै तबचाहै तैसेप्रकार से करसक्ता है उसकोलिये कोई सा एक नियम नहीं कि उसीरीतिसे चले (कर्तुं यत्कर्तुं अन्यथाकर्तुंसमर्थः सर्वेश्वरः) तिससे ऐसी शंका करना कुछ आवश्यक नहींहै—जिनप्रकारोंसे गर्भमें जीवात्माकाम करताहै सो अगिले मूलश्लोकसेदेखौ॥७॥

(जीवात्मनःशरीरधारणं)

स्त्रीपुंसयोस्तुसंयोगेविशुद्धशुक्रशोणिते । पंचधातुनस्पर्पथआदत्तेयुगपत्प्रभुः ७२

अर्थः—स्त्री पुरुष के संयोग समय शुक्रशोणित दोनोंके विशुद्ध होनेमें प्रभुपाँचों धातु को छटा आप एक साथही अंगीकार किया करता है—अर्थात्—मासिक ऋतु कालमें रजोघर्मके नियमोंसे ठीकठीक समयपर स्त्री पुरुष दोनोंका रक्तवीर्य ठीक शुद्धहोय तभी उनका मैयुन होकर यदि रक्तवीर्य दोनोंका संयोग (मिलाप) होयतो तत्कालही जीवात्मा उसमें वैदिके पूर्वोक्त पाँच धातुओंको (अर्थात् धरती आदि

महा पंच भूतों) को लेकर उनके साथछटा चिदात्त जो आपही चैतन्य एक उद्योति के समान है सो मिलिके सबका एक साथही स्वीकार करलेता है क्योंकि शरीर बनाने की प्रक्रिया में वह प्रभुही समर्थ है तिससे अपने भोगका स्थान बनाने का प्रारम्भ (युगापव) एकदम करदेता है कुछ पहिले पीछे जोड़ तोड़ शोचने की प्रक्रिया उसको नहीं है यह तात्पर्य ठहिरा ॥ ७२ ॥

७२. अधिकोक्तिः—वात पित्त श्लेष्म दुष्ट ग्रन्थ पूय सीगा मूत्र पुरीय गंधरेतांश्च बीजानि इतिस्मृत्यंतरं—अर्थात्—ग्रन्थांतर में वीर्य रक्त के इतने दोष कहेहैं कि वात पित्त क्रान्तके वेगसे बिगड़ाहो या दुष्ट गाँठ जो बंद कड़ाती है तिससे या पीव राव हो जानेसे या मूत्र गुह्रके समान वास आतोहो जिस पित्त के वीर्य या माता के रजोरक्त में तो ये सभी वीर्य अजीव होते हैं अर्थात् इनके योगसे गर्भ नहीं जमता है जिस वीर्य में ये दोष कोईनहीं वही शुद्ध जानों इसीलिये मूल प्रलोकमें योगीश्वरने शुक्र शोणित दोनों के विशुद्ध होकेका संयोग वताया—गर्भ स्थान में गर्भ रूपी सकान अपने रहने को, जीवात्मा बनाता है यह मूलमें कहिचुके—तिसका प्रमाणा भी शारीरक शास्त्रमें कहा है—अथा—स्त्रीपुंसयोगोऽनोरजसाभिसंसृष्टशुक्रतत्समावेव सहभूतात्मनायुरोपव सत्त्वजस्तमोभिःसहवायुनप्रेर्यमारां गर्भाशये तित्यति—अर्थात्—जो पुरुष के रेशुन समय योनि में रजोरक्त से मिला हुआ वीर्य तत्कालही पंच भूतों सहित आत्मा और सत्व रज तम तीनों गुणों करके सहित वायुसे प्रेर्यमारा इलाया झुलाया हुआ गर्भाशय के निग्रत स्थानपर टिकताहै ॥ भला उसगर्भमें रहिकर चिदातुल्यपी जीवात्मा अपने रहने को सकान किम दंगसे बनाता है अर्थात् उस में क्या क्या रचना करता है सो अगिले प्रलोकों से कहते हैं ॥ ७२ ॥

(इन्द्रियादिसर्वभावानां समूहशक्त्याभासः)

इन्द्रियाणि मनः प्राणो ज्ञानमायुः सुखं धृतिः । धारणा प्रेरणं दुःखमिच्छा अहंकार एव च ७३

प्रयत्न आकृतिर्वैर्यः स्वरूपो भवामवो । तस्यैतदात्मजं सर्वमनदेरादिमिच्छतः ७४

अर्थः—अनादिः आदि द्रव्यतः (अजन्माके शरीरजन्मको चाहतेही) इन्द्रियों मनः प्राणः ज्ञानः आयुः सुखः धृतिः धारणा प्रेरणा दुःखः इच्छा अहंकार प्रयत्न आकृतिः वर्या स्वरूपः देयः भवः अभवः यहसब उसका आत्मज होताहै—अर्थात्—जिस परमात्मा का जन्म किसी और से नहींहै इसीसे अनादि कहा जाताहै कि उसकी आदि जन्म कोई नहीं जानता वही जब जन्म रूपी आदिको चाहताहै तत्र चाहनाके

सायही किसी गर्भ में प्रवेश करते हुये यह सब सामग्री इंद्रि आदि उसके आत्मा मे ही आपसेआप पैदा होजातीहै-अर्थात्-ज्ञानेन्द्री कर्मेन्द्रीपाँच पाँच और ग्यारहवाँ मन भी जो सबका प्रेरक अधिष्ठाता है- प्राण जो पाँच प्रकार की प्राण वायु जुदी२ शरीर में स्थान भेदसे रहती सो पंच प्राण कहाते हैं नाम उनके प्राण १ अपान २ उदान ३ समान ४ व्यान ५ ये पाँच हैं और- ज्ञान जो पद पदार्थोंका बोध करानेवाली एक वृत्ति कपाल में होतीहै उसके भी अनेक शाखा भेद होते हैं- आयु जोएक प्रकार का काल नियम है कि इतने काल तक यह शरीर बना रहेगा- सुख जो आनंदरूपी एक गुण कहाताहै- धृति यहचित्तकी स्थिरता कहातीहै-धारणा यह प्रज्ञा औरमेधा भी कहातीहै अर्थात् सरस्वती रूपा बुद्धि और उस बुद्धिको धारणा कहते हैं जिसकी सुनी समझी बात कभी न भूलै- प्रेरणा अर्थात् मनका यह धर्महै कि दशों इंद्रियों पर अधिष्ठाता बनके उन्हें उनके जुदे कामों में लगाता या हटाताभी रहताहै मनकी प्रेरणा बिना इंद्रियाँ अपने भले बुरे कामों को नहीं करसक्ती हैं- दुःख यह प्रसिद्धहै कि चित्त को उद्वेग घबड़ाहट दिलानेवाला होताहै यह भी जितना भोग्यहो सो गर्भ के सायही आकर शरीर में प्रवेश होता है-इच्छा यहएक प्रकार की वृत्तिअंतःकरण में रहती है उन बातों या चीजों की चाहना कराती है जो चहीती अबतक नहीं मिलीं और मिलचुकीं तिनकी बारम्बार अधिक मिलनेको चाहना किया करतीहै- अहंकार यह भी अन्तःकरण में रहनेवाला एक वृत्तिहै जो अपने स्वरूप का बोध कराताहै कि मैं इस प्रकारका हूँप्रयत्न यहपुरुषका गुण कहाताहै कि व्यवहारोंकी किया करने में युक्ति शोचिके प्रवृत्तहोय-आकृति यह शरीर का आकार डोलडोल ओछापूरा आदि जो कुछ हो-वर्ण यह देह का रंगहै गौरा काला आदि जो कुछ हो- स्वर यह वाणी का गुण है और गान विद्या में यद्वज ऋषभ गान्धार आदिनाम तथा स्वरूपों का विस्तार है-द्वेय यह वर का स्वरूपहै-भय यह पुत्रपौत्रपशु आदिकी वृद्धि कहाती जितनीउसके प्रारब्धमें आई हो-अभव उससे विपरीतहै कि दास पशु पुत्रादि की समृद्धि न होनीजैसी प्रारब्धमें आई हो-यह सबसामग्री उसीअनादि नित्यआत्मा के शरीर इच्छा करतेहुये आत्म जनित होताहै अर्थात् पहिले जन्म कर्मरूपी बीज से उत्पन्न होता वह सायही आया करताहै ॥ ७३ । ७४ ॥

ये सबचीजें जिस बेरा जिस क्रमसे पैदाहोती हैं सो अगले श्लोकों से दशातेहैं ॥

(संयुक्तशुक्रशोणितस्यकाय परिणतिक्रमः)

प्रथमेमासिसंज्ञेदभूतोधातुविमुच्छितः । मास्यवृद्धितयितुर्तृतीयेनेन्द्रियैर्धृतः ७५
आकाशाद्धातुवत्सौहृदंशब्दश्चोत्रवलादिकम् । वायोश्चस्पृशानचेष्टाव्यूहनरोक्षमेवच ७६
पित्तानुदर्शनपक्तिमोष्णयंरूपप्रकाशिताम् । रसानुरसनशैत्यस्नेहंक्षेदंसमादिवम् ७७
भुर्मेघपतथाप्राणैर्गौरवंमूर्तिमेवच । आत्मागृह्णात्यज-सर्वतृतीयैस्पन्दतेततः ७८

अर्थः—गर्भके पहिले महीनाभर (छठा धातु रूपी चेतन जीवात्मा) आप धातु विमुच्छित (अर्थात् पृथिवी आदि पाँच धातुओंमें दूध पानीकी तरह परस्पर मिला) होके अच्छा क्षौद्र भूत अर्थात् गीलाही ढलकमा रहाकरताहै कड़ापनको नहीं पकड़ता फिर—दूसरे महीना में अर्बुद होजाताहै अर्थात् कुछकठिन कुछ कोमल मांसकी पिण्डोरूप कीलसी होजाती है—तीसरे महीने में अंग और इन्द्रियों से भी युक्त होता है (अर्थात् धड़के सिवाय सड़ और चारोहाथ पैरों के चिह्न मात्र येही पाँच अंग उपजि आते और इन्द्रियोंके आकारकेवल गर्भके भीतरसे उभरनेमात्र लगतेहैं तिनका द्यौरा अगिले श्लोक से समझो ॥७५॥ (आत्मागृह्णाति)आत्मा ग्रहण करताहै यह अठत्तिके श्लोक वाला पद सबके साथ समझतेरहिनाकिच इसीतीसरे मासमें इतने काम होतेहैं—आकाशधातुके ढलुकापन प्रभावसेगर्भमें लाघव ढलुकापन पुर्तुत्तत्पन्न होतीहै और उसी आकाश के प्रभावसे सूक्ष्मता भी होतीहै अर्थात् अंगोंका भूषापन दूर होके सफाई प्राप्त होती और वारीकी और कान की इन्द्री का श्रोत्र और उसी इन्द्री का भोगरूपी शब्द गूणा भी और बल आदि भी गर्भ में आजाते हैं—वायु तत्त्व रूपी धातुके प्रभाव से स्पर्शन इन्द्री अर्थात् खाल और चलाफिरो आदि को चेष्टा और व्यूहन अर्थात् अंगोंका विविध भाँतिसे पसारना समेटना आदि यह भी पवनके प्रभाव से और उसीसे रौक्ष्य सूखापन खर्दरापन आदि और चकारके ध्वन्यर्थ कारके उसी पवन से स्पर्श गूणा भी पैदा होताहै जो स्पर्शन इन्द्रीका भोगहै ॥ ७६ ॥ अग्नि धातुका तेज पित्तरूपी जो शरीरों में रहा करता है तिसके प्रभाव से दर्शन अर्थात् नेत्रकी दृष्टी पैदा होती और पक्ति अर्थात् खायेहुये अन्न का पचना किन्तु पचाने वाली एक शक्ति और उष्णाता अर्थात् अंगोंके छूनेसे गरमी मालूम होना तथा रूप सुन्दर असुन्दर आदि और प्रकाशिता अर्थात् चमक दमक तथा संताप क्रोध आदि भी अग्निही के प्रभावसे—सर्व रस अर्थात् जल धातुके प्रभावसे रसन अर्थात् रसनेन्द्री जिसका जीभमें निवासहै सो और रसन नामका कफभी जो जीभकी जड़कीनीचे सदा

रहिकर भोजनका स्वाद बताया करता है और उसी जल धातुसे अंगोंमें शैत्य वंडापन और स्नेह जोवसाआदि चिकनाई देहके भीतर हुआ करती है तथैव चिकनापन जो देह केऊपर ठरकीलीखाल होजाती है और उसी जल धातुसे समार्दवक्लोदं अर्थात्को-सलतासहित गीलापन भी इसी तीसरे मासमें उत्पन्नहोताहै ॥ ७७ ॥ एवं भूमि धातु के प्रभावसे गर्भ के भीतर तरह तरह के गन्ध तथा घ्राण जो संघनेवालीइन्द्री नाकमें रहिती है तथा गौरव अर्थात् चूतर आदि कुछ अंगों का विशिष्ट भारापन तथा मूर्ति अर्थात् कठिनता कडापन और देहका आकार ढोल भी इसी तीसरे मासमें यह सब आत्मा आपही ग्रहण करताहै अजन्मा होतेहुये भी-तत्तत्स्पंदते अर्थात् तिससे आगे चौथे मासमें कुछ कुछ हिलताचलता है ॥ ७८ ॥=७५ । ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

७५ अर्थकोक्तिः—पचहत्तरिका प्रलोक देखी मांसकी पिण्डी भी होजाती कही तहाँ यह सिद्धांत नहीं है कि दूसरा महीना लगतेसार एकही दिन में पिण्डी बनि जायगी अर्थात् क्रमक्रम से तीसदिन में सूखतेसूखते कठिनताको पहुँचती है—यदाह सुयुतः=द्वितीयेभीतोयानिलैरभिपच्यमानो भूतसंघातोघनोजायते=अर्थात्—सुयु तने कहाहै कि दूसरे महीनेमें नारीके पेटमें रहने वाले ठड़े गरम दो भाँति के पवनों के भूकोरे लगिलगि पकता सूखताहुआ पूर्वोक्त महाभूतोंका ढलकसा समूह क्रमक्रमसे कडापन पकड़ लेताहै(दो तरहका वायु कहा तिसका यह तात्पर्यहै कि नारीके उदर में वात पित्त कफ तीनों जो रहिते हैं तिनमें पित्तहै अग्निका रूप और कफ जलका रूप वंडा होता है तहाँ वातजब कफकेसाथ मिलाप करताहै तभी दण्डा और अग्नि रूपी पित्तसे मिलापकरताहै तब गरम होजाताहै तिसके दोनोंभाँति के ठड़े गरम भू-कोरे लगने से गर्भगाढा होजाकर पिण्डीबनतोहै) इसी हेतुसे वात पित्त कफ तीनों उसी गर्भ को मजबूत करनेवाली सहायक ढहरेइसकाप्रसाराभी अगिलात्रचन देखी= यदाह भावार्थः=भूतपित्तकफैस्तत्स्थैः पच्यमानोद्वितीयके कललस्यमहाभूत समुदा योघनेभवेत्=अर्थात्—गर्भस्थानमें रहनेवाले वात पित्त कफोंकारके पचायासुखाया हुआ महाभूतों का समुदाय कलल में बैठिके घनरूप अर्थात् मांसकाअवृंद होजाता है इसी बातसे यहभी तात्पर्य ढहिरा कि दूसरे महीनामें जब गाढाहोकर पिण्डबंनने लगता है तभीउसपर (कलल) चमड़ा तल्य जालीसी होजाती जो जरायुभी कहातीहै उसीमेंबंधा लपिटा गर्भ आठ नोमहीनेतक सिद्धहोतारहिता औरउसीकललसेबचाफंसा जन्मलेताहै=तीसरेमहीनाकी व्यवस्था जो कहीगई तिसकेलिये एकदूसरादृष्टान्तभी यहाँपर शोचना चाहिये कि जैसे हींग सोति आदि सब द्रव्योंमें शराहाते और खाने

लगाने से मालूम देते हैं कि सूत्र पटकाइ देना इकारले आता पचा उठरना वा उसराना देहकी पोद्दा हरिकर देना आदि बुद्धिमानों से पहिंचाने जाते हैं उसी प्रकार आकाश आदि पांचों महाभूतों में गुणा होते और ज्ञान से पहिंचाने जाते हैं कि सब चीजों तथा सब जीवों के देह में उन पांचों का क्या गुणा उपस्थित होता है—तब पहिंचाने के लिये प्रथम उन्हीं पांचों के गुणा कहिजे परते हैं क्योंकि उन्हीं पांचों धातु से शरीर बना रहिरा तो जो जो गुणा धातुओं में होंगे सो सब उनसे बने शरीर में भी आवेंगे जैसा गर्भ के पहिले महीना से लेकर तीसरे महीना में कहिकर समझाया गया तहाँ पच रहतिर आदि प्रतीकों से यद्यपि यह ज्ञाना गया कि आकाश आदि धातुओं के प्रभाव ही से सब लक्षणा गर्भ में आते हैं परन्तु यह न जाना गया कि उन महाभूतों में कुछ आप भी गुणा होते हैं या नहीं—इसी लिये वैद्यक परिभाषा से लेकर पाँचों के पाँच प्रतीक यहाँ स्थापन करते हैं—यथा=सहाभूतानां धातुभूतानां गुणाः=शब्दशब्देन्द्रियवापि छिद्राणि च विवक्त ता विवक्त कथितास्ते गुणा गुणा विचारिभिः ॥ १ ॥ स्पर्शस्त्वग्निन्द्रियं चापिलघुतास्पन्द न्तनोऽचेष्टाः सर्वशरीरस्य बायो रिते गुणाः स्मृताः २ ॥ रूपनेत्रेन्द्रियं पाकः संतापस्तीक्ष्णता तथा घर्षाश्चाजिष्णुताऽमर्यः शैथिल्यं बलं गुणा अमोः ३ ॥ रसो रसेन्द्रियं शैत्यं स्नेहश्च घृणता तथा सर्वद्रवसमूहश्च शुक्रं वारि गुणाः स्मृताः ४ ॥ गंधो घ्रातोन्द्रियं स्थौल्यं कातिर्गौरवं तथा वसुन्धरा गुणाः सतेरादिता गणा वैदिभिः ५ ॥ अर्थात्—विवृत आकाश के गुणा विचारने वालों ने इतने गुणा उसमें कहे हैं कि शब्द, कान की इन्द्रि, देखने अनेक छिद्र, विवक्तता जो मिले अंगों की जुड़ाइ प्रतीत करे जिससे हाइमांस खाल नस नाडी आदि सब मिले और जुड़े भी प्रतीत होय (आकाशाच्छिद्रं श्रोत्रं विवक्ततां सर्व छिद्र समूहां प्रचेति गर्भाय निर्यादोक्तां) १ ॥ स्पर्श और खाल की इन्द्रि, हलुकापन, शरीर का फाकना सर्व शरीर की चेष्टायें इतने वायु के गुणा कहे गये २ ॥ रूप, नेत्र की इन्द्रि जो रूप को देखे, पाक जिससे अन्न पचै या अन्न से उत्पन्न रसादिक धातु पके या शरीर के अंग पके, संताप गरमाइ, तीक्ष्णता खरापन, बर्षा काला पीला लाल आदि आजिष्णुता चमक दमक, अमर्य कोष, शैथिल्य शूरता ये अग्नि के गुणा होते हैं ३ ॥ तथा जल के गुणा इतने कहे गये हैं कि घृणता रस जो रस नामा कफ कहाता है, तथैव रसनेन्द्रि जो जीभ कहाती है, शैत्य ठंडापन जिस किसी अंग में होय, स्नेह चिकनाई जो किसी चीज में या कहीं अंग में भीतर बाहर मौजूद होय, घृणता भारपन जो किसी वस्तु में या देह के किसी अंग में होय, सर्वद्रव समूह अर्थात् समुप्य आदि जीवों के देह में रस रक्त आदि जो कुछ पतरी दाकनी चीजें होती हैं या संसारी फल तरकारी आदि सब चीजों में जो कुछ

अंश पतरा ढरकना होय सो सब जलही का गुण जानना तथा जीवों के देह में जो शुक्र वीर्य होता है सोभी जलका गुण जानना ४ ॥ तथैव धरती के मृत्तिका तत्व में गुणको जानने वालों ने इतने गुण कहे हैं कि गन्ध दोनों भौतिका चाहें सुगन्ध वा दुर्गन्ध होय धारोन्द्री जो गन्धको पहिंचानिसके नाकहैं स्थौल्य जो शरीर या किसी वस्तु में सोटापन देखिपरै काठिन्य कार्पण गोस्व भारापन ये धरती में होते हैं ५ ॥ (जहाँ बातको गुणकहे तहाँ रौक्ष्य भी समझना कि सूखा पन वायु का गुण होता है जैसा अष्टोक्त गर्भापनियतको बचन में देखौ—शौर्याम्यरौक्ष्यापत्तयौप्रायधाजिष्णुता संतापवर्णारूपेन्द्रियाणि तैजसानि इति) यह सब तीसरे महीना में उत्पन्नमात्र होता है अर्थात् इन्हीं बातों का प्रकाश पूरा चौथे मास में जाकर होता है (तस्माच्चतुर्थमासि चलनादावभिप्रायं करोतीति शारीरकेषु) शारीरक शास्त्र में भी यह कहा है कि उस तीसरे से आगे चौथे मास में गर्भ चलने उछलने आदि मध्ये अभिप्राय प्रकट करने लगता है—इसी आदि शब्दसे वे बातें भी समझनी जो ८० अस्सी की अधिकोक्ति में भाव-प्रकाशके शारीरक द्वारा लिखी जायेंगी—इसीलिये योगीश्वर ने अवतरि ७८ मूल श्लोक के अंत में (स्पंदतेततः) यही कहा है कि ततः तीसरे के बाद चौथे मास में फाटने लगता है—इसका विशेष व्योरा अस्सी मूल श्लोक वाली अधिकोक्ति में समझलो ॥ ७५ । ७६ । ७७ । ७८ ॥

तीसरे चौथे दोनों मास की संविसे लेकर आगे गर्भिणीका बर्तावा जैसा चाहिये सो उनासी श्लोक से देखौ ॥

(गर्भिण्याद्विहृदयायाः सदाचारः)

होतदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यं मरणं वापितस्मात्कार्यं त्रिषंस्त्रियाः ७९

अर्थ—द्वी हृदके अप्रदान से गर्भ दोष को पाता है वैरूप्यको या मरणको ही तिससे स्त्रीका प्रियकरना चाहिये—अर्थात्—एक हृदय गर्भ का दूसरा गर्भिणी का दो हृदय सकल होने से गर्भिणी द्विहृदया कहाती है द्विहृदया की लालसा में जिस वस्तुकी चाहना होय तिसका द्वीहृद नाम होता है तिस द्वीहृद को उसकी अभिलाष को अनुकूल यदि अच्छीतरह न देवें तो न देनेसे गर्भ में विरूपता अंगभंग रूपी दोष या निषट मरजानेका दोष जाकर लगता है चाहें पेटके भीतर या बाहर आके मरे तिससे गर्भिणी को जो कुछ प्रिय लागै सो अवश्य करना चाहिये यह करना कुछ तीसरे मासके प्रारम्भसे नहीं बल्कि गर्भ जमनेके समयसे ही जो जो उसकी अभिलाष देखै सो सब साथ ॥ ७६ ॥

७६अधिकोक्तिः—स्यु तने फल हेतु भी दर्शयि=द्विहृदयांनारीं ह्रीहृदिनीमा चक्षते तदभिलयितंदद्यात् वीर्यवर्तीचरणयुयंपुत्रंजनयति=अर्थात्—दो हृदयवाली नारी को दो हृदिनी कहिते हैं उसका अभिलाय किया पदार्थ उसे देवै जिससे बलीऔर बड़ी अवस्था वाले पुत्रको जनती है=तथा=गर्भजमने के समय से लेकर व्यायाम आदि भी न करे यह सुश्रुतमें कहा है =यथा= ततःप्रभृतिव्यायामव्यवायातितर्पणादिवा स्वप्नरात्रि जागरणा शोक भय यानारोहणा वेगधारणा कुक्कुरासन शोर्णात मोक्षणांनि परिहरेत्=अर्थात्—गर्भजमनेके समय से लेकर इतनी बातें न करे, व्यायाम कृशती आदि किसी तरहकी मिहनत बोझ उठाना मार्ग चलना आदिभी समझने, व्यायाम मैथुन कर्म अति खाना पीना जिससे पेट तनै, दिनमें सोना, रात में जागना, शोकमानना या पहिला शोकयादकरना, भयमानना या भयको जगह जाना, धमकीलीसवारी पर चढ़के कहीं जाना, शंका लघुशंका आदि वेगोंका रोकना या भूख प्यास आदि या जिन चीजोंपर इच्छा चले तिनके वेगोंका रोकना, कुक्कुरासन अर्थात् मुर्गाकी बैठक समान घंटे खड़े करके उकलू बैठना इससेभी गर्भकी हानि प्रायश होती है इन सब कामों को निपट त्यागि देवे ॥ ० ॥ यह तर्कना खड़ी होती है कि तत्कालही गर्भका जमना क्योंकर जाना जा सके जिससे आगेकी इन कामोंका त्याग किया जाय तिसकी भी पहिचान सुश्रुत में कही है=यथा=सद्योगृहीतगर्भायाः श्रमोऽग्लानिः पिपासासक्थिसदनंशुक्रशोर्णातयोर्वचवःस्फुरणाचयोनेरित्यादि=अर्थात्—हालहीजिसने गर्भ ग्रहण कियाहो ऐसी स्त्रीके शरीर में तत्काल श्रम थकहरि पसीना आदि चिह्न होने लगतेहैं और मनमें कुछ ग्लानि भी उत्पन्न होती है प्यास भी लगती है हृदयफूटन भी कुछ होती है और वीर्य रक्त ये दोनों मिलके जो भीतर बंधने लगते हैं तिसका भी आहट उसी गर्भिणी को मालूम होता है कि सब ओरसे रक्त खिंचने लगा इसके सिवाय योनिमें पहुँच गया वीर्य फिर बाहर नहीं आता है अर्थात् गर्भ न रहनेको दशा में सर्वदा मैथुन के अंतमें वीर्य उलटके बाहर निकसि आता है तिससेभगका डार और पुरुष की इंद्रो भी लिस जाती है तभी बुद्धिवाद् जानलेता है कि गर्भ रहा या नहो रहा इत्यादि बहुधा और भी विलसणा बातें वैद्यक शास्त्र के शारीरक प्रकाररा में देखो क्योंकि यहाँपर उन बातों का संक्षेपही चर्चा कियागया ॥ ७६ ॥

अब चौथे महीना को आदि लेकर महीनों की व्यवस्था अगिले
श्लोकों से प्रारम्भ करते हैं ॥

(चतुर्थ मासादेः)

स्यैर्येचतुर्थेत्वंगानांपंचमेशोषितोद्भवः । पृष्ठेवल्लस्यवर्णस्यनखरोम्णांचसंभवः ८०

मनश्चेतन्ययुक्तोत्तानाङ्गीस्त्रायुसिरायुतः । सप्तमेचाष्टमेचैवत्वज्जांसस्मृतिमानपि ८१

पुनर्धात्रीपुनर्गर्भमोज्जस्तस्यप्रधावति । अष्टमेमास्यतोगर्भोजातःप्राणैर्वियुज्यते ८२

नवमेदशमेवापिप्रवलयैःसूतिमारुतेः । निःसार्यतेवाण्डवयंत्रच्छिद्रेणसज्जरः ८३

अर्थः—चौथे मास भरमें उन्हीं अणों की स्थिरता होतीहै कि जिन अणों का स-
मूह तीसरे मासमें उत्पन्न होचुका अर्थात् उस महीनामें केवल अंड्र साय उपजे और
इंद्रियों के सूक्ष्म रूप गर्भके भीतरसे उत्पन्न हुयेथे वही सब यहाँ आकर स्थूल हुये.
इससे हलना चलना उठलना आदिभी इस चौथे मासमें होताहै—पाँचवें मास गर्भ
के शरीर में लोह की उत्पत्ति होतीहै—छठे मास बल का वर्णाका तख रोमाँशों का
कुछ कुछ संभव होआताहै (चपुनः) और ॥ ८० ॥ इसी छठे मासमें यह गर्भ मृतके
चेतन्य भाव से चेतना से भी युक्त होता और नाड़ी-स्त्रायुनसे-सिरा. इनसे सातवें में
युत होता हुआ सातवें और आठवें दोनोंही में त्वचा-मांस की सज्जबूती और स्मृति
यादगारी वाजा देजाताहै ॥ ८१ ॥ तहाँ आठवें मासमें उस गर्भका ओजस् अर्थात्
उसके प्राणों का बल स्मृति में आकर अपने को घिरा रुका देख देख फिर धात्री
को फिर गर्भ को प्रकर्ष से दौडता है तिससे आठवें मास में जन्म पाया गर्भप्राणों
से जुदा होजाता है—अर्थात् यहाँ धात्री नाम (धरती और जननी दोनों का
होते हुये भी) धरती को जानना और (ओजस् प्राणों का बल होतेभी) उसी गर्भ
का रूप ओजस् जानना क्योंकि प्राणाबल भी उसीके भीतर होताहै. तिससे खुता-
सा यह अर्थहै कि गर्भ अपनी स्मृति और प्राणों का बल पायके चंचलता से कभी
हारा डूँडता हुआ धरती की ओर भाँकने लगता और वहाँसे चौंकना होकर कभी
फिर गर्भही की तरफ किंतु गर्भ रहने के स्थानही को शीघ्र दौड जाता है इस प्रकार
से बारंवार किलौलें कियाकरता है (दृष्टांत जैसे हालका बछेडाकभी घोड़ीसे दूरभाग
जाता कभी लौटकर माता के पास आजाताहै) परंतु इस चंचलता से यहधोखाभी
मदा लगा रहता है कि धरती की तरफ भाँकते कभी गिर न जाय बल्कि इसी देहमें
घिरला गर्भ जो इसीआठवें मासमेंवाहनिकसआताहै सो जीतानहीं क्योंकि पूरे नौ

सास के काल रूपी शक्ति उसमें नहीं पहुँची (यह व्याख्या यद्यपि ठीक है तथापि अधिकोक्ति में इसीका कुछ और तात्पर्य है सो देखो ॥८२॥ फिर नववे या दश-
वें (यद्वा अपिशब्द के ध्वन्यर्थ से कदाचित् पहिलेही सातवें आठवें) महीना में
अति बली सृति पवनोँके बेगसे प्रेरित गर्भ जरायुमें बँधा हुआ योनि रूपी यन्त्रके छोटे
छिद्रसे बागा की तरह फटाक बाहर निकास जाता है सो भी सज्जर दुसह दुख से
योनि यन्त्र के छोटे छिद्रमें दबाया हुआ (जैसे यन्त्री में तार खिचाकरता है) उबरा
सृति पवन के बलसे फेका हुआ बाहर आता है उस दशामे कि जत्र पूर्वोक्त प्रकारों
से हाथ पाँव नेत्र आदि सब अंग प्रत्यग तथा इन्द्रियों से परिपूर्ण होजाता है ॥ ८३ ॥

८० अधिकोक्तिः—अस्तीइक्ष्वासी योप्रलोकौमे चौथेसेआठवेंतकपाँचमहीनेका
वृत्तांत जो सक्षेप कहागया तिसका ठीकव्योरा समझपानेके लिये यहाँ भावप्रकाश
का शरीरक लिखते हैं=यथाहुर्भविमिया=ब्रतीयेमासि शिरसोहस्तयोः पादयोस्तथा
पिडिकापचसिध्यतिसूक्ष्माद्वाव्यवास्तनोः ॥ सर्वाण्यगान्युपांगानिचतुर्थेऽस्यस्फुटा
निह्रिहृदयव्यक्तभावेनव्यग्रयतेचेतनापिच-तस्माच्चतुर्थेगर्भस्तृतीयावस्तृतिर्वाङ्कति । त-
तोह्रिहृदयायस्याचारीद्वौहृदिनीमता ॥ पचमेमानसययुद्धिश्चाप्यनुवर्द्धते सर्वाण्य
गान्युपांगानिभृशंव्यक्तानिसप्तमे ॥ ओजोयमेसचरतिनातापुत्रोमुहुःक्रमात् तेनतीस्ता
नमुदितौस्यातांजातो नजीवति नजीवत्यस्यमेजातस्तत्रौजोर्नास्थिरयतः तथानैकृत्यभा
गत्वाहीयतेतद्वलिततः=अर्थात्—गर्भके शरीर से तीसरे महीने में सङ्गकी और दो दो
हाथ पैरोंकी ये पाँचपिण्डी अङ्गकी तरह निकलने लगती हैं जो सूक्ष्मवारोक और
छोटी जो आधे आधे अंग प्रतीत होतेहैं ॥ फिर येही सबअंग इसके निजनिज उपांगों
सहित होके चौथे मासमें स्पष्टहोजाते और हृदयभी छातीके भीतर कुछकुछ दिखाई
देनेयोग्यहोआता और चैतन्य चेतनाभी कुछकुछ प्रकाश होनेलगतीहै-इसी हेतुसे इस
चौथेमासमें गर्भ नानावस्तुओंको माताके हृदयद्वारा चाहने लगताहै तभीसे गर्भिणी
नारी दो हृदयवाली होजानेसेद्वौहृदिनी कहातीहै ॥ फिर पाँचवें महीना पूर्वोक्त हृ-
दयके भीतर गर्भकामन उत्पन्न होताहै वहीमन छठेमें जाकर प्रवृत्त होताहै फिर छठे
महीने गर्भके मस्तकमें बुद्धिभी उत्पन्न होतीहै सो आगेको क्रम क्रमसे बढ़ती जातीहै
(इसबुद्धिकी सहेली एक महाचेतनानामसे हृदयकमलमेंभी जीवकेसमोप रहाकरती
है जिसकी अनेक दासीरूप चेतनाये सबदेहमें फैली रहाकरतीहै इसका व्योरा आगे
चलिकी देखना) फिर सातवें मासमें वेही सबअंग और उपांग छोटे अंगभी जो चौथे
मासमें उत्पन्नहोचुके अतिशय व्यक्त खुलासाहोजाते हैं ॥ आठवें में ओजस् खूबचलने

लगता है माता पुत्र दोनों के तरफ फिर फिर बारंबार क्रमसे अर्थात् एकवार माता में फिर एकवार पुत्र में फिर माता में इसी तरह बारंबार ओजस् एकही सो लौटपीट किया करता है तहां दोनों इसी क्रमसे स्नान या मुदित होते रहिते हैं अर्थात् जिस समय जिस की तरफ ओजस् दीङ्गिया वही मुदित प्रसन्न मुहखिलासा होगया किन्तु जिसकी तरफसे ओजस् हीटिया वही स्नान उदास कुम्हिलायेमुख होगया यह तात्पर्य तद्विहा-
 विवेक्तालोक समझेगे—ओजस्की व्याख्या जो कुछ ८२ बयासी मूलश्लोकवाले अर्थ में लिख चुके उसके जोड़ तोड़ पर बुद्धि ठीक जमती है—अत्रोक्त व्याख्या यद्यपि प्राचीन ग्रन्थकारों का लेख है तो भी इसपर बुद्धि न जमने का हेतु केवल यही है कि उन प्राचीनों ने स्पष्ट निराय कुछ नहीं दिया कि ओजस् किसको जानना या वह ओजस् किन कारणों से दो तरफ बौद्धता है—अन्यथा (पुनर्धर्माभ्युपगमसंज्ञास्तस्य प्रभावति) इस बयासीके श्लोक में भी यही अर्थ होता है कि उसगर्भका ओजस् फिर माताको फिर गर्भको बौद्धता है—और—ओजसका लसरा जो शारीरिक व्यवस्था में प्रसिद्ध है ही यही है कि सातवां धातु शुक्रबीज पकने से उसका सारभूत अंतर खिंचिकर ओजस् पैदा होता है वह आठवें दमाध हृदय में रहित है वही सब देह में बल पुष्टि चंचलता रूप रंग चमक दमक चैतन्यता आदि बढ़ाता रहित है उसका पीलावरा कुछ सुपेवी कुछ सुखीलिये होता है वही जीवका आधार है उसका नाश होने में देहनाश होजाता है इत्यादि बहुत बातों का विस्तार इसका लिखना नहीं चाहते हैं संक्षेप यहाँ पर कहा गया ॥ ० ॥ चेतना जो चैतन्य परमात्माका चिदाभास रूपी सकलशक्ति होती है, जिसका थोड़ासा आभास गर्भ में इंद्रियों उत्पन्न होनेके साथही तीसरे मास फिर दृढतासे चौथे मास में आचुकाया उसीका पूरापूरा प्रकाश छठे मास में आकर हुआ सो सब कहा गया (जहाँतहाँ ऊपरके पाठों में देख लो) इस चेतनाका अर्थ यद्यपि ज्ञान और बुद्धि पर भी आरुढ़ होता (बल्कि विशेषकर बुद्धिकानाम भी चेतना कहा जाता है) तथापि जैसा ज्ञान और बुद्धिसे विचार किया जाता है तैसा चेतनाके द्वारा कोई शोचविचारवाला काम नहीं चलता है तिससे यहाँ ज्ञान और बुद्धिसे भी जुड़ी चेतना एक तीसरी शक्ति जाननी—किंतु इस चेतनाके होनेसे शरीरके छोटेबड़े सब अंगों में गरम ठंडागीला सूखानरम कठोरआदि ह्रुद जानेका बोध या कौटा आदि क्षुब्ध जानेका बोधभाव होजाता है पर और किसी शोचविचारकी समर्थ इसमें नहीं है—अर्थात् शीत उष्ण पीडा आदिका बोध इसके द्वारा होजानेसे अनंतर तत्काल उसीबोधका प्रभाव जाकर अंतःकरणमें आययलिया करता है—तहां फिर बुद्धि उसका निराय अपनी शक्तिसे करलेती है कि यह क्या था और

क्या हुआ इसीहेतु यह चेतना कुछ बुद्धि आपनहीं है बुद्धिके आवीन रहा करती है। इसका निवास यद्यपि विशेष कर त्वचामें रहिता है परंतु चेतना एक ही प्रकार की नहीं बल्कि अनेक प्रकारकी होतीहैं सो सब जुदे अंगों तथा इन्द्रियों में रहितहैं और इन्द्रियोंके अपनेअपने जुदे जोज्ञान अथवाकर्म हैं उनकर्मोंकी शक्तिजोहैं सोभी चेतनाओंके स्वरूपभेद जानिलेना (इनसब चेतनाओं की अविद्याता एकसबसेबड़ी चेतना आगे चौरासीकी अधिकोक्तिमें किसी प्रसंगसे दर्शाई जायगी)यहाँ उसकी इन्हीं सब दशियोंका प्रमाण समझलेना चाहिये=यदाहचक्रः=चेतनानामधियानं मनोदेहप्रच सौद्रियः कोशलो मनखा प्रांतर्मलद्रव्यगणोर्विना=अर्थात्=चरकने कहाहै कि सब तरहकी चेतनाओंकानिवासहै सबइन्द्रियोंसहितदेह औरमन भी परन्तुबार औररोमावली और नखोंके निर्जीव अग्रभाग जो काटि फेंकने योग्य होतेहैं तिनमें किसी तरहकी चेतना नहीं और अन्तरमल भी जो शरीर के भीतर बिछा आदि अनेक होतेहैं और भीतर ले द्रवोंके गरा भी जो रसरक्त जल मूत्र कफ पित्तस्तन्य आदि ढरकनी बहिचलने वाली चीजें द्रव कहाती हैं तिनमें भी किसी तरहकी चेतना नहीं होतीहै तिससे इन सबके जुदे गरा समूहोंका छोड़ि इनकेबिना सबइन्द्रियों सहितदेहतथा मनमेंभी चेतनायेंरहा कातीहैं यह जानना—इस वचनकेअर्थयद्यपि बहुतही विस्तारवालेहैं सब नहींलिखे जासकतेहैं परन्तु चरकनेविद्वानोंके समझने योग्य उत्सर्ग और अपवादकी रीतिसेयह वचन कहाहै अर्थात् प्रथम सब ईंद्रियों सहित देह तथा मनकी भी सामान्य विधिसे चेतनाओंका अविद्यान कहा(तिससे बाहर भीतर समस्तदेह समझा गया)उसीमेंदूसरे अद्वासे अपवाद रूपी छूट भी कहिदीहैं कि बालोंका गरा समूह रोमाओंका समूह नखाओंका समूह मल्लोंका समूह द्रवचीजोंका समूह इनसब गणोंको छोड़ि के सब देहमें चेतना रहा करतीहैं (चेतनानां) चेतनाका बहुत्व भी इसी लिये रखाहै कि अंगोंके त्याग भेदसे चेतना बहुत प्रकारोंकी होती है और नखोंके अग्रभागही केवल इसलिये कहे कि उनकाऊपरला भाग जोपूरापूरा सुषे नखहोताहै उसमेंचेतनारहिती है सुई गड़ाकरदेखीं उससे पीछाआदिका बोधदाने लगता और वहीचेतनाका रूपहै॥ तिरासीठके श्लोकमें सूति मारुतकहे सो उसकानामहें जो वायु केवल गर्भका जन्म होतिसमय प्रचल होके कामदेती अर्थात् गर्भको बाहर निकालती यह च्रियोंके पेटमें रहिती है=बासके वेगसम गर्भबाहर आजानेपर ईश्वरकी इच्छासे तत्काल बाहरकी हवासे स्पर्श कियाहुआ पहिले जन्मोंका स्मरण (जो गर्भमें रहितसेवन काताथा सो) भूलिजाता है=यह निरुक्त के अष्टादश भाग में कहाहै=यथा=जात सवायुनास्पृशेन

स्मरति पूर्वजन्ममरणां कर्म च शुभाशुभम्—अर्थात्—पैदाहोके वह वायुसे हुआ गया पहिला जन्म और मरणा और भलेबुरे कर्मों का भी नहीं याद रखता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥
 से उत्पन्न हुये गर्भ के देह में क्या क्या गुण होता है सो सब अगिले परिच्छेद भर में देखना ॥

अथैवमुत्पन्नस्य गर्भस्य देहसत्त्वोपतः शारीरकव्यवस्था विज्ञापकोऽयं परिच्छेदः (११) एकादशः ॥

इस ग्यारहवें परिच्छेद में उत्पन्न हुये गर्भ के देह में सत्त्व से शारीरक व्यवस्था कही जायगी कि उसके देह में भीतर बाहर क्या क्या वस्तु होती है—शारीरक व्यवस्था वही कहती है जो शरीर का सब व्यवस्थापन करे—सत्त्व से इसलिये कहा कि वैद्यक शास्त्र में शारीरक बहुत विस्तार वाला है यहाँ उस का थोड़ा सा लेकर जल्दी मात्र सन्यासी को ससम्भावने ॥

(अगादीनां दर्शनं)

तत्स्योदाक्षरीशशिपदत्वचोधारपत्तिच । पङ्गानिषास्मन्नाचतहपक्षाशतत्रयम् ८४

अक्षरार्थः—उसके छ प्रकार के विभक्त शरीरों को छे त्वचो धारता करती है तथा छे अग भी होते हैं और हाड़ों की संख्या साठ ऊपर तीन सौ ॥ ८४ ॥

अभिप्रायः—इस असरार्थ का अभिप्राय मिताक्षराकार दशतिहें कि उस आत्मा के सिर्फ जरायुज अण्डज वी भेदों के शरीर जितने संसार में होते हैं उन्हीं का यह चर्चा है (अर्थात् स्वेदज उद्भिजों का नहीं) चर्चावाले प्रत्येक जन्मे शरीर भी यद्प्रकारके होते हैं क्योंकि रक्त आदि यदवातुओं को पकानेवाले छे अग्निओं को स्थान छे होते हैं एकही शरीर में तिससे एक शरीर के छ प्रकार माने गये—इस बात का यह व्योरा है कि भोजन किये अन्न का रस पैदा होकर उदर के अग्नि से पाँचके लालरक्त होता है एक इस अग्नि का स्थान दहिंरा १ रक्त अपने ठिकाने को अग्नि से पका हुआ मांस बन जाता है यह दूसरा दहिंरा २ मांस अपने ठिकाना के अग्नि से पका हुआ मेदा हो जाता है तीसरा दहिंरा ३ मेद अपने ठिकाना के अग्नि से पका हुआ द्राव बन जाता है चौथा दहिंरा ४ द्राव अपने अग्नि से पके हुये मज्जा बनती है पाँचवां दहिंरा ५ मज्जा अपने अग्नि से पका हुआ शुक्ल हो जाता है छठामा ६ इस पिछले वात का स्थांतर

कुछ नहीं होता और वही आत्मा का पहला कोश है यही इसप्रकार से छे कोशों की अग्नि के संबंध से शरीरों का छ प्रकार होना समझा गया और अन्न का रस भी यद्यपि सबसे पहला धातु कहाता है जिससे सातधातु गिने जातेहैं परन्तु वह अनियत है तिससे उसकोभी स्थानकी अग्निसे सातवां प्रकार शरीरोंका नहीं माना जासक्ता है इसीसे केवल छे प्रकार ढाहरे—और उन्हीं छे शरीरों को जुदे जुदे पर्व में छे त्वचाये धारणा करतीहैं—फिर कहते हैं कि. रक्त. मांस. मेद. हाड. मज्जा. शुक्र. इन नामोंके छे धातुही आप केलेकेखम्भकी त्वचाओंकीतरह बाहरभीतरके डौलसे परस्पर मिलेहुये दिके हैं और (त्वचा कहते हैं खालको) खालकी तरह तर ऊपर ढांकने का डौल होजानेसे वेही त्वचा ढाहरे (किन्तु त्वचा कोई जुदी नहीं) वेही यद्वातुसूपो त्वचाये शरीर को थाँभीती हैं (सोयह आयुर्वेद में प्रसिद्ध है) तथा उसी शरीरमें छे छंगभी जुदे जुदे होतेहैं अर्थात् दोढाय दोपैर सकशिरकछाती आदि विचलागात्र तथा उसीशरीर में तीन सौ साठ ३६० हाड छोटे बड़े सभी मिलिके होते हैं जिनका व्योरा अगिले प्रलोकमें आवैरा=मिताक्षराकार ने यह व्याख्या कही परन्तु आयुर्वेदका कोईवचन इसमें नहीं प्रमाणा दिया जिस को देखने से संदेह मिटिजाता जो आयुर्वेद से विरुद्ध इसमें मौजूद है ॥ ८४ ॥

८४ अधिकृतिः—मिताक्षरा—कायस्वरूपं विवरावच्चाहृतस्यात्मनोयानि जरायुजां हजशरीराणि तानि प्रत्येकं यत्प्रकाराणि रक्तादि यद्वातुपरिपाकहेतुभूतयड्गिनस्थानयो गित्वेन तथा ह्यन्नरसो जातराग्निना पच्यमानोरक्ततां प्रतिपद्यते रक्तञ्च त्वकोशस्थेनारित नापच्यमानं मांसत्वं मांसं च त्वकोशानलपरिपक्वमेदस्त्वं मेदोपित्वकोशवद्विना पक्वम स्थितां अस्थ्यपित्वकोशप्रियपरिपक्वमज्जात्वं मज्जापित्वकोशपावकपरिपच्यमान प्रचरमधातुतया परिणामते चरमधातोस्तु परिणतिवस्ति तिस्रवात्मनः प्रथमः कोश इत्येव यद्कोशाग्नि यो गित्वा त्वयत्प्रकारत्वं शरीराणां अन्नरससूपस्युत्प्रथमधातोर्नियत त्वान्नतेन प्रकारंतरत्वं तानि च शरीराणि यत्त्वचोवारयति रक्तमांसमेदोस्य मज्जाशुक्रा रत्याः यद्वातवसरंभास्तभत्त्वगिववाह्याभ्यतररूपेणास्थिताः त्वगिवाच्चादकत्वात् च चत् ॥ यत्त्वचोवारयति तदिदमायुर्वेदप्रसिद्धं तथा गानि च यदेवकस्युमचरणायुगलमुत् मांगरात्रिमिति अस्थान्तुयदिसिद्धं शतवयमुपरितनयत्प्रलोकावक्ष्यमाणान्वरातर्च्यमि ति विज्ञानेन चराचार्याः—अर्थ इसका वहीहै जो ऊपर अभिप्रायसे लिखिचुके और मूल प्रलोक में (धोढाशरीराणि-यद्त्वचोधारयति) इसका कोईभद योभीचने नहींखोला कि शरीरोंकेछ प्रकार कैसेहोते या छे त्वचा उनकी कैसेधारणाकरतीहैं इसीसे टीका

कारणैर्अभ्यन्तर इसका नहीं पायाहोगा यद्यपि यह कहिसकते हैं कि मितासरा के सिवायरीका इसके और भी अनेकहैं तिनके रचकोंने अभ्यन्तर पायाहोगा तिसका यहीप्रत्युत्तरहै कि विज्ञानेश्वरने पुरानीरीका सब देखिभालिउनकेधारांश लेकरपोछे मितासराका निर्माण किया है यदि उनमें कोई जुदाआशयहोता तो इसमें भी अवश्य धराजाता किन्तु यड्भांतिके शरीर कहे तिनकी कोई ठीक मोजाँ नहीं मिलती है यहाँपर गर्भ जो पूराहोकर जन्मलैचुका उसकी कायाके भीतर बाहर जो कुछहोताहै सो सब यथाक्रमसे दर्शाना चाहतेहैं यही सब चरक सयुक्त शाङ्गधर भावप्रकाश आदि आयुर्वेदके शारीरक वर्णोंमें विस्तारसे मौजूद हैं तिसके देखने से विरोध इसमें आताहै कि प्रथम रसधानु जो रक्तआदिसबहीकी प्रत्येकसमय वद्धाता रहिताहै तिसको अनियतकहिके सातधातोंकी गिनतीसे निकसिडाला फिर अनपेक्षितअग्निओं के स्थानभेदका प्रमाणमाना तिसते शुक्रकेस्थानवाली सातमी अग्निनकी यहकहिके छोडिदेनापरा कि शुक्र नहींपकता है न उसका कुछ छपांतर होताहै अथार्थसे शुक्र के स्थानपर भी अग्निहोताहै और शुक्र भी पचिकर परिणाम को पाताहै तिसते ओजस की उत्पत्ति होतीहै यह भी एक विरोध दहिरा और शरीरके ऊपर जो खाल इसी नामसे सब से बड़ा आवेद्यन है तिस में सात पतं होने से त्वचा भी सातही गिनी जाती हैं (योगीश्वर ने किसी हेतुसे इन सातोंकी छे त्वचा कही) मितासराने उनसातों का चर्चा निपट छोडिके (यदत्वचो) इसी पदका अर्थ केवल छे धातों के परस्पर पतं मानेहैं कि जैसे कलाके लकड़ में अनेक बकल तर ऊपरहुआ करते हैं यह भी बड़ा विरोध दहिरा कि मुख्य खालों को नहीं माना जिनसे सब शरीर धँसा रहिता है और उनका चर्चा कहीं आगे नहीं आवेगा तिससे (यदत्वचो) इस पदका अर्थ बेही सातखालें माननीचाहिये क्योंकि पाँचके सिवाय ऊपरली वारीक दोखालोंकी एक सानी जिससे सातकी छे ठहिरनेपरभी मुख्य गिनतीमें सातकी सतोरहीं ॥ शारीरक व्यवस्था आयुर्वेद में और अध्यात्म वेदमेंभी होताहै यद्यपि दोनोंके बीच विरलीबात में कुछ अंतर इस हेतुसे होताहै कि अध्यात्म विद्या वाला केवल संसारको त्यागनेके हेतुसे उसका डोल समझनेके लिये शारीरक दर्शाताहै(जैसायहाँ पर योगी पुरुषकी समझाय रहें) आयुर्वेद वाला वैद्योंको इसलिये समझाता है कि शारीरक जानने से रोगी या निरोगी की भीतरले बाहरले सब संशय पहिंचाने जाय जिससे अच्छीतरह चिकित्सा करसकें—तथापि वह अन्तर कुछ अंतर नहीं कहाता किन्तु दोनों शास्त्रका सिद्धांत एक है इसीलिये मितासराकार ने भी (तदिदं आयुर्वेदप्रसिद्धं) यही कहा

कि यह शारीक वृत्तांत वैद्यक शास्त्रमें प्रसिद्ध है अर्थात् आयुर्वेदहीका सहारा लिया
तिसमें किंचित् विरोधरहा=इन्हीं कारणाँसे=आयुर्वेद और अध्यात्मदोनोंके मिलाप
से दूसरा अर्थ जो अविरोधो देखिपरा सो हम लिखतेहैं (अपरोक्षः) तस्ययोदाशरीरा
रिा अर्थात् उस आत्माके शरीर योडा छ प्रकारके स्थान भेद वाले होतेह=इसी अर्थ
के अनुसार शरीरोंके भीतर आत्मा के टिकने योग्य छे स्थान ढुंढने चाहिये जिनमें
जीवात्मा रहा करताहै=तहाँ सबसे मुख्यस्थान हृदय कमलहै=यथा=हृदयपुण्डरीके
रासदृशस्यावधोमुखम् जाग्रतस्तद्विकशतिस्त्रपत्तस्तुनिमीलति आशयस्तत्तुजीवस्य चे
तनास्थानमुत्तमम्=अर्थात्-मनुष्यका हृदय भीतर कमलके आकार नीचेको मुहकिये
लटका होताहै वह जागते समय मुहखोले रहाकरता और सोतेहुये मुहको मींचिलेता
है वही जीवके रहिनेका स्थान प्रधानहै और वही चेतनाके रहिनेकाभी मुख्य स्थान
है (चेतना उसी जीवकी चिच्छायास्वपी प्रधान एकवृत्तिहै कि जैसे ईश्वरकी प्रधान
मायावृत्ति होतीहै वह चेतना भी जीवके समीपही सदा रहिती और सबदेहमें प्रभाव
अपना फैलातीहै कि जैसे राजाकाप्रधान मंत्री उसके निकट रहि के देशभरमें आज्ञा
फैलाताहै) इस बातको ८० अस्सीको अधिकोक्तिमें देखी कि तत्रोक्त सबचेतनाओं
पर अत्रोक्त सबसे बड़ी यही चेतना उनकी अधियाताहै) जीवात्मा का मुख्य स्थान
एक यही हृदय कमल है फिर पाँचस्थान उसके और हैं जो पंचकोश कहे जाते हैं
(कोशभी गुणस्थानही का नाम है) अन्नमयः प्राणमयः मनोमयः विज्ञानमयः आनंद
मयः इनमेंभी आत्मा आपरहिताहै अर्थात् अन्नमय कोश कहिनेसे सातो धातुसहित
सबरा ही स्थूल शरीर समझलेना किंतु अन्नही के विकारसे=रस=रक्त=मांस मेद=झाड़.
मज्जा=शुक्र= ये सातो धातु और इन्हीं सातोँके मिलाप से स्थूल शरीर बनाकरता है
तिसमें जीवात्मा का निवास यह पहिला कोश कहाताहै १ दूसरे प्राणमय कोशका
स्वरूपहै पाँचकर्म इंद्रियोंसहित पचप्राणा वायु जिसमें जीवात्माका निवासहै २ तीसरे
मनोमय कोशकास्वरूपहै अहंकारसहितमनका स्थान जिसमें आत्माकानिवासहै ३
चौथेविज्ञानमयकोशका स्वरूपहै पच ज्ञानेन्द्रियों सहित बुद्धिकीवृत्तिजिसमें विज्ञान
के रूपसे आत्माका निवासहै ४ पाँचमें आनन्दमय कोशका आनन्दही स्वरूप और
स्थूलसूक्ष्म दोनोंशरीरोंसे परे जो कारण शरीरहै तिसमें उसआनन्दका मूलरूप होके
जीवात्मा रहा करताहै ५ छठा हृदय कमल मुख्यस्थान पहिले कहिचुकेहैं ६ सेसे
छे स्थानोंके भेदसे जीवात्मा सब देहमें रहिता है तिससे एकही शरीर में छ प्रकारके
शरीर कहे तो कुछ विरोध बाकी नहींरहा=एव (यद्वचो धारयति) यद् कथन भी

शरीरकी ऊपरली से भीतरली तक त्वचाओं का स्पष्ट है कुछ रक्तादि वातुओं का तात्पर्य इसमें नहीं क्योंकि सब कुछ आगे कहेंगे पर त्वचाओंका चर्चा आगे कहीं भी न आवेगा और इसी जघे इसका कहाजाना भी योग्यया यद्यपि इतना अंतर है कि आयुर्वेद में सर्वत्र पूरी सात खालों का नियमघंटा धोयहै और यहाँ एक न्यून कही तिसका यही तात्पर्यहै कि ऊपरली सेकी एक मानी कुछ इससे दोय नहींहै. इसी प्रकार वैद्यक में अंग भी कुछ अधिकहैं परयुहां छेत्र्योंकोमुख्यजानि (शृङ्गानि) यह कहायाइसी प्रकार आयुर्वेदी शब्दशतं शरीरकमें तीन सौ हाडों का नियम यद्यपि ठीकहै पर यहाँ तीन सौ सादिकहे सो इन सादि अधिकहोनेका हेतुआगे ६० नब्बेकी अधिकोक्तिमें समझना (अपरोऽप्यर्थः) मूलश्लोक देखौ उसीके अन्वय से तीसरा अर्थ ऐसे सिद्धहोता है (तस्योत्पन्नस्यवालस्यः अस्थनांशतत्रयंयद्यधिकंघोडा शरीराग्रायेयद्यद्वातवस्यधारयति तथा यद्वत्त्वचोपि तमेवास्थिपंजरंयद्यद्वातुसहितं धारयतिआवेष्टयतीत्यर्थः सर्वसर्वमिलित्वा यदंगानिशिरः प्रभृतीनितस्यदेहे सिद्ध्यतीत्यभिप्रायः)अर्थात् उसके देहमें तीनसौसादि हाडों कावना एकपंजर जो प्रधानहै ताहि बाकीके छे शरीर धारण करतेहैं अर्थात् (रसःरक्तःमांसःमेदःमज्जाशुक्र) येहीवातुसंघाते रहितहैं किन्तु इनके बिना हाडों का पंजरा नहीं बभिसक्ता. तथा छे खालों भी उसी हाडों के पंजरे वातुओंसहित को लपेटेहुये धारण किये रहितो हैं क्योंकि खालोंसे लपेटे बिनाभी ये सब चीजें कभी न बभिसकें तिससे ऐसे यह सब मिलिके जो देहबना तिसमें छे आठे शिर छातो चारो हाथपैर ॥ ४४ ॥

(अथ नीचे तीनसौ सादि हाडों का द्वयोः समझावेंगे)

(अस्थनांसंस्थितिः)

स्थालोःसहचतुःपाण्डितायैर्विशतिर्नसाः । पाणिपादशलाकाश्चतेपांस्यानचतुष्टयम् ८५

पष्ठपगुलीनांद्विपाण्योर्गुल्फेभुजचतुष्टयम् । चत्वार्यश्लोकास्थानिजंययोस्तावेदयत् ८६

द्वेदेजानुकपेलोरुफलकांसतमुद्गवे । अक्षतालूपक्रुशोणीफलकेवविनिर्दिशेत् ८७

भगास्थ्येकंतयाष्टयेचत्वारिंशच्चपंचच । र्थावापंचदशास्थ्येत्वाज्जत्र्यैरेकंतयाहतुः ८८

तन्मूलेद्वेलकाटाधिगठेनासायनास्थिका । पार्श्वकास्थालकेसाद्धमर्बुदेद्विसप्ततिः ८९

द्वोगलकोकपालनिचत्वारिंशिरसस्तथा । उरस्तदश्लास्थोनिपुरुषस्यास्थिसंग्रहः ९०

अर्थः—स्थालों सहित चौंसठि दांत नख बीस निश्चय जानौ क्योंकि बीस अंगुरियों में होते हैं हाथ पाओं को यलाका भी बीसही अर्थात् बीस अंगुरियोंके नीचे आकर

वेद हाथों तथा पैरों में पांच पांच लंबीसी पतरी बड़ी होती वही शलाकाके आकार होनेसे शलाका कहिलाती हैं जिनमें अंगुरियों की जड़ मिली रहती हैं तिनके स्थान भी चारिही जानों किंतु चारों हाथ पैरोंमें नख और शलाका भी रहते हैं इस गिनती से (शलाका २० नख २० दाँत ३२ दाँतोंके स्थालभो ३२ कुल जोड़िके १०४ एक सौ चारि हाइ हुये) दाँतों के स्थाल अर्थात् थाउले कि जिनमें दाँत गड़े रहितेहें उन के नीचे एक और भी कोसल हाइ छिपा हुआ रहिता है तिससे वृत्तीस के दूने ६४ मानेगये ॥ ८५ ॥ अंगुरियों के साठि हाइ अर्थात् एक अंगुरी में तीन घंटे होते हैं बीसतिया साठि हाइ हुये पाष्पांथों के दो हाइ अर्थात् दो पैरों का पिछला भाग, रंडी पाष्पां कहिलाती हैं तिनमें एक एक हाइ होता है दोहुये शूलफों में चार हाइ अर्थात् सड़ियोंके दाढ़ने बामे एक एक ऊंची गांठि भी होतीहै जिन्ह दिखना-दिखनी भी कहिते हैं ऐसे दो पैरोंके चारि शूल हुये तिनके भी चारि हाइ समुभने चारि हाइ अरजिका नामके अर्थात् दोनों बाहु के पहुँचा तथा भुज दड़ के दो दो हाइ जो अनुमान कुछ कम एक हाथके बराबर हातेहें सब चारि हुये सब चारि हाइ दोनोंगोड में जाँघों तथा कंचोंके होतेहें इस गिनती से (गोड़ोंके अरत्ति ४ बाँहों के अरत्ति ४ दिखनों के ४ सड़ियों के दो हाइ २ अंगुरियोंके ६० साठि कुल जोड़िके ७४ चौदत्तरि हुये तिनमें ऊपरले १०४ जुड़िके सब १७८ एकसौ अठत्तरि हाइ हुये ॥ ८६ ॥ दो दो हाइ इन सातों अंगामे अर्थात् जानू दो गोड़ों के बीचमे घूटों का नाम है जिनमें एक एक परिआ के समान हाइ होता है दो कपोलों के अर्थात् गालों की चौहरि मे दो हाइ होतेहैं दो हाइ ऊरुफलकों के अर्थात् ऊरु सोदी जाँघें तिनके मूल में एक एक फलक जो ढालके समान हाइ होता है दो हाइ दोनों अक्ष बखोरों के जो भुजा की जड़ होतीहै तिसमें एक एक हाइ होताहै दो हाइ अक्ष नामक स्थानके अर्थात् कन-घटीसे नीचे कान आँख दोनोंके बीच एक बड़ी जो कान के समोप हुआ करती है दो हाइ तालुय के स्थानपर जहाँ जीभ की जड़ होतीहै समुभने दो हाइ श्रोणीफलकों के अर्थात् कमर के नीचे चतुरों के ऊपरली कोछी नाम की बड़ीके दुतरफा जो चौड़ापन होता है तिसमें भी दो चौड़े हाइ (ये सब चौदह १४ ठहरे इनमें १७८ ऊपरके जोड़ने से १६२ एकसौ वानवे कुल हुये ॥ ८७ ॥ भग अर्थात् गुदा में एक हाइ तथा पीठिके समस्त पंजरमें पैतालिस ४५ हाइ और ग्रीवा घोंच गले में पदर और दोनों जड़ों में से एक एक अर्थात् कसे और छातीके बीच मे दोनों तरफ जूट होते हैं जो भागामे हंसुलीके हाइ कहिलाते हैं हनु अर्थात् चित्रक नाम टोंडों में एक हाइ

(ये सब चौंसठि हुये-तिनमें १६२ एकसौ बानबे ऊपरके जुड़िकर कुल २५६ दो सौ छप्पन हाड ढहरे ॥ ८८ ॥ उसके मूलमें दो अर्थात् दोड़ीकी जडमें दोहाड और होते हैं-तथा ललाट माथे पर दोहाड-असि नेत्रों के दो हाड-गंड अर्थात् कपोल और अस स्थान दोनों का बीचहें सो गंडस्थल कहाता है दोनों गंडस्थलों के दो हाड समुभने (असस्थान का चिह्न पहिले सत्तासी के प्रलोक में कहि चुके वही जानना) और नासा घनास्थिका कहलाती अर्थात् नाक में एकही हाड घन संज्ञा वाला जिसके पृष्ठार में चारों तरफ छिद्रमार्ग हैं होता है-बदत्तर ७२ हाड दोनों पाँसुओं में होते हैं अर्थात् बाल के नीचे पसुरियों के हाड अपने स्थालों सहित और अपने अर्बुद नामके सहायक हाडों सहित छत्तीस छत्तीस दोनोंतरफ होते हैं (इन छत्तीसमें तीन भाँति कहीं तिससे बारह पसुरी बारह स्थाल बारह अर्बुदढहरे) स्थालोंका अर्थ जैसा पचासीके प्रलोकमें कहा गया तैसा यहाँ भी समुभना (ये सब ८१ इक्क्यासी ढहरे-इनमें दो सौ छप्पन २५६ ऊपर के जुड़िकर कुल ३३७ तीन सौ सैंतीस हाड हुये ॥ ८९ ॥ दो हाड शंख नामके कनपटियाँ कहातीहैं अर्थात् भौंह और कानोंके बीचमें असस्थान से कुछ ऊपर जो पटियासी चौड़ा हाड होता है वही दोनों ओरके दो शंखजानौ-तथा शिरमें चारि कपाल खोपड़ीके ठीकरेसे निकसते हैं-उरस् के सवह अर्थात् छाती से हृदय तक समस्त हाडों की तादाद १७ उवहसंख्यासे होती है-ये सब तेईस ढहरे-इनमें ३३७ तीनसौ सैंतीस ऊपर के जुड़िकर कुल ३६० तीनसौ साठि हाड पुरुष के देह भरमें कहेगये=यद्यपि चिकित्साशास्त्र के शारीरक में तीनिहीसैं हाडों का नियम सर्वथा ठीक और प्रसिद्ध है तथापि यहाँ साठि उपराल कहेगये तिसका यही कारण है कि वैद्यक में वत्तीस दौतही गिनेजाते हैं यहाँ उनके स्थाल भी गिनती किये गये तथा पसुरियों के साथ उनके स्थाल भी गिनती में लेलिये गये इसी तरह और भी कुछ भेदहैं तिससे कुछ दोष वा विरोध नहीं आता है केवल मुख्य प्रयोजन पर दृष्टि राखनी चाँहिये कि संन्यासीको संसार का स्वरूप समुभतातेहैं (अब अगिले प्रलोकों से इंद्रियों को व्यवस्था कही जायगी ॥ ९० ॥

(स्वविषयसहितानिज्ञानेन्द्रियाणि)

गन्धरूपरसस्पर्शशब्दाश्चविषयाः स्मृताः । नासिकालोचनेजिह्वात्वक्श्रोत्रेचेन्द्रियाणि च १ ।

अर्थः—गंध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द-ये पाँचों विषय यथा क्रमसे पाँच इंद्रियों के भोगरूप होते हैं अर्थात्-नासिका-जीभ-नेत्र-त्वचा-कान (इन्हीं इंद्रियोंके द्वारा ये

पांचौ विययपुस्त्य के वंघन हेतु होते हैं क्योंकि इनको ये इन्द्रियांही जुदे जुदे निज निजविययकी जानती पहिंचानती और चाहना कियाकरती हैं और कोइनहीं ॥ ६१ ॥

६१ अधिकोक्तिः—यह सदेह न करना कि इन्द्रियोंकी उत्पत्ति पहिले कहि चुके थे दुबारा यहां क्यों कहिने लगे—क्योंकि वहां पचहत्तर आदि श्लोकों में गर्भका भीतरला प्रसंग था उसमें यह चर्चा किया गया था कि गर्भ के तीसरे महीना में आत्मा आपही सब अंग और इन्द्रियोंको चाहना करिके उत्पन्न करिलेता है तिससे गर्भकी पिंडीमें इन सब चीजोंके अक्षर आपसे आप होअते हैं—और—यहां जो गर्भ पूरा होकर जन्म पानेसे बाहर आया तिसको सब अंगोंका विस्तार द्यौरे वार समु-
भाते हैं कि उसके शरीर में भीतर बाहर क्या क्या बस्तु होती है—सो हाडोंका पिंजरा खाल मांस आदि से बंधा हुआ पहिले चौरासी के श्लोक में दर्शाया तिसकी सब हाडों की व्यवस्था ६० नचवे श्लोक तक समुभाइके यहां उसकी इन्द्रियां भी दो भांतिकी समुभाने लगे क्योंकि इन्द्रियों के होने बिना हाड मांसके पिंजरा से कुछ काम नहीं चलसक्ता ॥ ६१ ॥

(कर्मैन्द्रियाणिच)

हस्तौपायुरुपस्थं च निहापादौ च पंच वै । कर्मैन्द्रियाणि जानीपान्मनश्चैवोभयात्मकम् १२

अर्थः—दोनों हाथ १ गुदा २ लिंग ३ मुख बाराही ४ दोनों पैर ५ ये पांचौ अंग पांच काम जुदे जुदे कानेके हेतुसे पांच कर्मैन्द्रियां कहते हैं और मन भी एक इन्द्रो है सो उभयात्मक जानना ॥ ६२ ॥

६२ अधिकोक्तिः—हाथों का कर्म लेना उठाना आदि प्रसिद्ध है तद्वद् गुदा का काम है बिछा आदिको त्यागना तथा लिंग का काम है आनंद भोगना गर्भ धर देना आदि तथा जीभके उपलक्षणा से मुह की बाराहीका काम है बातकहिना आदि तथा पैरोंका काम है चलना आदि—और मनका रूप है अतः करण में सो उभयात्मक इस हेतुसे कहाता है कि ज्ञानेन्द्री कर्मेन्द्री दोनोंतरहके दशसर्गोंपर प्रभाव अपनाराखता है कि इसकी इच्छासे सब इन्द्रियां अपने कामोंमें लगती हैं इसकी इच्छा बिना सब चुपकी रहती हैं किंतु सबका प्रेरक एक मन है ॥ ६२ ॥

गुहाशयः—यह वार्ता यदि रक्खी कि यहां तक शरीर का आकार हाथ पैर नाक कान आदि इन्द्रियां भी समुभाइ चुके—आगे ६३ तिरानवे से ६६ नित्यानवे तक सात श्लोकों में शरीर के छोटे सोटे अंग वा स्थान भी दर्शावेगे सो किसी क्रम

को साथ (सलिलेवार) नहीं कहें कि जिससे यह जानाजाय पहिले भीतर के फिर बाहर के या पहिले बाहर फिर भीतर के अथवा पहिले ऊंचे ऊपर ले अंगके फिर निचलेके हों सोभीनहीं—अर्थात् केवल अंगों वा स्थानों के नामों को आगा पीछा समुझाने विना कहिते चले जायेंगे—तहां बिरले अंग वा ठिकाणों के नाम दो दोबार भी कहिने में आजायगे तिसका आशय यद्यपि मूलकार और ठीकाकारने भी नहीं खोला तौभी तात्पर्य उसका यही है कि देहके भीतर और बाहर के भेद से दो बार नाम लिया गया इसी का दृष्टान्त जैसे (६३ । ६४) प्रलोकोंमें नाभि शब्द दो बार कहा जायगा तहां एकवार जो पेटके बीच में तुंदी कहलाती है तिसको समुझिलेना और दूसरी बार उसी तोंदी के भीतर जो नाभि कज्जुआ के डौल सम होती है तिसको जानना इसी प्रकार हृदयको दो बार समुझना कि एकवार छातीके बीचमें जो हृदय का ठिकाना है तिसका नाम और दूसरे बार उसी छातीके भीतर जो कमल फूल के डौल सम हृदयका आकार होताहै सो दर्शाया है—इसी प्रकार और भी वृक्क आदि जो दो दो बारकहे जायंतिनको मूलप्रलोकोंके अर्थवाला पाठयहां मिलाकर समुझिलेना॥

(शरीरस्य बाह्याभ्यंतरज्ञानं)

नाभिरोजोगुंशुंक्रंशोणितंशंखकोतथा । मूर्धास्तकंठहृदयंप्राणस्यापतनानिच १३
 वपावस्ताऽवहननंनाभि क्रोमयकृत्त्रिहा । भुव्रांश्चैवृक्कोवस्ति-पुरीषापानमेवच १४
 ग्रामाशयोऽपहृदयंस्थूलान्गुदपवच । उदरं च गुदौ कौष्ठौ विस्तारो यमुवाहृतः १५
 कनीनिकेचाक्षिकृटेश्चुलीकणेषत्रको । कणौ शिखौ भ्रुवौ दंतवेष्टावोष्ठौ ककुंदरे १६
 वंक्षणौ वृषणौ वृक्रौ श्लेष्मसंघातनौस्तनौ । उपलिङ्गास्त्रिजोवाहृजंघोरुर्चर्षिङिका १७
 तालुवरवस्तिशोर्ध्वचिबु रंगलशुंढिके । अवटभ्रैवमेतानि स्थानान्यत्र शरीरेके १८
 भस्तिवर्णचतुष्कंचपद्वस्तहृदयानिच । नवछिद्राणि तान्येव प्राणस्यापतनानिच १९

अर्थः—नाभि-ओजस-गुदा-शुक्र-रक्त-दोनों शंख कनपटी-मूर्धा शिरः अंस दोनों काँचे-कंठ-हृदय-ये अंग उपग्रह हैं और प्राणके भी स्थान हैं—अर्थात्—पंचभ्राणोंमें एक समान वायु जो सर्व शरीरमें फैलतारिइताहै तिसका निवास इन स्थानोंमें अधिकहै॥ ६३॥ फिर भी इसका विस्तार दर्शति है कि—वपा-मेदा-वसा जो मेदमांसकासार एक भाँति की चिकनाई होतीहै—अवहनन-फुफुस कहाताहै—नाभि-यह दुवारा कही जो भीतर बाहर दो जगह के तात्पर्य में समझना—क्रोम-यह फुफुस का दूसरा भेद पुष्कसक-हाताहै—यकृत-यह कालेयक भी कहाताहै—ग्रीवाभौं उसीका दूसरा भेदहै—भुव्रां नाम छोटीपती अंति-वृक्कको अर्थात् वृक्क वृक्क नामोंके दो गोले पेटमें होतेहैं—वस्ति

जो मूतभरा रहिनेका कोश है-पुरीया धान जिसयैली में विष्टा जमा रहिताहै॥६४॥
 आमाशय जिस धैली में भोजन किया अन्न जाकर पहिले पहुँचता है-हृदय जो छाती
 के भीतर कमल का फूलसा आँधे मुखहोता है-स्थूलांत्रण्डे खव(अर्थात् मोरीआंत जो
 गुदाही में होती जो कौंच काछ नामसे प्रसिद्ध है-उदर पेट-गुदीकोषयो अर्थइसका
 अधिकोक्तिमें देखो-यहभी सबउन्हेंछे अंगोंका विस्तारकहा जोचौरासी मूलप्रतोक
 में हाथ पैर सब धड कहेथे(इनमेंभी बहुतेरे उपपङ्ग येसेहैं कि जिनमेंप्राणोंका निवास
 होताहै यहतिरानवेके श्लोकसेसंबंध चलाआताहै-इसवातको ६६ निग्यानवेके श्लोक
 में समझो ६५ ॥ कनीकेदे) दो आँखोंके तारे कनीनिका कहातेहैं २ अक्षिकटभी दो
 होतेहैं जो नाकआँखियोनोंकी संविहें २ शङ्कुली किंतु कर्णशङ्कुलीभीदोनोंकानकी
 दोहोतीहैं अर्थात् कानका वह भारा जिसमेंअंती यत्तेआदिभूयरा छेदिकेलरकावेजाते
 हैं २ कर्णपत्रभी दो होतेहैं अर्थात् कानोंकी निचली ईयिका जोसबसेछोटी तिकोनी
 सीहोती वहकर्णपालीभी कहातीहैं २ कर्णों दोनोंकानभी छिद्रोंविहित सबअग्रा मिल
 केजुदे समझने २ शंख दोनों कनपदियों २ दोनों भोंह २दंतवेखी समझें नीचे ऊपरके २
 ओथी दोनों ओर ऊपर नीचेके २ ककुन्दरे जाँघोंके कूपक दो कुले प्रसिद्ध हैं २ ॥६६॥
 बंशराँ दौसांग सोंकी दो संघिजाननी २ लुयराँ दोनोंआँद २ टुक्की हौ टुक यावक
 नामके दो गोलैजोकफ मांसके बनेहोतेहेपेटमें २(इनका द्यौरा सत्तानवेकी अधिकोक्ति
 में देखो) स्तनीचश्लेष्मसंघातजो अर्थात् दोनों छातीके चिन्न भी कफ मांसके समूह
 से बने होतेहैं २ उपजीभ कौआ काक जो हलक में मांस कील सी लटकती होती
 और जलभी देतीरहति है १ स्फिजों दोनों चूतर २ दोनों भुजा २जंघाओं तथा ऊरु-
 आँमें एकएक पिरिडका अर्थात् छोटीबड़ी चारों जाँघमें सबीला ठौर जो थलकता
 रहिताहै सो पिरिडकाकेनामसे दर्शाया ये सबचारिहोतीहैं ४॥६७॥ तालुदरंअर्थात्
 तालुवेका उदर अवकाश जो मुहमें खाली जगह रहितोहै १बस्ति शीर्ष अर्थात् बस्ति
 जो मूत्राधार कोशहै तिसका शीर्ष ऊपरला भाग जो पेडुके नामसेप्रसिद्ध है १ चिन्नक
 रोंड्री प्रसिद्ध है १ गलशुण्डिका गलसूत्राभी दोही प्रसिद्ध हैं जो गालोंकी भीतरदोनों
 तरफ मांसकी वारीक सँझसी प्रतीतहोती हैं २ अचट गड़हिला अर्थात् मुहके भीतर
 घोंटी जिसमें अन्न उतरिके जाताहै १ इतनेस्थान इसमनुष्यके शरीरमेंहोतेहैं ॥ ६८ ॥
 तिसमेंभी नैवोंमें चारिप्रकार के बर्या काला पीला लाल सुपेद होतेहैं और हाथ पैर
 हृदय येभी तथा नोछेद भी जानने दो कानके दो आँखों के दोनाकके एक एक मुख
 गुवा लिंग इनके ऐसे नौह छिद्र इसी निग्यशरीर में होतेहैं (निग्यत्व का लसरा आगे

फिर उसके नीचे कफका आशय फिर उसके नीचे आमाशय कचे अन्नका टिकाना तिसका डौल चरक्यों कहि रावे कि नाभि और स्तनोंके बीच जो गडहिला देखि परता है उसी के भीतर आमाशय होता है इसको साप भी वाग्भटने यों कही है कि नाभिसे एक विलांद ऊपर और कद से एक विलांद नीचे वही गडहिला प्रत्यक्ष है तिसके भीतर छे अंगुर की चौड़ी थैली होती है बाक्की यही टिकाना हृदय कहाता है ॥

॥ ३ ॥ हृदय की तरहरीमें यकव प्लीहा दोनों रक्तके स्थान हैं इन दोनोंमें मुख्य टिकाना बांधे रक्त रहिता है इसी जगहसे सब देह में पहुँचता है ॥ यकव प्लीहा क्या चीज है सो देखौ ॥ प्लीहा एक भीतर का अंगस्थान है जो रक्तहीसे उत्पन्न होता किन्तु बासी चूचीके नीचे उसका टिकाना जो बातपित्तों के योग से गाढ़ी रक्त की गादिका छीछड़ासा कुछ कोमल कुछ कठोर होता उसमें रक्त भरा रहिता है उसी में रक्त पहुँचाने वाली सिंग नाड़ियों की जड़ गड़ी रहितो है तहां से लेले कर अपनी पोरियों से सब देहमें सँचती रहितो है तिससे देह सुखने नहीं पाता ॥ ऐसेही दूसरा यकव है सो दाहनी चूची के नीचे रहिता और इसमें भी सब लसरा उसी के समान है कि रक्तहीसे उत्पन्न भया रक्तही इसमें रहिता तथा रंजक नानी पित्त भी रहिता जो अग्नि का प्रभाव है उसी पित्तसे रक्ता रंग बदलिके रक्त बन जाता है यह चौथे अंक से देखौ ॥

॥ ४ ॥ खाये पिये अन्नो का रस जो पैदा हो वह यद्यपि सब देहमें फैलता रहिकर देहको सँचता है तोभी उसके रहिने का मुख्य टिकाना हृदय होता है कि जहां एक थाउले में भरा रहिकर सब अंगोंमें जाता है क्योंकि इसको पैदाहोते सार समान नानी पवन ऊपरको खींच पहिले हृदय पास रखदेता है ॥ जब समानसे खींचाहुआ रस यकवके स्थानतकजाता है तहां रहिने वाले रंजकपित्तसे पकायाहुआ लाल रगतिको पाकर वही रक्तकहाने लगता है ॥ देहको सिंचाई यही सुपेद रस अपने जुदे तीर से करता और पूर्वोक्त लालरक्त अपने जुदे प्रकारसे करता है (उसके स्थानपर जानैये यह भी लालहोता है परंतु जो अपनी जुदी सिंचाईवाले कुण्डमें रहिता है तिसका स्थान उससे नीचे उसीके लगमा जानना क्योंकि ऐसे कई टिकाने सब हृदयके समीप ही हैं) सो भी देखौ ॥ हृदयसे बासे को भुंक्ता हुआ प्लोहसे नीचेके टिकाने पर पुष्कल होता है वह पकते हुये रक्तके फोना से वायु मिलिके बनता है इसी में आकर सुपेद रस टिकता है इसी जगह से नाड़ियों के मार्गसे सब देह में जाता और उसीसे चौदकर लाल होनेकेलिये यकव प्लीहमें भी जाता है ॥ इसीका दूसरा भैया रक्त और पवन के योग से अर्थात्

रक्तका फेना और वायुके मितापसे बनता सो दाहनेको भुंक्ता हुआ यक्ष के नीचे होता है उसके नाम कई हैं कालेयक तिलक क्लोम फुफुस इनमें फुफुस नाम प्रधान है (ये फुफुस और पुष्कस दोनों उसी तरह भाता हैं जैसे यक्ष प्लोह दोनों कहाये) इस फुफुसमें जल भरा रहता है उसीमें जल सोंचने वाली सिरा नाड़ियोंके मूल खोर लगे रहते हैं यही ठिकाना पिपासा दूर होनेका कहाता है ॥ इनके नीचे दो गोले हैं तितका व्योरा पाँचवें अंकसे देखीं ॥

॥ ५ ॥ कफ रक्त इन दोनोंका अंतरभूत सार मिलिके दो गोलोंका जोड़ा बनता है सो एक बुद्ध दो नामोंसे कहाता है ये दोनों भी दाहने वामे बराबर में मुकाबिले पर उन्हीं पुष्कस और फुफुस के नीचे पेटमें रहते हैं पेटही का उपश्रंग कहाते और पेट में रहनेवाले मेवो भातु को पुष्ट करते रहते हैं ॥ फिर इनके नीचे पेट में आँत रहा करती है तिनका हिसाब लिखना छोड़ दिया ऐसेही अनेक उपश्रंगोंको विस्तार भय से छोड़िके अंडकोश का थोड़ा व्योरा लिखेंगे वह छठे अंकसे देखीं ॥

॥ ६ ॥ वयरा जो पुरुष की आँड कहाते हैं वे तीन चीज़ मिलिके बनते हैं अर्थात् कफका सार रक्तका सार मेदका सार इन तीन सारों से वीर्य को शरीर में फैलाने बहने वाली सिरा नाड़ियोंके आधार येही दोनों आँड हैं अर्थात् उनके खोर इन्हींमें जड़की तरह लगे जमे हैं पुरुष का पौरुष किंतु इंद्री सहित वीर्य थांभनेवाले ये दोनों आँड हैं ॥ स्त्रीके इतना भेद है कि लिंग आँडोंके बदले योनि होती है वह शंख की नाभिके आकार डौल वाली होती है उसके भीतर शंखहीके से तीन आवर्त फेर होते हैं उसके सबसे भीतरले तीसरे फेरमें (गर्भशय्या) गर्भ ठिकनेका यंत्र रहा करता है ॥ शुक्रा सबही की अर्थात् स्त्री पुरुष नर्पुसकों की एकहीसी सादेचार अश्लु गहिरी होती है उसमें भी तीन फेरे शंखहीके समान हैं डेढ़ डेढ़ अंगुलके अंतर से ॥ हृदय से गुदा तक आशय यद्यपि अनेक हैं पर उनमें से मुख्य मुख्यों के नाम आगे लिखते हैं सातवें अंकसे देखीं ॥

॥ ७ ॥ रक्तका आशय ऊपर कहि चुके क्लोम कफका आशय आमात्रका आशय पाचक पित्तका आशय जो अग्न्याशय भी कहाता है पवनाशय पक्काशय मलाशय मूत्राशय इनके मध्ये इस वचनको भी शोचना (उपर रक्ताशयस्तस्मादग्नेः श्लेष्माशयः स्मृतः आमाशयस्तु तद्वत्तद्वदोदहनाशयः तथा आमाशयाद्वत् पक्काशयाद्वत् मूत्राशयाद्वत् मूत्राशयः) कता एक मित्ती का नाम है जो ग्रहणी

१०७ की अधिकोक्ति में देखना) ये नव छिद्र भी प्राणों का स्थान होते हैं तथैव अहानवे श्लोक से कर्नीनिका आदि यद्वांतक जितने उपग्रह समुभाये गये उनमें भी बहुतेरे स्थानप्राणवायुका निवासस्वरूप होतेहैं-इसबातका विशेषव्यौरा १०२ एकसौ दोकी अधिकोक्तिमें समझना जहाँ मर्मस्थानोंकी व्यवस्था कही जाय ॥ ६६ ॥

६३ अधिकोक्ति—इन्हीं सातश्लोकों में जितनेग्रंथ भीतर बाहरके सिर्फनामोंसे प्रकाश कियेगये उनमें जोभीतरले ग्रंथ हैं तिनका व्यौरा अच्छीतरह तभी जानाजास-
क्ताहै जब यहाँ समस्त शारीरक लिखाजाय और शारीरकहै सो चरक वाग्भट आदि ग्रन्थोंमें बहुतबड़ा विस्तारहै क्योंकि यहाँ लिखनेका अवकाश उसको मिलै-तो भी उन्हीं ग्रन्थोंका संक्षेप चुनिकर थोड़े से वचनमात्र लिखते हैं कि जिनसे एक प्लीहा आदि बिले ध्रुवोंका स्वरूप पहिंचाना जाय ॥

॥ प्र०१ ॥ जीव और चेतनाका मुख्यस्थान हृदय कमलमें होताहै तिनकाव्यौरा चौरासीकी अधिकोक्ति में किसीप्रसंगसे लिख चुके तहां देखो- फिर उसी हृदय में रस कफ रक्त जलआदि जैसे रहितेहैं तिनका व्यौरा आगे संग्रहवचनोंसे देखो उसीमें एकआदि भी समझलेना ॥

॥ द्वि०२ ॥ अथाहुःप्राचीनाः ॥ उग्ररक्ताशयस्तस्मादधःश्लेष्माशयःस्यूतः आमा शयस्तुतदधस्तल्लिंगचरकोऽवदत् ॥ नाभिस्तनान्तरेजंतोराहुरामाशयंबुधाः । नाभे विंतिस्तिमाबंधकंददेशात्पृष्ठशूलम् । उग्रस्तद्विजानीयाच्छेयैतदहृदयंमत्तम् ॥

॥ तृ०३ ॥ यत्तत्प्लीहाचरक्तस्यमुख्यस्थानंतयोःस्थितम् ॥ शोणितोज्जायतेप्लीहा वामतोहृदयादधः रक्तवाहिंसिरासांसमूलंख्यातोमहर्षिभिः ॥ अचोदक्षिणातश्चापि हृदयायकृतःस्थितिःतत्तुरजंकपित्तस्यस्यानैशोणितजंसतम् ॥

॥ च०४ ॥ सर्वदेहचरस्यापिरसस्यहृदयंस्थलम् समानमरुतापूर्वयदयंहृदयेधृतः ॥ य दारसोयक्षयातितप्रचक्रपित्तः रागंपाकंचसंप्राप्यसमवेद्रक्तसंज्ञकः ॥ हृदयाद्वाम तोऽवश्चपुष्कसोरक्तफेनजः ॥ रक्तादनिलसंयुक्तात्कालेयकसमुद्भवः (कालेयकःक्षौ मश्रुत्य) अधस्तदक्षिणोभागेहृदयात्क्षौमतिरिति जलवाहिसिरामूलंक्ष्माच्छादनह न्तमत्तम् (क्षौमःतिलकं•फुःफुसः) ॥

॥ पं०५ ॥ कफशोणितयोःसारदृक्कयोर्युगलंभवेत् तौतुष्यिकरौप्रोक्तौजटस्यस्यमेदसः ॥

॥ य०६ ॥ एयसोभवत्सारात्कफाद्यग्न्यांचमेदसः वीर्यवाहिसिरावापेतोमतोपौरुषाव हो ॥ शंखनाभ्याहतिर्योनिःप्यावतासाचकीतिता तस्यास्त्वतीयेत्वावर्तगर्भशय्याप्रति यिता ॥ शुदस्यमानंसर्वस्यसावंस्याचतुरंशुलम् तत्रस्युर्ध्वल्यस्तिम्र-शंखावर्तनिभास्तुताः ॥

॥ स० ७ ॥ कफाऽऽपित्तवातानामाशयामलमूत्रयोः ॥ पुरुषेभ्योऽधिकप्रचान्धे
नारीणामाशयाच्चयः वरागर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्षाशयांतरे स्तनौ प्रवृद्धोतावेवबुधैः
स्तन्याशयोमतौ ॥ स्तनौ पुंसस्तथानार्याविशेष्यउभयोरस्य यौवनागमनेनार्याः पीवरो
भवतः स्तनौ गर्भवत्याः प्रसूतायास्तावेवसीरपरितौ ॥

॥ अ० ८ ॥ यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः साधुर्यफेनभावंचयद्भूतोऽपि
लभेतसः ॥

॥ नव० ९ ॥ आमाशयाद्वः प्रक्ताशयादूर्ध्वतुयाकला ग्रहणीनामकासैवकथितं पा
चकाशयः ॥ ऊर्ध्वमस्य्याशयोनाभेर्मध्यभागेऽवस्थितः तस्योपरितिलज्ञेयंतद्वः प्र
वनाशयः ॥

॥ दश० १० ॥ पाचकं तिलमांसं स्यात्काठिन्यान्नास्यदीयता ॥ पित्तंपंचात्मकंतच्च
पक्वाऽऽसाशयमध्यगं पंचभूतात्मकत्वेऽप्यतैजसगुणोदयस्य त्यक्तद्रवत्वं पाकादिक
मंगाऽऽनलशब्दितस्य पचत्यर्चं विभजते सारकिञ्चोपृथक्तया तत्रस्यमेव पित्तानां शोयाणा
मध्यनुग्रहसंक्रोतिवलदानेन पाचकं नाम तस्मृतम् ॥

॥ एका० ११ ॥ अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तः पित्तभिन्नगुणैर्युतश्च द्रवंस्तिग्धमद्योगं च पित्तं
बहिरतोऽन्यथा ॥ तस्मात्तेजोमयं पित्तपित्तोऽस्मायः सशक्तिमात्र ॥ वामपाचाश्चित्तनाभेः
किंचित्सोमस्यमंडलस्य तन्मध्येमंडलसोऽयं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः जरायुमानप्रच्छन्नः
काचकोशस्य दीपवत् ॥

॥ द्वा० १२ ॥ जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः सौम्याद्रसानाऽऽवदानो वि
वेक्तुर्नैव शक्यते ॥ नाभोमध्ये शरीरस्य विशेषात्सोममंडलस्य सोममंडलमध्यस्थं विद्यात्सु
र्यस्य मण्डलस्य प्रवीपवत्तत्रगुणास्थितो मध्ये हुताशनः ॥ सूर्यादिविद्यया तित्पुंस्तेजोयुक्तौ
गंभीरतमिः विशेषयति सर्वाणि पल्वलानि सरांसि च तद्वच्छरीरिणा भुक्तं ज्वलनो नाभि
माश्रितः मयखैः पचते क्षिप्रं नानाव्यंजनसंस्कृतम् ॥ (वतेजः समुदायात्मकस्यापि पित्त
स्य तेजोभागीऽग्निरिति अनेनैव कारणात् पित्तमप्यग्निवन्मन्यते ऽतित्तापितायोगोलव
दितिसर्वस्यैव सिद्धांतः) तस्य चक्रेवलारने कियत्सत्तत्तत्तत्तिलल्यते २थे ॥ स्थूलकापेयु
सत्वेयुयवमात्रप्रसारातः ॥ द्रव्यकापेयुसत्वेयुतिलमात्रप्रसारातः ॥ कृमिकोटपतरोयु
वालमात्रोऽवतियते—अर्थात्—ये वारह्यंका एकही वातके जुदे जुदे वारहभेद करिके
धरेगये हे कि इसी क्रमसे अर्थोंके भेद भी जुदे जुदे लिखने और मोलानसे पढ़ने को
सुगमता होय सो सब दूसरे अक्षरोंसे देखी ॥

॥ २ ॥ यहाँ पुराने ऋषिलोगही कहिते हैं कि ॥ हृदय में पहिले रक्तका आशय

कहाती है बाक्त्री इनवचनों का अर्थ लिखना यहां पर आवश्यक नहीं है सातवें चक्रस्थान के श्लोकों पर ध्यान करो ॥ स्त्रियों के तीन आशय और भी पुरुषों से अधिक होते हैं तिनमें एक ती वरिष्ठा जो गर्भ धरने का यंत्र है तिसके रहने का स्थानही गर्भाशय कहाता वह पित्त और पक्वाशय के बीच होता है और दो आशय दो स्तनों के दूधभरे कहाते हैं उसी दशामें कि जब दूधसे भरे किंतु स्तन यद्यपि पुरुष स्त्री दोनों के एकही से होते हैं पर दोनों में जुदाई सिर्फ यही है कि नारी के जीवन अवस्था में बड़े मोठे पुष्ट होके गर्भिणी होनेपर दूधसे भरते हैं ॥

॥ ८ ॥ आमाशय जो बताया गया पहिले उसीमें भोजन किया हुआ आहार प्राणवायु से प्रेरित किया धक्का दिया पहुंचता है पहुंचके उसजघे रहनेवाले क्लेदन कफके जोर से ढीलाहोके फेनसा मोटा मोटाहोजाता है चाहें खट्टा मोटा कटुकआदि कोसाही भोजन किया हो ॥ अब नाभिस्थान के आशयोंका द्यौरा देखौनवने श्रुतसे ॥

॥ ९ ॥ ऊपर सातवें भेदमे आशयोंकी स्थितिका क्रम शोचिके फिर यहदेखी—आमाशयसेनीचे पक्वाशयसे ऊपर दोनोंके बीचमें जो ग्रहणीनामकी कला एकभि-ली है वही पाचकपित्तका आशयनाम टिकानाज्ञानों—पाचकपित्तसे ऊपर अग्निका टिकाना है वह नाभिके बीचों बीच स्थापन होरहा है तिसके ऊपर अग्निके रूपसे तिल रहिता है (तिलकाव्यौरा अगिले भेदोंमें समझलेना) उस अग्निकेनीचे समान वायुका स्थान है वही उस अग्निको प्रचण्डकरता रहिता है जैसे भट्टोकेनीचे धौंकनी लगी रहिकर अपने पवनसे अग्निको बढाती है ॥

(अग्निपित्तनिर्णयः)

दशवैसे वारहवें पाठतक अग्नि और पित्त इन्हीं दोनोंका स्थान और स्वरूपआदि भेदभी दशपि जायेंगे क्योंकि इनके परस्पर वैद्यांको बड़बड़े संदेह और भगइ प्रतीत होते हैं किसी वचनसे पित्त अग्नि दोनों एकहीरूप किसी वचनसे दोनों जुदेजुदे प्रतीत होते हैं तैसा तीनोंपाठके श्लोक जहां लिखेगये सो सबदेखौ तहां यहभी शोचौ कि ये दोनोंवात ठीकही हैं अर्थात् दोनों जुदे हैं परन्तु दोनों एकही रूपसे जुदे हुये हैं तिससे सिद्धांतमें एकही मानेजाते हैं यहवात्ता केवल विद्वानोंके समझने योग्य है कि जैसा जगत् और इन्द्रका परस्पर संबन्ध अकवनीय है तैसा पित्त और अग्निका भी समझें इन्हीं वचनोंके अर्थ नीचे देखौ ॥

॥ १० ॥ पाचक (पकानेवाला) जो पित्त है वह एक तिलके समान है और कहा

हे उसके कड़ापनसे उसको दोयतानहीं अर्थात् वातादि दोषत्रयकेसाथ उसकीगणना नहीं करीजातीहै (इसका यहोतात्पर्य यहैरा कि उसकड्डे तिलको अग्निही जानना) तिलका ठिकाना ऊपर नववैपाठमें शोचौ ॥ पित्तकास्वरूप कफसे भी, पतरा ढरकमा कुछ चिकना भी है परन्तु कफवृंदासुपेदेहै पित्तपीला अति गरमहै यही तीनों दोषमें गिनती होताहै इसीहेतु तिलके कड़ापनसे गीलापनका विशेषरहै ॥ पित्त पंचात्मक पाँचस्वर्णों, वालाहै वहभी एक मुख्यरूपसे आमाशय पकाशयकेबीच रहाकरताहै, यद्यपि पृथिवी आकाश आदि पाँचोभूत मिलेहुयोंकारूप उसकाहै तौ भी उसमें जो अग्निके शराका उदय गरमाई, अधिकहै सो द्रवकेसाथ मिलारहितेही पकानाआदि कर्मसाधन करताहै तिससे अग्नि कहाजाताहै, वहीअन्नको पचाताहै फिर उसकास स्त्रीसार और मेलस्त्री कीट जुदा जुदा करदेता है और आप उसी जघे बैठा बाक्ती दूरस्य चारपित्तोंको बलपहुँचाते रहिकर सहायता देता रहिताहै इसीसे पाचकनाम कहागयाहै ॥ यहपाठ यद्यपि पित्तकी प्रधानता सहित कहागया तौ भी पित्त और अग्नि दोनों जुदे सिद्धहोकर फिर इतमें एकता सिद्धहुई, इसीकानिर्णाय फिर ग्यारह के अंकेसे देखौ ॥

॥ ११ ॥ अग्निमें जुदेतरहके शरा लसराहै पित्तमें जुदे किन्तु पित्तके लसरा ऊपर लिखिचुकेहै कि वह चिकना द्रवरूपहै नीचेको ढरकनेवाला और अग्नि इससे बिपरोतहै अर्थात् छत्तीकडी और ऊपरको ज्वाला पहुँचानेका स्वभाव रखनेवाली॥ इसी जुदाईसे समझना चाहिये कि पित्त ओ (वातपित्त कफकेसाथ गिनाजाता) है सो अग्निहीके तेजसे भरापुरा रहिता और पित्तमें जो गरमीहै सोई शक्तिमती जानै, अब अग्निका ठिकाना दशति हैं कि ॥ नाभिसे किंचित वामेकी भुंक्ताहुआ भीतर एकसोमका सगडल है वह वंदाजानों तिसकेबीच फिर सूर्यका सगडल है वह गरम जानों उसीके भीतर अग्नि स्थापन होरहाहै सो कैसा कि जैसे कांचकी होंडोमें दो-पक छिपा हुआ भी अपना प्रकाश देतरहितहै तैसे यह अग्नि भी एक भित्तोसे सदा हुआ दमकता अपनातेज बाहर फैलाये रहाकरता है ॥ ऊपर दशवां पाठ देखौ उसमें पित्तही को प्रधानता (उसके विकार समय चिकित्सा की सहिमा बढाले के निमित्तही) दीगई थी कि अन्नका पचाना आदि वही करता है वही रेसे कामोंसे अग्नि शब्द के नाम से कहाता है, तिसके निराकरणा पूर्वक अग्निही की प्रधानता रक्तीजायगी बारहवां अंक देखौ ॥

॥ १२ ॥ पेटकी जदराग्निरूप आपही भगवानहै वहीअन्न पचानेवाले द्योकि ईश्वर

सबकुछ काने में समर्थ हैं बड़ी अपने अग्नि रूप की सूक्ष्म तेजीसे रसों को आकर्षण करते हुये जब अन्नको पचाते हैं उस समयकी विलसणा दशा व्यौरवार नहीं विवेचन करी जासक्ती है (क्योंकि पकाते समय कोई भीतर घुसके नहीं देखिपाता है ॥ शरीर की नाभिके भीतर जुदाई के साथ सोमका मंडल है उसी मंडलके बीचमें फिर सूर्यको मंडल जायें (सोम मंडल ठगड़ा • सूर्यमण्डल उसके बीच गर्मस्थान है) तिसमें प्रदीप ज्योतिकी तरह अग्नि बैठा है ॥ जैसे सूर्य आकाशही में बैठाहुआ अपने तेजकी भी किरणों से छोटे बड़े सब तलावोंको जल खींचके सुखाता है उसीतरह छोटेबड़े हर एक शरीरवारी का भोजन किया पदार्थहै सो नाभिमें बैठाहुआ अग्नि अपनी तेजकिरणों से शीघ्रही पचाय देता है चाहें नानाभौतिके शाकादिद्वयजन सहित सिद्ध भोजनहोय या चाहें कोई कठोर कच्ची चीज खाईहो तिसकोभी पचाता है ॥ (पित्त गोला ढरकना द्रव रूपहै • यद्यपि द्रवरूपी एक तेज का समुदाय मिला भुला उसमें होता है तथापि उसके तेजका भार जितनाहोय वही अग्निका तेजहै इसी कारणसे पित्तभी अग्निके तुल्य मानाजाता है जैसे लोहका गोला जब अग्निसे अत्यंत तपाया जाय तब अग्नि के तुल्य होजानेसे अग्निही कहाजाता है यह सबहीका सिद्धांत ठहिरा इसी धोखासे कोई पित्तको अग्नि और कोई अग्निको पित्त जाननेलगतेहैं) उस अग्निका कितना बड़ा रूप है सो आगे लिखते हैं ॥ हाथी आदि जो बड़े मोटे डीलडौल वाले प्राणी होयें तिनमें एक जौकी बराबर अग्नि होता है • मनुष्य आदि छोटे पतरे डीलडौल वालेहैं तिनमें एक तिलकी बराबर अग्नि होती है • कमि कीटपतंग आदि तुच्छ देह वाले जीवों में बार की नोक बराबर अग्नि रहता है ॥ यहाँ तक बारह भेदों में अवि-
कौक्ति परीभई जो ६३ से ६६ तक सात श्लोकों मध्ये लिखोगई ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

(अन्यच्च शरीराभ्यंतरज्ञानं)

सिराज्ञानानि सत्तेवनवक्रोयुसतानिच । धमनीनां शतैस्तु पंचपेशीज्ञानानिच १००

एकोनविंशद्विंशतिपयानवसतानिच । पट्पंचाशच्च जानीत सिराधमनिसंपुताः १०१

अपोललास्तु विज्ञेयाः श्मश्रुकेशाः शरीरिणाम् । सतोरमर्मशतद्वेचसंधिसतेतया १०२

अर्थः—सिरा नामकी नाड़ों जो नाभि से निकसती हैं १०० सातसौ जाननी • तथा स्नायु नामकी नसें जिनसे सब शरीरों के बंधान बंधे रहते हैं सो नौसैं ६०० जाननी • तथा बसनी नामकी नाड़ियों जो नाभि से उत्पन्न होती हैं सब दोसौ २०० जाननी • तथा पेशी नाम सांसकी मुठियों पिंढों सब देहमें ५०० पाँच सौ होती हैं ॥ १०० ॥

हे अथय० उनतीस लाख नौसौ छप्पन २६००६५६ संख्या होती है सब अंगों में सिरा और धमनी नाम की नाडियाँ मिलकर यह जानी ॥ १०१ ॥ औरभी शरीरों में दाढ़ी मूढ़ तथा शिरके बाल मिलकर तीनलाख जानने चाहिये और सबशरीरों में एकसौ सात मर्मस्थान हैं तथा दोसौ संधि मिलाप भी होते हैं ॥ १०२ ॥

१०० अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार इसपर कहते हैं कि नाभि में संबंध रखने वाली सिरायें जो संख्या से चालीस होती हैं उन्ही की बड़ी छोटी अनेक शाखायें बढ़कर सर्व शरीर में फैलती और वात पित्तकफों की भर्ती किया करती हैं वेही सिर्फ चालीस की शाखा वृद्धिसे सातसौ होती हैं—तैसेही अंग प्रत्यंगोंके हाड मांस बंधने वाली नसे नौसे होती—और धमनी जोनाभिसे उत्पन्नहुई चौबीसहोती हैं प्राणादि० चवायुकी बहने वाली तिनकी शाखा अनुशाखावृद्धि होने सेसौहोजाती हैं ॥ १०० ॥ और (२६००६५६)—इतनी संख्या जो कहोगई सोभी सिर्फ नाडियोंकी नहीं किंतु ८४ चौरासी मूल श्लोकसे लेकर यहाँतक जो कुछ अंग प्रत्यंग वर्सानक्रियेगयेतिनके भी सूक्ष्म अंग जो नहीं वर्णन कियेगये सो सब जोड़िके समझनी ॥ १०१ ॥ दोसौ संधि जो बताई सो भी केवल बड़े छोटे हाड हड्डियोंके जोड़वाली संधि जाननी किंतु नाडी सिरा स्नायु आदि के मिलाप वाली संधि अतिशय बहुत होने से अनन्त है तिससे उन की गिनती कुछ नहींकरीजासक्ती है ॥ एकसौसात जो मर्मस्थानकहे तिनका थोडासा व्यौरा यहाँ लिखते हैं क्योंकि देह में मर्मके स्थान कराठ हृदयआदि १०७ के कहेते हैं जिनमें थोडा भी चोट लागने से मरणा होजाय अथवा बहुत षोडा या बहुत दिनके लिये खाद सेवनी परै—यथाहुः प्राचीनाः—सन्निपातः सिरास्नायुसंधिसांसास्थि संभवः अर्माणि ते युतिष्ठति प्राणाः खलु विशेषतः १ सन्नोत्तरगतं संति देहेन र्माणि देहिनाम् तान्प्रे कादशमांसेस्युष्टावस्थिदुसंति हि २ सधीनां विंशतिस्तानि स्नायूनां सप्तविंशतिः चत्वारिंशत्येकंच सिरामर्माणि तत्र ३ (व्यवस्थाचेयां) द्वाविंशतिः स्रक्त्रियुगेता वंत्येव भुज द्वये द्वादशोरसिक्लसीचपृथुदेशे चतुर्दश ग्रीवायासूध्वर्भागेतु सप्तविंशच्चतानि हि ४ (तानि च सर्वाणि पंचधा भवन्ति) सद्यः प्राणाहाराणि स्युर्मर्माण्येकोनविंशतिः १ मर्मदेशाश्च यस्त्रिंशत्स्युः कालांतरमारकाः २ चत्वारिंशच्चत्वारि वैकल्यं जनयति हि ३ मर्मादिक रुजाकारि ४ विशल्यघ्नं चक्रं नतम—अर्थात्—देह में मर्मस्थान वेहैं कि जहाँजहाँ सिराओं का सन्निपात इकट्ठा होय या स्नायुओं का सघात या अनेक संधियाँ मिलके इकट्ठी होयें या मांसका समूह या हाडोंका सन्निपात इकट्ठा होजाय या इन सबही का मिलाप या इनमे से कुछ वस्तुओं का प्रवेश होय क्योंकि उन दिक्तानों में प्राणा

विशेष रहा करते हैं ॥ १ ॥ वे मर्मभी १०७ एकसौ सात हैं इस हिसाब से कि ग्यारह मर्म सांस के ठिकानों पर दृष्टांत जैसे खुदा या चूतर ये उन्हीं ग्यारहमें गिनती हैं तथा हाड़ों में आठ मर्म होते हैं दृष्टांत जैसे कान के समीप कनपटियों के दो हाड़ उन्हीं आठ में गिनती हैं ॥ २ ॥ संधियों में बीस मर्म होते हैं दृष्टांत जैसे मूढ़में कपालों की संधि उन्हीं बीसमें गिनती है तथा स्नायु नाभनसोंमें सत्ताइस मर्म होते हैं दृष्टांत जैसे वस्ति मूत्रकोशहैं सो बारीक खाल और नखोंका संघात एक मर्म है यह उन्हीं सत्ताइस में गिनती है चालीस और इकतालिसहैं सिरामर्म जो सिराओंके मिलापों के स्थलों पर होते हैं दृष्टांत जैसे नाभि सिरामर्म यह उन्हीं इकतालिसमें शामिल है देखो (११ सांसमर्म—८ अस्थिमर्म—२० संधिमर्म—२७ स्नायुमर्म—४१ सिरामर्म) इन सबका जोड़ १०७ एकसौ सात मर्म ठहरे ॥ ३ ॥ (उन्हीं की व्यवस्थासमझो) इनमें से ग्यारह ग्यारह बाईस दोनोंटांगमें इमीतरह बाईस दोनोंबाहुमें और हृदयसे ऊपर तथा दोनों कोख में तीनों जगह के कुल बारह मर्म होते हैं पीठ में चौदह मर्म जानने तथा घाँच और मूडनमें कुल सैंतीस मर्म होते हैं (वही १०७ एकसौ सातवाला जोड़ इसतरह से भी ठहरे) इन सब अंगोंमें जितने जितने होते हैं कहेगये तिनका वह नियम नहीं है कि एक अंगमें एकही प्रकार के मर्म हों किंतु सब अंगों में सबतरह के मिले भुले कुछ सिरा मर्म कुछ सांस मर्म कुछ संधिमर्म आदि जानने ॥ ४ ॥ फिरभी इनके पाँच भेद होते हैं कि) उन्नीस मर्म चोट लगने पर शीघ्रही प्राणाहरनेवाले १ ॥ और तैंतीस मर्मों के ठिकाने ऐसे हैं जो कुछ काल के अंतर से मारने वाले २ ॥ और चवालिस मर्म ऐसे जो थोड़ी भी चोट लगने से विकलता पैदा करते हैं मारते नहीं ३ ॥ और आठ मर्म ऐसे हैं जो चोट लगने से कुछ रोग बिगाड़ उनमें घृसि जाता है ४ ॥ विशल्य इनत्रिकमल—तीन मर्म स्थान विशल्य धन होते हैं कि उनमें घृसा हुआ बारा आदिकोई शस्त्र जब खींच के निकाला जाय तभी तत्काल प्राणाहरें या बिरले के सातदिन के भीतर तक हों (ऐसे पाँच प्रकारों से भी वही १०७ एकसौ सात मर्म ठहरे सब जोड़ देखो) ५ ॥ जो मध्यप्राणाहर कहेगये वे भी सात दिन के भीतर तक हरते और कांतर से मारने वाले पखवारे से ऊपर महीना के अंत तक मारते हैं—इस वार्ता का विस्तार अभी बहुत बड़ा वाक्की है कि किस अंगमें किस ठिकाने पर के अंगुरका लंबा चौड़ा किस प्रकारका मर्म है वह कितने दिनमें मारता है इत्यादि एकसौ सातवार्ते बिस्तार भयसे नहीं लिखी सो वैद्यक शारीरकमें देखना ॥ १० २ ॥ = १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

(रोमणुपिरादीनां रसरक्तादीनांच परिमाण)

रोमणांकोटयस्तुपंचाशच्चतस्रःकोट्यएवच । तस्यपष्टिपालचाःसार्धाःस्वेदायनेःसह १०३
वायवीर्येर्विगण्यतेविभक्ताःपरमाणवः । यद्यप्येकोऽनुवेत्त्येषांभावानांचैवसंस्थितिम् १०४
रसस्यनवविज्ञेयाजलस्यांजलपोदश । सप्तैवतुपुरीषस्यरक्तस्याष्टौप्रकीर्तिताः १०५
पट्टलेष्माणपंचपिणचचत्वारोमूत्रमेवच । वसात्रयोद्धेतुमेदोमज्जेकोऽर्धतुमस्तके १०६
श्लेष्मोजसस्तावेदवेरतसस्तावेदेवतु । इत्येतदस्थिरवंष्मयस्यमोक्षायकल्पतो १०७

अर्थः—रोमाओंकी संख्या चौमन करोड़ साठे सरसठि लाख ५४६७५०००० इतनी होती है अपने स्वेदायनों सहित अर्थात् इसी संख्या में आधे रोमकूप भी जानने कि जिनमें रोमा जसते और जिनके द्वारा पसीना रणकता है ॥ १०३ ॥ ये सब वायवीयों से विभाग किये हुये परमाणुव मिले जाते हैं यद्यपि इन भावोंकी संस्थिति सर्यादा को तुम सब ज्ञयियों में कोई एक जानता भीहो (अर्थात् योगीश्वरनेइस गूढ धारणी से यह तात्पर्य दर्शाया है कि जो कुछ कहा सो सब शास्त्रही अनुसार तुमको समझाया किंतु शरीरोंकी भीतरली दशा नेत्रहाथ आदि इंद्रियोंसे देखेदोखे बिना ठीक नहीं जानी जा सकतीहै तिससे यह प्राणरीक भावोंकी व्यवस्था वाला आशय बहुत गहिरा है इस बातकी तुम सबमें भी बिरलेही समझते होंगे बल्कि जो कोई ऐसा समझता हो वहभी बुद्धिमानों में अग्रणी जानों तिससे यह व्यवस्था बड़े यत्नोसे जाननी चाहिये) इतना समझायेके योगीश्वर फिर कहिने लगे ॥ १०४ ॥ कि अन्नसे उत्पन्न हुये रसकी नौ अंजुरी अपने मुख्य कोश में सर्वदा भरिरहती हैं जानना तथा पिये हुये पक्कजल की दश अंजुरी अपने ठिकानेमें रहती हैं तथा पुरीय विद्या की सात अंजुरी बिना पची हुई सदा रहती हैं तथा आठ अंजुरी रक्तकी-रक्त स्थान में रहती कही जाती हैं ॥ १०५ ॥ कफकी के अंजुरी अपने ठिकाने पर तथा पांचअंजुरी पित्त अपने ठिकानेपर तथा चारि अंजुरी मूत्र अपने ठिकानेपर और वसा तीन अंजुरी और मेद दो अंजुरी और मज्जा एकही अंजुरी निज ठिकाने और आवी अंजुरी मज्जाकी मस्तकमें भी होती है ॥ १०६ ॥ फिर उठी मस्तक में आधो अंजुरी श्लेष्मोजस की अर्थात् कफके सारकी भी होती है और आधो अंजुरी वीर्य की भी (इतिरतत अस्थिरवंष्म) यह ऐसा शरीर जो ८४ चीरासो श्लोक से लेकर यहाँ तक चौबीस श्लोकोंमें हाड मांस खाल आदि जो कुछ दर्शाया गया सो सब अशुद्ध चीजोंके समूह से बनाहुआ अपविषता का खजाना और अस्थिर भी है अर्थात् क्षण भंगुर होनेसे इसके लिये स्थिरताभी कुछ नियत नहीं है-जिसके यहीबुद्धि होतीहै वही शक्ती विज्ञानीहै और वही मोक्षके अर्थयत्न करने में ममर्थ होताहै ॥ १०७ ॥

१०३ अधिकोक्तिः—पूर्वोदितमिराकेशादिसंहितानां सकलशरीरसुखिरादिरोम्णां परमारावः सूक्ष्मसूक्ष्मतररूपाभागाः स्वेदग्रवणसुखिरैः सहचतुःपंचाशत्कोट्यः तथा सप्तोत्तर यष्टिलक्षाः सार्धः पंचाशत्सहस्रसंहिताः वायवीर्यैर्विभक्ताः पवन परमाराभिः पृथक्कृताविगणयन्ते इतिमिताक्षरा=अर्थात्—शरीरके जितने बड़े कंठे भाव जुदेजुदे स-सम्भायेगये सो सब क्या चीज हैं इसका उत्तर कहितेहैं कि वायुके अतिसूक्ष्मभाग जो पवनके परमारा होतेहैं अत्यंत भिंचीसंघों में घुसि जाइसक्ते हैं उन्हींसे पृथिवी आदि के विकार घुसि घुसि जुदे कियेहुये बहुतसे परमाराओंका संघात गिनाजाताहै नैया-यिक सतसे इसकी सिवाय और कुछ नहीं प्रतीत होता है जो कुछ शरीर में दर्शाया गया सिद्धांत इसका यहीहै तिससे ऐसे निःसार शरीरसे मोक्षपाने का प्रयत्न करना है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

यहाँतक थोड़ाथोड़ा संक्षेप शरीरक समझाया गया=इसी शरीरकी परमगति होने का उपाय भी आगले परिच्छेदसे दर्शावेंगे ॥

अथब्रह्मोपासनायांज्ञेयस्यध्येयस्यतत्साधनफलस्य चस्वरूपनिरूपणोपपरिच्छेदः (१२) द्वादशः ॥

इस परिच्छेदमें यह निरूपण कियाजायगा कि योगी पुरुष को क्या जानना और किसका ध्यान किस रीतिसे करना चाहिये और उसकी साधनापूरी करिपानेसे क्या फलहोता है सोभी कहाजायगा ॥

(उपासनीयस्वरूपस्य आत्मनिध्यानं)

दासततिसहस्राणिदृवयावभिनि-सृताः । हिताहितानामनाड्यस्तातांमध्येऽग्निप्रभम् १०८
मंडलंतस्यमध्यस्थआत्मादीपइवाचलः । सन्न्येयस्तंनिदिश्येहपुनराजायतेननु १०९

अर्थः—हिता हिता नामकी नाडियों ७२००० बहत्तर हजार जो हृदयसे मूल तात् निकसीं=अर्थात्—(नाभि से मूल रखने वाली) हृदय समीप से सन्मुख और हर तरफ हृदय की अभिव्यापन करि घेरि के निकसीं किंतु सस्तक तक चली

उस प्रकार से कि जैसे कदम के फूल में सघन केसरों का गुच्छा देखिपराताहै तिनके बीचमें चन्द्रकांतिके समान एकमंडलहै तिसके बीच आत्मा बैठाहै अचल दीपजोति के समान वही ज्ञेय है अर्थात् उसीको ध्यान द्वारा आराधन करना चाहिये तिसको अच्छेजानिके फिकरभी यहांसंसारी देहोंमें आकर नहींजन्मताहै ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

१०८ अधिकोक्तिः—अपरातिस्त्रिनाड्यस्तासामिद्धा पिंगलाख्येडेनाड्यो मध्य दक्षिणा पार्श्वगतेहृदिविपर्यस्तेनासाविवरसंवद्धे प्राणापानायतने सुयुम्नाख्यापुन रूहतीया वंडवन्मध्येत्रह्वरंध्रविनिर्गता तामांनड्रीनांमध्ये मंडलंचंद्रप्रभं तस्मिन्नात्मा निर्वर्तितदीपश्चाचलःप्रकाशमान आस्तेइतिमिताक्षरा=अर्थात्—मिताक्षराकारकहिते है किमूलश्लोक मे कही०२००० बहत्तर हजार नाड्यौंसे उपरालूनाड्यो तीन और हैं० इडा० पिंगला० सुयुम्ना० योगशास्त्र के अनुसार० इनमें इडा बांमे नथुना औरपिंगला दाहने नथुना तक हृदयसे जाकर दोनों छिद्रों में बंधीहै यही दोनों प्राणा अपानदोनों वायुका स्थान हैं और तीसरी सुयुम्ना नाड्यो हृदय से निकसी हुई लाटी के समान सीधो नासाकेबीच होकर कपालमें ब्रह्मरंध्र तक चलीगई० इस सब नाड्यौंके बीच उसी सुयुम्ना की मूलपर एक चंद्रमा के समान उज्ज्वल कान्तिवाला मंडल है तिसमें आत्मा रूपसे परमात्मा विराजमान है अचल जोतिके समान जैसे पवनसे विहीन मंदिर में दीपक निरन्तर एक रस अचल रक्ता हुआ प्रकाश देता है तिसके ध्यान में लगना चाहिये ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इसी ध्यान की युक्ति नीचे ब्यांति हैं ॥

(ध्यानस्यायमुपायः)

ज्ञेयचारण्यकमहंयदादित्यादवाप्तवान् । योगदास्त्रचमत्प्रोक्तज्ञेययोगमभीप्सता ११०

अतन्वविषयंकृत्वामनोबुद्धिस्मृतीन्द्रियम् । ध्येयआत्मास्थितोयोऽतोहृदयेऽपवत्प्रभुः १११

अर्थः—योगको चाहतेहुये पुरुषकारके आरायक जानने योग्यहै जो मैंआदित्य से पावने वाला भया और यागशास्त्रभी मेराहीकहा बनाया ज्ञेय है=अर्थात्—चित्त की रूति को सब ओरसे खींचके हृदयस्थ आत्मामें लगाकर स्थिर करना यहीयोग कहाता है तिस योगकी सिद्धि चाहनेवाले पुरुष को उचितहै कि रहदासरायक नाम ग्रन्थजो मैंनेकभीपहिले आदित्य से सुनिपायावेदकाअगर्हैतिसकोखुब जानैसमझै और योगशास्त्र जो निज मेराही बनायाहै सोभीपढ़े(इसउपायसे योगसाधनाभीस्वपावैगा ॥ ११० ॥ मन बुद्धि स्मृति इन्द्रियोंको अनन्य विषय करिके आत्मा ध्येयहै जो यह प्रभु दीपवत् हृदयमें बैठा है=अर्थात्—दूसरा उपाय यहभीहै कि—यह समय प्रभु आत्मारूप

जो हृदयबीज पूर्वोक्त सराडल में दीपक तुल्य प्रकाशमान वैराहै सो इस रीतिसे ध्यान करिवे योग्य है कि मन को बुद्धि को सब इन्द्रियों को यादिको सभी कामों और सभी बातोंकी तरफसे खींचिके केवल उसी आत्मामें समर्पण करै ॥ १११ ॥

११० अधिकोक्तिः—(योगंअभीप्सता) इस पद में योग शब्दका यह अर्थ है कि संसारके सभी विषयरूपी धंधोंकी छोड़ि उनकी उपेक्षासहित अपने चित्तकी वृत्तियाँ उनकी ओरसे खींचि एक मनही में आत्मा के ऊपर उन वृत्तियों को लगाना जोड़ना यही योगहै तिसकी सिद्धि चाहनेवाले योगी को आसयक विचारना चाहिये जो वृद्धारण्यक नामसे भी वेदहो का अंग ब्राह्मण विशेष कहा जाताहै जिसको योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने (आसयस्थान) वन में रथ चलते हुये सूर्यनारायण से पढा था ॥ ११० ॥ योगी के योगरूपी ध्यान का कर्त्तव्य रूपयही है कि चित्तकी वृत्तियों को सब ओरसे ऐसे खींचिके आत्मा में एकत्र करै जैसे प्रज्वलित दीप ज्योतिका प्रकाश दूरफैलाहुआ भी दीपकपर धारावा ढाँकि देनेसे खिंचिकर उसी ज्योतिमें समाज जाता है इस रीतिसे उस आत्मा को ध्यान में लयलीन होवै जो यह अनंतरोक्त १०६ श्लोक में कहागया प्रभु दीपके तुल्य अपने हृदय में प्रकाशमानहै ॥ १११ ॥

(अशक्तौतुशब्द ब्रह्मोपासनं)

यथाविधानेन पठन्तामगायमविच्युतम् । सावधानस्तदभ्यासात्परंब्रह्माधिगच्छति ११२

अपरांतकमुल्लेख्यमद्रकमकर्तृता । औवेशकंसुरोविन्दुमुचरंगीतकानिच ११३

द्रग्गाथापाणिकावच्चविहिताब्रह्मगीतिका । गेयमेतत्तदभ्यासकरणम्नाञ्चसंक्षिप्तम् ११४

अर्थः—सावधान संन्यासी यथाविधानसे सामगायको अविच्युत पढ़न करतेहुये उसी अभ्याससे परंब्रह्मके समीप जाताहै—अर्थात्—सामवेदकी श्रुतियाँ स्वरके साथ गाई जातीहैं तिससे उसको सामगान और सामगाय भी कहितेहैं उसी सामगाय की जैसा उसकेगानेका विधान सामवेदमें उपस्थितहोय उसीविधानसे संन्यासीआप सावधान होते (अविच्युतनाम) नित्यंप्रति अखण्ड नियमसे पढ़च अर्थात् गान करते करते उस अभ्यास को प्रभावसे परंब्रह्म के समीप तक पहुँचता है (श्रेय व्यौरा अधिकोक्ति में देखौ ॥ ११२ ॥ अपरांतक= उल्लोध्य=मद्रक=मकरी= औवेशक=सुरोविन्दु=उत्तर= ये सात अपने प्रकारों में कहे गीतोंके भेदहैं (और चकारके ध्वन्यर्थसे आसारित बर्तमानताआदि महागीत भी ग्रहण किये जातेहैं मिताक्षराकारने यह कहा ॥ ११३ ॥ ऋग्गाथा=पाणिका=दर्शविहिता=ब्रह्मगीतिका=ये चारों गीतिका कहाती हैं इनका

भी विस्तार गानसंबंधी वेदके प्रकारोंमें मिलसकता है—यह सब अपरांतक आदि ब्रह्म गीतिका पर्यंत जुदे भेद गाने के योग्य हैं अर्थात् केवल पाठही वाँचनेकी रीतिसे नहीं किन्तु गानतानके स्वरसहित आराधनकरै जिसका अभ्यास स्वबलसे वही मोक्षनाम कहाता है अर्थात् सोसरूपी फल देनेके हेतुसे यह अभ्यासही मोक्ष कहिलाता है ११४ ॥

११२ अधिकोक्तिः—सामगान आदि जो गान करना कहा तिसकायही तात्पर्य है कि शब्द तथा आकार डीलडौल से शून्य जो परब्रह्म सो सामगानके प्रत्येक शब्द शब्द के स्वरोंमें स्वरशब्द रूपी होकर ऐसा फँसा बिंधा है कि जैसे दुशाला आदि बखों के बेलि, बड़ा आदि में सघन सूत्र सिले होते हैं जिन तरंगोंकी गति, हरकसे नहीं पहिंचानी जाती है तैसे अनुस्यूत हुये आत्मा में गान के द्वारा चित्तकी वृत्ति सकाग्र होकर जालगती है तब उसी अभ्यास के मार्ग से परब्रह्म तक पहुँचही जाती है वही मोक्षपदनाम है—तदुक्तं च (शब्दब्रह्मणानिन्यातः परब्रह्माधिगच्छति) अर्थात् शाखांतरमें यह नियम कहा गया है कि शब्दरूपी ब्रह्ममें लयलीनहुआ पुरुष परब्रह्मके समीप जाता है—अथपि=अपरांतक आदि गीतज्ञात भी सब एक प्रकार का अध्यारोप समझा जाता है तथापि उसमें शब्दरूप होकर आत्माका भाव जो अध्यारोपित होरहा है (जिसका दृष्टांत अभी दुशाला आदिसे कहि चुके) तिससे यह अभ्यास मोक्षफल देनेवाला दृष्टिगता है इसीसे इस अध्यारोप में कुछ कलंक नहीं—परन्तु—यह अभ्यास करना संन्यासी की उस अवसरमें उचित है कि जब अपनेनित्य के स्वाध्याय उँकार जप करना आदि नियमोंसे छुटकारा मिले किन्तु यह तात्पर्य नहीं है कि मुख्य नियमोंका अति क्रमकरके इसीमें तत्पर होय ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

(शब्दब्रह्मोपासनस्य अंगभूतिनियमाः)

बीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः । तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ११५

गीतज्ञोऽप्येवमेतन्नाप्रोतिपरमंपदम् । रुद्रस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते ११६

अनादिरात्मकपितृस्तस्यादिस्तु गरीरकम् । आत्मनस्तु जगत्सर्वजगत्तद्विधात्मसंभवः ११७

अर्थः—बीणा वजानेमें तत्त्वज्ञ श्रुतिजातिमें विशारद और तालविधि जाननेवाला भी बिना प्रयास मोक्षके मार्गमें पहुँचता है—अर्थात् भक्त आदि सुनिजनोंका कल्पित बीणा जो प्रसिद्ध है तिसके वजानेकी तत्त्व (असलियत) जाननेवाला संन्यासी जो श्रुति और ज्ञातोंके लक्षणा जानने में विशारद अति प्रवीण होय और ताल जिससे गीतका परिमाण कल्पना किया जाता है (अर्थात् गानके स्वरके साथ सजोरा या

हाथ या पैर या घूंसा या थपकी वा अंगुरी या लकड़ी आदिसे हरकोई सुननेवाला भी तालमिलाया करता है तिसका भी स्वरूप संन्यासी जन जानता है (तत्पर्यार्थ अधिकोक्ति में देखो) ॥ ११५ ॥ यह गीतज्ञ संन्यासी यदि गीतस्वरूपी योगसे कदाचित् (चित्तविक्षेप आदि कारणांसे लयभंग होकर) परम पदको नहीं पावै तो भी रुद्रका अनुचर होके उसीके साथ सुख भोगता है ॥ ११६ ॥ सर्वप्रकार तब सबको आत्मा का अनादि होना कहिसुनाया फिर उसकी आदि जो शरीर है सो भी कहा-आत्मासे सब जगत् होता है सो भी कहा फिर जगत् से भी आत्मा की उत्पत्ति कही-अर्थात्-सरसदि मूल प्रलोकसे लेकर अनादि आत्मा का स्वरूप और उनइतरि प्रलोक उत्तरार्धसे उस की आदि भी शरीर धारणा करनेसे कहिकर आगे सत्ति मूलप्रलोकसे ८३ तिरासी तक उसी परमात्मा के सकाशसे आकाश पृथ्वी आदि समस्तभूवर्णों की उत्पत्ति कही और उससे उत्पन्न हुये पंच महाभूतों के मिलाप से स्थूल शरीर बनने के द्वारा सब जीवों की उत्पत्ति भी कही ॥ ११७ ॥

११५ अधिकोक्तिः-श्रुतिर्यो तथा जाते में प्रवीणा होना यह कि-वेद्योक्त गान विद्यामें सातस्वरोंकी अठारह जाति और वाईस युतियाँ होती हैं (यहज-ऋषभ-गांधार-मध्यम-पंचम-धैवत-निर्याद) ये सात स्वर होतेहैं येही सात इनकी मुख्यजाति कहाती हैं फिर इनमें से दो दो आदिके मिलाप से ग्यारह जातें और भी होजाती हैं वह संकरजाति कहाती हैं तिससे शुद्ध और संकर ११ दोनों मिलकर अठारह जातें स्वरोंकी दहेरती हैं-यथा-यहज-मध्यम-पंचम-इन तीनों स्वरमें चार चार युतियाँ होती हैं सो बारह ठहरीं ऋषभ-धैवत-इन दोनोंमें तीन तीन श्रुतियाँ होती हैं बारह में जोड़िके अठारह ठहरीं-गांधार-निर्याद-इन दोनोंमें दो दो श्रुती लगती हैं सब जोड़िके वाईस २२हुई-इन्हीं स्रष्टृति जातिमें प्रवीणाहोय अर्थात् इनके स्वरूप उत्पत्ति स्थान आदि सब जानै-इष्टांत-जैसे नाभिके भीतरसे उदायाहुआ स्वरकरावमें निकसतेहुये वृषभके शब्दसम गरजता है इसीलिये ऋषभ स्वरनाम उसका धरागया क्योंकि वृषभकी ऋषभ कहिते हैं-जैसी यह ऋषभ स्वरकी उत्पत्ति कही तैसेसातोंकी जुदी जुदी फिर ग्यारह संकर जातोंकी जुदी जुदी फिर वाईस युतियोंके जुदे जुदे लगग उत्पत्तिआदि जानै और बीणा सहित अपने कंठके द्वारा सबकासात भी यथा विधि से कर सकता है तो युति जातिमें विशारद कहलाता है-इस प्रकारसे शब्दस्वरूपी ब्रह्म की उपासना में सुगमता सेही चित्तकी वृत्ति आसोषित होजाती है क्योंकि स्वरताल आदि भंग होजानेके भयसे चित्तकी वृत्तिग्रो अवश्य ग्रेकनीपरती और स्वतःखिचि-

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

१८५

कर सकत होजाती है और यही बात पूर्वोक्त ध्यान योगमें भी मुक्तिका हेतु कही गई थी परन्तु पूर्वोक्तयोग जिसपर न सावाजाय तिसको इसअवोक्त प्रकारसे उसपरिग्रह के बिना भी मुक्तिका मार्ग मिलजाता है ११५ ॥ ११६ ॥

सोटी बुद्धिवालोंको ये बातें सुनिके कुछ संदेह भी उत्पन्न होता है तिससे अगिले परिच्छेद में संदेह मिटाने के निमित्त से ११८ का श्लोक प्रमुखसे कहिकर आगे समाधान दिये जायेंगे कि जगत् और परमात्मा का परस्पर एको भाव है ॥



अथ परमेश्वरस्य ब्रह्मरूपस्य सर्वविश्वरूपितानिरूप

णायं परिच्छेदः (१३) चयोदशः ॥

इस परिच्छेद में उस ब्रह्मविद्याका विस्तार कहाजायगा जिससे परमेश्वर ब्रह्म रूपको विश्वरूपित जानीजाय कि उसके सकाशसे जगत् क्योंकर उत्पन्न होता और परमात्मा आपही जगत् में क्योंकर जन्म धरता और सपूर्ण विश्व का रूप आपही कैसे कहाजाना सिद्ध होता है

(जगतः परमात्मनश्च पारस्पर्यमैक्यं)

कथमेतद्दिमुह्याम तदेवासुरमानवम् । जगदुद्भूतमात्मा च कथं तस्मिन्वदस्वतः ११८

मोहजालमपास्येह पुरुषोदृश्यते हि यः । तद्वत्स्वरूपज्ञेयं सूर्यवर्चा सद्वत्कः ११९

स आत्मा चैव यज्ञदशविश्वरूप प्रजापतिः । विराज सोऽन्नरूपेण यज्ञस्त्वं मुपगच्छति १२०

अर्थः—देव असुर मनुष्यों सहित यह जगत् कैसे उस आत्मासे उपजा और उस जगत् में आत्मा आप भी कैसे पशु पक्षी नर नर्य आदि शरीरोंको पाता है हम सब ज्ञयिलोग इस अटपटी बातमें विमोहको पहुँचते हैं ॥ ऐसा ज्ञयि लोगोंका सदेहमय प्रश्न सुनिके याज्ञवल्क्य जी आगे समाधानों सहित परमात्मा का स्वरूप समझाते हैं ॥ ११८ ॥ इह जगत् में मोह जालको छोड़िके जो पुरुष देखिपरता है सहस्र हाथ पैर नेत्रवाला सूर्यसम तेजवाला सहस्रों शिरवाला (११९) वही आत्मा है वही यज्ञ रूप है विश्वरूप है प्रजापति भी है जिससे विराज रूप है सो अन्न रूपसे यज्ञत्व को पहुँचता है—अर्थात्—निर्मल ज्ञान छपी दृष्टि से ध्यान करो कि—इहाँ समस्त जगत् भरमें दृश्यमाय जो यह स्थूलरूप कलेवर आदि सबही में भिन्न भिन्न देहाभिमानरूप

(सोहजाल) अज्ञान का माया जालहै सोसब जुदा मानिकै उसके उपरालू जो कोई एक पुरुष प्रतीत होताहै वही सहस्रों अर्थात् असंख्य हाथ पैरोंवाला असंख्य नेत्र मस्तक वाला और असंख्य सूर्यों के समान तेज वाला भी है (अर्थात् देव राक्षस मनुष्य आदि सभी जीवोंके हाथपैर मस्तक आदि की संख्या जो कुछ तीनों भुवनमें हो सकतीहो सो सब अंग उसी एक पुरुषके हैं किन्तु उसीके प्रत्यक्ष जो उसकी शक्ति उपस्थित रहितो है तिसके आधार सहारेपर ये सब तीनों भुवनके हाथपैर नेत्रआदि इन्द्रियों कामदेती हैं) परन्तु वह पुरुष किसीके सम्मुख आकर नहीं दिखाई देता है (११६) वही पुरुष सब जीवों में आत्मारूपहीके उपस्थित और वही यज्ञों का रूपहै अर्थात् नित्य नैमित्तिक तथा काम्यभेद वाले सभी यज्ञोंका स्वरूप वहीआप है इसीसे यज्ञ पुरुष भी उसका एक नामहै और विद्यस्वरूप अर्थात् समस्त जगत् का आत्मारूप है क्योंकि विराज रूप होनेसे अर्थात् मस्तक जिसका स्वर्ग आदि ऊपर के लोक और पाताल पैर और भूतल मध्यम अंग है इत्यादि लक्षणाओं से ब्रह्माण्डमात्र सब स्थूलरूपो देहका अभिमानो वही पुरुष है जो विराट भी कहाजाता(एकचोपचीस १२५ मूलश्लोकसे १२८ तक चारिप्रलोक देखो) और प्रजापतिवही आपहै अर्थात् प्रजाकी उत्पत्ति या टुटिकरनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा और दस आदिरूपोंसे आपही वर्तमान है तथा राजा महाराजा आदि नरपाल भी प्रजापति होतेहैं तिनके भी रूपोंसे आपही वर्तमानहै तथा विश्वकर्मा और सूर्य और अग्नि भी प्रजापति कहाते हैं तिनके भी रूपोंसे आपही वर्तमानहै (इसवार्ताके निमित्तसे गीतामें विभूति अध्यायभी देखना चाहिये) वहीपुरुष आप अन्नरूप होकर तिल घृत खोंड मेवा आदि अन्नोंका पुणे-डाश बनिकर अपनेही अग्निरूप में मिलि के यज्ञरूप बनजाता है (फिरभी उसी यज्ञसे बर्यारूप बनिकर उसीबर्यासे अन्नादि औषधियोंका रूप लेकर उन्हीं अन्नोंसे रस धातुकेद्वारा शुक्रधातुका रूपलेकर गर्भों में जाकर फिर प्रजारूप होजाताहै बहु-तेरी जीवोंकी संतति केवल बर्याके होनेसेही पृथ्वीसे आपही आप शुक्रधातुके वि-नाही उत्पन्न होजाती है तिससे संपूर्ण विद्यस्वरूप होना उस पुरुषका प्रत्यक्ष है) इस वार्ताका विशेष व्योरा ७१ इकहत्तरि के मूलश्लोक से भी देखो तथा यहाँ भी अगिले श्लोकोंसे दर्शाते हैं ॥ १२० ॥ = ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।
(विश्वरूपितायाः प्रपंचः)

१८७

योद्धव्यदेवतात्यागसंभूतोत्तमः । देवान्सन्तर्प्यस्त्रोयजमानंफलैश्च १२१
संयोज्यवायुनासोमनीयतेरश्मिभिस्ततः । ऋग्यजुःसामविहितं सौरधामोपनीयते १२२
स्वमंडलादसोत्तूर्यः सृजत्यमृतमुचमम् । यज्जन्मसर्वभूतानामश्नानश्नात्मनाम् १२३
तस्माद्भ्रातृपुनर्यज्ञः पुनरन्नं पुनः क्रतुः । एवमेतदनाद्यंतं चकंसं परिवर्तते १२४

अर्थः—देव निमित्त त्यागे द्रव्यसे उत्तम रस संभूत होके देवोंको भली दत्त करिके
वही रस यजमानको भी फलसे=संयोजन किये पीछे वायुसे खींचा सोमको पहुँचाया
जाताहै तहांसे ऋक् यजु साम रूप सौरधामको रश्मियों करके लियाजाताहै=फिर
यह सूर्य अपने मंडलसे उत्तम अमृतको सृजता है जो अशन अन्नशन रूपी सर्वभूतोंका
जन्म है=तिस अन्नसे फिर भी यज्ञ फिर अन्न फिर यज्ञ=ऐसेही यह अनादि अत चक्र
सदा परिवर्तित है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥=अर्थात्—परमात्मा को सर्व
विश्वरूपी जो कहिचुके तिसका ध्योरेवार प्रकार यहां समझाते हैं कि इसी संसार
में जो क्रूड-द्रव्य सामग्री होम आदिकें द्वारा देवताके निमित्त छोड़ा जाता है तिसका
रस उत्तम जो संभूत भली भाँतिसे उत्पन्न हुआ (अर्थात् यह रस देखने में नहीं आता
किंतु अद्भुत रूपही रहिकर परमात्माकी परिणति रूप अवस्था भेद कहाताहै क्योंकि
अन्न परमात्माहै तिसका रूप पलटिके उत्तम रस बना) इसको (उत्तम इसलिये कहा
कि संपूर्ण जगत्के जन्मका बीजरूप यही उत्तम है) वही रस पहिले अपने संप्रदान
भूत देवताओं को संतुष्ट करिके उनकी संतुष्टि द्वारा यज्ञमान को भी वांछितफल से
संयुक्त करिके फिर महावायु से खींचा हुआ सोमंप्रति चंद्रमाके मण्डल को पहुँचता
है (वहां उस चंद्रमाके किरणों से टपकेहुये अमृतसे संनिश्चित होके अतिशय शुभा-
वाव शक्तिमान् होजाता है) ततः तिस चन्द्रमण्डल से फिर सूर्यकी रश्मि किरणों
से खींचा हुआ सौरधाम अर्थात् सूर्यके स्थान मण्डलको लेलिया जाताहै=वह मंडल
सौरधान ऐसाहै कि जहां ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद तीनोंका आग्रमहै (अर्थात् तीनों
वेदमय स्वरूपही उस मंडलका होताहै इसका वचन अधिकोक्ति में देखो) फिर यह
सूर्य भी उसी अमृत रूपी उत्तम रस को अपने मंडल से सृजता है (अर्थात् वयस्त्रिप
बनाकर सारे जगत् में वरसाताहै इसी हेतुसे जलका नाम अमृत भी कहाताहै) जोकि
वही उत्तम जल सर्वभूतों (सभी प्राणियों) का जन्मरूपी निमित्त है क्योंकि जलही
से सब सृष्टि होतीहै सब सृष्टि में येही भाँति के प्राणी होते हैं इसीलिये अशनात्म
अन्नशनात्म ये दो विशेषण सर्व भूतोंको दियेगये इनके अर्थ अधिकोक्ति में देखो ॥

१२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उसी (जलसे उत्पन्न हुये) अन्न से (कि जो सब तरह के अन्नादिक पदार्थही प्रजाकी उत्पत्ति पालन करनेमें कारणा हैं तिनसे) फिर यज्ञहुये • फिर भी (पूर्वोक्त रीतिके द्वारा) उन्हीं यज्ञों से द्यौं होकर अन्न पैदाहुये फिर उन्हीं से क्रतुयज्ञ होने लगे • एवं इसी प्रकार से यह समस्त संसार एक चक्र बड़े चाक के अनुरूप खूब घूमता रहता है कि इसका परिवर्तन वेग (घूमना चक्कर खाना) कभी थमता नहीं (अर्थात् कभी अगिला भाग पीछे कभी पिछला भाग समुख आजाता रहता) इसी कारण यह संसार अपने उत्पत्ति और विनाश इन दोनों से विहीन ठहिरता है क्योंकि परमात्मा का स्वरूपही विराट रूपसे संसार ठहिरा तो फिर उस अविनाशी के रूपका विनाश नहीं होसकता न कभी उसकी उत्पत्ति होनी कही जासकती क्योंकि सदा सर्वदा से यह इसी प्रकार वर्तमान चला आता है फिर उत्पत्ति किसकी कहोजाय ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

१२४ अधिकोक्तिः—अपने भूमरूपी संदेहमय प्रश्नोंकी याद करो कि जगत् में आत्मा कैसे उत्पन्न होताहै—सो सब समझाया गया कि इस अनंतरोक्त क्रमसे आत्मा आपही जगत् रूपहै और इसी क्रमसे आत्मा के सकाशसे संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति होतीहै और इसी जगत् में वह आत्मा (सरसति ६७ प्रलोकसे, त्वचां कियेहुये चिदंश रूपसे) निज कर्मांशरूप शरीरोंका परिग्रह करता है, ॥ संसार यद्यपि उत्पत्ति और विनाशसे विहीन है तथापि इसके प्रलय और उद्भव जो, प्रसिद्ध किये गये सो केवल सूर्यके उदयास्त सम कल्पित किये कहते हैं—अर्थात् जैसे सूर्य कभी न अस्त होताहै न उदय होताहै सदा सर्वदा प्रकाशमान रहताहै परंतु जिस समय जिनदेशों में पर्वतकी आड़ हीजानेसे देखि नहीं परता तब उतने समय तक राति कहिके सूर्य का अस्त हुआ मानि लेते हैं इसी प्रकार जिस समय जिनदेशों के समुख आजाताहै तहां उतने समयतक दिनकहिकर सूर्यका उदयहुंआ मानिलेतेहैं(क्योंकि जो ऐसी कल्पना न करीजाय तो वार्तालाप में दिनरातिके व्यवहार कैसेचलें तिससे नामसाधही के निमित्तसे उदय अस्त कल्पितमानेगये) तैसेही संसार जब ईश्वर की शक्तिरूपी सायाके आड़में होजाता तब उसका प्रलयकहाने लगताहै • जब उससाया की आड़से निरालाहोता तब उत्पन्नहुआ कहाने लगताहै किन्तु यथार्थसे न उसकी उत्पत्तिहै न प्रलय • तिससे भ्रमरूपी मोहको त्यागो ॥ • ॥ एकसो तेईसप्रलोकमें सर्व भूतों के बोधेव प्रकार कानेके निमित्तसे अश्वनात्म अनशननात्म ये दो विशेषता दिखे गयेहैं तहां अशनसंज्ञा खानेकी और आत्मसंज्ञा रूपकी ये दोनों मिलिके यह अर्थ

सिद्धहोताहै कि खानेवालेरूप जो जो चैतन्य प्राणीमात्रहैं कि वे कुछ न कुछ खानेसे जीसकें सो अशननात्म समझने-फिर इसीमें नियेध करनेवाला अशनशब्द जोड़नेसे अ-
नशननात्महूये कि जो जो प्राणी खानेमें समर्थ नहीं और खाने बिनाही जीसकें जैसे
पत्थर पत्थरआदि नानाभौतिके जड़जीवहैं सो सब दूसरेभेदमें समझने सबसंसार भरमें
सृष्टिके दोहीभेदहैं (अर्थात् स्थावर जंगम या जड़चैतन्य कहातेहैं) दूसराअर्थ उन्हीं
का इसरोतिसे भी होताहै कि अशन भोजन है आत्मारूप जिनका सो अशननात्म स-
मझने(अर्थात् आपही भोजनरूपहैं जो किसी प्राणीके खानेयोग्य ठहिरें चाहें अन्न
या औषधी या घास या रस फल फूल आदिहों या छोटे मोटे जीवहों सभी समझने
जो किसीके अशन भोजनमें लगिसकें सो एकभेद ठहिरा-दूसरे अनशननात्म जो किसी
प्राणीके भोजन योग्य न ठहिरें) अर्थात् जिनचीजोंको कोई भी न खासकें सो अ-
नशननात्म समझे) इस प्रकार से भी सब संसार भर में दोही भेद ठहिरें—ऐसेही जड़
और चैतन्य को चर अचर कहिने से दो भेद होते हैं और इनमें भी दो भाँति से अर्थ
सिद्ध होताहै कि चर जीव तौ वे हैं जो चलिफिर सकें या चरि सकें किंतु खाने पीने
में समर्थहों जैसे मनुष्य पशु पक्षी कीरे आदि जिनके इंद्रियाँ होती हैं—इसी चरके
साथ नियेधका अकार जोड़नेसे अचर नाम ठहिरा और चरकी अपेक्षा विपरीत अर्थ
बेने लगा कि न चलि फिर सकें न खाय सकें किन्तु खाने पीनेमें असमर्थ हों और
खाने बिनाही जीसकें जैसे पत्थर धातु वृक्षादिक नाना भौतिके जड़ पदार्थहैं जिनके
इंद्रियाँ नहीं होतीं सो सब अचर सृष्टि में समझने=तथाच वैद्यक शास्त्र=संद्रियंचेतनं
द्रव्यनिरिन्द्रियमचेतनं=अर्थात्—संसारभर में सब द्रव्योंके दोही भेदहैं कि जो जो द्रव्य
इंद्रियों सहित हों सोसब चेतन समझना जोजो निरिन्द्रिय अर्थात् बिना इंद्रियोंकेहों
सो सब अचेतन द्रव्य समझना—इस वचन में द्रव्य शब्द से मनुष्यादि सब जीवोंका
बोधकरायागयाहै तैसा पूर्वोक्त अन्यवचनोंमें जीवशब्दसेजड़द्रव्योंकाभी बोधहोताहै
सिद्धांत में तात्पर्य सबका एकहै ॥ ० ॥ ऊपर एकसी वाङ्मश्लोक में सूर्यमण्डलको
तीनों वेदका आधार कहागयाथा उसके मध्ये यह श्रुति प्रमाणहै कि (सैषावप्येव
विद्या तपतीत्यभेदाभिधानं) अर्थात् सूर्य के मंडल में तेज प्रकाश रूप से ऋक यजुः
साम तीनों वेद की त्रयीविद्या जो है सो आपही साक्षात्कार तपिरही है तिससे सूर्य
और वेदत्रयी में परस्पर कुछ भेद नहीं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

कदाचित् होता यह सदेह करें कि जब आत्माका संसारा (अर्थात् पूर्वकर्माँ के
अनुसार संसार में देहों का स्वीकार करना उर्बोक्त प्रकारों से अनाद्यन्त ठहिरा कि

इसका आदि अंत नहीं यह सदासे ऐसा चला आता है—तो फिर निर्मुक्ति कहाँसे हो-
सकती है क्योंकि प्रथमतः इस संसार के जंजालसे उसीकी निवृत्ति कभी नहीं है फिर
और कोई मुक्तिकाभरोसा उससे क्या करे—इसके समाधान मध्येनोचेका वचन देखो ॥

(समवायीपुरुषः)

अनादिवात्मासंभूतिर्विद्यतेनांतरात्मनः । समवायीतु पुरुषो मोहेच्छाद्वेषकर्मजः १२५

अर्थः—आत्मा अनादि है अंतरात्मा की संभूति नहीं विद्यमान होती है—मोह इच्छा
है य कर्मों से उत्पन्न समवाय वाला पुरुष होता है—अर्थात्—यह बात यद्यपि सत्य है
कि आत्मा के अनादि होनेसे अंतरात्मा की संभूति नाम (जन्म लेनेसे) उत्पत्ति उस
आत्मा अनादि को नहीं व्यापती है (यही उसकी समर्थकी विचित्रता है कि मिला-
र है अरु नामिले तासे कहा बसाय) यहाँपर (आत्मापरब्रह्म को समझना अंतरात्मा
उस चिदंश को समझना जो संसारी देहों के भीतर आके प्रविष्ट होता है) और (सं-
भूति केवल देहों के उत्पन्न होने को समझना तथा और सब संसार की वस्तु जो जो
हैती हैं तिनके भी उत्पन्न होजाने मात्र को संभूति समझना अर्थात् यह संभूति उस
आत्मा के अंतरात्मा को भी नहीं व्यापती है अनादि होने के हेतु से) यद्यपि नहीं
व्यापती है तथापि पुरुष देहमात्र से समवायी होता है किन्तु (समवाय भी दो
भाँतिसे कहाता है एक तो सूधीरीति से यह समझ लेना कि अनेक वस्तुओं का
संग्रह इकट्ठा होना समवाय कहाता है जैसे देहरूपी कलेवरमें ८० अस्सी श्लोक से
लेकर १०७ एकसौ सात श्लोकतक जो कुछ दर्शाया सो सबका जमाहोना समवाय
संबंध समझना) दूसरा नैयायिक मतसे यह ढंग है कि (नित्यब्रह्मादियु जात्यादीनां
संबंधभेदः समवायः अर्थात् जो वस्तु अनित्य नहीं नित्य है जैसे पृथ्वीआदि पांचो तत्त्व
नित्य हैं यद्यार्थसे कलेवरमें भी येही पाँचतत्त्व हैं कहा आत्मा आय है ७२ बहुत्तरि
श्लोकमें देखो सो उन्हीं नित्यद्रव्यों में नामजाति रूपों से अनेक संबंध भेद कारदेना
समवाय कहाता है जैसा उसीजग्ये ७३ । ७४ तिहत्तरि चौहत्तरि श्लोकों में देखो कि
कहते आत्माने उन्हीं पाँच तत्त्वोंसे कितने संबंध भेद कारदिये जिनके अनेक नाम भेद
काहिने परे) दो भाँतिसे समवाय होता दर्शाया सो दोनोंका एक ही तात्पर्य केवल
समझने मात्रके निमित्तसे दो भेद कहेगये अब ऊपर ध्यान करो कि पुरुष देहमात्र से
समवायी कहा तिसका यही तात्पर्य है कि वह चिदंशरूपी पुरुष इसदेहमें समवाय
इकट्ठा करनेवाला ठहिरता है अर्थात् उसको अपने जन्मने या मरने आदि से कुछ

वास्ता नहीं है—इसके सिवाय वह समवाय जो उत्पन्न हुआ सो कैसा और कितना और कहाँसे आया इस प्रश्नके उत्तरमें यह चौथा पाद है कि (सोहेच्छाद्वेयकर्मजः) अर्थात् सोह इच्छा द्वेय इतने जो उत्पन्न हुये पूर्वकर्म हैं तिन कर्मोंके द्वारा यहाँ समवायकी तौलनाप करी जासक्ती है अर्थात् समवाय कुछ निरर्ग स्वभावही से नहीं उत्पन्न हो जाता—और पुरुष जो समवाय इकट्ठा करनेवाला कहा गया सो उसी समवाय रूपी भोगके स्थान कलेवर में बसिकर सुख दुःख रूपी भोगों को भोगता है कि जो कुछ पहिले संस्कार के प्रभावसे इकट्ठे हुये हों—इसप्रकार के संबंध से कलेवरका संबंधी वास्तेवार वह आपभी दृष्टिराहै कि जैसे नदीके समीप मट्टीका मट्टीला घर आपही कोई बनाये और लकड़ीफूसमट्टी आदिके समवायसे सम्हारिके आपही उसमें निवास करै जब नदीकी रौ चढ़िआने से उसको बहिजाता देखें तभी आप निकसि के साक चलाजाकर कहीं अन्यत्र वसैं तौ उस घरके विनाश होनेसे भी यद्यपि उसका विनाश तौ न हुआ तथापि जबतक उस घरके बिगड़तेहुये समयपर जितने काल तक निवास रहाहोगा तबतक पानी भरिआने या मट्टी फूस गिरपडने आदिकी बिपत्ति कुछउसको भी भोगनी परी तैसे यहाँ देहरूपी कलेवर में कुछ रोग पीडा खड्गीहोनेसे उसी वास्ते-दार समवायी पुरुष जीवात्मा को दुख भोगना परताहै कि जबतक उसी बिगते हुये देह में निवास करना परै ॥ तिससे अब अपने संदेहको निवारण करो क्योंकि ये सम-वायरूपी उपभोग आदि कार्यरूप होनेसे विनाशमानहै और आत्मा सदाही अनादि होनेसे निर्मुक्त है वह किसीके बन्धन में नहीं है ॥ १२५ ॥

१२६ श्लोकसे यहाँतक यह बात जो पहिले बर्णन कर चुके कि जगत् की उत्पत्ति परमात्मासे होती है तिसका डील अगिले परिच्छेद में व्यौरेवार दर्शावेगे कि इसप्रकार से होती है ॥



अथ परमात्मनः सकाशज्जगदुत्पत्तेः पूर्वोक्तायाः प्रपंच विस्तारो नाम चतुर्दशः परिच्छेदः ॥

इसपरिच्छेद में जगत् की उत्पत्ति जो परब्रह्म के सकाशसे होती पहिले कहि चुके तिसका प्रपंचरूपी विस्तार व्यौरेवार कहा जायगा कि इस रीतिसे होती है ॥

(जगतःप्रारम्भेचतुर्वर्णोत्पत्तिः)

तद्वत्त्वात्मामयायोवआदिदेवउदाहृतः । मुखबाहूरुपज्जाःस्युस्तस्यवर्णयथाक्रमम् १२६

अर्थः—(वःयुष्मान्प्रति मेने जो सहस्रात्मा आदिदेव तुमसे उदाहृत किया तिसके मुखबाहु जंघा पादसे यथाक्रम वर्णहोतेहैं=अर्थात्—ब्राह्मण आदि चारोवर्ण इसक्रम से उत्पन्न होते हैं कि मुखसे ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्री जंघाओं से वैश्य चरणोंसे शुद्र ये उसीसे कि जो पहिले मेने तुम सब ऋषीश्वरों को सहस्रात्मा आदिदेव समुभाया था (सहस्रात्मा कहने का यह तात्पर्य है कि सब जीवधारी उसीका रूपहैं तिससे बहुरूप है अर्थात् असंख्य सहस्रों रूप वाला सहस्रात्मा के नामसे कहा) आदिदेव इससे कहा कि जगत का सबसे पहिला हेतु रूप वही आप हैं ॥ १२६ ॥

(समस्तजगदुत्पत्तिप्रपञ्चः)

पृथिवीपादतस्तस्यशिरसोऽयोरजायत । नस्तःप्राणाविशःश्रोत्रास्पर्शाद्वायुर्मुखाच्छिखी १२७
मनस्तश्चन्द्रमाजातश्चक्षुषश्चिदाकरः । जघनादंतर्क्षेचजगत्सचराचरम् १२८

अर्थः—उसके पैरसे पृथिवी उत्पन्न-शिरसे स्वर्ग-नाकसे प्राण-कान से दिशार्थ-स्पर्शसे वायु-मुखसे अग्नि १२७ ॥ मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ-नेत्रसे सूर्य-जाँघ से अंतरिक्ष और चराचर सहित जगत भी=अर्थात्—उसी आदि देव को इन अंगों से ये वस्तु भी उत्पन्न हुईहैं कि पैरोंकी पगतलीसे धरती जो मनुष्यों का आधारभूत लोक है—और मस्तकसे स्वर्गलोक जो देवताओं का देशहै और नाक से सामान्य प्राणों की उत्पत्ति हुई कि जो सबजीवोंमें वही प्राण होतेहैं उनके बिना कोई जीव न जीसके—और उसीके कान छिद्रसे दशों दिशा भी उत्पन्न हुई कि जिनके बीच बड़े तीनों भू-वन और चतुर्वंश लोकोंकी स्थिति रही आतीहै (कदाचित् ये दिशार्थ न होतीं तो बड़े बड़े लोकों का स्थान किस ठिकाने पर होसकता था)—स्पर्श नाम हैं छुईजाने वा छुई सकने योग्य का इसीसे त्वचा भी स्पर्श नाम एक इन्द्री कही जातीहै कि उसमें वायु का स्पर्श होनेसे वायुका स्वरूप जाना जाताहै सो वायु उठी आदिदेव के स्पर्शसे उत्पन्न हुआहै कि जगत को कोई काम उसके बिना न चल सकते—और उसी आदिदेव के मुखसे अग्निकी उत्पत्ति हुई कि जिसमें होम करनेसे उसी आदिदेव के मुखमें पहुँचिजाता है—उसी आदिदेव के मनमें से चंद्रमा की उत्पत्ति हुई किंतु चंद्रमा की अमृतमय शीतलता जो प्रकाशमान है वही उसके मन का स्वरूप है—और उसी आदिदेव के नेत्र की ज्योति अर्थात् कोई एक किरण की आभाभाव से सूर्य

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

१६३

मंडलकी उत्पत्ति हुई कि इसके बिना जगत् में उज्जीता न होसकता—और उसी आदि देवकी जाँधोंके बीच से अंतरिक्ष अर्थात् धरती और सूर्यमंडल के बीचमें जो शून्याकार आकाश है सो उत्पन्न हुआ कि उसमें मेघोंकी चलाफिरी और वायुका स्थान तथा पसी आदिके उड़नेको अवकाश रहा आताहै—और दूसरी निचली जाँधों से चर अचर जीवों सहित जगत् का आकार भी उत्पन्न हुआ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

॥ इतना सुनिके आतालोश कृयीश्वर फिर छेड़छाड़ करने लगे कि इसमें बड़ा संदेह खड़ा होताहै सो नीचे कहेंगे ॥

(पुनरपिसंदिग्धश्रोतप्रश्नः)

यद्येवंसकथं ब्रह्मन्पापयोनिपुजायते । ईश्वर सत्कथंभावैरनिष्टे संप्रयुज्यते १२९

करणेनान्वितस्यापिपूर्वज्ञानकथंचन । चेन्नितवंगताकस्मारतवंगोपिनवेदनाम् १३०

अर्थः—ए ब्रह्मन् जो ऐसा है सो कैसे पाप योनियोंमें जन्मता है जो ईश्वर है सो कैसे अनिष्ट भावों से संप्रयुक्त होताहै—अर्थात्—हे ब्रह्मन् योगीश्वर हम सबों को यह संदेह आता है—जब कि वह आत्मा एकहै अनादिहै सब जीवोंकी आदि वही आप है और वही सब जीवोंका रूप धरा करता है तो फिर यह आत्मा मृग पसी आदि पापरूपी अनेक योनियों में उत्पन्न होताहै सो कैसे संगत माना जाय—और भी यह संदेह कि जैसा एकसी पचीसवां मूल प्रलोक है उसमें (मोहेच्छाद्वैयक्तमजः) इस चौथे पादका अर्थ देखौ कि मोह राग द्वेष आदि दोषोंके दुष्टत्वसे वैसे जड़े जन्महोते कहेंगये सो भी हम नहीं मानि सकते क्योंकि वह ईश्वर अर्थात् समर्थ और स्वतंत्रहै फिर कैसे मोह राग आदि भावोंसे संयुक्त होता किंतु स्वतंत्र होतेहुये क्योंकि उनको बशमें फँसजाता है ॥ और भी यह दूयरा है कि १२६ ॥ करणों से अन्वित को भी पूर्वज्ञान कैसे नहीं और सर्वगत होता हुआ भी सब में पहुँची वेदनाको काहे से नहीं जानता है—अर्थात्—मन आदि उत्तम इंद्रियां जो ज्ञानका उपाय रूपी करण अर्थात् समुक्त का शस्त्र होती हैं तिनसे संयुक्त होकर भी उस आत्मा को पूर्ण जन्मों का बोध नहीं आसक्ता कि मैं कहाँया और कौनया और कैसा पहिलेहुआ था इत्यादि—तैसही वह सर्वज्ञ कहाताहै कि सबकुछ जालनवाला और सभी प्राणीमान के घर में उपस्थित है तोभी सर्वज्ञ होतेहुये सबसे व्याप्त होते हुये जो सबके भीतर अनेक पीढ़ा रूपी वेदना है तिसको कैसे या किस हेतुसे नहीं जानता है सो उत्तर देनाचाहिये ॥ १३० ॥

(उत्तर स्वरूप)

अंत्यपक्षिस्थावरतामनोवाक्कायकर्मजैः । दोषैःप्रयातिर्जीवोऽयंभव्योनिशतेषु १३१

अनंताश्चयथाभावाऽशरीरेषुशरीरिणाम् । रूपाण्यपितथैवहंतर्वयोनिषुदेहिनाम् १३२

अर्थः—मन वचन कर्म इनसे उपजे दोयों से यह जीवही सैकरीं योनिमें भवजन्म से अंतयोनि पक्षीयोनि स्थावरत्व को जाता है—अर्थात्—तुम्हारे संदेह के अनुसार यद्यपि यह सत्य है कि वह आत्मा ईश्वर होने से अपने स्वरूपही से सत्यरूपी लक्षणा और ज्ञानरूपी लक्षणा और आनन्दरूपी लक्षणासे संपन्न है तौभी यहसब शुद्धतत्त्वा उसी एक परब्रह्म के स्वरूप में समझना (जिसका सरसि ६७ के प्रलोक से चर्चा आचुका है कि उसमें से फुलिंगे उड़ते हैं सो सब जीवरूप कहे जातेहैं) सो यहजीव जो उसीका किंचिद्व मैलरूपी अंश उड़िकर जन्म लेताहै उसीका संबंध यहाँ समझ लेना कि जीवही शक्तिहीन होकर उसकी अविद्या माया के आवेश में बगहोकर मोहराग आदि भावों से लिप्त होताहुआ उन कर्मों का आचरण करने लगता है कि जिनके प्रभाव से अवश्यही नाना भौति नीच योनियों में जन्म लेना परताहै (केवल मानस कर्मोंका आचरण उस दशा में भी समझना कि जबतक कोई एकभी जन्म उस जीवने न पायाहो किंतु उसी मानस कर्मके प्रभाव से सबसे पहिला जन्म लेना परेगा चाहें किसी योनि में हो तहाँ फिर कार्यात्मक और बाह्यिक भी भले बुरे जैसे कर्मोंका आचरण होने लगा होगा उन्ही के अनुरूप उसको ऊँच नीच योनिमेंजाना परता है) इसीलिये मूल प्रलोक में ये कर्म तीनों भौतिक के दर्शाये गये कि एक मन से जैसा भला बुरा विचार नाश कियाहो १ दूसरे वारागी से भला बुरा जो कुछ उच्चारण कियाहो २ तीसरे काया से कि जैसा किसीके बुरी तरह धक्का मारा या भेटी तरह स्नेह प्यार किया हो ३ इत्यादि—इन्हीं कर्मों से उत्पन्न हुये जो कुछ दोयइसी जीवके रहिततेहैं तिन दोयों के प्रभावसे यह जीवही सैकरीं हजारों योनि में भवजन्म को पहुँचता है तहाँ यह भेदभी अवश्य आनिपरता है कि बुरे मानस कर्मों के दोयसे अंत्ययोनि अर्थात् चंडाल आदि जातिमें जाना परताहै और वागीसे उत्पन्न बुरेकर्मों के दोय से काक उलूक आदि पक्षियों की योनिमें या पशुओं की योनिमें भी जन्म लेना परता है और काया से उत्पन्न खोटे कर्मों के दोयसे स्थावर वृक्षादिक योनिमें उत्पन्न होना परताहै (असति की अधिकोक्तिमें मनुका वचन हे सो देखो) ॥१३१॥ और शरीरियोंके शरीरोंमें जैसे अनंत भाव होतेहैं तथैव यहाँ सब योनियों में देहियाँ

के रूपभी—अर्थात्—शरीरी उन जीवों को समझना जो परमात्मा के अंगसे छोटे छोटे अंग रूपी फुल्लिगे उड़िकर असंख्य जीव कहाने लगते हैं यद्यपि उनको संसारी देह कभी एक बार भी न मिला हो तौभी उनका बोध यहां शरीरी के नामसे दर्शाया है कि—जैसे उन शरीरी जीवों के शरीरों में तरह तरह के अनंत भाव (अनेक भावनायें जो सतोशुद्धा रजोशुद्धा तमोशुद्धा की अधिकता या न्यूनता के भेद से) उपजते रहते हैं तैसेही इह संसार में आकर भी सब योनियोंमें देह धरनेवालों के रूप भेदभी अनंत हो जाते हैं (अर्थात् एकही योनिमें अनेक रूपभेद जैसे कुबड़ा बीना जन्मात्र एकाक्ष आदि समझने) क्योंकि जब कारणा में अनंत भावों के भेद होचुके तौ उन्हीं के कार्य रूप देहों में भी अनेक रूप भेद होने न्यायात्मक हैं ॥ १३२ ॥

१३१ अधिकोक्तिः—जीवही शक्तिहीन होकर अविद्या मायाके वशमें आजाता है अर्थात् साक्षात् ब्रह्म नहीं मायाके वश में आता यह ऊपर लिखचुके तहां यह प्रका खत्री होती है कि जीव उसी ब्रह्म का एक अंशही जैसा ६७ सर्गाद प्रलोकसे कहिचुके कि उसी ब्रह्म के अंगमें से फुल्लिगे उड़िकर जीव कहाने लगते हैं तौ फिर ब्रह्मका अंश होते हुये यह कैसे शक्तिहीन होजाता जो माया के वशमें होजाता परता है—समाधान इसका उसी सर्गाद प्रलोक में सौजदह सो देखो कि तपाये हुये लोहेको रोलेका दृष्टांत इसीनिमित्त दियागयाथा जैसे अग्निके छोटे छोटे अंशभट्टों में धौंकनी धौंकते समय या लोहेको लातु होजाने बाद घन सारते समय जो अनेकचिस्कार उड़िकर ऊपरछप्पर तक पहुंचते या घन सारनेसे उछलिके दृष्टियोंमें जापरते हैं यद्यपि साक्षात्कार उसी अग्निका अंशहैं कि जो छप्पर आदिको भस्मकासकता है तथापि जुड़े होजानेसे सब शक्तिहीन होजातेहैं कि अपने अग्निके चरत्कारको भी भूल जातेकिनु छप्परआदि उनसे नहीं जलता क्योंकि उसीहवाके वशमें आकरनिर्वल होजातेहैं जिस हवाके प्रभाव से अग्नि की रुद्ध होसकती और तेजोबल बहता है—जैसे यहां अग्नि के फुल्लिगे जुड़े होते सार पायु के आवेश में आकर अपने मुख्य स्वरूपही को भूल जाते कि इस किसमें से उत्पन्नहुये और क्या इसारी शक्ति और क्या इसारा काम या कुछ नहीं जानते—तैसेही जीव उसी ब्रह्मके अंगमें से फुल्लिगा रूप जुड़ा होते सार मायाके आवेश में फँसिकर उसी माया के वशमें आकर शक्ति हीन होजाता तभी अपने पर्व जन्म आदि मुख्य स्वरूपको भी भूल जाता है कि मैं किसमें से उत्पन्न हुआ और क्या मेरी शक्ति थी और यह वही मायाहै कि जो ब्रह्मको इच्छा अनुसार उसकी आज्ञा पालन करने वाली प्रसिद्ध है तथापि निर्वलता सबलताका भेद यह दूर

सेही उत्पन्न हुआ और इसमें भी इच्छा उसी ब्रह्म की बलवान है कि=जिन फुलिंगे रूपी जीवोंको प्रथम कोई संसारी देह जब तक नहीं मिला केवल उसी सूक्ष्म रूप शरीर में रजोगुणा तमोगुणा सतोगुणा इनके प्रभाव से जो जो मानसिक भाव उत्पन्न होते रहे सो भी अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे केवल बीजमात्र ही अंगुर उठते हैं कि जिनके प्रभाव से प्रथम कोई न कोई सी एक योनिमें देह उनको मिलजाती है फिर तौ स्थूल देह पाकर उन्ही पहिले बीजोंकी टुटि भी हरतरह होती रहती है कि जिस योनिमें पहिला देह पाया तहां थोड़े बहुत पाप या पुण्य रूपी और भी कुछ कर्म किये तिनसे फिर और कोई योनि पाई तहां फिर और भाँति कर्मोंकी टुटि हुई इसी प्रकार फिर फिआवागमन की शृंखला बँधि जाती है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

कदाचित् यह शंका आरोपित करी जाय कि जब कर्मही को प्रधानता दहिरी कि वह सूक्ष्मरूपी जीवह कर्मसे खाली नहीं तौ फिर कर्मका फल भी तत्काल मिलना चाहिये कि जब कर्म किया गयाहो अर्थात् देहांतर वा जन्मांतरका चर्चा आप क्यों करतेहैं—सो इसका नियम नीचे बर्णन करते हैं ॥

(कर्मविपाकनियमाः)

विपाकः कर्मणा प्रेत्यकेषां चिद्विहायते । इह वाऽमुग्रवेकेषां भावस्तत्र प्रयोजकम् १३३

अर्थः—किन्हीं एक कर्मोंका विपाक प्रेत्य होता है किन्हीं कायहाँ और किन्हीं का इहाँ या वहाँ भी तिस में प्रयोजक भाव है अर्थात्—कुछ तौ कर्म से से हैं कि जिनका विपाक फल प्रेत्य ही (अर्थात् दूसरे जन्मों के देह में जाकर) मिलता है (इसका दृष्टांत जैसे ज्यातिश्रीम आदि बहुधा यज्ञों का फल इस देह से नहीं किन्तु दूसरे देहमें जाकर होता यही नियम है) और किन्हीं बिस्ले कर्मोंका फल इहाँ इसी देहसे मिल जाता है (दृष्टांत जैसे कारीरी नाम एक याग होता है कि बर्षा होना आदि जिस कामनासे ठीक ठीक किया जाय सो फल बर्षा आदि इसी देहसे तत्काल प्राप्त होता ऐसे और भी अनेक कर्म होते उनका यही नियम है कि जैसे दशरथने पुत्र कायेसि यज्ञ किया था चारपुत्र इसी देहसे फल मिले) और बहुधा कर्म से से भी होते हैं कि जिनका विपाक फल चाहें इसी देहमें होजाय यदा इहाँ किसी हेतु से न मिले तौ अमुग्र वहाँ दूसरे देह से ही जाकर मिलता है अर्थात् इनमें कोई एक नियम नहीं किन्तु जैसा कर्मोंका प्रभाव होगा उसके अनुसार चाहें यहाँ फल मिले वा वहाँ जाकर मिले ॥ तिससे यह तर्कना अनुचित है कि कर्मपूरा होते सारतत्काल ही

फल को नही होता ॥ तहाँ फल मिलनेवाले देहमें शुभ अशुभ किंतु अच्छा या बुरा फल पैदा करनेमध्ये भावही मुख्य प्रयोजक होता है अर्थात् सत्तोगुरा तमोगुरा रजोगुरास्वयी जैसा भावकर्मों में उत्पन्न हो चुका होगा वही भाव अच्छे बुरे फलों को विभाग पूर्व नियत करेगा क्योंकि फलों का विभाग विस्तार उसी भावके अधीन सदा रहता है इसमें संदेह नहीं ॥ १३३ ॥

सक्यों इकत्तिस प्रलोक से यहाँ तक तीन प्रलोकों में जिन बातों की संक्षेपम-
स्याकरीगई उन्हींका विस्तार व्यौरिवार सर्वथा अगले परिच्छेदसे दर्शावेंगे ॥



अथ पूर्वोक्त कर्मबीजानां विपाक प्रपंच विवेको नाम

पंचदशः परिच्छेदः १५

इस परिच्छेद में उन कर्मों का विपाक व्यौरिवार कहा जायगा कि जिन बीजों का प्रसंग ऊपर आ चुका है ॥

(कर्मविपाकानां प्रपंचभेदाः)

परद्रव्याप्यनिध्यायस्तथानिष्ठानिर्वितपन् । वितथाभिनिवेशी च जायते त्स्यात्तु योनिषु १३४

पुरुषोऽनृतवादी च पिशुनः पुरुषस्तथा । अनिवद्धप्रलापी च मृगपक्षिपुजायते १३५ ॥

अवज्ञाऽऽदाननिरतः परदारोपतेवकः । हितकक्षाविधानेन स्यात्तरेष्वभिजायते १३६ ॥

अर्थ—पराये द्रव्यों को सब तरह ध्यान करते हुये वैसे अशुभों को विचारते हुये तैसा वितथ अभिनिवेशी भी चंडाल योनियों में उत्पन्न होता है—अर्थात्—ये मानसकर्म होते हैं जो मनसे किये जायें किंतु सर्वथा यही ध्यान करता रहे कि पराये धर्मों को किस प्रकार हरेँ इसीलिये वैसेही (अनित्य-अप्रिय) जो दूसरों को अशुभ होने से अप्रिय हों तिन प्रकारों को शोचते हुये (वितथ-विपरीत) असत् कुविचारों में (अभिनिवेशी) अर्थात् उनमें अभ्यास करनेवाला इन्हीं मानस कर्मोंके विपाकसे चंडाल आदि नीची योनियों में जन्म पाता है ॥ १३४ ॥ अनृतवादी और पिशुन पुरुष तथा अनिवद्ध वचनोंका प्रलापी पुरुष मृग पक्षियों में जन्मता है—अर्थात्—ये वाचा कर्म होते हैं जो वाणीसे किये जायें किंतु जो कोई पुरुष (अनृतवादी) असत्य बोलने में

तत्परहो और (पिशुन) जो पराये कानमें घीमे बोलिके पराई चुगली चाई की बातें बहुधा किया करें जो बातें सुनिके किसीको उद्वेग या शोभ होता हो और (अनिवृद्ध प्रलापी) वह पुरुष जो बिना ठीक जोड़के असंगत बातें बनाकर पुकारता फिरै कि जिन बातोंका संसर्ग भी सम्भव नहीं था ऐसा पुरुष पशु आदि मृगजीवोंकी योनियों या किसी प्रकारकी पक्षी योनियोंमें जाकर जन्म लेता है—वहाँ भी ये भेद उसमें जुदे हैं कि जिसने उक्त बातें जानि वृक्षके बनाई और बोली होंगी सो अति नीच पशु पक्षी की योनि पावै या जिसने बिना समुझे कुछ बोखेसे उस भाँतिकी बात बोलीहोंगी सो कुछ अच्छे पशु पक्षीकी योनिपावै इत्यादि नानाभाँतिसे असंख्य भेद होतेहैं ॥ १३५ ॥

बिनादिया लेनेमें निरत और पराईदाराका उपसेवक और अविधान से हिंसक सर्वथा स्थावरोंमें जन्मता है—अर्थात्—ये काया कर्म होतेहैं जो हाथआदि कायासे कियेजायें किंतु जो बिनादिये बिराना धन हरनेमेंतत्परहो और बिरानीस्त्रियोंके भोगने में लगा रहता हो और बिना विधान के हिंसा करता हो अर्थात् शास्त्रोक्त बलिदान या शास्त्रोक्त प्राणादाह या शास्त्रोक्त धर्मयुद्ध इनसे उपरालू जो जीवोंकी निरर्थक हिंसा यद्वा इन्हीं कामोंमें विधिको छोड़ बिना विधिके हिंसा करता हो सोभी वृक्षादि स्थावर सृष्टिज्ञा जन्म जाकर पाताहै उसमें भी असंख्य भेदहैं कि यहाँ जिसने जैसा बड़ा छोटा दोष उत्पन्न किया होगा तैसे बड़े छोटे उत्तम मध्यम नीच स्थावरों में जन्म उसको मिलता है कि आँव या बधूर आदि वृक्षहो या लतावेलिहो या प्रतान छतरोला पेड़हो इत्यादि—क्योंकि बिना दिये धन हरनेमें भी नाना भेद होते हैं कि जैसे कोमलता से फुसिलाकर हरा या कठोरतासे भारि पीटिकर छोटा या चोरीसे हरा या बोखा देकर या सौंपा हुआ नहीं दिया इत्यादि सभी बातों में असंख्य भेद होते हैं ॥ १३६ ॥

१३७ अधिकोक्तिः—यद्यपि एकसौ इकत्तिस बत्तीस श्लोकों के अर्थ में लिख चुके और उन्हीं श्लोकों का विस्तार यहाँभी स्पष्ट किया गया—तौभी शंकार्ये चली आती हैं अब सबसे पहिले किसी कल्प की आदि में समस्त शरीर वाले जीवात्मा ने केवल मनही से मानस कर्माँ के बीज भाव पैदा किये (अर्थात् जो मनसे अच्छेसंकल्प किये होंगे तो उत्तम तीनि वर्णों में जन्म पाया होगा या मध्यम संकल्प से चौथे शूद्र वर्ण में या मनसे खोटे संकल्प किये होंगे तो चंडाल आदि नीचीजातों में जन्म पाया) तिससे सबसे प्रथम मनुष्ययोनि में अवतार पाना निश्चित भया तौभी कोई विरोध नहीं ठहिरा—क्योंकि मुख्य मानस बीजों के प्रभाव से मनुष्य होकर उली पहिली देहमें अमृतवादी या पिशुन होनेकेद्वारा वाचाकर्मभी उत्पन्नहुये और परस्त्री

के उपभोग या बिना दिये धन हरनेकेद्वारा कायाकर्मभी उत्पन्नहुये तिनसेफिर पशु पक्षीकी योनि और स्थावर वृक्षादिकों की योनिमें भी जानेलगे तब क्रमसेऔर सृष्टि भी उत्पन्न हुई•तौ इसक्रमसे बड़ा बिलम्ब बीताहोगा तब संसार पूरा बनावेहोगा किंतु यहभी एकसदेहरूपीदूरगयापायागया कि एकसाथही सबसृष्टिकी उत्पत्ति न होसकी होगी क्योंकि कर्म बीजों के आधेन होकर इसी क्रमसे ठहरे हुई=समाधान•सुनों सृष्टिके उत्पन्नहोने मध्ये कोईसा एकहीमार्ग ऐसा नहींहै कि जिसका भेद सगमता से हर कोई पासके (नेतिनेति) ऐसा कहिकर वेदकी श्रुतियाँही अपनी अशक्ति बशांती है फिर औरोंकी क्या सत्ताहै जो ईश्वरके निःशेष मार्गों का भेद होसके—सब से पहिली सृष्टि की आदि मे विशेषकर कर्म बीजोंकी आवश्यकता ईश्वरको नहीं भी होतीहै जैसा मनुका अशोक वचन है=मनुग्रह=यंतुकर्मगायस्मिन्सन्निधुंक्तप्रथमं प्रभुः सतदेवस्त्वयंभजेसृज्यमानःपुनःपुनः=अर्थात्—वह समर्थ प्रभुने सबसे पहिले कल्प में जिस जीवको जिस कामके धर्म मे अपनी सामर्थ्य से लगादियाया वहीजीव फिर बारंबार कल्पोंकी रचना समय जब जब सृज्जाता है तब तब आपही उसी कर्मको भजने लगता है (जैसा इसवचनमें कर्म बीजोंका प्रयोजन कुछ आवश्यक नहींदहिरा तैसे और भी सृष्टिके अनेक मार्ग हैं) इसी मनुवचन के अनुकूल अरसठि का श्लोक और इसी की अधिकोक्ति मे जो वचनहै सोभी देखो कि केवल कर्म बीजोंका नियम उसमें नहीं है—और भी—एक सौ तरेसठि १६३ का श्लोक आगे देखना कि उसमें कर्म बीज से उपरालू अन्य कारणा भी दशयिे जायेंगे तिससे ऐसी शंका न करनी चाहिये—और—यथार्थ में सबसे पहिला कल्प ही कोई नहीं है क्योंकि जो सब से पहिला कोई कल्प ठहरे तौ परमात्मा की आदि भी जानोजाय उसके आदि नहीं है वह अपनी प्रभुताकी सामर्थ्य सेही एक साथ सबकुछ उत्पन्न करसक्ताहै (इसके प्रमाण मध्ये एकसौछत्वीस आदि श्लोकोंकोदेखो कि सबकुछ एक साथही उत्पन्न किया) और भी बहुतरि मूलश्लोक मे गुणपत शब्द के अर्थों को विचारो कि उसने अपनी समर्थ सेही एकसाथ गर्भमें सब अण और अनेक भौतिकी सामग्री तथाइन्द्री आदि का समवाय इकट्ठाकिया और सदा करता रहिताहै कि जिसका आगापीछा कोई नहीं जानिसक्ताहै कर्वाकिया कैसे किया•और भी चौहतरि मूलश्लोकमे (तस्ये तदात्मजसर्व सनादेरादिमिच्छतः) इस अन्वा के अर्थ देखो कि इतना सर्व समवाय उसके पासही से उत्पन्नहुआ किसी मशाले की जखरत उसको नहीं होती=यथार्थ से=यहां जो एकसौ चौतास आदि श्लोकों में कर्मों का विपाक वर्णन कियागया

सोभी ऐसी दशापर आखंड है कि जब निरंतर जीवोंका आवागमन जारी हो रहा हो (जैसे गेहूं से खेत और खेत से गेहूं फिर गेहूं से खेत फिर खेतसे गेहूं) अब इसमें जो कोई तर्क उठाना चाहै कि पहिले गेहूंया या खेत जो खेतवताओ तो बिना बीज क्यों कर उगा जो गेहूं पहिले वृत्ताओ तो खेत बिना बीज कहाँसे पैदा हुआ—सो यह तर्क भी ऐसा है कि सर्वशक्तिमान् ईश्वरके ईश्वरत्वको गाँड़में चुना लगाने का मनोरथ दहरता है—क्योंकि ऐसी शंकार्य भी तभी तक उठि खड़ी होतीहैं कि जबतक जानी के ध्यानमें ईश्वर की सामर्थ्यका स्वरूप नहीं प्रकाश होता किंतु उसकी सामर्थ्यका पूरा रूप उदय होनेसे इसभाँति की शंकार्य भी अश्विनके धूमकी तरह स्वतः उठि उठि कर उड़ी चली जाती खड़ी होनेको अवकाश नहीं पाती हैं—ईश्वर अपनी प्रभुता से सब कुछ सबतरह कर दिखाता है न आगे पीछेका कुछ नियमहै न एक सायका (एक सो चौबीस मूल श्लोक वाला पिछला अष्टादेखो) यह ससार भी अनादि अंत छपी चक्रके समान धमता कहिचुके तिसकी रचनामें बिलंब होनेका क्या अवसर है या पहिला पीछा ढूँढना का प्रयोजन है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

जैसे ऊपर मानस वाचिक कार्यात्मक कर्मोंके प्रभावसे जन्मभेद होना कहा गया— तैसे सतोयुरा रजोयुरा तमोयुरा इनके शुद्ध परिपाक से भी जन्मभेद होता है सो नीचे समझाकर उन्हीं तीनों युराके लक्षणा भी दशावैशे ॥

(सत्त्वादिगुणपरिपाकः गुणानांचिह्नानिच)

आत्मज्ञः शौचवान् दान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः । धर्मकृद्देवविद्यावित्सात्त्विको देवयोनिरिति १३७ ॥

असत्कार्यरतोऽधीरभारं भीविषयीचयः । सराजसोमनुष्येषु मृतो जन्मा भिगच्छति १३८ ॥

निब्राह्मणः कूरुल्लुब्धो नास्ति कोयाचकस्तथा । प्रमादवान् भिन्नचतुर्भवेति पर्यस्तुतामसः १३९ ॥

अर्थः—आत्माको जाननेवाला • शौचवाला • दान्त • तपस्वी • विशेषविजितेन्द्रिय • धर्म करनेवाला • देवविद्या जाननेवाला • सात्त्विक जानी वह देवयोनिको जाता है—अर्थात्—आत्मज्ञ वह कि जो आत्मा के स्वरूपको जानि पहिंचानिके विद्या तथा धनके अभिमानसे भी रहित होय—शौचवाच वह कि जो बाहरकी शौचक्रियासे शरीरको शुद्ध राखता हो और भीतर अंतःकरणभी कण्ठी न हो—दान्त वह कि जिसने इन्द्रियोंको यथोचित शिक्षासे संपन्न किया हो—तपस्वी जो कृच्छ्र आदि तपमें प्रवृत्तरहिता हो—विजितेन्द्रिय जिसने विशेषकर इंद्रियों को ऐसा जीति रखवा हो जो अपने विषयों पर वहकने न पावें—धर्मकृद् वह कि जो नित्यधर्म नैमित्तिक धर्म जातीधर्म इन सब

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

२०१

की साधना करताहो—वेद विद्याविद्वद् वह किजो वेदोंके अर्थको जानताहो—इतने लक्षर्योंसे पहिंचाना जाताहै कि यह सत्तोगुण वाला सात्त्विक पुरुषहै और ऐसा सत्तोगुणी देव योनिमें जाकर जन्मलेता है—वहों भी सामान्य वा उत्तम अति उत्तम आदि देवता योनि उसके अनुसार मिलतीहै कि जैसा थोड़ा बहुत या उत्तम आदि सत्तोगुण संचय हुआहो ॥ १३७ ॥ जो असत्कार्योंमें लीन-अधीर-आरंभी-और विषयीभी हो सो राजस जानों वह सराहुआ फिर मनुष्यों में जन्म को पहुंचता है—अर्थात्—गाने बजाने नाचने आदि बहुधा असत्काम तिनके करने या करवाने में जो तत्पर बना-रहिता हो और अधीर किन्तु व्यग्रचित्त रहिता हो कभी सावधानी को न पावै और आरंभी किंतु सदाही संसारी विषयोंके रंठ घंट जिसको लगे रहितेहों—इतने लक्षर्योंसे पहिंचाना जाताहै कि यह रजोगुण वाला राजस पुरुष है और ऐसा रजोगुणी मरे पीछे फिर भी मनुष्य योनिमें जन्मताहै वहों भी अति हीन वा हीन वा उत्तम अति उत्तम आदि मनुष्योंमें होताहै कि जैसा कुछ अच्छा बुरा राजसगुण संचय होचुका होगा १३८ निद्रालू-क्रूरकर्मा-लुब्ध-नास्तिक तथा याचक-प्रमादवाच-भिन्नवृत्त-तामस जानों वह तिर्यक् योनिमें होयहै—अर्थात्—निद्रालू जो सदा दिनमें भी सोता रहिताहो—क्रूरकर्मा जो प्राणियोंको पीडा देनेवाले काम करता हो—लुब्ध जो अति लोभी किंतु अनुचित मार्गसे भी लोभ करताहो—नास्तिक जो धर्म आदि की निंदा में तत्परहो—याचक जो सदैव मांगनेका स्वभावही रखताहो—प्रमादवाच जो करने न करने योग्य कामका विचार करसकने में सदा गारिफिल रहिता हो अर्थात् विचार की शक्तिसे बिहीनहो—भिन्नवृत्त जिसने अपना जातीधर्माचार आदि छोड़िके कुछ विरोधी आचरणा अमीकार कियाहो—इतने लक्षर्यों से पहिंचाना जाताहै कि यह तमोगुण वाला तामस पुरुषहै और ऐसा तमोगुणी तिर्यक् तिरछी योनिमें अर्थात् पशु पक्षी आदिमें जाकर जन्मपाताहै—वहों भी उत्तम मध्यम नीच आदि शरीर उस के अनुसार मिला करताहै कि जैसा कुछ तामसगुणका संचय होचुका होगा ॥ १३९ ॥

॥ एकसौ वत्तीस तेतीस श्लोकसे आदि लेकर यहाँ तक जो कुछ दर्शाया तिसको याद दिलातेहुये सबका उपसंहार नीचे कहेगे ॥

(पूर्वोक्तस्योपसंहारः)

रजतामसाचेवंसमाविष्टोऽसन्निह । मावैरनिष्टे संपुक्त सत्तारप्रतिपद्यते १४० ॥
अर्थः—एवं रज तम दोनों से सम्यक् आविष्ट हुआ अनिष्ट भावों से संपुक्त इहां

भ्रमते हुये संसारको पहुँचता है—अर्थात्—एकसौ उनतीस श्लोक में शंकाकरीगई थी कि जों ईश्वरहै सो कैसे अनित्य भावोंसे संयुक्त होताहै—तिसका उत्तर यहां उपसंहार में तोड़ करिके समझाते हैं कि—एवं इसप्रकार जैसा छे सात श्लोकों में कहागया तैसे रजोगुणा तमोगुणा इनदोनों से लिप्तहुआ यह आत्मा का चिदंशमात्र इहाँसंसारही में भ्रमता घूमता हुआ नानाभांति दुःख देनेवाले अनित्यभावों से संयुक्तहोकर (संसारप्रति पद्यते) देहरूप संसार को पाताहै—तिससे उक्त शंका का अवकाश नहीं है १४० ॥ इसीका शेषउत्तर आगे सुनो ॥

(पुनश्चाह)

मलिनोद्दिष्टाऽऽदृशोरूपालोकस्थनक्षमा । तथाऽविपक्करणभात्मज्ञानस्थनक्षमाः १४१ ॥
कद्वेर्वारोयथाऽपक्वेमधुरभृन्नरसोपिन । प्राप्यतेह्यात्मनितपानापक्करणेक्षता १४२ ॥

अर्थः—मलीन दर्पणा जैसे रूप देखाने में समर्थ नहीं तैसे विनापके करणावाला आत्मा अपने ज्ञानको समर्थ नहीं—अर्थात्—एकसौतीसके पूर्वार्ध श्लोक से यह शंका करीगई थी कि मन बुद्धि आदि अंतःकरणासे संयुक्त होतेहुये भी उस आत्माको अपना पूर्वजन्म संबन्धी ज्ञान क्यों नहीं आता। तिसका व्यौरा बीच में समझाने पीछे अब कहिते हैं कि—हाँ ठीक यद्यपि आत्मा मन बुद्धि आदि अंतःकरणा से संपन्नहै तथापि जन्मांतर के बीते वृत्तांत यदि काने में समर्थ नहींहोता क्योंकि भीतरले मन बुद्धि आदि करणा औजार जोहें सो पके नहीं अर्थात् राग द्वेषआदि मलोंसे जड़ितहुआ चित्त रहितहै कि जैसे दर्पणाका शीशा मलसे जटि जाताहै (और यही अपनी नाया की आज्ञा उसने रक्तीहै कि कोई उसका भेदखुल्लम करिके न पाइसके) इसीका दृष्टांत आगे देखो ॥ १४१ ॥ जैसे कडुवे सर्बानु फलमें मिठास होते हुये भी कचचे में रसमीठा नहीं पायाजाताहै तैसे विनापके करणा के आत्मामें भी ज्ञता विज्ञता नहीं प्राप्तहोती है—अर्थात्—कदाचित् यह शंका भी आरोपित करीजाय कि जन्मांतरों का न जानि सकना जीववर्ससे भी ठीक पायाजाताहै कि जब उसको जीवसंज्ञा मिली तभी उसका जन्मांतर ज्ञान जातारहा—परंतु जबतक जीव संज्ञा नहीं मिली सबसे पहिलाही निज रूप जो उसीआत्माका स्वरूपथा तिसका ज्ञान तो होनाचाहिये क्योंकि वैसे आत्मा का स्वरूपज्ञान ठीकठीक आत्मासेही प्रकाश होसकता और यह अपनीवात्त आपही उसको सिद्धहोगी तिससे यह कहिनाठीक नहींहै कि वह अपने भी स्वरूपको नहीं जानि सकता है—ऐसे वितर्कस्वरूपी शंकाके समाधान मध्ये यह दृष्टांत देतेहैं कि—जैसे कडुवी ककड़ी कचरिया आदि फलों में यद्यपि नीरा रस वर्तमान है तथापि उनके

पके बिना सीढ़ा रस नहीं जाना जाता है तथैव बिनापके करण के (अर्थात् अंतः-करण का शोधन हुये बिना) आत्मा में ज्ञाता सर्वज्ञता उपस्थित होते हुयेभी पहिले स्वस्व का ज्ञान पाया नहीं जासक्ता है ॥ १४२ ॥

(पुनरप्याह)

सर्वाभ्यानिजेदेहेवेहीविंवतिवेदनाम् । योगीमुक्तश्चतर्वासायोगमाप्नोतिवेदनाम् १४३

अर्थः—सब में आश्रित हुई वेदना को देही निज अपने देह में पाता जानता है। मुक्तशुद्धवाला योगी सब मूर्तियोंकी वेदनाको योगमें प्राप्तकरि जानताहै=अर्थात्—सकसों तीस के उत्तरार्ध मूल श्लोक से जो प्रश्न किया गया था तिसका जुदा उत्तर यहां देतेहैं कि—सब मूर्तियों में तिकीहुई वेदना पीडाको देही जो आत्मा सेजुतहै सो उसी अपने जुदे जुदे देह के द्वारा जानता पहिचानता है कि जो जो उसके भोगों के जुदे जुदे स्थान कल्पित हुये अर्थात् एक देहसे दूसरे देहकी पीडानहीं पहिचानता क्योंकि भोगस्थान बनने का हेतुरूप जो पहिले कर्म अदृष्ट होतेहैं तिनका बिलसरा स्वभाव यही है—परंतु योगी पुरुष (जिसके लक्षण पहिले बहुत बरान होचुके हैं) जो अहंकार आदिके त्याग से निर्मुक्त हो सो इस सकही देहसे सब मूर्तियों में घूसी हुई वेदना पीडा को अपने योग रूपी ध्यान में ठीक ठीक पाता और जानता पहिचानता है—इसमें संदेह नहीं ॥ १४३ ॥

कदाचित्त यहाँ यह शका खड़ी होय कि आत्मा एकहै सकही आत्मामें सुर नर असुर आदि नाना देहभेद होनेका प्रसारा कोईनहीं समझमें आया—
तितका समाधान आगे कहेंगे ॥

(एकस्यैव नानाघटभेदाः)

आकाशमेकां हि यथा घटादिषु पश्यन्मचेत् । तथैवैको ह्यनेकश्च जलाधारेऽपि वायुमान् १४४

अर्थः—जैसे आकाश एकही है घटादिकों में जुदा होजाय तैसे आत्मा एक वा अनेक भी है जलाधारों में सूर्य की भांति—अर्थात्—जैसे महा आकाश एक होते हुये भी कुछ बड़े सक्ताओं के भीतर घिरिके कुछ कुवा बावडोंमें घिरिके कुछ सरकी घडे ढोलक आदि वस्तुओंमें घिरिके जुदा जुदा दीख परने लगा और इन्हीं नाना भांति की उपाधियोंमें आकाशके अनेक भेद होकर वैसे नामभेद भी होजातेहैं कि सदाकाश घडाकाश वस्त्राकाश इत्यादि ऐसेही आत्मा भी एकसे अनेक दीखनेलगा और उन्हीं

नानाभांति की उपाधियों के भेद से देव नर दैत्य आदि नामभेद भी कहाने लगता अथवा दूसरा यह दृष्टांत है कि जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब एक ही वह नानाभांतिके जलाशय कूप तडाग नदी आदिमें आभास जुदा जुदा देखि परनेसे अनेक रूपसा होजाता है या कांच आदि बहुधा चमकीली चीजोंमें आभास परनेसे अनेक सूर्य देखि परते हैं तथैव आत्मा यद्यपि एक है तथापि नाना देहोंमें अंतःकरणा रूपी उपाधियों के भेद से अनेक रूप देखि परता है ॥ आकाश और सूर्यके दृष्टांतोंसे पूर्वोक्त पारस्पर्य की दोनों बातें यहां पर दशार्द्धिगई कि आत्माके बीच में सृष्टि और सृष्टिके बीच में आत्मा इन प्रकारों से परस्पर लीन हो रहे हैं ॥ १४४ ॥

पहिले जो बहत्तर ७२ श्लोकसे आदि लेकर गर्भद्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति कही गई थी कि पृथ्वी आदि पाँच जड़धातु और ऊरा चैतन्यवातु आत्मा का चिदंश ये सब सकलसाथही लेकर प्रभु आप रचना करवाता है इत्यादि और जो कुछ कहा था—सो सब खींचकर फिर भी यहाँ द्यौरेवार ईश्वरकी ईश्वरता द्वारा अगिले परिच्छेदमें समु-भाविंगे कि जिससे उसका कर्तव्य जाना जाय ॥



अथ परमात्मनो जगदुत्पत्तौ बीजवापादिकर्मानन्तर मेव सर्वव्यापित्वविवेको नाम षोडशः परिच्छेदः १६

इस परिच्छेदमें यह ज्ञान वर्णानहोसा कि जगत्की उत्पत्तिमें बीज बोलने आदि कर्मोंके साथही परमात्मा सबसृष्टिमें व्याप्त होजाता है तिससे कोई बस्तु या कोई जीव ऐसा नहीं देखि परता कि जिसमें उसका निवास न हो ॥

(जगदुत्पत्तिबीजवापः)

ब्रह्मखानिलतेजांसि जलभूभेति यातवः । इमे लोका एष चात्मा तस्माच्च स चराचरम् १४५

अर्थः—ब्रह्म आत्मा खस आकाश अनिल वायु तेज अग्नि जल पानी भूः धरती मारी ये धातु लोकनीय और यह आत्मा चैतन्य तिसके योग से चर अचर सहित जगत् होता है—अर्थात्—इन पाँचों धातुकी उत्पत्ति इसी क्रमसे होती है कि ब्रह्म जो आत्मा है तिसमें उसकी इच्छासे प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ फिर उसी आकाशमें

मितांसरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

२०५

वायु उत्पन्न हुआ फिर वायुसे अग्नि हुआ फिर अग्निसे जल उत्पन्न भया फिर जल से सृष्टिका उत्पन्न हुई वही जमते जमते कम कमसे घली हो जाती है (परंतु उसकी इच्छाने यह भी सामर्थ्य है कि बिना क्रमके एकसाय अचानक भी उत्पन्न होय) अब तात्पर्य यहां यह लेना है कि ये पाँचो वस्तु शरीरों में व्याप्त रहिकर शरीर धामे रहित हैं थांभना जो काम है सो धारना कहाती है इसीलिये इनका नाम धातु कहा गया कि जो धारणा कर सकें सो धातु कहते हैं तथापि (इमे लोका) ये धातु लोकीनीय हैं अर्थात् देखि परने योग्य जड़ वस्तु हैं यह तात्पर्य उहिरा और यह आत्मा जो चैतन्य ग्रहण कहा सोई छटा चिदातु है इन पाँचों के बीच में तो इस भाँति से जड़ चैतन्य दोनों का योग मिलाप उहिरा उसी योग के समुदाय से चराचर सय जगत् की उत्पत्ति होती है ॥ १४५ ॥

(केन प्रकारेण आत्मा जगत् सृजति)

सृष्टं चक्रसंयोगात्कुम्भकारो यथा षट्पदम् । करोति तृणमृत्काष्ठेर्हं वायुहकारकः १४६
हेममात्रमुपादाय रूपं बाहेभकारकम् । निजलालासमायोगात्कोशं वाकोशकारकः १४७
कारणान्येवमादाय तासु तास्विह योनिषु । सृजत्यात्मानमात्मा च संभूय करणानि च १४८

अर्थः—कुम्भार जैसे भारी डंडा चाक इनके संयोगसे घटको (नाना भाँति सिद्ध) करता है—यद्वा गृहकार (घरामी आदि कारीगर) फूस सड़ी लकड़ी की संयोग से घर बनाता है (तैसे आत्मा भी ॥ १४६ ॥ यद्वा केवल सीता लेकर सुनार नाना रूप गहने बनाता है—यद्वा कोशकार नाम कीड़ा अपनी लार (से जाला उत्पन्न करि उसी) के अच्छे योगसे कोशको बनाता है (अर्थात् आपही अपनी लारके जाले से अपने बंध फसे रहने योग्य सुन्दर कोश घर बनाके उसमें शृंग रहता है तैसे आत्मा भी ॥ १४७ ॥ ऐसेही आत्मा भी कारणोंको लेकर तथा करणोंको भी उत्पन्न करिके इससंसार में उन्हीं उन योनियोंमें अपने आत्मा की सृजता है—अर्थात्—देव नर असुर पिशाच आदि नाना भाँति योनियोंमें वैसेही जूदे जूदे रूप अपने आत्मा के बनाकर उनमें रहता है (तहां कोड़े वस्तु या घर बनानेकी सामग्री सर्वत्र दोतरह की प्रसिद्ध होती है कि एक तो ईंट गारा लोहा लकड़ी आदि मुख्य मशाला और दूसरे काम करने के औजार इधियार फिर तीसरे बनाने वाले कारीगर भी अवश्य होते हैं तब कोड़े कार्य सिद्ध होता है) इसका नियम यादि रखी कि मुख्य मशाला तो कारणा कहाता है और उससे बना काम जो मकान या गहना आदि कुछ हो सो कार्य कहाता है और काम करने के औजार इधियार जो हैं सो कारण कहाते हैं और बनानेवाला

कर्ता कहता है—सो यहाँ जगत् रूपी कार्य के बनाने वाला कर्ता आपही आत्मा ब्रह्म है मुख्य मशाला वही पृथ्वी आदि पाँचों धातु हैं सो कारणा समझने और शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये करणा किंतु औजार हैं—इसीसे श्लोकमें यह कहा गया कि धातु रूपी कारणों को लेकर तथा औजार रूपी करणों को भी संहालि के आत्मा अपने आत्मा को संसार में अनेकधा सृजता है ॥ १४८ ॥

॥ १४६ ॥ अधिकोक्तिः—कुम्हार के दृष्टांत में सादी मुख्य धातु या मशालाकड़ी सो कारणा है—डंडा और्चाक सूत धापी उसके करणा औजार हैं कुम्हार आपही उसका कर्ता है और नानाभौतिके पात्र जो जो बनते हैं सो सबकार्यरूप कहाते हैं ॥ इसी प्रकार सोना धातु कारणा है और इथोडा फुंकनी आदि औजार सब करणा कहे जाते हैं तथा बनेहुये आभूषण आदि सब सोनेका कार्य कहिलाते हैं अर्थात् सर्वत्र कारणासे कार्य की उत्पत्ति होती है—और कार्य भी कर्ता बिना नहीं सिद्ध होता है कि जैसे इसमें कर्तासुनार है ऐसेही सर्वत्र सब सृष्टिकी उत्पत्तिको समझना ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

फिरभी यहाँ यह तर्कना खड़ी होती है कि शरीरों की उत्पत्ति जैसी पहिले वर्णन हो चुकी तिससे प्रत्यक्ष जाना जाता है कि बुद्धि आदि अंतःकरणों की वृत्तियाँ और ज्ञानेन्द्री सब अपने जुदे कामों में प्रवृत्त रहते हैं तिससे शरीरके सबधर्म कर्म चलते रहते हैं अर्थात् शरीर के भीतर बुद्धि आदि करणों के सिवाय आत्माका निवास नहीं समझा जाता और जो है भी तो उसहेने का प्रमाण क्या—इसका समाधान आगे बहुत बड़े प्रमाणों से विस्तार करते हैं ॥

(आत्मनः शरीरस्थस्य प्रमाणानि)

महाभूतानि सत्त्वानियथात्मापितयैव हि । कोऽन्यपैकेन नेत्रेण हृष्टमन्येन पश्यति १४९
वाचं वा को विजानाति पुनः संश्रुत्य संश्रुताम् । अतीतार्थस्मृतिः कस्य को वा स्वप्नस्य कारकः १५०
जातिरुपवयो वृत्तविद्या विभिरंशुतः । शब्दाद्विषयो योगं कर्मणामनसागिरा १५१
संसदिग्यमतिः कर्मफलमस्ति न वेति वा । विप्रुतः सिद्धमात्मानमसिद्धोपि हि मन्यते १५२
समदाराः सुतामात्या अहमेवामिति स्थितिः । हिताहितेषु भावेषु विपरितमतिः तदा १५३

अर्थः—महाभूत जैसे सत्य हैं तैसेही आत्मा भी—अन्यथा कौन एक नेत्र से देखे को और से देखता है—अर्थात् शरीरों में पृथ्वी आदि पाँच महाभूत जैसे प्रमाणों करके सत्य समझे जाते हैं तैसे आत्मा भी प्रमाणोंसे सत्य है—अन्यथा यदि उसका होना न मानौगे तो यह शरीरके भीतर ऐसा कौन है जो एकबार आँख से देखी हुई वस्तु को ठीक समझे बिना फिर और किसी इन्द्रो से देखता किन्तु पहिंचाने

का प्रारंभ करदेता है दृष्टांत जैसे हाथ से स्नान या नाक से स्नान या जीभ से चीखना इत्यादि अलटा पलटो कौनकरवाने लगता किन्तु उसीआत्माका यहकामहै ॥१४६॥ यद्वा सुनीवातको फिर अच्छे सुनिके विशेष कौन समझताहै और बीतेहुये प्रयोजनकी यादि किसको आतीहै या सोते हुये स्वप्ना दिखानेवाला कौन है और सोतेसे जागने पीछे उसी स्वप्नको समझानेवाला कौनहै=अर्थात्-जो शरीरों में बुद्धि आदि करणोंके सिवाय आत्मा कोई न हो तो फिर यह किसका कामहै कि एक-वार किसीकी बातको सुनिके फिर दुबारा कहिलाता तब अच्छीतरह तत्त्वको पहि-चानताहै अर्थात्बुद्धि और कान उसके वहीहै कि जिनसे पहिलीवारसुनी तब अच्छी तरह नहीं समझपाईथी-औरभी यदि आत्मा इसके भीतर न हो तो फिर पहिलेकभी देखीसुनी बातको बहुतकाल पीछे कौनयादि करावे अर्थात् वही आत्मा यादि कराताहै-और भी जो आत्मा इसमें न हो तो बुद्धिआदि सर्वइन्द्रियों के निपट सोइजाने पर नानाभौतस्वप्नोंका दिखानेवाला कौनठाहै या सोतेसमय देखीसुनी स्वप्नवाली बातोंको जागतेसमय यादिकराने तथा दूसरेको समझानेवाला कौनठाहै किन्तु उसी आत्माका यहकामहै॥१५०॥जाति•रूप•अवस्था•चरित्र•विद्या•आदिसेअहंकारकौन होताहै-शब्दआदिवियर्थोंकाउद्योगकर्ममनवासीसेकौनकरताहै=अर्थात्-जोआत्मा सब शरीरों में न होता तो इस अहंकारका बोध किसको होता कि हम ऐसी उत्तम जातिमें•हमसेसेरूपवाले•हमसेसे यौवन वयसवाले• हमसेसे वृत्तचरित्रोंके विस्तार करनेवाले•हम ऐसी विद्यावाले धनवाले राजवाले इत्यादि हम कहिनेवाला कौन होता-और-शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गंध•जो प्रत्येक इन्द्रियोंके सुखदेनेवालेभोगप्रसिद्ध हैं कि जिनके प्राप्त होनेका उद्योग उपाय हरकोई मनसे शोचता तथा मुहसे कहिकर करवाता और निज हाथ पैर आदि कायकर्म से भी करता है सो कौन करनेवालाहै अर्थात् ये सब उसी आत्माके उद्योगहै जो सब इन्द्रियोंको निजप्रयोजन में प्रवृत्तिकिये रहितहै ॥ १५१ ॥ सो विप्लुतहुआ सदिरव बुद्धि होताहै कि कर्मकाफल सत्यहै या नहीं और असिद्ध होताहुआभी अपनेको सिद्धही मानेहै=अर्थात्-वही पूर्वोक्तआत्मा यदि विप्लुत (अहंकार के व्यसन से दूषित) हो तब सदेइभरी मति से युक्त होजाता है अर्थात् भलेबुरे कर्मोंके फलमें बुद्धि ठीकठीक स्थिर नहीं रहितो कि फलकाहोना सत्यहै या नहीं (क्योंकि जो फलका होना सत्यमनुभूँ तो बुरेकर्म न करै केवल भले करै सोनहीं)इसी हेतुसे बहुधा अहंकारवाले कर्मोंको कातेहुये उनमें सिद्धिके न होने पर भी अहंकार से यह समझिलेता है कि अबहाल मैंने सिद्ध किया अब मैं सिद्ध

सनोरथ हुआ ॥ १५२ ॥ मेरे स्त्रियां सुत अमात्य में इनका यह स्थिति (उसकी होती और) हित अहित भावों में सदा सति विपरीत (रहती है) = अर्थात्—उसी अहंकार से दूषित आत्मा के मन में इस प्रकार की धारणा (स्थित) होती है कि ये मेरे स्त्रियां ये पुत्र ये स्त्री गुमापते दूत आदि और मैं इनका प्रतिपालक स्वामी—और भी—कार्यों के (हित अहित) भले बुरे भाव जो आगे की उत्पन्न होनेवाले हों तिनमें सदा उसकी सति उलटी रही आती है (तिससे जो कुछ और भी फल होता है सो अगले प्रतीकों से देखना ॥ १५३ ॥

(अहंकारेण विष्णुतात्मनः फलानि)

ज्ञेयज्ञेयप्रकृतौ चैव विकारे वाऽविशेषवान् । अनाशकाऽनलापातजलप्रपतनोद्यमी १५४ ॥

एवं हृतोऽविनीतात्मा वितपाभिनिवेशवान् । कर्मणा हि पमोहाभ्यामिच्छया चैव बध्यते १५५ ॥

अर्थ—ज्ञेयज्ञ में और प्रकृति में और विकार में भी अविशेषवाला • अनशत • अत-
लापात • जलपतन • इनमें उद्यमी होता है = अर्थात्—ज्ञेयज्ञनाम है आत्मा ब्रह्म का और
प्रकृतिनाम है प्रधानमाया का जिसमें तीनों गुण बराबर मिले होते हैं (किन्तु तीनों
गुणों का बराबर होना ही प्रकृतिका स्वरूप है) और विकारनाम है उसी प्रकृतिका
रूपांतर हो जाना किन्तु उन्हीं तीनों गुणों का परिणाम (जैसे दूध से दही) होकर अहंकार १
मन २ बुद्धि ३ चित्त ४ ये चारि अतः करण उत्पन्न होते हैं—सो वही पूर्वोक्त आत्मा जो
अहंकार के उपद्रव से दूषित होकर विष्णुतुष्टि कहा गया वह इन तीनों में अविशेष-
वाच होता है अर्थात् ब्रह्म १ और प्रकृति २ और विकार ३ इनके भेदों की विशेषता नहीं
समझ सकता है—फिर इसी सूर्यता के हेतु से अनाशक अन्नच्छोदित लंघनकारि के दूसरे
पर अपने प्राण दे देने या अनलापात अग्नि में कूदिके जलजाना या जलप्रपतन कूप
नदी आदि में गिरिके डूबना या विषमसर्पण करना आदि और भी अनेक तरहें तिनमें
उद्यमी उपाय करनेवाला होता है ॥ १५४ ॥ ऐसे प्रवृत्त हुआ वही अविनीत बुद्धि
आत्मा वितथों में अभिनिविष्ट होकर कर्म से या द्वेष मोहों के हेतु निज इच्छा से भी
वैधे फँसे और मारा भी जाय = अर्थात्—जैसा ढंग कूपर कहा गया तैसे न करने योग्य
कार्यों में प्रवृत्त होके (अविनीतात्मा) खोटी बुद्धिवाला (वितथों) कर्मों में का (अभिनिवेश)
आराधन करते करते कभी अपने किये खोटे कर्म से ही अन्य पुरुषों के द्वारा कहीं बंधता
और मारा जाता है या कभी द्वेष मोहों के निज इच्छा से ही फँसता या मरता है
कि जैसा जलजाना डूबि जाना आदि पहिले कह चुके सो निज इच्छा से समझना १५५ ॥
इसे उपद्रवों से विष्णुतुष्टि पुरुष की सद्गति इसी देह से या और किसी देह से फिर

भी कभी विद्यास पूर्व होतेहैं या नहीं सो नीचे वर्णन करतेहुये एक औभी उपासना का प्रकार सूचन करेंगे ॥

(विलुतात्मनोपिकालान्तरेण उपासनाभेदेःसद्रतिःख्यात्)

आचार्योपासनवेदशास्त्रार्थपुविवेकिता । तत्कर्मणामनुष्ठानसंगःसद्रिगिर.शुभाः १५६
इत्यालोकालंभविषमःसर्वभूतात्मदर्शनम् । त्याग.परिश्रहणांचजीर्णकापायधारणम् १५७
विषयेन्द्रियसंरोधस्तद्बालस्थविवर्जनम् । शरीरपरितर्प्यानंप्रवृत्तिष्ववर्जनम् १५८
नीरजस्तमतासत्त्वशुद्धिर्निःस्पृहताशमः । एतेरुपायैःसंयुद्ध सत्त्वयोग्यमृतीभवेत् १५९

अर्थः—आचार्य की उपासना वेद शास्त्र के अर्थों में विवेकिता • तिनके कर्मों का अनुष्ठान • सत्पुरुषों का संग • सुशीलवासी = स्त्रियों को देखने वा छूने का त्याग • सर्व भूतों को निज आत्मातुल्य देखना • परिश्रहों का भी त्याग • जीर्ण वा कटाव वस्त्रों का परिहरना = वियर्थों से इन्द्रियों का अच्छा निरोध • तंत्रा वा आलस्य का छोड़ना • शारीरक विद्याका विचार • प्रवृत्तियों में पापका परिहृत्तना = निकास देना रज तम के भाव का • सत्त्व का शुद्ध करना • निकास देना (स्पृहा) अभिजाय का • स्वभाव में शमता • इतने उपायों से शुद्धाहुआ सत्त्वयोगी अमृती होय = अर्थात्—पूर्वाक्त विरलुत हुआ (उपद्रव्ययुक्त) आत्मा जब कभी कालान्तर में चाहे इसी देहसे या और किसी देहमें जाकर इतने कर्मोंकी साधना करे तब इन उपायों से शुद्ध होकर (सत्त्वयोगी अमृतीभवेत्) वही अयोगी योग साधेविना भी अमृती होय किन्तु मोक्ष रूपी अमृत का भागी होता है (यहाँ सत्त्व के साथ तु अन्यय अवधारणा और प्रशंसा में समझनी) = उन कर्मोंकी साधना जो कृपण सब लिखो गइं तिसका अभिप्रायत्तपी अर्थ यह है कि—प्रथम तो विद्यापढनेके निमित्तसे विद्यागुरु आदि अच्छे आचार्यों के पास रहिकर निष्कपट उनकी सेवा करे—फिर पातजल योगशास्त्र वेदांत आदि शास्त्रों में अच्छाअर्थ समझने का विवेक बढ़ावे—फिर उन्हीं शास्त्रों में लिखे हुये कर्मोंका अनुष्ठान करे—और अनेक सत्पुरुषोंसे सत्संगतिकरिके उनमें जो जो अच्छी प्रज्ञा या कोइता उत्तमगुणा देखे सोभी नम्रतासे रंग्रहकरे—और अच्छी सुशीलता की बारासीसीखे कठोर वाणी किसीसे न बोलै—और परस्त्री का देखना तथा आ से स्पर्श करना त्यागै—और सर्वभूत चर अचरकोभी दुखहेने मध्ये अपनी देहके समान शोचकरे कि जैसी अपनी देहमें पीड़ाहोती है किंतु सबहीमें आत्माको बिराजमान देखे—और परिग्रह जो बड़े विकट कर्मों के निमित्त से बहुत मनुष्यों का मग्न करना

परताहै तिन दखेदेवाले परिग्रहों काभी त्याग रखै—और जो बनिआवै तो यहाँतक शरीरको बशमें करै कि फरेपुराने बख्तोंको गेहूआदि से रंगेहुये धारणा करै इससे यह तात्पर्य दर्शाया है कि अवसर मिलै तो संन्यासीभी होजाय जैसा संन्यासधर्म वर्णन करचुके—औरविययजो०शब्द०स्पर्श०रूप०रस०गन्ध०ये पाँच इंद्रियोंको भोग हैं तिनसबसे तिन इंद्रियोंको रोकै—और तंद्रा जो निद्राकी छोटीबहिन एकप्रकारकी शुस्ती होती है तथा आलस्य जो काहली प्रसिद्ध है (कि जो काम अवश्यकरनाचाहिये जिसके काने नाफिक समर्थ मौजूदहै तथापि अनुत्साहसे न करना यह आलस्य होताहै) इनदोनोंको दूरिहीसे बचाता रहै पास न आनेदे—और (शरीरकापरिंख्यान)शरीरक हिसाब जो७०सत्तरी प्रलोकसे आदि लेकर१०६सकसौनौप्रलोकतक वर्णन होचुका तिसको अच्छे समझिके यादिकरै—और सर्वत्र प्रवृत्तियों में अध पाप का देखना अर्थात् प्रवृत्तिनामहै कहीं जाना चलना हाथपाँवका दौडाना या किसी कार्यका प्रारंभ करना या किसी कार्य में बुद्धिका विचार दौडाना आदि तिन सब तरहकी प्रवृत्तियों में सबसे पहिले किसी जीवकी हिंसा होजानेका पाप दुंदुता है कि इस प्रवृत्तिमें असुक पापहोना सो न होनेपावै—और रजोगुण तमोगुणाका स्वभाव जैसा (१३८।१३९)दो प्रलोकोंसे वर्णन होचुका सो न राखै—और सत्त्वकी शुद्धि अर्थात् मनका भावहै वह सत्त्व कहाताहै तिसको अनेक प्राणायाम आदि उपायों से शुद्धराखै—और निस्पृहता किन्तु विशेषभोगोंकी अभिलाष छोडिदेना यही बहुतबड़ी तपस्याका बीजहै—यस अर्थात् भीतरजी चित्तकी वृत्तियोंको जीति के शांत राखै यही तप कहाताहै—ये सब आचार्य की सेवा आदि जो कुछ उपाय कहेगये तिनकी साधनासे अच्छा शुद्धहुआ आत्मा यद्यपि अयोगी (किन्तु संन्यास आदि योग नहीं किया) हो सोभी इतने उपायोंसे अमृत मोक्षका भागी होजाताहै ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

१५६अधिकोक्तिः—एकसौ उनसठ प्रलोकमें (सत्त्वयोग्यमृतीभवेत्) यह चौथा पादहै तिसका अर्थान्वय दो तरहसे होताहै एकतौ (सत्त्वयोगी अमृती भवेत्) यह पदच्छेद है तिसका अर्थ ऊपर लिखा गया—और दूसरा (सत्त्वयोगी अमृती भवेत्) यह पदच्छेदहै इसकाअर्थ ऐसे होताहै कि सत्त्व जो सत्तोगुण है वही मनके भावकी शुद्धि समझना तिसका साधनेवाला सत्त्वयोगी ठहिरा सो अमृतका भागी होताहै—यद्यपि अर्थ दोनों सत्य हैं तथापि येवही समझना जो ऊपर अर्थों में लिखा गया क्योंकि सत्त्वका योगी पूरा संन्यासी होताहै तिसका प्रसंग पहिले संन्यास धर्म में

आहुता—किन्तु यहाँ यह दूसरी भाँतिकी उपासनाविधि उसके लिये कहाँ गई जो सत्वका योगी पूरा न हो केवल इन्हीं चारश्लोकों में कही हुई उपासना के सामान्य उपायों से अपने आत्मा का शोधनसाध कर सके सो अयोगी भी मोक्षभागी होता है चाहें कोईही कुछ योगी संन्यासी का नियम नहीं यहनात्पर्यहै ॥ इसनात्पर्यके ठीक होने पर भी याद रखवौ कि दोनों अर्थ समझना क्योंकि यह ऐसा पुरुष भी कदाचित्त साधना करते करते पूरा, योगधारी संन्यासी होजाय तो वह दूसरे अर्थके अनुसार सत्वहीका योगी समझा जायगा—इसीलिये अगिले दो श्लोकोंको विचारो कि याज्ञवल्क्यजीने योगी अयोगी दोनोंका तात्पर्य उल्लेख दर्शायाहै ॥ अगिले दो श्लोकों में यह नियम सिद्धकरेंगे कि मोक्षपद कैसे मिलता है ॥ १५६॥१५७॥१५८॥१५९॥

इसी प्रसंग में जो कहिना कुछ शेषरहा सो अब अगिले परिच्छेद में देखना ॥

अथ-सत्कर्मादिहेतूनां परिपाकात्जातिस्मरत्त्वदेवयोनि त्वंवागच्छंतीत्यादिविवेकोनामसप्रदशपरिच्छेदः १७॥

इसपरिच्छेद में वह विवेक जाना जायगा कि सत्कर्म आदि विरले अन्य हेतुओं से भी बहुधा प्राणीजातिस्मर होते यहा देवयोनिमें जातेहैं इत्यादि और बातेंभीदर्शावेंगे

(कथंममृतत्वप्राप्तिःजातिस्मरत्वंच)

तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सत्त्वयोगात्परिक्षयात् । कर्मणां सान्निहिकपाञ्चसतांयोगःप्रवर्तते १६०
शरीरसंक्षेपस्थमनःसत्त्वस्थमीश्वरम् । अविश्रुतमतिःसम्पद्जातिस्मरतामियात् १६१

अर्थः—तत्त्व के स्मरण से उपस्थान (प्रणाम) से सत्वके योगसे कर्मोंके साथ होने से सत्पुरुषोंके संगसे योग वर्तमान होताहै कि जिसकामन सत्त्वस्थ होके शरीर नाश होतेसमय ईश्वरमें लगे—अथवा) अविश्रुतबुद्धि हो सो अच्छे जातिस्मरत्त्व को पहुँचें =अर्थात्—अब यादकरौ—पूर्वाक्त दोनों अर्थका तात्पर्य यहाँ दर्शातेहैं कि—तत्त्वस्वप्नी जो आत्मा है तिसकी यादगारी खूबकरतेकते और उसकोबिचरंतर प्रणाम नमस्कार (उपस्थान) उसकेसमीप चित्तलगाते लगाते और मन्त्रनाम जो सतोगुण(किन्तु अपने सत्त्वा) शुद्धभाव तिसके योग मिलाप से कुकर्म्मों के बीज नाश होजाने से साधू

सत्पुत्रयौका संग सेवन करते करते (योगःआत्मयोगःप्रवर्तते) आत्मा से योग नि-
लापहोजाताहै सो यह उधीको कि जिसकासन सतोग्रामें स्थिर होते होते ऐसा नि-
प्रचलहोजाय जो मरतेसमय ईश्वरमें लीनहोसके यह तौ पूरे योगी संन्यासीका चर्चा
किया—अथवा—जो इतना पुरानहोसके केवल अविच्छिन्न बुद्धि होजाय अर्थात् १५२
एकसौ वासनके श्लोकवाली दशमाध्याय मित्तिज्ञाय जिससे आत्मा की पहिंचान में
बुद्धि स्थिर होने लगी पूरी उपासनावाले योगमें होशियारी न होसके तौ भी इतने
उत्तम कर्मके प्रभावसे ऐसा पुरुष मरनेके बाद जहाँ जन्मलेता है तहाँ पहिले जन्मों
के अपने सब दुख सुख आदि यादि करसकनेवाला जातिस्मर होताहै फिर उस जा-
तिस्मरत्व से भी अच्छा ज्ञान होकर मोक्षका रास्ता ढूँढिलेता अर्थात् येय कर्मों में
मन लगाताहै ॥ १६० ॥ १६१ ॥

(अजातिस्मरत्वेपि ह्यंगतिः)

यथाहि भरतोवर्षैर्वर्णयत्यात्मनस्तनुम् । नानारूपाणिकुर्वाणस्तपात्माकर्मजास्तनूः १६२

कालकर्मोत्तमवीजानां वीर्यमातुस्तथैव च । गर्भस्य वैरुतं हृदयमंगहीनादिव जन्मतः १६३

अहंकारेण मनसा गत्या कर्मफलं न च । शरीरेण च नात्माऽयं मुक्तपूर्वः कथंचन १६४

अर्थः—जैसे (भरत) नट नाना रूपों की लीला करते समय अनेक रंगों से अपने
शरीर को (वर्णयति) रचता है तैसे आत्मा भी कर्मों से उत्पन्न भोगों के लिये शरीरों
को नाना रूप से धरताहै ॥ १६२ ॥ तहाँ काल कर्म अपना बीज तथा माताका रक्त
इनके बोझों से अंगहीन आदि गर्भ का विकार जन्म से भी देखा जाता है—अर्थात्—
अंग भंग आदि रूप केवल कर्मों से नहीं किंतु इन बोझों के मिलापसेभी होते हैं कि
एकतौ उस वर्तमानकाल का स्वभाव दूसरे पूर्वजन्मके कर्मों का प्रभाव तीसरे अपने
पिता के वीर्य का देय चौथे माता के रजोरक्त का कुछ बोझ इन सबके या विश्वों
के संयोग से गर्भमें अथा लूला आदि विकार पैदाहोता है यदा जन्म होनेवादा कभी
विकार उदयहोतेहैं ॥ १६३ ॥ अहंकारसे—मनसे—गति (ससार के उत्पत्तिमार्ग) से
कर्म के फलसे भी—शरीर धरनेसेभी—यह आत्मा के स्वरूप नहीं कभी छूटता है जब तक
मोक्ष पदको न पहुँचै—अर्थात्—यहाँ यह शंका खड़ीहोतीथी कि महाप्रलय होजाने
से (सहस्रत्व) बुद्धि आदि सभीविकारों का नाश होकर कर्मोंकेबीजभी नाशहोजाते
होंगे तौफिर प्रलयकेपीछे जब दुबारा नईसृष्टि रचोसई तहाँ सबसेपहिले मिले शरीर
मेंकर्मों का सबध कहाँसे आसता है कि जिससे अंग भंग आदि कूडोलरूप पैदाहो-

इसी शंका के समाधान मध्ये यह उत्तर दिया गया है कि आत्मा कभी भी अज्ञात अहंकार आदि कर्म के बीजों से नहीं ब्रूता अर्थात् प्रलय से पीछे दूसरी सृष्टि में भी पहिली सृष्टि के कर्म बीज संचित बने रहिते हैं कि उन्हींके प्रभावसे दूसरी सृष्टि में भी योनि भेद या अंग भंग आदि रूप भेद उसी आत्मा को मिलता है कि जिसके बीज धरे रहे थे—परंतु उस दशा में बीजनाश हो जाते हैं कि जब उत्तम योग साधना से मोक्षभागी किया जाय ॥ १६४ ॥

१६४ अधिकोक्तिः—कर्मोंके बीज नहीं नाश होते इस बातका दृष्टांत (राजविषय) गदर है कि जैसे किसी समर्थ राजाके राज्यमें महाभयंकर गदर होने लगता है तब तक अच्छे बुरे सब कर्मोंवाले मनुष्य अपना अपना प्रतिकार पानेसे रुकिते हैं अर्थात् धन प्राणों को लूटने मारने वाले आदि लगानेवाले आदि भी दण्ड नहीं पा सकते और प्रजा अथवा राजाकी भलाई करने वाले भी अच्छा फल नहीं पा सकते क्योंकि दोनोंको फलका दाता जो राजा है सो अपने होशमें नहीं रहता तब जो चाहें सो भलाई या बुराई करें उसकी बृहत् नहीं रहती है—ऐसी दशा देखिके अज्ञानी यही समझता है कि ऐसे समयपर सबके कर्म बीज जो कुछ पहिले से भलाई बुराई चली आती थी वह भी मिटिजाती है—परंतु—वही राजा जब राजका प्रबन्ध ठीक करि पाता है (कि इस प्रबन्धको दूसरी सृष्टि कहना चाहिये) तब यथा क्रमसे सबके कर्मबीजों को टोलता है कि इन मनुष्योंके कर्मबीज गदर के साथ या गदर से पहिली दशा में क्या क्या संचित हुये थे तिनका भला बुरा फल भी सबको देता है—अथवा उस राजा से राज ब्रूविजाय तो भी जो दूसरा कोई बिबेकी राजा राज्यपर आखड होता है सो भी प्रजा लोगोंके उन कर्मोंको टोलता है कि जो कुछ पहिले राजाके असलमें कर्मबीज संचित किये हों भले या बुरे दोनों भाँतिके—तो इस प्रकारसे कर्मों के बीज कभी प्रलयके पीछे भी नहीं नाश होते हैं—संसारमें भी देखिलो बारह महीना के बीच में अकाल बर्या चाहें तैसी होजाय बीज नहीं जमता है धरती उसको थाँभे रहती है पर बर्यावृष्टिके प्रारंभमें थोड़ी बूंद पड़नेसे भी वही बीज खजमते हैं कि जिनका काल वर्तमान हो ऐसेही सृष्टिके प्रारंभ में भी ॥ १६४ ॥

एक यह तर्कना खड़ी होती है कि जिन जीवोंके कर्मबीजही प्रधान रहिं तो फिर उनके नियत कर्मोंके समयपरही सौत होनी चाहिये—किंतु यह विपरीत लक्षणा कीसा है कि गुहस्थान आदिमें एकही साथ अनेक प्राणी मरजाते हैं—इसका समाधान अब कहिते हैं ॥

येनैकरूपाश्वाधस्तात्रइमयश्चमृदुप्रभाः । इहकर्मोपभोगायतेःसंतरतितोऽवशः १६९

अर्थः—तिसके नीचे जो अनेकरूप रश्मियां मृदुप्रभा होती हैं तिनके द्वारा इहां (संसारहीमें) कर्मोंके उपभोग के लिये अवश हुआ संसरणा पाताहै—अर्थात्—पूर्वाक्त सैकराके नीचे जो और भी अनेक भाँति नाडियाँ कोमल प्रभावाली हैं तिनके द्वारा जीव निकसनेसे फिर इसी संसार में अपने कर्मोंके वशीभूत जन्मलेताहै कर्मोंकाभोग भोगनेके अर्थसे ॥ १६६ ॥

(अनीश्वराज्ञपिसति)

नास्तिशुभाशुभयोःकर्मणोःफलदातेश्वर । इतिवादिनोऽपिवद्वोऽनीश्वराःसन्तीहलोके

अर्थात्—भले बुरे दोनों कर्मका फल देनेवाला ईश्वर नहींहै ऐसा वाद करनेवाले (जो अनीश्वर कहाते सो) अनीश्वर भी बहुत इसी संसार में हैं और होतेहैं ॥

ईश्वर कोई नहीं यह कहनेवाले भी उसी ईश्वरने रचेहैं कि निज सृष्टि में जो नाना भाँति विचित्रता रची तिनमें एक यह भीहै—अर्थात् थोड़ेसे विद्वान भी तार्किक अर्हंत स्वभाववादी आदि अनीश्वरलोग सदासे होते चले आये जो सृष्टिकी उत्पत्ति केवल स्वभावही से अपने आप होती रहिती यह कहिते हैं—कि इसका कर्त्ता कोई एक ईश्वर नहीं किन्तु वह स्वभावही अपने आप ईश्वर होताहै—विरले तार्किक यह कहते हैं कि आकाशको छोड़ि शेष चारो तत्वके जुदे जुदे परमाणु आदि बहुत छोटे अंशों से आकाश परिपूर्ण रहकरता उन्हीं परमाणुओं की गाँठें बनि बनि ससवाय इकट्ठा होकर स्वतः सृष्टि उत्पन्न होती रहितोहै—तिससे चारो तत्व अपने आपही चैतन्य रूप है अर्थात् उनकी चैतन्य करनेवाला कोई ईश्वर नहींहै—व्यर्थकि जो होता तो देखने में आता किन्तु जो देखने में नहीं आसक्ता तो कुछहै भी नहीं केवल बुद्धिमानों की बनावटहै—ऐसे हठवादीयोंका विचार थोथा दशनि के निमित्त से अगिले कई श्लोकों में अनेक शास्त्रार्थ भरे परेहैं कि जो उनको पुराविस्तार देना चाहानाय तो वहाँ तक निपटारा न होसके तिसके सुषे संक्षेप अर्थ लिखेजायेंगे कि हरकोई शीघ्रसमस्त सब अगिले परिच्छेद में देखना ॥ ॥

अथ-अनीश्वरवादिनां मतखंडनपूर्वकमीश्वरस्य च सर्वग

तस्य प्रत्यक्षलक्षणविवेको नाम अष्टादश परिच्छेदः १८ ॥

इस परिच्छेद में अनीश्वरवादी लोगों का मत भूँडा दशाति हुये समर्थ ईश्वर की
प्रत्यक्ष पहिँचानिवाले चिह्न भी समझाये जायेंगे कि जो चर
अचर सृष्टि में सर्वत्र परि व्याप्त है ॥

(पंचभूतानां प्रचैतन्यत्वं)

वेदैः शास्त्रैः स विज्ञानैर्जन्मना मरणेन च । आर्त्यागत्या तथाऽऽगत्या सत्येन ह्यनृतेन च १७०

श्रेयसा सुखदुःखाभ्यां कर्मभिश्च शुभाशुभैः । निमित्तशक्तुन ज्ञानग्रहसंयोगजैः फलैः १७१

तारानक्षत्रसंचारैर्जागरैश्च प्रजेरपि । आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरेस्तथा १७२

मन्वंतरेषु गणप्राप्त्या संप्रौषधिफलैरपि । वित्तात्मानं वेद्यमानं कारणं जगत्सु तथा १७३

अर्थः—यान्न वत्क्यजी सब समाज के सम्मुख कहिते हैं कि ये मुनीश्वरी-जगत् के
कारणभूत आत्मा को इन सब प्रमाणाँ से समझे और समझाते हुये को सत्य जानौं
(किन्तु प्रमाणाँ से) वेदों से कि वेदकी श्रुतियाँ जैसा उसको जपते हैं (दृष्टांत से सेनेतिनेति
आत्मा का रूप इतना ही नहीं किन्तु वह स्थूल भी नहीं वह सूक्ष्म भी नहीं उसके हाथ
पैर असंख्य वह बिना हाथ पैरों का इत्यादि श्रुति वचन है)—शास्त्रों से कि वेदांत
मीमांसा आन्वीक्षिकी आदि शास्त्र उसका लक्षणा जैसा कहिते हैं—विज्ञानों से भी
सत्य जानौं कि यह शरीर मेरा इत्यादि बातों का बोलनेवाला साफ जताता है कि मैं
शरीर से जुदा इसका मालिक हूँ शरीर मेरा माल है (इन्हीं विज्ञानों में समझ देखौं
कि आत्मा शरीर से उपरालू वस्तु है या नहीं)—तैसे ही जन्म और मरणा से भी समझ
देखौं कि जिससे से वह आत्मा निकसि जाता है तिस देह के पाँचों तत्त्व जब होके
निरर्थक पर रहिजाते हैं फिर वही आत्मा जिस किसी गर्भ में जाकर निवास करता
है तिसके पाँचों तत्त्व चैतन्य होकर एक नया प्राणी पैदा होजाता है (इस प्रमाण से
भी आत्मा जुदीवस्तु और देह जुदीवस्तु निश्चित है)—आर्ति जो पीडा है तिससे भी
समझ देखौं कि जबतक देह में आत्मा का निवास रहता तभीतक सुईकी नोक से
भी पीडा होने लगती है आत्मा के निकसि जानेवादा छुरी घुसेने से भी क्रुद्ध पीडा
नहीं—तथैव (गति आगति) जाना आना इन दो से भी समझ देखौं कि जीवता
हुआ देह भी जो कहीं जाता या कहीं से लौटि आता है सो भी ज्ञान और इच्छा

(योगपद्याकालमरणविवेकः)

वर्त्याधारः स्नेहयोगाद्यपादीपस्य संस्थितिः । विक्रियापि च दृष्टेवमकाले प्राणसंक्षयः १६५

अर्थः—दीपकी स्थिति जैसे चिकनाई के योगसे बत्ती को आधार पर होती है विकाश भी उसमें देखा हुआ दोय है ऐसे ही अकाल में प्राणों का नाश होता है—अर्थात्—जैसे तेल की भीजी अनेक बतियों के सहारे पर अनेक जोति अपने अपने जीवन को तब तक याँभि सकती हैं कि जितना जितना तेल उनमें है (ऐसे ही प्राणी अपने कर्मों के समान जीसकते हैं) परंतु जब बड़ी तीव्र वायु का झकोरा रूपी विपत्ति जितने दीपकों पर एकसाथ आपरती है तब तेल को शेष रहते भी अनेक दीपक एकसाथ बुझ जाते हैं तिनमें भी जिनको कुछ आगे पीछे विपत्ति लगी सो आगे पीछे बुझते हैं (यह वायु की विपत्ति रूपी कारणा देखा हुआ प्रत्यक्ष हेतु कहाता है) ऐसे ही प्राणी भी आयु शेष होते हुये युद्ध आदि देखी हुई विपत्ति में अकालमृत्यु से मरता है अर्थात् कर्मों का बीज रूपी बिना देखा कारणा अदृष्ट कहाता है सो तौ नियत काल ही पर मौत हेतु माना जाता है यह युद्ध आदि देखा हुआ हेतु अनियत काल में भी मौत कर देता है तिससे अकालमृत्यु भी भूँठी नहीं है ॥ १६५ ॥

१६५ अधिकोक्तिः (प्रतिनियत काल विपत्ति हेतु भूतादृश्य-तद्विरुद्ध कार्या करदृश्य हेतु पतिपातेन प्रतिबंध इत्युक्तं च शास्त्रांतरे) अर्थात्—अन्य शास्त्रों में यह प्रमाण भी लिखा है कि मनुष्य को लिखी हुई आयु के ठीक समय पर मरने का हेतु जो बिना देखा नियत हो चुका है तिसको रांक भी हो जाती है उसके बिरोधी कर्म देखे हुये विघ्न रूप आपरने से तभी अकाल मौत हो जाती है ॥ १६५ ॥

(मोक्षस्य मुख्यो मार्गः)

अनंतरादमयस्तस्य दीपवयः स्थितो दृष्टिः । सितासिताः कटुनीलाः कपिलानीललोहिताः १६६
कर्प्यमेकः स्थितस्तत्पांयोभिलत्पूर्यमंडलम् । ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परांगतिम् १६७

अर्थः—(१०८। १०९ इन प्रलोकों में जो लिखि चुके सो देखो फिर उसीको यहाँ आकर शोचो कि) जो चैतन्य रूपी जीव दीपकी गिखा मुख्य हृदय में विराजमान है तिसकी अनन्त असंख्य रस्सी जो नाड़ियाँ हैं सुपेद काली चित्तकवरी नीली सुनहरी गुलाबी लाल काले मिलापके रंगों वाली हर तरफ़ की जाती हैं—तिनमें से (सुयुष्मा नामकी) एक रस्सी ऊपर कपाल तक नहीं है जो बड़ी डोरी सूर्य के मंडल में घुसती

हुई फिर ब्रह्माजीके लोकइको उलाँघती हुई सदा रहितो है (और वेही सब जीवों को डोरियों के छोर उस नटिनी के हाथ में रहिते हैं जो परमात्मा की माया उसकी इच्छा मात्रसे आप नाचती फिरती और सबजीवोंको इखत्त नचातीहै कि जैसे कठपुतरीके स्वांगमें पर्दा बीचदेकर कोई नटिनी सुवधार बनिके आड में बैठती और डोरियों के इशारेसे पुत्तारियोंको नचायाकरतीहै) उसी ब्रह्मलोकसे पार पहुँचीहुई नाड्डी डोरीके मार्गसे परमगतिको जीव जाताहै उस भपटी के साथ जैसे तार बिजली बिना रोकटोक जातीहै इसी भपटी में उसमायाके हाथसे भी रस्मी छोनिके लेजता है सो यह वही जीव ऐसा करसकताहै कि जिसने पूर्वोक्त मार्गसे माया को खूब जीति रक्खाहो परमगतिका यह अर्थहै कि जहाँ पहुँचिके फिर संसारी जन्म मरणा आदि दुःखोंमें नहीं आने सकता है यही मोक्षका स्वरूपहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ तात्पर्य इस आशयसे यह दर्शायाहै कि जिसके प्राण कपाल फटिके निकसैचाहें योगाभ्यास के द्वारा कपालफटै या योगसाधे बिना भी किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे ऐसा बानक स्वतः बनिजाय दोनोंतरहसे मोक्षभागीहोता है—इसी प्रकार अगले श्लोकों में लिखे हुये मार्गसे जीव निकसनेवालेको स्वर्ग आदि मिलतेहैं सो आगेदेखो ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

(स्वर्गप्राप्तिमार्गः)

यवस्याऽन्यद्भदिमशतमूर्ध्वमेवव्यवस्थितम् । तेनदेवशरीराणितैजसानिप्रपद्यते १६८ ॥

अर्थः—जो इसके रस्मिशतक और भी ऊपरहीको स्थितहै तिससे तैजस देव शरीरोंको पहुँचताहै—अर्थात्—पूर्वोक्तमोक्षके मार्गवाली एकडोरीकेसिवाय जो औरभी रस्मियों (नाड्डीयों) का सँकरा इसदेहके भीतरहै कि उसके भी सों छोर ऊपरहीको रहिते और स्वर्गतक जातेहैं कि उसके द्वारा जिसका सरते समय जीव निकसै वह (स्वर्गहीको जाताहै अर्थात्) तैजस जो रजोगुण सत्तोगुण दोनोंके सारसे उत्पन्न एक बड़ा उत्तमधातु सुवर्गसे भी अनंतगुण प्रकाशमान स्वर्बलोक में खानिसे उपजताहै उसी तैजसधातु से इमारतें वहाँ बनती हैं सो बहुत चमकती होतीहैं—और दूसरा एक अदृष्ट तैजस जो तेज बल पराक्रम कांतिका वीजरूप सब देवताओं के शरीरमें वही सत्ता रहितो है कि जिससे उनकेरूप अतिशय कांति युक्त होतेहैं क्योंकि यह सत्ता भी रजोगुण सत्तोगुण के सूक्ष्मसारसे उत्पन्न होतीहै—ऐसे तैजसरूपी देवताओं के शरीर तथा रहितेको वैसे तैजसमय सकान सर्व भोगोंसे भरे हुये जाकर पाताहै कि जहाँ सुख भोगनेके सिवाय दुःखोंका चर्चा नहींहै ॥ १६८ ॥

और प्रयत्न से खाली कहीं न जाता है न आता है अर्थात् प्रथम तो उस टिकाने का ज्ञान चाहिये फिर इच्छा भी जाने तथा आने की चाहिये फिर उसके लिये सवारी आदि कोई सा प्रयत्न भी अवश्य किया जाता है सो इन तीनों बात का अधिकर्ता उस आत्मा के सिवाय कोई नहीं क्योंकि देह उसको इच्छा विना कुछ नहीं कर-सक्ता—असत्य असत्य से भी शोचो कि सत्यवादी होने को प्रतिज्ञा वा असत्य छोड़ देनेका नियम कौन चलाता है शरीर तो आपही जड़ है इसकी यह सामर्थ्य नहीं कि-ससे आत्माही यह करता है—येसेही येयस् अपनेहित कल्याणकाविचार और यहां वा परलोक में सुख दुख प्राप्त होनेका विचार भी आत्मा आप किया करता है जड़ देह का यह काम नहीं—येसेही शुभ अशुभ कर्मों के विचारको भी आत्मा कर्ता है शरीर की सामर्थ्य नहीं क्योंकि ये बातें ज्ञानके आधीन हैं और ज्ञानका विवेक उसी आत्मा के आधीन है—तथा•निमित्त•शक्नुनज्ञान•ग्रहसंयोगजफल•इनसे भी समझ देखो कि निमित्त जो भूकम्प उल्कापातआदि बहुधा शुभ अशुभकीमुचनाकरानेवाले प्रसिद्ध होतेहैं तिनका उत्पन्न करनेवाला आत्मा के सिवाय ऐसा कौन है क्या यहभी जड़देहोंका काम है•यद्वा शक्नुनज्ञान जो पक्षियोंकी बोलीसे या उनके उड़ने बैठने के भेदसे शक्नुन कहेजाते और(शक्नुनवसन्तराजआदिग्रन्थोंसे) ठीक उनके फलहोतेहैं सो प्रभाव उनमें किसने उत्पन्न किया क्या आत्माके विना जड़देहोंका यह काम है• यद्वा सूर्य आदिवग्रहोंके परस्पर संयोग वा दृष्टि आइपरने से जो जो फल गराक विडानों के द्वारा विचार किये जाते और ठीक प्रमारा देते हैं क्या उन ग्रहों के भी प्रभाव आत्मा से उपरालू कोई उत्पन्न करने वाला जड़ देहोंमें से होसक्ता है—तथैव तारा और नक्षत्रोंके संचारसे भी शोचि देखो कि नक्षत्र तो अग्निनीआदि रेवतीपर्यंत और ताग इनसे उपरालू जो आकाश में असंख्य बांख परतेहैं जिनके (संचार)चलने घूमनेका आधार जो शिशुमार चक्र है आकाशी पुलके तत्त्व तिसपर फिरते रहितेहैं सो किसने रचा क्या आत्माके सिवाय जड़देहों की यह कारीगरी होसक्ती है—तथा जागर और स्वप्नज फलों से भी शोचि देखो कि जागर नाम जागते समय जो कोई सा शक्नुन या अपशक्नुन देखा जैसे सूर्य के मण्डलमे छिद्रदेखि परनेलगा या कार्क-मैथुनहोते देखागया या छाया पुरुष अग भग देखि परनेलगा इत्यादि और सोते हुये स्वप्नों में बाराह गर्भवसे जुड़ेहुये रथमें चढ़िकर चलना आदि अनेक भावों से देखना चाहें अपने लिये चाहें किसी राजा आदि अपने प्रियतम के लिये सो सब तद्रूप फल देखने में आतेहैं अब कहो कि जो आत्माकोईनहीं है तो इनचरित्रोंके रचनेवाले क्या

येही जड़शरीर है—तथा जीवोंके उपकार के लिये जो आकाश•धवन•जोति• (अग्नि और उज्जीता) जल•पृथ्वी (जो रत्नोंसे भरी और नाना वस्तु उत्पन्न करनेवाली धरती है) अंधेरा (यह भी एक पदार्थ है) ये सब जिसने रचे सो कितना बड़ा समर्थ है क्या उस आत्माके बिना जड़देह भी ऐसे काम कर सके—तथा युगों की दृष्टि से मन्वन्तर काल फिर उनकी दृष्टि से कल्पांतर आदि बड़े लम्बे कालके विस्तारों को शोचि देखौ जो देहोंमें नहीं समायसक्ता वरन उसके बीच असंख्य देह चलेजातेहैं यह किसने रचा—तथा मंत्र और औषधियोंके फल शोचि देखौ उनमें बड़ेबड़े अनूठे प्रभाव हैं सो किसने रचे क्या यह भी जड़ देहोंका काम था—तिससे समस्त जगत् का रचनेवाला कारणा उसी आत्मा को जानौ ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

१७० अधिकोक्तिः—एक सौ सत्तरि आदि श्लोकमें जो (पंचभूत जड़द्रव्योंसे बने हुये) देह को जड़ कहा गया तिसके मध्ये एक यह भी शास्त्रार्थ है—यथाह विज्ञाने गुराचार्यः—नहि देहस्य चैतन्यादि संभवति यत् कारणा गुराप्रक्रमेण कार्यद्रव्ये वैशेषिक गुरारम्भोदयः न च तत्कारणा भूत पार्थिव परमाणावाद्यु चैतन्यादि समवायः संभवति तदारब्धस्तभङ्गभादि भौतिकेष्वनुपलभात् न च सदशक्तिवदुदकादि द्रव्यांतर संयोग इति वाच्यं शक्तेः साधारणा गुरात्वात् अतो भौतिक देहातिरिक्त चैतन्यादिसमवायद्वयंगी कर्तव्यः—अर्थात्—नहीं देह का चैतन्यादि लक्षण संभव होता है क्योंकि (असली गुराके शुद्धीकरणे अवसर से उत्पन्न कार्यद्रव्यो द्रव्यमें उसीके विशेष गुरा का आरम्भ देखा गया है पर) उस देहके असली कारणा पृथ्वी आदिके परमाणाओं से चैतन्य आदिका समवाय इकट्ठा होना संभव नहीं है क्योंकि उन परमाणाओं से बने हुये लकड़ मटेके आदि अनेक देखौ जो पृथ्वी आदि भूतोंकी उत्पत्ति है तिनमें वह चैतन्यका समाज नहीं मिलता है (इस प्रमाणासे देहोंको भी समझलो) और यह युक्ति भी न कहिनी चाहिये कि जड़ शक्तिवाले उदक आदि अन्य द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न होता होगा क्योंकि शक्ति जो पदार्थ है सो साधारण गुराओं का रूप है—तो इसहेतुसे ही भूतोंसे उत्पन्न देहके उपरालू चैतन्य आदि समवायको इकट्ठा करने वाला समवायी उसका अधिष्ठाता (वही परमात्मा) भी है यह ऐसा अंगीकार कर्तव्य ठहिरा ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

(पुनरप्याह)

अहंकारः स्मृतिर्मेधाद्वेपोबुद्धिः सुलंघ्यति । इन्द्रियांतरसंचार इच्छाधारणजीविते १७४
 सर्गः स्वप्नश्च भावानां प्रेरणं मनसा गतिः । निमेषश्चेतनायुक्त आदानं पांचभौतिकम् १७५
 यत एतानि दृश्यंते लिङ्गानि परमात्मनः । तस्मादस्ति परदेहावात्मा त्ववगर्ह्यवरः १७६

अर्थः—परमात्मा के इतने चिह्न ये प्रत्यक्ष देखि पारते हैं कि—अहंकार (मैं हूँ) में होता इत्यादि रूप अहंकार के प्रसिद्ध हैं) स्मृति यदि पुरानी बातों की ज़रूरत के समय स्मरण करिलेना कि पहले जन्मों में पैदा होकर मैं दुःख पीने और मांगने लगता था यहां भी वही जन्मकाल फिर वर्तमान हुआ है दुःख के लिये रोकर याद दिलानी चाहिये—मेधा उस बुद्धि का नाम है जो समझ पाई हुई बातों को हर वक्त याद रखि सके—वेद्य यद्यपि वेद को भी कहते हैं परन्तु वेद का नाम उस लक्षणा का है कि दुःख या दुःख देनेवाली वस्तु को न चाहै कि यह मेरे निकट न आवै यह वेद्य कहाता है सो अतिशय छोटे शिशु में भी यह लक्षणा स्वतः बिना सिखलाने के उत्पन्न होता है—बुद्धि उस ज्ञान का नाम है कि ये मेरे माता पिता हैं ये और सब गौर हैं ऐसी बुद्धि छोटे शिशु में भी उत्पन्न हो जाती है—सुख आराम इसको पहिंचानना कि यही प्राप्त होय ऐसा बोध अज्ञान बालकों में भी होता है (रुपया पैसा कौडो आदि सम्मुख डालके देखो कि उनमें जो अच्छा होगा उसी को उठावेंगे) धृति धीरज का नाम है कि बालक यद्यपि अकेला पड़ा रो रहा हो कि माता किसी वंधे में लगी है कदाचिद् कोई गौर सोद में लेना चाहै तो न जावेंगा माता चाहै विलम्ब से आवै तो भी उसीके निमित्त धीरज किये रहित है—इन्द्रियांतर संचार यह कहाता है कि चाहै तैसा अज्ञान बालक हो वह भी एक इंद्री से समझी बात को पाने के लिये दूसरी इंद्री पसारता है (दृष्टांत जैसे अज्ञान बालक ने आँख से चन्द्रमा देखा तो उसके लेनेको हाथ या मुँह पसारता है तात्पर्य इसका यह कि चन्द्रमा तक हाथ नहीं जा सकता है इस बातकी अज्ञानता होते हुये भी इतना बोल होता है कि हाथ ही या मुँह से भी कोई वस्तु पकडो जायगी) इच्छा वह कहाती है कि किसी उपाय पर बुद्धि को बौझना जैसा अभी जो दृष्टांत लिख चुके हैं कि चन्द्रमा की देखिके तोड़ने की इच्छा उत्पन्न करी—धारणा कहते हैं थाँभने को दृष्टांत जैसे बच्चा भी कहीं से फिसलिके गिरने लगै और उसको मालूम हो जाय कि मैं गिराऊ हुआ तो उसी समय यह धारणा उत्पन्न हो जाती है कि जहाँ तक हो सके अपने शरीर को थाँभता है कि न गिरने पाऊँ—जीवित नाम है

प्राणों की धारणा का कि जिसको थोड़ा भी-ज्ञान होगा अर्थात् पशु पक्षी आदि भी प्राणों के थाँभने को समझते और थाँभने का उपाय भी जहाँ तक होसके सो करते हैं अर्थात् सारने वाले को सामने आया देखिके आद में होजाना आदि अनेक प्रकार हैं जीवित के—स्वर्ग अर्थात् ऊँची पदवी की पहिचानि और उसकी चाहना अपनी योग्यता के अनुरूप यह बालकों वा पशु पक्षी आदिमें भी स्वतः बोध होता है—स्वप्न भी ऐसी चैतन्य वस्तु है जो बालक और पशुपक्षी आदिमें भी उत्पन्नहोता है तब नाना प्रकार की त्रिलोकीदेखने में आती है यह भी पूरे चैतन्य का काम है—भावोंकी प्रेरणा अर्थात् इंद्री आदि जो जो देहके भावहैं तिनको यथायोग्य जैसीजैसी ज़रूरत के समय पर घुमाने चलाने फेरने आदि की तात्कीद अजश्रुद होती रहित्ती है यह भी पूरे चैतन्य का काम है—मनकी चालि को देखी कि सरामात्र में लाखों कोस हज़ारों संजिल की खवरलेता और सैर करिआताहै यह कैसी पूरी चेतना का काम है—निमेष अर्थात् नेत्र और पलकों का सीचना खोलना जो प्रसिद्ध है वही भी कैसी पूरी चेतना के आधीन है कि उनके इशारों से अनेक बात कही जाती हैं जिनकी दूसरेलोगबिना कहे समझ लेते हैं—पंचभूतों का आदान भी देखी अर्थात् पृथ्वी जल तेज वायु आकाश ये पाँच भूत जो सामान्य भावसे जुदे जुदे उत्पन्न किये गये तिससे इनके पाँच समूह मात्र दौहरे तिनका आदान उपादान किंतु सृष्टिकी रचना में लेकर लगाने की बारीकी शोची कि बड़े छोटे सब जीव चर अचर जो बने और सदा बनते रहिते हैं तिन सबही में ये पाँचों महाभूत होते हैं अर्थात् इन्हीं पाँचों के मेल से सब जीव होतेहैं तहाँ यह बारीकी शोचने के योग्यहै कि अति सूक्ष्म जंतुमें कितना कितना भाग इन पाँचों का पहुँचता होगा फिर उन भागों के पहुँचानेवाले की शक्ति शोची कि थोड़ा थोड़ा पाँचों में से लेना और यथायोग्य सब जीवों के चोला तक पहुँचाना फिर बड़ी युक्तियों की चुनाई करिके असंख्य सृष्टि दिखलाय देनी कि जो एकसे दूसरी कुछ अनुरी होगी—जबकि परमात्मा के इतने चिह्नप्रत्यक्ष देखे जातेहैं तिससे वह आत्मा देहसे उपराल जुदा रूपहै पर सबही के देहों में सर्वत्र घुसा रहित्ता क्योंकि ईश्वर है अर्थात् सामर्थ्यमात्र है जो कुछ जिस रीति से होना या करना चाहै सो सब संभवहै तिससे उसकी होनेमें सदेह नहीं ॥ १७४॥१७५॥१७६॥

(चैत्रचस्यस्वरूपं)

बुद्धिन्द्रियाणि सार्वानि मनःकर्मैन्द्रियाणि च । अहंकारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि १७७
अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञः क्षेत्रस्यास्य निगद्यते । ईश्वरः सर्वभूतस्थः सन्न सन् सदसञ्चयः १७८

अर्थः—अर्थों सहित ज्ञानेन्द्री और कर्मेन्द्री तथा मन और अहंकार और बुद्धि और पृथिवी आदि भूतभी=अर्थात् बुद्धिवाली पाँच इन्द्रियों (ओव त्वचा चक्षु जीभ नासिका ये पाँच ज्ञानेन्द्री) अपने विषय रूपी अर्थों (शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन) सहित और मन जो सब इन्द्रियों का राजा है और कर्मेन्द्री जो काम करनेवाली पाँच इन्द्रियों (मुख हाथ पैर गुदा लिंग ये) प्रसिद्ध हैं और अहंकारको पहिले भी लिख चुके हैं तिसका गुणरूप यहाँपर समझ लेना प्रकाशमान चेष्टा नहीं और बुद्धि जो निश्चय करनेवाली महातत्त्व कहाती है और पृथिवी आदि पाँच भूत भी प्रसिद्ध हैं और=अव्यक्त नामसे प्रकृति-यह सब सामग्री मिलिके देहरूपी क्षेत्र (क्षेत्र) कहाता है सो इस क्षेत्र का ज्ञानेवाला क्षेत्रज्ञ वही आत्मा कहा जाता है जो सर्व शक्तिमान् ईश्वर तथा सर्व भूतोंमें संस्थित और है या नहीं इन दोनों लक्षणोंसे संपन्न है क्योंकि (सब असब सभीमें परिव्याप्त है प्रमाणों से पहिचाना जाता है तिससे है इस लक्षण से संपन्न दहिना और प्रत्यक्षरूप देखने से कभी नहीं आता तिससे नहीं इस लक्षण से युक्त दहिना १७७ ॥ १७८ ॥

अब इस बुद्धि और इन्द्रियों और अहंकार आदि छिपेहुये पदार्थों की उत्पत्ति जैसे परमात्मा के सकाश से होती है सो भी अगिले परिच्छेद में देखना क्योंकि अब तक पृथ्वी आकाश आदि महाभूत और अन्य भौतिकी सृष्टि का उत्पत्ति क्रम जहाँ तहाँ दर्शाया गया परन्तु बुद्धि और इन्द्री आदि भीतरी समवाय का उत्पन्न होना अब तक कहा गया—यद्यपि तिहत्तरि के प्रलोक से यह कहाया कि गर्भमें युगपत् उसी आत्मा के पाससे उत्पन्न हो जाता है फिर उसी जघे ७५ पंचदत्तरि प्रलोक से यह भी कहा कि गर्भमें तीसरे महीना से इन्द्रियों का प्रकाश होने लगता है फिर सातवें आठवें महीना तक मन बुद्धि आदि सब चैतन्य समूह उसमें आजाता है परन्तु यह शरीरों में आजाना जुदी बात है जो सदाजारी रहित है अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भ समय जो समष्टि रूप से बुद्धि आदिका चैतन्य समवाय पैदा होता है तिसका व्योरा अब तक नहीं कहा गया सो कहेंगे ॥

अथ-बुद्ध्यादीनामुत्पत्तेः स्वर्गमार्गादीनांचोत्पत्तेर्विवे

कीनाम-ऊनविंशःपरिच्छेदः१८॥

इस परिच्छेद में बुद्धि आदि समवाय की उत्पत्तिमायाके पाससे जिस क्रमसेहुआ करतीहै सो जानी जायगी और स्वर्ग जानेवालों को मार्गजैसा मित्रताहै सोभी कहा जायगा और पुनरावर्ती भी सुनीश्वर जो दूसरी सृष्टिमें फिर आकर वही अपना जन्म पातेहैं और सत्यलोक में जानेवालोंके विग्रहम स्याम भी दर्शावेंगे ॥

(सृष्ट्यारंभकाले बुद्ध्यादीनामुत्पत्तिक्रमः)

बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्तात्ततोऽहंकारसंभवः । तन्मात्रादीन्यहंकारादेकोत्तरगुणानिच १७९
शब्दःस्पर्शश्चरुचरतोमंथश्चतद्गुणाः । योयस्मान्निसृतश्चैपांसतस्मिन्नेवलीयते १८०
यथात्मानंसृजत्यात्मातथावःकथितोमया । विषाकातृत्तिःप्रकाराणांकर्मणामीश्वरोपितन् १८१
तत्त्वंरजस्तमश्चैवगुणास्तस्यैवकीर्तिताः । रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चकवद्भ्राम्यतेह्यसौ १८२
अनादिरादिमाश्वेवसएवपुरुषःपरः । लिंगेन्द्रियग्राह्यरूपःशक्तिरुदाहृतः १८३

अर्थः—अव्यक्त से बुद्धिकी उत्पत्ति, तिससे अहंकार का जन्म, अहंकारसे तन्मात्रों की उत्पत्ति, फिर उनसे आकाश आदि एक एक गुण अधिक वाले भी होते हैं और चकार के ध्वन्यर्थ से दश इंद्रियांभी—अर्थात्—सत्त्व रज तम ये तीनों गुण एक सों बराबर हृत्थात्मक मिले हुये प्रकृति कहातीहै उसीका नाम शक्ति भी होता है वही न देखिपरने के हेतु से अव्यक्त कहा जाता है, उस अव्यक्त में से प्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है (यहाँ पर बुद्धि केवल इसको न समझना जो सिर्फ एक मनुष्य के हृदय में होतीहै अर्थात् उस महत्त्व को समझना जो सृष्टि की आदिमें सबसे पहले अव्यक्त में से महाबुद्धि उत्पन्न होती है उसी की छाया सब जीवों के हृदय में आकर उस तरह से परती है कि जैसे जलमें सूर्यका आभास) उस महाबुद्धिमें से अहंकार उत्पन्न होताहै उसी अहंकार की छाया सब सृष्टि के जीवों पर परतीहै, उसी अहंकार में से आकाश आदि पाँच भूतों के पाँच बीज उत्पन्न होते हैं सो तन्मात्र कहाते हैं उन्हीं के ये नाम हैं (शब्द तन्मात्र १ स्पर्शतन्मात्र २ रूपतन्मात्र ३ रसतन्मात्र ४ गंधतन्मात्र ५) ये अति सूक्ष्म रूपी बीज होते हैं पाँच तन्मात्र कहेजातेहैं फिर इन्हीं मेंसे जुदे जुदे अपने बीजों से आकाश आदि स्थूल रूपी पाँच तत्त्व भी उत्पन्न होतेहैं अर्थात् (शब्द तन्मात्रके बीजसे आकाश) (स्पर्श तन्मात्र बीजसे वायु), (रूपतन्मात्र

बीजसे अग्नितेज) (रसतन्मात्रबीजसे जल) (गंध तन्मात्रबीजसे मृत्तिका पृथ्वी) इसी हेतु जिन बीजोंसे उत्पत्ति हुई उन्हीं बीजोंवाले गुण आकाशआदिपाँचोंभूतमें प्रत्यक्ष होते हैं सोभी एक एक पिछलेमें अधिक गुण होता है अर्थात्((आकाशमें अपनेही बीजका गुण एक शब्दमात्र होता है १-वायुमें अपने बीजका गुणस्पर्श और अपने वायु आकाशकाभी शब्द गुणहोताहै २-इसीतरह अग्निमें अपनेबीजका गुण रूप भी और दोनों वायु दादा के गुण स्पर्श और शब्द भी ३-जलमें अपने बीजका गुण रस भी और तीनों पुरुषाओं के गुण शब्द स्पर्श रूप भी ४-मट्टी में अपने बीजका गुण गंधभी और चारों अपनेवडों के गुण शब्द स्पर्श रूप रसभी ये पाँच होतेहैं५)) इसी मूल प्रलोक मे च कारसे दश इंद्रि तथा और भी विशेषता कहिनी शेष रही सो अधिकोक्ति में देखना ॥ १७६ ॥ शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गंध•ये उन्हीं आकाश आदि पाँच भूतों के गुण होते हैं सो अभी पहिले प्रलोकमें लिखचुके और यहभी एक नियम है कि उन बुद्धिआदि सभी में जो जिसमें से निकसा है सो उसी क्रमसे प्रत्यक्ष के समय पर उसी में लीन होजाता है ॥ १८० ॥ याज्ञवल्क्य जी पहिली सब सुनाई हुई व्यवस्था की याद दिलाकर कहिते हैं कि ये ओता मुनीश्वरो आत्मा जो ईश्वर है सो जैसे जैसे अपने आत्मा को सृष्टि में सृजता है सो पहिले मैंने सब कहिकर तुमको सुनाया कि यद्यपि वह ईश्वर है तथापि मानस १ वाचिक १ कार्यायक ३ तीन प्रकार के कर्मों का विपाक फल स्वीकार करनेसे नाना रूप धरताहै (इसी प्रयोजनसे सबसे प्रथम इतनी सामग्री को तैयार करताहै कि अव्यक्त से बुद्धि आदि फिर आकाश से धरती पर्यंत रचिकर फिर उन्हीं से सब जीवों की उपजाताहै ॥ १८१ ॥ तहां मत्स्य रत्न तम ये तीनों गुण जो तुमसे कहे गये सो उही परमेश्वरके समझनेको कि उसकी एक अविद्या सायाके तीनों भागबराबर तीन गुण कहातेहैं(कि जैसाएकसी उनासीप्रलोक में अव्यक्त का स्वरूपकहा उसी को अविद्या समझो) तीनोंगुणाक्तहेतुनमें रजोगुण तमोगुणाइन बोही के आवेश करके यहपरमेश्वर आपही सृष्टि रूपहोकर सदापहिया कीतरह चक्कर खाताहुआ घूमता रहितहै यहभी तुमकोमैं समझाय चुका एकसी बो-वीस का प्रलोक देखो ॥ १८२ ॥ वही अनादि पुरुष परमेश्वर आदि वाला भी शरीर धारण करनेसे कहाता है कि जब प्रकृति के परिणामसे विकार सहित होताहै और लिगों तथा इंद्रियों से देखने छुड सकने योग्य रूप होता है यह भी तुम से पहिले मे कहिचुका तहां फिर फिर जाके उन्हीं प्रकारों को शोची समझो (यहां दिग और इंद्रियां जो लिखी गई तहां इंद्रियां ती प्रसिद्ध हैं कि उन्हीं से सब रूप देखे मने

छुये जाते हैं और लिंग नाम है चिह्नका और इसी हेतु से देह को भी लिंग कहते हैं कि वह जीवका स्वरूप समझने योग्य एक चिह्न है क्योंकि जो देह रूपी चिह्न कुछ न हो तो फिर जीव का लक्षण भी किसकी सहारे से समझा जाय ॥ १८३ ॥

१७६ अधिकोक्तिः—ऊपर लिखी हुई उत्पत्ति में यह विशेषता भी समझने के योग्य है कि तीनों गुण मिले हुये बराबर का नाम अव्यक्त कहा गया तो बुद्धि जो अव्यक्त से उत्पन्न हुई तिसमें भी तीनों गुण का प्रभाव होता है परंतु इतना अंतर होजाता है कि बुद्धि में तीनों गुण होने पर भी सतोगुण अधिक होता है क्योंकि अव्यक्त नामकी प्रकृति में चैतन्य परमात्मा की छाया घुसने से अव्यक्त उमड़ि चलता है (जैसे किसी नाव या गड्ढिले भरेहुये में कोई चीज और भी डालने से उसका जल उमड़ि के बहि चलता है तैसेही तीनों गुण से बराबर भरे हुये अव्यक्त में चिच्छाया का प्रवेश होने से सतोगुण बढ़ि जाता है क्योंकि चैतन्य की छाया केवल सतोगुणमयी होती है तिसके प्रभावसे अव्यक्तका भी सतोगुण उमड़ि चलता है) इसी हेतुसे बुद्धि जो उसमेंसे उत्पन्न हुई तिसमें रजोगुण तमोगुण तो बराबर हैं सतोगुण सबसे अधिक और उसी सतोगुणके प्रभावसे बुद्धिमें ज्ञानकी शक्ति रूढ़ाकरती है और इसी हेतु से बुद्धि परमात्माकी इच्छाकूप कहाती और प्रसारा इसका ध्वन्तरिका वचन है—
यथा—ततोऽभवन्महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वापराभिधसं विगुणसंस्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम्
चिच्छायाप्राप्तचैतन्यं तदिच्छामयमीरितम्—अर्थात्—तिस अव्यक्तनाम प्रकृतिसे महत्तत्त्वं पैदा होती हुई कि जिसका दूसरानाम बुद्धि तत्त्व भी होता है वह तीनों गुण से युक्त है पर तीभी उसमें सतोगुण बहुत है क्योंकि चैतन्य पुरुष की चिच्छाया प्राप्त होनेसे चैतन्य होजाती और बड़ी निर्मल साफ विलसती पत्थर के समान चमकदार और उसी चैतन्य पुरुष की इच्छामय कहाती है कि जिधर को वह इच्छा दोड़ाना चाहे उधर को दौड़ती है—उसी विगुणमयी बुद्धिका परित्याग (जैसे दूधका दहो होजाना) जो विकार भी कहाता है तिसका तेज खिंचकर अहंकार की उत्पत्ति होती है इसीसे वह अहंकार भी तीन भौतिक सात्त्विक राजस तामस जुदा जुदा होता है (परन्तु अहंकारकी उत्पन्न करनेवाली बुद्धिमें सतोगुण अधिक होना जो कड़िचुके से नहीं रहता किन्तु रजोगुण का तेज अधिक होजाता है) इन तीनिमें जो तामस अहंकार कहा तिसकी तेजसे पांचतन्मात्रों की उत्पत्ति होती है फिर ऊन्हीं से आकाश आदि पांच भूतोंकी उत्पत्ति और एकसौ उनासी मूलश्लोक में सबसे पीछे जो चकार आया तिसके ध्वन्यर्थ से यहाँ जो शेषरहे दो भौतिक अहंकार सात्त्विक तथा राजस इन दोनों

के विकारसे परिणाम होकर जो तेज खिँचा तिससे दो भौतिकी इन्द्रियाँ पैदा हुई अर्थात् सात्त्विक अहंकारके तेजसे पाँचज्ञानेन्द्री और राजस अहंकार के तेजसे पाँच कर्मेन्द्री (यहाँ भी अहंकार और इन्द्रियोंको केवल एक पुरुषके देहमध्ये नहीं समझना किन्तु सृष्टिके प्रारंभ में समष्टिरूपसे जो अहंकार और इन्द्रियाँ सब सृष्टिका एक मशाला पैदा कियागया तिसका यहाँ चर्चा है फिर उसी समष्टिकी राशिमें से व्यष्टि रूप करि करि सब सृष्टिकी रचना करीजाती है) ॥ १७६ ॥ अब स्वर्गजानेवालोंका मार्ग उनके कर्मोंके आधीन आगे कहेंगे ॥

(स्वर्गगामिनांमार्गः)

पितृयानोऽजवीथ्याभ्यवगत्यस्यचान्तरम् । तेनाग्निहोत्रिणोपांतिस्वर्गकामादिवंशति १८४
येचदानरताःसम्यगष्टाभिश्चगुणैषुताः । तेपितृनेवमार्गेणसत्यव्रतपरायणाः १८५

अर्थः—अजवीथी का और अगस्त्य का जो अन्तर है सो पितृयान है तिससे अग्निहोत्री स्वर्गको जातेहैं स्वर्ग की कामना रखनेवाले=और जे दानमें रत रहिनेवाले तथा आदयुगोंसे संयुक्त भी और सत्यके व्रतमें परायणाहीं वे भी उसीमार्गसे जातेहैं= अर्थात्—अजवीथी अमरमार्ग जो आकाश में देवतोंको सड़कहै बुद्धिमानोंको दिखाई देतीहै कि रूप उसका आकाश दक्षिणामार्ग में (मूलपर्वयाद्वउत्तरायाद्व) इनतीनों के उदयवाले सब तारे मिलिकर अजवीथी वनी कहाती यह तारागण के शास्त्रोंका सिद्धांतहै • इस अजवीथीसे लेकर अगस्त्य के उदय होने योग्य दिक्कानेतक बीचका जो अंतरहै वही (पितृयान) पितरों का रास्ताहै कि जहाँसे पितृलोक में जाते आते रहितेहैं • उसी पितरों के रास्ते होकर अग्निहोत्री लोग स्वर्ग में जाने पातेहैं कि जिन्होंने स्वर्ग देखने या भोगने की कामना से वेद्योक्त अग्निहोत्रोंकी उपासना करी है ॥ १८४ ॥ और जे कोई सत्पुरुष दानदेना आदि स्मार्त कर्मोंमें अच्छे ढंगसे दम्भछोड़ि के निष्कपट तत्पर हुयेहों उसीमार्गसे जातेहैं • और वे भी कि जो आदयुगा सेवन काने वालेहों अर्थात् (दया • क्षांति • अनुसूया • शौच • अनायास • मंगल • अकार्पण्य • अस्पृहा) ये आठ लक्षणा जो गौतम आदि ऋषीयोंके आदेश किये प्रसिद्ध हैं सो जिनमें हों वे भी उसी मार्गसे जातेहैं • और वे भी कि जो लोग सत्य बोलनेके व्रत में रंगे रहिते हों उसी मार्गसे जातेहैं ॥ १८५ ॥

अब नीचे उन सिद्धों की व्यवस्था कही जायगी जो बारबार अपना बही उत्तम जन्म आकर लेतेहैं अर्थात् किसी और यौनिमें कभी नहींजानेपातेहैं यहभी एकविशेष

दंग उसी सर्व शक्तिमान की इच्छा से नियमात्मक जानौं केवल कर्मोंकी प्रधानता इसमें नहीं क्योंकि ईश्वर की सत्तामें एकसे एक नई अनन्त बात होतीहै इसी हेतु से कोई उसकी इच्छाका अंत नहीं पाताहै और इसीसे वेदोंकी श्रुतियां भी नेति नेति की पुकार किया करती हैं ॥

(पुनरावर्त्तिनोलोकाः)

तत्राष्टाङ्गीतिसाहस्यमुनयोऽष्टमेधिनः । पुनरावर्त्तिनोवीजभूताधर्मप्रवर्तकाः १८६

अर्थः—तहाँ अट्टासी हजार मुनीश्वर गृहमेधी सर्वधर्मोंके प्रवर्तक वीजभूत होके रहिते जो पुनरावर्त्ती होतेहैं—अर्थात्—यह संदेह खड़ा होताथा कि प्रलय के होजाने बाद पढ़ानेवालों के मिटिजाने से नवीन सृष्टि में नवीन देहोंको वेद विद्या आदिका बोध कुछ न होने से अग्निहोत्र आदिकर्म कैसे होसकते होंगे कि जिन धर्मोंके होने बिना कैसे स्वर्ग मिलिसक्ता होगा—इसका समाधान समझाते हैं कि—तहाँ पूर्वाक्त पितरोंके मार्गवाले देशमें (प्रलयके समयपरभी) अट्टासी सहस्र मुनीश्वर जो गृहस्थ धर्मके जाननेवाले (पंचयज्ञ आदि नित्य नैमित्तिक धर्मोंकी साधना करनेवाले) सब सासणो सायलिये तबतक वहां टिकतेहैं कि जबतक दूसरी सृष्टिका प्रारंभहोय फिर वहाँसे आकर अपना वही जन्म यहाँ पातेहैं कि जैसा कुछ पहिली सृष्टिमें था इसी हेतुसे पुनरावर्त्ती कहाते हैं कि फिर फिर लौटि आना होता है—वेही आकर सृष्टि के नवीन लोगोंको वेद विद्या आदि सिखलाकर धर्म मार्गमें प्रवृत्त करते हैं (फिर क्रम क्रमसे पढ़ने और पढ़ानेवाले और भी उत्पन्न होते रहिते हैं कि जैसे एक दीपक से असंख्य दीपक जुड़ते रहिते हैं) इसीलिये धर्मरूपी नवीन लुसकी उपजानेवाले वीज भूत वे अट्टासी हजार मुनि कहाते हैं क्योंकि जो येही अट्टासी हजार वीज संचित न रहिते तो फिर अग्निहोत्र आदि कर्म यहां क्योंकर जाओ होसकते और धर्मरूपी लुसोंकी बढवारी भी वीजोंबिना कैसे होती ॥ १८६ ॥

इसी भाँतिके और भी मुनि होतेहैं सो अगिले प्रलोकों में देखो ॥

(अन्येष्विस्वर्गामिनो मुनयः)

सप्तर्षिनागवीथ्यंतर्देवलोकंसमाश्रिताः । तार्वतएवमुनयःसर्वारम्भविवाजिताः १८७

तपसाब्रह्मचर्येणसंगत्यागेनमेधया । तत्रगत्त्वावतिष्ठन्तेषावदाभूतसंख्यम् १८८

यतोवेदाःपुराणानिविद्योपनिषदस्तथा । श्लोकाःसूत्राणिभाष्याण्युच्चक्रिचनवाक्यम् १८९

वेदानुवचनयज्ञोद्भूतचर्यैतपोदमः । अद्वोपवासात्स्वातंत्र्यमात्मनोज्ञानहेतवः १९०

अर्थः—सप्त ऋषि जो आकाश में उदयहोते देखिपरतेहैं—नागवीथी अर्थात् रेरा-

के विकारसे परिणाम होकर जो तेज खिंचा तिससे दो भौतिकी इन्द्रियाँ पैदा हुई अर्थात् सार्विक अहंकारके तेजसे पाँचज्ञानेन्द्री और राजस अहंकार के तेजसेपाँच कर्मेन्द्री(यहाँ भी अहंकार और इन्द्रियोंको केवल एक पुरुषके देहमध्ये नहीं समझना किन्तु सृष्टिके प्रारंभ में समष्टिरूपसे जो अहंकार और इन्द्रियाँ सब सृष्टिका एक मशाला पैदा कियाराया तिसका यहाँ चर्चाहै फिर उसी समष्टिकी राशिमें से व्यष्टि रूप करि करि सब सृष्टिकी रचना करीजाती है) ॥ १७६ ॥ अब स्वर्गजानेवालोंका मार्ग उनके कर्मोंके आधीन आगे कहेंगे ॥

(स्वर्गगामिनामार्गः)

पितृयानोऽजवीथ्याश्चयदगस्त्यस्यचान्तरम् । तेनाग्निहोत्रिणोपांतिस्वर्गकामादिव्रति १८४
येचदानरताःसम्पद्यन्तिभृगुणैर्युताः । तेपितृनेवमार्गेणतत्परायणाः१८५

अर्थः—अजवीथी का और अगस्त्य का जो अन्तर है सो पितृयान है तिससे अग्निहोत्री स्वर्गको जातेहैं स्वर्ग की कामना रखनेवाले=और जे दानमें रत रहनेवाले तथा आदयुगोंसे संयुक्त भी और सत्यके व्रतमें परायणहों वे भी उसीमार्गसे जातेहैं= अर्थात्—अजवीथी अमरमार्ग जो आकाश में देवतोंकी सङ्गहै बुद्धिमानोंकी दिखाई देतीहै कि रूप उसका आकाश दक्षिणामार्ग में (मूलपूर्वायाद्वत्तरायाद्व) इन्तीनों के उदयवाले सब तारे मिलिकर अजवीथी बनी कहाती यह तारागण के शास्त्रोंका सिद्धांतहै=इस अजवीथीसे लेकर अगस्त्य के उदय होने योग्य दिक्कानेतक बीचका जो अंतरहै वही (पितृयान) पितरों का रास्ताहै कि जहाँसे पितृलोक में जाते आते रहितेहैं=उसी पितरों के रास्ते होकर अग्निहोत्री लोग स्वर्ग में जाने पातेहैं कि जिन्होंने स्वर्ग देखने या भोगने की कामना से वेद्योक्त अग्निहोत्रोंकी उपासना करी है ॥१८४॥ और जे कोई सत्पुरुष दानदेना आदि स्मार्त कर्मोंमें अच्छे ढंगसे दृष्टद्योष्टि के निष्कपट तत्पर हुयेहों उसीमार्गसे जातेहैं=और वे भी कि जो आदयुग सेवन करने वालेहों अर्थात् (दया-क्षांति-अनसूया-शौच-अनायास-मंगल-अकार्पाय-अस्पृहा) ये आठ लक्षणा जो शौतम आदि ऋषीयोंके आदेश किये प्रसिद्ध हैं सो जिनमें हों वे भी उसी मार्गसे जातेहैं=और वे भी कि जो लोग सत्य बोलनेके व्रत में रंगे रहिते हों उसी मार्गसे जातेहैं ॥ १८५ ॥

अब नीचे उन सिद्धोंकी व्यवस्था कही जायगी जो बारंबार अपना वही उत्तम जन्म आकर लेतेहैं अर्थात् किसी और योनिमें कभी नहींजानेपातेहैं यहभी एकविशेष

तथैव=पुण्याश्लेयातथादित्यावीथीचैरावतीस्मृता=अर्थात्-पुनर्वसु पुष्य श्लेया इन तीनों के जितने तारे हैं आकाश में सो सब मिलिके रेरावती वीथी कहो है=एवं=मूलायादोत्तरायादाग्रज्वीथ्यभिगन्दिता=अर्थात्-मूल पूर्वायाद उत्तरायाद इन तीनों के सबतारा मिलि के अजवीथी कही गई सो यह एकसी छहासी के श्लोक में आइयो इत्यादि अनेक और हैं पर यहां केवल नागवीथी का प्रयोजन है सो ऊपर लिख चुके ॥ ० ॥ यद्यपि सदेहों को मिटाते चलेआते हैं तथापि यहां ओम्भी नवीन शंकायें खड़ी हुई कि जब ईश्वर आपही सर्व शक्तिमान है तब उसको धर्म कर्म और वेद विद्या आदि के बीज संचित करनेकी क्या भोग्यपरी और क्या ऐसी ब्रह्मात दहरी जो संसारी किसानों की तरह वह बीज संचय करवाता है क्या जैसे और बड़ी दुर्लभ चीजों उसकी इच्छा से उत्पन्न हुई और होतीहैं तैसे इनको नहीं उत्पन्नकरसक्ता बल्कि बीजतों असंख्य सब चीजों के उसीकी इच्छा से कारणा बिनाभी उत्पन्न होते हैं-और दूसरी यह शंकाहै कि प्रलय के होजाने में सब सृष्टि निराशोक होजाती है कि जिसके पीछे दिगार्य और आकाश वायु आदि सब उत्पन्न किये जाते हैं तब जाकर कहीं दूसरी सृष्टिका प्रारंभ होताहै तो फिर क्या ऐसी दशामें स्वर्ग बनारहता है कि जिसमें अदृशसी हज्जारासे दूने मुनीश्वर जाकर टिकतेहैं-और तीसरी यहशंका है कि ये मुनीश्वर पुनरावर्ती बने गये जो पुनः पुनः सृष्टियों के प्रारंभ में सदैव कैसे लौटि आते हैं क्या ब्रह्मा की आयुसे भी अधिक इनकी आयु होती है जो सदा सब सृष्टियों की आदि में बेशी लौटि आते हैं-समाधान सुनों ईश्वर वही कहाता है जो (कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं वा समर्थः स ईश्वरः शक्तिश्च समन्वितः) इन तीन भाँति की शक्तियों से भरा पुराहो अर्थात् जो किसीसे भी न होसके तिस अपर्य कर्म के करने को समर्थ होय-और जो होनेवाली अमिट कोई वार्ता है तिस मेंटि देने को समर्थ होय-और अन्यथा कर्तुं वा किंतु तीसरी यह शक्ति है कि जो कोई बात एकही प्रकार से होती है तिसको भी अन्य प्रकार से करसके और वा शब्दसे के विकल्पसे उस मुख्य प्रकार सेभी करसके अर्थात् जिसमें दोनों तरह स्वाधीन होवें कि चाहें तब और तरहसे करनेलागें वा उनी एकप्रकार से होने देंवें-इसका यह दृष्टांत यादिकरी कि जैसे मनुष्यके शरीर में साँग और पूँछ नहीं होतीहैं यह एकही प्रकार नियमात्मक और सबको मालूम है परंतु ईश्वर ने अपनी अन्यथा करण शक्ति के प्रभाव से शृङ्गीकृति आदि मनुष्यभी साँगवाले बनाकर दिखलाये यह कथन बाकी न रक्खा कि साँग होही नहीं सकते हैं ऐसीही ॐ में पूँछ वाले भी मनुष्य उमने च-

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

२३३

में० फिर दक्षिणायन के लोकमें० फिर पितरों के लोकमें० फिर चन्द्रमा के लोकमें (इन सब देवतोंसे संस्कार पाने पीछे) फिर वायुके लोकमें जाकर वायुरूप होता है० फिर वर्याके लोकमें जाकर टृप्तिरूप होता है० फिर जलके लोकमें आकर जलहीका रूप होके पृथ्वीपर आजाता है० फिर उस जलसे धरती में नानाअन्न औषधीकारूप होकर जीवोंके आहारद्वारा वीर्यरूप होजाता है० फिर वीर्यभी संसारी योनिमें पड़िके कोईसा गर्भरूपहोजाता है० फिर वह गर्भ इसी संसारमें पैदाहोकर वेहीदुखसुखभोगता है कि जो कुछ श्रेयकर्मोंके प्रभावसे उस योनिमें भोगनेयोग्य ठहरैहों॥ १६५॥ १६६॥ जोकोई अच्छी होशियारी से ये वेनों मार्ग नहीं जानता किन्तु योंमें से किसी एक मार्गमें जाने योग्य उपायस्वरूप धर्मोंको नहीं समझारता है सो बंद शूकनाम सर्पआदि की योनि में जाता है या पतंग टीढ़ी आदि की योनि में या कोरु छींगुर आदि की योनिमें या कृमि जो बियाआदिमें सँधी परजातीहैं तिनकी योनिमें होता है॥ १६७॥

अनंतरोक्त नीचयोनि में जानेको बचाना चाहै तिनके लिये उत्तम योग

साधनेकी उपासना अगिले परिच्छेद में दर्शावैगे ॥

—*—

अथ-अणिमाद्यष्टविभूतिप्रापकयोगाभ्यासनिरूपणादि ।

मोक्षस्वरूपविवेकीनामविंशःपरिच्छेदः २० ॥

इस परिच्छेद में योगाभ्यास रूपीसोसका प्रकार जानाजायगा कि जिसको सिद्ध होजाने में अणिमा आदि विभूतियाँ भी मिलसकती हैं—और योगाभ्यास को उपरालू इतर प्रकारोंसे भी सोसहोताहैं वो भी बर्णन होंगे

(उपासनायाः प्रकारः योगाभ्यासः)

करुष्योत्तानचरणःसन्वेन्यस्योचरंकरम् । उत्तानंकिंचिदुन्नाम्यमुखंविष्टम्यचोरसा १९८
निमीलिताक्षःसत्त्वस्योदनेर्दन्तानसंसृजान् । तालुस्याचलजिह्वभ्रसंतुतास्यःसुनिश्चलः १९९
संनिरुध्येन्द्रियग्रामंनानातिनीचोच्छ्रितासनः । दिगुणंत्रिगुणंवापिप्राणायाममुपक्रमेत् २००
ततोऽप्येयःस्थितोऽतोऽहोदयेदीपवत्प्रभुः ॥ धारयेत्तत्रधारमानंधारणाधारयन्नुपः २०१

अर्थः—दोनों जाँघपर उताने योंनों चरणा स्थापित किये जो (पल्लोयोमारना) पद्मासन बांधनाभी कहता है० वामे हाथ चित्तकिये हुये पर दाहनाहाथ चित्त किया

प्रत्यक्ष पासकते हैं ॥ तहां वनमें उनकी योग साधना दीकहोजानेपर जिसमार्गसे जाकर परमधाम तक पहुंचतेहैं सो मार्ग अगिले प्रलोकों से दर्शाया जायगा और दूसरा मार्ग वह भी कि जिसके द्वारा स्वर्ग जीतनेवाले पुरुष जाकर फिर यहीं लौटिके आतेहैं सो आगे कहा जायगा ॥ १९२ ॥

(परं ब्रह्मप्राप्तिमार्गस्वरूपं देवयानं)

क्रमत्तिसंभवंत्यचिरहःशुक्लंतपोन्नयम् । अयनं देवलोकं वसवितारं संवेद्युतम् १९३

तजस्तामपुरुषोऽभ्येत्यमानसो ब्रह्मलोकिकान् । करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते १९४

अर्थ—वे लोग (जिनका चर्चा एकसौवानवे प्रलोकमें आ चुका है) क्रमक्रम से इन स्थानोंको पहुंचते और टिकते जातेहैं कि टिकने मात्रसे इन्हीं लोकोंको देवताओं के समान तबत्तक रूपभी प्राप्त होता जाता और वेही सब देवता उनको अपना सा रूपतेज देकर मार्गकी रक्षा तथा सहायता साथ आगेको पहुंचाते जातेहैं तिनको नाम समझो कि—अर्चिस् अग्निकालोक•अहर् दिनकालोक•शुक्लपक्षकालोक•उत्तरायन कालोक•देवलोक•संवित्सूर्यलोक•वैश्व विजुलीकालोक•अर्थात् ये सब लोक मुक्तिका मार्गहैं और यही रास्ता देवयानभी कहाताहै तिसमें बड़ेबड़े सुख सत्कारोंसे वे लोग चलेजाते हैं कि जिनकी योग साधना पूरी सिद्धिको पहुंचिगई हो=ततः सर्वसं पीछे वही सत्यनारायण पुस्य जो प्रथम मनसे ध्यान किया गयाथा आगे आकर इन सब योगधारियोंको ब्रह्मलौकिक बनाता है अर्थात् अपने सत्यरूपी परमवामके लोकमें उसी जघेकी समान इनका रूपकारिके बसाताहै कि फिर उनको इहां संसार में नहीं आना होताहै ॥ आगे एक रास्ता और भी दर्शावेंगे कि जिसमें जानेवाले फिर यहीं लौटिके आतेहैं ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

(पूर्वोक्तपितृयानस्वरूपं)

यज्ञेन तपसा दानैर्वै हि स्वर्गं जितो नराः । धूमं निशांकुष्णपक्षदक्षिणायनमेव च १९५

पितृलोकं चंद्रमर्सवापुर्दृष्टं जलं महीम् । क्रमात्तिसंभवंतीह पुनरेव ब्रजं जति च १९६

एतद्योनविज्ञानतिमार्गं दितयमात्मवान् । देवग्रूकः पतंगो वा भवेत्कोटोऽथ वा रुमिः १९७

अर्थ—शास्त्रोक्त विधानों से यज्ञ तप दानों की बलसे जो कोई स्वर्ग जीतनेवाले पुरुष होतेहैं तिनका मार्ग स्वर्गफल भोगे पीछे इस क्रमसे है कि—प्रथम अग्नि की छोड़ि उसके धूमलोक में जातेहैं फिर निशा रात्रिके लोकमें फिर क्षयापक्ष के लोक

उकी बजाई जाती है उत्तरी पंद्रह मात्राओं से प्राणायाम, अथम कहाता है मध्यम उससेदूना कहा और श्रेय उससे त्रियुना होता है तैसीही उत्तम मध्यम नीच धारणाभी कहातीहैं कि जैसे प्राणायामों से साधी गईहों किंतु तीर्त्ततीन प्राणायाम से एकएक धारणा कही गई है तैसी तीन धारणा से एक योगभी तैसाही उत्तम या मध्यम या अधम योग होता है कि जैसे धारणा योगीने निज शक्तिके अनुसार साधीहो, ऐसा योग एकबार भी जो रोज रोज साधै सो योगी पुरुष कहाता है जो बारंवार अहर्निश सेसे योगों का अभ्यास किया करताहो वही पूरा पूरा योगाभ्यासी होगा ॥२०१॥

पूरे पूरे योगाभ्यास के सिद्ध होजाने में जो शक्ति आदि फल होते हैं

तिसके लक्षणा आगे कहेंगे ॥

(योगस्यसंसिद्धिलक्षण)

अंतर्धानस्मृतिःकांतिर्दृष्टिःश्रोत्रज्ञतातपा । निजंशरीरमुत्सृज्यपरकायप्रवेशनम् २०२

अर्धानांछंदतःसृष्टियंगसिद्धिर्हिजक्षणम् । सिद्धयोगेत्स्यजन्महममृतत्वायकल्पते २०३

अर्थ—अंतर्धानः स्मृतिः कांतिः दृष्टिः श्रोत्रज्ञता तथा अपने शरीरको छोड़ि के पराये शरीर में प्रवेश होजाना और इच्छासे अर्थोंकी सृष्टि करलेना यह सब योगसिद्धि का लक्षणा है और योगसिद्ध होजाने में देहको त्यागतेहुये अमृतत्व के लिये भी इच्छा होता है—अर्थात्—अणिमानामकी विभूति जिसका यह लक्षणा है कि अत्यंत सूक्ष्म रूप धर सकता है जिसको और कोई न देखसके वह सबको देखे यह अंतर्धान सिद्धि कहाती है स्मृति भी एक विभूति है कि जैसे मनुआदि महाव्रह्मयोगी उन पदार्थों को यादि करसकते थे जिनका यादि करना या देखना सुनना इन्द्रियोंके बगैर न हो क्योंकि इन्द्रियोंउन्हीं वस्तुओंको ग्रहणकरसकतीहैं जो प्रत्यक्ष हो किन्तु स्मृतिरूपी सिद्धिवाला शुद्धपदार्थोंका स्मरण करसकता है कांति नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाय सो चाहें तैसा कुरूप होनेपरभी अति सुन्दरकांति जैसी देवताओंकी चमक दमक होती है धारणा करसकता है दृष्टि नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाती है वह वीती हुई और होनेवाली अगिली पिछली बातोंको दूरसे भी प्रत्यक्ष देखता है श्रोत्रज्ञता नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाती है सो अतिशय दूर देशमें भी जो वड़े वारोक शब्द किन्तु छिपीहुई बातचीत होरही हो तिनको ध्यान देने से प्रत्यक्ष सुनता है पर काय प्रवेश नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाती है सो चाहें तब अपना देह छोड़ि के दूसरे किसी के देह में प्रवेश होजाता है अर्थात् जैसा चाहें तैसा रूप धारिलेता है

हुआ धरि के (अर्थात् हथेली पर हथेली या भिक्के) फिर हृदय के समीप हाथों को भेड़िके और मुहको थोड़ा सा ऊंचा करिके ॥ १६८ ॥ और खै मोचे हुये आप सरवस्थ होके (अर्थात् काम क्रोध आदिको छोड़े हुये सत्ता गुरामें स्थित होके) दाँतों से दाँत जुड़े किये हुये मुहको मुँदे हुये जीभको तालुबे में अडिग थांभे आप सुनिश्चल होय (जो देह कहाँ से हिले काँपे नहीं ॥ १६९ ॥ सब इन्द्रियों के समूहको उनके वियर्यों से खींच के ऐसे आसन पर बैठा हो जो बहुतनीचा और बहुत ऊँचा भी न हो (अर्थात् ऐसा समान आसन होय जिससे चित्तको विक्षेप न होसके) फिर दूना और तिगुना भी प्राणायामको आरम्भ करै (कि जिससे प्राणवायु निज वश में आजाय ॥ २०० ॥ तिसपीछे इस प्रभुका ध्यान करना जो हृदयमें यह दीपके समान जोति रूपसे अचल बिराजमान है (जिसका प्रसंग १११ स्क सौ ग्यारह श्लोकसे उत्पन्न हुआ था) फिर यह बुद्धिमान योगी तहाँ अपने हृदय बीच आत्मा को मन के सम्मुख धारणा धरते हुये ध्यान में धरै (धारणा का स्वरूप अधिकोक्ति में ॥ २०१ ॥

२०१ अधिकोक्ति—जिस धारणा का चर्चा किया कि धारणा धरते हुये साथ ही साथ आत्मा को ध्यानमें देखै—तिस धारणाका यह लक्षण है कि चित्तको रोकना और उसके साथ नाभि चक्रसे लेकर नाक आगे तक विचरनेवाले प्राण वायु को वशमें रखना भला कितनी देर तक ऐसी धारणा करनी तिसके समयका यह नियम है जोयका घूटा हिलाकर उँगरियों से चुटुकी (छोटिका) बजाने में जितना समय लगता है सो एक छोटिका नामकी मावा कहाती है ऐसी पंद्रह मावा तक जो प्राणायाम किया जाय सो तो नीच तुच्छ कहाता है जो तीस मावा तक प्राणायाम साधा जाय सो मध्यम कहाता है जो पैंतालिस मावा तक प्राणायाम थांभा जाय सो उत्तम होता है इसीलिये मूल श्लोक में (द्विगुणं त्रिगुणं वापि) यह कहा था कि दूना और तिगुना भी प्राणायाम का अभ्यास करै अर्थात् नीच मध्य फिर उत्तम इसी क्रम से तीनों प्राणायामको एकही धारणामें साथै सो यह एकही धारणा कहाती है (अथवा साधक पुरुष की शक्ति के अनुसार तीनों उत्तम या तीनों मध्यम या तीनों अधम प्राणायाम हों) फिर ऐसी तीन धारणा साधने से योगधारणा नाम होता है—तथाच शास्त्रांतर वचन—संश्रम्य छोटिकां दद्यात्कराग्रं जानु मण्डलं मावाभिः पंचदशभिः प्राणायामांश्चैव स्मृतः मध्यमो द्विगुणः श्रेष्ठस्त्रिगुणो धारणा तथा विभिन्नभिः स्मृतैकैकाताभिर्योगस्तथैव च= अर्थात्—जो नियम दर्शाया गया तिसका यह प्रमाण वचन है कि—जितनी देर में दोनों घूटे और हाथको अंगुरी घुमाय के चु-

अपने शरीरको चाहै तैसा (युरु) गरुआभारी बोझिल बनाइलेता है जैसे हनुमावजी लक्ष्मणाके जिवाउनेको सजीवन मल लेनेगये तब असंख्य औषधियों में उसको नहीं पहिंचानि सके तिससे अपने शरीरको इतना भारी बोझिल बनाया कि समस्तपर्वत को उखाडि के अपने शरीरपर धरिलासके—इलायसा विभूतिवाला अपने शरीरको चाहै तैसा(लघु)हलुका बनाइलेताहै जो उडिकरचाहै तिस ऊंचेसे ऊंचेलोकमेंजासके—इंद्रिशता विभूतिवाला ईश वनिसक्ताहै अर्थात् चाहै तहाँ किसी समाज में या किसी प्रबल मनुष्यके ऊपर भी ईशकी तरह आज्ञा चलाइ सकताहै कि उसके ईशत्वके प्रभाव से हर कोई आज्ञा मानिलेता है—यहाँतक कि स्यावर वृक्ष पत्थर आदि भी आज्ञा उसकी मानते हैं कि जिनपर चलाना चाहै—केवल आपही नहीं किन्तु जिस किसी को चाहै तिसके ऊपर भी ईशत्वका प्रभाव आरोपित करके आज्ञा दायक बनादेवै और इसीप्रकार अन्य विभूतियोंवाले भी अपने समानशक्ति औरोंको देस कतेहैं जितनी देसतक देना चाहै—इंद्रिशता विभूतिवाला अपने वीशत्व के प्रभावसे चाहै तिसको वशीभूत करसक्ता पर आप किसी के वश में नहीं आता किन्तु सदा स्वतंत्र बना रहिता है—७ प्राप्ति नामकी विभूतिवाला चाहै तहाँ अति दूर स्थानतक शीघ्र पहुँचि सक्ताहै—८ प्राकाम्य नामकी विभूतिवाला जैसी कामनाकी इच्छा करै सो इच्छा पूरीहोतीहै॥ पहिले श्लोक में कामावसायिता नाम जो आदवीं विभूति सबसे अधिक प्रतीत होतीहै तिसको अधिक नहीं समझना किन्तु इसीदूसरे श्लोकमें जो गरिमानाम तीसरी विभूति कही सोई अधिक समझना क्योंकि गरिमा ऐश्वर्यों में गिनती नहीं मानीगई है—और कामावसायिताका प्रयोजन यद्यपि प्राकाम्य के समानही देखिपरताहै तथापि दोनोंमें भेदहै कि प्राकाम्य तो केवल उसीकी इच्छा पूरी करनेवाली विभूतिहै और कामावसायिताका यह तात्पर्य है कि सिद्ध पुस्य जो कुछ अन्य जीवोंके लिये अपने संकल्पसे (अवसाय) निश्चय करार देवै कि अमुक प्राणी को मैं धनी या राजा या पुत्रवान या कानां या कोढी करदेना चाहताहूँ सो अवश्य करि दिखाऊंगा वही करि दिखाताहै चाहै निपट वध्याको पुत्र पैदा करवावै इत्यादि अपनी बुद्धिसे समझना=ये आठौं विभूतियाँ साक्षात् परमेश्वरके शेषवर्ग हैं इसी हेतु महादेव आदि बड़े बड़े सब ईश्वर इन विभूतियों से सर्वथा आठौं अंग भरे पुरे होतेहैं और इन्द्रादिक लोकपाल आदि सब देवता इन विभूतियोंसे बहुत या छो-डाही यथायोग्य भरे रहिते किन्तु उनमें जन्मके साथही ईश्वरकी दीहुई स्वाभाविक सिद्धि आतीहै—इनके सिवाय सन्यासी आदि पूरे योगीश्वर अपनी योग साधना के

सबसे बड़ी एक यह विभूति है कि जिनपदार्थोंकी इच्छा हो बड़ी सबरचिस्के अर्थात् उत पदार्थोंका मुख्यबीज और कारणा आदि उपस्थित न होनेपर भी रचना करि लेता है जैसे विद्यामित्रने दूसरी सृष्टि रचिके दिखलाई थी या जैसे वशिष्ठ जमदग्नि आदि ने बड़े बड़े राजाओंकी पहनुई सेना सहित बिना सामग्री के करदी थी इत्यादि योग सिद्धिकी यही पहिँचानि है कि जिसको ये सभी विभूति या इनसे से बिरली कोई सिद्ध होजाय तिसको योग सिद्ध हुआसमझी तिसके पीछे यह फल होता है कि जब योगी अपना देह त्यागें तभी साक्षात्कार ब्रह्म में लय होनेवाला अमृत मोक्ष भी होता है ॥ २०२ ॥ २०३ ॥

२०२ अधीकोक्तिः—ऊपर चर्चाकरि विभूतियोंका ऋद्धि और सिद्धि भी नाम है इन की मुख्य संख्या ती आठही नामोंसे लिखीत है फिर उन्हीं आठके और भी अनेक भेद होते हैं तिनके भी जुदे जुदे नाम रखलिये जाते हैं जैसे योगीश्वरने इन्हीं दो श्लोकोंमें कुछ नामकहे—अथ विभूतीनां नामानि यथा—अगिमा लघिमा प्राप्तिः प्राक्काम्यं महिमा तथा । ईशित्वं चैव शित्वं च तथा कामावसायिता—इत्यैश्वर्याणि—श्लोकांत रंतु—अगिमामहिमा चैव गरिमालघिमा तथा ईशिता वशिता चैव प्राप्तिः प्राक्काम्यमेव च—अर्थात्—आठविभूतियोंके ये नाम हैं कि—१ अगिमा • २ लघिमा • ३ प्राप्ति • ४ प्राक्काम्य • ५ महिमा • ६ ईशित्व • ७ वशित्व • ८ कामावसायित्व • ये आठों सब जुदे जुदे एकही एक ऐश्वर्य भी कहाते हैं कि इनमें जिस किसीपर बोही एक ऐश्वर्य हो तिसको भी कुछ ईश्वर अर्थात् ईश्वरका समीपी भाई बन्धु समझना क्योंकि जैसे इनके नाम हैं तैसेही अर्थोंके अनुरूप अनूठे कामोंकी सिद्धि वशमें रहितो है • इष्टांत जैसे आठवीं विभूति कामावसायिताका यह अर्थ है कि काम जो मनकी कामना है चाहें मैसे संकल्प से उत्पन्न करीजाय तिसको तत्कालही अवसाय नाम निश्चय करदेती है अर्थात् जिस कार्यकी चाहना करें सो सब सिद्ध होता है—दूसरे श्लोक में केवल एक इसीनामका अंतर है और विभूति दोनोंमें आठ बराबर हैं तिनके अर्थ ये हैं कि—१ अगिमा विभूति वाला पुरुष जब चाहें तब सेमा (अणा) छोटा बनजाता है कि पत्थरकी चटान में भी घुसिजासके जिसमें वायुतक नहीं घुसिपाता है इसी अगिमाके प्रभावसे देवता और सिद्धलोग अति सूक्ष्मरूप बने फिर्ते हैं कि जिसे कोई देखि नहीं पाता—२ महिमा विभूतिवाला चाहेतैमा (महान्) बड़ा डीलडौल बढ़ाई सज्जात है जैसे लंकाको जातेसमय हनुमान ने सरसाके समुख अपना डीलबढ़ाया और बिामन अवतारवाले प्रभुने वलि राजको छलने को निमित्त अपना डील बढ़ाया था इत्यादि—३ गरिमा विभूतिवाला

अपने शरीरको चाहें तैसा (गुरु) गरुआभारी बोझिल बनाइलेता है जैसे हनुमावजी लक्ष्मणाके जिवाउनेको सजीवन मूल लेनेगये तब असंख्य औषधियों में उसको नहीं पहिंचानि सके तिससे अपने शरीरको इतना भारी बोझिल बनाया कि समस्तपर्वत की उखाड़ि के अपने शरीरपर धरिलासके—४ लघिमा विभूतिवाला अपने शरीरको चाहें तैसा (लघु) हलुका बनाइलेताहै जो उड़िकर चाहें तिस ऊंचेसे ऊंचेलोकमें जासके—५ ईशिता विभूतिवाला ईश बनिसक्ताहै अर्थात् चाहें तहाँ किसी समाज में या किसी प्रबल समुप्यके ऊपर भी ईशकी तरह आज्ञा चलाइ सकताहै कि उसके ईशत्वके प्रभाव से हर कोई आज्ञा मानिलेता है—यहाँतक कि स्थावर वृक्ष पथर आदि भी आज्ञा उसकी मानते हैं कि जिनपर चलाना चाहें—केवल आपही नहीं किन्तु जिस किसी को चाहें तिसको ऊपर भी ईशत्वका प्रभाव आरोपित करके आज्ञा दायक बनादेयें और इसीप्रकार अन्य विभूतियोंवाले भी अपने समानशक्ति औरोंको देसकतेहैं जितनी देसतक देना चाहें—६ वशिष्ठा विभूतिवाला अपने वशिष्ठ के प्रभावसे चाहें तिसको वशीभूत करसक्ता पर आप किसी के वश में नहीं आता किन्तु सदा स्वतंत्र बना रहता है—७ प्राप्ति नामकी विभूतिवाला चाहें तहाँ अति दूर स्थानतक शीघ्र पहुँचि सकताहै—८ प्राकाम्य नामकी विभूतिवाला जैसी कामनाकी इच्छा करे सो इच्छा पूरीहोतीहै॥ पहिले श्लोक में कामावसायिता नाम जो आठवीं विभूति सबसे अधिक प्रतीत होतीहै तिसको अधिक नहीं समझना किन्तु इसीदूसरे श्लोकमें जो गरिमानाम तीसरी विभूति कही सोई अधिक समझना क्योंकि गरिमा ऐश्वर्यों में गिनती नहीं मानीगई है—और कामावसायिताका प्रयोजन यद्यपि प्राकाम्य के समानही देखिपरताहै तथापि दोनोंमें भेदहै कि प्राकाम्य तो केवल उसीकी इच्छा पूरी करनेवाली विभूतिहै और कामावसायिताका यह तात्पर्य है कि सिद्ध पुत्र्य जो कुछ अन्य जीवोंके लिये अपने संकल्पसे (अवसाय) निश्चय करार देयें कि अमुक प्राणी को मैं धनी या राजा या पुत्रवान या काना या कोटी करदेना चाहताहूँ सो अवश्य करि दिखाऊंगा वही करि दिखाताहै चाहें निपट बंध्याके पुत्र पैदा करवावे इत्यादि अपनी बुद्धिसे समझना—ये आठवीं विभूतियाँ साक्षात् परमेश्वरके ऐश्वर्य हैं इसी हेतु महादेव आदि बड़े बड़े सब ईश्वर इन विभूतियों में सर्वथा आठो अंग भरे पुरे होतेहैं और इन्द्रादिक लोकपाल आदि सब देवता इन विभूतियोंसे बहुत या छो-छाही यथायोग्य भरे रहिते किन्तु उनमें जन्मके साथही ईश्वरकी दीहुई स्वाभाविक सिद्धि आतीहै—इनके सिवाय संन्यासी आदि पूरे योगीश्वर अपनी याग साधना के

प्रभावसे यदि कोई एक बोहीको सिद्ध करिपातेहैं सोउनमेंभी अद्यापिहोतीहै दृष्टांत
जैसे सैकड़ों वा हजारों की सामग्री उधार मगाकर बड़ा भंडारा किया फिर पीछेसे
खाली तुंबी कमराडलको भ्रंदा करिके रुपये उलटदिये वह सभी सोदावालों को दे-
दियेगये पर आप उसी तुंबी और लंगोरोके सिवाय कुछ आडंबर साथ नहीं राखते-
दूसरा दृष्टांत जैसा किसी दुखियाने वृक्षा कि वावाजी मेरे पुत्रको सोरहवर्ष बीते कि
वह घरसे निकसि गया कभी उसकी खबरतक न मिली जानै कहां होगा-उत्तरदिया
कि बच्चा तेरापुत्र अमुक विदेशमें था अब फलाने शहरमें आगया है बारहवेंदिन तेरे
पासभी आवैगा सोइस सब सत्यहुआ इत्यादि परे सिद्धलोग पृथ्वीपर अनेकहैं पर ऐसे
लोग अपने आपेको छिपाये रहाकरते हैं क्योंकि संसारीलोग एकद्व का भला होता
देख सिद्धों की वारागी सत्यजानिके उनको चैन नहीं लेनेदेते किन्तु घेरते और अपने
अपने दुखहेतुसे भताते हैं—योग साधना के विनाभी ईश्वरकी इच्छासेही बिरली लोग
सिद्धियोंको साधलिये पैदाहोतेहैं उनकी पहिले जन्मकी तपस्या साथ आकर यहाँ
सिद्धिका फल देतीहै यद्यपि मूलश्लोकों में योगीश्वरकी उचारणा किये नाम अब्रोक्त
आटीसे मिलते नहींहैं तथापि वेनाम भी सब इन्हीं आठ विभूतियोंका विकार हैं सो
इन्हींसे उत्पन्न होतेहैं सदेह न करना चाहिये ॥२०२॥२०३॥

पूर्वोक्त प्रकारोंसे यज्ञ दान तपस्या आदि जित लोगोंने नहीं किया और योग
साधना भी करनेकी शक्ति जिनमें न हो ती ऐसे लोग जो अपने सत्त्वकी शुद्धि किया
चाहें तिनकोलिये सुगम उपाय भी दशविंसे सो अगिले श्लोकोंसे देखना ॥

(उपायां तरंच)

अपवाप्यभ्यसन्वेदन्यस्तकर्मवनेवतन् । अपाचिताशीमितभुक्परांसिद्धिमवाप्नुयात् २०४

अर्थः—अथवा (जोपूर्वोक्त नियम योग आदि न होसके ती) न्यस्त कर्महाकर
(अर्थात् सब कर्मों का त्यागी और विशेष कर नियिद्ध कर्मों का त्यागी होकर)
वन में निरुपद्रव स्थानपर बसता हुआ और शक्तिके अनुसार वेदकी अभ्यास करते
हुये विना मागे जो प्राप्त होय उसी की परिमान से (थोड़ा थोड़ा सुधा निवारणा के
अनुमान से) भोजन करिके आयुको बितावै जिससे सत्त्वकी शुद्धि होजाय औरयथा
शक्ति पूर्वोक्त आत्मा की उपासना में भी चित्तकी लगायेरहै ती यह पुरुषभी मुक्ति
के लक्षणा वाली परम सिद्धि की पावता है ॥ २०४ ॥

मुक्ति जो पदार्थ है सो केवल सन्यासी योगीको नहीं किंतु गृहस्थी भी मोक्षपद

को जातेहैं सो अब नीचे कहेंगे—इसी लिये अध्यात्म ब्रह्मकी उपासना वाले प्रकार ध्यान योगआदि जो जो कुछ वर्णन किये तिनकी साधनाका अधिकारी गृहस्थी सब से प्रथम है जो उससे बनिआवै—अर्थात् संसारी सामग्री छोड़िके संन्यासी होजाने से ही ब्रह्मकी उपासना का अधिकारी नहीं किंतु गृहस्थ में रहितेभी अधिकारी होता है—तिससे अध्यात्मविद्याका प्रकरणा जो ६२ वासरिके श्लोकसे लेकर अवतकसंन्यासी के प्रसंगमें दर्शाया गया सो सब गृहस्थीकोभी पढ़ना और अभ्यासकरना चाहिये॥

(गृहस्थस्यापि मुक्तिर्भवति)

न्यायागतयनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः । आदुरुस्तत्पवादीव गृहस्थोऽपि हि मुच्यते २०५

अर्थ—गृहस्थो कि जिसके न्यायमार्ग से ही घन आता हो अन्याय से नहीं और अतिथि प्रिय हो किंतु आये हुये अभ्यागतों का स्तकार नित्य निरंतर करता हो और आह्वकर्ता हो अर्थात् नित्य आह और नैमित्तिक आदि आहों के अनुष्ठान में तत्पर बना रहता हो और सत्यही वचन बोलनेका स्वभाव हो और तत्त्वज्ञान (जैसा चौंसठि श्लोक से लेकर अभी तक वर्णन होतारहा तैसे आत्मतत्त्व के ध्यान) में भी विचार पूर्वक लगा रहता हो—ऐसा गृहस्थो पुस्त्यभी मोक्षपद को पहुँचता है—तिससे यही न समझ लेना कि ऊपर जो अध्यात्म विद्या संन्यासी के प्रसंग में कहोगई उससे केवल संन्यासी मुक्ति पाता होगा ॥ २०५ ॥

इति अध्यात्मप्रकरणं यह प्रकरणा बहुत बड़ा है कि आठवें परिच्छेदसे लेकर यहाँ तक बारह तेरह परिच्छेदों में पूरा हुआ ॥

आचार कांडके प्रारंभ में यह कहाथा कि छे प्रकारके स्मार्त धर्म हैं सो सबतीनों कांडोंमें वर्णन किये जायेंगे (वर्णा धर्म आश्रम धर्म वस्त्राश्रम धर्म गुणधर्म साधारणा धर्म निमित्तधर्म) अर्थात् सहित लखरा इनके आचार कांडके प्रथम श्लोकमें देखो इन में पाँच धर्म तो अवतक वर्णन हो चुके केवल निमित्त धर्म शेष रहता सो अब आगे से प्रायश्चित्तों के स्वरूप द्वारा दर्शवेंगे किंतु निमित्त धर्म का यह अर्थ है कि जो करना चाहिये सो न किया जैसे उचित अर्वाध पर यज्ञोपवीत नहीं किया यद्य उचित समयपर कन्याका विरागमन करना सोकि दिया इत्यादि नानाप्रकार हैं जिनके न करने का दोष अथवा जो न करना चाहिये सो नियिद्ध कर्म किया जैसे अग्न्यागमन आदि नाना प्रकार हैं जिनके करने का दोष ये दोनों भाँति के दोष जो हैं सोई निमित्त माने जाते हैं कि इनको मिटाने के निमित्त से जो कुछ प्रायश्चित्त करना

प्रभावसे यदि कोई एक बोहीको सिद्ध करिपातेहैं सोउनमें भी अद्यापिहोतीहै दृष्टांत जैसे सैकड़ों वा हजारों की सामग्री उधार मगाकर बड़ा भंडारा किया फिर पीछेसे खाली तुंबी कमराडलको आँधा करिके रुपये उलटाँदिये वह सभी सौदावालों को दे-दियेगये पर आप उसी तुंबी और लँगोरीके सिवाय कुछ आडंबर साथ नहीं राखते। दूसरा दृष्टांत जैसा किसी दुखियाने वृक्षा कि वावाजी मेरे पुत्रको सोरहवर्ष बोते कि वह घरसे निकसि गया कभी उसकी खबरतक न मिली जानै कहां होगा। उत्तरादिया कि बच्चा तेरापुत्र अमुक विदेशमें था अब फलाने शहरमें आगया है बारहवेंदिन तेरे पासभी आवैगा सोई सब सत्यहुआ इत्यादि परे सिद्धलोग पृथ्वीपर अनेकहैं पर सेसे लोग अपने आपेको छिपाये रहाकरते हैं क्योंकि संसारीलोग एकद्व का भला होता देख सिद्धों की वारता सत्यजानिके उनको चैन नहीं लेनेदेते किन्तु घेरते और अपने अपने दुखहेतुसे सताते हैं—योग साधना के बिनाभी ईश्वरकी इच्छासेही बिरली लोग सिद्धियोंको साधलिये पैदाहोतेहैं उनको पहिले जन्मकी तपस्या साथ आकर यहाँ सिद्धिका फल देतीहै यद्यपि मूलप्रलोकों में योगीश्वरके उच्चारण किये नाम अत्रोक्त आदौसे मिलते नहींहैं तथापि वेनाम भी सब इन्हीं आठ विभूतियोंका विकार हैं सो इन्हींसे उत्पन्न होतेहैं संदेह न करना चाहिये ॥२०२॥२०३॥

पूर्वोक्त प्रकारोंसे यज्ञ दान तपस्या आदि जिन लोगोंने नहीं किया और योग साधना भी करनेकी शक्ति जिनमें न हो तो ऐसे लोग जो अपने सत्त्वकी शुद्धि किया चाहें तिनकीलिये सुगम उपाय भी दर्शावेंगे सो अगिले प्रलोकोंसे देखना ॥

(उपायों तरंच)

अथवाप्यन्यतन्वेदंन्यत्तर्कमावेनवत्सन् । अथाचिताशीमितभुक्परांसाद्विमवाप्नुयात् २०४

अर्थः—अथवा (जोपूर्वोक्त नियम योग आदि न होसके तो) न्यस्त कर्मशिकार (अर्थात् सब कर्मों का त्यागी और विशेष कर नियिद्ध कर्मों का त्यागी होकर) वन में निरुपद्रव स्थानपर बसता हुआ और शक्तिके अनुसार वेदको अस्यास करते हुये बिना सागे जो प्राप्त होय उसी को परिमान से (थोड़ा थोड़ा सूधा जिवारण के अनुमान से) भोजन करिके आयुको बितावै जिससे सत्त्वकी शुद्धि होजाय औरयथा शक्ति पूर्वोक्त आत्मा की उपासना में भी चित्तको लगायेरहै तो यह पुरुषभी मुक्ति के लक्षणा वाली परम सिद्धि को पावता है ॥ २०४ ॥

मुक्ति जो पदार्थ है सो केवल संन्यासी योगीको नहीं किन्तु गृहस्थी भी सोक्षपद

एवं मदिरा पीने वाला अपने योग्य नरकों को भोगे पीछे गदहा की योनि में या पुल्कस प्रतिलोम जाति (जो नियाद नाम एक मछड़े के बोज से शूद्रीके घेमें उत्पन्न होती है तिसके) यहाँ जन्मता तथा ऐसेही वेन एक सहानीच जाति होतीहे तिसमें जन्म पाता है इसमें संदेह नहीं ॥ २०७ ॥ सोना हरनेवाला अपनेयोग्य नरकों को भोगे पीछे कृमि कीट पतंग रूपपाताहै अर्थात् मांस विष्टा गोबरआदिमें वारीक सुंडो जो अनेक तरह की उत्पन्न होते सो कृमि कहाते और उनसे कुछमीरे बड़े बिना झाड़ बिना परों के तुच्छ जीव चींटी दीमक आदि अनेक भौति के सब कीट कीड़े कहातेहैं और दीडी ततैया आदि अनेक तरहके परवाले जीव उड़ने वाले पतंग कहाते हैं तिन में जन्म पाता है—एवं शुरुतल्पग जो शरानी आदि पृथ्वी स्त्रियों गमन करनेवाला महापातकी है सो अपने योग्य नरकों को भोगने पीछे क्रमसे दूरा गुल्म लता तीनोंका रूप जाकर होताहै अर्थात् कौंस डाम आदि अनेक दूरा होतेहैं तथा गुल्म भी शुच्छाके आकार दृस जैसे सरो या सृंज आदि बड़े छोटे अनेक भौति होते हैं तथा वनमें लता बेतली भी बड़ी छोटी अनेक भौति होतेहैं इन तीनों में क्रमसे जन्म पाता है (इसी प्रकार ऊपर के ब्रह्महत्यारे आदिमें क्रमसे सब योनि मिलनी समझ लेना जोउनके लिये कहिचुके किंतु जैसा विकल्प उनमें लिखागया तिसका नियम नहींरहा क्योंकि क्रमसे यह कथन उन सबही का अध्याहार है ॥ २०८ ॥

२०७ अधिकोक्तिः—येनों श्लोक में योगीश्वर के कहे नियम सर्वथा उस दशा पर आस्तुत कियेगये कि जो इच्छा बिना ऐसे महापातक हुयेहों—अन्यथा—इच्छा सहित इन्ही पापों के करनेवाले इनसे भी अधिक दुखदाई योनियोंमें जन्मते हैं= यथाह मनु=यसूकरखरोयूराणां गो२जाविमृगपक्षिणाम चंडालपुल्कसानां च ब्रह्महायो निमृच्छति ॥ कृमिकीटपतंगानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम हिंसाणां चैव सस्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ लूता हिंसरानां च तिरश्चां चांबुचारिणाम हिंसाणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ दूरा गुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि कूटकर्मज्ञां चैव शतशो शुरुतल्पगः—अर्थात्—जानि वृम्भिके इच्छा पूर्वक महा पाप करनेवालों की अपेक्षा मनु कहिते हैं कि उन में से ब्रह्म हत्यारा अपने योग्य नरक भोगे पीछे कृत्ता सृगर गदहा ऊट बैल वकरा मेदा और वनके मृग पक्षी और चण्डाल पुल्कस इन सब की योनि अनेक बार पाताहै ॥ एवं मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण भी कृमि कीट पतंगों में और विष्टा खानेवाले कौवा आदि पक्षियोंमें और हिंसक जीवोंमें जाकर जन्मता है ॥ एवं चोरी करने वाला ब्राह्मण भी सक्रो आदि जाल पूरने वाले जीव मांप

आवश्यकहो वही प्रायश्चित्त का नियम है सो निमित्त धर्म कहा जाता है तिसका प्रांभ अगिले परिच्छेद से होगा—तहाँ प्रथम उसके अविकारी लोग वर्णन होंगे कि प्रायश्चित्त किनकी करना आवश्यक है ॥



अथ-प्रायश्चित्तापेक्षायांकर्मविपाकस्वरूप

विवेकीनाम एकविंशः परिच्छेदः २१

इस परिच्छेद में प्रायश्चित्तों का प्रारंभ करना चाहिके उसके योग्य अविकारियों का कर्म विपाक वर्णन होगा जो प्रायश्चित्त करनेसे वंचित हों ॥

(कर्मविपाकः)

महापातकजान्पौरान्नरकान्प्राप्यदारुणान् । कर्मक्षयात्प्रजापतेर्महापातकिनस्त्वह २०६

अर्थ—महापातकों से ऊपन्न घोर दारुण नरकों को पायके कर्म भोग नाश होने से वेही महा पातकी यहाँ जन्मतेहैं—अर्थात्—ब्रह्मइत्यादि पांच महा पातक जो आगे कहे जायेंगे तिनके करने वाले महापातकी कहातेहैं तिनके जड़े कर्मों के अनु-रूप जो जो नरक स्थान महाघोर भयंकर दारुणदुःख मिलनेवाले नियत होतेहैं तिनमें जायके निज निज अर्वाधतक भोगने से कर्म भोगों का अंत होजाने पीछे शेष पापों के प्रभावसे वेही नारकीलोग इहाँ संसार में फिर आकर शुकर शृगाल आदि खोटी योनियोंमें बारबार जन्मते रहितेहैं अर्थात् अनेक जन्मोंतक पीछा उनका नहीं डूटने सकताहै—तथैव उपपातकी आदि भी निज कर्मोंके अनुरूप योनि पाते हैं सो सब आगे वर्णन करेंगे ॥ २०६ ॥

(कर्माधीन योनि भेदाः)

मृगश्चकूरोष्ट्राणांब्रह्मायोनिमृच्छति । खरपुल्कसवेनानां सुरापोनाग्रसंशयः २०७

रुमिकीटपतंगत्वं स्वर्गहारीसमाप्नुयात् । दृण्गुल्मलतात्वं च कर्मशोभुरुतत्पगः २०८

अर्थ—ब्रह्मइत्यादि अपने योग्य नरकों को भोगे पीछे मृग हरिया आदि वनजी-वोंकी योनि या कृत्ता सुकर कंटों की योनि पाता है अर्थात् जिसके जैसे कर्मोंका प्रभाव ऊँच नीच होता है तैसीही योनिभी इन्ही में से ऊँचीनीची उसको मिलतीहै—

एवं मदिरा पीने वाला अपने योग्य नरकों को भोगे पीछे गदहा की योनि में या पुल्कस प्रतिलोम जाति (जो नियाद नाम एक मछेहरे के बीज से शुद्धीके पेटमें उत्पन्न होती है तिसके) यहाँ जन्मता तथा ऐसेही वेन एक महानीच जाति होतीहै तिसमें जन्म पाता है इसमें संदेह नहीं ॥२०७॥ सोना हरनेवाला अपनेयोग्य नरकों को भोगे पीछे क्षम कीट पतंग रूपपाताहै अर्थात् मांस विद्या गोबरआदिमें वारीक मूंडी जो अनेक तरह की उत्पन्न होते सो क्षम कहाते और उनसे कुछमोटे बड़े बिना हाड बिना परों के तुच्छ जीव चींटी दीमक आदि अनेक भौति के सब कीट कीड़े कहातेहैं और दीड़ी ततैया आदि अनेक तरहके परवाले जीव उड़ने वाले पतंग कहाते हैं तिन में जन्म पाता है—एवं गुरुतल्पग जो गुरानी आदि पुंड्र्य स्त्रियों गमन करनेवाला महापातकी है सो अपने योग्य नरकों को भोगने पीछे क्रमसे तरा शुल्म लता तीनोंका रूप जाकर होताहै अर्थात् कोस डाम आदि अनेक तरा होतेहैं तथा शुल्म भी शुच्छाके आकार वृक्ष जैसे सरो या मंज आदि बड़े छोटे अनेक भौति होते हैं तथा वनमें लता बेलभी बड़ी छोटी अनेक भौति होतीहैं इन तीनों में क्रमसे जन्म पाता है (इसी प्रकार ऊपर के ब्रह्महत्यारे आदिमें क्रमसे सब योनि मिलनी समझ लेना जोउनके लिये कहिचुके किंतु जैसा विकल्प उनमें लिखागया तिसका नियम नहींरहा क्योंकि क्रमसे यह कथन उन सबही का अध्याहार है ॥ २०८ ॥

२०७ अधिकांतिः—दीनों प्रलोक में योगीश्वर केकहे नियम सर्वथा उस दशा पर आरुद्ध कियेगये कि जो इच्छा बिना ऐसे महापातक हुयेहैं—अन्यथा—इच्छा सहित इन्ही पापों के करनेवाले इनसे भी अधिक दुखदाई योनियोंमें जन्मते हैं—अथाह मनुः=चसूकरखरोयासांगो२जाविमृगपक्षिरागमचंडालपुल्कसानांचब्रह्महायो निमृच्छति ॥ क्षमकीटपतंगानांविड्भुजांचैवपक्षिरागम हिंसाराणांचैवस्त्वानांसुरापो ब्राह्मरात्रजैव ॥ लूताहिमरानांचतिरश्वांचांबुचारिणां हिंसाराणांचपिशाचानां स्तेनोविप्रःसहस्रशः ॥ तराशुल्मलतानांचक्रव्यादांदंष्ट्रिणामपिकूरकर्मकांचैवशतशो गुरुतल्पगः=अर्थात्—जानि वृक्षके इच्छा पूर्वक महा पाप करनेवालों की अपेसा मनु कहिते हैं कि उन में से ब्रह्म हत्यारा अपने योग्य नरक भोगे पीछे कृत्ता•सुअर• गदहा•ऊंट•बैल•चकरा•मेढ्रा•और वनके मृग•पक्षी• और चण्डाल•पुल्कस•इन सब की योनि अनेक बार पाताहै ॥ एवं मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण भी•क्षम•कीट•पतंगों में और विद्या खानेवाले कौवा आदि पक्षियोंमें और हिंसक जीवोंमें जाकर जन्मता है ॥ एवं चोरी करने वाला ब्राह्मण भी•मकरो आदि जाल पूरने वाले जीव•सांप•

सरस अर्थात् गिरिगिरि-और तिरछे उड़नेपैरनेवाले जलचर जीव-और हिंसा करनेवाले
अनेक जीव-और पिशाच-इनमें हजारों बार जन्मता है ॥ एवं शुरुतल्पग पुरुष-हत्या-
शूलम-लताओं में-और मांसमक्षी कच्चाद राक्षस शिब आदि में-और दाढ़ वाले सिंह
व्याघ्र बाराह आदि में भी-और कसाई आदि क्रूर कर्म करनेवालों में सैकड़ों बार
जन्म लेता है ॥ ० ॥ ये चार भौतिके महापातकी होतेहैं सो कहे गये पाँचवाँ इनका
सदगार भी महापात की होता है यह दोसौ सत्ताइस के प्रलोक में विवेचन होगा
तहाँ समझ लेना ॥ ० ॥ येही महापातकी लोग इतने खोटेजन्म पाने पीछे जब कभी
फिर मनुष्ययोनिमें आतेहैं तहाँ भी इनपापोंका वचाहुआ अंशान्श पीछा नहींछोड़ता
है अर्थात् उसकी यह पहिचान है कि जन्म के साथही कोई महारोग लगाआता है
सो व्यौरे बार अगिले श्लोकोंसे दर्शावेंगे ॥ २०७ ॥ २० ८ ॥

(मानुष्येऽपि जन्मनि दुरितशेषेणैव च यरोगादियुक्ता जायन्ते)

ब्रह्माक्षयरोगास्तुरापञ्चयावदंतकः । हेमहारीतुकुनसीदुश्चर्मागुरुतल्पगः २०९

योपेनसंवसत्पेपासतद्विगोऽभिजायते । अन्नहर्ताऽऽमयावीस्यान्मूकोवामपहारकः २१०

धान्यमिश्रोऽतिरिक्तगः पिशुनः पूतिनासिकः । तेलद्वृत्तैलपायीस्यात्पूतिवकूस्तुलूचकः २११

अर्थ-ब्रह्महत्यारा फिर मनुष्य योनिमें आनेपर जन्मके साथही या थोड़ी उमरमें
सयी रोगसे संयुक्त होताहै जो प्रायश किसी औषधी से जीता नहींजासक्ताहै इसीको
जन्म पेरी कहा करतेहैं-ऐसेही निषिद्ध मद्यों का पीनेवाला पूर्वांत रीति से नरक
आदि भोगने पीछे मनुष्य योनि में फिर आकर जन्म के साथही श्यावदंत होता है
अर्थात् काला पीला मिलेहुये भईबर्षा के बौत उसके राक्षसी दाँतोंके समान होतेहैं
इसीसे पहिचाना जाताहै कि पूर्व जन्मों में निषिद्ध मदिरा पानकारी थी-इसीप्रकार
जन्मांतर में ब्राह्मण का सुवर्षा हरनेवाला फिर मनुष्य योनि में आनेपर कुनखीहोता
है अर्थात् उसके बीसों नख कोड़ियों के समान बुरे विगड़े होतेहैं-इसी प्रकार
शुरुबारागामी अपने कर्मोंके नरक भोगने और उक्त योनियोंमें रहिआनेपीछे मनुष्य
योनि में फिर आनेपर दुश्चर्मा होताहै अर्थात् मूत्र देहको खाल उसकी बुरे कोदसे
विगड़ोहुई होतीहै ॥ २०६ ॥ पाँचवाँ वह कि जो इनचारोंमें जिस किसीके साथ महा-
यत्ता देने आदि प्रकारों से वसा हो सोभी उसीके समान नरक जन्म राजरोग आदि
भोगने वाला होता है (यहाँतक स्थूल रूप से जो पाँच महापापी कहे उन्हींमें चोरों
के कुछ और भी विशेष भेद आगे दर्शातेहैं कि) चोरों में जो अन्न का हरनेवाला

होय सो जन्मांतरमें आमयावी अर्थात् मंदारिण से संयुक्त महायोगी होताहै कि जिस को अन्न कभी पचता नहीं—एवं वासी हरनेवाला जो किसी की अति प्रयोजनवाली वार्त्ता चुपके सुनिके चुरावै और विद्या संबंधी पुस्तक चुरावै या कोईसी मूल खपी विद्या गुरु के दिये बिना किसी औरही के द्वारा वार्त्ता प्रसंगसे चुराकर भगावै ऐसा ब्राह्मण पद्वारक पुरुष जन्मांतर में गंगा होकर जन्मता है ॥ २१० ॥ धान्यमित्र जो मिलेहुये धान्य सतनजा आदि का हरनेवाला है सो अति रिक्तांग होता है अर्थात् याती कोई अंग उसका हीन हो या कोई अंग अधिक हो जैसे छे अंगरी आदि का होना—एवं पिशुन चुगलीखोर जो पराये सच्चे दोषको भी जहाँ तहाँ सुनाते फिरने का स्वभाव राखै सो प्रतिनामिक रोगी होता है कि उसकी नाक से पीनसकी दुर्गंध आयाकरै यह पहिँचान है—एवं तैल हरने वाला जन्मांतर में तेलही का पीनेवाला जन्तु विशेष होताहै जैसे दीपक में तेल पीनेको बहुतेरे जन्तु आतेहैं यद्वा मनुष्य ही के शरीर में कोई कर्म ऐसा कि जहाँ बारंबार तेलही मुहमें देनापरै सो समझलेना—एवं सूचक जो तर्कना की युक्तियों से पराये में दायों की कल्पना सूचित करता था सो प्रतिवक्ता हीके जन्म लेताहै अर्थात् मदा उसके मुहमें से दुर्गंधआया करती है कि जिसपर कोई औषध भी नहीं चलि सक्ती है ॥ २११ ॥

२०६ अधिकोक्तिः—ऊपर श्लोकों में जो भाव बर्णन किया तिसका प्रसारण मनुके अग्रोक्त वचनसे भी ठीकहै—यथा=यद्वातद्वापरद्रव्यमपहृत्यबलात्तः अवश्यंया तितिर्यक्तजग्ध्वान्यैर्बाहुतहविः=अर्थात्—जो कुछ हो सोई सही पराया द्रव्य कैसाह प्रबलता से हरिके वह अवश्यही तिरछी योनियों में जन्मता है तथा औरों का हेमाहुआ हविष्य खाइके भी तिर्यक् योनियोंमें जाता है (इसमें हविष्य कहिने से हर किसी तरहका धर्म संबंधी या पूजा संबंधी धन समझलेना और होमाहुआ कहिने से संकल्प कियाहुआ पुरायके निमित्त किसी को सोंपा धराआदि समझलेना) इस वचनसे तात्पर्य यहहै कि पापोंके नरक भोगने पीछे या विरला घोट पापवाला नरक भोगे बिना भी तिर्यक् योनि में अवश्य जाताहै तिसपीछे मानुष योनिमें आके राजरोगी भी होता है=अथवा जैसा आगे दोसरे सत्तरह के श्लोक में दयावैरो तैसा कोई दधि आदि महा दुख रूपी चिह्न उनमें होता है—इसी लिये उपपातकों का विषाक आगे और भी लिखतेहैं सो देखना और यह भी समझलेना कि यद्यपि द्वंद्व की माया के सामने कोई एक सा निर्विकल्प नियम नहींहै कि वह निःशेषलिखा जाय अर्थात् हलुकेपतरे मोटे आदि पापोंके भेद से चाहें तबचाहें तैसी नियत योनि

का भी अलट पलट होजाता है तथापि उसको कभी न भी अंत में मनुष्य योनि भी अवश्य आकर मिलती है तभी उसके कर्मविपाक भी पहिचाने जाते हैं और भारयवश होकर उनका उपाय भी इसी मानुष योनिमें होसकता है अन्यत्र नहीं क्योंकि कर्मों को उत्पन्न करने योग्य धरती एक यही मानुष देह होती है कि जैसा पहिले भी इसी मानुष देह से पाप कर्म हुये थे ॥ २०६ ॥ २१० ॥ २१२ ॥

(मनुष्योत्तरयोनिष्वपि दुरितचिह्नानिभवन्ति)

परस्ययोपितंहृत्वाब्रह्मस्यमपहृत्य च । अरण्येनिर्जलेदेशेभवतिद्वाराक्षतः २१२

हनिजातोऽप्रजयेतपररक्षापहारकः । पक्षशाकशिलाखीटृत्वगन्धानलुप्युन्दरीशुभान् २१३

मृपकोधान्यहारस्याद्यानमृगः कपिः फलम् । जलं द्रवः पयः काको गृहकारी ह्युपस्करम् २१४

मधुदंशः पलंगधूगो गोधाऽग्निवक्त्रस्तथा । श्वित्विस्त्रांश्चारसन्तुच्छीलवणहारकः २१५

अर्थः—पराई लुगाई को हरिके या ब्राह्मण का धन कोई सा सोनेके बिना हरि के से से वन में जाके ब्रह्मरासस (एक भूत विशेष जो किभीको न देखि परे) होता है कि जहाँ पीने को जलभी नहीं ॥ २१२ ॥ पराये रत्नोंको हरनेवाला हीन जातिमें उत्पन्न होता है—सारा जो अनेक पत्तोंका होताहो तिसको हरनेवाला मोरहोता है—उत्तम अंतर आदि सुगन्धों की वस्तु चुरानेवाला छलूंदरि होता है कि वेही सुगन्ध उसकी देहसे दुर्गन्धि होकर फैलती हैं ॥ २१३ ॥ धान्योंका हरने वाला मूसा होता है—सवारी को हरने चुराने वाला ऊँटका जन्म पाताहै—फलहरने वाला बानर का जन्म—जलहरने वाला जलचर पक्षियोंका जन्म—दूध हरनेवाला कौवेका जन्म—घर की सामग्री चलनी चाकी आदि हरनेवाला गृहकारी नामकीडा होताहै कि जोगीली माटी लाकर कुथीके समान धर्माचनताहै कुम्हारो और लखहरी भी कहाताहै २१४॥ मधुसूत आदि हरने वाला दंश डोंश माछह की योनि पाता है—पलंगमांस को हरने वाला गिद्ध होता है—गऊ आदि हरनेवाला गोधा गोही का जन्म पाता—अग्निको हरनेवाला बगलेकी योनि में जाताहै—कपडा हरनेवाले श्वित्री अर्थात् उनको देह में सुपेदकोडकोधत्वेहोतेहैं—गाँड़े आदिकारस हरने वाला कुत्ता होताहै—नमकहरनेवाला भिल्लीभंकारनाम भींशरहोताहै जो रातिमें बड़े ऊँचे स्तरसे चिल्लायाकरता ॥ २१५ ॥

२१३ अघिकोक्तिः—ऊपर इसी श्लोक में जो हीनजाति में जन्म होना कहा था तिस के मध्ये मनुका यह वचनहै कि—मरिणशुक्ताप्रवालानिहृत्वालोभेनमानवः विवि धानिचरत्नानिजायतेहेमकर्तृयुः अर्थात्—मरिण मोती मृगा आदि विविध भौति के रत्नों को लोभी मनुष्य हरने वाला जन्मांतरसे हेम कर्तृयोंमें अर्थात् सुनार रगभरिशा

ठठेरे आदि वर्यासंकर जातिगैँ में उत्पन्न होता है ((यही मनुका वचन प्रमारा देकर प्राचीन टीकाकारने ऐसा अर्थ कियाहै कि (हीनजातों हेमकाराख्यायांपसिजातों) अर्थात् हेमकारी नाम से कोई एक पक्षी चिड़िया की जाति में उत्पन्न होगा)) परंतु इस व्याख्या को आधुनिक लेखक अपने ध्यान से प्रमारा में नहीं लासका आगे जो कुछ हो सो सही ॥ २१३ ॥

(अम्भिप्रायविशेषादन्येपिकर्मविपाकाः)

प्रदर्शनार्थमेतत्तुमयोक्तंस्तेयकर्मणि । द्रव्यप्रकाराद्विषयात्तत्पैदप्राणिजातयः २१६

अर्थः—प्रदर्शन के लिये मैंने भी यह इतना चोरी मध्ये कहा द्रव्योंके प्रकार जैसे अनंत हैं तैसे प्राणियों की जातें भी=अर्थात्—योगीश्वर याज्ञवल्क्य (जिनके मुख से थोड़े अक्षरोंवाले थोड़ेशब्द निकसेहैं जिसका अर्थ बड़े विस्तार वाला बड़े विज्ञानियों के समझने योग्य होताहै) आपही सब ऋषीश्वरोंको समझातेहैं कि मैंने यहथोड़े ही श्लोकों से प्रदर्शन एक नमूना मात्र समझाने के लिये केवल चोरी मध्ये कहा (किंतु चोरीके सिवाय पाप और भी अनेकहै) और चोरी में भी केवल यही द्रव्य था येही प्राणी नहीं हैं जो मैंने कहि सुनाये क्यौं कि संसारमें जैसे द्रव्योंके प्रकार भेद असंख्य तैसे प्राणियों की जातें भी अनंत हैं जो सब के सब नहीं सुनाये जासकते हैं तिससे इसी नमूना के अनुसार अपनी बुद्धिसे समझते रहिना यद्वा और भी स्मृतियों जो संसार में अनेक हैं तिनमे से जो जो बातें विशेष हैं सो लेते रहिना ॥ २१६ ॥

२१६अधिकोक्तिः—इसी नमूना के अनुसार समझते रहिना•इसका दृष्टांत जैसे कौंसा हरनेवाला हंस होगा•अथवा इसदृष्टांतसे कि जिस कामकी वस्तु जिसने हरीहो (जिस कामकी हानि किसी को पहुँचीहो) उसी कामके भंग होजाने वाला लसता उसको प्राप्त होगा•दृष्टांत जैसेथोड़ा हरनेवालेकी दौंग ललीहोंगी या जता हरनेवाला उसका घोड़ा जाकर बरेगा इत्यादि बहुधा भेद अपार हैं॥•स्मृतियों में जो जो बातें विशेष हैं सो लेते रहिना इसका भां दृष्टांत जैसे शंखस्मृति में शंखनामा मुनि ने विरली बातों पर विशेषता दर्शाई है=तथाचाहशंख=ब्रह्महाकुटी तैजसापहारी मण्डली देववाह्यराकोशकखलतिः गरदाग्निदावन्मत्तो शुरुप्रतिहंताऽपस्मारीगोघ्न प्रचांयः धर्मपत्नीमुक्त्वाऽन्यत्रप्रवृत्तः शब्दवेधोप्राणिविशेषःकुण्डासीभगभक्तो देवब्राह्मरास्त्रहः पांडुरोगीन्यासापहारीचकाराः स्त्रीपरायेणजीवीयंदःकोसारदारत्यागीदुर्भगः मियैकाशीवातगुत्सो अभक्ष्य भसकोगण्डमाली ब्राह्मणीगामीनिर्वीजो क्रूरकर्मा

वामनः वस्त्रापहारीपतंगः शय्यापहारीसपराकः शस्त्रशुल्कग्रहारीकपालीदोषापहारी
 कोशिकः मित्रधुक्क्षयो मातापित्रोराक्रोशः खराडकार इति=अर्थात्-शंखमुनिने कहा
 है कि ब्रह्महत्या कोही भी होता है (तात्पर्य इसका यह कि जैसा ब्रह्महा को
 सयोरोग होना में कहि चुका सोई नियम नहीं किंतु विरला कोही भी होता है ऐसे-
 ही सबके साथ विकल्प भेदोंको समझते रहना) धातुओं का हरनेवाला मण्डवी
 होता अर्थात् उसकी देहमें चक्रमण्डल के आकार कोट होता है (धातुकहिनेसेमिर्मा
 सोना आदि लोहा पदार्थतही न समझनी किन्तु पारा फिशकरी हरिताल हिगल रोस
 ननसिल आदि भी अनेक जो जो पर्वत की खानिसे उत्पन्न हैं सो सब समझलेनो)
 देवता या ब्राह्मण को खोला वचन कहिने वाला गंजा होता है-वियदेने वाला और
 आगि लगानेवाला दोनों धृष्टबुद्धि सिद्धी विस्मिन्न होते हैं-गुरुओंके वचन को अपनी
 तर्कसे काटने उड़ानेवाला अपस्मारनाम मृगी योगसे संयुक्त होता है (कि जिसमिर्मी
 के आते समय सब शरीर की सावधानी भूलजाती है यथार्थ से यही उसका प्रति-
 कार दीकवीक है) गऊको मारनेवाला अन्वा होता है-बिबाहिता पत्नी को निपट
 छोड़िके और स्त्रियों में प्रवृत्ति करनेवाला शब्दवेदी नामसे कोई नीच जन्तु होता है
 जो शब्दही के प्रभाव से वेधा जाता है-कुराडाशी पुरुष अर्थात् पतिके जीवते जिस
 स्त्रीने जारके बीजसे जो पुत्र पैदाकिया हो सो कुराड कहाता है ऐसे किसी कुराड के
 हाथसे जो कोई अन्नभोजन करे या कुराड की खोटी दसूदिन आदि में भोजनकरे सो
 कुराडाशी एक प्रकारका पापी होता है वही जाकर जन्मांतर में भगभक्ष प्राणी होता
 है अर्थात् (भगनाम यहाँ योनि और शब्द का भी समझना तथा भगनाम स्त्री और
 पुरुषों के वीर्यका भी होता है तहाँ) भगंदर आदि दुष्ट लोगों में कीड़े जो घरते हैं सो
 भगभक्ष कहते हैं क्योंकि सड़ेगले वीर्य को या रक्त सांसको भक्षणा करतेहुये उसी
 जघे रहते हैं ऐसा जन्म उस कुराडाशी को मिलता है-देवता का द्रव्य और ब्राह्मण
 का द्रव्य हरनेवाला पाराडुर्गो होता है-न्यास धरोहरिका हरनेवाला काना होता है
 (धरोहरि भी दोभांतिकी होती है एकती दिवाइके सोंपीहुई दूसरी मुदीट की जो चीज
 सोंपी जाय या कहिकर कहों गाडिदीजाय तिनका हरनेवाला न्यासापहारी कहा-
 ता) स्त्रियों को वेचिबेचिकर या विकवाइकर दलालीसे जीविका रोजिगार काने-
 वाला निपट नपुंसक होता है-कौमार अवस्था (सोरह वर्षकेलगभग) वाली भावर्था
 को त्यागनेवाला दुर्भग होता है अर्थात् महादरिद्री कुरूप कुचुद्धी आदि सब तरह से
 दुर्भागी-मोटी आखी वस्तुको अकेलाही दिखायकर खानेवाला तथा स्वकीय वस्त्रे

आदिसे छिपाइकर खानेवाला बायगोलाके असाध्य रोगसे अत्यंत पीडित होता है—
अभक्ष्य वस्तु जो खाने योग्य नहीं तिनको खानेवाला गण्डमाली अर्थात् कंदमालाके
रोगसे संयुक्त होता है (इन बातों में ये भेद भी सर्वत्र लगे हुये हैं कि जिसने थोड़ा ही
अभक्ष्य खाना खाया हो तिसकारोग दवा करने से दविजायगा पर जिसने अचका
निर्भय होके सदा सेवन कियाहोगा तिसका रोग भी असाध्य होकर सदा बनारहिता
है) सद्यो आदि अन्य बर्गों का मनुष्य जो ब्राह्मणी से गमन करनेवाला हो निर्वीजो
अर्थात् वीर्य से विहीन और वंशसन्तान से विहीन होता है (सर्वत्र केवल यही नियम
नहीं है कि जन्मांतर में जाकर फलहो किन्तु बहुधा पाप ऐसे तीव्रहोतेहैं कि जिनका
इसी देहमेंफल होता है फिरआगे जन्मोंको भी साथजाता है इसवातका वृत्तान्त पहले
एक सौ तैंतीस के श्लोकमें लिखचुके तहाँ देखो सोसर्वत्र समझते रहिना) कूर्कर्म
जो अनेक भौति के सब जीवों को दुखदेना आदि भयंकर होतेहैं तिनका करनेवाला
बौना होता है अर्थात् बिलंबिया डील जो सबकामों में निकम्मा और किसी की
निगाह में कुछ नहीं जंचता है—बस्त्रोंका हरनेवाला पतंग जाकर होता है अर्थात्
रोड़ी ततैया आदि उड़नेवाला जन्तु—पलंग बिछोना आदि शरया सेजकी सामग्रीहरने-
वाला सपराक होता है अर्थात् गंगा निर्लज्ज फिरा करता है कि जिसके घर ठौर
दिकाना कपड़े आदि कुछ भी नहीं—शंख सीपी आदि चीजोंका हरनेवाला कपाली
होता है अर्थात् नकली अघोर जो मनुष्यकी खोपड़ी लिये फिरता और उसी में सब
जातिकी जुठखाया करता है—दीपापहारी जो देवताके स्थानपर या कहीं पथिकोंकी
आराधनाकी प्रकाश किये हुये दीपक उठालेजाने का हमेशाही अभ्यास रखताहो सो
उल्लू चिडियाका जन्म पाता है जो दिनभर धंधेराभोगै—मिर्चों से झेह तथा धोखा
धड़ी करनेवाला सद्यो रोग से संयुक्त होता है—माता पिताको गाली देने और क्रूर
बचनों से दुइकने वाला खराडकार के घर जन्म पाता है अर्थात् दोवार बनाना वा
धरतीखोदना या लकड़ी पत्थरकाटना आदि नीचधंधेवाले सबखसडकार कहातेहैं—
यह सब शंखजीने कहा॥०॥इसके सिवाय जो कुछ गौतमने विशेषता कंठी सो अत्र
आगेसे दर्शाते हैं=यथाह गौतमः=अनृतवायुस्त्वजःसुहृर्षुहुःसंलग्नवाक् जलोदरोदार
त्यागी कूरसाक्षीश्लीपदी उच्छिन्नधंधाचरणाः विवाहोवधनकर्ताक्षित्रीयःअवगारणी
श्चिन्नहस्तः सालघोऽधः स्नुयागामोवातवृत्तः चतुष्पथे विरामूजधिसर्जनान्मृगकच्छो
कान्यादूयकथंडः दुर्प्यालुर्भशकः न्यासापहारीअनृतदरिद्रःविश्रा
विक्रयीपुस्त्यमृगः वेदविक्रयीडीपी बहुयाजकोजलप्लवः अयाज्ययाजकोवराहः अग्नि-

संव्रितभोजीवायसःनियैकभोजीवनः यतस्ततोऽशनन्माज्जरःकसवनरहनात्खद्यौतः
 दारुकाचार्योमुखविगन्धिः पर्युयितभोजीक्रिमिः अदत्ताऽऽदायीवलीवर्दः मत्सरोधमरः
 अग्न्युत्सादीसखडलकृष्टी शूद्राचार्यःश्रृपाकः गोहृत्तसर्पः स्वेहापहारीक्षत्री अन्नापहारी
 अजीर्णा ज्ञानापहारीभूयकः चण्डालोपुल्कसीगामी अजगरः प्रव्रजितागमनेमरुपि-
 याचः शूद्रोरासनेदीर्घकीटः सवर्णाऽभिगामीदरिद्रः जलहारीमत्स्थः क्षीरहारीवलाकः
 बाधुयिकोऽगहीनः आविकेयविक्रयोगृध्नः राजमहिषीगामीनपुंसकः राजाक्रोशको
 गर्दभः गोगामी मराडूकःअनाध्यायाध्ययनेष्टगाजः परद्रव्यापहारीपरप्रेष्यःमत्स्यवधेन
 भवासोदत्येतेऽनध्वगवनाः इति=अर्थात्-गौतमजी कहते हैं कि-मित्यावादी पुरुष
 गिलविली बोलीसे संयुक्तपैदा होताहै पर जो भूतबोलनेका बारंबार अभ्यास रखताहो
 सोनिपट इकला पैदाहोताहै-खोकात्यागनेवाला जलोदर महारोगसे पीडित होताहै-
 कूटसाक्षी जो जालसाजीसे गवाहीदेतारहा वह श्लीषद रोगीहोताहै कि जिसकापाव
 हाथीके पैर समानरोगीहो और जोघपैरभी कटाटूटाहोताहै-जिसने किसीके विवाहमें
 भंगडाला हो सोफटे ओठ या गालकटा होताहै-अवगोररगी जो घुडकी साथ मारनेको
 हाथ या डंडाआदि उगावनेका अभ्यास रखताहो तिसकाहाथ लुंज या कटाहोगा-
 माताकोमारनेवाला आँखों से अंधा सराहोताहै- पुत्रकीवधूगमनकरनेवालेकेआँड़ोंमें
 सोजाकआदि बातयोग महाभयंकर होतेहैं-चोराहामे बिठा मूच करने ला फँकनेवाले
 को मूधकच्छुरोग चिनिग प्रमेह-कन्यादूय जो कन्यादूयितकरै वा दूयराजगावै सो
 जन्मही से नपुंसक पैदा होताहै-ईयाँलू जो पराई उच्चाति आदिको देखि सुनिके न
 सहिसके सो मशक योनिमें माच्छर होताहै-माता पिता से बिबाद रखनेवाला अप-
 स्मारी मृगीरोगसे संयुक्त-न्यास धरोहर हरनेवाला संतानसे विहीन होगा-रत्नों का
 हरनेवाला मंदादरिद्री होगा-विद्या विक्रयी जो मजुरी लेकर विद्यापडावै सो पुरुष
 मृग अर्थात् मनुष्यों में गोदड़ के तुल्य ओछा होगा-वेदको बेचनेवाला बाध बधरा
 चीता होगा-बहुयाजक जो बहुतसी जारों को बलिदान आदि यजन पावाइकर्म
 कराताहो सो जलमें तैरनेवाला पक्षी होगा-अयाज्य अति रोचजातें जिनको यजन
 करानेका नियेध हो तिनको पावाइ करानेवाला सूअर की योनि में जाताहै-बिना
 नोताहुआ जो आपही जाकर भोजनकरै सो कौवाहोगा-मीठीवस्तु अकेला खाय सो
 बंदरहागा-जहाँ तहाँ बिना बिचारे खाताफिरै सो विलारहोगा-जो जंगल के घास
 फूस और बन में आगि लगावै सो जुगनू पटवीबना जंतु होताहै-दारुकाचार्य किन्तु
 शिल्पी चित्रकार आदि संव्रजार्तोंका आचार्य वनै सो मुखविगन्धनास कोडाहोताहै

जो तेलको बहुधा पियाकरता है मुखमें उसकेदुर्गंध बहुत आती है जो किसी चीज़में मुहलगायें तो तत्काल उस चीज़में दुर्गंध आने लगती है इसी हेतु उस कीड़े के नाम भी तैलपायी मुखविद्या आदि कहेजाते हैं—पर्यायित भोजी जो पक्वान्नके सिवाय धरे वाली आदि बसे अन्नभोजनकरें सो क्षमिका जन्मपाता है—अदत्त आशायी जो विना दई वस्तुको आपहीलेले सो बेलहोगा—मत्सरो जो अति क्रोधी और ईर्ष्यावान् हे सो भौरा होगा—अग्रयुत्सावी जो दबी हुई अग्नि को उखाड़ि के ऊँदि कोंचि बिगाड़ै सो संडल कोदीहोगा—श्राद्धों को आचार्य बनिके बेबोक्त यज्ञकरायें सो अपाकजाति होता है कि जंगलों में रहिते हुये कुत्तोंको पकाकर खाते हैं—गऊहरनेवाला सांप होगा—घो तेज आदि चिकनाई हरनेवाला सयोगसे असाध्य होता है—अन्नोको हरनेवाला सदाग्निरेग से अजीर्णवाच होगा—ज्ञानापहारी जो किसी को उचित समयपर ज्ञान देना बोधकराना श्रेयश्या सो जानि वृष्भिकर न दे तो निपट गूंगा पैदाहोगा—चांडाली और पुल्कसी नीच स्त्रियों का गमन करनेवाला अजगर होगा—संत्यासिनी के साथ भोग करने से मरुतदेश में पिशाच होगा जहां मंभावायु तथा रेत आदिके सिवाय जल फल फूल वृक्ष आदि कुछनहो—शूद्रोकेसाय मैथुनकरनेसे बड़ा कीराहोगा—अपने बर्गोंकी स्त्रियाँ गमनकरनेसे दरिद्रोहोगा—जलहरनेवाला बड़ा मत्स्यमगरसुसघडियाल आदिहोगा—बूधहरने वाला वशलाहोगा—वार्धुयिक जो बहुतकड़ा बिआज किस्ति आदिसे लेकर जीविका करै सो अंगहीनहोगा—जिनवस्तुओं का बेचना नियेर्वाकिया गया तिनका बेचनेवाला शृंग्रहोगा—राजकी शनीसाथ मैथुनकरनेवाला पुरानपुन्तक पैदाहोगा—राजाको खोरावचनसुनानेवाला गदहाहोगा—गऊ आदि पशुओंकी पालि में मैथुन करनेवाला भेदक होगा—अनाध्यायजिन तियिओं में वेदपढ़ने का नियेवहै तिनमें पढ़ने से सियार होगा—छोटीमोटी पराई चीजें हरनेवाला पराय। प्रेयवावक हुकुम बरदारहोगा—मत्स्य मछरी आदि जलजीवों का वध करनेसे उन्ही के गर्भ में वसना होगा यद्वा उस गर्भ में कि जो स्त्रियोंका गर्भ करे वर्योतक नहीं बाहर आता है—येइतने जो कहेगये सो सबके सब ऊपर स्वर्ग में नहीं जाने पातेहैं यद्वा तिन जीने कह॥ ० ॥ जैसा यह पुरुषों के अवलम्बसे चर्चाकिश तैसास्त्रियां भी उनपापोंको करनेवालीं उन्ही जातों में स्त्रियां जाकर होती है जहां पुरुषोंका जन्म होना कहा गया इसके मध्ये मनुका अग्राक्त वचन देखो—ग्रथादमनु=स्त्रियोप्येतैतत्कल्पेनहत्या दाय नवाप्त्युः एतेयामेवजंतूनां भार्यात्वमुपयांतिताः=अर्थात्—स्त्रियां भी इषी तौर से उक्त द्रव्योंको हरिके उन्ही दायोंको पावें किन्तु इन्हीं पूर्वोक्त प्राणियों की घर

वाली जाकर होती हैं ॥ अतिकोक्ति पूरी हो चुकी तथापि इसके साथ एकशास्त्रार्थ रूपी निराश करना श्रेयरहा सो जुदा नीचे लिखते हैं ॥ २१६ ॥

गूढमिप्रायानान्निर्णयः—दोसैं तो (२०६) श्लोकपर ध्यानकारी वहाँसे लेकर यहाँतक कर्मोंके विपाकसे क्षयरोग आदि जो अनेक दोषोंके चिह्न होने लिखेगये सो इसलिये कि द्रष्टव्यतारे आदिअनेकपापी लोगोंनेअभयसूक्तिपरनेसे प्रायश्चित्तों पर दृष्टि पहुँचै—अन्यथा यह प्रयोजन उसका नहींहै कि सथी आदि रोगोंवाले सन्तुष्टोंको वे प्रायश्चित्त करायेजायें जो (हादशवार्यिकव्रतआदि) वारहवर्ष आदि के विधान आगे आवेंगे और यह प्रयोजन भी नहींहै कि उसभाँतिके रोगियोंको पापी समझिके संसर्ग छुनाआदि उनसे न कियाजाय—क्योंकि—प्रायश्चित्त के विधान जो आगे कहेजायेंगे सो पापोंका क्षय होनेके निमित्त होंगे किन्तु उसके लिये नहींहैं कि पहिले पापोंका खोटाफल प्राप्तहुआ सोभी नाशहोसके या बिनादेखे बिनाजाने समझे पूर्वजन्मोंके अदृष्ट पापहू नाशहों—क्योंकि इसपर एक न्यायका दृष्टान्तहै कि जैसे किसी धन्यसे बूढ़ाहुआ बारा निशानापर लगानेमध्ये न उसधन्य और धन्यवाले से कुछवास्ता रखताहै न उसके किये और उपायोंसे छूटे पीछे कोईसी अपेक्षा रखताहै (अर्थात् दीक निशानाके समुख छोड़ि दिये पीछे जो चाहै कि अब निशाने पर न लगे या गौर निशाने से छूटे हुयेको चाहै कि यह दीक निशानेपर लगे इसका कोई इलाज उसके काबूमें नहीं रहिता यह तात्पर्य है) और यह भी नहीं कि उससे प्राप्तहुये खोटे फलका विनाश चाहिकर धन्यका तोड़ना शोचा जाय क्योंकि कुम्हारके चाक हथेला तगा आदि (जो न्यायमतसे निमित्तकारण कहाते हैं तिन) का विनाश करनेसे भी वे करवा और हाँड़ी आदि नहीं नाश होसकते हैं जो उन्हीं निमित्त कारणोंके प्रभावसे बनिचुके और इसीप्रकार नैसर्गिक स्वाभाविक महारोग जो बुरे नख होना आदि जन्महोसे उत्पन्नहोचुके तिनका प्रत्यानयन वापिस होजाना शक्तिसे बाहरहै—क्योंकि—बिना देखेहुये पहिले महापापोंका प्रतिकार नरकभोगना और तिरछी योनियों में बहुतेरे जन्मलेकर उनके दुखों को भोगे पीछे सबसे अखीर यहीफल श्रेयरहा सो बुरेनख होने आदिसे प्रत्यक्षमेंआया तिसके उत्पन्नहोनेसाबसेही उसकेउत्पन्न करनेवाल कारणभूत पहिले पापोंका नाशहोजाताहै कि जैसे लकड़ियोंमें जेवरीसे मथिकर घसिकर अग्नि उत्पन्नहोताहै उसके उत्पन्न होतेही लकड़ियाँ जलिकर नाश होजातीहैं (अर्थात् उनलकड़ियोंके विनाशके लिये कोई दूसरा उपाय करना फजूलहै) तैसेही जिन बिनादेखे पापोंकाफल प्रत्यक्षमें आचुका तिनका वि-

नाश चाहिकर कोइसा प्रायश्चित्त करना आवश्यक नहीं है और न इसके लिये प्रायश्चित्त है कि लोकाचार परस्पर जाति विरादों के व्यवहार वर्तवे उन कुनखी आदि रोगियों से होसकें क्योंकि प्रायश्चित्त किये बिना भी अच्छे विवेकी लोग कुनखी दुषर्मा आदि रोगियोंसे व्यवहार नहीं त्यागतेहैं यह परंपरासे चलाआताहै किन्तु अभी अनंतर जैसा कहिचुके कि लकाइयों की तरह पहिले पापोंका नाश होचुका तो फिर विरादों के व्यवहार में भी क्या दोष रहा जिसके लिये प्रायश्चित्त की जरूरत होय ॥ ० ॥ कदाचित् यह तर्कना उठाईजाय कि वशिष्ठ मुनिने कुनखी आदि रोगियों को प्रायश्चित्त करना क्यों कहा जैसा यही आगे वचन है—तथाच वशिष्ठः—कुनखीश्यावदंतप्रच्छृङ्खलादशरात्रचरेत=अर्थात्—खोटे नखोंवालाकुनखी और दूरे दाँतोंवाला श्यावदंतभी वारह दिनका कृच्छ्रव्रतसाधै=श्री यह वशिष्ठजी का कहा नियम एक नैमित्तिक धर्महै उस भौतिका कि जैसे सामवती आदि यज्ञों का करना केवल शांतिदायक होताहै अर्थात् वशिष्ठका यह वचन कुछ पहिले पापोंके विनाशमध्ये नहींहै न जातीय व्यवहारोंके निमित्तहै ॥ ० ॥ सामवती इष्टि इसनाम से वेदों में यज्ञ विशेष कहाहै वल्कि उसप्रकारके और भी सामान्ययज्ञ जुदे नामोंसे कहेहैं इसका प्रसंग प्रायश्चित्ततत्त्व में भविष्यत्पुराणके प्रसारासे दृष्टांतवेकर आया है=यथा=सामवत्यादिनायद्वत्कर्मणांप्रतनापतेदेवद्योदाकराजोतेद्योयकदम्बकेहेमे नैकेतद्योयारांसर्वेयांसयमादिशेदितिभविष्ये—एवंचएकप्रायश्चित्तनानेकवोपसथाय सामवतीष्टिःसर्वदृष्टांतःइतिप्रायश्चित्ततत्त्वं=अर्थात्—हे राजव देवयोगसे जिस किसी की नित्य नैमित्तिक धर्म कर्मोंके न करने में अनेक द्योयों का समूह पैदा होजानेपर सामवती आदि कोइ एक इष्टिकानेसे सब द्योयोंकी शांति एकसाथ जैसे होजातीहै तैसे सबग्रहोंके द्योय एक होमसेही सयहोते हैं यह आदेशकर्ते यह भविष्यत्पुराण में कहाहै—इसीप्रकार जहाँ एकही प्रायश्चित्त से अनेक पापोंके सयहोनेका प्रसंग हो तहाँ तहाँ सर्वत्र सामवती इष्टि यहदृष्टांतहै यह प्रायश्चित्ततत्त्वमें कहाहै ॥ इसी प्रकार वशिष्ठका वहवचन एक शांतिस्वरूप समझना ॥ २५६ ॥

(वर्णितस्यैवात्रसारांशः)

यथाकर्मफलप्राप्यतिर्यक्तचकालपर्ययात् । जायंतेलक्षणधृष्टाद्विद्रा-पुरुषाधमाः २१७
ततोनिष्कल्मषाभूताकुलेमहतिभोगिनः । जायंतेविद्यबोपेतापनथान्यसमन्विताः २१८
अर्थ—यथाकर्मका फल तिर्यक्त्व भी पाइके कालके पर्यय से पुरुषों में अधम

होतेहैं कुलसरा से कुरूप और दरिद्री-तिससे निष्कल्मस हुये वड़े कुल में भोगी जन्मतेहैं जो विद्यासे संपन्न और धनधान्यसे भरेपुरे होतेहैं=अर्थात्-कर्मोंका विपाक जो अबतक घनातेरहे उसी सबका तोड़ निचोड़ यहां इकट्ठाकरिके समझातेहैं कि-जैसा जैसा जिनका खोंटाकर्मथा तिसकाफल नरकभोग और तिरछी योनिका जन्म भी पाइकर कालकी चालिसे अतिकालमें पापकर्मोंकी क्षीराहीन होजानेसे मनुष्य की योनि में भी आकर अधम ओछे पुरुषोंका जन्म लेतेहैं कि जहां दरिद्री धनहीन और क्लृप्त दुश्चर्म आदिखोटे चिह्नोंसे कुरूपभी होतेहैं॥२१॥ततः तिसके भी अनंतर (उक्तभोगोंकेभोगनेसे) पापोंसे छुटकारा पाये हुये वेही प्राणी (अपने किसी पूर्व जन्मांतर के संचित पुण्यकर्म जो प्रशंसित पापों के वेगसे रोकमें आगये थे तिनकी आह मिटिजाने और सत्प्रभाव उदय होनेसे) फिर अगले जन्मसे बड़े किसी उत्तम कुलमें भोगी पुरुष होके जन्मलेते हैं कि जहां विद्या आदि गुणोंसे संयुक्त और धन धान्यसे भी संपन्न हों=परन्तु=यह नियम सिर्फ उन्हींका समझना जिनका पहिला पुरय-अधिक होतेहुये पापोंके उत्पन्न होनेसे रोक में आगया हो० अन्यथा जिनका पहिला पुरय भी संचय नहीं केवल पापी हों वे फिरभी अगले जन्मोंमें दरिद्रीआदि मंद पुरुष होतेहैं कि जबतक बीचमें कोईसा सत्कर्म उनसे न बने॥ २१८ ॥

इतिकर्मविपाकानां संक्षिप्तानि लक्षणानि ॥

अथ-प्रायश्चित्ताधिकारिलक्षणाविवेकानाम्

द्वाविंशपरिच्छेदः २२ ॥

इस परिच्छेद में उन पुरुषोंके लक्षणा कहे जायेंगे कि जो तत्काल प्रायश्चित्त करनेके अधिकारी होतेहैं ॥

(प्रायश्चित्ताधिकारिणः)

विहितस्यानुष्ठानानिर्दिष्टस्यसेवनात् । अनियद्वाचेन्द्रियाणान्तरपतनमुच्छति २१९

तस्मात्तनेहकतव्यप्रायश्चित्तचिंतिशुद्ध्ये । एवमस्यातिरात्माचलोकश्चैवप्रतीयति २२०

अर्थः-विहितके न करनेसे और निर्दिष्टके सेवनसे इंद्रियोंके अनियद्वासे भी मनुष्य

दोयी होता है=तिससे उसको इहाँ इसी देहमें पापोंसे शुद्ध होजानेकेलिये प्रायश्चित्त करना चाहिये ऐसे प्रकार से इस मनुष्यका भीतरला आत्मा भी प्रसन्न रहता और संसार भी इसकेऊपर प्रसन्न होता है=अर्थात्-मनुष्योंको लोकातीतिसे और शास्त्रकी आज्ञासे भी नित्य नैमित्तिक धर्म जो कुछ करना उचित है (दृष्टान्त जैसे संध्योपासन आदि पचयज्ञ जो हैं सो नित्य कर्म हैं तथा तीसवां श्लोकसे आदिलेकर अशुद्धों का स्पर्श होजाने में स्नानआदिकरना कहा सो नैमित्तिकधर्मथा या उससे पहले मृतकोंकी शुद्धिकरना जो कहा गया वह भी नैमित्तिक था या कन्याका विवाह और गौनाभी उचित समयपर करदेना कहा सो भी नैमित्तिक धर्मथा इत्यादि औरभी समझने) सो विहित कहाता है तिसके न करनेसे मनुष्य दोयी होता है तथैव निन्दितकर्मोंके करनेसे भी दोयी होता है) निन्दितकर्म सब शास्त्रोंमें और लोक मेंभी प्रसिद्ध हैं अभक्ष्य भक्ष्या या चोरी या जोरी आदिद्वरेकर्म) और इन्द्रियोंकी वशमें न राखनेसे भी दोयी होता है ॥ २१६॥ तिसकारणसे उस दोयीको तत्काल उसीदेहसे कि जिसमें ब्ये खड़ा हुआ हो दोयकी मिटानेके प्रयोजनसे प्रायश्चित्त करना चाहिये जिससे उसके भीतरली आत्मा की शुद्धिसे प्रसन्नता और संसारी लोग भी प्रसन्न होते हैं ॥ २२० ॥

२१६अधिकोक्ति:-यहाँ पर बादो पुरुष तर्कना खड़ी करता है कि जब ऐसा नियेध पहिले होचुका है कि इन्द्रियोंके सब अर्थों में कामना सहित न प्रवृत्त होय और यहाँ भी २१६ श्लोकमें निन्दित कहने से इन्द्रियोंके नियेध सिद्ध होसक्तये तो फिर जुदा पद ऐसा क्यों कहागया कि इन्द्रियोंके अनिश्रह से भी-तहाँ-विज्ञानेश्वर उत्तर देते हैं कि इन्द्रियों की प्रसक्ति के नियेधकी और सकजधे जुदीभातके प्रतिषेध की एक रूपता नहीं होती है स्नातक के व्रतोंमें पाठ आजानेसे तहाँभी ये व्रत धारण करें इस व्रत शब्दके अधिकारसे और इन्द्रियोंके भोग नियेधका संकल्पनेकार सुनने से यक्ता होता है वह दोनों तरह से भी दीकहे तिससे जुदापद कहागया ॥ पुनः बादो-क्योंजी उचित के न करनेसे दोयी होता है यह कहहैं निश्चितहुआ अग्निहोत्रआदि की प्रेरणा जो सिर्फ पुरुष का उदयरूपी अनुष्ठान है प्रथम उसीका न करना कुछ दोयकी हेतुताको नहीं सिद्ध करता है क्योंकि वह प्रेरणा विषयएक संबन्धी अनुष्ठान की पुरुषार्थता (सर्वांगी) के ज्ञानभाव का निश्चय कराने वाली है तो वह प्रेरणा उतनेही प्रयोजन करके प्रवृत्ति की युक्ति होनेके हेतुसे न करनेका दोय रूप कारणा भी नहीं कहती है क्योंकि जिसको करनेकी समर्थ न होगी वह अपने पुरुषार्थ रूप उदयसे हाथ धोवेगा और यह भी है कि यद्यपि अनुपपत्ति (असंगति) के दूरकरने

में भी प्रवृत्तिकी सिद्धि के लिये अर्थांतर कल्पना होती है तब भी नियेध किये दोयके परिहार के प्रयोजन से उस के त्यागने की पुरुषार्थता (मर्दानगी) की सिद्धि में भी फलांतर कल्पना होती है यह किसी काभी सम्मत नहीं है इसमें भी सम्प्रम है कि जैसे नियिद्ध आचरणों में अर्थवाद (नियिद्धकी निन्दास्वी प्रशंसा) से जानेहुये दोय के छोड़ देनेसेही पुरुषार्थत्व होता है—तैसे आदेश कियेहुये उचित कामों में अर्थवाद (उचित की स्तुतिस्वी प्रशंसा) से समझेहुये न करनेसे उत्पन्न होनेवाले दोयकी परिहारार्थता कैसे नहीं पहुँचै—ऐसे नहीं—सुनो—अग्निहोत्र आदि विधानों में सर्वत्र वैसेही अर्थवाद नहीं है और २१६वाले प्रलोकमें स्मृति भी ऐसी नहीं है कि विहित का अनुष्ठान न करनेसे सनुष्य पतित होता है और वाक्यांत से प्रसारा किये कार्य में अन्य वाक्यसे अर्थवाद भी नहीं सम्भव होता है यद्वा कभी कहीं दोनोंवाक्य एकही से होने में अर्थवाद सिद्ध होभी जाओ तभी विहितका न करना जो अभाव रूप है (अर्थात् नहींका कोईरूप हीनहीं) सो किसी और कार्यके उत्पन्न करनेको समर्थ नहीं होता—अत्रापि वितर्क—क्योंजी (ज्वरेचैवातिमारेलंघनं परमौघं) बूखार और दस्तों में भी लंघन करना बड़ी बधाई होती है जैसा यह वैद्यक शास्त्र के वचन से भोजनका न होना स्वी जो लंघन है सो ज्वरकी शांतिक्रम कार्यांतरको उपजाता है तैसावह भी किसी और कार्य को उत्पन्नकरै ऐसा क्यों नहीं माना जाता—ऐसे नहीं—क्योंकि जिससे इसमें भी कुछ लंघनसे ज्वरकी शांति नहीं है—तो फिर क्या है ज्वरके नाशको रोकनेवाले भोजन का अभाव होने में पेट की अग्नि से परिष्का होकर उसी परिष्का से उत्पन्न हुई वातओं (वात पित्त कफों तथा रसरक्तादिकों) की समता आदि माननी चाहिये तिससे (विहितस्थाननुष्ठानान्नाः पतनमृच्छन्तीति कथमस्याः स्मृतेर्गतिः) अर्थात्—उचित के न करनेसे सनुष्य पतित होता है इस वचनकी गति कैसे होय सो कहना चाहिये—कहते हैं—अग्निहोत्र आदि वियों के अधिकार की न सिद्धिरूप कलङ्क के अभिप्राय से यह दोय नहीं है—पुनः शब्दा—क्योंजी ये अग्रोक्त अनुके वचन कैसे अपने अर्थों में ठीक होंगे—यथाहमनु—वांताशुल्कामुखः प्रेतो विप्रो भवति विच्युतः अनेध्यङ्ग्रापाशोत्सृज्यः कटपूतः सैवासद्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् विलासकस्तु भवति शूद्रो वस्मत्सिद्धि काच्युतः—अर्थात्—संन्यासी जो गृहस्थी आश्रम छोड़के संन्यास धारण करै फिर उन्हीं गृहस्थीवाले कामोंको करनेलगै सो वांताशी (रक्षकियेहुयेको फिर खानेवाला) कहाता है और मरनेपीछे उसी दोयके प्रभावसे उल्कामुखी या निमिं जन्मता है अर्थात् लोखही लोमड़ी जिसकी जीभ में ऊँकसी ज्वाला उठती रहती और प्रायः रक्षकिये

हुयेकीभी चास्तीहै तिसकी योनिमें बांताशी जन्मपाताहै और विद्वान् विप्रजो अपने धर्म कर्मसे गिरिजाय सो प्रेतयोनि होताहै अर्थात् प्रेतों में उल्कासुखप्रेत जिनका मुख अग्नि के तुल्य जलता रहता है तिससे अधिक घोडा उनकी मिलती है इसी से वह प्रेत भी औरोंकी बमन चाटि चाटि मुंहवंडा करते फिरते हैं तिसकी योनिमें वह विप्र जाताहै जो नित्य और नैमित्तिक धर्म कर्मों का त्याग करदेताहै और सखीका धर्म यद्यपि उचित मांस खानेका नियत है तथापि जो कोई सखी अशुद्ध जीवों के मांस या मरे जीवों के मांस खानेवाले वह मरने बाद मुर्दा ढकेलने वाली चाराडाल जाति या मरेजीवोंकी खानेवाले गिद्ध काक आदि योनि में जन्मता है और गुदा से व्यवहार प्रकाश करनेवाला वैश्य या मित्रोंसे कपटका व्यवहार फैलानेवाला वैश्य या ब्राह्मण से द्यूत खेलके धन हरनेवाला वैश्य भी मरने पीछे पीवरद भोगनेवाला कीडा या मलिन प्रेत जाकर होताहै और शूद्र अपने मुख्य धर्म से द्यूत हुआ मरने के बाद जाकर विलासक वा विलास नाम एक अशुभजाति विशेष (वैश्यत्राओं का भड्का जो प्रसिद्ध है) सो होताहै =ये मनुके सर्व वचन विहित के न करने का दोष जतानेवाले हैं सो कैसे घटन होतेहैं—कहते हैं—जैसे रह किये की खाते हुये ऊँक से जलते मुखवाले दुःख तैसे इसकी भी विहित (उपदेश किये हुये शास्त्रोक्त) के न करनेवालेका परुषार्थ सिद्ध न होनेसे सो यह न करने की निन्दा अनुदान करने में रुचि उत्पन्न होनेके लिये समझनी तिससे कुछ विरोध नहीं है—अथवा पूर्व जन्म के खोटे आचरणोंके भेजेराग आलसआदि जो उचित अनुदानके विरोधीहोके बांताशी और उल्कासुख प्रेतत्व आदि दुःख पैदाकराते हैं तिससे भावही सिद्ध ठहरा किन्तु कहीं भी अभाव का कारणात्त्व कोई नहीं यह नानना चाहिये—स्वोजी—यह मानना चाहिये सो नाना परन्तु पुंश्चली बंदर गर्दभ इनका देखाहुया और झूठादोष लगाये हुये आदि औरोंमें भी उचितका न करना आदि निमित्तोंमें सेकिसी एकद्वेके अभावसे कैसे दोष लगताहै और उसके अभाव में प्रायश्चित्त का विधान किया गया—कहते हैं—मुने इससेही पापक्षय होनेके लिये प्रायश्चित्त के विधानसे जन्मांतर से आचारा किये नियिद्ध सेवन आदि तिससे पैदा पाप अपूर्व प्रेरित हुआ मिथ्या अभिग्राह्य आदि तिसके निमित्त प्रायश्चित्तसे दूरीकरा हेतु मननहीं अनुष्ठित हुआ यह कल्पना होय है क्योंकि पुरुष के प्रयत्न से अपेक्षा नहीं रखने में कार्यरूप पापकी उत्पत्ति संगत नहीनेसे और न पुंश्चली आदिमें प्राप्त प्रयत्नअन्य पुरुषसे पापकी उत्पत्ति है कर्ताओं के समूह योग्य नियम से धर्म अवर्म दोनों का होना है तिससे प्रायश्चित्त

में तीन निमित्त जो गिनाये सो गिनना ठीकही है जैसा मनुका वचन यह प्रसारा है=तदाह मनुः=अकुर्वन्विहितकर्मनिन्दितंचसमाचरन् प्रसक्तपूजैर्द्रव्यैर्युप्रायश्चित्तोयतेनरः=अर्थात्-विहित कर्म कोनकरते हुये और निन्दित कर्मको आचरना करते हुये और इंद्रिय भोगोंमें लगाहों सोभी नर प्रायश्चित्तोहोताहै=इसमें नरशब्द कहनेसे ब्रह्मा और अनुलोमों के सिवाय प्रतिलोम जातियोंको भी प्रायश्चित्त का अधिकार पहुँचता है क्योंकि साधारण धर्मोंमें अहिंसा आदि जोजो धर्म उनके लिये उचित हैं तिनका व्यक्तिक्रम उनसेभी होना संभवहै(प्रायश्चित्तकाशब्दभीपापोंके क्षयहेतुक जो नैमित्तिक कर्म विशेष हैं तिनमें रहते हैं) और प्रायश्चित्तका समस्त प्रकरणाभावभी नैमित्तिक धर्म माना जाता है। तिसमें अर्थवाद के द्वारा किसी पापका क्षय सिद्ध हो जाने परभी प्रायश्चित्तस्वीकार कियाजाताहै उसन्यायसेकि जैसे पुत्रजन्मके होनेसेही पिताकी संतुष्टि होजातीहै तथापि जातेष्टि कर्म करना स्वीकार किया जाता है कि अतिशय संतुष्टि होय परंतुऐसा नियम होनेपरभी यह तात्पर्य नहींहै कि कोई इस कामना से भी प्रायश्चित्तकरै कि उसके करने से मुझसे कोई पाप आगेको नहोने पावे तौ यह आगंतुक पापों की रोक उससे नहोगी न इस अपेक्षा से प्रायश्चित्तकरना चाहिये क्योंकि यह फिर कामना का वियय उदर सक्ता है सो नहीं केवल नैमित्तिक धर्म समझना चाहिये और करना भी अवश्य चाहिये क्योंकि न करने से यह दोष है=यथा=चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये निर्धौर्हिलसरोयुक्ता जायं तेऽनिष्कलैर्नराः इत्यकरा दोषः=अर्थात्-पाप करने वाले प्रायश्चित्तों के बिना जाकर तिंद्र लसरोयु संहित अंग भंग होके जन्म पाते हैं इस हेतु से नित्यही कि जब जब कभी पाप होजाय तभी उनकी शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये यह बहुत आवश्यक जानो ॥ २१६ ॥ २२० ॥

प्रायश्चित्तप्रायश्चित्तानां प्रयेनरकाभवातिपांनामप्रकाश कोयपरिच्छेदः चयोविंशः २३ ॥

इस परिच्छेद में उन्हीं नरकोंके नाम और स्वरूप भी प्रकाश किये जायेंगे जो प्रायश्चित्त न करनेवालोंको होते हैं और प्रायश्चित्त करनेके फल विशेष भी जो लाभ होते हैं सो भी इसके बीचमें बयाँबेंगे ॥

(प्रायश्चित्तकरणोद्घोषः)

प्रायश्चित्तमकुर्वाणा पापे पुनिरतनरा । अपश्चाच्चापि न कष्टाश्चरन् कान्तिदायकान् २२१
अर्थः—पापों में निरत नर पछितावा न करके प्रायश्चित्त न करते हुये दारुणानरकों को जाले हैं—अर्थात्—शास्त्रके अर्थोंसे विपरीत कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुये पापोंमें लगे भये मनुष्य उनपापोंके होजानेका उद्देग मानिकारसे सा पछिताउ भी नकरें कि हमसे यह दुष्कर्म हुआ और पीछे उसका प्रायश्चित्त भी नकरें सो सब लोग महाभयंकर नरकोंको भोगते हैं जो सहे नहीं जासकते ॥ इससे यह तात्पर्य उहरा कि धर्मवाद की यही पहिचान है जब उसने कोई पापलाचमी बोखे आदि से होजाय तब तत्काल उसका पछितावा करें और धर्मशास्त्र के विचारसे प्रायश्चित्तका निर्णय करावे कि मुझसे यह पाप हुआ इसका क्या प्रायश्चित्त है सो कहें ॥ २२१ ॥

(नरकनामरूपाणि)

नामिदं लोहशंकुचमहा । निरयशास्त्रमली । रौरवंकुहमलंप्रतिमृत्तिकंकालसूत्रकम् २२२
संधातिलोहितोदधसचिपतं प्रपातनम् । महानरककोकिलमजीवनमहापथम् २२३
अवीचिमपतामिदं कुभीपाकतपैव च । अलिपत्रवनंचेव तापनंचैरुधिषाकम् २२४
महापातकजैरिदं पुष्पस्तकजैस्तथा । अन्वितायात्यचरितप्रायश्चित्तानरायमा २२५

अर्थः—ये दक्कीस नाम नरकों के अपने स्वरूपही के समान हैं कि जैसा जिसका रूप होला है तैसाही नाम जानी सो सब सुनाते हैं कि—शतासिख नाम नरक उस जघे का नाम है जहां अधकार के सिवाय कुछ नहीं न कुछ खानेपीने आदि की सामग्री है जिसमें (परायाधन पराई स्त्री पराये वस्त्र इत्यादि) हमनेवाले महा पापियोंको) यमके दूतले जाकर छोड़ि आते हैं—रौद्रशंकु उस जघे का नाम है जहां इतरफलोंदेकी पौनीकी लैगड़ी होती है उन्हींमें थोड़ीसां रदी आती है तिनके बीच भिँककर घुमारहता है कहीं

निकसने की अच्छा सार्ग नहीं—३ महानिरय उसजघेका नाम है जहाँ से देह के दुःख हैं—४ शाल्मली उसजघेका नाम है जहाँ सेहके काँटे भरे रहते हैं सो देहमें वा करते—५ रौरव उस जघेका नाम है जहाँ निरंतर रोनेकी आवाज भयंकर सुनी जा और यह आप भी रोता है—६ कृडमल उसजघेका नाम है जहाँ पापी निरंतर क्लृप्त करते हैं—७ पति मृत्तिक उस जघेका नाम है जहाँ सड़कीचड़का दहदहभा होता उस में महा दुर्गंध आया करती है कि जिससे नाक भी सड़ने लगें—८ कालसूय उसजघे का नाम है जहाँ कालके रूप असंख्य सूत नचे होते हैं उनमें घुसतेहुये अंग ऐसे काटि काटि गिरते हैं जैसे कुम्हार के हाथका तम्बा चाकसे वासन काटि लेता है—९ संघात उस जघेका नाम है जहाँ अनेक जनोंके द्वारा मारपारती है—१० लोहितोद उस जघेका नाम है जहाँ रक्तकी नदीभरी रहती है उन्हींमें डूबता फिरता है—११ सविद्य उस जघे का नाम है जहाँ सब तरहके विय भरे होते हैं उन की दवा नाक आदि में घुसि के बद्धा ब्रह्मेश कर देती और देहको सुजात्र देती है—१२ संप्रपातन उसका नाम है जहाँ जाकर ऊँचे ऊँचे चट्टिकार वारम्बार गिराया जाता है कि देह का भुसहोजाय—१३ महानरक भीषक स्थान है कि जहाँ नानाभाति की पीड़ा और दुःख मिलाकरते हैं—१४ काकोल उस जघेका नाम है जहाँ पापी को बड़े बड़े बनकोआ खूबनोचते मांस खाते हैं—१५ अजीवन उस जघे का नाम है जहाँ सबतरह के मुर्दों के ढेर लगे होते और धरती में सर्वत्र विछे होते हैं उन्हीं में घुसि के पापी की अवधि काटनी होती है—१६ महापथ उसका नाम है जहाँ पापीको लम्बे मने सार्गके सिवाय कुछ और नहीं मिलता न कोई प्राणी बतानेवाला केवलसुने सार्गहीको काटे चलाजाता बढ़ करता नहीं न उसका अंत आता है—१७ अबोचि नाम और अबोचिमयभी नाम उस नरक का है कि जहाँ सुख रूपी अवकाश का अवलम्ब कहीं भी नहीं मिलता इस नरक में प्रायश्च भूरी गयाही देनेवाले भेजेजाते तहाँनीचा शिरकिपेहुये लटकाये वा छोड़ि दिये जाते हैं—१८ अंधतामिल नाम नरक यह तामिलसे भी बहुत बढ़िया है कि जहाँ पर सहां निविड घनेश अंधेरा और अनेक भांतिके भयउत्पन्न हाते हैं तिसमें महा पापी को यमके दूत छोड़ि आते हैं वह पापी निज आप भी अंधा होकर वहां टोलताफिरता है—१९ कुम्भीपाक वह नरक है जहां छोटे सुढ़ड़ेके सटकेमें तैल गरम किये यमके दूत पापियों को घुसेड़ देते हैं छोटे सुढ़ड़ेसे निकसने नहीं पाते और इतना गरमतेल होता है कि निपट प्राणी नहीं जानेपाते किन्तु पड़े पड़े उवाल खाया करता है इसमें प्रायश्च ऐसे पापी आते हैं जिन्होंने जीतेहुये जीवोंकी अग्नि आदिमें जलाया

भूना २० अग्निपवनन वहनरकहे कि एकवन में तजवारकी धारावालेपत्ते टपकते रहते तिसमें यमके दूत उन पापियों को लेजातेहे जिन्होंने वेदकामार्ग अपना धर्म छोड़ के पाखण्ड मतलियाहो वहाँ उनकी चमड़ेकी रस्सियों से पीरते हे तब जहाँ तहाँ भागते हुये ऊपरसे वनके पत्ते गिरगिर नांस काटतेहे तब अत्यंत विताप करता हे—२१ तापन वह नरक हे जहाँ नीचे धरती भी तपाये लोहे के समान तथा रेत बालू भी भाड के समान और ऊपर से करोड़ों सूर्य के समान घाम और लूंकी लपट सी वायुके झकोरे जिसमें गरम रेत वरसताहोताहे—येइक्रीसनाम नमूना मायसे दर्शाये इससे उपरालूभी अनेक नरक होतेहे सो सब समझलेने ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ इनमें बेहो अवम लोग जाते हैं जो महा पातक या उपपातकों से उत्पन्न दोषों से युक्त होकर प्रायश्चित्त नहीं आचरते हैं ॥ २२५ ॥

प्रायश्चित्त करनेसे कौन पातकी नरकनहीं जाता यह विधेयता आगेकहिते हैं ॥

(प्रायश्चित्तस्यविशेषफलं)

प्रायश्चित्तोपेत्येनोद्यद्भानकृतंभवेत् । कामतोव्यवहार्यस्तुवचनाविहजायते २२६ ॥

अर्थ—जो अज्ञानता से किया पाप होय सो प्रायश्चित्तों से दूर होता है कामना से किये पाप में वचन के बल से व्यवहार योग्य होता है—अर्थात्—जो पाप सिर्फ भोखासे होगया हो सो उन प्रायश्चित्तों से मिटिजाता है जो आगे कहे जायेंगे परंतु जो इच्छा सहित जानि बूझिके पाप किया जाय वह नहीं मिटता है (अर्थात् नरक आदिका भोग भोगना जन्ममोक्षमें अवश्य होगा) तथापि इच्छासे पापकरनेवालों को यह लाभ है कि प्रायश्चित्त करनेसे उसी प्रायश्चित्तके वचन रूपीविधानको बलसे संसारी व्यवहारों के बतवि योग्य होजाते हैं नकरने से पच और भाइयों के व्यवहार योग्यभी नहीं रहते ॥ २२६ ॥

२२६ अधिकोक्तिः इस अधिकोक्ति में शास्त्रार्थ के प्रकारसे अर्थवादका स्वरूप निर्णय करेंगे कि प्रायश्चित्त करने का अधिकार किसको है—इसलिये यह तर्क है कि (प्रायश्चित्तों से पाप दूर होता है जो अज्ञानता से हुआ हो यह सूत्र श्लोकमें कहा गया) इसके जोडा में यह कहना योग्य था कि (ज्ञानमें कियाजाय सो नहीं दूर होताहे) इसके स्थान पर मूल श्लोकमें यह कहा गया कि (कामसे जो पाप किया जाय सो नहीं नाश होता है) ऐसा कवन इसलिये है कि ज्ञान और काम दोनों बराबर समुक्ते जायें अर्थात् परस्पर दोनों में भेद नहीं तैसा यह वचन है

कि (विहितं यदकामानां कामात्तद्विद्विषां भवेत्) विना चाह पापवालों का जो प्रायश्चित्त कहा गया हो तिससे दूना चाहसे पाप करने मध्ये किया जाय—तथा (अपूर्व क्रियायामर्थं प्रायश्चित्तं) विना जाने जो अपराधवाली क्रिया होय तिसमें आधे प्रायश्चित्त चाहिये—तथा (स्लेच्छेनाधिरातागूद्रा त्वज्ञानात्कृत्यं च न कच्छन् वयं प्रकुर्वीत ज्ञानात्विद्विषां भवेत्) जहाँ स्लेच्छ से शूद्री पकड़ी गई हो कि गीतरह अज्ञान से तो वह शूद्रिणी तीनवार कच्छ व्रत नामका प्रायश्चित्त करे जो गूद्रा के जानते हुये स्लेच्छ ने पकड़ा होती उससे दूना प्रायश्चित्त छः कच्छ व्रत साधे इत्यादि बहुवाक्यनों से ज्ञान और कामना इन दोनों का बराबर प्रायश्चित्त देखिये परन्तु से दोनों का एकही फल दहिरा क्योंकि विययज्ञान सामने का वाकिफ होना और चाटकाना इन दोनों सेही स्तव प्रवृत्ति नियत हुई और होती है (अर्थात् खुद चरित्तयासी से अमल करना शास्त्र में इन्हीं दो बातों से दहिराया गया है कि या तो उस अमर से वाकिफ हो या उस अमर से खुद गर्जिगर्खे ये दोनों एकसाँ समझे जाकर खुद अस्तित्व और दहिरै कि शास्त्र को आज्ञा नहीं मानी) क्योंकि इन दोनों में किसी एक को होने विना स्वतंत्र प्रवृत्ति असंभव और मोहतमिल है तिससे जो कुछ अपराध ज्ञान सहित किया वह कामना सेभी किया समझा जायगा ब्याप्तिके होने सेही परंतु ब्याप्ति भी ऐसी दशाओं में नहीं कही जासकती है कि जैसे चोर बटमार आदि की प्रवृत्ति में बना हुआ कोई पुरुष उस वियय को यद्यपि जानता है कि शास्त्र फौजने से मनुष्य सारा जायगा जिसका मारना महापाप है परंतु मारने की कामना उसके भीतर से नहीं थी तो इस दशामें ज्ञानका होना कामना नहीं समझा जायगा क्योंकि ब्याप्ति उसकी नहीं थी और जोकि यह कहावत न्याय शास्त्र में प्रसिद्ध है कि सूर्यमें भी रपटिपरा भ्रांति से कीच का रपटना दहिरै तहोभी अर्थार्थ ज्ञानके न होने से उसविय य की कामना का भी न होना सिद्ध हुआ इस तरहसे अज्ञान और कामना का भी परस्पर योग सिद्ध होता है ॥ धनर्वितर्कः—क्योंकी यह कहना ठीक नहीं है कि प्रायश्चित्तों से पाप दूरहोता है क्योंकि पाप दूरहोनेसे कर्मोंका फल भी नाश हो जायगा तब कर्मभंडे दहिरैगे—ऐसा नहीं सुनो जैसे पापोंकी उत्पत्ति शास्त्रके वचनोसे पसारा होती है तैसे उतका विनाश भी शास्त्र के वचनों से पसारा है इसमें किसी दूसरे प्रचारकाका दुंदना जकारतनहीं है इसीलिये सौतनने यही अर्थ उल्लेखके कथन द्वारा दर्शाया है—तथा) त्वप्रायश्चित्तज्ञानात्कृत्योदिते निषांगते) अर्थात्—तहाँ जानकर पाप करने से प्रायश्चित्त करे या न करे यह सौतनने कहा क्योंकि इसमें विचार से

निर्णायकिया जाता है कि (नकुटर्ग्रादित्येकेन द्विकर्मसो यते) विरले मुनि कहते हैं न करे
 क्योंकि पापकर्मका नाश ही न हुआ तो करना फूल है और (कुर्यादित्यपरे) कोई यह
 अनेक मुनि कहते हैं—क्योंकि (पुनः स्तोमेनेष्वापुनः सवनमायांतीति विज्ञायते) फिर
 भी प्रायश्चित्त के बाद स्तोम नामक यज्ञ सवन करने से उक्त पापी लोग—फिर भी
 सवन को आइ पहुँचते हैं अर्थात् द्विजाती के धर्म में मिलाये जासकते हैं कि जिससे
 ज्योतिष्ठोम आदि कर्म करनेके अधिकारी होजाते हैं ऐसा विचार यह सीमांसा से
 जाना गया है—इसका प्रमाण और भी अग्रोक्त वचन है कि (ब्राह्म्यः स्तोमेनेष्ट्या ब्रह्म
 चर्यं चरेदुपनयनत इति सर्वपाप्मानंतरति भूयाद्वर्ग्याग्रोऽश्चमेवेन यजत इति) ब्राह्म जो
 पंचायती कर्म धर्मों से गिराया हो वह स्तोमयज्ञ करके यज्ञोपवीत करायें तिससे
 अनन्तर फिर ब्रह्मचर्यका आचरण कियाकरें तो इस प्रकार से सब पापोंको तरि
 जाता है जैसे अश्वमेध करने वाला अशाइत्या को पार उतरता है—यह वर्णन केवल
 अर्थवाद मात्र नहीं है किंतु विरले किसी योग्य अधिकारी का विशेषरा उठने के
 निमित्त मैं राधिसत्र नामक न्याय की रीतिसे अर्थवादके फलहीकी कल्पना है इससे
 योगीश्वरके मूल श्लोकमें यह पद ठीक है कि प्रायश्चित्तोऽपि पाप नाशोता है ॥ अत्र
 वितर्कः—क्योंजी कामनासे किये पापमें प्रायश्चित्तके अभावसे कैतव्यवहार योग्य होगा
 और प्रायश्चित्तका अभाव अगिले वचनोंसे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है—यथा (अनभिसंवि
 द्धतेऽपराधे प्रायश्चित्तं इति शशिशुः) तथा (इयं विगृह्णद्भिर्दिता प्रमाण्याकां सतो द्विजं
 कामतो ब्राह्मणवर्धे निष्कृतिर्न विधीयते इति मनुः) अर्थात्—शशिशु ने यह कहा है कि
 प्रायश्चित्त उस अपराध में चाहिये जो बन्धके प्रतिज्ञा से न किया हो—तैसाही मनु
 ने यह कहा कि यह विगृह्णित उमको कही गई जो ब्राह्मण को इच्छा बिना सारिके
 पापी हुआ हो किन्तु इच्छासे ब्राह्मण का बन्ध करनेमें निष्कृति नहीं होती है ॥ समा-
 खान—मुनें जैसा तुमने समझा सो नहीं है क्योंकि अगिले वचनों की समझी—
 यथा (यः कामतो महापापं नः कुर्यात्कथंचन न तस्य निष्कृतिर्ह्यभुवर्गिनपतनादृते)
 तथा (विहितं यदकामानां कामात्तत्तद्विद्या भवेत्) अर्थात्—जो आदमी किसीत्र कार
 भी कामना से महापाप करे तिसकी निष्कृति नहीं देखी गई है मियाय देवातों के
 कि यातो बहुत ऊँचे पर्वत से गिरें या अग्नि के शवामें कूदि परें तो यह सक स-
 र्गांतिक प्रायश्चित्त देखा गया है—तथैव दूष्य यह वचन है कि जो बिना चाहे पाप
 करे वालों को प्रायश्चित्त कहा हो यदा चादना से करने वाले को दूना होय तो
 यह कामना से पाप करने वालेको भी प्रायश्चित्त करना पाया गया अर्थात् यदी

नियम नहीं है कि निपट प्रायश्चित्त करै नहीं। और ऊपर जो वशिष्ठ का वचन तुमने सुनाया तिसमें भी बिना इच्छा पाप करनेवाले को प्रायश्चित्त कहा गया परंतु यह नियम उसमें नहीं है कि इच्छा से करने वाले को प्रायश्चित्त नहीं और जो मनु का वचन तुमने सुनाया उसमें निष्कृति से उसका मोक्ष नहीं होता यह तात्पर्य है कुछ निपट प्रायश्चित्त करने का नियम नहीं है क्योंकि प्रथम तो उसी वचन के अंत में सराणांतिक प्रायश्चित्त करना कहा था फिर वैसे और भी अनेक वचनों में तात्पर्य पाये जाते हैं ॥

पुनरपि वितर्कः—क्यों जी जब कामना से पाप करने वाले को भी प्रायश्चित्त करना ठहरा तो फिर उसका पाप भी क्यों नहीं नाश होता है और जो पाप ही नाश नहीं होता तो फिर पंचों में संसारी व्यवहार उसका कैसे सिद्ध होता है ॥ समाधान—सुनो यद्यपि प्रायश्चित्त दोनों दशा पर आरुद्ध हैं तथापि प्रायश्चित्त के फल में भेद है सो शास्त्र के द्वारा समझा जाता है जैसा कि अज्ञानता से किये पाप में सर्वत्रही पापका क्षय होता है पाप चाहें छोटे या बड़े हों—परंतु जहां गौतम के बताये महापातक आदि पापों में जिस पापी का संसारी व्यवहार भी भैयापन और पंचायत से छुटि जाना कहा है सो श्वासकर इतने हैं—यथाह गौतमः=ब्रह्महा सुरापो गुरु तृषणो सातृपितृयोनि संबंधांगाः स्तेननास्तिकनिन्दितकर्मभ्यासीपतितत्यागपतितत्यागिनः पतितः पातकसंयोजकाग्रच=अर्थात्—ब्रह्महत्यारा • सुरापाने वाला • गुरुओं की ह्मी गामी • साता या पिता की योनि में विवाह संबंध करने वाला • चोर • नास्तिक • किसी निन्दित कर्म को बारंबार करने वाला • पतित को नहीं छोड़ने वाला • अपतित को त्याग देने वाला • आपही पतित हो • पातक संयोजक जो पापकर्म की सहायता दें वे भी • ये सभी पतित होते हैं अर्थात् इनसे भैयापन और पंचायती व्यवहार छुटि जाते हैं—अब ऊपर की वार्ता पर ध्यान करो कि इतने जो पतनीय कर्म कहें इनमें भी दो भेद होते हैं कि एक तो बिना इच्छा इन्हीं कर्मों को किया हो दूसरा इच्छा सहित जानि दुष्प्रतिष्ठा के करै तिस जानि दुष्प्रतिष्ठा के करने वाले को प्रायश्चित्त करने से छुटा हुआ संसार व्यवहारसाय मिल जाता है परंतु पापोंका नाश नहीं होता यह भेद है परंतु यह तात्पर्य नहीं है कि पापोंका क्षय नहीं होता तो व्यवहार भी असंपात हो जाय क्योंकि पापको दो शक्ति देती हैं सकती जरक भोग उत्पन्न करने वाली दूसरी संसारी व्यवहार विशेष करने वाली • तिन में पहिली का विनाशन होवे पर भी दूसरी का विनाश होना असंभव नहीं है तिसने पापका विनाश न होने पर भी संसारी व्यवहार जारी हो

जाना अयुक्त नहीं है यदि प्रायश्चित्त होनाय—और जो अग्रोक्त मनुका वचन है कि (अक्रामतःकृतेपापे प्रायश्चित्तविदुर्मुखाः कामकारकतेऽग्राहुरेकेऽनुतिनिदर्शनात्) विना चाहे पाप होजाने में परिणतों ने प्रायश्चित्त कहा और कामना से किये हुये पाप में भी बिस्ले लोग युति की आज्ञा से बताते हैं—तो इस वचन का भी यही तात्पर्य है कि इच्छा सहित किये पाप में भी प्रायश्चित्त पहुँचता है परंतु यह तात्पर्य नहीं है कि पाप भी नाश होसकेगा—फिर भी अपनी ऊपरकी पहिलीवार्तापर ध्यान करों कि—गौतम के गिनाये पतनीय कर्मों के दो भेद जो कहिचुके तिनको छोड़ि के उससे उपरालू जोजो अपतनीय पापकर्म होते हों कि जिनसे संसारी व्यवहार नहीं रुकता हो तिनको यदि इच्छा से भी कियाहो तोभी प्रायश्चित्त करने से पाप नाश होजाता है इसका प्रमाण आगे मनुका यह वचन है कि (अक्रामतःकृतं पापं वै दाभ्यासेन शुध्यति कामतस्तु कृतं सोहात् प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः) अपतनीय कर्मों में जो विना चाहे पाप किया हो सो वेदका अभ्यास पाठकरने से शुध जाता है कदाचिद सोइ के ध्वरे से इच्छा सहित किया हो सोभी उन पापों के जुदे लिखे प्रायश्चित्तों से विनाश होता है—फिर भी अपने ऊपरले मुख्य प्रयोजन पर ध्यान करों कि—पतनीय कर्मों के दो भेद जो गौतम के वचन से कहिचुके उनका बहुत बड़ा भेद जो इच्छा सहित किये पापोंका दहर चुका—तिसमें भी बिस्ले प्रायश्चित्त से पापों का सय होता है कि जो जो मरणांतिक प्रायश्चित्त किये जाय कोकि देइ त्याग होजाने से संसारी व्यवहार आदि कोइहा दूसरा फल मिलना शय नहींइहा तिससे पाप का नाश ही फल उत्पन्न होता है—तदाह आपस्तंब—=नान्यस्मिन्लोकेऽत्यापत्तिर्विद्यते कल्मषतुर्निर्हयते=अर्थात्—देइत्यागकपी प्रायश्चित्त से फिर लोकमें कोइभी प्राप्ति उसकी लिये नहीं विद्यमान रहती है तिससे पाप भी मारा जाता है ॥ २०६ ॥ महापातक आदि पापोंके भेद आगे वर्णन होये सोसब अगिले परिच्छेदमें देखीं ॥

अथयंचमहापातकिनांपातकभेदेनस्वरूपलक्षणादि
निर्णयकारकोऽयंपरिच्छेदःचतुर्विंशः २४ ॥

इस परिच्छेद में पाँचों महा पातकियों के जूदेनाम और लक्षणा भेद
उनके किये पातकोंके अनुरूप निर्णय होंगे ॥

(महापातकिनः)

ब्रह्महमयप० स्तेनस्तथैवगुरुतत्पमः । एतेमहापातकिनोयदृचतेःसहसंवसेत् २२७

अर्थः—ब्रह्महा० मद्यप० स्तेन० तथैव० गुरुतत्पम० और जो कोई तिनके साथवसे इतने
महापातकी होतेहैं—अर्थात्—यद्यपि इनके अर्थ बहुत बड़ेहैं तौभी समष्टि वर्याष्ट रूप
से जूदेनाम धरनेका यह तात्पर्यहै कि छोटासा शकनाम कहने से अनेक अर्थसमझे
जायें—तहाँ—ब्राह्मण का हत्ता मारने वाला ब्रह्महा वह कहाता जिसने शस्त्र आदि
किसी प्रकारसे ब्राह्मण के प्राण हरेंहैं चाहेप्राण हरनेयोग्य उपाय करतेके साथही
प्राण गयेहों या उस कालके बाद किसी काल में उभी उपाय के प्रभावसेही प्राण
छूटेहों—मद्यप उसे समझना जिसने निग्रहमदिरापीहो—स्तेन चोरकानामहै पायहों
उस चोर की समझना जो ब्राह्मण का सोना हरै—गुरुतत्पम उसे कहतेहैं जो गुरुओं
की तत्पश्यद्वारा पर माराहो अर्थात्शठप्रासेन कहनेसे भाव्यार्थके पासगया यहतात्पर्यहै—
इतन चारिमनुष्य महापातकी कहेजातेहैं और वहभी महापातकीहैं किजो इनचारिमें
किसीकी भी साथवसे—मृतप्रलोकमें तथैव यहतथा औगव शब्दजोआया सो इसलिये
है कि तैसेही प्रकार वाले और भी जे कोई पुरुष होते हों तिनको भी महापातकी
रुमुभि लोग सो अधिकोक्ति में देखौ २२७ ॥

२२७अधिकोक्ति—(ब्राह्मणासुवर्णापहरणं महापातकमित्यापस्तम्बः) अर्थात्—
आपस्तम्बने कहा है कि ब्राह्मण का सोना किसी प्रकारसे हरलेना महा पातकों में
गिनती है—यहां यद्यपि केवल सोना कहा परंतु यह शक नकदी सावका उपलक्षणा
समझना क्योंकि ब्राह्मण की चाँदी चुराना कहींजुदा नहीं कहा तिससे यहदुयरा
आता है कि रुपये चाँदे सहस्रतक हरें तौभी महापातक न होगा पर सो रा केवल
वीस रुपये का हरने से महापातक है और भी इसी तर्कनासे सिंगिया का हरना भी

महापातक समझ लेना—कदाचित् कहो कि आपस्तम्ब के वचन में नहीं है इसका उत्तर-योगीश्वर के वचन में सोना भी नहीं है। किंतु सुवर्ण शब्द नक्षत्रीका भी वाचक है ॥ ब्रह्महत्या आदि पापों की पातक इस हेतु से कहा कि (पातयति इति पातकाः) मनुष्य को लोक धर्मसे गिराथ देते हैं इसलिये पातक इनका नाम है और महाशब्द जोड़ने से उनकी बढ़ाई जाकर होती है कि महापातक बहुत बड़े होते हैं तिनका उत्पन्नकर्ता महा पातकी कहता है और उसको सहायता देने आदि कार्यों से या बिना कारणके भी जोकोई उसके साथसे सोभी महापातकी होता है यह ध्याय भी उस भांति से समझना जैसा २६१ दो सो इकसठि मूल प्रलोक में (सभित्तु संवसे द्योवैवस्वसोपितत्समः) यही अत्रा-आवैगा कि इनके साथ जो कोई एक साल भर निवासमात्र करे सो भी इनके समान दोषी होजाता है ॥ १॥ मूलप्रलोक में तथा शब्द जो आयाया सो और प्रकारसे भी पापके कर्ता लोग अनुग्राहक प्रयोजक आदि होते हैं तिनका भी संग्रह-मानलेने के लिये आया या तिनके लक्षणा यहाँ समझाते हैं कि अनुग्राहक उसका नाम है जो धनप्राप्तोंके भयसे भगेहुयेको या बिना भगेही किसी को घेरके मारनेवाले के तर्फ पहुँचावे जिससे मारनेवाला उसको मारिस्के अथवा ऐसाकरे कि मारनेवाले को बचावे या उसको अपनी रक्षामें राखे कि जिससे मारि सकनेकी दृढ़ता उसकी होजाय ती भी अनुग्राहकने सहायताकरी कहाती है। इसी लिये मनुने मौजदारी के व्यवहार में उनको भी मारनेका फलभागी होना कहा है जो मारनेवालेके साथ एकद्वने घेरनेवाले आदि ग्राहक हों (ग्राहक अर्थात् अनुग्राहक) यथा=बहुनामैककार्यार्थान्सर्वैर्याशस्त्रधारिणाम् यद्येकीवातयेत्तत्रसर्वेतिघातकाः स्मृताः अर्थात्-बहुत मनुष्य एकही साथ कार्य करनेवाले शस्त्र बाँधेहों तिनमें यद्यपि कोई एकही शस्त्र चलाकर घातकरे तहाँ सब साथवाले भी घातक ठहरे-इति अनुग्राहकलक्षणा—इसीप्रकार—प्रयोजक आदि सहायकोंको फलभागी होता आपस्तम्ब ने बशांति है—यथा= प्रयोजयिताऽनुमंताकर्ताचेतिस्वर्गनरकफलयुक्तसमुभागिनो यो भयआरभतेतस्मिन्फलविशेषः—अर्थात्— प्रयोजक और अनुमंता और स्वयंकर्ता भी ये तीनोंही जैसा कर्महो तैसे फलके भागी होते हैं कि स्वर्गफल मिलनेवाला कर्म हो तिसमें स्वर्गभागी या नरक फलामिलनेवाला कर्महो तिसमें नरकभागी और जो कोई सुखियात्रनिके कर्मका आरम्भ करता या करता है तिसको मुख्यतासे विशेषफल होता है—इस वचन में जो नाम कहे तिनके भी लक्षणा समझाते हैं कि—प्रयोजिता या प्रयोजकनाम उसका है जो अपने प्रयत्न से किसी को ऐसे किसी कार्यमें प्रवृत्त

करे जो नहीं उसमें प्रवृत्त होसक्ता था—सो यह प्रयोजक पुरुष तीनभौति के होते हैं १ आज्ञापयिता २ अभ्यर्थयमान ३ उपदेष्टा—इनमें आज्ञापयिता आज्ञा देने वाला कहाता है जो आप ब्रह्मा आदिमी हो अपने से नीचे नौकर आदि किसी को आज्ञादेवे कि तू जाकर मेरे अमुकशत्रुको मारडालना तो यहहुकुमस्वपी प्रयोग उसने किया तिससे प्रयोजक आज्ञापयित उसका नामठहिरा १—दूसरा अभ्यर्थयमान उसका नाम है जो आप असमर्थ हो तिससे किसी समर्थ से प्रार्थना विनती करे कि आप अपनी शक्तिसे मेरे अमुक शत्रुको मारडालें तो मैं भी तुम्हारा अमुक रीतिसे प्रतिकार कछंगा सो यह प्रार्थनास्वपी प्रयोग उसका ठहिरा जिसने विनती आदिसे बलसे उसे कार्य में लगाया तिससे अभ्यर्थयमान प्रयोजक उसका नाम ठहिरा २ (ये दोनों सिर्फ अपने मततबके लिये प्रयोजक होतेहैं) तीसरा उपदेष्टा उपदेश करने वाला होताहै वह अपने मततब के बिनाही उपदेश देताहै कि तू अपने शत्रु अमुक मनुष्य को इस तीरसे मारना तो शीघ्र तेरे काबू में सुगमता से आसकीगा इत्यादि मर्म भेद बतलाने वाला निज उपदेशके द्वारा उसको कार्यमें प्रवृत्त करता है तिससे यह उपदेष्टा प्रयोजक नाम कहाता है ३=आप स्तंभके ऊर्ध्वोक्त वचनमें अनुमता जो सहायक दर्शाया तिसका यह लक्षण है कि वह किसी को कार्य में लगे हुये कौही अधिक प्रवृत्त करता है सो भी दो प्रकार का होताहै कोई अपने मततब के लिये कोई पराये मततब को अनुमनन करिके उसका उत्साह बढ़ाता है—इसमें तत्त्व निर्णय करने के निमित्तसे शंकास्वपी तर्कना खड़ी करतेहैं कि—अनुमनन करने वाले को हिंसा का हेतु कैसे पहुँचि सक्ता है क्योंकि न उसने कोई सामग्री प्राण विनाश करने वाली मारने वालेकी समर्पण करी न पूर्वोक्त प्रयोजक पुरुषोंकी तरह साक्षात् कर्ता की प्रवृत्ति उत्पन्न करिके सहायता करी किंतु केवल (प्रवृत्तका प्रवर्तक होना) यह लक्षण इसका कहागया तिसका तात्पर्य भी यही प्रतीत होताहै कि जब कोई किसीको मारताहो या मारने का परा उपाय सिद्ध करताहो तिसको देखि सुनिकेसेसा कहि देना कि तुनने अच्छा विचार किया तो इस प्रकार का अनुमनन कर देनेसे हिंसाके कर्म तक हेतु इसका नहीं पहुँचता है क्योंकि इतना (अनुमनन) उम बात का पसंद करना न होनेसे भी कर्ता अपनी क्रिया पूरी कारसक्ता या तिससे ऐसा अनुमनन भी व्यर्थहो ठहिरा चाहें स्वार्थ या परार्थ दो में कोई एक हो—इसका—समाधान सुनो० जहाँ कोई राजा या चौवरी आदि किसी प्रजान या स्वाधी के पराधीन रहिते आप अपने मनसे किसी काम के करने में प्रवृत्त हो

तौ भी उस प्रवृत्ति के भंग होजाने के भयसे यद्वा दण्ड आपननेके भयसे अपने कर्तृ-
त्वमें शिथिल ढीला होके राजा आदि स्वामी से या उस प्रकार के औरही किसी
समर्थ से हिंमति बंधने की अनुमति चाहता हो तहां (यह काम तुमने अच्छा
शोचा देखरकेकौ) इतनी हिंमति के बंधने से उसका ढीलापन जाता रहिता
हे कि जिस ढीलापन से उस कामके करनेतक हाथ उसका नहीं पहुँचता इसी
हेतुसे हिंसा कर्म का फल भी हिंमति बंधाने वाले अनुमता को पहुँचता है ॥ ० ॥
इनके सिवाय एक और भी निमित्तो नाम आधी होताहै अर्थात् यद्यपि साक्षात्कार
अपने देहसे हत्या नहीं करता है पर हत्या होनेका निमित्त हेतु वही उत्पन्न करता है
इसदंगसे कि ब्राह्मणका अपमान बड़ी क्रूरतासे करना या घुड़कोरेनी ताड़नाकरनी
या धन छीनलेना आदि प्रकारों से इतना क्रोध पैदा करावे कि वह जिस के ऊपर
अपघात करिके आपही सरजाय तौ यह क्रोधका दिलानेवाला निमित्त कर्त्तानामक
ब्रह्मघाती उहेरता है और उसी क्रोधके दितानेद्वारा हिंसाका फलभागो भी होता है
क्योंकि उसके सरजाने का हेतुरूप निमित्त इसीने उत्पन्न किया=यथाह विष्णुः=
आकुंष्टस्ताद्वितोवापिधनैर्वापिप्रयोजितः यमुद्दिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकश्च=
तथा=ज्ञातिमिवकं तथार्थसुदृक्षैवार्थमेवच यमुद्दिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकश्च=
=अर्थात्=जब कोशिशालीगलीज या खींचाखींची कियाहुआ या पीटाहुआ या धनों
से विमुख कियाहुआ जिसके नाम निशानपर अपने प्राण त्यागिदेवें तिसको ब्रह्म-
घातक कहितेहैं=तैसेही=क्रुद्धज्ञाति कलंक लगने आदि प्रयोजनोंसे या प्रिय मिवके
बाबत या छियों के निमित्त से या ध्यारे खेत आदि स्थानों के निमित्त से भगव्त्वा
उतनेमे जिसके ऊपर नामलेकर अपनेप्राणखोदेवें तिसको ब्रह्मघातक कहितेहैं=इस
वार्त्ता में=यह विचार करना आवश्यकहै कि जब किसीका अपमान गाली आदिसे
कियाजाय या धनसे दुर्भागो कियाजाय तब उसके प्रत्यक्षमे क्रोध न देखपरनेसे भी
यद्नहीं कहाजासक्ता है कि क्रोधवाला कारणा कोई नहीं था वह वृथाही मरगया
क्योंकि मनुष्योंके स्वभाव नाना भौतिसे विचित्र होतेहैं विरले पुरुष अतिशय चोड़े
कारणासे भी बहुत बड़ा क्रोध उत्पन्न करिलानेहैं तिनमें क्रुद्ध दोषरूपी देवुनहीं कहा
जासक्ताहै इसी प्रकार बहुतेरे बहुत बड़े अपमान आदि कारणा में भी अपना भोतते
क्रोध नहीं जाहर कारतेहैं तिसते क्रोध प्रत्यक्षमें न देखि परनेसे भी मरजानेमें क्रोधका
हेतु पक्का होताहै=आवश्यक न्यायः इस अविकीर्त्ति में अनु ग्राहक प्रयोजक आदि
जो जो सहायक वर्णन कियेगये तिनकी मुख्य पापीसे या उस पाप कर्म से समी-

प्रता की दशा ढँकी छिपी होने या खुल्लम होनेके अनुसार और पराये में पहुँची हुई सहायता की छुटाई बढ़ाईके भी अनुसार उसके फलकी छुटाई बढ़ाईसे प्रायश्चित्तमें भी छुटाई बढ़ाई आदिभेद कल्पित करने चाहिये क्योंकि आपस्तंब के वचनमें ऐसा (योभूयश्चारभतेतस्मिन् फलविशेषः) कहिचुके हैं कि जो मुखिया वनिके काम का आरम्भकरे तिसमें विशेष फल होता है—इसके दोसक उदाहरण भी समझाते हैं कि—अनुग्राहक यद्यपि हंताकी प्रार्थनाविना आपही खुद अस्तित्वारीसे हिंसा के कार्य में सहायक बनाहो तो भी उस के दाय से साक्षात् प्राणविनाशवाला व्यापार दाल तलवार की चोटलगाना आदि कुछ न हुआहो तिसते और इसतेभी कि साक्षादकर्ता की तरह मुख्यतासे हिंसाका कार्य उसने आपनहीं आरम्भ कियाहो तो कर्ताकी अपेक्षा उसको दण्डरूपीफल थोड़ा तथा प्रायश्चित्त भी थोड़ा पहुँचता है यहन्याय निर्मित कियागया—एवं—प्रयोजक यद्यपि मारसकने मध्ये कर्ता की स्वतंत्र प्रवृत्ति को उपपन्न करता है (अर्थात् मारनेवाले को यही उताख करवाता है यह बहपन इसमें प्रत्यक्ष देखिपरता है) तौभी यह करना उसका ढँका छिपा प्रायश दूरिही से होता है तिसते अनुग्राहक से भी थोड़ा फल इसको पहुँचि सक्ता है अर्थात् दण्ड और प्रायश्चित्त इसको उसते भी कम होना चाहिये यही न्याय दहिना—एवं—इन्हीं प्रयोजक तीन भाँति में से एक पराए अर्थ उताख होने वाला जो उपदेया कहा गया या तिसकी अन्य प्रयोजकों से भी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचता है क्योंकि वह खास कर अपने मतजत्रको नहीं प्रवृत्त हुआ (इनके सिक्ख २४३ की अधिकोक्ति में पैटीवसि मुनिके वचन से कुछ और भी इसी प्रकार के सहायक प्रोत्साहक आदि नामोसे आवेंगे और सब तरह के सहायकों के साथी सहायक जताए जायेंगे तिनका भी दण्ड या प्रायश्चित्त इनकी अपेक्षा न्यूनधिक शोचना होगा सो यहाँ वहाँ दोनों स्थान का पाठ मिलाकर शोचि लेना) अबच कहापोह वितर्कः—भला जो प्रयोजक पुरुष के एक हाथके समान प्रयोज्य वह पुरुष है जिसको प्रयोजक ने अपनी प्रेरणा से किसी कामपर उताख किया (जैसा मनकी प्रेरणासे हाथोंकी किसी काम पर उताख करते हैं) तो उस उताख किये हुये प्रयोज्य पुरुष को फल मिलना ठीक नहीं है क्योंकि जब विज्ञान लगानेसे लगे हुये को फल का संबंध दहिना तो फिर इसी न्यायसे तलाव आदि बड़ी इमारतों के कार्य में तेनाथ कियेहुये दरोगा मिस्त्री बेल्लार आदि जो मजदूरोंसे प्रवृत्त होते हैं तिनकोभी उसकार्यके स्वर्गादिफल जो कुछ होतेहों तिनमें फल पानेका प्रसंग जाना जाता है (सो यह प्रसंग श्राद्धों की मर्यादा

मे आपत्तिरूपी दोष माना जाता है) अत्र संदेह का निवारण कहिते हैं सुनो-शास्त्रोक्त फल कार्यमें लगाने वाले प्रयोक्ता को होय इस न्यायसे अविकर्ता स्वामीको पहुँचने योग्य फल उत्पन्न करने के हेतुसे कृप तद्वाग देव मंदिरका बनाना आदि होता है पर दोगा या मिस्तरी आदि कारीगर इन कामोंके बनाने आदिमें स्वर्गफल प्राप्त होने आदिके मालिक नहीं होते क्योंकि स्वर्ग आदि फल पानेकी कामना से काम नहीं किया मजुरी मिलने की कामना से करते हैं वही फल मिलता है और इसमें भी यही दूसरा भेद है कि दोगा और कारीगर आदि भी बिराने प्रयुक्त किंग्रहुये अहिता के अधिकारी होते हैं कि किसी प्राणीको हिंसा नहोये पावे इस दृग्से कामकरना तहाँ जो उन लोगोंसे व्यक्तिक्रम होजाय किंतु किसी मनुष्यके प्राण खोसजाय तो उस व्यक्तिक्रम करने के दोषमें फलभागी भी होते हैं यह न्याय भी समान्नभया-एवं-अनुमंता पुरुषको प्रयोजको से भी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचना उचित है क्योंकि प्रयोजक वाले व्यापारसे वह बाहर गिना जाता है तिसते और इससे भी कि उसका अनुमन रूपी कर्म जो है सो उन सबके कामोंसे छोटा है-एव-निमित्तकर्ता जो विष्णु के वचनमें उपराल ब्रह्मघातक ठहिराए कि यद्यपि हृदयधार से नहीं मारा परंतु क्वचन सुनाना आदि कोई उपद्रव रूपी निमित्त पैदा किया हो जिससे आपही अपने प्राण उसको त्याग देने परे-इसे निमित्तकर्ता भी अपराधी अनेक होते हैं-इसे निमित्त कर्ताओंकी अनुमंतासे भी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचता है-क्योंकि यद्यपि मरनेपर उतारू होने योग्य क्रीवरूपी कारण उसीने उत्पन्न किया परंतु निषट मार डारने के विचार से नहीं उद्यत हुआ था तिसते यह ठँका छिपा घातक ठहिरा यही न्याय निश्चित किया गया इसमें कुछ संदेह शेष नही है-तथापि-चारी अपनी वाचालतासे वितर्क वाद खड़ा करता है कि भला जब ठँके हुये को भी हत्या होने का कारण पहुँचिगया तो फिर उसके माता पिताकी भी हत्या पुरुष पैदा करनेके सम्बन्धद्वारा हत्या करकेका प्रसंग दोष कहना चाहिये कि वे भी एक ठँके हुये हत्यागे और वे भी प्रायश्चित्त करें क्योंकि हत्या करनेवाला पुरुष पैदा कर चुकें-उत्तर-सुनो पहिले होचुक्ने मात्रसे नहीं कारण पहुँचता है किंतु कारणाको ठाक कारणाता से युक्ति भी देखी जाती है अर्थात् कारणा भी वही माना जानता है जहाँ उसका कार्य का गुण भी उसीके अनुकूल देखिपर (इसपर एक भीमांसाका दृष्टांत है जो रथतर नामय वेदमंत्रसे सोमयाग रूपी न्याय कहा जाता है तहाँ जैसे वह सोमयाग अपने स्वरूपद्वारा नहीं कारण होता है तैसे हेतुदोष रूपी अर्थभिचारसे) माता पिता में उस

कारणा कारणाका लक्षणा नहीं पहुँचताहै इसते इसमें प्रसंग दीय न कहिना चाहिये—इसी न्यायसे वह नियमहै कि जहाँ धर्मकी इच्छा से वनवास कूप वावडी आदि में प्रसाद गफलतसे गिरिके जो ब्राह्मणा आदि कोई मरजाय तहाँ खोदवानेवालेका दीयनहीं क्योंकि उसने किसी डूबना चाहि के नहीं खोदवाया था (पर यह नियम उसमें नहीं कि जहाँ ऐसा प्रसिद्ध करिके डूबै कि उसने यहाँ कूप वनवाया इसीहेतु से में प्राण दिये देताहूँ इसते कहीं कृत्रा खोदाने वाले को भी कारणा की कारणता पहुँचती है) तौभी इसकारणात्वसे हिंसाका हेतु उसको नहीं पहुँचता है उस प्रकारसे कि जैसे माता पिता यद्यपि घाती पुरुषके उत्पन्न करनेवाले कारण होतेहैं तथापि उन्होने इस अपेक्षासे नहीं पैदा किया कि यह अमुक पुरुषके प्राणघात करे—और भी बिरलो दया ऐसीहै कि उनमें प्राणहिंसा का योग होतेहुये भी परोपकारके लिये उताख होनेमें वचनके प्रभावसे ही दीय नहीं है—यथाह संवर्तः=बंधनेगोप्रचिक्षित्तार्थं गूढगर्भविमोचने यत्नेकृतेविपत्तिश्चेत्प्रायश्चित्तंनविद्यते • ओयधर्स्नेहसाह्वारंदददगो ब्राह्मणादियु दीयमानेविपत्तिःस्यान्नसपापेनलप्यते • दाहच्छेदसिराभेदप्रयत्नैरुप कर्षताम् प्राणसंश्राप्तिश्चार्थप्रायश्चित्तंनविद्यते=अर्थात्—संवर्त मुनिका वचनहै कि—गऊकी बाँधते हुये चिकित्साके अर्थसे या अरुजा हुआ गर्भ छुटानेमें यत्नसे काम करनेमें भी जो प्राण जातेरहे तौ प्रायश्चित्त नहीं लगताहै—दवाई या घी दूध आदि अच्छा भोजन ब्राह्मणा आदि किसी को देते खिलाते हुये देनेके समय पर भी प्राण जातेरहे तौ वह देनेवाला पापी नहीं कहाताहै—प्राण बचानेके लिये पशु या मनुष्य के भी रोगहेतुसे किसी अगमें तपाय लोहेसे दाघ देना या फोड़ा गुमड्डा आदि चीरना काटना या रक्तपातके लिये नस्तर लगाना इत्यादि कामोंको बड़े प्रयत्नोंसे उपकार करते हुये पाण चलेजानेसे भी प्रायश्चित्त नहीं लगता है—सो ये नियम भी उनवैद्यां के निमित्त है जो उन रोगोंके लक्षण उत्पत्ति आदि निदानमें निपुणहों • अन्यथा जो सुख अज्ञानी होते ऐसा व्यतिक्रम करें तिनके लिये (भियङ्ग्भियथाचरन्दायः) इत्यादि वचनोंसे मनु आदि ऋयोश्चरोंने दीयभी दर्शाया है ॥ ० ॥ इनके सिवाय जहाँ क्रोध करानेके योग्य गाली गुपतार आदि नकरतेहुयेका भी नाम लेकर कोई उन्माद आदि रोग हेतुओंसे अपने प्राण विनाशकरै तहाँभाँ उसका दीयनहीं है जिसका नाम लियागया वन उसीका अपरावहै कि जिसने लुथा प्राण त्यागेहों=यथाववचनं=अ कारणाहयःकश्चित्तद्विजःप्राणान्पस्तिजेत्, तस्यैवतवदीयःत्याचतुयंपरिकीर्तयेत्=अर्थत्—जो कोई द्विज अपने प्राणोंको कारणाके बिना त्यागिदेवै उसमें उसीका दीय

दहिरे पर उसका नहीं कि जिसका उसने तृथा नाम धरा हो-तथैव-जहां ठीकही गाली गुणतार आदि कोई सा कारणा क्रोध उपजानेवाला उत्पन्न कियागयाहो जिस के हेतुसे छुरी आदि अपने अंगमें घुसेड़कर जवतक मरा न हो उसके क्रोधका उपजाने वाला पुरुष धनदेने आदि किसी प्रकारसे प्रसन्नकरि संतुष्ट करिलेवै कि जिससंतुष्टि के प्रभावसे बहुत मनुष्योंके सामने ऊँची आवाजसे पुकारिके सुनाय देताहै कि अब मेरे मरजानेमें भी खोंटावचन सुनानेवाले अमुक मनुष्यका कुछ दोय नहींरहा मैं स-
ंतुष्टहुआ फिर चाहें वह मरजाय या जीतारहैं दोनों दशममें उसकी दोय नहीं लगता सो यह दोयका न रहिनाभी वचनके प्रभावसेही जैसा यह आगे विष्णाका वचन है
=यथाह विष्णाः=उद्दिश्यकृपितोदत्वातोयितःश्रावयेत्पुनः तस्मिन्मृतेनदोयोऽस्तद्वयो
सच्छ्रावणोक्तते=अर्थात्-क्रोध कारायाहुआ कोई जिसका नामलेकर अपने प्राणोंको
विनीषि कर संतुष्ट कियाहुआ सबोंको सुनाइ देवै कि मैं सन्तुष्टहुआ और वह अप-
राधीभी अपने अपराधको सुनाइदेवै कि मैंने इसका यह अपमान किया था लेकिन
अब अमुक प्रकारसे सन्तुष्ट करदिया तौ इनदोनों के ऊँचे स्वरसे सुनाइ देने बाद जो
मरजाय तौभी इत्याका चिह्न उसमें नहींरहा ॥ २२७ ॥

इसअधिकोक्तिमें महापातकियोंके प्रसंगसे ब्रह्मघातोंके साथी लोग अनुग्राहक
प्रयोजक आदि जो जो कहेगए तिन सबकी वडाई छोटाईके अनुसार प्रायश्चित्तों में
न्यूनधिक विधेयता जैसी चाहिये सोदोसोंततालिख २४३ की अधिकोक्तिमें देखना
ध्योरे बार वारन करैगे ॥ २२७ ॥

॥ जैसा ऊपरले परिच्छेदमें महापातकों का स्वरूप समुझाया तैसा निचले परि-
च्छेदमें अतिपातक और पातकोंका स्वरूप कहा जायगा अर्थात् महापातक सबसे
बड़े प्रधानहं अतिपातक उनसे कुछ नीचे केवल उन्नीस बीस के अंतर समान समुझे
जातेह तथा पातक अतिपातकोंसे भी कुछ नीचेहों या बराबर सिर्फ नामहीका भेदहै
इन सबकी वडाई छोटाईका विधेय भेद आगे दोसौवयालिख २४२ की अधिकोक्ति
में देखना क्योंकि वहांपर अनेक क्रियियोंके वचन इकट्ठे कियेजायेंगे तिनमें चौदह
तक भेद इन्हीं पापोंके होजायेंगे ॥

अथातिपातकपातकयोः स्वरूपादर्शकोऽयं परिच्छेदः

दः पंचविंशः २५ ॥

इस परिच्छेद में अतिपातक और पातकों के लक्षणा भेद कहे जायेंगे कि जिनसे अतिपातकी और पातकी का स्वरूप पहिँचाना जाय ॥

(ब्रह्महत्यासमपापानि)

गुरुणामध्यधिभेपोवेदनिन्दासुहृद्वधः । ब्रह्महत्यासमज्ञेयमर्थितस्यचनाशनम् २२८ ॥

अर्थः—शुद्धों का अतिशय अधिसेप-वेदोंका निन्दा-मिवका बवकरना-पह्लेहुये वेदका भुलाइदेना-ये पाप ब्रह्महत्याके समान जानने=अर्थात्—शुद्धोंके सन्मुखउनके निरादर वाला कोई कठोरवचन बोतना या किसी प्रकारसे अपमान करना या किसी इत्सवकी समयपर नहीं बुलाने आदि मार्गोंसे तिरस्कार कदेना या उनके सुहृदोंके किसीके आगे कोईसी निन्दाकरना आदि सबलक्षणा अधिसेपमें गिनती होते हैं ओ गेय व्यवस्था अधिकोक्तिमें—वेदकी निन्दा जो नास्तिकताका पसलेकार करे—मिव चाहिँ ब्राह्मणोंके सिवाय किसी वर्गका हो तिसको प्रार्थनासे विनाश देना—वेदका भुलाइदेना आलस्य आदि कारणोंसे या और किसी शास्त्रके विनोद से भी—ये सब कर्मएकही एकजुट ब्रह्महत्याके समान पातक होते हैं अर्थात् उससे कमती नहीं हैं ॥ २२८ ॥

२२८ अधिकोक्तिः—गुरुणामाधिक्येनाधिसेपः अनृताभिशंसनं (शूरोरनृताभिशंसनमितिमहापातकममानीति गौतमस्मरणात्) एतच्च लोकाविदितदोषाभिशंसनविधयं (दोषबुद्धानपूर्वपर्यायं समाख्यातास्य याद सव्यवहारे चैनं परिहरे दित्यापस्तम्बस्मरणात्) अर्थात्—शुद्धों का अधिक अधिसेप जो कटिघुक्त तिसके लक्षणासे अनृताभिशंसन भी समुझिलेना कि शिष्य अपने गुरुओंका कोई असत्यदोष मुखसे न कहे क्योंकि (गौतमने गुरुका अनृताभिशंसन भी महापातकोंके समान कहा है) परंतु इस वचनका यह तात्पर्य नहीं है कि गुरुका असत्यदोष न कहे पर सत्यदोष मुखसे कहे किंतु इसका यह तात्पर्य है कि गुरुके पातकमन्वन्वी जिसदोषकी संशयो लोभाने नहीं जाना तिसकी शिष्यादिवर्ग अपने मुखसे न प्रकाशकरे जैसा इसपर (आपस्तम्ब का यह वचन है कि गुरुका दोष जानिके ओंको सामने पहिले समुझाने वाला न बने न आपही पहिले व्यवहारों मध्ये इसको त्याग देवे) तात्पर्य यह ठहिरा कि

जो आपही सबलोग जानि जायँ और संसारी व्यवहारसे गिराने लगेँ तो फिर सबको साथमे शिष्यादिक दोधी न ठहरेँगे अन्यथा जो शिष्यही पहिले प्रकाश करने लगेँ या व्यवहारसे गिराने लगेँ तो वह शिष्य ब्रह्म हत्या करनेका पातक नाना जाकर उससे प्रायश्चित्त कराया जाय तथा प्रायश्चित्त करने से पहिले व्यवहारों से भी त्यागि दिया जाय—अब ऊपरकी वार्तापर ध्यानकरे कि शुरुका दोय यद्यपि सच्चा है परन्तु जब तक सबलोगोंने नहीं जाना तब तक भूँटेकी बराबर है तो इस दशा में जो शिष्य प्रकाश करै सो भूँटा दोय प्रकाशकिया कहाता है इसी लिये (अनृताभिधं सन) यह नाम धरागया ॥ २२८ ॥

॥ अब आगे सुरापान महापापके समान पाप कहे जायँगे इसके मध्ये यहभी याद राखना कि जो जो पाप समानके नामसे दर्शाये जातेहैं उन सबका एक मुख्य नाम अति पातक समझते रहिना जो परिच्छेदके प्रारम्भमे लिख चुके हैं ॥

(सुरापानसम पापानि)

निषिद्धभक्षणजैह्म्यमुक्तपंचवचोऽनुत्तम । रजस्वलामुखास्वादःसुरापानसमानितु २२९
अर्थः—निषिद्ध चीजों का भक्षण जैसी लहसुन आदि अनेकहैं—जैह्म्यकृदिलता का नाम है जो अनेक तरह से होती है जैसे किसीकी प्रशंसा द्वारा निंदा दर्शनी या और के बहाने से औरोंको दुर्वचन सुनाता या और किसी काम के बहानेसे औरही कोई छल उत्पन्न करना या और किसी मनुष्य का नाम और प्रतिव्यप बनाकर उसके प्यारे किसी चाहनेवाले संबंधी को जाकर धोखा देना आदि—उत्कर्ष के स्थलपर असत्यबोलना इत्यादि जैसा राज घर आदि में बरगो प्रतिष्ठा लाभ आदिके निमित्तपर में चारों वेदविज्ञाताहूँ इस भाँति कोइसी असत्य कहिना—रजस्वला नारीका मुह चू-सना—ये प्रत्येक पाप जुदे जुदे सुरापानके समान महापातक होते हैं ॥ २२९ ॥

२२९ अधिकोक्तिः—निषिद्ध चीजों का खाना महापातक उस दशा में होता है जो जानि वृत्तिके खाय किंतु बिना जाने खा लेने से पापमात्र या उपपातक में गिराती और प्रायश्चित्त उसका छोटा है—इसीलिये मनु के अग्रोक्त वचन है—यथा=ऊनाकं विड्वराङ्गंचलशुनं ग्रामकृक्कुरम् पलाङ्गुजं चैव सत्याजग्धवापते चरः—असत्योतानिय इजग्धवाक्कृच्छ्रं सातपनं चरेत् यदि चांद्रायणां वापिशेयेयूपवसेदहः—अथति—छवाकजिमके नाम धरती फूला कदफूला कूहनमुता गोबरछत्ता आदि देशभेदसे अनेकहैं—विड्वरा-ह विष्टा खानेवाला मूअर-लहसुन-बस्तोका मुर्गा-प्याज-गाजर-इनको जानसहित

खाकर मनुष्य पतित होय अर्थात् जाती धर्मसे कूटि जाय इसका प्रायश्चित्त महा-
पातकों में देखो—वेही छः चीजें विनाजाने खाकर कृच्छ्रमातपनकरै यदि वा चांद्रा-
यरा व्रतकरै जैसी दशाही उसके अनुसार सोचा जाय इनके सिवाय जो नाम दयित
चीजें छोटी छोटी अनेक हैं तिनको विनाजाने खाकर एकही दिनका व्रतकरै ॥ ० ॥
जैहम्य कौटिल्य जो महा पातकों में सुरापान के समान गिनाया जिसके रूप ल-
क्षणा छोटे बड़े कर्मभेद से अनेक भाँति होते हैं तहाँ मूल श्लोक से जैहम्य शब्द की
साथ कोई विशेषण यद्यपि नहीं है तिससे सामान्य सबतरह की कूटिलता सुरापान
के समान समझी जाती है और यहभी समझा जाता है कि छोटे बड़े किसी प्रकार
की प्रतिष्ठावाले साथ कूटिलताहो—तथापि ऐसा तात्पर्य नहीं है किंतु उसी जैहम्य
शब्द से बहुत बड़ी कूटिलता मानी जाय चाहें छोटेही मनुष्य साथ करी जाय यह
तात्पर्य है और यहभी तात्पर्य है कि वह कूटिलता चाहें छोटीही परन्तु बहुत बड़े के
साथ अर्थात् शुरु के साथ करीगई हो तौभी सुरापान के समान मानी जाकर बड़ा
प्रायश्चित्त भी कराया जाय—प्रयोजन की वार्ता केवल इतनीही सी लिखीगई अब
आगे इसपर बाद विवाद है कि—सामान्य शब्द से इतनी बड़ी विशेषता कैसे मानी
जासक्ती है—इसका यह उत्तर है कि जब सुरापान के योग्य बड़ा प्रायश्चित्त इसपर
आखदबहुआ तौ वह छोटी कूटिलता पर नहीं माना जासक्ताहै—क्योंकि—कूटिलताएक
निमित्त है प्रायश्चित्त उसका नैमित्तिक धर्म है और न्याय तथा सीमांसा में यह भी
एक नियम है कि जैसे निमित्त की बड़ाई छोटाई से नैमित्तिक धर्मकी कल्पनाकरी
जातीहै तैसे नैमित्तिक स्वरूपकी पर्यालोचनासे निमित्तकाभी बड़ापनयाछोटापनका
विशेष ज्ञान होजाताहै—इसपरयह दृष्टान्तहै कि—जैसेजिसकिसीके कुलमें दो अग्नि
की सेवा क्रमागत चलीआती हो वह अपने प्रसाद गफलत आदिसे बुझाई डारै उस
की फिर स्थापना करनेचाहिये तहाँ वह पुरुष प्रायश्चित्ती भी होता है—इसमें यह
सोचना है कि दोअग्निबुझै तिससे दो निमित्त ठाँहरे विना कहे उनके नैमित्तिक भी
दोही समझे जायँजैसे किमीनेदोजगह दोम कानेको दो बेदीरचिके आज्ञादीही कि
इवि पहुँचना तहाँ दो इविसेमाविना कहेभी दो इवि पहुँचाने सिद्ध होतेहैं तैसे दो
अग्नि जोबुझै तिनके फिर उत्पन्नकरनेवाले स्थापना के कर्मभी दोही समझे जातेहैं
अर्थात् नैमित्तिक दो विधि दहरीं तौ फिर दो विधियों की बलवत्ता से निमित्त छप
अग्निभी दोही समझे जातेहैं अर्थात् जैसा यह निमित्त और नैमित्तिक दोनोंकापर-
स्पर धर्म प्रसिद्ध है—तैसे उस कूटिलता के नैमित्तिकरूपी बड़े प्रायश्चित्तकी प्रभाव से

ही कृतिज्ञता रूपो निमित्त में बड़ाई कल्पित करना योग्य है ॥ और छोटी मोटी कृ-
तिलता का प्रयोजन आगे उपपातकों में देखना ॥ २२६ ॥

(सुवर्णस्तेयसमपापानि)

अश्वरत्नमनुष्यस्त्रभिषेनुहरणतथा । निक्षेपस्थचतुर्विहिसुवर्णस्तेयसंमितम् २३०

अर्था—घोड़ा•रत्न•मनुष्य•स्त्री•धरती•हालकी विआनी दूधवाली गऊ•इनकाहर-
ना तथा धरोहरि का हरना यह सब सुवर्ण की चोरीतुल्य महापातक हैं ॥ २३० ॥

२३० अधिकोक्ति—इस वचन में रत्नशब्द जो है तिसका अर्थ उनरत्नों से नहीं
मिलना जो हीरा लाल आदि जवाहिरात पत्थर की जाति में प्रसिद्ध और सोने की
अपेक्षा उनका बहुत मोल होता है इसका यह दृष्टांत देते हैं कि और मरिगाओं से
गोमेद मरिगा थोड़े मूल्यकी होती है तिसका भी यदि बहुत उत्तम किस्मकी होतो सोने
से दूना मोल होता है या मूंगा के मोल बराबर (शुद्धश्यागोमेद मरिगास्तु मूल्यं सुवर्णं
तौ द्वयुरासाहुरेके अन्येतथा विद्वन्तुल्यमूल्यं) तिससे उनरत्नोंकी चोरी तो मुख्यम-
हापापों में समझना जो २२७ श्लोक वाली अधिकोक्ति से कहि चुके—और यहां
इसी रत्न शब्दकी उस अर्थ में लगाना कि जो वस्तु अपनी जिम्मि जातिमें अति उ-
त्तमहो सोई रत्न कहाती है जैसा (अथरत्न) कहिने से थोड़ों में अति उत्तम घोड़ा
समझा जाय—और जो यह अथ घोड़े का नाम कहा तिसके उपलक्षणा में हाथी भी
समझ लेना बल्कि सवारी मात्र जो उत्तम होतीहो तिनकी भी चोरी सुवर्णकी चोरी
तुल्य दहरानी क्योंकि घोड़ा आदि ये भी सब चीजें नगदीके समान हैं—यद्यपि टीका
कार ने ऐसा अर्थ किया है कि घोड़ा आदि ये सभी चीजें यदि ब्राह्मणाकी हरीजायें
और धरोहरि जो सुवर्ण से उपरालू हरीजाय तभी सुवर्णकी चोरीतुल्य पातक दहि-
राना परंतु इसमें यह भांति भी होती है कि येही सब चीजें यदि ब्राह्मणाने उपरालू
किसीवर्ण की हरी जायें तो किस पातक में गिनतीकरें कहीं दूसरा गियम इनका
ठीक ठीक नहीं है तिससे यह व्यवस्था समझ लेनी कि येही चीजें यदि ब्राह्मण की
हरीजायें तबतो चीजोंकी उत्तमता का विवेक न करना चाहिये किंतु घोड़ा या गऊ
आदि उत्तम या अनुत्तम किसीप्रकार कीहो तोभी सुवर्ण की चोरी तुल्य दहराना
जहां ब्राह्मण से उपरालू किसी येही चीजें हरीजायें तहां चीजोंकी उत्तमतापर वि-
चार करना चाहिये कि जो घोड़ा बहुतउत्तम हो या गऊ दूधदेती हुई हातकी वि-
यानीहो इसीतरह सबचीजें जो अपनीजातिमें रत्नभूत दहरैं तो इसदृष्टांत भी सुवर्ण

की चोरी तुल्य पाप समझना अन्यथा जो येही चीजें बहुत कीमती या अति उत्तम न हों और ब्राह्मण से उपरालू किसी की हों तो उनकी चोरीका पापद्रुमसे अगिले परिच्छेद में जाकर देखना जहां उपपातक वर्णन होंगे ॥ अब दोसौ इकतीसके श्लोक में गुरुभार्या भोग महापाप के समान पातक दर्शावेंगे ॥ २३० ॥

(गुरुतल्पसमपापानि)

सखिभार्याकुमारीपुस्वयोनित्यजासुच । सगोत्रासुसुतस्त्रीपुगुरुतल्पसमंस्मृतम् २३१ ॥

अर्थः—सखा मित्र होताहै तिसकी पत्नी में•कुमारी कन्याओं में जो उत्तम जाति हों•स्वयोनि अपनी बहिनोमें•अत्यजाचंडालियोंमें•सगोत्रा अपने समान गोत्रवालि-
योंमें•सुत स्त्री पुत्र वधुओंमें•जो कोई संगम करे तो यह गुरुतल्पगमनके समान महा पातक होते कहें ॥ २३१ ॥

२३१ अधिकोक्तिः—कुमारीके प्रसंगसे व्यवहारकांडमें यह वचन आया था (स कामाखनुलोमासुनदोयस्त्वन्यथादमः—दूयरोतुकरच्छेद उत्तमायांबधस्तथा) कि जो कन्या कामसे पीडित होके निज इच्छासेही पुरुषको चाहै और अनुलोम जातिहो अर्थात् पुरुषसे नीचेवर्गा कीहो तो इस दशामें उस पुरुष का कुछदोष नहीं है परन्तु जहां इससे अन्यथा डीलहोय कि पुरुष नीचा और कन्या उत्तमजाति की या नीची जाति होनेपर भी कन्याने कामपीडा और इच्छा अपनी न उत्पन्न करीहो तहां पुरुष दोषी होकर दण्डपावै=और हाथसे दूयित करनेमें हाथ कटायाजाय जो उत्तमजाती कन्या में ऐसा कियाहो तो उस पुरुषको बधदण्ड दियाजाय—जिस अपराध में दंड बड़ा होताहै उसमें प्रायश्चित्त भी बड़ा कराया जाता है यह तात्पर्य ठहिरा—इन्हीं दो वचनोंके आशयसे विज्ञानेश्वरने मूलप्रलोकमें भी उत्तमजाती कन्या ठहिराई ॥०॥ मूलप्रलोकमें जिन स्त्रियोंका रङ्गम गुरुतल्पके समान कहा सोभीउसदशामें समझना जहां योनिसमें वीर्यभी सींचाहो•अन्यथा जो वीर्यपात होनेसे पहिले लीदियाहो तो वह पाप भी गुरुतल्पकी बराबर नहीं किन्तुथोडाही प्रायश्चित्त कराने योग्य ठहिरै क्योंकि मनुने वीर्यपातकेही लक्षणासे गुरुतल्प को समान पाप ठहिराया है=यथा= रेतःशेकःस्त्रयोनीयुःकुमारीपुस्वयोजासुच सख्युःपुत्रस्यचक्षीयुःगुरुतल्पसमंविदुः=अर्थात्—वीर्य सींचना अपनी बहिनोमें•कुमारियों में•चंडालियों में•मित्र की स्त्रियों में•पुत्र का स्त्रियोंमें•गुरुतल्पके समान कहिते हैं ॥ ० ॥ योगेश्वरने मूल प्रलोक में सगोत्रा स्त्रियों कहीं पुत्रकी वधूभी सगोत्राहोतीहै उनको फिर दुवारा पुत्रवधूके नामसेकहिना

कुछ आवश्यक नहीं था परंतु नारानामधसे उसके मध्ये बहुत बड़ा दोष और बहुत बड़ा प्रायश्चित्त दर्शाया है ॥ ० ॥ एकसौ उनतीस श्लोकसे आदि लेकर ब्रह्म इत्या आदि के समान समझाने वाले जो वचन हैं तिनका यही तात्पर्य है कि गुरुओं का अधिक्षेप आदि जो जो कर्म यहां तक बताये गये तिनमें वही ब्रह्म इत्या आदिका प्रायश्चित्त कराना समझा जाय तहां यह शंका खड़ी होती है कि वेदकी निंदा आदि जो छोटे छोटे दोष हैं तिनमें ब्रह्म इत्या आदि के बहुत बड़े प्रायश्चित्त कराने योग्य नहीं समुक्ति परते हैं—इसका यह समाधान है कि ऐसा उजड़ा मत्तसमु भौ किंतु बड़े प्रायश्चित्त का उपदेश होनेसे उपदेश की प्रवृत्तिसे ही दोषका बड़ा-पन पाया जाता है—क्योंकि वह वचन केवल ब्रह्म इत्या आदि प्रायश्चित्त ही के अतिदेश मध्ये नहीं किंतु दोनों की बड़ाई सिद्ध करने केभी निमित्त है—जिससे कि जो केवल वही दर्शाना अभोद्य होता तो जूदा जूदा ऐसे भेदसे न कहते कि ब्रह्म इत्या के समान या गुरु तत्त्वके समान या सुवर्णास्तेय के समान या सुरापान के समान अर्थात् सभीको सामान्य भाव ऐसा कहि देते कि ये सभी महा पातक हैं ॥ ० ॥ और भी यह विशेषता है कि सम शब्दसे उपदेश किये प्रायश्चित्त भी सर्वत्र कुछ कमती करिके आदेश किये जाते हैं बराबर नहीं—इसपर यह इत्यांत है कि जैसा न्याय और न्याकराके प्रयोगों में यह नियमात्कवागया है कि (लोकराज समो मंत्री) इत्यादि ऐसे अन्यवाक्यों में भी जिसकी उपमासम कहिके दी जाती है वह प्रधानसे कुछ न्यून होता है जैसे इसीवाक्यमें देखो कि यद्यपि मंत्रीको लोकराजके समान कहा तो भी प्रधान लोकराजके साथ मंत्री कहों तक बराबरी कामत्ता है मंत्री और राजाको बराबरी कदापि नहीं—इसी प्रकार महापातक और उनसे दूसरे द्रव्यके पातकोंमें परस्पर तुल्यता होनी अनुचित है तिससे इनमें कुछ न्यून अर्थात् एकपाद कम करिके प्रायश्चित्त देना चाहिये (इसका विशेषद्वारा २५२ की अधिकांशिके प्रारंभमें देखना) यह व्यवस्था इस प्रकारसे निश्चित हुई तो फिर इसके विरोधी वचन शोचने चाहिये कि—याज्ञवल्क्य ने जिनपापोंको ब्रह्म इत्याके समान कहा तिनको मनुने सुरापानके समान कहा = यथाहमनुः=ब्रह्मोज्ज्वावेदनिंदाकीटसास्यसुहृदवः गर्हिताऽनाययोजर्गिषः सुरापानममा नियतः=अर्थात् पढ़ वेदका छोड़ि देना वेदकी निंदा करना जालसाजी से गवाही देना सित्रको घब कल्ला निंदित चीर्जेखाना अनादि चीर्जे कि जिनकी पैदाइशका हाल नहीं सालम तिनका खाना ये छः काम सुरापानके समान हैं—इनमें वेदका भुलाइ देना १ वेदकी निंदा २ सित्रका घब ३ ये तीन पाप वे हैं कि जिनको याज्ञवल्क्यजी ब्रह्म इत्याके

सासु० मासो० पिताकी बहिन वृश्चा० चचाकी स्त्री० मित्रकी स्त्री० शिष्यकी स्त्री बहिन० बहिन
को भनेली चाहे वह किसी की कन्या वा स्त्री हो० पुत्रकी वधू० बेटे० आचार्यकी पत्नी० संगोष्ठा
अपने गोवधरकोई स्त्रीमावहो० शरणागत जो कहीं सभगी बहीरसा समुझिके अपनी
छाया में कुछ समय बितानेकी ठिकी हो० रानी जो राज करनेवाले राजाकी भार्या हो
(किंतु सामान्य क्षत्राणी जातिमात्र समझनी क्योंकि उसके गमन मध्ये जुदाप्राय-
श्चित्तकहा गया है) प्रजितासंन्यासिनिष्ठादि साविनी० धात्रीवाय जिसने दूधपिलाकर
पाला हो० साध्वी जो किसी व्रतादिक नियमोंकी साधनामें तत्पर हो० वर्णोत्तमा ब्राह्मणी०
इनमें से किसी एकहीको गमन करता हुआ पुरुष शुरुभार्यागामी कहाता है लिंग उस
का कट्वाय डारने के सिवाय कोई और रंग ये सानहीं है जिससे उस के प्राणवर्च=
परन्तु=यह लिंगच्छेद और बधरूपी दण्ड ब्राह्मण से उपराल मनुष्यकी श्रुतिहोया
है— क्योंकि (ब्रजतु ब्राह्मणान् इत्यात्सर्वपापेष्ववस्थित मितितस्य व्यवनिषेधात्) ब्रा-
ह्मण को कदापि न सारै सब तरहके पापों पर आच्छद होने में भी यह उसके सारने
का नियेध सर्व शास्त्र में उपस्थित है तिससे० तथापि उक्त कर्मों का प्रायश्चित्त
यही बधरूपी जो लिख चुके तिसका विरोध दूर करने वाली व्यवस्था आगे उसस्थल
पर लिखी जायगी जहाँ शुरु तत्पीके प्रायश्चित्त का प्रकरणा आवै (२५६ श्लोक
पर देखना) ध्यान करो कि २२८ दोसौ अष्टादश मूलश्लोक से लेकर यहाँ तक छः
श्लोकों में शुरुओं का अधिक्षेप आदि पुत्री गमन पर्यंत जो कर्मकर्म वर्णानुषंगे सो सब
सहापातकों का अतिदेश है (सद्यही पतन का हेतु होने से पातक कहे जाते हैं) त-
दाह यसः=मातृपुत्रसामाहसखी दुहितृचपितृपुत्रसामातुलावीत्ससाञ्चभूरात्सामयःप-
तेन्नरः=अर्थात्—मातृपुत्रसामावसी० माताकी सखी भनेली० बेटे० पिताकी बहिन०
मासो० बहिन० सासु० मनुष्य इनको गमन करिके सद्यःतत्काल ही पतित होय अर्थात्
जाती और लौकिक धर्मकर्मों से गिराया जाय ॥ गौतमने कुछ और भी पातकी पुरु-
ष कहे हैं—यथा=मातृपितृयोनि संबंधांस्तेन नास्ति कर्निन्दत कर्माभ्यासि पतितात्त्या-
गिनः पतिताः पातकसंयोजकाश्च=अर्थात्—माताया पिताके योनि संबंधी रिपतेदारों
में विवाह करिलानेवाला० चोरी करने वाला० नास्तिक जो जाती धर्मको न मानै० निर्दि-
त कर्मों का अभ्यास रखने वाला दुर्जीवी० पतितको नहीं त्यागै सो भी० पातकों का
संयोग करावै सो भी० ये सभी पुरुष पतित होते हैं—गौतमने इन पातिकांश्यों को सहा
पातक और उपपातकों के बीच में गिनती किया है तिससे ये ऐसे हैं कि सहापातक-
यों से कुछ न्यून और उपपातकियों से कुछ ऊँचे पापवाले समझे जाते हैं—तथाच

वचनं=महापातकतुल्यानिपापान्युक्तानियानितुतानिपातकसंज्ञानितन्यूनमुपपातक
 स=अर्थात्-जो पाप महापातकों के तुल्य या केवल पापही के नाम से दर्शाए हों वे
 सब पातक नाम कहलें हैं उनसे भी जो न्यून हों सो उपपातक जानौ=यह नियम अ-
 गिरा के वचन से भी सिद्ध होता है=यथाहंगिराः=पातकेयुसहस्रस्यान्महत्सुद्विगुणां
 तथा उपपापे तुरीयस्याक्षरकंवर्धसख्यया=अर्थात्-नरकोंकी अवधि जाननेमध्ये वर्षों
 की संख्या से० पातकों में हजार वर्ष नरक भोग तथा महापातकों में उससे दूना दो
 सहस्र वर्ष और उपपापों में चौथा भाग २५० दोसौ पचास वर्ष नरक होता है यह
 नियम जानौ ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

इस प्रकारसे चौबीसवें परिच्छेदमें महापातकोंका स्वरूपकहा और पचीसवें परिच्छेद
 में पातकोंका स्वरूपकहा अब अगिले परिच्छेदमें सबसे छोटे उपपातक जुदेना मोसे दर्शावेंगे ॥

अथ उपपातकादीनां स्वरूपपापानां विवेक विषयोऽयं परिच्छेदः षड्विंशः २६ ॥



इस परिच्छेद में तीसरे दर्जावाले उपपातक और उनसे भी छोटे
 अनुपातक आदि दर्शाये जायेंगे ॥

(गोवधाद्युपपातकानि)

गोवधोवात्पतास्तेष्वमृशानां चानपात्रिया । अनगृहिताग्निताऽपण्यविक्रयः परिवेदनम् २३४

अर्थः- गोवध० वात्स्यता० चोरी० श्रृणोंका उधार न करना० अनाहिताग्नित्व०
 अपण्यविक्रय० परिवेदन० ये प्रत्येक जुदा जुदाही उपपातक होते हैं यह दोसौ बया-
 लीसवें श्लोक में जाय कर कहेंगे तहां देखौ=अर्थात्- गऊ को मार डारना यह
 गोवध एक उपपातक है-वात्स्य कहलाता है कि यज्ञोपवीत जिन अवधिके भीतर
 करना लिखा है उस अवधि को उल्लंघि जाय-स्तेय चोरी सामान्य जो वाह्यपाक
 मुखरा से उपराल और दोसौतीस मूलश्लोकमें लिखे उसके समान द्रव्य (घोंडा रत्न
 मनुष्य स्त्री वस्ती गऊ निसीप) इनसेभी उपराल कोई द्रव्यचुरावे या लोभाने या छीन
 या लूटे-श्रृणोंका उधार न करना अर्थात् मोना चांदी आदि किसीसे लेकर न देना तब

देव ऋषिपितरोंको ऋषा उद्धारन करने—अनाहिताग्नित्व अर्थात् जिसको कुलमें अग्नि स्थापनका अधिकार है सो अग्निको नहीं स्थापे तो यह भी उपपातक है—अपराध जो नहीं वेचने योग्य चीजें कि जिनका नियेव कृत्तीमर्षे मूलश्लोकसे आदि लेकर हो-
चुका तिनको वेचें तो यह उपपातक होता है—परिवेदनद्वय उसकानाम है कि जेदेभाई का विवाह न होकर पहिले छोटेभाईका विवाह किया जाय और जेदेभाईको अग्नि का स्थापन न होतेहुये छोटेभाई अग्नि स्थापनकरें तो छोटेको परिवेदन प्राप होता है—ये सब एक एक उपपातक होते हैं ॥ २३४ ॥

२३४ अधि शोक्तिः—मूलश्लोक में यह कहा था कि स्थापनाका अधिकार कुलमें होते हुये जो अनन्याधान को न रखे सो उपपातकी होता है—इसमें एक तर्कना है—क्यों जो ज्योतिषोम आदि यज्ञोंकी अनुज्ञा देनेवाली युक्तियाँ अपने संगभूत अग्नि की सिद्धि होने के लिये अग्नि का आधान स्थापन अवश्यही प्रयुक्त कर वातीरहि-
ती हैं यह बात भीमांसा में प्रसिद्ध है—तो इस नियमसे यह बात भी स्वतः पाई जाती है कि जिसको कुल में अग्नि र्योंसे प्रयोजन होगी तिसकी उसके उपायरूपी आधान में स्वतः प्रवृत्ति होती रहेगी जैसे हरतरहके धन संचय करनेवालों में जिसको नाज लेनेकी गर्ज है वह नाज हीपर उताऊ होगा और जिसको कुलमें अग्नि र्योंसे प्रयोजन कूछ नहीं है तिसकी प्रवृत्ति उसके आधानपर न होगी—तो फिर कैसे अनाहिताग्नित्व का दोष ठहिरा आगया = समाधान—सुनो इसी मूलश्लोकरूपी वचनसे (कि जिसमें उपपातक दशानेद्वारा आधानकी आवश्यकता ठहिराई गई तिसमें) नित्य युक्तियाँ भी और अवि-
कारवाला पुरुष भी अविशेष्यता से आधानको प्रयोजक होते हैं अर्थात् स्थापनाकी प्रयुक्ति करवाते और करते भी रहिते हैं यही स्मृतियोंको बनानेवालों का अभिप्राय पाया जाता है ॥ २३४ ॥

(अन्यानिचउपपातकानि)

भूतदध्ययनादानंभूतकाध्यापनंतथा । पारदार्यपारिवित्त्यवधुष्यंलवणक्रिया २३५ ॥

स्त्रीशूद्रविद्वत्प्रधानिदितायां पञ्चीनम् । नास्तिक्यत्रतलोपश्रुतानाञ्चेव विक्रय २३६ ॥

अर्थः मज्जीदेकर वेदपढ़ना—मज्जीलेकर वेदपढ़ना—पारदार्य पर स्त्री से भोग (पर स्त्री उनको समझना जो पहिले दो परिवेदोंमें वर्णन हो चुकीं तिनसे उपरालू हों)—
पारिवित्त्य अर्थात् सट्टेदर छोटेभाता का विवाह प्रथम हो जाय तो जेदे यिना विवाह को परिवित्तिये लगता है सो यह एक उपपातक है (इसीदशा में छोटेकी परिवे-

दनके नामसे उपपातक होता है सो २३४ कोश्लोक में कहिचुके) बाहुप्य कर्म जो उस प्रकारसे व्याजृष्टि की जीविका करे जिसका नियेव है-लवरा क्रिया अर्थात् खानिसे नसक सोरा आदि अपने हाथसे बनाना सक उपपातकहै ॥ २३५ ॥ स्त्रीका वध करना चाहें ब्राह्मणी आदि कोद्विजातिहो (परंतु रजस्वला आदि आश्रयो स्त्रियों की छोड़िके यह नियम समझना आश्रयीको ठीकलसरा दोसौ इक्ष्वांन की अधिकोक्तिमें देखना) शूद्रका वधकरना सक उपपातकहै-वैश्य या क्षत्री जो किसी यज्ञ आदि बीसा में दोक्षित नहीं तिनका वध करना उपपातक है-निंदित अर्थसे उपजीवन करना अर्थात् जीविका करनेका जो प्रकार राजाने नहीं स्थापित किया और लोकमें भी निंदितहो तिसके द्वारा-नास्तिक्य उसका नामहै कि हठपूर्वक ऐसा कहे कि परलोक आदि झूठी कल्पना है-व्रत का लोप करना दुष्टांत जैसे ब्रह्म धारी होकर स्त्रीसे प्रसंराकरे-सुतानां विक्रय अर्थात् लडका लडकी आदि संतान बेचना-ये सभी बातें एक एक उपपातक हैं ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

(अन्यानिचउपपातकानि)

धान्यकुप्पपशुस्तेयमयाज्यानांचयाजनम् । पितृमातृसुतत्यागस्तडागारामविक्रयः २३७
कन्यास्तद्वपणचैवपरिविदकयाजनम् । कन्याप्रदानंतस्येवकोटित्येव्रतलोपनम् २३८

अर्थ-धान्य सब तरह के नाज की चोरी-कुप्प सीसा रौंग पीतल आदि छोटी धातुओं की चोरी-उन पशुओं की चोरी जो दोसौ तीस २३० मूल क में लिखे हुये कीमती घोड़ा हाथी आदि या हाज की वियानी दूब देती उत्तम गऊ से उपरालू गऊ आदि हर किस्मके पशु जो कमकीमत समझे जाते हैं-अयाज्य प्राद्र आदिया ब्राह्म्य दोग वाले त्रैवर्गिक भी हैं अथवा जाति या कर्मों से दूयितहों तिनकोयजन करावै अर्थात् उनको पुरोहितारै पावात्रे करे तो यह भी उपपातक है-अपतित माता पिता या पुत्रों को पालनासे त्यागै अर्थात् घरसे निकालिदेवै तो यह उपपातक है-तडाग बागीचा धर्मशाला आदि जो पुण्य के निमित्त से बनाये गये यद्वा कुल का नाम रहिने के लिये बनाए हों तिनका वैचिदेना ॥ २३७ ॥

कन्या को दूयित करना अर्थात् भीस बिनाही अंशुरी आदि से योनि विगाना या ओरही किसी प्रकार से छेड़ छाड़ करना उपपातक है और यह भी कि यदि किसी कुमारी कन्या को ऐसा कोद्रे दोग लगावै जिससे विवाह सकिजाय (कुमारी से सम्भोग करना इस पाप से बड़ापातकहै जिसको २३१ श्लोक में गुरुतत्पकेसमात

कहिचुके हैं) —परि विन्दक पुरुष को विवाह कर्म आदि कोई सा यजन कराना (परिविन्दक उसको समझना जो जेठे पुत्रको विवाह विना छोटेका विवाह करे या जेठे पुत्री विवाह बिनालघुरी का विवाह करे तिनको विवाह करानेवाला परिण्डत भी उपपातकी होता है) —परिविन्दक पुरुष को कन्यादान करिके देना भी उपपातक है —कौटिल्य कुटिलता के लक्षण पहिले दोसौ उन्तीस मूल श्लोक में लिखि चुके तहां देखो परंतु वहांपर बहुत बड़ी कुटिलता का प्रयोजन था कि जिसका न्याय निर्णय उसी की अधिकोक्ति में दर्शाया गया किंतु यहां छोटी मोटी कुटिलता करै सो उपपातक है बल्कि इस प्रकार से भी भेद किया गया है कि वहांपर अपने गुरु के साथ कुटिलता करने का तात्पर्य था यहां जो औरों के साथ कुटिलता करै सो उपपातक है छोटी बड़ी से कुछ भेद नहीं पर विवेकी पुरुष दोनों प्रयोजनके सीतान से न्याय करै —वृत्त का लोप करना उपपातक है यद्यपि दोसौ छत्तीस मूलश्लोक में वृत्त लोप करना कहिचुके परंतु यहां पर अशिश और अप्रतियिद्ध सामान्य छोटे वृत्तोंका प्रयोजन है दृष्टांत जैसे श्रीहरि चरणां के दर्शनकिये बिना तांबूलआदि कुछ नहीं खाताइं यह मेरा नियम है इसको बहुत दिन साधने पीछे छोड़ि देना आदिस-मझने किंतु २३६ के श्लोक में स्नातक वृत्तचारी आदिके वृत्तभंग होने कहेये यहां स्नातक वृत्तवाले स्वल्प नियमों की भी पहुँच नहीं मानी गई है क्योंकि स्नातकों के छोटे वृत्तलोप होजाने मध्ये मनुने छोटा प्रायश्चित्त ही जुदा कहा है कि एक दिन भोजन का त्याग रखै यही प्रायश्चित्त है ॥ २३८ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

आत्मनोऽपेक्षियारभेमद्यप्यस्त्रीनिषेवणम् । स्वाध्यायाग्निसुतत्वागोवांष्यत्यागएवच २३९
इधनार्थदुग्धच्छेद स्त्रीहिंसोपपजीवनम् । हिंस्रयंत्रविधानं च व्यस्तनान्यात्मविक्रयः २४०
शूद्रप्रेष्यंहीनतस्त्र्यंहीनयोनिनिषेवणम् । तपेवानाश्रमेवास पराश्रमपरिपुष्टा २४१

अर्थः—अपनेही आत्मा के अर्थ रसोत्रे आदि पाक लक्षण वाली क्रियाओं का आरम्भ करना—मद्यपीने वाली स्त्री जो अपनी भार्या भी हो तिसका सेवन भोगआदि—स्वाध्याय अर्थात् अपना पाठ जो गीता आदि कोईसा नैतिक चला आताहो तिस का त्यागदेना—अग्नि जो जिसके घर शीत वा स्मार्त सदा रहती हो तिनका उठाइ देना—सुतत्याग अर्थात् पुत्रका संस्कार आदि न करनेसे त्याग करना—वांघवोंका त्याग अर्थात् ऐश्वर्यके होतेहुये चचा मामा फूफू आदि वांघवों की रखा न करनी ॥२३९॥

ईधनके लिये गीला घृक्ष काटना हवनसे उपरालू निमित्तों में-स्त्री के द्वारा उपजीवन करना अर्थात् द्रव्यलेकर परपुरुषोंसे संयोग कराना आदि और स्त्री धनका हरिलेना आदिभी इसीमें समझना-हिंसाके द्वारा उपजीवन करना दुष्टांत जैसे पशु पक्षी आदि जीव पकड़िके बेचना आदि-औषधीसे उपजीवन अर्थात् जंगल से जरा बूटी लाकर बेचना और वशीकरण आदि प्रयोगोंके मार्गसे औषधी देना कि इसका तिलक लगानेसे असुक वशमें आजायगा इत्यादि क्योंकि सुखी औषधी हाटक द्वारा बेचनेका दोष नहीं है यह निराय पहिले अपराधविक्रयके प्रकारमें हो चुका और मुख्य तात्पर्य उसका यह है कि उसमें कोई विय रूप औषधी किसी अज्ञानीको न दे दी जाय-रहिंसकयंत्र जीवोंके प्राण बिनाश करनेवाली कलोंका बनाना तथा तेल पेरने आदि की कलें जारी करना अपने नामसे-व्यसन मृगया शिकार आदि अटारह प्रसिद्ध हैं आचार सूर्यादा परिपाटोके राजधर्म प्रकरणमें देखोवे सब जुदेजुदे अटारह उपपातक समझने-आत्मविक्रय अपना शरीर जन्मभर के लिये बेच देना या धनलेकर वास हो जाना आदि जिसमें निष्ठ पराधीन हो जाय ॥ २४० ॥ शूद्रप्रेष्य अर्थात् शूद्रकी अति छोटी नौकरी जिसमें सँदेसा आदि पहुँचानेकी छोटी सेवा करनी हो-हीनसख्य अर्थात् हीनजीजातिसे मित्रता करनी या हीनकर्म करनेवालेसे मैत्रीकरनी आदि-हीन योनिका सेवन करना अर्थात् वेश्या आदि जो साधारण सबजनोंकी स्त्री होती हैं तिनका भोग और बिना विवाही जो अपनेही वर्गकी हो तिसका भोग भी हीनयोनिकी सेवा गिनौजाती है-अनायमका वास अर्थात् ब्रह्मचारी या गृहस्थी या वानप्रस्थ या संन्यासी इनमें किसीके भी आश्रमसे नमिजना अधिकोक्तिमें देखो-परान्तरपरिपुष्टता अर्थात् केवल पशुधे अन्नसे शरीर पालना किंतु दशदिन किसीके घर खाया दौड़ित किसीके इसीरितसे अवस्थाकी दृष्टाखो देना कभी अपना चौका चूल्हा बनाकरतहीं बैठना एक उपपातक है-इसीप्रकार कपरलिखी सभी बातें जुदे जुदे उपपातक हैं ॥ २४१ ॥

२३८ अधिकोक्तिः-(अयंसकेवलभुंक्तोयःपचत्यात्मकारणात्) यह वचन है कि जो कोई केवल अपनेही निमित्तसे खोईमें पकाता है वह केवल पापही का भोजन करता है अन्न मतसमझना इसीप्रकारसे मूलश्लोकमें कहा गया कि अपनेही निमित्त से जो पाक चढावै सो उपपातक है ॥ ० ॥ अनायमवास का विग्रह तात्पर्य यह है कि प्रायः गृहस्थी जो कल्याणार्थ हो जाय उसको शोधही दारान्न संग्रह कराना आचार सूर्यादा में कहि चुके हैं और भी यह वचन है कि (अनायमो न तिष्ठेत्तद्वनं कमपिद्विजः) द्विजातीमात्र कोई पुरुष एक दिन भी बिना आश्रम के न रहे अर्थात्

यातों किसी औरही आश्रम का सहारा लेवे या शीघ्र अपना विवाह करिके गृहस्थ का आश्रम सार्धे परन्तु यह नियम केवल उसके लिये है कि जो विवाह करने का अधिकारी सच्चा होय अर्थात् पुत्र लाभकी कामना श्रेयहोय या रति भोग की इच्छा श्रेयहोय यदा गृहस्थवाले धर्मोंका आराधन करना चाहे किंतु इनमेंसे कोई वात जिस के चित्तमें नहो अर्थात् जिसके पुत्रपौत्र आदि मौजूदहों या इनके मौजूद न होने पर भी शरीरसे बूढ़ा शिथिल होय या शिथिलताके न होनेपर भी कामभोग की इच्छा श्रेय न होय यदा किसी विशेष परमधर्मरूपोकार्यमें संलग्नहोनेसे गृहस्थका आङ्गवर नहीं रोपाचाहै तो वह पुस्त्यविवाह करनेका अधिकारी नहीं है जो अधिकारी नहीं उसको उपपातकभी न है ॥ तथाच विज्ञाने च्यार्यः—अगृहीताश्रमस्त्वं सत्यधिकारः ॥ २४१ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

असत्स्वाध्यागमनमाकरेण्वधिकारिता । भार्यायाविक्रयभेषागमेकैकमुपपातकम् २४२

अर्थः—असत् शास्त्रोंका विचारना अभ्यासकरना (असत् शास्त्र उनकानामहै जो चार्वाक आदि नास्तिक जनोंके शास्त्र हैं जिनमें बिरोधीरीति होती हैं) आकर खानि जो सुवर्ण आदि सब चीजोंके उत्पत्तिस्थान कहते हैं तिनमें राजकी आज्ञासे देका आदि अधिकार करना—भार्या का वचना—इन सबमें कि जो जो कर्म कुकर्म गोबध आदि दोस्रो चौंतीस प्रतीक से लेकर यहां तक वर्णाच किये सो एक एक जुदे उपपातक है ॥ २४२ ॥

२४२ अधिकोक्ति—योगीश्वर के वचनों से उपपातक लिखेगये—परन्तु—मनुने और भी निमित्तदर्शाए हैं तिनके नाम भेद भी जातिधन्य कर आदि पातक धरे हैं—यथाह मनुः—ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा घातिरथे यस्य सद्योः जैह्वस्य धुमिचमैशुन्यजातिध्वंश करस्मृतम् • खराचोष्टृसृगेभानामजाविकवधस्तथा सकरीकरणाज्ञेयमीनादिमहियस्य च • निदिस्तेभ्यो वनादानवाराज्यशूद्रसेवनम् अपात्रीकरणाज्ञेयमसत्यस्येवभायराह • क्षमिकीटवग्रोहत्यामद्यानुगतभोजनम् फलोदकुसमस्त्येयसर्धैयचमलावहनम् (अतो न्य निमित्त जात प्रकीर्णकं कथ्यते)—अर्थात्—ब्राह्मण के शरीर में चोटलगाना • न मूँघने योग्य अपवित्र चीजों तथा मद्यका सुंघना • जैह्वयकुटिलता • पुरुष की गुदासे मैथुन करना • ये सब जाति भ्रंश कर पाप कहते हैं—मदहा ऊट घोड़ा मृग हाथी इनका बध करना तथा बकरी भेड़का बधकरना और जलके मीन सर्प भैंसा इनका बधकरना ये सब सकरीकरणा पाप कहते हैं—निदिस्ते कर्मों के मार्ग से धनका लेना तथा निदिस्ते

वागिज्य और शूद्रकी सेवा करना ये सब अपावीकरणा पाप होतेहैं जैसे असत्य बोलनेकी भाँति—कर्म कीट पक्षी इनकी इत्या और मद्यानुगत भोजन अर्थात् जो चीजें बनाने वा परस्पर मिलानेसे मद्यके अनुरूप होजातीहों तिनका भोजन करना फलकी चोरी ईबन की चोरी फूलोंकी चोरी और धीरज राखनेके स्थलपर धैर्य छोड़देना ये सब मलावह नामके पाप कहातेहैं (इनके सिवाय जो पापस्वरूपी निमित्तकीइ उरपन्न हों सो प्रकीर्णक कहाते हैं) ॥ ० ॥ दृढद्विष्णुने सभी प्रायश्चित्तों के निमित्त छपी पाप यथाक्रमसे (उत्तरोत्तर) पीछे पीछे छोटे करिके जूदे संज्ञा भेदोंसे दर्शाएहें जोसब चौदह भेदहोते हैं—तथाच दृढद्विष्णुः=ब्रह्मइत्यासुरापानं ब्राह्मणसुवर्णापहरणं गुरुभ्रमरगमनमिति महापातकानि तत्संयोगश्च—मातृगमनंभगिनीगमनं दुहितृगमनंस्नुयागमनं मित्यतिपातकानि—यागस्यसवित्र्यवधोवैश्यस्यच रजस्वलायाश्चातर्वत्स्याश्चाविगोत्रायाश्चाविजातस्यगर्भस्य शरणागतस्यचघातनं ब्रह्मइत्यासमानि—कीटसादय सुहृद्वय इत्येतोसुरापानसमी—ब्राह्मणस्यभूसिहरणं सुवर्णास्तेयसमं—पितृव्यमातामह मातुलनृपपत्न्याभिगमनंशुरुदारगमनसमं—पितृष्वसृ मातृष्वसृ गमनं त्र्योवितृत्विर्गुह्य पाध्य मित्रपत्न्यभिगमनंचातिपातकसमं—त्वसुः सख्याः सगोत्राया उत्तमवर्णाधारज स्वलायाःशरणागतायाः प्रव्रजितायानिसिद्धायाश्च गमनमित्येतान्यनुपातकानि—अवृतवचनंसमुत्कर्षे राजगामिच पैशुन्यंशुरोश्चालीकनिबन्धो वेदनिंदाअधीतस्यत्यागोऽग्निपितृमातृसुतदाराणांच अभोज्यानांभक्षणां परस्त्रापहरणां परदारानुगमनमयाज्यानांचयाजनं व्रात्यताभृतकाव्यापनं भृतादध्ययनादानं सर्वाकरेष्वविकारो महायंत्रप्रवर्तनंद्रुमगुल्मबल्लोलतोयवीनां हिंसयाजीवनमभिचार मूलकर्मसुच प्रवृत्तिरास्माय किं यारभोअनाहिताग्निता देवर्यं पितृणा मृणास्थानपात्रिकया असच्छास्त्राविगमनं नास्तिकता कुशीलवता मद्यप ह्यी नियेवयामित्युपपातकानि—ब्राह्मणस्यसज्जःकरणमध्रेयमद्ययोर्घातिर्जेह्ययंपशुर्पुंसिच मैथुनाचरणा मित्येतानिजातिधन्यकराणि—ग्राह्या रणयपगुनांहंसनं संकीकरणां—निंदितेभ्योवनादानं वागिज्यं कुसीदजीवनमसत्यभायणां शूद्रसेवनमित्यपावीकरणानि—पसिणांजलचराणांचघातनं कृमिकीटघातनं मद्यानुगतभोजनंमलावहानि—यदनुकतत्प्रकीर्णकं=अर्थात्—विष्णुमुनि की बड़ी स्मृति में क्रम से सभी पापों के बड़े छोटे इतने भेद किये गए हैं कि—ब्राह्मण की इत्या • सुरापाना • ब्राह्मण का सोना हरना • गुह्य की दारा भोग करना • ये महापातक हैं १ और इनकी मिहजति वाला भी महापातकी होता है—माता या भगिनी या बेटे या पुत्रकी वधू गमन करना यह अतिपातक हैं अर्थात् महापातकों से कृच्छनीचे२

यज्ञ में लगे हुये सभीका बध करना तथा वैश्यभी यज्ञ में लगे हुये का बध करना या रजस्वला नारीका बध करना या गर्भवती का बध करना या अग्निमुनि के गोत्र वाली किसी प्रकार की स्त्रीका बध करना या बिनाजाने गर्भका बध करना या अपने शरणागत का घात करना ये सभी पाप ब्रह्महत्या के समान हैं ३ जालसाजी की गवाही या मित्र का बध करना ये दोनों पाप सुरापान के समान हैं ४ ब्राह्मण की घरती हरना सुवर्ण की चोरी के समान है ५ चचा या नाना या मामा या राजा इनकी पत्नी से अभिगम करना गुरुवार गमन सहापाप के समान है ६ पिताकी बहिन या माता की बहिन से गमन करना तथा योविद्य जो वेद की किसी शाखा के पढ़ने में तत्पर हो रहा यद्वा पंडित्त्वकी पीछे उसके अनुसार यदकर्मों में निरत ब्राह्मण हो या ऋत्विक् या गुरु जो अपने मुख्य गुरु से उपरालू कोई सामान्य गुरुमाना हो या उपाध्याय या मित्र इनमें किसीकी पत्नी से अभिगम करना ये अति पातक के समान हैं ७ बहिन की सखी या अपनी सगोत्रा किसी स्त्री से या अपना से ऊँचेवर्णावली स्त्री से या रजस्वला चाहें निज अपनीही भार्या हो तिससे या शरणा में आई तिकी हुई किसी स्त्रीसे या संन्यासिनि आदि साधिनो से या किसीने कोई स्त्री अपने धरोहर की रीति से सौंपी तिसके साथ भी गमन करना ये सब इतने अनुपातक हैं ८ उत्कर्ष के स्थान में असत्य बोलना (उत्कर्ष के स्थान यज्ञ मंडप राजद्वार तीर्थ स्थान सभा पंचायत आदि अनेक हैं सो समझ लेने) बड़ पिशुनता जो राज तक पहुँचे गुरुके साथ प्रतिज्ञा पूर्व इठकरना • वेदकी निंदा करना • पढ़ेहुये वेदका छोड़ देना • अग्नि की सेवा छोड़ि देनी • पिता या माता या पुत्र या भार्या इनको छोड़ि देना • नखाने योग्य चीजों की खाना • पराया धन हरना अर्थात् चोरी करना और अपने भारी या सामी आदि का उचित भाग न देना • पराई भार्याका भोग • अयाज्योंको यजन कराना • संस्कार विहीन प्रालोहोके रहना • सजुरी से वेद पढ़ाना • सजुरीमात्र देकर वेद पढ़ना • सब खानियों में अधिकार लेना जिसमें प्रायश प्राणियोंकोहिंसा संभव हो • बड़ी कलों का ज़ारी करना कि जिनके द्वारा प्रायश जीव हिंसा अवश्य होती है • बड़ेवृक्ष या गुल्म भाड़ी या बेलियावों या छोटी औषधोंकेवृक्ष इनकोकारि के हिंसा द्वारा जीविका करनी (इनके काटने से प्रथमतो उन्हीं का विनाश और बहुधा जीवोंका विनाश और अनेकप्राणियों का मृत्त भिटि जाता है जो उनसेहोता था इसीलिये औषधी केवल प्रयोजन मात्रकी तोड़ितानी कही है समूल वृक्ष नहीं उखाड़े) अभिचार वाले कर्म जो अथर्व वेदके द्वारा मारणा मोहन वशाकला उच्चा-

रत आदि मंत्र यंत्र होते हैं तिनमें प्रवृत्तिकरना भी पाप है। अपने आत्माके निमित्तसे रसोद्भिआदि क्रियाका आरम्भ अधिकारके होतेहुये अग्निको नहीं स्थापन करना। देवता या ऋषियों वा पितरों का ऋण नहीं शोधना। असत् शास्त्र नास्तिकजनों के बनाये हुये तिनको पढ़ना विचारना। कुशीलवता अर्थात् कुशील खोंटे स्वभाव के द्वारा नर नर्तक आदि वाली जीविकावृत्ति धारण करनी मद्यपीनेवाली स्त्रीसंभोग करना ये सब उपपातक हैं ६ ब्राह्मणों के देहमें घाव करना या चोटलगाना। नसंधने शरीर सैली चीज और मद्य इनका संग्रहना। जैहम्य कुटिलता। पशु में या पुरुष में सैन्य करना ये सब इतने पाप जातिभ्रंशकर कहाते हैं १० गावोंके या वनके पशुओं को हिंसा करनी यह संकरीकरण पाप कहाता है ११ निर्दित्त कसाई चंडालआदि मनुष्यों से और निर्दित्त प्रकारों से धन लेना या चोर आदि दुष्टों से धन लेना और उनके साथ वार्ताव्य करना। व्याजसे जीविका करनी। असत्य बोलना। ग्राहकी सेवा करनी ये सब इतने पाप अपापी करण कहाते हैं १२ पक्षियों वा जलचर जीवों का घात करना तथा कृमि कीट इन जीवों का घातकरना। मद्यानुगत भोजन करना जो चीजें किसी रीतिसे बनाने या परस्पर मिलाने से मद्यके अनुद्वप होजाती हैं ये सब इतने पाप मत्सावह कहाते हैं अर्थात् मलके धारण करानेवाले १३ जो कुछ इस पाट में न कहाहो और वही उपराल भगड़ा आनि परे तो प्रकीर्णक उनका नामकहा जाता है १४ ॥ ० ॥ कात्यायन ने सब पापों के मुख्य पांचही भेद कहे उनका भी दर्शना इसजगह पर आवश्यक है कि ऊँच नीच का भेद समझा जाय = यथाह कात्यायनः = महापाप १ अतिपाप २ पातक ३ प्रासंगिक ४ उपपाप ५ यह पांच भेदोंसे इनका गणन कहा = इस क्रमके अनुसार इतना भेद है कि योगीश्वर के बताये महापाप के समान जो पाप हैं जिनको विष्णु ने अतिपाप समान और अनुपाप के नाम से बताया तिनको कात्यायन जी ने पातकही के नामसे उच्चारण किया इत्यादि धर्मकारों के देश भेदकी अपेक्षासे कल्पना भेद पाया जाता है ॥ अथ शास्वार्थः—इसके मध्ये यह भी एक शास्वार्थ की मार्ग से तर्कना खड़ी होती है कि—पातक उपपातक आदि निचले दर्जावाले पापों में पतन (गिरजाने) का हेतु पूरा न होनेसे पातकत्व (गिराइ देना) कैसे सिद्ध होता है। जबकि उनमें भी पतनका हेतु प्रायः जाय तो फिर (माल पितृयोनि सन्ध्यांग) इत्यादि गौतम का वचन जो २२६ दोस्रो खोसकी अविकीर्तित आयाया उन्नमें जो गिनती गिनाई सी अनर्थक उद्धरती है तहां जो सेसे समाधान किया जाता है

किं यद्यपि पातकमें तत्कालही पातित्य उस तरहसे नहीं होता है कि जैसे महापातक और उनके समानपातकमें सद्यही पतन हो जाता है तथापि बारंबार अभ्यासकी अपेक्षा से उनमें भी पातित्य (गिराइ देने) का हेतु होना कुछ विरुद्ध नहीं है क्योंकि उसी पूर्वोक्त गौतमके वचनमें (निन्दितकर्मभ्यासी) निन्दितकर्मका अभ्यास बारम्बार करने वालाभी गिनती हुआ है तिससे यह समाधान किया करते हैं सो ऐसा नहीं माना जा सकता है क्योंकि अभ्यासका भी निरूपण उसकी तौलके द्वारा करना उचित है अथवा जो तौलकी विशेषता बिना ऐसाही साधारण अंगीकार किया जाय कि एकबारके सिवाय जब दोबार किया तोभी अभ्यास है तैसा सौबार किया तोभी अभ्यास है तो इस अंगीकारमें यह बोध आता है कि जैसे (दिनमें सोना या राऊका बंधकरना दोनों बराबर होते हैं) जो दिनमें दोबार सोया और जिसने सौबारमें सौ गौसे मारीं तिनदोनों का एकहीसा बराबर पातित्य होवे ॥ समाधान इसका सुनो—धर्मशास्त्रमें बहुधाकर्त्ते अर्थवाद खड़ा करनेसे भी सकप्रकारका पाप लगता सुनते हैं (जैसा आचारकांडमें मनु के दो वचन हैं सो देखो कि-१ युतिस्मृतीउभेनेत्रे इत्यादि और २ तेउभेयोऽवमन्येत हेतुशास्त्राथयाव इत्यादि) अर्थात् नास्तिकता बोध लगता है—और—उस निन्दितकर्म रूपी छोटे दर्जाके पापमें जो बड़ा प्रायश्चित्त पहुँचने का तर्क तुमने उठाया तिसका यह तात्पर्य है कि बारंबार अभ्यास करते हुये जबतक महापातकसे तुल्यता होजाय उतना अभ्यास पातित्य (गिराइ देने) का हेतु ठहिरता है तभी उसको बड़े प्रायश्चित्त का अधिकार पाया जाता है अन्यथा छोटे प्रायश्चित्त का अधिकार—और दिनमें सोना आदि जो छोटे उपपातक हैं कि जिनसे केवल कर्त्ताकेही पुण्य पराक्रमकी हानि होती है किसी दूसरेकी कुछ हानि या पीडा होनी नहीं सम्भव ऐसे छोटे उपपातकोंमें सहस्रबारभी अभ्यास करनेसे महापातकसे तुल्यतानहीं होती है इसहेतु उनमें पातित्य नहीं होता है—और निरले उपपातक आदि ऐसे हैं कि उनमें दोही चार वा इस पांच बारके अभ्यास होनेसे पातित्य लगिजाता है—इसका दृष्टांत जैसे बूढ़े मातापिता या अदान पुत्र पुत्री या सुशीला भार्या घरसे निकालिदेना उपपातक कहागया है यद्यपि वचन प्रभावसे तो यही अर्थ है कि निकालि देतेसार तत्कालही पातक लगा तो भी महापातकसे तुल्यता होनेकी अपेक्षासे यह तात्पर्य है कि एक दो दिनके लिये निकालि देनेमात्रसे पातित्य नहीं लगि सकता है उपपातकमें गिनती रहिसक्ता है परन्तु जो बारम्बार सदा सर्वदा ऐसा कियाकरै या ढेर दिनके लिये निकालि देय तो यह भी पूरापातक होजायगा कदाचित् निपट निकालि देवे कि फिर अपने पास न आने

दे तो यह भी महापातक तुल्य होजायगा इत्यादि प्रकारों से अभ्यास का निरूपण किया जाता है और यही उसकी तौल है। तिससे वही नियम ठीक है कि उपपातक आदि छोटे दण्डों के पापों में अभ्यासकी अपेक्षा से पतन [गिर जाने] का हेतु पैदा होता है ॥ २४२ ॥ ध्यान करना चाहिये कि योगीश्वर ने पापों के मुख्य तीनही भेद कहे जिनके तीन परिच्छेद जुड़े किये गये ऐसेही कात्यायन ने पाँच भेद कहे वृहद्विष्णु ने उन्हींका विस्तार करके चौदह भेद कहे परंतु तात्पर्य सबका एक है प्रायश्चित्त के विचारने में मुख्य योगीश्वरका वांछा कम देखना चाहिये कदाचित्त उसमें सन्देह या भ्रम बाकी रहिजाय तब अविर्कीर्ति में चौदह प्रकारों का मीलन करके संदेह मिटाइलेना विवेकियों का काम है क्योंकि जिन ऋषीश्वरों ने बहुतसेना भेद किये सो केवल इसलिये हैं कि पापोंकी बड़ाई छोटाई शीघ्र समझी जाय ॥ २४२ ॥

यहां तक व्यवहार बतलिकी सुगमता के लिये प्रायश्चित्तों के निमित्त रूपा पापों को संज्ञा भेद से वर्णन कर चुके अब आगे उनके नैमित्तिक रूपों प्रायश्चित्त कहे जायेंगे तिनमें ये सब संज्ञा काम आवैगी ॥

अथ ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तविवेकानां प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः सप्तविंशः २७

इस परिच्छेद में ब्रह्महत्यारूपी महापापके प्रायश्चित्तबर्णन हेतु और ब्रह्महत्याके अनेक भेद हैं कि एकही ब्राह्मण मारा या अनेक सारे या घोखासे मारा या जानिबूझि के मारा या वदिके मारा और प्रथम मारा कइवार पहिले भी ब्रह्महत्याकर चुका इत्यादि कर्ताओं के भेद से भी नियम किये जायेंगे ॥

(ब्रह्महत्यायां प्रायश्चित्तस्य द्वादशवार्थिकादि नियमाः)

शिरः कपाली भ्रजवान् भिक्षासी कर्मवेदयन् । ब्रह्महादादशब्दानि मितभुङ्क्षुदिमाप्नुयात् २४३

अर्थः—शिरका कपाल (खपरा) जिसके हाथमें कपालही की ध्वजालेकर अपने किये कर्मकी पुकारते हुये भिक्षामोंगि खाते हुये थोड़ा भोजन एकवार खाइके बारह वर्ष नियम साधनेसे ब्रह्महत्यारा शुद्ध होय ॥ २४३ ॥

२४३ अधिकोक्तिः—आजीखोपड़ी खपरावनाइके हाथमें लेना कहा शेष खोपड़ी

लाठी आदिके सिरेपर बाँधिके ध्वजा बनानीकही तिसकोभी ऊँची किये बगल में दबायेरहें—यह खोपड़ी उसी ब्राह्मणाको लेनी कही जिसको मारिके हत्याराबनाही (कृत्वाशवशिरोध्वजमिति मनुः) मनुने यहकहाहै कि मुदिके शिरकी ध्वजाबनाकर लेजाय= ब्राह्मणो ब्राह्मणांघातयित्वा तस्यैव शिरः कपालमादाय तीर्थान्यनुसंचरेदिति शातातपः=अर्थात्—ब्राह्मण ब्राह्मणाको मारिके उसीके मूडका खपरा हाथलेकर तीर्थों में बिचरे यह शातातपनेकहा—परन्तु जो उसका शिर न मिले तो ओरही किसी मरे ब्राह्मणाका लेआवे उसकी ध्वजाबनावै (खड़ांगकपालपागिरिति गौतमोपि) गौतमने भी कहाहै कि खड़ांग और कपाल हाथमें हो—खड़ांगनाम यद्यपि खारकेपावे पट्टी आदि किसी एक अंगकाहै परंतु यहां केवल ध्वजाका प्रयोजन है तिससे गौतम ने यह तात्पर्य दर्शाया है कि खारकी पाटी में खोपड़ी बाँधिके ध्वजाबनावै (खड़ांग यद्यपि समस्त तरपंजर अर्थात् मनुष्यकी सार्जरका भी नामहै पर उससे कुछ प्रयोजन यहाँ नहींहै) (कपालआदिका धारण करना यह केवल हत्यारेका हुक्मा चिह्न है अर्थात् उस खोपड़ी के खपरा में न भोजन करनेका प्रयोजन है न भिसा मागनेका— क्योंकि (मृन्मयकपालपागिर्भिसायेग्रामं प्रविशेदिति गौतमः) गौतमने उन्हीं गौतम ने यहभी कहाहै कि मडोका ठीकरा हाथमेंलेकर भिसाकेलिये वस्तीमेंधुसे अन्यथा जंगल आदिमें रहाकरै=तथाचमनुः=ब्रह्मा द्वादशाब्दानि कुट्टित्वा वने वसेत् कृतवा पनोवा निवसेद्ग्रामांते गोव्रजेषु पिवा आश्रमे वृक्षमलेवासर्वभूतहिते रतः=अर्थात्—मनुने ये नियमकहेहैं कि ब्रह्महत्या बरहवर्यतक कूटी बनाइके वनमेंवसे अथवा यह संभव न हो तो बालमुड़ाये वा जटारखाएहुये किसीग्रामके समीपरहै या गोव्रजमें कि जहाँ बहुत गौओं की चराईवाले जंगल में निवास हो या किसी प्रसिद्ध जंगलके बनेहुये आश्रमों में ठिके अथवा वृक्षके नीचे रहिके सर्वभूतों की भलाईवाले आचरणा करे (उक्तवचनोंमें कृतवापनोवा) इसविकल्पसे कि मूडमुड़ाहुये वा बिनामुड़ाये यह तात्पर्य निकसताहै कि चाहें जटा रखावै इसलिये संवर्तने कहाहै कि (ब्रह्मा द्वादशाब्दानि कुट्टित्वा वने वसेत्) औरजटारखावै और ध्वजासाधारणवै=तथा उसका यहभी नियमहै कि भिसासे निर्वाह करे धनकोसाधनवाँवै=यथाह आपस्तंबः=लोहितकेनखंडशरावेणाग्रामभिसायेप्रविशेत्=अर्थात्—भिसाकेलिये गावेंमें प्रवेशकरै ताँवा पीतलकापात्र कशोरा आदि लेकर या फूटेमडोके वासनका खपरा सकोरा सरावाआदि (ताँवा पीतल वा मडोका खपराआदि यहपात्रका विकल्पभी जातिकी उँचाई निचाईकी अपेसामें पायाजाता

है और जो यह तर्कनाकरीजाय कि जातीधर्म उससे छूटा हुआ है जबतक प्रायश्चित्त
 पूराहोकर शुद्धिहोजाय क्योंकि सबधर्मोंसे गिरगया विशेषकर जातीधर्म से अवश्यही
 छुटिरहाहै तो इसतर्कनके सन्मुख ताँवा या सझोका विकल्पभी दृष्टादहितताहै ति-
 ससे ब्राह्मणाकोताँवा शूद्रकोमझी सत्रीवैश्यको पीतलआदि समझने) भिक्षामागने
 का भी यहनियमहै कि ऐसा विचार न करे कि इसधरमें अच्छा मिलेगा इसमें नहीं
 तिससे इसमेंमार्गो इसमें नहीं किन्तु बिनाविचारिकये सातहीधर मार्गो उनमें जो कुछ
 मिलजाय उसी से निर्वाह करे=यथाहर्वाशयः=भिक्षार्थप्रविसेत्सप्तागाराण्यसंकल्प
 तानिचरेद्भैक्ष्यं=अर्थात्-भिक्षाकेलिये सातधरोंमें जावे और बिना विचारिकये धरोंमें
 मार्गो (एककालाहारइतिचवशियः) और उन्हीं वशियने यहकहाहै कि एकदिनमें
 एकहीबार आहारकरे तिससे सायंकालपर भिक्षा मागनी चाहिये= सो यह भिक्षा
 ब्राह्मणआदि वर्गोंमें मागनीचाहिये=तदाहसंवर्तः=चातुर्वर्ण्यचरेद्भैक्ष्यंखड्वांगीसंयता
 त्मवारः=अर्थात्-चारवर्गोंमें भिक्षाकरे खड्वांगनाम कपालक्रीध्वजा साधलिये रहे
 और अपने आत्माको अच्छीतरह वशमें राखेहै=तथा (वेश्मनोद्धारितित्यानिभिक्षा
 र्थमिन्द्रियातकःइतिधराशः) इसप्रकारसे अपनाकर्म सबको सुनाता रहे कि मैं ब्रह्म-
 घातक धरकेदारपर खड़ाहूँ भिक्षाकेलिये किन्तु धरोंके भीतर न घुसे यह पराशरने
 कहा ॥ ० ॥ भिक्षामागनेकी रीति जो कही गई सोही उस वशमें आचरणाकरे कि
 जहाँ वनके मूलफलोंसे गुजारा न होसके क्योंकि सबर्तका यह वचनहै (भिक्षार्थप्र
 विशेषग्रामबन्धैर्यदिनजीवति) जब कि वनके फलमूल आदिसे न जीसके तो भिक्षाके
 लिये गाँवमेंघुसे=और भी हत्यारेको इस बारहवर्षकी अवधितक ब्रह्मचर्यके नियम
 कानेचाहिये=तदाहगौतमः=खड्वांगपाशिाडादशवत्सराचब्रह्मचारीभिक्षार्थग्रामप्रविशे
 एकमविस्काराःयथोपक्रमेत्संदर्शनादार्यस्यस्थानासनान्यां विहरन्सवनेयूदकोपस्पृशीं
 शुद्धेद=अर्थात्खड्वांगवज्रा हाथमेंलिये बारहवर्षतकब्रह्मचारीहोकरहै भिक्षाकेलिये
 गाँवमेंघुसे अपनीहत्या सुनातेहुये तात्पर्य इसका यहाँहै कि भिक्षाकी जख्मत बिना
 गाँवमेंनजावे और बस्ती में जातेसमय या वनमें स्थानआसनपर टिकतेहुयेआर्यपुरुषों
 को वचनरूपी निदर्शनसे उपायका आरम्भ करताहै जो जो कुछ आर्यपुरुषतावे और
 वनमें विहार करतेहुये जहाँ तहाँ जलाशय पाकर स्नानकरनेका नियमराखें तो बा-
 रहवर्ष पूरेहोनेवादि शुद्धहोताहै ॥ ० ॥ हत्यारेको ब्रह्मचारी डोनाकहा तिसका यह
 तात्पर्य दीह्रा कि जो वाँटे ब्रह्मचारीको नियिद्धहैं तिनका त्याग यहभीराखें वेवाँटे
 आचारकांडमेंब्रह्मचर्यके प्रकरणमेंवर्णनहोचुकीतहाँदेखो=इसीलियेराखनेयहकहाहै

कि=स्थान वीरासनी मौनी मौजी दण्डकमंडलुः भिसाचर्याग्निकार्यचक्रुष्मांडी
 भिःसदाजपः—तस्यभवेदितिशेयः=अर्थात्—स्थानपर वीरामन जमाये मौनप्राप्त मौजी
 वारणाकिये डंड और कमंडलुभी लियेहुये भिसामांगि निर्वाहकरना और अग्निकार्य
 भी होम आहुति करना कूष्मांडियोंसे सदाजपकरे=ऊपर गीतमके वचनसे यह कहा
 गया कि वनोंमें सर्ववज्रलाश्रय पाकर स्नानकरनेका नियमराखें—तहां ज्ञानके विधान
 से उसके संगभूत सदादिकी प्राप्ति समझी जातीहै कि जो ज्ञानकरे तो मर्षोंका भी
 उच्चारण करे—तथैव(शुचिनाकर्मकर्तव्य)पवित्र होके सबकर्मकरने चाहिये यहवचन
 सर्वत्र सब कर्मोंपर साधारण भावसेग्राह्यहै तिससे भी यहवात पाईजातीहैकिप्राय-
 शुचित्तत्त्वप्रवृत्तचर्यामेंतत्पर होनेसे उसवृत्तकी संगभूत जो शौचकी संपत्तिहैतिसकीलिये
 स्नानोंकी तरह सध्यापासन भी करना चाहिये तिसका भी यह प्रमारा है कि सध्या
 करना सबकर्मोंके साथ पहिलेही आवश्यकहै जिसपर दसका यह वचन प्रमारा है
 कि=संध्याहीनोऽर्चानित्यमनहःसर्वकर्मसुयत्किंचित्कुरुतेकर्मनतस्यफलभागभवेत्=
 अर्थात्—सध्याकर्मसे विहीन जो पुरुष है सो नित्यप्रति अशुद्ध रहता और सब तरह
 के कर्मोंमें अयोग्य होताहै अर्थात् जवतक संध्या कर्मनकरे तवतक देव पितर आदि
 सम्बन्धी कोई कर्म करनेका अधिकारी नहीं ठहरेता है क्योंकि ऐसा पुरुष जो कुछ
 कर्म छोड़ा बहुत करे भी तो उस कियेका फलभागी नहीं होताहै यह वैश्वरकी आज्ञा
 रूपी वचनका प्रभावहै (तो इसके बिना हत्यारे का ब्रह्मचर्य आदि व्रतभी निष्फल
 जासक्ताहै) और इसमें यह शंका खड़ी न करनी चाहिये कि पहिले वचनमें पातक
 लगनेसे पातकी का पतन (गिरजाना) कहा गया था कि वह हिजाती धर्म कर्मों से
 गिरजाताहै अर्थात् हिजलब्धके कर्मोंकी हानि खड़ी होतीहै और सध्याकर्मभी हिजाति
 कर्मोंमें मुख्य गिनाजाताहै तिससे उसकी अप्राप्ति होनीचाहिये—क्योंकि उसपतित
 (गिरहुये) कोही व्रतचर्याका उपदेश कियागया तिस व्रतका एक अंग संध्या कर्म
 भी करना सूचित होगया—इसलिये अब इसबात पर ध्यान देनाचाहिये कि जैसे हि-
 जातियोंके मुख्य तीनधर्म कहेगएथे कि शास्त्रपढ़ना १ सबतरहके यज्ञपूजन करने२
 दानदेना३ और ब्राह्मणों जो सबसे बड़ा हिजातीहै तिसके छेकर्म अर्थात् तीनतौ येही
 जो लिखेगए और तीन इनसे उपरालू कि एक शास्त्र का पढ़ाना सुनाना कर्मों की
 आज्ञा देना आदि१ दूसरा यज्ञादिकर्म कराना२ तीसरा दानलेना भी३ इत्यादि और
 भी ससारी व्यवहार जो हिजातियोंके दशकर्म या याद आदिहोतेहैं जो इस व्रतचर्या
 के अंग भूत नहींहैं तिनकी हानि होजातीहै कुछ उतनी शोक से सबकी नहीं क्योंकि

तीसरेमें तिथिना करनाकहा चौथामारने में अपराधीका निस्तार किसीप्रकारसे भी न है। भी इसनियमका यह तात्पर्य है कि प्रत्येक पापके निमित्तपर पहिलेकी अपेक्षा अगिलेमें प्रायश्चित्तकी आवृत्ति बढ़ती जाय कि जितना प्रायश्चित्त पहिले पापमें कराया गयाहो तिससे दूना उभीपापकेद्वाराहोनेमें इसीतरह तिवारामें सबसे प्रथम की अपेक्षा तिथिना करायाजाय। यद्यपि एकसाथ एकही प्रायश्चित्तवाला पहिला अथे इसमें नहीं सिद्धहोआ परन्तु जैसे इसमें नैमित्तिक दूना आदि बढताढहरा तैसा इसीके न्यायसे अर्थात् यही वाक्यभेदका दृष्टांत लेकर दो तीन ब्राह्मण एक साथ भी जो नैमित्तिक शास्त्र का विचार है तिसकी आवृत्ति के अनुवादेसे यह निश्चित भया कि चौथा ब्राह्मण मारने मध्ये उस प्रायश्चित्त का न करना आया गया क्योंकि करने से निस्तारनहीं होताहै तथापि यह वचन उसवार्ता मध्ये नहीं है कि कालान्तर से दूसरा ब्राह्मण मारनेमें प्रायश्चित्तका अनुष्ठान पहिलेकी अपेक्षा दूना आदि कराया जाय। क्योंकि मनु और देवल के उक्तवाक्य से इसवात में वाक्य भेद रूपा प्रसंगबोध पायाजाताहै तिससे—दोतीन ब्राह्मण मारडारनेमें भी बारहवर्ष आदि कोईसा प्रायश्चित्त एकहीबार कियाजाय यही समझमें आताहै क्योंकि (यहांएक सीमांसाका दृष्टांतहै कि) जैसे अष्टाकपाल होमहै जो आठ सड़ोके खपरोंमें चत्सवर के होमहोताहै इसकालनासे कि मेरे सब घरोंमें कभी आगि न लगे उसमें यह नियम नहींहै कि अनेक घरोंके जलजानेके निमित्त उतने जुदे होम किये जायँ किन्तु एक साथ अनेकघर जलने मध्ये एकहीबार अनुष्ठान कियाजाता है ऐसे कामवती आदि और भी अनेकयज्ञहं जो इसीप्रकार एकजातिके अनेक निमित्तोंपर एकहीबारकिये जातेहैं—तथाच मिताक्षरा(यथा—अनन्यकामयतेपुरोडाशमष्टाकपालनिर्घपेत—इत्यादि गृहदाहादिनिमित्तैयुधोदितानां कामवत्यादीनांयुगपदनेकोष्वपि गृहदाहादिनिमित्तैयु मन्त्रदेवानुष्ठानं) तैसे यहां भी दो तीन हत्याका प्रायश्चित्त एकहीबार किया जाय= मन्नाधान - इसकानिर्णाय सुनो—वचनके विरोधमें न्यायनहीं सिद्धहोताहै और वचन जो मनु और देवलका लिखा गया वह दो तीन ब्राह्मणोंके मारने में प्रायश्चित्त के अनुष्ठानकी आवृत्ति बढाने परही आखडहै परऐसा होनेमें न्यायलभ्य जो(तंत्रानुष्ठान) एकसाथ व्रतचर्याका करना तिससे रोकाहुआ आवृत्तिका विशेष करनेवाला न्याय होजायँ और इससे अन्यथा शास्त्रोंकी पहुच का अनुवाद खडाकस्ने से अनर्थक ल- सता होजाने सक्ताहै और वाक्यभेदका चर्चा जो चलाया सोकुछ वाक्यभेदभी नहीं है क्योंकि मनुदेवलके उस वचन में चौथे ब्राह्मणको आदिकेकर जो बहुत मारेजायँ

तिसवधका चर्चाछोड़कर जहाँ दोहीतीन सारेजायँ तिनका दूनातिथुना आटुत्तखूपो प्रायश्चित्तका विधानहै(कोकि चौथेको आदिलेकर चौथुना पचगुना छौथुनाआदि होसकनेकी शक्तिसे भी बाहरहै) तिससे वचनोमें एकहीअर्थ समझने योग्य तात्पर्यहै कुछ भेद नहींहै अर्थात् (चतुर्थेनास्तिनिष्कृतिः) चौथेके सारनेमें प्रायश्चित्त से उधार नहींहोता इस कथनसे पांचवां छटा आदि सब समझेजाते हैं कि बहुतो के सारने में दोय बहुत बड़ाहै जो प्रायश्चित्त से नहीं मेराजासक्ता है यही आशय देवल आदि ऋषियोंके इसवचनसे भी दीकहै कि (यत्प्रगदनाभिसवायपापकर्मसंकृतात्म तस्ये यनिष्कृतिद्वयाधर्मवर्द्धिर्मनीयिभिः) जो पाप एकवार कियाहो और बिना कामनाके इच्छारहित होगयाहो तिसका यह प्रायश्चित्तखूपी बिस्तार बहुतसेधर्मज्ञ बुद्धिसानों ने निर्गाय किया और प्रायश्लोक में ऐसाही वर्ताव देखा—और बिलसरा दोय जिनके परस्पर लक्षणा एकसे नहो और बड़े छोटेहो तिनका सयहेतु प्रायश्चित्त एक साथ नहीं सिद्ध किया जाता है—इन सब कारणोंसे इस प्रकारके अपराधों में दोय के बड़ा पनसे और कार्यों के बिलसरा भावसे भी प्रत्येक पापके निमित्त पर जुदे जुदे प्रायश्चित्तकी फेरी होनी ठीकहै—औरसामवती आदि विधान जिनका स्वरूप और प्रयोजन दोसौ सतरह२१७की अधिकोक्तिमें कहिचुके कि एकही बारकरनेसे अनेक पाप क्षय होतेहैं, तिनमेंभोउनअनेक कार्योंकी बिलक्षणताके बिनाही, एकसायविधान होनायोग्यहै कि जब एकही लक्षणवाले अनेक पाप हो(इसका भी दृष्टांत जैसे पच यज्ञोंके त्यागखूपीपापके निमित्तपर सामवती आदि नैमित्तिक विधान करना चाड़ा तहां यद्यपि पांचयज्ञोंके स्वरूप सबजुदे जुदेपांच होतेहैं तथापि लक्षणसबका एकही माना जायगा कोकि वे सभी नित्यकर्म कहातेहैं) यहचर्चायहा प्रसंग मावसे किया गया=और जोवचनअभीलिखचुके, चतुर्थेनास्तिनिष्कृति) चौथेसारडारनेमेंनिष्कृति नहींहोतीहै सोयह सहापातकोंके विषयपरआसुदहै क्योंकिपापकेअतिबड़ापनसे प्रायश्चित्तका अभाव इसमें कहागया तिससे—और इसीसेगूढ़का अखखाना आदि छोटे पापोंमें चौथीवारसेभी अधिकबहुतवारके अभ्यासकरनेपरभी उसकेअनुरूपप्रायश्चित्त की पुन पुन (आटुति) फेरी से कल्पना होनी चाहिये किंतु प्रायश्चित्तका अभाव इनमें न चाहिये ॥ = ॥ बारह बर्यका व्रत वर्गात् किया सो यह मुख्य सारनेवाले के निमित्तमें कहा गया क्योंकि ब्रह्महा नाम उसीका कहिचुके हैं—अर्थात् अनुप्रादिक प्रयोजक आदि हत्यारे के सहायक जो दोसौ सत्ताइस २२७ वाली अधिकोक्ति के प्रारभ में दर्शाएगये तिनका जैसा दोयहो या जितनी सहायता हत्यारे को मिली हो

ज्ञानिका जो वचनहैं सो जहां उसके प्रयोजनकी प्राप्ति देखोजाय तहां मानाजासक्ता है कि—इत्यारेसे न कोई पढ़ै न उससे किसी कर्मकी आज्ञा वृत्त न उसके द्वारापूजन आदि कोई कर्मकरै न उसको दानदेवै (यहां भी फिर वही विचार करनाहोगा कि उसकी दानदेनेकी नियेध से भिक्षा देनेका नियेध न समुक्ति लेना क्योंकि भिक्षा का विधान उसके निमित्तपर लिखिचुके हैं तिससे भिक्षा देना एक वाचनिकधर्म है) इसी प्रकार न कोई इत्यारे को पढ़ावै न यज्ञ आदि कोई सा कर्मद विधान उसको करावै न कानेकी आज्ञादेवै न संभायराकरै न रासरमौअरि का सम्बन्ध राखै न उस से कुछदान लेवै न विवाह आदि सम्बन्ध उससे करै—अब ऊपरकी प्रकृति वार्ता पर ध्यान करो कि—इत्यारेकी वृत्तचर्या जो मनु और याज्ञवल्क्य और गौतम आदि ऋषीश्वरोंकी नियत करीहुई ब्राह्मवर्ग की अवधिसे एकही है कुछ जुदे जुदे ग्रन्थों में जुदी तरह नहीं है किंतु अविरोधी मत परस्पर सबका एकहीहै—तिसका यह उदाहरण समुक्तिलेना चाहिये कि जैसे इसी २४३ के प्रलोकमें (भिक्षाशोकमवेदयत्) यह योगीश्वरने कहा कि अपना कर्म पुकारते हुये भिक्षा भोजन करै और कुछ नहीं कहा तो यह अपेक्षा शेररही कि भिक्षा मांगनेका कैसा पावहो या किनके घर मांगनी चाहिये या कितने घरोंमें—तहां यह श्रेय अपेक्षा आपस्तम्ब आदिके उन वचनोंसे पूरीहोजाती है जो (लोहितकेनखड्गशरवेरा इत्यादि) पहिले लिखिचुके हैं सो यह कोइना विरोध नहींहै=इसीलिपे सब ऋषीश्वरों का एकही कल्पना रूपी उपदेश होनेसे बिरले संग्रहकारोंने अपने ग्रन्थमें यह लिखा है (मनुगौतमाद्युक्तेति कर्तव्यतायाः परस्पर सापेक्षत्वेऽपि विकल्प इति तदनिस्त्वयैवोक्तमिति संतव्यमिति विज्ञानेश्वरः) अर्थात् मनु गौतम आदिकी कही इस कर्तव्यताके परस्पर एकती होने परभी विकल्प समुभाजाता है—सो यह विकल्प समुभूने वालोंने व्यवस्था निरूपणा किये बिनाही कहि दियाहै यह समुक्तिलेना ऐसा विज्ञानेश्वरने कहा कि जिनका निरूपणाकियाहुआ मिताक्षरा नाम ग्रन्थहै—अब ऊपरसे वर्णन किये हुये सबका तोह यहां करतेहै कि—इसी उक्त प्रकारसे बारह वर्गकी वृत्तचर्या पूरीकारके ब्रह्मइत्यारा शुद्धिको पहुँचै अर्थात् फिर भी पहिलेकी तरह अपने सब धर्म कर्मोंमें लगायाजाय ॥ ० ॥ यह व्यवस्था जोकही गई सो इच्छा बिना किसी धोखा आदि ओरही कारणासे ब्राह्मण सारधारने मध्य समुभूनी क्योंकि=मनुका यहवचन पहिले लिखि चुकेहै (इयं विशुद्धिर्विनाप्रनाश्या कामतोहिजस कामतोब्राह्मणवर्गेति कतिर्नविधीयते) कि यह विशुद्धि उसके लिये कहोगाहै जो कामनाके बिना ब्राह्मण सारिके इत्यारा हुआहो किन्तु कामना से बंध

करने में निस्तार नहीं होता=अत्राप्यर्थवादः—इसमें यह शोचना चाहिये कि बिना इच्छा मारडारने मध्ये जो विशुद्धि कही गई तहां क्या दो तीन ब्राह्मणों के मारने में प्रायश्चित्त का (तंत्र्य) एकीभाव कहिके (आहृति) उसके फेरें भी ठहिरा कि फिर फिर किया जाय• तहां कोई ऐसा मानते हैं कि (ब्रह्महाडादशाब्दानि) इसमें ब्रह्मशब्द है सो एक और दो और बहुत भी ब्राह्मणोंपर जाति वाचकता से साधारण आरूढ है तिससे जो एक ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्त है वही दूसरे और तीसरे में भी समुभाजाय• तहां एक ब्राह्मणके मारनेनिमित्तसे एक प्रायश्चित्तका अनुष्ठान होनेमें यह कियोग्या यह नहीं ऐसी तकरारपर यह कहिकेको सामर्थ किसीकी नहीं है कि• तरह तरहके देश जुदे जुदे प्रभावोंवाले काल अनेक लक्षणोंवाले हत्याके कर्ता लोग नानाभाति उनके किये कर्मोंकी युक्तियां जिनमें विलसणा चिह्नोंसे जुदे अनेक दोष फिर इच्छा या बिना इच्छासे मारनेका अनुबंध यह उपरालू है तहां यह विशेष्य कारणा सबसे जुदा है कि इन सबके जुदे भेदों से निर्णाय किये बिना या इस अपेक्षा से कि भेद के बिनाही उन सबका विशेष्य कोई चिह्न हाय आजाय सो नहीं हाय आता है तिस कारणासे (तंवानुष्ठानहीसे अर्थात् एकही बार बारहवर्गकी व्रतचर्याकरानेसे पापनाश हो जानेवाले कार्य की सिद्धि दहरानी ठोक है• तैसा इसपर यह दृष्टांत है कि तंत्र रूपी (अर्थात् दोषातीनोंके एकहीबार) अनुष्ठानोंसे प्रयाज आदि यज्ञोंके द्वारा अग्नि संवधी आदि देवताओंमें तंत्ररूपहीसे अनेकोंके उपकारवाले कार्योंकी सिद्धि होती है—और ऐसा न कहिया चाहिये कि दो तीन ब्राह्मणों के वधमें पाप के गरुआपन से गौतमका वचन लेना होगा यथाह गौतमः (सन्निगुत्तियाण्ड्यालघुनिलयानि) अर्थात् बड़े पापमें बड़े प्रायश्चित्त और छोटेमें छोटे इस वचनसे द्विवार तिबारा हो जुदे प्रायश्चित्तों का करना ठोक होगा इसहेतुसे कि (विलसणा) अर्थात् (जिनके लक्षण आपस में सकसे नहीं ऐसे दोकार्योंकी सिद्धि एकसाथही कभी नहीं होती—ऐसा किमलिये न कहिना चाहिये कि यह गौतमका वचनहीं (आहृतिविवायक) फेर करवानेवाला नहीं अर्थात् दो तीनबार जुदे प्रायश्चित्त करानेकी आज्ञा इसमें नहीं है• किन्तु एक समयपर एकसाथ बड़ेहुये बड़े छोटे पापोंकी व्यवस्था दर्शानेवाला ठोक है और यह भी न कहिया चाहिये कि दूसरा ब्राह्मण मारने से मिलकर पहिले पापमें वडापन होवता है सो नहीं क्योंकि इसवातका प्रसारा कहीं नहीं है• बल्कि जो मनु और देवलका एकही यद्वचन है (विवेः प्रथमिकादस्माद्वितीये द्विगुणां भवेत् ततोये द्विगुणां प्रोक्तं चतुर्येनास्ति निष्कृतिः) कि इसपहिले अपराधपर कहे विधानसे दूसरेमें दूना होय

तिसके अनुसार उनके प्रायश्चित्तोंकी बड़ाई छोटाई कल्पित करनी चाहिये अथवा जहाँ सहायता की विशेष तौल नाप न होसके तहाँ यह सामान्य एकनियम है सो लेना चाहिये कि अनुग्राहक पुरुष हत्यारेके प्रायश्चित्तसे चौथाई कम करे तिससे जहाँ हत्यारेको बारहवर्ष नियतहों तहाँ उसको नौवर्ष की व्रतचर्या करनी चाहिये और प्रयोजक पुरुष हत्यारेसे आधा कमकरे तिससे उसको बारह वर्षके नियम साथ छेवर्षकी व्रतचर्या करनी चाहिये और अनुमन्ता पुरुष की अठाई पाद कम करके डेढ़पाद करना चाहिये तिससे उसको बारह वर्षके स्थलपर॥ साडेचार वर्षकी व्रत चर्या करवाइ जाय और निमित्ती पुरुष हत्यारेसे चौथाई तीनवर्ष की व्रतचर्याकरे= अतएवसुमन्तुः—तिरस्कृतोयदविप्रोहत्वाऽऽत्मानमृतोयदि निर्गुणःसाहस्रात्मकोवाद्गृहसेधादिकारणात् वैचार्यिकव्रतं कुर्यात्प्रतिलोमां सरस्वतीं गच्छेद्वापि विशुद्ध्यर्थं तथा पश्येति निश्चितम्=अथर्था निर्गुणो विप्रो हत्यार्थं निर्गुणोपरि क्रोवाद् वै प्रियते यस्तु नि निर्मित्तं भर्त्सितः वरुणव्रतं कुर्याच्चः कच्छं विशुद्ध्यर्थं गुणवद्वा ह्यग्रास्तु न्यतो नदी वा विशुद्ध्यति तदपि सुमन्तुः) के श्रमयुनखादीनां क्त्वा तु वपनं वने ब्रह्मचर्यं चरन् विप्रो वरुणो कनशुद्ध्यति=अथदि—सुमंतुने निमित्तीके भी कई भेद कियेहैं कि—जब कोई गुणवाच ब्राह्मण अपमान किया हुआ देहको विनाशिके जिसके निमित्तसे मरजाय या निर्गुण ब्राह्मण घर खेत आदि छिन जानेसे साहस करि क्रोधसे जिस किसी के निमित्त पर मरजाय सो निमित्ती पुरुष तीन वर्ष का व्रत करे या इस पापकी शुद्धिके लिये सरस्वती नदीकी धाराके समुख उतने वर्ष यात्रा करे यह निश्चित हुआ=यद्वा=अर्थात् निर्गुण ब्राह्मण हो सो अत्यन्त निर्गुणी किसी मनुष्यके ऊपर क्रोधसे मजाय जो घर खेत आदि किसी भगड़वाले निमित्त के विनाही छुड़की ताड़ना आदिसे मताया वा लज्जित किया गया तो जिसके ऊपर यह मजाय सो पुरुष अपने पापकी शुद्धिके लिये तीनवर्षतक कच्छनामक व्रतकरे तो शुद्ध होय(कथाचित्तगुणवाच ब्राह्मणके ऊपर किसी निमित्तसे निर्गुण ब्राह्मण अपघात करे तो निमित्ती गुणवान् ब्राह्मण एकहीवर्षमें चूहाइत्या का व्रत करिके शुद्ध होजाता है यह भेदही सुमंतुने कहाकि) विद्वान् क्रियान्नां विप्र एकवर्षसे पवित्र होताहै वाल दाडो मूख नख आदिका मुंडन करायके वनमें ब्रह्मचर्य से आचरणा करतेहुये ॥ ० ॥ जैसा यह अनुग्राहक प्रयोजक आदिकों का क्रम कहागया इसी मार्गसे यथायोग्य उनकी भी प्रायश्चित्त कल्पना कर्नी चाहिये जोकि इन प्रधान अनुग्राहक प्रयोजक आदिके साथी अनुग्राहक प्रयोजक आदिकेहों० इस व्यवस्थाका मूल बड़ी आपस्तम्बका वचन है जो २२७वाँ

सत्ताइस की अधिकोक्ति में द्यौरेवार अर्थोंसे लिखिचुके केवल मूलमात्र यहाँपर भी लिखे देते हैं कि (प्रयोजयिताऽनुमंताकर्त्तार्चात् स्वर्गनरकफलैर्युक्तमनुभागीनो यो भूयःश्रमतेतस्मिन्फलविशेषः) ॥ ० ॥ तथैव प्रोत्साहक उत्साह दिलाने वाले आदि कुछ औरभी अपराधी होते हैं तिनकी भी दंड और प्रायश्चित्त दोनों विधि कल्पना करनी चाहिये—तदाह पैदीनसिः—हंतामंतोपदेष्टा च तथासंप्रतिपादकः प्रोत्साहकः सहायकः चतवसानुदेशकः आययः शस्त्रदाता च भक्तदाता विकर्मिणां उपेक्षकः शक्तिमां प्रवेद्योयवक्ताऽनुमोदकः अकार्यकारिणास्तेयां प्रायश्चित्तप्रकल्पयेत् यथाशक्त्यनुत्पन्नचदराडं चैयां प्रकल्पयेत्—अर्थात्—हंता•मंता•उपदेष्टा•संप्रतिपादक(औरकुकर्मियोंका) प्रोत्साहक•सहायक•सागानुदेशक•आययदाता•शस्त्रदाता•भक्तदाता•उपेक्षक जो शक्तिमात्र हो•दोयवक्ता•अनुमोदक•ये सब अकार्यकारी होते हैं तिनका जुदाजुदा प्रायश्चित्त निरूपणा करें और उनकी यथाशक्तिके अनुरूप तथा कर्मोंकी सुंता लयुता के अनुरूप उनकी सजा भी निरूपणा करें—यहाँ—पैदीनसि के बताये अपराधियोंकी जो नाम संज्ञा लिखी गई तिसके अर्थ समझने चाहिये कि—सबसे प्रधान हंता मारनेवाला दहिरता है—और मंता अनुमंता कोभी कहते हैं कि जिसके दो भेद पहिले २२७ वीं सत्ताइस की अधिकोक्ति में लिखिचुके तथापि अर्थांतर से इसमें कुछ विशेषता है कि वह अनुमंता प्रवृत्त हुये को प्रवृत्ति करता है सोभी अपने या पराये मतलबकीलिये किंतु यह मंतापुरुष बिना प्रवृत्तकोभी प्रवृत्तकराता है सोभी उसे सासे किजिस में न अपना मतलब न अपने किसीमिषकाहो(इसका यहदृष्टांत है कि दो रक्तदुर्जनोंने आकर ऐसाकहा कि आपकेसमीपही अहुक देवदत्तका निवास है इसलोग उसके साथ ऐसा उपद्रव किया चाहते हैं जोआप इसमें दखलदेकर हरज न करें अर्थात् निपट कुछ दखल न करें बल्कि गुलगफाछा के होनेपरभी चुपचाप होके अज्ञानवनि जायें तो हमारा यह काम अच्छा बनिजाय बसऐसी प्रार्थना की जिससे सानिलिया बही मंता मानने वाला कहाया सो अनुमंता से कुछ विशेष अपराधी जानों अथोकि धर्म संध्या के अनुसार इसको यह चाहिये या कि प्रार्थनाकरने वालोंकी नियेधकरता और साफ कहदेता कि मैं ऐसे अनर्थ को नहीं मानि सक्ता बल्कि उनकोकिसी प्रकार भय सुनाकर हिम्मात तोड देता और समयों के सम्मुख उसका प्रकाशभी करदेता कि ऐसा उपद्रव मेरे समीप न होने पावे तो कदापि न होसक्ता—उपदेष्टाके लक्षणा २२७ की अधिकोक्ति में लिखिचुके हैं कि वह तीन भांति के प्रयोगकों में एक उपाय का उपदेश बताने वाला होता है—संप्रतिपादक उसका नाम है जो मारने

वाले को जल्दो उपाय सामग्री आदिका अवसर और ठिकाना तैयार करै जैसे जहरमिली मिठाई बनाकर लावेना या जिसको मारना चाहते हैं तिसको किसी वहाने से बुलाकर मौजूद करवेना आदि सिद्धि के अनेक ढंग होते हैं—प्रोत्साहक तर्गोबदेनेवाला कहाता जो हंता की अतिशय उत्साह दिलाकर बुरा करने पर उताव्र करै इसको प्रयोजिता भी कहते हैं—सहायक जो साथ रहकर सहायता करै इसीको २२७वाली अधिकोक्तिमें अनुग्राहक इस नामसे लिखि चुके हैं ठीक व्योम उषी जगह देखो—मार्गानुदेशक जो मारने वालों को साथलेकर मार्ग बतानै अर्थात् जिसको लूटा मारा चाहते हैं तिसके ठिकाने तक पहुँचावे—आश्रयदाता जो घातियों को उनकी घात ठीक लगाने के लिये अपने पास ठिकावे—शस्त्रदाता जो तलवार छुरी या फांसी जहर आदि सौत के औजार घातियों को देवे—भक्तदाता जो विकर्मियां घातियों को भोजन देकर उनको मजबूत करै—उपेक्षक जो आप शक्तिभाव बलवावहोकर ठीक अवसरपर पुकार बुनिके उपेक्षा करके चुपकारहिजाय उद्वहोते देखै बासुने परधावा करिके दुष्टों को मारै भगावे नहीं—दोषवक्ता जो घातियों को भेदबतावे कि जिस को मारना चाहते हो वह अमुक समयअमुक ठिकानेवेँढताहै तहां अमुकहोशियारी आदिदोषके प्रभावसे तुम्हारा काम न चलैगारतिको या दिनमें अमुकठिकानेबहनशापोके सोताहै तभी तुम्हारा कार्य बनेगा इत्यादि याइसरीति से दोषों को सुनावै कि उसके बेरा या भाई से इन दिनों पूरा वैरहै जो तुम उनको अपनी राहमें मिलाती तो बड़ो सुगमता से कार्य बनि सक्ताहै इत्यादिकोईसा दोषभेद बतावे सो दोषवक्ताहोता है—अनुमोदक जो घाती का अनुमोदन इस प्रकार से करै कि जो काम तुम्हें करता बिचारा वह मने भी पसंद किया अवश्यकरौ—येसभीविकर्मी अकाजकरनेवालेहोतेहैं यथा योग्य सबके लियेदांड और प्रायश्चित्तका निरूपणकरैयहपैटीनसि का कथन हो॥०॥ इन्हीं पूर्वोक्त नियमोंके अनुसार जहां बालक बूढ़े आदि अपराधी यदि साक्षात्कार आपही कर्ता बने हों तोभी उनकी मूर्चित प्रायश्चित्त से आधा करने की आज्ञा देनी चाहिये—तदोहर्गिराः=अशीतिर्यस्यवर्गसि वालोवाद्यनयोदशः प्रायश्चित्ताधर्मर्हति स्त्रियोरोगिराएवच=तथा१२वर्चनंतरन्तु=तथा१२वर्गद्वादशाद्वर्गदशो तेस्त्वर्धमेवया अर्धमेवभवेत्पुंसां तुरीयंतयोर्यिताम्=अर्थात्—अंगिरा ने कहा है कि जिसकी अवस्था अस्मोवयं पूरी होचुकी सो बूढ़ा समझना और बालक सोद्वयधे कमहो तिसको समझना यद्वा विकल्पसे बारह वर्गके भीतर भी बाल अवस्था होती है ये लोग आधा प्रायश्चित्त करने के योग्यहैं और स्त्रियां जो पूरी अवस्था की हैं

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

३०१

बालक बूढ़ी नहीं सोभी अर्ध प्रायश्चित्तके योग्यहैं तथैव रोगी पुरुष भी बूढ़ेके समान आधा करने के अधिकारी होतेहैं—ऐसाही दूसरा यह वचन है कि—तद्वत् बारह वर्षके भीतर और अस्सी वर्षसे ऊपरभी पुरुषोंको आधा प्रायश्चित्तहोय तहां स्त्रियों को चौथाई करवाया जाय क्योंकि पहिले वचनमें स्त्रीपनसे आधा कहाथा अब यहां उनके वृद्धापन और बालपनसे आधेका आधा रहिगया (बालकपनके दोभेद इस हेतु से कहेगए कि सोरह वर्ष पूरे होनेपर वृद्धस्थी के व्यवहारभार सोंपे जातेहैं तबसे पूरा पुरुष गिनाजाता है सोरहके भीतर बाल अवस्था मानी जातीहै क्योंकि संसारी व्यवहारोंकी निपुणता नहीं आतीहै—परन्तु विरक्ता सोरहके भीतर भी डीलडोल और बुद्धि की चतुरतासे अति निपुण होजाता और व्यापार आदिके धंधे साधन करता है तिससे ऐसा सोरहके भीतरभी पूरे प्रायश्चित्तके योग्य माना जासक्ताहै तिससे यह बारहवर्ष के भीतर बालक मानाजाता है और बारहके भीतरही आधे प्रायश्चित्तकी योग्यता इसकी रहित है किन्तु बारहवर्ष पूरे होनेसे ऊपर यह पूरे प्रायश्चित्तका भागीहोता है)—और भी यह भेदहै कि—बारहवर्ष के पहिले जिसका उपनयन कर्म जनेऊ आदि न हुआहो तिसके लिये आधेका आधा सिर्फ चौथाई व्रतचर्या प्रायश्चित्त की चाहिये—तदाह षष्ठ्याः—स्त्रीशामर्षप्रदातव्यं वृद्धानांरोगिण्यांतथा पाबोबालोयुवातन्यः स वर्षापेक्षव्यवधिः—अर्थात्—निरोगिनि पूरी स्त्रियों को आधा प्रायश्चित्त देना कहा तथा बूढ़े पुरुष औ रोगी पुरुषों को आधा कहा बालकों को चौथाई देना चाहिये सभी पापोंमें यह विधि जानो (यहाँ चौथाईकी अपेक्षामें बालक उन्हींकी समुभन्ना जितका संस्कार न हुआहो क्योंकि पहिले वचनों में आधा देना कहि चुके हैं तहां उपनीत बालक समुभन्ना होगा) इस प्रश्नकी अपेक्षामें कि अज्ञान बालकोंसे क्योंकर प्रायश्चित्तकी साधना होगी यह उत्तरहै कि अगिला वचन देखो—यदाहशंखः—ऊर्नैकादशवर्षस्यपंचवर्षात्परास्यच प्रायश्चित्तचरेद्वातापितावाऽन्यःसुहृज्जनः (इत्येवं प्रतिपाद्यप्रचालुकं) अतोबालतस्यास्य नापराधो न पातकस्य राजदण्डो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तनविद्यते इति (तदपि संपूर्ण प्रायश्चित्ताभाव प्रतिपादनपरं न पुनः सर्वं तस्मात् तदभाव प्रतिपादनपरं इति नितःक्षणाकारः) अर्थात्—शंखने कहाहै कि पांच वर्षसे ऊपरका बालक जो ग्यारह वर्षके भीतर अवस्थामें हो तिसके किमी अपराध के होनेमें प्रायश्चित्त उसका भाई या पिता या कोई और इतुहो सो करे (यहकहि कर पीछे यह भी कहा कि) अतः इस पांच वर्षसे भी नीचे अति बालक जो कोईसा पापकरै तो उसका न अपराध कोईजुर्महै न पातक (उसकी जातिसे गिराना) है न

उसके लिये राजदंड है न प्रायश्चित्त है (इसपर मिताक्षराकारने यह भी लिखा है कि यह नकारोंवाला शंखका वचन है सो भी संपूर्ण प्रायश्चित्तका अभाव दर्शानेवाला वेशक है परन्तु यह नहीं कि विल्कुलही प्रायश्चित्त न कियाजाय क्योंकि) शास्त्र में एक यह वचन है कि ब्राह्मण कहीं न माराजाय जहां मारेजाने के समय पुकार हो उसको सुनि कर भी सबलोग दौड़िके वचावें किन्तु जहाँतक पुकार की आवाज पहुँचतीहो उस दृष्टिके भीतर जो कोई कहीं मौजूदहो यह उजर नहीं कर सक्ते हैं कि हम इतनी दूरथे या हम अमुक आयुम संन्यासी आदि कोई थे हमको कुछ सम्बन्ध न था दूसरा यह वचन है कि तिससे ब्राह्मण सबी और वैश्य भी मुरा न पीवें इत्यादि ऐसे और भी वचन हैं इनमें अवस्था की विशेषता लिये बिनाही जातिमात्रके अधिकार प्रकट किये हैं तिससे उस पाँचवर्गसे नीची अवस्थाके अपराधी वालोंके बदले प्रायश्चित्त उनके पिता भ्राता आदि को करना चाहिये कि जिससे पापों के द्वारा उनके प्रारब्ध न बिगड़ने पावें (किन्तु पिता या भ्राताको अपराधी का प्रतिनिधि होना कहा तिसका यह कारण है वेद और धर्मशास्त्र में पिता का अधिकार है कि पुत्रोंको जन्म देकर पाले फिर संस्कार करे वेद विद्यामें चतुर बनावें और सदाकेलिये उनकी जीविका वृत्ति भी कायम करदेवें जहां पिता नहो तहाँ जेठे भाईको यह सब करनेका अधिकार होता है क्योंकि पिताके पदपर जेठा पुत्र स्थापित होता है जहाँ जेठा भाईभी न हो तहाँ बालकों की रक्षाके अधिकारी उनके कुटुंब या नाते रिश्तेके लोग रक्षक होते हैं कि जिनको तन वन आदि सर्वथा रक्षा करनेका अधिकार न्याय मार्गसे पहुँचता हो) जहाँपर प्रायश्चित्तों का सन्निपात आनि परें तहाँ का निर्वाह आगे लिखते हैं ॥०॥ सन्निपातका यह उदाहरण है कि जैसे किसी पुरुषने एकजगह एक ब्राह्मण मारा तिसका पूरा प्रायश्चित्त उसको लगा और दूसरीजगह वही अपराधी किसी ब्रह्मघाती का प्रयोजक आदि सहायक बना तिस अपराधका पूरा प्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् आधा तिहाई चौथाई जो कुछ विचार से उसके जिम्मे दहिरे सो ऊना प्रायश्चित्त भी करना चाहिये तो यह बड़े छोटे प्रायश्चित्तों का सन्निपात कहाता है तहाँ बारह वर्ग आदि का जो बड़ा प्रायश्चित्त है तिसके बीच आइ परने वाला प्रयोज्यत्व आदिसे सहायता संबन्धी जो छोटा प्रायश्चित्तहो सो बिनाकिये भी प्रसंग नामक मर्यादासे कियेके समान माना जाता है अर्थात् एकही अनुष्ठान से दोनों कार्यकी सिद्धि होजाती है (धर्मशास्त्रमें प्रसंगमर्यादा इसीका नाम है कि एक प्रधान कार्य करनेसे उसका प्रासंगिक भी दूसरे पुरुषका सम्बन्धी कार्य बिना किये

भी सिद्ध हुआ माना जाय) परन्तु इससे यह शंका न करनी चाहिये कि जब यही निर्वाह की मर्यादा दहिरी तो इसके प्रभाव से सामान्य विशेष के समुभे बिना भी छोटे कल्पका अनुष्ठान करनेसे बड़ेभी प्रायश्चित्तकी सिद्धि बिना किये होजायाकरै • क्योंकि इसी शंका की अपेक्षा से इस निर्वाह के और भी तात्पर्य पार जाते हैं कि प्रथम तो जहाँ देशकाल दोनोंके कुछ अन्तरसे बड़े छोटे दो प्रायश्चित्त लगेहोगे तहाँ दोनोंही भिन्न भिन्न अनुष्ठान कराए जायँगे तिससे यह निर्वाह की मर्यादा केवल उसी जगहपर समुभानी चाहिये कि जहाँ एक साथही दोप्रायश्चित्त किसी पर आच्छाद हुयेहों अर्थात् अति स्वल्पकालके बीचमें कुछ आगे पीछे आच्छाद हुयेहों तहाँभी उन के निर्वाहका विचार आगे पीछे लगाने के अनुसार नहीं किया जासक्ता है कि जो पहिले छोटा लगाहो तो पिछला बड़ा भी उसके करनेसे सिद्धहुआ मानाजाय किन्तु यही नियम सिद्ध होताहै कि बड़े प्रायश्चित्तके करनेसे छोटा प्रायश्चित्त प्रसंगमात्र से सिद्धहुआ माना जायगा चहें कोईसा पहिले या कोईसा पीछे उत्पन्न हुआहो कुछ इसपर नियम नहीं है—और—यह भी तर्क न करनी चाहिये कि चैवके वचन करने से उपजे पापको विनाशको अनुष्ठान किये हुये से कैसे उस पापकी निवृत्ति होगी जो विष्णुस्मिन्ना मरवाना चाहने से उत्पन्नहो—क्योंकि चैव आदिकी अपेक्षा यहाँनहीं है—इससे यह समुभना चाहिये कि जैसे कामनाके नियोगोंकी सिद्धि के लिये और स्वर्ग प्राप्त होनेके लिये भी अनुष्ठान किये आग्नेय आदि कर्मों से नित्य नियोग भी सिद्ध होजातेहैं तैसे यहाँ भी बड़े प्रायश्चित्तमें छोटे प्रायश्चित्तका करना सिद्धहोता है ॥ अब इससे आगे दो एक पंचायती व्यवस्था कही जायँगी क्योंकि यहाँ तक तो मनु याज्ञवल्क्य आदिके वचनों में विरोध कुछ नहीं था परन्तु अगिरा आदि कुछ श्रद्धा-योगियों के से से वचन आगे आवँगे कि जिनसे परस्परभी कुछ विरोध देखनेमें आता है और अवतक जो व्यवस्था सिद्ध होचुकी तिससेभी निरास्ता मार्ग उनका प्रतीतहोता है उन सबकी इसीव्यवस्थाके अनुकूल सिद्ध करनेकेलिये सब श्रयियोंकी पंचायती तोड़ सरोइसे व्यवस्था कही जायगी कि जिसमें सबकी रियायत कुछ कुछ बनो गेहो॥ पंचायती अनुकल्प—ये अनुकल्प उनके लिये कहे जायँगे कि जो कोई प्रा-यश्चित्त की साधना में अशक्त हों परच धनसे कुछ सपन्न हों—तहाँ—एक अगिरा का वचन है (गवांसहस्रविविधत्पात्रेभ्यःप्रतिपादयेत् व्रह्महाविप्रनुच्येतसर्वपापेभ्य एवच) अर्थात्—एक सहस्र गौँँ जुदे योग्यपापों का विविध से समर्पण करै तो ब्रह्म घाती ब्रह्महत्या से और सवतरह के पापों से छूटि जाय—सो यह सहस्र गौँँ का

दान उस दशापर आरुह है कि जहां गुरावान् ब्राह्मण यज्ञमें बैठा हुआ माराजाय
 जैसा २५२ दोसौ बावन प्रलोकमें योगीश्वर कहेंगे (द्विश्रांसवनस्थे तु ब्राह्मणो ब्रतमादि
 शेत) कि बारह वर्ग से दूना चौबीस वर्गका वृत्त उसको आदेश करें जिसने यज्ञस्थ
 ब्राह्मण मारा होय) तहां जो चौबीस वर्गकी वृत्तचर्या कर सकनेमें अममर्थ हो तिसको
 पूर्वाक्त हजार गऊका दानकरना सूचित हुआ है क्योंकि वह प्रायश्चित्त बहुत बड़ा
 है—अन्यथा जहां सिर्फ बारह वर्ग का वृत्तप्रारंभ किये पीछे कभी पूरा करनेमें अस-
 मर्थ पाई जाय तहां सहस्र गऊदान करना नहीं सूचित है क्योंकि उसके लिये केवल
 ३६० तीनसौ साठ गोदान की योग्यता पाई जाती है क्योंकि वहां बारहवर्ग की
 वृत्तचर्या में बारह बारह दिनके अनुष्ठान वाले अनेक प्राजापत्योंके फल सिद्ध होते हैं
 तिनकी सब गिनती जोड़नेसे ३६० तीनसौ साठ प्राजापत्य होते हैं तिनकी साधनाश्र-
 शाक्त में न हो सकने से तीनसौ साठ गऊदानकी योग्यता पाई जाती है (प्राजापत्य
 क्रियाश्रक्तौ भिन्नं दद्याद्द्विचक्षणः गवामभावे दातव्यं तन्मत्स्यं वानसं शयः) यह भी एक
 नियम है कि जिसकी किसी हेतुसे प्राजापत्य करनेकी आवश्यकता ठहरी हो और
 वह करने में अशक्त हो तहां विवेकी पुरुष दूध और बच्चा सहित गऊदान करे तो
 प्राजापत्य करने का फल पावे जो गऊ ना मौजूब हों तो निःशंदेह उनका मूत्र देना
 चाहिये—इस न्याय के अनुसार जो प्रत्येक प्राजापत्यके बदले एक गोदान क्रियाज्ञ
 तो तीनसौ साठ प्राजापत्यों के प्रतिस्थान तीनसौ साठ गऊ चाहिये पर एक हजार
 गऊ देना इसमें नहीं चाहिये क्योंकि न्याय वही कहाता है जो जिसके योग्यकाम
 या वस्तु हो उसीसे योग उसका किया जाय (यह तर्कना इसमें श्रेय रही कि प्राजा-
 पत्य के विधान में इतना विशेष नियम है कि बारह दिन में पूरा करिके पीछे तीन
 दिन उपवास भी होता है और यहां जो न्याय अभी लिख चुके तिसमें बारह वर्गके
 सभी दिन द्विषाण में जोड़े गये उपवासों के निमित्त से तीन वर्षों और चाहिये तब
 तीनसौ साठ प्राजापत्य पूरे हों सो किसलिये अग्रे गिनती किये गये—इसका यह
 समाधान है कि प्रायश्चित्त पुरुष को वनमें रहना वनफल खाना जटा रखना
 आदि अनेक भाँति के तपकरने होते हैं तिससे तीन दिनके उपवास बिनाभी उसका
 प्राजापत्य दूसरा नहीं ठहरता किन्तु पूरेके तुल्यमाना जाता क्योंकि इसके निरंतर
 अनेक प्राजापत्यके समान व्रत होते हैं वह तीनदिन अधिकबाला नियम उसके लिये
 नमस्कृत जो सिर्फ एकही दो प्राजापत्यकरे ॥ ० ॥ और जो शंखने बारहवर्ग प्राय-
 चित्त की वृत्तचर्या पूरी करने परभी सहस्र गोदान करने कहे तिसका भी निर्णय

समभक्त लेना उचित है—यथाह शंखः=पूर्ववदमत्तिपूर्वचतुर्वर्गोयुविप्रप्रभार्य द्वादश
वत्सराश्च यदधीदसार्धसंवत्सरंचवतान्यादिशेत्तेयामते गोसहस्रं तदर्थतस्यार्धं तदर्थद
द्यात्सर्वेषां वर्णाणां मानुषैर्योरोति=अर्थात्—पहिले नियम के समान अज्ञानतासे हो-
राये पापों मध्ये चारों वर्गोंमें समझना कि ब्राह्मण को मारिके बारह वर्षों क्षत्री को
मारिके छः वर्षों वैश्य को मारिके तीन वर्षों शूद्रको मारिके डेढवर्षकेव्रत आदेश करें
तिनकेसमान होनेके अंतमें उसीवर्गा क्रमसे हजार गऊतिसकी आधी पांचसौ तिसकी
आधी अर्द्धाई सौ तिसकीआधी सवाउसौ गऊदान करें—सो यह व्रत और गोदानदोनों
कर्मकी आज्ञाआचार्य कुलप्रधान आदि उत्तमपुरुषोंको मारनेमध्ये समझनीकीर्णकि
दो बात मिलके बहुत बड़ा कर्म ठहिरा तिससे उत्तम पुरुषों का विषय समझना—
इस वचन में जो प्रायश्चित्त के बड़प्पन से उत्तम पुरुष को मारने मध्ये पापका बड़ा
पन प्रकटकियायातिसके प्रभाराकी अपेक्षापरचन और हिंसाका फलपुरुषहीकी
उत्तमता से दक्षनेभी दर्शाया है तिसकी यहां लिखते हैं—यथाह दसः=समभक्ताह्यरा
दानं द्विगुणा ब्राह्मणाव्रुव आचार्यशतसाहस्रंसोदर्येदत्तमसयत्—समद्विगुणासाहस्रमानं
त्यंचयथाक्रमम् दानफलविशेषः स्याद्विंशत्यांतहदेवहि=अर्थात्—दक्षने कहा है कि
अब्राह्मणकी देनेसे समानफल और ब्राह्मणाव्रुव की देनेसे दूनाफल और आचार्य ब्रा-
ह्मणकी देनेसे सैंकड़ों हजारफल होतेहैं और सहोदर भाईकी देनेमें अक्षयफलअर्थात्
जिसका अंतनहीं होता ऐसा बड़ा फल मिलता है इसी वचनकी व्याख्या आगे अ-
र्थान्तर से फिर होती क्योंकि दो अर्थ इसमें होते हैं) समान और दूना और हजारों
और अनंत ये चारों भौतिक फल यथा क्रमसे दानमें विशेषता रखते हैं तैसेही यथा
क्रमसे हिंसा करने में भी विशेषता रखते हैं कि जैसे उत्तमको मारा होगा तसा अ-
धिक पाप हीगा उसीकी अनुकूल प्रायश्चित्त भी अधिक ठहिराया जाता है (इस
वचनमें अब्राह्मण और ब्राह्मणाव्रुव जो कहेगये—तहां छः भौतिक अब्राह्मण कहाते
हैं—तदाह शातातपः=अब्राह्मणास्तुयत्प्रोक्ता ऋषिराजात्त्ववेदिना अद्यौराजभृतस्तेयां
द्वितीयः क्रयविक्रयो तृतीयोबहुयाज्यः स्याच्चतुर्थोग्रासयाजकः पंचमस्तुभृतस्तेयांग्रास-
स्यनगरस्यच अनादित्यांतुयः पर्वोसादित्यांचैव षष्ठिचमास नोपासीतद्विजः सव्यांसयथो
१ब्राह्मणः स्मृतः=अर्थात्—तत्त्व ज्ञानने वाले ऋषियों ने छः अब्राह्मण कहे तिनमें प-
हिला तो राज का पलाऊ भूतक दूसरा क्रय विक्रय करने वाला तीसरा बहु याजक
जो बहुत से समूहों में पाधरई करें चौथा ग्रामयाजक जो गावमें सब जातियों की
पुरोहिताई रखे पांचवां जोग्रामया नगरमें मजूरीकरे छठा वहकि यद्यपि इनकामों

को नकरताहो परन्तु सौम्य सवेरे संध्या कर्मकी उपासना न रखताहो येकहअत्राह-
 राकहातेहैं और ब्राह्मण ब्रव उसका नाम है जो ब्राह्मणत्व के संस्कार चिह्न आदि
 सब राखता हो तथापि नित्य नैमित्तिक धर्मोंका आचार नकरताहो और आचार्य
 अनेक तरहके होते हैं जैसे मंत्रोंकी व्याख्या सहित श्रुति स्मृति का पढ़ाने वाला
 अथवा किसी उत्तम संप्रदाय का आचारी जो अन्यलोगों को भी आचार के मार्ग
 पर चलावै इत्यादि-औरभी-आपस्तंबने बारह वर्ग की व्रतचर्या सामान्य कहिकार
 पोछे एक विशेष वचन कहाहै-यथा-अस्मिन्नेववियये-गुरुं हत्वा श्रोत्रयं वा सतदेव
 व्रतमुत्तमादुच्छसाचरेत् (तथा यावज्जीवमावर्त्यमानेव्रते यथा वैश्वदेव चातुर्ण्यं वा
 सम्भाव्यते तदा तत्रासमर्थस्य बहुधनस्यायं दान तपसोः समुच्चयो दृष्टव्य इति मिता-
 क्षराकारः) अर्थात्-आपस्तंब ने यह कहा कि इसी बारहवर्ग की अपेक्षा में गुरुको
 मारि के या श्रोत्रिय को मारिके यही पहिले दर्शाया हुआ व्रत उनम आसापर्यन्त
 आचरै अर्थात् जब तक जीवन की आशा बनी रहे तब तक करे केवल बारहवर्ग से
 प्रयोजन नहीं है परंतु सतदेव यही व्रत बारह वर्ग वाला जो इशारा किया तिसके
 बारहवर्गों काभी तात्पर्य कुछलेना चाहिये-इसी गूढहेतुसे मिताक्षराकार ने व्यवस्था
 इसपरलिखीहै कि(तहां जबतक जीवै तब तक बारह बारह वर्गों की कई आठतियां
 करतेहुये आयुको चित्तवै इसी हिसाब के अनुसार जहां सेमा संभव देखि परै कि
 प्रायश्चित्ती की अवस्थाइतनी श्रेय है तिसमें दो या तीन या चार आठतिहोसकेंगी
 इसकादृष्टांत जैसे अनुमानहै कि छत्तीसवर्ष अभीजीवैगा तों बारह तिया छत्तीस, इसमें
 तीन आठति होसकेंगी तहां प्रायश्चित्तो एकही दो आठति परी करिके असमर्थ
 होजाय और बहुत धनवानहो तिसके लिये यह दान और तपस्या दोनों का समुच्चय
 समुभ्त्ता चाहिये कि एक दो आठति जो करिगुजारी सो तपस्यां दहिरी और उसकी
 श्रेय अवस्थाके अनुमानसेदो या तीन आठति जो करते योग्य वाकी रहैं तिनके पलटे
 में दान करदेना चाहिये पावै-यह सब तात्पर्य आपस्तंब और पूर्वोक्त शंख तथा दक्ष
 को इन तीनों वचनके मोलानसे दहिरी-क्योंकि वर्तमान आपस्तंबके वचनमें दानका
 चर्चा नहींहै अर्थात् ऊपरके दो श्रुतियोंसे यह तात्पर्य लियागया कि शंखने ब्रह्म-
 हत्यापर एक हजार गऊ दान करना कहा और दक्षने यह भेद किया कि अत्राहणा
 मारने को ब्रह्महत्या में समान दान करना चाहिये कि जो हजार गऊ शंख ने बताई
 और ब्राह्मण ब्रूके मारनेमें दूना दान दोहजार गऊका और आचार्यके मारने में सी
 हजारकी संख्यासे उस मरे हुयेको सहोदर भाईको दियाजाय तो यह दान असत्य हो

जाता है•सो यह इतना बड़ादान केवल इसी दशा पर ठहिया गया है कि जहां प्रा-
यश्चित्ती पूरा धनवानहो और आपेस्तव के वचनानुसार (जनमकेही केसमान) जन्म
भरेका यावज्जीवन प्रायश्चित्त ठहरे जिसको वह पूरा पूरा न कर सक्ताहो तब यह
विचार किया जाय—इस व्यवस्थाको रियायतसे पूर्वाक्त दसका वचन यहाँ दुवारा
अर्थान्तर से दर्शातेहैं कि (समसब्राह्मणोद्यनंदिपुणं ब्राह्मणान्नु वे आचार्ये शतसाहससो
दर्थे दत्तमक्षयं) इसका अर्थ अभी इसी जगह लिख चुकेहैं कि ब्राह्मणों की हत्या में
समदान करना कि जितना शंखने कहा हो और ब्राह्मण व्रुवकी हत्यामें उससे दूना
दान करना और आचार्य की हत्या में सौहजार की सख्यावाला दान जो उन्हीं को
सगे भाइयोंको दियाजाय तो असयफल करताहै (यह सदेह न करना कि जो अर्थ
इसका पहिले लिख चुके सो ठीकया या यह ठीकहै क्योंकि दोनों सत्यार्थ हैं पर
वहाँ उसी अर्थसे प्रयोजन था यहाँ इसीसे प्रयोजन है) ॥०॥ व्यवस्था पंचायत—
व्यवस्था की पंचायत वाद विवाद से इस लिये यहाँ लिखते हैं कि समंतु और
पराशर आदि अनेक मुनीश्वरों के वचन जो कुछ पहिले लिख चुके और बहुधा
दोसो पचास २५० की अधिकोक्ति तक देखते रहिना लिखे जायेंगे तिनमें बारह
वर्ष की अवधि छोड़ि के औही और नियम पायेजाते हैं • तिनकी व्यवस्था
वियथ भेदसे कल्पना करी जायगी— तहाँ— उस पंचायत में सबसे प्रथम नैयायिक
वाचालता से यह तर्कना खड़ी होती है कि—प्रायश्चित्तों में बारहवर्ष आदि अनेक
तरह के कल्प जो जो मानेगये तिनकी व्यवस्था कहाँसे जानोगई और किसकारणा
से बाँधीगई• लेकिन यह उत्तर हम न मानेंगे कि बारहवर्ष आदिका विधान बताने
वाले वचनों से जानी और बाँधीगई क्योंकि उनमें प्रतीति नहीं लासक्ते हैं • और
यह भी न कहिना चाहिये कि परस्पर प्रमाणों से जानेहुये बड़े छोटे कल्पों में
रुकावट, रुपोवावखडा न होसके इसकारणा से व्यवस्था में वियथभेदकी कल्पना
करीजाती है यह उत्तर इस हेतु से न मानेंगे कि जिसवाक की रुकावट दूरकरना
चाहते हो सो अच्छीतरह इन प्रकारों से भी दूर होसक्ता है कि यातो विकल्प या
समुचय या अगांगीभावका सहारा लियाजाय • अर्थात् (विकल्प इसका नामहै कि
बड़े छोटे सभी कल्पों में चाहें इसको करो या उसको करना) और (समुचय
यह कहताहै कि सभी कल्प ठीकहैं इसकी भी करो फिर उसको भी करना) और
(अगांगीभाव दो शब्द मिलिके अग और संगीका संबधहैं सो अगांगीभाव कहता
है दृष्टांत जैसे देहमें शिर या धड़ प्रधान अंगीहोता और शेष हाथपैर आदि सब उसी

अंगीका अंगहैं तैसे यहाँ भी समझना कि सबसे बड़ा बारहवर्षरूपी कल्प जो है सो प्रधान अंगी और उससे निचले कल्प सब उसी अंगीके अंगहैं तो भी प्रथम बड़े का अनुष्ठान करिके छोटेभी सब अंगमानिके साथे जायँ) इन तीनोंमें कोई एक मार्गभी स्वीकार करने से उक्त वाच नहीं खड़ा रहिसक्ता• तिससे वियस भेदपर व्यवस्था की कल्पना व्यादाहिरैगी—सुनो उत्तर कहितेहैं व्यवस्था भेदमें कुछ बारहवर्षवाले और सुमन्तु आदि के दशांशे वियस कल्पोंका विकल्प नहीं कल्पित होताहै कि चाहें इसको करो या उसको करो क्योंकि विकल्पका सहारा लेनेमें बड़े कल्पोंका अनुष्ठानहोना संभव न रहिनेसे अनर्थक दोयका प्रसंग आताहै कि जब इच्छाके आधीन होजाय तौ फिर बड़े कल्पका करना कौन चाहै• और ऐसा भी न कहिना चाहिये कि चन्द्रग्रहणा की तरह छोटे बड़े दोनोंकी वियमता में भी विकल्प की सिद्धि पाई जासक्तीहै क्योंकि उसकी उपमादेना तौ दूररहा प्रथम उस ग्रहणा में भी विकल्प का होना ठीक नहीं है अर्थात् जो किंचिन्मात्र भी ग्रहणा का देखिपरना संभव हो फिर चाहें पीछे न देखि परो तो भी ग्रहणा होगा ऐसा मानिके मृतक आदि का स्वीकार करना उचित है विकल्प नहीं माना जासक्ता है कि चाहें मृतकमानौ या मत्मानौ (इस उपमाको भुँदी कहिनेका यह तात्पर्य है कि जब एक ग्रन्थके गणितसे चन्द्र-ग्रहणाका न देखि परना सिद्धहोताहै दूसरे गणितसे कुछ समीक्षा देखि परने की द-हिरती है तहां दोनों की वियमता दहिरती है और इसी में विकल्प का संदेह खड़ा होताहै तथापि विकल्प नहीं माना जासक्ताहै अर्थात् जहां दोनोंके विचारसे चन्द्र-ग्रहणाका देखि परना सिद्ध होजाता या दोनों से न देखि परना पाया जाता हैं तहां वियमता के न-होनेसे आपही विकल्प का प्रसंग नहीं आताहै) अथवा उसी चन्द्र-ग्रहणा में पूराकरनेकी दृष्टिसे प्रारम्भ किया जो अतिराघनामा यज्ञ हो तिसके लिये यह कल्पना करनी चाहिये कि ग्रहणा देखिपरनेसे शीघ्रही स्वर्गादिकफल सिद्ध होगा कदाचित् न देखि परा तो भी कुछ विलंब से वही स्वर्गफल प्राप्त होगा किच और किसी तरह से विकल्प अंगीकार करने में अनर्थ होजानेका प्रसंग खड़ा होताहै कि यदि प्रथम से उसका न देखिपरना मानिके मृतकआदि विधिके त्याग पूर्वक भोजन आदि क्रियागथा और भोजन करते ग्रहणा-देखि परने लगा तब कितना बड़ा अनर्थ होगा या अतिराघयज्ञ जिसका दोनों दशा में अवश्य फलहोता तिसको विकल्पका सहारा लेकर न करना आदि अनर्थ खड़े होते हैं—और—समुच्चय से काम चलसक्ता तुमने कहा वहसमुच्चय भी इसमें ठीकनहीं किन्तु उपदेश और अतिदेशके द्वारा प्राप्ति

हुये बिना समुच्चय नहीं संभव होता है क्योंकि उपदेशके द्वारा समझोहुई जो निरपेक्षा है तिसके बाधका प्रसंग आता है—और—तीसरा अगांगी भावका सहारा लेना तमने जताया सो अगांगी भावइ इसमें नहीं है क्योंकि श्रुति आदिसे उसका भाव विनियोगकरनेवाले कोई नहीं है अर्थात् किसी ने अगांगी भावका स्वीकार करना कहा नहीं—इसीसे उन सब कल्पोंके परस्पर उपसर्ग होना जो संभव है तिसका परिहार कर देनेके लिये वियय व्यवस्था की कल्पना करनी उचित है वह भी विशेषकर जाति और शक्ति और गुण धन आदि की अपेक्षा से कल्पना होनी चाहिये क्योंकि इसी विधि का प्रसारण भी देवलने कहा है—यथा=जातिशक्तियुगापेक्षसंकुट्टितकृततथा अनुबंधादिविज्ञायप्रायश्चित्तसंप्रकल्पयेत्—अर्थात्—अपराधी तथा जिसके साथ अपराध किया गया इनकी ऊच नीच जातिके विचार से तथा उनकी शक्ति और गुण की अपेक्षा से और यद्भी कि अपराध यही एकवार हुआ या पहिले भी कर चुका है तथा यद् अपराध सिर्फ धोखे में हो गया यद्वा बुद्धिसहित किया और भी अपराधी के अनुबंध अवस्था आदि भेदों को जानि के विज्ञानी पाण्डित प्रायश्चित्त का धर्म करै क्योंकि इन भेदोंके समझे बिना प्रायश्चित्त बताने में अवश्य कुछ अनर्थ खड़ा होगा ॥ २४३ ॥

इसी दोसो तैत्तलिस २४३ के श्लोक और उसकी अधिकोक्ति में यहां तक ब्रह्म हत्या के प्रायश्चित्तमध्ये जो कुछ नैमित्तिक दर्शाया गया तिसके मध्यमकालमें भी समाप्त होजानेवासी अवधि समझाना चाहतेहैं सो अगिले परिच्छेदमें देखना ॥

अथ असंपूर्णद्वादशवार्षिकेऽपिकालितत्फलसिद्धिर्वि

वेकाविषयिकोऽयंपरिच्छेदः अपृष्टाविंशः २५

इसपरिच्छेद में यह विवेक जाना जायगा कि जो अवधि बारह बर्यकी कहिचुके जिसका किसी प्रायश्चित्तोत्तने प्रारम्भ कर दिया हो वह बीचमें भी किसी समय पूरी होजाती और पूरे किये का फल देती है ॥

(आरव्यनैमित्तिकस्यसमाप्त्यवधिः)

ब्राह्मणस्यपरिग्राणाद्द्वर्वाद्वादशकस्यच । तथाश्वमेधावभूप्रज्ञानाद्वाशुदिमायुषात् २४४

अर्थः—एक ब्राह्मण के परिग्राण से या बारह गौओं की प्राणारक्षा से भी यद्वा

अश्वमेधमें भी अवभृथ नाम का स्नान करनेसे भी शुद्धि को पावै—अर्थात्—जहां किसी प्रायश्चित्तीने बारह बर्यका प्रायश्चित्त या दूनी अवधि चौबीस बर्यका प्रारम्भ किया हो और उसके बीचमें किसी समय देवकी इच्छासे ऐसा वानक वनिजावै कि वनमें किसी ब्राह्मण को चोर बटमार मारे डारते हों या सिंह बाघ वन वाराह आदि कोई फाड़े डारता हो और प्रायश्चित्ती ऐसा देख के तत्काल अपने प्राण का लालच छोड़े हुये उसके ऊपर जाइ गिरै और किसी कठिनता के साथ उसके प्राण बचावै तो वह उसी समय शुद्ध होजाता है अर्थात् जो कुछ बर्यें वाकी रहि गईं तिनका पर्यटन किये बिनाही पूराफल सिद्ध होजाता है वह अपने घर लौटि आवै—इसी प्रकार जो बारह गौओं के प्राण चाहें सक बार या दो तीन बार में बचावै तो वहभी पूरी अवधिका फल उसी समय पाकर शुद्ध होजाता है (इसकी जो विशेषता है सो अधि-कीर्ति में देखो) अथवा जहाँ किसी राजा आदि ने अश्वमेधका प्रारम्भ किया हो तिसका संग्रभत जो अवभृथ नामका स्नान विधान उसके यजमानको कराया जाता है तिसके दीर्घसमयपर यदि प्रायश्चित्ती पहुँचकर आपभी उस विधिसे स्नान करें तो भी अवधि पूरी हुये बिना ब्रह्महत्या से छुटकारा मिलजाता है (इसका भी विशेष व्योरा अधिकीर्ति में देखना ॥ २४४ ॥

२४४ अधिकीर्तिः—ब्राह्मण या गौओंकी रक्षा करनेमें जो अपने प्राणखोये सन्नि-
 के उताह हुआ कदाचित् रक्षा न करि पाई पर उसके साथ आप भी सरि गया हो
 तो भी शुद्ध होजाता है अर्थात् श्रेय प्रायश्चित्तका पातक उसके साथ नहीं जाता है
 यही अभिप्राय मनुके वचनमें प्रत्यक्ष है—यथाहमनुः—ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणा
 न्परित्यजेत् मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोत्राहारास्य वा—अर्थात्—ब्राह्मण के अर्थ या
 गौओंके अर्थ जो शीघ्र अपने प्राण खोदेवै सो ब्रह्महत्यासे छुटकारा पाइजाता है और
 वह भी जो गऊ या ब्राह्मणकी रक्षा करिके आप मरा या चंचित गया हो (इसमें जुदे
 जुदे दो डील कहे गये हैं कि यातों रक्षा करते हुये अपने भी प्राण खोदेवै चाहें रक्षा
 न करि सका तोभी अपने पातकसे शुद्ध होके मराउहरता है अन्यथा जो रक्षाभी करि
 पावै और आप नाराजाय या चंचित या सो भी शुद्ध होता है ॥ ० ॥ विराने अश्वमेध
 में स्नान करना कहा सो भी अपने पापको छिपाये बिना उजागर करिके और यज्ञके
 यजमान आदि से आज्ञा पाकर करना कहा है—तदाह मनुः—शिष्टावाभूमि देवानां
 नरदेवसमागमे स्तमेनोऽवभृथे स्नात्वा इयमेधीविमुच्यते (भूमि देवा ब्राह्मणोऽऋत्विज
 स्तेयानरदेवेन राज्ञाय जमानेन समवाये स्वीयमेन-पापशिष्टावित्याद्यश्वमेधे वावभृथे

स्नात्वाशुष्येत् यदि तेन ज्ञातो भवतीत्यभिप्रायः) अर्थात्—यज्ञकरनेवाला नरदेव राजा तिसके और सबनैते में आयेहुये राजालोग तथा भूमिदेव ब्राह्मण जो यज्ञका विधान करवाने वाले ऋत्विज आदि इन सबके समाज में अपने पापका उच्चांत और इतने दिन प्रायश्चित्त करते बीते इतने बाकी रहे सब मुनाइ के स्नान की अभिलायाभाव मनसे प्रकट करै किन्तु मुखसे न उच्चार करै इस दशामें यज्ञमान और विद्वान् अपनी धर्मज्ञा संमति से इसका कल्याण सोचिकरस्वतः स्नानोंकी आज्ञा देदेवें तौ उस अश्वमेध में अवभृथ विधिसे स्नानकरिके शुद्ध होताहै=यही नियम शंखने दश्या है= यथा=अश्वमेधावभृथंगत्वा ज्ञानुज्ञातः स्नात्वा सद्यःपूतो भवति=अर्थात्—अश्वमेध में अवभृथ के समय पर जाइ के तहाँ अनुज्ञा पाया हुआ प्रायश्चित्त स्नान करिके सद्यही तत्काल शुद्ध होताहै=इन वचनोंमें अश्वमेधावभृथकी समस्या कहीजानेके उपलक्षणा से और भी अनेक यज्ञ जैसे अग्निष्टुत नाम जो अग्निष्टोमका रूपांतर विशेष होताहै और अग्निष्टुत के अंतर्गत पंचदशरात्र आदि यज्ञ जो अग्निष्टुत की समाप्ति पर्यंत उसके अंगभेद हों तथा सर्वमेध आदि जो वेदमें प्रसिद्ध हैं तिनमें से किसी एक यज्ञमें जाकर अवभृथ स्नान करिके पवित्र होसक्ता है जो देवकी इच्छा से वानक ऐसा मिलिजाय किन्तु अश्वमेधसे उपरालू यज्ञों में शुद्धिपाने का प्रमाण गौतमका वचन है कि (अश्वमेधावभृथोवाग्न्ययज्ञेऽप्यग्निष्टुतं प्रचेदित्यादिः) अश्वमेध के अवभृथ में वा और किसी यज्ञमें भी जो अग्निष्टुत अंत कहाता हो स्नान करै=यह सब नियम उसीकेलिये समझना जो वारह वर्षकी व्रतचर्याकरनेमें लगिरहाहो और बीचमें कदाचित् ब्राह्मणकी रक्षा आदि दैवयोगसे बनिपरै तौ उसव्रतचर्याकी अवधिपूरीहोजा-यगी—परन्तु यहतात्पर्य नहींहै कि प्रायश्चित्तका आरम्भ न करिके अपनी स्वतंत्रतासे इन्हीं कामोंकोदूढ़ै कि यहभी एक प्रकारके प्रायश्चित्त होये=क्योंकि—शंखने सन्देह मिटाइके स्पष्ट यही कहाहै=यथा=द्वादशे वर्षे शुद्धिप्राप्तोत्थंतरावा ब्राह्मणामोचयि स्वागवांवाद्वादशानां परिचारात् सद्य एवाश्वमेधावभृथज्ञानाद्वापूतो भवति=अर्थात्—वारहवर्ष पूरा होने में शुद्धिको पाताहै अथवा बीचमें भी ब्राह्मणको भीतसे छुड़ाकर शुद्ध होताहै अथवा वारह गौओंकी रक्षा करने से यदा अश्वमेध में अवभृथ विधि का स्नान करने से सद्यही पवित्र होताहै=इसी लिये=तन्नुने यह डोल बांवा है कि प्रथम तौ मुंडन कराइ के वनमें वसै इत्यादि वारह वर्षकी गुणा विधि में तत्पर कराने पीछे वह विधानकहा जो अधिक्रीतिके शुद्धमे लिखि चुकेहै कि ब्राह्मणके अर्थ या गौओं के अर्थ अपने प्राण खोदेवै इत्यादि अश्वमेधके स्नान पर्यंत बीचमें कदाचित् तिस

पीछे यह दर्शाया है कि जिसको बीचमें ब्राह्मणों की रक्षा आदिकोई प्रकार न बन आये
 सो बारह वर्ष पूरे करें—यथा—एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः समाप्ते षाडशे वर्षे ब्रह्म
 हत्याद्यपोहति—अर्थात्—इस प्रकार व्रतको मजबूतीसे थाँभे हुये नित्यं प्रति ब्रह्मचारो
 बना हुआ चित्तको सावधान रख कर बारहवां वर्ष समाप्त होने में ब्रह्महत्या दूर कर देता है
 ॥ ० ॥ जो नियम अभी कहि चुके उसपर वादी तर्क उठाता है कि ब्रह्महत्या से क्षुब्ध
 कर शुद्धि पावे यह उसी लपेट के साथ कहा गया है जो ब्राह्मणों की रक्षा करना आदि
 कई प्रकार या बारह वर्षों की व्रतचर्या करना सबदशा में शुद्धि पास करता है तिससे सब
 कार्यों से सक्त हो तुल्य फल उठेगा इस न्याय से अपराधों को स्वतंत्रता होनी—योंग्रह
 है कि वह चाहें तिस प्रकार से अपना पीछा छुड़ा सकें अर्थात् निज इच्छा से कोई
 एक प्रायश्चित्त इनमें से करे परन्तु ऐसा नहीं उचित है कि ब्राह्मणों की रक्षा आदि
 प्रकारोंको बारह वर्षों का अंगत्व माना जाय किये भी उसी प्रधान कर्म का अंग है और
 अंगत्व भी नहीं सिद्ध होता है क्योंकि प्रधान कर्म का विरोधी (बीचही में रोक देनेवा-
 ला) होने से भी अंग नहीं कहा जा सकता है किन्तु अंग वही होता है जो प्रधान का
 अनुग्राहक (पीछा पकड़ने वाला साथ देने वाला) हो और यह विधान भी बारह
 वर्ष आरंभ करने घाले का नहीं है जिससे कि उसी कार्य का जुदा विधान पाया जा-
 ता है—इसपर यह इष्टांत भी भीमांसा के अनुसार है कि जैसे सब नामक यज्ञ करने
 पर उताव्न होकर विद्यजित यज्ञसे यज्ञन करें यह सबके प्रयोगमें प्रवृत्त हुये का उसके
 पूरे करने में असमर्थ का विद्यजित विधान एकदृष्टान्त है इससे भी स्वतंत्रता का होना
 ही युक्त पाया जाता है कि जैसा (आगे दोस्रो में तालिस २४७ श्लोक से आदिलेकर)
 अग्नि में गिरके मर जाना • तीरन्दाजों का निशाना बनिके मर जाना आदि जो कल्प
 कहे जायेंगे तिनमें भी यह शंका न करनी चाहिये कि वे भी बारह वर्षों के प्रारम्भ और
 समाप्ति के बीचमें लिखे पड़े गये हैं तो वे भी बारह वर्षों का एक एक अंग होंगे इससे
 वे सभी कल्प बारह वर्ष के बीचमें करने होंगे इससे कि यद्यपि पाटवीच में आश्रय
 पर उसके बीचमें होने पर भी उनका प्रयोजक (लगानेवाला) जो नहीं जाना जाता
 और प्रयोजन की आकांक्षा भी बारह वर्षों से जुदा देखि पड़ती है तिससे परस्पर उनका
 अंग और अंगीपना नहीं सावित हो सकता है जबकि अंगीपत्त्व सावित नहुँ आ तो बारह
 वर्षों के बीच उनका सावन भी आवश्यक नहीं उठिगा—इसपर भी भीमांसासे दृष्टान्त
 है कि—जैसे वेदमें सामवेदों ऋचाओं के प्रकरणा में अग्निवित्कर्म की ऋचाएँ भी
 वर्तमान हैं तिनके दो भाँति के कर्म हैं कि अग्निममिचन और अग्निप्रकागमये दोनों

कर्म अग्निहीके साथ होते हैं तहांभी अग्नि रूप एकही कार्यके हेतुसे सामिधेनी ऋचाओं के साथ उनका अंगत्व नहीं माना गया है—और बारह वर्ष की व्रतचर्चा मध्ये टीकटीक उनका षाट्ह वीचमें नहीं है जो अग्निमें प्रवेश होजाना आदि जुदे कल्प हैं क्योंकि वशिष्ठ गौतम आदि अनेक ऋषियों ने बारह वर्ष का चर्चा छेड़नेसे प्रथमही उनकी लिखा है और यही स्वतंत्रता जाहर का देने के लिये मनु ने हर एक वाक्यों के साथ विकल्प दर्शानेवाला वा शब्दभी लगाया है कि (लक्ष्यं शास्त्रभृतां वा स्यात् प्रा स्येदात्मानमनौवा) या तो शास्त्रधारियोंका निशाना वने या शरीरकी अग्निमें भस्म करे इत्यादि और उन्हींमनुजी ने प्रत्येक प्रायश्चित्त के साथ स्वमेव ऐसेही ऐसे यह प्रकार साथै यह ऐसा उपसंहार भी लगाया है तिससे भी सब जुदे जुदे प्रतीत होते हैं और यह भी साफ कहा है कि (अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः ब्रह्महत्याकृते पापं च्यपोहत्यात्मवितथा) इनमें से किसी एक विधिपर आच्छद् हो ब्राह्मण अपने चित्तको संवधानराखे आत्मवेत्ता होके रहे तो ब्रह्महत्या के निमित्त का पाप जो है सो दूर होजाता है—बाकी सबका तोड़ करता है कि इन सब कारणोंसे मेरी समझमें यह आता है कि अग्नि में जलजाना आदि प्रायश्चित्तोंमें स्वाधीनता प्रत्यक्ष बहुत होती है कि अपनी इच्छाके अनुसार कोई एक विधान साथै और इसीसे ब्राह्मण गऊकी रक्षा आदिवाले विधानों में भी बारहवर्षका अंगत्व नहीं सिद्ध होता है क्योंकि उनका और इनका भी फल एकही ठीक है कि ब्रह्महत्यासे क्षुब्धजाता है तिससे भेद मानना न चाहिये—उत्तर कहते हैं सुनो—परिहृतमेतदतरा ब्राह्मणं मोचयित्वा इत्यादिनां शंखवचनेनांगत्वा वगमात्र अंगस्यैव सत्प्रधानद्वारेण फलसंबंधः न च प्रधानविरोधः यतो ब्राह्मणवाराधनं धिक्स्थैव व्रतानुष्ठानस्य फलसाधनत्वं विधीयते इति न विरोधः—अर्थात्—सब कुछ कहाँ पर यहती छोड़िही दिया जो शंखके वचनमें कि बारह वर्ष के बीचही में ब्राह्मण को मीत से बचाइ के इत्यादि व्यवस्था कही तिससे साफ साफ बारह वर्षों का यह अंग पाया जाता है और अग्निहीके होते हुये प्रधान के द्वारा उसमें फल होता है और बीचहीमें प्रधान कर्म का त्याग होजानेपर भी प्रधानका विरोध इसमें नहीं है क्योंकि उस अनुष्ठान का पूरा फल ब्राह्मण के प्राप्त वचन की ही अवधितक विधान किया गया है तिससे कोई विरोध इसमें नहीं है ॥ २४४ ॥ ब्राह्मण गऊकी रक्षा तथा अश्वमेध का छान जैसे कहेंगे तैसे उनके साथी कुछ और भी रोयें सो अगिले प्लोकीमें देखना ॥

(पूर्वोक्तानांशेषप्रकाराः प्रायश्चित्तभेदाः)

दीर्घतीव्रामयस्तत्राह्मणमथापि वा । दृष्ट्वापविनिरातं कृत्वा वा द्रव्यहाशुचिः २१५

आनीय विप्रसर्वस्वं दत्तं याति तत्पुनः । तन्निमिषस्तं शस्त्रे जीवन्नपि विशुध्यति २१६

अर्थः—यद्वा अतिलंबे और तीव्र रोगों से प्रसे ब्राह्मणों को अथवा ऐसी गऊ की मार्ग में देखि निरोग करिके भी ब्राह्मण शुद्ध होता है—अर्थात्—कुट्ट आदि महारोगों से यदि कोई ब्राह्मण या गऊ दुखी देखे उसको औषधी भाखूरी आदि किसी अपनी युक्ति से चिकित्सा करिके निरोगी करे तो वह भी तत्काल शुद्ध होकर छुटकारा पावे, किन्तु बारह वर्ष पूरे करने से अपेक्षा कुछ न हो रही ॥ २१५ ॥ और भी यदि ब्राह्मणों के हरे हुये सर्वस्व को त्यागकर देवे या चाहे घायल होके मर जाय या उस धन के निमित्त शस्त्रों से घायल होकर जीतारहे तो भी शुद्ध हो जाता है—अर्थात्—ऊपरले श्लोक में दो प्रकार से शुद्ध होना कहा इसमें तीन प्रकार से कहा है कि जिस किसी ब्राह्मण का कोई साधन चौरों आदि किसी बलवान ने हरा हो तिससे दुःखी देखि के या तो सबराबत की निके त्याग देवे या उस धन के लिये युद्ध करिके प्रायश्चित्त आप मारा जाय या घायल होके मरने के समान हो जाकर भी जीतारहे चाहे धन की नहीं लासका तो भी शुद्ध हो जाता है ॥ २१६ ॥

२१६ अधिकोक्तिः—वादी ने फिर इसमें भी यह तर्क उदाया है कि एक सौ च-वालिसके श्लोक में ब्राह्मण गऊ की रक्षा करनी कहि चुके थे अब यहाँ द्वारा फिर क्यों कहा—तिसका यह उत्तर है कि हाँ सत्य कहा वहाँ और यहाँ भी इसका यह तात्पर्य है कि वहाँ तो अपने प्राण खोड़ कर भी रक्षा करनी कही थी और यहाँ केवल चिकित्सा या मंत्र यंत्र आदि उपायों से रक्षा करनी कही कि जिसमें अपने प्राणों की संदेह नहीं यह दोनों में विरोधता है—इसी अभिप्राय से मनु ने यह कहा है कि (विप्र स्य तन्निमित्तं वा प्राणालाभे विमुच्यते) ब्राह्मण के प्राण बचाव के या उसके निमित्त अपने प्राण खोड़के छुटकारा पा जाता है ॥ २१५ ॥ दोसौ छहालिस में जो शस्त्रों का बहुवचन है सो इसलिये कि एक ही घाव खाकर भागि परे तो यह प्रायश्चित्त बारह वर्ष की अवधि पूरी किये बिना शुद्ध न होगा अर्थात् जो बहुत से घाव अपने देह पर खाकर भी न भागा और मरने के तुल्य होकर देह की इच्छा से जीता रहि गया हो तिसकी अवधि अभी पूरी होगई मानी जायगी—इसी हेतु मनु ने ऐसा वचन कहा है कि (अथ वरप्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवाजित्यवा) तीन वा तीन से अधिक डाकूओं की रोकने वाला

वने अर्थात् बहुतो को रोकने लहने से माराजाय या बहुत घायलहोके दैव योग से बचिजाय फिर चाहे धन को न छीनि पावै तौ भी शुद्धि होजायगी क्योंकि छीनि पाउनेवालाकाम उसने सद्भावसे किया अथवा चाहै एकबारा वा ईत तक भी देहमें न लगीहो और डाक चाहै अनेक वा एकही हो पान्नु सबवन उनसे छीनके बाह्यारा को ल्यादेवै कि जिसका जितना चोरो ने लूटा था तौभी यह प्रायश्चित्ती शुद्ध होजावै ॥ ये पाँचौ भौतिके कल्प भी ऐसेहैं कि इनमें अपराधीको इच्छासे स्वाधीनता नहीहै कि बारह बर्योंकी व्रतचर्या प्रारम्भ किये बिना प्रथमसेही गऊ ब्राह्मण को चिकित्सा या लूटा हुआ धन छीनि के शुद्ध होजानेका अधिकारी बने किन्तु वो सो चर्वालिम की २४४ कीअधिकोक्ति के अंत में जो कुछ निषेध सिद्ध होचुका सो यहाँभी समझ लेना ॥ २४६ ॥

अगिले परिच्छेदमें प्रायश्चित्तके अनुकल्प कहेजायेंगे कि जो बारह बर्य
की व्रतचर्या करना न चाहै सो इनको करै ॥

अथ प्रायश्चित्तात्तरानुकल्पप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेद

२६ जनत्रिंशः ॥

इसपरिच्छेदमें ब्रह्मघ्नके कुछ और भी प्रायश्चित्त कल्पनाहोगे कि उनमें प्रायश्चित्ती को स्वाधीनता भी ठहिरैगी कि चाहै यह करो या वह करो—यद्यपि बारहवर्यके स्थानी भूतकल्प कहेजायेंगे तथापि उनमें भी अपराधीको विशेषता अनुसार विनिय भेदसे विचार करना होगा सो अधिकोक्तियों में देखना ॥

(अग्निप्रवेशरूपप्रायश्चित्तात्तर)

लोमभ्य स्वाहेत्येवहिलोमप्रभृतिवैतनुम् । मज्जाताजुहुयाद्वापिमत्तैरेभिर्यथाक्रमम् २४७

अर्थः—यद्रा (लोमभ्य स्वाहा) इत्यादि ऐसे इनमंत्रों से यथाक्रम सोम आदि मज्जा पर्यन्त तनु (शरीर) को होमही करै—अर्थात्—इस वाक्यमें वापि यद्वा शब्द उस पक्ष से दूसरा पक्ष दर्शाने वाला है कि जो बारह बर्यका पक्ष पहिले कहि चुके और हि शब्द इस निमित्त है कि अन्य स्मृतियों में त्वचा आदि जो व्योरेवार प्रसिद्ध हैं सोभी

समभिलेना क्यौंकि यहां केवल रोमा आदि कहिके संसेष किया गया है—इससे यह अभिप्राय ठहिरा कि यदि बारह वर्गकी व्रतचर्या न करना चाहै तौ यह करै कि अग्नि में अपने शरीर को होमै सो किस विधान से कि (रोमा•त्वचा•रक्त•मांस•मेदा•स्नायु नसै•हाड•मज्जा) ये आठ वस्तु होम की सामग्री मानै और इन्हीं से प्रत्येक जुदे द्रव्यका स्वाहांत मंत्र बनावै सो अधिकोक्ति में देखो ॥ २४७ ॥

२४७ अधिकोक्तिः—शरीरके धातुरूपी होम की सामग्री से जुदे जुदे आठौ मंत्र बनाकर वशिष्ठ ने प्रकाश किये हैं—यथाह वशिष्ठः—ब्रह्मह्मग्निमुपसमाधाय जुहुयाद् लोमानिमृत्योर्जुहोमि लोमभिमृत्युं वाशय इति प्रथमां १ त्वचंमृत्योर्जुहोमि त्वचामृत्युं वाशय इति द्वितीयां २ लोहितमृत्योर्जुहोमिलोहितेन मृत्युं वाशय इति तृतीयां ३ मांसानिमृत्योर्जुहोमि मांसमृत्युं वाशय इति चतुर्थी ४ मेदामृत्योर्जुहोमि मेदामृत्युं वाशय इति पंचमी ५ ह्यायुनिमृत्योर्जुहोमि ह्यायुभिमृत्युं वाशय इति षष्ठी ६ अस्थानिमृत्योर्जुहोमि अस्थिभिमृत्युं वाशय इति सप्तमी ७ मज्जामृत्योर्जुहोमि मज्जामिमृत्युं वाशय इत्यष्टमी ८, =अर्थात्—वशिष्ठ ने यह कहा है कि ब्रह्महत्यारा पुरुष अग्नि का बहुत बड़ा कुण्ड अपने समीप नियत करिके इन आठौ चीजके आठ मंत्रों से आठ होम करै (इसी हेतु मूल श्लोक में योगीश्वर ने (लोमप्रभृति) रोम आदि आठ द्रव्य जताये और (लोमभ्यःस्वाहा) सेसे मंत्र बताये तिनको भी इन्हीं वशिष्ठ के बताये मंत्रों में इस रीति से जोड़ै कि) लोमानिमृत्योर्जुहोमिलोमभिमृत्युं वाशय लोमभ्यःस्वाहा १ यह एक मंत्रवना इसी प्रकार आठौ मंत्र बना लेंवै=इस पर सक विचार है कि लोमभ्यस्वाहा कहिने से रोम आदि द्रव्यही देवता समझे जाते हैं क्योंकि जैसे (गशोशस्वाहा सूर्यायस्वाहा इत्यादि) चतुर्थी विभक्ति से देवता को मंत्र कहेजातेहैं कि गशोश के लिये स्वाहा या सूर्यके अर्घ्य स्वाहा—तैसे यहाँ रोमों के अर्घ्यस्वाहा खालके अर्थ स्वाहा इनमें रोमखाल आदि आठौ धातु देवतारूप प्रतीत होते हैं तथापि देवतारूप नहींहैं क्योंकि (रोम आदि शरीर को होमै) इस कथन से उनकी द्रव्यरूपही कल्पित कियाहै और द्रव्यही से होम सिद्धहोताहै बिना द्रव्यके नहीं और (लोमभिमृत्युं वाशय) इत्यादि वशिष्ठ के मंत्रोंमें मृत्युही को इचि की आहुति बताने से देवता वही मृत्यु इसमें प्रधान है जो अग्नि के द्वारा रोमादि इचि खायायी—इसीसे—यह तात्पर्य ठहिरा कि फरसा गंडासा आदि शब्दसे अपनी सामर्थ्यके अनुसार उक्त रोमा आदि अपने शरीर से जुदे करि करि मृत्यु के नामसे आठौ होम करिके पीछे सर्व शरीर अग्नि में भोक्तिके देवै (इतना यह सदेह अभी गेय है कि एक मंत्रसे एकही

आहुति वा अनेक या अष्टोत्तर शत आदि कोई संख्या भी नियत करै क्योंकि आठ होम करने कहे पर इसकोसध्ये कोईसंख्या नहींवाँची तिससे एकहोम एकहीआहुति का प्रतीत होताहै इसका समाधान यहहै कि (संख्या का नियम बाँधना कर्ता के स्वाधीन रहा कि प्रत्येक संस्कारकी आहुति जितनी कस्मके वही संख्या आठकी जुदी जुदी राखै इसीलिये यह लिखचुकेहै किअपनी सामर्थ्यके अनुसार लोमखालआदि उपाड़ै=यहाँ ओसद्विज्ञानेश्वर कहते हैं कि रोम खाल आदि का हवि रूपी द्रव्य दीकदीक सिद्धहुआ इसमें कुछ सदेहनहीं परंतु किसीविरले दोकाकारोंने प्रथमरेखा अर्थ लगायाथा कि मूलमें होमकेलिये कोईद्रव्यनहीं अदेशकिया तिससे इनसंबंधे घीका होम करना चाहिये=सो वह निरूपणा किये बिना घीका होम कहा तिससे उस अर्थका आदर न करना चाहिये ॥ ० ॥ मूलश्लोक में (जुहुयात्) होमै इसप्रयोग सेही अग्निनाम लिये बिना उसका प्रयोजन सिद्ध होजाता है कि होम करै तो अग्नि भी अवश्य चाहिये पान्तु वशिष्ठ के वचन में जुहुयात् होने पर भी (अग्निं उपसमाधाय)यहद्वारा कहागयाहै कि अग्निकोपासनाखके होमकरै तो इसद्वारा के लेखसे लौकिक अग्निको ध्वनि पाई जातीहै कि उसमें होम करै और यही बात उचितहै क्योंकि जो पुरुष अग्निमानहोके पतितहुयेहो तिनके अग्नि भी पतित हो जातेहै तिससे वे पतितअग्निपुरुष कहते और उनकेलिये एकविधानकहागयाहै कि जिसके हेतु से उनकोभी लौकिकाग्नि सेही प्रयोजन आपरैगा=यथाहोशना=आ-हिताग्निस्तद्योविप्रोमहापातकभाग्भवेत् प्रायश्चित्तैर्नशुध्येत्तदरनीनांतुकागतिः वै तानप्रक्षिपेतीयेशालाग्निंशसयेद्वधः =कात्यायनस्तु =महापातकसंगुक्तोदैवात्स्यादग्निमानयदि पुत्रादिपालयेदरनीवगुक्तश्चादोयससयात् प्रायश्चित्तनक्षर्याद्यःकुर्वन्वाग्निग्रतेयदि गृह्णन्निर्वापयेच्छूतोमप्लस्तेसपरिच्छदस=अर्थात्-जो ब्राह्मण (आ-हिताग्नि) अग्निमान है वह महापात की होजाय और प्रायश्चित्तों से न शुद्धहोवै तिसके अग्नियों की क्यागति होगी (सो कहते हैं कि) उसका वैतान जो वेदकी विविधे स्थापनकिया विस्तारहै सामग्री उपकरणा औजार आदि सो सब जलप्रवाह में हल्यारा या कोई और जानी छोड़ि आवै तथा शाला के अग्निको बुझाड डारै= कात्यायन भी कहते हैं कि=जो अग्निमान है वह देवयोगसे यदि महापातकी हो-जाय तो उसका कोई पुत्र वा शिष्य आदि अग्नियोंको पाले फिर दोयी भी अपना दोय मिताने के बादिसे पाले=अथवा यदि ऐसा हो कि प्रायश्चित्तको न करै यदा दोय मिताने के बादिसे पाले=अथवा यदि ऐसा हो कि प्रायश्चित्तको न करै यदा प्रायश्चित्त प्रारम्भ करिके मरजाय तो गृह्य अग्नि को बुझावै और योत की जल में

सब सामग्री सहित छोड़ि आवे ॥ ० ॥ पूर्वोक्त होमका श्रेय कार्य अब कहिते हैं कि शक्तिके अनुमान होम कियेपीछे अग्निमें सबशरीर भोंकना कहासो तीनवार उठि उठि के औंधे मुख गिरना चाहिये=तदाह मनु=प्राग्देवात्मानमग्नौ वासमिद्वेविरवा कशिराः=अर्थात्-जो पूर्व कल्पोंको न करे तो अच्छे प्रज्वलित अग्निमें शरीरकोही औंधे मुख तीनवार भोंके=गौतम ने कुछ और भी विशेषता इसमें करी है कि (प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिब्रह्मप्रस्थिरवस्यातस्य) ब्रह्मघ्न को प्रायश्चित्त यह है कि अवस्यात नाम लंघन किये हुये का अग्नि में प्रवेश करना तीन वार उठि उठि का (लंघन इस लिये कहा कि शरीर दुर्बल और शुद्ध होजाने से अग्नि उसको शीघ्र भस्म करसके) तैसेही कादकी शाखावालोंकी यह युक्तिहै कि (अनशनेन कर्पितोऽग्निमातोहेत्) लंघन से दुर्बल होकर अग्निपर सवारहोवै=अब यह विचार भी कर्तव्य है कि यह मरजानेका प्रायश्चित्त उसकेलियेहै जिसने कामनासे इच्छासहित महापाप किया हो जैसा अंगिराकी विचली स्मृतिका वचन है=यथाह मध्यमांगिराः=प्राणांतिकंचयत्प्रोक्तंप्रायश्चित्तमनीयिभिः तत्कामकारविययंविज्ञेयंनवसंशयः=तथा=यत्कामतोमहापापंनरःकुर्यात्कथंचन नतस्यशुद्धिर्निर्विघ्नाभुग्वग्निपतनादते=अर्थात्-अंगिराने कहाहै कि जो जो मरणांतिक प्रायश्चित्त बुद्धिमानों ने कहे सो सब कामकारोंका विषय समझना इसमें संदेह नहींहै=तैसे=एक यह वचनहै कि जो आदमी किसी तरह कामना से चाहिकर महापाप करे तिसकी शुद्धि नहीं होती कहींहै सिधाय पर्वतके शिखर आदि ऊंचेसे गिरने के या अग्निमें गिरनेबिना=यह प्रायश्चित्त जो इसी २५७ भरमें कहा गया सो बारह वर्षोंके बिनाही स्तनत्र किया जाताहै अर्थात् इससे पहिले परिच्छेदमें जो ब्राह्मणाकी रक्षा आदि कहेगये तिनकी तरह बारह वर्षोंके साथ करना नहीं सूचित हुआहै ॥ २५७ ॥

(शस्त्रसंपातमद्ये स्थितिद्वयंप्रायश्चित्तांतरं)

संग्रामेवाहतो लक्ष्यभूतःशुद्धिमवाप्नुयात् । शृतकल्पःयहतो जीवन्नपि विशुद्धयति २५८

अर्थः-अथवा लड़ाईके बीच लक्ष्यभूत होके साराजाय तौभी शुद्धि को पावै या शस्त्रोंके प्रहारसे अतिपीड़ित मरनेके लक्ष्य होजाकर देवयोग से जीवता रहि कर भी शुद्ध होताहै=अर्थात्-जहाँ कहीं दुतरफा युद्ध होताहो या सीखनेवाले निशाना लगातेहो इत्यादि जिस ठिकाने पर बहुतसे बाण आदि शस्त्रों का पात होता हो उसी जगह प्रायश्चित्त की जाकर युद्ध वालोंका निशाना बनिके बीचमें बैठे कि जिससे दुतरफा चले हुये बाण आदि शस्त्र उसके ऊपर लगें तहाँ मरजाय तो यह शुद्ध होजाताहै यद्य

बहुत घायल होकर मरनेके समान सूच्छा पाकर पीके दैवकी इच्छा से यदि होगे में आजाय तो यह जीता रहिजाने पर भी शुद्ध होजाता है ॥ २४८ ॥

२४८ अधिकोक्तिः—निशाना बनिके बैठे इसमें राजा आदि किसी प्रबल की प्रबलता रूपी आज्ञासे प्रयोजन नहीं है अर्थात् आपही अपनी इच्छासे धनुय आदि शस्त्र विद्याके योद्धाओंसे प्रार्थना प्रकट करे कि मैं प्रायश्चित्तोहूं इसलिये तुम्हारा निशाना बना चाहता हूं—यथाह मनुः—लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः—
अर्थात्—शस्त्रधारी विद्वानोंका लक्ष्य बनै अपनी इच्छासे ॥ यह प्रायश्चित्त जो सर-
णांतिक स्वरूप ठहिरा तिससे यह सबके लिये नहीं किन्तु उसके लिये समझना जो प्रायश्चित्त आप सबीहो और इच्छा सहित ब्राह्मणाको मारा हो वल्कि जिस क्षत्री में यज्ञ करनेकी समर्थता हो तो अश्वमेध आदि यज्ञोंसे विकल्प भी होसकताहै क्योंकि मूल श्लोक में अपि शब्द जो आया तिसके ध्वन्यर्थसे ऐसा क्षत्री अश्वमेध आदि यज्ञों से भी शुद्ध होताहै—तदाहमनुः—यजेतवाचमेधेन स्वर्जिता गोसवेन च अभिजिह्विजिह्विभ्यां वा विहृताग्नि युताग्निवा—अर्थात्—पूर्व कहे कल्पोंको न करसके तो अश्वमेधसे यज्ञ करे या स्वर्गजित् नाम यज्ञकरे या गोसव यज्ञ करे या अभिजित् यज्ञ या विजित् यज्ञोंसे यज्ञ करे या विहृत् नाम यज्ञसे या अग्नि युत् नाम यज्ञसे प्रायश्चित्त करे—
इनमें एक अश्वमेधका यज्ञ केवल सार्वभौम क्षत्रीको सूचितहै जो सब धरतीके राजाओं पर आज्ञाकारक महाराजाधिराजहो—क्योंकि पराशर ने ऐसा कहा है (यजेतवाचमेधेन क्षत्रियस्तु महोपतिः) कि जो क्षत्री सब धरतीका पति होय वह अश्वमेध से यज्ञ करे (नासार्वभौमो यजेतेत्यसार्वभौमस्य प्रतिषेधदर्शनाच्च) और जो सार्वभौम न हो सो अश्वमेध न करे क्योंकि हरकाई अश्वमेधका अधिकारी नहीं यह प्रतिषेध भी देखा जाताहै—सार्वभौम को यह अश्वमेध रूपी प्रायश्चित्त उस दशा में कि जहां इच्छा सहित हत्या आदि करने से सरणांतिक प्रायश्चित्त ठहिरा हो (इससे यह बात भी स्पष्ट होगई कि सार्वभौम से उपराल राजाओंको अश्वमेधके सिवाय जो अन्ययज्ञों के नाम कहे सो सब समझने) सार्वभौमके मध्ये यह वचनभी यमस्मृति का प्रमाण है कि—महापातककर्तारश्च त्वारो मतिपूर्वकम् अग्निं प्रविश्य भुङ्क्ष्वतिस्त्वावामहं तिक्रतौ—अर्थात्—चारो महापातकी जो जानि बूझिके पाप करने वाले हुये हों सो अग्निमें प्रवेश करिके शुद्धि होतेहैं कि जैसा २४७ में वर्णन होचुका अथवा महायज्ञ जो अश्वमेधहै तिसमें बैठिके शुद्ध होते हैं सो यह अधिकार सार्वभौम को कहिचुके तिससे उसकी अग्निमें प्रवेश करना आवश्यक नहीं रहा किन्तु जिनको अश्वमेधक

अधिकार नहीं तिनको अग्नि का अधिकार ठहिरा—क्योंकि यस्मृतिके वचनद्वारा अग्निमें सरजाना और अश्वमेध करना दोनों फल बराबर सिद्ध हुये ॥ ० ॥ और अनेक यज्ञ जो स्तर्जित आदि ऊपर दर्शाए गए तिनका अधिकार तीनों वर्णोंमें जो अहिताग्नि पुरुष हों और पहिले भी यज्ञ कर चुके हों उन्हें को आवश्यक है (सबको नहीं) सो उनके लिये बारह वर्गोंसे विकल्प है कि चाहें बारह वर्ग की व्रतचर्या करें या बड़ी यज्ञ करें जो पहिले कभी किया हो—परन्तु ऐसा नहीं कि प्रायश्चित्तही के निमित्त पर स्तर्जित आदि यज्ञ करना चाहिके अग्नि का स्थापन करें या पहिला यज्ञ करें • क्योंकि जोपतित हो चुका उसको द्विजातियोंवाले कर्मका अधिकार नहीं रहा • और तर्कभी न करनी चाहिये कि जैसे दोसौ तैत्तलिस २४३ की अधिकोक्तिमें संध्योपासन करनेका अधिकार सिद्ध किया था तैसे उसकी तरह अग्नि का स्थापन और प्रथम यज्ञ का करना भी अविरुद्ध ठहिरा जाय • सो यह तर्क इस हेतुसे न करनी चाहिये कि बहौ तौ यह तात्पर्य था कि सभी कर्मोंके प्रारम्भमें शरीरकी शुद्धि करनी आवश्यक होती है वह शुद्धि ज्ञान और संध्यासे होती है जब कि प्रायश्चित्त की स्थापना करता उस अधिकोक्तिमें कहा गया तौ यह बात आपही सिद्ध होजाती है कि शुद्ध होनेके लिये ज्ञान करना कहा तिससे ज्ञानकी अंगभूत संध्याभी अवश्य करनी पड़ेगी सो करनी चाहिये—और यहां यह प्रयोजन है कि अग्नि का स्थापन और पहिला यज्ञ ये उस पहिले यज्ञके अंगभूत नहीं हैं जो प्रायश्चित्त रूपी करना कहा तिससे उसका श्रेष्ठ कर्मभी ये नहीं हैं जो संध्योपासनकी भाँति तत्काल करि लेना जाती कर्म से अविरुद्ध माना जासके • क्योंकि यहां यही तात्पर्य है कि जिसके अग्नि की स्थापना का अधिकार होनेसे नित्य प्रति अग्नि होव कर्म होता रहा और दोयी होजानेसे पहिले कीइसा यज्ञ भी उसने किया हो तिसको यह अधिकार पाया जाता है कि बारह वर्ग वाले प्रायश्चित्त के बदले उसी यज्ञ को फिर करें जिसको पहले कभी किया था—अश्वमेधके उपरालू जिन यज्ञोंका करना जिन लोगों पर ठहिरा था गया तिनके लिये यह विचार भी करना आवश्यक है कि साक्षात् इन्ता पुरुष को बारह वर्ग के बदले पूरी दक्षिणा से कराया जाय और उसको सहायक आदि जिस किसी को आवा प्रायश्चित्त के वर्गका ठहिरा हो तिसको आवा दक्षिणा से और जिसको चौथाई तीनवर्ग के बदले यज्ञ ठहिरा हो तिसको चौथाई दक्षिणा से कराया जाय इत्यादि अपनी बुद्धि से व्यवस्था कल्पित कर लेनी चाहिये ॥ २४८ ॥

(अन्यच्चप्रायश्चित्तांतरम्)

अरण्येनियतो जप्त्वा त्रिवेदस्य संहिताम् । शुद्धये तवा मितासीत्वा प्रतिस्नोतः सरस्वतीम् २१९

अर्थः—वनमें नियताहार होके वेदकी संहिता की तीनवार जपिके भी शुद्ध होय यद्वा मिताहारी होके स्रोत स्रोतके प्रति सरस्वती को जाइके भी शुद्ध होय=अर्थात् थोड़े भोजनका एकसा नियम बाँधिके निर्जन वन में किसी पुनीत स्थानपर वेद संहिताकी तीन आठुत्ति पाठकरै या उसी तरह थोरे प्रमाणा का भोजन भिक्षा खाते हुये पूर्व देशमें पल्लवानाम उपधीप के भरने से यात्रा प्रारम्भ करिके पश्चिम समुद्र तक पहुँचै फिर वहाँसे भरने और स्रोतोंके सहारे रास्तालेकर सरस्वती नदीको पहुँचै तो शुद्ध होजाता है इसमें बारह आदि वर्षोंका कुछ नियम नहीं रहा किन्तु जितने दिनम उक्त कार्य होसके वही नियम है ॥ २४६ ॥

२४६अधिकोक्तिः—इसप्रायश्चित्त वालेको वह भिक्षालेनी चाहिये जो हविष्य में गिनती हो जैसे हेमंतिका आदि मुख्य बहुधा होतेहैं क्योंकि (हविष्यभुवनानुच रेत्प्रतिस्नोतःसरस्वतीम्) मनुने यह कहाहै कि हविष्य भोजन करते हुये स्रोत स्रोत के द्वारा सरस्वतीको चलाजाय अथवा इस वचनका यह अर्थहै कि नित्यप्रति हवन करिके उसका श्रेय बचाहुआ हविष्य भोजन करै किन्तु भिक्षा मध्ये कुछ हविष्य का नियम नहीं ॥ वेद संहिताका जप करना कहा तीन बार सो मंत्र और ब्राह्मण रूप संहिता समझनी और संहिता लेनेसे वेदका पद क्रम इसमें नहीं सूचित किया किन्तु केवल मंत्र ब्राह्मात्मक संहिता का पाठ करना चाहिये सो यह प्रायश्चित्त केवल उसी पर आखड है जो वेद पढ़ा हुआ विद्वान् हो और निर्धनी भी हो जिसने आप शरावार होकर निर्गुणा ब्राह्मणाका वध किया हो और इच्छा बिना प्रोखा से वध कियाहो ॥ दूसरा सरस्वती को जाना कहा सो निर्गुणी विद्या विहीन हत्यारा जो धनसे भी हीनहो जिसने किसी निर्गुणी ब्राह्मणाको मारा हो तिसके लिये आवश्यक जानो क्योंकि (तिरस्कृतो यदा विप्रो निर्गुणोऽप्रियते यदीत्यादिनामुभयवचन स्यादर्शितत्वात्) ये समुंत के वचन पहिले २४३की अधिकोक्ति में लिखेगये तिनको भी देखो=और जो मनुका यह वचनहै (जपित्वाऽन्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत्) कि अन्यतम किधी एक वेद को जपिकर सौ योजन (चारसौकोस) की यात्रा भी करै सो भी यह वही प्रकारहै जो वनमें संहिता जपना कहागया मनुके इस वचन में सौ योजनकी यात्रा अधिकहै सो चलसकने में समर्थहो तिसकेलिये समझना तहाँ वेद

का जप एकही आरुति है अर्थात् जहाँ मात्रा करनी नहीं कही उसमें तीन आरुति पाठ करना कहा ये दोनों बात एकसी बराबर हैं कुछ भेद नहीं ॥ अब जो बड़े धन-वात्र हों तिनके लिये विकल्प नीचे कहेंगे ॥ २४६ ॥

(धनाढ्यानांप्रायश्चित्तान्तरं)

पात्रेपनंवापर्यासंदद्याशुद्धिमवाप्नुयात् । आवातुश्रविसुख्यमिष्टिवैश्वानरीतथा २५०

अर्थः—यद्वा पात्रमें ठीक धन देकर शुद्धि को पावै तथा उस धनका प्रतिग्रह लेने वालेकी विशुद्धि के लिये वैश्वानरी इष्टि करनी चाहिये अर्थात् वैश्वानर देवता है जिसका ऐसा यज्ञकरे ॥ २५० ॥

२५० अधिकोक्तिः—पात्र ब्राह्मण वह कहाता है जो दान देने योग्य पात्र हो जिसके लक्षणा शास्त्रों में प्रसिद्ध और आचार मर्यादा में कहि चुके हैं तैसकी धन-वती राक आदि उसके जीवन पर्याप्त ठीक ठीक देवें कि जिससे वह अपनी अवस्था भरका निर्वाह विधिपूर्व करसके ॥ १ ॥ जिस पात्रने इस इत्याका प्रतिग्रह असीकार करके लिया हो उसको भी अपने आत्मा की शुद्धि के अर्थ वैश्वानर यज्ञ करना चाहिये सो यह नियम अग्नि होत्रोपात्र का समझना किन्तु जो अनाहितार्निपात्र होय सो अपने उस देवता का होमकरै जिसकी उपासना रखता हो (यएवाहितार्ने धर्मससवोपासनिक्खयेतिगृह्यकारवचनात्) क्योंकि गृह्य सूत्रके सग्रहकार ने लिखा है कि जो आहितार्नि अग्निहोत्री काधर्म है वही उपासनीय देवतावाले का धर्म है बराबर समझो ॥ पात्रेधन वा यह विकल्प बाची वा शब्द जो मूल श्लोक में आया तिसके ध्वन्यर्थ से यह सूचना है कि इतना धन नहीं तो सामग्री सहित घरही दान करै=यदाहमनुः=सर्वस्ववावेदयिदेवाह्मणायोपधादयेत् धनवाजीवनायालगृहवास परिच्छदस=अर्थात्—मनु ने तीन कल्प कहे हैं कि याती अपना सर्वस्व जितना धन धरमें संचितहो सब वेदवेत्ता ब्राह्मण को समर्पण करै या उस ब्राह्मण की ज़िदगी भरके अनुमान धनदेवें या निज मक्तान घरकी सामग्रियोंसे समुक्त भरापुरा दान करै तब शुद्ध होय=इसमें भी यह वियय व्यवस्था करनी आवश्यकहै कि सुपात्रकी धन का देना कहा सो उस विययमें समुझना जहाँ मारनेवाला निर्गुण और धनवान हो तथा निर्गुणकी साराहो और इसी हत्यारेके यदि पुत्रादिक वश न होतो जैसे मनुने सर्वस्व दान कहा सोभी उचित है और जो उसके पुत्रादि वश हो तो सामग्री सहित घर देना उचितहै सर्वस्व नहीं पर ब्राह्मणकी आयु भरके योग्य धनदेना यह वशके

उपस्थितहोते भी उचित है ॥ पराशरस्तु=चातुर्विधोपन्यस्तुविधिवद्ब्रह्मघातके समुद्र
 सेतुगमनप्रायश्चित्तविनिर्दिशेत् सेतुबन्धपथेभिर्सां चातुर्वर्ग्यात्समाहरेत् वर्जयित्वा
 विकर्मम्यावृद्धोपानद्विवर्जितः अहदुद्धतकर्मवैमहापातककारकः गृहद्वारयुतिथा
 सि भिक्षार्थीब्रह्मघातकः शोकान्नेयुचगोष्ठेयुशामेयुनगरेयुच तपोवनेयुतीर्थेयुनदीप्रसव
 रोयुच सतेपुल्यापयन्नेनः पुरायंगत्वातुसागरम् ब्रह्महाविप्रमुच्येत स्नात्वातस्मिन्महो
 दधौ ततःपूतोऽहं प्राश्यकृत्वा ब्राह्मणभोजनम् स्वावस्त्रपवित्राणि पूतात्माप्रविशेद्गृ
 हम्=गर्वावापिशतं दत्त्वा चातुर्विधाय दक्षिणां स्रग्शुद्धिं सवाप्नोति चातुर्विद्यानुमो
 दितः=अर्थात्-जहाँ चारों वेद आदि विद्यासे संपन्न ब्राह्मणही किसी विधि विधान
 के विज्ञाता ब्राह्मणको घातक करै तहाँ यह प्रायश्चित्त आदेश किया जाय कि स-
 मुद्रके पुल तक याषाकरै और सेतुबन्ध रामेश्वरके मार्गमें चारों वर्गके घरोंसे भिक्षा
 मांगै परन्तु खोटे कर्म करने वालोंसे न मांगै और उनको साथ नलेकर और सखी जुता
 छोड़े हुये इस रीतिसे मांगै कि मैं महापातकी कृकर्म ब्रह्मघाती हूँ घरके द्वार खड़ा
 हूँ भिक्षा पानेको और भिक्षा मांगनेके समयसे उपरालू भी जहाँ तहाँ गौओंके समूह
 पास जंगल और गौओंकी रहायसके स्थानों पास तथा ग्रामों वा कसबों और बड़े
 शहरों में होकर जहाँ निकसनाहो और तपोवन जहाँ वनमें तपस्वी रहिते हों तिनमें
 तथा तीर्थके स्थानोंमें और नदीके घाट वा भरना सोता आदि कोइसा आश्रमहो तहाँ
 सर्वथ अपना पाप सुनते हुये पुनीत सागर समुद्र सेतुबन्धको पहुँचिके उस महोदधि
 में स्नान करिके हत्यारा मुक्तिपावै वहाँसे पवित्र हुआ अपने घर जाइके ब्राह्मणभो-
 जन कराइके पवित्र वस्त्र आदि दान देकर शुद्ध हुआ अपने घर में घुसै=श्रुयवा=यह
 न होसके तो एकसौ गौसे विधि विधानसे चारवेदके विज्ञाताको दक्षिणा देकर भी
 शुद्ध होताहै क्योंकि चातुर्विध दानपात्र के आशीर्वाचनों से शुद्धि प्राप्त होती है-सो
 यह दोनों कल्प भी उसीके समान समुक्तने जैसा योगीश्वरके मूलश्लोकमें कहागया
 कि जो धनवाच और विद्यासे हीनहो तो धनदान करै ऐसा यहाँ विद्वांस हत्यारे का
 चर्चाहै कि यातो समुद्रकी यात्रा करै या एकसौ गौसे दानकरै ॥ १ ॥ जोकि समुद्र
 का यह वचन है कि-ब्रह्महासकत्तरकृच्छ्रचरेदध शायी त्रियवशी कर्मवेद को
 भैसाहोरे विध्य नदीपुलिन सगमाश्रम गोष्ठ पर्वत प्रक्षवसा तपोवन विहारीस्यास्था
 न वीरासनी सवत्सरे पूर्यो हिरण्यमणि गोधान्यतिलभूमि सर्पी त्रि ब्राह्मणोभ्योददत्
 पूतोभवति-तदपिहनुमैर्खस्यवनवतोजाति माव्रज्यापादनेद्रस्य=अर्थात्-सुमन्तु ने
 जो कहा कि-ब्रह्महत्यारा एकवर्ष भर कृच्छ्रव्रत करै वरती में सोवै तीनों संध्या में

अपनी जाति के साथ किये जायँ या छोटी जातों के साथ किये जायँ उनके मध्ये चौथाई आदि कम करिके सभी आदिका नियम इस वचनमें दीकरहा (चार प्रकार के साहस मनुष्य मारडालना १ प्रबलता से चोरी करना लूटना आदि २ पगड़े स्त्री के साथ प्रबलता करनी ३ प्रतिलोम मालीदेना आदि कृवचन ४) इन अपराधों में चौथाई आदि कमका नियम नहीं होसक्ता यह तात्पर्य है ॥ १० ॥ तथैव मूर्धावसिक्त आदि अनुलोम जातों का प्रायश्चित्त उनके दंडके अनुरूप विचारना चाहिये (दंड प्रणयनं कार्यं वर्गा ज्ञात्युत्तराधरेः) यहवचन व्यवहारकांडमें आचुका है इसीसेउनका दण्ड विचार होता है प्रायश्चित्त इस रीतिसे विचारा जाय कि जहां मूर्धावसिक्त ने ब्राह्मणका वध किया हो तो उसको ब्राह्मणसे अधिक और क्षत्रीसे न्यून प्रायश्चित्त चाहिये तिससे वारहवर्ष के जगह अठारह वर्ष निश्चितहुये इसी नमूनेसे औरोंकी भी समुक्ति लेना और स्त्री बालक बूढ़ा रोगी होनेआदिके विचार सबके साथकरने जो प-हिले लिखचुके हैं ॥ इसी मार्गसे प्रतिलोमोत्पन्न जातोंका प्रायश्चित्त बढ़ाकर ऊहा करलेना चाहिये ॥ तथैव आयमके निवासियों को अंगिराने विशेषता दर्शाई है—यथा हांगिरा=गृहस्थोक्ता निपापानि कुर्वन्त्यायमिगोयदि शौचवच्छेदवनंकुर्यु र्वाव्रह्मनि दर्शनात्=अर्थात्—गृहस्थोंके मध्ये कहे पाप जो ब्रह्मचारीआदि आयनीलोगभी करें तो अपने अपने शौचकेतुल्य पापोंका शोधन प्रायश्चित्त करें यह ब्रह्मनिदर्शन से प-हिले समुक्ता (ब्रह्मके निदर्शनसे अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे पहिले) इसवातका यह तात्पर्य है कि जब तक अपने आयम धर्मोंकी साधनासे पूरे सिद्ध न होचुकेहों केवल अभ्यास किया करतेहों तभी तक अपने शौचके अनुसार वेही प्रायश्चित्त करें जो गृहस्थोंके निमित्त कहेगा और आगे कहेजायेंगे परन्तु जो बिरला कोई ब्रह्मचारी या वानप्रस्थ य यती संन्यासी अपने धर्मकी साधना अति कालसे करते करते योग धारणा आदि परी सिद्धिको पहुंचिके ब्रह्मज्ञानमें पूरा और ब्रह्मस्वरूप की तन्मयतामें दृढ़ होगया हो उसके लिये यह गृहस्थोंवाले प्रायश्चित्त नहींहैं क्योंकि प्रथम तो ऐसे महात्मा से महापाप होना भी सम्भव नहींहै तथापि जो कदाचित्काल जगदीश की दृष्टिसे कोई सा निमित्त आनि परै तब उनका नैमित्तिक प्रायश्चित्त भी उन्हीं के हाथ में हरवक्त रहता है कि बहुतर प्राणायाम आदि योगोंकी धारणा से विशुद्ध होंगे और अपने आप विशुद्ध करनेपर आच्छदहोंगे यहा अपने आप उपेक्षा देखिपरनेमें उन्हीं के परिकर वालोंकी प्रेरणा उनपर होगी कि जैसे गृहस्थी को गृहस्थी पतित कहि कर त्यागि देताहै अर्थात् गृहस्थी साधकी प्रेरणा उनपर उचित नहीं) इस प्रकार के

विशियोंको छोड़कर शेष आग्रिमियोंकी शौच के तुल्य कहा तिसका यह तात्पर्य है (सतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् त्रिगुणं वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणं) इस वचन से आचार मर्यादा में कहि चुके हैं कि यह शौच का प्रमाण कहा सो गृहस्थोंका जानना और ब्रह्मचारियों को इससे दूना चाहिये वनस्थों को तिगुना चाहिये यती संन्यासियों को चौगुना—इसी के तुल्य प्रायश्चित्त भी दूना तिगुना चौगुना समुझलेना ॥ परन्तु ब्रह्मचारीको सोरह वर्षकी अवस्था उपरान्त दूना चाहिये क्योंकि (बालोवाध्यूनयोद्दिशः) सोरहसे कम अवस्थामें बालक कहाता है (प्रायश्चित्ताद्मर्हति) बालक बूढ़े आदि आधे प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं यह पहले कहि चुके ॥ ० ॥ यह शंका न करना चाहिये कि यती को बारह वर्ष का चौगुना अरतालीस वर्ष करनेका अवकाश मिलसकना सम्भव नहीं क्योंकि इतनी अवस्था उसकी कहां रही बीचहीमें देह छूटकर प्रायश्चित्त पूरा न होगा तिससे प्रारम्भ न करना चाहिये—सुनो प्रारम्भ करना चाहिये क्योंकि प्रारम्भ करिके मरजाने पर भी पापका विनाश होजाता है—तथाच हारीतः=प्रायश्चित्तेन्यवसिते कर्ता यदि विपद्यते पुनस्तदहरेवासा विहलोकपत्रच=व्यासोप्याह=धर्मार्थयत्नमानस्तु न चेच्छक्नोति सा नवः प्राप्नो भवति तत्पुण्य मवनेवास्तिसंशयः=अर्थात्—प्रायश्चित्त करने पर निश्चय से उत्पन्न होनेमें जो कर्ता मरजाय तो वह उसीदिन पवित्र होजाता है इसलोक और परलोक में भी यह हारीतनेकहा और=व्यास भी कहिते हैं कि=धर्म के निमित्त यत्न करता हुआ यदि कोई पुरुष न कासकौ तोभी उसको किये तुल्य पुण्य फल मिलता है इसमें संदेह नहीं ॥ २५० ॥

॥ अब निचले परिच्छेद में और भांतिके पातकमें भी इसी ब्रह्महत्या वाला प्रायश्चित्त अति देय किया जायगा ॥

स्नानकरै अपना कर्म सुनाता रहै भिक्षा भोजन करै दिव्य नदियों के किनारे और नदियों के संगम स्थानपर और जहां तपस्त्रियोंके आश्रम हों गौओंका निवास हो पर्वत के आश्रम और-भरने और तपोवन हों सबमें विहार करता रहै स्थानपर दिके तहां आसन का वीर होके रहै इसतरह एकवर्ष पूरा होनेपर सोना चांदी मरिगज अन्न तिल धरती धी ये चीजें ब्राह्मणों को दान करता हुआ पवित्र होजाता है—सो यह नियम भी ऐसे विषयपर समझना जहां मारने वाला मर्ख और दनवान होऔर अपने वर्रा जाति माय की इत्या करीहो ॥ और जो वसिष्ठ का यह वचनहै (द्वाद-शरात्रमन्त्रकोद्वादशरात्रमुपवसेत्) कि बारह दिन जलपीकी रहै फिर बारह दिन कोरा उपवास करै • सो यह कल्प ऐसे विषय पर आरुढ़है कि जहां मन से ब्राह्मण का सारङ्गालना चाहि के मारने गया फिर आपही कुछ शोचि के विना मारे लौट परा हो जैसा २५२ मूलप्रलोक में कहेंगे तहां देखना ॥ और जो यद्विशद सतका वचन है (यंतु ब्राह्मणांश्चाशूद्रहत्यावृत्तचरेत् चांद्रायणांवाकुर्वीत् पराकृत्यमेव वा इति तदप्रत्यानेय पुंस्त्वस्य सप्रत्ययवचेद्व्यं) कि नृपुंस्वाह्मणको मारि के शूद्रकी इत्याबाला व्रतकरै या चांद्रायण करै या दो पराक साधे—सो यह उस विषय पर विचारना कि जहां मरे ब्राह्मण को नामदीं निपट असाध्य हो अर्थात् पुंस्त्व चिकित्सा आदि से न होने योग्य ठहिरै और प्रत्यय सहित वध किया गया हो—इसी विषयपर अप्रत्यय बध होने मध्ये वृहस्पतिक का वचन है (अरुणायाः सरस्व-त्याः संगमेलोकादियुते युष्टोत्पियवरास्नायी विराषोपोयितो द्विजः) अर्थात्—अरुणा और सरस्वतीके संगमका स्थल जो लोकमें प्लसडोप से विख्यात है तिसमें द्विकाल स्नान करने और तीनरात्रि निराहार व्रतकरनेसे द्विजाती शुद्ध होताहै—इसीप्रकार और भी स्मृतियोंके वचन द्वंद्विकर जो विषय हों तिनकी व्यवस्था बुद्धिमानीसे कल्पित करनी चाहिये जो परस्पर समान हों तिनका विकल्प मानना चाहिये ॥ • ॥ ध्यान करो कि बारह वर्षकी आदिलेकर वनवान पर्यंत जो प्रार्थप्रवृत्त लिखे गये सो सब केवल ब्राह्मण इत्यारे के निमित्त में समझने किन्तु सबी आदिके लिये दूना आदि नियम समझना सो अंगिराके वचनमें देखो—यथाहंगिराः—पर्याया ब्राह्मणानां तु सारा जां द्विगुणामता वैश्यानां त्रिगुणा प्रोक्ता पर्यवचनव्रतं स्मृतम्—अर्थात्—ब्राह्मणोंकी पर्यंत सभाका परिमान जितनाहो उससे दूना राजाओंकी सभाका और त्रिगुणा साहकार वैश्योंकी सभामध्ये कहाहै और पर्यंत के समान सबका व्रत भी होय दूना त्रिगुना—इसवार्ता से यह तात्पर्य ठहिरा कि जिस दशा में दो ब्राह्मणों के परस्पर एकमारा

जानेमें दोनोके गुरा लक्षणा आदि विचार से जो प्रायश्चित्त ठहरे वही प्रायश्चित्त उसी गुरावाले क्षत्री को दूना उपदेश किया जाय जिसने उसी गुरा वाला ब्राह्मण मारा हो तथा वही प्रायश्चित्त उसी गुरावाले वैश्यको तिगुना उपदेश किया जाय जिसने उसी प्रकारका ब्राह्मण मारा हो और इसी मर्यादासे यह भी नियम निश्चित हुआ कि जो जो प्रायश्चित्त ब्राह्मणोंके परस्पर नियतहो चुके वही प्रायश्चित्त उत-नेही परिमारासे उस दशमे क्षत्री आदिको भी दिये जाय कि जब उनके अपने वर्या-मात्रमें परस्पर कोई उसी वर्याका मनुष्य माराजाय (इसका विषये व्योरा नीचे चतुर्विंशतिके वचन से भी समझना) और इसी मर्यादासे जहाँ क्षत्री वैश्य या वैश्य और शूद्र में ऊँचे नीचे के विरुद्ध से ऊँचा मारा जाय तहाँ भी दूना आदि आदेश करना जैसा ब्राह्मण और क्षत्री आदिके मध्ये अभी कह चुके—यह सब बोय की बड़ाई के अनुसार प्रायश्चित्तों को कल्पना होती है जहाँ कहीं दोय की बड़ाई छोटाई पहिँ-चावने में संदेह खड़ा होय तहाँ दराडकी बड़ाई से भी दोयकी बड़ाई समझी जाती है जैसा व्यवहार में कह चुके हैं कि (प्रतिलोमापवादयुडिगणचिगुणोदमः वर्णानामा नुलोभ्येचतस्मादर्धार्धहानितः) अर्थात् प्रतिलोम अपवादोंमें कि जहाँ नीचावर्ण ऊँचे वर्ण का अपराध करे तहाँ दूना तिगुना दराड है अर्थात् शूद्र जो वैश्यका अपराधी होय तिस पर दूना जो क्षत्री का अपराधी होय तिसपर तिगुना इसी तरह वर्णोंके अनुलोम अपराध में कि जहाँ ऊँचा वर्ण नीचेका अपराधी होय तहाँ आधा आधा दराड घटजाता है यह व्यवहार मर्यादा परिपारीमें देखो ॥ ० ॥ और जो चतुर्विंशति मतका वचन है कि (प्रायश्चित्तयदान्नात ब्राह्मणस्य महर्षिभिः पादोनसत्रियः कुर्या दर्ववैश्य समाचरेत् शूद्रः समाचरेत्पादमशयेष्वपि पाप्मसु इति तत्प्रतिलोमानुसृतचतुर्विंशसाहसव्यतिरिक्तवियथ मिति विज्ञानेश्वरः) अर्थात्—चतुर्विंशति मत वालोने कहा है कि महर्षियोंने जो प्रायश्चित्त ब्राह्मणको बताया वही प्रायश्चित्त चौथाई कम करके क्षत्री करे और वैश्य आधा करे शूद्र चौथाई करे यह अशेष सभी पापोंमें समुभक्ता इसपर विज्ञानेश्वर व्यवस्था देते हैं कि यह नियम उन पापों को छोड़ि के समुभक्ता जो अपराध प्रतिलोम छोटी जातोने ऊँची जातोंके साथ किये हों और उनको भी छोड़िके समुभक्ता जो चारभाँति के साहस व्यवहारकाण्ड में लिखे गये क्योंकि जो ऊँची जातोंके साथ किये गये तिनका प्रायश्चित्त ऊपर आदिको वचन से दूना तिगुना ठहरे चुका और साहस चारों किसी के साथ किये जायें तौभी बड़े अपराध हैं उनका भी दूना तिगुना ठहराना चाहिये इनसे उपरालू और सब अशेष पाप जो

अथ क्वचिद्व्रह्मवधादन्यथापि ब्रह्मवध प्रायश्चित्त तिदेशप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चिंशः ३० ॥



इस परिच्छेदमें पूर्वोक्त ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त विरले उनपापों पर
भी अतिदेश दिया जायगा जो साक्षात् ब्रह्मवध नहीं हैं ॥

(यागस्थत्रयियातकादिष्वतिदेशः)

यागस्थक्षत्रियविद्व्यातीचरेद्ब्रह्महणि व्रतम् । गर्भहाचयथावर्णतपाऽऽप्रेयोनिपूदकः २५१

अर्थः—यज्ञकर्म पर आरुद्ध सत्री या वैश्यकी धात करनेवाला ब्रह्महत्या का व्रत
करे सब गर्भका मारनेवाला यथा वर्णको अनुसार तथा (आत्रेयी) रजस्वला आदि
स्त्री का धव करनेवाला भी वर्णको अनुसार प्रायश्चित्त करे ॥ २५१ ॥

२५१ अधिकोक्तिः—यहां याग शब्दसे सोमयाग लिया गया है कि सोमयाग
की दीक्षा प्रारम्भ होनेसे लेकर समाप्ति पर्यन्त मध्यकाल में जो सत्री या उस भाति
यज्ञमें लगे हुये वैश्यको मारें सो ब्रह्म हत्यारे मध्ये वारह वर्ष आदि व्रत कहा गया
वही करे (ब्रह्महृणापुरुषेयद्वत्रतमुपविष्टं द्वादशवार्यिकादितवेचरेत्)—यद्यपि याग
शब्दसे सब यज्ञ समुक्त जाते हैं तथापि यहां सोमयागही माना गया है क्योंकि (सवन
गतौ चराजन्त्यवैश्याविति वासिष्ठे सवनत्रयसंपाद्यस्य सोमयागस्यैव निर्दिष्टत्वात्) वासिष्ठ
की स्मृति में सोमयागही का निर्देश इस रीतिसे हुआ है कि सवन में लगे हुये सत्री
वैश्यको इत्यादि कहिकर तीन सवनसे पूरा होने योग्य सोमयाग दद्यात्वा है—इसमें
भी=बड़े छोटे व्रत वारहवर्ष आदि के जैसे ब्रह्महत्या पर कहे गए तैसे बड़े छोटे आदि
यहां भी हन्ताकी जाति शक्ति गुरा आदिकी अपेक्षासे विचार कर लेने चाहिये—
ऐसेही गर्भका धव करने और आत्रेयीका धव करनेमें भी समुभूता—परन्तु—इसविषय
पर कोई प्रायश्चित्त वह नहीं आरुद्ध है जो मरणांतिक अग्निमें जलित जाना आदि
कहे गए थे क्योंकि योगीश्वरकी मूलश्लोकमें व्रत करना कहा गया है इसी कारणासे
यह व्यवस्था सिद्ध होती है कि जिसने बिना इच्छाके वध किया हो तिसकी वारह
वर्षका व्रत रहा और जिसने इच्छा से चाहिके वध किया हो तिसको मरणांतिक
प्रायश्चित्तके बदले वारहवर्ष का दूना चौबीस वर्ष व्रतही आदेश किया जाय सोभी

हे (अग्नि मुनि के गोत्र की सब स्त्रियों कोभी आग्नेयी कहितेहैं रजस्वला होनेविना भी उनके सारने का विशेष पाप समझना जैसा रजस्वलाका कहिचुके) यथाह वि-
 प्लाः=अग्निगोत्रजावानारोम=यह बातभी अगिले वचन में स्पष्ट है=यथा=ब्राह्मणा-
 भंवधे ब्राह्मणयाग्नेयीवधेचब्रह्महत्याव्रतं (अवसावियगर्भवधे सवित्र्याऽऽग्नेयीवधेचस्य
 हत्याव्रतमेवमन्यवापि) अर्थात्-ब्राह्मणा का गर्भ बध करने में और ब्राह्मणा जो
 आग्नेयी रजस्वला या साक्षात् अग्निके कुलकी हो तिसके बध करने में ब्रह्महत्या का
 व्रत करे (इसमें इसी रीति से यह भी जोड़ि लेना कि सभी का गर्भ बध करने और
 सवाराणी जो आग्नेयी रजस्वला हो तिसके बध करनेमें सभी की हत्या वाला व्रत करे
 इसी तरह वैश्यआदि मेंभी जोड़ि लेना) यह प्रयोजन यहांनहींहै कि रजस्वला मारी
 गईहो क्योंकि यद्यपि ऊपर के वर्णानमें आग्नेयी ऋतुज्ञाता मात्र प्रतिपादन करोगई
 तथापि ऐसा मत समझना किंतु इस वार्ता का यह तात्पर्य है कि जितनी अवस्था
 तक रजो धर्म होता बना रहे उस अवस्था को भीतर जो बध करे तो यह आग्नेयी बध
 कहावे क्योंकि अनेक संतान होने संभवहीं अर्थात् जिस स्त्री का सासिकधर्म निपट
 बंद होगया हो सो आग्नेयी नहींहै उसके बधकरने में सामान्य स्त्री बध कहावे और
 प्रायश्चित्त भी उपपातकों वाला करना ठीकरे क्योंकि निपट कोई भी संतान होने
 की आशा नहीं रही यही न्याय दाय भाग के अनुसार ठीक ठीक है अन्यथा जो
 केवल उन्हीं तीनि दिवसों में गर्भ होना सम्भव जानि के आग्नेयी ठाँहाओगे तब
 यह अत्यंत प्रबल दूयशा खड़ा होगा कि यदि रजस्वला होने से पांच दिन पहिले
 उसकाबध किया जाता तोभी अनेक गर्भ होना संभव थे क्योंकि अभी दश वर्तक
 जीवतीरही आती उसमें १२० एकसौ बीस बार रजोधर्म होता और अनेक संतान
 होसकती फिर क्योंकिर उसके हुन्ता को छोटा सा प्रायश्चित्त कराया जाय) इस
 व्यवस्था की सूक्ष्मता पर दृष्टि देनी चाहिये कि यद्यपि स्त्रियों की हत्या पुरुषोंसे
 आधी कहिचुके तथापि आग्नेयी बध करने से पुरुषकी बराबर हत्या होती है ॥०॥
 योगीश्वर के मूलश्लोक में (गर्भहाच) यह चकार जो फालतू रहा तिसके ध्वन्यर्थ
 से भूँटी गवाही देने वाले आदिभी समझने=यथाहमनुः=उत्काचैवानृत्तंसादये प्रतिर
 भ्यगुरुंतथा अपहत्यचनिसंप्रकृत्वाचछीमुद्वह्वं=अर्थात्-जिन मुकहमात में असत्य
 बोलनेसे किसी वर्राके सनुष्यको मौत दगाड मिलना सम्भवहो ऐसी गवाहीमें असत्य
 बोलिके और शुरुके साथ क्रोध करिके और ब्राह्मणाकी बरोहरि हजम करिके और
 स्त्री तथा मित्रका बध करिके ब्रह्महत्याका व्रतकरे-इसमें जैसे असत्यकी विशेषता

बहुत बड़ी कही और गुरुसे क्रोध करना भी विशेष है और धरोहरि भी ब्राह्मण की ठहराई तैसे स्त्रियां भी विशेष लक्षणावाली समझनी क्योंकि प्रायश्चित्त बहुत बड़ा है तिससे आहिताग्नि पुरुष अग्निहोत्रीकी भार्या और पतिव्रत आदि गणसे संयुक्त जो स्त्री हो और सबसंस्था जो यज्ञपर समुद्यत हो रही हो तिसका वध समझौ सब स्त्रियों का नहीं (क्योंकि आश्वेयीकी अभी ऊपर कह चुके और उससे उपरालू अनार्त वा स्त्रियां उपपातकों में गिनती हैं तिससे इन दोनोंसे उपरालू जो विशेष लक्षणा वाली हों तिनका वध मनुने दर्शाया है तिसका स्पष्ट व्यौरा आगे अंगिरा और पराशर के वचनों में देखो) यथाहंगिराः—आहितारनेर्द्विजाश्रयस्य तथा पत्नीर्मनदिताम ब्रह्म हत्याव्रतकुर्यादश्वेयीयस्तथैव च=सवनस्थां स्त्रियहत्वा ब्रह्महत्याव्रतचरेदिति पराशरोपि =अथति—द्विजातियोंमें अग्रगण्य अग्निहोत्री की पत्नी तथा और जो पतिव्रत आदि गणोंसे अनिदित हो तिसकी और आश्वेयीकी मारने वाला ब्रह्महत्याका व्रत करै यह अंगिराने कहा=सवनस्था जो किसी प्रकारके यज्ञ पर उताऊ हो ऐसी स्त्रीकी सारिके ब्रह्महत्याका व्रत करै यह पराशरने कहा=इन वचनोंसे यह तात्पर्य ठहरा कि सवन-स्था स्त्री और अग्निहोत्री और पतिव्रता और आश्वेयी इनकी मारने वाला ब्रह्म हत्याका प्रायश्चित्त करै यह अतिदेश कहा गया इसी से यह बात भी स्पष्ट हुई कि दोसौ छत्तीस २३६ मूलश्लोक में जो स्त्रियों का वध कहा था सो इन उत्तम स्त्रियों से उपरालू का समझना=यहां भी=याही तर्क उठाता है कि (ब्राह्मणानहंतव्यः) ब्राह्मण न मारना चाहिये यह निषेधका वचन जो नियत है तिसमें कोई ऐसा चिह्न नहीं है जिससे लिंग वचन आदिकी विशेष विवक्षा जानी जाय और ब्राह्मणकी जाति भी स्त्री पुरुष दोनों मिलिके बिना विशेषताके होती है—उस निषेध का अति क्रम करने के निमित्त पर प्रायश्चित्त की विधि जो (ब्रह्महादादशावदानि) इत्यादि पहिले कहि चुके सो स्त्री पुरुष दोनोंकी जुदी जुदी हत्यापर पहुँचती है तो फिर किसलिये आश्वेयी को मारने वाला यह अतिदेश वचन कहा गया—सुनो—इसलिये कहा गया कि ब्राह्मणोंमें ब्राह्मणत्व के होते हुये भी जो ब्राह्मणी आश्वेयी नहीं तिसके वध होने में महापातकोंका प्रायश्चित्त निकासि देनेके लिये वचन कहा गया इसीसे दोसौ छत्तीस श्लोकसे उपपातकोंमें उसका पाठ और प्रायश्चित्त भी उपपातकों वाला सूचित हुआ है (और अतिदेश वाले जो अपराध हैं तिन में केवल प्रायश्चित्तही का अतिदेश दिया गया है किन्तु पातित्य का अति देश नहीं इससे पातित का त्याग आदि कार्य इसमें नहीं होता इति विज्ञानेश्वराचार्यः ॥ २५१ ॥

अब नीचे यह कहेंगे कि मारनेको जाइके लौटि आवैं सोभी व्रतकरै
और विरली हत्यामें दूना व्रत करना होगा ॥

(अहननेपिकचित्प्रायश्चित्तंहननेतुकचित्रद्विगुणं)

चरेद्रुतमहर्षवापिघातार्थचेत्समागतः † द्विगुणं सवनस्येतु ब्राह्मणे व्रतमादिशेत् २५२

अर्थः—न मारिके भी व्रतकरै जो घातके लिये पास आयाहो † सवनस्य ब्राह्मण
के मारनेमें द्विगुण व्रत आदेश करै=अर्थात्—यथावर्णके अनुसार यह संबन्ध पहिले
श्लोक में से चला आताहै कि यदि कोई किसीको शस्त्र लेकर मारने उसके समीप
तक गया हो और बिना मारे कुछ सोचिके लौटिआवैं या उसके न मिलने से घात
खाली चलाजाय तो यह हत्यारा ठहिरा तिससे जिस वर्णके मनुष्य को मारने गया
उसी वर्णकी हत्या में जो प्रायश्चित्त का व्रत लिखा हो सो इसको करना चाहिये
ब्रह्महत्या या सवहत्या आदि के प्रायश्चित्त करै शेष अधिकोक्तिमें देखो † सवनस्य
अर्थात् सोमयाग में स्थित होते ब्रह्मण को जिसने मारा हो तिसके लिये बारह वर्ष
आदि का दूना व्रत बताया जाय ॥ २५२ ॥

२५२ अधिकोक्तिः= सृष्ट्रप्रेक्षेत्राह्मणाववे अहत्वा पीति गौतमः=अर्थात्—गौतमने
भी कहाहै कि जो ब्राह्मण को वध करने में गयाहो फिर चाहें किसी हेतुसे न मारि
पावैं तोभी वही पाप है जो मारने में होता—अवितर्कः—क्यों जी मारदारने और
न मारनेमें भी एकही प्रायश्चित्त तो नहीं ठीक है—यह सत्य कहा इसी लिये औ-
पदेशिकों से आतिदेशिकों की न्यूनता अनुसार उनमें चौथाई कम करिके ब्रह्म-
हत्या आदि के व्रत होते हैं जो बारह वर्ष आदिके कहे गये यह प्रबंध पहिले २३१
दोसोइकतिस की अधिकोक्ति में लिख चुके तहां देखो (औपदेशिक विषय वे
कहाते हैं कि जिनके ऊपर मुख्यतासे उपदेश किया गया हो जैसे ब्रह्महत्याके ऊपर
बारह वर्ष आदिके अनेक उपदेश किये गयेहैं और आतिदेशिक विषय वे कहाते हैं
जिनके ऊपर मुख्यता से उपदेश नहीं कियागया किसी और का उपदेश लेकर उस
पर भी उतार दिया गया सो अतिदेश होताहै उसी अतिदेश के प्रभाव से वह विषय
भी आतिदेशिक कहाता है जैसे २५१ के श्लोक वाले विषय पर ब्रह्महत्या का
अतिदेश उतार दिया गया तिससे यह विषय आतिदेशिक ठहिरा यह पूर्वार्थ की
अधिकोक्ति पूरी हुई अब आगे उत्तरार्ध की कहेंगे † सवनस्य के मारेजाने में दूना व्रत
कराना कहागया तहां मूलश्लोकमें यद्यपि सवनस्य ब्राह्मणके साथ कोशिविगेषण

ऐसा नहीं है कि जिससे उसका गुणावान या निर्गुण होना आदि विग्रेय चिह्न पायाजाय या इंताके विशेषरा जाति आदि कुछ समझे जायें तथापि दोसौतेता-
लिस २४३ की अधिकोक्ति और दोसौ सताइस २२७ की अधिकोक्तिमें पहिलीकही
रीतीसे यहांभी सवनस्थ ब्राह्मण और उसके इंताकी जाति शक्ति गुण विद्या आदि
और बड़े छोटे व्रतों की अपेक्षासे व्यवस्था निर्णाय करनी चाहिये क्योंकि मुख्यनिय
जो एक स्थलपर कहाजाता है वही सर्वत्र काम आता है-इन बातों का दृष्टान्त जैसे
अति बड़े या बालकने मारा तो उनको वृद्धापन और बालपनके हेतुसे चौबीस वर्ष
की आधी बारहवर्ष रहिगई इत्यादि=इसी दोसौवावनके श्लोकमें उपदेश और अति-
देश दोनों मजबूत हैं तिनको सोचो कि उत्तरार्द्धमें सवनस्थके मारनेपर जो दूना प्राय-
श्चित्त बताया सो तो साक्षात् उपदेश है किसीका अतिदेश इसमें नहीं है तिससे यह
पराही प्रायश्चित्त कराया जायगा केवल मारनेवाले की अवस्था आदि के अनुसार
रिश्चायत होगी और नहीं-और इसी मूलश्लोक पूर्वार्द्धमें जो मारने की पहुंच के न
मारिपावें तिसके लिये जो ब्रह्महत्या वाले व्रतका आचरण कहा सो उपदेश नहीं है
अर्थात् अतिदेश उतार दिया है तिससे यद्यपि पूरे बारह वर्षका अतिदेश कहा तो भी
परा नहीं कराया जाय किन्तु चौथाई कम करिके नौवर्ष का व्रत कराना होगा यही
तात्पर्य दोसौ श्रुतीसकी अधिकोक्ति में दर्शाइ चुके सो सर्वत्र समझते रहिना ॥ ० ॥
दूसरी यह व्यवस्था याद रखो कि ब्रह्महत्या के समान जो पाप दोसौ अट्ठाइस मूल
श्लोकसे शुरुआंका अधिसेप आदि कहेगए सो सब आतिदेशकों से भी कुछ हलुके
पाप हैं तिससे उनमें बारह वर्ष आदि का आधा कम करिके व्रत करायाजाय क्योंकि
एक चौथाई तो आतिदेशिकमें कम होचुकी ये उनसे भी हलुके छोटे पातक हैं ॥ २५२ ॥

इति ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्त प्रकरणां ॥

इस प्रकरणा में समस्त दश परिच्छेद हैं इक्कीस से तीसतक तिनमें तेइस तक तीन
परिच्छेद परलोक और नरक आदि के स्वरूप मध्ये नियत हैं चौबीसवें परिच्छेद से
पांच महापातकियों के लक्षण कहि कर यहां तक ब्रह्महत्या का निपटारा किया
गया-अब आगे मुरापान महापाप का प्रायश्चित्त और यथा क्रमसे सभी पापोंके
प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

अथ सकाम सुरापानमहापातक प्रायश्चित्त

विवेको नाम परिच्छेदः एकत्रिंशः ३१

इस परिच्छेद में उन महापापों के प्रायश्चित्त जाने जायेंगे जो निम्नलिखित
मदिराके इच्छा सहित पीने से होते हैं अर्थात् उत्तम और मध्यम,
और सुरा इनसे उपरालुसभी मद्यों के ॥

(सुरापान प्रायश्चित्तानि)

सुराम्बुधृतगोमूत्रपयतामग्निसंनिभम् । सुरापोऽन्यतमपीत्वामरणच्छुद्धिमृच्छति २५३

अर्थः—मदिरा•जल•घृत•गोमूत्र•दुग्ध•अग्निके समान तपे हुये इनमें किसी एकही को पीकर सुरा पीनेवाला सरजाने से शुद्ध होता है—अर्थात्—जिसने सुरापान किया हो तिसका यही प्रायश्चित्त है कि मदिरा आदि पांच द्रव्यों में से किसी एकही को गरम करि खूब तपाइके पीजावै जिससे हृदय जल के सरजाय तब शुद्धि उसकी होय ॥ २५३ ॥

२५३ अधिकोक्ति—गोमूत्र के साथ कड़िने से घी दूध भी गायके लेने चाहिये तथा मूत्र गरुका हो बेलका नहीं—यह पीना उसको भीगे वस्त्र पहिन के करना चाहिये—तदाह पैठीनीसः—सुरापआर्द्रवासाश्च अग्निवर्णांसुरांपिवेत=अर्थात्—सुरापीने वाला पापी भीजे वस्त्र पहिने हुये अग्निके समान खूब तपी हुइ सुराको पीवै=प्रचेताने लोहेका पात्रभी कहा है—यथा—सुरापोऽग्निवर्णां सुरासायसेनपात्रेणावापिवेत=अर्थात्—सुरा पीनेवाला अग्निके रूपसमान तपाइ हुइ सुराको लोहेके वासनसे पीवै तब शुद्ध होय=यह प्रायश्चित्त भी उसको है कि जिसने एकही बार सुरापी हो=तदा हांगिराः—सुरापानंसकृत्कृत्वा अग्निवर्णांसुरांपिवेत=अर्थात्—एकही बार सुरा पीकर यह प्रायश्चित्त करै कि अग्नि के समान सुरापीवै=और जो वशिष्ठका यह वचन है कि (अभ्यासेत्सुराया अग्निवर्णांसुरांपिवेद्विजः) अभ्यास से बारम्बार सुरा के पीने में हिजाती अग्नि के तुल्य सुरा पीवै सो यह वचन मुख्य सुरा से उपरालु मद्यों के अर्थात् गोडी और माद्यों के पीने मध्ये समझना ॥ सुरापान का प्रायश्चित्त जो

कहा गया सो उस दशापर आरुद्ध समझना कि जिसने इच्छा सहित सुरा पी हो
 क्योंकि अगले वृहस्पति के वचन से यही तात्पर्य है—यथाह वृहस्पतिः=सुरापाने
 कामहतेज्वलतींतांविनिक्षिपेत् सुखेतयाविनिर्दग्धे मृतः शुद्धिमवाप्नुयात्=अर्थात्—
 इच्छा से सुरापान करने में जलती हुई सुराकोही सुखमें छोड़े तिससे हृदय जल
 जाने से सरिके शुद्ध होय=और जो मनु का वचन है कि (सुरापीत्वादिजोमोहाद-
 ग्निवराणांमुरांपिबेत्) इसमें जो मोहसे पीकर=ऐसा कहा सो इसलिये कि शास्त्रार्थके
 तात्पर्य की न जानिके जिसने पीहो ॥०॥ इसमें यह विचारना चाहिये कि सुराशब्दजो
 है सो सभी मद्यमात्रपर आरुद्धहै या गौडीगुड़की बनी माधवी महुआकी बनी पैँछी धान
 आदि पिसान की बनी केवल इन्हीं तीन मद्यों पर अथवा इनमें भीकेवल पैँछी पर
 आरुद्ध है—तहां—कितने सक्त बिले ऐसा कहते हैं कि सुरा शब्द सभी मद्योंका बोव-
 क है इस तर्कसे कि वाशय का वचन जो ऊपर लिख चुके तिसमें सुराका अभ्यास
 जो बार बार का पीना कहा वह गौड़ी १ माधवी २ पैँछी ३ तीनों से उपरालू छोटेम-
 द्यों परभी प्रयुक्त दहिा—तिससे बड़े छोटे सभी मद्य सुरा कहिने से समझ जासके
 है—और यह शंका नकरनी चाहिये कि वह प्रयोगहीगौरा मद्यमहै क्योंकि सभीमद्यों
 से मद पैदा होनेकी शक्तिरूपी उपाधिसे सर्वत्र मुख्यताही सिद्ध होनेमें गौरात्व कहिना
 अन्याय दहिता है सो यह न्याय अयुक्तहै ठीकतहीं क्योंकि पुलस्त्यमुनि के वचनों
 को देखीं=यथाह पुलस्त्यः=पानसंद्राक्षमाधूको खार्जूरतालमेसवम मधुजसैरमारियंमेरे
 यंनालिकेरजस समानानिविजानीथान्मद्यान्पेकादशेवतु षादशन्तुसुरामद्यंसर्वेयामव
 संस्मृतस=अर्थात्—ये मद्योंके नामहैं कि पानस जो कटहर के दूधसे बनता हो १ द्राक्ष
 जो दाखसे बने २ साधूक जो महुआसे बने ३ खार्जूर मद्य जुहारे खजूरसे बनता है ४
 ताल मद्य जो ताड़ीसे बनता है ५ ऐसव जो ईल गन्धेका बनताहै ६ मधुज सहत्मे ७
 सैर जो सीरासे बने ८ आरिय जो मट्ठा और अनेक फल फूलोंके अरियसे बनता है ९
 मेरेय जो मिरादेशकी प्रक्रिया से धात की फूल आदि कड़े चीजों से बनता है १०
 नालिकेरज नारिअर के दूधसे बनताहै ११ इन ग्यारह मद्योंको एकसां बराबर जामें
 कोई इनमें कम दर्जेका नहींहै और बारहवां सुरा मद्यहै जो सबसे अधम ओछा कहा
 गयाहै इस प्रकारसे पुलस्त्यने सुराको एक प्रकारकी विशेषता निर्देश करी है इससे
 भी सुरा शब्दका प्रयोग मद्यमात्र सभीमें गौरा पायाजाता है=दूसरे लोग यों कहिते
 है कि=पैँछी गौड़ी माधवी ये तीन भौति मुख्य जो प्रसिद्धहैं इन्हींमें सुराशब्द निरुद्ध
 है सर्वत्र नहीं क्योंकि यह तर्क देखीं (यद्यप्यनेकसुराशब्द प्रयोगोद्दिश्यते तथापि

कृत्वा नादित्वं इति संदेहः गौडी साध्वी च पैथी च विज्ञेया विविधा सुरा इति मनुवचनात्
 गुड पिष्ट मनु विकारेष्वनादित्वनिर्वाणत्वात् तत्रैव मुख्यत्वं युक्तं अर्थात् (सुरा शब्द
 का प्रयोग यद्यपि अनेक मद्यों पर दिखवाइ देता है तथापि जो ऐसा संदेह किया जाय
 कि ठीक ठीक अनादित्व किन मद्यों पर मिलता है तहां यह सोचना चाहिये कि मनु
 ने गौडी पैथी साध्वी तीन भौतिकी सुरा दर्शाई हैं तिससे गुड पिसान महुआ इनकी
 बने विकारों में आदित्व प्राचीनता स्वीकार करने से उन्हीं तीनों पर मुख्यता ठीक
 आती है) परन्तु ऐसा होनेसे भी मद उत्पन्न करनेवाली शक्तिकी कल्पना अनेक मद्यों
 पर करना कुछ दोष नहीं है क्योंकि मदशक्ति की उपाधिका सहारा लेने से मद्य का
 त्याग करना और कराना बहुत सुगम है इधीलिये यह वचन है (यद्यैवैका तथासर्वान्
 पातव्याद्विजोत्तमैः) कि जैसी एक तैसी सर्व द्विजोत्तम लोगों को न पीनी चाहिये
 यह वचन तीनों सुराका बराबर दोष जताता है पर गौडी साध्वी दोनों को कुछ पैथी
 को बराबर नहीं जताता है वचनमें द्विजोत्तम शब्द जो है सो द्विजाती मायका उपलक्षण
 है—यह दूसरोंका मत भी ठीक नहीं है क्योंकि पुलस्त्य का वचन ऊपर लिख चुके उ-
 में सुरा मद्यकी सबसे अवम कहिकर गौडी साध्वीसे भी जुदाई प्रकट करी है तिससे—
 तथैव (सुरावैमलमन्त्रानां पाष्माचमलमुच्यते) यह वचन है कि सुरा निश्चय करिके
 अन्नोंका मल है और पाय भी मल कहाता है इस वचनसे यह तात्पर्य पाया गया कि
 सुरा उसीको कहिना चाहिये जो धान आदि अन्नको कीट से बनती हो किन्तु गौडी
 साध्वी जो गुड और नहुआसे बनती है तिसमें सुरा शब्दकी प्राप्ति इसी हेतुसे नहीं दहेर
 सकती है कि ये दोनों वस्तु रस रूप हैं कुछ अन्नमें गिनती नहीं बल्कि सोषामयी नाम
 एक यज्ञ वेद विहित है कि जिसमें ब्राह्मणको भी सुरा पीनी कही है पर वहां भी अन्न
 हीके रसमें सुरा शब्द युक्तियोंने कहा है—इन सब तर्कोंसे यह निश्चित भया कि पैथी
 जो है सोई मुख्य सुरा है और गौडी साध्वी दोनोंमें सुरा शब्द योग्य मध्यम है—और
 यह तर्क जो ऊपर लिखा था कि मनुके वचनसे गौडी साध्वी पैथी तीनोंमें सुरा शब्द
 की प्राचीन निर्वाणता स्वीकार करे सोभी ठीक नहीं है जिससे कि यह विषय कुछ
 शब्दानुशासन की तरफ अर्थ संपादन करनेका सम्बन्ध नहीं रखता है केवल प्रयोजन
 की बातसे सम्बन्ध राखता है इससे प्रायश्चित्तकी बड़ाई पर ध्यान करे कि प्राय-
 श्चित्त बहुत बड़ा कहा गया है तिससे गौडी और साध्वीमें सुरा शब्दका प्रयोग गौण
 रूपसे समझना इसी तिससे नहीं अनेक अवधिशक्तिकी कल्पना रूपोद्धारदा न उपाधिका
 आयय लेना परा न इसमें द्विजोत्तम शब्दसे द्विजाती मायका उपलक्षण आदि—इसी

लिये यह वचन है कि=सुरावैमलमन्त्रानां पाप्माचमलमुच्यते तस्माद्ब्राह्मणाराजन्त्यो
 वैश्यश्चनसुरांपिबेत्=अर्थात्-निश्चय हुआ कि सुरा जो हैं सो अन्नोका मलहै और
 मलहै सो पाप कहाताहै तिससे ब्राह्मण सत्री और वैश्य भी सुराको न पीवै-इस वचन
 में केवल पैसी सुराका नियेध तीनों वर्गों को लिये किया गया है परन्तु गोड़ी आदि
 सुराओं और मद्यों का निषेध केवल ब्राह्मण के संबंध पर नियत है सत्री वैश्य को
 नहीं नियेध है क्योंकि मनुका यह वचन देखो (यस्यस्य पिशाचानां मद्यं मांसं सुरा २२ स
 वस तद्ब्राह्मणो न नातव्यं देवानामग्नतादृविः) अर्थात्-यस्य यस्यस्य पिशाच इनका आ-
 हार है मद्य मांस सुरा आसव सो यह चीजें ब्राह्मणको न खानी चाहिये जो देवताओं
 का हवि खानेवाला प्रसिद्ध है-इसमें भी मद्य आदि चीजों का नियेध मनुनें केवल
 ब्राह्मणकी विशेषता पर किया है तिससे-और अगोष्ठ एहद्विष्णु का वचन है कि
 (मधूकर्मैस्सर्वसैरंतां तंस्वार्जूरपानसे मधूतयं चैव माध्वीकं मरैर्यनालिकोरजस अमेध्यानि
 दशैतानि सद्यानि ब्राह्मणस्य तु) अर्थात्-ये दश मद्य हैं कि माधूक १ रेसव २ सैर ३
 ताल ४ स्वार्जूर ५ पानस ६ मधूतय ७ माध्वीक ८ मरैर्य ९ नालिकोरज १० ये दश मद्य
 ब्राह्मणकी सदाही अपवित्र हैं-इसमें भी ब्राह्मणकोही प्रतिषेध किया गया है-सर्व-
 एहद्व्याजवत्क्यने भी सत्री वैश्य दोनोंको दीयका न होना दर्शाया है=यथा=कामा
 दपि हि राजन्त्यो वैश्यो वापि कथञ्चन मद्यमेव सुरांपीत्वा न दीयं प्रतिपद्यते=अर्थात्-सत्री
 या वैश्य ये किसी प्रकार कभी इच्छासे भी चाहिकर मद्य वा सुरा पीकर दीयी नहीं
 होते हैं=अब इस व्यवस्थाके तोड़पर ध्यान धरो कि इसप्रकार उक्त वचनोंमें ब्राह्मण
 के लिये मद्यमात्रका नियेध दर्शाया तथापि यह मनुका जो वचन है कि (गोडो माध्वी
 चपैसी च विज्ञेया विविधा सुरा यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः) इसमें जैसी
 एक तैसी सदैव यह कहिके जो गोड़ी और माध्वी दोनोंका जुदा निर्देश दर्शाया सो
 उनके दीयकी घडाईसे सुरा केही समान दर्शाने के लिये दर्शाया और द्विजोत्तम इस
 में ब्राह्मणहीको समुक्ता किन्तु तीनों वर्गोंको नहीं ॥०॥ सुराका नियेध जो ब्राह्मण
 आदिको दर्शाया सो बिना जनेऊ के लड़कों तथा बिना विवाही कन्याओं को भी
 होता है कि लड़का लड़की भी न पीवै क्योंकि यह वचन है (तस्माद्ब्राह्मणाराजन्त्यो
 वैश्यश्चनसुरांपिबेत् इति जातिमात्रवच्छेदेन निषेधात्) अर्थात्-ब्राह्मण सत्री वैश्य
 भी सुराको न पीवै इसमें जातिमात्रको नियेध किया है कि ब्राह्मण या सत्री या वैश्य
 न पीवै तो उनके लड़का लड़की भी उसी जातिमें शामिल हैं-इसो लिये अगोष्ठ मनु
 का वचन है कि (सुरांपीत्वा द्विजो मोहा दग्निवर्णा सुरांपिबेत्) इसमें द्विज शब्द

तीनों द्विजातियों पर आवश्यक है कि बाह्यरा या सत्री या वैश्यभी सुरा पीकर यह प्रायश्चित्त करें क्योंकि जब ऊपरले निमित्तरूपी वचनमें ब्राह्मरा आदि तीनों वर्गों का नाम लेकर सुरा पीनेका नियेध करचुके तो फिर यहां भी उसके वास्ते दार नै-
मित्तिक विधिके वचनमें द्वित्र शब्दतीनों वर्गोंके प्रायश्चित्त पर आरुद्धहुआ•जब कि इस रीतिसे दोनों संबंध में जातिमात्र को नियेध पकाहुआ तब लड़के लड़कियां क्योंकर जातिमात्रसे बाहर समुभ्जे जायें—इसपर—एक मीमांसका दृष्टांतहै कि (यथा अभ्युदितेष्ट्यायस्यहविर्निर्गच्छत्पूरस्ताच्चन्द्रसा अभ्युदिति इतिनिमित्तवाक्ये हविर्मात्रा अभ्युदयस्य निमित्तत्वावती तत्सापेक्षनैमित्तिकवाक्ये ग्रयमारामपित्रेवा तन्दुलान्वि भजेदिति तन्दुलग्रहाणां तन्दुलादिस्वरूपहविर्मात्रोपलक्षणां) अर्थात् (जैसे अभ्युदय रूपी यज्ञमें जिसके हविस् यथा विभागसे धरागया तिसके आगे पूराचन्द्रसा उदय होताहै उस फलके जतानेवाले निमित्तरूपी वाक्यमें सकल हविमात्र चन्द्रसा उदय होनेका निमित्त होता है यह समुभिलेनेमें इसीके संबंधी नैमित्तिक वाक्य में यद्यपि ऐसा कहाजाय और सुनिपरे कि तन्दुलोंको तीनजधे विभागकरो तो यह केवलतन्दुल कहिना भी तन्दुल आदि सभी साकल्य हविमात्र का उपलक्षणा होताहै कि तन्दुल तिल जौ घृत शर्करा भेवा आदि मिलेहुये साकल्यको तीन जधे विभागराकरनाचाहिये) क्योंकि तन्दुलोंमें सभी चीज शामिलहैं और तन्दुल नाम अनेक चीजोंके संघको भी कहिते हैं तैसे तीनोंवर्गों कहिनेसे उसीजातिमें लड़कालड़कीभी शामिलहैं कुछ जुदा नाम धरनेकी जरूरत नहींथी•परन्तु जातिमात्रके पुरुषोंसे लड़कालड़कियोंमें इतना भेदहै(पादोवालेपदातव्यःसर्वपापेष्वयंविधिः) सभी पापों में यह विधिहै कि बालकों को एक चौथाई प्रायश्चित्त देनाचाहिये—इसवचनके तात्पर्यसे बालकोंको मरणा-
न्तिक प्रायश्चित्त उस दशामेंभी नहीं है कि जब उन्होंने इच्छा से चाहिकर सुरापान कियाहो परंतुमरणा के पलटे उस चौथाई को दूना करिके छःधर्यका व्रत करानाचा-
हिये कि जैसा आगे २५४की अविकीर्तमें दर्शावैगै तैसा यहांभी समुभिलेना और दूना कराने मध्ये अंगिराका वचनहै कि=विहितंयदकामानां कामात्तर्दादियुतांचरेत्= अर्थात्—विना इच्छा किये पापवालों की जो कुछ प्रायश्चित्त कहागया हो वही उनकी दूना करवाया जाय जिन्होंने इच्छासे पाप किया हो•यही व्यवस्था ब्रह्म या शेषी आदि में जोड़लेनी चाहिये=तथैव (यस्मिन्पिशाचानांमयं मांसंमुराऽऽसदस तद्वाह्यरागनात्तद्यदेवनामश्नतादिविः) इस वचन में मय भी ब्राह्मरा की जातिमात्र को नियेध है तिससे विनाजनेऊ के बालक सुरा और मयभी न पीवें यह व्यवस्था सिद्ध

होचुकी-तथापि थोड़ासा तर्कवाद है कि-कैसे बिना जनेऊको दोग्य बताया (प्रा
 उपनयनात् कामचार वादभसाः इति गौतम वचनात्) तथासममूत्रपुरीयाराभसरा
 नास्तिकश्चनदोग्यस्त्वापंचमादर्यादूर्ध्वपिबोः सहइशुरोरितकुमारवचनाच्चदोग्याभावा
 वगतेः) अर्थात्-गौतम का वचन है कि बालक जनेऊ से पहिले चाहे तैसे हठे फिरें
 चाहेसो मुखसे बर्के चाहेसो भसरा करें तो कुछ दोग्य नहीं है) तथैव (कुमारकावचन
 है कि मद्य या मूत्र या विष्टा इनके भसरा करनेमें कोई दोग्य नहीं है पांचवर्गके भीतर
 और पांचके उपरांत जो ऐसा करें तो उनके पिता माता बड़े भाता आदि मित्रजनो
 तथा गुरुओं को दोग्य है• तो यह कैसे कहा कि बालक भी मद्य पीवें तो दोग्य है प्राय-
 श्चित्तभी कराना होगा=इस का समाधान कहिते हैं=सुनो सुरा और मद्य इनके नि-
 येध वाले वचन में जातिमात्र के लिये जो निश्चय होचुका तिससे वह नियेध की
 प्रवृत्ति रोकी नहीं जा सकती है जिससे बालकों वाले नियम स्वीकार किये जायें-
 ऐसाही स्मृत्यंतर में यह नियेध का वचन है कि (सुरापाननियेधस्तुजात्याश्रयइति
 स्थितिः) सुरा पीने का निषेध जो है सो समस्त जातिमात्र के आश्रयभूत है यही
 मर्यादा जानो अवस्था भेदका प्रयोजन इसमें नहीं है-इसी हेतुसे(पादोवालेयुदातव्य
 सर्वपापेष्वयंविधि रितिसर्वपापेषुसुरापानादिषु इतिवचनात् पादएवसुरापानेप्राय-
 श्चित्तं) चौथाई बालकों को देना चाहिये सुरापान आदि सभी पापों में यह विधि
 जानो इसवचन से चौथाई प्रायश्चित्त सुरा पीने में दीक रहा• इच्छा सहित पीने में
 चौथाई का दूना कर्तव्य होगा=तथैव=सुरा से उपराल मद्यपीने में भी जातकराणि
 प्रायश्चित्त कहा है=यथाहजातकर्माः=अनुपेतस्तुयोवालो मद्यमोदारिपवेद्यदि तस्यक्त
 चक्षुष्यं कृत्यान्माताभ्रातातथापिता=अर्थात्-बिना जनेऊका बालक जो अज्ञानता से
 मद्य पीलेवे तिसका पिता या माता या भ्राता तीन कृच्छ्र व्रत करें-तिससे यह बात
 सिद्ध हुई कि (चाहे सो भसरा करें) इत्यादि गौतम का वचन जो अभी ऊपर
 लिख चुके सो कुछ विशेष कर सुराके नाम से भी नहीं है न सुरा और मद्यके ऊपर
 उसका तात्पर्य कुछ पहुँचताहै अर्थात् सुरा और मद्य आदिसे उपराल नियदिद अन्ना-
 दिक जैसे सुखी और वासी भोजन आदि के विषयपर आरूढ हैं=और कुमार का
 जो वचन कहा सो केवल इस आशय पर आरूढहै कि जो पांचवर्गके भीतर अति-
 प्राय अज्ञानता में यदि कोई वस्तु मलीन भसरा करि बैठे तो अत्यन्त दोग्य नहीं है
 पर थोड़ा बोय उसमें भी अवश्य होता है=इसीलिये मनुने यह कहा है कि उपनयन
 कर्मसे पहिले जो कुछ बालक से दोग्य हुआहो तिसका प्रायश्चित्त बड़ी उपनयन

व्यंतृतस्योक्तप्रत्यहंकायशोधनम्=अर्थात्-यही व्रत मद्यपकरै छर्दि किये पीछे और पंचगव्य उसका शरीर शुद्ध करने को रोज रोज पीना कहा है-परंतु ऐसा तात्पर्य-सम्भूतना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना सासात घुराके पीने मध्ये ठीक है परन्तु जिसने उस वासनमें घरा हुआ या डारिके जल पिया हो जिसमें कुछ थोड़ी सुरालगी लिपटी गंधभी आती हो तिसके लिये छर्दि करना और पंचगव्य पीना कुछ आवश्यक नहीं-क्योंकि जलके संसर्ग में होजाने से भी घुरा का सुरापन नाश नहीं होता है तिससे-इसपर यह दृष्टांत है कि जैसे दहीमिलायेहुये घीमेंसे घी का भाव नहीं मिटि जाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छींटे लगा घी पीने वालों को घृतपान करै या निश्चय करने किन्तु प्रयदाज्यके पीवै आ न कहिने चाहिये अर्थात् प्रयदाज्य उसी घी का नाश है जिसमें दहीकेबूंद छींटे गयेहों ॥ ० ॥ और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयं कृत्वा घुरापीत्वा शुरुदारगत्वा ब्राह्म-राहत्यां कृत्वा चतुर्थकालंमिति भोजनो योभ्युपेयात् सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां विहरत्स्त्रिभिर्वर्षैः पापं न्ययनुदति=स्वयं त्वंगिरावचनं=महापातकसंयुक्तावर्षैः शुद्ध्यति तेषां=अर्थात्-आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके घुरापीके शुरुभार्या गमन करिके ब्राह्मणाका वन करिके तीनिवर्षमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनको बैठक सब छोड़ेहुये तीनि वर्ष तक विचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संव्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्राणधारणा नाश किया करै तो यह एक ब्रजही का अनुकल्प होजाता है-अथवा ऐसा अर्थ लगता है कि (सः पापात्मापुरुषः वनानुकल्पं अभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आसन छोड़े हुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनको नहीं परन्तु वनके अनुरूप बेहड़ री ब्रज आदि जंगलोंमें तीनि वर्षतक सायंकाल थोड़ा भोजन करिके पापमो वन परमेश्वर का भजन कियाकरै-तोभी उसी अर्थके समान ठाहरा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन यज्ञ करनेका उपदेश नहीं है यह आपस्तम्बका कथन है-ऐसाही अंगिराका यहकथन है कि=महापातकोसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनिवर्षोंसे पवित्र होतेहैं-इन दोवचनों में जो तीनि वर्षोंका नियम वांछागया सोभी उसीके अनुरूप है कि जैसा मूलश्लोक में योगीश्वरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों पर इन वचनोंको जोड़िलेना पर सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ जोकि यमने दो प्रायश्चित्त और भी कहेहैं सो देखी=यथा=उहस्पतिस्वनेनेन्द्रासुरापो ब्राह्मणः पुनः समत्वं ब्राह्मणं गौर्गच्छे क्रियेयावद्विकीयुतिः (तथा) भूमिप्रदानं यः कुर्यात्सुरां पीत्वा द्विजोत्तमः पुनर्न च पिवेत्तां

तुसंस्कृतः सविशुध्यति=अर्थात्-दृढस्पर्शितके नामसे सबन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मण
 फिर भी ब्राह्मणोंके साथ वरावरी दर्जेमें आजाता है यह वेदकी श्रुतिसे प्रसिद्ध है=
 तथैव=जो ब्राह्मण सुरा पीकर संस्कार कराइके भूमिदान करै और फिर कभी उसको
 न पीवै तो यज्ञोपवीत संस्कारसे संयुक्त होके शुद्ध होजाता है-सो ये दोनों भी उसी
 पहिलेके साथ मिलिकर एकही विषय समझना कि तीनविषय पीना आदि भक्षणा
 किये पोछे यह सबन या संस्कार और भूमिदान करना होगा (अथवा दृढस्पर्शित स-
 वन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वाह्न
 मलप्रलोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष
 की योग्यता जिसको दहिरे और वही अपराधी बहुत बनवानेहो तो अधिक दक्षिणा
 वाला दृढस्पर्शितसवन करिके छुत्कारा पासके यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥ इस व्यवस्थामेंभी
 स्त्रियां और बालक बूढ़ेआदिको तीनवर्षकाआवाडेवर्ष व्रतदेनाचाहिये और बालक
 जो बिना जनेऊका अनुपनीतहो तिसको चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेनाचाहिये
 इत्यादि पहिली रीतोंसे करपना कालेनी चाहिये ॥ ० ॥ एक जो मनु का यह वचन
 है कि (करान्वाभक्षयेद्वदं पिण्याकवासकचिश्चि सुरापानापनुत्यर्थं बालवासाजती
 ध्वजी) इरे-कूटे अन्नको कनकी या पीना एकवर्षभर सकही वार सदा रात्रिमें भक्षणा
 कियाकरै सुरापानका दोय मितानेके लिये) इसमें जो सकही वर्षकहा सो यह प्रा-
 यश्चित्त उसके लिये समझना जिसने बिना समझे जलके धोखे मुखमें डालिके सिर्फ
 तालतक पं चौ हुईको उलटि दीहो=इसपरभी तर्कनाहै कि=इबचौर्जे जो पीनेयोग्य
 पतलीहोती है तिनका घृष्टिजाना पान कहाता है और घृष्टिजाना कंट को नीचे उतर
 जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग मात्रसे पीना या घृष्टिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर
 कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थ यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त र-
 र्थाया गया-सुनौ-जिस तालू आदिमें पहुँचने बिना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती
 है तिससे पानक्रियाके निषेधसे तालू आदि में पहुँचना भी निषिद्ध किया है० इसी
 कारणसे यद्यपि वेद पीलेने बिना महापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके नि-
 षेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतियिद्ध दहिशा क्योंकि तालू तक
 पहुँचनेमें भी दोय मौजूदहै उस दोयके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका
 यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्व्रतमहत्वापिधातार्थचेत्समागतः) इस वचन
 में जैसा कहिचुके हैं कि ब्राह्मणको मारडारना सोचिके गया हो फिर चाहें न मा-
 रिपावै तो भी प्रायश्चित्त करै जैसा मारडारने के निषेध से उसका अंगभूत जो नि-

व्यंतुत्स्थोक्तप्रत्यहंकायशौचनम=अर्थात्-यही व्रत मध्यपकरै छर्दि किये पीछे और पंचगव्य उसका शरीर श्राद्धकरने की रोज रोज पीना कहा है-परंतु ऐसा तात्पर्य समझना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना सासाव सुराके पीने मध्ये ठीक है परन्तु जिसने उस वासनमें घरा हुआ या डारिके जल पियाहो जिसमें कुछ थोड़ी सुराली लीपदी रांघभी आतीहो तिसके लिये छर्दि करना और पंचगव्य पीना कुछ आवश्यक नहीं-क्योंकि जलके संसर्ग में होजाने से भी सुरा का सुरापन नाश नहीं होता है तिससे-इसपर यह दृष्टांतहै कि जैसे दहीमिलावेहुये घीमेंसे घी का भाव नहीं मिटिजाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छीटे लगा घी पीने वालोंको घृतपान करै या निश्चय करने किन्तु प्रयदाज्यके पीवै या न कहिने चाहिये अर्थात् प्रयदाज्य उसी घी का नाम है जिसमें दहीकेबूंद छीटे गयेहैं ॥ ० ॥ और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयं कृत्वा सुरापीषा शुरुदावगत्वा ब्राह्म-राहत्यां कृत्वा चतुर्थकालंमिति भोजनोद्योभ्युपेयात् सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां विहरत्स्त्रिभिर्वयैः प्रापंच्यपनुदति=संबन्धित्वंगिरवचनं=महापातकसंयुक्तावयैः शुद्धांति तेषांभिः=अर्थात्-आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके सुरापीके शुरुभार्या गमन करिके ब्राह्मराका वध करिके तीनवयमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनकी बैठक सब छोड़ेहुये तीन वय तक बिचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संध्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्राणधारणा नाश किया करै तो यह सब यज्ञही का अनुकल्प होजाता है-अथवा ऐसा अर्थ लगताहै कि (सःपापात्मापूरुयःवनानुकल्पंअभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आसन छोड़ेहुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनकी नहीं परन्तु वनके अनुरूप बेहड़ गो ब्रज आदि जंगलोंमें तीन वयतक सायंकाल थोड़ा भोजन करिके पापमोचन परमेस्वर का भजन कियाकरै-तोभी उसी अर्थके समान ठहिरा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन यज्ञ करनेका उपदेश नहींहै यह आपस्तम्बका कथन है=ऐसाही अंगिराका यहकथन है कि=महापातकोंसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनवयोंसे पवित्र होतेहैं-इन दोवचनों में जो तीन वयोंका नियम वांवागया सोभी उसीके अनुरूपहै कि जैसा मूलश्लोक में योगीश्वरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों पर इन वचनोंको जोड़िलेना घर सर्वव नहीं ॥ ० ॥ जोकि यमने दो प्रायश्चित्त और भी कहेहैं सो देखो=यथा=एहस्पतिसवननेपुनःसुरापीब्राह्मण-पुनः समत्वंब्राह्मणोर्गच्छे नित्येयावद्विकीयुतिः (तथा) भूमिप्रदानंयःकुर्यात्सुरापीत्वादिजोतमः पुनर्न चपिवेत्तां

तुसंस्कृतःसविशुद्धति=अर्थात्-दृढस्पर्तिके नामसे सबन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मण
फिर भी ब्राह्मणोंके साथ बराबरी दर्जेमें आजाता है यह वेदकी युतिसे प्रसिद्ध है=
तथैव=जो ब्राह्मण सुरा पीकर संस्कार कराइके भूमिदान करै और फिर कभी उसको
न पीवै तौ यज्ञोपवीत संस्कारसे संयुक्त होके शुद्ध होजाता है-सो ये दोनों भी उसी
पहिलेके साथ मिलिकर एकही विषय समझना कि तीनविषय पीना आदि भक्षण
किये पीके यह सबन या संस्कार और भूमिदान करना होगा (अथवा दृढस्पर्ति स-
वन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वाह्न
मूलश्रुलोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष
की योग्यता जिसको दहिरै और वही अपराधी बहुत धनवानहो तौ अधिक दक्षिणा
वाला दृढस्पर्तिसवन करिके छुटकारा पासके यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥ इस व्यवस्थामेंभी
स्त्रियां और बालक बूढ़ेआदिकी तीनवर्षकाआधाडेहवर्ष व्रतदेनाचाहिये और बालक
जो बिना जनेऊका अनुपनीतहो तिसकी चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेनाचाहिये
इत्यादि पहिली रीतोंसे कल्पना कालेनी चाहिये ॥ ० ॥ एक जो मनु का यह वचन
है कि (कथान्वाभसयेद्वदं पिपायाकवासर्काक्षिणि सुरापानापनुत्यर्थं बालवासाज्जी
ध्वजी) करे-कुरे अन्नकी कनकी या पीना एकवर्षभर सकही बार सदा रात्रिमें भक्षणा
कियाकरै सुरापानका दोष मिटानेके लिये) इसमें जो एकही वर्षकहा सो यह प्रा-
यश्चित्त उसके लिये समझना जिसने बिना समझे जलके बोखे मुखमें डालिके सिर्फ
तालतक पँची हुईको उलटि बोहो=इसपरभी तर्कनाहै कि=इवचीजें जो पीनेयोग्य
पतलीहोती हैं तिनका घंटिजाना पान कहाता है और घंटिजाना कंठ के नीचे उतर
जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग मात्रसे पीना या घंटिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर
कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थ यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त इ-
र्थाया गया-सुनो-जिस तालू आदिमें पहुँचने बिना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती
है तिससे पानक्रियाके निषेधसे तालू आदि में पहुँचना भी नियिद्ध किया है- इसी
कारणसे यद्यपि ठेठ पीलेने बिना महापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके नि-
षेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतिबिद्ध दहिा क्योंकि तालू तक
पहुँचनेमें भी दोष मौजूदहै उस दोषके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका
यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्व्रतमद्वत्वापिघातार्थंचेत्यमागतः) इस वचन
में जैसा कहिचुके है कि ब्राह्मणकी मारडारना सोचिके गया हो फिर चाहें न मा-
रिपावै तौ भी प्रायश्चित्त करै जैसा मारडारने के नियेध से उसका अंगभूत जो नि-

संस्कार होता है—यथाह मनुः—गर्भर्होमैर्जातकर्मचूडाभौत्रोनिर्वन्नेः वैजिकंगार्भिकं
 चैर्नोद्विजानामपसृज्यते—अर्थात्—द्विजातियों के गर्भ में आतेहुये जो गर्भ संस्कार
 संबंधी होत होते हैं तिनसे और जन्म होनेसे जातकर्म और मूहनआदि चूडाकर्म और
 मौजोवन्धन आदि यज्ञोपवीत कर्म इन कर्मोंके होनेसे पिता के बीज का दोग और
 माताके गर्भरक्तका दोग और बालपनकी अज्ञानतासे जो कुछ पाप लड़के ने किया
 हो सो भी दूर होजाता यह द्विजाती लोगोंका विधान है ॥ अतिकोक्तिफलं—अब स-
 मस्त अतिकोक्तिका निपटारा यह समझना चाहिये कि पैथीसुरा का निषेध दोनों
 वर्गोंको जन्महीसे लेकर निश्चितहुआ और ब्राह्मण को जन्मही से लेकर सभी मध्य
 मावका निषेध है परन्तु सभी और वैश्यको पैथीसुरा छोड़िके गौड़ी आदिका निषेध
 किसी भी अवस्थामें नहीं है और शूद्रको नसुराका प्रतिषेध है न किसी मध्यमाव का
 निषेध है—इसी के अनुसार प्रायश्चित्तों का विचार करना चाहिये ॥ २५३ ॥ यहाँ
 तक इच्छा सहित सुरा पीनेके प्रायश्चित्त सब कहे गए अगले परिच्छेद में इच्छा
 बिना धोखे आदिसे पीने मध्ये कहेंगे ॥ २५३ ॥

अथ अक्रामतः सुरा मद्यादीनां पाने प्रायश्चित्त

विवेको द्वाविंशः परिच्छेदः ३२

इसपरिच्छेदमें कामना और इच्छाके बिना धोखे आदिसे सुरा पीजाने के
 प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

(सुरापानेप्रायश्चित्तांतराणि)

गालवासाजटीवापिग्रहहत्याव्रत चरेत् । पिण्याकंवाकरणान्यपिभक्षयेत्तितमानिश्चि २५४

अर्थः—यह्ना बालों का वस्त्र वासना किये जटा रखायें ब्रह्महत्या का हो व्रत आच-
 २ । अथवा तीनवर्ष रात्रि में पीना या अन्न के कणों कोही भक्षण करै—अर्थात्—
 दोसोपेन २५३ श्लोकसे कहे प्रायश्चित्त यदि होने संभव नहीं तो राज बकरी आदि
 के ऊन से बना कंबल आदि को जटा रखाकर इस विशेष चिह्न के साथ पूर्वोक्तब्रह्म-

इत्या वाला व्रत बारह वर्षका करै ॥ १॥ अथवा तीन वर्ष तक तिलों की खलि पीना तिसके पिराडवना के रात्रि में खाया करै दिन में निराहार व्रत किया करै यद्वा चावलों की कनकी या ससा आदि मुन्यन्न को रात्रि में चबाकर तीन वर्षों काटे ॥ २५४ ॥

२५४ अधिकोक्तिः—ऊन वस्त्र के उपलसरा में चौर और वस्त्रल भोजन आदि भी समझने क्योंकि प्रचेता का वचन है—यथा=सुरापशुरुतत्पगौ चौर वस्त्रल वाससौ ब्रह्महत्याव्रतचरेयातास=अर्थात्—सुरापीनेवाला और गुरु भार्या गामी ये दोनों चौर वस्त्रयावस्त्रल देह में लपेटे हुये ब्रह्महत्या वाला व्रत बारह वर्षकरे(चौरकरे पुराने वस्त्रों के चीथड़े कहातेहैं) जरा रखाना कहा तिससे बाल मुढाने का निषेध प्रायगया=ब्रह्म हत्या का व्रत करना कहा तिसके साथ बालों का वस्त्र आदि जो अधिक दर्शाया तिसका यह तात्पर्य है कि ब्रह्महत्या में खीपडी की ध्वजा बनानो जो कहिचुके तिसका वर्जित करना इसमें सिद्ध हुआ=यह प्रायश्चित्त भी उसके लिये आवश्यक है जिसने सुरा मद्यकी इच्छा बिना जल के धोखे पीलिया हो क्योंकि (इयंविशुद्धि-रुविता प्रमाप्याकामतोद्विजं) ब्रह्महत्या के स्थलपर इस नियम से बारह वर्ष कहे गयेथे कि जिसने बिना इच्छाके ब्राह्मण सारा हो उन्हीं बारह वर्षों का अतिदेश यहां उतारा गया तो यहां भी वही उपाधि लगी रही कि जिसने इच्छा बिना मद्य पियाहो=यहां यद्यपिव्रतका अतिदेश उतारागया तिससे दोसौबावन २५२ अधिकोक्ति के प्रारंभ में चेताई हुई दोसौ इकतिस २३९ की अधिकोक्ति वाले नियम से चौथाई कमकरिके प्रायश्चित्त ठहिरता परंतु सुरापान महा पातकों में गिनती हो चुका है तिससे अतिदेशके होनेपर भी पीना नहीं किंतु पुराही बारह वर्षका व्रतकराया जाय इसपर बृह हारोत का यह वचन भी प्रमाण है कि (डादशभिर्वर्षैर्महा पातकिनःपूयते)सबतरह के महापातकी बारह वर्षों से शुद्ध होतेहैं तिससे यह उपदेश ही रहा अतिदेश नहीं ठहिरा जो पीना किया जाता ॥ १॥ तीन वर्षवाले प्रायश्चित्तमें जो पीना या कनकी चावनी कही सो रात्रि में एकहीबारका नियमहै बारंबार नखाय यही बात अमिले वचन में स्पष्ट है=यथामनुः=कराणान्वाभसयेद्वर्षपरायाकं वासकान्निशि=अर्थात्—रात्रि में एकहीबार वर्षमात्र भर पीना या तंदुल के किनके भसरा करै—यह पीना आदि उसका भोजन कहा गया है तिससे और कोई वस्तु न भोजन करै यह प्रायश्चित्तभी उसीके निमित्त में समझना जिसने जलके धोखे सुरा पान किया हो सो यह साधना भी तब करै कि पहिले उलटी रद्द करिके हृदय शुद्ध करचुको क्योंकि न्यासका यह वचन है कि=एतदेवव्रतं कुर्यान्मद्यपशुर्वनेहते पंचरा-

व्यंतुतस्योक्तप्रत्यहंकायशोधनम्=अर्थात्—यही व्रत मद्यपकरै छर्दि किये पीछे और पंचगव्य उसका शरीर शुद्ध करने को रोज रोज पीना कहा है—परंतु ऐसा तात्पर्य सम्भना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना साक्षात् सुराके पीने मध्ये दीक है परन्तु जिसने उस वासन में धरा हुआ या डारिके जल पिया हो जिसमें कुछ थोड़ी सुगन्धी लिपटी गंधभी आती हो तिसके लिये छर्दि करना और पंचगव्य पीना कुछ आवश्यक नहीं—क्योंकि जलके संसर्ग में होजाने से भी सुरा का सुरापान नाश नहीं होता है तिससे—इसपर यह दृष्टांत है कि जैसे दहीमिलायेहुये घीमेंसे घी का भावनहीं मिलि जाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छीटे लगा घी पीने वालों को घृतपान करै या निश्चय करने किन्तु घृतदाज्यके पीवै या न कहिने चाहिये अर्थात् घृतदाज्य उसी घी का नाम है जिसमें दहीकेबुंद छीटे गयेहों ॥ ० ॥ और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयकृत्वासुरापीत्वा शुरुबारादृगत्वा ब्राह्म-राहत्याङ्कत्वा चतुर्थकालमिति भोजनोयोभ्युपेयात् सव्रतानुकल्पं स्थानासनभ्यां विहरत्स्त्रिभिर्वर्षैः पापं व्रतपनुवति=सर्ववर्षांगिरावचनं=महापातकसंयुक्तावर्षैः शुद्धति तैस्त्रिभिः=अर्थात्—आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके सुरापीके शुरुभार्या गमन करिके ब्राह्मणाका वध करिके तीनिवर्षमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनकी बैठक सब छोड़ेहुये तीनि वर्ष तक विचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संध्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्राणाधारणा मात्र किया करै तो यह एक यज्ञही का अनुकल्प होजाता है—अथवा ऐसा अर्थ लगताहै कि (संप्रायात्मापुरुषः वनानुकल्पं अभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आसन छोड़हुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनको नहीं परन्तु वनके अनुरूप बेहड़ गो ब्रज आदि जंगलोंमें तीनि वर्षतक सायंकाल थोड़ा भोजन करिके पापमोचन परमेस्वर का भजन कियाकरै—तौभी उसी अर्थके समान रहिरा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन यज्ञ करनेका उपदेश नहींहै यह आपस्तम्बका कथन है—ऐसाही अंगिराका यहकथन है कि=महापातकोंसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनिवर्षोंसे पवित्र होतेहैं—इन दोवचनों में जो तीनि वर्षोंका नियम वांछागया सोभी उसीको अनुरूपहै कि जैसा मूलश्लोक में योगीश्वरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों पर इन वचनोंको जोड़िलेना पर सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ जोकि अमने दो प्रायश्चित्त और भी कहेहैं सो देखीं—यथा=उदरपतिसवनेनेप्लासुरापोब्राह्मण पुनः समत्वं ब्राह्मणौगच्छे त्रित्येयावैदिकीयुतिः (तथा) भूमिप्रदानं यः कुर्यात्सुरापीत्वा द्विजोत्तमः पुनर्न च पिबेतां

तु संस्कृतः सविशुद्धतिः अर्थात्—दृढस्पर्तिके नामसे सवन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मण
 फिर भी ब्राह्मणोंके साथ बराबरी दर्जेमें आजाता है यह वेदकी श्रुतिसे प्रसिद्ध है—
 तथैव—जो ब्राह्मण सुरा पीकर संस्कार कराइके भूमिदान करै और फिर कभी उसको
 न पीवै तो यज्ञोपवीत संस्कारसे संयुक्त होके शुद्ध होजाता है—सो ये दोनों भी उसी
 पहिलेके साथ मिलिकर एकही वियथ समझना कि तीनवर्ष पीना आदि भक्षण
 किये पीछे यह सवन या संस्कार और भूमिदान करना होगा (अथवा दृढस्पर्ति स-
 वन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वार्द्ध
 मूलश्लोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष
 की योग्यता जिसको ठहिरै और वही अपराधी बहुत धनवानहो तो अधिक दक्षिणा
 वाला दृढस्पर्तिसवन करिके छुटकारा पासके यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥ इस व्यवस्थामें भी
 स्त्रियां और बालक बूढ़ेआदिकी तीनवर्षका आधाडेहवर्ष व्रतदेना चाहिये और बालक
 जो बिना जनेऊका अनुपनोतहो तिसको चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेना चाहिये
 इत्यादि पहिली रीतसे कल्पना कालेनी चाहिये ॥ ० ॥ एक जो मनु का यह वचन
 है कि (कणान्वाभसपेदन्दं पिण्याकवासकृन्निशि सुरापानापनुत्यर्थं बालवासज्जी
 श्वजी) करे कूटे अन्नकी कलकी या पीना एकवर्षभर एकही बार सदा रात्रिमें भक्षण
 कियाकरै सुरापानका दोष मिटानेके लिये) इसमें जो एकही वर्षकहा सो यह प्रा-
 यश्चित्त उसके लिये समझना जिसने बिना समझे जलके बोखे मुखमें डालिके सिर्फ
 तालूतक पँची हुईको उलटि दीहो—इसपर भी तर्कनाहै कि—द्रवजीर्ण जो पीनेयोग्य
 पतलीहोती हैं तिनका घृतिजाना पान कहाता है और घृतिजाना कट के नीचे डतर
 जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग मात्रसे पीना या घृतिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर
 कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थ यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त र-
 र्थाया गया—सुनौ—जिस तालू आदिमें पहुँचने बिना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती
 है तिससे पानक्रियाके निषेधसे तालू आदि में पहुँचना भी निषिद्ध क्रिया है—इसी
 कारणसे यद्यपि देठ पीलेने बिना महापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके नि-
 षेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतियिद्ध ठहिरा क्योंकि तालू तक
 पहुँचनेमें भी दोष मौजूदहै उस दोषके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका
 यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्व्रतमद्वत्वापिघातार्थचेत्समागतः) इस वचन
 में जैसा कहिचुके हैं कि ब्राह्मणकी मारडारना सोचिके गया हो फिर चाहें न मा-
 रिपावें तो भी प्रायश्चित्त करै जैसा मारडारने के नियेध से उसका अंगभूत जो नि-

प्रचय करिके पहुँचना आदि तिसका भी निषेध होनेसे प्रायश्चित्त कहा गया तैसा पीजानेको निषेध से तालूतक पहुँचाना नियिद्ध हुआ ॥ ० ॥ एक बौधायनका वचन है कि=वैमासिक समत्या सुरापाने कृच्छ्राब्दपादंचरित्वापुनरुपनयनमिति=दूसरा यमका वचन है कि=सुरांपीत्वाद्विजंघत्वास्वमंहत्वादिजन्मनः संयोगंपतितैर्गत्वा द्विजप्रचान्द्रायरांचरेत्=तीसरा वृहस्पतिकका वचन है कि=गौडोमाध्वौसुरांपैष्टींपीत्वा विप्रसमाचरेत् तप्तकृच्छ्रं पराकंचर्चाद्रायरांमनुकमात् (तत्त्वितयमप्यनन्यौयवसाध्य व्याध्युपशमार्थेपानेवेदितव्यं प्रायश्चित्तस्याल्पत्वात्=अर्थात्-बिना जाने सुरापान में एक वर्ष के कृच्छ्र व्रतकी चौथाई तीन महीने करिके पीछे उपनयन संस्कार करें यह बौधायन का कथन है=और यमस्मृति का यह वचन है कि=सुरा पीकर ब्राह्मण को मारिके ब्राह्मण का सोना चुराथ के पतितों के साथ संयोग संसर्ग में जाइके ब्राह्मण चांद्रायरा व्रतकरै=और वृहस्पति का यह कथन है कि=गौडो १ मा-ध्वो २ पैष्टी सुरा ३ को पीकर ब्राह्मण यथा क्रमसे तप्तकृच्छ्र १ पराक २ चांद्राय-रा ३ इनको करै प्रत्येक पर एकएक समझ लेना (सो यह बौधायन आदि के तीन वचन वाले प्रायश्चित्तों की उस रोगी के निमित्त में समझना जिसका रोग सुरा के सिवाय किसी औषध से न जाता दोखै और सुरा पीनेसे साध्य जानिके वैद्यने पिलाई हो चाहै बिना जाने या कहिकर पिलाईहो क्योंकि इनवचनमें प्रायश्चित्त अतिछोटे कहैरामे हैं तिससे ॥ ० ॥ जब कहीं सुराका मिला हुआ सुखेही रस का अन्न कोई भक्षया करै बिनाजाने तिसका फिर उपनयन कर्म यज्ञोपवीत होना चाहिये=यदाह मनुः=अज्ञानात्प्राश्याविरामन्त्रसुरासंसृष्टमेवच पुनःसंस्कारमर्हतित्रयोवर्णाद्विजातयः= अर्थात्-बिनाजाने विद्या या मंत्रमुहमें जाय या सुरा से संसृष्ट कोई सुखी वस्तु जैसे सुरा के सुखेपाश में घरीगई हो इत्यादि तिसको मुह में धरिके तीनों द्विजाती लोग फिर संस्कार होने के योग्य हैं ॥ ० ॥ जबकोई सुखे सुराके वासन में धरा हुआजल पीलेवै तब शातातप का कहा प्रायश्चित्त करै=यदाह शातातपः=सुराभांडोदकपाने कूर्चनघृत प्राशनमहोरात्रोपवासश्च=अर्थात्-सुरा के पाशमें धरा जल पीनेमें छर्दि उ-लटी करै धो चाटै और एक दिन राति का उपवास भी करै=इसी मध्ये बौधायन का जो वचन है कि=सुरापानस्ययोभांडेप्लवःपर्ययिताःपिबेत् शंखपुष्पीविप्रक्षांतक्षीरस तपिबेत्तप्यहम्=अर्थात्-सुरापीने के पाश में धरा हुआ जल अनेक दिनका जो कोई पीलेवै सो शंखपुष्पी (शंखाझली) में खूब ओंटे हुये दूध की तीन दिन पीवै-सो यह अधिक विधान इसी हेतु से जानी कि अनेक दिनका घराजल पीने में शातातप

का कहा ब्रह्मणो उपवासये तीर्त्तां पहिले करिके पीछे दूधभी तीनदिन पीवै=इसी जल की बिना चाहे जिसने कई बार घोखा से पिया हो तिसके लिये मनु ने पांच दिनका प्रायश्चित्त कहा है=यथा=अप.सुराभाजनस्थामद्यभांडस्थितास्तथा पंचरात्रं पिवेत्पीत्वाशंखपुष्पीयुतंपयः=अर्थात्=सुराके पात्रमें बरेहुये तथा मद्यके पात्रोंमें धरे जल पीकर पांचदिनतक शंखपुष्पीका औटाया दूधपीवै तब शुद्धहोय ये पांचदिनभी शातातप की कही विधि करनेसे उपरालू करनेहोगे=जो कि विष्णुने सातदिन कहे है कि=अप.सुराभाजनस्थाः पीत्वासुरात्रांशंशंखपुष्पी युतंपयःपिवेत्=अर्थात्=सुरा के भाजनमें धरे हुये जलपीकर शंखपुष्पी मिलाकर औटा दूध सातदिन पीवै=सो यह सात दिन उसके लिये कि जिसने जानिवृत्तिके पिआहो और, शातातपकी कही विधि करिके पीछे उपरालू दूध पीवै=और, जिसने जानिवृत्तिके अनेकवार पिआहो तिसके लिये दृढद्यमका वचन है=यथा दृढद्यमः=सुराभांडस्थितं तोयं यदि कश्चित्पिवेत्तद्विजः सदा दशाहं क्षीरेणापिवेद्ब्राह्मी सुवर्चला स=अर्थात्=सुराके भांडमें धरे जलको यदि कोई हिजाती पीलेवै सो बारह दिन तक दूधमें औलो हुइ ब्राह्मी बहनेदी सुवर्चला, औयधी जो वही शंखपुष्पी है तिसको पीवै यह भी शातातपकी विधिसे उपरालू करना होगा ॥ २ ॥ सुरा पिबे हुयेके मुखको दुर्गंधि सुंधने मध्ये मनुका वचन है=यथा=ब्राह्मणाय सुरापयस्य गंधमाघाय सोमपः प्राणानप्सुधिरायस्य घृतंप्राप्रयविशुद्धाति=अर्थात्=जहां, कौड़े सोमप सोमयज्ञमें सोमपीने पीछे किसी सुरापियेहुये ब्राह्मण के मुख की गंधि सुंघे सो जलमें खड़ा होके तीनवार प्राणायाम करिके और घी चारिके विशुद्ध होता है (इसमें शातातपकी विधिसे कुछ संबध नहीं) यह नियम केवल सोम यज्ञ करनेवालेका उस दशमें समझना कि जब बिना जाने घोखामें गंध सुंधी हो किन्तु जानि वृत्तिके सुंधनेमें यही उसकी दूना कर्तव्य होगा=इसीके अनुसार जो सोमयाजी या सोमपीनेवाला न हो तिसने गंधि सुंधीहो उसके लिये कल्पना कर लेनी चाहिये इसरीतिसे कि (धातिरग्रेयमद्ययोः) इस वचन से सुरा और मद्यकी घाम का सुंधना तथा न सुंधने योग चीजोंका सुंधनाभी जाति भंशकर पापोंमें गिनती होचुकाहे तिस से इसमें जाति धन्यकर पापोंका प्रायश्चित्त देना चाहिये जो मनुने कहा है=यथाह मनुः=जातिभंशकरं कर्म कृत्वाऽन्यतममिच्छया चरेत्सांतपसं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया=अर्थात्=जातिभंशकर जो जो कर्म पहिले कहिचुके उनमें से किसी एकही कर्मको जानि वृत्तिके कियाहो तो कृच्छ्रसांतपन व्रतकरे जिसने बिना जाने अनिच्छा से कियाहो सो प्राजापत्य व्रतकरे ॥ २५७ यहां तक मुख्य सुरापान के प्रायश्चित्त

कहेगए अब अगिले परिच्छेदमें सुरासे उपरालू मद्योंके पीनेमध्ये कहेगे ॥ २५४ ॥

अथसुरावर्जित मद्यानां पानविषये प्रायश्चित्तांतर प्रदर्श कोऽयंपरिच्छेदः त्रयस्त्रिंशः ३३ ॥

इस परिच्छेदमें उस भौतिके मद्यपान मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो मुख्य सुरासे उपरालू मद्य होतेहैं ॥ मद्य उनका नामहै जिनमें सुरा के समान सब नशा होताहो-और मद्यसे उपरालू जो अभक्ष्य वस्तु होती हैं तिनके प्राय-श्चित्त का चर्चा दोरी छपन की अधिकोक्ति में ॥

(सुरेतरमद्यपानप्रायश्चित्तं)

अज्ञानाबुभुक्षुरापीस्वरेतोषिष्मूत्रमेवच । पुनःसंस्कारमर्हतिप्रयोवर्णाद्विजातयः २५५

अर्थः—अज्ञानतासे जलके धोखे जो कोई मद्यरूपी सुरापीवै या पुरुष का वीर्य या मूत्रको मुखमें जानेदे सो तीनोंवर्णों के द्विजाती लोग पुनः संस्कार उपनयन होने के योग्य होते हैं ॥ २५५ ॥

२५५ अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार इसपर व्यवस्था देतेहैं कि तप्तहृच्छका प्रायश्चित्त करनेके बाद अनन्तर पुनः संस्कार यज्ञोपवीत होनाचाहिये परन्तु तीनोंवर्णों को यह संस्कार वीर्य और मूत्रहीके पीनेमें समझना किन्तु मद्यपान मध्ये केवल ब्राह्मण का पुनः संस्कार होनाचाहिये क्योंकि क्षत्री और वैश्यको मद्यपीने की अनुज्ञा सिद्ध होचुकीहै २५४ की अधिकोक्तिमें देखो तिससे इन दोनोंको केवल तप्तहृच्छ करना होगा—और यहां जो मूलश्लोकमें सुराशब्द आया तिससे मद्य समझना मुख्य सुरा नहीं क्योंकि प्रायश्चित्त बहुत छोटाहै तिससे और इससेभी कि अज्ञानतासे मुख्य सुरा पीजानेपर चारद्वय का प्रायश्चित्त पहिली अधिकोक्ति में कहिचुके है—इसी हेतुसे गौतमने उस विषयपर मद्य शब्दहीका बर्ताव कियाहै कि जिससे सदेह न उड़े—यथाह गौतमः=अमत्यामद्यपानेपयोधृतमुदक्वायुं प्रतिव्यहतपानि पिबेत्सप्तहृच्छकः ततोऽस्यसंस्कारो भूषणपरिष्कारपरतर्साप्राशनञ्च=अर्थात्—चिना जाने मद्य पान करने में तीन तीन दिन दो चोर्जे गरम करि करि पीवै कि पहिले तीन दिन दूध फिर तीन दिन घृत फिर तीनदिन जलही गरम पीवै फिर तीनदिन केवल वायु जो सूर्यके आताप

से स्वतः तप्त हुई हो-तिसै पीके रहै सो यह तप्त कृच्छ्र नाम का प्रायश्चित्त कहाता है यह करने पीछे इसका उपनयन संस्कार भी कियाजाय तब शुद्ध होताहै और यही प्रायश्चित्त उपनयन सहित उनकोभी कराना कि जिसने सूत्र या विद्या या पीवराधि वगैरे कोई सड़ाईधिया पुरुषका वीज भक्षणा कियाहो-इसी पर और भी वचनांतर है कि (तप्तकृच्छ्र चत्वारविप्रोजलसीरघृतानिलाव प्रतिग्रहपिबेदुषानसकृत्स्नाथीस साहितः) अर्थात्-ब्राह्मणा जो तप्तकृच्छ्र करना चाहै सो जल और दूध और घी और हवा इन प्रत्येकको तीन तीन दिन गरम करिके पीवै तबतक एकही बार स्नान किया करै=पराशरने इन चीजोंका परिमाण विशेषभी कहाहै=यथा=यत्पलंतुपिबेदंभस्त्रि पलंतुपयःपिबेत् पलमेकंपिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते=अर्थात्-तप्तकृच्छ्रव्रत उसका नामहै जो छेपलकी तौलसे जलपीवै तीनिपल दूधपीवै एकपल घी पीवै आगे तीनि दिना केवल वायुभक्षणा कहिचुके हैं=और जो मनुका यह वचनहै कि (अज्ञानाहार सांपीत्वा संस्कारेणाविशुद्धाति) विद्या जाने वारुणी मदिरा पीकर संस्कार होने से विशुद्ध होताहै) सो इसमें भी वही तात्पर्यहै कि पहिले तप्तकृच्छ्रकी साधनाकरिके तबसंस्कार कियाजाय क्योंकि मोतमके वचनसे मुताविक होना चाहिये (पुनःसंस्कार द्विवारा जनेऊ करना कहाताहै) सो यह आचलायन आदि कर्मकांडियों के बांधे क्रमसे करना चाहिये कि जैसा (अथोषेतपर्वस्यकृताकृतंकेशवपनं मेघाजननंचानिरु क्तंपरिदानं कालप्रवृत्तस्त्वितुर्लंगीमहे इतिमाविधीम्) प्रथम वेदीके पास बैठारे हुये का मुंडन कियाजाय चाहै बाल मुड़ेहों या नहीं दोनों दशासै रखे और बिना रखेबाल सर्वथा कृताकृत पवन कियाजाय फिर मेघाजनन कर्म कियाजाय जिससे उत्तमबुद्धि उत्पन्न होय फिर अनिरुक्त कर्म कियाजाय फिर परिदान कर्म होय फिर कालकर्म तत्संवितुः इत्यादि ॥ ० ॥ जिसने जानि ब्रूमिके मद्यपान कियाहो तिसको वसियोक्त विधिसे प्रायश्चित्त देना चाहिये=यथाहवसिष्ठः=मत्यामद्यपानेत्स्वसुरायाःसुरायाश्चा ज्ञानेकृच्छ्रातिकृच्छ्रोघृतप्राशनं पुनःसंस्कारश्च=अर्थात्-सुरा के बिना उपराल मद्य जानि ब्रूमिपीने में कृच्छ्रनामक व्रतकरै और साक्षात् सुराका अज्ञानतासे पीनेमें भी अतिकृच्छ्र व्रतकरै और दोनोंके व्रतकीये पीछे घी चारै और दुबारा संस्कारकरावै= अथवा (असुरामद्यपायोचान्द्रायणांचरे दितिशंखोक्तविकल्प्यं) सुरा विहीन मद्य का पीनेवाला चान्द्रायणा व्रतकरै यह शंखमुनिका कहा विकल्प सो कियाजासक्ता है (यहां जिन व्रतोंके नामही केवल कहेगए तिन सबके विधान आगे आवेंगे तहां च्योरा समझिलेना क्योंकि चान्द्रायणा व्रत एकही नामहै उसके चारिमेद होतेहै एवं

प्रायश्च बारहदिनके नियम साथ कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र ये दोनों जुदेव्रतभी होते हैं तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्र दोनों मिलिके एक तीसरा जुदा होता है और भी छे दिन का कृच्छ्राह होता है फिर कृच्छ्रहीके नामसे कृच्छ्रसान्तपन आदि व्रत होते हैं तिससे इनको बिस्तार लिखनेको यहां पर अवकाश नहीं है ॥ ० ॥ जिसको सिर्फ मुखहीमें मद्यपहुंचा हो गलेकोनोचे नउतरा हो तिसके लिये छेदिनका व्रत आपस्तंबके विधानसे विचारना चाहिये=यदाहापस्तंब=अभक्ष्याणामपेयानां मलेद्यानांचभक्ष्यस्य रेतोमूत्रपुरीयाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् पञ्चोदुम्बराविल्वानां पलाशस्य कुशस्य च सतेयामुदकं पीत्वा यद्वा त्रेणाविशुद्ध्यति=अयत्ति-नखानेकी न पीनेकी न चाटनेकी निषिद्ध चीजों के भक्षणा करिजानेमें तथा पुरुषका बीज और मूत्र और बिद्या इनके भक्षणा करनेमें प्रायश्चित्त कैसे होवे सो कहिते हैं कि पशु•उदुंबर गूलर•बेल•पलाशहाख•कुशा•इनपतोंका जल औदिके छेदिन तक पीने से पवित्र होता है-सो यह नियम सिर्फ ताड़ी आदि मद्योंके वियग्रपर समझना कि जैसे गृह मत्त आदि बोखा से मुहमें जाते सार, धूनि दिया तैसे ताड़ी आदि मद्यको मुहमें जातेसार धूनि दियाहो तिसकी शुद्धि छेदिन में होजायगी=अन्यथा गोडो और माध्वीको बिनाजाने मुखमें डारिके बिना धूनेजो धूनिदेइ तिसके लिये जैसा वसिष्ठ के वचनमें ऊपर (अधुरायाः सुरायाश्चाज्ञानतः) यह लिख चुके सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र सहित दुवारा संस्कार और घृत का चाटना भी कराना होगा, (परंतु यह संवेद न करना कि पहिली अचिकीर्त्ति में तालू तक पहुँचने मध्ये मनुके वचन से एक वर्षभर पीना खाना कहाया यहां क्योंकर थोड़ा रहिगया• क्योंकि वहाँ सबसे बड़ी पैंथी सुरा का प्रायश्चित्त कहा और यहां उससे छोटी गोडी माध्वी का प्रसंग है तिससे थोड़ा रहिगया वल्कि (उन्हीं गोडों और माध्वी को जानि वृष्णि स्कवार के निपट पीजाने मध्य (पिययाकं वा कृत्वा नृवापी तिवैवार्थिकं) यह दोसो जीवन के उत्तरार्ध से काइचुके तैसा तीनवर्ष तक पीना खाकर प्रायश्चित्त करना चाहिये=और जिसने अपनी चाहना तथा कामनासे उन्हीं गोडो या माध्वी को बारम्बार पीने का अभ्यास कियाहो तिसके लिये वसिष्ठ का दशोया मरणांतिक प्रायश्चित्त चाहिये जैसा २५३ दोसो वेषन की अचिकीर्त्तिमें लिखि चुकेहैं कि (अभ्यासेतुसुषया अग्निवर्णांसुरांपिबेन्मरणात्पूतो भवतीति वसिष्ठ यः) सुरा के बारम्बार अभ्यास पूर्वक पीने में यही प्रायश्चित्त है कि अग्नि के समान लाल तपाई हुई सुराकोही पीवे जो हृदय जलिकर मरजाने से पवित्र होता है• इसमें सुराकहिनेसे गोडो और माध्वी सुरासे प्रयोजन है किंतु पैंथी सुराका अभिप्राय

इसमें नहीं है—क्योंकि ऐसी सारा सबमें मुख्य होती है तिसके एकही बार पीनेपर मरणांतिक प्रायश्चित्त २५३ दोसी घेपन श्लोक और उसीकी अविकोक्तिसे कहि चुके हैं तिससे ॥ • ॥ मद्य धरने के मुखे वासन में भरा हुआ जल बिनाजाने एकही बार पीनेमें दुरुदयसका कहा प्रायश्चित्त विचारना=यदाह दुरुदयसः=मद्य भांडस्थितंतोयंयदिकश्चित्पिबेत्द्विजः कृशमलविपक्वो नज्यइंसीरेणवर्तयेत्=अर्थात्—मद्य के भांडमें धराहुआ जलजो कोड़े द्विज पीवै सो दूधमें कृशा की जड़का काय प्रकाय के तीन दिन पीवै=बिना जाने अनेक बार पीते रहने में वमिस का कहा प्रायश्चित्त विचारना=यदाहवसिष्ठः=मद्यभांडस्थितंतोयंयदिकश्चित्पिबेत्द्विजः पशोदुंबावित्वा नांपलाशस्यकृशस्य चरुनेयामुदकंपीत्वात्रिरात्रेणाविशुद्यति=अर्थात्—मद्यके भांड में धराजलजो कोड़े द्विजपीवै सो पशु-गलर-बेल-हाखा-कृशा-इनकाकाड़ा रोजपीकर तीन दिनमें शुद्ध होताहै=जानते हुये पीलेनेमें विष्णाकाकहा प्रायश्चित्त विचारना=यदाह विष्णाः=मद्यभांडस्थितंतोयं पीत्वापंचरात्रं शंखपुष्पीयुतंपयःपिबेत्=अर्थात्—मद्यके वासन का जल पीके पांच दिनतक शंखपुष्पी का ओढ़ाया दूध पीवै=जानते हुये बार बार पीने में शंखजीका कहा विचारना=यदाहशंखः=मद्यभांडस्थितंतोयंपीत्वासप्तारात्रंगोममंत्रंयावत्कंपिबेत्=अर्थात्—मद्यभांडका जल पीके गोमूत्र लाखवे सात दिनतक पीवै=जिसने अत्यंत अभ्यास कियाहो किंतु जानतेहुये बहुत दिनतकपिआ हो तिसकेलिये हारीत का कहा प्रायश्चित्त विचारना=यदाहारीतः=मद्यभांडस्थितंतोयंयदिकश्चित्पिबेत्द्विजः द्वादशाङ्गुलपयसापिबेद्वाहीसुवर्चलान्=अर्थात्—मद्यपात्रका धरा जल जोकोड़े द्विज पीवै सो दूधमें औटिकी ब्राह्मी वज्रनेदः नाम सुवर्चला का पंचांग धारह दिनतक पीवै तब शुद्ध होय (मधी इन वर्चला में द्विज शब्द जो आया सो केवल ब्राह्मण का बोधक है) क्योंकि सगो और वैश्य को मद्यका निषेध नहीं है यह पहिले कही चुके हैं दोसी घेपन आदि अधिकोक्तों में देखो) मद्य के पात्र में धरे जलके मध्ये जो जो वचन यहांपर लिखे गये सो सब गोत्री साध्योंके पात्र में धरे जलका वियत्र समुभूना क्योंकि प्रायश्चित्त के बड़ापन से यही तात्पर्य टंकेरता है तिससे ताड़ी आदि छोटि सर्षों के मुखे पात्रका धरा जल पीने मध्ये कृद न्यून कल्पना करनी चाहिये ॥ २५५ ॥

यहांतक पुरुषों के प्रायश्चित्त कहेगये अब आगे जो स्त्रियां सदिरा पीवै तिनके प्रायश्चित्त रणविगे ॥

(स्त्रीणांसुरापाने प्रायश्चित्तानि)

पतिलोकेनसायातिब्राह्मणीयासुरांपिबेत् । इहेवसागुनीश्वर्षीभूकरीचोपजायते २५६

अर्थ—जो ब्राह्मणी सुरा पीवै सो पतिके लोक को नहीं जातो है वह इसीलोक में कृतिया गिद्धिनी सुकरी होके जन्मती है—अर्थात्—ब्राह्मणी आदि तीनों द्विजाति-यों की भार्या यद्यपि पतिकी सेवा आदि अनेकपुण्य करनेवाली हो तौभी जोसुरा पीवै सो पतिके पुण्य लोकों को नहीं जाने पाती है इसी लोक में कृत्ता आदि ति-र्थक योनियों में बारबार क्रम से जन्म पाती है ॥ २५६ ॥

२५६ अधिकोक्तिः—मूल प्रत्येक में योगेश्वर ने केवल ब्राह्मणी शब्द रक्खा है तौभी मिताक्षराकारने व्यवस्थाको अपेक्षा से तीनों वर्गोंकी भार्या अर्थ किया है इस हेतुसे कि आचार मर्यादा परिपारिमें ५७ मूलप्रत्येक से आवश्यक निर्वाह निश्चित होचुका है कि ब्राह्मणके ब्राह्मणीआदि चारोंवर्गों की भार्याभी होती हैं सभीके स-शराओ आदि तीनवर्गों की भार्याभी होतीहैं वैश्यके बनेनी आदि दोवर्गोंकी भार्याभी होतीहैं(शूद्रके केवल शूद्रा भार्याहोतीहै) इसोन्यायसे यहांभी जिसद्विजातीकेजितनी भार्याएँ होनीकहीगई तिनसबहीका उपलक्षण एकब्राह्मणको कहिनेसे लिया है इसका इसीसे दृष्टांत समझो किब्राह्मणकी भार्या अर्थात् ब्राह्मणकी भार्या चाहें सभीवर्गों या वैश्यवर्गों या शूद्रवर्गों की कन्या हो तौभी सुरा पीने से पतिका लोक न पावेगी इसी प्रकार सभी और वैश्य की भार्याएँ समझलैना=इसीआशयपर मनुका वचन है कि=पतत्यर्द्धशरीरस्यस्यभार्यासुरांपिबेत् पतितार्द्धशरीरस्यनिष्कृतिर्नविधीयते=अर्थात्-जिस किनीकी भार्या सुरापीवै तिसके शरीरका आधा भाग पतित होजाताहै पति-तहुये आवे शरीर की निष्कृति नहीं होती है—क्योंकि धर्म अर्थ काम इन तीनों में स्त्री पुरुष दोनों का साथही अधिकार होने से दोनों का एकही शरीर माना गया है तिससे भार्या रूपी आधा शरीर पतित होजाता और इसीसे उसकी भुक्ति नहीं होती है—तिससे द्विजाती माय की भार्या ब्राह्मणी आदि की सुरा न पीनी चाहिये यह प्रतियेध निश्चि हुआ—यह वचन पहिले आचुका है २५३ की अधिकोक्ति में देखी (तस्माद्ब्राह्मणानां जन्म्यो वैश्यश्चनमुरांपिबेत्) कि ब्राह्मण सभी वैश्यभी सुरा न पीवै इसमें पुरुषही या स्त्री न पीवै यह लिंग भेद नहीं किया तिससे तीनों वर्गोंकी समस्त जातिमाय को नियेध ठहिरा कि पुरुष और स्त्री और बालकभी न पीवै—इसने वचन से तीनोंवर्गोंकी भार्याओं का नियेध सिद्धहोचुका था तौ फिर द्वारा भार्याओं की

विशेषता यहां इसलिये कही गई समझो कि द्विजातियों के कदाचित् शूद्रों भार्या हो तिसको भी मुरा न पीना चाहिये—इन सब कारणों से यह बात सिद्ध हुई कि द्विजातियों की भार्या चाहें शूद्रों पर्यंत किसी वर्णकी हों सो कदाचित् मुरा पीवें तो उनकी भी अपने पुरुषों से आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये (२५४ दोसौ जीवन की अधिकोक्ति में भी लिख चुकेहैं कि स्त्रियों और बालक बूढ़े आदि को आधा प्रायश्चित्त देना चाहिये वही तात्पर्य सर्वत्र और यहां भी समुभूत रहिना) परन्तु जो शूद्रकी भार्या मुरा पीवें तो उसके लिये शूद्र के समान मुरा पीने का नियम नहीं है तिससे प्रायश्चित्त भी आवश्यक नहीं है ॥ ० ॥ और जो २०६ दोसौ उनतीस मूल श्लोक वा उसकी अधिकोक्ति में नियिद्ध चीजों का भक्षण करना भी मुरापान के समान कहा गया है तिनके भक्षण करने में मुरापान ही का प्रायश्चित्त आचरना करना चाहिये अर्थात् मुरा पीजाने मध्ये जो कुछ प्रायश्चित्त जिसके लिये जितना करना कहा है वही उससे आधा करे जिसने नियिद्धचीजें भक्षण कीहों यह पहिले कहिचुके हैं ॥ २५६ ॥

इतिमुरापान प्रायश्चित्त प्रकरणं

॥ इस प्रकरणा में इकातिस से तैंतीस तक तीन परिच्छेदों से मुख्य मुरापान और असुख्यमुरापान और मद्यपान के समस्त प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था कहीगई अबआगे चोरीकरने मध्ये चोरोंके प्रायश्चित्त कहे जावेंगे ॥

अथ सकामस्वर्णापहारप्रायश्चित्तानांभेदाविवेचकोऽयं

परिच्छेदःचतुस्त्रिंशः ३४ ॥

इस परिच्छेद में उन प्रायश्चित्तों का भेद विवेचन किया जायगा जो इच्छा और कामना से ब्राह्मणाका सुवर्ण आदि इतने के पापों पर आवश्यक होतेहैं ॥

(स्वर्णापहार प्रायश्चित्तं)

ब्राह्मणसर्णहारीतुराज्ञेमशालमर्पयेत् । सकर्मस्यापयस्तेनहतोमुक्तोपिवाशुचिः २५७

अर्थः—ब्राह्मणाका सोना हरनेवाला चोर अपने कर्म (चोरी) को सुनाता हुआ (आपहीजाकर) राजाको मूल समर्पण करे (उसी मूल से राजा करके वहचार)

निपट माराहुआ या छोड़ दिया हुआ भी पापसे छुटिजाता है—अर्थात्—यहीउसका प्रायश्चित्त है कि आपही राजाको शस्त्र समर्पण करें फिर चाहें राजा अपने न्याय विचार से उसको निपट मारिही डारें या दंड देकर छोड़ि देंवें तो भी शुद्ध होजाताहै अन्यथा नहीं ॥ २५७ ॥

२५७ अधिक्तोक्तिः—सोना इरनेका शब्द कहिने से इतनी बातें सूचित करी हैं कि चाहें स्वामीके सम्मुख या औरही किसीके सम्मुख इरलिया हो या स्वामी को आंख पीछे हरा हो या जबरदस्ती से खीना हो या चोरों की तरह चुराया हो—परन्तु उन बातोंको छोड़ि के समझना कि उसने खरोदने आदि प्रकारों से हरा हो जिसमें निज उसीका स्वत्व (इक्षमालिकियत) किसी हेतु से पहुँचता हो ॥ ० ॥ सुसल समर्पण करें यद्यपि यह सामान्य भाष से किसी लोहा लकड़ी आदि के विशेषता बिना कहासाया है तथापि जाइरहै कि मारने के निमित्त देना कहा तिससे मारनेमें समर्थ लोहे आदि का सुसल समझना=इसी हेतु मनुने यह कहा है कि=स्कन्धेनावायमुशलंलकुटंवापिखादिस्र असिंचोभयतस्तीक्ष्णायसंघंस्त्वमेववा=अर्थात्—काँचेपर मूसर या खैर का डगडा लाठी लेकर या तलवार जो दुधारा खौंडा दोनों ओरसे तीक्ष्ण पैंनी धारवालीहो यद्वा लोहेका डगडालाहो=शंखनेभी विशेषता इसपर कही है=यथा=सुवर्णास्तेनःप्रकीर्णकिशार्द्रवासा आयसंमुशलमादायराजानमु पतियेद्विदंमयापापंहुतमनेन मुशलेनमांघातयस्वेति मराज्ञाशिशुःसन्पूतोभवति=अर्थात्—सुवर्णाका चौरवाला छिटकार और भीजे वंख पहिने लोहेका मूसरलेकर राजा के पास जाय खड़ाही कि यह पाप मैंनेकिया इस मूसरसे मुझे मारडाली यह सुनि के राजासे ताडना पाया हुआ पवित्र होताहै ॥ ० ॥ उस चोरका मारना भी वारम्बार चौदोंसे नहीं किन्तु एकही बार करना चाहिये=इसीलिये मनुने कहा है कि (ततो मुशलमादायसकृद्व्यातुतंस्त्वयं) चोर की बात सुने पीछे राजा आपही मूसर लेकर अपने हाथसे एकही बार उसको मारे=इस प्रकार एकही बार मारने से मौत पाकर शुद्ध होय यद्वा उस एकही चौटमें मरनेसे वचिकर जीवतेहुये भी शुद्ध होजाता है=तैसाही संवर्तने कहाहै=ततोमुशलमादाय सकृद्व्यातुतंस्त्वयं यदिजीवतिसस्तेनस्ततः स्तेथाद्विशुध्यते=अर्थात्—तिसकेबाद राजाआपही मूसरलेकर उसको एकहीचोटमारें जो उन एकचोटमें वह चोर जीवता वचिजाय तोभी चोरीकेपाप से विशुद्धहोजाताहै (ऐसाही ब्रह्महत्याकेप्रायश्चित्त मध्ये२४ पदोसोअज्ञतालिस मूलप्र तोकमेंकहाया कि (मृतकल्पःप्रहारतोर्जीवर्त्तार्पावशुद्ध्यति)=यहाँ=वादी अपनी तर्क से शंका खड़ी

करता है, क्योंजो ऐसा अर्थ जोनहीं लगाते कि, राजा यदि बिना सारेकोहिदे तोभी शुद्ध होजाय क्योंकि मूल श्लोक में यहभी अर्थोटीक ठीक होसक्ता है=सुनो यद्यपि ठीक होसक्ता है तथापि (अचत्तेनस्वीराजा इतिगौतमीये ताह्नसकुर्वतोराजोदेव्याभिधानात्) न भारतेहमे पापी राजा हो•यहगौतम केवचन में, राजा को दोष कहा है तिससे नहीं वैसा अर्थ लगाते हैं, अचक्षा होउ राजा को दोष, तोभी नियम के उल्लंघने वाले राजा ने, स्नेह, दया भाव आदि किसी हेतु से छोड़दिया न मारा, तो कैसे नहीं शुद्ध होगा=सुनो ऐसा होने में (घृणाही) अकारणा अशुद्धि का आपरना होता है—क्योंकर होता है कुटिजाने के पीछे बारह वर्ग आदि को किसी अनुयानसे शुद्धि करना स्वीकार करने से घृणा अशुद्धि न रहेगी• सोभी, यह आशय अचक्षा नहीं क्योंकि मूल श्लोक में (मुक्तशुचिः) नचिकर कुटकारा होगही शुद्धि का हेतु कहा गया है तिससे (मुक्तोवामराज्जीवर्चापविशुद्ध्ये दितिप्राच्येवदयाख्याज्यायसी) वही पहिली व्याख्या, श्रेय है कि मुसल आदि मारने में, मरने से बचिगया जीवते हुये भी शुद्ध होजाता है ॥ ० ॥ यह सरणांतिक, प्रायश्चित्त, सभी वर्गों के चोर को समझजा किन्तु केवल ब्राह्मण हीको नहीं क्योंकि (ब्राह्मणस्वर्गाद्वारी) यह मूल श्लोक में कहागया, सो बिना किसी विशेषता केसामान्य भाव कहा है कि ब्राह्मणता का मोला-ह्राते वाला कोई जाति वर्ग का नियम कुछ नहीं है, और महापातकों वाले परिच्छेद में सभी आदि कोभी महापातकत्व, अविशेषता से कहिचुके हैं और पुनःको ज्ञिये, कोई जूय प्रायश्चित्त भी वर्ग के अनुसार नहीं कहागया=इस वशाके होतेपरभी जो मनु के वचन में (स्वर्गास्तेयकृद्भिः) यह विप्रही का नाम धरागया, सो भी समस्त नरमात्र का उपलक्षणा है कि सबसे मुख्य ब्राह्मण को कहि दिया तब और, सबकोई भी न वाकी रहे•वलिक इसी मनु वचन के पहिले प्रकृत वर्णन में (प्रायश्चित्तीयतेनरः) यही नर शब्द आचुका है जो, सम्पूर्ण मनुष्य भावका वाचक होताहै—और भी यह प्रमारा है कि पातकरूपी निमित्तों का यह वचन है (ब्रह्मइत्यासुरापानस्तेयंघुर्वगनागमः) इसमें कोई विशेषता न कहोगई कि ब्राह्मण या क्षत्री आदि कौन करे तिससे सभी मनुष्य भावपर आखड जानो• जब कि इस निमित्तरूपी वचन में सभी मनुष्योंका तात्पर्य छनिचुके तो फिर इसी वचनका संबंधी जो नैमित्तिक वचन है कि (स्वर्गास्तेयकृद्भिः) इसमें विप्र शब्द सुना जान परभी सर्व मनुष्यों का उपलक्षणा माना चाहिये कि, जैसा इसके पूर्व संबंधी वचन में मनुचुके कोकि ब्राह्मण सबमें प्रधान है उस प्रधान का नाम कहिने से अप्रधान भी

सब समझिले जाते हैं यहाँ भी भीमांसाका वंशोद्वृत्त है जो २५ इंकी अविकोक्ति में द्योरेवार लिखचुके तहाँ देखो कि तंदुलका नाम कहिने से होमका सर्वसांख्य समझ लेते हैं) तैसा इसमें भी विप्र के उपलक्षणा से सकल मनुष्यमात्र समझ जाते हैं॥०॥ मसरआदिसे मारना कहा सो ब्राह्मण चौरसे उपराल समझना चाहिये क्योंकि (नजानुब्राह्मणइत्यात्मवर्षपापेष्वपि मृतं सति मां न वृत्राहंसाववर्जित्यिदं ब्रूवात्) मनुस्मृति में यह नियेव है कि ब्राह्मण को कदाचित् भी न मारे यद्यपि सबतरु के पापोंपर आरुढ़ हो—तथापि जो कभी किसी राजाने नियेव को न मारि के मारि दिया तो भी शुद्ध होता है—क्योंकि अगिता वधन देखो उसमें वधके द्वारा ब्राह्मण की भी शुद्धि होती कहा है—यथा (वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणास्तपसैव वा इति विकल्पा भिधानात्) अर्थात्—वध होने से चौर शुद्ध होता है पर जो ब्राह्मण हो तो तपस्या से भी शुद्ध होता है यह विकल्प कहा गया है कि या तो वध होने से या तप करने से भी॥ ०॥ परन्तु तपसैव वा इसमें सब शब्द जो होका अर्थ होता है तिसकी धांतिसे कुछ ब्राह्मण चौरके वधका निषेव निषट् नहीं है कि वह वधसे शुद्ध न होगा केवल तपसे शुद्ध होगा क्योंकि यह शब्दकार इस लिये है कि जो वध न होतो केवल तपसे भी शुद्ध होता है और भी इस अर्थ की ध्वनि देखो चाहिये कि जो वधसे शुद्ध न होना माना जाय तो फिर (तपसा एव वा) यह विकल्प की या और ही दोनों कि सुके साथ जोड़ी जाय किन्तु केवल एकही विधि में विकल्प नहीं सिद्ध होता है—और यह भी नहीं कहि सक्ते हैं कि दंडके अभिप्राय से विकल्प माना जाय क्योंकि दंडका आदेश ही नहीं किया गया और भी यह विरोध है कि (संकीर्त्यास्तु विकल्परक्षितिन्या येनैकाग्र्यानामेव विकल्पो ग्रीहियवयोरियत्तदंडं तपसोरेकार्थत्वं दंडं तपदनार्थत्वात् तपसश्च पापक्षयहेतुत्वात्) अर्थात्—जिन दोनोंका एकही सा प्रयोजन हो वेही परस्पर विकल्प में काम आवें इस न्यायसे एकही अर्थ वालोंका विकल्प होता है दोनों और जो की तरह दंड और तपका एक प्रयोजन नहीं है क्योंकि दंड तो दमन के प्रयोजन से किया जाता है तपस्या पापोंका क्षय करने के लिये होती है तिससे दोनों का एक अर्थ नहीं ठहिरा—और—यह भी इसमें विचार है कि (वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणास्तपसैव वा) यह पहिला पाद सामान्य विषय और दूसरा पाद विशेष विषय है कि जो केवल ब्राह्मण पर आरुढ़ है तो भी सामान्य और विशेष दोनों का परस्पर विकल्प नहीं सिद्ध होता है अर्थात् सामान्य विषयिक वधके साथ विशेष विषय तपका विकल्प नहीं बनता है—किन्तु ऐसा विकल्प वाक्य नहीं होता है कि

ब्राह्मणों को दोही देता चाहिये या कौंडिन्य मुनिको मट्ठा • तिससे दोनों का सामान्य ही वियय हो ॥ ५० ॥ अथवा इसरीतिसे भी व्यवस्था है कि इस चोरी को विययवाले प्रकृत प्रायश्चित्त में राजा आदि सर्वोको भी ब्राह्मणों के वर्धकों नियेध नहीं है क्योंकि (सुवर्णास्तेयकद्विप्रः) मनुने इस वचन में बिंप्रौही को कहिकर पीछे (गृहीत्वामुशल राजासकृद्वन्यात्तत्सव्यः) तें ब्राह्मण यह सर्वनाम शब्द के द्वारा चर्चा किये ब्राह्मण ही की परामर्श लेकर संक्षार मारने का विधान किया है तिससे इसमें कदाचित्त यह कहो कि ब्राह्मण को सारनेका निषेध वचन ऊपर कहि चुके हैं • तिसका तात्पर्य ही कुछ और कि (नजानुब्राह्मणान्हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितं) यह मारनेका निषेध प्रायश्चित्त बाबत नहीं किन्तु प्रायश्चित्त से उपराल दंड देने की रीति से मारनेका नियेध सिद्ध होता है क्योंकि प्रायश्चित्तके मध्ये सासात मूसर आदि लेकर मारनेका आदेश ही जो कहा गया ॥ ० ॥ यह मरणा पर्यन्त का प्रायश्चित्त जो कहि चुके सो बुद्धिपूर्व सुवर्ण इन्हेपर आरुदहै • क्योंकि क्षत्रिणों की वचली मध्यम स्मृतिका यह नियम है कि मरणांतिकंच यत्प्रोक्त प्रायश्चित्तमतीतिभिः तत्कामकृतेपापे विज्ञेय नावसंशयः अर्थात् बुद्धिमत्मानोंने मरणांतिक जो प्रायश्चित्त कहीं कहा हो सो सर्वत्र कामनासे किये हुये पापमें समझना इसमें सदेह कुछ नहीं है ॥ ० ॥ इस प्रायश्चित्त के प्रसंग में सुवर्णका हरना जो कहा गया वह सुवर्ण भी एक परिमारा विशिष्ट तौल का नाम है कि इतना सोना हरने से सुवर्ण की चोरी कहावै कुछ सोने की जाति ही का नाम नहीं • तिससे वह तौल भी समझनी चाहिये सो लिखते हैं = यथा = ज्ञातसूर्यमरीत्यवसरेण राजस्मृतम् तेऽष्टौ निश्चयात्तुतास्ति सौरात्रसर्पपञ्चयत्ते सौर- स्तुतेवश्च यद्भिर्व्योमव्यस्तुतेवश्च कृष्णाल पचतेनायस्ते सुवर्णास्तु योऽष्ट = अर्थात् आचार मर्यादा के अन्त में जो मान की परिभाषा योगीश्वर आप कहि चुके उसके दोही प्रतीको से यहाँ प्रयोजन है कि घां के जालोदार भरोखों में सूर्यको क्षिरों जो घुमती है तिनमें जो ब्रूत हलुके छोटे अति सूक्ष्म किन्तु केसे उज्जते देखि परते हैं वही उसरेण राज कहाते ह वै आठ मिलि के एक लीख कही जाती है तीन लीखें मिलि के राजरूप अर्थात् राई कहाती है तीन राई मिलिके पीली सरसां होती है छः सरसां मिलिके एक मध्यम जो कहाता है तीन जो मिलि के एक कृष्णाल अर्थात् घुंघुची की तौल ठहरती है ऐसी पांच घुंघुची मिलिके एकमासा होता है इन्हीं सौरह मासे का एक सुवर्ण अर्थात् लोक म अगर्फी कहाती है इसी तौल के अनुसार इतना सोना हरने से सुवर्ण की चोरी कहाती है (काकि योगीश्वर आपही यह

परिभाषा पहिलें नियत कर चुके) इस हेतु से जहां कहीं ऐसा लिख चुके हो कि ब्राह्मण को सुवर्ण चुराना सहापातक होता है तहां सर्वत्र इसी परिभाषा को समझ लेना कि इन्हीं मांसों से सोरह मासे सोना चुराने का तात्पर्य है (क्योंकि जो कोई ग्रन्थकार अपने निर्मित किये ग्रन्थ में कोईसी परिभाषा या परिमाण-विशेष नियत करते हैं सो निष्फल या निष्प्रयोजन कभी नहीं होती किन्तु उसी ग्रन्थ की आदि से अन्त तक बतवि में आता है) और यही नहीं कहिसक्ते हैं कि यह मान परिभाषा ससारी व्यवहारों के लिये कही गई क्योंकि लोक में उसका वर्तमान नहीं है लोक व्यवहार के मासे तोले आदि जुड़े होते हैं यह केवल स्मृतिकारों की प्रवृत्ति एक निराली जाती है—इसी लिये न्यायज्ञों ने यह कहा है कि सत्ता और परिभाषा इनकी उपस्थिति अपने अपने कार्य के समय पर आवश्यक होती है कि जहां उसका प्रयोजन आनि पर तथैव नाम भी अपने गुण या फल के उपयोग से अर्थवाला ठहिरता है जैसे पट्टर घी इत्यादि में—तिससे यह भी नहीं कहि सक्ते हैं कि योगीश्वर ने ब्रह्म मान परिभाषा केवल व्यवहारकारण की उपयोगी सिर्फ जुमाने के बतवा को नियत करी होगी क्योंकि इसका कोई प्रमाण कहीं नहीं है कि यह परिभाषा केवल उसी काम के लिये नियत हुई और जब कि कोई प्रमाण की विशेषता न दिहरी तो फिर समस्त ग्रन्थ मात्र पर बतवि उसका आसन्न हुआ—क्योंकि ब्रह्मज्ञान केवल इसलिये होता है कि वह अपराधी दमन होकर आगेको सावधान डचाय सो ऐसा ठीक ठीक दमन उस दशा में नहीं होसक्ता जो जुमाने का कोई परिमाण विशेष नियत न होता (किसी पर दसगना दंड होजाता किसी पर चौथाई भी न होता) तिससे स्मृतियों में परिभाषा कृपा याददास्त लिखी जाती है—इसीप्रकार प्रायश्चित्तों के मुआमिले में न्यूनाधिक रीति से व्यभिचार दूर करने के लिये परिभाषा कृपा याददास्त का उपयोग होता है—तिससे सर्वथा यही सिद्धांत आकर ठहिरा कि सोरह मासे का सुवर्ण (अश्वरफो) भर तौलसे सोना ढरना सहापातक है उसीके निमित्त सरणांतिक आदि प्रायश्चित्तों का भिधान है ॥ = ॥ इसी के सबब में यह न्याय भी विशेष है कि ब्राह्मण को दो तीन आदि मासे भर सोने के ढरने में सहापातक न होगा किन्तु उपपातक होगा कि जैसे सारी आदि का सुवर्ण ढरने से उपपातक होता है—सो यह न्याय भी यद्विशिष्टत के ग्रन्थ में व्यर्थे वार कहा है—यथा=वाला प्रमाण २५हतेप्राणायामसमाचरेत् लिख्यामात्रेपि चतयाप्राणायामन्यवच राजसंपन्नानि तेषां आयामचतुष्टयस्य गायत्र्यष्टसहस्रचतरेत्पार्ष्विचतुष्टये गौरसंपन्नानेच सार्वभौ

वैदिनं जपेत् । यत्र मासेषु वर्णाश्रमप्रायश्चित्तदिनद्वयम् । सुवर्णाक्षयालं होत्रमपहृत्य द्विजो
 त्तमः क्षयत्ति सातपन्तश्च । तत्पापस्यापनुत्तये । अपहृत्य सुवर्णाश्रमप्रायश्चित्तमः शो
 भवयायकाहारं च । भिर्मासैर्विशुद्धं तिसृष्वर्णस्यापहरणो वृत्तरं यावको भवेत्तु त्र्यं प्राणां
 तित्वं होयमयत्रा ब्रह्महा व्रतस्य (इदं च वत्सः यावका शर्तकं चिन्त्यून सुवर्णापहारं विवयं
 सुवर्णापहारे सन्वादिमहास्मृतिं ह्युदाद्यं वार्षिकविद्वानात्) अथ हिं- ब्राह्मणो को भिर
 सोना हरने में प्राणायास करै तब शुद्ध होय यही प्रायश्चित्त है । तथा एकः लीख
 वरावर सोना हरने में तीनवार प्राणायास करै (सुवर्णं धितः) यदि वरावर सोना हरने
 में चारि प्राणायास करै और आठहजार गायत्री भी जपे उस पापको निवृत्तिके लिये
 सरसों बराबर सोना हरने में आठप्रहर भरि गायत्री जपे एक जो भिर सोना हरने में दो
 दिन का प्रायश्चित्त करै एक क्षयात् घृणुची वरावर सोना हरने में वद्विजोत्तम सात-
 पन्तश्च व्रत करै ७ सपापको शुद्धिके लिये एक मास भर सोना हरिके वद्विजोत्तम
 गायत्री जपके सिवाय तो निमोसतक गोमूत्र और यावक अर्थात् ताखका रस इन दोही
 का आहार करै तब शुद्ध होय सुवर्णा अर्थात् सोरह मासे सोना हरने में एक वर्ष तक यात्रक
 खाइके रहे इसके अधिक सोना हरने में प्राणांतिक प्रायश्चित्त जानो कि जैसे कहीं
 लिखि चुके हैं अथवा ब्रह्मइत्यांवाला व्रत करै (यह एक वर्ष तक यावक आहार करना
 कहा सो भी कुछ कमती सोरह मासे के हरने मध्ये समभूता । क्योंकि पुरे सुवर्णा के हरने
 मध्ये मनुआदि बह्विही स्मृतियों में बारह वर्ष का प्रायश्चित्त लिखा है तिसरे ब्रह्म-
 जंबवर्त्ती से कीतने आदि प्रकारों में सुवर्णा के परिमारा से कम सोना भी हरने में मरणांतिक
 प्रायश्चित्त होता है यथा बलाद्ये कामकारिणा गृह्णाति स्वं न राधमाः तेषां तु बलहर्षां
 प्राणांतिकमिहो ज्ञयते (सुवर्णा परिमारा दर्वा रापीत्यभिप्रेतं) अथ हिं- जे कोई अवस-
 नर इच्छा से जंबवर्त्ती धन हरते है तिन जंबवर्त्ती हरने वालों को इसमें प्राणांतिक ही
 प्रायश्चित्त कहा है (सुवर्णा के परिमारा से भीतर भी हरने में यह अभिप्राय जानो)
 वरन सोने के उपलसरा से चांदी आदि सब समझि लेने ॥ ० ॥ यह चोरी का प्राय-
 श्चित्त जो कुछ कहा गया सो हरा हुआ धन स्वामी को देकर करना होता है विज्ञा
 वापिस किये नहीं तथा च वचनं स्तेये ब्रह्म स्वभूतस्य सुवर्णादिः कृते पुनः स्वामिनेऽपहृतं
 देयं दृष्टव्ये कादशाविक्रमः अर्थात् ब्राह्मण के स्वत्वभूत सुवर्णा आदि किसी धन को
 चोरी करने में फिर हरनेवाले करके आपही स्वामी को हरा हुआ देवेना चाहिये (त
 अवग्रयोऽवपसांतरे समुच्चये नियोगे विनिग्रहे च तस्मात्) यदि हतस्वयं न ददाति तदा एका
 दशगुणांश्चत्वादाश्वयुजितात्पर्यार्थः) अर्थात् जो हरने वाला हरे हुये धनको आपही

न वापि स करै तब राजा उसपर ग्यारह गुणा दिवावै परन्तु ऐसा अर्थ नहीं है कि वह आपही ग्यारहगुणा देनेलौ कोणिक अपहृतहृत्प्रदिय यह प्रयोग प्रलोक में साफ है कि इसा हुआ धन धनीको देवेवै—बालिक-मनुके भी अप्रोक्त वचन मे उतनाही देनेका अर्थ है कि जितना चुराया हो=यथा=चरेत्सांतपनं कच्छ तन्निर्दाप्यात्मशुद्धये=अर्थात्—जो हराहो सो निःशेष देकर अपनी शुद्धिकेलिये सांतपन कच्छ व्रतकरै=और ग्यारह गुणा राजा दिवावै यह कहिचुके सो यह एक दंडको रीति से दिवाना कहा कछ प्रायश्चित्त का संबध उसमें नहीं समझना कोणिक दंडको प्रकरणा में भी ऐसा कहिचुके है (शोषेष्वेकादशगुणांदाप्यस्तस्य चतुर्दशं) कि बाकी सूरतों में उसका वह धन भी ग्यारह गुना करिके दिलावे ॥ ० ॥ जहां कहीं अशक्ति से राजा सारने की असमर्थ हो तहां वसियजोका कहा प्रकार करना=यथाह वसिष्ठः—स्तेनः प्रकीर्णकं शो राजानमभियाचेत ततस्तस्मै राजौदुंबरं शस्त्रं दद्यात्तेनास्मानं प्रमापयेत् मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते (औदुंबरं ताप्रमथं) अर्थात्—बाल छिद्रिकाये हुये चौर राजा के पास जाकर आचना करै कि मैंने यह सहापाय किया मुझे प्रायश्चित्त देना चाहिये यह सुनिके राजा उमे औदुंबर नामका शस्त्र धिश्य जो तांबेका बना समझा गयाहै सो देवै उसीसे वह चौर अपने शरीरको घातकरै मरनेसे पबिध होताहै यह जाना गा—यद्यपि उन्हीं वसिष्ठने दूसरा भी प्रायश्चित्त कहाहै कि=निष्कालको गोघृसाक्तो गोयमाग्निना पादप्रभृत्यात्मानं प्रमापयेन्मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते=अर्थात्—निष्कालकनाम समस्त बाल मुझाये हुये गऊका घी शरीरमें लपेटेहुये गऊके गोबरके कण्डोंकी प्रवीण अग्निमें पैरोंको आदिलेकर सब शरीर भस्म करै ती मरनेसे पबिध होताहै यह जाना गया—सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने गऊ या घोषिय या यारास्य ब्राह्मण आदिका द्रव्य हराहो यहा सबी आदि हरने वाला हो तिसके लिये भी ॥ ० ॥ तथैव अथमेव आदि यज्ञ करने से भी शुद्धि होनी कही है जैसा प्रचेताने मरणांतिक प्रायश्चित्त पहिले दर्शायकर पीछे से कहाहै कि(इष्ट्वा वाऽश्ममेन गोसवेन वा विशुध्येत) यहा अथमेव से या गोमेव से यजन करिके भी शुद्ध होय=सो यह प्रायश्चित्त उनके लिये समझना जो वैश्य वा क्षत्री आदि हरने वाले अपराधीहों ॥ २५ ॥ अब अगिले परिच्छेदमें अनिच्छासे हरनेवालोंके प्रायश्चित्त कहेंगे ॥

कि जिसने बिना कामना के सुवर्ण चुराया हो क्योंकि (इयविशुद्धिरुदिता प्रनाप्या कामतो द्विज इत्यकामतो विदितस्यैव द्वादशवार्यिकस्यातिदेशात्) बिना कामना केही द्विज सारने मध्ये जो बारह वर्य नियत हुयेये उन्हीं का अतिदेश यहां दिया गया तिससे=अर्वापि वितर्क=क्योंजी बिना कामना के अपहारही नहीं सभव होताहै क्योंकि जिसकी अपहार करने की कामना नहीं वह अपहारही क्यों करैगा=तीफिर अकामकार का विषय कैसे यहाँ कहिते हो=सुनो जब किमो? बिना कहे उसके कपड़ेकी गोंठि मे बाँधि दिया यद्वा किसी कपड़े में बँधाहुआ सुवर्ण आदि कहींपरा पाइकर लोलिया यद्वा चाँदी आदि अन्य इन्ध्र्य ज्ञानिके हरा और तत्कालही किसी औरको देदिया या खोइदिया परन्तु मालिकको तत्ताय करिके नहीं वापिस किया तब यह कामना के बिनाभी अपहार होता है ॥ ० ॥ जो कोई/तोत्रे आदिको स्वैव आदि क्षाणों के योग से बचाये हुये सुवर्ण का रूपभाव क्षणिक कद को है तिसपर यह प्रायश्चित्त न चाहिये=क्योंकि सुवर्ण की मुख्य जातिका समवाय न होनेसे और यह कारणा है कि मुख्य वस्तु के सदृश रूप होने मात्र से उस नकली में असलकी गुणा धर्म नहीं होते हैं= यद्यपि ऐसाही नकली सोना जो सोना नहीं है तिसको सोने की भ्रान्ति से अथवा सोना समझके हराहो तथापि यह सुवर्ण की चोरी वाला प्रायश्चित्त इसमें नहीं चाहिये क्योंकि उसने सोना नहीं चुराया तिससे=और यहभी न कहना चाहिये कि जैसा दोसो बावन के पर्वार्द से यह कहाया कि (चरेद्दत्तमइदवापि यातार्यचेत्समारतः) ब्राह्मणाके सारने को गयाहो तो न सारि पानेमेभी प्रायश्चित्त करै तैसा यहां भी दोय मानना चाहिये कि सोना हरने वाला कृत्य उसने किश पर नहीं सोना हरि पाया तोभी दायी उसी कामका ठहरे= यह इस हेतु से न कहिना चाहिये कि वह सुवर्ण के हरने पर नहीं प्रवृत्त हुआ असुवर्णपर प्रवृत्त हुआ (औरयह इसका विषय न कहिना चाहिये कि ब्राह्मणा से उपरानु कोई अवाहारा सोनाचुग ने पर उतारु हुआ हो) और जो यह वचन है कि=इदमनसापापघात्प्राप्तवपुर्वद्व्या हतीर्ननसाजपेत्प्राप्तव्याप्राणाया न विराचरेत्प्रवृत्तीकचक्र द्वादशरात्रचरेत्=अर्थात्- यह पाप मनही से विचारि की न कियाहो तोभी प्राणव संहित व्याहृतियों को मनसे जपे और व्याहृति से तीन बार प्राणायायम आचरे और जो उस पाप की करने पर प्रवृत्त भी होगया हो ती बारह दिनका कच्छ वृत्त करे=सो यह वचनभी उसी दशापर आरुढ है कि जो कोई मुख्यही द्रव्य आदि पर प्रवृत्त हुआ हो असुख्य का तात्पर्य इसमे नहीं है=तिससे ऐसा नकली सोना बिना जाने हरनेसे प्रायश्चित्त का निमित्त

नहीं ठहिर सकता है। परंतु जैसा ऊपर कहि चुके कि चौदी आदि के ज्ञान से मुख्य सोना हरे या गांठि में बंधा हुआ आदि तौ वह बिना कामना का अपहार कहाता है उसमें प्रायश्चित्त भी करना होगा । इसी पहिले विषय पर कि बिना कामना के सुवरा जिसने हराहो और बिना राजा के जताये शुद्ध होना चाहै और अपहर्ता पुरुषव अतिशय धनवान् हो तौ अपनी देह की बराबर तौल के सोना दान करे अथवा देह की बराबर सोना जिसके पास न हो और पूर्वार्ध में कही व्रतचर्या भी बार वर्ष करने की समर्थ जिसकी न हो तौ ब्राह्मण की आयु भर उसका कुटुंब पालन हो सकने योग्य धनदान करे कि जिससे ब्राह्मण उसपर संतुष्ट होय ॥ ० ॥ जव किसी निर्गुणी स्वामी का द्रव्य हरा हो तौ व्यासजीका कहा नौवर्षका प्रायश्चित्त करे (स्तदेवव्रतं स्तेनः पादन्यूनं समाचरेत्) अर्थात् व्यास ने कहा है कि यही व्रतचोर करे चौथाई कम करिके अर्थात् बारह की चौथाई तीन छोड़ि के नौ वर्ष करे= और जहां कहीं इसी प्रकारका धन ऐसा कोई हरे जो भूखों मरते कुटुम्ब की रक्षा हेतुसे हरने गया हो तहां अभिमुनिका कहा छेवर्षका प्रायश्चित्त या स्वर्जित आदि यज्ञ या तीर्थों की यात्रा कावै=यथाहाविः=ग्रहब्दवाचरेत्कच्छ यज्ञे द्वाप्तुना द्विजः तीर्थानि वा भ्रमन् विह्वंस्ततः स्तेयादिमुच्यते=अर्थात्-द्विजाती ऐसी चोरी में याती छेवर्षका ह्मच्छव्रत करे या क्रतुयज्ञसे यजन करे या विवाह हो तौ तीर्थोंका भ्रमण करे तब चोरी के पापसे छूटे (इसमें लेख विद्विजाने के भयसे आधुनिक लेखक इस तर्कपर आकड़ न होसके कि प्राक्तन संयद्गीताने क्या सोचिके ऐसा कहा होगा कि जिसका कुटुम्ब भूखों से मरता था वही स्वर्जित आदि यज्ञभी कर सकेगा-तथापि उत्तर इसका बहुत सुगम है कि सिर्फ यज्ञही करने नहीं कहे और प्रकार की भी प्रायश्चित्तोंका विकल्प कहा है कि इनमें से जो कुछ करसके सोईकरे) ॥ ० ॥ जव कोई अपहर्ता अपहार करने के साथही तत्काल ऐसा पश्छिन्तावा करे कि मैंने बहुत बुरा किया इस पश्छिन्तावेके साथ अपना हराहुवा द्रव्य उसके स्वामीकी प्रत्यर्पणा करे या छोड़ि भागे सो आपस्तंब का दर्शाया चौथे काल में सत्कार भोजन तीन वर्ष तक साथै और एक ठिकाने पुरश्चरणा की रीति के अनुसार बड़े अथवा अंगिरा युनि का कहा तीन वर्ष का वज्र नामक प्रायश्चित्तकरे=यहां भी=बादी तर्क उदाता है कि स्वामी को वापिस करवैने या छोड़ि भागने में अपहार की बातवाला अर्थ सिद्ध हो जाने अर्थात् हरना सावित होजानेसे कैसे प्रायश्चित्तमें छोटाईकी रियायत करोगई और जो यां कहो कि हरना सावित न हुआ तौ फिर प्रायश्चित्त का निपट न होना

चाहिये तौभी प्रायश्चित्तको छोटाई उचित नहीं है—सुनौ ऐसा नहीं हरना जोहै तिस के वनका उपभोग आदि फल भोगनेसे हरना सिद्ध होताहै तिससे उपभोग के प्रद्विते निवृत्ति होजाने में उत्तम और पूरे अपहरका अर्थ नहीं सिद्ध होताहै तिसके न होनेसे प्रायश्चित्तमें सूक्ष्मत्व कभी करना ठीकहै अन्याय नहीं जैसे न पीने योग्य चीजोंको पीते साथ मुहसे उलटी करदेनेमें छोटे प्रायश्चित्त दियेजाते हैं तैसा न्याय यहां भी स-
मझना चाहिये=पुनर्पापितर्कः—वादी फिर भी छेड़ करताहै कि ऐसा होने में भी यों कहिसक्ते हैं कि चोरके हाथमेंसे जवर्दस्ती अपना वन छीनिके लेलेने में भी चोरने उस वनका उपभोग वर्तविका फल नहीं पाया तिसके न होनेसे सूक्ष्म प्रायश्चित्त पहुँचनेका प्रसंगदीय आताहै कि जैसा न्याय अभी ऊपर कहिचुके—सुनौ ऐसा नहीं उसके त्यागि देनेमें आपही चोरकी तर्फसे प्रवृत्ति नहीं दहेरतीहै तिससे और फल भोग पर्यंत जो अपहार है तिसमें स्वतः उसीका प्रवृत्त होना सिद्ध होताहै तिससे भी तुम्हारी तर्कनहीं ठीक है ॥ ० ॥ और जहां चांदी तांबा आदि मिला सोना हराजाय तहां यह छोटा प्रायश्चित्त नहीं कराया जासक्ताहै क्योंकि मिजा हुआ होनेमें सुवर्ण का सोना पन नहीं नष्ट होसक्ता है जैसे धीमें दही मिलाने या दहीके छीटे देनेसे घृतका प्रभाव नहीं जासक्ता है तिससे ऐसी दगामें बारह बर्य काही प्रायश्चित्त कराना ठीक है ॥ ० ॥ जहां कहीं प्रत्यक्ष सोनेके तुल्य चमकीला कीड़े औरही द्रव्य हराजाय तहां यद्यपि यह शंका खड़ी होतीहै कि उसमें छोटा प्रायश्चित्त चाहिये तथापि उसमें अज्ञात तीनबर्य आदिके प्रायश्चित्तोंकी पहुँच नहींहै क्योंकि सुवर्ण नहीं हरागाय तिससे परन्तु उसमें उपपातकों वाला प्रायश्चित्त होगा कि जैसा उपपातकों के प्रकारा में वर्णन किया जाय तहां देखना ॥ ० ॥ जो कि आपस्तंब का यह वचन और है कि (स्तेयं कृत्वा घ्राणं पीत्वा कृच्छ्रं सांत्स्रं चरेत्) कि चोरी करिके या मुरा पीके एक बर्यभर का कृच्छ्र व्रतकरे—सो यह उसके लिये समझना कि जिसने सोरह माय सु-
वर्णके भीतर एक मायसे अधिक परिमाणका द्रव्य चुरायाहो ॥ ० ॥ जोकि सुमंतु ने कहाहै कि (सुवर्णं स्तेयोऽसंसाविद्याऽयसहस्रमाज्याहुतीर्जुह्यात्प्रत्यहं विराजसु पवासंतस्तत्र कृच्छ्रे याचयन्ती भवति) सुवर्ण हरनेवाला एक महीना तक रोज रोज आठ हजार गायत्रीके मंत्रसे धीकी आहुतिका होसकरे और पीछेसे तीनदिन निपट निराहार उपवास करे तब शुद्धहोय या बारहदिनके तत्रकृच्छ्रसेभी शुद्ध होताहै—सो यहनियम उसके साथ विकल्प (बदल) किये जासक्ते हैं कि जो दोस्रो सत्तावन २५७ की अ-
विकीर्तमें यद्विशिष्टमतके वचनोंसे एक मायभर सोना हरने मध्ये तीन महीना गो

सुं और यावक पीना कहाया० तथापि इतना भेद समुभिलेना कि वहां तौ इच्छा सहित चुराने मध्ये तीनमहीने कहे और यहां एक महीना या बारह दिवस केवल अनिच्छासे हरने मध्ये नियत हुये ॥ ० ॥ मुसन्तुने एक दूसरा भी यह कहाहै कि (सु-वर्णास्तेयोद्वाद्वाश्रवाद्युभयः परतोभवति) सोना चुराने वाला केवल वायु को पीकर बारह दितकारे और कुछ न करै तौभी शुद्धहोताहै० सो यह उसके लिये समझना जो केवल मनके विचारसे अपहार करनेपर उताखमाव हुआ परन्तु आपही अपहार करने से निवृत्त होगया किन्तु नहीं कियाहो ॥ ० ॥ यहां भी स्त्री बालक बूढ़े आदि जो चोरहों तिससे जो जो प्रायश्चित्त कहिचुके सो सब आधे आधे करवाने चाहिये ॥ ० ॥ जिन चोरियोंको दोसौ तीस २३० मूलश्लोक में घोडा रत्न मनुष्य आदि को सुवर्णकी चोरीके समान कहिचुके तिनके चुरानेवालों को अत्रोक्त प्रायश्चित्तों से आधा करवाना चाहिये उनमें भी यदि स्त्री या बालक बूढ़े आदि चोर हों तिन पर आधेका आधा चौथाई करवाना होगा ॥ ० ॥ और ये वचन चतुर्विंशतिमतकेहैं कि=

स्वयंहृत्वादिजोमोहाश्चरेधांद्रायरात्रतम् गद्यारादशकाट्टूर्ध्वमाशतातद्विध्यांचरेत् आ सहस्रातुविध्यामूर्ध्वहेमविधिः स्मृतः सर्वेषां धातुलोहानां पराकन्तुसमाचरेत् धान्यानां हरणोद्वाच्छ्रुत् तिलानां मंदवं स्मृतम् रत्नानां दशो विप्रश्चरेत् चान्द्रायरात्रतम् (याव रक्त्वां कि गद्यारा एक वांटेहै सो वैद्यक परिभाषा में यद्यपि द्वाइयों की तौल मध्ये ६४ चाँसदिशुंजा भरि होताहै तथापि यहां धर्मशास्त्रमें ४८ अड्डतालिस रत्तीभरि गद्यारा कहाताहै सिर्फ चाँदी की तौल मध्ये उसका प्रयोजन है कि) जो कोई द्विज सोह काहाताहै सिर्फ चाँदी की तौल मध्ये उसका प्रयोजन है कि) जो कोई द्विज सोह अज्ञानतासे रूपा चाँदी हरै दश गद्याराके भीतर और पूरे दशगद्यारा हरनेमें भी चाँ-द्रायरा व्रतकरै और दश गद्यारासे ऊपर सौगद्यारा तक चाँदी हरै वह दोवार चाँद्रायरा करै और सौगद्यारा से लेकर हजार गद्यारा तक चाँदीहरै सो त्रिगुना चाँद्रायरा करै इसके ऊपर सोने वाली विधि कही है अर्थात् पूरे हजार गद्यारा या इससे भी अधिक चाँदी हरै तिसके लिये सुवर्णकी चोरीवाले प्रायश्चित्त बारहवर्ष आदि के समझने और ताँवा लोहा पीतल आदि सब धातुओं की चोरी करिके पराक नाम काव्रत प्रायश्चित्त करै और राज्यों के हरने मध्ये कच्छ्र व्रत करै और तिलोंके हरने मध्ये चाँद्रायरा व्रत करै तथा रत्नों की चोरी मध्ये ब्राह्मरा चाँद्रायरा व्रतकरै—इन वचनोंमें जो हजार गद्यारासे अधिक चाँदी चुरानेका प्रायश्चित्त सुवर्णास्तेयके समान कहा सोभी सोनेका बड़ापन दर्शानेके निमित्त है पर उसकी निवृत्तिकेलियेनहींहै—और जो रत्नोंके हरने मध्ये सिर्फ चाँद्रायरा कहा सोभी हजार गद्यारासे कम चाँदी

के मूल्य वाले रत्नों को समझना किन्तु हजार से लेकर ऊपर अधिक मूल्य के रत्नों में सुवर्ण की चोरी समान प्रायश्चित्त होंगे ॥ २५८ ॥

इति सुवर्णास्तेय प्रायश्चित्त प्रकारां ॥

(यह प्रकारका केवल चौंतीस पैंतीस दो परिच्छेदों से पूरा हुआ अब आगे गुरु-
दार गान्धोके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे)

अथ जनन्यादि गुरुद्वार गमन प्रायश्चित्तानां

भेद प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः षट्त्रिंशः ३६

इस परिच्छेद में केवल उन्हीं पातकों के प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे जो ठेठ जननी या पिता की सुवर्णा आदि भार्या या उनके मूल्य जेकोई अन्य स्त्रियां मानी जाती हैं तिनके सकाम और अकाम गमन करनेसे होतेहैं या भोग करने पर उताह्न होकर लौटि जाने से भी जो पाप होतेहैं ॥

(सकामगुस्तल्पगानां प्रायश्चित्तं)

तत्तेयः शपनेतार्धमापस्यायोपितास्वपेत् । यही त्वोत्कृत्य वृषणो नैऋत्या चोत्सृजेत्तनुम् २५९

अर्थः—तब लोहे के शयन पर लोहे की स्त्री साथ सोवै या दोनों वृषा काटि हाथ में लेकर निश्चय दिशा में तनु को त्यागें—अर्थात्—दोनों साठि के श्लोक में गुरु तल्पग नाम कहेंगे उसीका संबंध यहां पर भी विद्यमान है कि जिसने गुरुद्वारा गमन करीहो उसका यही प्रायश्चित्त है—कि निषट लोहेकी बनेहुये पलंगपर लोहेकी बनी हुई मूर्ति भी साक्षात् स्त्री के आकार हो यह दोनों खूब अग्निमें तपाये जायें जो अग्निही को समान लाल होकर अग्नि का रूप होजायें तिसपर उस जलती हुई मूर्ति को चिपिट कर सोयें किन्तु इसी तरह देह को जलाइ को मरजाय तब शुद्ध होय ॥ अथवा दूसरा यह प्रायश्चित्त है कि आपही अपने लिंग समेत दोनों आड़ जड़ से काटिके दोनों हाथकी धंजुरी में लेकर दक्षिण पक्षों के कोने वाली नैऋत्य दिशा में तहाँ तक सूया च लाजाय कि जहाँ पर प्राण छूटिके देह गिरि परै किन्तु बीच में न रैये कहीं इस रीति से देह छोड़ें तब शुद्ध होय ॥ २५९ ॥

२५६ अधिकोक्तिः—लोहेकी स्त्री साथ सोते समय पहिले अपना पापमवलोगों को ऊँची आवाज से सुनाइ देवें कि मैंने गुरुभार्या गमन किया तिसकी श्रुति को यह प्रायश्चित्त करताहूँ (गुरुतत्त्वोऽभिभाष्यैः इति मनुः) क्योंकि मनुने ऐसा कहा है गुरुतत्त्वग अपना पाप सुनाइ के लोह शय्या पर चढ़ै—और यह भी एक नियम है कि जैसे स्त्री की आलिंगन किया था उसी तरह लोहे की मूर्ति को लिपटाइके सोवें—जैसा रुद्रहारीत ने कहाहै कि—गुरुतत्त्वगोऽनुमयी सायसीवास्त्रियाः प्रतिहति मग्निवर्णां कृतेकाष्णीयमशयने अयोमय्यास्त्रीप्रतिकृत्या कृत्वातामालिग्यप्रतोभव-
ति—अर्थात्—काले लोह के बने पलंग तपेहुये पर मिट्टी या लोहेकी स्त्री की नकली मूर्ति अग्नि के वर्ण समान तपो हुई लाल करिके उस लोहे की मूर्ति साथ आलिंगन कम करिके मरने से पवित्र होता है—तथा बालों को सर्वथा मुड़ाइके सब देहमें घी लपेटिके यह शयन करना चाहिये—यथाह वशिष्ठः—निष्कालकोयूताभ्यक्तस्तस्मांस्त्रीं नृन्मयीं परिप्लव्य मरणात्प्रतोभवतीति विज्ञायते—अर्थात्—सब देह के बाल वा रोमा पर्यंत मुड़ाये और घी लपेटे हुये मट्टीकी तपाई हुई स्त्री को खूब आलिंगन करिके मर-
जानेसेही पवित्र होताहै यह जानागया (यहां केवल मट्टी कही तोभी लोहे और मट्टी का विकल्प बदल समझलेना क्योंकि लोहा भी मृद्विकार धातु होता है दोनोंमें कुछ भेद नहीं है ॥ ० ॥ अगोक्त मनुके वचनमें लोहेकी पलंग पर सोना या लोहे की मूर्ति को चिपटाना किजोल करना ये दोनों बात जुदी जुदी प्रतीत होती हैं—यथाह मनु—
गुरुतत्त्वोऽभिभाष्यैः नस्तत्रैस्त्वग्यादयो मये सुमूर्ति उवलंती वा प्रितप्य मृत्युना सविशुद्ध्यति—
अर्थात्—गुरु तत्त्व पापी अपने पाप को सुनाइ के तपाये हुये लोहे के शयन पर सोवें या जलती हुई मूर्ति को अंग से लगाय के मौतही से विशुद्ध होता है—इसमें या शब्दके विकल्प से साफ दो जुदी बातें होगई कि चाहें यह करो या वह—तो भी मिताक्षराकार ने व्यवस्था इस पर दीहै कि मनु की इस वचन का अविरोधी सहारा चाहि कर योगीश्वर की मूलश्लोक में भी ऐसा न समझि लेना कि दो जुदे प्राय-
श्चित्त हैं क्योंकि (आयस्या योगितात्पतेत्) जब यह कहागया कि लोहे की स्त्री साथ सोवें तब यहभी समझना बाकीरहा कि कहां सोवें तिसका यही सवध है कि लोहेके शयन पर सोवें तिससे दोनों बातका संबंध परस्पर निजाहुआ सकहै एकही प्रायश्चित्त समझना कि जैसा पहिले कहि चुकी—यह पूर्वाह्न की व्यवस्था हुई ॥ अब उत्तरार्ध पर ध्यान धरो कि दूसरे प्रायश्चित्त मध्ये मनुने भी लिङ्ग और आंड काटने काहे है—यथा—स्त्र्यवाशिष्ठमृगश्रुत्या ध्याय चांजना नैऋतीं दिशमातिष्ठेदानीया

तार्दजज्ञरा=अर्थात् जो पहिला कहा न करसके तो आपही लिंग और वृथराओंको काटि के अंजरी में धरि के बैकत्य कोने की दियामें देही चालिके बिना सुधा चला जाकर शरीर गिरपरनेकी जगह पर धर्म=यह चलाजानाभी पीठि पीछे घूमिके न देखे बिना करना चाहिये=अथाहृतःशंखलिखितौ (सुरेणाशिश्रुत्यसावृक्त्या न वेसमाप्तो ब्रजेत्) अर्थात्-शंख और लिखितमुनि दोनों भाइयोंनि निज निज ग्रन्थमें एकही वचन कहाहै कि• छुरी छुासे लिंग और आंड काटिके पीछे की न देखताहुआ सुधा चला जाय=तथा अहं वशिष्ठका अग्रोक्त वचन है कि जहां प्राण छूटनेलगें उसीजगह धर्म कहैं बीच में न रुकै=यथा=सृष्टयर्थाशिश्रुत्यसावृक्त्या जलावाधाय दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्यैव प्रतिहतस्तत्रैव तियेराप्रलयादिति=अर्थात्-आंड सहित लिंगको काटिके अंजलीमें धरि के दक्षिणा दिशाके सन्मुख सरनेपर्यन्त चलाजाय जहांकहीं दीवार होले आविके बछासे गिर परै उसी जगह प्राण छूटने तक धर्म=जैसा नारदने दण्ड देने की अपेक्षा से भी लिंग काटना कहा है=तथाच=आसामन्यतमंगचक्रण्युत्तल्पगउच्यते शिश्नस्योत्कर्तनात्तत्रान्योदंडोविधीयते=अर्थात्-इतनी स्त्रियां जो मैंने गिनाईं इनमें किसी एकको नमन करते हुये शुरुत्तत्पग ठहिरताहै तहां शिश्न काटिलेनेके सिवाय और कुछ दण्डभी नहीं दिया जाताहै अर्थात् उसका यही प्रायश्चित्त और यही दंड है ॥ ० ॥ इस प्रकार दण्ड देनेके लिये जो लिंग आदि किसी अंगका काटना होताहै सोभी पापहीके विनाश हेतु होताहै-इसी मरणांतिक दंडका अभिप्राय लेकर मनु ने यह कहाहै कि (राजभिर्धृतदंडास्तुहृत्वापापानिमाचवाः निर्मलाःस्वर्गमायाति संतःसुहृत्तिनोयथा) पाप करनेवाले मनुष्य प्रायश्चित्त के बिना राजाओंसे ठीक दण्ड दिये हुयेभी निर्मल होकर स्वर्गमें आतेहैं जैसे मुक्त करनेवाले सत्पुरुष स्वर्गमें जाते हैं-इस नियमसे यह तात्पर्य है कि जहां राजा केवल वनदण्ड जुमाना लेकर छोड़ि दे तहां उस दण्डसे उपराल प्रायश्चित्त भी लगता है-क्योंकि उन्हीं मनुने यह वचन भी कहा है कि=प्रायश्चित्तं कुर्वाणाः श्रद्धेवर्णायोदितश्च नांक्षया राजा ललाटेऽस्युर्दोष्यास्तु तमसाहसम्=अर्थात्-जिन पापोंपर जैसा प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहाहै तिसको ठीक ठीक करनेवाले सभी वर्णों के लोग केवल उत्तम साहस आदि घन दण्ड लेकर छोड़ि दियेजायें किन्तु राजाकी उनके नाथेपर दण्डदेनाआदि कोईसा चिह्न न करना चाहिये अर्थात् इस चिह्नके नियम से सप्त देहदंडों का उपलक्षण प्रकार किया है कि नारना पीटना आदि कोईसा देहदण्ड न देना चाहिये ॥ ० ॥ मूलश्लोकमें योगीश्वरने दो प्रायश्चित्त कहे दोनों मरणांतिक हैं इनमें कोईसा एक प्रायश्चित्त करने

से गुरुतत्त्व गामी शुद्ध होता है=गुरुतत्त्वगामी कहा इसमें गुरु शब्द जो है सो मुख्य वृत्तिसे पितामें वर्तमान समझा जाता है क्योंकि मनुने वडे पुरुषोंका गुरुत्व संप्रप्ताने मध्ये यह कहा है कि=नियेका दीनिकर्माणि यत्करोति यथाविधि सभाव्यातिचान्तेन सविप्रोगुरुरुच्यते=अर्थात्-नियेक नाम गर्भमें बीज धरना आदि सभी संस्कारकर्माँ को जैसी उनकी विधि होती है तिष्ठ रीतिसे जो कोई करता है और अन्धसे भी पोषण करता है वही गुरु कहाता है=तो यह मुख्य गुरु पिता ठहिरा-इसी तरह योगीश्वर ने भी नियेक आदि कर्माँके अभिप्रायसे ऐसा कहा है (सगुरुयः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति) अर्थात्-आचारमर्यादामें कहि चुके हैं कि वह गुरु है जो सब संस्कारों की क्रियाएँ करिके लड़केको वेद विद्या देता है=ये सभी काम पिताके करनेसे होते हैं=यद्योजी-गुरु शब्दका वर्तवा अन्य पुरुषों में भी देखि परता है जैसा आचार मर्यादा परिपाटी में (उपनीयगुरुः शिष्यं) इत्यादि मूलश्लोकसे आचार्य को भी गुरु कहा था=और भी यह वचन है कि (स्वल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्त्वेतत्करोति यः तमपि ह गुरुविद्यादित्युपाध्याये) इसमें उपाध्यायकोभी गुरु ठहिराया है कि थोड़ा या बहुत जिसका पढ़ने सुनने में उपकार जो करता है तिसको भी गुरु जानो-उपासजी ने भी इसको गुरुओं में गिना है=यथा (गुरु वो मातृ पितृ पत्याचार्यं विद्यादातृ ज्येष्ठ धातृ ऋत्विजोऽभयदाताऽन्नदाताऽर्चेति) अर्थात्-माता पिता पति आचार्य विद्या का दाता जेठे भैंये ऋत्विज अभय देके रक्षा करने वाला प्राणों के संकट से और अन्नदाता भी कि जिसके सहारे से उदर पूर्ण होती हो ये सब गुरु हैं अर्थात् वडे हैं और इसी मान्यता को योग्य हैं=देखी पिता के सिवाय येभी सब गुरु ठहिरें और अनेकों में गुरु के अर्थ की कल्पना होना कुछ दोषभी नहीं क्योंकि जिस मान्यता और पूज्यता के निमित्तसे गुरुशब्दकी प्रवृत्ति ठहिराई गई वह मान्यता और पूज्यता का निमित्त इन सबही में कुछ न कुछ लगा हुआ है बल्कि उस मान्यता का निमित्तत्व योगीश्वर ने आचार मर्यादामें दर्शाया भी है कि (स्तेमान्प्रायथा पूर्वगैश्च्योमातागरी यसी) इतने जो गिनाये सो सभी माननीय हैं तथापि जिससे जो पहिले कहा वह उस से अधिक मान्य होता है और माता इन सबसे बड़ो पूजनीय है-इसमें प्रथमसभी को मान्य कहिकर माता उनसे भी बड़ी ठहिराई-और (उपाध्यायादृशाचार्य आचार्याणां शर्तपिता) जैसा यह वचन है कि उपाध्याय मे दश गुणा आचार्य बड़ा और आचार्यों में पिता सो गुना सो इस कथन के अनुसार उपाध्याय से अधिक आचार्य है तिससे भी पिता अतिशय बड़ा इससे पिताकोही यदि मुख्य कहा चाहै सोत

कहिना चाहिये क्योंकि ऐसी अतिशय मुख्यता आचार्यमें भी कही है यथा (उत्पा
 द्कत्रह्यदायोगरीयात्रह्यदःपिता) किंतु देह उत्पन्न करनेवाला और वेद विद्या देकर
 देह को योग्यता देनेवाला ये दोनों पिता होते हैं तिसमें वेदका देनेवाला पिता अथर्वह—
 तिसमें पिता और आचार्य दोनों में बराबरी के सिवाय कोई विशेष लक्षणा किसी
 एक में न दृष्टि—वस्तु गौतमने भी आचार्यही को अथर्व गुरु कहा है (आचार्यः
 अथर्वगुरुणां) किं सच तरह के गुरुओं में आचार्य गुरु अथर्वह—और भी यह तर्क है
 कि जो ऐसे वचनों के अनुसार अतिशयित्व से ही पिता की मुख्यता बताते हैं
 तो फिर (सहस्रसिद्धि वचनान्मातुरेव गुरुत्वस्यात्) जिस वचन में ऊपर पिता को
 सौगुना कहा या उसके गेय पाठ में माता को हजार गुणा कहा है तिसमें पिता को
 भी छोड़ कर माताकोही मुख्य गुरु मानना चाहिये—भला यह भी कोई नियम नहीं
 दृष्टि किसी वचनमें कोई बड़ा किसीमें कोई तिसमें जो जो गुरु कहे गये सो सबही
 गुरु हैं यह मानिके ऐसी व्यवस्था लगानी चाहिये कि इन सबही की पत्नियों का
 गमन करना गुरु दासगमन माना जाय तो यह व्यवस्था निर्दोषित हो जाय—सुनो ये सब
 तर्क तुम्हारी ठीक हैं तथापि गर्भ में बीज धरना यह सबसे बड़ी बात है इसीलिये (नि
 येकादौनिकमार्गिणि) इत्यादि मनुका वचन जो हम लिख चुके उसमें मनुने बीजबोने
 वाले पिताकाही गुरुत्व प्रतिपादन किया है और किसी का अधिकारही उसमें नहीं
 पहुँचता है—और तुमने जो व्यास और गौतमके वचन ऊपर मनाये सो गुरुओंकी सेवा
 पूजा आदि करने की विशेषता से पिता से उपरालू गुरुओं की स्तुति प्रशंसा पर आ-
 स्तुत है ॥ तिसमें गर्भाधानकी प्रधानता द्वारा पिता का गुरुत्व दर्शानेवाले मनुके वचन
 से यह ठीक भया कि पिताही मुख्य गुरु है औरोंका अमुख्य गुरु समझना—इसी हेतु से—
 बसियने (आचार्य पुत्राग्र्यभार्यासुचैवं इत्याचार्यदारैर्वातिदेशिकं गुरुतत्त्वप्राय-
 श्चित्तबुद्धं) इस वचनमें एवं कहि ऊपर आचार्यकी स्त्रियां भोग काले पर गुरुतत्त्व प्राय-
 श्चित्तका अतिदेश उतार दिया है—तैसे ही जातकार्या आदि ग्रन्थकारों ने भी (आचार्या
 देस्तुभार्या मृगुरुतत्त्व व्रतचरेत्) इत्यादि वचनों से कहा है कि आचार्य आदिकी
 भार्याओं से संशम करने वाला गुरुतत्त्व का व्रत करे कि जैसा मुख्य पितास्वामी गुरु
 की स्त्रियां भोगने वालेकी उपदेश किया गया—अब सोची कि जब—ऐसी दशा पर भी
 आचार्य आदिकी मुख्य गुरु समझा जाय तो वही प्रायश्चित्त इसमें पहुँचे जो मुख्य
 गुरु मन्त्रे उपदेश किया गया है। तिसमें यह दोष खड़ा होता है कि आचार्य आदि
 के नाम पर अति देश जो उतारा गया सो अनर्थक दृष्टि—इन्हीं सब कारणों से साफ

साफ पिता की ही स्त्रियां कहिकर नियम बौधा है (पितृसरान्ममासुमासुमासुवर्ज्यं नराधमः) कि जो कोई अधम नर निज माता की छोड़ि पिता की अन्य दाराओं पर वदिके इत्यादि० सो गुरुदार गामी कहाता है—ऐसाही—यद्विंशन्मत् में कहा है कि (पितृभार्यातुविज्ञाय सर्वारांथोऽधिगच्छति) पिता की सर्वाराभार्या की जानि के अधिगमन करे इत्यादि० सो गुरुदार गामी होता है— इन वचनोंसेभी निषेक गर्भाधान करने वाला पिताही मुख्य गुरु ठहरा ॥ ० ॥ यह गुरुत्व जो पिता पर आच्छेद हुआ सो चारों वर्गों में अविशिष्ट एकसां समुक्तना क्योंकि गर्भाधान सभी वर्गों में एकसां होता है— इन कारणों से (सर्विप्रो गुरुरुच्यते) गर्भाधान वाले मनु के वचन मे यह विप्र शब्द जो आयाथा सो भी एक मुख्यता का उपलक्षण है ॥ तिससे पिताकी पत्नी गमन करनाही महापातक है (यहाँ निज जननी से उपराल विमाता आदि का चर्चा है इसी लिये माता शब्द नहीं, कहा पिता की पत्नी शब्द कहा गया) गमनका अर्थ भी चरस धातुके विसर्गतक सिद्ध होता है कि जिसने वीर्य भी गिराया हो—इसी हेतुसे यह नियम है कि वीर्यपात से पहिले जो लौटि परा हो तो महापातक नहीं सिद्ध होता है अर्थात् पातक सिद्ध होता है तिसके भी दो भेद हैं कि एक तो इच्छासहित पास पहुँचा दूसरे जो इच्छा विना पास जा पहुँचा हो इसभेदके अनुसार आगे इसी अधिकोक्तिमें बारह और क्षेत्र्यके दो जुदे प्रायश्चित्त कहेजायेंगे मरणांतिक नहीं अत्रोक्तप्रायश्चित्तानांविभागः—मुख्य गुरु जो पूर्वोक्तन्यवर्या से पिता ठहरा तिसकी अन्य पत्नी में जानिकर वीर्य सींचने से महापातक होता है उस महापातक में वही दोनो प्रायश्चित्त सूचित हुये हैं कि जिनको इसी दोसौउनस-दि २५६ मूलश्लोक से कहिबुकेदोनों मरणांतिक विधान हैं दोमें से कोई एक अनुष्ठान कियाजाय—कदाचित् विनाजाने घोखा आदि से वीर्यपात किया हो तिसके लिये मरणांतिक नहीं किन्तु बारह वर्यकी व्रतचर्या है सो आगे बढिकर शंखजीके वचन में देखो— परन्तु ठेठ जननी में अज्ञानता आदि धोखे से भी वीर्यपात करने पर वही दोनो मरणांतिक प्रायश्चित्त है—किन्तु जननी की सौति जो पिता और जननी की सबर्या हो या केवल पिता की सबर्या हो या केवल जननी की सबर्या हो या जननी से उत्तम वर्गा की हो तिसमें जानि के वा इच्छासे वीर्यपात करनेपर वही दोनो मरणांतिक प्रायश्चित्त हैं (अर्थात् नीचेवर्गा की विमाता के भोग सध्ये अगिली अविक्तीति में दयस्या कही जायेंगी) यहाँ केवल जननी और सबर्या तथा उत्तमवर्गा सौतिका प्रसंगहै इसी सध्ये यद्विंशन्मत्

का यह वचन है कि (पितृभार्यातुविज्ञायसवर्णां योऽधिगच्छति जननीचाप्यविज्ञाय
 नामृतः शुद्धिमाप्नुयात्) पिता की भार्या सवर्णा की जातिके जो गमन करता है या
 जननी की विनाजाने सो सरजाने विना शुद्धि नहीं पाता है ॥ कदाचित् कोई जननी
 में इच्छासाथ गमन करे तिसके लिये वशिष्ठ का दर्शाया प्रायश्चित्त है—यथा=नि-
 प्कालको घृताभ्यक्तो गोसयाग्निना पादप्रभृत्यात्मानमवदाहयेत्=अर्थात्—सबदेहके रोम
 और बाल मुड़ाये धीलगाये गऊ के गोबरवाले कंडों की अग्नि के समूह में पैरों की
 आदि लेकर थोड़ा थोड़ा देह क्रमसे सब जलावे= जननी या जननीकी सौति सवर्णा
 या उत्तम वर्णा में कामना के विना भी बारबार धोखेसे अभ्यास गमन होने में यही
 प्रायश्चित्त है जो वशिष्ठ ने कहा (सवर्णा और जननी दोनों के श्रेष्ठ प्रायश्चित्त जो
 सरासितक नहीं हैं सो आगे शंखके वचन में देखना) और सवर्णा विमाता जो व्य-
 भिचारिणी हो तिसके मध्ये अगिली अधिकोक्ति के प्रारम्भसे देखो ॥ शंका क्योंजी
 (मातुः सपत्नीभिर्गमनीमाचार्यतनयान्तथा आचार्यपत्नीस्तु तांगच्छंस्तु शुरुतल्पगः) माता
 की सौति=वर्द्धन+आचार्य की बेटी • आचार्य की पत्नी • अपनी बेटी • इनकी गमन
 करते हुये भी शुरुतल्पग होता है—इस वचनमें माताकी सौति पर भी अतिदेश उतारा
 गया है तिससे सौति के गमन में उपदेशक प्रायश्चित्त ठीक नहीं समझा जाता है=
 सनौ अभी जो यद्विंशन्मतका वचन लिखा गया है उस में माताकी सौति सवर्णा
 कही तिससे इस वचन में हीन वर्णा सौतिका अभिप्राय उद्दिष्ट तिसपर अतिदेशका
 उतारना भी विरोध नहीं है ॥ • ॥ ये प्रायश्चित्त और नियम जो कुछ कहे गये सो
 सब मुख्यही पुत्रपर आरुढ़ हैं क्योंकि और जो अनेक तरह के बनाये हुये नकली पुत्र
 होते हैं सो केवल पुत्रोवाले कार्यही करनेका अनुकूल्य होते हैं ठीक ठीक पुत्रत्व उत्तम
 नहीं होता=यथाहमनुः=क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादशयथोदितात् पुत्रप्रतिनिधीनाहुः
 क्रियालोपान्मनीयिणा=अर्थात्—क्षेत्रजआदि जो ग्यारहपुत्र गिनाये तिनकी मनोयी
 लोग पुत्रके प्रतिनिधि इसलिये कहते हैं कि संसारी कामधंधे लोप न होजाय ॥ • ॥
 माता और विमाता आदि जो पिता की पत्नी ऊपर कही गई तिनमें जो स्त्री पुरुष
 दोनोंकी चाहना से परस्पर संगम हुआ हो तहाँ सकही प्रायश्चित्त है जो इसी दोसां
 उनसदि २५६ मूल श्लोक में पूर्वार्ध से कहा गया=जहाँ पुरुष ने आपही उत्साह
 दिलाकर संगम होने पर स्त्री की उत्साह किया हो तहाँ भी सक प्रायश्चित्त है जो
 इसी दोसां उनसदि के उत्तरार्ध से कहा गया क्योंकि पाप की चाहना में अधिकता
 होनेसे प्रायश्चित्तका बड़ापन होता है=जहाँ=स्त्रीने स्वतः पुरुष की उत्साह देकर सं-

गम किया हो तहाँ ऐसे पुरुषको मनु वचनके अनुसार दोमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त देना चाहिये यथाह मनुः (गुरुत्वरूपोऽभिभाष्यैतस्तत्रैस्तप्याद्योमये सुमींश्चलतीं वाश्लिष्यमृत्युनासविशुद्ध्यति) अर्थात् गुरुत्वरूप गामी अपनापाप सुनाइ के तपे हुये लोहेके शयन पर सोवै या दूसरा यह कि लोहेकी चनी खी जड़ती हुईको लिपटाइ के मौतही से वह शुद्ध होताहै) इन दोमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त जो मौजूद दगाके अनुसार जानमानों के विचार में आवै सो कराया जाय ॥ ० ॥ यह व्यवस्था एक जुदीहै कि जैसा शंखने द्वादश वार्यिक प्रायश्चित्त कहाहै—अबःशायी जराधारी प-
शांसलफलाशनः एककालंसमग्रीयाद्वर्येतुद्वादशयोगे रुक्मस्तेयीसुरापप्रचव्रह्महागुरुत
ल्पगः व्रतेनैतेनशुद्ध्यतिमहापातकिनस्त्रिंशमे=अर्थात्— धरती में लटे जटा रखावै पत्ते
मूल फल भोजनकरै सोभो नियमसे एकहीवार भोजन करै अन्न आदि कुछ न खाय
इस रीतिसे बारहवां वर्य बोति जानेपर इस व्रतसे ये सब इतने महापातकी शुद्ध होते
हैं कि सोना चुरानेवाला • घरापीनेवाला • ब्रह्म इत्यादि • गुरुदारगामी भी—सो यह
शंखोक्त सर्वसामान्य प्रायश्चित्त भी यहां गुरुदारगामी के लिये उस दगापर विचा-
रना कि समवर्गा या उत्तम वर्गा पिता की भार्या इच्छा बिना किसी धोखे आदि से
भोगी हो—इसीमें जो कामना से संगम करनेपर उताह होकर वीर्य सींचने से पहिले
लौटि गयाहो तिसकेलिये यही प्रायश्चित्त आधा किन्तु छेवर्यका विचारना—और
इसीमें जो इच्छा बिना संगम करने पर उताह होकर वीर्यपात से पहिले लौटि पया
हो तिसके लिये चौथाई किन्तु तीन वर्षका यही प्रायश्चित्त देना चाहिये=और=
यही प्रायश्चित्त पूरा बारह वर्षका उसको देना चाहिये जो अपनी खास जननी से
कामनासे उताह होकर वीर्यपात से पहिले घूमि गयाहो • यदि उसी जननी में कामना
के बिना उताह होकर वीर्यपात से पहिले घूमि गयाहो तिसके लिये यही प्रायश्चित्त
आधा छे वर्षका देना चाहिये इत्यादि कुछ और भी जैसी ओछी दगा हो तैसी ओछी
अवधि चाहिये सो सब अगिली अविकीर्ति में न्योरेवार कल्पना करोजायगी बल्कि
पिताकी सवर्गा भार्या जो व्यभिचारिणी हो तिसके भी संगम का प्रायश्चित्त कहा
जायगा ॥ ० ॥ जो कि संवर्तने वीर्य सींचने से पहिले लौटिजाने मध्ये बहुत छीरा
प्रायश्चित्त कहाहै कि (पितृदारान्तरमारुह्यमाह्वयजैनराक्षसः इत्यादिनासमारोहण
साथैतद्वदृच्छः उहीनवर्गापितृदारैर्युरेतत्सेकादवर्गद्वयदृश्यः) अर्थात्—कोई अवसर
सातासे उपरालू पिताकी दाराओं पर चढ़ि कर फिरजाय इत्यादि पूरे वचन से चढ़ने
साथ में तप्त छच्छ व्रत करना कहाजिसकी साधना सिर्फ बारहदिनमें होतीहै—सो यह

प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना कि जिसने पिता से इनी वर्णवाली भार्याओंमें संगम करनेपर उताव्र होकर वीर्यपातसे पहिले छोटिदिया किन्तु पूरा संगम न करने पाया हो—ये सब नियम व्यौरवार अगिली अधिकोक्ति में क्षत्रियां बनेनी शुद्रा जो पितासे ओछे वर्णकी विमाता हों तिनके जुदेजुदे प्रायश्चित्त परे और ओछे भोगभेद से तथैवइच्छा और अनिच्छा वा परस्पर इच्छाके भेदसे भी कहे जायेंगे—अर्थात् गुरु चारा भोग संबंधी पातक भेद अनेक अभी उपरालहैं कि जिनके प्रायश्चित्त इस अधिकोक्ति में नहीं कहे सो सबअगिली में दशविंसे ॥ २५६ ॥

(गुरुतल्पातिदेशादिप्रायश्चित्तानि)

प्राजापत्यचरेत्कच्छ्रुतमावागुरुतल्पगः । चांद्रायणवात्रीन्मासानभ्यसेद्देवसंहिताम् २६० ॥

अर्थः—अथवा गुरुतल्पगामी कच्छ्रप्राजापत्य तीन वर्ष करे ॥ या तीन महीना चांद्रायण करे और वेदकी संहिता भी अभ्यास करे=अर्थात्—इस ग्रन्थ के अन्तमें सभी अनुष्ठानोंके स्वरूप कहे जायेंगे तहां कच्छ्रप्राजापत्य नामका व्रतभी कहाजाय गा तिसको तीनवर्ष करे (अत्र समाः इत्यमराचार्यमतेन वर्षबहुत्वज्ञेयः) या तीन महीनामें तीन चांद्रायण व्रत यथोक्त विधिसे परे करे उन्हीं तीन महीना तक वेदकी संहिता को बारम्बार पाठ करता रहे किन्तु नियत महीनोंमें पाठकी जितनी आठारि होसके सो निरन्तर करे तब शुद्धहोय • विशेष्य व्यौरा अधिकोक्तिमें देखो ॥ २६० ॥

२६० अधिकोक्तिः (इस प्रकारगामे सर्वत्र गुरुशब्द को पिताही समझना) यह तीनवर्षका प्राजापत्यभी उसकेलिये विचारना जो ब्राह्मणोंका पृथ होकर पिताको शुद्रापत्नी इच्छा सहित भोगे किन्तु अनिच्छासे धोखा आदि में वीर्यपात करने पर एकही वर्षका प्रायश्चित्तहै सो आगे बढ़कर मनु और सुमन्तु के वचनों से देखना काँटोके वृक्ष वाली शाखा बगल में दाविके सोडना आदि कहेंगे तथैव उसके लिये विचारना जो ब्राह्मण पिताकी बनेनी भार्यामें दोखेसे एकबार गमनकरे (आगेइसी अधिकोक्तिके वीचमें (गमनेगुरुभार्याचार्यपत्न्यभार्यागमेतथा) यह वृद्धमनुका वचन देखो=उत्तरार्द्ध मूलप्रलोकसे तीन महीनेका उसके लिये विचारना जो पिताकी सवर्णापत्नी व्यभिचारिणीहो तिसको बिना जाने धोखामें गमनकरे—जो इसी सवर्णा व्यभिचारिणी मे इच्छा साथ चाँइके गमन करे तिसके लिये उग्रना का निर्मित किया प्रायश्चित्त देखें=यथा=गुरुतल्पाभिगामी संवत्सरं ब्रह्मइत्याव्रत यशसासान्वा तत्कच्छ्रं चरेत्=अर्थात्—गुरुतल्पगामी एकवर्ष भर ब्रह्म इत्या मे कहा व्रत करे या

एक कृमाही भर तत्पल्लवचक्र करै ॥०॥ जिसने आप ब्राह्मणोंका पुत्रहोते पिताकी स-
विद्या भार्या जानिवृष्णि गमनकरीहो तिसके लिये दोसौ बतीस मूलश्लोक में उतारे
हुये श्रुततत्पके अतिदेश हेतुमें बारहवर्षका पौना नौवर्ष प्रायश्चित्त विचारना होगा
(इन बारहवर्षों का नियम इससे पहिली अधिकोक्ति के अन्तमें लिखे-चुके तहां
देखो अवःशायी जराधारी इत्यादि शंखके वचनसे) उसीकी पौनी नौ वर्ष यहां स-
मझनी-इसपर एक दलीलहै कि यहांपर सविद्या भार्याके गमनमध्ये नौवर्ष नियंत
करीगई और (मातुःसंप्रसर्गोभागिनीमाचार्यतनयातथा) ॥ इस दोसौ बतीसके श्लोक में
माताकी सौति सामान्य भावसे कहीहै तिसका हेतु यहां सविद्या सौति पर धराया
गया क्या कारणहै सो कहो-सुनो इस दोसौ बतीस वाले श्लोक में सामान्य वचन
होनेपर भी सवर्णा गुरुभार्याका विषय नहीं मानिसक्ते हैं क्योंकि अभी इससे पहिली
अधिकोक्तिमें सवर्णा गुरुभार्याके इच्छा सहित गमन मध्ये मरणांतिक प्रायश्चित्त
कहिचुके और कामनाको बिना गमनहोनेमध्ये शंख वचनसे बारहवर्षका कहिचुके
तिससे दोसौ बतीस मूलश्लोकमें जो माताकी सौति कही सो सखी आदि होन वर्रा
क्री समझनी कि जिसके भोगमध्ये बारहवर्षों का पौना प्रायश्चित्त कहा (इस बात
का निर्णय पहिली अधिकोक्तिमें भी निप्रतिच्छुका तहो शंका धाले पाठको देखो)
और जो इसी सविद्या विमातामें कामनासे वारंवार का अभ्यास करै तिसके जिये
कराबस्मृतिके अनुसार मरणांतिक प्रायश्चित्त चाहिये=यथाह करवः=मत्यागत्वा
शुभेभार्यापुनःसवसृताद्विजः अंडाभ्यारहितंलिंगमुत्कृत्यसमृतशुचिः=अर्थात् ब्राह्मण
अपने पिताकी भार्या जो सखी की बेटीहो तिसको दुवाग इच्छा सहित गमन कौ
सो पहिले दोनों ओर हाथों फिरे लिंग काटै तब मरनेसे शुद्धहोय (यद्यपि इस वचन
में ऐसा अर्थभी लगताहै कि पिताकी सवर्णा भार्याको एकवार या पिताकी सविद्या
भार्याको अनेक बार जानिवृष्णि गमनकरै सो इसमें भी पूर्वोक्त नियमसे धिरोधनहीं
है क्योंकि सवर्णाके मध्ये लिंग काटना पहिले भी कहिचुके है सो एकवार में सम-
झना जो सविद्याके मध्ये कहा सो अनेकवारके अभ्यासमें समझना और इसीसे प्र-
योजन यहाँ विशेष है) इसी सविद्या विमाताको अज्ञानतासे एकवार वा अनेकवार
भोगने मध्ये जो प्रायश्चित्त है सो आगे इसी अधिकोक्ति में यमके और जातुकरा
के वचनसे जुदे दोनोको देखो ॥ ० ॥ इसी न्यवस्थामें यह नियम है कि जब कोई
पातकी लिखे प्रायश्चित्तकी न करना चाहै तब उस प्रायश्चित्तके बदले यही दंडहै
कि जैसा दोसौ इकनिस और दोसौ बतीस और तैंतीस मूलश्लोकों में योगीश्वर ने

कहा है (कृत्वालिङ्गवधस्तस्यसकामायाःस्त्रियाश्चपि) कि उन श्लोकों वाला कोई अपराधी यदि प्रायश्चित्त करना अस्वीकार करे तो भी उसका लिएकारिके प्राणांत वध किया जाय ग्रही दंड और यही प्रायश्चित्त है (यदि स्त्रीने अपनी ओरसे उत्साह देना आदि कामना खड़ी करी हो या दोनोंकी परस्पर इच्छासे संगम हुआ हो तहां उस स्त्री का भी योतिष्ठेदन पूर्वक वध किया जाय अर्थात् जहां पुरुष जोरावरीसे स्त्री की इच्छा बिना कासकरे तहां स्त्री का वध नहीं चाहिये ॥ ० ॥ जहां कहीं पिता के बनेनी भार्या हो तिसको ब्राह्मणी का पुत्र इच्छा सहित भोगे तहां केवर्षका प्रायश्चित्त चाहिये—इसी आशयसे यह स्मृत्यन्तर बचन है कि—ब्राह्मणीपुत्रस्यसविथा यांसातरिगमनेपादहान्याद्वाद्वाश्वार्यिकमेवमन्यवरास्त्रिपि—अर्थात्—ब्राह्मणीका पुत्र अपनी बिमाता सविथा में जो गमन करे तिसको चौथाई कम करिके बारह वर्ष वाला नौ वर्ष का प्रायश्चित्त है (सत्पातिका नहीं) ऐसेही अन्य वरों की बिमाता में समझना कि ब्राह्मणी के पुत्र ने पिता की बनेनी भार्या भोगी हो तहां दो चौथाई कम करिके छे वर्ष का प्रायश्चित्त कराया जाय • ऐसेही ब्राह्मण पिता की शूद्रो भार्या हो तिसको ब्राह्मणी का पुत्र भोगे तहां तीन वर्ष का प्रायश्चित्त कराया जाय—यहां तक ब्राह्मणी के पुत्र की व्यवस्था पूरी हो चुकी • अब सविथा आदि के पुत्रों की व्यवस्था जुदी जुदी कही जायगी • तिसके संधे सर्वत्र ग्रहयाद राखी कि पहिली अधिकोक्ति में ठेठ जननी और सबर्णा बिमाता की व्यवस्था जो कहि चुकी सो सबके लिये चारों धरा में बराबर है दृष्टान्त जैसे बनी पिता के दूसरी सवारी भार्या हो ती बह सबर्णा बिमाता हुई या शूद्र पिता के दूसरी शूद्रो हो ती सबर्णा बिमाता हुई या वैश्य पिता के दूसरी बनेनी हो ती पुत्रों की सबर्णा बिमाता हुई इसी दृष्टांत से अनुलोम प्रतिलोम वरासंकर जातियों में भी समझना यह चर्चा सक याद रखने के प्रसंग से किया गया ॥ ० ॥ जैसी ऊपर ब्राह्मणी के पुत्र की व्यवस्था कही तैसे जो सविथा माता का पुत्र होकर ब्राह्मण पिता की बनेनी भार्या भोगे तिसको नौवर्ष का प्रायश्चित्त विचारना • जो वही पुत्र अपने ब्राह्मण पिता की शूद्रो भार्या भोगे तिसको छः वर्षका प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ इसी न्याय के अनुसार बनेनी के पुत्र की व्यवस्था है कि जो बनेनी का पुत्र होकर अपने ब्राह्मण पिता की शूद्रो भार्या भोगे तिसको भी नौवर्षका प्रायश्चित्त जानो—परन्तु जो वही बनेनी का पुत्र अपने ब्राह्मण पिता की दूसरी भार्या बनेनी को बारम्बार के अस्यास पूर्व इच्छा सहित भोगे तिसको अरणांतिक प्रायश्चित्त है—तदाइ लौगाक्षिः—गुरो

भार्यातयोर्वैश्यां मत्यागच्छेत्पुनः पुनः लिंगाग्रं देदयित्वा तु ततः शब्देत्सकित्त्वयाद= अर्थात् जो पिता की बनेनी भार्या को जानि बूझि बारम्बार भोगों से लिंगका समग्र भाग कटवाइके उस पापसे विशुद्ध होयः (यही व्यवस्था अनंतर उक्त क्षत्रिया पुत्र में भी जोड़िलेनी कि जो क्षत्रिया का पुत्र अपने ब्राह्मण पिता की दूसरी भार्या क्षत्रिया को जानि बूझि बारम्बार भोगों से भी लिंग कटाव के शुद्ध होयः और यही व्यवस्था इसी रीति से शूद्रों के पुत्र में भी जोड़िलेनी) और वही बनेनी का पुत्र जो ब्राह्मण पिता की शूद्रा भार्या को जानि बूझि कामनासे बारम्बार भोगों तिसके लिये बारह वर्ष का प्रायश्चित्त है कि जैसा उपसन्धु ने कहा= पुनः शूद्र्यां गुरोर्गत्वा बुध्या विप्रः समाहितः ब्रह्मचर्यं सदुयात्मा सचरेत्तद्वाचयादिकम्= अर्थात् बारम्बार पिता की शूद्रा भार्या में ज्ञान सहित गमन करिके वह बारह वर्ष का ब्रह्मचर्य अच्छा चित्त लगा कर साधे तब शरीर उसका शुद्ध होय (यद्यपि इस वचन में कर्ता का उद्देशक विप्र शब्द है तथापि यहाँ वैश्य का प्रयोजन है क्योंकि ब्राह्मण के लिये इसी २६० के मूल श्लोक द्वारा तीनही वर्ग नियत हो चुके हैं तिससे) और बनेनी का पुत्र होकर पिता की क्षत्रिया भार्या भोगों तिसका नियम पहिली अधिकोक्ति में हो चुका है कि सर्वर्णा या उत्तमवर्णा विमाता भोगों तिसकी सरणार्थिक प्रायश्चित्त भी उसी अधिकोक्ति में लिखि चुके ॥०॥ ब्राह्मणों का पुत्र होकर जो क्षत्रिया विमाता में अज्ञानतासे धोखेमें गमन करे तिसके लिये यमका कड़ा प्रायश्चित्त है= यथाहयमः= का ले २४ मेवा भंजानो ब्रह्मचारी सदाव्रती स्थानात्तान्म्यां विचरं विरक्तो भुपयन्नपः अयः शायी विभर्ष्यैस्तदपोहेतपातकस= अर्थात् तीन विर्यतक चार घड़ी दिन से रहे पर आठवां समय होता है तिसमें भोजन का एक बार नियम राखे इन्द्रियों को जीति कर ब्रह्मचारी बने और ब्रह्मचर्यके व्रतभी साधे और स्थान तथा आसन इन दोनों को छोड़ि के विचरते हुये दिन में त्रिकाल स्नान करते हुये धरती में सोवें तब तीन वर्षों से वह पातक दूर होय= कर्वाचित्त= इसी ने एकवार से उपराल दुबारा आदि अज्ञानता से ही गमन किया हो तिसके लिये जातुकरा का कड़ा प्रायश्चित्त विचारना= यथाह जातुकराः= गुरोः सप्तसुता भार्या पुनर्गत्वा त्वकामतः अंडमात्रं स मुत्तल्य शुद्धो जीविनमृतो पित्वा= अर्थात् पिता की भार्या जो सत्री की बेटी हो तिसकी एक बार से उपराल दुबारा आदि विना चाहे गमन करे सो अंड पर्यंत मात्र लिंग खूब काटिके अर्थात् आंडों को छोड़ि सिर्फ आंडों के ऊपर से लिंग मात्र काटि के सरजाय या जीवता रहि जाय दोनों दशा में शुद्ध होजाता है= इस वचन में निषेध सर जाना नहीं कहा

ने उत्साह देकर पुरुष को मोहित किया हो तहां पुरुष अति कृच्छ्र व्रत करे • ये सब उसी दशामें समझने जहां संगम न हुआ हो किन्तु वीर्य सींचने से पहिले लोटि परे हैं • इन प्रायश्चित्तों में कोई महीना आदिकी अवधि नहीं कही तिससे इनकी वही अवधि समझनी कि जितने दिनों में एक अनुष्ठान पूरा होता हो जैसा चान्द्रायण एक महीना भरमें होता है कृच्छ्र अतिकृच्छ्र ये बारह दिनमें होते हैं ॥ ० ॥ जो ब्राह्मण अपने पिताकी बनेनी भार्यामें जानिबुझि संगम करने पर कामनासे उताख होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घूमि गया हो तिसके लिये भी कराव मुनिका कहा प्रायश्चित्त है—यथाह कराव=तप्तकृच्छ्र पराकंचतया सांतपनं शूरोः भार्या वैश्यां सकृदगन्वाबुद्ध्या भासच रेतविजः=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिताकी वैश्याभार्या के पास एक बार जान सहित जाइके तप्तकृच्छ्र या पराक या सांतपन व्रत करे—इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था है कि जहां पुरुषने आपही उत्साह दिलाया हो तहां पराक व्रत करे जिसको स्त्रीने उतवाह देकर मोहित किया हो सो सांतपन व्रत करे जहां दोनों परस्पर प्रीति उभारी हो तहां पुरुष तप्तकृच्छ्र व्रत करे • ये सब उसी दशापर आखव हैं कि संगम न होने पाया हो वीर्य सींचनेसे पहिले जुड़े हो जायें—इसी प्रकार—जो कामना के बिना ही न जानिकर संगम करने पर उताख होकर वीर्य सींचनेसे पहिले फिर जाय तिसके लिये प्रजापतिका वचन है—यथाह प्रजापतिः=पंचरात्रनुनाश्रीयात्सप्तार्थैवातथैव च वैश्याभार्यां शूरो रत्वा सकृदजाततो विजः=अर्थात्—ब्राह्मण निज पिताकी बनेनी भार्या पास एकवार बिना जानेबुझे जाइके निषट निराहार व्रत पांच या सात या आठ दिन करे—इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था है कि जिसको स्त्रीने उतसाह दिया हो सो पांच निराहार करे जहां दोनों औरसे परस्पर प्रीति उठी हो तहां पुरुष सात निराहार करे जिस पुरुष ने स्त्री को उतसाह दिया हो सो आठ दिन तक निरन्तर निराहार करे • ये सब उसी दशापर हैं कि संगम न हुआ हो वीर्य सींचनेसे पहिले घूमि जायें ॥ ० ॥ जो ब्राह्मण अपने पिता की शूद्री भार्यामें जानि बुझि कामनासे उताख होकर वीर्य सींचनेसे पहिले विचलित जाय तिसके लिये जाबालिमुनिका वचन है—यथा=अतिकृच्छ्र तप्तकृच्छ्र पराकंचतथैव च शूरोः शूद्रां सकृदगन्वाबुद्ध्या विप्रः समाचरेत्=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिता की शूद्रीभार्या पास जानिबुझि कामनासे एकवार जाइके अतिकृच्छ्र या कृच्छ्र या पराक व्रत आचरे—इसमें भी इसरीतिसे व्यवस्था है कि जिसको स्त्रीने मोहित किया हो सो अतिकृच्छ्र करे जहां दोनोंकी इच्छा से प्रीति उठी हो तहां पुरुष तप्तकृच्छ्र करे जिस पुरुषने स्त्रीको आपही रागत दिलाई हो सो पराक नामा व्रत करे • ये सब उसी

दशापर समझने कि जहां संगम न होनेपायाहो—इसीप्रकार—जहाँ कामनाके बिना संगम करनेपर उताख होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घूमिगयाहो तहां दीर्घतमस् नाम ऋयिका वचनहै सो देखो=यथा=प्राजापत्यसंतिपनसप्तत्रयोपवासकम गुरोःशूद्र्यांस कृदगत्वाचरेद्विष्टःसमाहित=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिताकी शूद्रो भार्या में कामना के बिना एकबार पहुँचिके प्राजापत्य करै या संतिपन करै या सात दिन निराहार उपवास करै—इसमें यह व्यवस्था है कि जिस पुरुष को स्त्रीने उत्साह देकर मोहित कियाहो सो प्राजापत्य करै जहां दोनो ओरसे परस्पर प्रीति उठोहो तहां पुरुष संतिपन व्रतकरै जिस पुरुषने स्त्री को आपही उत्साह दिया हो सो सात दिन निराहार उपवास करै=ये सब उसी दशापर होसकतेहैं कि जहां संगम न होने पाया हो ॥ ० ॥ इन्हीं प्रकारोंसे और भी जो स्मृतियोंके वचन उपरालु मिलें तिनकी भी विषयभेदा व्यवस्था ऊहा करनी चाहिये=और=पुरुषोंकी तरह स्त्रियों को भी महापातक वरावर है अर्थात् जिन स्त्रियोंके साथ जिन पुरुषोंको महापातक होना कहा उनपुरुषों के साथ उन स्त्रियोंकी भी बराबर महापातक लगता है=तथाच कात्यायनः=स्यदोष प्रचशद्भिश्च पतितानामुदाहृता स्त्रीणामपिप्रसक्ताना मेयसर्वविधिःस्मृतः=अर्थात्—यह दोष और उस दोषकी शुद्धि भी पतितों की कही, और यही विधि उनमें फँसी हुई स्त्रियोंकी भी होतीहै—इस नियमसे कि जो स्त्रियां काम की चाहना से उताख होकर परे महापापकी दशातक पहुँचीहो तिनकी भी सरणांतिक प्रायश्चित्त वही है कि जो पुरुषको कहिचुके इसमें कुछ भेद नहींहै—इसीलिये योगीश्वरने वीर्यवृत्तौस तैत्तिरीय श्लोकों में (छित्वालिङ्गवधस्तस्य सकामायाःस्त्रियाग्रपि) पहिले पुरुष को वध प्रायश्चित्त कहिके कामातुर स्त्रियोंकीभी वही सरणांतिक विधिकहीहै ॥ ० ॥ जो स्त्री कामातुर होने बिना अनिच्छा से इन पुरुषों के फंद में आगरे हो तिसके लिये सरणांतिक प्रायश्चित्त नहीं है परन्तु मनु का कहा नियम है=यथा= एतदेव व्रतंकार्ययोग्यित्सुपतितास्त्रपीति द्वादशवार्षिकमेवाहं कल्पनीयम्=अर्थात्—यही व्रत बारह वर्ष का पतित स्त्रियों को भी कराना चाहिये इस नियम से बारह वर्ष का आधा ऋः वर्य कल्पना किया जाय (क्योंकि स्त्री और बालक बूढ़े आदिको आधा व्रत कराने का नियम पहिले दृढ होचुका है) यह सब नियम यहां तक मुख्य महापातकपर कहा गया जिसका लक्षण २२७ दोसो सत्ताइस मूल श्लोकमें गुरुतल्प गामी कहा गयाथा ॥०॥ उसके बाद दोसो इकात्तिस २३१ मूल श्लोकमें मित्र की भार्या कुमारी कन्या आदि स्त्रियों में गमन करना भी गुरुतल्प के समान पाप

किन्तु देवेच्छां से जीवते अचिजानेका भी विकल्पहै तिससे आंडोंका जड़से काटना भी नहीं कहा (इसी सत्रिया विमाता को जानि ब्रूमि इच्छा सहित गमन करने की दोनोदशा किन्तु एकबार या अनेक बार मध्ये दोनो प्रायश्चित्त इसी अविकोक्ति की आदि में कहि चुके—और फिर भी आगे इसी अविकोक्ति में उसका प्रायश्चित्त कहेंगे जो सत्रिया विमाता में गमन करने पर उताह होकर वोथ सींचे विना लोटियाया हो ॥०॥ एवं पिता की बनेनी भार्या में ब्राह्मणी का पुत्र होकर जो विना इच्छा के बोखा से गमन करे तिसके लिये याज्ञवल्क्यजी ने जो इसी दोसोसाठि मूल श्लोक पूर्वार्धसे त्रैवार्यिक प्राजापत्य कहा सो कवावा चाहिये और यही प्रमाणा ठहरे मनुके वचनसे मिलता है—तथा च वृद्धमनुः—गमनेशु रभार्यायाः पितृभार्या गमने तथा अर्द्धवयसकामात् कृच्छ्रं नित्यसमाचरेत्—अर्थात्—शुद्धकी भार्या या पिताकी दूसरी भार्या होनेवाली की इच्छा विना भोगे सो तीनवर्षतक नित्य प्रतिहृच्छ्र व्रत कारता है किन्तु बीच में अन्तर कभी न पारने देय तब शुद्ध होय—और जो उसी बनेनी विमाता में अज्ञानता से बार बार गमन किया हो तो हारीत का कहा—जीवन पर्यंत ब्रह्मचर्यरूपी प्रायश्चित्त है—यथा हारीतः—अभ्यस्य त्रिप्रोवैश्यायां शूरोरजानमोहितः यदंगव्रह्मचर्यं संचरेद्यथावयुधम्—अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिताकी बनेनी भार्या में अज्ञानता से भूला हुआ यदि बार बार संगमको अभ्यास करे और पीछे भेद जाना जाय तब यह प्रायश्चित्त है कि जबतक जीवै तबतक यड़ा वेव पाद की चारणाराखै और ब्रह्मचर्यसे रहै किसी स्त्रीसे संगम न करे (इसी बनेनी विमाताको इच्छा सहित भोगनेमध्यें छः वर्ष का प्रायश्चित्त ऊपर कहि चुके हैं इसी अविकोक्ति में स्मृत्यंतरवचनहुँहो ॥०॥ एवं पिता की शूद्री भार्या में ब्राह्मणी का वेश विना जाने गमन करे तिसके लिये मनु का कहा प्रायश्चित्त है—यथा—खड्वांगीचीरवासावापमयुक्तो विजनेवने प्राजापत्य चरेत्कृच्छ्रं मन्दमेकसमाहितम्—अर्थात्—मनुष्य की खोपड़ी लाती आदि लकड़ी के सिरेपर जड़ो हुईका नाम है खट्वांग जो ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त में कहि चुके तिसको लिये हुये और पुराने चौपड़े या भोज पत्र आदि वक्कल पहिरे लपेटे हुये दाढ़ी मूछ आदि सब जरा रखाये हुये निर्जन वन में एकला एक वर्षतक ठीक ठीक विवि से कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करे तब शुद्ध होय—अथवा—यह नहीं तो दूसरा समुत्त का कहा प्रायश्चित्त करे—यदाह समुत्तः—शुरुदारभिगानीसवल्गः कर्दकोनींशाखां परिष्वज्यावः प्रायश्चित्तवशाभैसाह्वारपूतो भवति—अर्थात्—शुद्ध भार्या गमन करने वाला एक वर्ष भर बेरी बरू आदि कांठो वाले वृक्ष की लकीयाखा रहनी बगल में दावि

चिप्टाय के धरती में सोवै त्रिकाल स्नान किया करै भिक्षासे पेटभरै तब शुद्ध होय—
 और—जो एक बार के सिवाय दुबारा तिवारा आदि बार बारका अभ्यास किया हो
 तो मनुका कहा प्रायश्चित्त है—यथा=चांद्रायणाव्रीन्मासानभ्यनियतेन्द्रियः=अ-
 र्थात्—बार बारका अभ्यास करिके तीन महीना तक निरन्तर चांद्रायणा व्रतकरै तब
 शुद्ध होय (इसमें यह शंका न करना कि एकवारके भोगमध्ये वागह महीनेका प्राय-
 श्चित्त और बारवार के अभ्यास में सिर्फ तीन महीने कहे क्योंकि उस एक वर्ष की
 अपेक्षा ये तीन महीने बहुत कठिन हैं इस हेतुसे कि चांद्रायणमें एक एक प्रास अन्न
 बढ़ाया घटायाजाताहै ऐसा निरन्तर तीन महीनेतक साधना उसकी अपेक्षा कठिन
 है जो एक वर्ष तककांटों की शारखा आदि कहागया) इसी शूद्रा विमाताकी जानि
 वृष्णि कामनासे भोगने मध्ये तीनवर्ष का प्रायश्चित्त इसी अधिकोक्तिके प्रारंभमें
 और पहिलीअधिकोक्तिके अन्तमेंभी कहि चुके तहां देखौ ॥०॥ और जो ब्राह्मणीका
 पुत्रहोकर सविद्या विमातामें कामनासे जानिवृष्णि उतरू होकर वीर्यसींचनेसे पहिले
 घृमिगयाहो तिसकेलिये व्याघ्रोक्त प्रायश्चित्त है—यथाह व्याघ्रपादः=कच्छू चैवाति
 कच्छू चतथाकृच्छातिकृच्छूकम चरेन्मासवयंविप्रःसविद्यागमनेगुरोः=अर्थात्—पिता
 की सविद्या भार्या के पास ब्राह्मणी का चेष्ट यदि पहुँचै सो कच्छूयाअतिकृच्छूया
 कृच्छातिकृच्छू तीन महीना करै—इसमें इसरीति से व्यवस्था है कि जिस पुरुष को
 स्त्रीने अपनी और से उत्साह दिलाकर मोहित किया हो तिसको तीन महीना कच्छू
 प्राजापत्य करना चाहिये जो दोनों की इच्छा से परस्पर प्रीति उदीहो तो पुरुषको
 अति कच्छू व्रत करना तीन महीना चाहिये जहां पुरुषही ने स्त्री को तसोब दं हो
 तहां ऐसे पुरुष को कृच्छातिकृच्छू व्रत तीन महीने करना चाहिये•ये सब तीनों
 उसी दशापर कहे गये हैं कि जहां संगम न होने पाया किन्तु वीर्य सींचने से पहिले
 लौटि परेहो=इसी प्रकार—जहां सविद्या विमाता में कामना के बिना किसी धोखे
 से संगम काने पर उतरू होकर वीर्य सींचने से पहिले बोव होजाने आदि कारणाँ
 से लौटि परा हो तहां कराव मुनिका कहा प्रायश्चित्त है—यथाह करावः=चांद्रायणा
 तप्तकृच्छूमतिकृच्छू तथैवच सकृद्व्यागुरोभार्यामज्ञानात्सविद्यांहिजः=अर्थात्—ब्राह्म
 णा अपने पिता की सविद्या भार्या के पास बिना जाने वृष्णि एकवारभी जाइकेचां-
 द्रायणा करै या तप्त कृच्छू करै या अतिकृच्छू करै—इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था
 है कि जिस पुरुषने आपही स्त्री को उत्साह दिया हो सो चांद्रायणा करै जहां दोनों
 ने बराबर प्रीति उभारी हो तहां पुरुष को तप्त कृच्छू करना चाहिये जहां सिर्फ स्त्री

कहा गयाथा जो समान कहिने मात्रसे कुछ नीचा समझागया है तिनमें और दोसो वतीस तैंतीस श्लोकों में जो जो स्त्रियाँ बूया माभी आदि गिनार्ई जिनका गमन करना श्रुतत्त्व के अतिदेश में ठहिराया गया वहुभो श्रुतत्त्व से कुछ नीचा पातक है तिनमें भी यदि कोई पुरुष वीर्य सींचै तिसके लिये भी वही वारह वर्षका प्रायश्चित्त है इस हिसाब से कि जिसने बिना जाने धोखा में एकही राति गमन किया हो तिसको वारह वर्ष का आवाहः वर्ष प्रायश्चित्त दिया जाय—और जिसने एक राति से उपरान्त भी जानि बुझि वार वार ऐसा किया हो तिसको वारह वर्ष का पौना नौवर्ष दिया जाय—इसमें भी यह विशेष्य कर विचार है कि यद्यपि इनपापों को श्रुतत्त्व से कुछ न्यून कहा इसी हेतुसे प्रायश्चित्त भी कम किया गया तथापि जो इन्हीं स्त्रियों में अत्यन्त हो अभ्यास कियाहो तौफिर इसमेंभी वही सराणितिक प्रायश्चित्त कराया जाय जो पहिली अधिकोक्ति में कहा गया इसीलिये योगेश्वर ने उसी दोसो तैंतीसमें यह कहाहै कि (लिंगछित्वाववस्तस्यसकामायाःस्त्रियाअपि) परंतु उन श्लोकों से गिनार्ई हुई स्त्रियों में माता की सीति भी कही गई है तिसकी व्यवस्था पहिली अधिकोक्तिमें और वर्तमान अधिकोक्ति मेंभी ऊपरवर्तान होचुकी है तिससे बिमातासे उपरालू स्त्रियाँ जोइन चर्चा किये तीन श्लोकों में हैं तिनका नियम यहां पर लिखा गया समझना और उनमें अत्यन्त अभ्यास करने वाले को सराणितिक जो बताया तिसका प्रमाण बृहद्यमका यह वचन है—यथा=रेतःसिक्ता कुमारीशुस्त्रयोनिष्वंत्यजासुच सपिंडापत्यदारैर्युप्राणत्यागोविधीयते=अर्थात्—कुमारी कन्या चाहें किसी की भी उत्तम जातिहो और अपनी भगिनी और अंत्यजा चांडालियों और अपने सपिंडों की पुत्र वधुओंमें वीर्य सींचिके प्राण त्यागही प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ इस व्यवस्था में अंत्यजाती स्त्रियों का भोग भी श्रुतत्त्व के समान पातक ठहिरायागया और अंत्यजाके कईअर्थ होतेहैं तिससे मिताक्षराकार ने व्यवस्था इस पर दीहै कि इस भोग पर अंगिरा मुनि के कहे अंत्यजों की स्त्रियाँ समझनी=यथाह सध्यर्मांगिराः=चांडालःअपचःसत्तासूतौवैदेहिकस्तथा साराधः१८योगवीचैव सप्तैतैन्त्यावसायिनः=अर्थात्—चांडाल• अपच• सत्ता• सूत• वैदेहिक• साराध• आयोराध• ये सात जातें अंत्यावसायी किन्तु अंत्यज कहाती है तिनकी स्त्रियों से भोगकरना अधिक अग्रगुता के हेतु से श्रुतत्त्व के समान महापाप ठहिरा परन्तु (राजक श्वर्माकारप्रचनटोवरुडणवच केवर्तमेदभिलाप्रचसप्तैतैअंत्यजाःस्मृताः) इसवचनमें धम को कहे सात अंत्यज ये प्रसिद्ध हैं कि• धोत्री• चमार• नर• वरद• केवर्त• मेद• भिल्ल•

ये सातो अत्याजाति है सो इनको इस ऊपरकी व्यवस्थामें न शामिल करना क्योंकि इनके मध्ये छोटा प्रायश्चित्त है सो आगे उपपातको के साथ पारदार्य परिच्छेदमें देखना=और ऊपर की व्यवस्था में जिन अत्याजाओं का प्रयोजन है तिनके लिये मनुने भी बहुत बड़ा प्रायश्चित्त हेतु गर्भित वचन के द्वारा प्रकाश किया है=यदाह मनु=चांडालात्यस्त्रियगत्वासुस्काचप्रतिगृह्यच पतत्यज्ञानतोविप्रोज्ञानात्साम्यतुगच्छति=अर्थात्-कोई ब्राह्मण बिना जाने चाण्डाल और अन्त्यजों की स्त्री में गमन करिके या उसको हाथ से कुछ खाइके या उसस्त्रीको धरिणी बनानेके लिये प्रतिग्रह लेके पतित होजाता अर्थात् जातो घर्षसे गिरजाता है और जिसने जानि बूझिके इच्छा सहित ऐसा कियाहो सोउन्ही चंडालोंकी समता की पहुँचता अर्थात् निपट चंडाल होजाताहै-अब इनदोनों बातको जुदीजुदी सोचौ कि जो पतितहोताहै सोतौ प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होसक्ता है दूसरा जो निपट चंडालोमे मिलिगया वह प्रायश्चित्तसेभी नहीं शुद्ध होताहै अर्थात् उसकेलिये कोई प्रायश्चित्त नहींहै मरजाने के सिवाय-तिससे यह व्यवस्था नियत हुई कि जिस ब्राह्मण से बिना जाने धोखेमें ये पापहुये हो सो पतितहोने के हेतुसे पतितो वाला प्रायश्चित्त पूरा बारहवर्ष साधै तब शुद्ध होय• और दूसरा जिसने जानि बूझिके इच्छासहित चण्डालीसायबहुतदिनोतक सगम या खाना पीना या घरमेरखिलेना विवाह कालेना आदि किया हो वह शुद्ध होनाचाहै तौ बारहवर्षोंसे अधिक मरणांतिक प्रायश्चित्तहै तिसकोकरैक्योकि प्रायश्चित्तकी अपेक्षासेमौतके बिना उसकी शुद्धि संसारमें नहीहै=परन्तु येदोनों बहुतबड़े प्रायश्चित्त जो कहे गये सो बहुतदिनोके अभ्यासपर समझना किन्तु एकरात्रिभरके अभ्यासमें यद्यपि कई बार सगम हुआ हो तौभी ये प्रायश्चित्त न होगा क्योंकि एक रात्रिकेअभ्यास मध्ये मनुने तीन वर्गका प्रायश्चित्तकहाहै=यथा=यत्करोत्येकरात्रे शाट्वलीसेवनात्तद्विज तद्देश्यभुगजपन्तित्यत्रिभिवर्षेर्द्व्यणोदित=अर्थात्-ब्राह्मण जो पापघृय नीके सेवनसे एक रात्रिभरमे उपवास करता है सो तीन वर्ग भिक्षा खाइके जप कालेहुये दूर होजाताहै-इस व्यवस्थासे यहतात्पर्यदर्शित कि चंडालीका सगमआदि कोई काम जिसने बिना जाने सिर्फ एक राति भर किया हो तिसको तीन वर्ग का प्रायश्चित्त है और बहुत दिन सेवन करने वाले को बारह वर्ष का प्रायश्चित्त है और जिसके लिये मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा उसने जो अतिकाल का अभ्यास न किया हो किन्तु जानि बूझिके इच्छा से दोहो चार दिन अभ्यास करिके पछिताया हो कि भुक्त को शुद्ध होना चाहिये तौ उसको भी मरणांतिक प्रायश्चित्त के

वदले सिर्फ बारह वर्षका व्रतकरना चाहिये कि जिससे फिर जातिमें मिलिसके और प्राण हानि भी न हो परच बहुत दिनोंके अभ्यास में मरणांतिक जो लिखचूके वही नियम है ॥ ० ॥ यद्यपि मनु के वचन में दृयली कही सोभी चांडाली समझनी क्योंकि अन्य स्मृतियों में पांच भाति की दृयली कहीं उनमें चांडाली भी गिनती है) तथाच स्मृतंतरे=चांडालीवधकीवैश्यारजस्थायाचकन्यका ऊदायाचसगोत्राश्चाद्वयद्वयपच कीर्तिताः=अर्थात्-चांडाली १ वधकी जो स्वेरिणीहो २ वैश्या ३ जो कन्याकुमारी अपनेपिताकेघर कपड़ोंसेहोनेलरी वह किसीको बिवाहीजाय तोभी दृयलीकहातीहै ४ रजस्वला न होनेपरभी जो कन्या अपने सगोत्रीको बिवाहीजाय सोभी दृयलीकहाती है ५ ये पांचदृयली कहीगईहैं (परन्तु इनमेंसे केवल चांडालीकाप्रयोजन ऊपरले मनु केवचनमेंसमझना पांचोंको नहीं क्योंकि योगीश्वरनेभी २३१ मूलश्लोकमें अत्यजामात्र कहीहै=इसको सिवाय जहां सिर्फ एकहीवार चांडाली आदि भोगी अर्थात् एकराति भर नहीं सेवन किया केवल दो घटिकामात्र संगम किया हो तिसके लिये अग्रेक यमादिस्मृतियों का वचन देखो=यथाह यमः=चांडालपुत्कसानांतुभुत्कारात्वाचयोर्यितम् कृच्छ्राव्दमाचरेत्तज्जानादज्जानादैन्दवद्वयम=अर्थात्-चांडाल और पुत्कसजाति योंकी स्त्रीको जानते हुये पास जाइके या केवल भोगमात्र करिके एक वर्षभर कृच्छ्र व्रतसाधै परन्तु जो बिनाजाने पास गयाहो या केवल भोगमात्र कियाहो तो दोमहीना के दो चांडायण करें (व्यवस्थापर ध्यानकरौ कि चांडालियोंके पास जानामात्र या भोगमात्र दो बातें कहीं तिनमें केवल भोग तो मुहूर्त भरमें निषिद्धजाताहै इससे अधिक सेवन कुछ न कियाहो यह तात्पर्य है और पास जाना भोग के बिना भी बैठने आदि प्रकारसे प्रीति जोडना यह अनेकवारके अभ्यास द्वारा एकवारके संगम की बराबर अर्पावब करसक्ता है तिससे दोनोवात एकसी बराबर उझिं इसीलिये दोनो पापका एकही प्रायश्चित्त कहा केवल ज्ञान और अज्ञानताके भेदसे दोतरहके व्रतकहे ॥ ० ॥ ध्यानकरौ कि जिस अत्यजा चांडाली के मध्ये यह व्यवस्था सब कही तिसके साथ दोसौ इकतिस मूलश्लोकमें (मुखिभार्याकुमारोयुस्त्वयोनपितृजामुच) भगिनी आदि और भी अनेक असभ्या लिखी गईहै तिससे भगिनी आदिसे संगम करनेमे भी यही व्यवस्था समझलेनी=और इस व्यवस्थामें जहां जहां केवल वरणांतिक प्रायश्चित्त कहागया तहां तहां सर्वत्र अग्निमें गिरिके जलजाना समझ लेना और इतका प्रसारा यह काल्यायनका वचनहै कि=जनन्यांचभगिन्यांचत्स्वभृतायांतथैवच न्युयायां गमनचैवविज्ञेयमतिपातकम् अतिपातकिनस्त्वेते प्रविशेयुर्हुताशनस=अर्थात्-जननी

या भगिनी या निजवेदी या वेदाकी वधू इनमें गमन करना अति पातक जानो सो इतने सब लोग जो अतिपातको होजाय वे अग्निमें प्रवेश करें (इस वचनके अनुसार भी यह विचार करना सुचितहै कि जननीके एकही बार गमन करनेसे अग्निमें गिरना और भगिनी आदि श्रेय स्त्रियोंको कईवार गमन करनेसे अग्निमें गिरना सिद्ध होताहै क्योंकि यह बातों पहिले कई स्थलोंपर निर्णय हो चुकीहै कि सांत्वगमन महा पातकहै और भगिनी आदिका संगम यह उनीका अतिदेश होने से अतिपातक है महापातक नहींहै तिससे दोनोंकी तुल्यता एकसी बराबर होने उचित नहींहै ॥ ० ॥ इसी व्यवस्थाके विचारसे यह भी ध्यान करना कि लहलहयमका एकवचन विशेषहै यथा (चंडालीं प्लवकसीं स्लेचिनीं पुष्वधू भगिनीं सखीं मातापित्रोः स्वभारं च निक्षिप्तां शरणागतां सातुलानीं प्रव्रजितां स्वगोषां नृपयोजितं शिष्यभार्यां गुरोर्भार्यां गत्वा चां द्रायणां चरेत्) अर्थात्—चंडाली० प्लवकसी० स्लेचिनी० पुष्वधू० भगिनी० सखी० सहचरी वह कि जिस स्त्रीको जिस पुरुषके साथ एकसी अवस्था होने के हेतु से या औरही किसी कारणा या बिना कारण भी प्रायश रहना फिरना होताहो और मित्रकी पत्नी भी सखी होतीहै० माताकी बहिन० पिता की बहिन० निक्षिप्ता जो किसी भयादिक सन्नेहसे धरोहरिके तौर से पीहरे अपने यहाँ रहतीहो० शरणागता जो देशके उपद्रव आदि कारणासे कुछ दिनके लिये अपनी रक्षा चाहिकर शरणमें आ टिकीहो० मांसी० प्रव्रजिता संन्यासिनी आदि० स्वगोषा अपने गोव भर की कोड़े स्त्री हो अर्थात् तीन पीढ़ी या सातशाख भीतर जहाँतक परस्पर एकही पुरुषका कुल मानाजाताहो परंतु उसको स्वगोषा न समझनी कि जैसे एकही ऋषि गार्ग भारद्वाज आदि गोववाले कहीं दूर बसतेहों तिनकी स्त्रियोंका विचार पर स्त्री संगमके प्रकरणमें आवेगा० राजा या ग्रामके दाऊरकी भार्या० शिष्यकी भार्या० गुरुकी भार्या यहाँपर गुरुशब्दसे आचार्य हीकी समझना किन्तु पितानहीं० इन स्त्रियोंके पास जाइके चान्द्रायणा व्रतकरे जो एक महीनामें पूरा होताहै—और एक अंगिराका यह वचनहै कि (पतितां त्यज्यो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च मासोपवासं कुर्वीत चां द्रायणमथ पित्रा) अर्थात्—पतित स्त्री जो किसी महापातक या पातकसे पतित हो चुकीहो अथवा पतित जातों की स्त्रियों और अत्य चंडाल आदि जातोंकी स्त्रियों पास जाइके या उनके हाथ का कुछ खाइ के या उनकी परिग्रहमे लेकर एक महीने भर उपवास करे या चांद्रायणाकरे तब शुद्ध होय—सो यह अंगिरा और लहलहयकी दोनों व्यवस्था गुरुतत्त्वके अतिदेशपर उतारी गईहै और इनमें लिखे प्रार्थश्रित्तोंको उस दशापर समझना कि पुत्र्य अपनी अज्ञा-

नतासे भोग करनेपर उताख होकर वीर्य सौचनेसे पहिले धूमि गया हो किन्तु पूरा भोग नहीं किया इसी तरह धर्मिणों के वचन से परिग्रह में लेनेको समझि लेना कि विवाह फेरमात्र पूरी रीतिसे न होनेपायाहो तभी तक यह छोटा प्रायश्चित्त है—और भी संवत् का यह वचन है कि (भगिनीमातुराज्ञांचस्वसारंचान्यमातृजास्य सतागत्वा स्त्रियोमोहात्तत्तत्कच्छं समाचरेत्) अथत्ति—माताको उदरसे प्राप्त हुई सगी बहिन और विमातासे उत्पन्न हुई सौतेली बहिनकी और इनसे पहिले जो स्त्रियां कहीं इनस्त्रियों के पास तक अज्ञान मोह से जाइ के तत्तत्कच्छं व्रत करै—सो यह प्रायश्चित्तभी गुरु तत्त्व के अतिदेश मध्ये ऐसी दशा पर समझना कि बिना जाने और बिना चाहे अज्ञानमोहसे सगम करने पर उताख होकर वीर्य सौचनेसे पहिले ज्ञान होजानेमें लौटि गया हो क्योंकि इन सभी वचनोंमें पास जानासावकदाहै पूरा भोग नहीं कहा ॥ ० ॥ कदाचिद् येही सब स्त्रियां कि जिनके भोग मध्ये ऊपर से गुरुतत्त्व का अतिदेश उतास्ते चलेआते हैं उनमें जो कोई सी अत्यन्त व्यभिचारिणी हैं तिनको पूरी रीति से भोगने मध्ये वही बेनों प्रायश्चित्त होरो जो अभी ऊपर वीर्य सौचने बिना करने कहिचुकोसो इस क्रमसे किये जायेंगे किजिसने उनमेंसे किसी व्यभिचारिणी को जानि बूझि कामना से वीर्य सौचा हो सो चांद्रायण करै और जिसने अपनी रिश्तेदारी की न जानिकर केवल व्यभिचारिणी समझते हुये वीर्य सौचाहो सो तत्तत् कच्छं करै तब शुद्ध होय=इनके सिवाय=उन स्त्रियों की भोगनेमें गुरुतत्त्व दोषनहीं है जो सामान्य सबलोगोंके भोगनिमित्त सब देशोंमें कुछ देश्या जन पातुर भगतानी रामजनी आदि नामों से प्रसिद्ध होती हैं तिनको यद्यपि श्रुतने भोगाहो तभी उनकी भोगने से गुरुतत्त्व दोषी नहीं टहिर सक्ता है जैसा व्याघ्रपाद का यह वचन है कि (जात्युक्तपारदार्यचक्रन्याद्वयगामेवच साधारणस्त्रियोनास्तिगुरुतत्त्वपरधमेवच) अर्थात्—नट नर्तक वेष्टिनी आदि जिन जातोंमें यह रीति प्रसिद्ध है कि अपनी स्त्रियां और बेदियाँ परये पुरुषों की मिलाइको या उनके सन्मुख नचाइको जीविका करते हैं तिनकी स्त्रियों से संगम करना पर स्त्री संगम नहीं है तथैव उनकी कुमारियों से संगम या किसी प्रकारकी छेड़ छाड़ करना कन्या द्वयका के अपराध में गिनती नहीं तथैव साधारण स्त्रियां जो रामजनी भगताइन आदि नामों से सामान्य सब लोगों के भोगनिमित्त से सब देशों में अवश्य कुछ होती हैं तिनका संगम गुरुतत्त्व दोष नहीं बल्कि गुरुतत्त्व के अतिदेश में भी गिनती नहीं चाहें उनकी गुरु पहिले भोगिचुकाहो या नहीं दोनों दशा में यह नियम है ॥ इसी प्रकार और भी स्थितियों के वचन प्राय-

प्रिचत्त की व्यवस्था वाले मिलें जिनसे ऊँच नीच का अन्तर देखि परें तो उनकी भी व्यवस्था ऊँचे नीचे विषय भेदसे कल्पना करनी चाहिये कि जिससे कुछ विरोध न रहे • क्योंकि बहुधा वचनो की ग्रन्थ बढि जाने के सन्देह से यहाँपर नहीं लिखा तो इस न लिखनेसे भी जीवचन कहीं देखिपरें तिनको निरर्थक न समझिलेना ॥ २६० ॥

(इतिगुरुतल्पप्रायश्चित्तप्रकरणा)

इस प्रकारा में अशुभार्गमन मात्र केवल एक विषय होनेके हेतुसे परिच्छेद भी एकही रहा अब अगिले सेतीसके परिच्छेदमें संसर्ग दोषके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

अथ पूर्वोक्त महापातकिनां सर्वसंसर्गज महापातकस्य

प्रायश्चित्त प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः सप्तविंश ३७

इस परिच्छेदमें संसर्गी पुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे संसर्गी यद्यपि पाँचमा महापातकी होनेसे एकही मानाजाता है तथापि यह चारप्रकार का होताहै क्योंकि ब्रह्महा • मद्यप • सुवर्गस्तेयी • गुरुवारणामी • इनचार महापातकियों में जिसका संसर्ग उसने किया हो ॥

(संसर्गोक्तिदेशः)

एभिस्तुसंवत्सेयोवैवत्सरस्तोपितस्तम । २६१

पूर्वादिश्लोक

अर्थ.—इन करके जो वर्षभर सन्ध्याक वसैं सोभी उसके समान है—अर्थात्—पेड़ीजो ब्रह्महत्यारे आदि ४ महापातकी कहेगये इनके साथ जो कोई एकवर्ष मात्र अच्छी तरह वसैं किन्तु इन चारोंमें जिस किसी के पास वसैं या साथ रहिकर किसी तरह का बर्तावा आचरणा करै सो उसीके समान ठहिरै अर्थात् उसी के निमित्त में लिखे हुये प्रायश्चित्तको करै यह अतिदेश उतारा गया इसी अतिदेशके प्रयोजनसे उसके समान होना मूलश्लोकमें कहा (किन्तु पातकत्वके अतिदेश निमित्त नहीं क्योंकि

पातकत्वका अतिदेश (यश्चतैः सहसंबन्धेन) यह दोसौ सत्ताइस २२७ मूलश्लोकमें चौथे पादसे कहि चुके तिससे यहां केवल प्रायश्चित्तका अतिदेश उतारनेकी उसके समान कहा गया) और भी यह विशेषता है कि यद्यपि अतिदेश उतारा गया तिससे चौथाई कम करिके प्रायश्चित्त होय या तो भी कम न करना चाहिये किन्तु पूरा ही बारह वर्ष आदि जो अर्वाच मुख्य पापीकी नियत हुई हो सो इसकी भी कराया जाय क्यों कि यह संसर्गों पुरुष भी साक्षात् महापातकी कहा गया है सोसौ सत्ताइस मूलश्लोक में देखो कि पांचोंका बराबर दर्जा दहर चुका—परन्तु—इतना अन्तर है कि महापातकीयोंके समान प्राण हानि वाले प्रायश्चित्त की आज्ञा इसको नहीं है यह आगे वर्णन होगा तहां समझिलेना अधिकोक्ति में ॥ २६१ ॥

२६१ अधिकोक्तिः—इसी पूर्वार्द्ध मूलश्लोकमें अपि शब्द जो आया तिससे यह तात्पर्य है कि जैसे इन महापातकीयों का संसर्ग उनके समान कहा तैसे और भी अतिपातकी और पातकी और उपपातकी आदि जो जो पतित होते हैं तिनमें से जिस किसी के साथ कोई संसर्ग करे सो उसी के समान ठहरे और उसी के समान प्रायश्चित्त करे—इसीलिये मनु ने वड़े छोटे सभी पापों के प्रायश्चित्त कहिकार पीछे से यह वचन कहा है (यो धेनपतितेनैवांसंस्पर्शयातिमानवः स तस्यैव व्रतं कुर्यात्संसर्गं विशुद्धये) अर्थात् इन सभी प्रकार के पतितों में जिस किसी के साथ जो कोई संसर्ग में जाता है वह उसीके समान होता है तिससे उसका संसर्ग दोय मिटाने को उसी का व्रत करे—यिष्णु ने भी सामान्य भाव से उपपातकी आदि पापीसाव के संसर्ग में उन्हीं का प्रायश्चित्त भजना दर्शाया है कि (या पाप्मना येन सहसंस्पर्शयते स तस्यैव व्रतं कुर्यात्) जिस पापी के साथ संसर्ग जो करे सो उसी का व्रत करे—इसी लिये मनु ने सामान्य पापी साव का निषेध किया है कि (एनस्त्रीभिरनिराशौर्तार्थिकचि त्समाचरेत्) किसी भी एनस्त्री के साथ कोईसा व्यवहार न करे कि जबतक उसका निराय और शुद्ध न होजाय—तथैव एनस्त्री को भी यह शिखा दई है कि (न संसर्गं भजेत्सङ्गिः प्रायश्चित्तेऽकृतेऽपि) प्रायश्चित्त किये बिना शुद्ध लोगों से अपना संसर्ग न करे ॥ ० ॥ पतित के संसर्ग से यह बारह वर्ष आदि का प्रायश्चित्त जो करना ठहिरा सो जानि ब्रूमि के संसर्ग करने पर आखड़ है जैसा देबल का वचन है कि—पतितेन सहैयित्वा ज्ञानं स्वत्सरं नरः शिथिलस्तेन सीदं दंतिस्त्रयं पतितो भवेत्—अर्थात्—पतित को जानते हुये उसके साथ सक वर्ष मिला हुआ वसिकर अनुप्य वर्ष पूरा होजाने वादि आपदा पतित होवे ॥ अथाज्ञानकृत संसर्ग प्रायश्चित्त ॥ जिसने बिना जाने

अज्ञानतामें संसर्ग किया हो तिसकेलिये वशिष्ठका कहा प्रायश्चित्त है—यथा=पतितसं
योगेत्तुत्राहारो न वेदाध्यापनेनयौनेनवा सौवेरावायास्तेभ्यः सकाशान्मावाउपलब्ध्वा
स्तासां परित्यागस्तैश्चनसंवसेदुदीचीं दिशंगत्वा १८ नश्नसंहिता २४ यत्र नमवीधानः पतोभ
वतीति विज्ञायते=अर्थात्—पतित के संयोग में विवाह ब्राह्मणपुरोहित आदिने जो
कुछ माग्यें दक्षिणारोक आदि पतितों के विवाह आदि काम कराइ के या वेद
पढ़ाने आदि पूजा पाठसे या होम यज्ञ कराने आदि से पाई हों तिनका परित्याग
अर्थात् भूखे दुखे को देदेखें या किमी तडाग मंदिर आदि की सरमर्मातमें समर्पणा करें
और उनके साथ निवास आदि कर्मोंके संबंध न रखें और उत्तर दिशामें पवित्रधरती
पर जाइके भोजन का त्याग कियेहुये वेदकी संहिता का पाठ यथा विधि से करता
हुआ पवित्र होजाता है यह जाना गया (यद्यपि इसमें कुछ अवधि नहीं कही गई
कि भोजनका त्याग कितने दिनकरै तथापि यह सिद्धान्त पाया जाताहै कि जितने
दिनमें संहिताका एकही पाठ पूरा होसके वही अवधि जानों क्योंकि पाठकी अनेक
आवृत्ति करना नहीं कहा ॥०॥ संसर्गिणांसंसर्गिणश्च—मुख्य महा पातकियोंके
संसर्ग से पूरा महापातक संसर्गी को होताहै यह निर्णय किया गया परन्तु निर्णय
वाले वचनोंका यह तात्पर्य नहीं है संसर्गी के संसर्गी तीसरे को भी महापातक लोगों
इसी से यह नियम है कि संसर्गी से जिन लोगों का संसर्ग अर्थात् हेल मेल होजाय
तिनको द्विजातियों वाले कर्मधर्म की हानि नहीं पहुँचती है अर्थात् जातिसे गिरि
जाना आदि जैसा मुख्योंके संसर्गी को होताहै तैसा संसर्गी का संसर्गी तीसरा पुरुष
जाती धर्मसे नहीं गिरायाजाता है तोभी कुछ प्रायश्चित्त इसको भी अवश्य लगताहै
(और इसमें यह तर्कना या शंका न कहिनी चाहिये कि जिसको जाति से गिराना
नहीं है तिसको प्रायश्चित्त क्यों लगता है) क्योंकि ऊपर जो मनुका वचनलिखा
गया कि एनस्त्री अर्थात् पापी माय किसी के साथ कोई व्यवहार न करे जबतक
उनके निर्णय से प्रायश्चित्त होकर शुद्ध न होजाय—सो इस वचन में सभी पापी माय
के निषेध के द्वारा पाँचवें महापातकी संसर्गी का भी संसर्ग हेलमेल करना नियिद्ध
ठहिर चुका तिससे उसका हेलमेल करनेवाला यद्यपि जाति से नहीं गिराया जाय
तोभी प्रायश्चित्त करना ठीकही मूर्चित हुआ है—परन्तु इस तीसरे को पूरा प्राय-
श्चित्त नहीं किन्तु चौथाई कम करिके तीनपाद होना चाहिये जैसा यह न्यायजी
का वचन है कि—योगेनसवसेद्वर्षोपितत्समतामियात् पादद्वीनचरेत्क्षोपितस्य तत्स्य
वर्तद्विजः=अर्थात्—एकवर्ष जो कोईद्विजाती जिसके साथ हेलमेल करै सोभी तिसको

बराबरी को पावें और वह उसी वाला व्रत चौथाई कम करें ॥ ० ॥ जैसा यह दूसरे संसर्गी को कहा गया तैसा इसकी हेलमेल से तीसरे को फिर उसके हेलमेल से चौथे को भी यह नियम है किजानि ब्रूमि इच्छा से हेल मेल करने वाले तीसरे को दो पाद कम करिके होहीपाद अर्थात् आधा प्रायश्चित्त कराना चाहिये और चौथेको जानि ब्रूमि हेल मेल करने के दोय में तीन पाद कमकरिके सिर्फ एकही चौथाई करना चाहिये—इस में यह शंका है कि एक संसर्गी को पूरा व्रत करना कहा कि जैसा बारहवर्षका ब्रह्महृत्यारेआदिको कहिचुकोये फिर दूसरे संसर्गीको पौनाबताया और तीसरे को आधा और चौथे को चौथाई इसका क्या कारणहै कि एकसंसर्गीपर मुख्य पातकियों से कुछभी रिश्तायत न करीगई—सुनो २२७ मूलश्लोक देखो उसको भी पाँचवाँ सहापातकी कहिचुको तिससे उन्हीं चारों की बराबर प्रायश्चित्त उत पर चाहिये और रिश्तायत उसपर इतनोबढ़ी करीगई कि साक्षात् ब्रह्महृत्यारेआदि चारों को इच्छा सहित पाप करने मध्ये मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा गया था सो इसको नहींहै अर्थात् इच्छासहित उनका हेलमेल करनेमें उन्हींकी बराबर व्रतकरना इसको कहागया जो उनकी इच्छा बिना पाप होजानेपर बारहवर्षका व्रत ठहिरा था क्योंकि (सत्सूर्यैवव्रतं कुर्यात्) इस वचन के तात्पर्यमें उसके व्रतही का अतिदेश दियागयाहै मरजानेका नहीं क्योंकि मरजाना व्रत शब्दको उच्चारणमें नहींहै—तिससे यह व्यवस्था आकर सिद्ध हुई कि जिसने कामनासे चाहिकर हेलमेल कियाहो तिसके लिये बारह वर्षकी व्रतचर्या प्रायश्चित्त है जिसने बिना इच्छा के संसर्ग किया हो तिसकी बारह का आधा क्लैवर्ष व्रत करना चाहिये—इसी प्रकार दूसरे तीसरे आदि संसर्गियों को इच्छा सहितके मुआमिलेपर एकएक चौथाई कमहोती चलीजाय और अनिच्छा के हेलमेल मध्ये उससे आधा समझि लेना ॥ ० ॥ अथसंसर्गलक्षणं—संसर्ग अर्थात् हेल मेलका चर्चा जो अब तक किया गया वह संसर्ग भी कर्मोंके निबंध भेदसे अनेक तरह का होताहै जैसा एट्टहस्त्रुपतिने कहाहै कि—एकशय्या १४४सनं २ पंक्ति ३ भंडिं ४ यत्तद्यन्त्र ५ मिश्रणम् याजना ६ ध्यापने ७ योनिस्तथाचसहभोजनम् ८ नवधासक ९ प्रोक्तो नकर्तव्यो १० धर्मैः सह—देवलोपि—संलापस्पर्शनिद्रास सहयानासनाशनात् याजना ध्यापनाद्योनात्पापसंक्रमतेनृणां—अर्थात्—एकही स्वारपर दोनोका पौडना १ तथा एक आसनपर बैठना २ एकपातितमें भोजन करना आदि ३ एकही साथ वासनकपड़े आदि मिलाकर बरना ४ एक साथ मिलाकर अन्न पकाना ५ पाधाई पुरोहिताई के तौर से यजन आदि कर्म कराना ६ वेद विद्या पढ़ाना ७ योनि का संबंध विवाह

करना ठ सक्तथाली वा एक चौकेमें साथ भोजन करना ६ यही नौ भांति का सक्त
अर्थात् समस्त हेलमेल कहा गया है कि अधमो के साथ न करना चाहिये यह दृढ-
स्पतिकी सबसे बड़ी स्मृतिका नियमहै=देवलने भी कहा है कि=सलाप अर्थात् पर-
स्पर पासही भिड़िके प्रेम आदिकी बातचीत करनेसे और स्पर्श उसको छूने से और
उसकी आसकी वायु बाफ लगानेसे और एक साथ यात्रा करने एक सवारी पर बैठने
से और एक साथ आसन खाट आदिपर बैठने सोनेसे और एक साथ भोजन करने से
और यजन आदि कर्म कराने तथा वेद विद्या पढ़ानेसे और यौन संबध कन्यादेने या
लेनेसे इतनी बातोंसे मनुष्योपर पाप चढ़िजाताहै (इन वचनों में जैसा विवाह यौन
संबधका बोध दोनो ओर से दर्शाया गया कि उसको कन्या देना या उसी से आप
लेना तैसा सभी बातों का नियम समझि लेना कि विद्या पढ़ाना या उसीसे पढ़ना
सब्रयजन उसको कराना या उसके द्वारा आप करना इसीतरह और बातोंको समझना)
अब यह बात जाननी चाहिये कि इनमेंसे कौतसा हेलमेल कितने दिनमें पतितकर
देताहै तिसके लिये दृढहिष्णु आदिके वचन आगे देखो ॥ ० ॥ दृढहिष्णु=सर्वस्व
रेखापतितेनसहाचरभ्नेकयानभोजनासन शयनैर्यौनसौवमुख्यैस्तुसबधै सद्यसबपतति=
अर्थात्—एकसवारी• एकपांतिमें भोजन• एकही आसनपर• एकही शयन पलंगआदि
पर• पतितके साथ इन चारों प्रकारसे आचरणा करता हुआ पुरुष एकवर्ष में पतित
होताहै और यौनिके संबध से• सुवाके संबध से• मुखके संबध से• तत्काल पतित हो
जाताहै (यहाँ यौनि का संबध कन्या देना या लेना तथा सुवे का संबध होम यज्ञ
आदि उसको करवाना या उसके द्वारा आप करना तथा मुख्य संबध जो मुख से उ-
त्पन्न होय किन्तु वेद विद्याका पढ़ाना या उससे आप पढ़ना भी कहाता है) और
इसी श्लोकमें जो एक भोजन कहा सो केवल एक पांति में बैठि भोजन करने मात्र
को समझना किन्तु एकही चौके वा एक थालीमें साथ भोजन सत समझना क्योंकि
एक वर्ष में पतित होना कहा गया तिससे और साथ भोजन करने वाला तत्काल
पतित होजाता है तिससे भी• बल्कि उसी समय तत्काल पतन होजाने सध्ये देवल
का यह वचन प्रसारा है कि (याजनयौनिसंबध स्नाध्याय सहभोजनत्वा हत्यासद्य-
पतत्येवर्पाततेनसशयः) अर्थात्—याजन कर्म जो पहिले सुत्रके नाम से कहि चुके
और वही पढ़िला कहा यौनिका संबध और स्नाध्याय पढ़ना पढ़ाना और एकसाथ
भोजन करना पतितके साथ इनकामोका संबध जोड़ि के तुरन्तही पतित होजाता
किन्तु जातिसे गिरजाता है इसमें कुछ संदेह नहीं और यह भी नहीं कि ये चारो

कान इकट्ठेकरे सोई पतित होवै किन्तु इनमेंसे किसी एकही संबंधके जोड़तेसार जातिसे छुटिजाताहै—इस बातका प्रमाण भी सुमन्तुका यह वचन है कि (यः पतितैः सह औत्सुख्यौवानां संवधानानन्यतमसंबंधं कुर्यात् तस्याप्येतदेव प्रायश्चित्तमिति) जो कोई पतितोंके साथ • योनि • मुख • सुवे • के संबंधोंमें किसी एक संबंध को जोड़े तिसको भी यही प्रायश्चित्त है जो मुख्य पतितोंके लिये हम कह चुके—परन्तु पहिली चार बातें एक सवारीआदि जिनसे एकवर्ष भरतक हेलमेल होनेमें पतन होना कहाया सो सबकीसब चारोंसे संबंध जोड़नेसेही पतन होताहै जुदी एकसे नहीं • क्योंकि उनके लिये ऊपर दृष्टिपां, का वचन देखो तहां (एकयानभोजना नश्यनैः) यह इतरतर युक्त निर्देश किया गया था तिससे किसी एक दोके अनुसार संसर्ग अपने जाती धर्मसे नहीं गिर सकताहै • तथापि एकही दोके सेवनसे दोयका हेतुखड़ा होता है प्रमाण इसमें पराशर का वचन आगे देखो (आसनाच्छयनाद्यानात्सभायात्सह भोजनात् संकसंतिहिपापानितैलविंदुरिवांभसि) अर्थात् पराशर ने इस वचन में जुदे जुदे एकही एक से पापका हेतु जाहिर कियाहै कि आसन बैठने से या खात आदिपर साथ सोने से या सवारी पर साथ बैठने से या वातालाप से या समीप बैठि भोजन करने से पाप इसतरह चढ़ि आते हैं कि जैसे जल में तेल का बूंद फैल जाता है—इनको सिवाय (संलाप स्पर्श निःश्वास) इत्यादि देवल के वचन में कहेहुये येही तीनों हेलमेल अर्थात् पास भिड़िके विशेष वातालाप करना और देहसे देह भिड़ाना और मुहकी बाफ अपने ऊपर लगनेदेना यह तीनों बात बहुत छोटीहैं तिससे इनमें किसी एकही के होने मात्र से संसर्ग का जाति से छूटना आदि पतन कभी नहीं होता न इनका कोई जुबा नियम है क्योंकि ये तीनों बात अधिक हेल मेल से उन्हीं चारों के साथ में उत्पन्न होती हैं कि जिनसे एक वर्षभरके हेल मेल में पातित्य होनाकहि चुके यह समझ लेना • परन्तु पापरूपी दोय मात्र इनसे भी होता है कि जैसा पहिले देवल के वचन में पाप का चढ़िआना कहा गया था ॥ ० ॥ तात्पर्य निर्णयः—इस व्यवस्था से यह तात्पर्य ठहिरा कि जिनसे (संलाप • स्पर्श • निःश्वास) इन तीन के विना सवारी आदि चारों भाँति के संसर्ग एक वर्ष भर किये हों तिसको पूर्वाक्त बारह वर्षका प्रायश्चित्त पौंचवां भाग छोड़िके करना चाहिये • और जिनसे ये तीनों बात भी उनके साथ अधिक हेल मेल से करी हों तिसको एक वर्ष कीति जाने पर बारह वर्ष का पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये • इस रीतिसे योगीश्वर का यही मूल प्रतीक (सर्गिभस्तुसंक्तेष्टावैवत्सरसोपितस्मः) कि इनके साथ जो कोई एक वर्ष

आच्छी तरह वैसे सोभी उसको समान पातकी ठहिरै और उसीका प्रायश्चित्त करै—
 यहभी उन्हीं सवारी आदि चारिही बातो के हेनमेल पर ठीक रहा जिनमें एक वर्ग
 से पतित होना कहि चुके अर्थात् जिनसे तत्काल पतित होजाना कहा तिनको
 सध्ये योगीश्वर का मूल श्लोक नहीं है। इसी आशय पर मनुका यह वचन है कि
 (सर्वस्मरेणा पततिपतितेनसहाचरन् याजनाध्यापनायौनान्तयानासनाशनात्) अस्म-
 रार्थ इसका यही है कि एक वर्ग से गिरजाता है गिरे हुये के साथ आचरणा करते
 हुये याजन अध्यापन से यौन से नहीं सवारी आसन भोजन से—प्रत्यक्षती वयाकरणा
 काव्य दोनो मार्ग से यह अर्थ अनमेल है इसी से भाया से भी ठीक नहीं समझि
 परा कि यह क्या कहा और इसी लिये मितासराकार ने इस वचन को ऊपर बहुत
 कुछ अर्थवाद खड़ा किया है कि जिसका लिखना कुछ यहां पर आवश्यक,
 नहीं वरिक्त निरर्थ जानि के छोड़ि दिया गया तथापि केवल प्रयोजन की बात
 लेनी आवश्यक है तिसके लिये व्यवहित योजना का सबब मानि लेना कि (पतित
 के साथ सवारी, बैठका और बैठका के उपलक्षणा से खात आदि शब्दाः और एक
 पक्ति मे भोजन इन चारो के हेतु से आचरणा करते हुये एक सबब की अवधि से
 पतित होता है परन्तु होम यज्ञ और पढ़ना पढ़ाना और योनि के सवन्व विवाह से
 नहीं एक सबब में पतित होता है अर्थात् इनसे तुरन्तही पतित होता है जैसे ऊपरले
 अनेक वचनों से अर्थ सिद्ध होचुका तैसा इसमें भी वही तात्पर्य है कुछ और नहीं
 क्योंकि इसमें ढँका हुआ तात्पर्य है उन वचनों में खुला हुआ सिर्फ इतना भेद है
 अन्यथा धर्म शास्त्रमे एक वचन के लिये अनेक वचनों की स्पष्ट व्यवस्था नहीं
 उलटी चल सकती है ॥ ० ॥ सिद्धांतार्थ निरार्थ—जबकि यह व्यवस्था ठीक हुईकि
 विवाहभोजन आदि चारवातोसे तुरन्त पतित होजाताहै और सवारी में बैठनेआदि
 चार वातो से निरन्तर एक वर्ष भर अभ्यास करने में पतित होता है तौ फिर इसके
 लिये यह बात भी आवश्यक है कि एकवर्ष के पूरे ३६० तीनसौठाठि दिनकी गिनती
 करनी चाहिये इसका यह तात्पर्यहै कि जिसने कोरे सहीने ससर्ग करिके बीचमें कहीं
 चलेजाने आदि कारणां से छोड़िदिया फिर कभी आकर उनीका ससर्गकिया तिसका
 हिसाब जोड़ना चाहिये जोड़ने से भी ३६० तीनसौ साठि दिवन जिसके पूरे नहो तौ
 फिर पतित वाला पूरा प्रायश्चित्त भी उसको नहीं चाहिये किन्तु औरती रीति से
 प्रायश्चित्त कराना चाहिये कि जैसा गारो पराशर कोवचनों से पाया जाय=यथाह
 पराशर=सर्तुर्मास्यरन्धिप्र पतितादिप्रकामत पचाद्वदशद्विषादशद्विषादशद्विषादश

नासाहंभासमेकं वा मासवयमयापि वा अन्दाहमेकमद्वयाभावेदूध्वंतुतसमः (अथ प्रा-
यश्चित्तभेदाः) विराचं प्रथमे पक्षे द्वितीये कच्छमाचरेत् चरेत्सातपन् कच्छं तृतीये पक्षे एव तु
चतुर्थे दशरात्रे स्थात्पराकः पंचमेतत्तृतीये चांद्रायणां कुर्यात्सप्तमे स्त्वे न्दवद्वयम् अयमेतत्तथा
पक्षे यरा मासां कच्छमाचरेत् = अर्थात् ब्राह्मणा किसां पतित आदिके सायविना चाहे
यदि भूलमे संसर्गको आचरे यदि पांच वा दशदिन या बारहदिन या एकपाख वा एक
महीना वा तीनमहीने वा एककृमाही वा परा एकवर्ष तिसको उपरांत उसी पतितके समा-
न आप होजाता है (इनके जुदे प्रायश्चित्तको भेद हैं कि) जिसका प्रथम पाख वाराके भीतर
संसर्ग हो सो तीनदिन व्रतादि प्रायश्चित्त करे । जिसका संसर्ग दूसरे पाख वारामें जा
पहुंचा हो सो कच्छव्रत करे । जिसका तीसरे पाखमें पहुँच गया हो वह सातपन कच्छ
करे । चौथे पाखमें संसर्ग पहुँचा हो सो दशरात्र प्रायश्चित्त करे । पांचवें पाख में संसर्ग
पहुँचा हो तो पराक नामका प्रायश्चित्त करे छठे पाख तक पहुँचा हो तो एकमहीनाचां
द्रायणा करे । सातवें पाख तक संसर्ग हुआ हो तो दो महीना चांद्रायणा का आठवें
पक्ष तक संसर्ग भया हो तो छेमहीने भर कच्छ व्रत करे ॥ अत्रापि कामकृत संसर्ग प्रायश्चित्त
जिसने जानिबूझि कामनासे संसर्ग किया हो तिसको सुमंतुने प्रायश्चित्त विशेष कहें = य-
थाह संमंतुः = पंचाहेतु चरेत् कच्छं दशाहेतु कच्छं कच पराकस्थे द्वा मासे यान् मासे चांद्रा-
यणाचरेत् मासवये प्रकुर्वीत कच्छं चांद्रायणातिरस यरामासिके तु संसर्गे कच्छं स्वर्गद्वि
माचरेत् संसर्गत्वे द्विकी कुर्याद्विद्वं चांद्रायणांतरः = अर्थात् पांच दिनके संसर्गमें कच्छ
व्रत सावै और दशदिन के संसर्ग में तप्त कच्छ करे एक पाख भर संसर्ग किया हो तो
पराक व्रत करे एक महीना भर संसर्ग किया हो तो चांद्रायणा करे तीन महीना के
संसर्गवाला कच्छात्मक चांद्रायणा करे छे महीना के संसर्गमें एक कृमाही भर कच्छ
व्रत करे एक वर्ष के भीतर संसर्गवाला मनुष्य एक वर्ष तक चांद्रायणा करे (इसमें
जो पूरे एक सालके संसर्ग पर एकही सालका प्रायश्चित्त कहा गया तिसको कृमाही
से ऊपर और बारह मासके भीतर वाले संसर्गों पर समझना क्योंकि पूरे वर्षके पूरे वा
पूरेसे अधिक संसर्ग मध्ये मन्वादि क ऋथीयरोने बारहवर्ष कोहैं जिसका वरान्त प-
हिले हो चुका सो निरर्थक न रहै ॥ अत्रापि नियमांतर व्यवस्थासाधनं - इव
व्यवस्थामें यह बात सिद्ध हो चुकी है कि एक पाखमें पतितके साय निलके भोजन
करने या पतितकी लड़की वा लड़केसे विवाह संबंध करने या होन यज्ञ आदि पा-
वारिके कर्म करने कराने या पतितसे विद्याका संबंध पढ़ने पढ़ानेसे तुल्य पतित हो-
जाता है तयापि इन्हीं चारों संसर्गोंके नष्टे एक दृढ स्थिति के वचन में कृमाही भर

संसर्ग करनेसे पातित्य लगाना कहा है—यथाह वृहस्पतिः—यसामसिकेतुसंसर्गोयाजना
ध्यापनादिना संकृत्वासनशय्याभिःप्रायश्चित्तार्द्धमाचरेत्=अर्थात्—छे महीनेको याजन
अध्यापन आदि चारों में किसी एक संसर्ग के होने में तथा एकही बैठका सोउना
आदि से भी आधा प्रायश्चित्त करै अर्थात् जो पतितको बारहवर्षों तौ संसर्गों को
छे वर्ष चाहिये—सो इस नियम को ऐसी दशा पर जोड़ना चाहिये कि जहां संसर्ग
करनेकी इच्छा तो नहीं थी परन्तु अत्यन्त आपत्ति आनि, परनेमें घरही, की पातकी
साथ भोजनका संसर्ग करना परा या केवल पंच महायज्ञ आदि में, यजन का संसर्ग
या पतित अपना बेटा भतीजा आदि अंगही गिना जाता हो तिसका पढ़ाना या
धोनिक्ता संबंध निज पतित की बेटी बहिन आदि के सिवाय उसके कुल में किसी
गौर कन्या वा गौर लड़के से किया गयाहो तहां तत्काल के सिवाय छः महीनातक
संसर्ग बना रहने से पातित्य और उसके लिये आधाही छः वर्ष का प्रायश्चित्त क-
राना ठीक होगा और शेष बातें एक सचारी आदि चारों कि जिनका पहिले एक
वर्षभर पूरे से अधिक संसर्ग रहने मध्ये बारहवर्ष का प्रायश्चित्त कहा गया उन्हीं
को इस वचन में आधा कहा सो यह स्वतः ठीक ठीक है कि छः महीना के संसर्ग
से आधा रहिगया—यहां तक महापातकियों के संसर्गों को प्रायश्चित्त वर्गान हो
चुके ॥ अथातिपातक्यादीनां संसर्गप्रायश्चित्तविचारः—इसी पूर्वोक्तडोलमार्ग
का सहारा लेकर उनसे नीचे अति पातकी आदिका संसर्ग देखना चाहिये कि जहां
कहीं बेटी या बहिन या पुत्रकी बहू गमन करने वाले अति पातकी का संसर्ग जि-
सने कियाहो तहां चाहिके संसर्ग करनेवालेको नौवर्ष का प्रायश्चित्त और बिना
चाहे संसर्ग करने वाले, को उससे आधा साठे चार वर्ष का करना चाहिये=एवं=
जहां मित्र या चचा की दारा आदि पूर्वोक्त स्त्रियों जिनसे पातकमात्र होता, कहा
गयाथा तिनकी गमन करने वाले पातकी पुरुष का संसर्ग जिसने किया हो तहां
कामना से संसर्ग करैया को छः वर्ष और बिना कामना के संसर्ग वाले को तीनवर्ष
का प्रायश्चित्त करना चाहिये=इसी प्रकार=जहां उपपातकी आदि छोटे पापियों
का संसर्ग जिसने किया हो तहां कामना से संसर्ग करने वाले को उन्हीं का प्राय-
श्चित्त तीन महीना और कामना बिना संसर्ग वाले को उससे आधा डेढ़ महीना व्रत
करना चाहिये ॥ स्त्रीणामपिसंसर्गप्रायश्चित्तं—पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंकी भी महा-
पातकी आदि के संसर्ग से पातित्य बराबर होता है=यदाह औरैकः=पुरुषस्ययानि
पतननिमित्तानिस्त्रीणामपिपतान्येव ब्राह्मणोहीनवर्णसेवायामविकंपततीति=अर्थात्-

त-जाति से गिरजाने के जो जो निमित्त पुरुष को होते हैं वही सब स्त्रियों को भी होते हैं और ब्राह्मणी होकर जो हीनवर्णों की सेवा करें सो पुरुषसे भी अधिक पतित होती है यह शौनक ने कहा—इस हेतुसे उनको भी महापातकी आदि पापियों में जिस किसी प्रकार के पापी साथ डेल मेल होजाय उसी पापी के ज्ञेये जो कुछ प्रायश्चित्त दीक होय तिससे आधा करवाना चाहिये क्योंकि स्त्रियों को पुरुषों से आधाकरना कहि चुके हैं—इसी प्रकार बालक बूढ़े रोगियों को भी समझौ कि जिसने कामना से चाहिके संसर्ग किया हो तिसको मुख्य पापीसे आधा और बिना कामना के संसर्ग वाले को चौथाई करना चाहिये—तथा जो बालक बिना जनेऊ का हो तिसको कामना के संसर्ग में चौथाई और बिना कामना के संसर्ग में आठवां भाग प्रायश्चित्त चाहिये यह व्यवस्था का मार्ग है ॥ २६१ ॥ यह पूर्वार्ध की अविको-क्ति पूरी हुई अब दूसरा अर्ध आगले परिच्छेदमें शामिल होगा कि जिसमें पतितकी कन्या विवाहि लेनेकी आज्ञा भी बिरली दशा मध्ये दीजायगी ॥ २६२ ॥

अथ पतितसंसर्ग प्रतिषेधात्प्रतिषिद्धस्य यौनसंबंधस्य प्रतिप्रसव निदर्शकोऽयं परिच्छेदः अष्टाविंशः ३८



इस परिच्छेद में पहिले निषेध का कुछ थोड़ासा प्रतिप्रसव दिया जायगा अर्थात् ऊपर के परिच्छेद में पतित की कन्या से विवाह करना भी निषेध किया गया था तिसको साथ विवाह बिरली दशामें करलेना योग्य होता है उस बिरली दशा का स्वरूप कहा जायगा ॥ प्रतिप्रसव इसी का नाम है कि जो बात पहिले मने कष्टकी हो उसमें थोड़ीसी करने की भी आज्ञा दीजाय ॥

(यौननिषेधे प्रतिप्रसवः)

कन्यासमुद्वहेदं पातोपवासात्सर्किचनम् २६१

अर्थ—इनकी कन्या को सोपवासा को अकिंचना को भलेही विवाहि लेवे—अर्थात्—इन्हीं पूर्वोक्त पतितों की कन्या जो पतित होनेकी दशा में उत्पन्न हुई हो तिसको यदि इच्छा किसीकी हो तो वेखटके विवाहि लेवे कुछ बोझ नहीं है परतु इस रीति से विवाहनी चाहिये कि निराहार उपवास करो हुई और अकिंचना कि

जिसको साथ कपड़े गड़िना आदि उसके वाप का कुछ न लिया जाय (और निराहार उपवास का यह तात्पर्य है कि जितना पतित वाप आदिसे संसर्ग रहा हो उसके अनुसार पंचगव्य आदि से संक्षेप यथाशक्ति प्रायश्चित्त करवाइके विवाहनी चाहिये) और विवाह लेवें इस कथन का यह तात्पर्य है कि पतितके हाथ से कन्या दान आदि करवाइके न लेवें क्योंकि उसको जाती धर्मोंका अधिकार नहीं है तिससे आपही जिस कन्या ने पतितका संसर्ग छोड़ि के विवाहकी इच्छा करी हो तिसको पतित के घर से उपराल किसी देवस्थान आदि में शास्त्रोक्त मर्यादा से विवाह लेवें तो इस रीति से उस विरोध की शंका भी नहीं खड़ी होसकी है कि पहिले परिच्छेद में पतितों की कन्यासे यौन संबंध का निषेध कियागया था फिर क्योंकि उसी कन्या से विवाह करना कहा गया ॥ २६१ ॥

२६१ अधिकोक्तिः—जो व्यवस्था ऊपर कही गई तिसको कुछ हारीतने विशेष व्यौरा से स्पष्ट करके दर्शाया है—यथा=पतितस्यकुमारीस्त्ववस्थानहोरात्रमुपो-यित्वा प्रातःशुक्तेनाह्नेनवाससाच्छादितां नाहमेत्यानममते इति त्रिचूचैरभिवधानां तीर्थे स्वगृहे वोढहेतु=अर्थात्—पतित की कुमारी कन्या को बिना वस्त्रों के एक दिन राति उपास करी हुई की प्रातःकाल होतेसारे नवीन शुक्त वस्त्रकी धोवती पहिनाइ ओढाइके उसकन्याकेमुखसेतीन बार ऊँचे शब्दसे रेसाकइवाइके कि (आजसे न मैं इन सबकी न ये सब घरवाले मेरे रहे) तिस पीछे कन्या लेजाइके किसी देवालय आदि तीर्थ में या अपने घरपर यथा विधान से विवाह करे ॥ ० ॥ मूल श्लोक में (एयां कन्यासमुद्धहेत्) यह कहा गया कि इनकी कन्या को चाहें विवाह लेवें तिसका यह तात्पर्य उहिरा कि सिर्फ कन्या चाहें इन्हीं रीतों से विवाह लेवें पण्तु पतित के लड़कोंकी अपनी कन्या न देवें कि जो जो लड़के अपने पतितपिता आता आदि में संसर्गी बनेरहे हों या पतित होनेकी दशा में उनके पतित वीर्य से उत्पन्न हुयेहों—इसीलिये वसियने कहा है कि (पतितेनोत्पन्नः पतितो भवति अन्यवस्त्रियाः साहिरा गामिनीमातृस्त्वियमुपेयात्) पतितसे उत्पन्न होय सोभी पतित होताहै पण्तु कन्या के सिवाय पुत्री की समझना क्योंकि वह स्त्रीकी जातिहै पराये घर जाने योग्यहै माता का संग्रांश उस में अधिक होने से माता का धन पावेगी घोडासा प्रतिप्रसव इसी हेतुसे यहउहिरा किलड़का लड़की दोनोंसे यौन संबंधका निषेध पहिले किया था उसमें केवल पुत्रीसे यौन संबंध की आज्ञा यहाँ दीगई ॥ ० ॥ मूल के अर्थोंमेंयह कहा गया कि पतित होने की दशा में जो पतित के वीर्य से उत्पन्न कन्याहो ति-

सको इन रीतों से विवाह लेवे—इस कथन का प्रत्यक्ष यही तात्पर्य है कि प्रायश्चित्त का स्वीकार और उद्योग जिसने नहीं किया और पत्नीने भी संसर्ग उसका नहीं छोड़ा ऐसीदशामें जो गर्भ रहिकर कन्या हुईही फिर गर्भ रहे पीछे चाहेंपतित पुरुष प्रायश्चित्त करने चला गयाहो तौभी वह कन्या पतित वीर्यसे होचुको तिस को उक्त रीतों से विवाह लेने में कुछ दोष नहीं है—परन्तु इसी गर्भ से जो पुत्र पैदा हुआहो तिसको कोई अपनी कन्या देकर यौन संबंध से संसर्ग न करे यह नियेध पूरंपूर है—औरभी—उसी कथन का यह तात्पर्यहै कि जिस किसीने प्रायश्चित्त का प्रारंभ ही करदियाहो परन्तु जबतक पूरा न हो तबतक उसको शुद्धि नहींप्राप्तहोती है और वह प्रायश्चित्त अपने ग्राम नगर के समीपही किसी जंगल या गोत्रज देव-स्थल आदि में आरम्भ किया गयाहो ऐसी दशा में यद्यपि ब्रह्मचर्य से जितेंद्रीहोके रहने का आदेशहै और पत्नीको भी पतित पतिसे संसर्ग करनेका निषेधहै तथापि जो दोमें से कोई एक या दोनों दंपती कामातुर होके धर्म मर्यादाका अतिक्रम करें अर्थात् अतिक्रम होने से दर्शन के वहाने मिलिके संगम करें और इसी दशामें जो पतित वीर्य से गर्भ रहिजाय तहां पत्नीभी संसर्ग दोषसे पतित हुई रहिरैगी और इसी गर्भ से यदि पुत्र पैदा होजाय सोभी पतित होगा तिस पतितको कोई अपनीकन्या न देवे यह पहिले परिच्छेद के अनुसार यौन संबंध से संसर्ग का निषेध दहिरा—परन्तु जो इसी गर्भसे कन्या पैदा हुईही तिसको उक्त रीतों से विवाह लेने में कुछ दोष नहीं है यह इसी परिच्छेद के अनुसार प्रतिप्रसव दहिरा—औरभी—उसी कथन का यह तात्पर्य है कि जिस किसीने निषट प्रायश्चित्त करनाही स्वीकार न कियाहो अर्थात् जाति विरादरी से छुटा रहिना स्वीकार करलिया और उसको पत्नी आदि परिवारनेभी उसको नहीं छोड़ा इसी हेतुसे उसका धरज्जुदुंव सर्गों पतित रहिरै और इसी हेतु से उसके लड़का लड़की विवाह से रुके रहिके बहुत बड़ेहुये होंगे (चाहें पतित होनेकी दशा में उत्पन्नहुये यद्य पहिले अच्छी दशामें होचुक्तये कुछ इसका नियम नहीं क्योंकि जो पहिले पैदा होचुके हों वेभी संसर्गी बने रहिने से उसके समान पतित रहिरै) तहां उसके लड़कों को कोई अपनी कन्या न देवे—यह पहिले परिच्छेद से यौन संबंधका संसर्ग नियेध होचुकाहै सो ठीक रहा और लड़कियां जो स्यानी होचुकीं तिनको इसी परिच्छेद वाली प्रतिप्रसवकी मर्यादा से लिखी हुई रीतों के अनुसार जो चाहें सो विवाहिले इसमें दोष नहीं है (स्त्रीत्वंदुष्कृतादयि) यह वचन केवल इसी दशाके निमित्त पर आकूट है सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ इसमें दोष

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

३६७

नहीं बल्कि एक प्रकार का अत्यंत सूक्ष्म और प्रबल पुराय प्राप्त होता है क्योंकि दोषाभाव तो इसी परिच्छेद के वचनोंसे संसिद्ध है और पुराय इस ध्वन्यर्थ से उत्पन्न होता है कि जैसे धर्मात्मा लोग विरानी कन्या सयानी न होने पावें शीघ्र उद्धारकर देने के लिये आप द्रव्य देते और दूसरोंसे दिवाते हैं इसको वरावर कोई और पुराय नहीं है जो अपनी या विरानी कन्या उचित समयपर सत्पाव को देदीजाय—तिससे इस पुरुष को वही पुराय होगा जो बहुत्ववद्मे प्रतिबंधसे रुकोहुई कन्या का उद्धार करे या और से करावे—परन्तु इसके साथ यहभी एक प्रतिज्ञा है जो ऊपरले वचनों में दृष्टहारीतने दर्शाई कि (आज्ञसे न मैं इन सबकी न ये सब घरवाले मेरे रहे) यह तीन बार कन्या के मुखसे पंचों के सन्मुख उच्चारण कराइ लेवें अर्थात् कन्या भी अपने हृदयसे ऐसा विवाह चाहती हो और उसके घरवालेभी यही चाहतेहों किसी तरह का दावा भगद्वा श्रेय न रहि जाय और घरवाले कभी कन्याको देखने मिलने आदि के अधिकारी न रहें क्योंकि पतितासे संसर्ग अपेक्षित नहीं है केवल कन्या का उद्धार करना एक धर्म है यदि कन्या इन्हीं नियमों पर आखंड होकर पक्की हो और धर्म तथा अविर्म दोनों को समुभक्तोही सो सब नियम ये सयानी और होशदार कन्या से संबन्ध रखते हैं अवृत्त वचों से नहीं यह सिद्धांत है ॥ २६१ ॥

इतिसंसर्ग प्रायश्चित्त प्रकरण

इस प्रकरण में सैतीस और आत्तीस दो परिच्छेद हैं जो ऊपर हो चुके ॥ अब यह बात सोचनी चाहिये कि यहाँ पर उन दोही परिच्छेद में नियिद्ध संसर्ग का चर्चा या उकी चर्चा के प्रसंग से अगिले परिच्छेद में भी उस भांति को प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो नियिद्ध संसर्ग (स्वोद्वेसयोग) से उत्पन्नहुये प्रतिलोम जाती अति नीच समुग्रों का वध करने वाले पर आखंड हों ॥

अथ प्रतिलोमानां वध प्रायश्चित्तस्वरूपस्य च पुनः स्त्री
शूद्रादिनिमित्तीनां प्रायश्चित्तकरणेऽधिकारस्य च
प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः जनचत्वारिंशः ३६



इस परिच्छेदमें दो नियम विशेष कहे जायेंगे कि प्रथम जो प्रतिलोम जाती पु-
रुषोंका वध करनेवाले वैवर्णिकहों तिनके प्रायश्चित्त विशेष कहे जायेंगे—
फिर—स्त्री और शूद्र और प्रतिलोम जन्मा सूत मागध आदि जातों जो वेद
आदि संश्योंके अधिकारी नहीं हैं या अधिकार होते भी जो संव्रजानसे वि-
हीनहों तिनको प्रायश्चित्त करनेका अधिकार विशेष रीतिसे दर्शाया
जायगा कि संश्योंके विना भी करसक्ते हैं इत्यादि ॥

(अवकृष्टवधप्रायश्चित्त)

चांद्रायणचरेस्तर्वाणवकृष्टान्निहन्त्यतु १ २६२ पूर्वार्द्धश्लोकः ॥

अर्थः—सभी अवकृष्टोंको मारिके चांद्रायण करें=अर्थात्—प्रतिलोम जन्म होने
से रक्षाधिकार दूर निकासे हुये सूत मागध आदि जनों में से किसी सकही पुरुष को
प्राणों सहित वध करिके एक सहोनेका चांद्रायण व्रतकरें तब शुद्ध होय ॥ २६२ ॥

२६२ अधिकोक्तिः—जैसा इस पूर्वार्ध मूलश्लोकमें योगीश्वरने नियम कहा तैसा
शंखने भी कहा है—यथा=सर्वथासंभवकृतानां वधे प्रत्येकं चांद्रायणं=अर्थात्—सभी अव-
कृष्टोंके वधमें प्रत्येक जुदे जुदेके मारने मध्ये एक चांद्रायण करें ॥ और जो अगिरा
का यह वचन है कि (सर्वान्यजानांगमनेभोजनेचप्रमापसो पराकरो विभुद्धिः स्यादित्यां
गिरसभायितम्) सबही अंत्यजों के साथ मिलिके कहीं जाने आने या उनके पाव
बैठिके भोजन करने या उनके प्राण वध करने में पराक व्रत करने से विभुद्धि होय
यह अगिराने कहा सो इस वचनमें ऊपरले चांद्रायण को मिलाइके यह व्यवस्था
समुभिलेनी कि जहाँ इच्छा सहित जानि वृत्ति के वध किया हो तहाँ सूत आदि
सबके वधमें प्रत्येक चांद्रायण चाहिये और इच्छा विना वध होनेमध्ये केवल सूत
जातिके मारनेमें पराक व्रत करना चाहिये जो बारह दिनमें पूरा होता है यही पराक

व्रत पौना करिके नौरोजका वैदेहकी सारने में करना चाहिये और यही पराक व्रत आधा सिर्फ छेदिनका चंडालके सारने में करना चाहिये, एवं मागधके वध करनेमें भी यही पराक चौथाई कम करिके नौरोज करना चाहिये और क्षताके वध करने में आधा सिर्फ छः दिन करना चाहिये और आयोगवधके वध करने में भी दोही पाद अर्थात् छेदिन व्रत करना चाहिये—इन्हीं भेदोंके अनुकूल इसी मार्गसे चांद्रायण में भी भेद कल्पना करनी चाहिये कि जिसको कामनासे वधकरने मध्ये करना कहा ॥ और एक ब्रह्मगर्भका यह वचन है कि (प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणांमासावधिष्मृतः अन्तरप्रभावानांचसूतादीनांचतुर्द्वियत्) अर्थात्—प्रतिलोम जातियों की स्त्रियां वध करनेवाले को एक महीने का व्रत कहा और उन्हीं सूतादि प्रतिलोम जातियों के पुरुष वध करने में चार दो के महीने व्रत समझना—सो यह इतना बड़ा प्रायश्चित्त आर्तुति के निमित्त पर आवश्यक है कि जिसने तर ऊपर लगातार दो तीन पुरुष मारे हों तिसके लिये और इसमें जो चार दो के साथ कहे तिनको जातियों की बड़ाई छोटाई के क्रमसे नहीं कहे किन्तु उनकी बड़ाई छोटाई की योग्यता पर संयुक्त करिके आगे के पीछे व्यवहित मार्गसे समझिलेने अर्थात् सूतजाति के पुरुष वध करने में छे महीने और वैदेह जातिके वध करने में चारि महीने चंडाल जातिके वध करनेमें दोमहीने प्रायश्चित्त करें—तथा मागध जातिके पुरुष वधकरने में चारि महीने और क्षताजातिके पुरुष वधकरनेमें दोमहीने और आयोगवध जातिके पुरुष वध करने में भी दोमहीने प्रायश्चित्त करें तब शुद्ध होय—इस व्यवस्था में यद्यपि किसी प्रायश्चित्त का नाम नहीं कहा सिर्फ महीनोंकी तादाद कही तथापि चांद्रायण व्रत समझना जो एक महीनेमें एक पूरा होताहै दोमें दो इत्यादि ॥ २६२ ॥

अब आगेउत्तरार्ध मूलश्लोकसे यह बात सिद्ध होगी कि स्त्री और शूद्र आदि जो जो मंत्र आदि विद्याके अधिकारी नहीं सोभी अपने योग्य प्रायश्चित्तों को संशों के बिनाही कर सकेंगे ॥

(शूद्रादिकर्तव्यमंत्रप्रायश्चित्तं)

शूद्रोऽधिकारहीनोपिकालेनानेनशुद्धयति २६२

अर्थः—शूद्र अधिकारसे हीनहै तोभी उक्तअवधिके काल सेही शुद्ध होगा—अर्थात्—अवतक यह संदेह खड़ा रहाथा कि प्रायश्चित्तों के नैमित्तिक व्रत जो बहुधा कहे गये या आगे कहेजायेंगे सो प्रायश जप पाठ आदि प्रकारों से करने कहे गये—तहां

जो पुरुष विद्या पढे नहीं या स्त्री और शूद्र आदि अनेक जातें जो निपट मंत्र विद्या के अधिकारी नहीं तिनको उन प्रायश्चित्तों का करना संभव नहीं होगा क्योंकि (जिन कर्मों में धी का दर्शन अर्थात् धीमें अपने मुँह की छाया देखना आदिकोई नियम विशेष लगाहो उन कर्मों में अवे पुत्त्यों का अधिकार नहीं सिद्ध होता है) इस न्यायसे विद्या विहीन आदि उन प्रायश्चित्तों को अधिकारी ही न होंगे—यह स्पष्ट निदान को अब कहितेहै कि यद्यपि शूद्र आदि बहुतेरे मनुष्य जप, मंत्र आदि करने के अधिकारी नहीं तोभी इसी काल से संशुद्ध होते हैं जो बारह वर्ष आदि के काल नियम कहे गये (यद्यपि मूल में शूद्रही मात्र कहा तोभी यह शूद्र कहिना वै-
यर्णाक स्त्रियों तथा प्रतिलोम जाती पुत्त्यों का भी उपलक्षणा है ॥ २६२ ॥

२६२ अधिकांशः—अथपि शूद्र आदिको गायत्री आदिके जप करने अर्थात्
 हे जो प्रायश्चित्तों में होते हैं तो भी इनको नमस्कार रूपी जो मंत्र है वही जप करना
 चाहिये इसीलिये स्मृत्यन्तर वचन से यह कहा है कि (उच्छिद्यं चास्यभोजनं मनुजा
 तोऽस्य नमस्कारो मंत्रः) शूद्रकोलिये तीन वर्गोंकी जूटनि भोजनकहा और नमस्कार
 एक मंत्र है—अथवा यह न माना जाय तो भी वचन की प्रबलता से जप आदिके
 विनाही व्रत करे यह तात्पर्य है कि जैसा यह अंगिराका वचन है—यथा=तस्माच्छू
 द्रं समासाद्य सदा धर्मपर्ये स्थितम् प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपही मन्त्रवर्जितम्=अर्थात्—शू
 द्र को किसी जपमें अविकार नहीं है तिससे जो मन्त्र धर्मके मार्गपर चलनेवाला शूद्रही
 तिसको किसी प्रायश्चित्तके अवसर पर आखुट करिके जप होम से रहितही प्राय
 श्चित्त देना चाहिये=उन्हीं अंगिराने इसकेलिये दूसरा भी प्रकार दर्शाया है—यथा=
 शूद्रः कालेन शुद्धोत्तमो ब्राह्मणो हितेत् नैर्वाप्युपवासैर्विद्वज्शुश्रूयया तथा=अर्थात्—
 प्रायश्चित्तकी अवधि भर कहे कालसेही शूद्र शुद्ध होता है जो गुरु ब्राह्मणोंके हित
 में लगा रहे अथवा नियत काल भर अनेक दाना देने करने में यद्वा उपवासों में और
 तीनों वर्गोंकी जिलाभ सेवा शुश्रूषा करनेसे भी शुद्ध हो जाये है—और जो मनु का यह
 वचन है कि (न चारयोपदिशेद्भिक्षं न चार्यव्रतमादिशेत्) अर्थात् शूद्रको न धर्मका उ
 पदेश देना न कोष्टे व्रत आदेश करना—इसपर मितावगकार कहते हैं कि यह उ
 पवन्न शूद्रके विषय पर आखुट वचन है कुछ यहाँ इस वचनसे तात्पर्य नहीं लेना है—
 इसी प्रकार=एक स्मृत्यन्तर यह वचन है कि (कच्छ्राययेतानि नार्याणि सदा वर्णाव
 पेयाणु कच्छ्रं ज्वेते यशुः स्य नाविकारो विधीयते) इतने कच्छ्रव्रत जो कहे गए सो सदा
 तीनों वर्गोंको करने चाहिये किन्तु इतने कच्छ्रोंमें शूद्रका अविचार नहीं कहा—सा

सिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

४०१

यह निषेध काम्यकृच्छ्रोंके अभिप्रायसे किया गया है कि शूद्र इनको कासना से न साथै किन्तु प्रायश्चित्त मध्ये शूद्रकी करनेका निषेध न समझना इसीलिये सदाशब्द का प्रयोगहै कि वैवर्णाक लोग जब चाहें तब सदाही कासनाते हैं शूद्र सदा नहीं=इन सभी वचनोंसे यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि तीन वर्णोंकी तरह स्त्री और शूद्र और प्रतिलोम जातोंकी भी प्रायश्चित्तके व्रत करने चाहिये=और जो गौतमका यह वचन है कि (प्रतिलोमा धर्महीना) सोभी यह प्रायश्चित्त का संबंधी नहीं किन्तु इसके उपरालू यज्ञोपवीत आदि विशेष धर्मों की अपेक्षा मध्ये कहा समझना ॥ २६२ ॥

द्वितीयशुद्धाद्यवकथजातिपर्यंतप्रायश्चित्तप्रकरणं ॥

यह प्रकरणा केवल उनतालिसके एकही परिच्छेदसे पूराहुआ दूसरा इसमें नहीं है ॥

द्वितीयशेष महापातकादि प्रायश्चित्त प्रकरणानां बृहत्प्रकरणा ॥

समस्त महापातकोंके अगिले पिछले कई प्रकरणों के परिच्छेद मिलानेसे यहां तक उन्नीस परिच्छेद होतेहैं क्योंकि बीसवें परिच्छेद तक ब्रह्मविद्याकी समाप्तिहुये पीछे इक्कीसवें परिच्छेदसे लेकर तीसवें तक दश परिच्छेदों में अनेक भेद होनेपरभी केवल ब्रह्महत्याके नाम से प्रकरणा पूरा किया था—तिस पीछे इकतीसवां परिच्छेद लेकर यहां उनतालीसवें तक नौ परिच्छेदोंमें छोटे छोटे कई प्रकरणा भेद किये उन सबहीकी मिलाकर यहाँ (अशेष महापातकोंके) नामसे एइव प्रकरणा मानागया कि जिसमें कुल १६ उन्नीस परिच्छेद हैं ॥

॥ जैसे २४२ दोसो बयालिसकी अविकीर्ण में पापोंके अनेक भेद तेरह चौदह तक दर्शाकर उनमेंसे मुख्य पांच भेद माने गयेथे कि महापातक १ अतिपातक २ पातक ३ उपपातक ४ अनुपातक ५—इनमें से महापातकों के प्रायश्चित्त ऊपर के प्रकरणमें वर्णन कियेगये उनके साथ अतिपातक और पातकोंकी भी प्रायश्चित्त प्रदर्शित होतेरहे (और कुछ शेष रहाहोगा सो आगे कहें दर्शावेंगे) परन्तु महापातकों का निःशेष वर्णन होवुका ॥ अब अगिले परिच्छेद से उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

अथोपपातकविषये गोहत्यायाः प्रायश्चित्तैकदेश प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चत्वारिंशः ४०



इस परिच्छेद में उस प्रकार की गोहत्या के प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे कि जो गाय अति उत्तम स्वामी की नही और वह गाय आपभी सामान्य जाति माव सेही गऊ कहातीहो विशेष गुरावाली गऊ न ही तिसका वध बिनाचाहे दैवयोगसे यदि किसी से होजाय—कोकि विशेष गुरा वाली गऊ जो उत्तम स्वामी की हो तिसका वध होने मध्ये बडेप्रायश्चित्त है सो अगिले परिच्छेदों में हारीत आदि के वचनोसे दर्शाये जायेंगे (गाय की जाति माव में वृथभकाभी उपलक्षणा वर्तमानहै) इस गो-वधके अनेक भेदहैं तिससे इसके प्रायश्चित्त भी चार परिच्छेदों में जाकर पूरेहोंगे= २३४ मूल श्लोक से लेकर २४३ श्लोक तक पचास के लगभग उपपातक वर्णित हुयेये उनमें गोहत्या यह सबसे पहिला एक उपपातक है ॥

येही ५० नहीं किन्तु औरभी बहुत हैं ॥

(गोधनस्यप्रायश्चित्तं)

पंचगव्यं पिवेद्गोघ्नो मासमासीत संयतः । गोपेशयोगोऽनुगामी गोप्रदानेन शुद्धयति २६३
कृच्छ्रं चैवाति कृच्छ्रं च वरेद्वापि समाहितः । दद्यात्त्रिंशत्त्रयोप्यष्टपभेकावशास्तुगाः २६४

अर्थः—गोघ्न पुरुष महीना भर संयत होके गोघ्न में सोवै गौओं के पीछे फिर पंच गव्य पीवै फिर एक गऊदान करिके शुद्ध होताहै=अथवा पंचगव्यके पीने बिनाही इन्हीं सब नियमों से महीना भर कृच्छ्र व्रत करै यद्वा उन्हीं नियमों से महीना भर अति कृच्छ्र करै यद्वा उन्हीं नियमों से महीना भर संयत रहेपीछे तीन दिन उपवास करिके दसगौओंके साथ ग्यारहवों आडूवृथभदान करै तब शुद्ध होय ये सब चारि प्रायश्चित्तकहे तिनको ब्राह्मणा आदि वर्णोंके भेदसे व्यवस्था करिके कहेंगे सो सब अधिकोक्ति में देखना ॥ २६३ ॥ २६४ ॥

२६३ अधिकोक्तिः—इन चारों प्रायश्चित्तोंमें कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र भी कहाये तिनकालक्षणा समझलेना चाहिये जिससे इनकी व्यवस्था जोवर्णानहोगी सोभीसमझी जाय—तहाँ कृच्छ्र नाम है प्राजापत्य और सांतपन आदि अनेक व्रतों का जो कष्ट की

जिसने इच्छा बिना किसी धोखे आदि कारणसे गऊ मारी हो—यह दूसरे प्रायश्चित्त का स्वरूप जो मूलश्लोकमें कहाया तिसका निर्णय किया गया २ ॥ इन्हीं प्रकारोंसे महीनाभर अतिक्रच्छ व्रतकरै यह तीसरा है ३ ॥ इन्हीं प्रकारोंसे महीना भर गोसेवा किये पीछेग्यारह गऊ दृग्भ देनेकाहे वह चौथा है ४ ॥ इनमें किसप्रायश्चित्तको कौन करै यह दृग्भस्या आगे देखो ॥०॥ जो विशेष गुणावाली गऊ न हो किन्तु सामान्य जातिमावसेही गऊ कहातीहो और सामान्य ब्राह्मणाकीहो जो केवल जातिहीसे ब्राह्मणाकहाताहो तिसको बिनाइच्छाके बचकरनेवाला पुरुष चौथेप्रायश्चित्तकोकरै जिसमें महीना भर गोसेवा किये पीछे तीन दिन उपवास करिके दशगऊ एक आंड दृग्भ देना कहागया (उत्तम स्वामीकी गऊ तथा उत्तम गुणा वाली गऊ मारने मध्ये बड़े प्रायश्चित्तहो नो हारोत आदिके वचनों से अगिले परिच्छेदमें आवेंगे तिससेयहां सामान्य जाति गऊ और सामान्य जाति ब्राह्मणा उसका स्वामी कहा गया यह विशेषता समझि लेनी चाहिये) ४ उसी प्रकारकी गऊ जो सभी स्वामीकी हो तिसको इच्छा बिना मारनेवाला पहिले प्रायश्चित्तको करै जिसमें पंचगव्य पीना कहाया तिसपर मिताक्षराकारने यह दृग्भस्या भी आरोपित करीहै कि महीनाभर पंचगव्य का आहार बहुतही थोड़ा करना होताहै तिससे वह भी महीना भर उपवास के तुल्य ठहरता है तिस हेतु से उसमें भी कृच्छार्द्ध छपी छः दिनके आवे प्राजापत्य पांच माने जासक्तोहें अर्थात् (छपंजैतीस) छे छे दिनके उपवासोंका एक एक लघु प्राजापत्य करपना करनेसे पांच कृच्छ्रोंका अभ्यास ठहरता है तिसमें एक एक कृच्छ्रके साथ एक एक गौदानकी पाँच गऊ होतीहैं तथा एक उस गऊकी समझना जो महीनाके पीछे देनी कही थी तिससे कुल छे गऊ होतीहैं जो सभीकी गऊ मारने मध्ये दान करनी ठाँहीरीं तीभी उनसे कम संख्या ठाँहीरी जो ब्राह्मणा की गऊ मारने मध्ये एक बेल दश गऊ देनी कहीं अर्थात् ऐसा हिसाब लगानेसे भी यह प्रायश्चित्त उससे छोटा ठहरा तिसपर यह तर्कनाहै कि ब्राह्मणाकी गऊ मारने मध्ये इतना बड़ापन क्योंरक्खागया इस्का यह उत्तर है कि (देवब्राह्मणाराज्ञातुर्विज्ञेयद्रव्यमुत्तम इतिनारदेनततद्रव्य स्योतसत्त्वाभिधानात्) देवता और ब्राह्मणा और राजा इनका द्रव्य उत्तम होताहै यह नारदने कहा और (गोयुब्राह्मणसंस्थास्त्रिति दंडभूयस्त्वदर्शनाच्च) व्यवहारकांड में ब्राह्मणा की गऊ मध्ये दंडभी अधिक देखनेमें आताहै तिससे भी यहाँ ऐसा बड़ापन रक्खागया १ ॥ उसी प्रकारकी गऊ जो वैश्यकी हो तिसको इच्छा बिना बध करने वाला महीना भर अतिक्रच्छ नामक तीसरा प्रायश्चित्त करै और उसी प्रकार गोओं

को सेवा आदि भी महीनाभर करने पीछे पाँच गोदान अर्थात् धेनुकल्प विधान से धेनुका अनुकल्प पाँच प्रकारसे करें इनमें एक गऊ साक्षात्कार अपने त्वरूपहीसे देनी होगी जैसा योगीश्वरने महीनाके अन्तमें एक गोदान करना कहा ३ ॥ उसीप्रकारकी गऊ जो शूद्र स्वामीकीही तिसको इच्छा बिना मारनेमें दूसरा प्रायश्चित्त कछु ना-सक अर्थात् प्राजापत्य व्रत एक महीनाभर करें और गौओं की सेवा शुश्रूषा आदि करने पीछे दो धेनुकल्प और एक गऊ साक्षात्कार दानकरें २ (इसी प्रकार जिसमें छे गौओंका विधान पहिले लिखचुके तहाँ भी पाँचधेनुके अनुकल्प और छटा सा-क्षात्कार गोदान समझिलेना० परन्तु जिसमें दशगऊ एक आँडू दृढ कहिचुकेतहाँ धेनुकल्प नहीं किन्तु साक्षात्कार सभी गौयें समझनी ॥ ० ॥ यह व्यवस्था एक उपरालू याद-रखनी चाहिये कि येही चारों प्रायश्चित्त जो साक्षात्कर्ता अर्थात् गोवध करनेवाले धर कहैगये सो कर्ताके अनुग्राहक और प्रयोजक और अनुमन्ता-ओंमें बड़े छोटै भाव की तरतमता देखिभाल के पूर्वोक्तही विषय में संयुक्त करने चाहिये कि जहाँ उनकी इच्छा और चाहना बिना सहायता करनी बरो हो ॥ ० ॥ इसी गोहत्या मध्ये जो विष्णुके कहे तीन व्रतहै कि (गोघ्नस्पृशपंचगव्येन मासमेकं प-लत्रयं प्रत्यहं स्यात्पराकीर्वाचांद्रायणमयापि वा) गोहत्या करनेवाले की एकमहीना भर तीन पलके परिमाण पंचगव्य धीनेका प्रायश्चित्त चाहिये अथवा पराकव्रत क-रना चाहिये अथवा चांद्रायण करना चाहिये) ये तीनों प्रकार उसी के समान हैं कि जैसा याज्ञवल्क्यने पंचगव्य कहा सो जिसके लिये करना उचित उद्देश्यका उसी के निमित्तमें इनकी भी समझिलेना=और जो कश्यपजीने कहाहै कि (गोहत्वा तच्च मरणाप्राप्तो मासं गोदशयं स्त्रियवरास्त्रायी नित्यपंचगव्याहारः) गाय को मारिके उसकी खालकी ओडि कर गौहरे में सोया करें त्रिकाल स्नान भी कियाकरै नित्य प्रति पंचगव्य पीताहै) यह भी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यजीके बताये पंचगव्यवाले प्रा-यश्चित्तका विषय है कि इसकी भी उपरालू बातें उसमें मिला लेनी चाहिये=सर्व शातातप का वचन भी खुलाना है कि (मासपंचगव्याहारः) एक महीना पंचगव्य का आहार करें—यह भी याज्ञवल्क्यजीके बताये पंचगव्य वाले व्रतके समानहै=और जो शंख तथा प्रचेतने एकही वचन कहा है कि (गोघ्नः पंचगव्याहारः पंचविंशति रात्रमुपवसेत्संश्रितं वपनं कृत्वा गोचर्मणा प्रातु गोघ्नो गोदशयः गोघ्नो गोचंदद्यात्) गाय मारनेवाला पचीसदिन पंचगव्य खायके उपवास करें चौदी सहित घुडनकराय के गऊकी खाल ओढे हुये गौओंके पीछे फिरें गोधूम राति काटै और पीछे से गऊ

दान करे) यह भी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यजीके एक महीनावाले अतिवृद्धके समान है कि इसमें से उपरालू नियमलेकर उसमें जोड़े जासक्ते हैं। और भी याज्ञवल्क्य ने दोसौ चौमंडिके उत्तरार्द्धमें जो तीनदिनका व्रत करिके स्यात् गऊ दानकरना कहा तिसको साथभी अग्रोक्त शंख प्रचेत्तावाले नियम उसदशामें जुड़िसक्ते हैं जो गऊ मारनेवाला अत्यन्त गुरावाचहो यह मितासराकारने व्यवस्था कही ॥०॥ इसी पहिले विषयपर कि जिसमें पंचगव्य का आहार कहागयाया कदाचित्त वही प्रायश्चित्त जिसको कानाठहिरै और पंचगव्य उसपर न प्रियाजाय अथवा न मिलसके तिसकेलिये कश्यप का कहा एक दूसरा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये जो कश्यपने महीनाभर पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त पहलेकाहिकर दूसरा यहकहाहै कि (यथेकालेपयोभसोवागच्छं तीक्ष्णगुणच्छेत्तामुसुखोपविश्या चोपविशेत्तातिपुर्वंगच्छेत्तानिविद्यमेनावतारयेत्तात्पोदकेपापयेदन्तेब्राह्मणान्भोजयित्वातिलधेनुदद्यादितिद्वयम्) अर्थात्—जो पंचगव्यपीना न होसके तो छटेकालमें केवल दूधपीवै और चलतीहुई गौओंकोपीछेचले और ब्रे गऊ जब आरामसे बैठें तब आपन्न उनके निकर बैठे और अतिशय दहदहलके पानीमें न डीजाय उनकी ऊँचे नोचे टीलोंमें नहीं निकासै किन्तु सूखे मार्गसे निकासै और थोड़े जलमें नहीं पिआवै अफ्छे निर्मलपानीमें पिआवै इसतरह प्रायश्चित्तकी अवधि पूरीकरिके अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजनकराय तिलधेनुका दानकरै (केवल दूध पीनाजो प्रायश्चित्तकेनिमित्तोंपर बताया तिसका यहतात्पर्यहै कि जीभस्त्रादिकेअर्थ उसमें सीटा कुछ नहो) जो बिसला पुरुष ऐसा भी न करसके तिसके लिये अग्रोक्त पैदीनसि का बताया अनुकल्प विचारना चाहिये=यथाह पैदीनसिः (गोघ्नोमासंय वाष्पंश्रुततंदुलपृतां भुञ्जानोगोभ्यःप्रियंकुर्वन्शुध्यति) अर्थात्—गऊ मारने वाला एक महीना तक एक पसर तंदुल रोंविके उसका दलिया खाते हुये गौओं का हित प्रिय करते हुये शुद्ध होता है ॥ ० ॥ सुमंतु ने जो प्रायश्चित्त कहा है कि (गोघ्नस्य गोप्रदानं गोशयने द्वादशरात्रं पंचगव्यप्राशनं गवानुगमनंच) गोहत्यावालेको गऊका दान गोशाला में सीना बारह दिन पंचगव्य चीखना गौओं कोपीछे फिरनाभी योग्य है=और जो संवर्त ने कहा है कि (सक्त्यावकभैसाशोपयोर्दावधृतंसकृत एतान्क्रम शोऽनीयान्मानार्द्धतुसमाहितब्राह्मणान्भोजयित्वातुगां दद्यादात्मशुद्धये) पंद्रह दिन सावधान होके सतुआ या गोसूत्रमें राँवे सबोंका यावक दलिया भिक्षा भोजनकरते हुये गायको दूध दही घी येभी क्रम से प्रत्येक दिन एक एक बार चादताहै फिर ब्राह्मणों को भोजन कराइकी अपने शुद्धहोने के लिये गौदान करै=और जो बृहस्पतिने

कहा है कि (हादशरात्रपचगव्याहार) बारहदिन पचगव्यका आहार करै सो शुद्ध होय—
यहतीनो प्रायश्चित्तभी याज्ञवल्क्यजीकेकहे सहीनाभरके प्राजापत्यके समानसमझने
चाहिये यहमितासराकारकाकथनहै अथवा जोगऊ मरनेकेतुल्य आपहीथी तिसकी
हत्याकरनेवालेके निमित्तमेंसमझलेने कोकि प्रायश्चित्त बहुतछोटेहैं अथवा जिसने
गऊको बहुत ऊँचेनीचे चढ़ाइ घेरि पीरि पाटिके त्रासमात्र दिया हो जिससे रोगपैदा
होकर कुछ दिन बाद आपही गऊ मरजाय तिस हत्या के निमित्त में इन प्रायश्चित्तों
को विचारना चाहिये ॥ अधिकोक्तिके प्रारम्भसे यहां तक जो कुछ प्रायश्चित्तोंके
भेद वर्णन हुयेसो सब केवल उसी दशापर आखटहैं कि विना इच्छा के जिसपर गऊ
दैवयोग से मरगई हो=तथापि उत्तम स्वामी की उत्तम गऊ जिसपर विना इच्छा के
मरगई हो तिसके बड़े प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में सकाम वधके साथ भी प्रसंग
से दर्शाये जायेंगे तबैव देखौ ॥ इत्यकामगोवधविचारः ॥ अगिले परिच्छेद में
सकाम गोवध के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे (तथापि उसमें हारीत आदिकई एक ऋ-
षियों के बताये प्रायश्चित्त निष्काम गोवधके ऊपर भी आवेंगे) और यह चर्चाभी
उसी परिच्छेद में आवैगी कि इस परिच्छेद में दर्शाये प्रायश्चित्त भी सकाम गोवध
में द्विगुण किये जासकते हैं अर्थात् केवल वही नहीं कि जो अगिले परिच्छेद में स-
काम वधके नामसे वर्णन होगे—अगिले परिच्छेद में कोई मूल श्लोक इस हेतुसे न
आवैगाकिबह पाठभीइसी अधिकोक्तिके शेष वक्यासमें गिनतीहै ॥२६३ ॥२६४॥

अथोपपातकेषु सकामगोहत्यायाश्च विशिष्ट

स्वामिक गोहत्यायाश्च प्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽथ

परिच्छेदः एकचत्वारिंश ४१



इस परिच्छेद में उस प्रकार के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जिसने जानि बूझि
इच्छा सहित उसी प्रकार की गाय मारी हो जैसी गऊ दैवयोग से मरजाने के प्रा-
यश्चित्त ऊपरले परिच्छेद में कही चुके=तिस पीछे इसी परिच्छेद में बढिया प्रा-
यश्चित्तभी दर्शावेंगे जो उत्तम स्वामी की उत्तम गऊ दैव योगसे मरजाने मध्ये और
जानि बूझि इच्छा सहित मारने मध्ये दोनों दशापर दो भांति के होंगे ॥

जहाँ उसी प्रकार की गऊ जिसका पहले कथन हो चुका है कि जिसमें कोई विशेष उत्तमता वाले गुणों का चिह्न नहीं और जाति से सामान्य ब्राह्मणों की गऊ हो तिस की कोई इच्छा सहित चाँदिकर वचन करे तिसके लिये अग्रोक्त मनु का कहा प्रायश्चित्त विचारै कि जैसा मनुने सक महीना चौथे काल में जीका दलिया राँव पीना कहा और दो महीना हविष्य भोजन चौथे काल करना कहा इस तरह तीन महीना गोसेवा तथा ग्यारह गऊ दान यह सब मिलाकर यद्यपि तीन महीने का एकही प्रायश्चित्त प्रतीत हुआ है तथापि मितासराकारने इसीके तीन प्रायश्चित्त भी माने और सबके छे महीना जोड़ि दिये हैं कि पहला एक महीने का दूसरा दो महीने का तीसरा तीन महीने का जुदा प्रायश्चित्त है सो इस अंतरको मनुके वचनों से बुद्धिमान पुरुष विचार करेंगे—यथाहमनुः=उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मांसं यवान् पिवेत् कृत वापी वसेद्गोये च संसारं द्रव्या संवृतः चतुर्थकालमग्नौ यादक्षारालवणमितम् गोमूत्रेण चरेत्क्षान्द्वौ मासौ नियतं द्वयः दिवाऽनुगच्छेत्तामास्तुतिं शुक्लध्वजः पिवेत् शुभ्रयस्त्रिंशत् नमस्त्वात्वार्यो वीरासनं व्रजेत् तिर्यंतीष्वनुतिर्येत्तु व्रजं तीष्वथ नु व्रजेत् आसीना मृत यासीत नियतो वीतमस्तुः आतुरासंभियक्तांवा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः पतितां पंकलरणां वा सर्वप्राणैर्विमोक्षयेत् उष्णो वर्षं पतिशतिवामारुते वा तिवामभ्रयश्च न कुर्वीतारमनस्वारां गोरक्षत्वात् शक्तः आत्मनो यदि वान्येयां गृहे क्सेवेथ्यवा खले भक्षयतीत कथं तिष्ठेत्पवंतं चैव वत्सकम् अनेन विघिनायस्तु गोघ्नो गान्धुगच्छति सगोहत्याकृतं पापं विभिर्मासैर्व्यपोहति श्रयभैकादशां प्रचक्ष्य तस्त्वरितव्रतः अविद्यमाने सर्वस्व वेदविद्योनिवेदयेत् (संतुष्टितयं राजबलकीयमासं प्राजापत्यं मासं पंचगव्याशनं द्युयभैकादशगोदान युक्तत्रिरात्रोपवासरूपं व्रतव्रतयविययं यथाक्रमेण द्रष्टव्यमित्यर्थमितासराकारः)= अर्थात्—मनुने यह कहा है कि इच्छा सहित गोवध करनेवाला उपपातकी प्रथम गऊ महीना जी का दलिया राँव पीवै और मुँडन कराइ के गोथ गौंहरमें टिके कि जहाँ सँकरोँ हजाराँ गऊ का समूह किसी जंगल में रहता हो परन्तु मरी गऊ का गोला चमड़ा ओड़िके टिके (मितासराकारने इसी इतनेको जुदा एक प्रायश्चित्त माना है) और दिन के चौथे काल में दो महीना तक सेमा भोजन थोड़ासा करै जिसमें खारी नमक आदि कुछनही किन्तु अलीना फीका भोजन होय और जितना थोड़ा नियम साथे उतनाही नित्य निरन्तर भोजन करै न्यूनाधिक नहीं अर्थात् पहिले महीना में जीका दलिया पीवै फिर दूसरे तीसरे दो महीना यह पिछला कहा भोजन करै तो यह पूरे तीन महीनेका सकही प्रायश्चित्त टाँहै और इन्हीं पिछले दो महीना भर

गोमूत्रसे स्नान भी किया करें सब इन्द्रियों को जीति के वशमें राखें (मितासराकार इसको भी जुदा एकप्रायश्चित्त बतातेहैं) और दिनमें उन गौओंके पीछे पीछे फिरता रहें जहां कहीं खड़ी होकर टिकिजायें तहां आप भी खड़े रहिकर ऊपर की मुंह पसारि उड़ती गोधूलिकी रज पीनेलगे फिर सख्या समय उनकी सेवा श्रुय्या अच्छे करिके और पुनः पुनः दंडवत प्रणाम नमस्कार और प्रदक्षिणा आदि उपचार किये पीछे रातिमें उनके समीपही बीरासन बोंधि घुटनोंके भर घोंकस बनिके रहें कि जिससे गोयके भीतर जो खड़ीहोयें तिनकेपास आपभी खड़ा होजाय और जो टहलती हों तिनके पीछे आप भी टहिलनेलगे और जो बैठीहों तिनके पास आपहू बैठिजाय इसीतरह जब गौयें सोजायें तब आपहू खतीपर सोवें यह सब आचार मामूजी तीरसे मत्स्यगता को छोड़िके निरन्तर कियाकरें औरभी ये नियम उपरालूराखें कि जब कभी किसी गऊको कुछ रोगसे आतुर देखें या पानीसे भीगीदेखें या मृतगोबरसे चिपको देखें या चौर व्याघ्र आदि किसीके डरसे भयभीत देखें या गिरपड़ी देखें या कीच दहदहल में लिपी वा फँसीदेखें तो इन सबको प्राणोंसे बचावें इसप्रकारसे कि चाहें घ्रीष्मकाल की लू चलतीहो या तीव्रवर्या होती हो या बहुत जाड़ेका पाला परता हो या भूभ्मा वायु तथा भयानक आँवी चलतीहो तभी दुखी गऊकीरसा अपनीशक्ति की बराबर किये बिना अपने देहकी रक्षा न करें (यहां गऊ कहिनेसे उसकी जाति मात्रसे गोप्राणोंकी रक्षाभी समझनी इसका दृष्टांत जैसे किसी बोझित गाड़ीका बैल गिरिके गाड़ी से दबा फँसा हो तहां आपही गाड़ीमें कंधा देकर बैलको दुख पीड़ासे उभारें इत्यादि) और भी यह नियम राखें कि चाहें निज अपने या और किसीकेघर में या खेतमें या खलिहानमें कुछ खातीहो या बहुरा कूटा दूध पीताहो तो मालिकों से न कहें इस कहिगई समस्त विधिसे जो कोई गो मारनेवाला गौओं के पीछे शरणा में जाताहै सो गऊइत्यादि किये पापको तीन महीनां से दूर करदेताहै अर्थात् पहिले एक महीना जौका दलिया फिर पीछे दो महीना अतोना कुछ और भोजन ये तीन महीने जो कहिचुके उन्हींका इसजघे उपसहार है और उन्हींके साथ यहाविधि सब दर्शाईगई तिससे आदिसे अन्ततक एकही प्रायश्चित्तहै दोतीनक जुदेनहीं (मितासरा कार अवोक्ततीन महीने सबसे जुदेसानिके इसको भी जुदा तीसरा प्रायश्चित्त बताते हैं पर आधुनिक अनुवादक ऐसा नहीं कहिसक्ता कोकि उस एकही प्रायश्चित्तका सबध मिलाचला आताहै जो विधि कुछ बाकीरही सो आगे देखी कि) जिसने तीन महीना तक अच्छीतरह व्रतका आचरण किया हो सो पीछे से दशगऊ ग्यारहवां

एक आहुं वृथम दानकरै परन्तु जिसके पास खारद गऊचान काने योग्य द्रव्य न हो
 वह अपना सर्वस्व अर्थात् जो कुछ योद्धीवहुत सामग्री वर्तनभांडे कपड़े पशुआदि घर
 में हो सो सब लेकर वेदके विज्ञाता विद्वान् विप्रोंको समर्पणकरै तौभी शुद्ध होजाता
 है ॥ ०॥ अंगिराने इसी मनुके कहे प्रायश्चित्त के साथमें कुछ और भी आधिक्य द-
 र्शयाहे अर्थात् ऐसा लिखा है कि तीन महीने मनुका कहा प्रायश्चित्त साथै पर
 उसके साथ इतना और करै कि (अक्षारलवणारुसं ययेकालेऽस्यभोजनम् गोमतीं
 बाजपेद्वियामोक्ष्णां वेदमेव च व्रतवद्धारयेद्गण्डसंभ्रांचैव मेखलास) अर्थात् इसपापीको
 मनुका कहा प्रायश्चित्त करतेहुये छठे काल में भोजन करना चाहिये जो खार की
 वस्तुनहो अलोनी हो रुसनही और गोमती नामक वेदमंत्र की विद्याका अपकरणै जो
 गायत्री प्रसिद्ध है यद्वा न वनिआवै तौ केवल आंकार जपे अथवा विद्या में पूरी शक्ति
 हो तौ वेदकी संहिता पाठकरै और व्रतके नियम की भांति दंड भी धारण करै तथा
 मन्त्रक्रिया सहित मेखलाभी धारणकरै—मितासराकार कहितेहैं कि इतना अधिक
 ब्रह्मकर अंगिराने मनुके प्रायश्चित्त में बड़ापन दइराया तौ इस बड़ेकोभी उसीवि-
 ययपर विचारना चाहिये कि जिस पर मनुका प्रायश्चित्त करना कहिचुके तिसमें
 इतनी और भी बिशेषता समुभिलेनी कि जिसने सोदी ताजी या तरुण अवस्थाकी
 कलौरि आदि छोड़े गुरासे अतियुक्त गऊ मारीहो तिसकेलिये यह प्रायश्चित्त का
 बड़ापन अंगिरा के वचनानुकूल विचारा जाय—जबकि—मनु और अंगिरा के कहे ये
 दोनो प्रायश्चित्त केवल उसकेलिये दइरे कि जिसने सामान्य ब्राह्मणकी सामान्य
 गऊ इच्छासहित मारीहो—तौ फिर जिसने सामान्य सत्रीकी गाय या सामान्य वैश्य
 की गाय या शूद्र की गाय इच्छासहित मारी हो तिनको क्या प्रायश्चित्त विचारा
 जाय सो आगेदेखौ ॥ ० ॥ (विहितं यदकामानां कामारतुद्विगुरांचरेदिति न्यायः प्रमि-
 दः) जो कुछ प्रायश्चित्त अनिच्छासे पापहोजानेपर कहा गयाहो वही इच्छासहित
 पाप करनेवाला दूना प्रायश्चित्तकरै यह न्याय घंटाघोष है तिससे जिसने सत्री या
 वैश्य या शूद्रकी गाय मारीहो तिनको वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त यहां इच्छा सहित
 मारने के निमित्त पर दूने अर्थात् दोहर करने चाहिये जो यदिले परिच्छेद में
 अनिच्छा से इन्हीं तीनों वर्णों की गाय मारने मध्ये जुदे जुदे तीनों कहिचुके हैं
 वहांपर योगीश्वरके (२६३ । २६४) मूलश्लोकों का अर्थ देखौ ॥ प्रंका—कांजी
 गोइत्या सब एकसी करावर होनी चाहिये अभी ऊपर जो अंगिराके बताये प्राय-
 श्चित्त में सोदी ताजी कलौरि आदि लसणों की पख लगाई गई वह क्या बात है—

मुनो(अतिवातामतिकृशामतिवृद्धांचरोगिरागोम हस्वापूर्वविधानेनचरेद्व्रतंतिद्विजः)
यह वचन आगे आवेगा कि अति बालक वच्चा या अत्यन्त दुर्बल शरीर की या
अति बूढ़ी या अति रोगिनि जो स्वतः सारनेवाली होरही थी इनको सारने से द्विजाती
को उस से आधा व्रत करना चाहिये जो पहिले पूरी गाय के सारने मध्ये विधान
होचुका है-तौ इसी व्यवस्था के अनुसूच यद्वां मोटी ताजी जुवान अवस्था आदि
उत्तम शृणा के ऊपर प्रायश्चित्त में बड़ापन कियागया सो अविस्त जानो ॥०॥
अथविशिश्वस्वामिगोहत्याप्रायश्चित्त=हारीत मुनिका यह वाक्य है कि=गोव्र
स्तर्चर्मोर्ध्वबालपरिवाय • इत्यादिना मानवी मिति कर्तव्यता समिधायोक्त • वृ-
थभैकादशाश्चरादस्वा त्रयोदशेमासेप्रतोभवति • तत्सवनस्यश्रोत्रियगोवधेअक्राम
हतेद्रव्य=अर्थात्-गऊ सारने वाला उसी गऊ का चमड़ा जिसके बाल ऊपर की
रखें सो पहिनेके • इत्यादि वचनके द्वारा यही मनुकी कर्तव्यता है सो कहि कर हा-
रीतने पीछेसे दशगऊ एक आंडु वृथभ देकर तेरहवें मासमें पवित्र होना कहाहै-सो
यह बारह सहीनेका प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना कि जिसने सवन, यज्ञमें लगे
हुये श्रोत्रिय ब्राह्मणाकी गऊकी इच्छा विना किसी धोखे आदि कारणासे वधकिया
हो ॥ ० ॥ और जो वशिष्ठका यह प्रायश्चित्त है कि=गांवेदन्यातस्याश्चर्मगाईसा
परिवेशितः यरासासहचरुतत्तत्तच्छावातिष्ठे वृथगवेदितौदयाता • मितिवशिष्ठेन
हचरुतत्तच्छानुयानयरासांसिकमुक्ततद्दारीतीयेनसमानवियय=अर्थात्- यदि गऊ
मारडाले तौ उसके गोलेही चमड़े से अपना देह ढांकि ओढिके छे सहीना भर हचरु
और तत्तच्छ दोनो तरफके व्रत कियाकरै (इस रीतिसे कि पहिले हचरुव्रतका एक
अनुयान करिके फिर तत्तच्छ का अनुयान करै फिर हचरुका फिर तत्तच्छ का
इसी तरह सकलितरूपसे निरन्तर करतारहे) और वृथभके सारनेमें गऊदानभी देखै-
यह वशिष्ठने छमाही के दोनो व्रतकहे सोभी हारीतके समान मुन्नामिले घर समभि
लेना कि जैसा हारीतका बारहमासी व्रत सवनस्य श्रोत्रिय ब्राह्मणाकी गऊ सारनेपर
कहागया तैसायह छमाही व्रत सवनस्य किसी क्षत्रीकी गऊ मध्ये विचारना चाहिये
जो विना इच्छाके वध कियाहो ॥ ० ॥ और जो देवतका कहा प्रायश्चित्तहै कि=
गोव्र-यरासांस्तर्चर्मपरितृप्तोग्रासाहारो गोव्रजनिवासो गोभिरेवसहचरप्रमुच्यते=
अर्थात्-गऊ सारनेवाला छे सहीना उसी का चमड़ा ओढिके गऊप्रास का आहार
करै और गौओके गोंहरेमें निवास करै और गौओके साथ फिरतारहै सो निज पाप
से छुटिजाताहै (इसमें गोप्रासका आहार कहा तिसका यह तात्पर्य कि प्रायश्चित्तो

गुणों से भी उत्तमहो यह एक व्रत ठहिरा) फिर इस बातका प्रसारा भी मिताक्षरा कार देतेहैं कि अशोक सवगार्यको विशेषगणोंको वृहस्पतिने भी ऐसे कहाहै कि० गर्भवती और कपिला और दुधार और होमको निमित्त दूध देनेवाली और सुत्रता गऊ कि जिसका दर्शन पूजन आदि सत्कार व्रतके नियम साथ कियाजाताहो ऐसी गाय को तलवार आदिसे वध करिके दुधना व्रतकरै जो वृहस्पति पहिले सामान्य गऊ को मारने पर कहिचुकेहों तिससे० यह विशेष लसरावाली गऊके वध करने में विशेष प्रायश्चित्त देखा गयाहै तिससे ऊपरली व्यवस्थाको अनर्थक मत समझना यह मिताक्षराकारोंने कहा० फिर कहते हैं कि (इसी हेतुपर प्रचेताने भी ऐसा कहा है कि० गर्भवती नारी और गर्भवती गाय तथा बालक और बूढ़ेका वध करनेवाला भू रा हत्या भागी होताहै इस हेतुसे इसी प्रकारके गोवधपर ब्रह्महत्यावाला व्रत भी उन्हीं प्रचेताने अतिदेश उतारा है कि गाभिन आदि गाय का वध करिके ब्रह्महत्या पर कहे व्रतको करै० इनबातोंको देखनेसे स्तुतः सिद्ध होताहै कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त जो सहस्र गोदान सहित कहागया वह सामान्य गऊके वधपर नहीं चाहिये० यहां तक यमके कहे एकही बड़े प्रायश्चित्तका निर्णय पूरा हुआ)=तैसाही यम का कहा दूसरा व्रत अन्नके गोशत १०० दान सहित दो महीनेवाला जो ऊपर कहिचुके तिसको काल्यायनके कहे तीन वर्गवाले प्रायश्चित्त के साथही जोड़िके धनवान् हत्यारेपर आच्छाद किया जासक्ताहै यदि कोईसी अशोक विशेषता भी पापमें पाई जाय अन्यथा नहीं ॥०॥ एक और व्यवस्थाहै कि गौतम ने जो प्रायश्चित्त० एक आँडू बृयभ और सौ गायके दान सहित तीनवर्षका प्राज्ञत ब्रह्मचर्य रूपी० वैश्यका वध करनेवालीको उपदेशिक प्रधानतासे कहिकर पीछे गोहत्या पर भी उसीका अतिदेश उतार दिया है (गांघहत्वावैश्यवर्जित) इस वचन से—यद्यपि—यहां विचार से यह तात्पर्य ठीक होताहै कि ऊपर जहां सवनस्थ सबी और सवनस्थ वैश्य दोनों की गाय वध होनेपर एकही प्रायश्चित्त केवल शंखजीके वचनसे कहागया तहां पर इस प्रायश्चित्तको सवनस्थ वैश्यकी गाय मारनेमध्ये धनवान् हत्यारेपर आच्छाद करै अर्थात् उसीशंखोक्तके साथ इसका बदलधनवान् हत्यारेपर ठहिरायाजाय निर्धन पर नहीं—परन्तु—विज्ञानेच्चर मिताक्षराकारके विचारसे किसी वैवायिक व्रतमें कहीं नच्चे६० धेनुके साथगौतमोक्त१०१ एकसौएक जोड़नेसे १६१ नौकास दोसीसंख्या होती हो या नहो तोभी हजार गऊ सहित दोमहीना वाले व्रतसे यहगौतमका छोटा वैश्य परताहै तिसहेतुसे इसगौतमके कहेप्रायश्चित्तकोउसप्रकारकी गोहत्यापरसमझिलेना

किं जिस गऊ का स्वरूप इससे पहिले परिच्छेद में कहि चुके परन्तु उस परिच्छेद में लिखे प्रायश्चित्तों से यह गौतम का बड़ा है तिससे यह भेद है कि वैसेही स्वरूप वाली गऊ का वध कोई इच्छा सहित करै तिसकेलिये समझना अथवा उसीस्वरूप की गऊ यदि गर्भ सहित किसीने इच्छा विना धोखे आदि से वध करी हो तिसके लिये भी समझना और भी जैसी उत्तम गऊ सवनस्थ स्वामीकी हालहीके वर्णन में कही गई सो यद्यपि गर्भ सहित हो और इच्छाविना मारी गई हो तौभी कात्यायनका कहा तीनवर्षका प्रायश्चित्त कराना चाहिये अर्थात् जो ऐसी उत्तमगऊ गर्भवती हो तौ इच्छाविना मारीजाने में भी इसी कात्यायनके तीन वर्षोंसाथ इंजाराऊ या सौगऊका दान भी दो सहोने के प्रायश्चित्त सहित जोड़िलेना चाहिये जो इत्यारा धनवाच होय यह सब ऊपर वर्णन हो चुका है परन्तु जिसमें बहुत गौओंका दान हो सो धनवाचका प्रायश्चित्त है निर्वनको सर्वस्व दानकरना आदि उसकी दशाके अनुसार उपाय सोचिलेना ॥ ० ॥ अथशस्त्रविशेषैर्गोहनन प्रायश्चित्तनिर्णयः—जिस किसीने जैसे शस्त्रोंसे गायमारी हो तिसके भी जुदे जुदे प्रायश्चित्तोंका निर्णय यहाँ यम के वचनों से लिखते हैं—यथाहयमः—कायलोयाश्रमभिर्भावःशस्त्रैर्वनिहतायदि प्रायश्चित्तं कथं तत्र शस्त्रेशस्त्रैर्विधीयते काये सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यन्तु लोयके तप्त-क्लृच्छं तुपायासो शस्त्रे चाप्यतिकृच्छं कथं प्रायश्चित्ते तत्पश्चीर्गोक्षं कुर्याद्ब्राह्मण भोजन-त्रिंशद्गाव्यभक्षकंदद्यात्तैश्च दक्षिणां भोजनं—अर्थात्—जो लारीलकड़ी या मट्टीकाढीम या पत्थरों से गौर्यें मारी हों या शस्त्रोंसे तिनका प्रायश्चित्त कैरे हो तहाँ जुदे जुदे इधियार पर विधान किया जाता है कि जहाँ काटसे मारी हो तहाँ सांतपन व्रत करै इलेसे मारी हो तौ प्राजापत्यकरै पत्थरसे मारै सो तप्त कृच्छं करै लोहेके इधियारसे मारी हो तौ अतिकृच्छं करै और प्रायश्चित्तों के पूरे होनेपर ब्राह्मण भोजन करावै और तीस गौर्यें तथासक दृयभ और दक्षिणा भी उन्हीं ब्राह्मणोंको दानकरै यहविधि इतनी सबके पीछे लगाई यह समुझिलेना—सो ये यमके कहे व्रत छोड़ेहैं तिससे ऐसी दशापर समुझिलेना कि जहाँ लकड़ो पत्थर आदिसे गऊको बहुत सारने परभी गऊ प्राणोंसे बचि गई हो तौभी इतना प्रायश्चित्त कराना चाहिये अथवा यदि गऊ इन्हीं इधियारोंसे मर गई हो तौभी पूर्वोक्त प्रकारसे प्रायश्चित्त कायम किये पीछे उसी से इन वचनों की विशेषता जोड़िलेनी चाहिये इसका यह दृष्टांत है कि जैसे जिस किसीपर पूर्वोक्त कात्यायन के वचनों से तीन वर्ष का प्रायश्चित्त विचार में द-हिता हो या उसकेसाथ हजार या सौगौर्यें देनी उहरी हों तहाँ यदि यह भी सातिव

गुणों से भी उत्तमहो यह एक वृत्त ठहिरा) फिर इस बातका प्रमाण भी मितासरा कार देतेहैं कि अत्रोक्त सबगायको विशेषणोंको वृहस्पतिने भी ऐसे कहाहै कि-गर्भवती और कपिला और दुवार और होमके निमित्त वृद्ध देनेवाली और सुव्रता गऊ कि जिसका दर्शन पूजन आदि सत्कार वृत्तके नियम साथ कियाजाताहो ऐसी गाय को तलवार आदिसे वध करिके दुधुना वृत्तकरै जो वृहस्पति पहिले सामान्य गऊ के मारने पर कहिचुकेहों तिससे-यह विशेष लक्षणवाली गऊके वध करने में विशेष प्रायश्चित्त देखा गयाहै तिससे ऊपरली व्यवस्थाको अनर्थक मत समझना यह मितासराकारोंने कहा- फिर कहिते हैं कि (इसी हेतुपर प्रचेताने भी ऐसा कहा है कि-गर्भवती नारी और गर्भवती गाय तथा बालक और बड़ेका वध करनेवाला धृ रा हत्या भागी होताहै इस हेतुसे इसी प्रकारके गोवधपर ब्रह्महत्यावाला व्रत भी उन्हीं प्रचेताने अतिदेश उतारा है कि गाभिन आदि गाय का वध करिके ब्रह्महत्या पर कहे वृत्तको करै-इनबातोंको देखनेसे स्वतः सिद्ध होताहै कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त जो सहस्र गोदान सहित कहागया वह सामान्य गऊके वधपर नहीं चाहिये-यहां तक यमके कहे एकही बड़े प्रायश्चित्तका निर्णय पूरा हुआ)=तैसाही यम का कहा दूसरा वृत्त अन्नके गोशत १०० दान सहित दो महीनेवाला जो ऊपर कहिचुके तिसको कात्यायनके कहे तीन वर्ष वाले प्रायश्चित्त के साथही जोड़िके धनवान् हत्यारेपर आच्छाद किया जासक्ताहै यदि कोईसी अत्रोक्त विशेषता भी पापमें पाई जाय अन्यथा नहीं ॥०॥ एक और व्यवस्थाहै कि गौतम ने जो प्रायश्चित्त-एक आँडू वृथम और सी गायके दान सहित तीनवर्षका प्राकृत ब्रह्मचर्य रूपी वैश्यका वध करनेवालेको उपदेशिक प्रधानतासे कहिकर पीछे गोहत्या पर भी-उसीका अतिदेश उतार दिया है (गांधर्वत्वावैश्यवर्धित) इस वचन से-अद्यपि-यहां विचार से यह तात्पर्य ठीक होताहै कि ऊपर जहां सवनस्थ सत्री और सवनस्थ वैश्य दोनों की गाय वध होनेपर एकही प्रायश्चित्त केवल शंखजीके वचनसे कहागया तहां पर इस प्रायश्चित्तको सवनस्थ वैश्यकी गाय मारनेमध्ये वनवान् हत्यारेपर आच्छाद करै अर्थात् उसीशंखोक्तके साथ इसका बदलवनवान् हत्यारेपर ठहिरायाजाय निर्वन पर नहीं-परन्तु-विज्ञानेच्चर मितासराकारके विचारसे किसी वैवायिक व्रतमें कहीं नज्जेर्द-धेनुके साथगौतमोक्त १०१ एकसौएक जोड़नेसे १८१ नौकस दोसोसंख्या होती हो या नही तोभी हजार गऊ सहित दोमहीना वाले व्रतसे यहगौतमका छोटा देखि पताहै तिसहेतुसे इसगौतमके कहेप्रायश्चित्तकोउसप्रकारकी गोहत्यापरसमझिलेना

कि जिस गऊ का स्वरूप इससे पहिले परिच्छेद में कहि चुके परन्तु उस परिच्छेद में लिखे प्रायश्चित्तों से यह गौतम का बड़ा है तिससे यह भेद है कि वैसेही स्वरूप वाली गऊ का वध कीड़े इच्छा सहित करें तिसकेलिये समझना अथवा उसीस्वरूप की गऊ यदि गर्भ सहित किसीने इच्छा विना धोखे आदि से वध करी हो तिसके लिये भी समझना और भी जैसी उत्तम गऊ सबनस्थ स्वामीकी हालहीके वर्णन में कही गई सो यद्यपि गर्भ रहित हो और इच्छा बिना मारी गई हो तौभी कात्यायनका कहा तीनवर्षका प्रायश्चित्त कराना चाहिये अर्थात् जो ऐसी उत्तमगऊ गर्भवती हो तौ इच्छा बिना मारीजाने में भी इसी कात्यायनके तीन वर्षोंसाथ हजारगऊ या सौगऊका दान भी वो सहोने के प्रायश्चित्त सहित जोड़िलेना चाहिये जो हत्यारा धनवाच होय यह सब ऊपर वर्णन हो चुका है परन्तु जिसमें बहुत गोओंका दानहो सो धनवाचका प्रायश्चित्त है निर्धनको सर्वस्व दानकरना आदि उसकी दशाके अनुसार उपाय सोचिलेना ॥ ० ॥ अथशस्त्रविशेषैर्गोहृन्नन प्रायश्चित्तनिर्णयः—जिस किसीने जैसे शस्त्रोंसे गायमारी हो तिसके भी जुदे जुदे प्रायश्चित्तोंका निर्णय यहाँ यम के वचनों से लिखते हैं—यदाहयमः—कायलोष्टाश्रमभिर्गाविःशस्त्रैर्वनिहतायदि प्रायश्चित्तकयंतत्र शस्त्रेशस्त्रेविधीयते काये सांतपनंक्षुर्धातप्राजापत्यन्तुलोक्यकेतन-कृच्छ्रं तृपायासो शस्त्रेचाप्यतिरुच्छ्रकस्य प्रायश्चित्तेतत्प्रचीतंक्षुर्धातप्राजापत्यभोजनम-त्रिशृङ्गाद्यभक्षैकंदद्यात्तेभ्यश्चवसिगामः—अर्थात्—जो लारीलकड़ी या मड़ीकाढीम या पत्थरों से गोयें मारीहों या शस्त्रोंसे तिनका प्रायश्चित्त कैसेहो—तहाँ जुदे जुदे हथियार पर विधान किया जाता है कि जहाँ कारसे मारीहो तहाँ सांतपन व्रत करे इलेसे मारीहो तौ प्राजापत्यकरे पत्थरसे मारे सो तत्र कृच्छ्र करे लोहेके हथियारसे मारीहो तौ अतिरुच्छ्र करे और प्रायश्चित्तों के पूरे होनेपर ब्राह्मण भोजन करावै औरतीस गोयें तथासक दूधभऔर दक्षिणा भी उन्हीं ब्राह्मणोंको दानकरे यद्वाविध इतनी सबके पीछे लगी है यह समुझिलेना—सो ये यमके कहे व्रत छोटेहैं तिससे ऐसी दशापर समुझिलेना कि जहाँ लकड़ो पत्थर आदिसे गऊको बहुत मारने परभी गऊ प्राणांसे बचिगईहो तौभी इतना प्रायश्चित्त कराना चाहिये अथवा यदि गऊ इन्हीं हथियारोंसे सरसई हो तौभी पूर्वोक्त प्रकारोंसे प्रायश्चित्त कायम किये पीछे उसी से इन वचनों की विशेषता जोड़िलेनी चाहिये इसका यह दृष्टांत है कि जैसे जिस किसीपर पूर्वोक्त कात्यायन के वचनों से तीन वर्ष का प्रायश्चित्त विचार में ठ-हिराहो या उसकेसाथ हजार या सौगोयें देनी ठहरी हों तहाँ यदि यह भी सातिव

के विधानमें—अथपि एक ग्राम वही कहा गया है जो एक बार बड़े मुहवाले आदिमी के मुहमें जासकै अथवा सुगंधि के छंदे समान अन्नका परिमाण भी कह दिया है तथापि छेसहीने तक इतने अन्नसे देह आभना संगत नहीं है तिससे यहां गोघ्रास कह कर गऊके मुहका लसरा दर्शाया है कि जितना अन्न गऊके मुहमें एक बार जासकता हो उतना खाकर प्रायश्चित्तका व्रतसाधै) यह देवलमुनि का कहा हुआही व्रत भी पूर्वोक्त द्वारीतके समान विषयपर समझिलेना कि जैसे उसमें सवनस्थ ब्राह्मणकी गऊ कही गई तैसे इसमें सवनस्थ किसी वैश्यकी गऊ घष करने मध्ये इसी प्रायश्चित्तकी दहिराना जो इच्छा बिना गऊ मारी हो ॥ अनापिसकामवधप्रायश्चित्त—जिसने कामनासे चाहिकर सवनस्थ श्रोत्रियकी गऊ मारी हो तिसको अप्रोक्त कात्यायनके वचनसे तीनवर्षका व्रतज्ञानो—यथाह कात्यायनः=गोत्रस्तु चर्मसंवोतो वसेद्गोष्टे यथा पुनः गाप्रदानुगच्छेत्तत्तमौनीवीरासनादिभिः वर्षशीतातपक्लेशवर्द्धिपंकभयादिताः सौक्ष्मेत्सर्ववृत्तेन प्रयतेवत्सरैस्त्रिभिः=अर्थात्—कात्यायन ने कहा है कि गऊ मारने वाला उसीके वसइसे देह होकेहुये वनमें गोव्रजके टिकाने अथवा गोंडरमें बसे और तीनवर्ष तक निरन्तर गोओंके पीछे फिरें तथा सोन साथे और वीरासन होकराति में बैठाहुआ गोओंकी चौकसाई आदि सेवा करते हुये वर्षा शीत आताप तीनोंकृत के क्लेशोंकी आप सहिकर उन्हीं क्लेशोंसे भयभीत, गोओं की सब यत्नों से बचाता रहे सो तीन वर्षोंसे पवित्र होता है—यह तीन वर्षोंका प्रायश्चित्त उसी द्वारीतवाले विषय पर विचारना चाहिये कि जिसने सवनस्थ श्रोत्रिय ब्राह्मण की यज्ञ संबंधी गायकी इच्छा सहित माराही तिसके लिये—परन्तु—जो उस गऊमें थोड़ी बहुत कोई सी विशेषता भी उस तरहकी मौजूदहो जैसी आगे यम और वृद्धरपतिके वचनों साथ कही जायेंगी तो उस विशेषता पर इसी प्रायश्चित्तके साथ दूसरा वहभी जोड़िलेना होगा जो आगे यमके वचन में गो शत १०० दान सहित दोमास का—व्रत आरंभगा—यह विशेषता याव रखनी चाहिये कि जो इत्यारा धनवान् हो तिसक लिये ऐसा नियम है ॥ ० ॥ सवनस्थ स्त्री और वैश्यकी गाय मारने मध्ये अगिला एकही प्रायश्चित्त है—यथाह शंखः=पादन्तुशूद्रइत्याद्यामुदक्पागमनेतथा गोवधेचतथाह्वयतिपरस्त्री गमनेतथा=अर्थात्—पूर्वोक्त महापातकमें दर्शाये चारह वर्ष वाले व्रत का एक चौथाई प्रायश्चित्त शूद्रका वध करनेमें तथा राजेक्षत्वासे संगम करनेमें और गायका वध करने तथा पराई स्त्रीसे संगम करनेके पापोंमें भी करै—सो यह तीन वर्ष का प्रायश्चित्त जिस विषयपर कात्यायनका अभी ऊपर लिख चुकेहैं उसीपर इसको समझि

लेना कि जिसने सवनस्थ सत्री या सवनस्थ वैश्यकी गाय मारीहो-किन्तु वैश्य को गऊ मध्ये विरले कर्मके अथवा कमकरिके इसी प्रायश्चित्तको करवाना यथा हत्यारा धनवानहो तो कुछ दूर आगे बढ़कर (गांचहत्वावैश्यवदितिगोतमः) यह गौतमका वचन जहाँ आवै तहाँ उसकी अर्थों सहित व्यवस्था देखि भाल कर यहाँ वैश्य की गायमध्ये उसको भी विकल्प से समझि लेना कि ऊँच नीच दशा के अनुसूप वही किया जाय या अयोक्त किया जाय परन्तु अवधितीनि वर्ग की दोनों में बराबर है केवल विधानका विकल्प लेना होगा ॥ ० ॥ पूर्वोक्त सवनस्थ श्रोत्रिय की गाय मारने मध्ये एक और भी विशेष प्रायश्चित्त है कि-यमने जो अगिरा मुनि की कही कर्तव्यता पहिले दर्शाइके सहस्र गऊ दान और गोशत १०० दानरूपी दो प्रायश्चित्त दो दो महीनाकी अवधि वाले कहेहैं उनका भी निर्णय यहाँ करना चाहिये=यदाह यम=गोसहस्रशतवर्षापदद्यात्सुचरितत्रतः अविद्यमानेसर्वस्ववेदविद्वजोनिवेदयेत् (तत्र यदासवनस्यश्रोत्रियातिदुर्गत बहुकुटुंबब्राह्मणसर्वाधनीं कपिलां कर्मांगभूतां गर्भिणीं बहुक्षीरतरुणासाऽद्विष्टाशातिनीम निर्शयोधनवान् सप्रयत्नब्रह्मादितावयापादयति तदागोसहस्रयुक्त हैमासिककुर्यादित्येकव्रत मितिमिताक्षराकारा।)गर्भिणीं कपिलां दोषग्रंहीमधेनुचक्षुव्रताम खड्गादिनाघातयित्वाद्विष्टाव्रतमाचरेदिति विशिष्टायांगविवाहैरूपस्येप्रायश्चित्तदर्शना दितिच मिताक्षराकारा। (अतएव प्रचेतसा स्त्रीगर्भिणी गोगर्भिणी बाल वृद्धवधेपु धूराहाभवतीति श्रेष्ठमिधमेव गोवज्रमभिसन्धाय ब्रह्मइत्याव्रतमतिद्विष्ट इत्येकस्यैवव्रतस्यनिर्णयः)=तथाद्वितीयव्रतः धान्य गोशत १०० दानयुक्त हैमासिकमेव कात्यायनीय व्रत वियये धनवती इत्येव मित्यपि मिताक्षराकाराः=अर्थात्-यह सब निर्णय यमके कहे दोनो व्रतोंका मिताक्षराकार लिखते हैं कि-यमने अगिरामुनिकी कही दोमासकी कर्तव्यता दर्शानेके साथ रेसा कहा है कि-इस व्रतका अच्छा आचरण किये पीछे एक हजार गाय अथवा एक १०० सौ गाय दानकरै यदि उसके पास इतना न हो तो अपना सर्वस्व लेकर वेदके विज्ञाता विशेषकी निवेदन करदेवै (तहाँ मिताक्षराकार कहिते हैं कि पहिला एक सहस्र गाउदान वाला प्रायश्चित्त दोमासका उसको करना चाहिये जो आप निर्शुला और धनवान् होते इच्छा सहित बड़े उपायोंसे तनवार आदि शस्त्रोंसे उसगऊ का वधकरै जिसका मालिक श्रोत्रिय ब्राह्मण बड़े कुटुम्बसे धनहीन दुर्गति में विरा होतेपर भी सवनयज्ञमे लगाहो और वह गाय भी निज आप कपिला वरा से और यज्ञमे कर्मांग भूत मानी गई और गर्भसे सयुक्त और बड़ी दुधार और तरुणाई आदि

होजाय कि पत्थरों से मारी गई तो फिर उन्हीं तीनि वर्योंतक तत्त कच्छव्रत बारबार
कारतारहे इसीतरह और भी समुभिलेना पान्त केवल यद्गोत्रतकना असंगतहे ॥ २६३ ॥
२६४ ॥ इन्ही श्लोकोंकी अविर्कोक्ति के शेष पाठमें यह परिच्छेद है ॥



अतिवृद्धवालादिगोहनन-बहुकर्तृभिहननाद्यनेक गोवध भेदानां प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयं

परिच्छेदः द्विचत्वारिंशः ४२

इस परिच्छेद में गोहत्या के छोटे मोटे अनेक भेदों से प्रायश्चित्त वर्णन होंगे—
अर्थात् अति बूढ़ी बालक आदि मारने का प्रायश्चित्त १ और गर्भ गिराने मारि-
 देनेका प्रायश्चित्त २ एकगायकी अनेक मिलिकेमारें तिनका प्रायश्चित्त ३ कूँधि
 घेर अनेक गौआँको एकही कोड़मारें तिसका प्रायश्चित्त ४ पुगयके हेतुसेभी अवि
 आहार आदि खुलाइके मारें तिसका प्रायश्चित्त ५ गाय मरजाने योग निमित्त क
 रनेवाले का प्रायश्चित्त ६ इतने उक्त भेदोंके प्रायश्चित्त इसी क्रमसे लिखे जायेंगे ॥

(अतिवृद्धरेगिन्यादिवधप्रायश्चित्तं)

अतिवृद्धामतिक्रमामतिवालां चरोगिणीं हत्वा पूर्वविवानेन चरेदध्वं व्रतं द्विजः ब्रा-
ह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्देमतितांस्तथा=अर्थात्—अतिशय बूढ़ीया अतिशय ब्रह्मा
या अतिशय दुर्बल या अतिशय रोगिणी गायकी इच्छा बिना वैधयोगसे यदि कोई
द्विजाती पुरुषवधकरै सो उसव्रतका आधा प्रायश्चित्त करै जो चार्लिसके परिच्छेद में
निरोगिनिआदिपर कहिचुके—या—जिसने इच्छासहित ऐसीइत्या करोहो सो आवा
नहींकिन्तु इन्हीं व्रतोंको पूरा पूरा करै जो बिना इच्छाके निरोगिनि आदिकाव्र
होजाने मध्ये चार्लिसवें परिच्छेद में कहिचुके अथवा उन व्रतों को आवा करै जो
इकतातिस के परिच्छेद में इच्छासहित गोहत्यापर कहिचुके=उसी व्यवस्थामें=वधा
के मरने मध्ये लहृप्रवेत्ता ने छोटे प्रायश्चित्तों के प्रयोजन से विशेष भेदभी दर्शाये हैं
कि वधा कितनी अवस्था का हो=प्रथाइ=एकवर्षहतेवत्सेकच्छूपादोविधीयते अत्र-
द्विपूर्वपुंठःस्याद्विपादस्तुद्विहायनेविहायनेविपादस्यात्प्राजापत्यमतः परस=अर्थात्—

लाह प्यार से रोखते हुयेभी एक वर्ष का बच्चा पुरुष की अज्ञानता में यदि आपही मरजाय (अवनहीं जाना जासक्ताहै कि मूल्य पियास आदि किस हेतु से मेरी गफलत में मरगया) ऐसी दशा में केवल एकछू प्राजापत्यव्रतका एक पाद चौथाई व्रतकिया जातो है जो तीनही दिनमें निपटै जाय० इसी प्रकार दो वर्षका बच्चा मरजाने में दो पादव्रतकिया जाय जो छे दिन में निपटै० इसी दृग से तीन वर्ष का बच्चा मरधाने से तीन पाद व्रत कियाजाय जो नौ दिनमें निपटै (अतःपरंप्राजापत्य) जो तीनवर्ष से अधिक अवस्था का बच्चा मराहो तो पूराही प्राजापत्य व्रत करना चाहिये जो बारह दिनमें होता है (इससे ऊपर के बच्चों में जो अति बालक बच्चा के मरने पर बड़े प्रायश्चित्तोंका आवाव्रत करना कहा जो यहां के पूरेसे भी बहुत बड़ा व्रतहोता है तिसका यह कारण है कि (वहाँपर इस्वा और यहां पर वत्सेइते) इन क्रियाओं के अर्थ भेद सोचो कि वहाँ तो इच्छा विनाभी पुरुष के हाथ से बच्चा मरने का प्रायश्चित्तहै यहांपर गफलतसे आपही मरजाने मध्ये छोटे प्रायश्चित्तहैं ॥ ० ॥ गौग र्मनिपातनप्रायश्चित्त—गर्भिणी गाय मारनेसे गर्भके इतहीजानेमें पापका दूसरा निमित्त खड़ा होताहै कि इसपर दो प्रायश्चित्त कराने चाहिये सो इस गर्भके प्रायश्चित्त पर एक जुदी ब्यवस्था है जो यद्विंशन्मत नामके शास्त्र में विशेष बयौरासे वर्णन करी गई है—यथा=पादउत्पन्नमाचेतुर्दोपादौदुदतांगते पादोतंत्रतमुदिसइस्वारा भंसचेतनश्च क्षराप्रत्यंगसंपूर्णगर्भचेतःभगन्विते द्विप्राणोक्तकुयदियागोम्रस्यतिष्ठतिः=अर्थात्—गर्भजो पेटमें हालही जमि चुकाहो तिसके माताके साथ इनन होजाने में सवाया प्रायश्चित्त कराना चाहिये परन्तु जो गर्भ कुछ सज्जुत भी होचुका हो तिसके मध्ये ह्योद्वा प्रायश्चित्त और जिस गर्भ को चेतना अबतक नहीं उत्पन्नहुई पर बहवारी में पूरा पिंडहोचुका हो तिसके मध्ये पौनदूना अर्थात् तीनपाद अधिक प्रायश्चित्त चाहिये परन्तु जो गर्भ अपने श्वं और प्रत्यंगां से युक्त होकर चेतना से भी संयुक्त हो अर्थात् पेटमें चलता फिरता भी हो तिसके बच होजाने से पूराही दूना प्रायश्चित्त चाहिये किस्म उसका और एक उसकी माता का यह दोनों निरन्तर एक साथही दूनी अवधिमें साधन किये जायेंगे दोबारमें नहीं—अथवा किमो दशा मेंयदि गर्भका विनाश होकर माता बचजाय तहां माताके निमित्तका प्रायश्चित्त छोड़िके इसी उक्त हिंसाव से एक पाद या दोपाद या तीन पाद या पूराही प्रायश्चित्त किया जाय किन्तु ऊर्ध्वोक्त छोटे बच्चे वाले छोटे प्रायश्चित्त इसमें उचितन हेतु ॥ ० ॥ बहुकट कहननप्रायश्चित्त—जहां अनेकों ने मिलिकर गऊ मारी हो

तिसके मध्ये संवर्त और आपस्तव दोनोंने एकही तुल्य विशेषता कहीहै=यथा=एका
 चेद्वह्मिःकाचिहै वाद्व्यापादिताकचिद पादंपादंतुइत्याया प्रचरेयुस्तेपृथक्पृथक्=
 अर्थात्=कोई एकही गऊ कहीं देवयोगसे बहुतों ने मारीहो तो वे सभी इत्यारे लोग
 प्रायश्चित्तकी एक एक चौथाई जुदेजुदे जाकर करें परन्तु यह नियम उसी दशापर
 समझा जासक्ता है कि जहां मारनेवाले अधिक संख्यामें चाहें तितनेहों पर चारिसे
 कमनहोंक्योंकि दोके उपरान्त तीनि को आदिलेकर बहुत्व कहाताहै जहां तीनिही
 पुरुषोंने मारीहो एक एकपाद करने से तीनिही पाद प्रायश्चित्तकेहोंगे चौथाशेष
 रहिजायगा तिससे दो या तीनि पुरुषोंके होनेमें दो दो पाद उसीप्रायश्चित्तकेकराये
 जायें जो उस भौतिकी गऊमध्ये पहिले वर्णन होचुकाहो सब पाँच पुरुषोंको आदि
 लेकर निःशुद्ध एक एक पाद कराया जाय और जैसा एक गाय पर कहिचुकेतैसा
 जहां दोगोओंकी अनेक मिलिकेसारें तिनसे दोदोपाद प्रायश्चित्त कराना चाहिये-
 परन्तु तीनि आदि अनेक गौओं को अनेक जने मिलिके सारें तहां निर्विकल्प यही
 नियम जानों कि मारने वाले सब जुदे जुदे तीनि पाद अर्थात् पौन पौन प्रायश्चित्त
 आचरें-यह सब नियम इच्छा के बिना वध करने का समझना क्योंकि श्लोक में-
 देवात् देवयोग से मरजाना कहा गया=तिससे=जहां इच्छा सहित अनेकोंने मिलि
 के एक गाय का वध कियाहो तहां सब जुदे जुदे पराही प्रायश्चित्त करें कि जैसे
 सब यज्ञ कार्य में अनेकों का मिलाप प्रत्येक जुदे पुंस्य की व्यापार साधन करनेका
 पूरा फल होता है तैसे ये सब इत्यारे भी पूरे पापके भागो होते हैं बल्कि व्यवहार
 काण्ड में (एकव्रतान्वह्नान्तिययोक्तोद्विगुरादिसः) यह बगड के स्थलपर कहा गयाहै
 कि यदि एकही मनुष्य की बहुत जने मिलिके सारें तिन सबको दूना दण्ड देना चा-
 हिये जो मनुष्यके मारनेका दण्ड लिखाहो तिससे=इस प्रसारा से भी सब जुदे जुदों
 को पूरा प्रायश्चित्त सूचित होताहै ॥ ० ॥ रोधादिनापिगोसमुदायहननप्राय-
 श्चित्त=छंधने बांधने आदि प्रकारोंसे एकही ने बहुतसी गौएँ मारडाली हों तिसके
 मध्ये संवर्त और आपस्तव दोनोंने एकही तुल्य विशेषता कहीहै=यथाहस्त=व्याप-
 नानावह्नांतरीधनेबंधनेतथा भियङ्गमिथोपचारेचद्विगुरागोत्रतचरेत्=अर्थात्=छंधने
 या बांधने में जो बहुतसी गौएँ मारडाली और भी विरोधी चिकित्सा के उपचार में
 जो गाय बैल मरजाय तिसकी भी दूना प्रायश्चित्त करना चाहिये यही नियमहै-
 अर्थात् ऐसी दशामें बहुतोंके मरजाने परभी प्रत्येक जीवहानि का जुदा प्रायश्चित्त
 नहीकरियाजासक्ताहै (और तत्वात्मक न्याय की प्रवचनतासे एकभी नहींकरनायोग्य)

तिससे इसीअवोक्त वचन के बलसे दुष्पनाही व्रत करना चाहिये कि जैसी प्रतिष्ठा वाली एकगाय के मरजाने पर पहिले वर्षान होचुका हो उसी प्रतिष्ठा वाली एक जनेसे अनेक मरजायें तिनमें सिर्फ दूनाकरै-तथैव इसी अवोक्त वचन के बलसे गौओं का चिकित्सक भी विरोधी दवादाह आदिकरने से इच्छा बिनाही अनेक वा एक भी गऊका प्राण बिनाशै सो दूना व्रत करै-यहां पर इच्छा बिनाभी शोध होजाने में बहुत बड़े प्रायश्चित्तों का दुष्पना करना कहा तिसका हेतु केवल बहुत गौएँ एक साथही मरजाना समझ लेना-अन्यथा रोध बंधन आदि से एकही मरजाने नखेछोटे प्रायश्चित्त हैं सो अगिले परिच्छेद में देखना ॥ ० ॥

आहाराद्याधिक्येनापिगो हननप्रायश्चित्तं-पशुवैद्यसे उपरालू जो कोई केवल उपकार के निमित्त से ही विपरीत औषध आदि कुछ देकर इच्छा बिनाभी यदि प्राण हर्ने तिसके मध्य ब्यास का अप्रोक्त वचन है-यदाह ब्यासः-औषधंलवसांचैव पुण्यार्थमपिभोजनम् अतिरिक्तं नदातव्यं कार्पेत्स्वल्पंतुदापयेत् अरिक्तेविपत्तिश्चेत्कृच्छयादोविधीयते-अर्थात्-दवाई या नमक जो पशुओं को दियाजाता है या कोई अपने पुण्यकेलिये अच्छा भोजन यादके पिंड आदि वा सुखानाज आदि कुछ खवानाचाहे सो अनुचित समय पर भुंख परिमान और डील डौल के अनुमान से अधिक न खवावै यह शिखा देकर कहिते हैं कि नमक हलदी तेल आदि कोई चीज हितके लिये रोज रोज कल्प की विधान से जो देनी परै सोभी उचित परिमान से कुछ कम करिके ठीक समय पर देना चाहिये जो हजम होके गुण करसके-अन्यथा जहां बहुत खवाई देने आदि से यदि गायकी प्राण हानि होजाय तहां कृच्छ्र व्रतकी एक चौथाई प्रायश्चित्त कराया जाता है ॥ ० ॥

निमित्तकृतुः प्रायश्चित्तप्रसंगात् रोधादिपुविशेषोक्तिः-अंगिरा ने रोधबंधन आदि से मरने में विशेषता कही है तिसका ब्योरा समझना चाहिये-यथाहंगिरा-पादमेकंचरेत्रोवेहोपादोवनेचरेत् यो जनेपादहानिरुपाचरेत्सर्वं निपातने इति (तदयवहितव्यापारिणोनिमित्तकर्तुर्विज्ञेयंसाक्षात्कर्तुः-अर्थात्-खूं-धिके मारने में एक चौथाई व्रत करै और बांधने से मारने में आधा प्रायश्चित्तकरै और दोहने को बछरा जोड़ने से अर्थात् जोध में जुड़ा रदिजाने आदिकिसी हेतु से मरजाने में एक चौथाई छोड़ि शेष तीन पाव प्रायश्चित्तकरै और निपातन अर्थात् ऊंचे नीचे गिराइके मारने में पूराही प्रायश्चित्त करै (यह तीन महीना वाले मनु के कहे प्रायश्चित्त की योग्यता यहां नमझनी जो २६५ की अविकोक्ति में कहि चुके हैं) यह अंगिराने कहा-तो उसकेलिये समझना जो साक्षात्कार इत्यारा न हो

किन्तु—निमित्त कर्तास्त्रय होय—निमित्त कर्ता का स्वरूप ब्रह्महत्या के प्रकरणा में आचुका है कि ब्राह्मणा का मारना नहीं चाहता था पर किसी तरहसे खिझाने लगा या गाली आदि अपमान करने लगा तिससे ब्राह्मणा आप उसके हेतुसे मरगया तो वह निमित्तकर्ता इत्यारा उद्दिष्ट—तैसा यहाँपर भी समझलेना कि यद्यपि गाय को मारना नहीं चाहता परन्तु ऐसा कोई निमित्त पैदा कि जैसा अपने घर खेत आदि पर आती देखि संकट का मार्ग होतेहुये तीव्र वेग से खेदिकर ललकार मारी या गाय का पीछा किया जिससे वह घबड़ा कर किसी ऊँचे नीचे या जल अग्नि आदिमें आपही गिरिके मरी तो यह निमित्त इत्यारा उद्दिष्ट। यद्वा इन ढंगों से भी मौतका निमित्त होता है कि जंगल में चराते या बाँवते खोरते समय गवालिया को किसी तरह का झूठ बोला देवे कि इवर के भुंजवन में तेरा एक बच्चा फूँते खोंचे लिये जाते हैं जल्दी दौड़ वह घबड़ा कर उवर भागा इवर सिंह वा भेड़िये ने आकर एक गाय मार डाली तो यह बोला देने वाला यद्यपि साक्षात् इत्यारा नहीं है पर निमित्त इत्यारा उद्दिष्ट इत्यादि नाना प्रकार से निमित्त पैदा होसकते हैं किन्तु (साक्षात् इत्यारा जो खोंचिवाँचि आदि किसी प्रकार से बहुत गाय मारे तिसको हुना प्रायश्चित्त ऊपर कहिचुके हैं संवत् और आपस्तंब के वचन में देखो)—यहाँ पर—मिताक्षराकार कुछ औरही प्रकारसे मुख्य कर्ता और निमित्त कर्ता के लक्षणा भेद बताते हैं और ऐसा कहिते हैं कि दोनोंका भेद उन्हीं अगिराने दर्शाया है सो उनका दूसरा वचन आगे देखो—यथाहंगिराः (पायायौर्लंकटैर्वापि शस्त्रेणान्येनवाबलात्वा निपातयति यथास्तु कृत्स्नं कुर्युर्न तद्विहिते तथैव बाहुजंघांश्च पाश्र्वग्रीवांश्च मौर्धनैरिति) इस वचनका अर्थ तो प्रत्यक्ष यही है कि—पत्थरों या लाठियों या और किसी शस्त्र से जत्रवंस्ती जे कोई गोएँ विनाश करें वे पूराही व्रतकरें तथा वे भी पूरा व्रतकरें जो गायकी बाहेँ जाँघ घूटे पैशुली आदि और गर्दन खुर चरगा इनको मारोडा देकर मारें (यद्यपि सब तरहके गोवध पर प्रायश्चित्त वर्णन होचुके हैं तिससे इस कुनेल विशेषणों वाले वचनसे प्रयोजन भी कुछ नहीं रहता क्योंकि जिसने दुर्जनतासे इच्छा रहित गाय मारनी चाही तिसने चाहें तैसे मारी सर्वथा इत्यारा उद्दिष्ट उसके लिये दुगुने और बड़े बड़े प्रायश्चित्त कहिचुके तो फिर यहाँ पूरा और अथवा कहिना एयाहै) इस घोथरी दशाके होनेपर भी इनारे परमपूज्य शुभ मिताक्षराकार अपना मतमौजी नाटक इसी वचनके साथ आगे लिखते हैं कि जितने प्रत्यक्ष सकही अर्थ ऊपर लिखागया उसने पहिंता वचन खोंचिकर दो भेद खड़ेकरते हैं सो देखो—यथा

हुर्मिताक्षराकाराः (अथैतदुक्तं भवति पायासाखड्गादिभिर्ग्रीवामोक्षनादिनावांयेगां निपातयति तेषां क्षादन्तारस्तेष्वेव कृत्स्नप्रायश्चित्तं ये तु व्यवहितरोध वंधादिभ्या-
पारयोगिनस्ते निमित्तिनः तेयान् कृत्स्नव्रतसंबन्धः किन्तु तदवयवैरेव पादद्विपादादिभि
रिति तत्र चरोधादीनां व्यवहितव्यापारत्वाविशेष्येपि क्वचित्पादं क्वचित्त्रिपादं पा-
दोनं क्वचिदित्युक्तं) = अर्थात् यहाँ अंगिरा के वचन पर ऐसा कहें कहा है कि प-
त्थर तलवार आदिसे या गर्दनि मिरोहने आदि प्रकारोंसे जो लोग गायकी विनाश
करते हैं वे साक्षात् मारनेवाले इत्यारि कहाते हैं उन्हीं में परा प्रायश्चित्त चाहिये •
और जे कोई ढँकेहुये रोध बंधन आदि उपाय मिलाने वाले हों सो निमित्ती कहाते
हैं उनके लिये पूरे व्रतकी योग्यता नहीं है किन्तु रोध बंधन आदि पूर्वोक्त उसके क्षा
भेदसे ही एक पाद या दोपाद आदि व्रत चाहिये जैसा इन्हीं अंगिरा के पहिले वचन
में ऊपर कहि चुके • तहां रोध बंधन आदि जो जो निमित्त कहे गए तिनमें यद्यपि ढँके
उपायों का विशेषण कोई नहीं है तो भी उस वचनको यहाँ पर निमित्ती के साथ मि-
लानेकी गरजसे अशोक्त वचनके अनुसार वहाँ भी यही समझिलेना कि ढँकेहुये उ-
पायों वाले निमित्ती के लिये वहां एकपाद दोपाद कहीं तीनपाद प्रायश्चित्त ठीक
होना (ध्यान करो यह दूसरी भाँति के निमित्ती वाली व्यवस्था अंगिरा के पहिले
वचनसे खोचिके बनाई गई जिस निमित्तीकी गर्ज से उस ऊपरले पहिले वचन का
सचा अर्थ भी बिगड़ने लगा • क्योंकि यहाँ पर ढँके हुये उपाय करने वाला निमित्ती
टहिराया गया ढँकेहुये उपाय भी ऐसे ढंगोंसे होते हैं कि जैसे जिस मार्गमें रातिको
बेखटक गौसे निकसा करतीहों उसी मार्गमें कोई दुर्जन ऐसा ढँका उपाय रचिराखे
कि जैसी हाथी पकड़नेको ओगी पाटी जाती है उसमें गिरिके गाय मरजाय अथवा
बहुतसे सुखे घास फूसके स्थान पर जहां गौसे सोती बैठतीहों तहाँ कोई दूध जो छिपि
के आगि लगादेवे • जिससे गौसे जलमरे ती यह दोनों भाँतिके ढँके निमित्ती टहिरें
परन्तु ऐसे दुर्जन आततायियोंको काँकर एक पाद दो पाद आदि छोटे प्रायश्चित्त
कहे जासक्त हैं किन्तु ऐसे महापापियोंको दियुगा चतुर्गुणा प्रायश्चित्त कहे जायँ सो
भी थोड़ा है • और ऊपर (पादमेकं चरेद्ग्रीधे इत्यादि) इस अंगिरा के वचन में जो नि-
मित्ती माने गए तिनके निमित्त सब खुल्लमहुआ करते हैं जिनसे प्रायश हरकोड़े खोला
नहीं खासक्ता और यथार्थमें उनके किये खुल्लम निमित्त इस बाँझासे नहीं होते कि
गायकी मरवाइ डारें केवल वे अपनी दिल्लगी या क्रोधके स्वभाव से निमित्त पैदा
करते हैं तिसमें देवयोगसे यदि गायको प्राण चले जायँ तिससे निमित्ती टहिरके एक

दो पाद आदि प्रायश्चित्तके भागी होजाते हैं—इसके सिवाय—उम ऊपरके निर्लेप वचनको खींचिके ऐसे वचनके साथ जोड़िलेना जिसमें पत्थर हथियार आदिसे और गर्दनि आदि श्रेणोंकी तोड़ि मड़ोरिके मारने वाले निर्दयी कसाइयोंका चर्चाहै यह कोई बात न्यायात्मक नहीं देखि परतीहै बल्कि विचारसे वह पत्थर आदिवाला वचन अपने मूलरूपहीमें निरर्थक है तिससे इतनी बड़ी व्यवस्थामें कोई ठीकठीक सारांश नहीं पाया गया=अथवा=ऊपर जो मिताक्षराकार-ने संस्कृत व्यवस्था में यह लिखाहै कि (येतद्व्यवहितरोधबंधादिव्यापारयोगिनः तेनिमित्तिनः तेषामनह रूतसंज्ञः) इस पंक्ति का ऐसा अर्थ लगाया जाय कि-जे कोई लोग व्यवहित अर्थात् दीवार आदि किसीआड़में या दूसरे शून्यमकान गोंदरेधरे आदिमें गौआँकी बुद्धा संविद्धे या रस्सी आदिसेबानिके आप जुदे स्थानआदि पर वशापर बंधोंका योग प्रबंध करते, रहें कि जिन बंधोंकी भूलमें अकेली बँबी गौआँके प्राणा किसी प्रकारसे जातेरहें तो यह भूलवाले रसक या मालिक निमित्ती होतेहैं अर्थात् सा-साव हत्यारे तो नहींहैं परन्तु निमित्त रूपी हत्याके प्रायश्चित्त होतेहैं क्योंकि वेखबरीका निमित्त उनपर टाँहरा—फिर इस अर्थके अनुवार अगिराके सबसे पहिले वचनमें इस तरहसे व्यवस्था जोड़ीजाय कि रूतसे मरीहोय तो एकपाद व्रत करे (यह एकपाद २२॥ साडेवाइस दिनमें होताहै) जो मँवोहूई मरी होय तो दोपाद किन्तु आधा प्रायश्चित्त करे जो टाँगमें बन्धा बँवा रहिजानेसे मरीहोय तो तीनपाद व्रतकरे जो ऊँचे नीचे गिरायेके मारीहो तो पूरा प्रायश्चित्त करे जैसा हायसे सा-रने मध्ये कहिचुकेहैं—तो इस व्याख्यासे सारांश यद्यपि निकसता है (तथापि दूसरे पत्थर लाठी हथियार वाले असंगत वचनको इसके साथ जोड़ना कुछ सारांश नहीं है क्योंकि ऐसे मारनेवाले निषट कसाई समझने चाहिये तिनके लिये प्राणांतिक प्रायश्चित्तकी योग्यता पात्रे जातीहै क्योंकि पूरा व्रतसाध उनको कहें) और दूसरा के लिये मूलजात्रका प्रायश्चित्त आगे पराशरके वचनसे छोटसा प्राजापत्य साव सभीको एकसाँ कहा जायगा और संवत्के पहिले वचनमें बड़े प्रायश्चित्तको चौ-याडे और आधा और पौना कहे गए तिनकी चौयाडे भी (साडेवाइस दिन) प्राजा पत्य में बहुत बड़ो होतीहै फिर आधा और पौना यहाँ भूल गफलत के ऊपर कैसे उचित टाँहरै—तिससे जिस प्रकारके निमित्तो ऊपर संवत् वाले पहिले वचनके साथ ही लिखिचुके तिनके लिये तत्रोक्त प्रायश्चित्त ठीक प्रतीत होतेहैं क्योंकि वे निमित्त

पैदा करने के हेतुसे एक प्रकारके मध्यम अपराधी समझे जाते हैं यह जानें ॥ और शूने सकानमें अकेली बंधी रहिना आदि छोटी छोटी बातें ऐसी बहुत हैं जिनसे भूल वा अज्ञानतामें सरजाने के छोटे छोटे प्रायश्चित्त हैं सो सब अगिल परिच्छेद में पराशर और आपस्तंब और संवर्त आदिके वचनोंसे देखना ॥ २६५ ॥ इसी मूलश्लोक वाली टीकासे यह पाठ चला आता है ॥ २६५ ॥

अथबंधनयोक्तृवदाहवाहादिकर्मसुबहुविधव्यातिक्र-

मभेदोपपातकानांप्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः

चिचत्वारिंश ४३ ॥

इस परिच्छेदमें केवल विरली बातें छोड़िके सर्वथा अनपेक्षित गोमरणाकाचर्चाहै कि यद्यपि किसीने मारना या मरना नहीं चाहा परत दैवयोगसे बाँधने छोड़ने जोड़ने जोतने बाहने बागने आदि जरूरी कर्मोंके धंधोंमें व्यतिक्रम हो जानेसे कोईबैत गाय मरजाय तदां रक्त या स्यामीको उपेक्षाके पलटे कुछ प्रायश्चित्त करना होता है • तिसके भेद सबक्रमसे आगे आवेंगे—तहां प्रथम बाँधने छोरने आदि बातोंका १ फिर बागने बाहने आदि का २ फिर घंटा बजिके मरने का ३ जंगल आदिमें रखवारी को भुलका ४ कहीं चिकित्सा आदि करते मरजाने का दोषाभाव ५ कहीं हाड़ आदि टूटिके न मरने में भी प्रायश्चित्त ६ विरानी मारी गायके सोल देने का नियम ७ गोवधके पहिले तीनों परिच्छेद वाले प्रायश्चित्तोंका निराय वर्योंके भेदसे ८ फिर स्त्री बालक बूढ़े रोगी आदिके प्रायश्चित्त भेद ९ ॥

(बंधन योक्त्यादिभिर्मरणप्रायश्चित्तं)

ऊपरले परिच्छेदमें जो अगिराके वचनसे गाय बाँधते दुहते आदि समयपर मर जाना कहा सोती केवल उपरालू निमित्तोंका प्रायश्चित्त था कि यदि कोई गौर किसी निमित्त को उन्हीं समयों पर उत्पन्न करै=अर्थात्=इस परिच्छेद में साक्षात् प्रधान कर्ताके प्रयोजन से बाँधने छोरने आदिके नियम कहेजायेंगे कि—बैल या गौओं की नाथ गरखोल आदि वंदनसे यदि किसीको प्राण भी जातेरहें तिसका प्रायश्चित्त

जाय क्योंकि धर्म की मर्यादा भी लोकवर्ता से विरोधी नहीं होती बल्कि लोकहीसे सब धर्म सिद्ध होते हैं कहीं ऐसा नहीं देखा कि स्वतः देव योग के उपद्रवों में गायमर जाने पर भी रक्षक यामालिक पर प्रायश्चित्त लगाया जाय जबकि वह अपनी ओरसे चौकसाई पर मौजूद बना रहा तो फिर देवीगति के उपद्रवों में उसका क्या दोष है (इसके लिये (यंत्रोत्थोश्चिकित्सार्थे इत्यादि) यह सर्वा का वचन आगे आवेगा सो चार पाँच पादों को छोड़िके कुछ दूर जाकर ठूँदी तहां अर्थोंको देखिके सदेह जाता रहेगा) तिससे पराशरके वचन में तात्पर्य केवल यही है कि जिसके सम्मुख मौजूद न रहिने आदि भूल गफलतमें उपद्रव खड़ा होनेसे यदि कोई गाय मरजाय तो हाजिर न रहिने के प्रसाद का अपराध उसपर आता है इसीसे अकामकृत पाप उसका ठहिरा कि गाय मरजाने की कामना उसके नहीं थी परन्तु कामनाके बिना भी गफलत से पाप उसने कमाया तो यह छोटा पाप ठहिरा इसीलिये बारह दिन का प्राजापत्य और दृढ गायका जोड़ा दान और रक्षणा सहित ब्रह्मभोज करना पराशर ने कहा (यह निर्णाय पहिले सर्वा के वचन वा नी व्याख्या में भी सब से अन्त में आशुका तहां देखी ॥ ० ॥ अतिदाहवाहनादिभि र्मरणेगुप्तप्रायश्चित्तं—जहां किसी की दाह देनेके प्रयोजन में अत्यंत दाह दियाजाने या अतिशयवाहने जोतने आदि बहुधाऐसे कामोंमें उज दपनसे कोई गाय बैल मरजाय तिसके प्रायश्चित्त ऊपरले प्रायश्चित्तसे बड़े हैं सो आपस्तम्बके वचनसे देखी=यथाह आपस्तम्ब = अतिदाहातिवाहाभ्यानासिकाच्छेदनेतथा नदीपर्वतसरोधेमृतेपादोनमाचरेत् (अवतु लक्षणाभाष्ये योगिनिवाहने दीयः) अन्यथांकनलसाभ्यांवाहनेमोचनेतथासायसगो पनार्थचनदुष्पेद्रोधवधने इतिपराशरस्मरणात्(अकनस्थरचिह्नकारालक्षणासांप्रतोप लक्षणावाहनेशास्त्रोक्तमार्गेणोतिमितासरा=अर्थात्—दाह जो गरम लोहेसे पशुओं का रोग निदानेआदि के निमित्त कियाजाताहै सो अत्यन्त करनेसे या दाह जो हलवा-इन आदि में जोतना प्रसिद्ध है सो अत्यन्त करायाजाय तिससे या नाथ लगाने की नाकछेदने में या नदी पर्वतआदि कठिन स्थानों में रोकने से यदि गऊ दृढ कोई मरजाय तहां तीन सहीने वाले प्रायश्चित्त का एक पाद छोड़िके तीन पाद प्रायश्चित्त करें (परन्तु इसमें जो चिह्न करने मात्र का जल्दरी दाह दिया जाय जिससे प्राण हानि न होसके तो कुछ दोष नहीं है) क्योंकि पराशरके इसवचन से नियम है कि अकनने और चिह्न करनेमें जोषशुश्रूषा वन्धन करना परताहै तिससे अन्यत्र उपरालू तथा वाहन सवारी आदि में दृढ जोड़ने या सांड छोड़ने या सध्या समय

रसा में राखने के लिये जो रूंधना और बाँधना होय तिसका दोय नहीं है (आं-
कना वह कहाता है जो पक्का चिह्न करना होय हमेशके लिये और लसगा वह क-
हाता है जो अभी हालके लिये कोई चिह्न करना होय यह मितासराकारोंने कहा
तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि आंकना तो वही समझना जो रोग मिटाने आदि
के निमित्त से दाह दिया जाय और लस गन्ध से नसरा उसको समझना जो सांड
पहिचानने का चिह्न या नैलों की गिनतीके नम्बर अंक आदि दागे जाते हैं अर्थात्
दोनों में लोहा गरम से दागना होता है निर्फ जखरी प्रयोजन दो जुड़े जुड़े होते हैं
तिससे अंकन और लसराकाभेद किया गया कुछ इनेशा और हाजका तात्पर्य ठीक
नहीं है • और, वाहन सवारी आदि में जोड़ने बाँधने का जो दोय नहीं कहा सो
भी जितनालोक और शास्त्र के अनुसार उचित हो उससे अधिक में दोयभी होता
है ॥ • • • यद्यपि राज वृषभकी रसा के निमित्त बाँध राखने का दोय नहीं बताया
तौभी धिरले या बहुधा बंधन सेसे हैं कि उनसे बाँधनेमें दोयकी उत्पत्ति होती है तिससे
व्यास जी ने उन बंधनों से बाँधने का नियेध भी दर्शाया है—यथाह व्यासः—ननालि
केरेसानशाखाबालैर्नचापिमोच्चैर्ननवन्धन्युखलैः स्तैस्तुगावैननिबंधनीयाबध्वाऽनुति
स्तेपरशुगृहीत्वा कुर्यैःकांशैश्चबधीयास्त्यानेदोयविवर्जिते—अर्थात्—न तौ नारियर
कीजटा बकल आदिकी बनी रस्म से न सनकी बनी रस्सीसे न बालोंकी रस्सीसे न
सूजकी रस्सी से बाँधें न ऐसी किसी मेखला चमड़े आदि की बनीसे बाँधें जिससे पैर
फँसकर चलना फिरना बन्दहोय यहा उस मेखलासे न बाँधें जिसमें अनेकपशु सक
हीमें फँसेजायँ (मेखला या खूँवला वही कहातो है जो जँजेरेके आकारहोय) इतने
प्रकार के बंधनोंसे राज वृषभ न बाँधने चाहिये और जो इन्हींसे बाँधें तो इतनी बड़ी
चौकसाईकरे कि फरसा गंडासा आदि हाथ में लेकर उनके पास पहिरादेवें कि यदि
सौंपअग्नि आदिका उपद्रव कुछ उठ खड़ाहो तो तत्काल बंधन काटि दिये जासकें
जिससे प्राणा हानि न होने पायै—इतीलिये यह आज्ञा है कि कृष कांश की रस्सी
से बाँधें जिसको उपद्रवके समय आपही तोड़ि भागें वल्कि ऐसी जगहमें बाँधें जहां
उपद्रव न उठिस्के या उठनेपरभी प्राणा बचाइसकें खत्ती आदिमें न गिरजायँ ॥ • • •
अथ घंटादिदोषमरणे प्रायश्चित्तं—तराह आपस्तंब—घंटाऽभरणादोयेशाविपत्ति
र्यदिगोर्भवेत् कच्छार्धतुभवेत्तत्रभूयणार्थहितस्मृतत्वं—अर्थात्—गले वंधे घंटा की आ-
वाज सुनिके सिंह आकरगाय सारै या पहिनाये हुये भूयरा के लालचसे चोर डाकू
आदि राज नार जायँ तहां घंटा और भूयरा पहिराने वाले स्वामीको कच्छ व्रतका

आधा प्रायश्चित्त चाहिये यह दोनों बात भयरा नौधने की निमित्तसे पाप हुआ क-
हाता है ॥ ० ॥ अतिदोहनादिभिर्मरगोप्रायश्चित्तं तदप्याह आपस्तंबः=अति
दोहातिदमनसंघाते चैव योजने वध्वायुं खलपाशैश्च मृतेपादौ न साचरेत्=अर्थात्-अति
दूध दुहिलेने से यदि गऊ या बहुरा सरजाय तिसके पाप में और प्रवल गाय दृयभ
की शिक्षा हेतु से अत्यंत दमन करने में अर्थात् उचित शिक्षासे अधिक ताड़न पीटन
करते यदि सरजाय तिसके पाप में भी और आपस के सघात में खबर न लेनेसे लड़ि
भिड़के सरजाय तिसके पापों और गरखोल आदिबंधनमें उन्नतिके सरजाय तिस
बेखबरी के पाप में और दुहिते समय बहुरा जोड़ने खोरने के व्यतिक्रम या बैलोंकी
रथ आदि में जोड़नेके व्यतिक्रम से दो में एक सरजाय तिसके पापमें और लोहेकी
जँजीर या रस्सी आदि की सरकफूंद से नौधने में फाँसी लगिके सरजाय तिसके पाप
में इतने उक्त निमित्तों पर निमित्तो इत्यारा पुन्य एक चौथाई कम करिके तीन
पाद प्रायश्चित्त करे=यह पौना प्रायश्चित्त भी कृच्छ्र प्राजापत्य का समझता जो
अभी घंटा के दोय में केवल आधा कड़िचुके क्योंकि आपस्तंब के ये दोनों वचन
साथही मिले पाये हैं ॥ ० ॥ रचणादिव्यतिक्रमतोऽपि मरगोप्रायश्चित्तं=उन्हीं
आपस्तंबने जंगल आदि में रसाके व्यतिक्रमसे मरजानेमें भी स्वामी की प्रायश्चित्त
करना कहा है क्योंकि स्वामीने चतुर सिंहनती गोपालको नहीं सौंपी यही उसपर
निमित्त दहिना=यथाह=जलोघपत्न्यलेमनमेघविद्युद्धताऽपि वा गर्तायांपतिताऽक-
स्माच्छवापदेनापि भक्षिता प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोस्वामीव्रतमुत्तमम्॥ शीतवाताऽऽह ता
वास्यादुद्धं धनहतापि वा शुन्यागार उपेक्षायां प्राजापत्यं विनिर्दिशेत्=अर्थात्-बहुतजल
के ताल तलैयोंमें डूबी या अति बर्षा और विजली की मारी सरजाय या गड़हिले
खाड़े आदि में गिरिके मरे या अचानक सिंह व्याघ्र आदि भक्षरा करिजाय तो
उस गाय का मालिक उत्तम रीति विधान से कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करे ॥ अथवा
अति शीत पाला के परने या भक्षता वायु आँधी के चलने से या जेटकी लूसे मरी
हो या वंधनकी अलखेट फाँसीलगिजानेसे मरीहो या सुनेघरमें अकेली बँधीहोनेकी
उपेक्षासे भूखी ध्यासी आदि होकरचाहे किसी तरहसे मरीहो तो प्राजापत्य करना
चाहिये क्योंकि येवर्ते सब स्वामीकी गफलत से उत्पन्न होतीहैं परन्तु यह पुरात्राय-
श्चित्त उसीको करना चाहिये जो किसी बड़े कार्य में न लगाहो किन्तु जो स्वामी
किसी कार्य में लगाहुआ व्यग्र हो तिसको आधा करना चाहिये और शेष आधा
गोपालपर आरूढ कियाजाय=तो इसआधेका प्रमाणाभी अश्रोक्त विष्णाका वचन

इ=यदाह विष्णुः=पल्लवलोघमृगव्याघ्रश्वापदादिनिपातने अथप्रपातसर्पाद्यैर्मृतेकच्छा
 र्मसाचरेत् अपालत्वात्तकच्छः स्याच्छून्यागारउपप्लवे=अर्थात्-विष्णुने कहा है कि
 छोटे मोटे ताल तलोंयां जहां जलके भीतर बहुत छिपीहों तिनमें डूबिके मरै या वन
 के बड़े पशुओंसे या बाघसे या भेड़िया कुत्ता आदि किसी से मारीजाय या धरती
 पोलोके छिद्रमें खुरचलाजानेसे गिरिकेमरै या सांप आदि कोई वियैल जीव काटै
 तिससे मरै तो उस गऊका मालिक आधाही कच्छव्रत आचरै परन्तु जो मालिक
 ने रसक सार्थकिये बिना छोड़िदीहो या जहां जहां जो खुद रसाकरनी योग्य थी
 सो मालिकने न करीहो और इन्हीं उक्तप्रकारोंसे यदि गऊमरीहो तो फिर पूराही
 कच्छव्रत करना चाहिये तथैव जो मूने घरमें बांधीहुइं किसी उपद्रव से मरजाय तो
 भी स्वामीको पूराकच्छव्रत करना चाहिये (अब ऊपरसे मिलाकरदेखौ कि आप-
 स्तंबके वचनसे यह विष्णुजीका वचन तुल्यात्मक होगया ॥ क्वचित्तुगोप्राणहानौ
 तुनदोषः-कहीं यहभी एकवर्महै कि जो कोईचाहे मालिकहो या गौर उसीगऊके
 उपकार निमित्तसे किसी व्यापारमें समुद्यत हुआहो उसमें गऊ यद्यपि मरजाय तो
 भी उसको दीय नहींहै अर्थात् प्रार्थप्रिचत्त करने की जरूरत नहीं-सो यह दीयका न
 होना केवल वचन के प्रभाव सेही सिद्ध होताहै कृक और दलील की जरूरत इसमें
 न होगी और वह वचन है संवर्तमुनिका=यथाहसंवर्तः=यंशरागोश्चिकित्सायैगुदगर्भं
 विमोचने यत्नेहतेविपत्तिःस्यान्नसपापेनलिप्यते (यंशराग्याध्यादिनिर्यातनार्थं सं-
 वंशांक्रुशादिप्रवेशनं) तथा-औयधंस्नेहमाहारंददद्गोत्राह्नराद्विजःदीयमानेविपत्तिप्रचे-
 न्नसपापेनलिप्यते ग्रामघातेशरीधेरावेश्यभंगान्निपातने-तथा-दाहच्छेदसिरामेदप्र-
 योगैरुपकुर्वतामद्विजानां गोहितार्थंचप्रार्थप्रिचत्तंनविद्यते=अर्थात्-रोगवाली गऊकी
 चिकित्साके अर्थमें यंत्रणाकर्म करतेहुये या अत्केहुये गर्भके निकासने में यत्नकरते
 समय या उस यत्नके होचुके पोकेंही यदि गऊ मरजाय तो वह करने वाला पापी
 नहीं रहताहै (यंत्रणाकर्म उसका नामहै जो किसी बड़ेगमड़ेकोर आदि को नाश
 करनेको गरम सँझासो आदिसे दागै या अंकुश कील कांय आदि जुभावे और उसी
 यन्त्रणां शब्द से रससा वंचन कर्म का अर्थ लियाजाताहै)=तथैव सक्त यह वचन है
 कि=दवाइये या घी तेल आदि चिकनाइये या दूध रवड़ी आदि या बहुत अच्छाभोजन
 किसी गऊको या ब्राह्मणको देते खिलातेहुये यदि उसकी मौतहोजाय तो वह देने
 खिलानेवाला कोई विजाती पापीनहीं रहताहै क्योंकि उसने पुरायकी अभिलाषा
 से यहकिया-परन्तु पहिले परिच्छेदमें (औयधंलवणचैवपुरायार्थमपिभोजनंअति

रिक्तनदातच्यं इत्यादि) यह व्यासका वचन जो आचुका उसमें गाय की खुराक से अधिक भोजन अच्छा भी खवाना प्रतिषिद्ध हो चुका तिससे—यहां भी पचि सकने के अनुमान साफिक देनेसे ही यदि कोई गाय मरजाय तिसमें दोषाभाव समझना—अन्यथा जानमान परुष जो मुखानाज पेटभरि तानि के खवावे जिससे गाय पेट फूलि के मरजाय तो फिर उसी पहिले व्यासवाले वचनके अनुसार प्रायश्चित्त भी अवश्य करना होगा—तथैव गऊ का मालिक या रखवाला उस दशा में भी नहीं पापी होता है जो गावंपर धरि चड्डि आने से गावें माराजाय उसमें चाहें बाराणों के समूह से गऊ मारीजाय या घर हुत्ने फूंकजाने आदि से मारीजाय—तथैव एक यह वचन है कि—रोगवती आदि गऊके हितके लिये गरम लोहे से दाह देने या गुमडा आदि चीरने या फस्त खोलने आदि प्रकारों से उपकार करने वाले द्विजातियों की विपत्ति होजाने पर भी प्रायश्चित्त नहीं लगता है—ऐसाही पराशर ने भी कहा है कि—अतिदृष्टिहतानांच प्रायश्चित्तं न विद्यते कृपस्वाते च वर्मार्थं गृहदाहे च ये मृताः ग्रामदाहे तथा घोरे प्रायश्चित्तं न विद्यते—अर्थात्—जो गौयें कहीं अति वर्म के होनेसे मरजायें यहांपर भयानक प्रलयरूपी वर्मा समुभिलेजी कि जिसका प्रबन्ध सब लोगोंसे न होताहो) या धर्मके निमित्त कोई कूप तलाग आदि खोदा गयाहो तिसमें गिरिके मरजायें या घरमें आगि लगिजानेसे मरजायें या सब गावें में आगि लगिजानेसे या अतिशय घोर उपद्रव किसी भांतिका उदित्पन्न होने से मरजायें तो इन गौओंके मालिक या रखवाले या कूप तलाव के बनवाने वालोंको प्रायश्चित्त नहीं लगताहै—परन्तु—यहां निपट प्रायश्चित्तका न लगना सिर्फ उन्हीं पशुओं की मौत होजाने मध्ये माना जासक्ताहै जो बंधनके बिना कुछा रहितेहों और देवयोगसे कहीं आगिलगिजाने आदि किसी उपद्रवसे मरजायें—अन्यथा जो बंधनमें रहितेहों और इन्हीं प्रकारोंसे मरजायें तिनके मध्ये आपस्तंबकी विशेषता लेनी चाहिये—यथाह आपस्तंबः—कांता रेण्वयदुर्गो मृगुहदाहे खलेयुच यदि तत्र विपत्तिः स्यात् प्रादसकोचिधीयते—अर्थात्—ऐसे किसी वनमें या पहाड़ीकोट आदिमें कि जहांसंग बड़ा दुर्गमहो या घर खलिदान आदि में आगि लगिजानेसे यदि वहां गौओं की मौत अचानक होजाय तो स्वामी रसक आदि अधिकारीकी एक चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये (यह चौथाई उस प्रायश्चित्तकी समझनी जो ऊपर कहीं आपस्तंबके वचन में कच्छप्राजापत्य करना कहि चुके॥ कचित्प्राणहान्यभावेऽपि प्रायश्चित्तं—कहीं कहीं गायके प्राण बचिजाने परभी प्रायश्चित्त होताहै यदि हाड आदि टूटेहों—य-

या=अस्थिभंगवांशकुत्वालांगुलच्छेदनंतथा पादनदंतचूनासांसासार्धचयवान्पिवेत= अर्थात्-गौश्रौके हाडोंकी तोड़िके या पंख उनकी काटिके या दांत और सांशों की उखाड़िके एक एकवारामर औका दलिया रांधिके पीवें तथा उक्त नियमों की भी सार्ध=इसी वार्तापर अंगिराने कुछ और भेद किया है=यथा=अंगदंतास्थिभंगेवाचर्म निर्माचनेपिवा दशरात्रीपवेद्वज्र स्वस्थापियदिगौर्भवेत् (अत्रतुवज्रशब्दवाच्यंसीरादि वर्तनमुक्ततदशक्तवियर्थास्ति मिताक्षराकारः) अर्थात्-सांश दांत हाड टूटिजाने या खाल उधड़जाने में यद्यपि गऊको आराम होजाय तौभी तोड़नेवाला दशदिन तक बज्जपीकर प्रायश्चित्त सार्ध (बज्जनाम यद्यपि तालमखाने और मृपेदकशोंकाभीहोता है परन्तु आचार्योंने दूधका फेला और दूधआदि पीके रहनेयोग्य आचारोंका नाम बज्ज कहाहै और इसके साथ यहभी आशय दर्शायाहै कि यह दशदिनकीयोड़ी अवधि और दूधआदि पीना उस प्रायश्चित्तकी निर्मितमें समझना जो अशक्तहो यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥०॥ इतगोसमानमूल्यदानंच-यह प्रायश्चित्त जो जी क हिचुके सो पीछेकरे किन्तु मरीहुई गऊके समान दूधरीगऊ यहा बैसीगऊके बराबरमोल उसके स्वामीको प्रथम देकर प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करे=तदाहपराशरः=प्रमाणोप्राणाभृतांदद्यात्तत्प्रतिरूपकम् तस्यानुरूपमूढ्यंवाद्यद्यदित्यब्रवीन्मनुः=अर्थात्-गऊआदि प्राणियोंके मारडारनेमें वैसाही प्राणीलाकर स्वामी को समर्पण करे अथवा वैसा जीव न मिलसके तौ उसके अनुमान जितना मोल उचित हो वही देवें यह मनुकी आज्ञा पराशरने कही=एवंमनुने आपभी यह दण्डकेप्रकरणमेंकहा है कि=योयस्यहिंस्यात्तद्रव्याणिज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा सतस्योत्पादयेत्तुष्टिराज्ञोवाद्यात्तत्समम्=अर्थात्-जो कोई जिसकिसी की कोई चीज बिगाड़ या बिनाशों से उसकीसंतुष्टि उत्पन्न करे किन्तु जैसेहो तैसे उसका राजीनामा प्रकाश करे और उसी द्रव्यकी बराबर वह राजमेंभोजुमाना भरे ॥ ० ॥ उक्तप्रायश्चित्तानां सर्ववर्गभेदेन प्राप्तिर्निर्णयः-यहाँ तक पूर्वोक्त प्रायश्चित्त भाष जो गोवध के मध्ये वर्तान्क्रिये गयेसो सब केवल ब्राह्मण प्रायश्चित्तकी निर्मित में समझने किन्तु जो स्त्रीआदि कोई अन्यवर्ग इत्यारेहो तिनके लिये दृढदृष्ट्याने विशेषता प्रकट करीहै=यथा=विप्रेहसकलदंयपादेनक्षत्रियेस्मृतम् वैश्येऽर्धपदसक्तुशूद्रजातिषुशस्यते=अर्थात्-जहां जहां जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गया सो ब्राह्मण इत्यारेसे प्रकरवाना चाहिये और स्त्री से वही प्रायश्चित्त एक चौथाई कम करवाना और वैश्यों से आधा और शूद्र जातोंमें सिर्फ चौथाई करवाना येष्ट होताहै (यहाँ गोवध के प्रायश्चित्त

में जो ब्राह्मण पर अधिकता राखी गई सो इस हेतु से कि ब्राह्मण सब धर्मों की मूलहै यदि मूलही बिगड़ि जायगी तौ फिर संसार स्त्री धर्मवृक्ष क्योंकर खड़ा रहेगा तिससे मूलकी सुधारना मुख्य धर्महै जिससे अन्य वर्गोंको शिक्षा प्राप्त होती है)= एक जो अंगिरा का वचन इससे विपरीत प्रतीत होता है कि=पर्यया ब्राह्मणानां तु स राजां हि गृणामता वैश्यानां चिपरा प्रोक्ता पर्यद्वचनं स्मृतम्=अर्थात्—ब्राह्मणोंकी सभा जितनी होती है राजाओं की उससे दूनी होनी कही और वैश्यों की तिथनी कही और पर्यद सभा के तुल्य उनके व्रत भी होने कहे हैं (सो इस वचन में व्रत शब्द से प्रायश्चित्त का तात्पर्य न लेना चाहिये क्योंकि यह वचन दंडके प्रकरण में प्रति-लोम नालिशों मध्ये जहां, वाग्वंद और वाक्पाठ्य आदि के अपराधी प्रतिलोम जाती हुये हैं तिसके विषय पर आरुढ़ है ॥ ० ॥ अथ स्त्रीवालवृद्धादीनां प्रायश्चित्तविवेकाः—जैसा हीन वर्गोंके पुरुषों में हीन प्रायश्चित्त दर्शाया गया तैसा ही स्त्री और बूढ़े और बालक तथा रोगियों के लिये उन पुरुषों से भी आधा प्रायश्चित्त चाहिये कि जिन वर्गों को जितना कम करिके कहि चुके और जो बालक अनुपनीत अर्थात् संस्कार से विहीन हो तिसके लिये आधे का आधा सिर्फ चौथाई प्रायश्चित्त चाहिये ये सब नियम पहिले वर्णान् हो चुके हैं सो यहाँ भी समझि लेने=शिरोमुण्डनं—स्त्रियों के लिये पराशरने कुछ और भी विशेषता दर्शाई है=यथा=वपनं चैव नारीणां नानुव्रज्या जपादिकम् न गीये शयनं तान्जवसीरसरावाजिनम् सर्वान्केशान् समुद्धृत्य देवैर्बलहयम् सर्ववैविहिनारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम्=अर्थात्—स्त्रियोंकी प्रायश्चित्त की दशा में न मुण्डन कराना चाहिये न विदेशों का फिरना और जप पाठ आदि चाहिये जो विद्याकी सबधी बातें और शोशाला में सीना कहा सो भी न चाहिये और गऊका चमड़ा ओढ़ना जो पुरुषोंको कहि चुके सो भी न चाहिये किन्तु यह करना चाहिये कि सब केशोंको हाथसे एकहि इकट्ठे ऊँचे करिके दो अंगरमात्र कतरि डालें तो यही उनका मुण्डन है जो सभी ऐसे कामों में सर्वत्र उनका शिरसे मुड़ि जाना कहलाता है=एवं=पुरुषों के मुण्डन में भी संवर्त ने विशेष भेद प्रकट किये हैं=यथाह संवर्तः पादेऽक्षरो मवपनं द्विपादेषु मयुगौऽपि च विपादे तु शिखावर्जसशिखंतु निपातने=अर्थात्—जिस पुरुषको एक चौथाई प्रायश्चित्त करने की योग्यता दहिरी हो तिसके कंठसे लेकर पैरों तक रोमा मुड़वाने चाहिये यही उसका मुण्डन है जिसको आधा प्रायश्चित्त करना दहिरी हो तिसकी मूक दाढ़ी भी मुड़ानी चाहिये जिसको तीनपाद प्रायश्चित्तकी योग्यता दहिरी हो तिसकी केवल

चोटी छोड़िके सब देहके रोमा और बाल भी मुझने चाहिये जिसने गऊका पुराही निपात किया अर्थात् जिसको पुरा प्रायश्चित्त करना ठहरा हो तिसकी चोटी सहित सब देह मुझानी चाहिये ॥ श्रीमन्मितासराकार विज्ञानेश्वर आचार्य कहिते हैं कि इसी रीतिसे और भी जे कोई स्मृतियोंके अधिक वचन मिलजायें तिनकी विषय व्यवस्था अपनी बुद्धिसे विचार लेनी चाहिये परन्तु इसी मार्गके सहारे से कि जैसा डोल हमने बांधा ॥ इतिगोवध प्रायश्चित्तप्रकरण इस प्रकरणा में गोवध के जुदे जुदे भेदोंसे चारि परिच्छेद हैं चालीसवेंको आदि लेकर ४३ तेंतालिसतक पूरे हुये ॥ २६३ ॥ २६४ ॥ इन्हीं दो श्लोकोंकी अधिकोक्तिके शेष पाठमें यह परिच्छेद है ॥
 ॥ अब अगिले परिच्छेदसे लेकर ब्राह्म्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे तिनपर प्रायश्च गोहत्यामें कहे प्रायश्चित्तों का अतिदेश उतारते रहेंगे और कुछ कुछ उनके जुदे प्रायश्चित्त भी दर्शाते रहेंगे सो सब उन्हीं दिक्कानोपरदेखना ॥

अथोपपातकसामान्येषु सर्वेषु पूर्वोक्तगोवधप्रायश्चित्त स्यातिदेशप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चतुश्चत्वारिंशः ४४

इस परिच्छेदमें पूर्वोक्त गोवधके प्रायश्चित्त लेकर साधारण सभी उपपातकोंपर अतिदेश उतारा जायगा कि उन हरसकके जुदे प्रायश्चित्तों से उपरालउनपर गोहत्या वाले प्रायश्चित्तभी विकल्पसे लागू सकेंगे-परन्तु बिरलोपरनहीं भी लागू सकेंगे केवल अपने जुदेही उपदेशक प्रायश्चित्तउनपरल गेंगे ॥

(सर्वोपपातकेष्वतिदेशः)

उपपातकशुद्धि स्यादेवचाद्रायणेन वा । पयसान्नापिमात्सेनपराकेण धवापुनः २६५

अन्तरार्थः—सब उपपातकसे शुद्धि होय या चांद्रायणसे या दूधके साथ एक सहीना से अथवा पराकसेही ॥ २६५ ॥

अप्रमिप्रायः—२३४ दोसौ चौतीस आदि २४२ तक नौ मूलश्लोकों से जो जो उपपातक दर्शाये उनमें सबसे पहिला गोवध कहा था तिसके प्रायश्चित्त कई परिच्छेदोंसेपूरे हुये अब यहां ब्राह्म्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहिना

चाहते हैं—तिसके लिये चालीसवें परिच्छेद में जाकर २६३ दोसोत्रेसति आदि मूल प्रलोकोके अर्थ और अधिकोक्तिकोभी देखीं कि वहांपर योगीश्वरने जो कुछ कहा था उसी प्रायश्चित्तका अतिदेश यहां श्रेय उपपातकोपर उन्हीं योगीश्वरने उतारा है—कि—एवं इसीप्रकार जैसा गोवधमें कहिचुके तैसा प्रायश्चित्त करने से श्रेय उपपात कांकी भी शुद्धि होसकतीहै—परन्तु जो ऐसा करना न चाहे तो चांद्रायणके करने से भी शुद्धि होतीहै जिसका स्वल्पकहीं आगे कहाजायगा—अथवा एक महीना दूधपीने का नियम साधनेसे भी उपपातकां की शुद्धि होजाती है अथवा पराकनाम का व्रत करनेसे भी शुद्धि होती है ॥ २६५ ॥

२६५ अधिकोक्तिः—यहां उपपातकोके प्रायश्चित्तमध्ये जो अतिदेश दिया गया तिसकी सामर्थ्यसे पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंमें बिरली बातोंका कमकरना भी पायाजाताहै कि जोजो बातें देवकर गोवधसेही सबधरखतीहैं इसका दृष्टांत जैसे गऊका चमड़ा ओढ़ना या गौओंके पीछेपीछे सेवाकरते फिरना इत्यादि बातें खासकर मोइत्याकेही प्रायश्चित्तमें बर्चितहोंगी सभी उपपातकोंमें नहीं—क्योंकि जो सभी उपपातकोंपर आवश्यकहोतीं तो फिर २६३ दोसोत्रेसतिसे जो कुछ प्रायश्चित्त कहिचुके सो केवल गोध प्रसूयकेनामसे न कहेजाते किन्तु सभी उपपातकी पुरुषाकिनामसे कहेजाते—इसीलिये अतिदेशकी सामर्थ्यका चर्चा यहां किया गया कि यद्यपि अन्य उपपातकोंपर गोवधवाले प्रायश्चित्त कियेजासकते हैं तथापि उसकी सभीवातें सर्वत्र नहीं स्वीकार होसकतीहैं अतिदेशका स्वभाव यही होताहै ॥ ० ॥ यहां जो २६५ मूलप्रलोक में चार प्रकारके व्रत कहेगये तिनकी उस प्रकारके उपपातकों पर समझना चाहिये जो इच्छाबिना धोखा आदिसे होगये हों तिनमें अपराधीकी शक्ति के अनुसार इन चारों मेंसे कोई एक व्रतकराना चाहिये कि जिसका बोझ उससे उतिसके—अन्यथा—जिसने जानबूझि इच्छासे कोई एक उपपातक कियाहो तिसकेलिये मनुकाकहा तीन महीने का प्रायश्चित्त विचारना चाहिये—यथाइमनु=एतदेवव्रतं कुर्यु उपपातकिनो द्विजाः अवकीर्णवर्जशुद्ध्यर्थांचांद्रायणमथापि वा=अर्थात् मनुजी पहिने तीन महीना का जो प्रायश्चित्त कहिचुके हैं उसी का अतिदेश अन्य उपपातकों पर दयाति हैं कि—यही तीनमहीनेका व्रतहै सो और सब द्विजाती जो जो उपपातको हुये हों सो अपनी शुद्धिकेलिये कौं अथवा चांद्रायण कौं जो उनका उपपातक छोटा होय तो परन्तु यह नियम अवकीर्णोंको छोड़ के समझना अर्थात् अवकीर्णों भी एक उपपातकी होता है पर उसके लिये जुदा प्रायश्चित्त कहेंगे वही उसकी चाहिये—अव-

कीर्णां इसकानामहै (ब्रह्मचार्यवकीर्णांस्त्रियात्कामतस्तुस्त्रियंत्रजन) ब्रह्मचारी होकर जो कामकी अपेक्षासे स्त्री गमनकरै या इसप्रकारका और कोई यती आदि अपना व्रत भंगकरै सो अवकीर्णां कहाताहै—योगीश्वरने २३६ के मूलश्लोकमें (व्रतलोपश्च) इतने पदसे अवकीर्णांका स्वरूप दर्शायाहै ॥ ० ॥ जबकि योगीश्वर और मनुके दोनों के अतिदेश मौजूदहैं तो इच वचनों के प्रभावसे यह प्रायश्चित्तका अतिदेश उनसभी जनोंपर आरुढ़ समुभन्ना चाहिये कि जो जो उपपातकों के गण में नाम आये फिर चाहें उनमें किसीका जुदा प्रायश्चित्त भी कहागयाहो यद्वा विरलोंकोलिये कोईजुदा प्रायश्चित्त न कहाहो तोभी यह अतिदेश सबकेलिये समभन्ना केवल अवकीर्णांको छोड़िके ॥ ० ॥ यहां एक तर्कवादहै कि जिनकेलिये कोई जुदा प्रायश्चित्त न कहा जाय उन्हींके निमित्त यह सामान्य अति देशरूपी प्रायश्चित्त मानना उचित होता तो हीकथा क्योंकि जो सबकेलिये मानागया तो यह दोय खड़ा होताहै कि जिनका नाम लेकर जुदे प्रायश्चित्त कहे जायेंगे उन प्रायश्चित्तों का बाध अर्थात् सकावट इन्हीं सामान्य प्रायश्चित्तोंके अति देशद्वारा पाईजातीहै कि जब सभीको सामान्य अतिदेश देचुके तो फिर विरलोंको जुदे प्रायश्चित्त बतानेका ठिकाना कहाँ रहा= इसका यही उत्तरहै कि=ऐसा नहीं क्योंकि जैसा तुमने कहा या समझा तैसा होने में यह दूयगाहै कि जब केवल उन्हीं के लिये अतिदेश होता तो फिर उनका पाठही जुदा रक्खाजाता अर्थात् वैसे दूसरी भांति के उपपातकों में मिलाकर उनके नाम जो लिखचुके सो प्रत्येक हुयेजाते हैं=इसके सिवाय जो सामान्य भावसे उपपातकों के गणमें नाम लिखेगये तिनका अन्य स्मृतियों में जुदा प्रायश्चित्त मिलताहै=तथैव जो उपपातकोंके गणमें विरलेनाम नहीं कहे तिनके भी प्रायश्चित्त इसमें लिखेदेख परते हैं इसका वृष्टांत जैसे अयाज्योंका याजक एक उपपातकी लिखचुकेहैं (२३७ के मूलश्लोकमें देखो) तिसका प्रायश्चित्त आगे दोसौनवासी मूलश्लोक में (जीवक च्छूनाचरेद्रात्ययाजको-अभिचरर्चपि) यह कहेंगे इसकेसाथ अभिचारकाभी वही प्रायश्चित्त कहिदिया है कि जिस अभिचार नामका उपपातक अपने गणमें नहीं आयाया इसीप्रकार शरणागत के त्यागनेका अधिक प्रायश्चित्त उसी दोसौ-नवासी मूलश्लोक में देखना ये सभी बातें मिति जावैं और भंटी रहैं जो तुम्हारे उक्त विचार के अनुसार मानाजाय=और यहभी नियम नहींहै कि जो जो उपपातक विशेष किसी सक्तनामसे लिखेगये उनका प्रायश्चित्त जहां लिखा गया तहां खास र विशेष उसी पूर्वोक्त नामसे लिखा हो इसका भी ह्दयान्त पहिले दोसौचालीस

मूलश्लोकमें (इधनार्थदुमच्छेदः) इस पदको देखौ कि यह एक उपपातकहै विशेष कर वृक्षकारनेकोहीनामसे लिखागया। फिर इसका प्रायश्चित्तजाकर दोसौछिहत्तरि २७६ मूलश्लोकमेंदेखौ कि (वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदनेजप्यमृकशतं) वृक्ष•गुल्म•लता•वीरुध• इन चारोंमें किसी के काटने मध्ये एकसौ ऋचा जपनी कही हैं—इन बातोंके सेंचपेंच से यहसार समझिलेना कि उपपातकों के समस्त प्रकरणा में कोई सा एकही क्रम ऐसा सुधा नहीं है कि जिसके द्वारा मालाके श्रिआ समान गिनती गिनाई जासके—तिससे—यही सिद्धान्त ठीकहै कि दोसौचौंतीस मूलश्लोकमें ब्रात्यता को आदि लेकर दोसौन्यालिख मूल श्लोकतक भार्या के वचने पर्यंत जो जो उपपातक हैं तिनकोलिखे प्रायश्चित्त भी चाहें इसी ग्रन्थ के शास्त्रमें या और किसी ग्रन्थ में जो कुछ लिखेपायेजायें सोभी और यहां जो २६५ के मूल श्लोक से चार प्रकार के प्रायश्चित्त कहे वे भी उनमें मीलानकरिके परस्पर उनको समता और विषमता और बढ़ाई छोटाईकेविचारसे विकल्पनियतकरै यद्वा विषयभेदसे विभागकरना और चाहिये—और वे अन्य स्मृतियोंके कहे प्रायश्चित्त भी ब्रात्यता आदिके पाठका क्रम लेकर आगे उन्हींके साथ जोड़े जायेंगे तहां तहां सर्वत्र देखना ॥ २६५ ॥

इत्युपपातकसामान्यप्रायश्चित्तानि

इसी दोसौ पैंसठवाली अधिकोक्तिकापाठ बहुत लम्बा है सो आगे आगे अनेक परिच्छेदों में जाकर पूराहोगा कि जबतक (२६६) मूलश्लोक न मिलेक्योंकि मिताक्षराकारने इसी (२६५) परटीका बहुत बढ़ायाहै तिसके अनेक परिच्छेद किये जायेंगे कि उनमें जुदे जुदे उपपातकोंकी व्यवस्था लिखीजाय ॥

यह भी यादराखना कि यद्यपि इस परिच्छेद में सभी उपपातकों के नामसे सामान्य प्रायश्चित्त कहेगये हैं तथापि बहुतेरे उपपातकोंपर अशोक्त प्रायश्चित्तोंकी पहुंच न होनेसे अपवाद मानाजायगा इसका दृष्टान्त जैसे अवकीर्ण ब्रह्मचारी आदि के लिये ये प्रायश्चित्तनहींहैं सबपरदारगामोर्केलिये ये प्रायश्चित्त नहींहैं तिससे उनके लिये बड़े बड़े औरही प्रायश्चित्त जुदे परिच्छेदों में दर्शयिजायें तहां समझिलेना ॥ २६५ ॥

अथोपपातकिनां ब्रात्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं

परिच्छेदः पंचचत्वारिंशः ४५ ॥



इस परिच्छेदमें ब्रात्यपुरुष को प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—ब्रात्य उसका नाम है जो तीनवर्षोंका पुत्र्य जनेऊआदि सत्कारसे हीनहीनेके कारणा—व्रात जो समूह संस्कृत पुरुषोंका या उसकी जातिमात्रका समूह व्रात है तिससे गिरजाय अर्थात् असंस्कृत हीनेसे पतितदर्शहरे वहीब्रात्यकहाजाताहै तिसकी ब्रात्यतादूरकर देनेके प्रायश्चित्तहै॥

(ब्रात्यप्रायश्चित्त)

ब्रात्यता एक उपपातक जो २३४ दोसौ चौंतीस मूलश्लोक में दर्शाया तिसका प्रायश्चित्त ओगीश्वरने २६५ दोसौपैंसतिके मूलश्लोकमें अतिदेश मार्गसे सूचन कर दिया अब जुदा कुछ न कहेंगे—परन्तु—अन्य मुनीश्वरों के कहे प्रायश्चित्त यहां लिखने आवश्यक हैं तहां पहिले मनुका कहा देखो—यबाह मनु.=येयां द्विजानां वा विधी नानुच्येत यथाविधि तांश्चारयित्वा वीव कृच्छ्राद्यथाविध्युपनायनेत=अर्थात्—जिन द्विजाती वर्णोंकी गायत्री का उपदेश उचित समय पर यथोक्त विधिसे नहीं किया जाता है (वहीब्रात्यकहलाते हैं) उनका उपनयन अब करवाहो तो उनसे तीन कृच्छ्र व्रत कराइके जैसी विधि होतीहै उसी तरहसे उपनयन करावै=यमने भी यही कहा है=यथा=सावित्रीपतितायस्य दशवर्षाणि पचच सशिकं वयनकृत्वा व्रतं कुर्यात्समाहितं एकविंशतिरावर्चपिष्टेऽस्मृतं यावत्कस हविष्यं भोजयित्वैव ब्राह्मणान् सप्तपचच ततो यावत्क शुद्धस्य तस्योपनयनं स्मृतम्=अर्थात्—जिस ब्राह्मणके जन्मसे पद्मह वयं पूरेतक सावित्री पतित हुई हो अर्थात् गायत्री की शिक्षा न मिली हो (तिसकी सत्ता ब्रात्य होतीहै) उसका अब उपनयन करना होय तब शिखा सहित गुडन पहिले कराइके इक्षीय दिन सावधान होके व्रतकरै तब तक एक पसर भरि जौका दलियारां धि माद पिया करै तिस पीछे बारह ब्राह्मणोंको खीरि पुरी आदि हविष्य भोजन कराइके तब उस यावत् पीकर शुद्ध हुयेका उपनयन करना कहा है—यहां पर इस बातकी गोची कि गनु और यमके कहे येही दोनों प्रायश्चित्त उसको बराबर हैं कि जैसा

योगीश्वरने २६५ मूलश्लोकमें एक महीना दूध पीना कहा क्योंकि यद्यपि योगी-
श्वर याज्ञवल्क्यने ब्राह्मणताके नामसे कोई जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा परन्तु सामान्य
भावसे मूलश्लोकमें सभी उपपातकोंकी शुद्धिहोना चाहिये—इसी ब्राह्मणतामध्ये=
वशिष्ठजीने कुछ बढ़िया प्रायश्चित्त कहा है तिसका तात्पर्य भी कुछ और है सो
देखो—यथाह वशिष्ठः—पतित सावित्रीकउद्दालकव्रतचरेत् दौमासौयावकेन वर्तयेन्मा
संपयसापसमा॥२॥मिसया॥२॥रात्रंघृतेन यडाधमयाचितेन विरावमन्मसो॥२॥होरात्रमुप
सेदधमेधावभृथंगच्छेत् ब्राह्मणस्तेनवायजेतेति—अर्थात्—जो पुत्र्य सावित्री से पतित
होय सो उद्दालक व्रतकरै कि दो महीना यावक पीकरहै फिर एक महीना गऊका
दूध पीके रहै फिर एक पाख आमिसा पीके रहै फिर एक अठवारा गऊ का घी
चाटिके रहै फिर छेदिन विना सांगे जो कुछ आज्ञाय उसीको भोजन करै पर मुहसे
न सांगे फिर तीन दिन केवल जल पीके रहै फिर एक दिन कोरा उपवास निर्जल
करै तब अश्वमेधके अवभृथ स्नानको तुल्यताको पहुँचै यहा (अश्वमेधके सासात्कार
अवभृथ स्नानमें जाकर शुद्धहोय सो यह देशकालके अनुकूल अवसर बनि परे का
नियम है सर्वत्र नहीं क्योंकि अश्वमेध हरकोई नहीं करसक्ता है न हरएक समयपर
ऐसा बानक मिलसक्ता है कि विराने अश्वमेधमें जाकर करै) यहा ये बातें भी नहीं
तो ब्राह्मणतामें नामक वेदोक्त यज्ञ करै तब शुद्ध होय तिस पीछे उपनयन किया जा
सक्ता है अन्यथा नहीं—इस प्रायश्चित्त में यावक पीना कहा गया सो गोमूत्र में जो
रौंधिके उसका गाश्वा माह मसलिके छानिलिया जाताहै तिसका नाम यावक होता
है जिसपर निपट गोमूत्रका रंघा यावक न पियाजाय सो निर्वाह के लिये थोड़े गो
मूत्रमें जलको मिलाकर पकावै—परन्तु जहां कहीं पहिलेभी यावक नाम आचुकाहीं
तहाँ तहाँ सर्वत्र ठीक यही अर्थ समझना किन्तु जो कुछ और लिखा गया हो सो
नहीं—इसी प्रायश्चित्तमें आमिसा पीनाभी कहागया सो हालके जमाये तरुणा वही
का नाम आमिसा कहा जाताहै प्रायश्चित्त में यहभी गऊके दूधका जमाया हुआ
पीना चाहिये ॥ अत्रसर्वेपाण्ड्यवस्थाच यहां पर—मनु—योगीश्वर—यम—वशिष्ठ—इत
सबके कहे ऊँचे नीचे प्रायश्चित्तों की सकसार व्यवस्था यह समझ लेनी चाहिये
कि—जिस किसी ब्राह्मण या क्षत्री आदि वर्णों की आठ वयें आदि जो कुछ अवधि
यज्ञोपवीतकी होतीहै वही अवधि जिसके उपनयन करानेवाले आदि किसी के न
होने या न मिलनेसे हटि गई हो तिसके हटिजाने से थोड़े काल पीछे जो उपनयन
करना परै तब तो २६५ मूलश्लोकमें योगीश्वरके कहे चारो प्रायश्चित्तों में कोई

एक प्रायश्चित्त करनेवाले की प्राक्तिके अनुरूप देना चाहिये और उसके साथ यम के कहे नियम भी मिला लेने चाहिये—और जिसके सब सामग्री मौजूद होतेहुये अनापत्काल में भी वेपरवाही की उपेक्षासे वह अवधि बीतिगइहो तिसके लिये ऊपर मनुके कहे तीनि कृच्छ्रोंका तीया प्रायश्चित्त कराना चाहिये—और जो इसी अनन्तर चर्चावालेको इतना काल बीति गया हो कि अपनी मुख्य अवधि से दूना जो गौराकाल माना जाताहै सोभी बीतिजाय (इसका दृष्टान्त जैसे ब्राह्मराकी ठीकठीक साडेसात बर्यकी मुख्य अवधि होतीहै तिसको पूरे पंद्रह बर्य बिना जनेऊ के बीति जाय इसी प्रकार सषी आदिको उसकी अवधिसे दूना समझ लेना) तिसके लिये वशिष्ठका दर्शाया उद्दालक नामी व्रत करवाना या ब्राह्मस्तोम नामी यज्ञ कराना चाहिये—इनके सिवाय जिस किसीके बाप दादे आदि भी बिना जनेऊके रहि गये हों (जैसे संप्रति बहुधा सषी और वैश्य भी अनेक पीढ़ियों से असंस्कृत चलेआते हैं तिनका यह चर्चा है कि) उनके लिये आपस्तंबका कइा प्रायश्चित्त कराना—यद्वा आपस्तंबः=अस्यप्रतिपितामहाबनुपनीतोस्त्यातां तस्यसंवत्सरैर्विद्यकं ब्रह्मचर्यं तस्य प्रतिपितामहादेर्नानुस्मर्यते उपनयनं तस्यद्वादशवर्षागिर्यैर्विद्यकं ब्रह्मचर्यमिति=अर्थात्—जिसका बाप और दादा भी असंस्कृत रहिके मरे हों ऐसे पुरुष जो अपना संस्कार करानेपर समुद्यत होय तो उसको एक बर्य भर वैविद्यक नाम का वेदोक्त ब्रह्मचर्य व्रत करना चाहिये और जिसके परदादे आदिकी भी यह ठीक यदि न हो कि उनके संस्कार जाने हुयेये या नहीं तो यह पुरुष बारहवर्षका वैविद्य ब्रह्मचर्य साथै तिस पीछे अपना संस्कार करावै तो फिर आगेको उसके बेटा पोता आदि कुलसाथ के संस्कार बिना प्रायश्चित्त किये जारी होसक्ते हैं (यह बात भी कुछ बहुत बड़ी नहीं है जो कोइ अपने कुलका उद्धार करना चाहै सो घरमें एक बड़ा बड़ा इस प्रायश्चित्त की साधना करिके अपने कुलमें लुप्तहुये संस्कारोंको जारी करावै क्योंकि अपने आगामी कुलके कल्याणहेतु अगिले बड़े बड़े बहुत बड़िया तप करते ये उसी तप के प्रभाव से उनकी सर्वाच्छिन्न सन्तति अद्यापि सुख भोगती है—अन्यथा जो वर्त्तमान कालमें बहुतसे असंस्कृत सषी और वैश्य भी केवल धनके आकर्षण से पुरोहित पावाओंकेद्वारा बहुधा सभा जोड़िके यह वाद बिवाद करते हैं कि हमारा संस्कार होनेमें क्या दोषहै सो यह केवल उनका तुथकाण्डनहै क्योंकि पुरोहितपावा आदिमें कुछ ठीक ठीक उत्तर इसका नहीं बनिआता है जैसे जल के जीव स्थल की बातोंको क्या जानिसक्ते हैं कुछसे कुछ उत्तर दिया करतेहैं कितनेही अपनी धुमेरमें

आकर जनेऊकी साला जैसे शुद्धकंठो के समान पहिराई भी देते हैं ॥ २६५ ॥ इसी मूलश्लोकसे यह पाठ चला आता है ॥

इतिव्रात्यप्रायश्चित्त

अथ स्तेयोऽपपातकयुक्तपुरुषस्यप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः षट्चरवारिंशः ४६



इस परिच्छेद में उन चोरोके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो सुवर्गस्तेयो से उपरालू हों—अर्थात् उस चोरी के करनेवाले हो जो उपपातक कहाती है कि जिसका स्वरूप २३४ मूलश्लोक में आचुका—किन्तु उन चोरोका प्रयोजन यहां नहीं है जो पहिले ब्रह्महत्यारे आदि महापातकियों में गिनती हुये थे—क्योंकि यहां उपपातको का प्रकरण है ॥

(स्तेयप्रायश्चित्त)

ध्यान करना चाहिये कि २६५ मूलश्लोकमें योगीश्वरके कहे चारों प्रायश्चित्त सामान्य सभी उपपातको पर नियत हुये तिससे उपपातक सबकी चोरी में भी उन चारोकी पहुँच देखि परती थी परन्तु मनुके कहे प्रायश्चित्तसे उस पहुँचका अपवाद सिद्ध होताहै कि योगीश्वर वाले चारों प्रायश्चित्त एक चोरी को छोड़ि कर अन्य उपपातको पर आरुढ़ होये अर्थात् चोरी के उपपातक में मनुका कहा प्रायश्चित्त विचारना होगा=तथावाहमनु = धान्यान्नधनचौर्याग्निहोत्राकामाद्विजोत्तमः स जातीयपृहादेवैकच्छब्देनविशुद्ध्यति (द्विजोत्तमस्यसजातीयो ब्राह्मणस्यवातोविप्रप रिग्रहे ब्राह्मणस्यहर्तुरिदंप्रायश्चित्त क्षत्रियादेस्त्वल्पकल्प्य) =अर्थात्—धान्य जो नाज माव कोई सा हो और अन्न जो तैयार सिद्धान आटा दालि चाउर आदि हो और धन शब्दसे चाँदी तथा ताँबा पीतल आदि समझने इन चोरो की चोरी जो इच्छा सहित जानि वृत्ति कोई ब्राह्मण होकर किसी सजातोके अर्थात् ब्राह्मण के घर करै यदि इतनी वालें सब इसी तरह ठोक ठोकहो तो यह ब्राह्मण एक वर्ष भर कृच्छ्रव्रत करिके शुद्ध होताहै (इस बातका यह तात्पर्य दहिरा कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त केवल ब्राह्मणके निमित्त कहा गया है यदि क्षत्री आदि नीचे वर्ग वाले

चोरहों तो उनके लिये छोटे प्रायश्चित्त कल्पित करने चाहिये—क्योंकि (अथापाद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषां प्रतिवर्षा विदुषोऽतिक्रमेदंडभूयस्त्व-
 मिति सत्रियादेरपहर्षुर्दण्डाल्पत्वस्य दर्शनात्) इस वचन में सत्री आदि होने वर्रा के चोरोंको दंड भी थोड़ा कहा देखि परता है कि—चोरीका दण्ड अठगुना तक बढ़ता है जिस चोरी में जितना दण्ड शूद्रपर ठहरे उसी चोरी में औरोंको प्रत्येक ऊँचेवर्गा पीछे दूना दूना दण्ड बढ़ाया जाय अर्थात् जो वैश्य ने चोरी करीही तो दूना दण्ड और सत्रीने करी हो तो चौगुना दण्ड और ब्राह्मण चोर हो तो अठगुना दंड इसी लिये (अथापाद्यं स्तेयकिल्बिषं) यह पद कहा गया—इसके सिवाय प्रत्येक वर्गमें जो कोई विदुष ज्ञानी पढ़ा पंडित हो वही धर्ममर्यादाका अतिक्रम करे तिसपर उक्त द्विसाव से भी अधिक दंड बढ़ाया जाय) तिसरे इसी दंडके अनुसार प्रायश्चित्त भी ऊँचेवर्गपर अधिक लगाना चाहिये—तैसाही यह वचन भी प्रसिद्ध है (विप्रैस्तु सकलं देयं पापीनां क्षत्रियैस्मृतमित्यादि) अर्थात् जो कुछ प्रायश्चित्त कहीं सामान्य लिखा हो सो ब्राह्मणसे परे प्रकारवाना चाहिये क्षत्रीसे पीना और वैश्यवर्गसे आधा करवाना चाहिये शूद्रसे चौ-
 थाई—इसमें प्रायश्चित्त भी एक एक चरण घटाकर देना कहते यह सब नियम ब्राह्मणके घरमें चोरी करनेके प्रायश्चित्त मध्ये कहा गया ॥०॥ कदाचित् सत्री आदि नीचे वर्गों के परिग्रह में जाकर चोरी करी हो तो इस न्यूनतासे भी दंडके अनुसार प्रायश्चित्त में कुछ कमी करनी चाहिये सो यह कमी उसमेंसे करनी होगी जो ऊपर एकवर्गभर का कुछ व्रत कहि चुके हैं—अर्थात् जो ब्राह्मणने सत्रीके कच्चे में चोरी करी हो तो बर्य भरके स्थान दूनाहीका प्रायश्चित्त चाहिये—यदि वैश्यके कच्चेसे चोरी करी हो तो तीनवहीनेका गोवधवाला व्रत चाहिये जो (२६३ । २६४) इन मूलश्लोकोंकी अधिकोक्ति में लिखि चुके हों तहां देखो—यदि शूद्रके परिग्रह में जाकर ब्राह्मण चोरी करे तो एक सहीनेका पूरा चांद्रायण व्रत करना चाहिये—यह सब नियम सिर्फ ब्राह्मण चोरके मध्ये कहा गया इसी रीतिसे यदि सत्री आदि कोई चोर किसी ऊँचे नीचे वर्गकी चोरी करे तहां भी पूर्वोक्त नियमोंसे विचार करि लेना चाहिये जिसमें ठीक ठीक व्यवस्था पावै ॥ ० ॥ ऐसा भी न समझिलेना कि चोरी छोटी बड़ी चाहें तैसीही सब में येही प्रायश्चित्त होंगे किन्तु ये प्रायश्चित्त केवल दण्डकुंभ परिमाण धान्य हरने मध्ये नियत हैं—क्योंकि दण्डकुंभसे अधिक धान्य हरने मध्ये मनुने उत्तम साइसका दण्ड देना कहा है (धान्यं दण्डम्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽम उत्तमः) कुम्भके परि-
 माणा अनेक तरहसे भाजों में प्रसिद्ध हैं परन्तु जो वर्गके अनुकूल हो सो यहां पर

समभक्ता और यथार्थसे कुम्भनाम लोकमें मरकेका प्रसिद्ध है तथापि इसकापरिमाणा बहुतहै तिससे डिहराडिहरियाका नाम सामान्य भावसे कुम्भ समभिलेना सेसेदश कुम्भकेभीतर नाजहरनेमध्ये ये प्रायश्चित्त ऊपर कहेगये—और (धान्यान्नघनचौर्या गिा) इसमनुकेवचनमें ऊपर जो धान्यकेसाथअन्न और घनकीचोरी कहिचुकेतिसका भीपरिमाणा उतना समभिलेना जो दश कंभ धान्यकेनोल बराबर हों अधिकनहीं— इस परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गयासो सब कामकार-विय समभक्ता कि जिसने कामनासे विचारिके चोरीकरीही उसीपर ये प्रायश्चित्त पहुँचते हैं ॥ ० ॥ अकामकृत चौर्य प्रायश्चित्त— जिसने चोरी कामना के बिना केवल धोखा आदि कारणां से करीहो तिसके लिये तीन सहोने वाला गोवध का प्रायश्चित्त चाहिये जो कि (२६३ । २६४) इन मूल श्लोकों की अधिकोक्ति में लिखि चुके तहां देखीं—यहांपर बहुत बड़ेविचार का यह स्थ नहै कि (तथा—मनुष्यां गांचहरणोस्त्रीणांसेवशृहस्यच कूपवापोजलानांचशुद्धिश्चांद्रायणाननु—इति सार्द्धशत त्रयपरात्मजलापहारे इदंचांद्रायणां प्राप्तमपीतरगोवधबतनितृत्यर्थविधीयते इति मितासराकाराः रावन्मृत्यजलापहारे पानीयस्यत्तारास्यचतन्मृत्यद्विगुणोदसाइ इति पंचशत इतिच मितासराकाराः)=अर्थात्—मनुष्योंका हरना स्त्रियों का हरना खेत जमीन का हरना घर मकान का हरना कूप बावड़ी आदि जलों का छीनना इन पापों में चांद्रायणा करने से भी शुद्धि होती है—इस वचन को दर्शाय कर मितास-राकार कहिते हैं कि २५० अटाई सौ परा मोल या सहस्रल प्राप्त होसकने शीघ्र जलाशय के हरिलेने में यह उक्त चांद्रायणा यद्यपि पहुँचता है तभी दूसरा गोवध वाला व्रत जो हम दर्शाइचुके तिसकी निवृत्ति इस चांद्रायणा से ठहिरतीहै और उतनेही मोल वाले जलके हरने मध्ये कहीं यह भी कहा है कि पानी और तराफूस के हरने में उस चीज के मूल्य से दूना दंड चाहिये तो इस हिमाव से पाँच सौ परा का दंडपाता है क्योंकि अटाई सौ परा मोल अभी कहिचुके हैं तिससे दूने पाँचसौ परा दंड समभ में आताहै (यहाँ परा कहिने से वही रुपया समभिलेना जोजिस राज में चलता हो अन्यथा चाँदी के परा का और ताँबे के पराका परिमारा आ-चार मर्यादामें देखीं बहोटीकहै) इतना कहिकर फिरभी मितासराकार इसीबात पर यह लिखते हैं कि (तथेतिचांद्रायणावियये पंचशतपरा दंड विधानात्तावत्परि-मारादड चांद्रायणायोगावधादीसहचरित्वात् तथा रुच्छातिरुच्छ्रैन्वयोःपरापच शत तथेति चांद्रायणावियये पंचशतपरादडविधानाच्च० सतचक्षयिवादि द्रव्यापहारे

द्रष्टव्यं इति च मिताक्षराकाराः)—अर्थात्—फिर कहते हैं कि उसी उक्त चांद्रायणा के मध्ये पाँच सौ पण दंड ठीक होनेसे उतने परिमाण का दंड और चांद्रायणा इन दोनों का गोवध आदि उपपातकोंमें सहचार सिद्ध होने तथा २६४ मूल श्लोक में कहे गये कच्छ और अतिकच्छ के साथ अशोक्त चांद्रायणा से पाँच सौ पणा का योग पाया गया क्योंकि यहाँपर चांद्रायणा के मध्ये पाँच सौ पणा दंड कहा जानेके हेतुसे—यह भी सब नियम सबीआदि वर्णोंके धन हरने मध्ये विचारने चाहिये किन्तु ब्राह्मणा का धन हरने मध्ये आगे देखना—यद्यपि—सार हटाने वाले को सर्वत्र सारही देखि परता है यह नियम अभंग है—तथापि इस बात को हरकोई साफ साफ नहीं कहि सक्ता है कि यहाँपर इन दोनों की विलोड से मिताक्षराकार ने क्या सार निकासि किन्तु जिसने कहा वही समझा तौभी कुछ सार नहीं पाया गया इसीलिये बात वही है कि जिसका सार हर किसी के प्रत्यक्ष आवै परन्तु हमको उनका लिखा नेटना योग्य नहीं था ॥ ० ॥ ब्राह्मणा संबंधी धन के हरने में यह वचन लेना होगा कि—
 निक्षेपस्यापहरणोत्तराश्वरजस्तस्य च भविष्यज्जमणानां चरुक्मस्त्यसमं स्मृतम्—तथा—
 इन्द्रायणा मलपसाराणां स्तेयं कृत्वा ७ न्यवेश्मनः चरेत्सांतपनं कच्छन्तस्त्रिंशत्प्रायश्चित्तं
 इत्यनेनाल्पप्रयोजनप्रयुसीसा विद्वद्वापहारविशेषेणास्तेयसामान्योपपातकप्रायश्चित्त-
 तापवाद इवंच चांद्रायणा निमित्तं भूतार्हतोयशस्तमलस्य पंचदशांशार्द्धप्रयुसीसाद्य
 पहारे प्रायश्चित्तं चांद्रायणा पंचदशांशत्वात्तस्य इति च मिताक्षराकाराः—अर्थात्—
 धरोहरि या सौंप का हरना तथा मनुष्य का हरना तथा घोड़े का हरना तथा चोरी का हरना तथा धरती का हरना तथा बालक या डोरे का हरना तथा मरिआओं का हरना यह सब सुवर्ण की चोरी तुल्य कहाता है—तथा—घोड़े सार वाले द्रव्यों की चोरी किसी और के घरसे करिके अपनी शुद्धिके लिये यह चुराया यद्वा कीनाहु-
 आ द्रव्य वापिस देकर सांतपन कच्छन्त आचरै—इसमें घोड़े सारकी वस्तु कहिने मात्र में घोड़ासा काम देखकने योग्य लोहा सीसा रौंग आदि द्रव्यों के हरने का विशेष चिह्न देने से यह बात सिद्ध होती है कि जितनी तरह की चोरी सामान्य भाव से उपपातकों में गिनती हैं तिनसबके लिये जो कुछ प्रायश्चित्त कहीं कह हो तिसका अपवाद इस खफ़ीफ़ चोरीमें समझना अर्थात् उस प्रायश्चित्तकी बड़ा सम-
 भिके इन घोड़े प्रयोजन वाली वस्तुओं की चोरी पर नहीं आरूढ़ करना चाहिये (और इस खफ़ीफ़ चोरी का परिमाण कहां तक समझा जाय इस प्रश्न का यह उत्तर है कि) यह सांतपन कच्छन्त ऐसी खफ़ीफ़ चोरीका प्रायश्चित्त समझना

जो ऊपर के पाद में, चांद्रायण प्रायश्चित्त के निमित्त पर २५० अर्द्धाई सौ परा
 के सोल योग्य चोरी कही गई थी उसका तीसवां भाग चोरी करोहो अर्थात् आठ
 परा के लगभग सोल वाले राँघ सीसा लोहा आदि चुराये हों ॥ ० ॥ इसी प्रकार
 विरले द्रव्यों की विशेषता (स्वसूचित) से भी उन प्रायश्चित्तों का अपवाद (इ-
 स्तस्त्रा१२) समझना जो सामान्य (आम तौरसे) उपातकों पर आस्तुतिकयेगयेहों
 इसका व्यौरा आगे देखो=भक्षभोज्या पहरायोग्यासनस्थयच पुष्पमूलफलानांच
 पंचगव्यविशोधनम्=अर्थात्-चाबने खाने की वस्तु हरने में या चढ़ने और सोडने
 और बैठने की चीजें हरने में या फूल मूल फल कन्द आदिके हरने में पंचगव्यका
 पीना प्रायश्चित्त है-यह एक दिन का प्रायश्चित्त है सो केवल एक बार पेट भर
 भोजन करनेयोग्य भक्ष भोज्यकी वस्तु चुराने मध्ये समझना किन्तु अनियत परिमाण
 से चाहें तितनी हरने मध्ये नहीं क्योंकि यह बात अगिले पैठोर्नासि के वचनसे साफ
 स्पष्ट होती है=यथाह पैठोर्नासिः=भक्ष्यभोज्यान्नस्योदरपरगामाघहराविरात्रमेकरात्रं
 वापचराव्याहारतेति=अर्थात्-खाने चवाने आदिके अन्न जो पेट भरनेसाथ परिमाण
 से हरें तिसकी तीन वा सकही दिन पंचगव्य पीकरदिना प्रायश्चित्तहै-ध्यानकर्तों
 केवल पेटभरनेयोग्य अन्नहरने मध्ये तीन वा सकही दिनका विकल्प दर्शाया तिससे
 दोनों बार सवरे साँझ पेट भर सकने योग्य हरने में तीनदिनका प्रायश्चित्त और सक
 ही बार पेटभरनेयोग्य हरने का एकदिन प्रायश्चित्त ठहिरा-और जिसवचनमें भक्ष्य
 भोज्यकानाम आया उसीमे यान शैया आसन पुष्प मूल फल ये भीकहे अर्थात् इनका
 भी वही पंचगव्य का पीना प्रायश्चित्त ठहिरा तिससे भोजन के साथ गिनती होनेसे
 इनका भी वही परिमाण समझना कि जितने सोलका भोजनहोताहो और उसी रीति
 से इनमेंभी दोनोंतरह का प्रायश्चित्त समझलेना कि एकवार पेट भरनेयोग्य अन्नके
 सोल वरावर जो इन चीजोंकी कीमति ठहिरै तो सकही दिन पंचगव्य पीनाचाहिये
 जो दोनोंबार पेट भरने योग्य अन्नके सोलवरावर इनचीजों का सोल ठहिरै तो इनमें
 भी तीनदिन पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त जानो अर्थात् यही न्याय सर्वत्रहै कि चोरी
 करी हुई वस्तु के घोड़े बहुत परिमाण के अनुसार प्रायश्चित्त को छोड़ाई बढ़ाई
 कल्पित करी जाय=इसी प्रकार यह वचन है कि (तृणाकायद्रुमाणांच शुष्कान्न
 स्यगृहस्थच तैलचर्मामियारणांच विरात्रस्यादभोजनम्-इत्येवांचदद्यादीनां भक्षादि
 निगुणविरात्रप्रायश्चित्तस्यदर्शनात्तत्रिगुणमन्तर्गार्गाभातेतत्प्रायश्चित्त)=अर्थात्-
 फूल काठ वृक्ष मूलान्न गृह तेल चमड़ा माँस इनके हरने में तीन दिन विराहार

व्रत करें—इस वचन में फूस घास आदि सभी को हरने मध्ये भोजन आदि पूर्वोक्त चीजों से तिसुना तीन दिनका प्रायश्चित्त है तिसके देखने से यह ठीक हुआ कि भोजन आदि पूर्वोक्त चीजों के मोलसे तिसुने मोलवाली अवोक्त चीजों का यह प्रायश्चित्त चाहिये—इसी प्रकार यह वचन है कि (मरिगामुक्ताप्रवालानां तावत्प्रत्यक्षतस्य अयस्कान्स्थोपलानांच्छादशाहंकराणान्विता—अत्रापिभक्ष्यादिछादशादशगुणाप्रायश्चित्तदर्शनात् तन्मूल्यद्वादशागुणमूल्य मरिगामुक्ताद्यपहारिस्तत्प्रायश्चित्तमिदं द्रव्यं)= अर्थात्—मरिगामोली मंगा तौवा चौंदी लोहा कौंसी रत्न पत्थर आदि इनकी हरने मध्ये बारह दिन धानों के कन खाइके रहिना यही व्रत प्रायश्चित्त है—इसमें भी उस से बारह गुणा व्रतदेखि परता है कि जो भक्ष्य भोज्य आदि में सकादिनका कहाया तिससे यह बात यहां टाहिरो कि उन चीजों का मोल परिमान जैसा वहांपर कहि चुके तिससेबारह गुना मोलवाली अवोक्तचीजें चुरानेका यह बारहदिन प्रायश्चित्त जानों—इसी प्रकार यह वचन है कि (कार्पासिकोर्पाजीरानां द्विखुरैकखुरस्यच पक्षिगंधैषधीनांचरज्ज्वाश्चैवव्यङ्ग्यः—अत्रापिभक्ष्यादिचिद्युगप्रायश्चित्त दर्शनात् तत्त्रिगुणमूल्यानामपहारिस्तत्प्रायश्चित्तं यतः द्वीयमाणद्रव्यन्यूनानाधिकभावेन प्रायश्चित्ताल्पत्वमहत्त्वकल्प्यमेव)= अर्थात्—सईकी भरी रज्जाई गदेली आदि पुराने बख औरदोखुरवाले तथा सकतुरवाले जीवोंके बालआदि और पक्षीकेपर खाल आदि वा सदेह छोटे पक्षी और सुगन्ध की चीजें तथा दवाइयोकी चीजें तथा रस्सीआदि इनकी चोरी मध्ये तीन दिन दूबपीके रहिना प्रायश्चित्त है—इसमें भी पूर्वोक्तभक्ष्य भोज्यादि से तिसुना प्रायश्चित्त देखिपरता है तिससे उन चीजों के तप्तोक्त मोलसे तिसुने मोल वाली अवोक्त चीजें हरने पर यह प्रायश्चित्त समझना क्योंकि यह सर्वथ आवश्यक है कि चोरी किये हुये द्रव्य के न्यून वा अधिक होने अनुसार प्रायश्चित्त की लघुता गुरुता कल्पना करीजाय—चोरियों के प्रायश्चित्त जो कुछयहां तक लिखे गये सो सब उस दशा में होसके है कि पहिले अपहार किया हुआ वन धनी को प्रत्यर्पाकरै तिस पीछे प्रायश्चित्त करें इसका प्रमाण यह अयोक्त विष्णा का वचन है (दत्तैवापहतद्रव्यं स्वामिने व्रतमाचरेत्) अर्थात् चुराया वन स्वामीको देही वर प्रायश्चित्त करें बिना दिये नहीं ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोक से यह पाठ चला आता है

(इति चौर्यप्रायश्चित्तं)

अथ ऋणानामनपाक्रिया या अनाहिताग्नितायाश्च अपराधविक्रयस्य च चयाणामुपपातकानां प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयं सप्तचत्वारिंशः परिच्छेदः ४७ ॥



इस परिच्छेद में तीन उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि पहिले ऋणा उद्धार न करने के पाप में अर्थात् ऋणा लेकर पचाइजाने का प्रायश्चित्त—फिर अनाहिताग्निता में कि जिसके कुल में अग्नि स्थापन करने का अधिकार सो नहीं राखे तिसके पापका प्रायश्चित्त—फिर अपराध विक्रयमें कि जिन चीजोंका बेचना प्रतियिद्ध है तिनको बेचनेके पापका प्रायश्चित्त कदा जायगा ॥ इन तीनोंके स्वरूप २३४ मूल श्लोक में देखो ॥

(ऋणस्याशोधन प्रायश्चित्तं)

ऋणाका उद्धार करदेना व्यवहार मर्यादा में कहिचुके हैं कि (पुत्र पौत्रैः ऋणादेयं) बेटा पोता को भी बाप दादा का ऋणा देना चाहिये—तिसके उद्धार न करने में उपपातक लगने से प्रायश्चित्त करना होता है—तथा (जायमानो वै ब्राह्मणः) इत्यादि ऋचा में वैदिक ऋणा भी तीन भौति के देव ऋषि पितर इनके निमित्त देने होते हैं तिनके उद्धार न करनेसे भी प्रायश्चित्ती होता है—इन सबके लिये वेही प्रायश्चित्त है जो २३५ वे सो पैंसतिमूलश्लोक में सामान्य भाव सभी उपपातकों पर चारभौति के दशांशचुके उनमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त कर्ता की शक्तिके अनुरूप कराना चाहिये—उनके सिवाय मनुने और प्रायश्चित्त भी कहा है—यथा=इयं वैद्यानरीं चैव निर्वपेद-वदपर्यये लुप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्य रथसंभवे=अर्थात्—लोप हुये देव यज्ञों को असंभव दशा में एक वर्य वीति जाने पर निष्कृति प्राप्त होने के लिये वैद्यानरी यज्ञ की विस्तारै—इति ऋणानां प्रायश्चित्तं ॥ ० ॥ अथ अनाहिताग्नितायाश्च प्रायश्चित्तं—अनाहिताग्निता भी एक उपपातक है जिसका स्वरूप २३४ मूलश्लोक में वर्णन होचुका—उसके लिये भी वही चारों प्रायश्चित्त हैं जो २३५ मूल श्लोक में दर्शा गये—परन्तु यहां यह नियम है कि जिसके कुलमें अग्निस्थापना का अधिकार चला

आता है ऐसा पुरुष यदि किसी आपत्काल के हेतुसे एकवर्ष भर अग्नि का यजन पूजन न करसके सो उस वर्ष को उपरांत उन्हीं चारों प्रायश्चित्त में से कोई एक प्रायश्चित्त अपनी शक्ति के अनुसार चाहे जो एक महीना में होना लिखिचुके हैं—किन्तु जिसके कोई प्रबल आपदा नहींयो अच्छे भलेमें एक वर्षभर अग्निका पूजन बन्द कियाहो तिसको मनुका कहा जैसासिक्त प्रायश्चित्त करना चाहिये—यदाह मनुः (एतदेवव्रतकृष्यपार्तिकनोद्विजाः अवकीर्णवर्जशुद्धाश्चांद्रायणामयापिवा) इसकाअर्थ दोनोपैसदिकी अविकोक्तमेंदेखो वहां तीनमहीने लिखिचुकेहैं ॥ कदाचिद कोइ धर्मके भीतरही प्रायश्चित्तकियाचाहै तिसकेलिये काय्या जिन मुनिका बचनहै=यथाह काप्याजिन=कालैत्वावायकमर्गागुक्त्याद्विप्रोविधानतः तदकुर्वन् धिरावेणामसिमासिविशुद्ध्यति—अनाहिताग्नीषवादीयसमाया सुतीयदि सहिद्रात्येन पशुनायजेत्तन्निष्कयायतु=अर्थात्—ब्राह्मण किसी समयपर कर्मोंको स्थापन करिके साथे यदि उन्ही कर्मोंका नियमहूतिजाय तौ हरसकमहोनापीछे तीनदिनकाव्रतकरने से शुद्धहोताहै अर्थात् यदि एकमहीना कर्म हूतिजाय तौ तीनदिनका व्रतचाहिये वो महीनापर छेदिन इत्यादि क्रमसे—दूसरा यहनियमहै कि जिसकेपिता और जेठेधाता या दादा आदि कोई अग्नि की स्थापना बिना जीते देखे हो ऐसा पुत्र जो अग्निका स्थापन यजन करना चाहै तौ उन बड़ों के पराभव बोयका भागीहोकर प्रायश्चित्तो होताहै तथापि ऐसे उत्तम कामकी प्रवृत्त करना आवश्यकहै किजिसकी बड़ पुरखों ने मेदि दिया था तिससे इस दायकी शुद्धि के लिये ब्राह्मणशु नाम का वेदोक्त यज्ञ करिके तब आरम्भ करै इस व्यवस्थाका ध्वन्यर्थयहभीहै कि जिसके जेठेभाई पिता आदि मरचुकेहो सो ऐसा यज्ञ किये बिनाही अग्निका स्थापन कर सकैगा=उन्हीं काप्याजिन मुनिने एकाग्नि पुरुष की मध्येभी विशेषता कहीहै=यथा=ज्ञतदारोगृहेज्येयोयोऽनादध्यादुपासनम् चांद्रायणाचरेद्व्यप्रतिमासमहोपिवा=अर्थात्—जिसघर में जेठा पुरुष विवाहिता स्त्री सहित हो जिसके केवल वैवाहिक अग्नि होती है सो यदि उपासन अग्नि की नहीं स्थापन न उसकी उपासना करै सो प्रत्येक वर्ष पीछे एक महीना चान्द्रायण किया करै यदा प्रत्येक महीना पीछे एक दिवस निराहार उपवास किया करै तब शुद्धि होय—इत्यनाहिताग्निप्रायश्चित्त ॥ ० ॥ अथअप्रणय विक्रयप्रायश्चित्त—जिन चोड़ों का बेचना शास्त्र से निषिद्ध है तिनकी बेचै सो अप्रणय विक्रय नाम उपपातक से संयुक्त होता है यह २३४ मूल श्लोक में कहिचुके तिसके प्रायश्चित्त यद्यपि सामान्य भाव से वही पाये जाते हैं जो २६५ मूलश्लोक

में चार प्रकार वर्णन हो चुके तथापि स्पृश्यंतरमें विशेषताके साथ प्रायश्चित्त कहा है—यथाहारीतः—गृह तिल पुष्प मूल फल पक्वान्नविक्रये सोमपानं सोमहच्छूः—जाप्ता लवणा मधु मांस तैल क्षीरदधितृणवतक्रचर्मवाससामान्यतमविक्रयेचांद्रायणां—तथा ऊर्णाकोश केशर भूधेनु वेश्माश्मशस्त्र विक्रयेचभक्षमांस स्नाय्वस्थिगृण नखशुक्ति विक्रये तप्तकच्छूः—हृद्यगुग्गुलहरितालमनः शिलांजनगैरिकजालाक्षालवणामरिणामुक्ता प्रवालवैशाखवेणुमृन्मयेयुक्ततप्तकच्छूः—आराम तडागोदपानपुष्करिणी सुकृतविक्रये त्रिव्यवसास्नाप्यदःशायी चतुर्थकालाहारोदशसहस्रजपनसंवत्सरेणापूतोभवति हीनमा नोन्मानसंकरसंकीर्णाविक्रयेचेति—अर्थात्—गृह तिल फल कन्दमूल फल पक्वान्न बेचने में सोमपान अर्थात् जल पीकर सोमहच्छू व्रतकरे तब शुद्ध होय—और लाव नमक सहित मांस तेल दूध दही घी मुगान्न काष्ठ चमड़ा कपड़ा इनमें कोई एक जीज बेचने वाला चांद्रायण करे—तथा ऊन बाल केशर धरती गऊ धर पत्थर हथियार इनके बेचने और रोटी भात आदि खाने चीजें मांस नरें तांति आदि हाड़ सींग नख सीप घोंघी आदि इनके बेचने वाला तप्तकच्छू व्रत करे—और हींग गुग्गुल हरिताल मर्नसिल मुरमा गेहूँ लाव नमक मरिचा मोती मूंगा बाँस की बूनी रोकरी आदि बाँस मट्टी के वासन इनका बेचने वाला भी तप्त कच्छू व्रतकरे तब शुद्ध होय—और वाग बगीची तालाब कुआँ कमल आदि सहित पक्का जलाशय अपना किया हुआ कोई सुकृत पुण्य सुकर्म आदि इनका बेचने वाला यह प्रायश्चित्त करे कि सांक्त सत्रे दुपहर तीनों काल में स्नान करते रहिकर धरती पर शयन करे सायंकाल चौथे पहर भोजन करे और दस हजारमंत्र जपते हुये एक वर्ष पूराकरे तब शुद्ध होय और यही प्रायश्चित्त उनकी करानाचाहिये जो घटिया बाँसों से बेचें या बाँट पूरे होने में भी तराजू की भाँक से घाटि बेचें या घटिया मोल वस्तु उत्तम वस्तु में मिला कर बेचें या और जिन्स की चीज दूसरी चीज में मिलावें जैसे घी तेल का मिलाना आदि—इस प्रकार और भी शस्त्र विष्णु आदि के कहे वचनों से युक्त प्रायश्चित्त की विशेषता से कहा है—तहां साधारण उपपातकों पर जो जो प्रायश्चित्त २६५ मूल प्रलोक से कहे गये उनकी भी पहुँच यहां अपण्य विक्रयपर होती है तिससे यहडौल समझि लेना कि जिसने आपत्काल के हेतुसे अपण्यविक्रय किया हो तिसके लिये उसी २६५ मूल श्लोक में दर्शाये चार भाँति के योगीचर वाले प्रायश्चित्तों में कोई एक चुनिकर कर्ताकी शक्ति के अनुसार कराना चाहिये परन्तु जिसने अनापत्काल अच्छी दशा में अपण्य विक्रय

कि याही तिसको उसी अविकीर्ति के प्रारम्भ में मनुका कहा तीन सहीने वाला प्रायश्चित्त देना ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोक के टीका से यह व्यवस्था चली आतीहैं जिसके कई परिच्छेद हो चुके और आगे भी अनेक होयेंगे ॥ २६५ ॥

अथ परिवेत्त परिवित्यादीनामुपपातकिनां

भृतकाध्यापकादीनांच प्रायश्चित्त प्रकाशः
कोऽयं परिच्छेदः अष्ट चत्वारिंशः ४८



इस परिच्छेद में परिवेत्ता और परिवित्ति आदि कई उपपातकियों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो सबके सब एकही परिवेदन कर्म के सम्बन्ध से पापी होते हैं जिस परिवेदन का स्वरूप २३४ मूल श्लोकमें कहि चुके हैं—और इन्हीं के प्रसंग से अग्नेर्दिविद्युर्दिविद्युर्वादि सगी वैदिकोंके विवाहकी व्यवस्थाआवैती कि उनके पति और वे बहिनें भी उपपातक से युक्त होकर प्रायश्चित्त के भागी सब होते हैं—और सबसे पीछे भृतकाध्यापक आदि उपपातकियों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जो मजूरी लेकर वेद पढावें या देकर पढ़ें ॥

(परिवेदनप्रायश्चित्त)

परिवेदन एक उपपातक है जिसका स्वरूप २३४ मूल श्लोक में आ चुका है उस का करने वाला परिवेत्ता कहाता है तिसका विधेय प्रायश्चित्त वसिय जाने कहा है—यथा=परिविविदानः कृच्छ्याति कृच्छ्यौचरित्वातांतस्मै दत्त्वापुनर्निविशेत् तांच्चे-बोपयच्छेतेति=अथात्र—परिविविदान छोटा भ्राता जो जेदे का विवाह बिनाहुयेही अपने लिये किसी कन्या का फलदान सगाई आदि स्वीकार करे यदा किमी प्रकार से कोई कन्या कहींसे अपना विवाह करने के निमित्त से लावै तो यह परिवेत्ता कहाता है इसको परिवेदन स्वी दीय लगता है कि जेदे का अपमान किया तिससे यह कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र नामक दोनों व्रत करिके वह कन्या उस जेदे को देकर फिर विवाह करे (अथात्र जैसे ब्रह्म चारी भिक्षा माँग लाता है उसका धर्म

यही है कि शरुका अपमान मिटाने के लिये शरु के आगे लाकर वरता है कि यह भिक्षा आपके लिये लाया हूँ तहां शरुका यह धर्म है कि उसी को आज्ञा देता है कि लेजाकर भोगो तैसेही उस अपनी लाई कन्या को जेठे आताके समर्पणकरे कि यह तुम्हारे विवाह के लिये लायाहूँ तहां यदि जेठा उसी को आज्ञादेवे तब उसकन्या से विवाह करे—यह तो केवल वररक्षा कर्त्तव्य आदि कर देनेका प्रायश्चित्त कहा—परन्तु जिसने सब सवियों विवाह भी कर डाला हो तिनके प्रायश्चित्त बड़ेबड़े हैं सो आगे जारीत आदि के वचनोंसे देखी—जारीत ने ऐसा कहा है कि—ज्येष्ठेऽनिविष्टेक नीयान्विश्रमानः परिवेत्ताभवति परिविचित्तज्येष्ठः परिवेदनीकन्या परिदायीदाता परिग्रहयायाजकः तसर्वेषतिताः संवत्सरं प्राजापत्येन कच्छं पापावयेयुः—सर्वशंखोपि=परिविचित्तः परिवेत्ता च संवत्सरं ब्राह्मणगृहेयुर्भक्ष्यं च रेयाताम् (तदुभयमपि कामकारिणा कन्यापि बाधनुज्ञातोद्वाहविययं प्रायश्चित्तस्य शरुत्वात्)=अर्थात्—जेठे के विवाहे बिना छोटा विवाह करे सो परिवेत्ता होता है और जेठा परिविचित्त कहाता है कि उसका अपमान हुआ और वह कन्या परिवेदनी कहाती है कि उसके हेतु से दोनों भाता दीयी हुये और कन्या का दान करने वाला परिदायी कहाता है कि उसीने तीनों को दीया किया और व्याह कराने वाला परिगडत परिग्रहा कहाता है कि उसने इतने दीयियों को यजन कराया ये सभी लोग पतित होते हैं यदि एक वर्षमात्र का प्राजापत्य कच्छ व्रत जुड़ेजुड़े साथें तब शुद्ध होयें—ऐसेही शंखनेभी कहा है कि—परिविचित्त और परिवेत्ता दोनों एक वर्ष भर ब्राह्मणों के घर भीख मांगि पेट भरा करें तब शुद्ध होयें (सो यह दोनों के वचन वाले प्रायश्चित्त उस दशा पर समझने कि जहां कन्या के पिता आदि का लुभाया यदा अपने पिता की आज्ञा दियाहुआ छोटा भाता कामना से विवाह निषेध कर चुका हो क्योंकि प्रायश्चित्त के बड़ापन से यही तात्पर्य है—यहां तक जो लिखा गया सो तीं ज्ञातमान और स्वाधीन वर की व्यवस्था है—अन्यथा—जो अज्ञान वर पिता आदि के अधीन रहिते पिता आदिकी दीहुई कन्या साथ कामना से विवाह कर चुका तिसको २६५ की अधिकोक्ति में लिखे मनु के वचनसे तीनि महीनेका प्रायश्चित्त चाहिये और पिता परिगडत आदि पर वेही व्रत आच्छेद होंगे जो ऊपर की व्यवस्था में लिखिचुके—और—जिस वर ने इन बातों का बोध न होने में निषेध अज्ञानता से विवाह अपना किया चाहे पिता के अधीन रहिते या अपने ही स्वाधीन कियाहो तिसको २६५ मूल श्लोक में योगीश्वर के कहे चारि प्रायश्चित्तों में कोई एक दशा और शक्ति के अनुसार क-

रना चाहिये और ऊपर इसी परिच्छेद में वशिष्ठ को वचन से कुछ अतिरुच्छ दो प्रायश्चित्त जो कहिचुके तिन में भी इसका अधिकार से चाहें उन्हीं को विकल्प से करें (पर दोनों एक साथही करने कहे हैं केवल एक नहीं) सो इस अज्ञान वर को एकही करना चाहिये और कन्या को वर से आधा व्रत कराया जाय=इसी अज्ञानताके मुञ्चासिले पर यमने सबके लिये सुगमता करी है=यदाह यमः=कच्छोडयोःपरिवेद्येकन्यायाःकच्छस्यवचनमतिरुच्छं चरेद्वाताहोताचांद्रायणांचरेत्=अर्थात्-परिवर्त्ति और परिवेत्ता इन दोनों को परिवेदन की दशा में क्रम से कच्छ और अतिरुच्छ करने चाहिये तथा कन्या को भी कच्छ व्रत करना चाहिये कन्यावान करनेवाला अतिरुच्छ करे और होता जिसने फेर करवाये सो पण्डित चांद्रायणा व्रत करे (जैसी यह छोटे बड़े भाइयों की व्यवस्था कही तैसे बड़ी छोटी बहनों के विवाह पीछे आगे होजाने में भी उपपातक होता है तिनके प्रायश्चित्त आगे की व्यवस्था में देखो ॥ ॥ ॥ अथान्येषामपि प्रायश्चित्त मिदमेव=इस परिच्छेद में यहाँ तक जोजो कुछ प्रायश्चित्त कहेगये सो औरों परभी समान भाव समझिलेना जो पर्याहिताग्नि आदि कई एक उपपातकी और होते हैं क्योंकि इन सबका प्रायश्चित्त एकही साथ कहा भी गयाहै कि जैसा आगे गौतम के वचन में देखना=यदाहगौतमः=परिवर्त्ति परिवेत्त, पर्याहित, पर्यावाह, अग्नेदीवियू, दिवियपतीनां, संवत्सरप्राकृतब्रह्मचर्यमिति=अर्थात्-परिवर्त्ति और परिवेत्ता वही कि जिनके लक्षणा ऊपर कहिचुके और पर्याहित वह जेदा भाई कि जिसके अग्नि स्थापना न होते हुये छोटा भाई अग्निस्थापन करि बैठे और पर्यावाह यही छोटा भ्राता है कि जिसन जेदे भाई की न होते अग्निस्थापन करलिया और अग्नेदीवियू आदि तीनों के लक्षणा आगे मनु के वचन से कहेंगे तब देखना तिन सबके उपपातकों का प्रायश्चित्त एक वयं भरि प्राकृत ब्रह्मचर्य गौतम ने कहा (इन सबको एक साथ कहे जाने से समानता बढ़ी इसी हेतु जिन प्रायश्चित्तों को ऊपर कहिचुके तिनकीपहूँच इनमें भी होसक्ती है) उनके सिवाय जो प्रायश्चित्त अब आगे कहे जायें तिनको भी समझना जैसा कि अग्नेदीवियूपति आदि का प्रायश्चित्त वशिष्ठ जीने कहा है=यथा=अग्नेदीवियूपतिः कच्छं वादशरायं चरित्वा निविशेत् तांचैवोपयच्छेत् दिवियूपतिः कच्छातिरुच्छोचरित्वातस्मैदत्तां पुनर्निविशेत्तति (अग्नेदीवियूपतिः स्मृत्यंतरेऽभिहितंयथा=उपेष्टार्यायधूनूदायां कन्यायानूह्यतेऽनुजायामाग्नेदीवियूह्नायापूर्यातुदिवियूःस्मृतेति) तत्राग्नेदीवियूपतिः प्राजापत्यकृत्वा तानेवज्येष्टांपश्चाद-

न्येनोदामुहहेतुः दिव्ययूपतिस्तुक्छातिक्छातिक्छात्वात्सोदांज्येयांकनीयस्याः पूर्ववि
 प्रेन्द्रेदत्त्वान्यामुहहेदिति मितासराकारः—अर्थात्—वर्णय ने यह कहा कि अग्ने दि-
 व्ययूपति बारह दिन का कृच्छ्रव्रत करके विवाह करे और उसको भी अपने पास
 लाकर स्वीकार करे तथा दिव्य का पतिभी कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनों करके
 उसके लिये दीहुड़े को फिर विवाह (इस बात के मध्ये अग्ने दिव्य आदि का ल-
 सारा भी मनुस्मृत में कहा है यथा—यदि जेटी कन्या के विवाह बिना जो छोटी
 बहिन विवाहिली जाय वही छोटी अग्ने दिव्य नाम जानों और पहिली जो बिना
 विवाही रही जेटी सो दिव्य कहाती है (तहां मितासराकार यह व्यवस्था दशति
 है कि अग्ने दिव्य का पति जिसने छोटी को विवाह के अपने ऊपर दाय लिया
 सो प्राजापत्य करके उसी जेटी बहिन को जो पीछे किसी औरने स्वीकार करी हो
 तिसे विवाह लेवै और दिव्य का पति भी कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों व्रत करके
 अपनी स्वीकार करी जेटी छोटी के पहिले विप्रेन्द्रको देके और कन्या विवाह यह
 मितासराकारों का कथन है—इस व्यवस्था में ऊपर की संस्कृत जो वर्णय के वचन
 से लेकर लिखिचुके उसी के अनुरूप अर्थ लिखे गये—परन्तु बहुधा विज्ञानी इसके
 समझने में भ्रांति खड़ी करेंगे तिससे फिरभी निरायकरना परा—तहां सेसा समझि
 लेना कि यद्यपि अग्ने दिव्य पति को कृच्छ्र व्रत करना कहा तथापि इसको कृ-
 ष्ण अतिकृच्छ्र दोनों व्रत चाहिये क्योंकि अधिक दायी यही है और दिव्ययूपतिके
 लिये जो दोनों व्रत कहे तिस के लिये सक कृच्छ्रही चाहिये क्योंकि उसमें दाय
 योडाहै और यही न्यायकी रीति है (अन्यथा संस्कृत व्यवस्थामें नहीं कहि सकते
 कि लेखक प्रमाद से वैपरीत्य हुआ हो या किस हेतु से) इसके सिवाय ऊपरली
 व्यवस्था को सेसी दशापर समझना कि जब किसीने पहिले छोटी बहिन से सगाई
 माव करोही और उसकेबाद किसी दूसरेने बड़ी बहिनसे सगाईमाव करीहो किन्तु
 विवाह किसीका नहुआहो क्योंकि विवाहके होजानेपीछे विवाही कन्या किसी
 दूसरे को देना यह लोक शास्त्र दोनों से विरुद्ध है और ऊपर की व्यवस्था में दूसरे
 को देना लिखा गया है—तहां खुलासा अर्थ इसरीतसे लगाना कि अग्ने दिव्ययूपति
 वही है जिसने जेटी बहिन को सगाई हुये बिना छोटी बहिन से सगाई करी तिस
 को अपने उपपातक पर कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों प्रायश्चित्त करने बादि पहिले वह
 जेटी बहिन भी विवाहिलेनी चाहिये जो दिव्य होजानेके दायसे किसीने स्वीकार
 न करी हो या स्वीकार किसे पीछे यह दशा सुनिके सगाई खंडिदो गई हो—इसी

रना चाहिये और ऊपर इसी परिच्छेद में वशिष्ठ के वचन से कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दो प्रायश्चित्त जो कहिचुके तिन में भी इसका अधिकार मे चाहें उन्हीं को विकल्प से करें (पर दोनों एक साथही करने कहे हैं केवल एक नहीं) सो इस अज्ञान वर को एकही करना चाहिये और कन्या को वर से आधा व्रत कराया जाय=इसी अज्ञानताके मुआमिले पर यमने सबके लिये द्वागमता करी है=यदाह यमः=कृच्छ्रोद्वयोःपरिवेद्येकन्यायाःकृच्छ्रगवचअतिकृच्छ्रचरेहाताहीताचांद्रायणचरेत=अथति-परिविंति और परिवेत्ता इन दोनों को परिवेदन की दशा में कस से कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करने चाहिये तथा कन्या को भी कृच्छ्र व्रत करना चाहिये कन्यादान करने वाला अति कृच्छ्र करे और होता जिसने फेर करवाये सो पण्डित चांद्रायण व्रत करे (जैसी यह छोटे बड़े भाइयों की व्यवस्था कही तैसे बड़ी छोटी बहनों की विवाह पीछे आगे होजाने में भी उपपातक होता है तिसके प्रायश्चित्त आगे की व्यवस्था में देखो ॥ ॥ अथान्येषामपि प्रायश्चित्तमित्येव=इस परिच्छेद में यहाँ तक जो जो कुछ प्रायश्चित्त कहेगये सो औरों परभी समान भाव समझलेंना जो पश्या हिताग्नि आदि कई एक उपपातकी और होते हैं क्योंकि इन सबका प्रायश्चित्त एकही साथ कहा भी गयाहै कि जैसा आगे सौतम के वचन में देखना=यदाहसौतमः=परिविंति परिवेद, पर्याहित, पर्याधात, अग्नेर्बोधियु, बिब्रियुपतानां, संवत्सरंप्राज्ञतब्रह्मचर्यमिति=अर्थात्-परिविंति और परिवेत्ता वेही कि जिनके लक्षणा ऊपर कहिचुके और पर्याहित वह जेठा भाई कि जिसके अग्नि स्थापना न होते हुये छोटा भाई अग्निस्थापन करि बैठे और पर्याधात यही छोटा भाता है कि जिसन जेठे भाई के न होते अग्निस्थापन करलिया और अग्नेर्बोधियु आदि तीनों के लक्षणा आगे मनु के वचन से कहेंगे तब देखना तिन सबके उपपातकों का प्रायश्चित्त एक बर्य भरि प्राकृत ब्रह्मचर्य सौतम ने कहा (इन सबको एक साथ कहे जाने से समानता दृष्टिरी इसी हेतु जिन प्रायश्चित्तों को ऊपर कहिचुके तिनकोप-हुंच इनमें भी होसकी है) उनके सिवाय जो प्रायश्चित्त अब आगे कहे जायें तिनको भी समझना जैसा कि अग्नेर्बोधियुपति आदि का प्रायश्चित्त वशिष्ठ जीने कहा है=यथा=अग्नेर्बोधियुपतिः कृच्छ्र हादयरात्रं चरित्वा निविशेत् तांचैवोपयच्छेत् दिब्रियुपतिः कृच्छ्रः अतिकृच्छ्रोचरित्वा तस्मैदत्ता एनर्निविशेत् (अग्नेर्बोधिप्रादेशलक्षणा स्मृत्यन्तरेऽभिहितयथा=उद्येष्टायां यद्यनूदायां कन्यायानूह्यतेऽनुजायासाग्रे दिब्रियुर्न यापूनातुर्बोधियु स्मृतेति) तथार्थ दिब्रियुपतिः प्राजापत्यज्ञत्वा तानेवउद्येष्टांपाचाद-

अथपारदार्योपपातकप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं

परिच्छेदः एकोनपञ्चाशत्तमः ४६ ॥

इस परिच्छेदमें उसभाँतिके परस्त्री गमन पापोंका प्रायश्चित्त भेदकहा जाय
गा कि जो उपपातकों में गिनती है अर्थात् उन स्त्रियोंका चर्चा इसमें
नहीं है जिनके लक्षरा पहिले महापातकों में अगम्या गमनके रूप
से वर्णनहुये थे ॥ यहाँ इस परदारा गमनके अनेकभेद कहे जा-
येंगे तिन सबके जुड़े प्रायश्चित्तभी दर्शाये जायेंगे ॥

(परस्त्रीगमनप्रायश्चित्त)

पराईदारा भोगकरना उपपातक होता है जिसका स्वरूप लक्षरा २३५ मूलश्लोक
में आचुका है और इसीसे सामान्य उपपातकों वाला तीन मासका प्रायश्चित्त जो
२६५ की अधिकोक्ति में मनुके वचन से आया था सो भी इसपर पहुँचता और उसी
२६५ के मूलश्लोक में चारप्रकार प्रायश्चित्त योगीश्वर ने कहे थे उनकी भी पहुँच
इसपर होसकती परन्तु शुरुदारागमन और उसके समान पचीसवें परिच्छेदमें भी इस
का अपवाद कहाजाचुका है=तथैव अन्यथ भी गौतम आदि ऋषियों ने विशेष पा-
रदार्य के द्वारा भी अपवाद कहा है (तिसरे उन छोटे प्रायश्चित्तों की पहुँच इसपर
नहीं है)=अवाहगौतमः=द्वेपरदार्येजीशियात्रियस्येति=तथावार्यिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यं प्र-
स्तुत्यतेनैवेदमभिहितं=उपपातकेयुर्धैवमिति=अथेयं व्यवस्था (ऋतुकाले कामतो जाति
साधव्राह्मणोगमने वार्यिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यं=तस्मिन्नेव काले कर्मसाधनत्वात् द्विगुणाशा-
लिन्या ब्राह्मणयागमने द्वेवर्ये प्राकृतं ब्रह्मचर्यं=तादृश्यामेव त्रियभार्यायागमने जीशि-
वर्याशित्वा प्राकृतं ब्रह्मचर्यं (यदा त्रियपत्न्यां गता वत्यां त्राहसयां त्रैवार्यिकं) तदा तादृ-
श्विवायामेव क्षत्रियायां द्वेवार्यिकं तादृश्यामेव वैश्यायां वार्यिकं मिति व्यवस्था इति
मिताक्षराकाराः=अर्थात्=गौतमने यह कहा कि=दोवर्य पराईदरारामें तो तिन त्रिय
को दारामें=तथा पहिले वार्यिक प्राकृत ब्रह्मचर्यकी प्रथा कटि कर उन्होंने गौतम ने
यह कहा कि=इसीतरह उपपातकों में भी वार्यिक ब्रह्मचर्य होय=इसके ऊपर मि-
ताक्षराकार व्यवस्था नियत करते हैं कि=मासिक ऋतुकाल में कामकी चाहना से

प्रकार वह जेठी बहिन जो दिविषू उहेर गई तिसके साथ जिस किसीने बोले में सगाई करली हो तिसको अपने उपपातक पर यह करना चाहिये कि प्रथम तो कच्छव्रत प्राजापत्य को आचरे फिर उस जेठी बहिन दिविषू को सगाई छोड़ि छोरी का विवाह न होने से पहिले उसी को देनी चाहिये जिसने पहिले छोरी से सगाई करी अथवा यह वानक न बनपरै तो किसी ज्ञानी विप्रेंद्र को देकर आप किसी और निर्दोष कन्या से विवाह करे (परन्तु किसी विप्रेंद्रको देना यह मितासरा-कारों का लेख है अथवा वशिष्ठ के वचन में यह चर्चा नहीं है) इतिपरिवेदनप्रायश्चित्त ॥ आगे इसी परिच्छेद में अन्य उपपातकों का प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥ ० ॥ अथ भृतकाध्यापकभृतकाध्यापितयोः प्रायश्चित्तं-इन दोनों का लक्षण २३५ मूल श्लोक में कहि चुके हैं-प्रायश्चित्तं यदाह विष्णुः=(पयसा ब्रह्म सुवर्च लापिवेदित्यविहृत्यविष्णुनोक्तं-भृतकाध्यापनं कृत्वा भृतकाध्यापितकस्तथा अनुयोगप्रदानेन जीनृपक्षान्नियतः पिवेत्=अर्थात्-विष्णुने किसी प्रायश्चित्तमें दूधसे ब्रह्मसुवर्चलाका पीना पहिले कहिकर पोछे वही प्रकार इनके मध्येभी कहा है कि-मजुरी देने लेने आदि अनुयोग के प्रदान से विद्या पढ़िकर या पढ़ाइ के दोनों पुरुष उपपातकी होते हैं सो तीन तीन पाखतक नियत व्रत होके दूध में ओटी हुई ब्रह्मसुवर्चलापीवें तब शुद्ध होयें=इसीलिये=मनु के प्रमाण से स्मृत्यंतर में कहा है कि (दत्तानुयोगानभ्येतुः पतितान्मनुरखवीत्) पढ़ने वाले से मजुरी आदि अनुयोग जिनको दिये जायें तिनको मनु जी पतित कहि चुके हैं=यहां भी इन व्रत के साथ पूर्वोक्त व्रतों को मिलाकर कर्त्ताओंकी शक्ति आदिकी अपेक्षासे यथोचित विकल्प सोचलैना चाहिये यह मितासरा कारोंने कहा ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोकसे पाठ अवतक चला आता है ॥ २६५ ॥

(इति भृतकाध्यापक प्रायश्चित्तं)

विधानादेकस्यामेव गमनाभ्यासेनेदंप्रायश्चित्तं किन्तुप्रतिगमनं पादपादन्यूनं कल्प्यं)
 एतत्सर्वकामकारवियं=अर्थात् आपस्तंबने कहा है कि जो कोई पुरुष अपने सवर्ग
 पुरुष की सवर्गाभार्या (जो पहिले किसीकी भार्या न हो चुकी हो अर्थात् उसीकी
 विवाहिता हो तिस) में एकहीबार यदि संगमकरे तो बारहवर्षवाले आश्विगमनकी
 प्रायश्चित्तकी एकचौथाई तानिवर्ष प्रायश्चित्त उसपर लगता है इसीक्रमसे बारबार
 के अभ्यास में एकसक पाद बढ़ता जाता है कि दो रात्रिके संगम से आधा प्रायश्चित्त
 और तीन रात्रि के संगम से तीन पाद चौथी रात्रि के संगमसे सभी बारहवर्षों का
 पूरा प्रायश्चित्त चाहिये (यह आपस्तंबका प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्त गौतम के कहे
 तानिवर्षोंकी बराबर है क्योंकि गौतमने तीन वर्षोंकेवल एकबारके संगमपर कही है
 और यहाँ अन्यथ्य पूर्विकाके चारबार गमन करनेमें बारहवर्ष कहे गये) अक्रामक-
 तगमनप्रायश्चित्तं—यह सब जो कुछ यहां तक प्रायश्चित्त कहे गये सो कामकी इच्छा
 से संगम करनेमध्ये समझने=परन्तु जहां कहीं=कामकी चाहना बिना किसी धोखे
 आदिसे उसीप्रकारकी स्त्रियोंमें संगम होगया हो जैसा जैसा ऋतुकाल आदि लक्षणा
 ऊपर कहि चुके तहां वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त सब अपनेअपनेसौकेपर आवेआवे
 कियेजायेंगे ॥०॥ ऋतुकालविनागमने—जहां कहीं ऋतुकालके बिना संगमकिया
 जाय तिसकी व्यवस्था अब कहते हैं कि=जब कोई ब्राह्मण किसी जातिमात्र की
 ब्राह्मणीमें ऋतुकालके बिना कामकी इच्छासाथ गमन करे तब अनुका कहा तीन
 महीनेवाला प्रायश्चित्त करायाजाय जो २६५ दोसौपैंसठिकी अधिकोक्ति में लिखि
 चुकेतहां देखो ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना किसी ब्राह्मणकी सविया विवाहिता
 या वैश्य विवाहिता भार्या जो सामान्य जातिमात्रसे प्रसिद्ध हो पतिव्रतआदि किसी
 गुणसे युक्त न हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण कामकी चाहनासे विगड़ हो उन्हीं अनु
 का कहा दोमहीना चांद्रायण और वैश्यकी अपेसासे एक महीना चांद्रायण करे ॥
 इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई सत्री किसी गैर सत्रीकी विवाहिता सत्राणी या
 वनेनी भार्यामें कामकी चाहनासे विगड़ हो सत्राणी की अपेसा दोमहीना चांद्रा-
 यण और वनेनीकी अपेसा एक महीना चांद्रायण करे तथा शूद्र में विगड़ने मध्ये
 इससे आधा समझलेना ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई वैश्य किसी गैर वैश्य
 की विवाहिता वनेनीमें कामकी इच्छासे विगड़ हो दोमहीने चांद्रायण करे जो वैश्य
 की विवाहिता शूद्रमें विगड़ हो एकमहीना चांद्रायण करे ॥ ० ॥ अत्राप्यक्रामक
 तगमने—जहां कहीं इन्होंने सब स्त्रियोंमें येही उक्त पुरुष काम की इच्छा बिना कि-

जो कोई ब्राह्मणमात्र किसी जातिमात्र ब्राह्मणोंसे गमनकरे तो एकवर्षभरका प्राकृत ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त कराया जाय—और उसी ऋतुकाल में गर्भरूप कर्मका साधन होसकने से दोशरावाली स्त्री ठहरतीहै ऐसी दोशरावाली ब्राह्मणोंसे गमन करने में दो वर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य कराना चाहिये—तैसेही लसरावाली योत्रिय की भार्या साथ गमन करने में तीनवर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य कराना चाहिये (जब योत्रिय की पत्नी ब्राह्मणी गृहावती में गमन करनेसे तीनवर्ष प्रायश्चित्त ठहरा) तो इसीहेतुसे वैसे लसरावाली ब्राह्मण की पत्नी सवराणी गमन करने में दोवर्षका प्रायश्चित्त चाहिये और उसी लसरावाली ब्राह्मणकीपत्नी बनेनी गमन करनेमें एकवर्षचाहिये यह मितासराकारों ने व्यवस्था कही फिर कहते हैं कि—इसी न्यायके समान दृष्टि देनेसे ब्राह्मणकी शूद्रा में भी गमनकरनेसे छेमहीनेका प्राकृत ब्रह्मचर्य कल्पनाकरना चाहिये—इसी न्यायके अनुसार शंखने भी चारोंवर्षों की स्त्रियां ब्राह्मण की विवाहिता कहिकर वरा क्रमसे प्रायश्चित्त में कभी दशांश है—यथादशांशः—वैश्यायामब कीर्णसंवत्सरं ब्रह्मचर्यं वियवरांचानुतिष्ठेत् सत्रियायादिवर्षे योत्रिणा ब्राह्मणया (वैश्यायां शूद्रायां ब्राह्मणपरिणीतायां मतिवरां क्रमेण ह्यसोदशतः—अर्थात्—बनेनी में बिगड़ा हुआ ब्राह्मण वर्षे एकभर ब्रह्मचर्यसाधे और त्रिकाल स्नानकियाकरे एवं सत्रियामें बिगड़ा हुआ दोवर्ष ब्रह्मचर्यकरे ब्राह्मणी में बिगड़ा हुआ तीनवर्ष करे—और ये बनेनी या शूद्रा आदि जो कही सो किसी ब्राह्मणकी विवाहिता हों उन्हींका यह चर्चाहै अर्थात् जो घरीवैठारी ब्राह्मणके घरमें तिनका प्रायश्चित्त कहीं आगेकहाजायगा—इसी न्यायके आधीन—कोई क्षत्री किसी सत्रीकी विवाहिता सत्रिया या बनेनी या शूद्रा जो वैसेही पूर्वोक्त ऋतुकाल आदि लसराओं वाली हों तिनमें बिगड़े सो वराक्रम से दोवर्ष या एकवर्ष या छमाही भर प्राकृत ब्रह्मचर्यसाधे तब शुद्ध होय—इसी प्रकार—कोई वैश्य किसी वैश्य की विवाहिता बनेनी या शूद्रा जो पूर्वोक्त लसराओं वाली हों तिनमें बिगड़े सो वरा क्रमसे एकवर्ष या एक छमाही ब्रह्मचर्यकरे तब शुद्ध होय—इसी प्रकार—कोई शूद्र किसी गौ शूद्रकी विवाहिता शूद्रा भार्यामें बिगड़े सो छमाही भर ब्रह्मचर्य साधे—गौतमके वचनसे लेकर यहां तक जो कुछ नियम कहागये सो सब केवल एकवार पराई भार्या में बिगड़ने मध्ये संसम्भना यही तात्पर्य अगिले आपस्तंबके वचनसे पायाजाताहै तिसकी देखो—यथाह्यपस्तंबः—सवराण्यामनन्यपू-र्व्यांसक्तानि पाते पादयतत्येवमभ्यासे पादपादश्चतुर्थ्यैर्वीर्यमिति (रत्तदपि गौतमीय विवायिकेण समानविययं अनन्यपूर्विकायांचतुर्भ्यासे षाडशवार्यिक प्रायश्चित्त

विधानादेकस्यामेव गमनाभ्यासेनेदंप्रायश्चित्तं किन्तुप्रतिगमनंपादयादन्यतंकल्प्यं)
 एतत्सर्वकामकारविषयं=अर्थात्-आपस्तम्बने कहाहै कि जो कोईपुरुष अपने स्वर्ण
 पुरुष की स्वर्णाभार्या (जो पहिले किसीकी भार्या न होचुकी हो अर्थात् उसीकी
 विवाहिता हो तिस) में एकहीवार यदि संगमकरै तो बारहवर्षवाले आग्न्यागमनके
 प्रायश्चित्तकी एकचौथाई तानिवर्यं प्रायश्चित्त उसपर लगताहै इसीक्रमसे बारबार
 के अभ्यास में एकएक पाद बढ़ताजाताहै कि दो रात्रिके संगम से आधा प्रायश्चित्त
 और तीन रात्रि के संगम से तीन पाद चौथी रात्रि के संगमसे सभी बारहवर्षों का
 पूरा प्रायश्चित्त चाहिये (यह आपस्तम्बका प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्त गौतम के कहे
 तीनवर्षोंकी बराबरहै क्योंकि गौतमने तीन वर्षोंकेवल एकवारके संगमपर कहीहैं
 और यहाँ अन्यन्य पूर्विकाके चारवार गमन करनेमें बारहवर्ष कहेगये) अक्रामक-
 तगमनप्रायश्चित्त—यहसब जोकुछ यहाँतक प्रायश्चित्तकहेगये सोकामकी इच्छा
 से संगम करनेमध्ये समझने=परन्तु जहाँ कहीं=कामकी चाहना बिना किसी धोखे
 आदिसे उसीप्रकारकी स्त्रियोंमें संगम होगया हो जैसाजैसा ऋतुकाल आदि लसरा
 ऊपर कहिचुके तहाँ वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त सब अपनेअपनेमौकेपर आवेआवे
 कियेजायँगे ॥०॥ ऋतुकालविनागमने—जहाँ कहीं ऋतुकालके बिना संगमकिया
 जाय तिसकी व्यवस्था अब कहते हैं कि=जब कोई ब्राह्मण किसी जातिमात्र को
 ब्राह्मणोंमें ऋतुकालके बिना कामकी इच्छासाथ गमन करै तब मनुका कहा तीन
 महीनेवाला प्रायश्चित्त करायाजाय जो२६५ दोसौपैसदिकी अधिकोक्ति में लिखि
 चुकेतहाँ देखौ ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना किसी ब्राह्मणकी सधिया विवाहिता
 यावैश्य विवाहिता भार्या जो सामान्य जातिमात्रसे प्रसिद्धहो पतिव्रतआदि किसी
 गुणासे युक्त न हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण कामकी चाहनासे विगड़सो उन्हीं मनु
 का कहा दोमहीना चांद्रायण और वैश्याकी अपेसासे एक महीना चांद्रायणकरै ॥
 इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई सत्री किसी गैर सत्रीकी विवाहिता सधारी या
 वनेनी भार्यामें कामकी चाहनासे विगड़सो सधारी की अपेसा दोमहीना चांद्रा-
 यण और वनेनीकी अपेसा एक महीना चांद्रायण करै तथा ग्राह में बिगड़ने मध्ये
 इससे आधा समझलेना ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई वैश्य किसी गैर वैश्य
 की विवाहिता वनेनीमें कामकी इच्छासे विगड़सोदोमहीने चांद्रायणकरै जो वैश्य
 की विवाहिता ग्राहमें विगड़सो एकमहीना चांद्रायणकरै ॥ ० ॥ अवारयकामक
 तगमने—जहाँ कहीं इन्हीं सब स्त्रियोंमें येही उक्त पुरुष काम की इच्छा बिना कि-

सी बोखेआदि हेतुसे गमन करिवेहेहीं तहां ऊर्ध्वोक्त तीनमहीने आदि प्रायश्चित्तों के स्थानपर इनके बदले यथाक्रमसे जो जो प्रायश्चित्त इनसे छोड़ेहोने चाहिये तिनका स्मरण (२६३ । २६४) सुलप्रतीकों में कहियुके हैं परन्तु यहां उनका क्रम इसरीतिसे लेना कि रयारहवां आंडुट्यभ दगगऊवाला प्रायश्चित्त यहां के तीन मासके स्थानपर लेना और यहां जिसको दोहीमासका प्रायश्चित्त कहागया हो तिसकोलिये इच्छाविना गमन करनेमध्ये एकमहीना पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त ठहिराना और यहां जिसको एक महीनेका चांद्रायता कहागया तिमकोलिये इच्छा विना गमन करनेके हेतुसे एक महीनेका प्राजापत्य ठहिराना=इनके सिवाय शुद्धा के गमनमध्ये जो कामनासहितपर एकमहीना व्रत कहियुके वही कामना से रहित भोगमें आधा करिके एकपात्य ठहिराना चाहिये=इसी तिये संवर्त्तने सेसा कहाहै कि=शुद्ध्यांतुब्राह्मणोगत्वासासंसाधमेववा गोमूत्रयावकाहारस्तिष्ठेत्तत्पापमुक्तये इत्येकामतोऽर्धमासिकमित्यभिप्रेतं=अर्थात्-ब्राह्मण शुद्धीमें गमन करिके एकमहीना वा आधा महीनाभरगोमूत्रमें पकाया जौका दतिया खाकर व्रतकरै=सी यह आधा महीना विना कामनाके भोगमध्ये अभिप्राय सोचि के कहा है=और भी यह कहा है कि=ब्राह्मणाप्रवेदेषोऽपर्वकंब्राह्मणादारानभिगच्छेन्नृत्ततधर्मकर्मणाः कृच्छ्रोऽनृत्त तधर्मकर्मणाति (कृच्छ्रइतिब्राह्मणाभार्यायांशुद्रायांशुद्रव्यविजातिस्त्रीषुचविप्रोदा मुविस्त्रिव्यभिचारितासु अर्वादिपूर्वगमनेवा=अर्थात्-यदि ब्राह्मण काम कोडा की अपेक्षा से चाहिकर किसी ऐसे ब्राह्मण की दारा में संगम करै जो धर्म कर्मों से विहीन हो और संगम करनेवाला ब्राह्मण भी धर्म कर्मों से विहीनहो तो इसदशा में कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत कराना चाहिये (सी यह दारा शब्द सामान्य होनेपर भी शुद्ध जाति की दारा पर आरुढ समझना अर्थात् शुद्धजाती कन्या यदि ब्राह्मणको विवाही गईहो क्योंकि प्राजापत्य नामक प्रायश्चित्त के छोड़पन से यहीवात पाई जातीहै दूसरे धर्म कर्मों में विहीन कहा तिससे भी यही बात सिद्ध होती है कि अपने जाती धर्मकर्म छोड़िके शुद्ध कन्यासे विवाह कियाहो तिस दारामें यदि कोई ओखा ब्राह्मण काम कोडा को अपेक्षा से संगमकरै तिसपर यह छोडा प्रायश्चित्त चाहिये) और (व्यभिचरितायांगमने) उनीवचन में ब्राह्मणात्परदारा दाराओंका बहुत्व कहाजानेसे दूसरा अर्थ यहभी सिद्ध होताहै कि (जिन ब्राह्मणों के सविया और वैश्या दारा विवाहिता हों या ब्राह्मणी दारा होय परन्तु ये सबदारा दो तीन बार तक व्यभिचारसे बदनाम होचुकी हों तिनमें यदि कोई धर्म कर्म से विहीन

ब्राह्मणा काम क्रोडा की अपेक्षा से गमन करें तिसपर भी यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि दारायें यद्यपि ऊँचे वर्गों की कन्या ठहरीं परन्तु व्यभिचार से बदनाम दो तीन बार हो चुकी थीं तिससे बहुत बड़े प्रायश्चित्त की जरूरत भोगनेवाले पर नहीं रही और पूर्वोक्त शुद्ध भार्या यद्यपि नीच वर्ग की कन्या ठहरी तथापि व्यभिचार से बदनाम नहीं थी इसलिये उसके भोग मध्ये इन्हीं तीनों की बराबर प्रायश्चित्त कहा) और भी इसी वचन में दाराओं का बहुत्व कहा जाने से तीसरा अर्थ यह भी सिद्ध होता है कि (तीनों ऊँचे वर्ग की कन्या जो ब्राह्मणा की विवाहिता दारा हैं और व्यभिचार की बदनामी भी उनमें जाह्नव नहीं तिनमें कोई ब्राह्मणा विनाजाने या अपनी भार्या के बोखे आदि से संगम करें तिसपर भी यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि धर्म कर्म से विहीन पुरुष की भार्या उनकी कहिचुके और भोगने वाला भी धर्म कर्म से विहीन कहा गया था ॥ ० ॥ येय ब्राह्मणा की दाराओं मध्ये यदि कोई गैर ब्राह्मणा विना जाने वह व्यभिचार करें तिसमें भी संवर्त ने दो भेद से प्रायश्चित्त कहा है—यथाह संवर्त=विप्रास्त्रजानता गवाप्राजापत्यसमाचरेत्=अर्थात् उत्तम गुरावाच ब्राह्मणा की दाराओं में विना जाने गमन करिके प्राजापत्य समाचरे (इस वचन में समाचरेत् इतने पदके दो तरह से अर्थ लगते हैं कि प्राजापत्य जो बारह दिनमें एक पूरा होता है तिसको मन्थक् अच्छी विधि से आचरे यह एक तरह का अर्थ ठहरे—दूसरा अर्थ ऐसा है कि प्राजापत्य नामक जीवत है बारह दिनवाला तिसको समाचरेत् एक वर्ष भर निरन्तर आचरे क्योंकि समा संजा एक वर्ष की होती है सो इस दो भाँति का यह भेद है कि जहाँ गुरावाच ब्राह्मणा की भार्या व्यभिचारिणी हो तिसमें विनाजाने जो संगम करें सो केवल एकही प्राजापत्य करिके शुद्ध होजाय जहाँ उसी गुरावाच ब्राह्मणा की भार्या निष्कलक हो तिसमें विना जाने यदि कोई गैर ब्राह्मणा संगम करें सो निरन्तर एक वर्ष भर अनेक प्राजापत्यकरें तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ रानो मन्थस्त्रिनिश्चावि अनेक उत्तमस्त्रियों जिनका संगम करनेवालेकी इन्द्री कस्वाना पहिले कहिचुके २३ दोसो बत्तीस की अधिक्तीति में नारद के वचन देखो अथवा इन्द्री कस्वाने विनाभी बारहवर्ष आदि के बड़े प्रायश्चित्त उसको ऐसी दशापर आकृष्ट होचुके है कि जहाँ उन स्त्रियों ने आपही पुरुष को उत्साह देकर मोहित किया हो उन्हीं स्त्रियों के भोग मध्ये यहाँ पर बहुत छोटा सा प्रायश्चित्त बनने कहा सो अब लिखते हैं तिसका यह कारणा है कि वहाँ तो कलक से रहित अतिगुण शुद्ध स्त्रियों का चर्चा था और यहाँपर

छोटा प्रायश्चित्त इसलिये है कि यदि वेही स्त्रियां पहिले व्यभिचार भी कर चुकी और वदनाम हों तिनको यदि कोई पुरुष कामकी चाहना से भोगै यहा काम की चाहना बिना उन्ही स्त्रियों ने उत्साह देकर फाँसलिया हो तो यह एक उपपातक है तिसपर यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये किन्तु इन्ही कटवाना आदि कुछ नहीं= यथाह यमः=राज्ञीप्रव्रजितांवात्रींसाध्वींवर्यात्तमामपि कृच्छ्रद्वयंप्रकुर्वीतसगोवाम भिगम्यच=अर्थात्-रानी•संन्यासिनि आदि साध्वी• वात्री धात्र जिंसने अपने को दूध पिलाकर पाला हो• साध्वी जो नेम धरम आदि से संयुक्त हो वर्यात्तमा जो अपने से ऊँचे वर्या की स्त्रीहो• सगोवा जो अपने गोव भर में दूर नाते की हो• इनके पास जाइके दो कृच्छ्र प्राजापत्य करनेचाहिये (केवल उसीदशमें कि यदि स्त्रियांपहिले से व्यभिचार में प्रसिद्ध हों और पुरुष ने किसी घोखा आदि अज्ञानतामें संगम एक बार कियाहो अन्यथा इसके बड़े बड़े प्रायश्चित्तों जैसा अनन्तर अभी लिखिचुके सो देखो॥ • ॥ ऊपर के पाठ में यह चर्चा आचुका है कि (ये सब दारा दो तीन बार तक व्यभिचार से वदनाम होचुकी हों) तहां यही तात्पर्य था कि चौथीवार जिन के व्यभिचार की वदनामी न सुनीहो तिनके मध्ये तत्रोक्त प्रायश्चित्त है-अन्यथा जो चौथीवार किन्तु चौथे पुरुष से वदनाम हुईहो वह स्त्रैरिणी और पांचवें से वन्धकी आदि होजाती है (चतुर्थैस्त्रैरिणीप्रोक्तापंचमेवंधकीमता) फिर चाहें किसी कुलकी हो इसका नियम नहीं रहिता=स्वैरिण्यादिपुगमने-ऐसी स्त्रियोंमें यदि कोई ब्राह्मण जाके बिगड़ै तो फिर तत्रोक्त से थोडा प्रायश्चित्त चाहिये=यथा हर्षाखः=स्वैरिण्याद्यत्यमवकीर्णाःसचैलंस्त्रात्योदकुंभंदद्याद्ब्राह्मणाय वैश्यायांच च तृथकालाहारी ब्राह्मणान्भोजयेद्यवसभारंचगोम्योदद्यात् सवित्र्यायांचिराशोपोयितौ घृतपाण्डद्यात् ब्राह्मणयांयद्वात्रोपोयितोगांदद्यात् गोप्स्वकीर्णाःप्राजापत्यंचरेत् अन-ह्यामवकीर्णाःपलाहभारंसोभमायस्कंचंदद्यात्=अर्थात्-स्वैरिणीके कुलसरा अभी लिखिचुके तैसे कुलसरा वाली टयली अर्थात् शूद्रकी भार्या जो कोई ऐसीहो तिस में जो कोई ब्राह्मण जाकर एक बार बिगड़ै सो वस्त्रों सहित स्नान करिके जल का भरा घट ब्राह्मण की धन करै यही प्रायश्चित्त है• एवं जो वनेकी कोई स्त्रैरिणी प्रसिद्ध हो तिसमें जाकर एक बार ब्राह्मण बिगड़ै सो एक दिन का व्रत करिकेचौथे काल संध्यासे पहिले थोडा भोजन करै दूसरे दिन यवाशक्ति संख्या से ब्राह्मणोंको भोजन करावै और शास्त्रोक्त परिमानसे एकभार घास लेकर गोओंकोदेवै• एवं जनी की भार्या सत्राणी कोई स्त्रैरिणी प्रसिद्ध होय तिसमें कोई ब्राह्मण एक बार यदि

संगम करै सो तीनदिन उपवास करिके घीका भरा पूर्णापाव दान करै•एवं ब्राह्मणी जो स्वेरिणी प्रसिद्ध होय तिसमें कोई गैर ब्राह्मण एकवार संगम करै सो छेदिन उपवास करिके गऊदान करै तब शुद्ध होय•एवं जो गौआंके साथ मैथुन करै सो प्राजापत्य करै तब शुद्ध होय•एवं अन्नदा कन्याचाहें किशोवराकी होय जो विवाहके न होने से पिताके घरमें रहिते रजौवती होकर पीछे स्वेरिणी हो गई हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण एकवार संगम करै सो एक भारके परिमान से धान कोदो आदि का पथार गौआं को देकर सीसा लोहाभी दान करै तब शुद्ध होय यह शांख जीने कहा ॥ ० ॥ और इसी उक्त विषय पर यद्विंशत मत के ग्रन्थ में भी ऐसा प्रायश्चित्त कहा है कि ब्राह्मणीवन्धकींगत्वाकिंचिदद्यात्तद्विजातये राजन्यांचेदनुर्दद्याद्वैश्यांगत्वात्तुचैल क्तम शुद्रांगत्वात्तुर्वैविप्रउदकुंभं द्विजातये द्विसोपायितोवास्याहद्याद्विप्रायभोजनम्= अर्थात्—बंधकीके कुलसरा ऊपर कहि चुकेहैं कि चौथाछोडि पांचवें पुरुषके घरवैदें यथा पांचवेंसेव्यभिचार करै सो बंधकी कहाती है—ऐसे कुलसरावाली कोई ब्राह्मणी जो बंधकी प्रसिद्ध होय तिसमें यदि एकवार कोई गैर ब्राह्मण जाकर बिगड़ै सो कुछ एक दान ब्राह्मणकी देकर शुद्ध होसक्ता है• एवं सवारी जो सबीकी भार्या बंधकी होय तिसमें एकवार कोई ब्राह्मण जाके बिगड़ै सो एकधनुय दान करै• एवं वैश्यानी जो वैश्यकी भार्या बंधकी होय तिसमें कोई ब्राह्मण एकवार जाके बिगड़ै सो एक वस्त्रदान करै• एवं शुद्रा जो शुद्रकी भार्या कोई बंधकी होय तिसमें कोई ब्राह्मण एक बार जाके बिगड़ै सो जलका भरा घट ब्राह्मणकी दान करै अथवा एकदिन उपामकरिके ब्राह्मणकी जिमाइ देवै तौ शुद्ध होजाय (यद्यपि इस व्यवस्था में पहिली शांख मुनि की व्यवस्थासे कुछ भेद भी प्रतीत होताहै परन्तु दोनोंका विकल्प समझि लेना कि प्रायश्चित्ती पुरुषकी दशाके अनुसार दो बातोंमें जो एक सम्भव होय सो करवाना चाहिये ॥ ॥ ॥ अथ गर्भधारण प्रायश्चित्त (अनुलोमव्यायेनार्धे द्विगुरां यदि सा अतिदूयितान प्रतिलोमगानभवति तदैव—अन्यजाति गमनमात्रेपि द्वैश्यायं) अर्थात्—उसी मैथुनका चर्चा है जो अनुलोम रास्तेसे होय किन्तु नीचे चर्चाकी छियांमें ऊंचे चर्चाके पुरुष या समान चर्चा के स्त्री पुरुष दोनों व्यभिचार करै तिनका जो कुछ प्रायश्चित्त जिस क्रमसे पहिले कहि चुकेहैं वही सब अपने अपने स्वतन्त्र पर यहां आकर देने किये जायेंगे यदि मैथुन से गर्भधारण भी होयया हो• परन्तु यह नियम केवल उन्हीं छियोंका सम्भनना जो अति दूयित बहुत बदनाम नहों और प्रतिलोम पुस्त्योंसे व्यभिचार जिनका न हुआहो (प्रतिलोमका व्यभिचार वही कहाता है जो

नीचे वर्णोंके पुस्त्यों से ऊँचे वर्णों की स्त्रियां करें) इसी प्रकार गर्भ रहने विना भी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त दूने कियेजाते हैं जो अन्य जातिमें व्यभिचार मात्र होय अर्थात् पहिले जो जो कुछ प्रायश्चित्त जिस वर्णोंके पुरुषको जिस वर्णोंकी स्त्री साथ गमन करने मध्ये कहिचुके हैं वही दूना उस दशामें करना होगा जो उसी वर्णोंका पुस्त्य उक्त स्त्रीके वर्णसे भी नीचे वर्णोंकी स्त्री साथ व्यभिचार करें यद्वा ऐसे वर्णोंके समान कोई अन्यजाति ऐसीहो जो वर्णोंसे उपराल होय ॥ ० ॥ प्रतिलोमदूषितास्वपिगर्भधारणे=प्रतिलोमदूषितासु संत्यावसायिस्त्रीयुच चांडालीगर्भेययाश्रुततत्पत्रतं तथा किंचिन्न्यूतन्तारतन्यकल्प्यं—चांडालीगमनेवार्थिकं तद्गर्भेश्रुततत्पत्रतंयैवज्ञेयं (इदं प्रायश्चित्तजातंगर्भानुत्पत्तिविययं=अर्थात्—डिजातिथ्योंकी स्त्रियां जो प्रतिलोमनीचे वर्णों से बिगड़ी हों तिनमें यदि कोई समान वर्णों वाला पुस्त्य या उनसे ऊँचे वर्णों वाला पुरुष श्रुतकालमें संगम करिके गर्भधारणाकरे अथवा साक्षात्कार संत्यावसायी जो चांडाल आदि होतेहैं तिनकी स्त्रियोंके श्रुतकाल में संगम करिके किसी वर्णोंका पुरुष अपने बीजसे गर्भधारणा करे तो इन दोनों दशा में वह प्रायश्चित्त बिचारना चाहिये कि जैसे चांडाली में गर्भधारणा करने से श्रुततत्पत्र खपी महा पाप दूर करने वाला व्रत होताहै तैसा तरतमके अनुसार कुछ न्यून प्रायश्चित्त होय—तबका यह दौलहै कि चांडाली में संगम करने मात्रसे एक बर्यवाला व्रत करावा और चांडाली में गर्भ जम जाने से साक्षात् श्रुततत्पत्र खपी पाप समझना तथापि प्रायश्चित्त उससे कुछ घटाकर देना चाहिये जो श्रुततत्पत्रके ऊपर व्रतखपी कहागया हो प्राणत्याग खपी नहीं (गर्भके मध्ये जो कुछ प्रायश्चित्त यहां तक लिखा गया हो सबकेवल उसी दशापर आखड्ड है कि यदि गर्भ रहिकर पैदा न होयें किन्तु पैदा होजानेमध्ये आगे देखी ॥ ० ॥ गर्भस्यजननविषये गर्भके उत्पन्न होजाने में उससे भी दूना प्रायश्चित्त चाहिये जो कुछ गर्भोंके जमने मध्ये टोकहोय=तद्वा विज्ञानेश्वराचार्यः=तदुत्पत्तौ यद्यप्येता यत्प्रायश्चित्तमुक्तं तदेवतत्र द्विगुणं कुर्यात् (गमनेतव्रतयस्यादृगर्भतः द्विगुणांचरेदित्युक्तं ननु स्मरणात्=अर्थात्—इस परिच्छेदके प्रारंभ से लेकर जो जो कुछ प्रायश्चित्त जिस वर्णोंकी स्त्री पुरुषोंका व्यभिचार होने मध्ये लिखि चुके हों उन्हींके गर्भ रहिजाने पर वेही प्रायश्चित्त दूना तादाव से करने कहे और वेही प्रायश्चित्त उन्हीं स्त्री पुंस्त्योंके गर्भका जन्म होजाने पर उससे भी दूने करवानेहोंगे अर्थात् व्यभिचारकी तादावसे चौगुने करने होंगे क्योंकि उग्रनामुनिका यह वचन है कि (जिनका वन संगम करने पर कहाहो उसीकी गर्भोंके जमिजाने पर दूनाकरे)

इसी न्यायसे यह नियम ठहरा कि गर्भका जन्म होजाने पर उसी की चतुर्थया करें ॥ ० ॥ शुद्दिनिके गर्भ उपजाने मध्ये चतुर्विंशतिमत ग्रन्थमे कृच्छ्र और भी विशेषता वर्णन हुई है=यथा=व्यत्यामभिजातस्तुवीर्या वर्याणि चतुर्थकालसमयेनक्तभुंजीते तित=अर्थात्-व्यली जो शुद्धिनी है तिसमें ऊँचे वर्णा का पुंस्य जो अपने बीज से गर्भ रूप होके जन्म धरे सो तीनि वर्ण भर सदा राति में चौथे काल के समय पर अर्थात् छेदपहर राति गये पीछे आधीरातके भीतर भोजनका एकवार नियम राखै तो शुद्ध होजाता है=और=जो मनु का यह वचन है कि (शूद्रांशयनमारोप्यब्राह्मणोजात्य धोगतिम जनयिस्वाप्ततन्तर्या ब्राह्मणयादेवहीयते) अर्थात्-शूद्रा को अपनी सेजपर सोवाइके ब्राह्मणचोगतिकी पहुँचता है और उसमें निपट सतान पैदा करवाइ के निपट ब्राह्मणावके लक्षणासेही मिटिजाताहै) सो यह मनुका वचन कृच्छ्र प्रायश्चित्त की बड़ाई छुटाईके निमित्त पर नहींहै केवल पापकी बड़ाई जाहर करनेके निमित्त पर आरूढ है=क्योंकि निपट ब्राह्मणावसे नहीं जाता रहिता किन्तु प्रायश्चित्तसे शुद्ध होकर ब्राह्मण बना रहिता है जो आगेकी फिर कभीऐसा न करे-और यहभी याद राखना कि इस वचनमें उसका चर्चा नहींहै जो कोई ब्राह्मण किसी शूद्रकी कुमारी कन्यासे अपना विवाह करिके घर बसावै या सन्तान पैदा करावै या सेज पर सोवावै क्योंकि वह एक निंय विवाहोंका धर्मसारा जुदाहै उसमें कृच्छ्र प्रायश्चित्त की जखरत नहीं परती=तिसरे यहाँ केवल वह शूद्रा समझिलेनी जो किसी शूद्रकी विवाहिता भार्याहो तिसमे गर्भ धरने आदिका यह प्रायश्चित्त है क्योंकि यह परिच्छेदही पराई भार्या गमन करने मध्ये वर्णन होरहा है इसी से पारदार्य पाप के प्रायश्चित्त इनका नाम है ॥ यहाँ तक पारदार्य के जो कृच्छ्र प्रायश्चित्त कहेगये सो सब अनुलोम व्यभिचार मध्ये कहेगये हैं कि नीचे वर्ण की स्त्री और ऊँचे वर्ण के पुंस्य हों यद्वा दोनों एकही वर्ण के हों अब आगे प्रतिलोम सैद्युन की चर्चार्थ होगी ॥ ० ॥ अथप्रतिलोमव्यवायेप्रायश्चित्त-ऊँचेवर्णकी स्त्रियों में यदि नीचे वर्णवाले कोईपुंस्य व्यभिचारकरै तहां सर्वव वषट्कपी प्रायश्चित्तहै व्रतरूपीनहीं= तथाचवचन=प्रतिलोम्येवध पंसोन्गार्या करार्थादिकर्त्तनम=अर्थात्-विपरीत वर्णों के व्यभिचार में पुंस्यका ववकरना प्रायश्चित्तहै और स्त्रीके नाक कान आदि उत्तम अंग काटना=इसकेमध्ये=वृद्धप्रचेताका जो वचन आगे लिखतेहैं तिसमे कृच्छ्रभेदहै= यथाहवृद्धप्रचेता=शूद्रस्यब्राह्मणोमोहाइगच्छत शुद्धिमिच्छतः पूर्यामेतद्व्रतदेयमाता यस्माद्वितस्यसा पादहान्याऽन्यवर्णासुगच्छतः सार्ववर्णिकमिमांसादशवर्षातिदेश

कं तत्त्वभार्याभ्यां त्यागच्छतो वेदितव्यं मोहादिति विशेष्यसोपादानादिति मितास-
राकाराः=अर्थात्-शूद्रपुंस्य जो ब्राह्मणी में मोह (अज्ञान) से गमन करे सो अपनी
शुद्धि चाहे तो यही सार्व वर्णांक जो बारहवर्षका व्रत पहिले कहा गया पूरा पूरा
उसको देना चाहिये क्योंकि ब्राह्मणी उसकी माता कहती है किन्तु माता में व्यभि-
चार उमने किया तिससे इसी प्रकार ठकुरानी या वनेनी आदि किसी और वर्ण की
छोमेंव्यभिचार शूद्रने किया हो तो वर्णाक्रमसे एक एक पाद घटाकर प्रायश्चित्त करे
(यह इस बचनमें जो बधको बचाइकर बारहवर्षवाले पूर्वोक्त व्रतका अतिदेश उतारा
गया सो इसहेतुसे कि ब्राह्मणीको समझे बिना अपनी भार्याके बोखेसे संगसकरि
वैदाहो तिसको बधरूपी प्रायश्चित्त न देना चाहिये क्योंकि मोहात् यह अज्ञानता
का बोधकशब्द भी श्लोकमें मौजूद है तिससे ठकुरानी आदि औरोंमें भी अज्ञानतासे
व्यभिचार करने मध्येयह प्रायश्चित्त समझना अन्यथा इसप्रतिलोम व्यभिचारमें
बधरूपी जो प्रायश्चित्त कहि चुके वही ठीक है ॥ ० ॥ संवर्तने अत्यन्त व्यभिचारिणी
का प्रतिलोम प्रायश्चित्त कहा है=यथा=कथंचिद्ब्राह्मणीं गच्छेत्सत्रियो वैश्यस्य वा
कृच्छ्रं सांतपनं वा स्यात् प्रायश्चित्तं विशुद्धये शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गच्छेत्कथंचित्काम मोहि-
तः गोमूथयावकाहरोमासेनैकेन शुद्धात् (इतितदत्यंत व्यभिचारिणी वियथं=अर्थात्-
कदाचिच्च सत्री या वैश्य ब्राह्मणीसे गमन करे सो सत्री अपनी शुद्धि के लिये कच्छ
प्राजापत्य करे और वैश्य अपनी शुद्धि चाहिकर कच्छ सांतपन व्रत करे कदाचिच्च
कोई शूद्र कामसे मोहित होकर ब्राह्मणी में संगसकरे सो एक सहोनाभर गोमूत्रमें
पकाया जौका दलिया खाय तब शुद्ध होय (सो यह अत्यंत व्यभिचारिणी जो प्र-
सिद्ध होय तिस ब्राह्मणीका चर्चा है अन्यथा इस प्रतिलोम व्यभिचार में बधरूपी
प्रायश्चित्त जो कहि चुके वही ठीक है ॥ अब आगे जो उत्तम जाती पुरुष अंत्यजा में
संगम करे तिनके प्रायश्चित्त देखो ॥ ० ॥ अंत्यजागमनप्रायश्चित्तं-शूद्रसंवर्तने
अंत्यजाके संगमका भी प्रायश्चित्त कहा है=यथा=रजकव्याघ्रयैलूयवेराचर्मोपजीवि-
नाम सतारुव्राह्मणी गत्वा चरे चंद्रायणादयम (इतो ब्राह्मणास्य कामतः सकृद्गम-
नयिययं क्षत्रियादीनां तु पादद्वीनं कल्प्यं=अथैवापस्त्वैनोक्तं (स्लेच्छीनरीचर्मकारी-
जकी वस्त्र उतिया सतासु गमनं कृत्वा चरे चंद्रायणादयमिति)=अर्थात्-धोवोरंगरेजछोपी
आदि-व्याघ्र चिह्नोसार आदि-शैलूय नट नर्तक आदि नीच जाति-वेरा नामक
अति नीची वर्णसंकर जाति-चर्मोपजीवी चमार नीची खलोक आदि जो चमड़ा
के काम से जीवन करें इनकी स्त्रियों में ब्राह्मणा यदि एक बार गमन करे वह दो

साम को पूरे दो चान्द्रायणा करें तब शुद्ध होय (जैसा यह ब्राह्मण को कामना से एक बार संगम करने मध्ये कहा तैसा सभी आदि पुरुषों को एक एक पाद कम करिके विचारना चाहिये=इसी बातों के मध्ये आपस्तम्बने भी कहाहै कि (स्तेच्छ देशों की और अत्यन्त नीच अपवित्र जातों की स्त्रियाँ स्तेच्छी कहाती हैं तिनमें और नरिनी चमारी, रजकी बरुडी आदि सद्धानीच जाति की स्त्रियाँ इनमें वैवर्गिक पुरुष गमन करिके दो चान्द्रायणा करें तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ अन्त्यजोंके स्वरूप भेद उन्होंने दृष्टसंवर्त ने कहे हैं=यथा=रजकप्रवर्गकारश्च नरोवसुडएवच कैवर्तमेदभि ह्याश्चसप्तैतेऽन्यावसायिनः=रजक• चमार• नट• वसुड• कैवर्त• मेद• भिल्ल• येसात जातें अन्यावसायी अर्थात् अन्त्यज नाम से कहाती हैं इन्हींके संभोग मध्ये प्रायश्चित्त ऊपर कहे गये=इनके सिवाय=चण्डाल आदि और भी सात अन्त्यज इनसे भी अधिक नीच होते हैं तिनकी स्त्रियों के संभोग मध्ये बहुतबड़ा प्रायश्चित्तहै सो २६० की अधिकोक्ति में श्रुतलप प्रायश्चित्त के साथ में कहिचुके तहां देखो—किन्तु—यहां पर लिखी हुई अन्त्यजा स्त्रियों में जो एतद्गी के मैथुन पर प्रायश्चित्त कहागयाहो सो इन सबही स्त्रियोंके मध्ये समझि लेना क्योंकि सब एकही साथ एक सी दर्शाई गई=इस बातका प्रमारा आगे उग्रनाका वचन है=यथा=बहूनामेकधर्मा गामेकस्यापिपदुच्यते सर्वेयांतद्वेत्कार्य मेकस्वरूपाहितेस्मृताः=अर्थात्—बहुतसे ऐसे लोग जिनका एकहीसा वर्तावा या धर्महोय तिनमें किसी एकही के लिये जो कुछ कहाजाय वही कार्य उन सबके लिये होताहै क्योंकि सब एकही रूप हैं तिससे ॥०॥ चण्डाल्यादिष्वकामकृतगमने अन्त्यजा भोगनेकी इच्छा न होतेहुये बीखाआदि से यदि कोई इनकी भोगें तिसके मध्ये आपस्तम्बने कहाहै=यथा=चण्डालमेदश्चपचक पालव्रतचारिणाम अकामतःस्त्रियोगत्वा पराकव्रतमाचरेत्=अर्थात्—चण्डाल• मेद• श्वपच• कपाल व्रतचारी जो कपालका चिह्न यास रखनेका व्रत रखतेहैं कापालिक जाति उसका नामहै यहभी एक अन्त्यजोंकी जाति विशेष होती है इनकी स्त्रियाँ जो हृदय की इच्छा बिना एकवार भोगें सो पराक नाम व्रतकरें जो बारह दिन में पूरा होता है परन्तु यह भी नियम वहींहै कि पराक व्रत एकही आश्रित करे=संवर्तका यह वचन है कि=रजकव्याधशैल्यवेणाचर्मोपजीविनास्त्रियोविप्रोयदागच्छेत्कच्छज्वाद्रायणांचरेत्=अर्थात्—रजक• व्याध• शैल्य• वेणा• वंसफोर की जीविका वाले• चमडाकी जीविका वाले इनकी स्त्रियोंमें यदि कोई ब्राह्मण एक बार गमन करे सो कच्छू चान्द्रायणाका प्रायश्चित्त आचरे (यह वचन उभी दशापर आच्छ है

किं जैसा आपस्तंबका इच्छाके विना भोग हो जाने मध्ये कहि चुके=जोकि शातातप
का यह वचन है कि (कैवर्ती रजकीं चैवयेगाचर्मापजीविनीम प्राजापत्यविधानेन
दृष्टे रौक्तेन शुद्धतीति) अर्थात्-कैवर्ती जो वीवर और जालवाले मछेदरे तथा मत्ताह
कहाते हैं तिनकी स्त्री कैवर्ती रजकी रंगरेजिन स्त्रीपनि धोबिनि आदि बाँस की
जीविका करनेवाली बंसफोरिनि आदि चमड़ाकी जीविका वाली चमारी मोचिनि
आदि इनमें व्यभिचार करनेवाला पुरुष प्राजापत्यके विधानसे एकही कृच्छ्रकरिके
शुद्ध होता है जो सिर्फ बारह दिन का प्रयोग है (इस वचन का यह तात्पर्य है कि
बोयें सींचनेसे पहिले जो फिर परै तिस पर यह छोटा प्रायश्चित्त लगाया जाय=
और जो=उशनाका यह वचन है कि=कापालिकाच भोक्तृणां तन्मारीगासिनां तथा
जानारकाच्छाब्दमुद्दिष्टमज्ञानादेवस्मृतम् इति तदभ्यासविषयं=अर्थात्-कापालिक
जातिका अन्न खानेवाले और उनकी स्त्रियोंमें संगम करनेवालोंको ज्ञानपूर्वक ऐसा
करनेमें एकवर्ष भर कृच्छ्र व्रत करना कहा और विना जाने ऐसा करने पर चांद्रा-
यणा करना कहा सो यह अभ्यासका विषय समझना कि जिसने बार बार ऐसा
किया हो तिसके लिये यह बड़ा प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ चांडाली गर्भ प्रायश्चित्तं
जहाँ कहीं ऊर्ध्वोक्त चंडाली आदि स्त्रियों में संगम करनेसे गर्भ जमि जाय तहाँ वा-
रह बर्यका प्रायश्चित्त है=यदाहोशनाः (चाण्डाल्यां गर्भमारोप्य श्रुतत्पव्रतंचरेत्)
अर्थात्-चण्डाली आदि में गर्भधारण करिके श्रुतत्प रूपो महापातकवाला बारह
बर्यका व्रतकरे तब शुद्ध होय और जो=आपस्तंब का यह वचन है कि=अन्यजायां
प्रसूतस्थनिष्कृतिर्निविधीयते निर्वाचनं कृतां कस्यतस्य कार्यमसंशयम् (तदेतत्कामकार
विषयं)=अर्थात्-अन्यजा नामक महाचाण्डाली (द्वयांत भंगिनि आदि) में जोकोई
चार बर्योंका पुरुष अपने वीज से गर्भरूप होकर जन्म धरे तिसको निष्कृति नहीं
कराई जाती है अर्थात् उसका प्रायश्चित्त कोई नहीं है कि जिसके करनेसे फिर भी
अपनी जातिमें मिलि सके तिससे निःसन्देह उसका यही कार्य है कि साथेपर कृत्तम
की निशानी पक्की रीति से मजबूत दागदेकर निर्वासन रूपी दण्ड दिया जाय अर्थात्
उसकी देश निकाला देकर किसी ऐसे द्वीप (रापू) के वनमें बास कराया जाय जो
प्रत्येक राज्योंके अधिकार में कोई एक दुर्गम भूभाग कालापानी आदि नामों से
विख्यात होता और इसी निमित्त रहा आता है कि बहुत बड़े अपराधी लोग वहाँ
छोड़ दिये जायें (सो यह आपस्तंबका वचन केवल उस दशा पर आवश्यक है कि
जिसने काम की इच्छा से चांडाली को जानते हुये ऐसा किया हो अन्यथा जिसने

चांडालो को जाने बिना किसी और बोखा आदि से गर्भ धारण किया हो तिसके लिये ऊर्ध्वोक्त उग्रना के वचन से बारह वर्यका प्रायश्चित्त है कि जिसको साधन करिके फिर जाति में मिलि सक्ताहै ॥ ० ॥ अन्यजों के चौदह भेद यहिले लिखि चके हैं उनमें सात जातें अभी ऊपर अन्यजागमन प्रायश्चित्त के पाठ में वृहत्संवर्त के वचनसे लिखी गई (रजकश्चर्मकारश्चनटोवस्तुदण्डवच केवर्तमदभिलाश्चमत्तैते, श्रंत्यजाःस्मृताः इति यमस्तु) यही वचन यमका है कि जैसा वृहत्संवर्त का लिखि चके तहां अर्थों सहित इसको देखो—और इनसेभी अधिक नीच सात जातें श्रंत्यजों की और हैं (चंडालःश्चपचःसत्तासूतोर्वैदेहकस्तथा मागवाः१२योगोवैवमत्तैते१३अत्यावसायिनः इत्यागिराः) यह मध्यम श्रंगिरा का वचन दोसी साठि की अधिकोक्तिमें आचुका तहां अर्थों सहित इसको देखो उन्हीं नात में चंडाल श्रपच आदि में भंगी भी एक प्रकार का अन्यावसायी जाति होता है—उन्हीं चंडाल आदि अन्यजोंकी स्त्रियों में गर्भ पैदा करने का यह चर्चा ऊपर लिखा गया कि जानते हुये तो कुछ प्रायश्चित्त नहीं केवल बनेवास छपी दगडहें परन्तु अज्ञानता से उनके गर्भ धरने मध्ये बारह वर्यका प्रायश्चित्तहै वह दगड नहीं—यद्यपि अन्यावसायी सात भौतिके चंडाल और श्रपच आदि कहे गये तथापि अन्यावसायी एक जुनी जाति भी इलामकर इसी नामसे होता है जो मुर्खों के ऊपर का फेंका हुआ वस्त्र आदि लेने की आशासे श्मशानकी धरपर सदा विचरता फिरताहै यहभी एक भंगियोंमें से भेदविशेष होता है—यथाइ मनुः (नियादस्त्रीतुचंडालात्पुत्रसंत्यावसायिनं श्मशानगोचरंभूतेवाद्यानामपिगर्हितं) अर्थात्=नियाद जातिकी स्त्री चण्डाल के गोत्र से अन्यावसायी नामक पुत्र को उत्पन्न करती है जो अपना उदर भरने को चिताकी श्मशान धरता पर विचरता है ॥ ० ॥ यहां पर प्रसंग से यह बात दयाति है कि यद्यपि चारों वर्गों में शुद्धभी अन्त्यज कहाजाहै तथापि यहां शुद्धवर्गोंका प्रसंग नहीं केवल अधमजातों का प्रसंग है और अन्त्यज वा अन्त्य जातिकी अर्धभी मिद्वान में गकड़ी होताहै कि जैसा अभी ऊपर सात भौति या चौदह भौतिके अन्त्यज वर्गोंन होचुके तहां देखो—उसी अन्त्या जाति का घरमें धूमि आना भी प्रतिषिद्ध है कि उस घर वाले ब्राह्मण सभी वैश्य और शुद्र कोभी प्रायश्चित्त करना कहा है—तथाच प्रायश्चित्ततत्त्वं=श्रंत्यजातिरविजातीनिवसेद्यस्यवैशमिषवैजात्यातुका लेनकृत्यार्त्तथायगोधनम चांद्राय सांपराकीवाह्मिजातीनांविशोधनम प्राजापत्यंचगुद्राणांतयासंमर्गद्वययो येत्स्वभूक्तं पक्षाक्षच्छून्येयांविनिर्दिशेत् तेयामपिचयैर्भूक्तंतेयामधोवोयते तेयामपिचयैर्भूक्तं

कृच्छ्रपादो विधीयते इति—अर्थात्—अन्याजाति चौदह भाँति में किसी प्रकार का मनुष्य जो बिना जाना हुआ किसी अच्छी जाति के धोखे से जिसके घरमें दिके निवास करे सो घर वाला जब कुछ दिनों के बाद उसको अन्याजाति जानिपावे तभी जानिकर उस जगह को अच्छी तरह शोधै कि जैसा आचार मर्यादा परिपाटी के द्रव्य शुद्धि नामक प्रकरण में भूशुद्धि का प्रकार वर्णन हुआ था उसी रीति से इस घर को शोधै) और काल के अनुसार शोधै अर्थात् जो चंडाल आदि थोड़ीदेर घुसिके उसी समय लौटि गया हो तबती केवल उस प्रकार की लीपा पोती आदि शुद्धिकरै कि जैसा इसी प्रायश्चित्तकांड के तीसरे ३० मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्ति में चण्डाल आदि अनेकोके कुड़जाने पर स्नान आदि क्रिया करिके शुद्ध हो जाना वर्णन हो चुका है—परन्तु जो उस घरकी धरती में चण्डाल आदि के घुसने से किसी प्रकार की मलीनता आदि चिन्न भी हो गया हो या चण्डाल आदि बहुत दिन तक टिका हो तो फिर ३१ इकतीस मूल श्लोक वाली अधिकोक्ति के विचार से और आचार कांड में लिखी हुई पाँच प्रकार की भूशुद्धि के अनुसार कुछ सूतक-रूपी कालभी मानना और उन्हीं पाँच प्रकारोंमें जो कोईसा प्रकार शोधनके योग्य समझा जाय तिसका वर्तवाभी करना चाहिये—इतना शोधन करनेके उपरान्त प्रायश्चित्त भी यह करना कहा है कि ब्राह्मण का घरहो तो उसको चांद्रायण करना चाहिये जो सत्री अथवा वैश्यका घरहो तो सत्री को दो पराक और वैश्य को एक पराक व्रत करना चाहिये जो शूद्र का घरहो तो शूद्र को प्राजापत्य करना चाहिये और उसकी भी प्राजापत्य करना चाहिये जो उस घरकी शुद्धिहुये बिना किसीवर्ग का मनुष्य जाकर बंटा हो या घर वाले के साथ प्रायश्चित्त करने से पहिले कुछ सूर्य मेल सिंताप किया हो और जिन मनुष्यों ने उस दूषित घरमें बैठि के पकान्न भोजन कियाहो उनको कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और उन पकान्न खाने वालोंका भोजन और मनुष्योंने कियाहो तिनको आधा कृच्छ्र करना चाहिये और इन आधे वालों का अन्न जिन मनुष्योंने खाया हो तिनको चौथाई कृच्छ्र करना चाहिये ॥ इसपर ध्यान देना चाहिये कि जब ऐसी छोटी दशापर इतना प्रायश्चित्त है तो फिर जिन मनुष्यों ने सासाव चण्डालोंमें सगम करिके गर्भ धारण किया तिनको बारह वर्ष का प्रायश्चित्त जो कर्हचुके सो कुछ बड़ा नहीं है ॥ ऊपर जो वर्णन हो चुका उसमें चण्डाल नामसे प्रायः कसाई आदि समझने और श्वपच नामसे प्रायः भंभी और मलीन कंजर आदि समझने जो कृते कोभी मारि पकाय खाजाते हैं और अन्या-

वसायी नाम का अर्थ अभी अनन्तर लिखिचुके है कि वह श्मशानमें रहिकर मुर्दों का उतारन लिया करता है इत्यादि सब चौदह भेदों के लिंगार्थ लोक बतावा में प्रसिद्ध है सो समझि लेने ॥ अब आगे के परिच्छेद में स्त्रियों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥ २६५ ॥ इसीमूलश्लोकवाले टीकासेयहपाठ अवतकचलाआताहै ॥ २६५ ॥

अयस्त्रीणां परपुरुष व्यभिचारीपपातकप्रायश्चित्त

प्रकाशकोशपरिच्छेदः पंचांशनमः ५०

इस परिच्छेद में स्त्रियोंके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जो स्त्रियाँ पराये पुरुषों के साथ व्यभिचार से उपपातक उत्पन्न करें सो किस रीति से शुद्ध होयें ॥

(व्यभिचरितस्त्रीषु प्रायश्चित्तं)

स्त्रीणामपि सवर्णानुलोमव्यवायेपुरुषस्योक्तं विवर्धिकादि

तदेवभवतीतिमितासरा ॥

अर्थात् पहिले परिच्छेदमें जो प्रायश्चित्त परस्त्री संगमके मध्ये पुरुषोंके लिये कहे चुके हैं वहीतीनिवर्ण आदि के प्रायश्चित्त स्त्रियोंकोभी योग्यहैं परन्तु उन्हीं मूलोंमें कि जैसा अपने वर्ण का संगम या अनुलोम संगम कहिचुके हैं कि ऊँचे वर्ण का पुरुष और नीचे वर्ण की स्त्री हो (यत्पुंसपरदारयेतच्चैवाचारयेद्वर्तमन्नुः) यह मनुका वचन प्रसार है कि जो कुछ प्रायश्चित्त पुरुष को पराई दाराओं में संगम करने का कहाही वहीव्रत स्त्रीमें उसी संगम के दोष पर करावै यह मितासराकार ने व्यवस्था कही ॥०॥ परन्तु जहां प्रतिलोम मार्ग से मैथुन हुआहोय कि ऊँचे वर्ण की स्त्री और नीचे वर्ण का पुरुष होय तहां प्रायश्चित्त में भेद है सो वैश्वि के वचन से देखौ=यदाह वैश्विः=शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद् वैश्वैर्वैद्यित्वाशूद्रमग्नौ प्रास्येत् ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाऽभ्यज्य गौरखरमारोप्य महापथ मनुसंवाजयेत्पूता भवतीति वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेत्क्षोद्रितं वैश्वैर्वैद्यित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्येत् ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाऽभ्यज्य गौरखरमारोप्य महापथ मनुसंवाजयेत्पूता भवति राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपथैर्वैद्यित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येत् ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाऽभ्यज्य गौरखर

मारोध्यमहापथ मनुसंज्ञयेत्पूताभवतीति विज्ञायत इति—एवं वैश्यो राजन्यां शूद्र
 प्रचराजन्या वैश्ययोरिति (पूताभवतीति वचनाद्वाजवीथि परिव्राजन मेवदंडरूपप्रा
 यश्चित्तांतर निरपेक्षशुद्धिसाधनमिति दर्शयति इति मिताक्षरा=अर्थात्—वैश्व जी
 कहिते हैं कि जहाँ शूद्र पुरुष ब्राह्मणी गमन करें तो उसे फूस पतैल पतावरि से ल-
 पेदि बाँधिके शूद्र को प्रदीप्त बहुतसी अग्नि में छोड़ि देय और ब्राह्मणी का शिर
 मुड़ाइके सब देहमें धीलगाइके कपड़ों बिना नंगी करिके गोरखर नाम जो पंजावी
 गदहा प्रसिद्ध है तिसपर चढ़ाइ के महापथ राज मार्ग रूपी सड़कों पर घुमावें तो
 पवित्र होती है। एवं वैश्य जो ब्राह्मणी गमन करें तिसको लात कुश काश डाम से
 लपेटि बाँधिके उस वैश्य को अग्नि में छोड़िके ब्राह्मणीका शिर मुड़ाय धीलगाय
 नंगी करिके गोरखर पर चढ़ाइ राजमार्गों में घुमावें सो पवित्र होती है। एवं क्षत्री
 जो ब्राह्मणी गमन करें तिसको शर पणों के सरपत्ते से लपेटि बाँधिजलती अग्नि में
 गिराइके ब्राह्मणी का मुँह मुड़ाइ सब देह में धी लगाय नंगी गोरखर पर चढ़ाइके
 सड़कों पर घुमावें सो पवित्र होती है यह जाना गया—इसी प्रकार वैश्य जो क्षत्रा-
 णी में संगम करें या शूद्र क्षत्राणी और बनेनी में संगम करें तिनकी भी यही व्यव-
 स्था समझि लेनी (पवित्र होती है इस कथन से वैश्व ने यह दर्शाया है कि राज
 मार्ग में घुमाना ही बंडरूप प्रायश्चित्त है किसी दूसरे प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं
 रही यह मिताक्षरा कार का विचार है) परन्तु महापथ संज्ञा केवल राज मार्गही
 की नहीं किन्तु हिमालय के उत्तर जाके स्वर्गारोहण नाम से जो मार्ग बंदीनाथजी
 से आगे प्रसिद्ध है तिसको मुख्यता के साथ महापथ कहिते हैं (बल्कि राज मार्गों
 का नाम एक उपलक्षणा से महापथ कहा गया है यह भेद जानों) तिससे गोरखर
 पर चढ़ाइ के उस पाला रूपी देश में जहाँ तक गोरखर के जासकने का मार्गमिले
 तहांतक घुमाइ लावें तो उस पवित्र भूमिपर धमरा करने से शुद्ध होसक्ती है यह व-
 श्व जी का तात्पर्य पायाजाता है। अन्यथा सड़कों पर घुमाने वाला अर्थ जो
 मिताक्षरा के अनुसार लिखागथा सो यह लोक में गदहा पर धरिके हँडाना प्रसिद्ध
 है इससे केवल पारलौकिक शुद्धि यद्यपि होसक्ती हो तोभी उस प्रकार से हँडाइ
 हुंरे नारी की लोक में कोई उत्तम नर घर में लेलेना स्वीकार नहीं करसक्ता है तो
 फिर किस अर्थ की यह शुद्धि ठाहरी। अगर इसका उत्तर ऐसे दिया जाय कि स्व-
 र्गारोहण वाली शुद्धि भी प्रयोजन की साधक नहीं दिखाइ देती है क्योंकि उस भूमि
 पर जाके कोई जीता नहीं लौटता बल्कि बेही लोग जाते हैं जो ईश्वर निमित्त अपना

देह छोड़ना चाहते हैं दृष्टान्त मवजूर है कि पांडवों ने जाकर उसी हिमालय पर अपने देह छोड़े हैं। तो इस उत्तर से भी इसी में जीति देख परती है कि जिनको उस नारी का लोटिके घर में लेना स्वीकार होगा वे तहांतक लेजायेंगे कि जहांतक पाला से देह नहीं गिरता है। अन्यथा जो लोग नारीका अपराध बहुत जानिके घरमें लेना नहीं चाहेंगे और यह भी नहीं चाहेंगे कि हंटाइ के त्यागी हुई फिर भी सर्वव कुकर्म ही करती फिर वे अवश्यही पूरे महापय में कंदि आवेंगे कि जैसे पांडव लोग स्वर्ग को गये तैसे यह नारी भी पापों से छुटिके स्वर्ग जायगी। इसी अर्थ से बनों मुट्टी में मोदक देख परते हैं कदाचिद् ऐसा अर्थ न होता तो फिर गोरखर पर चढ़ाने की जगह केवल खर गवहा कहा जाता किन्तु गोरखर इसी हेतु से बताया है कि बहुत चलिमक्ता और दहेदेशों में जासक्ता है—और वशिष्ठने यह इतना कठिन प्रायश्चित्त जो कहा सो केवल कामना से चाहिकर व्यभिचार करने पर कहा है—कोकि इससे पहिले परिच्छेद में (प्रतिलोम्येवधःपुंसो नार्याःकर्तादिकर्तनं) यह वचन आचुका है कि प्रतिलोम व्यभिचार में पुंस्य का बध किया जाय और नारी के कान आदि काटेजाय और तात्पर्य इसका सर्वत्र यही समझे रहना कि प्रतिलोम मैथुन जो कामना चाहिकर किया जाय तिसका प्रायश्चित्त कोई ऐसा नहीं है जिसे शुद्ध होकर खी फिर घरमें आसके। सिर्फ उम दशा में शुद्ध होसक्ती है कि देव गति से राज विग्रह आदि में फंसिकर बिगड़ी हो तिसके प्रायश्चित्त आगे सभीक-धीश्वर बर्णन करेंगे जैसा इसी जगह सर्वत का वचन देखी ॥ ० ॥ अथ निष्कामप्र-तिलोम व्यभिचारस्य शुद्धिः—यदाह संवर्तः=ब्राह्मण्यकामागच्छेत्सत्रियवैश्य मेववा गोमूत्रयावकैर्मासात्तथासार्द्धाद्विशुद्ध्यति (कामस्तुहिंशुताकर्तव्यं कामात्तद द्विशुगांभवेदितिवचनादिति) मितासराकारास्तद्युक्तं=अथानि=ब्राह्मणी जो इच्छा के बिना देव योग से क्षत्री या वैश्य में जाकर फंसे सो क्षत्री के मध्ये सक सहोना भर गोमूत्र के रंधे जो भोजन करने से और वैश्य की अपेसा डेढ सहोना जो का वलिया गोमूत्र में रंघा खाकर व्रत राखने से शुद्ध होती है (मितासराकार ने इस पर यह भी कहा है कि जो इच्छा से जाकर फंसी हो तो इससे दूना व्रत करे को-कि इच्छा सहित पापके मध्ये दूना करने का नियम शास्त्र में प्रसिद्ध है) सो यह दूने का नियम ठीक नहीं है इसका निर्याय आगे सकाम मैथुन के चर्चा में देखना ॥ ० ॥ यद्विश्वं सत के ग्रथ विशेष में ब्राह्मणी आदि सभी स्त्रियों के जुदे प्राय-श्चित्त कहेहैं=यथा=ब्राह्मणीक्षत्रियवैश्य सेवायामतिरुक्कृन्कृच्छ्रातिरुक्कृच्छ्रीचरेत्•

सत्रिययोयिताब्राह्मरा राजन्यवैश्यसेवायांकच्छादं प्राजापत्यमतिकच्छन् वैश्ययो
 यिताब्राह्मरा राजन्यवैश्यसेवायां कच्छन्प्राजापत्यं शूद्रायाः शूद्रसेवनेप्रा
 जापत्यं ब्राह्मरा राजन्यवैश्यसेवायां त्वहोरात्रं चिरात् कच्छन्मति=अर्थात्-ब्राह्म
 रा यदि एक रात्रि भर सत्री या वैश्य की सेवामें जाफँसै सो सत्री के व्यभिचारम-
 भये अतिकच्छन् व्रतकरै औरवैश्यके व्यभिचार वादत कच्छन् अतिकच्छन् दोनों भाँति
 के व्रत करै तब शुद्ध होय० एवं सत्री की योगिता यदि एक रात्रि भर ब्राह्मरा या
 सत्री या वैश्य की सेवा में जाफँसै सो ब्राह्मरा के व्यभिचार मध्ये आधा कच्छन्करै
 सत्री के व्यभिचार मध्ये प्राजापत्य पूरा करै वैश्य के व्यभिचार मध्ये अतिकच्छन्
 करै० एवं वैश्य की योगिता यदि एक रात्रि भर ब्राह्मरा या सत्री या वैश्य की
 सेवा में जाफँसै सो ब्राह्मरा के व्यभिचार वादत कच्छन् की चौथाई प्रायश्चित्त करै
 सत्री के व्यभिचार वादत कच्छन् का आधा व्रत करै वैश्य के व्यभिचार वादत प्रा-
 जापत्य पूरा करै० एवं शूद्र की योगिता यदि एक रात्रि भर और शूद्र की सेवा में
 जाफँसै सो प्राजापत्यकरै और ब्राह्मरा के व्यभिचार में जाफँसै सो एक दिन रात्रि
 भर व्रत करै और सत्री की सेवा में जाफँसै सो तीन दिनका व्रत करै और वैश्यकी
 सेवा में जाफँसीहो सो आधा कच्छन् करै जो छः दिन में होसकैगा-इन प्रायश्चित्तों
 के कीटापन से प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि देव योगसे सारा माव फँसिजाने वादत ये
 प्रायश्चित्त हैं तिससे एक रात्रि भर लिखि चुके सो ठीक नहीं ॥ ० ॥ शूद्रसंगमे
 पिकाचित्तशुद्धिस्तुत=तदाह वृहत्प्रचेता=विप्राशूद्रासंगमृक्तानचेतश्मात्प्रसूयते प्रा
 यश्चित्तंमृतस्याःकच्छन् चांद्रायणावयव (एतदनिच्छंत्यां स्वपतिभांत्यावावेदितव्य
 मित्यत्राभिप्रायः) चांद्रायरोद्वेकच्छन्प्रचविप्रायावैश्यसेवने कच्छन्चांद्रायणस्यातांत-
 स्याःसत्रियसंगमे-सत्रियाशूद्रसंपर्ककच्छन्चांद्रायणावयव चांद्रायणासकच्छन्नुचरेहै
 प्रयेनसंगता-शूद्रांत्वाचरेहैस्याकच्छन्चांद्रायणोत्तरम-यानुलोम्ये प्रकुर्वीतकच्छन्पा
 दांतरोपितम=अर्थात्-वृहत्प्रचेताने विरले क्रिया विहीन देशों के आचार हीन ती-
 नों वर्गों का हित सोचिके उनकी स्त्रियों की शूद्रि शूद्र के व्यभिचार में भी होती
 कही है कि-ब्राह्मणी जो शूद्र के साथ इच्छा बिना या अपने पतिके धोखे से फँसि
 जाय और उससे गर्भ यदि न रहने पाया'हो तो इस दशा में उस ब्राह्मणी के लिये
 प्रायश्चित्त कहा है कि कच्छन्आत्मक तीन चांद्रायण करै-इसी प्रकार जो वैश्यकी
 सेवा में जाफँसी हो तिसको दो चांद्रायण और उनके बाद एक कच्छन् भी करना
 चाहिये० इसी प्रकार जो सत्रीके संगमें जाफँसीहो तिसको कच्छन्आत्मकदोचांद्रायण

करने चाहिये—ऐसेही जो सखी की भार्या किसी शूद्र के संपर्क में जाफँसी हो तिसको दो कृच्छ्रात्मक चांद्रायणा करने चाहिये और जो सखाणी किसी वैश्य के साथ फँसी हो सो एक चांद्रायणा और एक कृच्छ्र नाम का जुदा प्रायश्चित्त करे—ऐसेही वैश्यकी भार्या जो किसी शूद्रसे फँसि गई हो सो एक चांद्रायणा के पीछे एक कृच्छ्र व्रत भी साथै तब शुद्ध होय—और जहां अनुलोम रीति का मैथुन होय कि पुन्य ऊँचे वर्णों का और स्त्री नीचे वर्णों की तहां कृच्छ्र व्रत वर्णाक्रम से एक एक पाद घटा कर करै ॥ ० ॥ गर्भस्थितौ च कचिच्छुद्धिः प्रोक्ता—ध्यान करो कि विरले देश विशेष के वर्तावा और तत्त्व मनुष्यों की प्रकृति चर्या के अनुसार उनके निर्वाह सोचि के चतुर्विंशति सत नाम के ग्रन्थ विशेष में गर्भ रहिजाने पर भी प्रायश्चित्त से शुद्धि होनी कही है—यथा=विप्रगर्भपराक स्यात्सविश्वस्य तथैन्दवम् सेन्दवश्च पराकश्च वैश्यस्या कामकारतः शूद्रगर्भभवेत्यागश्चाराडालो जायते यतः गर्भस्रवैर्धातुदोषैश्चरेखांद्रायणावयम् (अकामकारत इति विशेषणोपादानाद कामकारे पुनः पराकादिक द्विगुणाकुर्यादिति मिताक्षरातदुक्तं=अर्थात्—ब्राह्मणा से गर्भ रहा हो तो पराक व्रत करै जो बारह दिन में होता है जो सखी से गर्भ रहा हो तो चांद्रायणा करै जो वैश्य का गर्भ रहा हो तो चांद्रायणा और पराक दोनों करने चाहिये यह सब कामना के विना देवयोग से सगम होकर गर्भ रहिजाने के प्रायश्चित्त हैं और शूद्र से गर्भ रहिजाने से स्त्री का त्यागही किया जाय प्रायश्चित्त की जल्दरत नहीं है कोकि शूद्र के गर्भ से चाराडाल पैदा होता है तिससे अन्यथा जो गर्भ रहिकर कुछ दिन पीछे गिरजाय तौभी शरीर के भीतर उस गर्भ का रस फैलने से शरीर की मात्तों धातु में दोष पहुँचिजाने के हेतु से उस दोष की शुद्धि तभी होती है जो लगातार तीन महीना के चांद्रायणा करै (मिताक्षराकारकहिते हैं कि कृच्छ्राविना के भोग मध्ये ये प्रायश्चित्त कहे गये तिससे जहां स्त्रीने कामना से सगम करिके गर्भ धराहो तहां ये प्रायश्चित्त दुगुने कराने चाहिये सो यह दुगुने का नियम ठीक नहीं है इसका व्यौरा पहिले भी लिख चुके और फिर भी कहीं आगे लिखा जायगा ॥ ० ॥ जहां यह शूद्रका गर्भ गिरने नहीं पाया किंतु दशवे महीना तक पेट में रहिकर जन्म पावै तहां फिर निपट प्रायश्चित्तकी जल्दरत नहीं रहितो क्योंकि स्त्री का त्यागही किया जाता है—तदाह वशिष्ठः—ब्राह्मणासवि यविशां भार्याः शूद्रेणासंगताः अप्रजाता विशुद्धाः तप्रायश्चित्तेन नेतराः=अर्थात्—देवयोग से ब्राह्मणा सखी वैश्य इनकी भार्याये यदि शूद्र से विगडें तो जिनके गर्भ का प्र-

सूत न होने पावें वेही प्रायश्चित्तसे शुद्ध होजाती हैं जिनके प्रसूत होवे वे नहीं शुद्ध होसक्ती हैं ॥ ० ॥ सगर्भायाः शूद्रादि संगमे नियमाः—यदि कोई द्विजाती की भार्या अपने पतिके वीज से गर्भवती होते हुयेभी शूद्रआदि से व्यभिचार में फँस गई हो तिसके लिये स्मृत्यन्तर में विशेष नियम कहे हैं=यथा= अन्तर्वत्नीतुयानारी समेता क्रम्यकामिना प्रायश्चित्तं न कुर्यात्सायावद्गर्भा न निःसृतः जाते गर्भव्रतं पप्रचात् कुर्यान्मासंतुयावकम् न गर्भदोयस्तस्यास्ति संस्कार्यः स यथाविधि=अर्थात्—यदि कोई गर्भवती नारी किसी कासी पुरुष ने प्रवृत्ता से पकड़ि के भोगी सो स्त्री तब तक प्रायश्चित्त न करै कि जबतक उसका गर्भ जन्म लेकर बाहर न निकसै (क्योंकि गर्भ की दशा में प्रायश्चित्त कराने से गर्भ गिर जाने की शंका है तिससे) जब गर्भ उसका जन्म ले चुके तिस पीछे एक महीना भर व्रत करै तिसमें गोमूत्रको रँधे जोका साज पीके रँधे पर उस पैंदा हुये गर्भ में कुछ दोय नहीं है क्योंकि शास्त्रोक्त विधि से उसका संस्कार करना चाहिये ॥ ० ॥ इन में जो कोई स्त्री अपने उद्धतपन से प्रायश्चित्त न करै तब (नार्याः कर्णादिकर्तनं) यह वचन पढ़िले लिखि चुके हैं तिसका वर्तावा किया जाय कि ऐसी नारी के नाक कान आदि उत्तम अंग काटिके कुक्षप करै इस वंश के साथ उसका त्याग किया जाय यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ अन्त्यज चांडालादिव्यभिचारैः पिक चित्प्रायश्चित्ते न शुद्धिः—और भी विरले देश विशेषों की अपेक्षा से तत्पत्य मनुष्यों के व्यवहार अनुसार उनके निर्वाहोंके निमित्तसे विरली स्मृतियों में अन्त्यज से व्यभिचार होजाने में भी द्विजातीकी स्त्रियां प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होजातीकही हैं=यथास्मृत्यन्तर वचनं=रजकव्यावशैलूयवेणाचर्मोपजीविनः ब्राह्मरायेताम्रदागच्छेदकामार्देववयमिति=अर्थात्—रजक० व्याव० शैलूय० वेणा० से० चर्मदासे उपजीवन करनेवाले इनके साथ जो ब्राह्मणी इच्छाके बिना एकवार संगम करै सो तीन चांद्रायणा करिके शुद्ध होती है—इन्हीं अन्त्यजों की वावत इससे बड़ा भी प्रायश्चित्त आगे सालभर का कहा जायगा—यदांपर (यत्कर्तुं न कराना कि इसमें केवल ब्राह्मणोंकही ऊपर द्विजातीको स्त्रियां ऐसा क्यों लिखि चुके किन्तु जब सबसे उत्तम ब्राह्मणी शुद्ध होसकी तब सवाणी वनेनी कहाँ रहें बल्कि ब्राह्मणी को तीन चांद्रायणा कहेगये तो सवाणी को दोही और वनेनी को एकही चांद्रायणा से और शूद्राको पन्द्रह दिन के व्रत करने से शुद्धि प्राप्त होसकेगी तिससे तर्कना की अवकाश इसमें नहीं है)=इसी प्रकार=इससे भी अधिक मलीन चण्डाल आदि अन्त्यजोंके व्यभिचारमें भी प्रायश्चित्तसे शुद्धिहोनी विरली स्मृतियोंकेकही

है=यथा=चांडालंपुलकसंस्लेच्छश्चपाकंपतितंतथा ब्राह्मरायकामतोरात्वाचांद्रायरा
चतुययम=अथति-चाराडाल=पुलकसं=स्लेच्छ=श्चपाक= पतित जो चारि प्रकार के
महापातकी वरान होचुके= इन के फंदा मे ब्राह्मणी बिना इच्छाके फंसि कर चार
चांद्रायरा करें (इनका भी वही अनुक्रम है कि सवारी तीनिही चान्द्रायरा करें
वैश्यकी भार्या दोही करें शूद्र की भार्या एकही करें) परन्तु जैसा मितासराकारोंने
इन वचनों पर यह कहा है (अकामतइतिवचनात् कामतोद्विष्टांकल्पं) कि इन
वचनों में अकाम संगम के मध्ये जो प्रायश्चित्त कहागया सो कामताके व्यभिचा-
र मे हुना करवाना चाहिये-इस व्यवस्था पर आधुनिक लेखक संमत नहीं देसक्ते
हैं क्योंकि मूल स्मृतिकारों ने केवल अनिच्छा के व्यभिचार पर प्रायश्चित्त से
शुद्धि होनी कही है इच्छा के व्यभिचार में प्रायश्चित्तसे भी ऐसे महामंद पातकी
शुद्धि होनी संभव नहीं है जो ऐसा होसक्ता तो मूलमें भी कुछ प्रायश्चित्त भेदकी स
मस्या करीजाती तिससे ऐसी स्त्रियों का परित्याग ही सूचित किया है बल्कि इसी
प्रकार का अगिला वचन देखो उसमें भी देवयोगसे यह जोच संगम होजानेका प्रा-
यश्चित्तहै=तथाच=चांडालेनमुसंपर्कयदिगच्छेत्कथंचनसशस्त्रवपनं कुर्याद्भुंजीयाद्या
वकौदनस धिरावमुपवासःस्यादेकरात्रंजलेवसेत् आत्मनासमितेकूपेगोमयौदककर्म
तत्रस्थित्वानिराहारा साधिरात्रंततःक्षिपेत् शंखपुष्पीलतामूलं पद्मं वा कुसुमं फलं सरी
सुवर्णसमिग्रं कार्यं चित्वा ततःपिबेत् एकभुक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् वहिस्ताव
अनिवसेद्यावच्चरति तद्भुजम् । प्रायश्चित्तेतत्प्रचोक्तं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनमगोद्वयदक्षिणां
दद्याच्छुद्धौ स्वायभुवौऽब्रवीत्=अर्थात्-यदि कथंचन कभी देवयोगसे वलात्कार किं
चांडालके साथ संपर्कमे कीर्त्र नारीजाफसीही तो वहचोरीतक वालोंको मुझावै और
गोमयके पकी जी का भातखायके तीन रात्रि उपवासकरै फिर ऐसे किंकीकूपके जलमे
एकरातिभर वसे जो उसके गले से बैठेहुये जलहोय अथवा किसी तत्रावर्थादि तीर्थके
जल में वसे और अपनी वरावर गाहरे खुदे गड़हिले में जो कूपहीके आकार खोदा
जाकर उसमें गायका गोबर और जल छोड़िके खदड़ कीचड़ बनादे जाय उस को-
चड़ में बैठिके तीन रात्रि निराहार चितावै तिसके बादि शंखपुष्पी (ब्राह्मी घास व-
ह्मनेरी जिधके फूल शखही के आकार होते हैं तिस) के फल फूल मूल आदि प-
चांग लेकर दूध मे पकावै और पकते समय कुछ सोना उसमें छोड़ि देय फिर पीछे
सोना अशरफी आदि जो कुछ होय सो निकासिके उस दूधको खूब गरम गरम तीन
दिन तक पीवै फिर इसके बादि रात्रि में एक बार भोजन करनेका व्रत रखै सो तब

तक कि जबतक मासिक रजोधर्म से पुष्पवती फिरके होय और तबतक मुख्य घर से बाहर किसी गौहरे आदि उचित स्थान में निवासकरै कि जबतक यह प्रायश्चित्त पूरा होय • फिर इसके पूरे होजानेपर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करायके दो गाय दान करै और दसगणा वांटिके तब शुद्ध होती है यह नियम स्वायंभू मनु आपही कहिरायेहैं । अत्रसकाममैथुननिर्णयः । यहां इनदोनों बातपर ध्यान देना चाहिये कि यद्यपि चांडाल के संगम से भी स्त्रियों का शुद्ध होजाना स्वायंभू मनु ने कहा परन्तु यह कैसी एक लाचारी दशा का संगम है कि जब किसी चांडाल ने दैवयोगसे बलात्कार घोर लियाहो दूसरे इसलाचारी परभी कैसाप्रबल प्रायश्चित्त दर्शाया है कि जिसको देखने सुनने से चित्त गवाही देता है कि हों ऐसा करने से बेशक स्त्री का शरीर गोचन होजायगा और यहीआशय ऊपरले मुनि वचनोंका सर्ववहे कि दैव योगसे राजबिम्बंस या गदर लुटि फूटि आदि की दशा में यदि ऐसी विपत्ति किसी स्त्री पर आनि परै तो इन प्रायश्चित्तोंसे शुद्धि मानी जासक्ती है • तो इस घटाघोय की होते हुये भी यह कैसे माना जासक्ता है कि जो स्त्री अपने काम भोगकी इच्छासे आपही जाकर चण्डालोंसेभी मैथुन करवावै सो छोटे प्रायश्चित्तों को डूना साधन करिके घरमें आवै (यहडूना करनेका नियमकेवल अपने सबर्णों पुंस्यके मैथुनमें और अनुलोमसार्गके मैथुनमें न्यायात्मक माना जासक्ताहै) यह डूने का नियम प्रतिलोम द्विजातीके मैथुनपरभी नहींशुभदायकहै फिरशूद्र और शूद्रसे भी उतरिके चण्डालआदि अधमजातों से कामिनीकी कामताका मैथुन • जिस चांडालकी एक चमर की लंबाई की भीतर मार्ग चलते समय समीप निकसि जाने का नियम पहिले होचुका है सो तीसरीं अधिकोक्ति में देखो—इस इस व्यवस्था का पूरा निर्णाय परिच्छेद के अन्त में अवकाश पाकर लिखेंगे यहांपर अवकाश नहींहै—और इस परिच्छेद के प्रारम्भ से जो पंक्ति लिखी गई है तिनको लेकर वशिष्ठ के कहे प्रायश्चित्त को भी देखो फिर इस डूने की व्यवस्था भी सोचना कितना अंतरहै॥ अंत्यजन्मवायेप्रायश्चित्तांतरन्तु—अंत्यजों के व्यभिचार मध्ये तीनिही महीनाके तीन चांडायण ऊपर लिखिचुकेहैं तिनके मध्ये ऋण्यश्रंगने वारहमासकाप्रायश्चित्त करना कहा है=यथाहृण्यश्रंगः=संपृक्तास्यादयान्त्यैर्मासैश्चक्रुर्द्वंद्वसमाचरेत् (अथ अन्ययोऽवसंशये) =अर्थात्—ऋण्यश्रं गजी कहिते हैं कि जहां इसप्रकारका संगय खडा होजाय कि नागहानी जब कोई द्विजातीकी भार्या या शूद्रहोकी भार्या अंत्यजाती रजक व्याध आदि पुरुषोंसे फंसजाय या उन पुरुषोंकी प्रबलतासे कुछदिन

मिलिके वासकरै (यत्संपृक्त शब्दसंबन्धेर्मिश्रिते च तस्मात्संपृक्तास्यादित्यस्यायमेवार्थः) वह स्त्री एकसालभर कच्छव्रत अच्छे विविक्तेसाथ आचरै तब शुद्धहोय—इसका निर्णाय सोचना चाहिये कि पहिले जो अंत्यजोके मैथुन में तीनिही महीना के व्रत कहिचुके सोती केवल एकवारके मैथुन मध्ये कहाथा और यहां जो बारह महीना कहे सो लाचारीसे परवश होकर कुछदिन उनके फन्दमें निवास करना पराहो तिस हेतुसे यह बड़ा प्रायश्चित्त कहा—इसमें भी पूर्वोक्त रीतिसे यह डौतहै कि (ब्राह्मणी पूरे बारहमास करै खवाणी इसकी चौथाई छोडिके नौमासकरै और बनेनी दोपाद छोडिके एक छमाहोभर व्रत करै और शूद्रकी भार्या हो सो तीन महीने व्रत करै) यहां भी ऋष्यशृंगजीके कहे बारहमहीनोंको पहिले तीन महीनोंकी अपेक्षा बहुत जानिके हमारे प्राचीन संग्रहकार ने यहकहिदिया है (कामतःसहृदयमनेइदं) कि यह बड़ा प्रायश्चित्त एकहोवार कामनाके साथ संगम करनेमध्ये समभक्तना—सो इस कामना और इच्छाके व्यभिचारपर कदापि संमत नहीं देखकते हैं न किसी ऋष्यश्रुने अपने किसी मूल वचन में यहभाव दर्शाया है तिससे इच्छा बिना देवयोग से कुछदिन उनकेसाथ निवास करना छोटी बातहै और इच्छा साथ एकह बारका संगम बहुत बड़ी बातही नहीं बल्कि बहुत बड़ा अनर्थहै कि जिसका कोई प्रायश्चित्त त्यागि देनेके सिवाय सूचित नहींहै ॥०॥ सुगर्भायाश्चांडालादिव्यवायेनियमाः—उन्ही ऋष्यशृंगजीने उसदशाके भी नियम कहेहैं कि जब कोई गर्भिणीनारी किसी अंत्यज चंडाल आदिने भोगीहो=यथाहृक्प्यशृंगः=अंतर्वर्त्तनीतुवर्त्तिसंपृक्ताचांत्ययोनिना प्रायश्चित्तनसाकुर्याद्यावद्गर्भाननिःसृतः नप्रचारंगृहेकुर्याच्चचांगेयुप्रसाधनम् नशयीतसमंभ्रान्वामंजीतवांधवैः प्रायश्चित्तसंगतेगर्भेविधिकच्छाब्दिकचरैश्च हिरण्यमथवाधेनुंदयादिप्रायदक्षिणाम=अर्थात्—ऋष्यशृंगने ऊपरले प्रायश्चित्तके साथही इस विधिको भी लिखाहै कि—यदि कोई गर्भवती युवती नारी अंत्यज के साथ फँसिजाय सो प्रायश्चित्तको तबतक न करै कि वहपातिकागर्भ बाहर न निकलिपावे क्योंकि ऐसी दशामें प्रायश्चित्त करनेसे गर्भका गिरजाना आदि उपद्रव खडाहोना संभव है और तबतक प्रायश्चित्तके बिना घरके कामधंधे और घरमें चलना फिरना भी न करै और कंथी सुरसा आदि खगोंकेसंस्कारभी न साथै और भर्तृकी साथभी न सोवैतथा वंसुआदि कुटुम्बकेसाथ भोजनभी न करै फिर उसगर्भका जन्महोजाने बादि वही पूर्वोक्त एक सालभरका कच्छव्रत आचरै और पोछेसे ब्रह्मभोजकराइकी सुवर्ण या गौदान की दक्षिणा देवै ॥ ० ॥ अथप्रायश्चित्तकरणापरिणामः—यहां यह

त्यागस्वपी प्रायश्चित्त कहा तैसा सब तरहके चंडालों से मैथुन करानेवाली स्त्री को प्राणात्याग स्त्री प्रायश्चित्त सूचित है बल्कि यह बात इस परिच्छेद के प्रारम्भ में खुद मिताक्षरा कारही कहि चुके हैं कि जो जो प्रायश्चित्त पहिले पुरुषोंको कहे गये वेही तीनवर्थ आदिके प्रायश्चित्त उन पापोंकी करनेवाली स्त्रियों की भी सूचित है बल्कि (यत्पुंसःपरदारैर्युतघैनांचारयेद्भूतं) यह मनुका वचन भी मिताक्षरा-कारने प्रसारा दिया है तिससे हम दूने प्रायश्चित्त में नहीं समर्पितदेसकते हैं—हाँ—दूने का नियम प्रायश्च नरहत्या गोहत्या और चोरीआदि पापकर्मोंपर जैसा जहाँ लिखि चुके सौ सब ठीक है पर इसमें नहीं और इसी द्विविव आशयके हेतुसे योगीश्वर याज्ञवल्क्य पहिले कहि चुके हैं कि (प्रायश्चित्तैरप्येनोयदज्ञानकृतं भवेत् कामतो व्यवहार्यस्तु वचनादिह जायते २०६) इस दोनौ छन्दों के ठिकाने पर जाकर अर्थ देखो इसका यही तात्पर्य है कि प्रायश्चित्तोंसे वह पाप दूर होजाता है जो अज्ञानता से बनिगया हो और जो कामनासे जानतेहुये पापकिया हो तिसमें प्रायश्चित्त करने से भी पाप तो नहीं मिटि सक्ता है परन्तु संसार में मनुष्यों के साथ व्यवहार आदि संबंध जोड़नेके योग्य होजाता है (इसीलिये दूनातिशुना आदि करायाजाता है) पर इसमें इतना भेद है कि (वचनादिह जायते) वचन के बलसे व्यवहार योग्य होता है अर्थात् जिसकिसी पापकी वास्तव मुनीश्वरों ने वचन दिया होगा कि इसमें दूना आदि करने से व्यवहार के योग्य होसके उसीपापमें उसब्रह्म वचनकेबलसे प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहारों के लायक होजायगा सर्वत्र सभीपापोंमें ऐसा नियम नहीं है—तो इस व्याख्याके अनुसार ठीकठीक कहें कि इत्या आदिमें जहाँ जहाँ दूनेका वचन पाया तहाँतहाँ प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहार करसक्ता है अन्यथा स्त्री व्यभिचारिणी के मध्ये दूनेका वचन कोई नहीं मिला सो कैसे घरके व्यवहार योग्य होसके—केवल एक शूद्रकी लिये दूना करनेका यह वचन मिला है कि (स्तेच्छेना विगता शूद्रा द्यज्ज्ञानात्तु कथंचन कृच्छ्रव्यप्रकुर्वीत ज्ञानात्तु द्विगुणं भवेत्) अर्थात्—किसी शूद्रकी शूद्रिनी भार्या यदि कदाचित्त नागहानी अपनी अज्ञानतामें स्तेच्छ से फैस जाय सो अच्छीतरह तीनकृच्छ्र साथै पर जो जानबूझि फैसी होय सो दूने व्रतकरै तो संसारी घरके काम योग्य होजाय—इस वचनमें (शूद्रादि) हि अत्यय विशेष अर्थ पर आच्छ होनेसे भी केवल शूद्राकी स्त्रूमनियत रखली गई है कि शूद्रा के सिवाय किसी डिजाती की भार्या की यह दूनेका अधिकार नहीं समुक्तना और इसदूनेकी अधिकारी केवल ओछे शूद्रों की भार्या समुक्तलेनी कि जिनकी जाति में धरेजा

आदिभी होताहा—सो यहवार्त्ता केवल ओछी जाति का घरवसा रहिने को निर्वाह सोचिके कही अन्यथा जो गूढ़ उज्ज्वल जातोंमें गिनती होनेसे धरेजा आदि नियम-
हाचार कुछ न करतेहों तिनकी स्त्रियोंकी यहभी नहीं मूर्खित है फिर उत्तम तीन
वर्णों की का कथा २६५ ॥ इसी दोसोपैसति मूलप्रलोक वाली टीका से यह पाठ
चलाआता है २६५ ॥ इतिपारदार्यभेदेपरप्रुपसगमपरिच्छेदः ॥

इतिपारदार्यप्रायश्चित्तप्रकरणं ॥



यह प्रकरणा केवल उनचास ४६ पचास ५० इन दोही

परिच्छेदों में पूराहुआ (और यहभी यादरखवौ कि)

उनतालिस ३६ परिच्छेद को आदि लेकर ४३ तेतालीस परिच्छेदको अन्ततक
चारि परिच्छेदों में गोवध का प्रकरणा पूराहुआया—तिसके बावि ४४ चवालिसके
आदि लेकर ४८ अठतालिस तक पांच परिच्छेदों में ऐसे फुटकर विषय वर्णनहुये
ये जिनका एक एक प्रकरण सकही परिच्छेद में बल्कि विरले परिच्छेद में दोदो
तीन तीन विषयतक छोटे होनेको हेतु से समाने तिससे उनके प्रकरणों का कुछनाम
जुदा न होसका ॥

अथ परिवर्त्ति-वार्धुष्य-लवणक्रियोपपातकत्रयाणां प्राय

श्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः एकपंचाशत्तमः ५१ ॥



इस परिच्छेद में छोटे छोटे तीन भाँति के उपपातकों का जुदा जुदा प्राय-

श्चित्तकहा जायगा—अर्थात् एक तो परिवर्त्ति दोय का फिर वार्धुष्य

वृत्तिके दोयका फिर तीसरा लवणा क्रिया रूपी दोय का—इन तीनों

के लक्षणा सब अपनी अपनी जगह पर देखना ॥

(पारदार्य-पारिवर्त्य-वार्धुष्य-लवणाक्रिया २३५)

ये चारोंनाम दोसोपैतीस वाले मूल प्रलोकमें आचुकेहैं तिनमेंसे पारदार्य नाम
का उपपातक ऊपरले दो परिच्छेदों में वर्णन होचुका=अब=उससेअगिला पारिवि-

त्य नाम जो दोय है सो जिस पुरुष में होय तिसको परिवर्त्ति कहिते हैं उसके सब लक्षणा और प्रायश्चित्त भी ४८ अठतालीस के परिच्छेद में परिवेदन कर्मके प्रसंग साथ वरान करचुके तहां देखौ—तथापि यहांक्रमसे उसका नाम आनिपरनेके हेतुसे मिताक्षराकार ने संक्षेपचर्चा लिखाहै सो देखो—परिवर्त्तिप्रायश्चित्तविषयः= तदाह विज्ञानेश्वरः=परिवर्त्तिप्रायश्चित्तानामपि परिवेदप्रायश्चित्तवद्ध्यवस्था विज्ञेया इयांस्तुविशेषः परिवेत्तुर्यस्मिन्विषये कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ तत्रपरिवर्त्तिः प्राजापत्यं (परिवर्त्तिकृच्छ्रद्व्यं दशरात्रं चरित्वा पुनर्निर्विशोक्तं चैवोपयच्छेदिति वशिष्टस्मरणात्)=अर्थात्—श्रीमद्विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार कहिते हैं कि—परिवर्त्ति पुरुष के प्रायश्चित्तों की जरूरत अगर किसी को आनि परै तौ उनकी भी व्यवस्था परिवेत्ता के प्रायश्चित्त समान जानिलेनो कि जैसी परिवेत्ता की व्यवस्था अरता-लिसवें ४८ परिच्छेद में कहो गईयो पर इतना दोनों में अन्तर है कि जिस विषय पर परिवेत्ता को कृच्छ्र अतिकृच्छ्र के प्रायश्चित्त करने लिखे हैं उसी विषय पर परिवर्त्ति की बारह दिनका प्राजापत्य करावै—क्योंकि वशिष्ट जी ने यह कहा है (कि परिवर्त्ति पुरुष अपना दोय मेरने को बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके फिर अपना व्याह कहीं ढूँढि के करै अन्यथा उसी कन्या को अपने विवाह में स्वीकार करै यदि छोटे धाता ने इसको निषट समर्पण करदी होवै कि जिस कन्याके साथ छोटे ने अपना व्याह रोपि लिया था जितुसे ये दोनों दोयो ठहरे) अन्यथा जहां छोटे का विवाह निषट्चुके पीछे यह दोय का चर्चा खड़ा हुआ हो तहां उस कन्याका समर्पण करना श्रेय नहीं रहा तिससे जेदा परिवर्त्ति अपना व्याह ढूँढिके करै यही अर्थ है• और छोटे का विवाह नहीं निषटि चुके में भी यह अर्थ बना रहित्ता है कि छोटेने प्रायश्चित्त करिके अपनी सुगाईवह धाता को समर्पण करी कि आपहीइस कन्या से विवाह अपना कीजिये परन्तु उस वहाँ ने अपने बड़ापन से फिर उसी छोटे को अपनी तर्फ से पूरी पूरी आज्ञादेकर आशीर्वादसे अभिनन्दित किया कि हमने तुम्हारी दीहुई भेट को हार्द भावसे स्वीकार करलिया पर अब तुम्हीं अपना व्याह करो फली फूली• तब इस दशा में भी जेदे को ढूँढिकर इतना शीघ्र अपना व्याह करना चाहिये कि उस छोटे से पहिले इसका होजाय और उस छोटे को भी अपना व्याह तबतक रोक्ना चाहिये कि अब तक जेदे का पहिले हो जाय—यैसव अर्थ ऊपरले वशिष्ट के ही वचन के ध्वन्यर्थ हैं• वशिष्ट और गौतम आदि मुनीश्वरों के वचन ऐसे स्वरूपाक्षर और अनन्त अर्थवाले होते हैं कि योड़ी सी पंक्तिपर इतने बल्कि

इतने से भी अधिक अर्थ फैलते हैं—इस व्यवस्था को अतीतिशक्ति के परिच्छेद में मिलाकर समझिलेना क्योंकि विस्तार इसका उसी में लिखि चुके हैं इतिपरिवि-
त्तिप्रायश्चित्त समाप्तम् ॥

(अथवाधुंघ्यलवणक्रिययोः प्रायश्चित्तं)

वार्धुण्य और लवणाक्रिया नामों के अर्थ समझा चाहौ सो २३५ मूल श्लोक देखौ
ये दोनों जुदे उपपातक हैं योगीश्वरने जैसे परिवर्त्ति का कुछ प्रायश्चित्त नहीं कहा
तैसे इनका भी कुछ नहीं कहा परन्तु परिवर्त्ति का वर्णय जी ने अच्छी तरह से
दर्शाया था सो लिखागया—इन दोनोंका छोटा विषय समझिके और भी मुनीश्वरों
ने कुछ नहीं कहा तिससे इनके परिच्छेद भी जुदे नहीं नियत होसके हैं तथापि उ-
पपातकों में गिनती होचुके हैं इस हेतुसे २६५ दोसौपैसति मूलश्लोक और उसकी
अधिकोक्ति में सामान्य प्रायश्चित्त जो सभी उपपातकोंको निमित्तपर दर्शावचुके
उन्हीं को इनके लिये विचारना सो सब चर्वालिख के परिच्छेद में जाकर देखौ—
यही डोल सितासरा कारने प्रकाश किया है—यथा=वार्धुंघ्यलवणक्रिययोस्तुमनु
योगीश्वरोक्तसामान्योपपातक प्रायश्चित्तानिजातिशक्ति गुणाद्यपेक्षयायोऽयानि=
अर्थात्—वार्धुंघ्य और लवणा क्रिया इन दोनोंके लिये मनु और योगीश्वर केकहे
साधारण उपपातकोंवाले प्रायश्चित्त दोयीकीजाति और शक्ति सामर्थ्य और गुणों
को आदि लेकर विशेषताकी अपेक्षासेबड़े छोटेप्रायश्चित्त सोचिके लगाने चाहिये
कि जैसे २६५ मूलश्लोक में योगीश्वरने कई प्रायश्चित्त कहे और उसी अधिकोक्ति
में मनुके वचनसे जुदे प्रायश्चित्त लिखे गयेहैं उनमें से अपेक्षा के अनुरूप चुनिकर
समझिलेने इनकी यही व्यवस्था है कुछ और नहीं ॥ २६५ ॥ यहाँतक उसी दोसौ
पैसतिवाले मूलश्लोककी टीकासे अनेक परिच्छेद होकर लिखेगये अब उसकाशेष
पूरा होगया तिससे आगले परिच्छेद में दोसौकासतिक्का प्रारम्भ होगा ॥ २६५ ॥
इस छोटेसे परिच्छेद में भी जुदे जुदे तीन विषय अति छोटे होनेके हेतु से समा-
गये कि जिनके परिच्छेद भी जुदे न होसके फिर प्रकरणा तो बहुत बड़ी बातहै सो
क्योंकर होता—तोभी कुछ प्रकरणाका नाम होना चाहिये ॥

इतिपरिवित्यादिविषयव्यप्रकरण ॥

पर कृपापावनकी दृष्टिराखै। शरीरको शुद्धराखै-सत्यबोलै-अपनी किसी इन्द्री की कुमार्गपर न चलनेदेय-और अनेक हितोंके प्रवृत्तकरनेपर उतावळ बनारहै अनेकहित वेही कहताते हैं जिनके जारी करनेसे अनेक संसारी जीवोंकाहित होताहो दृष्टांत जैसे पिआऊ लगवाना या अन्नका सदावर्त लगाना, या किसी औरही से उपकार कराइ देना या तालाब कुआ बागीचा पथिकायस धर्मशाला आदिबनाना ये सभी वृत्त कहातेहैं ॥ यद्वांतक तौ इच्छासे चाहे बिना मारडारने के प्रायश्चित्तकहे ॥०॥ अथ सकामवधप्रायश्चित्त-जिसने कामना के विचार सहित किसीको मारडाला हो तिसके प्रायश्चित्त ऊपरलोंसे बड़े हैं सो आगे हारीत आदिके वचनोंसे कहेंगे-यथाह एद्वहारीतः=ब्राह्मणःसधियंहस्वायड्वययागिव्रतंचरेत् वैश्यंहस्वाचरेरेद्वंत्रतवैवा-यिकीद्वजः शूद्रंहस्वाचरेरेद्वयभैकादशाश्चगाः=अर्थात्=ब्राह्मण कामना से चाहि-कर सभी का वध करै सो छः वर्ग भर व्रत करै एवं वैश्यको सारिके ब्राह्मण तीनवर्ग का व्रत करै एवं शूद्र को सारिके एक वर्ग भर व्रत करै और व्रत के वादि एकआडू वृथम तथा दसगाय दान करै (मारनेवाला जैसा इस वचन में स्पष्ट भाव से ब्राह्मण कहागया तैसा इस परिच्छेद भरमें ऊपरली सभी व्यवस्था में ब्राह्मण समझि लेना चाहिये जहां नाम लेकर नहीं कहा तहांभी यही तात्पर्य हैइसका व्यौरा परिच्छेद के अन्त पर जाके देखो ॥ ० ॥ कामतःश्रीत्रियच्चत्रियादि वधप्रायश्चित्त-उन्हीं एद्वहारीत ने फिर भेद किया है कि जे कोई सभी आदि शास्त्रोंको पढ़तेहैं या पढ़ि चुकेहैं तिनका वध करनेवाले के प्रायश्चित्त ऊपरलोंसे बड़े हैं (योषियपराविद्या यी भी कहाता है जो अनेक शास्त्र पढ़ने सेतत्पर होरहाहो और ऐसा पूरा विद्वान भी योषिय कहलाता है जो वेद शास्त्र पढ़ाहो या सब शास्त्रों में कुछ अच्छा बोव राखता हो)=यथाहएद्वहारीतः=दुरीयोनक्षत्रियस्यबधेद्वहहणिव्रतस्य अथवैश्यवधेकु-यात्तुरीयवृत्तस्यतु=अर्थात्-जिसने योषिय गुरावान् सभी को इच्छा सहित मारा हो सो ब्रह्महत्या परकहे गये व्रतको चौथाई कम करिके तीन पादके नौवर्ग आचरे-एवं योद्विय वैश्यको जिसने चाहिकर माराहो सो आवे व्रतको छः वर्ग भर आचरे-एवं बहुश्रुत शूद्रको (कि जिसने वेद शास्त्र के अधिकार बिना भी संसार में बहुधा शास्त्र को मर्यादा विद्वानों से सुनी समझी हैं और अपने जाती धर्म से निपड़ा हो तिसको) जिसने वधकिया होय सो चौथाई के तीन वर्ग भर प्रायश्चित्त करै तब शुद्धि उसकी होती है (इसमें भी मारने वाला ब्राह्मण समझना) क्योंकि हारीत के

समान वंशिय ने भी यही प्रायश्चित्त कहा तिसमे खुलासा ब्राह्मण कानाम भी कहि दिया है=तथाच वंशियः=ब्राह्मणो राजसूयं हत्वाऽथोर्व्यागिराव्रतचरेत् यद्वैश्वंवी गिराशूद्रमिति=अर्थात्-कोई ब्राह्मण सखी को मारि के आठ वर्यभर व्रत करै और वैश्य को मारिके छः वर्यभर व्रत करै और शूद्र को मारि के तीन वर्य व्रत आचरै ॥ ० ॥ उभयगुणसंपन्नक्षत्रियादिवध प्रायश्चित्तं-जब कोई सखी दोनों गुणसे युक्तहो अर्थात् ऊर्ध्वोक्तप्रकार वाले लक्षणों से श्रोत्रिय और वृत्तस्थ भी होय तिसको मारहारने में आपस्तम्ब का कहा बारह वर्य वाला प्रायश्चित्त चाहिये=प्रवाह मिताक्षराकारः (यदात्त श्रोत्रियो वृत्तस्थश्च भवति तदा पूर्वयोर्वर्णयोर्वेदाध्यायिनं हत्वे त्यापस्तत्रोक्तद्वादशवार्यिकं द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा)=अर्थात्-जो मारा गया सखी जहाँ श्रोत्रिय और वृत्तस्थ भी होता है तहाँ आपस्तम्बके उस वचनको देखना जिसमें (ब्राह्मण सखी इन पहिले दो वर्णों में जो कोई वेद पढा होय तिसको मारिके बारह वर्य व्रत करै इत्यादि यही वचन पहिले तीसरे परिच्छेद में २५१ की अधिकोक्ति में भी देखिको उसी से दशो का वध होनेपर विचारै=याद रक्खौ कि=जहाँ जहाँ केवल जाति सखी लिखीहो कोई उत्तमगुण विशेष जिसमें नहीं बताया तिसको ऐसा समझि लेना कि राजा आदि उत्तम सखियों में छः प्रकार के गुण होते हैं सो उसमें नहीं है तिससे जाति मात्र सखी कहा ॥ यही व्यवस्था जो केवल सखी के नाम से कही गई सो इस प्रकार के दो गुणों वाले वैश्य के मारे जाने में भी जोड़ि लेनी पर बारह वर्यों के स्थान पर आठ वर्य का प्रायश्चित्त लगाना यही न्याय का स्वप्न है ॥ ० ॥ श्रोत्रियस्य प्रारब्ध यागे च वध प्रायश्चित्तं-जहाँ कोई सखी आदि श्रोत्रिय होय उसी श्रोत्रिय ने किसी यत्तका प्रारम्भ रोपाहो ऐसी दशामें यदि कोई ब्राह्मण उसको मार डारै तहाँ उस हत्यारे ब्राह्मण को बड़ी ब्रह्महत्या वाला व्रतकरना चाहिये जो दोस्रो इकावन २५१ मूल श्लोक से तीसरे परिच्छेद में योगीश्वर आप कहिचुके है कि (यागस्य सखिय विदधाती चरेद्ब्रह्महृत्वाव्रतं) यज्ञ करते हुये सखी या वैश्य को वध करने वाला ब्रह्महत्यापर दण्डिये व्रत को बारह वर्य करै (या उस सखी और वैश्य मे कुछ ओके गुण समझे जायँ तो बारह वर्य से कमतीवाले व्रतभी जो ब्रह्महत्या के प्रकरणा में उपस्थित हैं। तिनकाभी विकल्प से चर्त्तावा करै) और इसमें यद्यपि सखी वैश्य दोनों की अपेक्षा परा बारह वर्यका व्रत कहा तीसरी वैश्य की अपेक्षा इसकी एक तिहाई छोड़िके आठ वर्यों का व्रत समझि लेना और इसी प्रकार ब्रह्महत्या के छोटे प्रायश्चित्तों में भी वैश्यके सभ्ये कुछ भेद कल्पित करना

अथक्षत्रियादिवर्णत्रयबधोपपातकानांप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः द्विपंचाशनमः (५२) ॥



इस परिच्छेद में सभी वैश्य शूद्र इन तीनों वर्गों में से किसी पुरुष को यदि कोई सारहाली से उपपातकी होता है तिसके सब जुदे प्रायश्चित्त कहे जायेंगे=वर्गों के सत्ताइस परिच्छेद में केवल ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त कहे और इनतालिस परिच्छेद में प्रतिलोम जातें जो चारों वर्गों से उपराल सूत मागध वैदेहक आदि वर्गों संकर होती हैं तिनका वध करनेके प्रायश्चित्त कहे गये= केवल बीचके तीनों वर्गों सभी आदिका वध कहिना बाकी रहा था सो इस वामन के परिच्छेद में वशति हैं ॥

(क्षत्रियादिवधप्रायश्चित्त)

क्षपभेकसहस्रागावद्यात्क्षत्रवधेपुमान् । ब्रह्महत्याव्रतं वापि यत्संश्रितं वधेत् २६६ ॥

वैश्यह्वावर्चरेदेतद्व्यादिकशतंगवाम् । परमासानशूद्रहाप्येतदेनूर्व्यावशापवा २६७ ॥

अर्थः—पुरुष किसी क्षत्रीका वध करनेमें एक आंडूट्यभ और सहस्र गायें दान करै (तब शुद्ध होय यही प्रायश्चित्त है अथवा यह न करसके सो) ब्रह्महत्यावाले व्रतकोही तीनिवर्गभर आचरै ॥ २६६ ॥ यही ब्रह्महत्यावाला व्रत एकवर्षभर वैश्य का वध करनेवाला आचरै अथवा एक आंडूट्यभ और एकसौ गायें दान करै=यही व्रत शूद्रका वध करनेवाला पुरुष छमाहीभर करै अथवा हालकी विआनी बच्छा सहित दशधेनुका दान करै) हालकी विआनी यह धेनु शब्दका ध्वन्यर्थ है ॥ २६७ ॥

२६६ अधिकोक्तिः—दोसौ छत्तीस मूलश्लोक में कहि चुके हैं कि (क्षीशूद्रविदक्ष व वधः) स्त्री-शूद्र-वैश्य-क्षत्री इनका वध करना उपपातक जुदे चार धर्मे—इतमें से छियोंके वधका प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में योगीश्वर कहेंगे और शेषतीनोंके प्रायश्चित्त इन्हींतीनों प्रतीकोंमें योगीश्वरने इमहेतुसे जुदेकरके दर्शाये हैं कि दोसौ पैंसठि २६५ मूलश्लोकवाले सामान्य प्रायश्चित्तोंको इनपरभी निरपेक्षमत्त समुक्ति लेना कि उन्हीं छोटे प्रायश्चित्तोंसे निर्वाह इनपापोंका होजाय—कोकि क्षत्रीवैश्य शूद्र ये तीनों सब एकहीसे बराबर नहीं होते हैं अर्थात् इनमें भी उत्तम मध्यम आदि

कई भेद अपने गुणोंके प्रभावसे सर्वत्र होते हैं तिनका वध हो जानेसे प्रायश्चित्तों के भी कई भेद करने होंगे—तहां किसी निष्ठ भेदका वध होने में तबोक्त प्रायश्चित्त भी कदाचित्त काम आसकते हैं सो आगे समझिलेना=और=यहां जो श्लोकों के अर्थ में व्यवस्था कही गई तिसको भी ऐसे भेदपर जोड़ना कि जहां उस सारे गये पुरुष में केवल सखी आदि जातिही कहिलाना एक गुण होय किन्तु दूसरी कोई विशेषता उसमें नही और मारनेवालेने इच्छाके बिना देवयोगसे वधकिया हो क्योंकि (अ-
कामतस्तुराजं न्यविनिपात्येति प्रकम्य सतेषामेव प्रायश्चित्तानां मानवेऽभिधानात्)
मनुस्मृति में भी० कामना के बिना सखी को मारिके० यह अनुक्रम पहिले आरम्भ करिके इन्हीं प्रायश्चित्तोंका वर्णन किया गया है तिससे यहां भी वही तात्पर्य है—
और यहां जो गोश्रोकादान या व्रतस्वपी तपस्या करना कहा तिसकी व्यवस्था ह-
त्यारेकी शक्तिके अनुसार सोचिलेना ॥ ईषद् वृत्तस्य च विद्यादीनां व्यवस्थाभेदः—जिन
सखी आदिमें कुछ थोड़ासा वृत्ताचार भी प्रसिद्ध होय तिनको मार डारनेमें ऊपरलौसे
कुछ बड़े प्रायश्चित्त चाहिये (क्योंकि ऊपरके छोटे प्रायश्चित्त केवल जातिमात्र
के एकही गुणपर कहेगये)अवाहमनु-तुरीयो ब्रह्महत्यायाः सवियस्य वधे स्मृतः वैश्ये
ऽष्टमांशो वृत्तस्य शूद्रे ज्ञेयस्तु योऽश्वः=अर्थात्—मनुने यह कहा है कि वृत्तस्य सखी का
वध होने में ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त कहा है जो बारह बर्यकी चौथाई तीनि
बर्य होते हैं एवं वृत्ताचारसे संयुक्त वैश्यके वधमें ब्रह्महत्याका आठवां भाग जो डेढ़ बर्य
होता है सो करना चाहिये तद्वत् शूद्रके वधमें ब्रह्महत्याका सोरहवां भाग जो नौ मास
होते हैं समझना (मितशराकार कहिते हैं कि यद्यपि सखी के वावत इस वचन में
तीनिही बर्य कहेगये तौ भी जो वृत्तस्य सखी मारा जाय तौ फिर डोढ़ देकर साडेचार
बर्यका प्रायश्चित्त कराना चाहिये क्योंकि ऊपरकी व्यवस्थाकी अपेसा यहां सखी
प्रायश्चित्त डोढ़ देहो जाने उचित है—और यहां जो वृत्ताचारसे संयुक्त या वृत्तस्य यह
विशेषता दिया गया सो कुछ जातिसे अपेसा नहीं रखता है केवल एक शरीर से सं-
बंध राखता है चाहें किसी जातिका पुरुष हो अपने शिष्टाचार से संयुक्त होय सो
वृत्तस्य कहाता है इसके भी लक्षण मनुने कहे हैं—यथा (यत्तु पूजाधूमाशी वंसत्यभिद्रि
यनिग्रहः प्रवर्तनं हितानां च तत्सर्वं वृत्तमुच्यते) अर्थात्—यत्तु पूजा० धूमादश्या०
शीचक्रिया० सत्य० इन्द्रियोंका वशमें राखना० हितोंका प्रवर्तन० यह सर्वाभिलाभुता
आचरणा उक्ता वृत्त कहाता है जो कोई इनका अभ्यास राखे और खु नासा यह
भावार्य है कि जो कोई पुरुष अपनासे वज्रोंका सत्कार हमेशा किया करे० अतमर्थों

यह न्याय का स्वरूप है ॥ और तीसरे परिच्छेद को भी देखो कि वहांपर या ग-
 स्यका अर्थ यद्यपि सोमयागमें बैठा माना गया है तथापि यहां उस बन्धनको नहीं
 मानना किन्तु यहांपर उपातकोंका प्रकरणा वर्तमान है तिससे सामान्य हरतरहका
 यज्ञ समझ लेना और इसी से यहभी इतना भेद है कि (वहांपर दैवयोग से मारने
 मध्ये पूरा व्रतकरना और चाहिकर मारने मध्ये इसीका दूना करना कहागया परंतु)
 यहाँ कामना से चाहिकर मारने मध्ये पूरा एक प्रायश्चित्त और दैवयोगसे मारने
 मध्ये उससे आधा कल्पित किया चाहिये क्योंकि यह व्यवस्था केवल किसीतरह
 का यज्ञ करने के विचार से प्रारम्भ मात्र पर दर्शाई गई कि जो सत्री या वैश्य अब
 तक यज्ञ करने में न वैदियाया और प्रथमसे माराजाय० किन्तु निपटयज्ञ पर बैठे
 हुएोंकी व्यवस्था अब नोचे दर्शाते हैं ॥ ० ॥ यागस्थश्रोत्रियक्षत्रियविश्वधराय-
 ण्यश्चित्तं—जहाँ कोई सत्री आदि जो अपनी विद्यामें योत्रिय होय वही योत्रिय किसी
 यज्ञकी करिरहा हो और इसयज्ञस्थकी यदि कोई ब्राह्मणमार डारे तिसद्व्यारे ब्रा-
 ह्मणकी अयोक्त गौतम का बताया प्रायश्चित्त है जिसमें दान और तपदीनों करने
 होते हैं—यथाह गौतमः—ब्राह्मणास्यराजन्यवधे यज्वार्यिकंप्राकृतब्रह्मचर्यं मृगभैक्षं
 सहस्राश्वगादद्यात् वैश्यवधेयज्वार्यिकमृगभैक्षं शतपञ्चदश्यात् शूद्रवधेसाविस्तरिक
 मृगभैक्षाद् दशश्वगा दद्यात्—अर्थात्—ब्राह्मण को सत्री का वध करनेमें प्राकृत
 ब्रह्मचर्यं छः वर्ष भर करना कहा है तिसके पीछे एक आड़ू वृथभ और हजार
 गौर्ये भी दानकरें तथा वैश्य का वध करनेमें तीन वर्ष का वही ब्रह्मचर्य करै तिसके
 बाद एक आड़ू वृथभ और सौ गाय भी दान करें तथा शूद्र का वध करने में एक
 साल भर ब्रह्मचर्य साथै तिस पीछे एक आड़ू वृथभ और दश गाय भी दानकरें (प-
 रन्तु यह व्यवस्था उस इत्यारे पर आकृत है कि जिसने बिना जाने धोखा से वध
 किया हो) क्योंकि अगिले धचन में शखने भी इसीके समान व्यवस्था कही तिसमें
 अज्ञानता से वध करनेका निमित्त भी प्रकाश करिके कई दिया है—यथाह शंखः—
 पूर्ववदमतिपूर्वचतुर्वर्षोयुप्रमाप्यहादशयुत्त्रीच सार्धवत्सरचरतान्यादिशेत् तेषामते
 गोसहस्रचततोऽर्द्धतस्याधर्मधंदद्यात् सर्वयामानुपूर्वरोति—अर्थात्—शंखने इस रीति से
 कहा है कि हम जैसा पहिले अज्ञानतासे वध करने का प्रायश्चित्त कहि चुके उसी
 पहिलेके तुल्य इसमें भी अमति पूर्वक समझना कि जिस विप्रने चारो वर्गोंमें किसी
 को मारिके इत्या कनार्द्ध हो तो ब्राह्मण आदि सभी के वधमें अनुक्रम से इन प्राय-
 ष्चित्तोंका आदेश करै कि ब्राह्मणवधं क्षत्रियं क्षीणिवधं देवधं (तो इस क्रमसे सभी

के वधमें केवय का व्रत सावित हुआ) फिर इनके पूरे होजाने वादि उसी क्रमसे एक सहस्र गोदान० पांच सौ गोरों० अर्द्धाई सौ गाय० सर्वाउसों गायें दान करें (इसमें भी केवल ब्राह्मण इत्यादि के प्रायश्चित्त कहे समझने) = (परन्तु इस भेद की समाधि कुछ नहीं लिखी जासक्ती है कि असल मितासरा में शंखशुनि का यही वचन दो सौ उनचास २४६ मूलश्लोक वाली टीकामें किस हेतुसे और तरह फिर यहाँपर किस हेतुसे और भाँति लिखा गया वही आधुनिकोंको लिखना परा यद्यपि हेतु यह प्रत्यक्ष है कि वहाँ तो महापातकों के प्रसंगमें ब्राह्मणका वध होनेपर व्यवस्था लेनी स्वीकार थी और यहाँपर उपपातकों के प्रसंग में केवल शोधिय यागस्य सबी का वध होने पर व्यवस्था की रचना करनी स्वीकार है० और यद्यपि यह कारण भी प्रसारा है कि मुनीश्वरों के वचन स्मृत्यासर तथा अनन्त अर्थों वाले होते हैं तथापि हम ऐसे पाठान्तर वाले भेदको मनोज नहीं कहि सकतें हैं किन्तु ऐसे भेदसे यह भाँति खड़ी होती है कि ज्ञाने शंखजीने किस पाठको सुलते उच्चारण किया था) = अथ मितासराकारः—इदं च द्वादशवार्यिकं गौतमीयविषयमेव किंचिन्मूलश्लोकाश्चिथे गुणाधिकयोर्वैश्यशूद्रयोश्च द्रव्यं (स्त्रीशूद्रविदसबवधः इत्युपपातकमध्ये विशेष्यतं सव पदितत्वेनोत्सर्गापवादस्यायमोचरत्वाभावादुपपातकसामान्यप्राप्तान्यपि प्रायश्चित्तान्यन्नयोजनीयानि) तथदुर्लत्तसच्चियादौकामतोव्यापादितेमानवं वैसासिकं वैसासिकं चांद्रायरांच वराकमेयायोऽयम्—अकामतस्तुयोगीश्वरोक्तं विराडोपवास सहितमृयभैकादशगोदानं सासपंचगव्यग्राशनं सासिकंचयोव्रतं यथाक्रमेयायोऽयम् = अर्थात्—गौतम शंख इन दोनों के वचन ऊपर दर्शाने के वादि मितासराकार कहिते हैं कि—यह बारह वर्य भी गौतमके समानही विषय समझना सो कुछेक न्यून गुणवाले सबीके वधमें और बहुत गुणवाले वैश्य शूद्रोंके वधमें विचारना चाहिये और इनके सिवाय उन प्रायश्चित्तोंको भी यहां लाकर जोड़ना चाहिये जो चवालिसके परिच्छेद में सामान्य उपपातकों के मध्ये कहे गए थे यद्यपि वे छोटे प्रायश्चित्त हैं परन्तु (स्त्री० शूद्र० वैश्य० सबी० इनका माराजाना विशेष्यतासे उपपातकों में लिखा गया है और विधके साथ अपवाद वाला न्याय भी इस स्थर्तने नहीं दिख परता है तिससे उन सामान्य प्रायश्चित्तोंकी पहुँच भी यहाँपर पाई जाती है० वाक्ती रही यह तर्कना कि वे प्रायश्चित्त बहुत छोटे हैं तिसके लिये यह अयोक्ता व्यवस्था कल्पितकरौ) अथदुर्लत्तचत्रियादिवद्यप्रायश्चित्ताल्पत्व—किन्तु मितासराकार हीआप कहिते हैं कि सबी आवि तीनों वर्णोंके मनुष्योंमें जे कीडे दुश्चारीहोयें तिन

को यदि कोई ब्राह्मण इच्छा सहित मारडारै सो उस क्रमसे प्रायश्चित्त सावै कि उस ४४ के परिच्छेद वाली अधिकोक्तिसे लिखे प्रायश्चित्तोंमें मनुका कहा तीन महीने वाला दुष्ट सत्रीके वधपर करै और दोनहीने वाला दुष्ट वैश्य के वध पर करै और एक महीनेवाला चांद्रायण दुष्ट शूद्रके वधमें करै=परन्तु जिनने कामना के बिना दैवयोगिक वध कियाहो सो उस परिच्छेदमें मूलप्रलोकसे योगीश्वरके कहे प्रायश्चित्तोंको इस क्रमसे सावै कि तीन दिनके उपवास सहित ग्यारह गाय बैल के दानवाला प्रायश्चित्त दुष्ट सत्रीके वधपर करै और एक महीने पंचगव्य भोजन करने वाला प्रायश्चित्त दुष्ट वैश्यके वधपर करै और एक महीना गाय का दूध पीके व्रत करनेवाला प्रायश्चित्त दुष्ट शूद्रके वधपर करै ॥ अथ ब्राह्मणोत्तरकर्तृकवधप्रायश्चित्तं-मिताक्षराकार अब दूसरी याद दिलाते हैं कि (यत्तुप्रायश्चित्तं व्रतज्ञातं ब्राह्मण कर्तृके क्षत्रियादिवधेदृश्यं) यह परिच्छेदकी आदि से यहां तक पहिला वर्णनप्रायश्चित्तोंका व्रतरूपो सर्वथा ब्राह्मण हत्यारे के निमित्तमें समझना कि जब उसने क्षत्री आदि किसी वर्णकी हत्या करीहो तिसके प्रायश्चित्त कोहेगए है क्योंकि मनु गौतम हारीत इनके वचन जो पहिले वर्णन दीचुके तिनमें ब्राह्मण व । नाम साक्ष साक्ष कहागया है यथा (अक्रामतस्तुराज्यं विनिपात्यद्विजोत्तमः इति मनुः) तथा (ब्राह्मणस्यराजन्यवधेयद्वयिकं इतिगौतमः) तथा (ब्राह्मणक्षत्रियं ह्वायद्वयोरिणव्रतंचरे दितिहारीतः)=इस हेतुसे=जहाँ सत्री आदि कोई हत्यारेहोयै और इन्हों क्षत्री आदि तीन वर्णोंमें किसीका वध कियाहो तहां क्रमसे एक एक चौथाई घटाकर उन्हीं पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंसे व्यवस्था कल्पित करीजाय यह सिद्धांत है और इसीपर अग्रोक्त विष्णुका वचन प्रसारा है=तदाह वृद्ध विष्णुः=विप्रेत सकलंबेयं पादोनक्षत्रियेस्मृतव वैश्येऽहमेकपादस्तु शूद्रजातियुगस्यते=अर्थात्-जो प्रायश्चित्त कहागया सो ब्राह्मण से पूरा करवाना चाहिये और सत्री से एक पाद कम कराना कहागयाहै वैश्यपर आधा करवाना और शूद्रसे एक चौथाई करवाना यही ठीक है (परन्तु इस कम कियेहुये को भी प्रातिलोभ्य वचकी दशाने दूने ति-थने दंडवाला न्याय शोचना होगा) क्योंकि अग्रोक्त विष्णु के वचनका यहां ता-त्पर्य केवल इतना होनाहै कि जिस सत्रीने सत्रीको मारा हो तो उस प्रायश्चित्त से चौथाई कमकरै कि जैसे गुणवाले सत्रीके मारनेपर ब्राह्मणको जितना प्रायश्चित्त कहागया हो- और जिस सत्रीने वैश्यको माराहो सो उस प्रायश्चित्तसे आधाकरै कि जितना उस भ्रातृका वैश्य मारनेपर ब्राह्मणको लिखिचुके हो- और जिस सत्री

ने शूद्र का वध किया हो सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई व्रत करै कि जितना उस प्रकार का शूद्र मारने पर ब्राह्मण को करना कहि चुके—इसी प्रकार—जिस वैश्य ने किसी वैश्य को मारा हो सो उस प्रायश्चित्त से आधा कम करै कि जितना उसी योग्यता वाले वैश्य के मारने पर ब्राह्मण को करना कहा गया। और जिस वैश्य ने किसी शूद्रका वध किया हो सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई व्रत साथै कि जितना उसी भाति का शूद्र वध करने पर ब्राह्मण को लिखि चुके हों—इसी प्रकार—कोई शूद्र जो किसी शूद्र का वध करै सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई भाग साथै कि जितना उसी योग्यता वाले शूद्र का वध करने पर ब्राह्मण को करना कहा हो= अन्यथा=जहां शूद्र किसी वैश्य या सत्रीका वध करै यहा वैश्य किसी सत्रीका वध करै तो यह प्रातिलोभ्य वध कहिलाता है इसके मध्ये चौथाई आदि कम करने की व्यवस्था इस रीति से लगाई जायगी कि अभी जितना प्रायश्चित्त शूद्रका वध करने मध्ये शूद्रकोलिपे निश्चित हो चुका है (कि ब्राह्मणवाले प्रायश्चित्तको चौथाई करै) सो उसी चौथाईका द्वात्रात्र शूद्रसे उसदशामें करवानाहोगा कि जबउसने किसी वैश्यकावधकियाहो और उसीचौथाईका चोणना किन्तु पूराव्रत उसदशामेंकरवाना कि जबशूद्रने सत्रीका वधकियाहो—इसीप्रकार—जहां वैश्यने सत्रीका वधकियाहो तहां वैश्यको पूरापूराव्रत करनाहोगा कि जितना ब्राह्मणको कहि चुके कोकि वैश्य का वधकरने मध्ये वैश्यको आधा करना कहि चुके तिस आधे का दूना फिर पूरा हो सत्री के वध पर करना चाहिये यही न्याय का स्वरूप है और इन्हीं अर्थों से यह विष्णु का वचन यहां माना जासक्ता है अन्यथा नहीं=और भी इस व्यवस्था का प्रमाण पूरा चाहिकर उन्तीसवें परिच्छेद में २५० दोसो पचास मूल प्रलोक वाली अधिकोक्ति का सबसे पिछला पाठ देखो जहांपर दूने तिथिने प्रायश्चित्तका प्रमाण छोड़िके अगिरा के वचन से चतुर्विंशति के वचन तक अचछा निर्णाय किया गया है वही तात्पर्य यहां भी लेलेना होगा क्योंकि ये दोनों स्पष्ट एकही रूप हैं अन्तर केवल इतना है कि वहांपर बहुत बड़े पापों का प्रकरण है यहां उनसे छोटे पापों का प्रकरण है तिस छोटाई से प्रतिलोभ अपराधों में यह अपूर्व शक्ति नहीं आसक्ती है कि उत्तम सत्री को मारि के शूद्र चौथाई प्रायश्चित्त करै (हां यही विष्णु का वचन तैत्तिरीय ४३ के परिच्छेद में गोवधके निर्णयपर मितासराकार ने आपही लिखा सोतो बहुत ठीक है क्योंकि वहां पर उसी न्याय की योग्यता पाई गई और वहां पर एकही सूधे अर्थ से काम चलसक्ताया) और वहांपर जैसा

एक अंगिरा का वचन पीछे से लिखा वही यहांपर भी लिखा है कि (यत्वं गिरो वचनं-पर्यधाव्राह्मणानांतुसाराज्ञांदिशुश्रूषता वैश्यानांविशुश्रूषाप्रोक्तापर्यञ्च व्रतं स्मृतमिति तत्प्रातिलोभ्येनवाग्दंडपाठुष्यादिविययं-इसीको यहांपर किहीने आदि शब्द छांदिके (वाग्दंडपाठुष्यविषयमित्युक्त गोवधप्रकरणो) सेमालिखि दियाहै- इसी आदि शब्द के लगे रहिने से प्रयोजन का अर्थ बना हुआ कि वाक्पाठुष्य माली देना आदि और दण्डपाठुष्य लाठीदाडाचलाना आदि और उसचर्चा किये आदि शब्दसे तीसरा काम निपट सार डारना सिद्धहोताहै अर्थात् ये तीनों बात जो प्रतिलोभ उलटे मार्ग से करी जायें तहां यह अंगिरा का वचन बहुत ठीक है-परंतु किसी विद्वान् ही ने यहांपर उस आदि शब्द को निष्कासि डारा तिससे तीसरानि-पट वध का अर्थ जाता रहा केवल दाही बातों पर अंगिरा का वचन समझा गया- सो उस विद्वान् की चतुराई केवल इस हेतुसे उत्पन्न हुई होगी कि ऊर्ध्वोक्त विष्णु के वचन में उसने सुधा सुधा वही अर्थ समझा जो गोवध के स्थज्ञ पर सूचित होचु-का था इसी लिये गोवध की समस्त्या भी यहां की पंक्ति में जताई है- सो यहवर्था-रा विज्ञाता जनों की समझना चाहिये कि ऊँचे वर्णों की नीचे वर्ण माली आदि कुवचन कहै या डंडा लाठी आदि हथियार कुछ दिखावैं या चलावैं तिसपर हुने तियुने दण्ड और प्रायश्चित्त भी कहिचुके तो फिर निपट सारडारना जो सञ्ज्ञेवद्वा काम है तिसमें यह विपरीत कैसे माना जासकै कि शूद्र सर्वोको सारि के चौथाई प्रायश्चित्त करै ॥ ० ॥ अथमूर्धावसिक्तादीनां व्यवस्त्या-विज्ञानेचर कहिते हैं कि जैसे वध कहे गये तिनमें मूर्धावसिक्त आदि वर्णसंकर जो हत्यारे वनें तिनको लिये ये प्रायश्चित्त नहीं हैं क्योंकि उनमें सन्धीपना या वैश्यपन आदि लक्षण नहीं है तिससे उनके योग्य लिखे दण्डों के अनुसार इसी भाँति के वध में पूर्वोक्त प्राय-श्चित्तों का बटाव बढाव व्यवहार कांड नें दर्शित किया गयाहै कि (दण्डप्रणाय नंकार्यवर्णान्त्वत्तराधरैः) यह वचन जहां पर आया हो तहां इसको व्याख्या जा-कर देखी फिर उसीके अनुसार प्रायश्चित्त की कल्पना करो ॥ २६६ ॥ २६७ ॥

इतिचविद्यादीनांवधनिर्णयः

अथमंदस्त्रीवधोपपातकप्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः त्रिपञ्चाशत्तमः (५३)



इसपरिच्छेद में उन स्त्रियोंके वध करने सभ्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जिनका सार डारना केवल उपपातकों में गिनती होय— अर्थात् उत्तम गुणसे हीन वंध्या आदि या किंचित् व्यभिचारसेयुक्त या अत्यन्त स्वेरिणी आदिखोटी विख्यातहों तिन सत्रको वधपर योग्यता के अनुसार छोटे बड़ेप्रायश्चित्त भी बर्गवैगे ॥

(स्त्रीवध प्रायश्चित्त)

दुर्दृष्टब्रह्मविदक्षत्रशूद्रयोषाः प्रमाप्यतु । इति धनुर्वत्तमर्विक्रमाद्व्याघ्रशूद्रये २६८

अर्थः—ब्राह्मणा आदि चारों वर्गों में जिस किसीकी स्त्रियाँ जो दुर्दृष्टा स्वेरिणी हों तिनको यदि कोई वध करे सो वध करिके इस क्रमसे प्रायश्चित्त करे कि ब्राह्मणी के मध्ये एक इति अर्थात् जत भरने की मुशक दान करे और सत्राणी की अपेक्षा एक धनुय दान करे और वनेनीकी अपेक्षा एक वस्तु बकरा दान करे और शूद्रिणी की इत्या वाचत एक अवि मेढा दान करे तब शुद्ध होय ॥ २६८ ॥

२६८अधिकोक्तिः—मितासराकार कहते हैं कि योगीश्वर के कहे प्रायश्चित्त अतिशय तुच्छ हैं सो केवल उन स्त्रियों के वध पर समझि लेना जिन्होंने प्रतिलोम नीचे वर्ण या नीची जाति चण्डाल आदि के बीज से संतान पैदा करी है और इतना पुंस्य ने इच्छा विना इनका वध किया ही=और=जहाँ कोई इन्हीं स्त्रियों की कामना से वध करे तहाँ ब्रह्मर्षि का कहा प्रायश्चित्त लेना होगा=यद्यह ब्रह्मर्षिः=प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणामासां वधः स्मृतः अन्तरप्रभवानां च सुतादीनां चतुर्द्वियद्= अर्थात्—ब्राह्मणी आदि चारों वर्गोंकी स्त्रियाँ जो प्रतिलोम नीचीजातोंके बीजसे गर्भ लेकर प्रसूत करें या वर्गों के परस्पर नीचे वर्गों का बीजलेकर जो सुत आदि पैदा करें या सुतादिक प्रतिलोमोंका बीजलेकर पैदा करें इनसत्रका वधनरता कहा गया है (और येही वध इच्छा के साथ किया होताहै) तिससे इनकावध करणेमें चार दो छःसास का प्रायश्चित्त चाहिये—सो इस क्रम से कि ऐसी ब्राह्मणीके वध में छः स-हीना और ऐसी सत्रियाँके वधपर चार सहीने और ऐसी वनेनी के वधपर दोसहीना

और इसी न्याय के अनुसार ऐसी शुद्धाके वच में भी एक महीना का प्रायश्चित्त करै तब शुद्ध होय=अन्यथा=जहां गर्भ रहि जाना मात्र या अतिशय व्यभिचार ही देखि भाल जिसने ब्राह्मणी आदि किसी स्त्री का वच किया हो तिसके मध्ये अंगिरा का अश्रुक्त वचन है=यदाहंगिरा=जलकोशंचकूपंच ब्राह्मणयाः प्रतिपादयेद वधेधेनुःसधियायावस्तोवैश्याववेत्सृतः शुद्धायाश्चाविकवेश्यांस्त्वादद्याज्जलंनरः= अर्थात्-ब्राह्मणी मारने की हत्या में जलकोश मुशक और कूप भी दान करै तथा सधानी की हत्या में दुवार गाय दान करै तथा वैश्या वनेनी की हत्या में एक बड़ा बकरा दान करै तथा शुद्धा के वच में आविक ऊन का बुना कम्बल दान करै और पाँचवीं वैश्या की सारि के समुप्य जल दान करै तब शुद्ध होय (यहां जलकादान जो कहा सो जलाशय में जाकर खंजली देवा सत समभन्ता किन्तु पिआउ लगाइ देना या पशु पक्षी आदि को जहां जल न मिलता हो तहां जलका प्रदम्ब कर देना आदि अनेक प्रकारोंसे जल देना समझि लेना) और (ऊपर ब्राह्मणीके मध्ये जहां कूपका दान करना कहा गया तहां भी कूपशब्दके कई अर्थ होते हैं कि एक तो जल भरने का कुआ प्रसिद्ध है फिर छोटे मोटे झण्ड आदि जलाशय गड्ढिहो आदि भी कूप कहिलाते हैं और कूप कुप्पा भी कहाता है जिसमें धीतेल भरा करते हैं सो इन सभी अर्थोंको समझिलेना कि जैसी कुछ प्रतिष्ठा की योग्यता वाली ब्राह्मणी व्यभिचारके हेतुसे बच करी होय तैसेही उत्तम-मध्यम आदि कूपोंके अर्थ साविकीने अर्थात् जहां बहुत बड़ी प्रतिष्ठा वाली ब्राह्मणी मारी होय तहां बहुत अच्छा पूरा कुआ बनवा कर दान करना चाहिये इत्यादि कहीं धी का भरा कुप्पा कहीं छोटा मोटा झण्ड गड्ढिहला आदि सभी प्रयोजन के अर्थ हैं और मुशक सब के साथ लगी रहेगी कोकि बोनो वस्तु देनी कहीं ॥ अथमिताक्षरा (यदातुवैश्यकर्मणा जीवन्ती व्यापादयति तदा किंचिद्देयं वैशिकेन किंचिद्देयं इति गौतमस्मरणात्-वैशिकेन वैश्य कर्मणा जीवन्त्यां व्यापादयति किंचिद्देयं) अर्थात्-मिताक्षरामें इस पक्षसे यह कहा गया है कि जब कोई व्यभिचारिणी आदि चाहे किसी वर्गकी हो किन्तु वनिद्यापन हुकानचारी के काससे जीविका राखती हो तिसको मार डारै तो इस हत्या में कुछ देना चाहिये कोकि (वैशिकेन किंचिद्देयं) यह गौतमने कहा है कि वैशिक से जीवन चलानेवाली के वचमें कुछ देना • फिर इन्हीं सात या साढ़े छः अक्षरों पर व्याख्या भी लिखी है कि वैशिक जो वैश्योंवाला कर्म है तिससे जीविका वाली के मारनेमें कुछ देना=इस इस व्यवस्थाको इन कारणों से अस्वीकार करते हैं कि

प्रथम तो गौतमका वह वचन पूरा पूरा यहांपर दिया जाता जिसका यह एक पद है अक्षर वाला लिखा गया तो उसका अर्थान्तर देखा जाता फिर इस बात का भी अप्रच्यर्थ नहीं है कि गौतमने इसपद में ऊपरले अंगिराके समान वेश्याओंवाले कर्म से जीविका करता दर्शाया हो जिसके अर्थकी प्राप्ति इसमें प्रत्यक्ष है और इसीलिये वेश्याकी अतिशय तुच्छ मानिके अंगिरा ने जलदेना मात्र प्रायश्चित्त बताया तैसा गौतमने किंचित् कहा इस किंचित्से किसी वस्तुका नामहीं प्रकट नहीं होता और अतिशय थोड़े का नाम किंचित् होता है कि जिसका परिमाण भी नहीं कहा जा सकता है तो फिर क्या वस्तु और कितनी बेनी चाहिये इस बात के समझे बिना प्रायश्चित्त क्योंकर पूरा होसकता है—इसके सिवाय यह विरोध है कि चारों वर्गों के लिये यह एकही बात कही इससे भी अन्याय खड़ा होसकता है, सबसे ऊपर यह विरोध है कि वेश्यावाले कर्मकी जीविका मध्ये किंचित् कुछ कहि दिया तो फिर शूद्रकी जीविका वाले कर्मसे या क्षत्री और ब्राह्मणकी जीविकावाले कर्मसे जीविका करतीहों तिनका बचहोने में क्या क्या उत्तर दिया जाय तिससे यहां वेश्याआदि किसीके कर्मका प्रसंग लाना निपट ठ्याहै न उसके चर्चासे कोईसा प्रयोजन देखि परता है क्योंकि यहां व्यभिचारिणी आदि खोंदी स्त्रियोंकी व्यवस्था वर्णान हो रही है तिसमें जो ब्राह्मण व्यापारका विशेषण जोहों तोभी यह एक प्रकार का प्रतिष्ठा वाला चिह्न खड़ा होनेसे उलटा दूया पैदा होताहै कि उसी प्रतियोगे अनुसार कुछ बड़ा प्रायश्चित्त कहाजाता तहांसे निरादरके साथ किंचित् कुछ कहि देता किस प्रकारसे न्यायात्मक मानाजाय तिससे साफ निश्चित होताहै कि गौतमने वेश्याके वधका प्रायश्चित्त निरादर के साथ प्रकट किया होगा फिर चाहें वह बजाख वेश्या होय यहा घरू स्त्रियां वेश्या के मुख्य जीविका करने लगीं जो प्रायः खानगीके नामसे प्रसिद्ध होतीहैं ॥ ० ॥ अथ सामान्योपपातकप्रायश्चित्त नामप्रतिदेशः—मितासराकार कहिते हैं कि पहिले जो ४४ चत्वारिंश परिच्छेद में २६५ दोसौ पैंसठि मूलश्लोक और उसीकी अधिकोक्तिमें साधारण उपपातकों पर गोवध वाले प्रायश्चित्तोंका अतिदेश उतारा गयाथा उसकी पहुंच यहां भी आवश्यक है—तिससे—जहां क्षत्री आदि नीचे वर्गोंके पुरुषोंमें ब्राह्मणों आदि ऊँचे वर्गों की स्त्रियां प्रतिष्ठीम व्यभिचारसे दूषित हुईहों तिनको यदि कोई सारडारें तिसकी शुद्धिके लिये उसी परिच्छेदकेद्वारा पूर्वोक्त गोवधके प्रायश्चित्त लगाने चाहिये और उनमें जो ब्रह्मपन क्षीरापन देखिपरें सो सब यहां भी ब्राह्मणी आदि वर्गों के

भेदसे लगाइलेना=परन्तु इस परिच्छेद की सभी व्यवस्था जो वर्णान् होचुकीं तिनमें हुन्ता पुन्य नारनेवाला जो प्रायश्चित्तो होताहै तिसकी जातिभेद से प्रयोजन कुछ नहींहै कि उक्त प्रायश्चित्तों में चौथाई आदि किसी वर्ण को न्यूनान्वित विचारा जाय जैसा पहिले परिच्छेदों में भेद किया गया था ॥ २६८ ॥ अब निचले आठे श्लोकसे उन छियोंका चर्चा किया जायगा जो अतिशय खोंटे नहीं ॥ २६८ ॥

(ईपत्त्र्यभिचारितावधप्रायश्चित्तं)

अप्रदुष्टास्त्रिहत्वाशूद्रहत्याव्रतंचरेत् २६९ (पूर्वार्ध)

अर्थ:-अप्रदुष्टा स्त्रीको मारि के शूद्र की हत्या वाला व्रत आचरै=अर्थात्-दुष्टा खोंटे और प्रदुष्टा अति खोंटे कही जातीहै जो अतिखोंटे नहीं वही अप्रदुष्टा स-सक्ति लेनी और तात्पर्य इसका यहहै कि यद्यपि द्युभिचार से दूषित होचुको प-रन्तु ऐसी अब तक नहई जो अपने खोंटा पत में बिद्ययात होजाती अर्थात् लुकी छिपी द्युभिचार में होने से इयद्व्यभिचारित ठहरी- ऐसी ब्राह्मणी आदि का जो कोई वधकरै सो शूद्रकी हत्यापर लिखा हुआ छमाहीका व्रतकरै या दश गाय दूध देती हुई दान करै जैसा दोस्रो सरसठि २६७ के उत्तरार्द्ध मूल श्लोक में कहि चुके ॥ २६९ ॥ इति पूर्वार्द्ध श्लोकः ॥

२६६ आधिकोक्ति:-यहां नितान्तराकार कहितेहैं कि यह छमाही वाला व्रत उसके लिये विचारना कि जिसने ऐसी ब्राह्मणी को इच्छाके विना घात कियाहो और यही छमाही व्रत उसके लिये विचारना कि जिसने ऐसी सवारी को इच्छा पूर्वक वध किया हो और जिसने इच्छा सहित ऐसी बनेनी का वध किया हो सो दश गाय दूध देती हुई दान करै और जिसने इच्छा सहित ऐसी शूद्रा का वध किया हो तिसके लिये चवालिस ४४ परिच्छेद के अनुसार साधारण उप-पातकों पर कहागया एक महीने पचगव्य पीके रहने वाला व्रत बताना चा-हिये-परन्तु जो कोई इच्छा सहित ऐसी ब्राह्मणीका वधकरै तिसको बारहमहीने व्रत करना चाहिये और जो ऐसी सवारी को विना इच्छाके वधकरै तिसको तीनि महीने व्रत चाहिये तथा ऐसी बनेनीको विना इच्छाके वधकरै तिसको डेढमहीना व्रत करना चाहिये तथा ऐसी शूद्राको इच्छा विना जो वधकरै तिसको डेढमहीने से आवा २२॥ साठे घाइस दिनका व्रत करना चाहिये-ये सब अर्थ अगिले प्रचेता के वचन से स्पष्ट होते हैं=यथाह प्रचेताः=अशूद्रमतीन्ब्राह्मणींहत्वा इच्छाद्वयगमा

सान्नेति सविधां हत्वा यस्मात्सन्मासवर्षेति दैर्घ्याद्धत्वा मासत्रयसार्धं मासयेति शूद्रां
हत्वा सार्धमाससार्धं द्वाविंशत्यहाजयेति—अर्थात्—जो ब्राह्मणी मासिकवर्षसे ऋतुमती
कभी न होती हो तिसका वध करिके एक वर्षपर कृच्छ्रव्रत आचरै अथवा छमाही
मास (यहां विकल्पका वही तात्पर्य है जो अविकोक्तिके प्रारम्भमें कहि चुके हैं कि
विना इच्छाके वध करनेवाला सकलमाही व्रतकरै तो यह वारह महीनेवाला कृच्छ्र
व्रत इच्छा सहित वध करनेवाले पर चाहिये सो यह भी ऊपर लिखि चुके हैं) इसी
तरह आये क्षत्राणी आदिमें भी विकल्पोंको समझि लेना और सबके साथ बड़भी
जोड़िलेना कि जो ऋतुमती कभी न होती हो (क्षत्राणीको मारिके छे मास या तीति
मास व्रत करै सब बनेनीको मारिके तीन महीने या डेढ़ महीना व्रत करै सब शूद्रा
को मारिके डेढ़ महीना या षौन महीना व्रतकरै—इसमें भी मारनेवाला पुरुष चाहे
किसी वर्णाका होय प्रायश्चित्त सबके लिये एकसे बराबर है यह समझिलेना ॥०॥
एक हारीतके वचनमें प्रायश्चित्त बड़े होनेके हेतुसे कुछ भेद विशेष है सो देखीं—
यथाहहारीत—अडवर्गारिगारात्रने प्राकृतब्रह्मचर्यवीणावैश्यसार्धशूद्रे (इतिप्रतिपाद्य
पुनर्भक्तवान्) क्षत्रियवदब्राह्मण्यं वैरावत्क्षत्रियायां शूद्रवद्वैश्यायां शूद्राद्धत्वा नवमा-
सात् (तदपिकर्मसाधनत्वादिगुणयोगिनीनां कामतोऽप्यपादनेदृष्टव्य अकामतस्तु स
दैर्घ्याद्धकल्प्य आडेड्यां तु प्राशुक्तामिति मितासराकारा)=अर्थात्—हारीत ने पहिले
पुरुषोंके वधका प्रायश्चित्त कहा है कि—सर्षीके वधसे छे वर्ष प्राकृत ब्रह्मचर्य और
तीनि वर्ष वैश्यके वध में और डेढ़वर्ष शूद्र के वध में वही ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त है
(यह कहिके फिर हारीत ने कहा है कि) सर्षी के समान ब्राह्मणी के वध में और
वैश्यके समान क्षत्राणीके वधमें और शूद्रके समान बनेनीके वधमें समझिलेना और
शूद्रिनीको मारिके नौ मासका ब्रह्मचर्य साथै (इस पर मितासराकार कहिते हैं कि
हारीतके बताये ये बड़े प्रायश्चित्त भी ऐसी उत्तम स्त्रियोंके वधपर समझिलेना जो
कर्मका साधन होसकने की सभावना आदि उत्तम गुणसे सयुक्त होय तिनको इच्छा
सहित जब किसी ने वध किया हो—अन्यथा यदि इच्छा के विना दैवयोग से वध
किया हो तो इन प्रायश्चित्तोंका आधा आधा व्रत सबके साथ कल्पित करिलेना—
और आवेयी लक्षणा की स्त्रियों के वध का प्रायश्चित्त पहिले तीसरे परिच्छेद में
कहि चुके तहां देखी यह मितासराकारोंने सब कहा (परन्तु इसका व्यौरा आगे
सिद्धांत वाले पाठ से देखी कि जिन स्त्रियों का नाम निकम्मा कहा जाय उन्ही के
वधसे ये हारीत वाले बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं) इस परिच्छेदका सर्व सिद्धांत आगे

देखो ॥ सर्वस्यैवसिद्धांतः—अब इस बातका सिद्धांत सोचना है कि उन्ही ब्राह्मणा आदि का बध करने मध्ये तीसरे परिच्छेद में बड़ेबड़े वेदी प्रायश्चित्तलिखिचुके हैं जो ब्राह्मणा आदि पुरुषों का बध करने में बारह वर्ग आदिके होते हैं—फिर उन्हीं ब्राह्मणा आदिके बध पर यहां छोटे पापवहिरा कर छोटे छोटे प्रायश्चित्त कहे गये तिसका क्या कारणा है—इसका यही कारणा है कि यहाँ सब निकम्मी और खराब स्त्रियोंके बध का प्रकरणा जुदा किया गया है—इनमें निकम्मी तो उनको समझना जो नि पट वस्त्रा होय या वस्त्रा यद्यपि नहीं थी पर बुढ़ापा आदि कारणां से रजोवर्ष होना बन्द होगया हो जिससे आगेकी संतान पैदाहोनेकी आशा न रही हो तो ये दोनों तरहकी निकम्मी समझी जाती हैं फिर इन्हीं में से तीसरा भेद और है कि जिसका नासिक ऋतुवर्म निपट बन्द तो हुआ नहीं लेकिन बन्दहोनेवाला होरहा है तिससे कभी कभी दो चार महीने थँभिकर जारी होजाता है इसी ढंगसे बर्य दो बर्य पीछे निपट बन्द भी होजाता है तब तक यह आधी निकम्मी कहलाती है क्योंकि बीचमें देवावीन संतान पैदा होसकनेकी संभावना वर्तमान है—परन्तु इन तीनोंमें किसी प्रकारके व्यभिचारका बोध कुछ न हो और तीसरे परिच्छेदमें चर्चाकिया सबन यज्ञ वा अग्निहोत्रवाला उत्तम गृहामी इनमें न हो तो ये तीनों साधारण भावसे निकम्मी कहिनो चाहिये (इन्ही तीनोंके बधका प्रयोजन हारीत के अनंतरोक्त वचनवाले प्रायश्चित्तों में समझिलेना) निकम्मीके सिवाय दूसरी खराब स्त्रियां भी व्यभिचारिणी आदि कई तरह से बबनाम होती हैं तिनके बध पर जुदे जुदे सबछोटे प्रायश्चित्त लिखिचुके तिनको इसी परिच्छेद के प्रारम्भ से आदि लेकर २६८ सेती अरस्तिकी अधिकोक्ति भरसे देखो—फिर यह सोचो कि निकम्मी और खराब इन दोके बीचमें तीसरी भांतिकी स्त्रियां भी कुछ होती हैं अर्थात् निकम्मीसे कुछ मध्यम और खराब खोंटीसे कुछ उत्तम तिससे दोनोंके बीचमें ठहरी (यहाँ खराब और खोंटीका एकही अर्थ है क्योंकि खोंटी यह देशी भाया और खराब उसका पर्याय यावनी शब्द है) दोनों के बीचमें ठहरी तिससे इसका प्रायश्चित्त भी बीचही में लिखागया सो दोमी उदत्तरि २६६ के पूर्वाह्न से देखो कि (ईयत् व्यभिचारिता) यहीनाम उसका धरागया—समस्त पारच्छेद में इसक्रमसे इन तीनों हंताओंके प्रायश्चित्त धरेगए हैं कि सबसे पहिले अतिखोंटी और खोंटियोंके १ फिर बीचमें ईयत् व्यभिचारिता को २ फिर सबसे पीछे हारीत के वचन में निकम्मी स्त्रियोंके ३ इन्तीनों में निकम्मी सबसे अच्छो समझिलेना

क्योंकि इनमें व्यभिचार आदि दूयगा कुछ नहीं है और बीचवालीको इसलिये कुछ मध्यम ठहराया है कि यद्यपि वह बन्ध्या भी न हो अथवा होय तो भी कुछ तर्क इस पर नहीं है और यद्यपि वह अनार्तवा भी न हो किन्तु मासिक ऋतुधर्म उसके निरन्तर जारी होताहो अथवा न होताहो तौभी कुछ तर्क इसपर नहींहै परंच थोड़े से व्यभिचारमें सकही दो बार अपने स्वर्गाँ किसी पुरुषसे या ऊँचे वर्गाँसे केवल इतना दूषित हुंइहो जिसको भितरिया लोगोने जाना कोई बाहरका बदनाम न कर सकाहो न किसीने प्रायश्चित्त उसपर करवाया हो तो इसका वध करने वाले पर वही प्रायश्चित्त आच्छेद होगा जो २६६ के पूर्वार्ध आदि से कहा गया (पर इसमें भी यह विशेषता है कि यदि ऐसी स्त्री से प्रायश्चित्त करवाया गया हो तो फिर प्रायश्चित्तसे पवित्र होकर यह भी निकम्मा स्त्रियोंके बराबर समझी जायगी और प्रायश्चित्त करने के बाद यदि कोई मार डारै तिसकी हारोत वाला बड़ा प्रायश्चित्त करना होगा) अथवा जो इसके रजोधर्म जारी होता हो तो फिर यह भी प्रायश्चित्त करने के बाद आवेयी मानी जायगी जिस आवेयी का वध करने पर बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं सो सब तीसरे परिच्छेद में देखो (आवेयी वही कहाती है जिसका मासिक धर्म हमेशा अपने समयपर जारी होताहो)—अब=तीसरे परिच्छेद का सिद्धान्त सुनो कि उसमें भी चाहें किसी वर्गाँकी हो पर इतने उत्तम लक्षणों से द्यूक्त स्त्री का वध करने पर पूरे प्रायश्चित्त है कि सक तौ आवेयी १ दूसरी पतिव्रता २ तीसरी सवनस्था जौ सवन यज्ञमें लगीहो ३ चौथी अग्निहोत्रीकी भार्या चाहें आवेयी के लक्षण से सयुक्तहो या नहो ४ (इन चारोंसे उपराल जो बाकीरहीं सो सब यहाँ ५३ परिच्छेदमें आगई)—इनके सिवाय=उसी तीसरे परिच्छेदमें (गर्भ हाच यथावर्गाँ) यह कहाहै कि गर्भका विनाश करने वाला भी जिस वर्गाँ का गर्भ विनाशो उसी वर्गाँकी पुरुष इत्या वाला व्रत करै—सो यह तात्पर्य यहाँ ५३ के परिच्छेद में भी लेलेना होगा कि चाहें व्यभिचारिणी आदि कैसीही दुष्टा हो पर अपने पतिके बीजसे गर्भधारण कियेहोय तिसका वध करनेमें गर्भका विनाश होजाने पर अशोक्त प्रायश्चित्तसे उपराल उस परिच्छेदमें वर्णन करी गर्भकी व्यवस्था भी लेनी होगी और उसमें जो गर्भका प्रायश्चित्त हो सो भी करना होगा क्योंकि इन दोनों परिच्छेदों का संबंध परस्पर मिला झुलासा सकही है ॥ २६६ ॥ यह पूर्वार्ध की अधिकोक्ति कहाँ अब इसी मूलश्लोक का उत्तरांश अगिले परिच्छेद में जा पहुँचै गा—और यहाँपर हिसा दालै प्रायश्चित्तो का प्रसंग चला आता है तिसमें मनुष्यों

की हिंसा अबतक वर्णन करो० आगे इसीके प्रसंगसे मनुष्योंके उपरालू हाथीआदि बड़े जीवोंसे लेकर लीख भुनका पर्यन्त सब तरह के प्राणियोंकी हिंसा वाले प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में जुदे वर्णन करेंगे कि वे पातक यद्यपि योगीश्वरकी विवसासे सभी उपपातकों में गिनती होचुके हैं यह ज्यौरा २३४ मूलश्लोक से आदि लेकर देखो० परन्तु मनु और विष्णु आदि कई ऋषीश्वरोंने इन पापों का छोटापन समझिके उपपातकोंसे भी छोटे भेद इनके माने और भेदोंके जुदे नाम कल्पितकिये हैं सो सब २४२ की अधिकोक्ति में समुझी ॥ ऊपर जो इसी २६६ के पूर्वार्ध मूल श्लोकमें शूद्रकी हत्यावाला प्रायश्चित्त छेमाही और दश गायका दान जो स्त्रियों हत्यापर कहिचुके वही अगिले परिच्छेद वाले उत्तरार्ध मूल श्लोक में भी तु शब्द के संबंधसे अतिदेश दियाजायगा यह याद रखवो ॥ २६६ ॥ इतिपूर्वार्धः ॥

इतिब्राह्मणोत्तरनरहिंसाप्रकरणां ॥

यह प्रकरणा दो परिच्छेदों में अर्थात् बावन ५२ और त्रेपन ५३ में पूरा हुआ ॥

अथनरेतरसर्वप्राणिहिंसोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाश

कोट्यपरिच्छेदः चतुपंचाशत्तमः (५४)

इस परिच्छेदमें मनुष्यसे उपराल सब जीवोंकी हिंसा मध्ये प्रायश्चित्त उनको जुदे भेदों के साथ कहे जायेंगे जो हाथी को आदि लेकर मच्छर लीख पर्यंत भुनगा से भी अति छोटे जीव संसार में होतेहों ॥

(सूक्ष्मलघुजंतुसमूहवधप्रायश्चित्तं)

अस्थिमत्सहसंतुतथाऽनल्पिमतामऽनः २६९

अर्थः—हाड वालोंका एक हजार और विन हाड वालों का एक अन्स गाडा भरि मारिके भी=अर्थात्—छोटी मछरी आदि तुच्छ जीव उस भांति को कि जिनके कुछ हाड भी होतेहों तिनको एक सहस्र सख्याके अनुमान जो कोई किसी प्रकार से विनाश से भी वही प्रायश्चित्त करे (जो स्त्री वध के ऊपर पूर्वार्ध मूलश्लोक से पहिले परिच्छेदमें अतिदेश देचुके हैं कि शूद्र की हत्यावाला छेमाही ब्रह्मचर्य या

दश गायका दान करें) क्योंकि यहां उत्तरार्धमें तु अग्रय के योगसे उनकी प्राप्ति चली आती है—और उसी प्रायश्चित्तकी वह भी करें जो एक अनम गाइ ककड़ा भरके अनुमान उन जीवोंका विनाश करें जिनके हाइही नियत न होतेहो इत्यांत जैसे जोक यस्तो रोना सिंदार गिजाई सखी ततैये वर भींणुर खटमल चींटे दीसक आदि बहुधा योनि होती हैं ॥ २६६ ॥

२६६ अधिकोक्ति—इस २६६ के उत्तरार्धमें तु अग्रय के अर्थसे उसी प्रायश्चित्तका अतिदेश उतारागया है जो ऊपरले परिच्छेद में पहिलेअहासे कहिचुके है (शूद्र इत्या व्रतचरेत्) कि शूद्रकी इत्या मध्यो जो २६७ दोसौ सरसि मूलश्लोक में कहाही ब्रह्मचर्य या श्रद्धेनुदेना कहाया वही इसइत्यापरभी करें परंतु यहाँ एक हजार छोटे जीवोंकी इत्याका नियम कियागया है तिससे जो अधिक जीवमारैसो उससे भी कुछ बड़ा प्रायश्चित्त करें इसीप्रकार बिना हाइ वालो को गाड़ी भरसे अधिक मारै सो अधिक प्रायश्चित्त करें यह तात्पर्य है और जो एकही वो चार आदि जीव मारै हाइवाले या बिना हाइवालो में तिसको प्रत्येक जूरे जीव का प्रायश्चित्त आगे २७५ दोसौ पचहत्तर मूलश्लोकसे योगीश्वर कहेंगे तहाँ देखो= और=जो मनुका एक बचन मितासरा में धरा है कि कृमि कोट ब्रयो इत्या० इत्यादि सलिनी करणीय पापों की गिनती किने पोछे—तत्त स्याद्यावकस्यह—यह प्रायश्चित्त सबका एक साथ कहागया है कि तीन दिन गरभारम यावक पीवै तब शूद्र होय) सो यह प्रायश्चित्त यद्यपि ऐसे धर्मात्मा पुरुष पर आखद है जो प्रायश्चित्त छोटेजीवों की इत्या से भयमानता हो यद्वा किसी प्रयोग पजन में लगा हो तिसकी ग्लानि मिटाने के लिये केवल एकही छोटा जंतु हाइ या विनहाइ वाला सरजाने पर यह प्रायश्चित्त है कि जिससे उसके मन को शक्ति होसके) क्योंकि इसी मनुके बचन में बिना हाइ वाले कृमि कोट भी कहे गये और इसी में हाइ वाले वयस पक्षी भी कहे गये किन्तु दोनों का जुदा भेद या जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा—इसपर असल मितासरा में यह न्याय लिखाधरा है कि ऊपर योगीश्वर के कहे हाइवाले और बिना हाइवाले अतिशय सोदिष्ट बहुत सूक्ष्म जंतु समुभ्ते जैसे लोख जुआ मच्छर खटमल आदि जिनका एक हजार या गाइभर मारने पर छे साही प्रायश्चित्त है क्योंकि हाइ या विन हाइ वाले स्थल जंतु एकही के मारने पर मनुने तीन दिन गरम यावक पीना कहा है—इस इस न्याय को इस हेतुसे सुझोल नहीं समुभ्ते है कि मितासरा पहिले हाइवालो का दृष्टांत ककजाम के-

कला गैरादि काहचुकी जो डेढपाव से अधिक भी स्थूल होता है फिर यहाँ इसन्याय पर लीख जुआ मच्छर आदि समुझाती है जिनका एक छकड़ा भर मारा जाना एकही पुरुषके हाथसे कदापि संभव नहीं है फिर वही मिताक्षरा सनुके वचन में हाँस कीसे को स्थूलरूप कहती है—यथा (एतवक्षोद्विजतुविषय स्थवियान स्थिगुणादिज्जुवधेतुज्जमिकीटवग्रोदत्येत्यादिना मलिनोकरसोयान्यभिवाय म-
लिनोकरसोयेयुतम स्याद्यावकस्यद्वान्तिसमूक्तदृष्टव्यमितिमिताक्षरा) इसीप्राप्ति की व्याख्या ऊपर लिखी गई सो रुमझि देखो इस न्याय से कुछ सार नहीं मि-
ला॥२६६॥अब दोहौवृत्तरिके श्लोकमें इनसे बड़े जीवोंकी इत्या बावतकहेगो॥२६६॥

(मार्जारादि वध प्रायश्चित्त)

मार्जारगोपानकुलमंडूकाश्चपतत्रिण । हत्वात्र्यहर्षिवेत्क्षरिकच्छ्रंवापादिकंचरेत् २७०

अर्थः—मार्जार• गोधा• नकुल• भडूक• पतत्रि• इनको मारिके तीन राततक दूध पीके रहै या एक पाद कच्छ्र करै=अर्थात्—चिली• गोह• नेउरा• मेदुका• और पतत्रि उड़ने वाले पक्षी काक चाय घुघुआ आदि (जिनके नाम किसी मूल प्रसंगमें न कहेजायँ) इनका एकही एक जीव घात जो कोईकरै सो तीन राति तक थोड़ा दूध पीके व्रत करै या कच्छ्र व्रत प्राजापत्य की चौथाई व्रतकरै यहभी तीन दिन में होता ॥ २७० ॥

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

५०१

वाय पक्षी और मेढुका भी मारिके या कृत्ता और गोह और उल्लू और कार्कोको एक साथ मारिके अथवा इनमें एकही किसी जीवकी अनेक सख्या मारिके शूद्र भी इत्यावाला व्रत आचरें जो कमाही भरका शूद्र को वधपर कहिचुके हैं (यहाँ प्रह ध्यान करो कि मनु का यह वचन मर्जार आदि वाला अनेक जीव मारने पर कमाही प्रायश्चित्त बताता है और योगीश्वर का मर्जार आदि-वाला केवल एक प्राणी मारने पर तीन दिन प्रायश्चित्त कहिचुका कि जिसके मध्ये मनु के ऊपर ले वचन में अनेक प्रायश्चित्तों के अधिक भेद भी दर्शाये गये) इन सबसे निराला एक वशिष्ठ का वचन है—यदाह वशिष्ठः—यमर्जारनकुलमडूकसर्पदहरसूयकाच ह-
त्वाकृच्छ्रं द्वादशरात्रिचरेत् किञ्चिद्व्यात—अर्थात्—वशिष्ठने जो बड़ा प्रायश्चित्त कहा है कि—कृत्ता• चिल्ली• नेउरा• मेढुका• साँप• दहर कौटेदार पहाड़ी वनमूसा• सूयक मूसा• इन प्रत्येक जुदे जीवों का एक प्राणविनाशिके बारह दिन का कृच्छ्र अर्थात् प्राजापत्य आचरें (ये बारहदिन उससेचौगुने होतेहैं जो तीनदिनमनु और योगीश्वर कहिचुके तो इस चौगुने का यही प्रयोजन है कि जिसने इच्छा सहित दुबारा ति-
बारा वधकियाही तिसकेलिये यह प्रायश्चित्त है २७० ॥

(हस्त्यादिवध प्रायश्चित्त)

गनेनीलवृषा पंचशुकेवस्त्रोद्विहायनः । खराजमेपेपुवृषोदेय कौचेत्रिहायन- २७१

अर्थः—हाथी में पाँच नीले वृषभ• शुकपक्षी में द्विहायन बछरा• खर अज मेघ इनमें एक वृषभ• क्राँच पक्षी में द्विहायन बछरा दातव्य है—अर्थात्—जिसने हाथी माराही सो पाँच काले बैल दान करें• जिसने तोता पक्षी का वध कियाही सो दो बर्य का बछरा दान करें• जिसने गदहा माराही सो एक आँडूवैल• और बकरा मारने वालाभी एकवैल• तथा मेढा मारनेवालाभी एकवृषभदानकरें• जिसने क्राँचनास मारस पक्षीका वध कियाही सोतीनवर्यकी अवस्था वाला बछरा दानकरें २७१ ॥

२७१अधिकोक्ति—यद्यपि तोता और मारस ये हाथी आदि के बराबर डील डौलमेंभी नहीं और जातिसेभी पक्षीहैं चौपायेसे मेल इनकानहींहै तथापि इन दोनों की उत्तमता से बड़ापन जाहर करने के लिये बड़े चौपायों के साथ में कहे गये)= इसपर एक मनुके वचन से कुछ और भी विशेषता है—यदाह मनुः—वासोदयाद्यह-
त्वापचनीलावृष्यान्मज्जम अजमेयावन्द्वाहखरहस्तौकहायनस—अर्थात्—घोडा मारि के जैसा घोडा होय तैसा उत्तम मज्जम आदि वध दानकरें और हाथी को मारिके

पाँच नीले बैलों का दान करै तथा बकरा या भेड़ा को मारिके एक एक आँड़ु-
यभ दान और गर्धव को मारिके एक वर्यका बछरा दान करै तब शुद्ध होय (यो-
गेश्वर के मूल वचन में गदहा को मध्ये पूरा दूधभ देना कहा गया और यहाँ पर
उसके मध्ये एक वर्य का बछरा कहा सो इस दो भाँतिमें विकल्प गदहा को उत्तम
मध्यम जाति के ऊपर समझ लेना ॥ २७१ ॥

(हसवानरष्ट्र्वादि वधप्रायश्चित्तं)

हस्तभ्येनकपिकव्याजलस्थलशिल्वादिनः । भांसहत्वाचदद्याद्गामक्रव्यादस्तुवत्तिकाम् २७२

अर्थः—हंस• प्रयेन• कपि• क्रव्याद्• जलचर• स्थलचर• शिखड़ी• इनको और
भासको भी मारिके गाय दानकरै=अक्रव्याद्येको मारिके बछिया वा कलोरिगाय
दानकरै=अर्थात्—हंस जो अलभ्य पक्षी विख्यातहै सो अथवा उसी प्रकारके बतक
आदि और भी होते हैं• प्रयेन बाज का नाम है• कपि बदर प्रसिद्ध है• क्रव्याद उन
जीवों का नामहै जो मांस खायें (वे जल स्थल आकाश वृक्षादि को निवासी कहे
भाँति होतेहैं• शिखड़ी मोर का नाम है• भास भी एक पक्षी इसी नामसे प्रसिद्धहै•
इनसे से किसी एकही का वध करै सो एक गाय दान करै—और जो क्रव्याद नहीं
किन्तु मांसको न खाने वाले जल स्थल दोनों जगहके निवासी जीव तिनमेसे किसी
एकहीको मारै सो कलोरि बछिया दानकरै (अक्रव्याद और क्रव्यादों के विशेष
नाम अधिकीति से ॥ २७२ ॥

२७२ अधिकीति—अक्रव्याद मांसके न खानेवाले वन जीवोंमें हरिण आदि
अनेक मृग होतेहैं उड़ने पक्षियों में खजूर आदि अनेक पक्षी होते हैं—क्रव्याद मांस
खाने वाले भी दो तीन भेदके होते हैं कि वन के मृगजीवों में गुराल व्याघ्र आदि
अनेक और पक्षियों में आकाशी कक चील शूभ्र आदि अनेक तथा जलके जीव भी
मगर आदि अनेक मांस के खवैया होते हैं—इनसे उपरालू जल के निवासी बगला
आदि समझने और स्थलके चरने फिरने वाले भी बलाका आदि बहुत होतेहैं—इन्हीं
सब जीवोंके वधको बाबत मनुने भी इसी प्रकारसे विशेष भेद कियाहै=यदाहमनु=
हत्वाहसबलाकांचवकर्वर्हिगामैवच वानरप्रयेनभासीचरुषण्येद्वानाह्यगायगाध क्रव्या
दस्तुमृगान्दहत्वाधेनुंदद्यात्पयस्विनोव अक्रव्यादेवत्सतरोमुष्ट हत्वातुक्रयालत=अर्था-
त्=हंस• बलाका• बगला• मोर• वानर• प्रयेन• भास• इनमें किसीको मारिके एक
गाय ब्राह्मण को देवै और क्रव्याद वा मृगों को मारिके दूध वाली गाय दान करै

और जो अक्रव्याद जीव मारा हो तो कलोरि बछिया दानकरै आर ऊंटको मारिके कणाल अर्थात् सोने की रत्ती दानकरै ॥ २७२ ॥

(उष्टोरगवराहाप्रव क्षोयानां वधे)

उष्टोरग्व्यासोदंडोपडकेलपुसीसकम् । कोलेधृतघटोदेषउष्ट्रेगुजाहयेंऽशुकम् २७३

अर्थः—उरग नाम सरीसृप जाति माघ मे किसी एक जीकेमारने मध्ये लोहेका दण्ड दान करै जिसका अग्रभाग पैनी नोकदार होय० पडक हिजरा के मारने मे जस्ता सीसा रौंग दान करै० कोल सुकर के वध करने में घी का भरा घट दान करै० ऊंटको मारने में गुंजा अर्थात् सोने की कणाला रत्ती दान करै० घोड़ेको मारै सो उसकी उत्तमता आदि के अनुरूप धत्तों का दान करै ॥ २७३ ॥

२७३ अधिकोक्तिः=लोहे का दण्ड ब्राह्मणा को भोजन कराइके दक्षिणा में देना चाहिये यह व्यवस्था आगे २७५ की अधिकोक्तिमें देखी जहां (इत्वा सूयक माज्जर इत्यादि) पराशर का वचन मिलै उसका अर्थ विचारै ॥ पडक वाली व्यवस्था यहां देखी—पंडकं इत्वापलालभारघ्पुंभीमकवादद्यादिति स्मृत्यतरदर्शनात् पला लभारवादद्यात् ऋपुंभीमकचमायपरिमितं दद्यात् इति मितासराकाराः=अर्थात्=मितासराकार कहिते हैं और किसी स्मृति मे यह वचन देला गया है कि पडकका वध करिके याती एक बोझ धान कोदों के पयार का दानकरै या सीसा रौंग दानकरै तिससे पयार का बोझ भी विकल्प से समझि लेना और सीसे रौंगे का परिमाण कुछ नहीं कहा गया है तिससे एक सासेभर देना चाहिये (चाहें यह पांचहीकौड़ी का साल क्यों न होता हो) भला इस अतिशय तुच्छ प्रायश्चित्तको एकओर धरो० प्रथम इस नामही पर संदेह खणी तर्कवाद है कि (पंडकोलिंगादीनस्थ्यास्संस्काराहं प्रचनैवसः इति देवल वचनेन सामान्येनैव स्त्रीपल्लिगर्होति निर्दिष्टः) अर्थात्—देवल का यह वचन है कि जो बालक स्त्री या पुरुषों वाले प्रधान लिग चिह्न से विहीन पैदा होय सो पंडक अर्थात् निपट नपुंसक होता है उसका कुछ संस्कार भी जनेऊ मूढ़न आदि न करना चाहिये—यद्यपि—यह वचन सर्व सामान्य बोधक है तथापि इस वचन के अनुसार यहांपर गाय ह्यभ नपुंसक या ब्राह्मणा जाति का नपुंसकन समझि लेना क्योंकि इनके वध का प्रसंग इनकी जाति के प्रकरणों में आचुका समझना—इसी प्रकार स्त्री आदि का प्रसंग उनके प्रकरणों में आचुका होगा—और यहां पर पंडक नाम सामान्य कहा गया है कि जिसमें हरकिमीका अर्थील-

या जासके— तिससे यह कहिने में ठीक ठीक आसक्ता है कि गृहस्थ के घरों में सौजद नपुंसकों का चर्चा छोड़ो किन्तु निषट नपुंसकोंका समूह, एक जुदाभी होता है जिसमें हर एक जाति शामिल होजाने से ब्राह्मण स्त्री आदि का कुछ भेदऔर नियम बाज़ी नहीं रहता उन्हीं का यह प्रसंग है जो लोक में हिजरा इस नाम से विख्यात हैं—परन्तु—मितासरा ने यहांपर यह भी निप्रचय किया है कि मृग और पक्षियों का प्रसंग वर्तमान है नरचर्चा यहां पर नहीं है तिससे पंडक शब्दसे मृगऔर पक्षी ही नपुंसक बताये होंगे—तथापि—सर्वाद्य परिपाटी उत्तर देती है कि हिजराओं का समूह भी ऐसे निरुद्ध प्राणियों में प्रसिद्ध है कि जिसको मनुष्योंके प्रकार-श में गिनती न करसके और इसी हेतु से उसको तिर्यक् योनि के समान मानि के यहां पर लाकर मृग पक्षियों के साथ वर्णन किया होगा बल्कि मृग पक्षियों की अपेक्षा वेकतवरीके साथ उसके मध्ये अतिशय तुच्छ प्रायश्चित्त दर्शाया तो इस बात का अचंभा नहीं है (कि जैसा हाथी आदि चौपायों के साथ में तोता और मोर छोटे पक्षियों की उत्तमता दर्शाने के निमित्तसे मिलाकर प्रायश्चित्त कहेथे २७१ मूल श्लोक देखो उसी न्याय से अचंभा यहां नहीं है) और जो इस बात को न मानो तो फिर यह उत्तर देना चाहिये कि ऋषयोचरों ने हिजरों का चर्चा किस परिच्छेद में वर्णन किया तहां देखें यदि नहीं कहीं कहा तो फिर यही है—अन्यथा—यह उत्तर भी देना चाहिये कि आपने बनवासी मृग पक्षी जो नपुंसक बताये सो क्योंकर पहिंचाने जासक्तेहैं कि नपुंसक हैं या नहीं इसकी क्या परीक्षा (हो केवल बनाये हुये दोषार पण सेसे हैं जो पहिंचाने जाते हैं कि बकरा खस्ती और घोड़ा आखता और बैल बांधया आदि सो इनका यहाँ वन्यजीवोंके साथमें प्रसंग नहीं) कदाचित् प्रसंग भी ज़रवस्ती मानि लिया जाय तो फिर ये खस्ती आदि बड़े की-मती प्रयोजन वाले होते हैं तितपर यह तुच्छ प्रायश्चित्त भी नहीं सूचित होता—तिससे यह पंडकसंज्ञा केवल हिजरा पेशेवालोंकी समुझना बल्कि इसी विषयपर मनुका एक वचनहै उसमें साफ साफ यंदसंज्ञा कहोहै जो विशेष कर मनुष्यही की वीधक प्रतीत होतीहै—यथाइमनु=अभिंकायायसोऽस्यात्सर्पदृत्वाडिजोत्तमः पला-लभारक्यदेसैसकंचेवमायकष=अर्थात्—सर्प सरीसृपजातिका कोई जीवमारै सो काढ और लोहसे धनी अग्निदानकरै जो जड़ान नौकाआदिका मेल कीचड़ साफकरनेके लिये लोहालकड़ीकीवनी कुहालकहातीहै और थंड जो निषटनपुंसकहो तिसका वच करनेमेंएकत्रीभूपरारकावानकरै और एकमासेभर सीसारांगामोदानकरै ॥ २७३ ॥

(दानाशक्तौप्रायश्चित्तांतराणि)

तिनिरोतुतिलद्रोणं । गजादीनामशक्नुवन् ॥ दानंदातुंचरेत्कच्छूमेकैकस्पविशुद्धये २७४ ॥

अर्थः—तीतुर यक्षीका वध करने में तिलोंका द्रोणा दानकरै (अर्थात् अधिकोक्ति में कहे द्रोणा भरि तौलिके तिल देवै । हाथी आदि सब जीवों की जुदो हत्यापर जो जो कुछ दान करना लिखिचुके सो निर्धन होनेके हेतु से जो कोई उसके देने में असमर्थ होय सो प्रत्येक जुदो हत्याकी विशुद्धि होनेके योग्यही कच्छू आचरै ॥ २७४ ॥

२७४ अधिकोक्तिः—द्रोणास्यपरिमाणं यथा=अष्टमुखिभवेत्किंचित्किंचिदष्टौतु पुष्कलम् पुष्कलानिह्युचत्वारिआदकःपरिकीर्तितः चतुरादकीभवेद्द्रोणाइत्येतन्मान लक्षणां=अर्थात्—धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंमें इस रीतिसे द्रोणा कहा गयाहै कि आधी छटांक के अनुमान कोई धान्य जो मुट्ठी में आसके सो मुट्ठी कही जातो है। आठ मुट्ठी भर एक किंचित् कहाता है सो पाउ भरिका समझना ऐसे आठ किंचितोंका एक पुष्कल होताहै वह दोसेरके उन्मान होगा ऐसे चारि पुष्कलोंका एक आदक होताहै यह आठसेरके अनुमान होगा ऐसे चार आदकोंका एक द्रोणा कहाजाता है जो ३२ वत्तीस सेरके लगभग होताहै इतने तिल दानकरै जिसने तीतुर साराहो । ऊपर मूलश्लोक में दानके बदले कच्छू करना कहा गया तहाँ यदि कच्छूका विशेष कर बड़ी एक प्रधान अर्थ माना जाय कि बारह दिन के प्राजापत्य का नाम कच्छू कहिते हैं तो यह दोय खड़ा होताहै कि हाथीके मारनेमें भी वही बारह दिन और वही तोताके मारनेमें भी कियाजाय सो यह न्यायका नार्थ ठीक नहीं माना जा सक्ता है (कि सब धान बारह एसेरी के भाव) तिससे कच्छू शब्दका सर्व सामान्य वह अर्थ लियाजायगा कि कयसे साधनकिये तपका नाम कच्छूहै चाहे तप छोटा होय या बड़ाहोय—इसी नियमसे छोटी बड़ी हत्याओं की शुद्धि के योग्यही कच्छू होसक्ता है—तो इस मार्ग से यह न्याय ठहिरा कि हाथी को हत्यापर जहाँ पाँच बेल देनेकहे तिनको न देसके सो दोमात्र भर गोमयदे रँधे अवोक्ता यावक स्वायके कच्छू तपकरै तो बारहदिन वाले पाँच प्राजापत्यकी वरावर प्रायश्चित्त ठहिरै एवं गदहा आदि के वधपर जहाँ एकही बेल देना कहा तिसको न देसकने में एकही प्राजापत्य करै जो बारह दिनमें होता है एवं जहाँ तीन वर्य का बछरा देना कहा तहाँ नौ दिनमें तीनपाद प्राजापत्य करै जहाँ दो वर्य का बछरा देना कहा तहाँ छः दिन में आवा प्राजापत्य करै जहाँ २७२ के श्लोक में गायदेनो कही तहाँ चौबीस

होसके यही प्रायश्चित्त है । हाड़वालों के घातमे कुछ दान करना चाहिये विन हाड़वालों के घातमे प्राणायाम=अर्थात्—फल फूल आदिसे उपराल जो प्रत्यक्ष कुछ बड़े जीव होतेहैं जिनका नाम कहीं नहीं लिखा क्योंकि संसार में अनन्त जीव हैं सबके जुड़ेना कहीं तक लिखे जायँ तिनके मध्ये सामान्य रीतिसे एकही दो प्रायश्चित्त दर्शाते हैं कि—यदि हाड़वाला कोई एक जीव केकलागोंगा आदि विनाश किया हो तो प्रत्येक जीवके मध्ये कुछ कुछ अन्न वा नगदी आदि दानकरै यद्वा विन हाड़वाला कोई छोटा जीव भी अगर तैय्या आदि विनाश किया हो तो प्रत्येक जीवके मध्ये एक प्राणायाम जैसा संशयके उपासनमें होता है सोकरै तिससे शुद्धि हो जाती है ॥ २७५ ॥

२७५ अधिकोक्ति=घृताशनैस्तु मिताक्षरा—पूर्वार्ध में जहां घीका चारना कहा तिसके मध्ये मिताक्षरा में यह व्यवस्था है कि निपट घीखाय के एकदिन उपवास करै क्योंकि प्रायश्चित्तोंका रूप है तपस्या सो किंचित घी चारने से नहीं मानी जासक्ती है यही बात अगिराके अग्रोक्त वचनसे पाई जाती है—यथा हांगिरा=प्रायोनाम तपः प्रोक्तं चित्तनिश्चय उच्यते तपोनिश्चयस्युक्तप्रायश्चित्तं तदुच्यते=अर्थात्—प्रायस्—चित्तइन दो शब्दोंका अर्थ है कि प्रायस् तप कहाता है चित्त निश्चयका नाम है सो तप और निश्चय मिलिकर प्रायश्चित्तनाम धरागया है—तिससे किंचित घी चारना ठीक नहीं यह मिताक्षराकारोंने कहा—और मूलश्लोक में साफ साफ यही कहा है कि (घृताशनैर्किंचित्) और (देयं किंचित्) अर्थात् किंचित शब्दकी योजना पूर्वार्ध उत्तरार्ध दोनों अर्धामें प्रत्यक्ष है तो इसद्विविधा से दोनों तरहसे व्यवस्था समझिलेनी कि जहाँ थोड़े से फलफूल आदिके जीव मरें तहाँ किंचित ही घी चारने में शुद्धि होजायगी परन्तु जहाँ कुछ अधिक जीव मरेहों तहाँ निपट घी खायके उपवास करना भी उचित है । वही किंचित देयके साथ है कि हाड़वाला कोई एकही जीव मरजाने में किंचित देना चाहिये तहाँ किंचित कुछ का अर्थ तो प्रधान है कि कुछ दान करना चाहिये चाहे अन्न वा नगदी आदि जो कुछ वनिपरै फिर उसी किञ्चितका दूसरा अर्थ आठ मुट्ठी भी कहाता है जैसा (अष्टमुष्टिभवेत्किञ्चित्) यह २७४ की अधिकोक्तिमें भी आचुका है कि आठ मुट्ठी भरनाज किञ्चित् कहाता है जो केवल पाउ भरके अनुमान होसक्ता है—इसपर मिताक्षराकार कहिते हैं कि जो धान्य आदि कोई नाज दानकरै तो एक जीवकी इत्यापर यही आठ मुट्ठी भर देना चाहिये जो नगदी दानकरै तो उसी किञ्चित् की अभिप्राय से तांबेका एक परा एक जीवकी इत्यापर देना चाहिये क्योंकि (अस्थिसतांबवेद्यगोदेयइतिसुसंतः) समन्तुने

दिनमें दो प्राजापत्य करें जहाँ कलौरि देनाकही तहाँ एक पखवारेका उपवासकरै
जहाँ २७३ के श्लोक से घीसे भरा घडा देनाकहा तहाँ नौ दिन में घौन प्राजापत्य
करै जहाँ बखकादान करना कहा तहाँ घीड़ेकी बड़ाई आदिके अनुसार एकमहीने
वाला चांद्रायण या चौबीस दिनका या पंद्रह दिनका व्रत करै जहाँ लोहे का दंड
देना कहा तहाँ तीनदिनका व्रतकरै जहाँ तिलोंका दान करना कहा तहाँ तीनदिन
का उपवास करै (फिर इन व्रतोंका परिवर्तन बदल भी जिस रीतिके व्रतों साथ धर्म
शास्त्रके विज्ञाता पुरुष विचारि के ठहिरावैं सोभी दोषोंकी दशाके अनुसार कोम-
लताके निमित्त माना जासक्ता है) और भी (जिन जीवोंके नाम यद्यपि नहीं लिखे
गयेहैं तिनके मध्ये २७५ दोसौ पचहत्तरिका मूलश्लोक देखो परन्तु जे कोई जीव
इन्हींके समान समझेजायँ जिनकेनाम यहां तक लिखिचुके तौफिर इसी व्यवस्था
के अनुरूप उन जीवोंकी उपमा इनमें से हुंड़ि मिलाइ के निज बुद्धि से प्रायश्चित्त
कल्पित करलोना चाहिये ॥ २७३ ॥ सामान्य कृच्छ्र शब्द की व्यवस्था जैसी अनेक
भेदों से लिखि चुके तिसका प्रमाणाभी अग्रोक्त गौतमका वचन देखो=यदाहगौत-
मः=संवत्सरः परासासाश्चत्वारस्त्रयोदशविक्रतुर्विंशत्यहोवावशाहःषडहस्यहोऽरात्र
इतिकलनाएतेऽन्येवाऽतिदेशेविकल्पेनकियेरन्नेनसिगुत्तरागुत्तरालघुनिलघूनीति=
अर्थात्=एकवर्षः एक क्कमाहीः चारमहीनाः तीनमहीनाः दोसहीनाः एकसहीनाः चौ-
बीसदिनकाः बारहदिनकाः छःदिनकाः तीनदिनकाः एक दिनरातिका भी तप होताहै
यह कृच्छ्रोंकी कलना अर्थात् गणना गिनती कही (पर इतनेही नहीं किन्तु और
भी अनेक गिनतीके होतेहैं तिससे) ये इतने या और जे कोई कृच्छ्र तप होते हों
तिनको अति देशकी स्थजोंपर विकल्पसे वर्ते किन्तु बड़े पापमेंबड़े कल्प और छोटे
पापमें छोटे कल्पों की यथा योग्य सोचिके ॥ २७४ ॥

(अतिसूक्ष्मजंत्वादिवधप्रायश्चित्तं)

फलपुष्पांतरसजसत्वघातेषुताम्रनम् । किंचित्सास्थिमतदिर्घाणायामस्त्वनास्थिके २७५

अर्थात्=फलः पुष्पः अंतःरसैः उत्पन्न प्राणिज्यां के घातमें घीघातना=अर्थात्-
गुलर आदि बहुधा फलोंमें और मसूर आदि बहुधा फूलोंमें बहुत नन्हे जीव होतेहैं
और बहुत दिनाकी धरोहुई खानीपीनी चीजें और लकड़ीआदि चीजों के बीचमेंभी
छोटे जन्तु होजातेहैं तथा सीते खटमधुरे आदि रसों में भी जीव पड़िजाते हैं • इन
जीवों का प्राण विनाश के घीघाटिजाना उतना कि जितने से मनकी शुद्धि प्राप्त

होसके यही प्रायश्चित्त है । हाड़वालों के घातमे कुछ दान करना चाहिये दिन हाड़वालों के घातमे प्राणायाम=अर्थात्—फल फूल आदिसे उपराल जो प्रत्यक्ष कुछ वड़े जीव होतेहैं जिनका नाम कहीं नहीं लिखा क्योंकि संसार में अनन्त जीव हैं सबके जुड़ेना कदाँ तक लिखे जायँ तिनके मध्ये सामान्य रीतिसे एकही दो प्रायश्चित्त दर्शाते हैं कि—यदि हाड़वाला कोई एक जीव केकलागंगा आदि विनाश किया हो तो प्रत्येक जीवके मध्ये कुछ कुछ अन्न वा नगदी आदि दानकरे—यहां विन हाड़वाला कोई छोटा जीव भी और तैर्या आदि विनाश किया हो तो प्रत्येक जीवके मध्ये एक प्राणायाम जैसा संख्याके उपासनमें होता है सोकरे तिससे शुद्धि हो जाती है ॥ २७५ ॥

२७५ अधिकोक्ति=घृताशनैः मितासरा—पूर्वार्ध में जहां घीका चारना कहा तिसके मध्ये मितासरा में यह व्यवस्था है कि निपट घीखाय के एकदिन उपवास करे क्योंकि प्रायश्चित्तोंका रूप है तपस्या सो किंचित घी चारने से नहीं मानो जा सकती है । यही बात अगिराके अग्रोक्त वचनसे पाई जाती है—यथा हांगिराः=प्रायोजना तपः प्रोक्तं चित्तनिश्चय उच्यते तपोनिश्चयस्युक्तं प्रायश्चित्तं तदुच्यते=अर्थात्—प्रायस्—चित्तइन दो शब्दोंका अर्थ है कि प्रायस् तप कहाता है चित्त निश्चयका नाम है सो तप और निश्चय मिलिकर प्रायश्चित्तनाम धराया है—तिससे किंचित घी चारना ठीक नहीं यह मितासराकाराने कहा—और मलश्लीक में साफ साफ यही कहा है कि (घृताशनैः किंचित) और (देय किंचित) अर्थात् किंचित शब्दकी योजना पूर्वार्ध उत्तरार्ध दोनों अङ्गमें प्रत्यक्ष है तो इसविधि से दोनों तरहसे व्यवस्था समझलेनी कि जहाँ थोड़े से फल फूल आदिके जीव मरें तहाँ किंचित ही घी चारने में शुद्धि होजायगी परन्तु जहाँ कुछ अधिक जीव मरेहों तहाँ निपट घी खायके उपवास करना भी उचित है । वही किंचित देयके साथ है कि हाड़वाला कोई एकही जीव मरजाने में किंचित देना चाहिये तहाँ किंचित कुछ का अर्थ तो प्रधान है कि कुछ दान करना चाहिये चाहे अन्न वा नगदी आदि जो कुछ बनपरें फिर उसी किंचितका दूसरा अर्थ आठ मुट्ठी भी कहाता है जैसा (अष्टमुष्टिभवेत् किंचित) यह २७४ की अधिकोक्तिमें भी आचुका है कि आठ मुट्ठी भरनाज किंचित कहाता है जो केवल पाउ भरके अनुमान होसक्ता है—इसपर मितासराकार कहते हैं कि जो घान्य आदि कोई नाज दानकरे तो एक जीवकी हत्यापर यही आठ मुट्ठी भर देना चाहिये जो नगदी दानकरे तो उसी किंचित की अभिप्राय से तांत्रिका एक परा एक जीवकी हत्यापर देना चाहिये—क्योंकि (अस्थिमतां वधेपरादेय इति सुमंतुः) सुमन्तुने

से सांपकी जुदीजाति है शायद इसीको दुसुही कहते हों-इनमें किसी एकही की हत्याकरै सो ब्राह्मणोंको भोजन करावै और पूर्वोक्त रातिका बनाहुआ लोहेकादंड दक्षिणादेवै ॥ पराशर कहितेहैं कि-मेही-कजुवा-गोह-खरहा-शल्यकी-इनकी हत्यामें बैरान और गुंजा गोंधुचीके पत्ते आदि खाइकी व्रतकरै सो एकदिन राति भर में शुद्ध होताहै ॥ पराशरकहितेहैं कि-मृग हरिण-रोही वनजीव जो लक्षपर चाँद जानेवाले वानर वियखपरा आदि होतेहों-वराह-भेड़-वकरा-भेड़हा-शुगाल-रीछ-तरसु तेंदुआ तरख-इनमें किसीकी हत्याकरै सो एक प्रस्य परिमान तिलोंका दान करै और पूर्वोक्त रातिसे वायुको पीकर तीलस्नितकव्रतकरै ॥ पराशरकहितेहैं कि-हाथी-मेढ्रा-घोड़ा-ऊँट-गवय नोलगाय रोभ इनमें किसीकी हत्याकरै सो एकदिन रातिका उपवास और तीनो संख्या के समय तीर्थ स्नान प्राप्तायास करै ॥ पराशर कहितेहैं कि-गदहा-वन्दर-सिंह-चीता-वाघ-इनमें किसीकी हत्याकरै सो तीनदिन राति वायु को पीके निराहार उपवास करै और इन सभी पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों के पीछेसे यथाशक्ति सख्यासे ब्राह्मणोंको भोजनकरावै यह विशेष नियम सर्ववसवके साथ समुभिलेना=और=यह भी यादराखना कि जिन जीवोंकेनास इस व्यवस्था में न लिखेहों और लोकमें नास जिनका प्रसिद्ध होय तो उन जीवों की हत्यापर इस व्यवस्थासे बेही प्रायश्चित्त हुँदिलेना कि जो जो उन जीवोंके तुल्य होल डोलवालों के नामसे इसमें लिखेहों वनजीवों के साथ वनजीवोंकी उपमा और जल जीवोंकी पक्षियों के साथ पक्षियों के डोलडोल या उनके आचरण आदि एक से मिलाकर कासचलाना यह न्यायका स्वरूप है=इसीप्रकार=औरभी विशेष स्मृतियोंके बचन कहीं देखि परैं तिनको भी न्युनाधिक विषय भेदसे कल्पना करिके समुभिलेना और परस्पर वचनों का विरोध बचाते रहिना २७५ ॥ यह व्यवस्थाभी इसी दोसौ पचहत्तर अधिकांश का शेष है २७५ ॥

इतिनरेतरसर्वप्राणिहिंसाप्रकरणं ॥

इस प्रकरणमें एकही यह चीवनका परिच्छेद है दूसरा नहीं ॥

सब जीवोंकी हिंसा वर्णन होचुकी अब अगिले परिच्छेद में इसी हिंसाके प्रसंग से वनवृक्ष आदि काटने तोड़ने उखाड़ने के प्रायश्चित्त वर्णन होंगे क्योंकि यह भी एक जड़ स्थावरोंकी दुखदेना या बिनाश करदेना जड़जीवोंकी हिंसाहै और इसका उद्देश भी २४० दोसौचाविस मूलश्लोक से उपातकों में आचुकाहै उसकी संबंधी

और जखरी अन्यबातोंको भी खींचके यहां दशविंशे कि जिनका चर्चा वहांपर न होसकाहो सो सब आगे देखो ॥

अथ वृक्षगुल्मलतादिसर्ववनस्पतिच्छेदनोपपातकप्राय

श्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः पंचपंचाशत्तमः (५५) ॥

इसपरिच्छेद में सबतरहकी वनस्पति वृथा काटने या तोड़ने वा उखाड़िडारने आदि किसी प्रकारसे बिनाश कर देने मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे चाहैं वइ वृक्ष हों या गुल्म लता वीरुध आदि कोहो औषधियों पर्यंत कोईसी वनस्पति होय ॥

(वृथादिच्छेदनप्रायश्चित्त)

वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने जप्यमृकशतम् । स्यादोपधि वृथाच्छेदे स्त्रीराज्ञीगोऽनुगोविनम् २७६ ॥

अर्थः—वृक्ष-गुल्म-लता-वीरुध इनको काटने में ऋचाओं का शतक जपना होय तथा औषधिके वृथा काटनेमें एकदिन गौशोंके पीछे फिरके दूध पीवै=अर्थात्—फल देनेवाले, आंव कटहरआदिके पेड़ और गुल्म जो वनबागोंमें भाड़ी हुआकरतीहैं लता जो हरतरहकी वेलिफल देनेवाली प्रसिद्ध होय एवं वीरुध जो वन में बड़ी मोटी वेलि अधिक फैलती हों इत्यादि और भी इसी नमनेपर संसृजितता-इनमें से कुछ प्रयोजन बिना अर्थात् यज्ञादि जखरी कामों के बिना जो कोई कुछ काटे या तोड़े वा उखाड़े तिसको गायत्रीआदि पवित्र ऋचाओंका एक सैकरा जपना चाहिये=तथैव=जो वन की या वस्ती के समीप उत्पन्न होनेवाली हरतरह की औषधियों में किसी पेड़की रोगादि प्रयोजन के बिना उखाड़ारै या तोड़े तिसको यह प्रायश्चित्त है कि प्रातःकाल से सांभतक गौशोंकी नरिहाई के पीछे पीछे उनकी उचित सेवाकरता फिरै पुन रात्रि में योद्धासा कचादूध पीके बतराखै तब शुद्ध होय ॥ २७६ ॥

२७६ अधिकोक्ति—यज्ञादि कामों के बिना-इस कथन का यह तात्पर्य है कि रोजके जखरी पचयशोंके निमित्त फलफल आदि या सूखी लकड़ी तोड़ने का दोष नहीं है—और दूसरा यह तात्पर्य है कि तोड़ने काटने का दोष जो कहा गया सो भी केवल उन वृक्षादिकोंकी अपेक्षापर आरुह है जो अपने फल फूल पत्र छालि रोह आदिसे ससारका उपकार करतेहो—इसकेमध्ये यह वचन भी प्रमाराहै कि=फलदा नांतु वृक्षाणां छेदने जप्यमृकशतमवल्लीलतानांतु पुष्पितानां च वीरुधाश्च=अर्थात्—

साफ यही कहा है कि हाइवाले जीवोंकी एक इत्यापरसक्त=इसपरा शब्दको यद्यपि कई अर्थ होते हैं कि सोने की अशरफी या चाँदी का रूपया या ताँबेका पैसा जो जिस राजके व्यवहार में चलता हो (क्योंकि परा और नाराक ये दो नाम सिक्के सरकारीके हैं) परन्तु यहाँ छोटे प्रायश्चित्तपर ताँबेकापरा समझना उचित है और पैसा यद्यपि सोरहसासेका होता है तिसको भी ताँबेकापरा समझते हैं तथापि शास्त्र की सूर्यादौसे रूपयेकी शीरहकला अर्थात् आनेपरा समझने क्योंकि ताँबेके पराओंमें एक आनाही। प्रधान है—किन्तु इसप्रायश्चित्तमें जो कुछ उचित जानो सो मानो तहां यदि आठ मुट्ठी नाज के विकल्प को सोचें तबतौ उसके जबाब में केवल ताँबे का पैसा समझि परता है अन्यथा जो शास्त्रके व्यवहारपर ध्यान दिया जाय तौ फिर ताँबेका परा ठीक ठीक एक आना ठहिरता है—परन्तु इन बातोंकी अपेक्षा जैसा योगीश्वरने मूलश्लोकमें कहा तैसा उद्योक्ता त्यों यही किञ्चिदर्थ ठीकया कि जो कुछ इच्छा में समाज सो योऽा बहुत दान करे—तिसके ऊपर धान्य और हिरण्य नाम धरिके फिर ऐसे छोटे अर्थ दण्डियेगये इस व्याख्याको जल्दतर कुछ नहीं थी कि (अस्थि मत्ता कृकला पादि प्राणिनां प्रत्येक वचे किंचित् स्वल्पं धान्य हिरराया दिकं देयं तत्र किंचिदिति यथा हिररायं वीयते तदा परामात्रं अस्थिमत्तावधेपरादेय इति स्मृतस्मरणात् यदातु धान्यं देयं तदाऽस्य मुष्टिदेयं अयमुष्टिभवेत्किंचिदिति स्मरणादिति मिताक्षरा) अर्थ इसके खज ऊपर लिखि चुके ॥ २७५ ॥ अब नीचे वह व्यवस्था लिखी जायगी कि जब किसी जीव ने किसी तरह का अपराध किया अर्थात् खेत खाया जाना आदि नुकसान या ऊपरसे इगिदेना आदि किसीतरह का दुखदिया हो ऐसेही नाजा भाँतिके उपद्रव झुकाते हैं जो किसी जीवने कुछ कोई सा उपद्रव किया तिसके पलटे क्रोध में आकर जिस किसीने उन जीव को मार डारा हो तिस के लिये भी अति छोटे प्रायश्चित्त हैं सो नीचे देखना ॥

(अथ अपराधकृतप्रतिकारे सर्वजंतुवधप्रायश्चित्तं) ॥

अत्राह पराशर—इंसलारस्यकाहुकौचक्रकुस्थातकः मयूरमेयोऽह्वाचसकभक्तो न शुद्ध्यति मुद्गद्विर्दिष्टं चेन्न शुक्रं परावर्ततया । आडिकांचकह्वाशुदेवैर्नक्तभोजनात् चायकाककपीताणां कारितित्तरघातकः अन्तर्जले उभे संध्ये प्रात्ताप्यामेन शुद्धतिष्ठ प्रयेन विहंगानां मूलकस्य च वातकः अपक्वाशीदिनं तिष्ठेत्तद्वैकालौ मारुताशक्तः इत्वाभुय कमाजोरसर्पाजगरहुंहुभाव । प्रत्येकं भोजयेद्विप्रासलोऽष्टाचदक्षिणां सेवाकचहपरी

घानां शशशल्यकघातकः रंताकफल गुंजासी अहोरात्रेण शुद्धतिमृशरो हिवराहासा
 सबिकावस्तघातनेत्यजबकश्चक्षराणां त्रसूरां च घातकः तिलप्रस्थत्वं सौ दद्याद्वा युभसो
 दिनत्रयसमाजमेयतुरगोयुगवयानां निपातने प्रायश्चित्तमहोरात्रिसंख्यचावगाहनम् ख
 रवानरसिंघानां चित्रकच्याघघातकः शुद्धिमेति विरात्रेणावाह्यगानाचभोजनै रिति=
 अर्थात्—पराशर कहितेहै कि—इस•बलक•सारस•चकवा•क्रौंच अर्थात्सारससे जुदा
 एककरर वा कुररीपक्षी प्रसिद्धहै औरकहीं•कहीं•लोंकमे ठोंक या कोंचवक आदिजो
 पक्षी हैं तिनको कोंचकहिंते हैं ये सब लम्बी गर्दनिकेहोतेहैं। मुरगा•मोर•मेढा• इन
 की हत्याकरिके एकहीवार भोजनके नियमसे शुद्ध होजाता है ॥ मुड़गपक्षी जो देश
 भेवी नामोंसे मोगा मोगदर मूसर कहाताहै•टिट्टिभ टिट्टिहरी•मुवा• पारावत कबू-
 तर आदि• आंडिका अनेकजीव जो धरतीपर बड़ा धरतेहों• वगला•इनको मारिके
 रात्रिमें भोजन करनेका नियम राखने से शुद्धहोताहै (इनदोनों प्रायश्चित्तके साथ
 २७४ की अधिकोक्तिवाली व्यवस्थाके अनुसार छोटे बड़े कच्छोकोदिन भी जोड़ि
 लेना कि वहाँपर जिसजीकी हत्यामे जितनेदिन कच्छ करना समुक्तिपर उतने दिन
 तक यह रात्रिमें भोजन वा एकवार भोजनका नियम समझिलेना सोभी उसदशामें
 कि यदि अपराध के प्रतिकारमें पाप वर्जिगया हो अन्यथा ज्ञानि•वृत्ति हत्या क-
 रने में उसी अधिकोक्ति के अनुसार उतनेदिन कच्छही करना चाहिये• इसीप्रकार
 यहांके अगिले प्रायश्चित्तोंपर युक्ति सोचिलेना (पराशर कहितेहै कि•चाय पक्षी
 जो सारमें नीलकंठ इसनामसे प्रसिद्धहै अतिसुन्दर और सोनेकेवर्ण सरीखी पीली
 चोंचवाला•कौआ•पिंडक पिंडखुरी• मैना• तीतर• इनको मारनेवाला सांभ सवेरे
 दोनों संध्याके ठीक ठीक समयपर जलमें खड़ाहोके प्राणायाम करिके शुद्धहोताहै
 इसमें भी ऊपरली युक्तिको यथा योग्य सोचिलेना ॥ पराशर कहितेहै कि•गिद्ध•
 बाज आदिपक्षी जोजो बहुतऊँचे आकाशमें उड़तेहै•उलूक उल्लू घुग्घू•इनकीहत्या
 करिके एकदिन इस तरह उपवास करै कि आँचकीपकी वस्तु कुछ न खाय केवल
 कच्चेफल खायके रहे फिर दूसरे दिन सवेरे सांभ दोनों समय कुछ भी न खाय के-
 वल वायु हवा पोके रहे इसकी यह रीतिहै कि जहां वन बाग सड़क आदिमें बहुत
 उत्तम फलफल आदिकी सुगन्ध वायु बह्तिही तहां उसके समुख एक योजन अ-
 र्थात् चारकौसतक हवाको मुखनाक आदि छिद्रोंमें लेता चला जाय तब शुद्धहोय
 यह योजनभर चलाजाना २७० की अधिकोक्ति मे मनुके वचनसे लिखिचुके तहां
 देखो॥ पराशर कहिते है कि•मूसा•विल्ली•सांप•अजगरडुंडुभ डोडा सांप इसनाम

किसी तरह का गुण उपकार स्वपी फल देने वाले वृक्षों के काटने में और इसी प्रकार के फल देने वाले शुद्ध वल्ली लताओं के काटने में तथा पुष्पित वीरुधों के अर्थात् जिनमें कोई अन्य प्रकार से फल नहीं देख परता हो तथापि जो वीरुध भूमिही वेलि आदि केवल फूलों से लदे हुये दिखनौट वनकी शोभा को बढ़ाते हैं। तिनके भी काटने में प्रायश्चित्त चाहिये=इसके सिवाय जो बातें प्रयोजनकी संसार में प्रसिद्ध हैं इत्यान्त जैसे खेत खोदना या हलसे जोतना आदि ऐसे प्रसिद्ध प्रयोजनों में औषधीका वृक्ष कटिजाना आदि दोषमें गिनती नहीं है क्योंकि हल खींचने आदिसे जो कुछ दोष उत्पन्न होता है तिसका प्रायश्चित्त वही है जो खलयज्ञ कहाता है अर्थात् नाजकी राशि तैयार होने तक अनेक तरहसे किसान लोग अन्नादिवस्तुओंका दान पुण्य जो कुछ उनकेलिये शास्त्रमें लिखा है सो करते रहते हैं उसीसे दोष दूर होजाता है—सब गऊआदि पशुओंका पालनकरनेके निमित्त जो घासआदि काटी जाती है उसमें भी प्रयोजनके हेतुसे कुछ दोष नहीं है क्योंकि पशुओं का पालन कर्म भी पंचयज्ञोंका संक अंगभेद है—और भी वशिष्ठजीका जो वचन है सो इसी प्रयोजनपर नियेध और प्रति प्रसवके साथही कहा गया है—यथाह वशिष्ठः=फलपुष्पोपभोग्यान् पादपात्रहंस्यात् कर्षणाकरणार्थंचोपहंस्यादिति=अर्थात्—फल फूल आदि किसी प्रकारसे भोगने योग्य वृक्षों को न काटे यह नियेध किया। परन्तु जोतने के हेतु से धरती साफ करनेके लिये काटे भी यह नियेध कियेहुये का प्रतिप्रसव कहा ॥ ० ॥ परन्तु जहां कहीं स्थान विशेष के हेतुसे काटने पर अधिक दण्ड कहा गया हो तहां उनके काटने में प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्तसे अधिक लगाया जाता है=यथोक्त=चैत्य श्मशानसीमासु पुण्यस्थानेसुरालये जातदुमाणां द्विगुराो दमोवृक्षे तु विभुते=अर्थात्—चैत्य जी ऊँचे वृक्ष अस्तल (स्थल) आदि पर पुराने खड़े होते हैं या मुर्दा फुंफुनेकी धरती श्मशान पर होते हैं या सीमाके चिह्न मानेजाते हैं या राह घाट पथिकोंके विश्राम योग्य होते हैं या जिनसे ग्रामोंका दूरी अन्तर कोस योजन आदि जाना जाता है या जिनके नीचे जंगल में पशुओंको छाया मिला करती है या जिन बड़े वृक्षों के विशेषणसे किसी ग्राम नगर मुहल्ला देवस्थान खेत कूप आदिका नामही बिख्यात या कोई अति प्राचीन वृक्ष किसी कोरे मैदानमें केवल अपने नामसे बिख्यात होय जिसके होनेसे पुराने कालका प्राचीन चिह्न माना जाता हो या देवालय आदि पुण्य स्थानमें कोई वृक्ष नवीनही अपने आप पैदा हुआ या लगाया गया हो इत्यादि वृक्षों के काटने में दूना दण्ड होता है कि जितना साधारण वृक्षों के काटने पर लिखा हो

तिससे-तौ इस दण्डके अनुसार प्रायश्चित्त भी दूना करवाया जाय जितना लिखि चुकेहें तिससे ॥ ० ॥ एकसौ ऋचाका जप करना जो कहागया सो केवल पढ़े लिखे विजातियों का विषय है तिससे स्त्री और शूद्र आदि के लिये जपके स्थान पर दंड के अनुसार दो रात्र आदि व्रतही आदेश किया जाय ॥ ० ॥ दोसौ पैसेदि २६५ मूल श्लोक और उसी की अधिकोक्तिसे चवालिस ४४ परिच्छेदमे जो जो प्रायश्चित्तों के स्वरूप सब सामान्य उपपातकोंपर अतिदेश उतारे गएथे और इस परिच्छेद की व्यवस्था भी उपपातकों में गिनती होचुकी है तिससे उन प्रायश्चित्तों का अतिदेश भी इसपर जोड़ि लेना चाहिये० और यद्यपि वे प्रायश्चित्त बहुत बड़ेहें तथापि यहां सेसे विख्यात पंडों के कारणे मध्यो दूने किये बिनाही आरुढ़ होसक्त हैं० अन्यथा इन ठुकों से उपरालू सामान्य ठुकों की वारम्बार कान्ते के अभ्यास पर भी आरुढ़ होसक्त हैं ॥ २७६ ॥

पुंश्चली स्त्रियां और वानर आदि बहुवा दांत वाले जीवों का मारना जो ऊपर चर्चा किया गया तिसके साथ यहभी सभव है कि जिसकी मारनेपर उताह कीई होताहै तौ वह भी क्रोधमें आकर प्रायः काटि खाताहै इसी प्रसंग से यह बातें यहां पर आकर्षण करी गई है कि यदि कीई सेसे जीवों से काटि खाया जाय तिसकी प्रायश्चित्त करना चाहिये फिर चाहें तैसी दशार्में काटा गयाहो कुछ मारनेके स. मय परही यह नियम आरुढ़ नहींहै किन्तु काटिखाने से अशुद्धि जो उत्पन्न होती है तिसका प्रायश्चित्त अगले परिच्छेद मे देखना ॥

अथपुश्चलीवानरखरादिदंष्ट्रिजीवैर्दंष्ट्रपुरुषस्यप्राय

श्चित्तप्रकाशकोऽयपरिच्छेदः षट्पचाशत्तमः ५६

—२—

इस परिच्छेद मे उस पुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो किसी मलीन पशु पक्षी आदि जीव या मनुष्यही से काटिखाया जाय तिसकी अशुद्धि प्रायश्चित्त करने के बिना नहीं मितती है ॥
(खरवानरकाकादिदंष्ट्रस्य प्रायश्चित्त)

पुंश्चलीवानरखरैर्दंष्ट्रचोष्ट्रादिवायसे । प्राण्यायामंजलेकृत्वाधृतप्राशयविशुद्ध्यति २७७
अथ—पुंश्चली अति व्याभिचारिणी नारी या वदर या गदहा या ऊँट आदि

मलीन पशु या कौआ आदि मलीन पक्षी यदि मारने आदि किसी दशा में जिसको काटिखायें सो इनसे दूध काटा हुआ जलमें खड़ा होकर प्राणायाम करिके और पीछेसे घी चारिके शुद्ध होजाता है ॥ २७७ ॥

२७७ अधिकोक्तिः—मूल में जो आदि शब्द आया तिससे और भी कृत्ता जवूक आदि कटखन्ने मलीन जीवोंको समझिलेना जो इन भांतिके होतेहैं=यथाहमनु=च्युगालखरैदंष्ट्राग्रस्थैः कन्ध्याद्भिरैव च नराच्योष्ट्वराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति=अर्थात्—कृत्ता• गोदह• खर• इनसे काटा हुआ या जो ग्राम के रहैया बिल्ली आदि नांस खानेवालों से काटाजाय या आदिमौ काटि खाय या घोड़ा ऊँट सूअर इनसे काटा हुआ द्विजाती पुंस्य प्राणायाम करिके शुद्ध होजाताहै=यह धोका चारना जो कहि चुके सो केवल भोजन के अभिप्राय पर समझना कि शिर्षं घी चारिके व्रत करें क्यों कि प्रायश्चित्त तपका रूप होतेहैं और तप उसीका नामहै जिससे देह को कुछ ताप संताप पहुँचै=और यह एकही प्राणायाम जो कहि चुके सो वीभार आदि असमर्थ के निमित्त में समझना क्योंकि सुमन्तुने स्नान विधि और तीन प्राणायाम कहे हैं=यदाह सुमन्तुः=च्युगालमृगमहिषाजाविक खरकरभनकुलमाजरी मूयिकाथप वककाकपुरुषदखानामापीदियायादिस्नानं प्राणायामव्रतंचेति=अर्थात्—कृत्ता• गोदह• वनमृग• भैंसा• वकरा• मेढा• गदहा• हाथी• नेउरा• बिल्ली• मूसाघूसि• अपकक जो बगुलाकी मूरतिके अनेक छोटी बक से होतेहैं• कौआ• मनुष्य• इनसे काटे हुमे पुंस्योंको आपोहिषा आदि ऋचाओंमें अभियेक स्नान और तीन प्राणायाम करने चाहिये=यहां तक जो प्रायश्चित्त कहा सो केवल तोंदीसे नीचे किसी अगमें थोड़ा सा काटा जाय• अन्यथा किसी ऊपरले अंगमें काटे या तोंदीसे नीचे भी कुछ अच्छी तरह काटे तिनको प्रायश्चित्त कुछ बड़े हैं सो आगे अगिरा के वचन से देखो ॥ ० ॥ यदाहंगिराः=ब्रह्मचारीशुनादष्टस्थद्विसाधंपितृपथः गृहस्थप्रचेतद्विराचतुराकाहं योऽनिहोत्रवाद् नाभेस्त्वर्तुदष्टस्यतदेवद्विगुणभावेत् स्यादेतन्नृणां ब्रह्मेस्तद्धे चचतुर्गुणम्=अर्थात्—यदि ब्रह्मचारी कृत्ता आदि किसीसे काटा जाय सो तीन दिन ज्ञान प्राणायाम सहित ऐसा व्रत करें कि सांभको दूध पीकरहैं और जो गृहस्थ काटा जाय तो वह दोही दिन का व्रत करें और जो गृहस्थों में अग्नि होवी पुंस्य काटा जाय सो एकही दिन दूध पीने का व्रत करें परन्तु यह तीनों का नियम केवल उसी दशा में समझना जो नाभि से नीचे काटि खाया हो—किन्तु—नाभि से ऊपर काटि खाने में येही सब तीनों को अपने अपने व्रत दुगुने करने चाहिये और

जो मुखमें काटिखायाहो तो वेही व्रत तिथिने करने चाहिये और जो माथेपर काटा गया हो तो वेही व्रत चौथने करे तब शुद्धहोय ॥ ये प्रायश्चित्त ब्राह्मण के निमित्त परंपरकहेगयेहैं इनमें से सखीको पीन और वैश्यको आधाप्रायश्चित्त देनाचाहिये और शूद्र को यदि कृते आदि कोई जीव काटे तब उसके लिये दृढ संगिरा मुनि का कहा विधान बतलाया जाय=यदाह दृढसंगिराः=शूद्राणां चोपवासिनश्च द्विदोने नवापुनः गांवाद्यादयश्चैकं ब्राह्मणाय विप्रश्च द्वये=अर्थात्-शूद्रों की शुद्धि केवल उपवास या दान करने मात्र से होती है परन्तु जो उत्तम अर्जों में काटा हो तो एक गाय या बैल का दान करे ॥ ० ॥ इनसे उपराल जो एक सौ प्राणायाम का प्रायश्चित्त है सो उस दशा पर समझना कि मुख नस्तक आदि उत्तम छ्वां पर काटने से स्नान आदि मल ओठों से छुड़ाया हो=यदाह वशिष्ठः=ब्राह्मणास्तु शुनादयो नदीनां गवांसु द्वागान् प्राणायामशतकृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति=अर्थात्-ब्राह्मण यदि उत्तम अंग में कृत्ता आदि से काटा जाय सो समुद्र में निली हुई किसी दीर्घ नदी में जाकर स्नान करे तहां जलमें प्राणायामों का सेकरा पूरा करिके पुनि घी चाटिके विशुद्ध होता है ॥ ० ॥ अथ स्त्रीणां विशेषः-स्त्रियां यदि कृत्ता आदि से काटी जाय तिनके लिये जुदे प्रायश्चित्त है=तदाह पराशरः=ब्राह्मणो तु शुनादया जम्बूकेन दृके वा उचितं ग्रह नक्षत्रदृष्ट्वा सशुचिर्भवेत्=अर्थात्-ब्राह्मणी जो कृत्ता या चूगाल भेड़हा आदि किसी से काटी जाय सो काटने के बादि आनेवाली रात्रिमें ग्रह नक्षत्रों को उदय हुये देखि के तत्काल शुद्ध होजाती है किन्तु उदय होने तक उपवास रखे=और=जो किसी प्रकार के व्रत आदि नियमों की साधनामें लागिरही हो तिसके लिये औरभी विशेषता उन्हीं नेकही है=तदप्याह पराशरः=चिरात्रमेवोपवसेच्छुनादयस्तु सव्रतासघृतं यावत्कंभुं कृत्ता व्रत शेषं समापयेत्=अर्थात् जो व्रतों में लगीहुई कोई नारी कृत्ता आदि से काटीजाय सो बीचमें उसव्रतादिक नियमकी यांभिकर तीर्निदिनधीके साथ अलोना जीका बलिया खायके उपवासकरे तिसपीछे अपनेबाकी नियमको समाप्त करे=सवं=रजस्वला स्त्रियों के निमित्तमें पुलस्त्यगुनिने विशेषनियम कहा है=यथाह पुलस्त्यः=रजस्वला यदा दद्या शुनाजम्बूकरासभैः पचरात्रनिराहारा पचगव्येन शुध्यति ऊर्ध्वं न्तु द्विगुणां नाभेर्धक्रेतु विगुणां तया चतुर्गुणां स्मृतं मर्हन् दष्टेऽन्यथाप्लुतं भवेत्=अर्थात्-रजस्वला यदि कृत्ता गोदड़ गवहा आदि से काटीजाय तो वह काटनेके दिनसे लेकर पांच रात्रि तक निराहार व्रत करती और पचगव्यको लेतीहुई रहिकर शुद्ध होती है-परन्तु जो नाभि से ऊपरले अंग में काटीजाय सो इससे दूना दश दिनका व्रतकरे और मुहमें जो

काटी जाय सो तिहुना किन्तु पखवारा भर व्रत करै और मूढ़ पर काटी जाय सो चौथुना बीस दिन का व्रत करै तब शुद्ध होय • रजस्रलासे अन्यथा कोई साधारण स्त्री जो काटीजाय सो केवल स्नानसे भी शुद्ध होसक्ती है (रजस्रला स्त्रियों के नियम बहुतबड़े हैं तिनको वैद्यक शास्त्र भावप्रकाश आदि बड़े ग्रन्थोंमें देखौ उन्हों नियमों के हेतुसे यहाँ भी उसके लिये बड़े प्रायश्चित्त कहे गये हैं कि ऐसे प्रायश्चित्तों से शरीरको शुद्धि उसकी न करी जाय तौ फिर कुत्ते और चराडाल आदि के स्तभाव लक्षणा वाली सन्तान पैदा होगी ॥

पुरुषेष्वपि विशेषः—जहाँ कृत्ता आदि ने निषट काटा तौ न होय पर केवल शरीरको सूंघा या चारिलिया हो तिसकेमध्ये शातातपने छोटा प्रायश्चित्त कहा है = यथाह शातातपः=शुनाघातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्यच अत्रिःप्रसालनंशौचमग्निनाचोपचलनम्=अर्थात्—कृत्ताबिल्लीआदिने देहकोसूंघा या चाराहो या नख पंजों से खरोचिदिया हो तिसकोलिये जलसे धोयडारना और पीछेसे आंचमें सेंकिडारना यही शौच रूपी प्रायश्चित्त है ॥ • ॥ जहाँ कहीं कृत्ता आदि को काटने नघोटने से ब्रण घाव होजाय अथवा इधियार आदि और ही किसी चोटसे घाव होके पकि जाय तिसमें राख पड़जाने से कीड़े भी परें तिसके वावत मनु ने प्रायश्चित्त विशेष कहा है = यथाह मनुः—ब्राह्मणस्यब्रणद्वारे पूयशोषातसम्भवे कृमिरुत्पद्यतेयस्य प्रायश्चित्तकथम्भवेत् रावामूत्रपुरीयात्रिसन्ध्यस्नानमाचरेत् विरावंपंचगव्याशीत्वधोना श्याद्विशुद्धाति नाभिकर्षात्तरोद्भूते व्रणोचोत्पद्यतेकृमिः यद्वात्रंतुयहंपंचगव्याग्रन मितिरुत्पद्यते=अर्थात्—जिस ब्राह्मणको घावके द्वारा रक्त राव पीव होजाने में कीरी पैदा हैंतौ तिसका प्रायश्चित्त कैसे होय (घावपूरि जाने के बाद) गोमंत्रों को मंत्र और गोबर से तीन दिन तक त्रिकाल स्नान किया करै और पंचगव्य मिलाइ के पिया करै तौ उस दशा में शुद्धि होजायगी कि जिसके नाभि से निचले अंगों में राख कीड़े परे हैं • अन्यथा जिसके तोंदी से गले तक बीचके बड़ में कहीं परेहो तौ कृमिके परने वावत छः दिन और बिना कृमि के राख हो जाने वावत तीनही दिन पंचगव्यका पीना आदि सब करै=इस व्यवस्थाने इतना भेद विशेष है कि जिसके कृत्ता आदि किसीके काटनेसे घाव होकर कृमिपड़े हैं सोतौ काटने माषके निमित्त का प्रायश्चित्तपहिले करिके तिसपीछेराख और कृमिके मध्येअत्रोक्तप्रायश्चित्त को भी करै • परजिसके केवल चोटआदिकछहधियारसे घावहोकरपीव याकृमिपरे हैं सो केवल अत्रोक्त प्रायश्चित्त करै जो तीन दिन पंचगव्य पीना आदि कहा ॥ • ॥

ये प्रायश्चित्त भी ब्राह्मणोंके चिन्तितपर कहेगये तिससे ब्राह्मणको पूरंपूर और क्षत्री
को पीना और वैश्यको आधा और शूद्रको चौथाई भागदेना चाहिये यही इसमें न्याय
का स्वरूप है—इतित्यादिदृश्यप्रायश्चित्तानि ॥ इस परिच्छेद में कृत्ता कौआ वानर
गदहा आदिसे केवल काटि खाने या चोंच पखासे न घोंटिजाने का प्रसंग है—अन्यथा
ब्राह्मण आदि तीन वर्गोंकी नैतिक शरीर शुद्धिके प्रायश्चित्त चौथे परिच्छेद में
सर्वसामान्य वर्गान् होचुके तही तीसरे मूलप्रलोक और उसीकी अधिकोक्तिमें अच्छी
तरह देखो कि सब तरहकी अशुद्ध वा मलीन चीजों के छुड़जाने तथा रजस्वला नारी
और चंडाल आदि अधम मनुष्योंको छुड़जाने तथा कौआ चीतह गोध चिमगादर
आदि और कृत्ता बिल्ली गर्दभ ऊँट सुअर आदि अशुचि जीवों के छुड़जाने मात्र के
छोटे छोटे प्रायश्चित्त हैं जिनसे नित्यप्रति शरीर शुद्धि बनी रहि सकती है ॥ २७७ ॥

इतिश्रवादिदृश्यस्य प्रायश्चित्तानि ॥

इतिस्थावरहिंसरि प्रकरणा ॥

(इस प्रकरणा में पचपन ५५ और छग्यन ५६ के दोड़ी परिच्छेद हैं)

ऊपरले परिच्छेदमें काटिखानेका चर्चाया जिससे शरीर की एक धातु अर्थात्
(त्वचा) खाल कटिजाती है और उसीसे दूसरी धातु रक्त और तीसरी धातु मांस
और चौथी धातु मेदा और पाँचवीं धातु इाह और छठी धातु मज्जातक बिरलेधाव
से कटिजाती या गलिके राधि होजाती है सभी कीइ परते हैं यह सब उसीके ध्व-
न्यर्थ में वर्णन होगया अर्थात् जो राधि और कीरा परनेके प्रायश्चित्त कहेगये सो
सब इनहीं धातोंकी हानिपर समझने—तहाँ एक सबसे अन्त का मातयां धातु शुक्र
वीर्य है तिसकी हानिका प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में जाकर सब से जुवा कहा
जायगा क्योंकि उसकी हानि भीजुदे प्रकारोंसे होती है कृत्ता काटने आदिके द्वारा
नहीं होती ॥

जपिडाँरै अशुचि देखने में सावित्रीजप और चपलतासे झूठ बोलि के भी—अर्थात्—
 किसी अपवित्र चीज वा ठिकानेका दर्शन अचानक होजाय तो अपने स्थानपर आ-
 कर आसन विद्याने आदि विधिके साथ बैठकर सविता देवता सूर्यनारायण की
 स्तुति (तत्सवितुर्वरेण्यं) सकमालाजप तथा इसी गायत्रीकी वह पुरुष जप जिसने
 हासी वट्टा आदि की चपलता में झूठ बहुत बोला हो (इसका यह तात्पर्य है कि
 हासी आदिके बिना अकस्मात् झूठ जिसने बोलाहो तिसकी इससे बड़ा प्रायश्चित्त
 चाहिये और जिसने किसी मामिलेपर असत्य बोलाहो तिसके बहुत बड़े प्रायश्चित्त
 हैं दुरापानवाले प्रकारगा में कहिचुके और बढ़ापनका रूपदेखी २६ के श्लोक वा
 उसीकी अधिकोक्ति में ॥ २७६ ॥ .

२७६ अधिकोक्तिः—यद्दृश्यवस्था जो कहीगई सो ऐसी दशापर समझनी कि
 जहाँ जलमें छाया और अशुचिस्थान वा वस्तु देखने या हासी आदिमें झूठ बोलने
 का बचाव होसके हुये न किया हो अन्य या अपने प्रयत्न से बचाव करते हुये भी
 बचाव न होसका हो तिसकेलिये अर्पित मनुवचनके अनुसार केवल आचमन क-
 रना सूचित होताहै—यद्वाहमनुः—सप्तवामुक्ताचसुक्ताचनियीव्याप्यवृत्तानिचपीत्वा
 १०पो१८पेयमानस्यआचामेत्प्रयतो१पिसन्—अर्थात्—सोइके•झूठ सुली गाँडा आदि
 खाइके•छींक आजानेसे• खँखार थूकनेसे• बिनाचाही लाचारी की असत्य बोलने
 से•कोई पतरीचीज रस दूध आदिजल पर्यंत पीनेसे•पछना आदि पाठ करनेसे• इन
 सबसे जब निपटै तभी आचमन अर्थात् अच्छीतरह कुला करै यही प्रायश्चित्त है—
 इसके सिवाय जो संवर्तका वचन है कि—सुतेनियीवनेचैवदंतप्रिलयेतया१०वृते पति
 तानांचसंवादेदक्षिणांयवरांसृष्टोत्—अर्थात्—छींक्नेपर•थूकनेपर•दाँतमें झूठलागाहोने
 पर•तथा असत्य के सुननेपर•पतितों के साथ बात कहिनेपर• दाहिनाकान अपना
 स्पर्श करडारै—सो यह कानका छुनामाव किसी अतिशय थोड़े प्रयोजनोंपर अथवा
 जहाँ निपट जलकी प्राप्ति न होसके तहाँपर समझना कि अबलाचारी में और क्या
 होसक्ता ॥ २७६ ॥

योगीश्वरने२३६ दोहीछत्तीस मूलश्लोक में सभी वैश्य शूद्र और स्त्रियोंका वध
 गिनतो कियेके बाद (निदितार्योपजीवन और नास्तिक्य) येदोनो उपघातक दर्शाये
 थे तिनका भी प्रायश्चित्त इसीस्थलपर क्रमसे कहिना चाहिये सो लिखते हैं ॥

निदितार्थोप जीवनके अर्थमें स्त्री वा पुरुष आदिका बैचना भी समझना ॥

(निदितार्थोपजीवनस्थनास्तिकस्यचप्रायश्चित्त)

इन दोनोका मुख्यस्वरूप २३ ई मूलप्रतीक में देखो परन्तु यहांपर नास्तिक शब्द से भी वेदकी निन्दा करनेके द्वारा उपजीवन ठहाराया गया है—इनके प्रायश्चित्त-द्यपि योगीश्वरने जूझनेहीं कहे तथापि २६५ दोसोपैसटि मूलश्लोक और उसी की अधिकोक्ति में योगीश्वर और मनुके कहे सामान्य उपपातकोंवाले प्रायश्चित्त जो ४४के परिच्छेद में वर्णन होचुके हैं वेही सब इनकेमध्य दोयोकी जाति और शक्ति गुण दोयकी तौलके अनुरूप यथायोग्य समझलेना—परन्तु—वशियने इन दोनोकी अपेक्षापरजुदे प्रायश्चित्तभीदर्शायेहैं—यथाहवशियः=नास्तिक कृच्छ्रकृच्छ्राद्वाराचंचरि ह्वाविरनेनास्तिकत्वात् नास्तिकवृत्तित्यतिहाच्छ्रमिति=अर्थात्—नास्तिकताकीवात चीतकरनेवाला बारहदिन कृच्छ्रव्रत करिके नास्तिकताकी बातोंसे हाथखींचे और जिसने उसी नास्तिकता से जीवनकी वृत्ति खड़ी करी होय सो अति कृच्छ्र करिके उस वृत्तिसे हाथ खींचे—सो यह प्रायश्चित्त भी एकहीवार नास्तिकता करनेवालेपर आछदहेअर्थात् ४४परिच्छेदवाले बड़े प्रायश्चित्त उसकेलिये समझना जिसनेनास्तिकता का बहुत दिन अभ्यास किया हो=इसके सिवाय जिसने बड़ी बृद्धता के साथ बहुतकालतक नास्तिकता सेवनकरीहोय तिसकेलिये आगेणखऔर हारीतकेवचन देखी ॥ ० ॥ यदाह शखः=नास्तिकोनास्तिकवृत्तिः कृतघ्नःकृतव्यवहारीमिथ्याभिर्य सो इत्येतेपचधवत्तराष्ट्राणादृहेभैक्ष्यचरयुः=हारीतेनतु=नास्तिकोनास्तिकवृत्तिरितिप्रक्रम्य प्रंचतापोऽभ्रावकाशजलशयनान्यनुतिष्ठयुरिति श्रोष्मवर्गदिमंतेष्विति=अर्थात्—शखने यह कहा है कि•नास्तिक• नास्तिकवृत्तिवान्• कृतघ्न जो किनीके किये उपकार को भेटे• कृत व्यवहारी जो खानी पीनी चीजों में नितावटकरे• मिथ्याभिशंती जो सच्चे पर झूठा पाप लगावे• ये पाँचों एकवर्ग भर ब्राह्मण के घरमें भीख माँगी खाया करें और सच्चे नियम साँचे तब शुद्ध होय=हारीत नेभी नास्तिक और नास्तिक वृत्ति आदिके नाम धरिके उन सबकेलिये तीन भाँति से तपस्या-रूपी प्रायश्चित्त कहे हैं कि•श्रीष्मकाल में पचाग्न तपे और वर्षाकाल में वरसते हुये मेघों को शूने आकाश के नीचे बैठिके मूढ़पर भेजे और हेमंत शीत ऋतु में जलाशय की प्रवाह धारा में बैठिके ध्यान करें=शख और हारीत दोनों का कथन मिलाइ के यह तात्पर्य ठहिरा कि एक सालभर ऐसा तप करने हुये ब्राह्मणों के

अथवीर्यवृक्षदनाद्युपपातक प्रायश्चित्तप्रकाशकोष्यं

पारच्छेदेः सप्तपचाशतमः (५७)



इस परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तोंका स्वरूप कहा जायगा जो देहका सातवां धातु शुक्र वीर्य किसी तरह से बिगाड़ि देनेमें होते हैं या जलमें गिरा दिया लेनेपर या कोई अशुचि वस्तु देखि लेनेपर या निर्दित उपजीवन या नास्तिकता खड़ा करने पर प्रायश्चित्त कराये जाते हैं ॥

(वीर्यपातप्रायश्चित्तं)

यन्मेघरेतइत्याभ्यास्कृष्टरेतोऽभिमन्त्रयेत् स्तनान्तरंभ्रुवोर्मध्येतेनानामिकयास्पृशेत् २७८ ॥

अर्थः—(यन्मेघरेतः) इत्यादि इन दो संज्ञों से गिरे हुये रेतसको अभिमन्त्रित करै उस अभिमन्त्रित कियेसे अनामिका से लेकर स्तनों के बीच और दोनों भोंहके बीच स्पर्श करै—अर्थात्—सगुण्यको ब्रह्मचर्यसे रहना उचितहै कि देहके वीर्यकी हानि न होने देवे यद्वा गृहस्थी होय सो भार्याके सम्भोग विना वीर्यको निरर्थक न गिरावे—इसपर भी कदाचित् कामदेवकी प्रवृत्ति अपने इतसे या स्त्र्य आदि और ही किसी वशमें वीर्यपात होजाय तब यह एक प्रकारका उपपातक आसूड होताहै तिसकी शुद्धिके निमित्त यह प्रायश्चित्तहै कि—(तन्मेघरेतःपृथिवीं० अस्कांपुनर्मानैस्विन्द्रिय) इन दो श्रवाओं का स्वरूप जैसा वेदोक्त संज्ञोंमें उपस्थितहै तैसा दोनों की पाँडकर अपने गिरेहुये रेतस्वीर्यको तत्कालही अभिमन्त्रित करै फिर सबसे छोटीछगुनियाँ के पासवाली अनामिका उंगुरी से किंचिन्माघ सेकर संज्ञोंको पड़तेहुये हृदयमें विभूतिकी तरह लगावे और, माघके नीचे दोनों मूकरीके बीचमें छुआवे तिस पीछे स्नानआदि शौचक्रिया जो उचितहोय सो करै तब इसउपपातकसे शुद्धहोताहै २७८॥

२७८ अधिकोक्तिः—ग्रन्थनिम्ताक्षराकार विज्ञानेश्वर कहते हैं कि मूल श्लोक में दीक दीक अर्थ यही है जो लिखा गया परन्तु विरले टीकाकारोंने यह तात्पर्य मानिकर कि गिरा हुआ वीर्य फिर छुना न चाहिये क्योंकि अशुचि होजाता है तिससे इत असली-अर्थको छोड़िके और ही अर्थ लगायाहै कि—मूलमें तेन शब्दसे समूदा मान कोक्ति बहुधा अनामिका के साथ अंगूठा भी कुछ उठाने चुकती भरने

आदि में चलता है तिससे अंगूठा और अनामिका दोनों की चुटकी बुद्धिस्थ बनाकर हृदय आदि में छुआनी किंतु वीर्य को न छूना चाहिये (किन्तु मूल में त्र्यष्ट शब्द जोड़ने से एक अक्षर बढ़कर छन्दोभग होजाता तिससे त्र्यष्ट्यको तेन शब्दही से निर्देशकिया होगा यह तर्कना खड़ी करो है) सो यह अर्थ असत् है क्योंकि बुद्धि के भीतर कोई छिपाहुआ अंगूठा कहीं नहींदेखा सुनाहै बल्कि यह प्रत्यक्ष दूयगाहै कि जो शब्द उसके पास है तिसको छोड़िके अर्थ से बुद्धिस्थ अंगूठे को लाकर उसमें जो है—इसकोऊपर तर्कशास्त्रमें यहमसल प्रसिद्धहै कि (गम्यमानस्यचार्यस्यनैवदृष्टविशेषयास शब्दांतरेर्विभक्त्यावाधुमोऽयज्ज्वलतीतिवत्) जिसअर्थकी प्राप्तिहोयतिसके विशेषयाको नहींदेखा शब्दोके अंतरसे यद्वा विभक्तिसेही कहिदिया सो उस न्याय केतुस्थ दहिरताहै कि बिना प्रसारोंके धुआँ जलताहै कहिदियाजाय—विज्ञानेचर कहिते हैं कि अशुचि होने के हेतु से रेतस् को छूने की अयोग्यता नहीं सिद्धहोती है क्योंकि जो रेतस् को अशुद्ध माना तो शरीर भी उसकाल में अशुद्ध ही होता है तो फिर छूने से क्या परहेज तिसपर यह कि प्रायश्चित्त रूपी विधान किया गया और मजो के पड़ने की आज्ञा दहिराई तौफिर छूनेमें अयोग्यता कहाँ रही बल्कि योग्यता दहिरौ। इसका भी दृष्टांत है कि जैसे सुरा पीने वाला उसके पीने से पतित होता है फिर भी प्रायश्चित्त के निमित्त पर गरम करिके वही सुरा पिलानी कहिचुके हैं सुरापान के प्रायश्चित्तो वाले प्रकरणमें देखौ। तिससे वही अर्थ ठीक है ॥ ० ॥ यह प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो केवल गृहस्थ को उस दशा में समझना कि जहां इच्छा किये बिना निरर्थक वीर्यका पात होय। ब्रह्मचारीके लिये जागते सोते दोनों दशा मध्ये बड़े प्रायश्चित्त आगे आवेंगे—और—सनु का यह वचन है कि=गृहस्थःकासत कुर्याद्रेतसः स्कन्दनभुविमहसतुजपेह व्या.प्राणायामैस्त्रिभिःसहेति. तत्कामकारवियथ=अर्थात्—गृहस्थी पुरुष यदि इच्छा से वीर्य का पात धरतो पर करै सो तीन प्राणायामो सहित गायत्री के हजार सब जपै—यह वचन खुलासा है किजिसने इच्छासे चाहिकर वीर्यपात कियाहो सोयह प्रायश्चित्त करै॥२७८॥

(जलांतःप्रतिविम्बदर्शनादिप्रायश्चित्त)

मयितेजइतिच्छायांसांष्टप्रागुक्तानपेत् । सावित्रीमशुचौहृष्टेचापत्पेनानृतपिच २७९॥

अर्थः—जलमें पहुँची अपनी छाया (मुखकाप्रतिविम्बआदि) देखिके=मयितेज इन्द्रिय=इस वेदोक्तपूरे सनको (यथाशक्ति सकसे आबिलेकार ज्ञात्र कृच्छ्र) उसीसमय

प्रधान व्रतघोर्यं धातु का रोकना है उस धातु का निकासि डारना अवकीर्ण (वि-
धोरि देना खिंडाड देना फौलाड देना यही अवकीर्ण) कहाता है जिसने धातु का
अवकीर्ण किया सो अवकीर्ण ठहिरा इसीलिये योगीश्वर ने मूल श्लोक में कहा
है कि—ब्रह्मचारी होके यदि किसी भी योगिता नारी में गमनकरै, सो अवकीर्णी
होता है वह निश्चयि देवता के निमित्त गदहा पशु का बलिदान करिके उसका
नैऋत नाम याग करै तब शुद्ध होय ॥ २८० ॥

२८०अधिकोक्तिः—गदहा नामसेही पशु समझा जाता फिर उसके साथ मूल में
पशुद्वयों कहागया—इसका यह तात्पर्यहै कि(अथपशुकल्पइत्याचलायनादिपृथोक्त
पशुधर्मप्राप्त्यर्थं), आचलायन आदि के गृह्यसूत्र में इसी रीति से कहागया है कि
अथपशुकल्पः जहां इतना लिखा देखा और समझागया कि गर्दभयाग करनाचा-
हिये सो उस प्रकार के पशुधर्म की पहुंच समझी जानेके लिये दुबारा पशु शब्द
दिया गयाहै ॥ • ॥ गर्दभयाग जो करना बताया सो वनके समीप चौराहेपर लौकिक
अग्नि से करता चाहिये क्योंकि वशिष्ठ ने साफ साफ यही कहा है कि=ब्रह्मचारी
स्त्रियमुपेयादरराये चतुष्पथे लौकिकेऽनौरक्षो देवतार्दभंशुमालभेतेति वशिष्ठः=
अर्थात्ब्रह्मचारी यदि स्त्रीके पासजाय तो वनमें चौराहेपर लौकिक अग्निमें राक्षस
देवके निमित्त गदहा पशु को होम करै (क्योंकि गदहा पशु का देवता राक्षसही
होते हैं वे उसी अपने पशु के मांससे प्रसन्न होते हैं उन्हीं राक्षसों का प्रसन्न करना
आवश्यक ठहिरा कि जिससे फिर आगे को अपनी राक्षसी प्रकृतिका असर ब्रह्म-
चारी पर कभी न उतारै जिससे उसे स्त्री संगम की इच्छा उत्पन्न होसक्ती हो-आलं-
भन वेदोक्त वध कहाता है उसी से फिर होनयाग किया जाता है यह तात्पर्य
समझलेना) इसी याग में यह और विधान है कि राति में करना चाहिये और गदहा
एक आंख वाला काना लेआना चाहिये=तदाह मनुः=अवकीर्णतिकारोणरासभेन
चतुष्पथे पाकयज्ञविधानेनयज्ञेननिश्चयिनिर्वाण=अर्थात्-मनुका यह वचन है कि
अवकीर्णी ब्रह्मचारी काने गदहासे चौराहेमें जाकर वहां रात्रिमें निश्चयि जो राक्षसों
का प्रधान अधिपति देवताहै तिसका यज्ञकरै पर कबे मांससे न करै किन्तु पाकयज्ञ
के विधान से करै जिससे निश्चयि अच्छेप्रसन्न होय ॥ • ॥ पशुयज्ञका वानक न बनि
परै तो खीरहीसे होम करै यह उसका अनुकल्प है क्योंकि अग्निले वशिष्ठ के वचन
से यहवात सिद्धहै=यदाहर्वाशयः=निश्चयिवाचरुनिर्वापेवतस्यजुहुयात कामाग्रत्वाहा
कामकामाग्रत्वाहा निश्चयिस्वाहारसोदेवताभ्यःस्वाहेति=अर्थात्-निश्चयिपशुनहो

घर से भिक्षा लेकर भोजन किया करें तब शुद्ध होयें सो यह इतना बड़ा कठिन प्रायश्चित्त केवल उनके लिये है कि जिन्होंने नास्तिकता आदि बड़ी बृहताकेसाय बहुत कालतक अभ्यास किया हो ॥२७६॥ इसी दोहो उनासीवाली ऊपरली अवि-
कौक्तिका श्रेय पात यहभी है केवल धियय जुदा होनेसे स्थापना भेदकियागया है ॥

योगीश्वर ने २३६ मूल श्लोक में नास्तिक्य से अनंतर (व्रतलोप) इस कर्म के नामसे अवकीर्णी ब्रह्मचारी का उपपातक दर्शाया था उसका प्रायश्चित्त भी योगीश्वर आपही अगिले श्लोक से प्रकाश करते हैं ॥

अथ अवकीर्णं ब्रह्मचार्यादीनां शुक्रहानौ प्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः अष्टपञ्चाशत्तमः (५८)



इस परिच्छेद में उनके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो ब्रह्मचारी आदि अवकीर्णी होगये हों अर्थात् मुख्य तो अवकीर्णी ब्रह्मचारी कहा गया है परन्तु उसके उप-
लक्षणासे वानप्रस्थ और सन्यासी आदि यतीपुरुषोंके प्रायश्चित्त भी वर्णन होगा क्योंकि वीर्य का यौभनारूपी ब्रह्मचर्य इन सबही के होता है—अथवा इनमेंसे कोई अपना आग्रथ छोड़ि भागें या घर बसावै—यदा शास्त्रीय मरणाक्षेपोंसे भागें तिसके प्रायश्चित्त है—अथवा मरने के प्रसंगमें अशास्त्रीय मरणा पर गृहस्थो आदि कोईभी उपस्थित होय या निपट मरजाय तिसके भी ॥

(ब्रह्मचारिणोऽवकीर्णत्वस्य प्रायश्चित्तं)

अवकीर्णीभवेद्गृहवा ब्रह्मचारीतुपोषितम् । गर्भपशुमालम्ब्यनेकतंसाविशुद्धयति २८०

अर्थ—ब्रह्मचारी योगिता पाप जाय के अवकीर्णी होय० सो नैव्रत गदहा पशु को आलम्बन करिके शुद्ध होता है—अर्थात् ब्रह्मचारी दो तरह का होता है एक उपकुंवारा विद्यार्थी दूसरा नैसिक जो सदा के लिये ब्रह्मचर्य बना राखे यह आचार मर्यादा परिपाली में उसके नियमों सहित वर्णन होचुका तहां देखो—यहां जो कोईसा ब्रह्मचारी उन्हीं नियमोंका भंग करें तिसने व्रत का लोप किया कहा-
ता है उसका एक निन्दा के साथ जुदा नाम अवकीर्णी घरा गया है क्योंकि सबसे

प्रधान व्रतवीर्य घातु का रोकना है उस घातु का निकासि डारना अवकीर्ण (वि-
योरि देना खिंडाई देना फैलाइ देना यही अवकीर्ण) कहाता है जिसने घातु का
अवकीर्ण किया सो अवकीर्ण ठहिरा इसीलिये योगीश्वर ने मूल श्लोक में कहा
है कि—ब्रह्मचारी होके यदि किसी भी योगिता नारी में गमनकरै सो अवकीर्णी
होता है वह निश्चिति देवता के निमित्त गदहा पशु का बलिदान करिके उसका
नैऋत नाम याग करै तत्र शुद्ध होय ॥ २८० ॥

२८० अधिकोक्तिः—गदहा नामसेही पशु समझा जाता फिर उसके साथ मूल में
पशु क्यो कहागया—इसका यह तात्पर्यहै कि(अथपशुकल्पइत्याचलायनादिगृह्योक्त
पशुवर्मप्राप्त्यर्थं), आचलायन आदि के गृह्यसूत्र में इसी रीति से कहागया है कि
अथपशुकल्पः जहां इतना लिखा देखा और समझागया कि गर्दभयाग करनाचा-
हिये सो उस प्रकार के पशुवर्म की पहुंच समझी जानेके लिये दुबारा पशु शब्द
दिया गयाहै ॥ ० ॥ गर्दभयाग जो करना बताया सो वनके समीप चौराहेपर लौकिक
अग्नि से करना चाहिये क्योंकि वशिष्ठ ने साफ साफ यही कहा है कि=ब्रह्मचारी
स्त्रियमुपेयादराये चतुष्पथे लौकिकेऽरनोरसो देवतगर्दभपशुमालभेतेति वशिष्ठः=
अर्थात्ब्रह्मचारी यदि स्त्रीके पासजाय तो वनमें चौराहेपर लौकिक अग्निमें रासस
देवके निमित्त गदहा पशु को होम करै (क्योंकि गदहा पशु का देवता राससही
होते हैं वे उसी अपने पशु के मांससे प्रसन्न होते हैं उन्हीं राससों का प्रसन्न करना
आवश्यक ठहिरा कि जिससे फिर आगे की अपनी राससी प्रकृतिका असर ब्रह्म-
चारी पर कभी न उतारें जिससे उसे स्त्री संगम की इच्छा उत्पन्न होसकी हो•आलं-
भन वेदोक्त वध कहाता है उसी से फिर होम याग किया जाता है यह तात्पर्य
समझलेना) इसी याग में यह और विधान है कि राति में करना चाहिये और गदहा
एक आंख वाला काना लेआना चाहिये—तदाइ मनुः=अवकीर्णतिकारो नरासभेन
चतुष्पथे पाकयज्ञविधानेनयजेतनिश्चितिनिशि=अर्थात्—मनुका यह वचन है कि
अवकीर्णी ब्रह्मचारी काने गदहासे चौराहेमें जाकर वहां रात्रिमें निश्चिति जो राससों
का प्रधान अधिपति देवताहै तिसका यज्ञकरै पर कबे मांससे न करै किन्तु पाकयज्ञ
के विधान से करै जिससे निश्चिति अच्छेप्रसन्न होय ॥ ० ॥ पशुयज्ञका वानका न वनि
परै तो खीरहीसे होम करै यह उसका अनुकल्प है क्योंकि अगले वशिष्ठ के वचन
से यहवात सिद्धहै=यदाइवशिष्ठः—निश्चितिवाचरुनिर्वपेततस्यजुह्याव कामायस्वाहा
कामकामायस्वाहा निश्चित्यैस्वाहारसो देवतास्यस्वाहेति=अर्थात्—निश्चितिपशुनही

तो विकल्प से निश्चिति को नामसे चरु खीरही वोवै किन्तु निश्चिति को नामसे होमै कि जैसे स्वाहांतचारुक्त संव में लिखि दिऐहैं तिनसे होमै ॥ ० ॥ श्रीमन्मितासराकार कहितेहैं कि यह तपके बिना केवल यागमात्र कहा सो उसकेलिये समझना जो पर वश कहीं धिरा फँसा असमर्थ होते अवकीर्णा हुआहो। अन्यथा जो समर्थ ब्रह्मचारी अवकीर्णा हुआ होय तिसके लिये गौतम का कहा पशुयाग या चरुहोम तपस्या सहित उचित होगा—यदाह गौतमः—गर्दभेनावकीर्णा निश्चितितनुष्यथेयजेद तस्या जिन मूर्ध्निबालं परिवाय लोहितपात्रे सप्तशृङ्गाय भैक्ष्यं चरेत् कर्माचक्षराः संवत्सरेण शुद्धीर्त्तति—अर्थात्—अवकीर्णा होजाय सो गदहा से निश्चिति देवको चौराहे परपूजै किन्तु पूर्वोक्त रीति से होम करै फिर उस गर्दभ को बचेहुये पूरे चमड़े को बालजपर हो रखिकर पहिर ओढ़िके ताँवे के पात्र में सात घरों से अपना कर्म सुनातेहुये भिक्षा माँगाकरै तब एक पूरे वर्ष भरमें शुद्ध होता है—और उसके साथ बिकाल ज्ञान और सकही बार सायंकाल भोजन करने का नियम भी अग्रोक्त मनुके वचन से जोहना—यदाह मनुः—एतस्मिन्नेनसिप्राप्ते वसित्वागर्दभाजिनस्य सन्नागारावचरन्भैक्ष्यं स्वकर्मपरिकीर्तयन् तेभ्योलब्ध्वेनभैक्ष्येणावर्तयन्नेककालिकम् उपस्पृशन्त्रियवरासम्भवे नराविशुद्ध्यति—अर्थात्—इस अवकीर्णा पापके प्राप्त होने में वह अवकीर्णा गदहाका शृङ्गाला ओढ़िके अपना कर्म सुनाते हुये सात घरों से भिक्षा माँगते उनसे जो कुछ मिलै उसी भिक्षा से एक समय भोजन का वर्तावा करतेहुये और हररोज बिकाल ज्ञान करते हुये एक वर्षसे विशुद्ध होता है (यह एक वर्ष की तपस्या वाला प्रायश्चित्त भी सिर्फ उसके लिये आवश्यक है जिनने किसी ऐसे अयोधिय ब्राह्मणाकी भार्या में संगम किया हो जो विद्या आदि किसी प्रतिष्ठा से विख्यात नहीं था या ऐसे किसी अयोधिय बनियाँ की भार्या में संगम किया हो जो पढ़ा गुना भगत वा औरही किसी प्रतिष्ठासे विख्यात बनियाँ हो) इसका तात्पर्य भी आगे देखा ॥०॥ जिस ब्रह्मचारी ने ऐसी कोई ब्राह्मणी या सन्नागणी संगम करी हो कि जो स्त्रियाँ निज अपनेही उत्तम गुरासे विख्यातहीं अथवा यद्यपि स्त्रियाँ अपने गुरासे विख्यात नहीं परन्तु अयोधिय ब्राह्मणाकी और अयोधिय सन्नागी की भार्याहीं तिनहींमें अवकीर्णा हुआहो। तो इस ब्रह्मचारी अवकीर्णा के लिये क्रमसे तीन वर्ष और दो वर्ष का तप चाहिये अर्थात् तीर्नवर्ष उस ब्राह्मणी केमध्ये जो केवल अपने गुरासे विख्यात वा विख्यात पतिकी भार्या हो और दो वर्ष उस सन्नागणीके मध्ये जो केवल अपने गुरा से विख्यात वा विख्यात पति की भार्या हो। व्यवस्था ठीक यही है और इसके

सबतात्पर्य अगिले शब्द और लिखितके एकहीवचनसे उत्पन्न होते हैं समुक्ती=यथावत्तुः शब्दलिखितो=यथायावैश्यायामवकीर्णाः संवत्सरवियवसाननुतिष्ठेत सविद्यायां द्विवर्षे ब्राह्मणयां त्रिणावर्षाणीति=अर्थात्-पर्येदार बनेनी मे अवकीर्णा होय सो एक संवत् पर्यन्त विकाल स्नान पर आरुद्ध होय सब पदां मे रहिनेवाली सवाराओ में अवकीर्णा हुआ होय सो दो वर्षभर विकाल स्नान और पर्दावाली ब्राह्मणोंमें अवकीर्णा हुआ हो सो तीन वर्षभर विकाल स्नानसावै (विकाल स्नानके साथ जो पशुयाग और भिक्षा आदि ऊपर कहिचुके सो सब इसमें भी समझि लेनी ॥ ० ॥ अगिरा का यह वचन सबसे जुदा है कि=अवकीर्णानि निमित्तनु ब्रह्महत्याव्रतचरेत् चीरवासास्तु यदमा सांस्तथा मुच्येत कित्त्वियात्=अर्थात्-अवकीर्णा होजाने के निमित्त में भी ब्रह्महत्या के समान व्रत एक छमाही भर चीरवासा होकर (भोजपत्र आदि वृत्तोंके बजल पहिन कर) आचरै तब उस पापसे छूटे ॥ सो यह छमाही भी उसी प्रकार उसी विषय पर समझनी कि जिस विवि के साथ जिस विषय पर ऊपरले सनु गौतम आदि वचनों में एकवर्ष भर तप करना कहिचुके किन्तु भेद इतना है कि यह छमाहीवाला वर्षसे आधा व्रत उस दशामें करवाना कि जब कोई ब्रह्मचारी अपनी इच्छाके बिना कुचाल स्त्री का मोहित किया हुआ लोभने आकर अवकीर्णा हुआ हो और ऊपरले पूरे वर्षभर के प्रायश्चित्त उसके हैं कि जिसने संगम करनेका उद्योग आपेही किया हो और उनसे पहिले जो मूलश्लोकसे आदि लेकर सिर्फ तप के बिना पशुयागही करना कहिचुके सो उसके हैं कि जब कोई ब्रह्मचारी अपनी स्वाधीनता के बिना कहीं घिरा फंसा परवश होकर अवकीर्णा होय ॥ ० ॥ जब कोई ब्रह्मचारी किसी धर्माकी अत्यन्त स्वेरिणी में अवकीर्णा होजाय तब ये प्रायश्चित्त नहीं किन्तु कोटें प्रायश्चित्त है वे भी शब्द लिखित दोनों भाइयोंने जुदे करिके कहे हैं=यथावत्तुः शब्द लिखितो=स्वेरिण्यां वृष्यस्यावकीर्णाः सचैलस्नानमुदकं भृशं दद्याद्ब्राह्मणाय • वैश्या यांचतुर्थकालाहारो ब्राह्मणाय भोजयेत् यवसभारं च गोमूत्रोदद्यात् • सविद्यायां त्रिणावसु पोयितो घृतपात्रं दद्यात् • ब्राह्मणाय यद्वा वसु पोयितो गां च दद्यात् • गोप्यवकीर्णाः प्राजा पत्यचरेत् • यथायामवकीर्णाः पलालभारसीसमायकं च दद्यादिति=अर्थात्-वृष्यली शूद्रिणी जो स्वेरिणी होगई हो तिसमें ब्रह्मचारी जाकर अवकीर्णा हुआ होय सो सचैलस्नान करिके जलका भरा घट ब्राह्मणको दान करै इसीसे शुद्ध होजाता है • एवं स्वेरिणी बनेनीमें अवकीर्णा होजाय सो दिनभर उपवास करिके चौथे कालमें भोजन करै दूसरे दिन ब्राह्मणोंको जिमावै और घासका एक भार (पलानां दस दशैतु भारमे

कंप्रकीर्तितं) अर्थात् बाजाख खाँड आदिकी तौल में पत्ता जो तीन साढ़े तीन मन तक देशभेदे प्रसिद्ध होता है तिसके अनुमान भर घास भी गौओंको देंगे • एवं स्वैरिणी सविद्या दक्षरानी में अवकीर्णा होजाय सो तीन दिन रातिका उपास करिके घोका भरा पूरापात्र दानकरै • एवं स्वैरिणी ब्राह्मणी में अवकीर्णा होजाय सो के दिनका उपवास करिके गोदान भी करै किन्तु चकारके ध्वन्यर्थसे पहिले ब्राह्मणों को भोजन करावै तिस पीछे गोदान करै • एवं यदि कोई ब्रह्मचारी विद्यार्थी आदि जाकर गौओंकी योनिमें अवकीर्णा हुआ होय सो बारह दिनका प्राजापत्य व्रत आचरै तब शुद्ध होय • एवं यंदा नपुंसकी नारी कि जिसके योनिका आकार पूरा पूरा नहीं होता है कि जिसमें गर्भकी धारणा न होसके इसीसे वह नारी भी यदा अर्थात् हिजरी कहाती है तिसमें यदि कोई ब्रह्मचारी जाकर बिगड़ै सो एकभार सावधान या कीदोंका प्यार और एक मासाभर सीसा या रांगा दानकरै ॥ ० ॥ अवकीर्णी के प्रायश्चित्त जो कुछ मूलश्लोकसे लेकर यहाँ तक वर्णन हुये सो सब तीनों वर्णों के ब्रह्मचारीको समान हैं अर्थात् एकसां समझिलेना चाहैं ब्रह्मचारी ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्यही क्यों न हो प्रायश्चित्त में न्युनाधिक भेद न होगा—इसका प्रमाण भी शांडिल्यमुनिका वचन है—यदाह शांडिल्यः=अवकीर्णीहिजरीराजा वैश्यप्रचापि खरेणाह इन्द्राभैरव्याशिनो नित्यं शुद्धात्यन्दास्समाहिताः=अर्थात्=अवकीर्णी ब्रह्मचारी चाहैं विप्र या क्षत्री या वैश्य भी कोई हो सब खर पशु से यज्ञ करिके नित्य प्रति भिक्षा मांगि खायाकरै तो समाहित रहिते एक वर्षभर में शुद्ध होतेहैं अर्थात् समाहित सावधानीसे न रहिकर वर्षके भीतर प्रायश्चित्तके बीचमें भी फिर किसी दिन अवकीर्णा होनेलगै तो उस प्रायश्चित्त से भी शुद्ध न होगा (यहाँ तक तो स्त्रीके संभोग से अवकीर्णा होनेका चर्चा है अब आगे स्त्री के बिना भी विराहनेका चर्चा होगा ॥ ० ॥ अथस्त्रीसंभोगविनापि वीर्यस्कंदनप्रायश्चित्तं—अब कोइब्रह्मचारी स्त्री संगम के बिना भी कामदेव की प्रबलता से राति या दिन में और सोते या जागते हुये वीर्य धातु को छोड़ै तिसके लिये वशिष्ठ ने केवल पूर्वाक्त यज्ञही करना कहा है=ययाह वशिष्ठः=एतदेवरेतसप्रयत्नोत्सर्गो विवास्वप्ने च व्रतातरेषु वैवसिति=अर्थात्=यही नैऋत याग जो पहिले प्रायश्चित्त में काहिचुके सो अंगों के उपाय से भी वीर्य की हानि करदेने में और दिन में और स्वप्न में भी वीर्य निकसिजाने पर करना • और व्रतान्तरों में भी इसी प्रकार अर्थात् कुछ चांद्रायणाआदि व्रत प्रायश्चित्तों में जहाँ तहाँ ब्रह्मचर्य साधन करने को अतिदेश किये गये हैं उनके बीच

में भी यदि सोते वा जागते किसी दशा में वीर्य का अवकीर्ण होय तोभी पूर्वोक्त रीति से नैऋत यागही करें=परंतु=सोते समय अपनी इच्छाबिना देवयोगहीसे वीर्य गिर जाय तो फिर उक्त नैऋत याग नहीं किंतु मनुका कहा प्रायश्चित्त करें=तदाह मनुः=स्वप्नेमिस्काबह्यचारीद्विजशुकमकासतः स्नात्वा कर्मचर्यायत्त्वा विपुनर्मा मित्यु चजपेत=अर्थात्=द्विजाती मात्र किसी वर्णाका ब्रह्मचारी स्वप्नेमें निज इच्छाके बिना वीर्यकी सींचिके प्रातःकाल स्नान करिके और सूर्यकी यथोक्त अर्चा करिके तीन बार (पुनर्मात्र) इत्यादि ऋचा जपे=इसीसे शुद्ध होजाता है ॥ यहां तक ब्रह्मचारी का प्रसंग था अब नीचे वानप्रस्थ आदि जो ब्रह्मचर्य से रहित हैं तिनका वर्णान किया जायगा=परन्तु ब्रह्मचारी अवकीर्णी होजाने के प्रायश्चित्त जो कुछ ऊपर लिखेगये सो सब उन स्त्रियों के संभोग में समझना जो गुरु की दाराओं से उपरालू अगम्याहों और उनसे भी उपरालू अगम्याहों जिनका चर्चा गुरुदाराके समान कहि कर २३१ दोसो इकतीस मूलश्लोकसे लेकर दोतीन अधिकोक्तों में वर्णान होचुका है=क्योंकि उन स्त्रियोंके भोग सधो बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं जो बारह वर्ग की आदि लेकर कई भाँति से दर्शाये गयेये ब्रह्मचारीको भी उन स्त्रियोंके संगमसे वेही बहुत बड़े प्रायश्चित्त बलिक उनसे भी दुगुने करने होंगे=क्योंकि बहुत बड़ा पाप जो बारह वर्ग आदिके वर्तसे शोधन होने योग्यहो सो इस कोटिसे अवकीर्णी वांकी प्रायश्चित्त से मिटिजाना संभव नहींहै और यह भी नहीं कहिसक्ते हैं कि खास कर ब्रह्मचारी के लिये यही छोटासा प्रायश्चित्त कहागया है इससे बड़ा उसको कहीं भी न चाहिये=क्योंकि गृहस्थीसे उपरालू आश्रमोंकी दुगुने आदि प्रायश्चित्तोंका अधिकार ब्रह्महत्याके प्रकरणसे दर्शित होचुका है=और यहभी नहीं कि ब्रह्मचारीको अगम्यागमनका प्रायश्चित्त जुदा करना चाहिये=क्योंकि ब्रह्मचारी की स्त्रीमें अवकीर्ण होनेका प्रायश्चित्त अगम्यागमनके भीतरही समझा गया है इससे कि उसका सदा ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये ॥ २८० ॥ इसी अधिकोक्तिका वचा हुआ फालतू पाद नीचे जुदा भी स्थापन किया जायगा ॥ २८० ॥

(अथ वानप्रस्थादीनां ब्रह्मचर्यखंडने संन्यासादि व्रतभगेच

ब्रह्मचारि प्रायश्चित्तातिदेशः)

वानप्रस्थके सब वर्म सातवें परिच्छेद में पैंतालिस मूलश्लोकसे वर्णान होचुके हैं उसी वानप्रस्थ या संन्यासी यती आदि किसी और पूरे तपस्वीका ब्रह्मचर्य खंडित

हो जाय अर्थात् वीर्यका अवकीर्ण होजाय तहां उन्हीं सब रीतोंसे ब्रह्मचारी वाले प्रायश्चित्त करने होंगे कि जैसे कोई भेदोसे ऊपर वर्णान होचुके परन्तु इनको कुछ अधिकताके साथ करने होंगे—तदाह शांडिल्य—वानप्रस्थोयातप्रचैवस्कन्दनेसतिका मतः पराकव्यसयुक्तमवकीर्णाव्रतचरेत्—अर्थात्—वानप्रस्थ और यतो संन्यासी और चण्ड के ध्वन्यर्थसे अन्य प्रकारके तपस्वी लोगभी कामदेवके (स्कन्दन मे) खिँडि जाने में (चाहें स्त्री संभोग द्वारा या इसके बिनाही खिँडि जाने में) सर्वत्र सब तरह का अवकीर्णी ब्रह्मचारी वाला व्रत ये भी आचरें पराकों के तीया सहित अर्थात् ब्रह्मचारीकी अपेसा इनको तीन पराक व्रत फालतू करने चाहिये क्योंकि इनका दर्जा भी ब्रह्मचारीसे बड़ाहै—परन्तु पापकर्मकी व्यवस्था सब इनके लिये भी ऊपर की अधिकोक्ति में विचारना ॥ ० ॥ गार्हस्थ्यपरिग्रहेच—जब कोई संन्यासी (वा नैष्ठिक ब्रह्मचारी) या वानप्रस्थ अपने संन्यास आदि आश्रमको छोड़िकर भागेहुये गृहस्थी बनिजाय तिनका प्रायश्चित्त भी सर्वतने प्रकाश किया है—यदाह संवर्तः—संन्यस्यदुर्भात कश्चित्प्रत्यापत्तिचरेद्यदि सकुर्यात्कच्छमयांतन्यद् मासान्प्रत्यनन्तर न—अर्थात्—जब कोई कुद्वी पहिले संन्यासीहोकर पीछे उसी छोड़े हुये गृहस्थकी फिर प्रत्यापत्ति सग्रह करे तिसको यह चाहिये कि वह गृहस्थी में अर्थात्ही किन्तु ठिके थंभे बिनाही विन्यास लेनेसे पहिले छे महीने भर अनन्तर कच्छ व्रत साधे कि जिसके बीच कभी अन्तर न परने पावे तिससे श्राद्ध होकर (अगिले पराशरके कहे जात कर्म आदि संस्कार करिके) फिर गृहस्थी में शामिल रहिसक्ता है—तथाच पराशरः—यः प्रत्यवसितीविप्रोप्रव्रज्यातोविनिर्गतः अनाशकोनितृत्तश्चगार्हस्थ्यंचेचि-कीर्यति सचरेत्स्त्रीणाकच्छास्त्रीणाचांद्रायणानिच जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्तुतः शु-द्धिमाप्नुयात्—अर्थात्—पराशर ने इस नियम की इस रीति से दृढ किया है कि—जो कोई विप्र संन्यासी होके संन्यास धर्म से निकसि कर उस आश्रम से (प्रत्यवसित) गिर जाय या जिसने बहुत दिनों के लिये अनाशक चिराहार व्रत धारण किये हो तिनकी भोंक न सहिकर बीचही में लौटि परे अर्थात् व्रत छोड़ि के आ-हार करने लगे—इत्यादि कोई भ्रष्ट धर्मा संन्यासी आदि गृहस्थ आश्रम लेने की इच्छा करे सो पहिले तीन कच्छ प्राजापत्य करे फिर तीन चांद्रायण करे (ये दोनों व्रत ऊर्ध्वोक्त सर्वत वाले खुसाड़ी कच्छके साथ विकल्पसे बदल किये जात ज्ञे हैं अर्थात् उस सकही को करे या इन दोनों को करे) तिसपीछे जातकर्म आदि सब कर्मों से उसी तरह संस्कार करावे कि जैसे बच्चे का जन्म होने बादि किये जाते हैं

क्योंकि इसका भी यह नया जन्म है तिससे सब संस्कारों से शुद्ध होकर गृहस्थ में शामिल रहने योग्य होजायगा—यह लाचारी वर्ज का निर्वाह कहा गया है कि जिससे संसारी व्यवहार साव चल सके—अन्यथा—पारलौकिक फल भोग में यह पाप नहीं मितता है इस बातका प्रमाण भी वशिष्ठ का अग्रोक्त वचन है—यदाह वशिष्ठः (यस्तुप्रव्रजितोभूत्वापुनः सेवेतमैथुनं ययिवर्यसहस्राणि विद्यायां जायतेऽक-
मिः) अर्थात्—जो कोई संन्यासी आदि होकर पीछे फिर मैथुन का जोड़ा सेवे वह परलोकों में साठ हजार वर्ष तक विद्या में काम का जन्म घरता है (इसके मध्ये २२६ दोस्रो छन्दोस का मूल श्लोक भी देखो)—यहां जो पराशर के वचन में केवल विप्र शब्द है सोभी अपलो प्रधानता से तीनो वर्गों का उपलक्षण है क्योंकि इस व्यवस्था में ब्रह्मचारी के समान तीनों वर्गों के संन्यासी को प्रायश्चित्त एकसाँ है कुछ वर्गों के भेदसे न्यूनानधिक नहीं किये जायेंगे यह समाधि लेना ॥ इनकीतिवाय कुछ ऐसे भी संन्यासी आदि भग्न व्रत होते हैं जो प्रायश्चित्त करिके भी गृहस्थों में शामिल करनेने योग्य नहीं होते तिनका वृत्तान्त आगे देखो ॥ ० ॥ अथामरणा संन्यासिव्रतमगस्य प्रायश्चित्तं—तदाहयमः= जलाग्न्युद्वहनध्वजाभ्रज्याऽनाशक-
च्युताः विषप्रपतनप्रायाः शस्त्रघातच्युताश्च ये नैवेतेप्रत्यवसिताः सर्वलोकावहित्कृताः चाद्रायराजशुद्धान्तितसकृच्छयेनच=अर्थात्—जो कोई संन्यासी वानप्रस्थ आदि त-
पस्या कियेपीछे अति बूढ़ा होजाने पर अथवा नीचहीमें किसी भयानक रोगाशयि-
लता आदि हेतुसे अपना देहत्याग देनेका उपाय सोचिकेजलमें डूबेयाअग्निमेंकूड़े या फाँसी फंदे में लटकै तहां भयभीत होकर प्राणों को न देसके तिससे उसका व्रतही भ्रष्ट हो जाता है=सर्वं भ्रज्या नाम संन्यासका भेद लेकर निषट् अनाशक व्रतरोपा-
होवै कि अन्नादि कुछ न खाकर तप करेंगे यद्वा केवल एकदो फलही खाकरसदा तप करेंगे ऐसे सदा के नियम छोड़ि भागने से भी व्रत का भग होता है= अथवा अनाशक वह कि जिसने देह त्यागि देनेके निमित्त घर नियम लेकर आहार छोड़ि दिया हो फिर मरनेसे पहिले अन्न खाने लगा तो यह भी अनाशकच्युत कहाताहै= सर्वं जिन्होंने देह त्यागने की सत्य प्रतिज्ञा से विष खाया हो या ऊँचे पर्वत पर चढ़िके नीचे गिरने गये हों या बीरों की तीरन्दाजी आदि निशानों के बीचमें जा पड़ें हों और प्राणों के भयसे भागि पयें या विष खाने बादि उपायों से उलटीकर डारें या पर्वत से गिरे बिना उतरि आवें तो ये सब के सब ऐसे हैं कि प्रायश्चित्त करने परभी (प्रत्यवसितानकार्याः) फिर गृहस्थ में शामिल करने योग्य नहीं किन्तु

सब लोगों से बाहर किये जाते हैं• तथापि व्रत भंग होजाने के दोषमें यह प्रायश्चित्त उनको आवश्यक है कि एक चांद्रायण और दो तप्तकच्छ करिके शुद्ध होते हैं जिससे अपने पूर्वोक्त तपही में यथासंभव लगे रहिसकें—इति शास्त्रीय सरणाच्युति प्रसंगः ॥ ० ॥ अथाशास्त्रीयमरणस्यैवसाक्षात्कारस्यप्रायश्चित्तं—अनन्तर जो प्रायश्चित्त कहागया तिसमें शास्त्रीय सरणा का प्रसंग था जिसकी समस्या सातवें परिच्छेदमें ५५ पचपन सूत्र श्लोक और उसकी अविकीर्ति से प्रकाशित हुईथी उस रीति से मरने वाला सन्यासी आदि आत्मघाती नहीं कहाता बल्कि मरजाने पर निश्चय सहित समुद्यत होकर जो मरने से भागि परे तो वह सब लोगों में निश्चित और प्रायश्चित्तो भी इस हेतु से होजाता है कि उसको आधे मुर्दा के समान अपवित्र जाना करतेहैं इसीका प्रायश्चित्त ऊपर कहागया—अब—उनकोप्रायश्चित्त कहा चाहतेहैं जो गृहस्थी आदि कोई अच्छे भले में किसी पर क्रोध करने आदि कारणां से अपने प्राण खोवें तो यह अशास्त्रीय सरणा कहिलाता है क्योंकि वृथा मर-जानेकी आज्ञा शास्त्र में नहीं है इसीसे वह आत्मघाती भी ठहिरताहै=यथाह वशिष्ठः=जीवन्नात्मत्यागीकृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरेत्त्रिरात्रंचोपवासोदिति=अथत्रि-जीवन् सन्न-जोकोई मनुष्य जीवते रहने की शक्ति जीवतेहोतेहुये अपने देहका त्यागीबनै अथवा किसी उपाय से मरजाय या मरने लगे सो बारह दिन का कृच्छ्र व्रतआचरे वा तीन दिन उपवास करे (इसमें मरजाय लिखने से निपट मरिगया न समझि लेना किन्तु छुरी आदि शस्त्र अपने देह में घुसेरके मरने से बचिगया समझना जिस पर बारह दिनका कृच्छ्र कराया जायगा• इसी लिये वशिष्ठ के वचन में (आत्म-त्यागी—जीवन्सन्न) ऐसा अन्वय भी लगता है कि देह का त्यागी बनिकी जीवता बचिजाते हुये बारह दिन का कृच्छ्र वा तीन दिनका उपवास कराया जाय) इसमें वा शब्द के विकल्प से तीन दिनका उपवास मात्र उसके लिये समझना कि जिसने शस्त्र घुसेरिलेना आदि मरनेका काम अवतक नहीं किया सिर्फ मरजाने योग्य निश्चय मुह से कहिकर कियाहो या शस्त्र लेकर दिखलाया वा जल के पास खड़े होकर डूबने का लसरा प्रकट किया हो इत्यादि बहुत भाँति से सम्भिलेना• इसी प्रकार मरते हुये बचि जानेकी भी बहुत भाँति सम्भिलेनी जिससे थोड़ी बहुतपीड़ा या चोट भी आचुकी हो दृष्टान्त जैसे जल में खूब गोते खाकर बचिगया वा छुरी घुसेरि के जीवता बचिगया या विष खाकर उसके बेग में दबि जाने आदि जीवता बचिजाय वा अग्नि में कूदि कर खाल आदि जलि जाने पर जीवता बचिगया हो

इत्यादि=तथाच मिताक्षरा (अवाध्यवसायमात्रे विरात्र शस्त्रादिसत्स्यद्वादशरात्रं-
च्छ्रमिति व्यवस्था)-इस व्यवस्था में यह प्रश्न बाकी रहा कि जे कोई उक्त प्रका-
रो से निपट सरिही गये हैं तिनके इस आत्मघात छपी पापका प्रायश्चित्त कोंकर
होसक्ता है कौन करै किन्तु वे करने वाले आपत्ती सरिगये इसका क्या उत्तर है-
इसका यह उत्तर है कि उनके पुत्रादि सपिंगड। जो धनके अधिकारी आदि समोपी
हितकर्ता समझेजाते हैं वेही उसकी शुद्धि चाहिकर प्रायश्चित्तभी करैगे-यह प्राय-
श्चित्तभी यमके उसी वचनसे उत्पन्न होता है कि जो इस व्यवस्थासे अनंतर पहिले
संन्यासी के व्रतभंगपर लिखिचुके यहां फिर भी लिखाजाता है कि यहां परअर्थही
उसका अन्य प्रकार से लगावैगे-यदाह यमः=जलाग्न्युद्धधनधसः प्रव्रज्याऽनाशक-
च्युताः वियप्रपतनप्रायाःशस्त्रघातहताश्चयेनैवेतिप्रत्यवसिताःसर्वलोकवह्निष्कृताःचा-
द्रायगोनशुद्धान्तितप्लवकच्छद्वयेनच=अर्थात्-जे कोई। इच्छा सहित जलमें डुबिके वा
अग्निमेंकूद के वा फंदा लगाइ के अपने देहसे अथ होके गिरिजायँ अर्थात् निपट
सरिहीं जायँ अथवा विदेश में पते टिकाने बिना प्रव्रज्या अदन करते धूमते फिरते
सरजायँ या किसी पर अनाशक घना देकर बिना खायँ सरजायँ या विय खायके
सरजायँ या ऊँचे वृक्षादि पर चढ़िजाकर गिरके सरजायँ (या प्रायशब्दके ध्वन्यर्थ
से इसी भाँति का कोई और उपाय करिके सरजायँ) या कोई शस्त्र अपनेसरि
के सर गये हैं यह इतने आत्मघाती पुरुष प्रत्यवसित नहीं होते किन्तु मुक्ति नहीं
पाते और सब लोकों से बाहर किये हुये भूत प्रेतोंकी देह धरे फिरा करते हैं परतु
यक चांद्रायण और दो तप्लवकच्छ वृत्तों का फलपाने से शुद्ध होकर मुक्त होजाते हैं
तिससे उनका पुत्रादिक अधिकारी यथोचित नारायणवलि पुत्तलविधान आदि
शास्त्रोक्त क्रिया करने पीछे इन प्रायश्चित्तों को आचरै जिससे आत्मघातियोंकी
प्रेतयोनि छुटिकर मुक्ति प्राप्त होसके=अत्रोक्त आत्मघातियों के स्वरूप जो अच्छी-
तरह देखना चाहो सो इस प्रायश्चित्त काराड के प्रारम्भ से आशौच के प्रकरण में
५-६-७१ पांचवां और छठा और इक्कीसवां मूल प्रलोक तथा ऊन्हीं तीनों अधि-
कोक्तों को विचारो ॥ २८० ॥ इसी दोसौ अस्सी वाली ऊपरलो अधिकोक्ति का
फालत पाठ यह भी है सो वियय जुदा होनेसे स्वापना भेद किया गया है ॥ २८० ॥
अधकीर्णों ब्रह्मचारी के प्रसंगसे विरले और भी अनुपातकछपी पापोंके प्राय-
श्चित्त बीचमें दर्शायेगये-अब नीचे फिर अपने क्रम से प्रायश्चित्त कहेजायँगे अ-
र्थात् दोसौछत्तीस के मूलप्रलोक से योगीश्वर ने (व्रतनोपप्रच) यह पद कहाया ति

सका अर्थ अनेक तरहके व्रतों का खण्डन प्रकट करता है तिसमें से कुछेक व्रत भंग ऊपर अवकीर्णत्व को आदि लेकर वर्णन हो चुके और बाकीरहे व्रतभंगों के प्रायश्चित्त आगे दोसौइक्कासी मूलश्लोक से आदि लेकर कहे जायेंगे इसीलिये योगीश्वर ने व्रतलोप नाम रक्खाया कि इसमें बहुतसे अर्थों की गुंजायश पाई जाय—इसी से—यह तर्कना करनी वृथा है कि योगीश्वर ने उपपातकोंके जैसे नाम धरेये उनमें से कितनेही नामों के जुदे प्रायश्चित्त क्यों नहीं कहे जो ४४ चवत्तिस परिच्छेद के द्वारा गुजारा करना परता है—क्योंकि योगीश्वरने ऐसे अनेकार्थ नामधरे हैं जिन के कई भेद होकर जुदेजुदे नामोंसे कईभौतिके प्रायश्चित्त मिलते हैं फिर क्योंकर उसी मुख्य नाम से प्रायश्चित्त मिलसके—इसका यह दृष्टांत है कि जैसा उसो दोसौ इत्तीस मूलश्लोकमें (निदितार्थोपजीवनं) यह एकनाम धरागया है इसका अर्थ मितासरा में यह कियागया है कि (अराजस्थापितार्थोपजीवनं) इन दोनों का तात्पर्य यहदाहरा कि उपजीवन रोजगार का धधा उसभौतिके कि जिसको राजाने धर्म के अनुसार निन्दितकियाहो—सो इसभौतिके निन्दित कियेहुये भी अनेक धन्वेइते हैं जैसा स्त्रियों को खरोदकर बेचना लड़का लड़कियोंको कहींसे लेआकर बेचना अथवा वेद शास्त्रोंकी निन्दा के द्वारा जीविका करना आदि अनेक भेद हैं तिनभेदों के जुदेजुदे प्रायश्चित्त जहाँकहीं लिखेहों सो सब निन्दितार्थके उपजीवन में गिनती होगी जैसा आगे सुतविक्रय प्रायश्चित्तके प्रसगमें स्त्रीपुरुषोंका बेचना (वर्देफरोशी) भी आवैगी इत्यादि अपनी बुद्धि से समझना—यह वार्ता यहां विस्तार देकर इसी लिये कहीगई कि थोड़ी समझवाले को भी सदेह न रहे ॥ अवकीर्ण होनेबिना भी ब्रह्मचारी के कुछ और प्रायश्चित्त हैं सो नीचे देखो ॥

अथब्रह्मचारिणोन्नतनियमानांभंगेपिप्रायश्चित्तप्रकाश कोऽयंपारिच्छेदः एकोनषष्ठितम (५६) ॥



इस परिच्छेद में ब्रह्मचारी के उन प्रायश्चित्तों का वर्णन होगा जो ब्रह्मचारीके व्रत भंगा होजाने पर उसको करने चाहिये—अर्थात्—आचार मर्यादा परिपाटी में ब्रह्मचर्य का व्रत साधन करने के अनेक नियम कहेराये थे उन्हीं मेंसे यदि कोईनियम खगिडतहोजाय जैसे मधुमांस आदि खाइलेता या जनेऊ अशुद्ध होजाना आदि के प्रायश्चित्त बताये जायेंगे ॥

(ब्रह्मचर्यव्रतभंगानांप्रायश्चित्तानि)

भैक्ष्याग्निकार्येत्युक्तवानुसमरात्रमनानुरः । कामावकीर्णैर्इत्याभ्याजुहुयाद्वाहुतिद्वयम् २८१
उपस्थानंततः कुर्यात्समाप्तिं च त्वनेन तु । मधुमांसाग्नेकार्यैः कृच्छ्रं उपव्रतानि च २८२
प्रतिकूलंगुरोः कृत्वा प्रस्ताद्येव विशुद्धयति । कृच्छ्रं त्रयंगुरुः कार्योन्मिष्यते प्रक्षितोऽपि २८३

अर्थः—अनाहृत होते सातदिन भैक्ष्य अग्निकार्य दोनों त्यागिके (कामावकीर्ण इत्यादि दोनों सर्वों से) दो आहुतिहोमै—अर्थात्—यदि कोई ब्रह्मचारी किसी रोगसे पीडित न होते हुये अपने भिक्षा धर्मको और अग्निके नैस्तिक होमको भी निरन्तर सात दिन तक न करे सो इस छोटे अनुपातक पर यह प्रायश्चित्त करे कि (कामाव कीर्णोऽस्यवकीर्णोऽस्मिकामकामायत्नाहा१ कामावपचोऽस्यवपचोऽस्मिकामकामा यत्नाहा२) इन्हींवेदोक्त दो मंत्रोंसे आहुति होमै (यद्यपि मूलश्लोकमें सिर्फ दो आहुति का भी अर्थ पायाजाताहै कि एकएक मंत्रसे एकही आहुतिकरे तथापि ऐसा नहीं किन्तु सख्याका नियम न मिलनेपर एकएक मंत्रसे एक एक अष्टोत्तरी सालाभरि आहुति छोड़े तिससे भी आहुति द्वयका अर्थ सिद्ध होजाताहै ॥ २८१ ॥

तिस पीछे (समाप्तिचतु—इत्यादि) इस मंत्रसे उपस्थानभी करे—अर्थात्—जड्वोक्त आहुति देचुकने वादि (समाप्तिचतु मरुतः सन्निद्रः सट्ठस्पतिः समाथमरिनः सिचन्तां यशसा ब्रह्मवर्चसेन—इत्यनेनमवेणाग्निमुपतिथेत्) इस पूरे मंत्रसे अग्नि के सम्मुख खड़े होके उपस्थान पड़े मद्य मांस खालेने में कृच्छ्र करना फिर श्रेय व्रत भी करने चाहिये—अर्थात्—जिस ब्रह्मचारीने दवा घोखेसे मदिरा या मांस खाइ लिया

हो सो वारह दिनका कच्छू व्रत करिके तिस पीछे अपने श्रेय रहे मामूली व्रतों को भी साथै ॥ २८२ ॥

शुरूका प्रतिकूल करिके उसे प्रसन्न ही करिके शुद्ध होता है—अर्थात्—जिस ब्रह्म-चारी वा विद्यार्थीने शुरूकी उचितआज्ञा न मानने आदि प्रकारसे कोई काम शुरू से प्रतिकूल (उसकी अपेक्षासे विपरीत) किया हो तिसका दोष केवल शुरू के चरणोंमें शिर धरने आदि प्रकारसे प्रसन्न करनेसे ही मिटिजाता है उसका यही प्रायश्चित्त है। कार्यसे भेजा हुआ भरी तो कच्छूव्रत शुरू करें—अर्थात्—यहां ब्रह्मचारीका प्रसंगथा तिससे उसका शुरूसे सम्बन्ध पाइ कर शुरूका भी प्रायश्चित्त कहिना परा कि—यदि कोई शुरू ब्रह्मचारी आदि किसी शिष्यको किसी जखरी काम के लिये कहीं ऐसी भयाङ्कल अंधेरी रातिमें भेजे कि जहां चोर डाकू सर्प बाघ आदि प्राणहारी चिन्ह मौजूद हों और भेजा हुआ शिष्य उन्हीं प्रकारसे सरजाय तो उस भेजने वाले शुरूको तीन कच्छूव्रत करने चाहिये—इसका चर्चा अधिकोक्ति में अच्छीतरह देखि लेना ॥ २८३ ॥

२८१ अधिकोक्तिः—तीनों मूल श्लोक में प्रायश्चित्तोंके चार भेद हैं इस तीरसे कि डेढ़ श्लोकसे एक ही भेद है फिर बाकी तीन भेदोंका सिर्फ आधा आधा श्लोक है तिनके बीच बीच। ऐसा चिन्ह लगाया गया है उसी क्रमसे उनकी अधिकोक्तिको अब देखौ २८१ श्लोकमें ब्रह्मचारीकी बीमारीके न होतेहुये सात दिन तक भिक्षा टूटि और अग्निकी सेवा छोड़ि देने पर प्रायश्चित्त कहा गया—तिसका यह ध्वन्यर्थ यह कि यद्यपि रोगी नहीं था परन्तु शुरूकी सेवा आदि कामोंकी बहुतायत में ग्राफिलहोके भिक्षा और अग्निकार्यको छोड़ा हो तिसको वह प्रायश्चित्त जो लिख चुके सो करना चाहिये—और जिसने शुरू सेवा आदिकार्य के भी न होतेहुये निरोगी होकर सात दिन तक दृष्टा हो निज धर्मको छोड़ि दिया हो तिसको यह छोटा प्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् वह मनुके वचनानुसार करें—यदाहमनु—अहत्त्वभेदय चरणामसमिध्यचपावकम् अनातुर सप्तरात्रमवकीर्णव्रतचरेत्—अर्थात्—निरोगी ब्रह्मचारी सात दिन तक भिक्षाटूटिको न करिके या अग्निकी समिन्वन हीन करिके अवकीर्णी ब्रह्मचारीवाला व्रत आचरै जो २८० मूल श्लोकसे वर्णन हो चुका—यहां पर—व्रत भंग होजानेका प्रसंग है तिससे जनेऊ टूटिजाने वा अशुद्ध होजाने आदि अनेक बातोंके प्रायश्चित्त भी दर्शाते हैं ॥

यद्योपवीतादि नाशेत्—हारीत—मनोव्रतपतीभिश्च तिस्रआज्याहुतीर्हुत्वापुन

विशेष खण्डित होजाय किन्तु निपट टूटिके गिरजाय या और ही कोई प्रकार ऐसा होजाय जिससे निपट बिनाशहीके तुल्य समझा जाय तहां पुनर्यथार्थका यह अर्थहे कि जैसा पहिले जनेऊ हुआथा उसीप्रकारकी विधिसे पुनः संस्कार कराइके यज्ञोपवीत ग्रहण करै। अन्यथा जब केवल अशुद्धमात्र होजाय किन्तु परम्पूर खण्डित न हुआहो तब उक्त आहुतियोंकी होमिके जनेऊका प्रसिद्ध मंत्र पाँदिके बदलि डारै ॥

यज्ञोपवीतं विना भोजनादि करणेतु=मरीचिः=ब्रह्मसूत्रविनाभंक्ते विरामत्रं कुरुतेऽथवा गायत्र्यसहस्रेणाप्राणायामेनशुद्ध्यति=अर्थात्—काँचे पर जनेऊके न होने या खण्डित होनेकी दशामें जिसने भोजन कियाहो या शंका लघुशंकासे विद्या सूत्र का त्याग कियाहो सो यद्योक्त रीति से प्राणायाम करिके गायत्री मंत्र आठ हजार जप कर शुद्ध होताहै (इसमें भी जनेऊ का बदलना समुक्ति लेना) यह मरीचिमुनिने कहा—यहाँ तक एक साथही डेढ़ श्लोक की अधिकोक्ति पूरी होचुकी ॥ २८१ ॥†

अब दो सौ ब्यासी का उत्तरार्द्ध मूलश्लोकवालाअर्थ देखौ कि मध्य मांस खाइ लेने पर कृच्छ्रकरना लिखचुके सो केवल उन्हीं मांसोंकेखालेनेमें समुभन्ता जो खरगोश आदि खाने के योग्य उत्तम जीव कहातेहैं—तदाह वशिष्ठः=ब्रह्मचारोचेन्मांसमन्त्रो योऽच्छिद्यभोजनीयं कृच्छ्रन्नादशरात्रं चरित्वाव्रतशेषं समापयेदिति=अर्थात्—उत्तम पुरुषों के खाने योग्य मांस को यदि ब्रह्मचारी खालेवै तो बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके तिस पीछे अपने श्रेय व्रत का साधन करै (इस में बारह दिन की अवधि कही जाने से यह तात्पर्य सिद्ध होता है कि ये बारह दिन अज्ञानता से मांस खा-लेने पर नियत हैं। कदाचित्त कोई जानि बूझिके मांस भक्षण करै या बिना जाने ही बारम्बार भक्षण करै सो इससेभी कठिन अतिकृच्छ्र वा पराक्रान्ति प्रायश्चित्त साधै तब शुद्ध होय) और इसी तरह अभक्ष्य जीवों का मांस खाइ लेने में अति-शय कठिन प्रायश्चित्त देखे जायँ यह वशिष्ठ ने दर्शाया है=फिर=उन्हीं वशिष्ठ ने रोगी होनेकी दशापर मांस खाने का विधान भी दर्शायाहै=यथा=सचेदद्याधीयत कामंगुरोरुच्छिद्यं भेद्यजार्थं सर्वप्राप्नोयादिति= अर्थात्—वह ब्रह्मचारी यदि ऐसे रोग से व्याधित होजाय जिसकी औषधी मांस के सिवाय और कुछ न ठहिरै (दृष्टांत जैसे पक्षाघात वातव्याधि में कबूतर का मांस वैद्य बतावै इत्यादि) तो उस मांसको शरुका जुटाकरिके खाय यदा ऐसा असंभव हो तो शरुकी आज्ञा लेकर चिकित्सा के निमित्त में सब कुछ खाय—इसमें—सब खायका यह तात्पर्यहै कि मांस लहशुन आदि जो जो चीज अभक्ष्य हों और उन्हीं से रोग शान्ति हो सक्ती हो तो शरु की

आज्ञा-लेकर निःसंदेह भक्षणा करै और उसके भक्षणा से रोग नाश होजाने वादि
सूर्यनारायणा को उपस्थान करै=यदाह वीधायन=येनेच्छेच्चिकित्सितुंस्यद्यथादेभ-
वति तदोत्थायादित्यमुपतिथेत्तदहंसःशुचिर्यदिति=अर्थात्-सुरोगीवृद्धचारी जिसवस्तु
से चिकित्सा करनेकी इच्छा करै तिससे जब कभी वह निरोगी होजाय तबउदिके
उस दोय के मिटाने को (हंसःशुचिर्यत्) इत्यादि वेदमंत्रसे सूर्यके सन्मुख उपस्थान
पढ़ै=इत वचनों की सामान्य आज्ञा से यह भी समझि परता है कि यदि वैद्य ने
रोगी सेकहे बिना किसी औषधी-में मधु मद्य भी रोगी को खंवाया हो तो इसका
दोय रोगी पर कुछ नहीं है अर्थात् रोगी ने जानि वृष्णिके निषिद्ध औषध जोखाई
हो तिसका प्रायश्चित्त रोग मिटिजाने वादिकरै=इसके दृष्टान्तपर मितासराकार
ने वशिष्ठ का यह वचन भी दर्शाया है कि (अकामोपतंतमभुवाजसनेयंकेनदुष्यती
ति वशिष्ठस्मरणात्) जैसा वाजसनेयं नामक यज्ञ में उपस्थित लोगों के आगेयदि
बिना सांगे चाहे मधु मद्य बँटता हुआ आकर स्वतः मिलिजाय तौ उस जगह पर
लेनेने का दोय नहीं है यह वशिष्ठ ने कहा) तैसा रोग की दशा में भी यदि चाहे
बिना वैद्य के देने से खालेना पराहे तिसका दोय नहीं=यह बृह्मचारी के व्रत भंग
होने का प्रसंग पाइकर थोड़े से प्रायश्चित्त यहांपर लिखे गये=किन्तु रोग होने के
बिना यदि कोई कुछ अभक्ष्य भक्षणा करै वा सूतक आदि अशुद्धिमें किसीका अन्न
खाय तिनके प्रायश्चित्त आगे अभक्ष्य भक्षणा के प्रकरणा में सर्व सामान्य कहेजाय
तहां देख लेना= और=जो कदाचित् किसी बृह्मचारी को कुत्ता आदि कादें वा
कौआ आदि छुइ जाय तिसका प्रायश्चित्त २७७ की अविकीर्ति में देखौ तहां
विशेष कर अंगिरा का वचन हुँहौ ॥ यह दोसौ बयासी का उत्तरार्ध पूरा होगया
॥ २८२ ॥ अब दोसौ तिरासी मूलश्लोक देखौ कि उसके पर्वार्धमें शुरुके प्रतिकूल
करने का प्रायश्चित्त शुरु का प्रसन्न करना कहिकर उसी बृह्मचारी के प्रसंग से
शुरु की भी प्रायश्चित्त करना उत्तरार्धमें कहा गया=तहां कुछ सन्देह यद्यपि नहीं
है क्योंकि (कच्छं वयं शुरुः) इतने पद का अर्थ यही है कि तीन कच्छ शुरुकरे
तथापि मितासरा में (कच्छवयं) पद के ऊपर उलटी आंति खड़ी करी है तिसको
भी चार पंक्तों धरे बेतेहैं देखौ=यथा=तदाशुरुः कच्छादीनां प्राजापत्यादीनां वयंकु-
र्यात् नृपुनश्चयःप्राजापत्याः तथार्थात्पृथङ्निवेशिनीसंख्याशुपपन्नस्यात् तच्चैकाद-
शप्रयाजानुयजतीतिवद्वदृत्यपेक्षासंख्येति चतुरसं स्वल्पपृथक्तत्वेसंभवत्यादृत्यपेक्षाया
अन्यादृत्यात् यदीयमुत्पन्नातासंख्यास्यात् तदास्यादपिकर्वाचिदादृत्यपेक्षा किन्तु

त्पतिगतेयमग्रतस्तिस्त्राहुतिर्जुहोतीति वत्स्वरूपपृथक्तापेक्षयैवन्नित्वसंख्याघटना
युक्ता—ये पंक्तियाँ—केवल विद्वानोंका वाग्विनोद है वेही सोचिके देखेंगे कि इनसे
क्या क्या सार निकसा—किन्तु सर्वजनों के समझने योग्य वही पाठ है जो ऊपर
२८३ के अर्थ लिखि चुके और वही प्रधान अर्थ है—अथवा—यहां की भान्ति
जनक पंक्तियों से इतना सार लिया जासक्ता है कि जैसा (२७४ के उत्तरार्द्ध मूल
श्लोकवाली अधिकोक्ति में कृच्छ्र शब्द के सामान्य लक्षणा कहेगये थे कि) एक
वर्ग छमाही से लेकर घटते घटते छ दिन तीन दिन एक दिन का भी कृच्छ्र व्रत
होता है इनमें से जहां जैसे बड़े या छोटे की योग्यता समझी जाय तहां तैसाही
किया जाय—सो इस व्यवस्था के अनुसार गुरु के प्रायश्चित्त में भी छोटे या बड़े
कृच्छ्रों के स्वरूप यदि माने जायें तौ भी तीन कृच्छ्रों के स्वरूप मिलि कर कोई
सो बड़ी या छोटी संख्या दिनों की हो जायगी अन्यथा सीधा अर्थ जैसा
योगीश्वरने निष्कपट प्रयोग दर्शाया तिससे तीन कृच्छ्रों के (बारहतिथ्या) कृत्तिस
दिन होते हैं तिनसे कोईसा अन्याय नहीं प्रतीत होता है • क्योंकि गुरु के लियेयह
सक बड़ी ताकीद रखी गई है कि ऐसे प्राणहानि वाले स्थान पर शिष्य को न
भेजे • फिर भी जहां गुरुने ताकीद को न सोचि कर अतिक्रम किया होय जिससे
शिष्य के प्राणाही नाश होजाय—तहां ऐसे गुरुपर कृत्तिसदिनका प्रायश्चित्त बहुत
बड़ा नहीं है जिसके लिये अवोक्त पंक्तियों का सहारा लिया जाय जिसमें कृत्तिस
दिन से कुछ न्यून अवधि पाई जाय इसमें कोई सार नहीं है ॥ २८३ ॥

यह आशय भी विदित होना चाहिये कि चौबीसवां परिच्छेद की आदि लेकर
यहां तक बहुधा परिच्छेदों में हिंसा के प्रायश्चित्त वर्णन होते रहे अर्थात् कहीं
ब्रह्महत्या कहीं नरहत्या कहीं गोहत्या कहीं बारी बब कहीं गर्भहो का वध कहीं
अन्य भांति कें पशु आदि जीवों की हिंसा बल्कि इस दोसौ तिरासी में भी शिष्य
की हिंसा उसको भेजि देने के बहाने से दर्शाई गई—सो इन पूर्वोक्त सर्वहिंसाओं का
अपवाद आगे दोसौ चौरासी मूल श्लोक से दशविंशे—यद्यपि जहां जहां ब्रह्महत्या
गोहत्या आदिका वर्णन किया गया तहां भी ग्रन्थांतर के वचनों से अपवाद कटका
स्वरूप बेंतेरहेहैं—परन्तु यहांपर मूल श्लोक से योगीश्वर आपही कट दशविंशे कि
सेसी अनुकामुक दशाओं में हिंसा होजाने परभी हिंसा नहीं कहातो है ॥

(पूर्वोक्तसकलहिंसाऽपवादः)

क्रियमाणोपकारेतुमृतेविप्रेनपातकम् २८४ (इत्यर्थमेव)

अर्थः—उपकार करते हुये विप्रके मरने में पातक नहीं है—अर्थात्—जहां गुरु या वैद्य आदि किसीने उसीके उपकार हेतु कहीं भेजा था उसका रोग मिटाने की वैद्य ने चिकित्सा करी हो जिससे कोई ब्राह्मण भी मरजाय तौभी कुछ प्रायश्चित्तकी जल्दतर नहीं है ॥ २८४ ॥

२८४ अधिकोक्तिः—यह चौरासी का अर्द्ध ऊपरले दोसौ तिरासी से संबन्ध राखता है अर्थात् इसके द्वारा गुरु के प्रायश्चित्त पर (अपवाद) नामक सूचित करी है कि जब गुरु ने अपने कामको न भेजा हो किन्तु उसी शिष्य का उपकार सोचि कहीं भेजा हो जहां जाकर ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी आदि कोई ब्राह्मण मरजाय तौ इस दशा में उस गुरुपर न दोष है न प्रायश्चित्त की जल्दतर है—यहीचौरासी का वचन उस गुरुके सिवाय वैद्य आदि उपकारियों से भी सर्वन्वित है तिससे उनके भी उपकारों में मरजाने का अपवाद रूप यही अर्थ लगाया जाता है कि वैद्यक अनुसार जिस वैद्य ने किसी को कुछ औषध वा पथ्य या कोईसा अन्न आदि अपने हाथसे खिलाया वा बताया हो रोगीका उपकार चाहिकर ऐसी दशामें यदि कोई ब्राह्मण भी मरजाय तौभी वैद्य दोषी नहीं है न उसपर प्रायश्चित्तकी अपेक्षा है (इस व्यवस्थामें विप्र या ब्राह्मण का मरजाना कहा सोभी सबजीवोंका उपलक्षण माना गया कि क्षत्री आदि कोई आदमी या पशु गाय बैल घोड़ा आदि में भी जिस किसीकी भलाई चाहिकर चिकित्सा आदि कोई कर्म किया जाय या उसीसे करवाया जाय तिसके मरजाने में भी दोष नहीं है—इसी लिये गोवध प्रायश्चित्तों के प्रकरण में (यंत्रणो गोश्चिकित्सार्थं गूढगर्भविमोचने यत्नेहतेर्विपत्तिः स्यान्नमपाये नलिष्यते) इत्यादि अनेक वचन लिखि चुके तहां देखो ॥ २८४ ॥

अमुक दशा में हिंसा का दोष नहीं लगता है यह कहा गया इसीके प्रसंगसे यह बात भी उत्पन्न भई कि जब कोई किसीपर भूता पाप लगावै कि इसने मेरा अमुक मनुष्य या गऊ आदि को मार डारा या अगम्यगमन किया था मदिरा पान करी इत्यादि भूता दोष लगाने का प्रायश्चित्त आगे देखो ॥

त्पतिगतेयमश्रुतस्तिस्त्राहुतिर्जुहोतीति वत्स्वरूपपृथक्तापेक्षयैवश्रित्वसंदयघटना
 युक्ता—ये पंक्तियाँ—केवल विद्वानोंका वाग्विनोद है वेही सोचिके देखेंगे कि इनसे
 क्या क्या सार निकसा—किन्तु सर्वजनों के समझने योग्य वही पाठ है जो ऊपर
 २८३ के अर्थ लिखि चुके और वही प्रधान अर्थ है—अथवा—यहां की भान्ति
 जनक पंक्तियों से इतना सार लिया जासक्ताहै कि जैसा (२७४ के उत्तरार्द्ध मूल
 श्लोकवाली अधिकोक्ति में कृच्छ्र शब्द के सामान्य लक्षसा कहेगये थे कि) एक
 वर्ष छमाही से लेकर घटते घटते छः दिन तीन दिन एक दिन का भी कृच्छ्र व्रत
 होता है इनमें से जहां जैसे बड़े या छोटे की योग्यता समझी जाय तहां तैसाही
 किया जाय—सो इस व्यवस्था के अनुसार शुरु के प्रायश्चित्त में भी छोटे या बड़े
 कृच्छ्रों के स्वरूप यदि माने जायें तौ भी तीन कृच्छ्रों के स्वरूप मिलि कर कोई
 सी बड़ी या छोटी संख्या दिनों की हो जायगी अन्यथा सीधा अर्थ, जैसा
 योगीश्वरने तिष्कपठ प्रयोग दर्शाया तिससे तीन कृच्छ्रों के (बारहतिथ्या) छत्तीस
 दिन होते हैं तिनसे कोईसा अन्याय नहीं प्रतीत होता है • क्योंकि शुरु के लिपेयह
 एक बड़ी ताकीद रखी गई है कि ऐसे प्राणहानि वाले स्थान पर शिष्य को न
 भेजे • फिर भी जहां शुरुने ताकीद की न सोचि कर अतिक्रम किया होय जिससे
 शिष्य के प्राणाही नाश होजाय • तहां ऐसे शुरुपर छत्तीसदिनका प्रायश्चित्त बहुत
 बड़ा नहीं है जिसके लिये अत्रोक्त पंक्तियों का सहारा लिया जाय जिसमें छत्तीस
 दिन से कुछ न्यून अवधि पाई जाय इसमें कोई सार नहीं है ॥ २८३ ॥

यह आशय भी विदित होना चाहिये कि चौबीसवां परिच्छेद की आदि लेकर
 यहां तक बहुधा परिच्छेदों में हिंसा के प्रायश्चित्त वर्णन होते रहे अर्थात् कहीं
 ब्रह्महत्या कहीं नरहत्या कहीं गोहत्या कहीं नारी वध कहीं गर्भहो का वध कहीं
 अन्य भांति कौं पशु आदि जीवों की हिंसा बल्कि इस दोसौ तिरासी में भी शिष्य
 की हिंसा उसको भैंजि देने के बहाने से दर्शाई गई—सो इन पूर्वोक्त सर्वहिंसाओं का
 अपवाद आगे दोसौ चौरासी मूल श्लोक से दर्शविगे—यद्यपि जहां जहां ब्रह्महत्या
 गोहत्या आदिका वर्णन किया गया तहां भी ग्रंथांतर के वचनों से अपवाद हटका
 स्वरूप देतेरहेहैं—परन्तु यहांपर मूल श्लोक से योगीश्वर आपही हट दर्शविगे कि
 सेसी अनुकामुक दयाओं में हिंसा होजाने परभी हिंसा नहीं कहातो है ॥

(पूर्वोक्तसकलहिंसाअपवादः)

क्रियमाणोपकारेतुमृतेविप्रेनपातकम् २८४ (इत्यधमेव)

अर्थः—उपकार करते हुये विप्रके मरने में पातक नहीं है—अर्थात्—जहाँ गुरु या वैद्य आदि किसीने उसीके उपकार हेतु कहीं भेजा या उसका रोग मिटाने की वैद्य ने चिकित्सा करी हो जिससे कोई ब्राह्मण भी मरजाय तोभी कुछ प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं है ॥ २८४ ॥

२८४ अधिकोक्तिः—यह चौरासी का अद्वा ऊपरले दोसौ तिरासी से संबन्ध राखता है अर्थात् इसके द्वारा गुरु की प्रायश्चित्त पर (अपवाद) नासङ्ग सुचित करी है कि जब गुरु ने अपने कामको न भेजा हो किन्तु उसी शिष्य का उपकार सोचि कहीं भेजा हो जहाँ जाकर ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी आदि कोई ब्राह्मण मरजाय तो इस वशा में उस गुरुपर न दोष है न प्रायश्चित्त की जरूरत है—यही चौरासी का वचन उस गुरु को सिवाय वैद्य आदि उपकारियों से भी संबन्धित है तिससे उनके भी उपकारों में मरजाने का अपवाद रूप यही अर्थ लगाया जाता है कि वैद्यक अनुसार जिस वैद्य ने किसी को कुछ औषध वा पथ्य या कोईसा अन्न आदि अपने हाथसे खिलाया वा बताया हो रोगीका उपकार चाहिकर ऐसी दशा में यदि कोई ब्राह्मण भी मरजाय तोभी वैद्य दोषी नहीं है न उसपर प्रायश्चित्तकी अपेक्षा है (इस व्यवस्थामें विप्र या ब्राह्मण का मरजाना कहा सोभी सबजीवोंका उपलक्षण माना गया कि सभी आदि कोई आदमी या पशु गाय बैल घोड़ा आदि में भी जिस किसीकी भलाई चाहिकर चिकित्सा आदि कोई कर्म किया जाय या उसीसे करवाया जाय तिसके मरजाने में भी दोष नहीं है—इसी लिये गोवध प्रायश्चित्तों के प्रकरणा में (यंत्रणो गोश्चिकित्सार्थं गृहगर्भविमोचने यत्नेकतेविपत्तिः स्यान्नसपाये नलिप्यते) इत्यादि अनेक वचन लिखिचुके तहाँ देखो ॥ २८४ ॥

अमुक दशा में हिंसा का दोष नहीं लगता है यह कहा गया इसीके प्रसंगसे यह बात भी उत्पन्न भई कि जब कोई किसीपर झुंटा पाप लगावे कि उसने मेरा अमुक मनुष्य या गऊ आदि को मार डारा या अगम्याभामन किया या मदिरा पान करी इत्यादि झुंटा दोष लगाने का प्रायश्चित्त आगे देखो ॥

अथमिथ्या भिशंसनादिदोषस्यप्रायश्चित्तप्रकाश

कोऽयंपरिच्छेदः षष्ठितमः (६०) ॥



इस परिच्छेद में मिथ्याभिशंसन दोषका प्रायश्चित्त उसके लिये दशविंशे कि जिसने किसी पर झूठा पाप लगाया हो—और उसको भी कि जिसपर झूठा पाप लगाया जाय—इन दोनों के प्रसंग से अपराधों के प्रायश्चित्त भी सामान्य कहे जायेंगे ॥

(मिथ्याऽऽरोपितदोषप्रायश्चित्तं)

मिथ्याऽभिज्ञातिनोद्वेपातुद्धिः समाभूतवादिनः मिथ्याऽभिज्ञास्तदोपज्वत्समावत्तेऽसृपावदन् २८५ ॥
महापापोपपापान्यायोऽभिज्ञातेऽसृपापरम् अन्वक्षोमासमासीततज्जापीनियतेन्त्रियः २८६ ॥

अर्थः—द्रोहसे झूठ अभिशंसन कर्ता समाभूतवादी को दूना दोष और असृया कहिते हुये मिथ्याभिज्ञास्तका दोष भी अच्छीतरह होता है—अर्थात्—जब किसी का भाग्योद्ध्य प्रतिष्ठा की रुद्धि आदि उत्कर्ष को ईर्ष्या द्रोह से न सहिकर कोई द्रोही उसको झूठा ही अभिशाप लगावै अर्थात् सन्मुखों के समाज में कोई सा बड़ा या छोटा पाप सुनावै कि उसने ब्रह्महत्या करी या मद्यपान वा अगत्यागसन वा गोवध आदि अमुक पाप किया तो उस झूठ लगाते वाले को वही पाप उससे दूना लगा रहिरता है जो पाप उसने मिथ्याही किसीपर लगाया—और जिसने किसीका सच्चा ही पाप प्रथम अंगुष्ठा वनिकर सब लोगोंके सन्मुख प्रकाश किया हो जिसपापको स्वलोका नहीं जानतेथे तो भी उसपापी के और जो पहिले संचित किये पाप हैं सो इस दोषवक्ता के ऊपर चढ़िआते हैं ॥ २८५ ॥ महापाप या उपपापों से जो कोई पराये को सृयाही अभिशंसै सो एक महीना भर जितेन्द्र होके जलही का आहार करते हुये जपमें बैठे—यह उन्हींका प्रायश्चित्त है ॥ २८६ ॥

२८५ अधिकोक्तिः—वक्ता के ऊपर पाप चढ़ि आते हैं इसीलिये आपस्तम्ब ने यह कहा है (दोयंनुध्वानपर्वःपरेभ्यः पतितस्यसमाख्यातास्याद्य परिहरेच्चैतंधर्मसु) अर्थात्—किरी पतित का दोष देखि जानि के प्रथम देखने वाला और लोगों के सन्मुख ब्योरा न कहे और व्यवहार के धर्मोंमें भी इसको ऐसी रीतिसे छोड़ कि

जिससे सबके सामने व्योरा न कहिनापरै किन्तु अपने आपही युक्तिकेसाथ पतित से बचा रहे कि जब तक दीयीका दोय औरोंके द्वारा प्रकाश होय ॥ २८५ ॥ इन के प्रायश्चित्तमें महीनाभर जल पीके जप करना जो ऊपर कहिचुके वह जप भी शुद्धवतीनाम की ऋचाओं से करना चाहिये=यथाह वशिष्ठः=ब्राह्मणामनुतेनाभिंशं स्य पतनीयेनोपपातकेनवामाससम्बन्धः शुद्धवतीभिराचर्त्तयेद्यमेवावभृयंवागच्छेत्=अर्थात्-वशिष्ठने भी ऐसा कहाहै कि ब्राह्मणको असत्य पाप जो जाती धर्मसे गिर जाने योग्य महापातक या उपपातकमें गिनती होय तिससे दूयितकारिके यह प्रायश्चित्त करै कि शुद्धवती इसनामसे प्रसिद्ध जो ऋचा है तिनसे जप करै एक महीना तक जलहीके आहारसे उपवास राखै तब शुद्ध होय अथवा यह न होसके तो जहाँ कहीं अन्नमेव होता मुनै तहाँ जाकर उसके अवभृथनाम के अन्तिमस्नान में शामिल होजाय तो भी शुद्ध होजावे (इसमें जो महापाप और उपपाप कहा तिसके बीचमें अति पातक आदि और भांति के पाप जो कुछ होते हैं सो भी सब समुझि लेना) यह भूँटा दोय लगानेकी व्यवस्था जो लिखी गई सो सब उसके प्रायश्चित्तहै कि जहाँ ब्राह्मण को किसी ब्राह्मण ने महापातक दोय लगायाहो=अर्थात् जहाँ कोई क्षत्री आदि इतरवर्णका मनुष्य होकर ब्राह्मणपर भूँटा पाप लगावे तहाँ उस क्षत्री आदि के लिये इन्हीं प्रायश्चित्तोंका दूना तिगुना आदि भार चढायाजाय सो उस न्यायसे कि जैसा (प्रतिलोमापवादयद्विगुणास्त्रिगुणोदमः) यह व्यवहार मर्यादा में दराह दूना तिगुना कहागया था=और जहाँ क्षत्रीआदि किसी नीचे वर्णको ब्राह्मण आदि ऊँचे वर्णोंके मनुष्यने भूँटा पाप लगायाहो तहाँ (वर्णानामानुलोम्येन तस्मादद्विहानितः) यह दराहका प्रकार जैसा व्यवहार मर्यादामें लिखि चुके तिसके अनुसार यहाँ प्रायश्चित्त भी कम किया चाहिये=और जिसने सच्चा दोय प्रकाश कियाही तिसकेलिये २८५वाली व्यवस्थाके अनुरूप केवल आधाही प्रायश्चित्त विचारा जाय० सो यह उससे आधा समुझना कि जितना भूँटा पर साबित किया जाय (यह तो महापापोंका दोय लगाने मध्ये नियम कहे गये) इन्हीं सब लिखे हुये नियमोंसे पौना पौना प्रायश्चित्त उनकेलिये विचारा जाय कि जिन्होंने अति पातक नामके पापों से दोय लगायाहो० और उनकेलिये आधा आधा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जिन्होंने पातक लक्षणा के पापोंसे दोय लगायाहो० और जिन्होंने उपपातक लक्षणाके पापों से दोय लगाया हो तिनकेलिये इन प्रायश्चित्तोंका चौथाई भाग देना चाहिये क्योंकि उपपातक खपी क्षत्री आदि के बच

अथमिथ्या अभिशंसनादिदोषस्यप्रायश्चित्तप्रकाश

कोऽयंपरिच्छेदः षष्ठितमः (६०) ॥



इस परिच्छेद में मिथ्याऽभिशंसन दोषका प्रायश्चित्त उसके लिये दशविंशे कि जिसने किसी पर झूठा पाप लगाया हो—और उसको भी कि जिसपर झूठा पाप लगाया जाय—इन दोनों के प्रसंग से अपराधों के प्रायश्चित्त भी सामान्य कहे जायेंगे ॥

(मिथ्याऽऽरोपितदोषप्रायश्चित्तं)

मिथ्याऽभिशंसति नो द्वे पातु द्विः समाभूतवादिनः मिथ्याऽभिशंसतो पञ्चसमावर्त्तेऽमुपावदन् २८५ ॥
महापापोपपाभ्यां योऽभिशंसते नृपापरम् अभिक्षोमात्समासीत जापी निपतेन्द्रियः २८६ ॥

अर्थः—द्रोह से झूठ अभिशंसन कर्त्ता समाभूतवादी को दूना दोष और असूया कहिते हुये मिथ्याभिशस्त का दोष भी अच्छी तरह लेता है—अर्थात्—जब किसी का भाग्योदय प्रतिष्ठा की रुद्धि आदि उत्कर्ष को ईर्ष्या द्रोह से न सहि कर कोई द्रोही उसको झूठा ही अभिशाप लगावै अर्थात् सगुणों के समाज में कोई सा बड़ा या छोटा पाप सुनावै कि उसने ब्रह्महत्या करी या मद्यपान वा अगन्त्यागमन वा गोवध आदि अमुक पाप किया तो उस झूठ लगाने वाले को वही पाप उससे दूना लगा ठहिरता है जो पाप उसने मिथ्याही किसीपर लगाया—और जिसने किसीका सचा ही पाप प्रथम अंगुष्ठा वनिकर सब लोगोंके सम्मुख प्रकाश किया हो जिसपापको सबलोग नहीं जानते थे तो भी उसपापी के और जो पहिले संचित किये पाप हैं सो इस दोषवक्ता के ऊपर चढ़ि आते हैं ॥ २८५ ॥ महापाप या उपपापों से जो कोई पराये को मृयाही अभिशंसै सो एक महीना भर जितेन्द्र हीकी जलही का आहार करते हुये जपमें बैठे—यह उन्हींका प्रायश्चित्त है ॥ २८६ ॥

२८५ अधिकोक्तिः—वक्ता के ऊपर पाप चढ़ि आते हैं इसीलिये आपस्तम्ब ने यह कहा है (दोषबुध्वान्पूर्वः परेभ्यः पतितस्य समाख्यातास्याद्य परिहरेद्येनैवर्मसु) अर्थात्—किसी पतित का दोष देखि जानि के प्रथम देखने वाला और लोगों के सम्मुख व्योरा न कहै और व्यवहार के वर्गोंमें भी इसको सेमो रीतिसे छोड़ै कि

जिससे सबके सामने व्यौरा न कहनापरै किन्तु अपने आपही युक्तिके साथ पतित से बचा रहे कि जब तक दोषीका दोष औरोंके द्वारा प्रकाश होय ॥ २८५ ॥ इन के प्रायश्चित्तमें महीनाभर जल पीके जप करना जो ऊपर कहि चुके वह जप भी शुद्धवतीनाम की ऋचाओं से करना चाहिये=यथाह वशिष्ठः=ब्राह्मणमनुतेनाभिर्गन्ध पतनीयेनोपपातकेनवासमस्त्वक्षः शुद्धवतीभिरावर्तयेदश्वमेवावभृथंवागच्छेत्= अर्थात्-वशिष्ठने भी ऐसा कहाहै कि ब्राह्मणको असत्य पाप जो जाती धर्मसे गिर जाने योग्य महापातक या उपपातकमें गिनती होय तिससे दूयितकरिके यह प्रायश्चित्त करै कि शुद्धवती इसनामसे प्रसिद्ध जो ऋचा है तिनसे जप करै एक महीना तक जलहीके आहारसे उपवास राखे तब शुद्ध होय अथवा यह न होसके तो जहां कहीं अन्नमेघ होता सुनै तहां जाकर उसके अवभृथनाम के अन्तिमस्त्राम में शामिल होजाय तो भी शुद्ध होजावे (इसमें जो महापाप और उपपाप कहा तिसके बीचमें अति पातक आदि और भाति के पाप जो कुछ होतेहैं सो भी सब समुभि लेना) यह भूँटा दोष लगानेकी व्यवस्था जो लिखी गई सो सब उसके प्रायश्चित्तहै कि जहां ब्राह्मण को किसी ब्राह्मण ने महापातक दोष लगायाहो=अर्थात् जहां कोई सत्री आदि इतरवर्गका मनुष्य होकर ब्राह्मणपर भूँटा पाप लगावे तहां उस सत्री आदि के लिये इन्हीं प्रायश्चित्तोंका हुना तिथना आदि भार चढायाजाय सो इस न्यायसे कि जैसा (प्रतिलोमापवादेयद्विगुणास्त्रिगुणोदमः) यह व्यवहार मर्यादा में दराइ हुना तिथना कहागया था=और जहां सत्रीआदि किसी नीचे वर्गको ब्राह्मण आदि ऊँचे वर्गोंके मनुष्यने भूँटा पाप लगायाहो तहां (वर्णानामानुलोभ्येन तस्माद्वर्द्धानितः) यह दराइका प्रकार जैसा व्यवहार मर्यादामें लिखि चुके तिसके अनुसार यहां प्रायश्चित्त भी कम किया चाहिये=और जिसने सखा दोष प्रकाश कियाहो तिसकेलिये २८५वाली व्यवस्थाके अनुरूप केवल आधाही प्रायश्चित्त विचारा जाय० सो यह उससे आधा समुभन्ना कि जितना भूँटा पर सावित किया जाय (यह तो महापापोंका दोष लगाने मध्ये नियम कहे गये) इन्हीं सब लिखे हुये नियमोंसे पौना पौना प्रायश्चित्त उनकेलिये विचारा जाय कि जिन्होंने अति पातक नामके पापों से दोष लगायाहो और उनकेलिये आधा आधा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जिन्होंने पातक लक्षणा के पापोंसे दोष लगायाहो और जिन्होंने उपपातक लक्षणाके पापों से दोष लगाया हो तिनकेलिये इन प्रायश्चित्तोंका चौथाई भार देना चाहिये क्योंकि उपपातक सखी सत्री आदि के वध

का जो प्रकरणा लिखा गया था उसमें (तुरीयोऽब्रह्महत्यायाः सवियस्यवधेऽस्मृतः) यही वचन कहा गया था कि ब्रह्महत्यारूपी महापातक का प्रायश्चित्त जो बारह वर्ष का होता है तिसका चौथाई भाग सभी को वधमें समुभ्जना • तिससे यहां भी वही तात्पर्य है • और इस चौथाई से भी कुछ न्यून व्रत उनके लिये लगाना कि जिन्होंने प्रकीर्ण लक्षणा के पापों से किसीको दोष लगाया हो—इती नियम का प्रसार भी यह वचन है कि (शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्) शक्ति और पाप की वड़ाई छोटाई देखिके प्रायश्चित्त लगाने ॥ ० ॥ इसके सिवाय जिसने भूँटा पाप लगाने का बारम्बार अभ्यास किया हो यहा अन्य लोगों को भूँटे साक्षी आदि बनाकर वही दृढतासे महापापरूपी दोष किसी ब्राह्मण पर लगाया हो तिसके लिये पाँच और लिखितका बताया प्रायश्चित्त है—यदा हतुः शंखं लिखितौ=नास्तिकः कृतघ्नः कूरव्यवहारी ब्राह्मण उचित्तो मिथ्याभिशांसी चेत्येते यद्वर्याणि ब्राह्मण गृहेषु भैक्ष्यं चरेयुः संवत्सरं धौतभैक्ष्यं श्रीयुः यद्मासान् वारा अनुगच्छेयुरिति=अर्थात्—दोनों धाता मुनीश्वरोंने कहा है कि एक नास्तिक • कृतघ्न • कूर व्यवहारी जो मिलावकी चीजें बेचें • ब्राह्मण की उचित्त जीविका बिगाड़ने वाला • और मिथ्याभिशांसी जो किसी को भूँटा पाप लगावें • ये सभी इतने पापी लोग छे वर्य भर ब्राह्मणों के घर भिक्षा माँगें या एक बर्य टुकड़े माँगे हुये धोकर खार्थ या एक रुमाही भर गौओं के पीछे फिरिके सेवा करें तब शुद्ध होयें—ये बड़े छोटे तीन प्रायश्चित्त भी अपराधकी बड़ाई छोटाई देखिके अपराधी पर आकूट किये जायेंगे ॥ २८६ ॥ दोष लगानेवाले के प्रसंगसे उसके लिये भी प्रायश्चित्त आगे दशावेंगे कि जिसपर भूँटा पाप लगाया गया हो उसका नाम अभिशस्त कहा जाता है ॥

(अभिशास्त प्रायश्चित्तं)

अभिशास्तो मृषा कृच्छ्रं चरेदाग्नेयमेव च । निर्वपेत्तु पुरोडाशं वायव्यं पशुमेव वा २८७

अर्थः—मृषा अभिशस्त भी कृच्छ्र करें वा आग्नेय पुरोडाश चोवें या वायव्य पशुओं को—अर्थात्—भूँटा पाप शाप जिसपर लगाया गया सो मृषा अभिशस्त कहाता है उसको भी यह प्रायश्चित्त करना चाहिये कि प्राजापत्य नामका कृच्छ्र व्रतसाधे अथवा अग्निदेवता की प्रवानतासे उसीके नामपर साकल्य होम अथवा वायुदेवता के नामसे वायव्य पशुयाग करें तब शुद्ध होय ॥ २८७ ॥

२८७ अधिकोक्तिः—(वायव्यं प्रवेत्तुः कागमालभेतेति युतिदर्शनाच्च ज्ञायासवश्चेति च

रौप्यशुरघापिजायते) अर्थात् मूलश्लोक में यद्यपि वायव्य पशुका कोई नाम नहीं कहा तोभी यह युक्ति जो प्रसिद्ध है कि वायव्य पशुके नामसे सुपेद बकरा बलिदान करे) तिससे यहां भी सुपेद बकरा समझा गया है—मूलश्लोक में प्रायश्चित्तों के दो तीन भेद जो दर्शाये तिनमें कर्ताकी शक्ति और देश काल आदि का अवरोधो सम्भव जानिके विकल्प किया जासक्ता है कि इनमें से जिस भेदका अवसर ठीकसमै वही किया जाय ॥ ० ॥ इससे पहिली अधिकीकृति के प्रारंभ मे २८५ के वादि जो वशिष्ठ का वचन लिखा गयाया तिसके अन्तमें वशिष्ठजीने (स्तेनैवाभिगस्तोव्याख्यातः) यह इतना पद और भी लिखिकर यह अर्थ प्रकट कियाहै कि एकमहीना जल पीकर जप करना जो झूठे पाप लगानेवाले को कहा वही उसको भी चाहिये जिसपर झूठा पाप लगाया जाय—सो यह एक महीनेका बड़ा प्रायश्चित्त अभिगस्त की अपेक्षा में उस दशापर आरुह्य होसक्ता है कि जब उसने बहुत कालतक प्रायश्चित्त न कियाहो तब यह बड़ा करना चाहिये क्योंकि दण्डके प्रकरणमें भी ऐसा नियम है कि (संवत्सराभिगस्तस्यदुष्टस्यद्विगुणोदमः) अर्थात् जब कोई दुर्जन एक साल भरसे कलंकित सजाव किया गयाहो और वह कोईसा अपराध करे तब उस अपराध का जो दंड होताहो सो उसको दूना किया जाय ॥ ० ॥

पैठेनसि ने यह कहा है—अनुतेनाभिगस्तमानः कृच्छ्रञ्चरेतमासपातकेयु महापात केयुद्विमासम्—अर्थात्—असत्यपापसेशापित दूयित कियाहुआ पुन्यकृच्छ्रव्रत आचरे जो बारहदिनमें होताहै (परन्तु ये बारह दिन छोटे उपपापोंके अभिग्राप में समझने क्योंकि)प्रेषातकोंके अभिग्रापमेंएक महीनाभर व्रतचाहिये औरमहापातकोंकेअभिग्रापमें दो महीने(इसमें भी ऊपरले वशिष्ठके वचन समान और कर्ताकी शक्ति आदि को अनुसार व्यवस्था कल्पित करनी चाहिये)=इसी प्रकार=और भी जे कोई वचन अभिगस्तकी अपेक्षा पर पायेजाय तिनके बडे छोटे प्रायश्चित्तों की व्यवस्था भी तात्कालिक देशकाल और शक्ति आदि के अनुसार शोचिके समुक्ति लेना=इसके सिवाय=मनुने एक सामान्य रीतिके प्रायश्चित्त भी दर्शाये हैं जो अभिगस्त आदि औरों पर भी आरुह्य होसक्ते हैं=यथाह मनु=यथात्रकालतामासंसंहिताजपवचदा होमाश्चक्रकलानित्य संपत्तयानांविशोवनम्—अर्थात्—अपत्य वे पुरुष जिनका किसी कलंकसे पातितमें बैठना भोजन करना आदि चद होय ऐसे पुत्र्य अनेक तरह के कलकी होते हैं उनमें एक अभिगस्त भी कृच्छ्र शोचि को गिनती कियागया है—तिन सबका विशोवन प्रायश्चित्त एक महीना भर (यथात्रकालता) अर्थात् छोटे

छठे दिन भोजन एक महीना भर करना अथवा यह न होसके तो संहिता का जप पाठही एक महीना भर करे अथवा साकल्य सामग्रीको होमही रोज करता रहे तो शुद्धि उनकी होजाती है ॥ ० ॥ इस ऊपर की व्यवस्था में मृग आभिषक्त के प्रायश्चित्त जो कुछ कहे गये तिनपर बहुत कुछ सन्देह किया गया है कि जब भूँदाही अपवाद लगाया गया तो फिर उसका क्या दोष है कि जिसके लिये प्रायश्चित्त करना कहा-इसका यही उत्तर है कि यद्यपि उसका दोष कुछ इस देह से नहीं पाया गया तोभी पहिले जन्मका पाप उसके ऊपर आनिके आरुढ़ हुआ कि जिसने महा पाप छपी भूँदा कलंक उसपर आरोपित करवाया तिसकी शान्तिके निमित्तमें प्रायश्चित्त उसपर दृढ़िरा-तिससे विरोध कोई सा नहीं है न शंका करने की अवकाश है-क्योंकि-जैसे घाव वा फोड़ा फुंसी आदिमें कोड़े पर जानेका प्रायश्चित्त पूर्वजन्म कृत पापोंका उदय देखि उनकी शान्तिके निमित्त कहागया था ७७ की अधिकोक्ति में देखी तैसा यह भी है ॥ २८७ ॥ दोसरी अस्सी मूलप्रलोक से लेकर अपने नियम तोडि देनेका चर्चा चला आताहै तिससे निचले परिच्छेदमें भी नियम टूटिजाने की प्रायश्चित्त धर्मान होंगे कि जब किसी रजस्वला के नियम या पति का नियम या देवर जेठोंका उचित नियम टूटिजाय ॥ २८७ ॥

अथ रजस्वलाद्यगम्यागमनस्य रजस्वलायाश्च नियम भङ्गस्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयमपरिच्छेदः एकषष्टिः (६१)



इस परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तों का प्रकाश किया जावेगा जो पुन्य को रजस्वला संगम करने में या भाईकी भार्या गमन करनेमें आवश्यक हैं-और स्त्री जो रजस्वला होते परस्पर दो भिड़ि के नियम खोवें या कुत्ता वा चंडाल आदि सलीन जीवों को छुडके नियम तोडि तिसकी आवश्यक हैं ॥

(अगम्यागमन प्रायश्चित्तं)

अनियुक्तो भ्रातृजायां गच्छन् वचान्द्रायणं चरेत् । त्रिरात्रान्ते घृतं प्राश्य गच्छेदक्षया विमुक्तपाति २८८ ॥

अर्थ-भ्राताकी भार्यामें नियुक्त किये बिना गमन करते हुये चांद्रायण आचरे-अर्थात्-नियोग कर्मकी आज्ञा शुरु अनो से मिले बिनाही यदि कोई अपने छोटे या

बड़े किसी भाई की विधवा आदि भार्यामें गर्भदान के मनोरथ से संगम करें सो भी एक सहीना भर चाँदायरा व्रत साथै तब शुद्ध होय ॥ १ ॥ उदक्यामें जाइके तीनरात्रि के पीछे घृत चाटिके शुद्ध होता है—अर्थात्—उदक्या रजस्वला यद्यपि अपनी भार्या होय तिसमें संगम करिके तीन दिन राति भर निराहार-उपवास किये पीछे चौथे दिन घी खानेसे विशुद्ध होता है ॥ २८८ ॥

२८८ अधिकोक्तिः—भावजमें संगमका प्रायश्चित्त जो ऊपर लिखा सो केवल एकवारके संगम और इच्छाके विना संगम होनेपर समुभन्ता—किन्तु—इच्छासे चाँह कर संगम या कईवार संगम कियाहो तिसके लिये श्रवणमुक्तिका कहा प्रायश्चित्त है—यथाह शंखः—परिवर्त्तिःपरिवेत्ताच्च संवत्सरत्राह्मणागृहेयुः भैक्ष्यंचरेयातांज्येष्ठभा र्यामनियुक्तोऽगच्छस्तदेवकनिय भार्याचेति—अर्थात्—परिवर्त्ति और परिवेत्ता भी एकवर्षभर ब्राह्मणा के घरों में भिक्षासाँगीं तथैव अपने जेठे या छोटेभाईकी भार्या में नियुक्त नहीं कियाहुआसंगम करें सोभी इसी प्रायश्चित्तको आचरें ॥ १ ॥ रजस्वला के संगमका जो प्रायश्चित्त ऊपर कहागया सो भी एकवार और चाहे विना संगम होजाने में समभन्ता—किन्तु—कईवारके अभ्यासमें शातातपका कहा प्रायश्चित्त है—यथाह शातातपः—रजस्वलागमने सप्तरात्रं—अर्थात्—रजस्वला का संगम करने में सात रात्रिका व्रतकरें—और इच्छासे चाँहकर एकवार भी संगम करने में यही प्रायश्चित्त है—परन्तु—जिसने कामनासे चाँहकर कईवारका अभ्यास किया हो तिसके लिये अग्रेक प्रायश्चित्त है—यथाह एहत्संवर्तः—रजस्वलांतुयोगच्छेद्गर्भिणीपतितांतथा तस्यपापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रं विशोबनम्—अर्थात्—जो रजस्वलामें संगम करें या गर्भ वतीमें करें या पतिता जो महापातकोंसे संयुक्त हुईहो तिसमें संगम करें तो इसपापों के पाप शोधनेकी अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त है—इनके सिवाय—जो शंख ने तीन वर्ष का प्रायश्चित्त कहाहै कि—पावस्तुशूद्रहत्यायामुदक्यागमनेतथा—अर्थात्—नारदवर्ष वाले व्रतोंकी चौथाई तीनवर्ष भर शूद्र की हत्या पर करवा चाहिये तथा उदक्या रजस्वलाके संगम पर भी (सो यह तीन वर्षें चंडाली आदि अवम जाती रजस्वला के संगमपर और चंडाली आदि से उपरालू अन्य स्त्रियां जो रजस्वलाहों तिनमें अत्यन्त कामनासे अतिकाल तक अभ्यास राखने मध्ये भी समझि लेना ॥ ० ॥ भाई की भार्या का संगम यहांपर छोटे उपपातकों में आकर जुदा वर्णों किया गया किन्तु भ्रातृपत्नीसे ऊपर जो रिश्तेमें अधिक पूज्य होतीहै उन स्त्रियों के संगम का बहुत बड़ा प्रायश्चित्त है यह छत्तीसवें परिच्छेद में वर्णन होचुका तिससे यहां पर

श्चित्त है-परन्तु जो अपने वर्रा की या अपना से ऊँचे वर्गा की रजस्वला को रैव योग से भिन्न जाय सो तत्काल ही स्नान करि शुद्ध होजाय किन्तु उस को अन्तिम स्नान तक भोजन छोड़ने को जह्जरत नहीं रही ॥ यहाँ तक रजस्वला ही रजस्वला से भिन्न तिसका चर्चा था ॥ ० ॥ अब आगे चण्डाल आदि किसी अत्यन्त मलीन प्राणी से यदि कोई रजस्वला भिन्न जाय तिसके प्रायश्चित्त भी बड़े वशिष्ठ कहिते हैं=यथाह दृढद्विशिष्टः=पतितान्त्यक्षपाकेन संस्पृष्टाचेद्वजस्वला तान्यहानित्व-
 तिकस्यप्रायश्चित्तसमाचरेत्-प्रथमेऽह्नि विराजस्यात् द्वितीयेद्वयमेवतु अहोरात्रततो
 चेद्विपरतो नक्तमाचरेत् शुद्धयोच्छिद्ययास्पृष्टाशुनाचेद्वयहमाचरेत्=अर्थात्-पतित
 जो महा पातकों से दूषित हो-अन्त्यज अनेक तरह के-घपाक चंडाल-इनसे यदि
 कोई रजस्वला छुड़ जाय सो अपने रजोवर्म के बाकी दिवसों को भोजन बिनाबता-
 इके पीछे से प्रायश्चित्त करै-किन्तु रजोरक्त जारी होने के पहिले दिन छुड़जाय
 सो तीन दिन का प्रायश्चित्त करै जो दूसरे दिन छुड़जाय सो दो दिन प्रायश्चित्त
 करै तीसरे दिन छुड़जाय सो एक दिन राति का व्रत करै इसके आगे जो चौथे दिन
 को आदि लेकर किसी दिन छुड़े होय सो एक राति हो भर का व्रत करै-और हाथ
 मुंह से जुटी शुद्धिनी ने यदि किसी रजस्वला को छुड़लिया हो यद्वा कृत्ता ने छुड़
 लिया हो तो वह रजस्वला दोदिन का प्रायश्चित्त करै-इन प्रायश्चित्तके दिवसोंमें
 पचगव्य का आहार करना नूचित है कि जैसा ऊपरले किसी प्रायश्चित्तमें कहि
 चुके हैं-परन्तु ये वशिष्ठ के कहे प्रायश्चित्त उस वशापर आरुढ़ हैं कि जब रज-
 स्वला ने जाजि वृत्ति कर स्पर्शकिया हो=अन्यथा=विना जाने देव योग से छुड़जाने
 मध्ये अश्रोक्त प्रायश्चित्त हैं=यथाह बोधायनः=रजस्वलानुसस्पृष्टा चांडालान्त्यक्षपा-
 यसे तावत्तिष्ठेन्निराहारायावत्कालेन शृद्धाति=अर्थात्-जो कोई रजस्वला किसी प्र-
 कार के चंडाल वा अन्त्यज वा कृत्ता वा कौआ इनसे छुड़जाय सो तबतक आहार
 कुछ न करै कि जब तक रजोवर्म के बाकी दिन बिताइकर शुद्ध होजाय=परन्तु=
 यदि कोई रजस्वला किसी रोग आदि के हेतु से असमर्थ होय जो कई दिन आहार
 के विना न रहि सकतीहो तिसके लिये उसी वीधायन ऋषिने दूसरा कहा है=यथा=
 रजस्वलानुसस्पृष्टाशुनासकृत्कृत्यकरैः शुभिः स्नात्वा क्षिपेत्तावद्यावच्चंद्रस्य दर्शनम्=अर्थात्-
 ग्राम के निवासी गुणों सभ्यर कृत्ते आदि मलीन जीवों से छुड़े रजस्वला तत्काल
 स्नान करिके तब तक भोजन न करै कि जब तक चंद्रमा का उदय हुआ न देखे
 ॥ ० ॥ जब किसी रजस्वला को भोजन करते समय कृत्ता आदि कोई मलीन प्राणी

हुइ जाय तिसका प्रायश्चित्त विधेय और स्मृतियों में कहा है=यथा=रजस्वलात्
भुजानाद्यांत्यजादीन्स्पृशेद्यदि गोमूत्रयावकाहारायडावेसौवशुद्ध्यति अशक्तौकांचनं
दद्याद्विप्रेभ्योवापिभोजनम्=अर्थात्=भोजन करतीहुइ रजस्वला यदि कृत्ता आदिवा
चण्डाल आदि किसीको हुइजाय सो गोमूत्रमें पकाये जौ का दलिया खायकोइ
दिन में शुद्ध होती है जो ऐसा न करसके किसी रोग आदि के हेतु से सो कांचन
का दानकरै या ब्राह्मणों को भोजन करावै (इसमें जो कःदिन दलिया खाना कहा
सो भी उन दिनों से उपराल प्रायश्चित्त है कि जब तक रजोधर्म जारी बना रहे
अर्थात् खातीहुइ भिड़ जाने पर तत्काल स्नान करै और तब तक निराहार उपवास
करै कि जबतक रजोधर्म का अन्तिम स्नान होय तिस पीछे यह कः दिन का प्राय
श्चित्त है) क्योंकि ऊपर जो वृहत् वशिष्ठ ने प्रायश्चित्त कहे तिनमें बिनाखातेही
हुइ जाने पर उतने दिन भोजन का नियेध होचुका है उसकी अपेक्षा यह अशोक्त
दोय कुछ बड़ा है कि इस में खाते हुये चण्डाल आदि से हुइ गई ॥ ० ॥ जहां
कहीं दो रजस्वला ही भोजन करते परस्पर जूती भिड़जाय तिनके मध्ये अशोक्त नि
यम है=यदाह अग्निः=उच्छिद्योच्छिद्युत्स्पृश्याकदाचित्स्त्रीरजस्वला कच्छे राशुद्ध्यते
पूर्वाशुद्रादानैरुपोयिता=अर्थात्=इस वचन में पूर्वा शब्द से हर एक ऊँचे वर्गों की
समभक्ता और शूद्रा शब्द के उपलक्षणा से हरसक नीचे वर्गों की समभक्ता जो पर-
स्पर दो भिड़ी हों उन्हीं में यह ऊँच नीच का विचार है कि=जब कोई रजस्वला
स्त्री जूतीहोते किसी जूती रजस्वलासे भिड़ि जाय तब ऊँचे वर्गों वाली उपवास करी
हुइ कच्छ व्रत करिके शुद्ध होती है और नीचे वर्गों वाली उपवास करी हुइ अन्न
वस्त्रादि वानों के करने से (उपवास करीहुइ का यह अर्थहै कि रजोधर्म के जोकुछ
दिन बाकी रहि गयेहों तिनमें कोरा उपवास करै फिर अन्तिम स्नान होजानेवादि
प्रायश्चित्त करै ॥ ० ॥ जब कोई रजस्वला जूते ब्राह्मणोंकी स्पर्श करै तिसके लिये
अशोक्त नियम है=यदाह मार्कंडेयः= द्विजान्कथंचिदुच्छिष्टान्तरजः स्त्रीयदिसस्पृशेद्य
अधोच्छिद्येत्वहोरात्रमुध्वौच्छिद्येयर्होक्षपेत=अर्थात्=कथंचित् किसीप्रकारसे हाथ
मुह जूते ब्राह्मणों की रजस्वला स्त्री हुइ लेवै तो यह रजस्वला यदि नीचे के अंगों
में हुइ गईहो तो एक दिन राति निराहारी रहे और ऊपर के अंगों में स्पर्श हुइ हो
तो तीन दिन उपवास करै ॥ ० ॥ इसके सिवाय यदि कदाचिद किसी रजस्वला
को कृत्ता गर्दभ आदि कोई अशुभ जीव काटि खाय या नाक से संघि जाय अथवा
काक चिमगादर आदि कोई नीच पक्षी हुइजाय तिसका प्रायश्चित्त २७७ दोस्रो

भावज के सिवाय किसी और स्त्री का प्रसंग मत समझना केवल छोटी बड़ी दोनों भावजोंका प्रसंग है-तिसका यह कारण है कि आचारकांड में अरसति उनहत्तरि के दो श्लोक मूलके देखी (अपूर्वागुर्वनुजातोदेवरः पुत्रकाग्रया भपिंडोवासगोत्रोवा घृताभ्यक्तश्चतुर्विधा वियात ६८ आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथाभवेत् अनेनविधिना जातःक्षेत्रजोऽस्यसुतोभवेत् ६९) अर्थ व्योरेवार इनके आचार मर्यादा में देखी कि क्षेत्रज पुत्रकी उत्पत्ति चाहिके गुरुजनोंकी आज्ञा से गर्भ रहिजाने की अवधि तक प्रत्येक ऋतुकाल में इसी विधिसे संगम करना कहा परन्तु गुरुजनोंकी आज्ञा बिना यदि कोई देवर या जेटभाईकी भार्यामें चाहें सन्तानकी अपेक्षासेही संगम करैतौभी पतित होताहै यह इन्हीं श्लोकोंके अन्तमेंकहिचुकोथे-तिसका प्रायश्चित्तइस कांड में आकर इसी दोसी अष्टासी मन्त्रश्लोक से योगीश्वर ने प्रकट किया ॥ २८८ ॥ गुरुओंकी आज्ञा बिना जैसी भाईकी भार्या आगस्या ठहिरो तैसी निज अपनी पत्नी भी रजस्वला होनेकी हालतमें आगस्या होतीहै तिमसे इसी दोसी अष्टासीके उत्तरार्ध से उसकाभी प्रायश्चित्तकहा-रजस्वलाका छूनाजैसा पतिकी नियिद्धहै तैसा औरभी सब लोगोंकी नियिद्धहै तिन सबके प्रायश्चित्त पढ़िलेहो तोसर्वे मूल श्लोकसे वर्णन होचुको तहां देखी-जैसा सब लोगोंकी रजस्वला छूनेका नियेवहै तैसा रजस्वलाकी भी और किसीका छूना प्रतियिद्ध है तिमसे यहांपर उसके भी प्रायश्चित्त अब द-यातिहै ॥ रजस्वलायांतुरजस्वलादिस्पर्शेप्रायश्चित्त ॥ -तदाहवृद्धवशिष्ठः-स्पृष्टेरजस्वलेऽन्योऽन्यसंगीयेत्वेकमर्हके ॥ कामादकामतोबापिसद्यःस्नानेनशुद्ध्यती (असपत्न्योस्तुसर्वर्गायोरकामतःस्नानमावर्तिमिताक्षरा) यतः-उदक्यातुसर्वर्गाया स्पृष्टाचेत्स्यादुदक्यथा तस्मिन्नेवाहनिस्त्रात्वाशुद्धिमाप्नोत्यसंशयसिति मार्कण्डेयस्म-रणात्-अर्थात्-दौरजस्वला जो मगोवाहों और सकही पतिकी भार्या होकरपरस्पर वह इसको यह उसको स्पर्श करें चाहें द्रच्छासे चाहिकर या बिना द्रच्छाके छुवा छाई करी होय तो भी तत्काल स्नान करिके शुद्ध होजायेंगी यह वशिष्ठजीनेकहा (और जो आपसमें सौतिसीति न हों पर एकही वर्गकी दोनों स्त्रियां रजोवतीहोयें तिनके परस्पर बिना चाहे यदि छुवाछाई होजाय तो ये भी स्नानमाव करिके शुद्ध होजायेंगी यह मिताक्षरानेकहा) क्योंकि-मार्कण्डेयका यह कथनहै कि जो उदक्या किसी सर्वर्गा उदक्यासे छुइइहो तो उसी दिन स्नानकरिके शुद्धको प्राप्तहोजायगी इसमें सन्देहनहीं-और-जो सर्वर्गा दोनों होतेहुये द्रच्छासहित छुवाछाई करें तिनके लिये अंगीकृत प्रायश्चित्त है-यदाह कश्यपः-रजस्वलानुसस्पृष्टा ब्राह्मण्याब्राह्मणी

यदि एकरात्रनिराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति=अर्थात्—यदि ब्राह्मणी रजस्वला होते किसी ब्राह्मणी रजस्वलासे इच्छा सहित भिड़जाय तो एक दिन रातिका निराहार व्रत करिके पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होती है ॥ ० ॥ जहां जुदे वर्णोंकी दो उदक्या इच्छा सहित भिड़जाय तिनके प्रायश्चित्तोंकी विशेषता बड़े वशिष्ठ ने कही है—यथा इष्ट-
 इह शिष्यः=स्पृष्टारजस्वला २ न्यो २ न्यं ब्राह्मणी शुद्धजा अपि कच्छू राशुद्ध्यते पूर्वा शुद्धी
 बनेन शुद्ध्यति=स्पृष्टारजस्वला २ न्यो २ न्यं ब्राह्मणी वैश्यजा अपि पादहो न चरेन्पूर्वापाद
 कच्छू न्योत्तरा=स्पृष्टारजस्वला २ न्यो २ न्यं ब्राह्मणी सविद्यास्तथा कच्छू द्विचक्षुष्यते
 पूर्वोत्तरा च तद्वत्तः=स्पृष्टारजस्वला २ न्यो २ न्यं सविद्या शुद्धजा अपि उपवासोऽस्तिभिः पूर्वा
 त्वहोरात्रेणा चोत्तरा=स्पृष्टारजस्वला २ न्यो २ न्यं सविद्या वैश्यजा अपि च विरावा चक्षुष्यते पू-
 र्वोत्तरा चोत्तरा=स्पृष्टारजस्वला २ न्यो २ न्यं वैश्या शुद्धी तथैव च विरावा चक्षुष्यते
 पूर्वोत्तरा च दिनद्वयात्=वर्णानां कामतः स्पर्शाच्छुद्धिरेया पुरातनी=अर्थात्—ब्राह्मणी
 और शुद्धा दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ कर ब्राह्मणी कच्छू व्रत करने से और
 शुद्धी बनेनी करनेसे शुद्ध होती है—यदि ब्राह्मणी और बनेनी दोनों रजस्वला होते पर-
 स्पर भिड़जाय तो ब्राह्मणी एक पाद हीन कच्छू करे और बनेनी एक पाद कच्छू
 करे—जहां ब्राह्मणी और सवाणी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ जायें तहाँ
 आधा कच्छू करिके ब्राह्मणी शुद्ध होती है सविद्या उस आधे का आधा करिके—
 जहां सवाणी और शुद्धा दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ें तहाँ तीन उपवासों से
 सविद्या और एक दिन रातिका उपवास करिके शुद्धा शुद्ध होती है—जहां सवाणी
 और बनेनी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ें तहाँ सवाणी तीन दिन राति के
 उपवासों से और बनेनी एक दिन राति का उपवास करिके शुद्ध होती है—जहां ब-
 नेनी और शुद्धा दोनों रजस्वला होते परस्पर कृत्वा छाडि करे तहाँ तीन दिन रातिके
 व्रतोंसे बनेनी और दो दिनके व्रतों से शुद्धिनी शुद्ध होती है—यह पुरातन कालकी म-
 र्यादा से वर्णों के परस्पर कामना सहित भिड़ जानेकी शुद्धि बड़े वशिष्ठ ने दर्शाई
 ॥ ० ॥ जहां कहीं कामना के बिना देव योग से ऊँचे नीचे वर्णोंकी रजस्वला पर-
 स्पर भिड़ जायें तिनके प्रायश्चित्तों की विशेषता आगे अब कहिते हैं—प्रदाह वृद्धि
 प्लाः=रजस्वला तु हीनवर्णा रजस्वलां स्पृष्ट्वा न तावदग्नौ याद्यावन्न शुद्धा स्यात् सवर्णा
 नाधिकवर्णा वा स्पृष्ट्वा सद्यः स्यात्वा शुद्ध्यतीति=अर्थात्—यदि कोई रजस्वला अपना से
 हीन वर्णा रजस्वला को देव योग से भिड़ जाय तो भिड़ने के बाद तब तक न
 भोजन करे कि जबतक रजोरक्त रँग भिजाने का ज्ञान करके शुद्ध न हो जाय यही प्राय

सतहत्तरि की अधिकोक्ति में देखो तहां स्त्रियों का विशेष नामक पाठ द्वंद्व के उसके बीच पुलस्त्य मुनि का वचन (रजस्वलायादादृशशुनाजंबूकरासभैः) इत्यादि दो श्लोक हैं सो अर्थों सहित द्वंद्वलेख ॥ २८८ ॥

(इति व्रतलोप प्रकरणं)

इस प्रकरणा में समस्त पांच परिच्छेद माने गये हैं अर्थात् सत्तावन ५७ परिच्छेद को आदि लेकर ६१ इकसठि परिच्छेद के अन्तपर्यंत यहाँ तक सबका नाम व्रतलोप का प्रकरणा कहा गया क्योंकि यद्यपि हर एक परिच्छेद में जुड़ेजुड़े वियर्थों को भेद बरान हुये तथापि सबमें व्रत लोप होजाना ही तात्पर्य पाया गया ॥

अथ सुतविक्रयाद्यनिष्ठविक्रयोपजीवनाख्यस्य उपपातकस्य प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः द्विषष्टितमः (६२)

इस विक्रय आदि छोटे विक्रयों से उपजीवन करने के पाप मिटाने योग्य प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—आदि शब्दसे स्त्री और कन्या तथा गायपशु आदि का विक्रय तथा देवालय पुण्य बागोचा तीर्थ तालाब आदि का विक्रय भी समझि लेना कि जिनका बेचना प्रतिषिद्ध है ॥

(सुतविक्रयादि प्रायश्चित्तं)

२३६ दोसौ छत्तीसवें मूल श्लोकमें व्रत लोप कहा गया था तिसका प्रायश्चित्त अवकीर्णों के नाम से कहिचुके उसके प्रसंग से कुछ और भी अनुपातक रूपों पापों के प्रायश्चित्त यहाँ तक दर्शाये गये—अब उस बात पर ध्यान करो कि उसी दोसौ छत्तीस के मूल श्लोक में (सुतानां चैव विक्रयः) यह संतान का बेचना एक उपपातक बताया था तिसके लिये योगीश्वर ने कोई प्रायश्चित्त नहीं दर्शाया तिससे ४४ द्वालीस के परिच्छेदमें २६५ दोसौएँसठि मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्ति में सामान्य उपपातकों के प्रायश्चित्त जो बरान कियेगयेथे उनमें मनु और योगीश्वर के कहे प्रायश्चित्त तीन महीनेआदि की अवधिवाली कईभेद हैं उन्हीं को

सुत विक्रय के पापमें यथायोग्य जोड़िलेना अर्थात् कर्ता की जातिशक्ति देयकाल आदि के विचारसे और इसकेभी विचारसे कि इच्छा सहित बेचा या बिना इच्छा ही बेचना परा इत्यादि भेदों की ऊँच नीच पर उनमें से बड़े छोटे प्रायश्चित्तों की व्यवस्था कल्पित करलेनी चाहिये ॥ ० ॥ परन्तु जहाँ कहीं अकाल की विपत्ति में था और किसी भारी विपत्ति में इच्छा के बिनाही लाचारी से सन्तान का विक्रय किया गया हो तहाँ उनसे छोटा प्रायश्चित्त है—यदाह शब्दः=देवग्रहप्रतिग्रहोद्याना रामसभाप्रपातद्वागपुण्यसेतुसुतविक्रयंकृत्वातप्तकच्छूचरेत्=अर्थात्—देवग्रह यदा देव ग्रह-प्रतिग्रह-उद्यान-आराम-सभा-प्रपा-तद्वाग-पुण्य-सेतु-सुत-इनका विक्रय करिके तप्त कच्छू व्रत आचरे= अर्थात्—इस वचन में (देवग्रह) ऐसा पाठ होने से देवता का मंदिर आदि अर्थ है और (देवग्रह) ऐसा पाठ होने से देवता के पाद पार्थद आदि और यज्ञों के पाद अर्थ होता है तिससे द्विपादभी सार्थक है-प्रतिग्रह यज्ञस्थान का नाम है कि जिस जगह या जिस मकान में यज्ञ आदि किसी तरहका पूजा पाठ सत्कर्म सदा निरन्तर वा अन्तरसे होता रहिता हो किन्तु इन्हीं निमित्तों का स्थान जुवा होय सो प्रतिग्रह कहा जाता और पञ्चायती चौपार आदिभी प्रतिग्रह कहिलाता है • उद्यान बागीचा आदि • आराम किसी ऐसे उपवन का नाम है कि जिसमें राजाआदि बड़े मनुष्यों का मुसाफिरी पड़ाव भी ठहरादि की छाया से होता हो • सभा मर्दानी बैठक आदि कचहरी मकानों का नाम है • प्रपा पिआऊ जो निरन्तर मनुष्यों तथा पशुओं की पानी देती रहती हो • तद्वाग तालाव आदि • पुण्य कर्म जो अपना या अपनेबड़े पुरुषोंका पहिला किया प्रसिद्ध होय • सेतु जल के बंधान जो बड़े छोटे अनेक भौतिके होतेहैं • सुत शब्दसे सन्तान साधका तात्पर्य है कि चाहें अपना वेदा होय या पीता परपोता धेवता भतोजा आदि कोई हो इसी लिये योगीश्वरने दोसौ छत्तीस मूलप्रलोक में (सुतानांचैवविक्रयः) सुतों का बहुत्व करिके कहा था कि सब तरहके सुत समझे जायँ=इसी प्रकार=गाय और कन्या बेचनेका छोटा प्रायश्चित्त है—यदाह पराशरः=विक्रीयकन्यकांगांच कच्छूसांतप नंचरेत्=अर्थात्—कन्या वा गाय की (उसी प्रकार की विपत्ति जैसी ऊपर लिख चुके तिसमें) बेचिके कच्छूसांतपन व्रत आचरे ॥ ० ॥ परन्तु जिसने इच्छासे चाहि कर सुतका वा कन्याका विक्रय कियाहो तिसके लिये चतुर्विंशतिमत ग्रंथ का अशोक्त प्रायश्चित्त है—यथा=नारीणांविक्रयंकृत्वाचरेचांद्रायसान्नतप्त द्विगुरापुण्यस्यै वव्रतमाहुर्मनीषिणः=अर्थात्—स्त्रियां चाहें अपनी वा कही से हरिलादे हुँ आदि

किसी प्रकारकी हों तिनको बेचनेवाला मासिक चांद्रायणा व्रत करै तब शुद्ध होय और इसी प्रकार जिसने अपने वा पराये पुस्त्य का विक्रय किया हो तिस पर हुना प्रायश्चित्त चाहिये यह प्राचीन मनीषी लोगोंने कहा इस दशापर ४४ चवालिस परिच्छेद वाले प्रायश्चित्त भी यथायोग्य आख्य होसक्ते हैं ॥ ॥ इन सब से उप-
 राल जो पैदीनसिने सालभरका प्रायश्चित्त कहा तिसका आशय कुछ औरहै सोभी देखो=यदाह पैदीनसि=आरामतडागोदपानपुष्करिणीं मरुतविक्रयेनियवरास्नाय
 यः प्रायश्चित्तचतुर्यकालाहारः संवत्सरेणापतोभवति=अर्थात्-आराम • तडाग • उदपान •
 पुष्करिणी • मरुत • इनमें से किसी को बेचने में विक्रेता पर यह प्रायश्चित्त है कि
 साल भर तक त्रिकाल स्नान करते हुये धरती पर शयन और दिनके चौथे काल में
 एक बार भोजन किया करै तब शुद्ध होय-यह इतना बड़ा प्रायश्चित्त ऐसी दशाओं
 पर आख्य है कि जिसपर कोई आपत्ति नही किन्तु विपत्तिके न होतेहुये चाहना
 करिके पुत्र आदि कोई वस्तु इनमेंसे बेचीहो यदा एकही पुत्र जिसके हाथ तिसने
 बेचि डाराहो या जेटा पुत्र बेचिदियाहो यदा कई पुत्र होनेपर भी उस पुत्र को बेचा
 हो जो अपने बेचि देनेका इन्कार भी आपही करता रहा अर्थात् उसी पुत्रकी इच्छा
 बिना उसका विक्रय करडाराहो • इसी प्रकार कन्या और स्त्री आदिकी अपेक्षा में
 भी समझिलेना और गायकी अपेक्षा में यह समझिलेना कि जिसने ऐसे किसी दुष्ट
 के हाथ गाय बेचीहो जहां जाकर खाने पीने आदिका दुख पावैगी ॥ २८८ ॥ यह
 भी इसी दोसी अट्ठासी वाले मूलश्लोककी टीका वा अधिकोक्ति का श्रेय पावहै
 तिससे इसपर भी वही श्रृंखला लगाया गया कोई मूलश्लोक इसमें नहीं है ॥ २८८ ॥

सुत विक्रयसे उपरांत योगीश्वरने दोसी सैंतीस २३७ मूलश्लोक में (धान्यकृष्ण
 पशुस्तेय) अन्न और सीसा रांगा आदि धातुओंकी चोरी रूपी उपपातक नामबरा
 था-तिसके प्रायश्चित्तभी ४६ छेयालिसर्वे परिच्छेद में बर्णन होचुके क्योंकि वह
 परिच्छेद सब छोटी मोटी चोरियों के नामसेही नियत हुआ था कि जिसमें अन्न
 और धातुओं तथा पशुओंकी चोरी किन्तु मनुष्योंका हरण पर्यन्त बर्णन होगया=
 उसी दोसी सैंतीस में (अयाज्यानां याजनं) यह भी एक उपपातक बताया था तिस
 के प्रायश्चित्त यहां तिससठ परिच्छेद में योगीश्वर आपही दर्शावैगे बल्कि इसके
 साथ और भी दो तीन उपपातकों के प्रायश्चित्त ॥

अथयाज्ययाजनादिचतुर्विधोपपातकविशेषानां प्राय

श्चित्तप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः त्रिषष्टितमः (६३)



इस परिच्छेद में ब्राह्म्य आदि अयाज्यों को यजन कराने वाले परिण्डित कर्मकांडी का प्रायश्चित्त कहा जायगा और वेद का विप्लावन (ठूथाबखेर) करने वाले वेद पाठो का प्रायश्चित्त कहा जायगा और अभिचार (मारणा उच्चासन आदि प्रयोग विधि) करनेवाले मंत्र शास्त्री का प्रायश्चित्त और शरणागत की रक्षा न करनेवाले धनवान् और जनवान् और शूरमा का प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥

(ब्राह्म्ययाजनादि प्रायश्चित्त)

ग्रीष्मच्छानाचरेद्वात्ययाजकोऽभिचरन्नपि । वेदज्ञाविधान्यर्बन्त्यक्वाचशरणागतम् २८९, "

अर्थः—ब्राह्म्ययाजक तीन ऋच्छू आचरें अभिचरणा करतेहुये भी यही वेदज्ञा-वी अश्वभर जो स्वायं शरणागतको त्यागिके भी यही—अर्थात्—ब्राह्म्य वेद किं जिन को गायत्री का उपदेश न होनेसे ४५ पैतालिसके परिच्छेद में प्रायश्चित्त कहे गये थे उन प्रायश्चित्तों को न करनेवाले ब्राह्म्यही रहे आते हैं तिनको यदि कोई पावा परिण्डित आदि किसी तरह का यजन पूजन करावै सो इस कर्मसे उपपातकी होता है वह तीन ऋच्छूओंको साथै तब शुद्ध हुआ ठहिरै तथा अभिचार कर्म स्वयं प्रयोग करने वाला परिण्डित यही तीन ऋच्छूका प्रायश्चित्त करै जो कोई वेदपाठो आदि वेदका विप्लावन करै सो एक सालभर जोका भात खाकर तप करै तब शुद्ध होय तथा जिस किसी समर्थ ने अपनी शरणा में आये हुये की रक्षा न करिके निकामि दियाहो या उसके शत्रुओंकी सोंपि दियाहो सोभी एक वर्षभर जोका भात खाकर तप करै ॥ २८६ ॥

२८६ अधिकोक्ति—अथमिताक्षरायथा (यस्तुसावित्रीपतितानां याजनं करोति सा प्राजापत्यप्रभृतीन् त्रीन् ऋच्छूनाचरेत् तेषांच गुरुलघुभूतानां ऋच्छूनाचरेत् तेषांच गुरुलघुभूतानां ऋच्छूणां त्रित्वनिमित्तं गुरुलघुभावेन कल्पनीय) अर्थात्—सावित्री से पतितोंको यजन यज्ञादि जो कोई परिण्डित करावै सो प्राजापत्य आदि नामोंके तीन

कच्छू आचरै तिनमें भी बड़े छोटे रूपवाले कच्छूँका तीया ३ पाप रूपी निमित्तों की वड़ाई छोटाई देखिके कल्पना किया जाय=और=मूल के पूर्वार्ध में अभिचार कर्म कहा तिसका अर्थ अयवंगावेद या तत्रके मार्ग से मारया उच्चाटन आदि प्रयोग समझिलेना कि जिनमें हिंसा रूपी फल उत्पन्न होताहो (परन्तु हिंसाके प्रसंगसे उस भौतिकी हिंसा सब समझिलेना जो धर्मशास्त्र में छे भौतिकी के आततायियों के कर्म वियदेना आगि लगाना आदि प्रसिद्ध हैं क्योंकि उस हिंसाके प्रायश्चित्त महापातकों में गिनती बहुत बड़े होते हैं) इस बातका प्रमाण भी वशिष्ठका यह वचन है कि (यस्त्वभिचरन्पततीति वशिष्ठः) आततायियों के छे कर्मों में से कोइमा अभिचार करै सो पतित होजाता है ॥ यहां केवल छोटे उपपातकों के प्रायश्चित्त हैं और मूल के पूर्वार्धमें अपि शब्दका योग है तिसके ध्वन्यर्थसे अहीनको यजन करानेवाला पंडित और प्रेत कर्म करानेवाला परिणेत भी उसी तीन कच्छू वाले प्रायश्चित्त के योग्य माने गये हैं-तथाच मिताक्षराकाराः (अपिशब्दोऽहीनयाजकांत्येयियाजकयो-सग्रहा र्थः) और इसी लिये मनुका वचन भी प्रसारामें दिया है-यदाह मनुः=ब्राह्मणानां या जनेकृत्वा परेयामंत्यकर्मच अभिचारमहीनचविभिक्षच्छूर्व्यपोहति (परेयामंत्यमंत्य त्थंताभ्यासविययं शुद्रांत्यकर्मविययंवाप्रायश्चित्तस्यश्रुत्वात्) अहीनोद्विरात्रादि द्वादशाहपर्पन्तोऽहर्गाराग्राहः-अथति-मनुने यह कहा है कि ब्राह्मणोंको यजन करावै या मृतकोंका प्रेतकर्म ब्राह्मणोंके सिवाय अत्राह्योंको भी करावै या अभिचार प्रयोग करै करावै या अहीनको यजन करावै ये सब तीन तीन कच्छू से पाप धोय सकते हैं (औरोंका प्रेतकर्म जो इस वचन में कहा सो अत्यन्त और निरन्तर उसी में तत्पर होजाने पर यह तीन कच्छूका प्रायश्चित्त समझना किन्तु आपस की जखिरयात निवृत्ति कराने मध्ये कभी कभी जो प्रेतकर्म कराना परै तिसपर इतना बड़ा प्रायश्चित्त सूचित नहीं अर्थात् उसमें यथा सम्भव शरीरकी शुद्धि और गायत्री का जप ही किया जाय-अथवा यह तीन कच्छूँका बड़ा प्रायश्चित्त शुद्र आदि नीचजातों का प्रेतकर्म एकही दो बार करानेपर समझिलेना) और अहीनको यजन कराना जो एक उपपातक इसीमनुकेवचनमें दर्शाया गया सो दो रात्रों आदि लेकर द्वादशाह तक अहर्गारा नामका एकयाग विशेष कहाताहै तिसकाकराने वाला परिणेत दोयो ददिरताहै यहतात्पर्य समझना ॥०॥ उद्दालकनामका एकव्रतविशेष जो कदिनप्रायश्चित्तहै सोपहिले वर्सानहो चुकाहै उसीकोयातातपने इस विययपरभी दर्शायाहै=यदाहशातातपः=पतितसावित्रीकान्नोपनयेत्वाध्यापयेत् यस्तानुपनयेदध्यापयेद्याज

येहा सउहालकव्रतंचरेव=अर्थात्-गायत्री से पतित जो ब्राह्मण होय तिनको प्रायश्चित्त करानेविनाकोई पंडितयजोपवीतन करावै नपढ़ावै औरजोकई इनकोउपनय करावै या पढ़ावै या कोईसा यजन करावै सो उहालकनामी व्रत करै-यह कठिनव्रत उसके लिये समझना जो नियम के प्रसिद्ध होने पर भी अपने हठ से ऐसा करै ॥ ० ॥ यह तीनि छच्छों का प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो उन प्रायश्चित्तों का अपवाद निरा-
 दर हूट दर्शाता है जो ४४ चवालिस परिच्छेद में साधारण उपपातकों पर वरान किये गये थे तिनकी पहुँच यहाँ पर नहींरही परन्तु इन्हीं निमित्तों पर कि जोजो पाप यहाँ वरान हो चुके=अर्थात् वे चवालिस परिच्छेद वाले प्रायश्चित्त कुछकुछ बड़े हैं तिनकी पहुँच यहाँ उस दशापर आखूब है कि जिस किसी पंडित ने शूद्र आदि निपट अश्राव्यों को यजन वा अग्रापन कर्छ कराया हो- इसमें भी जिसनेहठ से ऐसा किया हो तिसपर उस ४४ परिच्छेद वालो तीन महीना को प्रायश्चित्त चाहिये जितने बोखा या लाचारी आदि किसी हेतुसे शूद्र आदिको यजन कराया हो तिसपर योगीश्वर के बताये २६५श्लोक वाले प्रायश्चित्त चाहिये जिन में एक महीना दूध पीना आदि कहाथा ॥ ० ॥ और जो प्रचेताने शूद्र याजकआदि दीयो के नाम धरने के साथ ऐसा कहा है कि=एते पंचतपोऽध्याऽवकाश जलशयनान्यनु तिष्ठेयुः क्रमेणाग्नीष्मबर्गहिमंतेयमांसगोमूत्रयावक मशोयुरिततत्कामतोऽभ्यासविषयं=अर्थात्-ये शूद्रयाजक आदि सब दीयी-पञ्चारित तापना १ विनाक्ये अवकाश में बैठना २ जल में लेटना ३ तीनों वातक्रम से ग्रीष्मऋतु मे १ वर्षा ऋतुमें २ शीत ऋतु में ३ एक एक महीना भर आरोपित करै तब उस महीना भर गोमूत्रमें रँधेजो का दलिया खाइके रहै-सो यह प्रायश्चित्त उसके ऊपर आखूब है जिसने हठ के साथ बार बार का अभ्यास किया होय ॥ ० ॥ और एक यम का वचन है कि=परोवाःशूद्रवर्णास्यब्राह्मणोयःप्रवर्तते स्नेहादर्थप्रसंगाद्वातस्यकच्छोविशोधनम्=अ-
 र्थात्-यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र वर्णाका पुरोहित वलै अथवा स्नेह प्रीति से या धन के लालच से हो पुरोहितों वाले कर्म का वर्तावा करै तिसको शूद्रि एकही कच्छ करनेसे होगी-सो यह एकही कच्छ अशक्त के लिये समझना जो जीविका से असमर्थ होके ऐसाकरै ॥ ० ॥ और एक पैटीनसिका वचनहै कि=शूद्रयाजकसर्व द्रव्यपरित्यागात्पतोभवति प्राणायाससहस्रेयुदशकत्वोभ्यासेवेदितव्य (तदव्यकाम तोऽभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्-शूद्रको एकहीवार यजनकरानेवाला उससे मिला हुआ सब द्रव्य परित्याग करनेसे पवित्र होताहै पर जिसने दशावार कर्मकराने

का अभ्यास किया हो सो तीन सहस्र प्राणायामोंके भी करने में पवित्र होगा यह जानना चाहिये—यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने इच्छा के बिनाही बारबार का अभ्यास किया हो ॥ ० ॥ और एक जो गौतमका वचन है कि=नियिद्ध संप्रयोगेसहस्रवाक्यचेदिति नियिद्धानांपतिततादीनांयाजनाध्यापनात्मकेसंप्रयोगे बहुशोऽभ्यस्तेप्राकृतं ब्रह्मचर्यमुपदिष्ट (तत्कामतोऽभ्यासविययमितिमिताक्षरा=अर्थात्—नियिद्ध मनुष्य जो पतित आदि अनेक होते हैं तिनके लिये यजन अध्यापन रूपी सन्न का प्रयोग जो कोई सहस्रों वाणी से अर्थात् बहुत बारका अभ्यास करे तिसको प्राकृत ब्रह्मचर्यका उपदेश गौतमने किया है (सो कामनारूपी हउसे अनेक बारके अभ्यास पर समझना यह मिताक्षराने कहा—यहाँतक पूर्वार्द्ध की अधिकोक्ति पूरी हुई ॥ १ ॥ अब उत्तरार्द्धका चर्चा है कि जो कोई वेदका विप्लावन करे या जोकोई रक्षा करने में समर्थ होते चौर आदि से उपरालू किसी सज्जन को अपनी शरणा में आया देखि रक्षा न करे सोभी एक सालभर जोका दलिया खाइके तपकरे तब शुद्धहोय—यहाँ—वेदका विप्लावन यह कहाता है कि अनेक भाँतिके खोटे अनध्याय जो होते हैं कि जिनमें वेद न पढ़ना चाहिये दृष्टांत जैसे पर्वत या चंडाल के कान जहाँ पहुँचसकें इत्यादि स्थान भेदसे वेदका पाठ करना नियेब फिर और भी निमित्तों के उत्पन्न होने में काल भेद से भी पढ़नेका नियेब है फिर पर्यनुयोगरूपी सज्जरीका दान देकर पढ़नेका नियेब है—किन्तु जहाँ जहाँ पढ़ने का नियेब है तहाँ तहाँ पढ़ने से वेदका विप्लावन कहाता है—पर्यनुयोगरूपी दानदेना मनुके इसवचन से भी नियिद्ध है कि (दत्तानुयोगानध्येतुः पतितान्मनुरब्रवीत्) अनुयोगों की देकर पढ़नेवालोंकी पतित मनुने कहाहै ॥ ० ॥ और एक वाशय का यह वचन है कि=पतितचंडालशात्रवसोविश्रावन्नाग्यताअनश्नतआसीरक्षसहस्रपरमधातदभ्यश्यतः पूतोभवतीतिविज्ञायते इतिस्तेनैवगार्हिताध्यापकयाजकाब्राह्मणाता दक्षिणात्यागाच्च पूतोभवतीतिविज्ञायते इति (तद्विद्विपूर्वविययं=अर्थात्—पतित-चंडाल-मुदकिसाधो-इनको कानमें आवाजपहुँचे ऐसे स्वरसे वेद पढ़नेवाले तीनदिन रातिभर मौन साधेहुये अन्न कुछ न खाके रहे और सहस्र (ओंकार) या (तत्सत्) यह सब अभ्यास करते हुये पवित्र होताहै यह जानागया सो इसी प्रायश्चित्त से नियिद्ध की वधाने वाले और नियिद्ध की यजन करानेवालेभी व्याख्या कियेगये कि इनको भी वहीप्रायश्चित्त करना चाहिये और इनके लिये यह विशेषता है कि मिलीहुईदक्षिणात्यागि देनेसेभी शुद्ध होते हैं यह जानागया (सो यह प्रायश्चित्त जानिबूझि सेसाकरने पर

आरुद्ध है ॥ ० ॥ एक यह यद्विशन्मतका वचन है कि—चांडालयोषावकाशेयुतिस्मृ
तिपाठे एकरात्रमभोजनमिति (तद वृद्धिपूर्वविधयः—अर्थात्—चराडालके कानोमें शब्द
पहुँचने की जगह पर युति वा स्मृतिका पाठ करने वाला एक दिन राति भर निरा-
हार उपवास करे—सी यह विनाजाने धोखासे ऐसीजगह पाठकरनेपर आरुद्ध है ॥ ० ॥
जहां कहीं पढ़तेपढ़ाते समय गुरु और शिष्य दोनों के बीचमें सांप मूसाआदि कोई
जीव निकसाचलाजाय तहां उसी समय पढ़ाना बन्द होकर अनध्याय होजाता है।
तिसपरभीप्रायश्चित्त यमने कहाहै—यथाह यमः—सर्पस्यनकुलस्याथ अजमाजरियो
स्तथा मूयकस्यतथोयूयस्यमडुकस्यचयोयितः पुरुयस्यैवकस्यापिशुनोऽथस्यखरस्यच
अन्तरागमनेसद्यःप्रायश्चित्तमिदंयुगु विराचमुपवासप्रचविरह्वाभिधेचनम ग्रामा-
न्तरवागतव्यजानुभ्यांनात्रसशयः—अर्थात्—सांप• नेउरा• वकरा• विलार• मूसा• ऊद•
मेढुका• या किसी प्रकारकी स्त्री• वा पुरुष• या कुत्ता• या घोड़ा• या गदहा• ये
गुरुशिष्यके बीचमें आजायें तौ तत्कालही यह प्रायश्चित्त चाहिये सो सुनौ तीन
रात्रि उपवास भी और तीन दिन अभियेक ज्ञान भी करे अथवा यह न हो तौ घु-
दनोंसे चलते हुयेदूसरे ग्रामकी यात्रा करनी चाहिये एक योजन मात्र इसमें सन्देह
न करना चाहिये ॥ २८६ ॥

इत्ययाज्ययाजनवेदप्रावर्नादिप्रायश्चित्तचतुष्क ॥

अथपितृमातृसुतत्यागकन्यादूषणादिदशोपपातकप्राय
श्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः चतुष्पाष्ठितमः (६४)

—*—

इस परिच्छेद में दश ग्यारह उपपातकों के प्रायश्चित्त प्रकार कियेजायेंगे
तिनमें प्रथम पिता माताका त्याग सुतका त्याग गुरुका त्याग• फिर क-
न्या सन्दूषणाका प्रायश्चित्त• फिर• परिविन्दक वाजन• उसको
कन्यादान देना• कुटिलता करना• निज व्रतोंके नियम तोड़िदेना•
आत्मार्थ पाक बनाना• मद्यप स्त्री घरमें होना• ये भी छे प्र-
कार उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

यहांसे आगे जबतक २६० का मूल श्लोक न मिले तबतक यह समुभिलेना कि

ये चारों परिच्छेदोंकी व्यवस्था २८६ दोसौनवासीकी अधिकोक्ति के शेष पाठमें से चली आती है क्योंकि दोसौनवासी मूल श्लोकवाली टीका बहुत लम्बी चौड़ी है तिसमेंसे जितना पाठ मूल श्लोकहीसे सम्बन्ध रखताथा उतनेकी अधिकोक्ति उसके रही सो ऊपरके परिच्छेदमें गई वाकी रहे पाठके चार परिच्छेद होंगे • तिस धीछे ६८ अरसठिके परिच्छेदमेंजाके २६० दोसौनव्वेका मूलप्रलोक आवेगा यह ध्यौरा केवल जिज्ञासु विवेक्षियों के समुद्धाने की लिखा गया ॥

(पितृमातृसुतगुरुत्यागप्रायश्चित्त)

अथाइय याजनके बादि योगीश्वरने(पितृमातृसुतत्याग तडागाराभविषयः २३७) ये दोसौसैंतीस मूल श्लोकमें दो उपपातकांके नाम गिनती कियेथे पर इनके इन्हीं नामोंसे कोई प्रायश्चित्त जुदे नहीं दर्शाये—तिससे ४४ चवातिस परिच्छेदवाले मनु और योगीश्वरके बताये साधारण प्रायश्चित्तोंको इनपर भी यथायोग्य जाति शक्ति पुरा निमित्तके स्वरूपों अनुसार कल्पित करलेना चाहिये=और=पिता माता सुतोंके निकासि देने मर्त्य और भी अपांक्तोय पुरुषोंवाले प्रायश्चित्त जोड़िलेने चाहिये ऐसा यह वचनहै कि=अकारणोपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरुस्तथा इत्यपांक्तोयमध्यपादात्तन्निमित्तमपि प्रायश्चित्तं भवति=तदाइमनुः=यथाज्ञकालतामास संहिताजप एववा होमाप्रचसाकलानित्यमपांक्तानांविशोधनम्=अर्थात्—प्रबल कारणाके उत्पन्न होने बिना माता पिताका त्यागनेवाला या गुरुकोत्यागि भागनेवाला भी अपांक्तोय पुरुषोंमें गिनती है तिससे जो अपांक्तोयो के प्रायश्चित्तदें सो इस त्यागनेवाले पर भी आछद कियेजायँ=अपांक्तोके प्रायश्चित्त मनु ने कहे हैं कि=यथाज्ञ कालताके दो अर्थ होते हैं एक तो छठे दिन भोजनका नियम दूसर छठे समयका अर्थात् एक दिन में दो समय भोजन करना प्रसिद्ध है तिस हिसाब से अठारह दिनके पांच काल भोजन तक भोजन का त्याग राखनेवावि उस तीसरे दिनकी रात्रि में भोजन करे सो छठा अन्नकाल होताहै बल्कि यही नियम सम्भव देखि परताहै क्योंकि पांच दिन कोरा व्रत करिके छठे दिन अन्नखाना बहुत दुर्घट देखिपरताहै • तथापि दोनों नियम ठीक समुद्धान किन्तु मनु कहिते ह कि एकमहीनाभर छठे दिनका या छठे समयका नियम साधेँ अथवा वेद संहिताका जपहीकरेँ परन्तु उस महीना भर नित्य प्रति साकल्यो से होम करते रहे तब सब तरह के अपांक्तोयजन शुद्ध होते हैं (सब अपांक्तोके नाम चिन्ह देखनेहो तो आचार मर्यादावाले काराडमें आइ प्रकाराके

बीच १२१ एकसौइक्कीस मूलश्लोकसे १२२-१२३ तक तीन श्लोकोंकी व्यवस्था देखी तहांसकेलक्षणकथनहोचुकेहैं ॥ इतिपितृमातृसुतगुरुत्यागप्रायश्चित्तं ॥ सुत त्याग का प्रायश्चित्त आगे पैसदि६५ के परिच्छेद में दूसरी भांतिसेभी आवेगा क्योंकि योगीश्वरने २३६ मूल श्लोकमें (सुतत्यागोवाग्ववत्यागएवच) इस वाक्यसे द्वारा उसका जुदा रूप कहाया ॥

तडागा राम विक्रयके प्रायश्चित्त कुछ विशेषता सहित ऊपरले ६२ वासटिके परिच्छेद में सुत विक्रयके साथ वर्णन होचुके तहां देखीं=इसके अनन्तर योगीश्वर ने (कन्या सन्ध्यरां) इस नामका उपपातक २३८ दोती अड़तीस मूल श्लोक में दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त जुदा यद्यपि योगीश्वर ने आप नहीं कहा तथापि यहां देखीं ॥

(अथकन्यादूषणप्रायश्चित्तं)

कन्या सन्ध्यराके लक्षणा २३८ की अधिकोक्तिमें ठीक ठीक लिखिचुके हैं-मिताक्षराकार कहिते हैं कि सर्व सामान्य उपपातकोंकी प्रायश्चित्त मर्यादा जो ४५ चवालिस परिच्छेद में प्रकाश होचुकी है उसीमें से वैसासिक द्वैसासिक चांद्रायणा आदि प्रायश्चित्त यहां पर उसके लिये लगाना जो कन्या का सवर्णी पुरुष होते कन्या दूयण पापका भागी बनाहो-परन्तु-जहां अनुलोम मार्गसे कन्यादूयण पाप हुआहो कि नीचे वर्णाकी कन्या और ऊंचे वर्णोंका दीया पुरुष होय तहां भी उसी परिच्छेद वाले प्रायश्चित्तों में योगीश्वर का बताया सक महीना भर दूधपो के व्रत कराना यद्वा प्राजापत्य कराना चाहिये क्योंकि (सकामास्त्वनुलोमासुनदोयस्त्वनप्र यादसः) व्यवहार मर्यादाके दंडवाले प्रकरणमें ऐसी दशापर लिपट दंडका न होना या थोडा दंड होना कहा गयाथा कि जहां ऊंचे वर्णोंका पुरुष और नीचे वर्णाकी सकाम कन्यासे साक्षात् संगम हुआ होय-और यहांपर कुछ कन्यासे संगम करने का प्रसंग नहीं केवल अंगुरी आदिसे या हाथोंसे अंगही दूयित करने का यह प्रायश्चित्त है तिससे जैसा कुछ बहुत या थोडाही दोष पायाजाय तैसा प्रायश्चित्तभी महीना भर दूधपोके व्रत कराना या बारह दिन का प्राजापत्यही करवाना समझ लियाजाय ॥ ० ॥ इसके सिवाय शंख और द्वारीत के दो वचन हैं तिनके ऊपर हेतु गर्भित व्यवस्था मिताक्षराकारने दर्शाई है सोभी देखीं=यत्तुशंखेनोक्तं=कन्यादीया सोमविक्रयोच कच्छूमन्दचरेयाताम=यच्चहारीत वचनं=कन्याविक्रयो सोमविक्रयो

वृत्तलीपतिः कौमारदारत्यागीमुरासद्यपः शूद्रयाजकीशुरोःप्रतिहन्ता नास्तिकवृत्तिः
 कृतघ्नः कूटव्यवहारीसिन्धुक् शरणावधत्तौप्रतिहृत्पकटृत्तिरित्येते पंचतपोऽभावकाश्च
 जलशयनान्धनुतिष्ठेयुर्गन्धर्व्याहिमन्तेयु मासंगोमूत्रयावक मन्त्रीयुरिति-तदुभयमपि
 सत्रियवैश्ययोः प्रातिलीम्येनद्वयसोयोज्य-शूद्रस्यतुवधएव (द्वयसोतुकरच्छेदउत्तमायां
 वधस्तथेति वधदर्शनादितिमितासरा=अर्थात्-शखने जो कहाहै कि कन्याका दोयी
 और सोम बेचनेवाला ये दोनों एक सालभर कंचू व्रत आचरें=और हारीतका जो
 बचनहै कि=कन्याका बेचनेवाला तथा सोमका बेचनेवाला और वृत्तली जो पाँच
 प्रकारकी कहिचुके तिनका पति और कुमार वा यौवन अवस्थामें पत्नीको त्यागि
 देनेवाला और मुरासय का पीनेवाला और शूद्रकी पुरोहिताई करनेवाला और शूद्र
 का आदेश टालनेवाला और नास्तिकवृत्ति राखनेवाला और कृतघ्न जो किसी गैर
 का किया उपकार भेटे या अपना वा अपने बड़ोंका संचित पुण्य भेटिवै और छल
 का व्यवहार करनेवाला और मित्रसे दगा करनेवाला और अपनी शरणा आयेहुये
 से विद्यास घात करनेवाला और प्रतिहृत्पकटृत्ति जो ब्राह्मण आदि किसी उत्तमका
 रूप धरिंके उसकी वृत्ति जीविका आदि की नकल उतारे ये सभी इतने अन्यायी
 पुरुष एक महीनाभर ग्रीष्मऋतुमें पचाग्नि तपें और वर्षा ऋतु में वरसते समय शूने
 आकाशमें बैठकरें औ शीतऋतु एक महीना भर जलमें लेटि रहकरें तब तक तीनों
 मासभर गोमूत्रमें रेंधे जीका दलिया खायाकरें तब शुद्ध होयें (यहाँपर दगा करना
 केवल उपराक्त बातों में समझना मारडारना नहीं किन्तु मित्रको मारडारना बहुत
 बड़ा पापहै २२८ मूलश्लोकमें देखो कि ब्रह्महत्याके समान महापातकोंवाले प्राय-
 श्चित्त उसपर लगते हैं) मितासराकार कहिते हैं कि ये शंख और हारीतके दोनो
 वचन कन्याद्वयराके प्रयोजन से यहाँ पर लिखे गये इनमें कन्याके द्वयरा पर यह
 तीनि महीनेका कठिन प्रायश्चित्त सभी और वैश्यके निमित्त में समझना कि जब
 इन्होंने अपनेसे ऊँचे वर्गकी कन्यासे द्वयरा कमाया हो-परन्तु जो शूद्रने ऊँचेवर्गों
 की कन्या दूयित करीहो तिसको शारीरिक बंडही देना उचित है क्योंकि व्यवहार
 मर्यादामें दंडके स्थलपर कहिचुके हैं कि (उत्तम कन्याको दूयित करनेमात्रसे हाथ
 काटेजायँ और इससे अदिक सगम आदिहोनेसे प्राणावध कियाजाय-तिससे उसका
 यही प्रायश्चित्तहै) पर हाथकाटना भी यह पूरे द्वयराकी दशापर आरुहहै अर्थात्
 थोड़े दोयकी दशामें शारीरिक दंड, ताड़न पीटन आदि समझना ॥ इतिकन्यादूषरा
 प्रायश्चित्तं ॥

(अथोपपातकपट्टकस्यप्रायश्चित्तविचारः)

कन्याद्वयरासे लगना उसी २३८ मूलश्लोकमें योगीश्वरने (परिविन्दकयाजनं) इस नामका उपपातक प्रकाश किया था अर्थ इसका उसी जघे देखो-बलिक उसी २३८ मूलश्लोक से लेकर (परिविन्दक की कन्यादान करना) (कौस्त्य पाप) (व्रतोंके नियम तोड़ि देना) (आत्मार्थ पाक बनाना) (नद्यप स्त्रीका सेवन) ये सब लगना लगना इसी क्रमसे नाम कहिये-इन सबको प्रायश्चित्त ४४ चर्वालिस परिच्छेद के द्वारा यथा योग्य दोषोंकी बड़ाई छोटाई आदि शोचिके उनमें से बड़ेया छूटेहो प्रायश्चित्त मन्त्रिचारके साथ वर्तवा करने चाहिये • क्योंकि योगीश्वर ने इनकी जुड़े जुड़े नामों से प्रायश्चित्तों की विशेषता नहीं कही तिससे उसी सामान्य मर्यादा से व्यवस्था कल्पित होसकी है-और-इनमें से परिविन्दकयाजी के प्रायश्चित्त ४८ अज्ञतालिप्तके परिच्छेदमें भी विशेष वर्णन होचुके हैं तिनको भी देखना और ज-खरत पद लेना चाहिये और परिवर्तितके परिवेदन कर्मका प्रायश्चित्त उसी अज्ञता-लिप्त परिच्छेदमें फिर ५१ इक्ष्वावन परिच्छेदमें भी विशेषतासे वर्णन होचुके तहां दोनों जगह देखना-और-यहां के सात नामों में दूसरा उपपातक (परिविन्दक की कन्या ब्याहि देना) इसके प्रायश्चित्त यद्यपि चर्वालिस परिच्छेदमें से लेना कहा गया सो भी लिये जायेंगे और ४८ अज्ञतालिप्तके परिच्छेदमें विशेष प्रायश्चित्त दू सोभी शोचिके लेने होंगे यही इन दोनोंकी व्यवस्थामें भेद है • बाकी पांच नामों के पापोपर केवल ४४ चर्वालिस परिच्छेदसे व्यवस्थालेनी होगी • इति प्रायश्चित्तपट्टकं॥

अथ स्वाध्याय त्यागाग्नि त्यागाद्गुपपातकाष्टकस्य प्रा

यश्चित्त प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः पंचपष्ठिः (६५)



इस परिच्छेदमें आठ उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे-तितमें पहिले अपने वेदांगभूत स्वाध्यायका परित्याग • फिर स्थापित अग्नियों में अग्निहोत्र का त्याग • फिर मुतादि सन्तानके संस्कार उचित समय पर न कराना और वधुओं का रक्षणा पालन आदि न कराना • तिस पीछे चार और हैं कि • स्त्रीसे जीविका करनी या हिंसा वाले कर्मसे जीविका करनी या औषधियोंसे वशीकरण आदि हिंसावाले कर्मकरने

और उनके द्वारा जीविका रखनी या हिंसकयंत्र कोल्ह आदि जारी कराना ये आठ उपपातक इस परिच्छेद में आवेंगे ॥

(स्वाध्यायत्याग प्रायश्चित्तं)

योगीश्वरने २३६ दोसौ उन्तालिस मूलश्लोकमें (स्वाध्यायका त्याग) यह एक उपपातक बताया था कि जो कोई अपने यह वेद शास्त्रको या रोजके नधे पूजापाठ को किसी दूसरे शास्त्रके सुनने आदि लालच में फँसिकर भुलाइ देवे या छीझि देवे सो उपपातकी होता है—और उसीका दूसरा अर्थ यह भी लियागया है कि जो कोई दुर्ग्यसनमें फँसिकर निपट भुलाइडारै या निरादर करिके निपट त्यागि देवे सो महापातकी होता है कि जैसा २२८ मूलश्लोक में देखो (अधीतरयच नाशनं) यह लिखचूके तहां ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त उसी प्रकरणाके अनुसार करनाहोगा परन्तु—जैसी मूर्तिसे यड़ापर उपपातकी ठहराया गया तिसके लिये ४४ चवालिस परिच्छेदमें साधारण प्रायश्चित्तहैं तिनमें से तीन महीने या दोमहीने या एकमहीने आदि के प्रायश्चित्त कर्ताकी शक्ति आदि शौचिके यथायोग्य जोझि लेनाचाहिये क्योंकि इसके मध्ये योगीश्वर ने कोई जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा—और—वशिष्ट ने यहकहा है कि=ब्रह्मोभूताकृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपयंजीतवेदमाचार्यात् (इत्ये तदयं तापद्वयमिति मिताक्षरा=अर्थात्—जो वेदको भुलाके त्यागि देवे सो बारहदिन कृच्छ्रव्रत करिके फिर आचार्यसे जाकर वेदपढ़ै (सोयह छोटा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने अत्यन्त आपत्तिमें भुलायाहो ॥ इति स्वाध्यायत्यागप्रायश्चित्तं ॥

(अग्निहोत्रत्यागादिप्रायश्चित्तं)

ब्रह्मचारी या गृहस्थी जो कोई अग्निहोत्री होकर अग्निकर्मको त्यागिदेवे तिसका भी नाम उपपातकोंकी गिनती साथ योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने स्वाध्याय त्याग से लगमा २३६ दोसौ उन्तालिस मूलश्लोकमें दर्शायाथा परन्तु कहीं जुदा प्रायश्चित्त उसका नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदवाले प्रायश्चित्तोंका सहारालेना होगा=परन्तु वशिष्टजीने विशेषता भी दर्शाई है=यथाह=योऽग्नीनपविष्योत्सकृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरावेयंकारयेत् (अब द्वादशरात्रग्रहण मुत्तमकालापेक्ष या प्राजापत्यादि शुरु लघु कृच्छ्राणां प्राप्त्यर्थमिति मिताक्षरा) तब—मासद्वये प्राजापत्यं मासचतुष्टयेऽतिकृच्छ्रः यद्मासोच्छ्रान्ते पराक्तः यद्मासादूर्ध्वं योगीश्वरीक्तः न्युपपातक

सामान्य प्रायश्चित्तानि कालात्यपेक्षया योज्यानि संवत्सरादूर्ध्वन्तु सान्वयैः सांख्यिक
मिति व्यवस्था० इति च मितासरा=अर्थात्-वशिष्ठ ने यह कहा है कि जो कोई स्या-
पित अग्नियों को निरादर करिके त्यागि देवै किन्तु उदात्त डारै या पूजन करना
छोड़ि देवै सो बारह दिनका कृच्छ्र साधन करिके फिर स्थायन कर्म करावै (इसपर
मितासराकार कहते हैं कि इसमें बारह दिनकी अवधि वाँचना भी सिर्फ उत्तम कालों
की अपेक्षा दशानि के हेतु पर आच्छेद है कि प्राजापत्य आदि बड़े छोटे कृच्छ्रोंकी
पहुंच पाई जाय अर्थात् केवल बारह दिनके नियमसे प्रयोजन यहाँ नहीं है) तिससे
यहाँ यह युक्ति है कि—जिसने दो महीना अग्निका कर्म त्यागि दिया हो सो प्राजा-
पत्यसाधै जिसने चार महीने त्यागि दिया हो सो अति कृच्छ्र करै जिसने छे महीने
त्याग किया हो सो पराक्रमक प्रायश्चित्त करै फिर जिसने छमाही से भी अ-
धिक त्याग किया हो तिसके सातवां महीना आदि लेकर बारह महीना के भीतर
जैसा बहुत या थोड़ा काल दहिरै तिसके अनुसार बड़े छोटे प्रायश्चित्त भी ४४ च-
वार्लस परिच्छेदमें २६५ मूलश्लोकसे योगीश्वरके बताये लेकर जोड़िते चाहिये
फिर जिसने एक सालसे भी अधिक दिनों तक अग्निका कर्म त्यागि दिया हो तिसके
लिये उसी २६५ की अधिकोक्ति में मनुका कहा तीन महीनावाला प्रायश्चित्त
दंडना चाहिये० यह व्यवस्था भी मितासराकार ही ने कही=फिर कहते हैं कि
यह व्यवस्था केवल उनको लिये कही गई कि जिन्होंने नास्तिकताका सहारा लेकर
अग्निको त्यागा होय कि इसके पूजने से क्या होता है इत्यादि० इसका प्रमाण भी
अप्रोक्त वचन है=यथाह व्याघ्रः=योऽग्निं न्यजति नास्तिक्यात् प्राजापत्यं चरेद्विजः =
अर्थात् जो कोई विज होकर नास्तिक्यसे अग्निको त्यागै सो प्राजापत्य करै ॥ ० ॥
ऊपरके प्रमाणसे यह तात्पर्य ठीकरा कि जिसने नास्तिकताकी चिन्ता भूल गफलति
प्रसादसे अग्नि त्यागी हो तिसके लिये भरद्वाज के गृह्यशास्त्र में विशेषता कही गई
है=यदाह भारद्वाजः=प्राणायामशतमाचिरात्रादुपवास स्थापयित्वा विंशतिशायत अत ऊर्ध्व
सायसिरात्रात् सितोरात्रीरुपवसेदत ऊर्ध्वमासंवत्सरात् प्राजापत्यं चरेत् (अत ऊर्ध्वकाल
बहुत्वे दीयशुक्लं) =अर्थात्-भारद्वाज ने कहा है कि तीनिही रात्रि के भीतर तक
जिसने अग्निकर्म छोड़ा होय सो एक १०० सो प्राणायाम करिके फिर अपना
वही कर्म करै पर जिसने बीस दिनों के भीतर तक त्यागा हो सो एक दिन उपवास
करिके फिर कर्म करै इसके ऊपर साठ दिनों के भीतर तक जिसने त्यागा हो सो
तीन दिन रात का उपवास करै साठ के ऊपर जिसने साल भरके भीतर कि

सो अर्वाध तक त्यागाहो सो प्राजापत्यकरै (इसके ऊपर यह कालका बहुत्व केवत दोयका बद्धापन प्रकट करताहै ॥ ० ॥ जिसने आतस आदिके हेतुसे याद रहिते भी अग्निक्ता कर्म त्याग किया हो तिसके लिये भी उन्हीं भारद्वाजने विशेषता जुदीकरीहै=यथा=द्वादशाह्रातिक्रमेऽग्रहमुपवासोमासातिक्रमेद्वादशाहमुपवासः संवत्सराति क्रमेमासोपवासःप्रयोभक्षणांचेति=अर्थात्-वारहदिन कर्मकात्याय होनेमें तीनदिनका उपवास और महीनाभर अतिक्रम होजानेमें बारहदिनका उपवास और एकसालभर का अंतर होजाने में महीने भरका उपवास तथा दूधका आहार चाहिये ॥०॥ जिसने एकसाल से भी अधिक अर्वाधतक कर्म छोड़ि दियाहो तिसके लिये हारीतने विशेष नियम कहे=यथा हारीतः=संवत्सरोत्सन्नेऽग्निहोत्रेचांद्रायणां कृत्वा पुनरावध्यात् द्विवर्योच्छन्नेचांद्रायणां सोमायनंचक्षुर्यात् त्रिवर्योच्छन्नेसंवत्सरं कच्छमभ्यस्य पुनरावध्यादिति (सोमायनंचक्षुकांडेवक्ष्यते)=अर्थात्-एक वर्यभर अग्निहोत्र कृतिजाने में चांद्रायणा व्रतकरिके फिर दुबारा आवाग उसकाकरै दोवर्यभर कृतिजानेमें चांद्रायणा और सोमायन भी करै तिस पोछे स्थापन उसकाकरै तीनवर्यभर कृतिजानेमें एकवर्यभर कच्छकी बारंबार आहुति किये पोछे फिर अग्नि का स्थापन करै (सोमायन का लक्षणा आगे सब कच्छों के प्रकरणा में कहा जायगा तब समझि लेना)-इसी विषयपर शंखने भी विशेषता जाहर करी है=यथा=अग्न्युत्सादी संवत्सरं प्राजापत्यं चरेद्गांचदद्यात्=अर्थात्-अग्निको उठाव डारनेवाला उपपातकी एक सालभर प्राजापत्यां का आचरण करै और गोदान भी करै ॥

इत्यग्निहोत्रपरित्यागप्रायश्चित्तं

(सतादिसंस्कारबंधुरचणत्यागप्रायश्चित्तं)

अग्नित्याग नामके लगमा उसी २३६ मूलप्रश्नोक्त में योगीश्वरने (सुतकात्याय) दुबारा कहिकर (बांधवोंका परित्याग) भी दर्शाया था=इस दोनोके पापों के प्रायश्चित्त कहीं जुदे स्वरूपसे नहीं कहे तिससे उसी ४४ चवालिख के साधारण परिच्छेद में से प्रायश्चित्त लेने होंगे तहां इतना भेदहै कि जिसने कामनासे हठके साथ सुतका या बंधुजनोंका परित्याग किया हो तिसकेलिये उस परिच्छेदमें २६५ दोनोंपैसदि की अविकोक्ति से तीनमहीनेवाले सोइत्याके प्रायश्चित्त बूझने चाहिये=और जिसने हठके बिना देवराति से सुत बंधूका त्याग कियाहो तिसके लिये उसी परिच्छेदमें

२६५ के मूलश्लोक से योगीश्वरके बताये चार प्रायश्चित्तों में कोई एक शक्ति या दोगके अनुसार चुनि के लेलेना चाहिये इनकी यही व्यवस्था है कुछ और नहीं= सुतका त्याग दुबारा कहा जानेसे यह तात्पर्य है कि ६४ परिच्छेद में सुत पुत्र पोता पर पोता आदिको घरसे बाहर निकारिस देनेका प्रसंगथा और यहाँपर घरमें रहिते भी बालक पुत्रोंके उचित भस्कार आदि करने से उद्देशा रखनी यही उनका परित्यागहै तद्वत् बंधूजन असमर्थ वृद्ध चचा मामा आदि जिनका पालनकर्ता कोई और नहो तिनके रक्षणा पालन करनेकी सामर्थ्य होते हुये भी जो कोई उनकी नहीं राखै किन्तु ऐसे बंधुओंकी दुर्गति होते आँखोंसे देखे या कानोंसे सुनिकर भी रक्षा करने का उपाय नहीं सोचै तिसके पापका प्रायश्चित्त यहाँ पर कहा गया ॥ इतिसुत संस्कारादित्यागेबंधुरचणादित्यागेचप्रायश्चित्तं ॥

(स्त्रोहिंसादिभिर्जौवनप्रायश्चित्तं)

बंधु त्यागसे अनन्तर २४० दोसौचालीस मूलश्लोकमें योगीश्वर ने (इवनावर्थाद्भुमच्छेदः (वृसका निरर्थ काटिहारवा जो दर्शाया था तिसके प्रायश्चित्त ५५ पंचपन के परिच्छेद में वर्णन होचुके तहाँ २७६ मूलश्लोकसे योगीश्वरने आपही प्रायश्चित्त भी दर्शाया ॥ फिर भुमच्छेद से लगमा २४० दोसौचालीस मूल श्लोकमें योगीश्वरने (स्त्रीकोद्वाराजीविकाकरना) और (प्राणियोंके बधसे जीविका करना) और (बशी करणाकी औषधियोंसे जीविका) और (कोल्हूआदि यंत्रका जारीकरना) ये चार उपपातक इसीक्रमसे प्रकट कियेये—परन्तु इनके जुदे प्रायश्चित्त कहीं नहीं कहे तिससे इन सबकेलिये ४४ चवालिसके परिच्छेदमें योगीश्वर औरमनुके कहेछोटेबड़े प्रायश्चित्त इनके कर्म दोगोंके अनुसारचुनिके समझलेना ॥ इतिप्रायश्चित्तचतुष्क ॥

॥ इत्यौचित्यानां परित्यागप्रकरणं ॥

इस प्रकरणा में सब चारि परिच्छेद हैं अर्थात् ६२ वासति परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर यहाँ पैसटि के अंत लग चारौ परिच्छेद इसी एक प्रकरणा में गिनती हैं कि जिनमें सब तेईस चौबीस उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे गये सो केवल कन्या स्रुत्यरासे उपरालू सभी ऐसेहैं कि जिनमें निज निज औचित्य छोडि देनेका निमित्त है तिससे सबका एकही प्रकरणा है—कन्या स्रुत्यरा का निमित्त यद्यपि सबसे जुदे प्रकारका प्रत्यक्ष है तथापि बीचमें आजानेसे प्रकरणा के बाहर नहीं जासक्ता ॥

अथ व्यसनासक्तिनामोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाश

कोऽथ परिच्छेदः षष्ठः षष्ठितमः (६६) ॥

इस परिच्छेदमें दुर्ग्रसनोकी घत पैदा होजानेके उपपातकपर प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥ और उसीके प्रसंगसे सद्ग्रसनोका भी निर्याय किया जायगा ॥

(व्यसनासक्तौप्रायश्चित्तं)

दोषीचालीस २४० मूलश्लोक में (हिस्रयंघ के लगना (व्यसनानि) व्यसनोंका उत्पन्न होना भी एक उपपातक बताया था उन व्यसनों के स्वरूप लक्षणा आचार कांडके अंतमें राजधर्म के प्रकरणा में वर्णन होचुके हैं नाम उनके द्यूत जुआरीपन की घत लगिजाना० मृगया शिकार आखेर की निरन्तर घत लगी रहिना इत्यादि अतारह तो प्रधानता से प्रसिद्ध हैं फिर उनसे उपराल भी अनेक व्यसन होतेहैं—व्यसन भी अच्छे बुरे दोमेदसे होतेहैं—व्यसन चाहें दुर्ग्रसन होय या सद्ग्रसनहोय दोनों खोहे-वहिरतेहैं क्योंकि यद्यपि सद्ग्रसनमें कोई पाप नहीं होताहै तथापि उसके हेतु से अनेक पाप स्वतः भी उत्पन्न होसक्ते हैं इसका दृष्टान्त जैसा किसी को अतिदान करनेका व्यसन लगिजाय तिसके पास मांगनेवाले दानपात्र भी अत्यन्त आने लगते हैं यद्यपि पुण्य के लक्षणा साथ यह व्यसन सबसे उत्तमसद्ग्रसनहै कि जिसकेप्रभावसे स्वर्गफल प्राप्त होताहै तथापि व्यसन शब्द के अर्थसे ही व्यसन उसका नाम है कि जिस सकड़ी कामकी घतसे सब उचित कामोंको भूलिजाय जैसा अतिदान करनेकी घतसे उचित कृतुम्बी जनोका पालनपोषण भी छोड़िदिया अथवा इतनादाम तक पास नहीं रक्खा कि जिससे पंचयज्ञ वा केवल पाकयज्ञ आदि नित्य कर्मों की साधना होसके तभी इनकामों की हानिसे भी अनेक पापस्वतः जन्मते जाते हैं—इसी लिये—यह ध्वन्यर्थ भी समझना योग्यहै कि हर कोई काम सेसे पुस्यका किया हुआ व्यसनकी गिनतीमें नहीं आसक्ताहै जो अपने उचित धर्मोंकी न भूलेंकिन्तु जो आवश्यक धर्मोंकी पालना करने से उपराल किसी सद्ग्रसन को आवश्यकता के समान पालें सो व्यसनों की गिनती में नहींहै—इसका यह दृष्टान्त है कि जैसे राजा अपने मुल्की माली सबकामोंकी अत्यन्त हीशियारोंमें तत्पर बनारहिते भी प्रजाका

प्राणहानि बचाने की आवश्यकता मात्रघातक जीवोंकी आखेट भी करता रहे तो यह मृगयाकर्म व्यसनासक्ति में गिनती नहीं केवल जीवहिंसा में गिनती है तिसके लिये वन्य पशुहिंसाके प्रायश्चित्त प्रतीत होतेहैं परन्तु राजाका अधिकर्म राजकर्मों की जख्जरत में गिनती होजानेसे उसपर उसरीति के प्रायश्चित्त नहीं आखड होते हैं कि जैसे कच्छ आदि व्रत लिखिचुके किन्तु राजापर दानरूपी प्रायश्चित्त आखड होतेहैं इसीलिये राजघरों में नित्यप्रति निरन्तर अनेक महादान होतेरहितेहैं और भी पुरश्चररा होमयज्ञ आदि करनेवाले विद्वान् ब्राह्मण सशर्म करते रहिते हैं—परन्तु यदि कोई राजा मृगया शिकार में आवश्यकसे उपराज भी ऐसा तत्पर हो जाय जो केवल इसी व्यसन में लयलीन रहिकर माली मुल्की आदि सब कामोंकी सुविबुधि भुलाइदारे तो यह मृगयाकर्म उसका दुर्व्यसनमें गिनतीहै तब इस दुर्व्यसन का उपपातक मेदिनेके निमित्त प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ अथदुर्व्यसनप्रायश्चित्तं—यद्यपि योगीश्वरने कोई जुदा प्रायश्चित्त इसका नहींकहा तिससे४४ चवा-लिसके परिच्छेद में छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको शेषकी छोटाई बड़ाई अनुसार चुनिके लेलेने होंगे (यहाँ सब तरह के व्यसनसाथ सम्मिलिने जो अपने ऊर्वाक्ष अर्थोंकी इहतक पहुँचेहों)परन्तु जो कोई अतिशय इसके साथ बारंबार दुर्व्यसनका अभ्यास करे तिसके लिये अग्रीकृत प्रायश्चित्त है—यदाहवोधायनः—अथाशुचिकारीशिष्टत-मभिचारोऽनाहितास्तेरुंक्षुत्तिः समावृत्तस्यभैक्ष्यचर्यात्स्यच गुरुकुलवासजुर्व्यच तुभ्योमासेभ्योयश्चतमव्यापयतिनस्तत्त्वानिर्देशनंचेति द्वादशमासान्द्वादशार्धमासा-न्द्वादशद्वादशाहान्द्वादशयज्ञान्द्वादशज्यहोमैकाहमित्यशुचिकरनिर्देशः(इति द्युतेवार्थिकव्रतमुक्ततदभ्यासविषयमितिमितासरा—अर्थात्—वोधायनके वचनसे ये सातकर्मशुचिकर नामके उपपाय कहातेहैंकि—१ द्युतः २ अभिचारप्रयोगः ३ अग्नि होषी न होतैरुंक्षुत्ति फेलेहुये बानेराइघाटसेचुगना ४ समावृत्त जोवेदपद्धिकेगुरुकुल से लौटिचुकातिसका भीस्वमांगना ५ समावृत्त नामका उत्सवकर्म लौटि आने सधे होचुकाजिसका ऐसेविद्यार्थीकाफिरगुरुकुलमें रहिना ६ समावृत्तविद्यार्थी जोअधक-चालौटिआवे जोचारसहीने वीतिजानेबादि फिर गुरुकुलमें धूसें तिसका पढानेवाला गुरु भी इन पापोंमें गिनतीहै ७ सातवां वहभी जो बिना बुलाये बिनाबूके घर घर नक्षत्र आदि पंचांग सुनाता फिर—इन सातोंके यथाक्रमसे जुदे जुदेसात प्रायश्चित्तों की अवधों भी बोधायन अब कहिते हैं कि—वारद महीनेका ब्रह्मचर्य१—उससे आ-धा छमाही ब्रह्मचर्य२—एकसौ चवालिस दिनमें वारद प्राजापत्य३—बृहत्तर दिनमें

छेके दिनके बारह छच्छार्ध—छत्तीस दिनमें तीन तीन दिनके बारह प्रयोगयष्टान् कालतावाले—केवल तीन दिनका उपवास—केवल एकदिन रातिका उपवास—= विज्ञानेश्वर कहते हैं कि इन सातोंका क्रम देखने से निश्चित होगया कि द्यूतकर्म जुआरीपनकी धत्त में एकचर्यका व्रत कहागया और द्यूतकर्म ऊर्ध्वोक्त दुर्व्यसनों में गिनती होचुका तिससे सभी दुर्व्यसनोंपर यह वर्धदिनका प्रायश्चित्त उहिरा से यह बारंबार इसकेसाथ अभ्यास करनेपर समझना (और यद्भी समझे रहिना कि यद्यपि विद्यार्थी सभी वैश्य भी होतेहैं तथापि अत्रोक्त सर्व कर्म विशेषकर ब्राह्मणसे अपेक्षा रखतेहैं तथैव जो आगे वचन कहेंगे तिसमें समझिलेना ॥ = ॥ इसीके समान एक दूसरी व्यवस्थाहै—यदाहप्रचेता=अवृत्तवाक्यतस्कोराजभृत्योऽक्षारोपकटृत्तिर्ग रदोऽग्निदोऽश्चरथाज्जारोह्मणोऽर्त्तिः रंगोपजीवोश्चगणिकः शुद्धोपाध्यायोऽयलीपतिर्भांडिकोऽनस्योपजीवोश्चटृत्तिर्ब्रह्मजीवो चिकित्सकोदेवलकःपुरोहितःकितबोमद्यपः कृत्कारकोऽपत्यविक्रयोऽमनुष्यपशुविक्रेताचेति नानुदरेत्समेत्यन्यायतोब्राह्मणव्यव स्ययासर्वद्रव्यत्यागेचतुर्थकालाहारसंवत्सरंविद्यवराहपस्पृशेयुःतस्यतिदेवपितृतर्पणां वाह्निकंक्षेपेवैव्यवहार्याइति (तदपिबोधायनेनसमानविद्यमितिमिताक्षरा= अर्थात्—प्रचेताने विशेषकर ब्राह्मणोंमें ऊर्ध्वोप उपपातकी गिनायेहैं कि—असत्यबोली का अभ्यास राखनेवाला• चोरी करनेवाला• राजकादासत्व करनेवाला• वृक्ष तगाना आदि सालीकी टृत्ति जीविकाकरै• किसीको विद्यदेवै• आगि लगावै• कौचसानी या• रथसानी या• हाथीसानीसे जीविका• रंगरेजी वा छीपी आदि रंगसाजी से जीविका• कुत्ते बहुतपालें बैचै या उनकी गिनती रखवारी आदिपर नौकरहोय• शुद्धोकी पाखाई पुरोहिताई करै• वृयलीभार्या जिसके घरमें होय• भांडिक जो राजद्वारों में तुरुही आदि शब्दोंसे कालसूचन करनेकी जीविकाराखै• नक्षत्रोपजीवी जो पंचांग नक्षत्र आदि सुनाते फिरते जीविका करै• चटृत्ति वह कि जो कुत्तोंकी तरह घर घर फिरते किसी तरहकी जीविकाराखै या ओछी सेवकाई नौकरी आदि करताहो• ब्राह्मजीवो जोब्राह्मणके कामोंमें मजदूरीलेकर परिचारकवने यदा ब्रह्म जो वेदहै तिसके विक्रय आदिसे जीविका करै• चिकित्सक जो फोड़ा फुंसी चीर फार आदि मैली चिकित्साकरै• देवल जो किसी देवालयका चढावा खानेकी जीविका राखै• पुरोहित चाहै किसी वर्राकाहो जो छठो वसुंदिन आदि सुतकों का प्रतिग्रह लेनेकी टृत्ति राखता हो तिसका चर्चाहै (अदालतोंसभा पुरोहितों का चर्चा इसमें नहीं कितव को दोअर्थ हैं एक छलिया जो छलसे ठगईवाले कामकरै दूसरा जुआरी

कितव कहता है० मद्यप नशेवाज० कूट कारक जो अदालती आदि व्यवहारों में
 भुंटी गवाही आदि जातसाजी करना कराता हो० अपत्य विक्रयो जो अपनी संतान
 बेचता हो० मनुष्यविक्रेता (वर्देफरो) जो परायेंछी पुस्य कहींसे छलिकर वा खरीदि
 कर बेचता हो० पशुविक्रेता जो पशुओंके क्रय विक्रयसे जीविका रखता हो० चकार
 के व्वन्यर्थसे पक्षी आदिका बेचना भी समझिलेना—ये कृत्रिमनाम गिनानेवादि प्र-
 चेता कहितेहैं कि इतने उपपातकी ब्राह्मणा इन कामों में अच्छीतरह लीन हुये पीछे
 प्रायश्चित्तसे भी उद्धार होने योग्य नहीं किन्तु मुक्तिद्वयो फलके भागी नहीं होवक्तें
 हैं तथापि ब्राह्मणास्व की व्यवस्थावाले न्यायसे इतना होसक्ताहै कि—इन कामोंसे
 जो कुछ द्रव्यलेचुके हों सो सब त्यागिके दिनके चौथेकात में भोजनका नियम ले-
 कर एकसालभर शिकार खान कियाकरें और ज्ञानके अन्तमें वेदतर्पणा पितृतर्पणा
 कियाकरें फिर गोश्रासदेना आदि आन्हिक नित्यकर्म भी किया करें तो इस करने
 से संसारी लोगोंसाथ व्यवहार शादी समीके हेतुमेल योग्य होजाते हैं (मितासरा
 कार कहितेहैं कि यह प्रचेताकी दशाद्रि व्यवस्था भी बोधायनके समान विययपर
 समझिलेनी=और=मनुके कहे अपांक्तये पुरुषोंवाले प्रायश्चित्त (जो माता पिता
 पुत्रोंके त्यागपर लिखिचुके हैं सो) भी यहाँ व्यसनकी व्यवस्था में लेलेने चाहिये=
 यदाह मनुः=यद्यान्नकालतामासंसंहिताजपएववा होमाश्चशाकतानित्यमपांक्तानां
 विशोदनम्=अथवि=यद्यान्नकालतानाम छठेदिन अन्न भोजन या तीसरे दिन संध्या-
 कालसे पीछे भोजनका नियम एक महीनाभर साधें अथवा वेद संहिताका पाठ या
 गायत्रीका जपही एक महीनाभर करें तहाँ नित्यंप्रति होम करतारहे यह अपांक्तों
 का विशोदन प्रायश्चित्त है—इसका विशेष द्योरा (पितृ मातृ सुत गुरु त्याग) के
 स्थलपर देखी=इनमें बड़ेछोटे प्रायश्चित्तों के स्वरूप द्योरी का द्योय जैसा बड़ा या
 छोटा हो तिसके अनुरूप युक्तिसे सोचिलेना ॥ इतिसर्वव्यसनानांप्रायश्चित्तं ॥

छेछे दिनको बारह छच्छार्ध—छत्तीस दिनमें तीन तीन दिनको बारह प्रयोगयष्टान्न कालताबाले—केवल तीन दिनका उपवास—केवल एकदिन रातिका उपवास— विज्ञानेश्वर कहते हैं कि इन सातोंका क्रम देखने से निश्चित होगया कि द्यूतकर्म जुआरीपनकी धत्त में एकवर्षका व्रत कहागया और द्यूतकर्म ऊर्ध्वोक्त दुर्व्यसनों में गिनती होचुका तिससे सभी दुर्व्यसनोंपर यह वर्षादिनका प्रायश्चित्त उहिरा सो यह बारंवार हतकेसाथ अभ्यास करनेपर समझना (और यद्भी समझे रहिना कि यद्यपि विद्यार्थी सत्री वैश्य भी होतेहैं तथापि अत्रोक्त सर्व कर्म विशेषकर ब्राह्मणसे अपेक्षा रखतेहैं तथैव जो आगे वचन कहेंगे तिसमें समझिलेना ॥ ० ॥ इसीके समान एक दूसरी व्यवस्थाहै—यदाहप्रचेताः—अवृत्तवाकतस्करो राजभृत्यो वृक्षारोपकवृत्तिर्ग रदोऽग्निदोऽश्चरथगजारोहणवृत्तिः रंगोपजीवीश्वगणिकः शूद्रोपाध्यायोऽयलीपतिर्भांडिको नक्षत्रोपजीवीश्चवृत्तिर्ब्रह्मजीवी चिकित्सको देवलकः पुरोहितः कितवो भयपः कृत्कारकोऽपत्यविक्रयी मनुष्यपशुविक्रेता चेति नानुद्धरेत्समेत्यन्यायतो ब्राह्मणव्यवस्थया सर्वद्रव्यत्यागे चतुर्थकालाहारसंवत्सरप्रियवराहुपस्पृशेयुः तस्यांति देवपितृतर्पणां वाह्निकं चेत्येवमवधार्या इति (तदपि बोधायनेन समानविषयमिति मिताक्षरा—अयत्ति—प्रचेताने विशेषकर ब्राह्मणोंमें छत्तीस उपपातकी गिनायेहैं कि—असत्यबोली का अभ्यास राखनेवाला • चोरी करनेवाला • राजकादासत्व करनेवाला • वृक्ष लगाना आदि सालीकी वृत्ति जीविकाकरै • किसीको विधदेवै—आगि लगावै • कीच-सानी या • रथमानी या • हाथीमानीसे जीविका • रंगरेजी वा छीपी आदि रंगसाजी से जीविका • कुत्ते बहुतपालै बैचै या उनकी गिनती रखवारी आदिपर नौकरहोय • शूद्रोंकी पाधाई पुरोहिताई करै • वृथलीभार्या जिसके घरमें होय • भांडिक जो राज-बारों में तुरुही आदि शब्दोंसे कालसूचन करनेकी जीविकाराखै • नक्षत्रोपजीवी जो पंचांग नक्षत्र आदि सुनाते फिरते जीविका करै • श्रुति वह कि जो कृत्तोंकी तरह घर घर फिरते किसी तरहकी जीविकाराखै या ओढी सेवकाई नौकरी आदि क-रताहो • ब्राह्मणजीवी जो ब्राह्मणके कामोंमें मजदूरीलेकर परिचारकवने यदा ब्रह्म जो वेदहै तिसकी विक्रय आदिसे जीविका करै • चिकित्सक जो फोड़ा फुंसी चीर फार आदि मैली चिकित्साकरै • देवल जो किसी देवालयका चढावा खानेकी जीविका राखै • पुरोहित चाहें किसी वर्णाकाहो जो छठो बसुर्दान आदि सूतकों का प्रतिग्रह लेनेकी वृत्ति राखता हो तिसका चर्चाहि (अदालतोंसभा पुरोहितों का चर्चा इसमें नहीं कितव की दोआर्थ हैं एक छालिया जो छलसे दाईवाले कामकरै दूसरा जुआरी

आखंड होगा कि जिसने बहुत काल शूद्र की सेवा करीहो अन्यथा थोड़े काल की सेवा मध्ये ४४ चवालिसपरिच्छेद वाले प्रायश्चित्त यथायोग्य चुनि कर लेने होगे यह ऊपर भी लिखिचुके हैं—इसी प्रकार—आत्मविक्रय अपना देह किसी के हाथ बेचिकर दास होजाना आदि भी समझिलेना कि जिसने आप देने का वचन मात्र पका कियाहो तिसपर सबसे छोटा प्रायश्चित्त फिर जिसने अपना देह दूसरे न परिग्रहमें फँसाही दिया तिसके छूटिगाने पर कुछ बड़ा प्रायश्चित्त फिर जो कोई कुछ अर्थात् तक दूसरेके कब्जमें रहिकर छूटा तिसपर कुछ और बड़ा या जो कोई अति काल रहिके छूटे तिसपर अशोक तीन वर्षोंका प्रायश्चित्त भी आखंड होसक्ता है इत्यात्मविक्रयशूद्रसेवनयोः प्रायश्चित्त ॥

(हीनमैत्री प्रायश्चित्तं)

शूद्रसेवाके लगमा २४१ दोसौ इकतालिस मूलश्लोकमें हीनजातिसे मित्रता करना (हीनसख्य) इस नामसे उपपातक दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने ज़ुदा कुछ नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदमें से छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको दोयके अनुसार चुनिके जोड़िलेना—मितासरा कार कहिते हैं कि प्रचेताने जो ऐसा कहाहै कि—मित्रभेदकरणादहोरात्रमनश्च हुस्वापयःपिषेदिति(तदहीनसख्यभेदविययं=अर्थात्—मित्रोंमें भेद करानेके दोयसे एक दिन राति भर निराहार होकर अग्नि में होम करिके दूधपीवै) (सो यह प्रायश्चित्त अहीन जाति के मित्रोंमें भेद कराने पर समझना) (यद्यपि इस प्रकरणमें यह वचन लिखाजाने का प्रयोजन कुछ नहीं था तौभी जो महात्मा लोग लिखिचुके सो हमने भी लिखि दिया ॥ इतिहीनजातिमिमैत्रीकरण प्रायश्चित्त ॥

(हीनयोनिसेवन प्रायश्चित्तं)

हीनसख्यसे लगमा २४१ दोसौ इकतालिस मूलश्लोकमें (हीनयोनि सेवन) इस नामका उपपातक दर्शाया था परन्तु योगीश्वर ने उसका प्रायश्चित्त ज़ुदा करिके नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको चुनिकर यहाँ दोयको छोटाई बड़ाई सोचिके जोड़िलेना—परन्तु—हीनयोनिका सेवन भी कईभाँति का होताहै कि एक तो वेश्या आदि साधारण स्त्रियोंका भोगभी हीनयोनिका सेवन है अथवा अपनेसे नीचे वर्गोंकी स्त्रियोंसे विवाह जिसने किया हो इत्यादि भेदों के

अथ आत्मविक्रयशूद्रसेवादुपपातकचतुष्टयस्य प्राय- श्चित्तप्रकाशकोऽथपरिच्छेदः सप्रषष्टिः (६७) ॥



इस परिच्छेद में चार उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे तिनमें प्रथम आत्मविक्रय और शूद्रकी सेवाका फिर हीन जातिकी सेवी का फिर हीनयोनि सेवन करने का ॥

(आत्मविक्रयशूद्रसेवनयोः प्रायश्चित्तं)

व्यसनों से लगाना दोमौ चालीस २४०, सप्त इति लोक के अंत में (आत्म विक्रय) भी उपपातक फिर २४० में (शूद्रप्रेष्य) भी उपपातक बतायाया—इत दोनों के प्राय-श्चित्त योगीश्वर ने जुड़े करिके नहीं कहे—तिससे ४४ चवात्तिस परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्त चुनिकर इनके दोयकी कोटाई बड़ाईपर जोड़िलेना=इसमें शूद्र सेवा के मध्ये एक बोधायनका वचन भी देखा गयाहै=यथा=ममुद्र शान्त्राह्वारास्यन्यासा पहरांसर्वापरादैर्व्यवहरांभूभ्यपनुवृत्तं शूद्रसेवायश्चशूद्रायासमिजायते तदपत्यंच भवति ते यांस्तु निर्देशः चतुर्थकालांमितभोजनाः स्युरपीत्युपयुः सबनानुकल्पं स्यानासनाभ्यां विहरतश्तेऽस्त्रिभिर्वर्यस्तदपन्नंतिपापम् (इतितहहुकालसेवाविधयमितिमितासरा=अर्थात्—समुद्रकीयात्राजोजहाजपरहोतीहै•बाह्यराकोधरोहरिहर लेना•जोचीजें बेचनानियिहहैं तिनसे व्यवहारकरना•भूभ्यपनुवृत्तं कर्म अर्थात् धरतीकाखोदनाभीतर घुसनाआदि अथवा(भूभ्यपवृत्त पाठ होनेसे) परानुखहोजाना धरतीहयारि देनावेचि देना आदि अर्थनिकसते हैं जो कुछहो मोसही• शूद्र जातिकोनोंकरी करना•औरजो कोई शूद्रमें वीजदान करिके जन्म धरे•औरउसकेजोशूद्रकोसन्तानहोय•तितनबके लिये यहआज्ञाहै कि दिनकेचौथे कालमें सकही बार थोड़ासाभोजनकरनेकानियम साधेहुये नित्यम्प्रति सवनकेतुल्य स्नानकियाकरै अर्थात्जैसे यज्ञोंकाअंगभूतस्नान वेद के मंत्रोंसे अभियेवन हुआ करता है वही सवन कहाताहै तैसा रोजकरै और स्यान् तथा आसनको दृढतासे बिचरते हुये इने कर्मोंसे तोनि वर्यमें उन पापोंको मोसही हैं विज्ञानेश्वर मितासराकार कहिते हैं कि इनमे से इस प्रकारका प्रयोजन पर शूद्र की सेवा लेना आवश्यक है तिसके लिये यह तीन वर्योंका प्रायश्चित्त उस दशानें

आखंड होगा कि जिसने बहुत काल शूद्र की सेवा करीहो अन्यथा थोड़े काल की सेवा मध्ये ४४ चर्वालिषपरिच्छेद वाले प्रायश्चित्त यथायोग्य चुन कर लेने होंगे यह ऊपर भी लिखिचुके हैं—इसी प्रकार—आत्मविक्रय अपना देह किसी के हाथ बेचिकर दास होजाना आदि भी समझिलेना कि जिसने आप देने का वचन मात्र पका कियाहो तिसपर सबसे छोटा प्रायश्चित्त फिर जिसने अपना देह दूसरे न परिग्रहमें फँसाही दिया तिसके छूटिआने पर कुछ बड़ा प्रायश्चित्त फिर जो कोई कुछ अवधि तक दूसरेके कब्जामें रहिकर छूटा तिसपर कुछ और बड़ा या जो कोई अति काल रहिके छूटे तिसपर अशोक तीन वर्योंका प्रायश्चित्त भी आखंड होसक्ता है इत्यात्मविक्रयशूद्रसेवनयोः प्रायश्चित्त ॥

(हीनमैत्री प्रायश्चित्तं)

शूद्रसेवाके लगमा २४१ दोसौ इकतालिष मूलश्लोकमें हीनजातिसे मित्रता करना (हीनसख्य) इस नामसे उपपातक दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने जुदा कुछ नहीं कहा तिससे ४४ चर्वालिष परिच्छेदमें से छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको दोयके अनुसार चुनिके जोड़िलेना=मिताक्षरा कार कहिते हैं कि प्रचेताने जो ऐसा कहाहै कि=मित्रभेदकरणादहोरात्रमनश्च ह्रस्वापयःपिबेदति(तदहीनसख्यभेदविययं=अर्थात्—मित्रोंमें भेद करानेके दोयसे एक दिन राति भर निराहार होकर अग्नि में होम करिके दूधपीवै) सो यह प्रायश्चित्त अहीन जाति के मित्रोंमें भेद कराने पर समझना (यद्यपि इस प्रकरणमें यह वचन लिखाजाने का प्रयोजन कुछ नहीं था तौभी जो नहार्ता लोग लिखिचुके सो हमने भी लिखि दिया ॥ इतिहीनजातिभिर्मैत्रीकरण प्रायश्चित्त ॥

(हीनयोनिसेवन प्रायश्चित्तं)

हीनसख्यसे लगमा २४१ दोसौ इकतालिष मूलश्लोकमें (हीनयोनि सेवन) इस नामका उपपातक दर्शाया था परन्तु योगीश्वर ने उसका प्रायश्चित्त जुदा करिके नहीं कहा तिससे ४४ चर्वालिष परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको चुनिकर यहां दोयकी छोटाई बड़ाई सोचिके जोड़िलेना—परन्तु—हीनयोनिका सेवन भी कइभांति का होताहै कि एक तौ वेश्या आदि साधारण स्त्रियोंका भोगभी हीनयोनिका सेवन है अथवा अपनेसे नीचे वर्गकी स्त्रियोंसे निबाह जिसने किया हो इत्यादि भेदों के

जुसे प्रायश्चित्त आगे दर्शाते हैं—यथाह शातातपः=ब्राह्मणो राजन्यापूर्वः कृच्छ्रं दशरात्रं चरित्वा निविशेत्तां चोपयच्छेत् वैश्यापूर्वतस्तृकच्छ्रं शूद्रापूर्वतस्तृकच्छ्रं रात्र्यं चरित्वा निविशेत्तां चोपयच्छेदिति शूद्रा पूर्वतस्तृकच्छ्रं वैश्यश्चेच्छ्रं द्रापूर्वः कृच्छ्रं दशरात्रं चरित्वा तां चोपयच्छेदिति—तत्र (निविशेत्तां चोपयच्छेदिति कृच्छ्रानुष्ठानोत्तरकालं स्वर्णापरिणयनादूर्ध्वं तां च राजन्यादिकामुपयच्छेदित्यर्थः) इदं चान्नान्विययं—ज्ञानतस्तु पपातकमामान्यप्रायश्चित्तं व्यवस्थितमेव द्रव्यमिति मिताक्षरा=अर्थात्—शातातपने कहा है कि जिस ब्राह्मण के घरमें पहिले सवारी विवाहित हो चुकी हो वही जत्र अपने घरमें विवाह करना चाहे तो यह उसके ऊपर दाय है कि पहिले नीचे घरमें विवाह किया इसी लिये सवारीको विवाहनेसे पहिले चारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके पीछे विवाह करे फिर उस सवारीको भी पास ही रखे। इसी रीतिसे जो ब्राह्मण पहिले बनेनेसे विवाह कर चुका हो सो तत्तृकच्छ्र व्रत करिके सवारीसे विवाह करे फिर उस पहिलीकी भी पास रखे। इसी रीतिसे जो ब्राह्मण पहिले शूद्रासे विवाह कर चुका हो सो कृच्छ्रा-तृकच्छ्र व्रत करिके तब सवारीसे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी रखे—सारी जो पहिले बनेनीसे विवाह कर चुका हो सो चारह दिन कृच्छ्रव्रत करिके अपनी स-वारीसे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रखे। जो सारी पहिले शूद्रासाथ विवाह कर चुका हो सो अतृकच्छ्र करिके पीछे सवारीसे विवाह करे फिर उस प-हिलीको भी पास रखे—वैश्य जो शूद्राके साथ विवाह कर चुका हो सो चारह दिन कृच्छ्रव्रत करिके तब सवारीसे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रखे—प-रन्तु मिताक्षराकार कहते हैं ये छोटे प्रायश्चित्त केवल उनके लिये समझना जिनको ने नीचे वर्णकी कन्या विना जाने बोखा आरिसे विवाहिती होय—किन्तु जानतेहुये इच्छा सहित जिसने नीचे वर्णकी कन्या ग्रहण करी होय तिसके लिये जैसा ऊपर लिखि चुके तैसा ४४ चवालिकके परिच्छेदसे सामान्य उपपातकों वाले प्रायश्चित्त चुनिकर लेने चाहिये ॥ वैश्यादि भोगविषये तु विशेषः—वैश्या आदि साधारण स्त्रियां जो सर्वजनोंके भोग निमित्तमें प्रसिद्ध होती हैं तिनका भोग भी हीनयोनि-का सेवन कहाता है—तिनका संगम यदि एकवार इच्छा बिना किसी बोखा से हो गया हो तदा संयत आदि के कहे प्रायश्चित्त जोहने=यथा=पशुवैश्याभिरात्मने प्राजापत्यं विधीयते—तथा—वैश्यागमनजपापच्यपोहंति हिजातयः पोच्यसङ्कसङ्कसत्त सवारीकु गोदकच=अर्थात्—पशुकी योनि या वैश्याकी योनि में संगम करने पर प्राजापत्य

करना चाहिये—तथा—वेश्याके संगम से उत्पन्न पाप को द्विजाती लोग इस तरह से धोसकते हैं कि सात दिन तक एकही एकबार कुशाग्रोंका औंढाया पानी खूब गरम पीकी रहें—यह अज्ञानताका प्रायश्चित्त कहा—परन्तु जिसने जानि बुझि के वेश्या में संगम कियाहो तिसके लिये ४४ चवालिस परिच्छेद वाले छोटे बड़े प्रायश्चित्त थोड़े या बहुत दिनोंके अभ्यास रूपी छोटे बड़े पापके अनुसार चुनिके समझिलेने—परन्तु—इसमें कुछ भेद अभी और है कि जिसने इच्छा सहित बारम्बार वेश्यागमन का अभ्यास कियाहो तहां (प्रतिनिमित्तनैमित्तिकमावर्तते इतिन्यायात्) हरएक पापके ऊपर प्रायश्चित्तकी आवृत्ति बढ़ती है इस न्यायसे) प्रत्येक पाप के ऊपर प्रायश्चित्तोंकी संख्या बहुत होती देखिके लोकार्क्षि आचार्यने एक जुदाही नियम दर्शाया है—यथाह लौकार्क्षि=अभ्यासेर्ह्युणावृद्धिर्मासद्वारिविधीयते ततोमासद्व्यावृद्धिर्वावन्त्संवत्सरंभवेत् तत्संवत्सरद्व्यावृत्तपापसमाचरेदिति (इदमतिपूर्ववि-ययं=अर्थात्—जो कुछ प्रायश्चित्त एकबार के पाप करने पर कहा गयाहो तिसकी वृद्धि महीनाके भीतर कई बार पाप करने में उन्हीं दिवसों की संख्या साथ करी जायगी कि जितने दिनों पाप कियाहो फिर महीनासे उपरान्त एकसाल के भीतर में जितने महीने पाप कियाहो उन्हींकी संख्यासे गुणाकर प्रायश्चित्तोंकी आवृत्ति बढ़ाई जायगी अर्थात् जितने महीने ठहरे उतनेही प्रायश्चित्त करने परें फिर एक वर्षसे उपरान्तमें जितने वर्षतक पाप करता रहा हो उतनेही प्रायश्चित्त करने परें—सो यह नियम केवल उसके लिये समझना कि जिसने जानते हुये पाप किया हो=किन्तु—जिसने बिना जाने बारम्बार पाप करनेका अभ्यास कियाहो तिसके लिये चतुर्विंशतिमत् नामके ग्रन्थ में विशेषता कही गईहै—यथा=सकृत्कृतेतुयप्रोक्तं विद्युत्तत्तद्विभिर्दिनैः मासात्पंचशुभाप्रोक्तंपरमासादृग्भाभवेत् संवत्सरत्पचदशंप्रवक्ष्यामि श्रुत्वाभवेत्ततोऽप्येवंप्रकल्प्यस्यातृशतात्तपवचोयथा=अर्थात्—एकबार पाप करने में जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गयाहो सो तीन दिनके भीतरमें तद्वत् कियाजाय किन्तु तीन दिनोंसे उपरालू महीनाके भीतर चाहें कितनेही दिवसों बिनाजाने पाप किया हो तिसपर तिथिना प्रायश्चित्त चाहिये और महीनासे ऊपर ऊमाहीके भीतर बिना जाने चाहें कितनेही बार पाप कियाहो तिसपर पांचशुभा प्रायश्चित्त चाहिये और ऊमाहीसे ऊपर पूरे सालके भीतर बिना जाने चाहें कितनेही बार पाप किया हो तिसपर दशशुभा प्रायश्चित्त चाहिये और एकवर्षसे ऊपर तीनवर्षके भीतर बिना जाने चाहें कितनेही बार पाप किया हो तिस पर द्वादशशुभा प्रायश्चित्त चाहिये

तिसको जब संसारी व्यवहारोंमें शामिल होनेकी जखुरत समझी जाय और वेष्टया के साथ भोजन करनेमें आदि प्रकारोंसे बचा भी रहिसकाहो=और जो गुरुतरूप से छोटे प्रायश्चित्त इसी यमके वचनमें दर्शायेये सो सब यथायोग्य छोटे मोटे दोषों की दशाके अनुसार वेष्टयागामोपर आछड़ किये जासके हैं ॥ इतिवेष्टयादिहीन योनिसेवनप्रायश्चित्तं ॥

**अथ अनाश्रमवासादि सदसत्प्रतिग्रहांतोपपातक षट्क
स्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः अष्टषष्टितमः (६८)**

इस परिच्छेद में छः प्रकारके उपपातकोंका प्रायश्चित्त दर्शाया जायगा—तिन में प्रथम अनाश्रमीका प्रायश्चित्त फिर पराजलोलुपका और असत्प्राप्तके अभ्यासीका और खानिके अधिकारीका और भार्या बेचनेवालेका फिर असत्प्रतिग्रह और सत्प्रतिग्रहलेनेका प्रायश्चित्त कहाजायगा ॥

(अनाश्रमवासप्रायश्चित्तं)

दोसौ इकतालिस मूल श्लोकमें हीन योनि सेवनसे लगामा योगीश्वरने (तथैवा-
नाश्रमेवासः) इस पदसे अनाश्रम वास रूपी उपपातक ठहरायाया विशेष द्यौरा
इसका उसी २४१ की अधिकोक्तिमें देखी परंव जूरा प्रायश्चित्त कहीं नहीं कहा
तिससे४४ चवालिस परिच्छेदका सहारालेनाहोगा—परन्तु—हारीतने जदाप्रायश्चित्त
भी कहा है=यथा=अनाश्रमी संवत्सरं प्राजापत्यकृच्छ्रं चरित्वा११ग्रममुपेयात् द्वि-
तीये१२ति कृच्छ्रं तृतीये कृच्छ्राति कृच्छ्रं मत कर्त्तव्यं चान्द्रायणमिति—सत्सदसम्भवि-
ययं सम्भवेतु सामान्योपपातक प्रायश्चित्तानि कामाक्रामतोद्वयवस्यापनीयानीति
मिताक्षरा=अर्थात्—अनाश्रमी उसका नामहै जो चार आयुओं में किसी भी आयुम
का साथी न होय किन्तु भार्या मरजाने या प्रथमसेही विवाह न करनेसे निहंगरहि
कर गृहस्थीके आयुमकी न थांमैं न ब्रह्मचारी संन्यासी वानप्रस्थहोजाय सेसापुत्रव
दिकाना बांवेविना चाहें तहां बौंदकी या चाहें तिसकेपास पेट भरिके दिन काहें सो
अनाश्रमी ठीक ठीकहैं तिसकेलिये हारीतमुनि कहतेहैं कि—एकसाल भर अनाश्रमी

होके जहां तहां दिन कारै सो इस दोय के ऊपर प्राजापत्य कच्छ व्रत आचरणा करिके किसी आयसमें दाखिल होजाय दूसरे सालतक अनाशनी हींके रहा फिरा होय सो अति कच्छ करिके आयस का स्वीकार करै तोखे साल तक अनाशनी फिराहोय सो कच्छातिहच्छ करिके आयसयाँमें तीनवयसे भी अधिक जो अनाशनी रहाहो सो महीना भर चान्द्रायण करिके आयसका सहारा लेवे— मिताक्षरा कार कहितेहैं कि यहजियस हारीतवाला उसकेलिये समझना जिसका विवाहादि न होसकनेसे गृहस्थ आदि आदिआयसका विक्षेप लाचारीसे रहा हो किन्तु जिसने विवाहआदि आयसों के डौल होसकतेहूये उपेक्षा करीहो तिसकेलिये ४४ चर्वालि स परिच्छेद में सामान्य उपपातकों वाले बड़े छोटे प्रायश्चित्त दोय दशा के अनुसार चुतिके जोड़ि लेने चाहिये=इस वार्त्ताका संक्षेप द्यौरा २४१ दोसौइकतातिस मूल श्लोकवाली अधिकोक्तिमें लिखिचुके तहांदेखो ॥ इत्यनाश्रमवासप्रायश्चित्त ॥

(परपाकसचित्वादीनांप्रायश्चित्तचतुष्टयं)

अनाश्रमवास के लगसा २४१में (पराक्षपरिपुष्टता) इस पदसे परपाक सचित्त कहिके २४२ दोसौवयालिस मूलश्लोकमें तीन उपपातकों के नाम और भी योगीचरने इसक्रमसे कहेये (असद्व शास्त्रों का अविगमन) (आकरेयु अधिकारता) (भार्याविक्रय) अर्थ इनचारोंके उसी मूल श्लोकमें देखो—इन चारोंके प्रायश्चित्त कहीं जुदे करिके नहीं कहे गये हैं—तिससे ४४ चर्वालि स परिच्छेद में साधारण प्रायश्चित्त योगीचर तथा मनुके कहे छोटे बड़े चुनिकर इनके दोयोंकी छोटाईबड़ाई परजाति और शक्ति और गुणादिकों की अपेक्षासे व्यवस्थापन करलेने चाहिये ॥ इतिपरपाकसचित्वादिभार्याविक्रयांतानांप्रायश्चित्त ॥

यहांतक सर्वदोसौनवानी मूलश्लोकवाली टीकाकाशेषपाठ चलाआता था कि जिसकाचर्चा ६४ चौसठि परिच्छेदके प्रारम्भसमय लिखागया सो अबनिपटिगया ॥

(असत्प्रतिग्रहप्रायश्चित्तं)

दोसौवयालिस २४२ मूलश्लोक में (भार्याविक्रयश्च) इस चकारके ध्वन्यर्थ से बिना कहे भी उपपातक सन्वादिस्मृतियों के लिखे समझने कहिचुके हैं उसीकी अधिकोक्तिमेंदेखो कि सन्वादिक कर्त्याचरोंके दशपेनाम अनसत्प्रतिग्रहआदि अनेक जो वहांपर कहिचुकेये उनको भी प्रायश्चित्त आगे यथा क्रमसे दशपेनाम तिनमें

और तीन वर्षसे उपरान्तमें बीसगुणा प्रार्याश्रित्त चाहिये—तिसपर भी ऐसी कल्पना करनी चाहिये कि जैसा शातातपके वचनमें इसी वार्ताका चर्चा कहीं आचुका हो विरोधशान्तिः ध्यानकरो इस पिछले अङ्गमें कल्पना करनेकी आज्ञा कही तिसका यह तात्पर्य नहीं है कि इसी तरह बीसगुनेसे भी अधिक बढ़ाते चले जायँ जैसी वर्षों अधिक देखें—क्योंकि ऐसा समझिलेनेसे बहुत बड़ा अन्याय खड़ा होता है—तिससे इसका यह तात्पर्य है कि यद्यपि इन वचनोंमें गुणा करनेके नियम निश्चित किये गये तथापि कहीं विरोधको देखिभाल इसमें भी न्यायात्मक कल्पना अपनीपुक्ति से करनी चाहिये जैसी शातातपके वचनसे कहीं शिखा भी हो चुकी है—और सिद्धांत इसका यही है कि विरोध का दूर करना आवश्यक है—इसका दृष्टान्त जैसा इसी अङ्ग पर विरोध सबजगह कि तीनवर्षसे ऊपर चौथेवर्षमें भी बीस गुणा प्रार्याश्रित्त अज्ञानतासे पाप करें या पर ठहरा कि जिसपर कोमलताकी अपेक्षा थी और उन्हीं चार वर्षोंमें केवल चौगुना प्रार्याश्रित्त जानिबूझि पापकरें या पर साबितहुआ कि जिसपर कहोरताकी जखुरत पाई जाती थी, यह बात ऊपर लीगासिवाली व्यवस्था में देखो इन दोनों के बीच अभी और भी अनेकधा विरोध पायेजासक्ते हैं तिन विरोधोंका निवारण करनेकी आज्ञा पिछले अङ्गसे दशशङ्के कि जिससे अन्याय न होनेपावे—तिसके लिये—ऊपर ले अर्थों में यह युक्ति सोचनी चाहिये कि जहां तीन दिनसे ऊपर महीनाके भीतर तिगुना करना कहा तहां भी सिर्फ चौथे दिन में तिगुना न कर देना किन्तु जैसे दिन थोड़े वा अधिक पाये जायँ तैसे सवाया डेढ़वा डूना तक पन्द्रह दिनके भीतर फिर इसीतरह थोड़ा थोड़ा बढ़ाते जाकर पूरे महीना तक तिगुना प्रार्याश्रित्त जोड़ना फिर पूरे कड़े महीने होजाने पर उन्हींकी संख्यासे गुणा करना कहिचुके हैं तहां भी यह सोचना कि दो महीने तकयही तिगुना राखनेसे न्याय ठीक होगा (अन्यथा दो महीनेमें दुगुना करानेसे दोही आहति रही जाती है) तिससे तीन महीने पूरे होजाने पर पांच गुणोका प्रारम्भ करना अर्थात् तिगुनेसे अधिक चौगुना चौथे पांचवें महीनाके भीतर और छठे महीनाके पूरे होने तक पांचगुनेका बर्तावा करना—फिर सातवें मासकेपूरे न होनेतक यही पाँचगुना राखना तिस पीछे एक एक महीनाकी अधिकता होताजानेमें एक एक गुणा बढ़ाते जाना अर्थात् आठवें मासमें छे गुना नववेंमें सात गुना दशवेंमें आठ गुना ग्यारहवेंमें नौ गुना बारहवेंमें दश गुना—इसीतरह पूरे वर्ष से उपरान्त जहां पन्द्रह गुणा प्रार्याश्रित्त तीन वर्षके भीतरमें कहिचुके तहां भी दूसरी तीसरी बोरियोंके २५ महीनों

पर फैलावा अपनी बुद्धिसेकरना—फिर तीनवर्षसे उपरान्तमें जो बीसगुना कहिचुके सो भी केवल चौथी वर्षमें न समझि लेना किन्तु पांच वर्ष आदि लेकर बहुत वर्षों देखिपरने में बीस गुनेका बर्त्तावा करना चाहिये इसके भीतर उसी पन्द्रह गुने का बर्त्तावा चलाआवेगा क्योंकि (ये चतुर्विंशति मत के श्लोकों वाली व्यवस्था कुछ वाचनिक प्रभावसे संयुक्त नहीं है कि जो कुछ वचनमें उच्चारण कियागया उसीपर आरुढ़ होना) इसीलिये इन श्लोकों ने आपही पिछले अष्ट से कहिदिया है कि इसमें न्यायकी दृष्टिसे कल्पना भी करनी चाहिये जिससे अन्धाय न होसके—वरन इस अन्धायके बचानेके निमित्तसे दोयकी छोटाई बड़ाईपर भी ध्यान देकर यहकल्पना करनी चाहिये जो अभी लिखिचुके (आधुनिक अनुवादक इसबात से लाचार हैं कि प्राचीन संग्रहकारने निजन्धाय दृष्टिसे चतुर्विंशति मतकी व्यवस्था अज्ञानता के पापमध्ये स्थापन करी और लैगासिवाली व्यवस्था की इच्छा सहितके पापोंपर स्थापन किया) इसके बादिमितासरा कार फिर कहते हैं कि (यस्पुनःषष्ठेःप्रायश्चित्तादस्मात् द्वितीयेद्विगुणाचरेदिति प्रतिनिमित्तमाहृतिविधायकं तन्महापातक विययमित्युक्तंप्राक) अर्थात्—यह वचन जो प्रसिद्ध है कि इस पहिलेकिये अपराध पर जो कुछ प्रायश्चित्त की विधि कही गई, तिसके करचुकने के बाद जब उसी अपराध को फिर करे तब दूना प्रायश्चित्त कराया जाय इसी प्रकार तीसरी बार तियुना करवायाजाय इत्यादि से यह महा पातकोंपर आरुढ़ है इसका निर्णय पहिले ब्रह्महत्या आदि प्रकरणोंमें होचुका तिससे यहां इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है ॥०॥ पुनराहविज्ञानेश्वर—यत्तुयमेनसाधारणास्त्रोगमनमविकृत्यगुस्तत्पवत्रतमतिदियं—गुस्तत्पवत्रकोचिचकोचिचान्द्रायणाव्रतस्य गोघ्नस्येच्छन्तिकेचिचकोचिदेवावकीरान् । (इत्येतच्चजन्मप्रभृतिमानुवन्धानवच्छिन्नाभ्यासविययमितिमितासरा) अर्थात्—विज्ञानेश्वर आचार्य फिर कहते हैं कि यमने जो वेश्या आदि साधारण स्त्रियां गमन करनेके पाप पर गुस्तत्प महापापवाले प्रायश्चित्तका अति देश अगिले वचन से उताराहै कि—विरले आचार्य गुस्तत्पवाला व्रत बताते और विरले चान्द्रायणा व्रत बताते और विरले गोहत्या वाले प्रायश्चित्त चाइना करते और विरले अक्कीर्णों ब्रह्मचारी वाले प्रायश्चित्त उडिराते हैं कि जैसा काने गदहा से नैश्चत याग करना आदि कहागयाथा० इनमेंसे गुस्तत्पवाला व्रत केवल उसकेलिये समझना कि जो मनुष्य अपने जन्मसे छवि सम्हारनेके साथही खुलाखुली वेश्याबाजीमें तत्परहोके इसके साथ निरन्तर अभ्यास करता रहिकर अपनी बहुत अवस्थाको निताइच्छाक

सत्प्रतिग्रह के पाप से छुटि जाता है—अब दूसरी व्यवस्था देखौ ॥ ० ॥ जिसने किसी न्यायवंती धर्मात्मा ब्राह्मण आदि ग्रेष्ठ पुरुषसे खोटा प्रतिग्रह वेठा वकरा आदि कुछ लिया हो तिसपर एक वस्तु के खोटे स्वरूप ही का दोष पाया जाता है यद्वा धरतो स्कान आदि ग्रेष्ठ चीजों का प्रतिग्रह पतित आदि महा पापी से या चण्डाल आदि अशुचि सनुष्यां से लिया हो तिस परभी एकही दोष पाया जाता है • तिसके लिये यद्विशन्मत के कहे प्रायश्चित्त चाहिये=यथा=पवित्रेष्टा विशुद्धतिसर्वेद्यो राः प्रतिग्रहाः ऐदमेवमृगारेष्टयाकदाचिन्मिषन्दिद्या देव्यालसजपेनैवशुद्धान्तेदुप्रति ग्रहात=अर्थात्—सब तरह के खोटे प्रतिग्रह जिनके लेने से महा घोर पाप होते हैं तिनके भी लियेया शुद्ध होते हैं पवित्रेष्टि के करनेसे अर्थात् पवित्र नाम यज्ञोपवीत है तिसकी इष्टि करना पुनर्यज्ञोपवीत का सर्वथा सस्कार कराना यह तात्पर्य है • परन्तु जो प्रतिग्रह अत्यंत घोर न समझा जाय तौ फिर इसी पवित्रेष्टि का अर्थ पवित्रारोपण या पवित्रारोहण इस नाम का यज्ञमाना जाय जिसका यह लक्षण है कि यावदा महीना की शुक्ला द्वादशी के दिवस विष्णु देव के नाम से यज्ञोपवीत कर्म किया जाता है—जहाँ इससे भी इलुका प्रतिग्रह समझा जाय जिसके मित्रही निन्दा करें तौ इस दोष में ऐदव चांद्रायणा व्रत करना चाहिये यद्वा मृगारेष्टि कर्म अर्थात् याचना किये द्रव्यों से अभावस्या पूर्णामासी के वेदोक्त यजन कियाकरै तौ भी शुद्ध होता है • अथवा यह न होसकै तौ गायत्री देवी का एक लक्ष सख्या जप ही करिके शुद्ध होता है जिसने असत्प्रतिग्रह लेलिया हो ॥ ० ॥ जोकि दृढहारीत का यह वचन है=राज्ञः प्रतिग्रहकृत्स्वामासमप्युसदायसेव यथेकालेपयोभक्त पूर्णामासे विशुद्ध्यति तर्पयित्वाहिजान्कामैस्ततर्तनित्यतव्रतः (एतच्चपूर्वोक्तविययाभ्यासेद्वय अथवापतितदेःकुरुक्षेत्रोपरागादौ कृष्णाजिनादिप्रतिग्रह वियग्रनिर्गमिताक्षरा= अर्थात्—राजा से खोटा प्रतिग्रह लेकर ब्राह्मण को चाहिये कि एक नहीना भर नित्यव्रति जल में बैठा रहा करै और एक पहर भर राति वीति जाने बाद थोड़ादूध पिआ करै फिर महीना पूरा होजाने पर ब्राह्मणों को इच्छा भोजन से दत्त करिके शुद्ध होता है (मितासरा कार कहिते हैं कि हारीत का यह वचन उस प्रतिग्रह के वियग्र पर मानना कि जैसा पहिले अविकीर्ति के प्रारम्भ में दो दोषों का इकट्ठा होना लिखि चुके अथवा इस रीति से कि जिसने कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों पर ग्रहण आदिकठिन काल में महा पापी आदि पतितों से प्रतिग्रह लिया होय) इस व्यवस्था का यह तात्पर्य यहिरा कि हारीत के वचन में जैसा कहा गया कि राजाका

प्रतिग्रह लेकर ऐसा प्रायश्चित्त करे सो यह कथन सब राजानों के सब अच्छे भी प्रतिग्रहों पर न समझ लेना ॥ ० ॥ इसी प्रकार प्रतिग्रह का द्रव्य थोड़ा होने की दशा पर भी प्रायश्चित्त छोटा होना चाहिये सो भी हारीत की मध्यमस्मृति का वचन देखो—तथाच हारीत—मरिगावासोगवादीनांप्रतिग्रहसो ऋविन्ध्यसु बहुजपेत—मरिगायों वा बखों वा गाय आदि उत्तम चीजों के दान इन्हीं कोसों के अनुमान प्रतिग्रह लेनेमें आठ सहस्र गायत्री अपि डारें इसीसे शुद्ध होजाता है ॥ ० ॥ सत्प्रतिग्रहेप्रियथोचित प्रायश्चित्त—यद्विघ्नमत के ग्रन्थ में यह भी नियम किया है कि जिसने येष्ट प्रतिग्रह लिया हो सो भी कुछ प्रायश्चित्त करे—यथा—भिक्षामावेश्चे ह्रीतेऽतिपुण्यमंत्रमुदीरयेत् प्रतिग्रहेयुस्त्वेयु ययमंशप्रकल्पयेत्—अर्थात्—जिस ब्राह्मण ने याचना करने से भिक्षामात्र का दान ग्रहण किया होय सो अति पुण्य मंत्र का उच्चारण करे अर्थात् अपने इष्टदेव का जो मुख्य मन्त्र है सो अति पुण्यमंत्र समझना अथवा जिसके कोई इष्टदेव न होय सो गायत्री का उच्चारण करे उच्चारण करना भी जैसी थोड़ी या बहुत भिक्षा ग्रहण करी होय तैसीही थोड़ी या बहुत मन्त्रों की संख्या भी नियत करे परन्तु जिसने दानही की रीतिसे कुछ येष्ट प्रतिग्रह लिया होय सो उस प्रतिग्रह के द्रव्य में से छटा भाग पुण्य करे ॥ ० ॥ जबकि येष्ट प्रतिग्रह में से भी छटा भाग देना ठीकरा तोफिर खोटे प्रतिग्रह का सर्व धन त्यागिदेना सिद्ध होगया और इसी का पक्काहट अगिले वचनसे भी स्पष्ट है—यदाह मनुः—यद्वाग हितिनार्जयति कर्मणाब्राह्मणाधनन तस्योत्सर्गोराशुह्यन्तिजपेनतपसैवचेति—अर्थात्—ब्राह्मण लोग जो निन्दित प्रतिग्रह आदि कर्म से धन संग्रह करते हैं तिसको पुण्य कर देने से ही शुद्ध होते हैं और इसके ऊपर जप तप करनेसेभी—इसीप्रकार—र= और भी स्मृतियों के वचन जो कुछ मिलें सो सब प्रतिग्रह रूपी द्रव्य का सार और अल्पत्व महत्त्व से भी पूर्वोक्त सर्व विषयों पर युक्ति से व्यवस्थापन कर लेने चाहिये इति सदसत्प्रतिग्रह प्रायश्चित्त ॥

इत्यनिष्ट सग सेवनादि प्रायश्चित्तप्रकरणा ॥

इस प्रकारका मैं आसठ सरसठि अड़सठि वे तीनि परिच्छेद हैं जिनमें सभीवार्ता ऐसी हैं जो खोरा सग में उन्हे आदि से सवन्व राखती है ॥

अथ प्रासगिकीवार्ता ॥

विज्ञानेश्वर आचार्य सक्त श्लोक देकर कुछ और प्रायश्चित्तों का दर्शनाधारभ

करते हैं—यथा (जात्याग्रयादिव्येण निद्यानादेयशब्दतः योगीन्द्राक्तव्रतव्रातंसांप्रत
तुप्रतन्यते) अर्थात् अब योगीश्वर के कहे उन पापों के व्रतों का समूह, विस्तार
करके दिखलावेंगे कि जिनको मुख से खुल्लम कहे बिना २४२ दो सौ ब्यालिस
मूल श्लोक में चकार के ध्वन्यर्थ से समस्या किये थे कि जो जो उनके हृदय के
भीतर उद्गात (उभरे हुये) हो रहे थे उनसे बहुधा पाप ऐसे हैं जो जाति वा आग्रय
आदि दोषों से उत्पन्न होयें अथवा नाम के शब्द ही से निंद्य और अनादेय अभ-
क्ष्यपन समझा जाय। वल्कि बहुधा पाप और प्रायश्चित्तों की समस्या आचार
मर्यादा परिपाटी में भी कई स्थलों पर योगीश्वर आपसी प्रकाशकरचुके और स-
न्वादि मुनीश्वरों केभी अभिप्रायसे जो जो पापोंके लक्षणा या प्रायश्चित्त शौकभोल
काहिने बाकी रहि गये हों तिन सबका व्रात समूह एकत्र संग्रह करिजे आगे यथा
क्रम से व्योरे वार दर्शावेंगे तब इस वार्ता का प्रयोजन खूब समझि लेना ॥ यहां
सर्व अभक्ष्यों का प्रकरण कहा जायगा ॥ और यह भी याद रखो कि यद्यपि इस
भक्ष्याभक्ष्य के प्रकरण में जुदे जुदे कई परिच्छेद होंगे परन्तु योगीश्वर का
मूल श्लोक बिल्कुल इसमें नहीं है क्योंकि यह व्यवस्था उपराल स्मृतियों के बचन
लेकर संग्रह करी जायगी और यह भी ध्यान रहे कि इसमें कौ अनेक व्यग्रव्याये
जहाँ तहाँ पहिले भी वर्णन होचुकी है यह व्रात इस परियम से जानी जासक्ती है
कि ५६ उनसठि के परिच्छेद से लेकर ग्रहांतक सभी परिच्छेदों को सोचि सोचि
देखते चले आओ फिर इस भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण वाले परिच्छेदों को सोचि के
समझी कि योगीश्वर इन बातों को बहुधा उन्हीं परिच्छेदों में कहिचुके हैं। परंतु
यहां केवल खाने पीने के दोष पर यह संग्रह एकत्र किया जायगा ॥ यह व्योरा के-
वल पाठको के भ्रम दूर करने के हेतु लिखा गया ॥

अथ जातिदुष्टाद्यन्न पानादीनां भक्षणदोषस्य प्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः एकोनसप्ततितमः ६९



इस परिच्छेद में उन अभक्ष्यों के खाने पीने का प्रायश्चित्त कहा जायगा जो अ-
पनी जाति ही से खोटे जैसे पिआज लइसन आदि अनेक चीजें और सन्दिनी राऊ

मतः भुक्त्वा स्वभावदुष्टं च तप्त कच्छं समाचरेत्=अर्थात्-खाने पीनेका तैयार अन्न जो समर्ग किसी ऊर्ध्वोक्त वस्तु से कुछ जाकर दूयित हो जाय या वनाते समय किया भ्रष्ट होकर दूयित हुआ होय तिसको इच्छा बिना खाकर तप्त कच्छ व्रत आचरे अथवा जो कोई अन्न आदि वस्तु अपने स्वभावही से दुष्ट कही जाती हो जैसी लहसुन पिआज आदि बहुतेरे नाम ऊपर लिख चुके हैं तिनकोही बिना चाहे बोखा आदिसे अत्यन्त अभ्यास करिके खाया हो तोभी तप्त कच्छ व्रत आचरे अन्यथा छोटे छोटे प्रायश्चित्त जो ऊपर लिख चुके तिनको एकहीवार खाइलेने आदि पर विचार करना ॥ ० ॥ परन्तु नील एकहीवार बिना जाने भी खालेने में बड़ा प्रायश्चित्त है=तदाहा-पस्तम्बः=भक्षयेद्यदि नीलानुप्रसादाद्ब्राह्मणा कचिदचांद्रायरोनशुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः=अर्थात्-नीली नील के टुकड़ा साग आदि किसी प्रकार से यदि कहीं कोई ब्राह्मण बोखा आदिसेभी खाजाय सो महीना भरका चांद्रायरा करनेसे पवित्र होता है यह आपस्तम्बने कहा-परन्तु जिसने दोवार खाया तिसको दोचांद्रायरा और तीनवार बालेको तीन इत्यादि कल्पना समझ लेनी और एकहीवार जिसने इच्छा से जानि वृत्ति खाया होय तिसको भी दूना प्रायश्चित्त समझना ॥ ० ॥ चौका लीपना इत्यादि शुद्धि किये बिना जो पाक बनाया जाय तिसको खा लेने परभी प्रायश्चित्त है=तथा च यद्विश्वं भस्म तव च न स=शरापुष्पं शालमलचकरनिर्मयितं दक्षिणं बहिर्वेदि पुरोडाशं जग्धवानाद्यादहर्निशम=अर्थात्-सुनके फल फूल या सेमर के फल फूल या मयनिया बिना हाथही से मथा हुआ दही या वेदीसे बाहर का पुरोडाश खालेबै सो दूसरे दिन आठपहरका निराहार व्रतसाधै और उस दिन भी न खाय तब शुद्ध होय=वेदी से बाहर का पुरोडाश अर्थात् यहां वेदी चौकेका नाम है तिसके बाहर बिना चौके बैठिके खाने और बनाने का नियम है पुरोडाश यत्त सम्बन्धी अन्न आदिका नाम है कि जिस रसोइके अन्नसे परमेस्वरको भोग देना अग्नि आदि देवता और अभ्यागतोंको जिमाना आदि रोजका कर्म जो है सोई पाकयज्ञ कहाता है (बिज्ञानेन चर कहिते हैं कि यह एक दिन राति के उपवास वाला छोटा प्रायश्चित्त भी ऐसे पुरुष पर समझना जिसने इच्छाके बिना ऐसे कामोंको किया होय किन्तु जानि वृत्ति ऐसा करनेवाले पर प्रायश्चित्त भी दूना आदि बढ़ाया जाय ॥ ० ॥ जहाँ किसीको घकाड़ि के जवर्दस्ती से ऐसी चीजें खवाई हों या वैद्यने रोगीसे कहिकर खवाई हो कि इसके खाने बिना यह रोग नहीं मिलि सक्ता है=तदाह सुमन्तु=जशुनपलांडुगृन्न कवकभक्षारो सावित्र्यष्टसहस्रेण मूर्ध्नि संपातान्नयेदिति (तद्वलात्कारेणानिच्छतो

भस्मरावियय तदेकसाध्यव्याधूपशमार्थेवाभस्मरोद्रष्टव्य मितिमितासरा)=अर्थात्—
सुमन्तुने कहा है कि लहसुन पिआज गाजर कबक इनको खाने वाला गायत्री के
आठ हजार २ जोसे एक एक मंत्र पढ़िके जल के बंद अपने मूँह पर टपकने दें तब
शुद्ध होय (सो यह प्रायश्चित्त जन्मस्ती खवाइ देनेमध्ये या उसके मध्ये समझना
कि जिसकी बीमारी केवल वही चीज खानेसे जासके तिसने खाया हो यह मिता-
सराकारों ने कहा) कोकि इसी हेतु से इस वचन के लगामा उन्होंने सुमन्तु ने यह
कहा है (सतान्येवस्याचित्तस्यभियक्तक्रियायामप्रतियिद्वानिभवति यानिचैव प्रकारा
गितेष्वपि न दोषः) अर्थात् ये लहसुन आदि सब चीजें वैद्य की चिकित्सा वाली
क्रिया में नियिद्ध नहीं हैं और भी जे कोई इस प्रकार की चीजें या इन प्रकार की
क्रिया विशेष होती हो तिनमें भो दोष नहीं ॥ अब नीचे उन प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था
कही जायगी जो सधिनी आदि गायोंके नियिद्ध दूध आदि जातिहीसे दूयित कहाते
तिनके खाने पीनेमें करने होते हैं ॥ जातिहीसे दुध वे कहाते हैं जो अपने जन्मही
से खोटे दाढ़ीरें जैसे लहसुन प्याज या नीचे सधिनी आदिके दूधोंको समझिलेना ॥

(अथ जातिदुष्ट सधिन्यादि चौरपाने प्रायश्चित्त)

इसके मध्ये मितासराकारने यह व्यवस्था निर्मित करी है कि जिसने सधिनी
आदि गायोंका दूध जानि बूझिके इच्छा सहित एक बार पिआ हो तिसके लिये
वही तीन दिनका उपवास प्रायश्चित्त है जो आचार मर्यादा वाले कांडमें योगीश्वर
आपड़ी २६८ एकसौ उनहत्तरि मूल श्लोक से सधिनीका दूध आदि नियिद्ध कहि
कर २७४ एकसौ चौहत्तरि श्लोकमें कहिचुके और जिसने इच्छाके बिना दैवयोग
से एकही बार पिआ हो तिसके लिये एकहीदिन रातिका उपवास मनु की आज्ञा
से विचारना अगिले वचनसे=यथा=अनिर्दशायामोः क्षीरसौष्ट्यैकशफतया आवि
क्षंसधिनीक्षीरविवस्मायाश्चगोपयः आरण्यानांचमर्बेयां मृगाणांमहिषींविना स्त्री
क्षीरचैववज्र्यानि सर्वशुक्तानिचैर्वाह दधिभस्थचशुक्रैर्युतर्वचदधिसंभव मित्युक्ता गेये
सूषवसेदहः इतिमनूक्तउपवासोद्रष्टव्य इतिमितासरा=अर्थात्—विआनी गाय जिस
का बच्चा दश दिनका न होजाय तिसका सुतकी दूध तथा ऊँस्तीका दूध तथा एक
ही खुर वाले पशू घोड़ी गदही आदिका दूध तथा भेड़ोका दूध तथा सन्विनी अर्थात्
हाल गाभिन हुई गाय भैंसका दूध तथा बिना बच्चेवाली गाय का दुध तथा बन के
सबही मृग जीवोंका दूध (केवल बन भैंसको छोड़िके) और स्त्री चारीमात्र का दूध

आदिके अनेक दूध जो अपनी जातिही से खोटे होतेहैं और स्वभाव दुष्ट मांस अनेक जो अपनी खासियत और जातिसे भी अनेक मांस दुष्ट होते हैं कि जिनका भक्षण मांसाहारियोंकी भी निषिद्ध होता है। फिर इन सबके प्रसंग से औरभी बहुधा चीजों का चर्चा इसमें आवेगा ॥

(जातिदुष्टपलांवादिभक्षणप्रायश्चित्तं)

ऊपर चर्चा किये प्रसंग मेंसे यहां पहिले उन चीजों के खालेने का प्रायश्चित्त दर्शाते हैं जो पिआज आदि बहुधा चीजें अपनी जातिहीसे खोटी और स्लेच्छ जातीयों से वास्ता रखतीहैं—तहां—जिसने इच्छासहित एकहीवार उन चीजोंका भक्षण किया होय तिसका प्रायश्चित्त चांद्रायणाहै योगीश्वर आपही आचार सूर्यादाकांड में कहिचुके तहां (१७५ एकसोपचइतरिमूलश्लोक) देखो=और=जिसने इच्छा सहित खानेका अभ्यास कईवार कियाहो तिसके लिये भी योगीश्वर आपही यहां प्रायश्चित्त सूर्यादा में (२२६ दोसौ उन्तीस मूलश्लोकसे) इन चीजों को सुरापाने के समान कहिचुके तिनका प्रायश्चित्त ३१ इकातिस परिच्छेदमें सुरापानवाले प्रायश्चित्तों के समान ढूँढिकर देखो=परन्तु=जिसने इन्हीं पिआज आदि चीजों को इच्छाके बिना धोखा आदिसे एकहीवार खायाहो तिसको सांतपन प्रायश्चित्त है सो भी अगिले वचनोंमें आवेगा=और=जिसने इच्छा बिना कईवार खाया हो तिसके लिये (यतिचांद्रायणा) इसनामका प्रायश्चित्त चाहिये जैसा अगिले वचन में कहाहै देखो=यदाहमनुः (अमर्यैतानियङ्गश्वाकृच्छ्रं सांतपनचरेत् यतिचांद्रायणा वापिगोयेयूपवसेदहः) अर्थात्—ये पूर्वोक्त नामोंकी कृचीजें बिना जाने स्वाइके कच्छ्र सांतपन करें या यदि कईवार खाया हो तो यति चांद्रायणा करें वाको जित चीजों के नाम सहित कोई प्रायश्चित्त न कहा गया हो तिनको खाइलेने से एकही दिन उपवास करें ॥०॥ इन चीजोंके सिवाय विरले फल शाक आदि भी निषिद्ध हैं तिनका प्रायश्चित्त दृढव्रतयमने और मध्यम यमनेभी कहाहै—यथाह दृढव्रतः=खट्वावातां ककुम्भीकत्रश्चनप्रभवांशांच भूतशाशिशु कंचैवसुकंदं कवकां निच सतेयां भक्षणां कृत्वा प्राजापत्यं चरेत् द्विजः (इतितत्कामतः पूर्वाभ्यासविययं—(मत्स्यांश्चकान्तो जग्ध्या सोपवासस्य हस्तिपेदितयोगीश्वरेणाकामतः सकृद्वसरोऽत्र हस्योक्तत्वात्) एवं यमोऽथाह=तंडुलीयककुम्भीकत्रश्चनप्रभवांस्तथा नालिकां नालिकेरींच प्रलेष्नात्कफला निच भूतशाशिशु कंचैवस्वहाख्यं कवचंतथा सतेयां भक्षणां कृत्वा प्राजापत्यं व्रतं चरेत्

(इति तदपि सति पूर्वमभ्यासविषयं = अर्थात् - खट्वा नाम कोलिशिवी नामसे एक फली होती है जिसका आकार सुअरके पंजातुल्य होता है - वार्ताक वैगन-कुम्भी साग इसी नामसे विख्यात है जलके ऊपर पत्ते उसके फैलते हैं इसीसे वारिपराणी जतपाना भी कहाती है - ब्रश्चन प्रभव फलादिक वे कहाते हैं जो पेंवदी पेंवन्दी वृक्षोंसे उत्पन्न होयं जिनकी कलम तरासिके दूसरे वृक्षमें जमाई जाती है - भृङ्गा नामसे वे शाक समझने जो प्रायः धरतीपर फैले हुये लोनिचां आदि होते हैं (किन्तु रोहिय वृक्षाकी यहाँ मत समझना जो हृगन्धवाली घास होती है) - शिग्रु लालसर्हिजना - मुकन्दनाम पित्राज - कवक नाम धीरती के फल छयाक - इतनों में किसीको खाइके द्विजाती पुरुष प्राजापत्य करै - सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये है कि जिसने इन चीजों के निषेध जानते हुये इच्छा सहित बहुत काल पहिले खानेका अभ्यास रक्खा हो क्योंकि (योगीश्वर ने आचार कांड में १७० एकसौ सत्तरि मूल श्लोकसे इच्छा सहित एकवार ऐसी चीजें खानेपर तीनदिनका उपवास कहा है) तिससे यहाँ वृद्ध वयसका कहा प्राजापत्य बारह दिनवाला बहुत कालसे खाते रहिनेके अभ्यासहीपर ठीक है - इसी प्रकार मध्यम वयसने जो यह कहा है कि - चौराई और कुम्भीसाग और ब्रश्चन प्रभव पेंवदी बेर आदि अनेक और नारी तथा नालिकेरी दोनों साग और लहसोरे और भृङ्गा जैसा ऊपले वचन में कहि चुके और लालसर्हिजना और खट्वाख्य नाम कोलिशिवी की फली और कवक छयाक धरती के फल इतनों में किसी एकहीका भस्सा करै सो प्राजापत्य व्रत आचरै - सो इस वचनकी व्यवस्था भी उसके लिये समझना जिसने जानि ब्रूमिके इच्छा सहित बहुत कालसे खानेका अभ्यास किया हो - मिताक्षराकार कहते हैं कि इन्हीं दोनों वचन में लिखी चीजोंकी इच्छा बिना एकही बार धोखासे जिसने खाया हो तिसके लिये सर्वादिन का व्रत करना प्रायश्चित्त है (शीयेयूपवसेदहः) यह मनुका वचन कई स्थतपर आच्युका है तिसके अनुसार यही चाहिये अधिक नहीं परन्तु जो कोई बिना जाने धोखा से दोतीनवार खाचुका हो तिसको उसी संख्यासे व्रत करने चाहिये और जिसने बिना जानेही अत्यन्त अभ्यास इनके खानेका किया हो तिसके लिये अगिले प्रचेता के वचनसे तप्त कच्छव्रत करवाना चाहिये क्योंकि उस वचन में स्वभावदुष्ट चीजों के खालेनेका चर्चा आवैगा वे स्वभावदुष्ट ऐसी चीज हैं जो ऊपर के दो वचनमें जुदे जुदे नासों से कहि चुके ॥०॥ अन्नादि भोजनकी वस्तु जो किसी अशुद्धकी छुआछाई आदि कारणांसे विगड़ जाय तिसके खाइ लेनेका प्रायश्चित्त - यथाह प्रचेता - स्वर्गदुष्टं यच्चान्नक्रियादुष्टमका-

ये सब दूध पीने वर्जित हैं और सब तरहके शुक्त कांजी सिरका आदि भी वर्जित हैं जो पानी सहित चीजें सूर्यके आतापमें धरने आदि प्रकारों से खड़ा जड़ होता है। परन्तु दही और दहीका तोड़ आदि भी शुक्तों में गिनती है सो वर्जित नहीं है इसी लिये कहतेहैं सर्व शुक्तोंमें केवल दही खानेके योग्य है और दहीसे जो कुछ बनावा उत्पन्न हुआहो सोभी खानेके योग्य है यह सब कहिकर मनुने पीछे से यह कहा है कि ऐसी और भी चीजें जिनके नाम लिखने बाकी रहिये तिनके और इनके भी खाइ लेने में एक बिन रातिका उपवास करै ॥ ० ॥ इनके सिवाय पैटीनसिका जो वचन है और शखका जो वचन है उनदोनोंकी व्यवस्था ऐसे पुरुषपर आच्छाद करता कि जिसने जानि शक्ति कर इच्छा सहित बहुत काल तक पीने का अभ्यास किया हो=यदाह पैटीनसिः=अविखरोष्टमानुपीक्षीर प्राशनेतत्तच्छुः पुनरुपनयनं च अनिर्देशाद्गोमहिषी, क्षीरप्राशनेयद्वायमभोजनं सर्वासां हिस्तनीनां क्षीरपानेऽप्यजावर्जमेतदेव=शखोपि=क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराणां नैव बुधः सप्तरात्रं त्र्यंशं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः (इति यावत् व्रतमुक्तं तदभ्यस्य पिकारमतोऽभ्यासविषयमिति मितः क्षरा= अर्थात्—भेड गवही ऊँटिनी नारी इनके दूध पीलेनेमें तत्तच्छुव्रत करिके फिर य- जोपवीत कर्मसे उपनयन भी कराना चाहिये और दश दिन के भीतर की बिआली गाय भैंसीका दूध खाइलेनेमें, छे दिन तक निराहार व्रत करै और बकरी को छोड़ि कर बाकी, सब दो, यज्ञ, वालोंका दूध पीलेनेमें भी यही छे दिन का उपवास करै यह पैटीनसिने कहा=शखने भी ऐसा कहा है कि=जे कोई दूध अभक्ष्य कहाते हैं तिनके पीलेने या उनकी बनी कोई चीज खाइ लेनेमें सातदिन व्रतकरै (यह यावत् भोजन करिके सात दिनका व्रत शखने कहा= सो यह दोनों अथोचरों की व्यवस्था उनके लिये समझना जिन्होंने इच्छा सहित ऐसे दूधके पीनेका अभ्यास अनेकवार किया हो; यह मिताक्षराकारने कहा ॥ ० ॥ विद्याखानी और दो बच्चा देनेवाली आदि कई प्रकारकी गायोंके और भी कुछ दूध पीने नियिद्ध हैं=तदप्याह शखः=सधिन्यमेध्या भक्ष्याभुत्कापस्रव्रतचरेदति तदभ्यासविषय=सकृत्पानेत्तु विष्णुराह=गोयज्ञमहिषी वर्जसर्वाणि अप्यासिप्राशय उपवसेत् अनिर्देशाद्देतान्यपि सधिनोयमसूत्रदिनीविवत्त्वा क्षीरचानेध्याभुजश्च=अर्थात्—सधिनी जो गामिन होजाय=अमेध्याभक्षा जो विद्याआदि चाटतीहो इनके दूध खाइके परवचरेका व्रतकरै= यह पन्द्रह दिन का व्रत उसी को समझना जिसने बारम्बार ऐसा दूध पीनेका अभ्यास कियाहो=क्योंकि एकबार पी लेने मध्ये विष्णुने, एकही दिन उपवास बताया है कि=गाय बकरी में इनको छोड़ि

इनसे उपरालू सब जीवोंके दूध खाया पीकर एक उपवास करै और गाय बकरी भैंस इनके भी दशदिनका वच्चा न होनेके भीतर दूध पीकर यही उपवास करै और गामिन तथा दो वच्चा विआने वाली तथा चिन वच्चावाली तथा वच्चा होतेहुये भी जो गर्भ लेनेकी इच्छासे स्पन्द रूपी चिह्न प्रकट करतो हो तथा जो विद्या आदि अपवित्र चीजें खातीहो इनके भी दूध पीकर यही उपवास करे ॥ ० ॥ कपिला गाय जो सुवर्ण के समान वर्णवाली खुर सींगों सहित कहातीहै उसका दूध ब्राह्मणके सिवाय अन्य वर्णोंको पीने में नियोज्य है जैसा यह अप्रोक्त वचन है कि (सधियश्चापि वृत्तस्थो वै प्रथःशूद्रोऽथवापुनः यःपिबेत्कपिलाक्षीरं नततोऽन्योऽस्त्यपुण्यकृत) अर्थात्—सत्कर्म करने वाला शूद्र और वैश्य अथवा शूद्रही जो कपिला गायका दूध पीवै तो उससे अधिक अपुण्यकृतो कोत्रे नहींहै—यद्यपि इसने प्रायश्चित्त कृत नहीं दर्शाया गया तथापि अपुण्य कहिकर दोष दर्शाया गया तिससे प्रायश्चित्त भी सूचित हुआ कि ब्राह्मणके सिवाय जिसने एकवार कपिलाका दूध पिआहो सो मनुके वचनसे एक दिन का उपवास करै—इसी प्रकार—और भी जो जो बातें सेसी देख परै कि जिनके नामसे कुछ प्रायश्चित्त नहीं कहा परन्तु उनके खाने पीनेका दोष प्रकट कियाहो तिनके खाने पीनेपर यही एक दिन का उपवास प्रायश्चित्त समझना (शोधेयुषवसे दहः) यही मनुका वचन है ॥ अब नीचे उन चीजों के खालेने का प्रायश्चित्त कहा जायगा जो अपने स्वभावसे दुष्ट कहाती हों ॥ इतिजातिदुष्टभक्षणापानप्रायश्चित्तानि

(अथस्वभावदुष्टमांसादिप्रायश्चित्तं)

जो जो मांस आदि अपने स्वभावहीसे दुष्ट कहाते हों तिनको इच्छा बिना भोग्या आदिसे एकही बार जिसने खाइ लिया हो तिसको भी ऊपर चर्चा किया एकही दिनका उपवास रूपी साधारण प्रायश्चित्त मनुके वचन से कर्तव्य है—परन्तु—जिस ने जानि वृष्णि इच्छा सहित एकवार भक्षणा कियाहो तिसके लिये आचार सत्यादि कांड में १७१ एकसौ इकहत्तरि मूलश्लोक से लेकर १७४ एकसौ चौहत्तरि में योगीश्वर आपही जो लिखचुके हैं (सोपवाससंन्यर्हसिषेव) कि तीन दिन निराहार उपवास करिके काटै तहां देखो—और—जिसने इच्छा सहित अनेक बार खाया हो तिसके लिये (जश्चमांसमभक्ष्यंतुसप्तरात्रंपयःपिबेदितिमनूक्तद्रव्यं) यह मनुका कहा प्रायश्चित्त विचारना कि अभक्ष्यमांस को खाइके सातरात्रिभर दूध पीके व्रत करै—परन्तु यह प्रायश्चित्त उसके लिये नहीं है जिनने ग्राम सुअर

आदिका अतिमलीनमांस खायाहो किन्तु उसकेलिये मनुने दूसरे वचनसे तप्तकच्छ करना कहाहै=यथा=कव्यादित्सूकरोष्ठाणांकुक्षुयानांचभक्षणे नरकाकषराद्यानां तप्तकच्छस्विशोधनं (इति मनुना जाति विशेषेण प्रायश्चित्त विशेषेणोक्तत्वात्=अर्थात्-मनुने अतिमलीन मांसों के नामसे यह जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि-मांस भक्षी कव्याद प्रकृतिवाले अनेक पक्षी गिद्ध आदि होते हैं तिनका मांस यदि कोई मांसाहारी पुरुष भी खालेवै या विष्टाखानेवाले वसती में रहनेवाले सुअरकामांस या ऊँटका मांस या मुरगी आदि मत्तान पक्षियोंके मांस खालेवै या मनुष्यका मांस या कौआकी जातिवाले पक्षियोंकामांस खाइलेवै या गव्हा आदि मत्तान पशुओं का मांस खाइलेवै तिसके लिये तप्तकच्छव्रत कराना प्रायश्चित्त है=इन्हीं उक्तजो-बोंके गृह मत्त भक्षणा करवाने में भी यही प्रायश्चित्त चाहिये जो इनके मांस पर कहिचुके यहवात आगिले वचन में देखौ=यदाहृदृश्यः=इराहैकयफानांउक्ताकृ-कृत्योस्तथा कव्यादानांचमर्षेयामभक्ष्यापेचकोत्तिताः मांसमूत्रपुरीषाणिनाशयगो मांसमेवच चूमेम'युक्तयोनांचतप्तकच्छस्विधीयते । उपोष्यवाद्वाद्यहकृष्णांडैर्जुहु यातघृतम्=अर्थात्-सुअर और (एकशत) एकही खुरवाले घोड़ा गर्दभ आदि और काक तथा मुरगा और कव्याद जो मांस के खवैया बहुधा पक्षी तथा चीपाये भी होतेहों और भी जेकोई जीव अभक्ष्य लिखे गयेथे आचार मर्यादामे भी नाम उनके देखौ तिन सबके मांस या गृह मत्त खाइके या गोमांसको खाइके या कुत्ता गीदड़ बन्दर इनके भी मांस या गृह मत्त खाइके तप्तकच्छ प्रायश्चित्त किया जाताहै अथवा बारहदिन उपवास करिके कृष्णांड स्त्री से घीका होम करे (इसमें छोटे बड़ दो प्रायश्चित्त विकल्प से कहे गये तिनके परस्पर यह व्यवस्था समझि लेती कि जिसने इच्छा सहित एकहीवार भक्षणा किया तिसको तप्तकच्छ कराना और जिसने कईवारका अभ्यास किया तिसको बारह दिनका पराकव्रत कराइके कृष्णांड मर्षसे घीका होम कराना चाहिये ॥ ० ॥ इसी व्यवस्था के समान प्रचेताने प्रायश्चित्त कहाहै=यथा=अथगालकाककुक्षुटपार्थतवारनचिषकचायकव्यादखरोष्ट्राद्य वाजिविह्वराहगोमानुयमांसभक्षणे तप्तकच्छमादिष्वेत स्यामूत्रपुरीषभक्षणे त्वत्तप्तकच्छ (इदचकामकारविधय=अर्थात्-कुत्ता, सियार, कौआ, मुरगा, पार्थत वनकारकपशु, बन्दर, चीता, चाय पक्षी जो लीलकल कहाता है, कव्याद जो मांसके खवैया पक्षी आदि होतेहैं, गव्हा, ऊँट, हाथी, घोड़ा, ग्रामवासी सुअर, गाय, आदिमत्त, इनके मांस खाने में तप्तकच्छ करायजाय, इनके मूत्र गूद खाइ लेनेमें अतिकच्छ करायजाय

(यह प्रायश्चित्त कामनासे भक्षणा करने पर समभक्षना=और अगिलावचन कामना बिना धोखाआदि से भक्षणा करजाने मध्ये समभक्षना=यदाहोशनाः= नरमांसचमांसं चगोमांसंचास्त्रमेवच भुत्कापचनखानांचमहासांतपनंचरेत्=अर्थात्-मनुष्य का मांस और कृत्ता और गाय और घोड़े और पांच नखवालोंके मांस भक्षणाकरिके महासा न्तपन व्रत आचरे ॥०॥ अंगिरा मुनिकी कही व्यवस्था में कुछ थोड़ासा भेदहै=यथा हांगिराः=बलाकाभासगृध्राखुरखानरसूकराः दुग्धचैयाममेध्यानिस्पृष्टाचापोविशो धनम् इच्छयेयाममेध्यानिभक्षयित्वाद्विजातयः कुर्युःसांतपनंकृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छ या (एतद्विस्तोदगारितविययः सांतपनशब्देनचाप्रमहासांतपनमुच्यते अकामतःप्रा जापत्यविधानादितिमिताक्षरा=अर्थात्-बलाका•भास•गोघ्न•मसा•गदहा•चांदर•सुअर•इनके गूढ़ मृत मांस घसा चरबो आदि अपवित्र चीजें ओखेंसि देखिअथवा अंग से छुडकर जलसे स्नानआदि करडारना प्रायश्चित्त है परन्तु इन्हीं चीजोंको इच्छा सहित खाइके द्विजाती लोग सांतपनकृच्छ्रप्रायश्चित्त करें और इच्छाबिना खाइके प्राजापत्य करें।मिताक्षराकार कहितेहैं कि इसमें जो इच्छाबिना पर प्राजापत्य कहा तिससे सांतपन शब्दका अर्थ महा सांतपन समभक्षना और यह प्रायश्चित्त भी उसके लिये समभक्षना जिसने खाइके उड़गार डकारभी करीहो इसके कर्त्रर्थ होतेहैं डकारिके पचाइजानाया बहुत खाइलेनेसे डकारका आना या डकारिके मुहसे उजड़ी के द्वारा उसीधस्तुका निकसनाआदि बुद्धिसान आपही समझलें ॥०॥ उन्हीं अंगिराका दूसरावचन यहभीहै कि=नरकाकखराचानांजगध्वासांसगजस्यच स्यामूत्रंपुरीयाणा द्विजचंद्रायणांचरेत्=अर्थात्-मनुष्य कोआ गदहा घोड़ा हाथी इनके मांस मृत गूढ़ द्विजाती खाइके चांद्रायणा करें=सेसाही रहव यमका वचन है कि=शुष्कमांसायने विप्रोव्रतंचंद्रायणांचरेत्=ब्राह्मणा सुखामांस खाइलेनेसे चांद्रायणाकरें। ये दोनोंवचन काकहा चांद्रायणाभी उसकोलिये समभक्षना कि जिसने कामनासे कईबार खाया हो=एक और इन सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है सो देखो=यदाहशंखः=भुत्काचोभयतोदतां स्तथाचैकशफार्नाप औषु गन्धंतथाजगध्वायड्मासान्व्रतमाचरेदिति (तत्कामतोऽत्यं ताभ्यामविययमितिमिताक्षरा=अर्थात्-उभय तो दन्त जिन पशुओं के नीचे ऊपर दोहरे दाँत होतेहैं तिनका मांस या जिनके एकही खुर गोलहोता होय तिनकेमांस और ऊँट वा गाय बैल का मांस खाइ के छमाही भर व्रत आचरे (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह बड़ा प्रायश्चित्त उसपर आस्रुड किया जा सकता है जिसने बहुत काल तक अत्यन्त अभ्यास किया हो=इससे भी बड़ा एक प्रायश्चित्तहै-तदुक्तस्-

त्यन्तरे=जग्ध्वासांसंनराणांचविड्वराहंखरन्तथा - रावायकुंजरोष्ट्राणांसर्वपांचनख-
 तथा कण्ठ्यादंकुक्षुंयांसं कुर्यात्संवत्सरव्रतः (रितितदत्यंतानर्वाचकनाभ्यामविययं
 मितिमिताक्षरा=अर्थात्-समुप्यांकां, सांसखाय विष्टा खानेवाले सुभरका या गंदभ
 का या गायका या घोडे का हाथीका ऊँटका या सभी उन जीवोंका जो पांच नख-
 वाले पंजेदार होते हैं या कण्ठ्यादीका मांस खाया जो आपही मांस भक्षी जीव होते हैं
 या गुरों और वस्तीके रहैया भी अनेक भाँति के होते हैं तिनका मांस खाया सो एक
 पूरे वर्षभर व्रत साधै (यह सालभरका प्रायश्चित्त उसके लिये कताना जिसने बहुत
 कालसे निरन्तर अत्यन्त अभ्यास करिके खाया हो) इस प्रकरणा से जहाँ जहाँ मत
 गृह कहा गया हो सो उन जीवोंकी वसा चरवी वीर्यरक्त मज्जा आदि सब चीजोंका
 नियेध प्रकट करनेवाला उपलक्ष्य है इन चीजोंको खाजाने पर भी यही प्रायश्चित्त
 चाहिये=परन्तु=कानका मेल आदि छे भाँति के मल होते हैं तिनको भक्षण करने में
 आधा प्रायश्चित्त कल्पित करिलेना चाहिये ॥०॥ बाल आदि खाइलेने मध्ये यद्
 विंशन्मत ग्रन्थमें जुदा प्रायश्चित्त कहा गया है=यथा=अनाबिमहियमृगाणां आससां-
 संभक्षारोक्तेशनखरुधिरप्राशनेवुडिपूर्वेधिराशमज्ञानादुपवास=अर्थात्-बकरी भेड़ भैंस
 और वनके मृगजीव इनका कचा मांस खाइलेने या बार नख रक्त खाइलेने में जा-
 नते हुये तीनवित्तका प्रायश्चित्त है बिना ज्ञाने खाइजानेपर एकही दिनका उपवास
 करै=इसी बात पर प्रचेता का यह वचन है कि=नखकेशमृत्तजोसभक्षारोऽग्रहोरात्रम
 भोजनाच्छुद्धिं (रितितदप्यकामतःसकृत्प्राशनविययंसितिमिताक्षरा=अर्थात्-नख
 वार मट्टीका डेल इनको भक्षण करिजाने में एकदिन रातिभर व्रत करने से शुद्धि
 मानी जाती है (सो यह एकदिनका व्रत एकहीवार बिना ज्ञाने भक्षण करजाने मध्ये
 समभक्षना=इनके सिवाय=जो स्मृत्यन्तर यह वचन है कि=केशकीटनखप्राश्यमत्स्यं
 कंटकमेवच हेमतप्तघृतंपोच्चातत्क्षणादेवशुद्ध्यतीति (तन्मुखमात्रप्रवेशशविययंसिति
 मिताक्षरा=अर्थात्-किसी के बाल या वारीक कोरे मक्खी आदि या नख आदि
 कोई मेल या मछरी का काँटाही भक्षण करिजाय सो तत्कालही सोने सहित घी
 को ऐसा गरमकरै जो सोनेके रंग सरीया तपिजाय तिसको पीकर शुद्ध होजाता है
 व्रतकी जखरत नहीं रही (यह प्रायश्चित्त उसकेलिये समभक्षना जिसने मुखमें प्रवेश
 होतेसार बाल या मक्खी आदिको उगल दिया हो किन्तु भीतर नहीं जाने दिया=
 कदाचित्त=भोजन करते समय परोसीहुई थालीपर मक्खी वैठिके जीवती उडिजाय
 अथवा बाल घास फूस आदि ऐसायोडासा गिरपरै जोदेखके निकासिडारा जासकेऐसे

अन्नको दूषित हो जानेमध्ये प्रचेताक्तावचन है=यथा=अन्नभोजनकालेतुमच्छिकाकेय दूषितम् अनंतरस्पृशेदापस्तश्चान्नभस्मनास्पृशेदिति प्रासंगिकोऽयं श्लोक =अर्थात्- भोजन के समयपर जो अन्न मक्खी या बाल आदिसे दूषित होजाय तिसको अनन्तर तत्कालही (अमृतभव) इत्यादिपवित्रमंत्रोंसे पढ़ेहुए जलसे छींटे देकर चूल्हेको शुद्ध राखले कर उसको चारोतर्फ छिस्कावै तिससे शुद्ध हो जाता है। यह प्रसंग से श्लोक यहां लिखा गया किन्तु इसकी चर्चाका ठिकाना यहां नहीं था आगे कहीं आवेंगा=हमि कीट आदि जो अति सूक्ष्मतर कीरे भस्मकाकरै तिसके मध्ये दारोतने जुदी व्यवस्था कही है=यथा=हमि कीटपिपोलिकाजलीकपतगास्यप्राशने गोमूत्रगोमयाहारखिरावेरा विशुद्धतीति=अर्थात्-हमि कीट या चेंदी या जनमें जो कीरेहोयें या किसी उड़ने पतंग हीही चिड़िया आदिके पांख हाड़ खाड़ लेवें सो तीनदिन राति में गोमूत्र और गोवर के आहार से व्रतकरिके शुद्ध होता है ॥ इस लिखे हुये कृत्तल डोलमें सेकेपही से थोड़े पशुओंके नाम थोड़े उड़ने वालोंके नाम थोड़े जल जीवों के नाम लेकर बुरे सांस आदि पर प्रायश्चित्त कहे गये=ससारमें जीवोंके अनन्त भेदहै उन सभीके जुदे स्वरूप कहिकर नहीं लिखेजाते ग्रन्थ बहुतबड़ा होकर पढ़ना भी दुर्घट होजाय= तिससे इसथोड़ेही नमूनासे सबजीवोंकी व्यवस्था अपनी बुद्धियोंसे विचारतेरहिना ॥

अथोच्छिष्टाव्यशुचिप्राणिमस्पृश्याशुचिद्वयसंस्पृष्ट

स्यान्नपानदिर्भक्षणेषु प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽथ

परिच्छेदः सप्ततितमः ७०

इस परिच्छेद मे अशुद्ध प्राणी और अशुद्ध चीजों से छुये भिडे बिगड़े अन्न पान खानेपीनेके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे-तहां प्रथम किसीका जूदाखाना या जूदा पानी पीना आदिके प्रायश्चित्त हैं-तिसके अनन्तर अशुचिद्रव्यों से छुये बिगड़े का चर्चा है तहां पहिले मक्खी बाल आदि अन्नमें गिर परने या बिछा सांस आदिसे छुड़जाने वा चड़ाएल रजस्वला आदि कृत्ता काग आदिसे छुड़जाने के प्रायश्चित्त या जुदी पक्ति में खाने आदि के फिर मुर्दा गिरि के सड़े गले कूप तलैया आदि का पानी नहाने पीने के प्रायश्चित्त हैं ॥

(परोच्छिष्टान्नमोजनप्रायश्चित्तं)

अरोच्छिष्टभक्षणमनुराह=विडालकाकाखच्छिद्यंजगध्वाञ्चनकुलस्यच केशकीटा
 वपचर्चपिवेदत्राह्नीसुवर्चलास (अत्रकालविशेषानुपादानादेकरात्रं • इदमकामतोद्गृष्ट
 व्यसिमितमिताक्षरा=अर्थात्-बिल्ली • कौआ • मसा • कुत्ता • नेउरा • इनकी जूदो कोई
 वस्तु और वह वस्तु कि जिसमें बार या कीरे आदि परेहों खाइ के ब्राह्मी सुवर्चला
 नाम औयधीका कादा पीवै तब शुद्ध होय (इसमें यह नियम नहीं कहा कितने दिन
 पीवै तिससे सकही दिनका पीना समझा गया • यह प्रायश्चित्त उसीपर आरु उहोगा
 जिसने बिना जाने भक्षणा कियाहो=और=जिसने जानि वृत्तिकामनासे भक्षणा किया
 तिसके लिये अग्रोक्तप्रायश्चित्त है=यदाह विष्णुः=पक्षिद्यापदजगध्वरसस्यान्नस्य
 भूयसः संस्काररहितस्यापिभोजनेकच्छपादकस (इतितत्कामकारविययसिमिति मि-
 ताक्षरा=अर्थात्-पक्षी वा कुत्ते आदिके बार बार जूदारे रस या अन्नको शुद्धि रूपी
 संस्कार करने बिना खाइलेनेमें एकछका चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये जो तीन
 दिनमें होगा (इसमें जो अन्नकी शुद्धिरूप संस्कार न होना बोध कहा गया तिसके
 होनेका प्रकार देखो आचार मर्यादावाले काण्डमें १५८ तकसौ अट्टासो मल
 श्लोकसे) किन्तु (संस्कारपश्चदेवद्वीरायामित्यादिनां द्रव्यशुद्धिप्रकरणोक्तोऽप्यव्ययसि-
 मित्ताक्षरा)=जिसने बिना इच्छाके धोखा आदिसे बारम्बार ऐसा दूखित अन्नखाने
 का अभ्यास किया हो तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त देखना=यदाह शातापतः=
 अकाकाद्यबलीहशूद्रोच्छेयसाभोजनेत्वत्तिष्ठच्छ (मितितत्कामतोऽभ्यासविययसिमिति
 मिताक्षरा=अर्थात्-कुत्ता कौआ आदि जीवोंकी चाटी जूदारी वस्तु या शूद्रकी जूदो
 होय तिसकी भोजन करनेवाला अतिरुच्छ करै=इच्छा सहित बारम्बारक अभ्यास
 पर इससे भी बड़ा प्रायश्चित्त आगे देखो=यदाह शखः=शुनामुच्छिद्यकभृत्कामासमे
 कंत्रतोभवेद काकीच्छिद्यं गवाः१२घातंभुक्तापसज्जतोभवेत् (इतिथावकंत्रतमुक्ततत्काम
 तोऽभ्यासविययसिमिति मिताक्षरा=अर्थात्-कुत्तों का जूदा खाइ के एक महीना भर
 गोमूत्रका रँवा जौका भात खातेहुये व्रतकरै और कौवैका जूदा तथा गायका मूँघा
 चारा अन्न खाइके एकपाख भर जीका यावक भोजन करत हुये व्रत करै तब शुद्ध
 होय ॥ • ॥ ब्राह्मणका जूदा ब्राह्मण खाय तिसका भी प्रायश्चित्त द्वाद विष्णु ने
 कहाहै=यथा=ब्राह्मणःशूद्रोच्छिद्यशन सप्तरात्रपचमव्यपिवेत् वैश्योच्छिद्यशनपच
 रात्रं राजन्योच्छिद्यशनत्रिरात्र ब्राह्मणोच्छिद्यशनत्वेकाह मिति (तत्कामकार

विययमिति मितासरा=अर्थात्-ब्राह्मण जो शूद्र का जूठा कुछ खाय तो वह सात दिन पंचगव्य पीकर व्रतकरे जो वैश्यका जूठा कुछ खाये तो पांचदिन पंचगव्य पी के रहे जो क्षत्रीका जूठा कुछ खाये तो तीनदिन पंचगव्य पीवे जो ब्राह्मण का जूठा कुछ खाये तो एकदिन पंचगव्य पीवे (ये प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना जिसने इच्छा सहित इनका जूठा खायाहो=और=जिसने इच्छा सहित अनेकवार का अभ्यास कियाहो तिसके लिये अग्रेक्त प्रायश्चित्त विचारना=यदाह मनुः=भुत्कास इवाह्यरोतप्राजापत्येच्छुद्धाति भूमजामहभुत्कान्ततन्नकच्छू राशुद्धाति वैश्येनसहभुत्कान्तमतिकच्छू राशुद्धाति शूद्रेणसहभुत्कान्त चान्द्रायणमयाचरेत्=अर्थात्-ब्राह्मण किसी ब्राह्मणकेसाथ एक थालीमें भोजन करिके प्राजापत्यसे विशुद्ध होताहै क्षत्री के साथमें कुछ खाइके तन्नकच्छूसे पवित्र होताहै वैश्यके साथमें कुछ खाकर अति कच्छूसे पवित्र होताहै शूद्रके साथमें कुछ खाइके चान्द्रायण एक मास भर आचरे तब शुद्धहोय (येसबइच्छासे चाहिकर वारम्बार खाइलेनेमध्ये प्रायश्चित्तहै=परंतु= जिसने इच्छा के बिना एक बारही खायाहो तिसके लिये अग्रेक्त प्रायश्चित्त है= यदाहशंखः=ब्राह्मणोच्छिष्टाशनेसहाव्याहृतिभिरभिसंन्यापः पिवेत्सविथोच्छिष्टाशनेब्राह्मणसविपक्षेनयहक्षीरेगावर्त्तयेत् विशोच्छिष्टाशनेष्विषोपोयितोब्राह्मणसुवर्चं लापिषेत् शूद्रोच्छिष्टभोजनेयद्वाप्रमभोजनं(इतितत्कामविययं=अर्थात्-ब्राह्मण ब्राह्मणका जूठा खाइकर सहाव्याहृतियों से जलकी पढिकर पीलेनेसेही शुद्धहोजाता है क्षत्रीका जूठा खाइलेनेमें ब्राह्मी औषधीका रस मिलाइकर पकाये दूधको पीकर तीन दिन व्रत करे वैश्यका जूठा खाइलेने में तीन रात्रि व्रत करिके ब्राह्मी सुप्रचला औषधीका काढ़ा पीवे शूद्रका जूठा खाइलेनेमें छे दिनतक निराहार व्रतकरे=और जिसने इच्छाकेबिनाकईबारजूठाखायाहो तिसकेलियेइहीप्रायश्चित्तोंकोदूरातिशु- ना आदि बढाकर करवाना॥०॥अपवादविशेषः-जूठाखाना जो नियेर्वकियागया सोभी पिता आदिसे उपराल में समझना क्योंकि (पितृर्ज्येष्ठस्यचधातुरुच्छिष्टभोज्यमित्यापस्तम्बः) आपस्तम्बको वचन है कि पिता और जेठे भाईका जूठा खानेमें दोष नहीं=और जो=उहलव्यासका यह वचन है कि=मातावाभगिनीवापिभार्यावाऽन्याश्चयोयितः नताभिःसहभोक्तव्यंभुत्काचान्द्रायणाचरेत् (तत्तदभोजनविययमिति मि- तासरा=अर्थात्-माता बहिन भार्या या और कोई स्त्रियां जो रिश्तेमें होती हों तिन में किसीके भी साथ मिलिके न भोजन करे कदाचिद करि बैठा हो तिसको चान्द्रा- यण करना चाहिये (इसके ऊपर मितासरा की यह पंक्ति जो धरी गई कि यह

नियेव एकसाथ किन्तु एक वासनमें मिलिके खानेका किया सो यह कयन यद्यपि ठीक है) परन्तु इसका ध्वन्यर्थ ऐसा मत समझि लेना कि स्त्रियोंका जुठा लेकर जुदा बैठिके खानेसे कुछ दोष न होगा इसपर बहुत बड़ा शास्त्रार्थ खड़ा होता है जिसका लिखना यहां जरूरी और स्वीकार नहीं है • यद्यपि एक माता केवल स्त्रीय जननी का जुठा खानेमें कुछ दोष नहीं प्रतीत होता है तथापि उसमें यह निबंध है कि जब तक यज्ञोपवीत छपी संस्कार नहुआ हो तभी तक दोष नहीं तिससे आगे उसमें भी दोष है—यद्यपि—सर्व सामान्य स्त्रीमात्रका जुठा या साथ मिलि खाने मध्ये आपस्तम्ब ने प्रायश्चित्त भी दर्शाया है—यथा—शूद्रोच्छिष्टभोजनेसप्तरात्रम भोजनस्त्रीणांचेति—अर्थात्—शूद्र और स्त्रीमात्र का जुठा खाइ लेनेमें सातदिन का उपवास करें—इसके उपरालू—एक श्रमिणीका यह वचन है कि—ब्राह्मणयासहयोऽश्रियादुच्छिष्टं वाकदावन तत्र दौयंतमन्यन्ते सर्वे एवमनीयिणः इति (तडिवाहविययमापद्विययंवेति मिताक्षरा—अर्थात्—जो कोई ब्राह्मण अपनी विवाहिता ब्राह्मणीके साथ बैठि कभी कुछखाय तो इसमें दोष नहीं है सबही मनीयी पुरुष ऐसे मानते हैं (सो यह केवल विवाहकाल का चर्चा है कि उसमें लहकौरि आदि खवाई जाती प्रसिद्ध है अथवा कभी आपत्कालमें साथ खाना परे तिसका भी यह चर्चा जानो ऐसा मिताक्षराकार ने कहा) ब्राह्मणी कहिनेसे यह तात्पर्य ठहिरा कि जिसने अपनेसे नीचे वर्गकी कन्या साथ विवाह किया हो तिसकी विवाहके समयभी भार्याके साथ न खाना चाहिये किंतु खाइ लेनेसे प्रायश्चित्त करना होगा ॥ ० ॥ अन्त्यजात्युच्छिष्टभोजनेतु—अन्त्य जाती लोगों का जुठा खाइ लेनेमध्ये बड़े प्रायश्चित्त हैं—यथाह आपस्तम्बः—अत्यानां भुक्तयेयन्तु भक्षयित्वा द्विजातयः चांद्रकच्छन्तस्त्वं च ब्रह्मसर्गविशर्वाधिः (अथचान्द्र चांद्रायणां—अर्थात्—अन्त्य जाते जो चण्डाल और शूद्रों के बीचवाले नीच होते हैं तिनका जुठा खाइ के द्विजाती लोग इस क्रम से प्रायश्चित्त करें कि ब्राह्मण को चांद्रायणा और सभी को कच्छ और वैश्यकी आवा कच्छ करना चाहिये ॥ ० ॥ अन्त्यजातियों से भी अधिक मलीन जो साक्षात् चण्डाल होते और अन्त्यावसायी नाम से कहाते हैं तिनका जुठा खाइलेने में ऊपरलों से भी अधिक बड़े प्रायश्चित्त हैं—तदाहंगिराः—चाण्डालपतितार्दीनामुच्छिष्टाक्षस्यभोजने चान्द्रायणांचरेद्विप्रः स यः सांतपनंचरेत् यदावंचिरावंचवर्षा योरनुपूर्वशः (सान्तपनसप्तदशसांतपनमिति मिताक्षरा—अर्थात्—चाण्डाल और पतित ब्रह्महत्यारे आदि का जुठा अन्न खाइ लेनेमें ब्राह्मणही सो चान्द्रायणा करें सभी महाशान्तपन करें वैश्य छेदिनका कच्छ

करै शूद्र तीन दिन उपवास करै=आपदित्वविशेषः=आपत्काल में केवल ब्राह्मणाका जूठा खानेके निमित्त पर जुड़ा सक नियम है=तदाहपराशरः=आपत्कालेतुविप्रस्य भुक्तशूद्रवृद्धेयदि मनस्तापेनशुद्धे तत्रिपदांचशतंजपेत्=अर्थात्-अन्नका अकाल आदि किसी कदिन कालमें निज प्राणोंकी रक्षा हेतुसे केवल ब्राह्मण का जूठा खाना परा हो या शूद्र के घरमें बैठिके अपने हाथका बनाया अन्न खाने का नियम है सो खाना पराहो तिसका दोय केवल मनमें बहुत पछितावा करने से ही सिद्धिजाता है परन्तु जो साक्षरहोय सो गायत्रीका सैकरा जपिकर शुद्ध होताहै (यह सक सैकरा सक दिनकेही दोय पर समझना किन्तु अनेक दिनके मध्ये इसी हिसाब से=परन्तु आपत्कालके बिना इससे जुदे नियमहैं सो आगे देखी॥ ० ॥ पीतश्रेपजलपानेतु-
 वृद्ध शता तपः=पीतश्रेयचयस्किंचिद्वाजनेमुखानिःसृतस अभोज्यंतद्विजानीयाद्भुक्ता चान्द्रायणाचरेत्तदिति(तदभ्यासविययंज्ञे यंनिमित्तस्यलयत्वादितिमिताक्षरा=अर्थात्-
 पीकर बचाहुआ जल पाशमें जो कुहरहा या मुख से निकसाहुआ सो सब अभोज्य में गिनतीहै तिसको खाकर चान्द्रायणा करै यह बड़ा शातातपने कहा (इसपरमिताक्षराकार कहितेहैं कि यह दोय छोटाहै तिससे अनेक बार ऐसा जल पीनेसे दोय की बड़ाई समझीजानेमें यह बड़ा प्रायश्चित्त चाहिये नहीं तो सकहीबार पीने पर छोटा प्रायश्चित्त ढूँढना सो आगे देखी=यथा=पीतोच्छिद्यन्तुपानीयं पीत्वातुब्राह्मणाःकिंचिद् विरात्रंतुव्रतंक्रूर्याहामहस्तेनवापुनः(एतच्चवृद्धिपूर्वविययंअकामतस्त्वहं कल्प्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्-पीकर जुदे हुये पानीको कहीं कोई ब्राह्मण पीलेवे सो तीन दिन व्रत करै और वामे हाथसे भी पीकर यही तीन दिनका व्रत करै (इस पर भी मिताक्षराकार कहितेहैं कि यहतीनदिनका प्रायश्चित्त भी उसको चाहिये जिसने जानते हुये पिआहो किन्तु बिना जाने पीलेने पर इससे भी आधा सिर्फ डेढ़ दिनका व्रत चाहिये=ध्यान करै=यद्यपि मिताक्षराकार कहि चुके सो सब ठीकहै परन्तु न्यायका स्वरूप इसमें यहीहै कि पहिले वचन में शातातप ने महीने भरका चान्द्रायणा कहा सो भी अनेक बार पीने पर नहीं किन्तु एकही बार पीलेने मध्ये कहा लेकिन अन्य वर्णोंका जूठा पीलेनेमध्ये कहा क्योंकि प्रायश्चित्त बड़ा होनेसे यही उसका तात्पर्य है और इस दूसरे वचन में तीन दिन का प्रायश्चित्त केवल अपना जूठा जो बचा पहिला घराहो तिसके पीलेने मध्ये कहाहै कि जैसा उसके साथही अपने वामे हाथसे पीलेने पर वही तीन दिनका प्रायश्चित्त कहा- इसमें कोई तर्क उठावै कि अपना जूठा पीने में क्या दोय है जो तीन दिन प्रायश्चित्त

करै तिसका उत्तर भी यहीहै कि अपने वामे हाथमें क्या दीयहै जिसके द्वारा शुद्ध जल पीकर भी प्रायश्चित्त चाहिये • किन्तु वर्मशास्त्रका स्वरूप यहां यही है कि वचनसे प्रवृत्ति और वचनहीसे निवृत्ति मानीजाय ॥ • ॥ दोषोच्छिद्यदितिलेतु—दीवेका जला जुदा तैलखाइलेने मध्ये यद्विंशन्मत्तग्रन्थमें जुदाप्रायश्चित्तहै=यथा=दोषोच्छिद्यन्त्यत्तैलंरात्रोरथ्याहृतंतु यत्रअभ्यंगाच्चैवयाच्छिद्यंभूक्तानक्तेनशुद्ध्यतीति=अर्थात्—तेल जो दीपक जलाकर जुदा बचा या अंधेरी राति रास्ते गजी आदि की धरती पर गिराहुआ सूतके रखांलियाहो ऐसा बिना जला भी या देहमें लगाते जो बचिगयाहो तिसको भी खालेनेमें रात्रि व्रत करनेसे विशुद्ध होताहै ॥ यहाँ रात्रि व्रत (नक्तव्रत) नामसे समझना कि जिसकी जुदा एक विधि होतीहै • यथा (इविष्यभोजनंस्नानंसत्यमाहारलाघवस्यअग्निकार्यमधःशय्यांनक्तभोजीयडा चरेत्) अर्थात्—दिनमें कुछ न खाइके चार घंटी रातिगये पर थोडा भोजन करै सो नक्तव्रतकहाता है तिसके साथ छे बातों की साधना है कि दिनके सिवाय सायंकाल भी स्नान करै उस दिन असत्य कुछ न बोलै पेटभर न खाय अग्निमें खीरि पूरीका होमकरै वही आप खांय धरती पर सोवै तब यह नक्तव्रत कहाताहै (निशानक्तन्तुविज्ञेयंयामाह प्रथमेसदा) इस वचनसे चार घंटी राति गये की भीतर अग्निका होम और भोजन करना संसिद्ध है ॥ • ॥ यहां तक अशुचि प्राणी करके छुई विगाड़ी वस्तु खाने को प्रायश्चित्त कहे गये—अब नीचे अशुचि वस्तुसे भिड़ी छुई अन्नादिक वस्तु खाने को प्रायश्चित्त कहेजायंगे ॥ इत्यशुचिप्राणिसंस्पृश्यभक्षणाप्रायश्चित्तानि ॥

(अथाशुचिद्रव्यसंस्पृष्टभोजनप्रायश्चित्तं)

५६७

अवाहंसर्वतः=केशकीटोपपन्नन्नुनीलीलाक्षीयघातनसस्नाद्वस्थिचर्मसंसंस्पृश्यंभूक्ता तूपवसेदहः=तथाशातातपोपि=केशकीटावपन्न रुविरमांसास्पृश्यस्पृष्टभूताहोमसित पतत्रधवलौहशुक्ररगवाघ्रातशुष्कपर्युयितवृथापक्वदेवान्नहविषांभोजनेतूपवासः पंच गव्याशनंचेति (सतचोभयमीपत्रकासविययसितिसिताक्षरा=अर्थात्—वाल या कीड़े जिसमें परेहुये ऐसा अन्न या नोल वा लाखसे दूयित अन्न या नस नाडो दाड चसड़ा इनसे भिड़ा विगाड़ा छुआ अन्नखाइके एक दिन उपवास करै=तैसा शातातप ने भी कहाहै कि=वाल कीड़ों से मिला अन्न वा लोह मांस आदि न छूने योग्य चीजों से छुआ विगाड़ा अन्न वा गर्भकी इत्या करनेवाला धू राडा कहाता है तिसकी आंखों से देखाहुआ अन्न वा पतंगी पक्षीओंका जुदारा हुआ अन्न वा कृत्ता खर गायोंका

सुंघाहुआ अन्न वा अनेक दिनका बना धरा सुखा या कई दिनका बासी सडा हुआ अन्न या दूधपाक जो देव पितर अभ्यागतको निवेदन किये बिना बनाकर धराहो या देवताको निमित्त भेद देनेको संकल्प किया अन्न धराहो या देवताका चटा या हविष किसी पूजाके निमित्तकी सामग्री धरोहो इनमें किसी एकही के खालेने में एक दिनका उपवास प्रायश्चित्तहै दूसरे दिन पचगव्य का आहार करना चाहिये (ये दोनों संवत् शातातपकी व्यवस्था केवल उसके ऊपर आखडहैं कि जिसने इच्छाके बिना ऐसा अन्न खाया हो=और=जिसने जानि वृत्ति इच्छा के साथ ऐसा खायाहो तिसकोलिये अग्रेक्त प्रायश्चित्तहै=यदाहविष्णुः=शृङ्गारिकुसुमादीश्चफल कन्देक्षुमलकाश्च विरामूवदूयिताचप्रायश्चित्तपादंसमाचरेत् सन्निहये० धर्मवस्यात्क-
 ष्ण्डस्त्वशुचिभोजने (अल्पसंसर्गपादोमहासंसर्ग०२धर्मासाक्षुचित्तवस्तुभक्तोपूरा
 कच्छुकुर्यादितिव्यवस्थायांविधात्वविज्ञेयं० धर्मशास्त्रीकृतत्रतेयुपलिंगोपिकच्छु-
 द्ध=अर्थात्=कोई थोड़े सासो या जल या खाने के फल आदि या फल कन्द गांढा
 मूली आदि कोई चीज विद्या या मूत्रसे थोड़ी दूयितहुईहो तिसको खाइकर चौथाई
 कच्छुसाधै तब शुद्धहोय एवं जो अति समीपसे दूयित हुईहो तिसको खाकर आधा
 कच्छु साधै एवं जो चीज गूह मूत्रसे साक्षात्कार लिपिगईहो तिसको खाकर पूरपूर
 कच्छु करै तब शुद्ध होय (इन तीनोंका दूयान्त सेसे समझो कि बेरी के रस तले
 हगो मती धरतीके पास गिरे बेर कोई ले आवै तो यह थोड़े दूयित कहावेंगे परन्तु
 जो हगो मती धरती पर गिरे बेरले आवै तो यह अति समीप से दूयितहुये कहा-
 वेंगे इसके सिवाय यदि कोई ऐसे बेरी को चुनि कर खाइ जाय जो साक्षात् हगे
 हुये बिनामें भस्मिपरेहों तो यह अशुचि भोजन कहा जाकर पूरा कच्छु करनेसे वि-
 शुद्धहोगा इसीतरह सब चीजोंपर तीन भेद समझि लेना ॥ ० ॥ अगिले व्यासजी
 के वचन में जो संसर्ग धर्मान करेंगे तिसमें केवल अशुचि प्राणीके छुड़जाने मात्र का
 चर्चा या अशुचिद्रव्यसे छुड़जाने मात्रका चर्चाहै लिपिजानेका नहीं=यथाहव्यास=
 संसर्गदुष्टंयच्चान्नक्रियादुष्टंचकासतः भुक्तास्वभावदुष्टञ्चतप्तकच्छुसमाचरेत्(सतचासं
 स्पृष्टामेध्यादि रसोपलब्धौवेदितव्यमिति मिताक्षरा=अर्थात्=जो अन्न संसर्ग (किमो
 मलीन सूखी वस्तुकी छुआछाई मात्र) से दूयित हुआ यहा खोंटी क्रिया से अर्थात्
 बामे हाथसे परोसने आदि निषिद्ध प्रकारसे अथवा अपने स्वभावही से दूयित हुआ
 हो जैसे बासी होकर वुसिजाना आदि ऐसे अन्नको खानेवाला तप्तकच्छु साधै (इस
 में संसर्गका चर्चा किया सो उस भाति का कीरा संसर्ग समझना कि जिसमें किसी

चीजका रस न लगने पावै उसीके भक्षणा का यह प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ रजस्वला चांडालादिस्पृशेतु—रजस्वला आदि का छुआ अन्न खाने का प्रायश्चित्त आगे देखो=तदाह शंखः=अग्नेय पतित चांडाल पुत्कस रजस्वला अवधूत कुरा कृषि कुनखि संस्पृष्टानि भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेत् (सत्कामकारविययं अकामतोऽर्धं कुर्यादिति मिताक्षरा=अर्थात्—अग्नेय विपटा रक्त मांस आदि पतित चांडाल पुत्कस रजस्वला अवधूत संन्यासी आदि कुरागी जिसका हाथ विकृत विगड़ा हो कोढ़ी कुनखी जिसके नख विगड़े हों इनके छुये अन्न खाइके कृच्छ्रव्रत आचरे (यह भी इच्छाके साथ खाइजाने पर समझना किन्तु इच्छा विना खाने में आवा कृच्छ्र कराना यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥ ० ॥ अथोक्त विप्राके वचन वाला प्रायश्चित्त अशक्तके निमित्त पर मिताक्षराकार बताते हैं=यदाह विप्राः=भुक्त्वाऽस्पृश्यैस्तथाऽर्धं चि के प्रकीर्तेश्च दूयितम् कुशोद्वंशरवित्वाद्यैः पनसां व्रजपत्रैः शंखपुष्पीसुवर्चादिजाशं पीत्वा विशुद्धातीति (तदशक्तविययं रजकादि स्पर्शविययं वा इति मिताक्षरा=अर्थात्—नङ्गने योग्य जीवों या मनुष्योंका छुआ अन्न तथा सूतकी लौगाँका छुआ अन्न खालेवै या बार कीड़ोंसे दूयित अन्न खाए या कुशा गूलर बेज आदिके पत्तोंपर धरा हुआ या कटहर कमल इनके पत्तोंपर धरा हुआ खाए सो शंखपुष्पी सुवर्चा आदि औषधियों का जाय पीकर शुद्ध होजाता है (यह छोटा प्रायश्चित्त अशक्त पुरुषके निमित्तपर या रजक आदिका स्पर्श होजाने मध्ये समझना किन्तु अति मलान के स्पर्श मध्ये नहीं यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥ ० ॥ शूद्रादिस्पृशेतु—शूद्र आदिसे छुआ विगड़ा अन्न खानेके प्रायश्चित्त जुदेहै=तदाह हारीतः=शूद्रेणोपहृतं भोज्यं कीर्तितं नेध्यसेविभिः भुंजानेयुतवायवदद्याच्छूद्र उपस्पृशेत् अनर्हत्वात्संपत्कीर्तितं भुंजानेयवायवोत्थायोच्छिद्यं प्रयच्छेदाचामेवाकृतिस्त्वावायवाचंदयुस्तव प्रायश्चित्तमहोरात्रम्=अर्थात्—भोजन करते हुये खाने योग्य अन्न जो शूद्रके दूनसे यद्वा विसा आदि मलीन स्थानमें रहिते वाले कीड़ोंसे अशुद्ध होजाय अथवा भोजन करते पुरुष को शूद्र अपने हाथ से जत अन्न आदि कुछ देदेवै किन्तु परोसिदेवै या भोजन करनेवाले कीड़ी छुइ लेवै यद्वा उज्जदपनकी अयोग्यतासे चोकेकी पंक्तिहीमें घुसिजाय अथवा एकपांतिमें बैठे भोजन करते अनेक ब्राह्मणोंमें कोई एक उठिकर अपनी पत्तल आदि जूटनि पांतिके बाहर लेजाय या उसी जघे बैठा रहिकर पांतिसे बाहर वाले किसी जूटनि के खवैया की समर्पणा करदेवै अथवा ऐसा न करनेपरभी केवल आचमन करनेलगे तो उस पुरुष की पांतिजुटी करदेनेके शेषमें एकदिन रातिभर उचवाम प्रायश्चित्त करना चाहिये

और उस जूठी पंक्ति के मनुष्य जो ऐसा हो जाने वादि खाते रहें तिनको भी व्रत करना चाहिये और उसको भी कि जिसको श्राद्धने छुड़लिया या कुछ परोसि दियाया इनके सिवाय जहां जिस पांति में परोसने वाले किसी को निन्दा करते हुये परोसैं तो उस पांतिका अन्न खानेवाले और परोसनेवाले सभीको एक उपवास प्रायश्चित्त करना चाहिये=उच्छिष्टापांपत्तौतु-जूठी पंक्तिमें भोजन करने मध्ये कतुस्मृतिमें विशेष्यता कही गई है=यथा=यस्तुभुक्तं द्विजःपंत्यमुच्छिष्टायांकदाचन अहोराशोयितोभूत्वापंचगव्येनशुद्ध्यतीतिकतुस्मरताम्=अर्थात्-जो कोई द्विज होकर कदाचित् जूठी पंक्तिमें (कि जिसके लक्षण सब तरह ऊपर कहि चुके) भोजन करै सो एक दिन राति भर उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है=जूठीपांतिमें भोजन करने पर पराशर ने भी विशेष्यता कही है=यथा=एकपत्युर्पाविर्दानं विप्राणांसहभोजने यद्येकोपित्यजेत्पाशशेयमन्नंनभोजयेत् सोहाङ्गं त्रीतयस्तत्रपंत्यमुच्छिष्टभोजनः प्रायश्चित्तचरेद्विप्रःकच्छसांतपनंतदा=अर्थात्-एक पांतिमें अनेक ब्राह्मणों के सह भोजन में बैठे हुयोंमें से यदि कोई एक भी अपने आगेका पात्र त्यागि देवे किन्तु बचे अन्न को न भोजै तिससे पांति जूठी होजाती है तहां यदि कोई अपनी सुखतासे जूठा भोजन करै सो ब्राह्मण कृच्छ्रसांतपनका प्रायश्चित्त आचरे तब शुद्ध होय=और=मंत्रविधि रहितायन्नभोजनेतु-परोसी हुई धाली पर जलके साथ मन्त्र विधि किये विना अन्न खालेने या बाम हाथसे परोसि अन्न खाइलेने आदि कुछ बातों का प्रायश्चित्त यद्विश्रमसतको ग्रन्थकर्ताने कहा है=यथा=समुत्थितस्तुथोभुंक्तोभुक्तभाजनेचामनिभुंक्तकंभुक्तोभोभुंक्तोऽसंभोजनम एववैवस्वतःप्राहभुक्तासांतपनचरेत्=अर्थात्-खड़ा होके यदि भोजन करै या जो कोई भोजन किये जुटे पायमें भोजन करै या बामे हाथसे दिये हुये अन्नको भोजन करै या मंत्रविधि किये विना भोजन करै तिनकी लिये वैवस्वत मनु ऐसा कहिते हैं कि सांतपन व्रत आचरें ॥ ० ॥ मुर्दा आदि बूड़े कूप आदि का जल पीने मध्ये जुदे प्रायश्चित्त हैं=तदाह विष्णुः=मृतपंचनखात्कूपादत्यंतोपहृताद्वो दकंपोत्वात्राह्मणस्ययहमुपवसेत् इत्यहंराजन्यः सकाहवैश्यःयूत्रोन्नतं सर्वेचोत्पद्यव्यपिबेवुरिति (अत्यंतोपहृताहैतिसूत्रपुरीयादिभिर्वैत्यभिप्रेतं=अर्थात्-पांच नखवाले प्राणियोंमें कोई मरा जीव जिस कृआमें गिरपराइों या जिस कृआमें गूद मूत आदि अति सलीन कोई चीज गिराहो तिसका जल पीकर ब्राह्मण तीन दिन सत्रा दो दिन वैश्य एक दिन उपवास करै और गूदको नक्तव्रत चाहिये जिसमें दिन भर उपवास करिके रातिमें आधा पेट भोजन किया जाता है सभी लोग अपना अपना व्रत करने के

वादि पंचगव्य पीवै तब शुद्धहोयै=जहां=किसी कूपमें गिराहुआ मुर्दा मुख पसारने
 आदि हेतुसे पानीपीकर गलिघुलिजाय तिसका जलपीने मध्ये अथोक्त प्रायश्चित्तहै=
 यथा हारीतः=क्षिन्नभिन्नं प्रवन्तो ये तत्र स्थंयं दित्पिबेत् शुद्धयै चान्द्रायणां कुर्यात्तप्तक-
 च्छूमयापि वार्यादिकश्चित्तः स्नायात्प्रसादेन द्विजोत्तमः अपश्चिद्यवगास्नायी अहोरात्रे
 राशुद्धयतीति (उदंचान्द्रायणां कामतो मानुष्यशोष इतकूपजलपानवियथमिति मिता-
 क्षरा=अर्थात्-जिस जलमें मुर्दा परा रहिनेसे फूलिकर गलै या फूटिजाय तिस जल
 को यदि पीवै तो इस दोयकी शुद्धिकेलिये चान्द्रायणा करै अथवा तप्त कृच्छ्र करै
 और जो कोई ब्राह्मण जलको पिये बिना देवल स्नान मात्र अपनी मूर्खता से करै
 सो अच्छे जलमें जाकर बिकाल स्नान करिके गायत्री जप करतेहुये एक दिनरात्रि
 भर व्रत करके शुद्ध होताहै (मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह महीनेभरका चांदा-
 यणा उस जलके पीने पर समझना जिसमें मनुष्यका मुर्दा गिरके सड़ाहो और पीने
 वाले ने जानि बूझि इच्छा सहित पिया हो। तिससे तप्त कृच्छ्र वाला प्रायश्चित्त
 मनुष्यसे उपरालू किसी अन्य जीवके सुदवाला जल पीने पर आरुद्ध हुआ=मिता-
 क्षराकार फिर कहितेहैं कि यह प्रायश्चित्त इच्छासहित जल पीनेपर ठहिरबुका।
 तिससे इच्छा बिना पीने वाले पर छे दिनका प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि अगिले
 वचन के अनुसार व्यवस्था मानीजासक्ती है=यदाह देवलः=क्षिन्नभिन्नं प्रवन्तौ चैव कू-
 पस्थं यदिकायते पयःपिबेत् तत्राश्वेमानुयेद्विषां स्मृतम्=अर्थात्-कूपमें परा हुआ
 मरा जीव यदि भीगि फूलिके फूटि जाय तो उस जलको बिना जाने पी लेनेवाला
 तीन दिन दूध पीकर व्रत करै परन्तु जो मनुष्य का मुर्दा गिराहो तो इससे दूना छे
 दिनका व्रत चाहिये ॥ ० ॥ चाण्डालादिकृतकूपजलपानेन चंडाल आदि अति
 मलीनों के कूप या पायका जल पीने मध्ये आपस्तंबका कहा प्रायश्चित्तहै=यथा=
 चांडालकूपभांडस्थं नरः कामाञ्जलिं पिबेत् प्रायश्चित्तं कथं तत्र वर्यां वर्यां विनिर्दिशेत् च
 रेत्सान्तर्पन्निव प्रप्राजापत्यं च भूमिः तदहं च चरेद्द्वैश्वः शुद्धे पादस्विनिर्दिशेत्=अर्थात्-
 चण्डालके कूपका पानी या उसके वासनमें धरा पानी कोई मनुष्य इच्छा सहित
 पीलेवै तहां प्रत्येक वर्यांके प्रायश्चित्त कैसे आज्ञा दिये जायै सो कहितेहैं कि ब्रा-
 ह्मण शान्तपन आचरै सभी प्राजापत्य करै वैश्य आधा प्राजापत्य करै शूद्र चौथाई
 करै (ये प्रायश्चित्त सब कामनासे पिये जल पर आरुद्धहैं=किन्तु=इच्छा के बिना
 पीलेने मध्ये अथोक्त प्रायश्चित्त है=तदाह देवलः=चण्डालकूपभांडस्थं मज्जनादुद-
 कम्पिबेत् सत्तुच्यहेराशुद्धये तशूद्रस्त्वेकेन शुद्धयति=अर्थात्-चण्डाल के कूपका या

वासन का धरा उदक जो कोई बिना जाने पीलेवै सो द्विजाती माघ तीन दिन व्रत करनेसे पवित्र होता है शुद्ध एकही व्रत करिके शुद्ध होता है (अन्त्यजों के कूप या वासन का पानी अनेक बार पीनेका अभ्यास करें तिसको प्राजापत्य चाहिये नीचे दूर जाकर आपस्तम्बका वचन देखना) = और = चण्डाल आदि सभी नीचोंके बनाये बांधे छोटे छोटे जलाशयोंका पानी पीलेनेपर भी कूपहीके समान व्यवस्था होगी = यथाह विष्णुः = जलाशयेष्वथाल्पेषु स्यावरेषुमहीतले कूपवत्कथित शुद्धिमहत्सुत नदूयरास = अर्थात् = कुआंसो उपराल छोटे जलाशय जो धरती पर स्थावर हों तिनके जल पीनेमें भी कुआंके समान प्रायश्चित्त आदि शुद्धि कही है पर बहुत बड़े तडाग भील आदि जलाशय जिनमें धारा प्रवाह जल होता हो चाहें किसी के वनशयेहां या चाहें कोई जीव उनमें मरा हो तो भी जल पीने आदि का कुछ दोष नहीं है न प्रायश्चित्तको जल्लरत होगी ॥ ० ॥ पुष्करिणी तलेया बड़े गडहिले आदिके पानी पर जुबी व्यवस्था है = तदाहपस्तम्बः = स्लेच्छादीनां जलं पीत्वा पुष्करिण्यां हरेष्ववा जा नुदग्रशुचि जलं यमवस्तादशुचि स्मृतम् ततोऽप्यं पिबेद्विप्रः कामतोऽपि कामतोऽपि वा अका माक्षतं भुंजीत्यादहोरात्रं कामतः = अर्थात् = स्लेच्छ आदि मलोन मनुष्योंके कच्चा में रहितो पुष्करिणी या हृद (गडहिलेहीज) का जल पीकर यह व्यवस्था है कि गोडों के घूँटे जिसमें हूँबि जाय सो तो जल पवित्र है घूँटेसे नीचे होय सो अशुद्ध है ऐसे अशुद्ध जलको जो कोई ब्राह्मण पीवै सो इच्छा बिना पीनेवाला दिन भर व्रत किये पीछे रात्रि में भोजन करें पर इच्छा सहित पीकर एक दिन रात्रि का पूरा उपवास करें ॥ ० ॥ भाण्डस्थदध्यादिमलणे तु = रजक क्षीपा रंगरेज घोबी आदि अन्त्यजों के पात्रका जल पीने मध्ये जुदा प्रायश्चित्त है = तदाहपराशरः = भाण्डस्थमन्त्यजा नान्तु जलं नद्विषयः पिबेत् ब्राह्मणः सवियोवैश्यः शुद्धश्चैव प्रमादतः ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां नृनिष्कृतिः शुद्धश्चोपवासेन तथादानैर्नाश्रितः = अर्थात् = अन्त्यजों के वासनमे धरा पानी या दही या दूध जो कोई अपनी भलसे पीलेवै सो ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनोंको शुद्धि ब्रह्म कर्च उपवास करनेसे होती है और शुद्धने पीलियाहो तिसकी शुद्धि केवल उपवास और यथाशक्ति दान करनेसे भी होती है = परन्तु इनमें से जिस किसी ने इच्छा सहित पिआहो तिसको यही प्रायश्चित्त हुना करना चाहिये = इसको सिवा = जिसने अनेक बार ऐसा पानी दही दूध पीनेका अभ्यास किया हो तिसके त्रिये अगिले वचनसे प्राजापत्य विचारना होगा = यदाहप्रास्तम्बः = अन्तरजैः खान्तिताः कूपास्तद्वाग्वाप्यएववा एयुस्नात्वाचपीत्वाचप्राजापत्येनशूद्य

ति=अग्नीत-अन्त्यर्जों के खोदवाये कूप या तड़ाग या बावड़ी इनमें स्नान करिके या पानीपीके प्राजापत्य करे तब शुद्ध होय (यह बारम्बारके अभ्यासकी व्यवस्था सामान्य उनके वासन और कूप आदि सभी पर आखड्ड है क्योंकि प्रायश्चित्त बड़ा होनेसे इसका चर्चा ऊपर लिख चुके हैं कि आपस्तम्ब का वचन नीचे दूर जाकर देखना)=और=जो इन्हीं आपस्तम्बने दूसरे अंगले वचनमें केवल पंचगव्यही पीना कहा सो वह रोगी आदि अगस्त पुरुष पर समुभूता होना=यदाज्ञयापस्तम्बः=प्रपास्तरगयेष्टकेचशैलेद्रोगयांजलंकीर्णनिर्गतंच चपाकचापडालपरिग्रहेयुपीत्वाजलं पंचगव्येनगृह्येत=अर्थात्-कृत आदि जीवोंको खानेवाले चपाक कंजर आदि और अमली चण्डाल आदि अति मलीन मनुष्योंको कन्यामें रहितहुँ पियाऊँ का पानी या उनके घड़ोंका भरा धरा पानी या पर्वतमें द्रोणी द्रोणी जो प्रसिद्ध हो-ती हैं कदाचित् किसी द्रोणीमें चण्डालों का नियामहोय उसी द्रोणीके बीच कोटि पानीका भरना ऐसा छोटासा भरता होय जिसपर उन्हीं चण्डालोंका दार मदार सदा रहताहो तो उस भरनाछपी कौशिके निकसे हुये पानीकोभी न पीनाचाहिये यह तात्पर्यहै (शैलेष्वतमव्यस्यलेद्रोगयाधारेकीर्णनिर्गतंजलंचेत्यन्यथः) इन जलोंको यदि कोटि द्विजाती पीलेयें सो पंचगव्य पीकर शुद्धहोसक्ताहैं यदि रोगी आदि अगस्त होय जैसा ऊपर लिख चुके अन्यथा पूर्वोक्त ही व्रत देखने होंगे ॥ ० ॥

एक यह भी बचनहै कि=प्रमाणतौचिनातोयंगरीर्योनियिंचति सकाहस्रपरांक्षत्या मच्चलंस्नानमाचरेत्० मुराघटप्रपातोयेपीत्वानाव्यजलन्तथा अहोराधोयितोभूत्वापंच गव्यंजलपिबेत्=अर्थात्-जहाँ कहीं नदी कूप आदि जलकी प्राप्ति न होनेसे पियाऊँ पर जाकर कोटि रेड धोये सो एक दिन सब धन्ये छोड़िके समय चितानेके आदि वर्यों सहित किसी नदी आदि तीर्थ पर स्नान जाकरकरे तब होय दूर होताहै० एवं यह दूसरा नियमहै कि मदिरा के मटकों में धरा पानी या सर्व जातोंकी सामान्य पियाऊँका पानी जिस ब्राह्मण चित्तानोंने पीलियाहो या नाच्यजल अर्थात् जहाँ नवों आदि के किनारे पर अतिगम्य छोड़े जलमें अनेक गाठ टिकी बंधी रहितो हाँ तिनके नीचेकापानी जो मलीन कौचइकेसमान होजाताहै वही नाच्यजल पीलिया हो अथवा नाचके भीतर भरा या मटक आदि में धरा दो मो भी नाच्य जल समु-भूता इन जलोंको पीकर यह प्रायश्चित्त चाहिये कि एक दिन रातिका उपशान करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीलि जातिके उसका पतना व्रत पीये तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ एक यादवयज्ञके तीर्थमें यह बात यहाँ प्रसंगमें लिखे स्तेहैं कि प्रायश्चित्तों

के वर्णानमें जहांजहां प्राजापत्य या सान्त्वन आदि नामलिखेहों तहां ती उन्हींका विधान जो कुछ होता हो सोई कियाजायगा अन्यथा जहां साधारण ऐसा लिखा हो कि एक या सात दिन उपवास करें तहां एक दो तीन आदि व्रत निराहार भी होसक्ते हैं इससे अधिक संख्या सात बारह पन्द्रह आदि जहां लिखीहो तहां सर्व्वव यह समझिलेना कि यावक पीकर व्रत करनेहोगे अर्थात् गो मूधमें जी का दलिया वा सावत जी रांधि के पतला दलिया वा गाढा साइसा बनाया जाय सो यावक होताहै यहां तक अशुचि प्राणीसे छुई और अशुचि वस्तुओंसे छुई भिड़ी खानी पीनी चीजोंके प्रायश्चित्त कहे गये—अब नीचे भाव दुष्ट चीजें खालेनेके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे भाव दुष्ट भी अनेक तरहसे होती हैं ॥

अथभावदूषितकालदूषिताद्यन्नभोजनप्रायश्चित्तानां

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः एकोऽसप्तमिः (७१)



इस परिच्छेदमें भावदुष्ट और काल दुष्ट आदि अनेक दूषित अन्न भोजन करने के प्रायश्चित्त कहेजायेंगे—तिनमें प्रथम भाव दूषित के फिर उसीके अन्तर्गत जिस अन्नपर भूँटी भ्रान्तिसे भी कुछ शंका खड़ी होजाय तिसकेखाइलेनेका प्रायश्चित्त• फिर काल दूषित भोजनका प्रायश्चित्त• फिर ग्रहण होते आदि समयों पर खाने के प्रायश्चित्त• फिर अनुक्त प्रायश्चित्तवाले दोगोंके प्रायश्चित्त• फिर गुरादूषित कांजी आदि चीजों के प्रायश्चित्त और उसीके भीतर पीना फोक आदि खाने के प्रायश्चित्त और बिना होमे या दिये बिना खाइलेने का प्रायश्चित्त फिर फूटे टूटे वासनमें या विरले साजे पत्तों पर खानेका• फिर हाथ घँघोलि दई हुई चीज खाने का• फिर शूद्रके हाथसे परोसा अन्न खाने वा जल पीनेका प्रायश्चित्त ॥

(भावदुष्टाद्यादिमर्चणाप्रायश्चित्तं)

भाव दुष्टका यह अर्थ है कि जिस वस्तुका आशय अभ्यन्तर किसी प्रकार से खोटा समुत्सागया हो चाहें उसवस्तुके वर्ण रंगतिसे या उसके आकार डोल वनावट से या उसमें कोई रस ऐसा अतिशय होता हो जिसके खानेसे शरीरमें तरह तरहके

दुर्गन्ध आदि खोटे मल बहुत पैदा होयें सो संसारमें निन्द्य योग्य होते हैं जैसा वसन कफ थक डकार नाक की चूड़ मल मूत्र अपानवायु या चित्तमें उद्वेग पैदा करै या वीर्य को क्षीणता करै या कामदेवकी आतुरता उत्पन्न करै या क्रोध आदि महारोगोंको उत्पन्न कर सकै इत्यादि नाना भांतिसे भाव दुष्ट चीजोंके लक्षणा वैद्यक शास्त्र से भी जाने जाते हैं—इनसे उपराल भी अनेक लक्षणा भाव दुष्ट के होते हैं दृष्टान्त जैसे यद्यपि अन्न सर्वथा उत्तम निर्विकार है परन्तु जो मन में भ्रांति खड़ी होजाय कि इसमें भरे अमुक शत्रु ने विष मिलाकर भेजा या और किसी से मिलावाया होगा या अमुक पतितने छुड़लिया होगा इत्यादि यद्यपि उसमें विष न हो तो भी ऐसी शंका खड़ी हो जानेसे वह अन्नभी भाव दुष्ट कहाता है इत्यादि और भी संनभने—इन चीजों का भक्षणा करवा प्रायः तपोमार्ग से नियिद्ध है जैसा साँचे तपस्वी जोग मगही की दाल खासक्ते हैं उरद की न खायेंगे इत्यादि इसी दृष्टान्त में सब समभिलेता=भाव दुष्ट आदि भक्षणा का प्रायश्चित्त पराशर ने कहा है—यथा=वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाज न भावदूयितम् भुक्त्या च ब्राह्मणः पश्चात् विराजेता विगुह्यति (एतस्मात्कारवि-ययमिति मिताक्षरा=अर्थात्—जो कोई या अन्न वाणी के नामही सावसे भाव दुष्ट होय या अपने आशय से भाव दुष्ट होय या वासन में घरने की दौयसे भाव दुष्ट हो जाय जैसा कौसे पावमें बकरी खड़ी चीज बिगड़ जाती है या ताँबेमें दही दूध आदि या हाड़ की वासन में हरकोई चीज अशुद्ध कहाती है इत्यादि कोईसा भाव दूयित अन्न यदि कोई ब्राह्मण खाय सो उस दिनसे दूसरा दिन लेकर तीन दिन व्रत करने पर शुद्ध होता है (उच्छा सहित खाने वाले की यह प्रायश्चित्त चाहिये यह मिताक्षरा कार ने कहा ॥ ० ॥ भ्रांति जनक शंकायांतु—भ्रान्ति रूप शंका के उत्पन्न होने में वीशय के वचनानुसार प्रायश्चित्त है—यदाह वीशयः=शंकास्थाने समुत्पन्ने अभोज्यभक्ष्यसंज्ञिते आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्योगादतः शृणु अक्षारलवणां कृत्वा पिबे ह्यह्नीं सुवर्चताम् विराजं शंखगुण्णीं वा ब्राह्मणः पयसा सह पलाशवित्पत्रपात्राणि कृत्वा पश्चमुद्वरस अपरिषेवेत्कार्यायित्वा विराजेता विगुह्यति=अर्थात्—वीशय जो कहते हैं कि जहां भ्रांतिरूपी शंका खड़ी होजाय कि मैं बिना जाने अमुक तरह का दूयित अन्न खाया यदा नहीं खवाने और न खाने योग्य अन्नही साक्षात् होय जिसमें शंका खड़ी हुई ऐसे आहार की शुद्धि करना मैं कहता हूँ सो भरे कहने को सुनी ब्राह्मो नाम की सुवर्चला शीथवी जो जंगल से आती है तिसको तीन दिन ऐसे पीवें कि न उसमें कोई खारी नमकीन रस मिलावै न घी दूध आदि चिकनाई का रस

मिलावै किन्तु खूबी पीडारै तिससे शुद्ध होजायगी अथवा वही शंकामान् ब्राह्म-
रा तीन दिन शंखपुष्पी शंखाहली की दूध के साथ औटिके पीवै अथवा ढाखावेल
कुशा पत्र-गूलर इन पाँचों के पत्ते पानी में काढा बनाकर पीवै तौभी तीन राति से
विशुद्ध होता है किन्तु जैसी शंका होय तैसाही प्रायश्चित्त इनमें से चुनि लिया
जाय=मनुने कुछ और विशेषता इसपर कही है=यथा=सवत्सरस्त्रैकमपिचरेत्कच्छं
द्विजोत्तमः अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्यचविशेषतः=अर्थात्-कोई द्विजोत्तम जिसने स-
वत्सर के भीतर बहुत कालतक भी बिना जाने कुछ अशुद्ध भोजन किया हो तो उस
बिना जाने खाते रहने की दोष शुद्धि के लिये एक पूरा कच्छ भी आचरै जो बारह
दिन में होता है और जिसने जानि बर्क खाया हो तिसको इससे दूना आर्द्रविशे-
यता से करना चाहिये=इस पाठ में ये प्रायश्चित्त द्विविधा रूपी भ्रांति की शंका
पर सामान्य संन्यासे से दर्शाये गये तिससे इसमें किसी वस्तु का नाम विशेष नहीं
कहा ॥ इत्यभोज्यभोजनशंकायाःप्रायश्चित्तं ॥

(अथ कालदूषितभोजन प्रायश्चित्तं)

काल दूषित उसको जानना जो वस्तु केवल कालही के प्रभाव से बिगड़ी ठहरे
दृष्टांत जैसे वासी घरा अन्न यद्यपि अष्ट या परन्तु काल के विलम्ब से बुरागया इस-
रा दृष्टान्त जैसे गाय का दूध एक उत्तम चीज है तथापि बिआली गाय को दस दिन
जबतक न बीतेहों तब तक उतने काल के प्रभाव से अशुद्ध है इत्यादि अनेकवाअन्य
चीजें भी-होती हैं=तिनको जिसने इच्छा बिना खोखासे खाया हो तिसके लिये एक
ही दिन का उपवास है (श्रेयेषपवसेदहः) इसी मनु के वचन से पहिले भी प्रायः
कहिचुके हैं=परन्तु=जिसने इच्छा सहित खायाहो तिसकेलिये अगिलाप्रायश्चित्त
है=यवाह शंखः=केवलानिचशुक्तानि तथापर्युयितंचयव रुचीशपक्वंभुक्त्वातुविरा
बंसव्रतीभवेत् (केवलानिअस्नेहाक्तानीतिमितांसरा=अर्थात्-केवलअन्न, जिनमेंधीका
मेल न होय और शुक्त जो काँजी सिकाँ आदि कालहीके विलम्ब से परिगामपाते
हैं तथा पर्युयित वासी तिवासी आदि बुरे अन्न तथा हालदी का पकाया अन्न जो
अति सुंधातुर ने क्रिया रहित पकाया हो तिसकी खाइके तीन दिन व्रती होना
चाहिये ॥ ० ॥ नवीन वर्या का जल भी अति लघुकाल से दूषित होता है तिसकी
पीने का प्रायश्चित्त आगेदेखी=तदाहृदयान्नवत्कम्=अंगास्थिस्तजैःपात्रैःशंखशुक्ति
कर्पादिकैः पीत्वावोदकंचैव पंचगव्येनशुद्ध्यति (कामतस्तूपवासः कर्तव्यइतिमिता-

क्षरा=अर्थात्-सींग हाड दांत इनकेबने पात्रोंसे जलपीवै या शंख सीप कौड़ा घोंघा
 से पीवै या नवोदक नवीन वर्यासे जो नदी आदि में भरि आया हो तिसको पीलेवै
 सो पचगव्य पीकर शुद्ध होता है-परन्तु जिसने इच्छासहित पिआ हो तिसको एक
 उपवास भी करना चाहिये-क्योंकि अगिले वचन से यह तात्पर्य मिलता है=यथा
 स्मृत्यंतर=कालेनवोदकशुद्धनपिवेद्यहहितव अकालेतदग्राहस्यात्पोत्वानाद्यादहर्नि
 शम्=अर्थात्-वर्या ऋतुके काल में जो वर्या प्रथम हुई हो तिसका नया जल यद्यपि
 शुद्ध धरती पर संचय हुआ हो तौभी तीन दिन तक वह न पीना चाहिये और जो
 वसति के बिना किसी ऋतु में अकाल वर्सा हुई हो तो दस दिन तक न पीना चा-
 हिये कदाचित्त कोई पीलेवै सो एक दिन राति भर भोजन बिना उपवास करै ॥०॥
 ग्रहणकालादि दूषिताच्चे तु-ग्रहण परते काल में भी काल दूषित भोजन कहाता
 है तिसका प्रायश्चित्त आगे देखो=तदाह शातातपः=नवग्राह प्राप्तग्राजकान्न संग्रह
 भोजनम् नारीणांप्रथमेगर्भेभुत्त्वा चांद्रायणांचरेत्=अर्थात्-प्रेतके नवग्राह का अन्न
 खाय या प्राप्त ग्राजक का अन्न खाय या सूर्य चन्द्र का ग्रहण परते समय भोजनकरै
 या स्त्रियोंके पहिलीवी गर्भ रहने के निमित्त पर भोजन करै अर्थात् उसी उत्सवके
 नामसे जो कुछ अन्न बाँटा वर्तायागया तिसको खाय तौ यह खानेवाला पुरुषचांद्रा-
 यणा करै तब शुद्ध होय-और ग्रहण के दिवसयादि उसके देवहुये मृतकोसमयपरभी
 खाने का नियेधक प्रायश्चित्त आगे देखो इसी के प्रसंग पर नीचेकीव्यवस्था है ॥

(अनुक्तप्रायश्चित्तनिषेधेषुचभोजनशुद्धिः)

ऊपरली व्यवस्था के प्रसंग में एक निराली व्यवस्थाअब लिखतेहैं जिसमें फुट
 कर ग्रंथोंके अनेक वचन एकत्र लिखे जायेंगे और तात्पर्य उनका यही है कि जिन
 अवसरों पर भोजन करना नियेध है परन्तु प्रायश्चित्त नहीं कहा गया तिनका भी
 प्रायश्चित्तसमस्त में आवै=तदाह मार्कंडेयः=चंद्रस्ययदिवाभानो र्यस्मिन्नहर्निभार्वा
 ग्रहणांतुभवेत्स्मिन्नापूर्वभोजनक्रियाया नचरेत्सग्रहेचैवतथैवास्तमुपागते यावत्स्यान्नो
 दस्तस्यनाश्रीयात्तावदेवतु=तथा ग्रन्यांतरं=ग्रहणांतुभवेदिंदोःप्रथमादिविद्यामतः भुंजी
 तावर्तनात्पूर्वप्रथमेप्रथमादधः=तथा१२यदपि=अपराह्नेनमाह्नेमायाह्नेनहसंगवेभुंजी
 तसगवेचेत्स्यान्नपूर्वभोजनक्रिया=एवंमनुस्तु=नाश्रीयात्संविवेलायां नातिप्रगो ना-
 तिमायं इत्येवमोदि=रुद्ध शातातपस्तु=वानादिविचसक्तुश्चय्रीक्तासोवर्जयेन्निगि
 भोजनतिलसंयद्वंस्त्रानंचैवविचक्षणाः (इत्येवमादिप्वनादिष्टप्रायश्चित्तेषु प्राणायाम

शतं कार्यं सर्वपापपुत्तये उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हीति ३०६ योगीश्वरोक्तं
 द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा=अकामस्तु शोषेयपवसेदहरितमनूक्तोपवासो द्रष्टव्यमिति च
 मिताक्षरा=अर्थात्-मार्कण्डेय ने यह कहा है कि चन्द्रमा या सूर्य का ग्रहण जिस
 दिन होनेको होय तिस दिन उसके होनेसे पहिले भोजन रसोई आदि क्रिया कुछ न
 करनी चाहिये • और सग्रह दिनमें भी नहीं अर्थात् जिस दिन ग्रहा ग्रसाया बिम्ब
 उदय हुआ हो तिस दिन ग्रहणादोजानेके बादिभी रसोई आदि न करनी चाहिये • तथा
 अस्त उपागतेपिकाले अर्थात् जब ग्रहा हुआ बिम्ब अस्त होगया हो तो जब तक
 फिर उदय न होय तब तक उतने काल में न भोजन करें=तैसा अन्य ग्रन्थ का यह
 वचन है कि=चन्द्रमाका ग्रहण यदि रात्रिके प्रथम प्रहरसे उपरान्त होनेवाला ठहरे
 तो उस दिनके ठीक दुपहरसे भीतरले कालमें भोजन करें किन्तु मध्याह्न के उपरांत
 न करें • परन्तु जो रात्रि के पहिले पहर के भीतर ग्रहण ठहरे तो दिन के प्रथमही
 पहरके भीतर भोजन करें उपरान्तमें नहीं=तैसा और भी ग्रन्थान्तर वचन है जिसमें
 ग्रहणाके बिना भी सब दिनोंका यह नियम है कि=न तो अपराह्न कालमें भोजन करें
 न मध्याह्नकालमें न सायाह्न काल में न सगव काल में भोजन करें • भला कदाचिद
 सगव काल में करना भी परे तो प्रातःकाली सगवसे पहिले सूर्योदय होने के बिना
 तो अवश्यही न करना चाहिये (इसमें अपराह्न शब्द से दिनमान का सबसे पिछला
 तिहाई भाग समझना • मध्याह्न शब्दसे ठीक दुपहर की विचली छे घड़ी तीन पहली
 तीन पिछली समझनी अथवा केवल दो घटिका एक पहली एक पिछली तो अव-
 श्यही माननी क्योंकि यही मध्याह्न सूर्योपासना का समय होता है • सायाह्न काल
 भी सूर्यास्तके ठीक समयसे तीन घड़ी पहले तीन पीछे तक होता है • ऐसेही प्रातःकाल
 सूर्योदयसे पहले पीछे तीन तीन घड़ी मिलिके छे घटिका तक होता है उन्हीं घड़ियों
 के बीतने पर अनन्तरकी छे घड़ी सगव काल के नाम से होती है=ऐसाही मनुने भी
 कई वचनों में जुदा जुदा कहा है कि=संधियोंकी बेलापर न भोजन करें • अति प्रातः-
 कालमें भी न करें यहाँ अतिप्रातःकाल उसीको समझना जो सगव के नाम की छे
 घड़ी कहिचुके • अति सायंकाल में भी न खाय • ऐसे और नियम भी मनुस्मृति में हैं
 कि जिनके प्रायश्चित्त नहीं लिखे=छद्मशास्त्रात्पने भी कहा है कि=धाना ददरी
 होलाबहुरी आदि चबेने और दही सत्त इनको रात्रिमें अपना कल्याण चाहनेवाला
 वर्जित करे और तिल का बना भोजन तथा स्नान भी बिबेकी पुरख रात्रि में न करे
 (मिताक्षराकार कहिते हैं कि जैसी ये बातें कहीं तैसे और भी जे कीड़े वचन कहीं

देखि परैं कि जिनमें नियेवके द्वारा यद्यपि दोय दर्शाया गया परन्तु उस दोय का प्रायश्चित्त कुछ नहीं कहा तिन सभी में वह प्रायश्चित्त विचारना जो आगे ३०६ तीनसौ छठे मूलप्रलोकसे योगीश्वर आप कहेंगे कि एकसौ १०० प्राणायाम करने चाहिये • इसका विशेष व्यौरा उसी स्थलपर समझि लेना=और=जिसने इन्होंने नियेव कालोंमें इच्छा बिना धोखा आदि लाचारी से खाया हो तिसके लिये एक दिनका उपवास है (शयेयूपवसेदहः) इसी मनुके वचनसे विचारना चाहिये यह भी मितासराकारने कहा ॥ इतिकालदूषितान्नभोजनप्रायश्चित्तं ॥

(अथ गुणदुष्टशुक्तादि भक्षणप्रायश्चित्तं)

अन्नमनुः=शुक्तादिभक्षणप्रायश्चित्तं पौत्वाऽमेध्यानपिद्विजः तावन्नवत्यप्रयतो याव-
त्तन्त्रजत्यधः=अत्यधः-कांजी सिकें और अपवित्र काड़े अरक्त भी वाह्यण
पीकर तब तक अशुद्ध रहिता है जब तक वह पचिकर गुदा से न निकसि जाय
(इसमें भी प्रायश्चित्त कुछ नहीं कहा पर मितासरा कार कहिते हैं कि इच्छा के
बिना पीने वालेपर वही एक दिन का उपवास चाहिये जो मनुने (शयेयूपवसेदहः)
इस वचन से कहा था=और जिसने इच्छा सहित पिआ हो तिसको तीन का व्रत
अगिले वचन के अनुसार चाहिये जैसा शंखने यह कहा है (केवलानिचशुक्तानि
तथाप्युचितंचयत्त ऋचीयपक्वभुक्त्वाचविराशंतुव्रतीभवेत्) अर्थात् केवल औरशुक्त
और बासी तिवारी और कराही का पकाया कढ़ी आदि भोर भी खायेके तीन
दिन व्रत राखें-फिरभी-मितासराकार इसका प्रतिप्रसव दर्शाते हैं कि यह कांजी
आदि जो नियेव किये गये सो केवल जो गुला से दुध होयें तिनहीं का प्रायश्चित्त
समझना किन्तु आमले आदि उत्तम गुला वाले फलों के अचार में जो कांजी सा
पानी खड़ा होता है तिसका नियेव नहीं है-इस बात का प्रमाण भी अगिला व-
चनदेखो (कांजिकासफलायेयुद्धेयुस्थापिताभवेत् तस्यास्तुक्जिकाःप्राद्यानेतरस्याः
कदाचनेतरस्मरणात्) अर्थात्-जिन घरोंमें येय गुलाके फलों सहित (अचार) कांजी
घरी गईहो तिसकी कांजी ग्रहण करने योग्यहै और किसी को नहीं ॥ पिण्याका
दौतु-तिल आदिका पीना या ओटे धीका मेल या वादास आदि कोई मीग मांथ
कर चिकनाई निचोड़नेसे बची हुई लोभी इत्यादि वदुआ अन्य चीजें भी होतीहैं
तिनको खाइलेने पर गौतमने बमल कराइको धी चारना प्रायश्चित्त कहा है ॥ ० ॥
अहुतादत्तादिभक्षण प्रायश्चित्तं-कच्ची पक्की आदि भोजन को वस्तु आहार

के निमित्तसे बनाई जाय या आलीमें परोसि आगे धरीजाय सो अग्नि को जिमाने आदि रंस्कारोंके विना अभक्ष्य होताहै तिसका प्रायश्चित्त है=यथाह लिखितः= यस्यचान्नौनक्षिपतेयस्यचान्नंनदीयते नतद्भोज्यं हिजातीनांभुक्ताचोपवसेदहः दृथा कसरसयावपायसापूषशक्कलीः आहिताग्निर्द्विजोभुक्ता प्राजापत्यसमाचरेत्=अर्थात्-द्विजातियों में जिसके घर अग्नि में अन्न नहीं छोड़ा जाता और अभ्यागत राज आदि को नहीं दिया जाता हो तिसका ऐसा अन्न खानेके योग्य नहीं है कदाचित् कोई बिप्र खालेवै सो एक दिन उपवास करै-यथाकसर • दृथासयाव • दृथा पायस • दृथा पूष • दृथाशक्कली-इनको आहिताग्नि होकर जो द्विज खाइ सो प्राजापत्य आचरे तब शुद्ध होय=परन्तु जो अनाहिताग्नि ब्राह्मण इनको खाय तो वह एकही दिनका उपवास (श्रेयेयुपवसेदहः) इसी वचनके अनुसार करै=कसर उस भोजनका नामहै जो रसोईमें दो चीजें मिलाकर पकाई जायँ जिन दोनोंका रूप पकित जाने पर भी जुदा जुदा देखिपरै दृथान्त जैसे खिचरी आदि • सयाव का दृथान्त है शुभिक्रा पिराँक आदि • पायस का दृथांत है खीर आदि • पूष का दृथान्त पुआ गना आदि अथवा अपूष शब्द छेनेका दृथान्त है कसर आदि • शक्कलीका दृथांत है पूरी आदि • इतने नाम कहिनेसे सब तरहके भोजनका स्वरूप जाहर कियागया तिनके साथ दृथा शब्दकी योजनासे यह भाव दर्शाया है कि दाऊर नारायण को भोग वा अग्नि जिमाउना आदि देवता का निमित्त (बहाना) धरे विना जो भोजन कीवस्तु बनाई गई सो दृथाकहातीहै तिसको खाने केदो प्रायश्चित्तव्यवस्थितकियेगये ॥

(भिन्नभग्नप्राजादिषु भोजनेच प्रायश्चित्त)

फूटे दूटे फटे आदि बहुतेरे साजे भी घावोंमें भोजन करनेका नियेव है कदाचित् कोई ब्राह्मण आदि विवेकी सेसे खाय तिसके प्रायश्चित्त हैं=यथाह सर्वतः=शूद्राणां भोजनेभुक्ताभुक्तावाभिन्नभाजने अहोरात्रोयितोभूत्वापचमयेन शुद्ध्यति=तथा स्मृतं तरेपि=वराकांश्चत्यपचेदुक्ताभीतिन्दुकपषयोः कोविदारकदवेयु भुक्ताचांद्रायणां चरेत्=तथान्ग्रघ=पलाशपत्रपत्रेयुगृहीभुज्जीन्दवंचरेत् वानप्रस्थोर्थातिप्रचैवलभतेचांद्रि कफालय=अर्थात्-सर्वतः कहाहै कि शूद्रोंके वासनमें भोजन करै या अपने भी फूटे वासनों में खाय सो एक दिनराति का उपवास करिके दूसरे दिन पचान्ग्र पीकर शुद्ध होताहै=तैसा किसी और स्मृतिका यह वचन है कि=वरगदा • अक्रोआ • पीपर • कुम्भी • तिन्दुक • कचनार • कदम • इनके पत्तोपर धरिके भोजन करै तिसकी चांद्रा-

यथा करना चाहिये—तैसा और भी यह बचन है कि—ढाखा पदम इनके पत्तों पर गृहस्थी पुरुष भोजन करे तिसको चांद्रायणा करना चाहिये। परन्तु वानप्रस्थ और यती संन्यासी आदि जो इनपर भोजन करे तिनको चांद्रायणा करनेकी बराबर फल मिलता है अर्थात् उनको विशेषकर इन्हीं पत्तोंपर भोजन करना चाहिये ॥ बिरली चीज ऐसीहै जिनमें हाथ घँघोड़कर न देनी परोसनी चाहिये किन्तु चमचा आदि किसी पात्रसे उठाकर देनी चाहिये तिनके खाइ लेनेका प्रायश्चित्त नीचे देखौ ॥

(हस्तदानादिक्रियादुष्टभोजनप्रायश्चित्तं)

अथ पराशरः—सांस्किकं फाणितांशाकं गोरसंलवणाघृतम् हस्तदत्तानि भुक्त्वा तु दिने कमभोजनम् (कामतस्तु हारीतोत्तंद्रय्यं) = अर्थात्—सहृत् • राव • रँवसाग • दही • दूध • सठा • नमक • घी • ये चीजें हाथ डबोकर दीहुई खाइके एकदिन निराहार व्रत राखना (परन्तु जिसने जानि वृष्णि इच्छा सहित ऐसी चीज खाईहो तिसको लिये अग्नोक्त प्रायश्चित्त देखना = यदाह हारीतः = हस्तदत्तभोजने अब्राह्मणानामपेभोजने द्रव्यपंक्तिभोजने पक्ष्यग्रतोभोजने अभ्यक्तमूत्रपुरीयकरणो मृतसूतकशूत्रान्नभोजने शुद्धैः सहस्त्रज्जेविरावमभोजनम् = अर्थात्—हाथ घँघोलिके दीहुई खानेमें • अब्राह्मण जिसमें ब्राह्मणोंके लक्षणा नहीं तिसको पास बैठि खाने में • पोंतिसे पहिले खाइ लेने में (अर्थात् पोंति जब तक नहीं बैठे कोई एक पहिले भोजन करिलेवै या उद्योगारकी पोंति बैठिजाने पर भी पारस होते समय भोजनकी आज्ञा प्रकटहोनेसे पहिले कोई खाने लगे तिस दोय) में • और दूयित पोंति जो इसी उक्त प्रकारसे दूयित होचुकी या जिस पोंतिमें कोई अपांक्त पुरुष घुसि बैठा या किसीने पत्तल उठाइ डारो इत्यादि बोधवाली पंक्तिमें खाने पर • खाते समय हाथ पैर आदि धोने लगे या तेल मलिकर खाने बैठे या खाते समय सूत सूद उपविपरै ऐसा भोजन करनेमें • मरेका सूतकी अन्न या शूद्रका अन्न खाइलेने में शूद्र के साथ सोने में • इन सब दीयों पर तीन तीन दिनका निराहार उपवास प्रायश्चित्त है ॥ • ॥ अदल बदलसे पर्याय लक्षणाके साथ दिया अन्न भी दूयित कहाता है तिसका प्रायश्चित्त आगे देखौ = तदाह दृढयाज्ञवल्क्यः = ब्राह्मणान्नंददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणोदस्व इयमेतदभोज्यं यथा भुक्त्वा तूपवसेदहः = अर्थात्—ब्राह्मणाका अन्न यदि शूद्रके हाथ से दिया जाय या शूद्र का अन्न यदि ब्राह्मणोंके हाथ से दियाजाय तौ यह दोनों अन्नभोज्यहोतेहैं तिनको यदि खाय सो एक दिन उपवास करे ॥ • ॥ स्वकीयान्नमपिशूद्रदहस्तेनाग्राह्यं—

शूद्रके हाथसे अपना भी अन्न खाने पीने पर प्रायश्चित्त है—तदाह मनुः—शूद्रहस्ते नयोभंक्तोपानीयंवापि वेत्कचित् अहोरात्रोयितोभूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति—अर्थात्—शूद्रके हाथसे जो कोई द्विजाती खाता है या कहीं कोई जलपीवै सो एकदिन राति का उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है—और भी—अन्नको मुह से फूंकना आदि कई बातोंका नियम है—तदप्याह मनुः—आसनाह्मपादोवायधार्धं प्राच्यतोपिवा मुखेन धमिंत भुक्त्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्—अर्थात्—कूँचे आसन पर पैर धरे या फर्श पर बैठा हुआ अथवा आधी घोती ओढ़े हुये खाय यद्वा गरम अन्न को मुह से फूँकि फूँकि भोजन करै तिसको कृच्छ्रसांतपन करना चाहिये ॥

अथाचनवपुराणादिश्राद्धान्भुग्राह्मणानांप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः सद्विप्रसूतितमः (७२)



इस परिच्छेदमें सब तरहके नवे पुराने बीचके आदोंका नीता आदि कुछ अन्न खानेवाले ब्राह्मणोंके प्रायश्चित्त भेद कहे जायँगे—तिनके प्रसंगसे वृद्धियाह आदि उत्सवोंके आह और कुमोत वालों के आह और अपांक्तोंके आह और संस्कारों के अंगभूत आह और कच्चे अन्नके आह आह खाने वालोंके जुड़े जुड़े प्रायश्चित्त कहे जायँगे—और जो ब्रह्मचारी होके आहखाय या परस्पर बस्ती के व्योहार में अनिष्ट भोजन कोई भी द्विजाती करै तिनके भी प्रायश्चित्त है ॥

(त्रिरात्रादिश्राद्धान्भोजनेप्रायश्चित्तं)

अवाह भारद्वाजः—भुंक्तो चेत्पार्वणाश्राद्धे प्राणायामान्यद्वाचरेत् उपवासस्त्रिमासा दिवत्सरांतं प्रकीर्तितः प्राणायामत्रयं वृद्धावहोरात्रं सपिंडके अमरूपे स्मृतं तं कृतं त्रितपारणा केतया द्विगुणां क्षत्रियस्यैतत् त्रिगुणं वैश्यभोजने साक्षाच्चतुर्गुणाद्येतस्मृतं शूद्रस्य भोजने (अतिथौ द्वारि तित्यतिनभोक्तव्यं) अतिथौ तित्यति द्वारि ह्यपः प्राशंति ये द्विजाः सुधिरंत ज्वेद्वारिभुक्त्वा चान्द्रायणाचरेत्—द्वारीतो प्याह—एकादशाहेतुस्य हं भुक्त्वा संचयने तया उपोष्या विधवरक्षात्वा कूपमांडे जुहुयाद्वृतसंविप्राप्याह—प्राजापत्यं नवश्राद्धे या दोनंचाद्यमासिके वैप्रसिक्ते तर्धन्तु पंचगव्यद्विमासिकं (इति चाप्यद्विद्ययनिति मितासरा)—अनापदितुहारीत आह—चान्द्रायणानवश्राद्धे प्राजापत्यं त्रिमासिके एकाहस्तु पु

राशेषप्राजापत्यं विधीयते (प्राजापत्यन्तुमिच्छते इत्येतदाद्यमासिकविययद्रव्यं इ
 तितु मिताक्षरा=द्वितीयादियत् यद्विंशन्मतोक्तं यथा=प्राजापत्यं नवग्रहादेपादोनञ्चा
 द्यमासिके वैपक्षिकेतदर्थन्तुपादोद्वैमासिकेतथा पादोनकच्छन्निर्दिष्टं यद्मासे च तथा
 त्विके विरांचान्यमासे यत्प्रत्यहं चेदहश्चतुस्रम्=अर्थात्-यदि कोई ब्राह्मण किसी ब्रा-
 ह्मणाके पार्वरायाहमें कि जो कनागत आदि पर्वोंमें होता है भोजन करे सो छे वार
 प्राणायामही करिके शुद्ध होजाता क्योंकि पार्वरायाह बहुत अनियत नहीं है। परन्तु
 जिस मौतकी दो मास बातिजाने बाद तीसरे महीनेका श्राद्ध आदि लेकर बर्षी प-
 र्यन्त चाहें तिस महीनेका मासिक याह होय तिसका अन्न खानेवाले को सक उ-
 पवास करना चाहिये। जिसने पुत्रका जन्म आदि किसी वृद्धियाहमें जो नान्दीमुख
 प्रसिद्ध है खायाहो तिसको तीनि प्राणायाम करने चाहिये क्योंकि यह पार्वरासे
 भी कुछ बेयहै। जिसने सपिण्डीयाहमें खायाहो तिसको एकदिन रातिभर उपवास
 करना चाहिये। जिसने असुरूप याहमें खाया हो जिसका कोई प्रसिद्ध नामरूप न हो
 तिसको नक्त भोजन व्रत करना चाहिये और जिसने महाव्रतोंके पाररा संबंधी याहमें
 खाया हो तिसकोभी यही नक्तव्रत अर्थात् राति में भोजन करना चाहिये (यह सब
 केवलब्राह्मण का अन्न खानेपर कहागया किन्तु सबीका याद्वान्न खाकर इनसे दूने
 प्रायश्चित्त और वैश्य का श्राद्वान्न खाने में तिगुना और सासाह शूद्र का श्राद्वान्न
 खाने में चौणुना करवाया जाय (अतिथौतिथितिनभोक्तव्यं) अतिथि अभ्यागत
 जिनके द्वार पर उपस्थित होय तिसको दिये बिना पानी तक पीलेने वाले द्विजा-
 ती लोग जैसा रुबिर पीते हैं तैसा दीय लगताहै तिससे अतिथि को दिये बिनाकुछ
 अन्न खाइ लेवै सो चांद्रायण व्रत करै यह भारद्वाज ने कहा= हारीत भी कहिते हैं
 कि=एकादशा का श्राद्वान्न खाइके तीन दिन उपवास करै तथा अस्थिसंचयन (सु-
 दांके हाड़ चुगाने) के दिनका श्राद्वान्न खाइ सोभी तीन दिन उपवास करनेके पीछे
 विवि से स्नान करिके कूर्मांड नाम जाति के बेदोक्त मंत्रों से घी का होम करै=
 विष्णु भी कहिते हैं कि= नवग्रहा नवीन जो एकादशा तक होते हैं तिनमें यदि
 कोई विप्र भोजन करै सो प्राजापत्य करै परन्तु जो महीना पूरा होने पर पहिले
 महीने का श्राद्वान्न खाय सो चौथाई कम करिके तीनि पाद प्राजापत्य करै। जो
 तीनि पाख पूरे होने पर तिपखी याद का अन्न खाय सो आधा प्राजापत्य करै।
 जो द्विगाही याह का अन्न खाय सो पंचगव्य ही पीकर एक दिन में शुद्ध होता है
 (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह सब छोटे प्रायश्चित्त उसके लिये समझना

जिसने आपत्काल के प्रभाव से ऐसे अन्नखाये हों=किन्तु अच्छे भले दिनोंमें जिसने खाया हो तिसके लिये हारीत ने जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि=नव या द्वाहोंमें खाकर चान्द्रायण करे और मियक याद में खाकर बारह दिन का प्राजापत्य करे और पुराने याद जिनको भरे बहुत वर्षों बीति गई तिनमें खाकरसकही दिन का प्राजापत्य होता है (मियक याद उसको जानना जो पहिले मास का याद किया जाय (क्योंकि अति नयाभी नहींरहा अतिपुराना भी नहीं ठहिरा इसीसे दोनों लसरा उसी में समिले हुये ठहिरें) यह मितासराकार ने कहा और यह भी कहा कि= दूसरे महीनाको आदि लेकर जो मासिक याद किये जाय तिनका अन्नखाने मध्ये यद्विंशन्मत का कहा प्रायश्चित्त आगे देखी कि=नवीन याद जो एकदशा तक होते हैं तिसका अन्न खाइ सो प्राजापत्य करे और पहिला महीना पूरा होनेका या दान्न खाय सो पौन प्राजापत्य करे और विपक्षी याद का अन्न खाय सो आवा प्राजापत्य करे और हैमासिक याद का अन्न खाइ सो चौथाई प्राजापत्य करे और कुमाही याद या वर्षायाद का अन्न खाइ लेने में चौथाई कम तीन पाद कछ्छ करना कहा है और इनसे उपरालू जो महीने वर्षके भीतर बचे तिसका याद किया जाय तिसका अन्न खाने वाले को सामान्य तीन दिनका प्रायश्चित्त चाहिये और जहाँ कहीं साल भरतक रोज रोज याद किया जाय या नित्य याद की विधि से रोज याद किया जाय तिसका अन्न खाने वाला एक दिन उपवास करिके शुद्ध होता है (यह प्रायश्चित्त सब उसके लिये कहेगये जिसने ब्राह्मण का याद्वान्न खायाही ॥०॥ सभी आदि वर्णों का याद्वान्न खालेने मध्ये उसी यद्विंशन्मत ग्रन्थ में जुदे प्रायश्चित्त हैं सोभी यहाँ देखी=यथाह=चान्द्रायणान्वयाद्दे पराकोमासिके स्मृतः वैषाक्षिकेसांतपनकृच्छ्रोमासद्वयस्मृतः सविश्यस्यनवयाद्दे व्रतमेतदुदाहृतस वैश्य-स्थार्धाधिकंप्रोक्तसविधातुमनीयिभिः शुद्रस्यतुनवयाद्दे चरेषांद्रायणादयस सार्धचांद्रायणांमासेविपक्षित्वेद्वंत्रतस मासद्वयेपराकःस्था दूर्ध्वसांतपनस्मृतस=अर्थात्=नवे यादों का अन्नखाकर चांद्रायण करे=प्रथम मासका यादखाकर पराक व्रतकरे यादों का अन्नखाकर सांतपन करे=दुमाही याद खाकर कछ्छ करे=यह सभी के नव याद खानेमें व्रतका नियम कहा गया=जिसने वैश्य का नया याद खाया हो तिसको सभी से डोढा चाहिये यह सनीयी लोगों का कथन है=और शुद्र का नया याद जिसने खाया हो सो पूरे दो चांद्रायण करे=जिसने वैश्य का मासिक याद खाया हो सो डेढ़ चांद्रायण करे=जिसने वैश्य की तिपखी खाइ हो सो एकचां-

द्रायरा करै- जिसने वैश्य का दुमाही याद खाया हो सो पराक व्रत करै इसके
 उपरान्त के यादों में सांतपन करना कहा है ॥०॥ अपमृत्युवच्छादे तु-शंखकु
 जी का वचन यद्यपि अविशिष्ट है कि-चांद्रायरांतवयादपराको मासिके स्मृतः पक्ष
 द्येऽतिष्ठच्छः स्यादयद्मासे कच्छस्यतु । आदिके पादकच्छ स्यादेकाहः पुनरादिके
 अत ऊर्ध्वन दीयः स्याच्छंखस्य वचने यथेति (तदपि सर्पादिद्वितयादिस्य विषयार्थमिति मित
 सारा-येस्तेन पतितस्त्रीवाद्यत्याद्यर्थात्ते यवियं वेति च मितसारा-अर्थात्- नव याद
 का अन्न खाइलेने में चांद्रायरा और मासिक याद खाने में पराक और तिपखी
 याद खाने में अतिष्ठच्छ और छमाही याद खाने में कच्छही करना कहा है और
 वर्षी याद का अन्न खाने में चौथाई कच्छ किया जाय और पुनरादिक अर्थात्
 दूसरे वर्षदे भीतर जो याद होय तिसका अन्न खाने में एकही दिन उपवास किया
 जाय इसके उपरांत तीसरी वर्ष यादिके यादों में कुछ दोष नहीं जैसा शंखजी का
 यही वचन पुकारिके कहिता है (मितसाराकार कहिते हैं कि यह शंख जी का
 कहा प्रायश्चित्त उन यादों पर समझना जो सांप काटे आदि क्रमोंत मरेहुयों के
 याद किये जाय अथवा चोर पतित नपुंसक आदि अपांक्तियोंके याद पर समझना-
 क्योंकि यह प्रायश्चित्त बड़ा है) और भी अगिले वचनों में देखना इन्हीं अपांक्तियों
 का याद खाने मध्ये बड़े प्रायश्चित्त कहैराये हैं-यथा-चांडालादुबकात्सर्पाद्व्राह्म-
 णाद्वैद्यतादीप दीयभ्यश्च पशुभ्यश्च मरगांधापकर्मणाश्च पतनानाशकैश्चैव विद्योद्वं
 नकैस्तथा मुक्त्वैद्योद्वं याद कुर्यादिन्द्रव्रतं द्विजः॥ अपांक्त यथा भोजने-भर-
 द्वाजो रयाह-अपांक्त याचमुद्दिश्य यादमेकादशेऽहनि ब्राह्मणास्तपमुक्त्वा न शिशु
 चांद्रायरांचरेदिति आमयादितया मुक्तातस्तच्छ्रेयाशुभ्यति संकल्पितेन वा मुक्त्वा चि
 राब्रह्मपरां भवेदिति भरद्वाजेन यरु प्रायश्चित्ताभिधानात्-अर्थात्-इतनी क्रमोंत कहा-
 ती हैं कि जो चांडाल के हाथ से मरै या जलमें डूबै या सांप काटानरै या ब्राह्मण
 के पाप से मरै या दिजली गिरिके मरै या दाहवालों से फाड़ा जाय या पशुओं से
 मरै या ऊँचे से गिरिके मरै या भूखे घन्ना देकर मरै या जहर खाके मरै या फाँसी
 से मरै इतनी सीतें पापियों की अपने पाप कर्मों से होती हैं इनके योडशी याद में
 जो कोई ब्राह्मण भोजन करै सो चांद्रायरा व्रत करै तब शुद्ध होय-भरद्वाज मुनि भी
 कहिते हैं कि-अपांक्त य जो मराहो जिसके नास का उद्देश करिके जो कुछ अन्न
 ग्यारहवें दिवस दिया जाय वही उसका याद कहा जाता है उस अन्न को यदि
 कोई ब्राह्मण खाय तिसकी शिशु चांद्रायरा करना चाहिये, इसकी विधि नीचे

लिखी देखौं • तथा आमयाह जो कचा अन्न देकर निर्वाह किया जाता है तिसका अन्न खाइ सो तप्तकच्छू करि शुद्ध होता है • तथा सकल्प किये अन्न में भोजन करै सो तीन दिन सापराक व्रत करै जिसमें सब काम धन्य छोड़ि के सकान्त में बैठिके उपवास करना होता है • इस तरह से भरद्वाज ने भी अपांक्ति यों का याज्ञान खाने पर बड़े प्रायश्चित्त कहे= शिशु चांद्रायरा का लक्षणा (चतुरःप्रातरशीयात् पिण्डा नृविप्रसमाहितः चतुरोऽस्तमितेसूर्ये शिशुचांद्रायरां स्मृतं) अर्थात् इस रीति से व्रत करै कि चारग्रास प्रातःकाल सूर्योदय की बेरापर खाय और चार कौर अस्त होते समय खाके राति वितारै तो यही शिशु चांद्रायरा कहाता है पर और बातों से सावधान रहै ॥ आमयादादेशस्तु ॥ आमयाहके लक्षणा (आपद्यनग्नोतीर्थे च चंद्र सूर्यग्रहे तथा आमयाह द्विजैः कार्यं शूद्रेणातुसदैव हि अपत्नीकः प्रवासी च भार्यायस्य रजस्वला आमयाह द्विजैः कार्यं शूद्रेणातुसदैव हि=अर्थात्=द्विजाति योंको कचे अन्न का याह यातो आपत्काल में करना चाहिये कि जब रसोई बनाना आदि अग्नि का प्रबंध न होसकै यातीर्थ पर या चंद्रसूर्यके ग्रहण में या जिसके पत्नीके न होनेसे प्रबन्ध न होसकै या जो कोई विदेश में ठौर ठिकाने विगारैठाहो या जिसकी भार्या रजस्वला होगई हो तोभी आमयाह करै परन्तु शूद्रको सब सर्वदा कचे अन्न का याह देने की आज्ञा है वह पाक विधि न करै • ये बातें यहां केवल प्रलंसे दर्शाई गईं= अब ऊपरकी प्रकृत व्यवस्थाका श्रेय फिर लिखते हैं कि ब्रह्मचारी होकर जो यादों में भोजन करै तिसके जुदे प्रायश्चित्त आगे देखौं ॥ आह भूभ्रमचारि प्रायश्चित्तं= वृहद्यम आह= मासिकादियुयोऽशीयादसमाप्त व्रतो द्विजः विराजमुपवासी वै प्रायश्चित्तविधायते प्राणायामवयं कृत्वा घृत प्रापर्यावशुद्धीति (इदमज्ञानवियय सिति नितिक्षरा • कामतस्तु सखादाग्ने= मधुमांसंचयोऽशीयात् आह= सूतकमेव वा प्राजापत्यचरेः कच्छू व्रतश्रेयस सापयेत्= अर्थात्= ब्रह्मचारियोंके लिये बड़े यमने कहा है कि जिस द्विजातीने अपना मापयेत्= अर्थात्= पूरा किया उसके भीतर यदि मासिक याह आदि का ब्रह्म चर्य आदि व्रत नहीं पूरा किया उसके भीतर यदि मासिक याह आदि का नौताखाय सो तीन दिन उपवास किये पीछे तीन प्राणायाम करिके घी चाहे तब शुद्ध होय (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसको चाहिये जिसने अज्ञानतासे खायाहो क्योंकि • इच्छा सहित खानेवाले का प्रायश्चित्त आगे वेही वृहद्यम कहिते हैं कि= जो कोई ब्रह्मचारी मद्यमांसखाय या यादमें खाय या सूतक में खाय सो प्राजापत्य रूपी कच्छूव्रत करै तिस पीछे अपना व्रत पूरा करै ॥ आम याह भोजनेतु सर्वशार्दस= कचा सिद्धान्त देनेके यादवाला अन्न चाहै वृहत्स्यो वा-

हमरा या ब्रह्मचारी होके खाय तिन सबहीको अपने पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंका आवा प्रायश्चित्त करना चाहिये-इसका प्रमाण यद्विशिष्टान्तका वचन आगे देखो (आम याद्वैतद्वेन्तु प्राजापत्यंचसर्वदा) कच्चे अन्नके याद्व में पक्के अन्न वाले प्रायश्चित्त चाहें प्राजापत्य वा औरही जो कुछहों सो आवेआवे कर्तव्यहै यहसर्वत्र सर्वदा नियम समझे रहिना ॥ ० ॥ इन सबसे उपरालू जो उग्रना का वचन है कि=दशकृत्त्वःपिबे चापोगायत्र्यायाद्वभृगिजः ततःसन्ध्यामुपासीतशुद्धेतुतदनन्तरम् (तदनुक्तप्रायश्चित्त विधयमिति मिताक्षरा=अर्थात्-याद्व भोगने वाला ब्राह्मण दश बार गायत्री पढ़ि कर जल पीवें फिर उससे अगिली सन्ध्याकी उपासना नित्यविविके अनुसार करै तिससे शुद्ध होजायगा (सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने उन याद्वोंका भोजन कियाहो जिनके नाम से कुछ प्रायश्चित्त कहीं नहीं लिखा यह मिताक्षराने कहा ॥०॥ संस्कारांगभूतश्राद्धान्नभोजनेतुव्यासः=अर्थात् संस्कारों के अंगभूत जो बहुधा जन्मसे लेकर जातकर्म आदि संस्कारोंके साथ भी याद्वकिये जाते हैं तिनका अन्न खाने मध्ये व्यासजीने प्रायश्चित्त जुदा कहा है=यथा=निश्चये चूडाहोमेतुप्राङ्नामकरणात्तथाचरेत्सांतपनंभुक्त्वाजातकर्मसिद्ध्यर्थं अन्योऽन्येषु तृभुक्त्वान्नसंस्कारेषुद्विजोत्तमः नियोगादुपवासैतुशुद्धयेतिन्यभोजने=अर्थात्-चूडा कर्म(चोरीरक्षणात्) होचूकनेके समयपर जो याद्व पितरोंकी दत्तिके अर्थ कियाजाय या कोई बड़ा होम पूरा होने के समय पर किया जाय या नामकरणा (दसुति) से पहिले किया जाय या जातकर्म जन्म होनेके समयका जो कर्म होताहै तिसमें याद्व कियाजाय इनमें जो कोई ब्राह्मण भोजनकरै वह सांतपन प्रायश्चित्त आचरै (परस्परभोजनव्यवहारस्थलेतु) दूसरी यह व्यवस्था है कि जिसने ऐसे किसी रिश्तेदार के घर निध भोजन छठी दसुति या श्रुतसूतक आदि में किया हो जहाँ बदले में खाने खवाने का व्यवहार होय तो यह ब्राह्मण किसी और को नियोगी (मुखतार) बनाकर उसके द्वारा एक व्रत कराने से भी शुद्धहोताहै चाहें अपने आप करै तो भी कुछ नियम नहींहैं=मुखतार बनाने मध्ये-शास्त्रांतर में यह नियम है=भार्याभर्तृव्रतंइत्यतिभार्यायाश्चपतिस्तथा असाभ्यर्थ्यइत्योस्ताभ्यांव्रतभंगोनजायते-तथा-पुंश्वाविनयोपेतंभगिनींभातरंतथा स्यामभावस्वान्यंत्राह्मणाविनियोजयेत्=भर्ताके व्रतको उसकी भार्याकरै या भार्याके व्रतको उसका भर्ताकरै तो इस तरहसे दोनों को किसी समय सामर्थ्य न होनेमें व्रतका भंग नहीं होताहै-भार्या के न होने में-अच्छे चाल चलन संयुक्त किसी पुत्रको अपने व्रतपर मुक्तार करै या वहिनको

या भाई को इनको न होनेमें औरही किसी ब्राह्मण को नियुक्त करै ॥ सीमंतकर्मदिस्कारेपुच ॥०॥ सीमतोचयन कर्म जो गर्भाधानसे छूटे आठवे महीना एक पूजा विधि प्रोसन्न है तथा ऐसे और जो कुछ संस्कार होते हैं तिनका अन्न खाने मध्ये जुदा प्रायश्चित्त है—तदाह धौम्यः—ब्रह्मोदनचसोमेच सीमन्तोन्नयनेतथा जात आह्वेनवयाहोद्विजप्रचांद्रायणाचरेत् (अबब्रह्मोदनाख्यकर्मयज्ञांगभूतसोमसाहचर्यादितिसितासरा=अर्थात्—ब्रह्मोदन इस नामका एक कर्म विशेष यज्ञोंका कोई एक अंग होताहै तिसमें यदि कोई ब्राह्मण खाय तथा सोमनामसे भी यज्ञ विशेष कोई वेदोक्त कर्म होताहै तिसमें खाय या सीमन्तोन्नयन में खाय• जातयाद जो पुत्रजन्म होने वादि किये जायें तिनमे खाय या नवयाद जो मरने पर एकादशातक किये जायें तिनमे खाय तो यह ब्राह्मण चान्द्रायणा करै तब शुद्ध होय ॥ अब नीचे उन अभक्ष्योंका वर्णन होगा जो अन्न सर्वथा निर्विकार है कोई तरह दोष यद्यपि नहीं है परन्तु केवल परिग्रहका दोष मानाजाता है अर्थात् विरले मनुष्यों का स्वामित्य कब्जा उनपर होनेसेही दोष लगता है तिससे अभक्ष्य (न खानेयोग्य) कहेजातेह ॥

अथपरिग्रहदोषमयान्नस्याभक्ष्यस्यभक्षणेप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदःचिसंप्रतितमः (७३)



इस परिच्छेदमें केवल उन्हींके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जिन मनुष्योंनेपरिग्रह दोषमय भोजन किया हो (इसका द्योरा इसी चक्रके ऊपर लिख चुके तहाँ देखो) परन्तु उसके भेद अनेक हैं सो नीचे पाठ बांचने से प्रतीत होगे कि इतने मनुष्योंका दिया किया अन्न अभोज्य होता है• तिससे अनन्तर जबईस्ती कोई स्नेच्छ आदि कुछ खचावै या हिंसाकर्म करावै तिसके भी प्रायश्चित्त (परिग्रहा भोज्य में गिनती) है• फिर भूतकोंके परिग्रहका अन्न खानेवालोंके• फिर निपट निपटेआदि का अन्नखानेवालोंके प्रायश्चित्तहै• ये सबजुदेभेद भी उसीपरिग्रहमयदोषमेंगिनतीहै ॥

(परिग्रहाभोज्यभोजनप्रायश्चित्तं)

अर्थात् जो भोजन अपने स्वरूपसे नियिद्ध नहींहै पर किसी विरले पुस्तकका स्वा-

मित्व उसपर होनेसेही खानेका नियेध होय सो (परिग्रहा शुचि) कहाता है=जिन पुरुषोंके स्वामित्व वाला अन्न खानेका नियेध है तिनके नाम लक्षणा योगीश्वर भी आचार मर्यादामें बर्णन करचुके हैं तहां १५६ एकसौ उनसठि मूलश्लोक उत्तरार्ध से लेकर १६४ एकसौ चौंसठिके अन्ततक साठे पांच प्रलोकों की व्यवस्था देखी= और=मनुने उनसे कुछ अधिक नाम लक्षणा दर्शायेहैं कि जिनका अन्नखाना मनेहै= यथाह मनुः=नायोचियततेयज्ञे ग्रामयाजिहुतेतथा स्त्रियाःकृत्वावेनचहुतेभुंजीतब्राह्मणः क्वचित् सत्क्रुद्धातुराणांतुभंजीतकदाचन गणास्त्रांशिकाकान्च विदुयाचजुगुप्सितम् स्तेनगायनयोषचाक्षन्तस्पोषार्धं यिकस्यच नादीक्षितकदर्यस्यबद्धस्यनिगडस्यच अभिशस्तस्ययंडस्यपुंश्चल्यादांभिकस्यचर्चिकत्सकस्यमृगयोःक्रूरस्योचिह्नयभोजिनः उग्रान्तंसूतिकांनंच पर्यायाक्षमनिर्दशम् अनर्चितंतृयामांसमवीरायाश्चयोयितः द्विव दनंकदर्यान्नेपतितान्नमवसृतम् पिशुनामृतिनोश्चैवक्रतुर्विक्रयकस्यच शैलूयतन्नुवा यान्तंकृतस्यनान्नमेवच कर्मारस्यनयादस्यरंगावतरणस्यच सुवर्साकतुर्वेनस्य शस्त्र विक्रयिणास्तथा श्ववतांशौडिकानांचचैलनिर्गोजकस्यच रजकस्यनृशंसस्ययस्यचो पपतिर्धुंहे मृष्यन्तिपेक्षोपपतिंस्त्रीजितानांचसर्वशः अनिर्दशंचप्रेतान्नमनुयिकरमेव चेति (अन्नचपदार्थिअभक्ष्यकांडे आक्षकांडेचव्याख्याता इतिमिताक्षरा=अर्थात्— यहां अशोषिय उसकी समझना जो पुरुष विख्यात न होय तिसकी करो ड्यौनार आदि यज्ञका अन्न भोजन करना यिवेकी ब्राह्मण को नियेध है. ग्राम के पुरोहित पादाका किया होम यज्ञ तिसका अन्न खानेका नियेध है. स्त्री ने या निपट नपुंसक ने होम यज्ञ किया हो तिसमें भी खानेका नियेध है. एवं सत्तवार नशेवाज कोची रोगी इनका भी कभी न खाय. गणान्न जो सदधारी आदि भण्डारा करतेहैं तिसका अन्न भी. नगरिका वेप्रया खानगी आदि स्त्रियों का अन्न. और भी जो कोई अन्न जानी पुरुषोंका निन्दा किया ठहिरै सोभी. चोर गायन की वृत्ति करने वालों का अन्न. लकाड़ी काटने आदिकी जीविका करनेवाले बड़ेयों का अन्न. अनुचित रीति से विआज खाताहो तिसका अन्न. अदीक्षित जिसको यज्ञोपवीत. आदि गुरु दीक्षा न मिलीहो तिसका अन्न. कदर्य जिसने खोटाधन संग्रह किया तिसका अन्न. कैदी और हवालातीका अन्न. अभिशस्त जिसको प्राय या कोई पाप लगा हो तिसका अन्न. खंड नपुंसक जो अतिकामी होकर नपुंसकहोगयाहो तिसका अन्न. पुंश्चली स्त्री और दम्भी पुरुषका अन्न. चिकित्सक जो चौरफारको चिकित्सा और औषधी बनानेमें जीवहिंसा करताहो तिसका अन्न. चिड़ीमार आदि शिकारी लोगोंका

अन्न० क्रूरप्रकृति वालेका अन्न० जूठ खानेवालों का अन्न० उग्र एक जाति होती है जो क्षयके बीजसे गूद्रकी कन्यामें उत्पन्न हुई श्री दोनोंके लक्षणा मिलि के क्रूरही आचरणा उसके होते हैं तिसका अन्न० मूर्तिका सौरिका अन्न जो दशादिन के भीतर हो० पर्याय अन्न वही जो शुद्रका अन्न ब्राह्मणाके हाथसे या ब्राह्मणाका अन्न शुद्र के हाथसे परोसा जाय सोभी० अर्थात् अन्न जो इन्द्रअग्नि आदि देवताओं के निमित्त नहीं अर्पण किया गया० नृथा मांस जो यज्ञविधिसे उपराल हुआ होय० अवीरा नारीका अन्न भी न खाना (अवीरा वही कहाती है जिसके पुत्र पति इन दोमें कोई एक भी न हो) शत्रु का अन्न० कदर्थ अतिरूपका जो धनके होते हुये भी कृतुम्ब को आराम न देता हो तिसका अन्न० पतित जो जातीधर्मसे गिराये गये तिनका अन्न० अवधुत जिस अन्नके ऊपर किसीने छींकमारी हो० पिशुन जो विराने अवधुता हुंड़ि हुंड़ि गौरों से कहिता फिर तिसका अन्न० अश्रुती जो असत्यही अभ्यास रखता हो तिसका अन्न० क्रतुविक्रयक वह पुस्त्य जो यज्ञादि कामोंसे बची हुई खानी पीनी सामग्री की चीजें बेचै तिसका अन्न भी न खाना अथवा दूसरा अर्थ यह भी है कि क्रतु नामसे अपनी कोईसी प्रतिज्ञा स्वपी संकल्पको बेचि डारै तिसका अन्नभी अभिष्य होता है (इसका दृष्टान्त जैसे इस सत्यही बोलते हैं किसी मामिले पर असत्य नहीं कहि सकते हैं ऐसे संकल्पकी सची प्रतिज्ञा जिसने बहुत कालतक पालन करी हो और कदाचित् किसी मुआमिलेपर कुछ लेनेके लोभमें आकर असत्य कहि आवै तो यह पुस्त्य क्रतुविक्रयकर्ता ठहरै क्योंकि उसके पास सत्य की प्रतिज्ञा स्वपी बड़ा उत्तम यज्ञफल सौजद और सबकी सालमथा तिसकी उसने दाम लेकर बेचि दिया इसी दृष्टान्तसे और तरहकी भी अटल प्रतिज्ञा समझि लेना कि इस शरणागत की रक्षा अवश्य भावसे करते हैं और कभी लोभ में आकर ऐसा न करें इत्यादि० शैल्य नट कहते हैं तिनका पेशा जो कोई वैवर्णिक जाति करने लगे तिसका अन्न० इसी तरह तन्तुवाय कपड़ा बननेका पेशा करनेवालोंका अन्न० कतघ्न जो किसीका किया हुआ उपकार भेटि डारै तिसका अन्न० कर्मर लुहारका पेशा करनेवालेका अन्न० नियद मल्लाह आदिका पेशा करनेवालोंका अन्न० रंगावतरण जो रंगाजी या तसवीरोंका उतारना यद्वा स्वागतमाशमि आपही वेश बदलिके तरह तरहके अवतार धरें इत्यादि पेशा करने वालोंका अन्न० मुनार और बंसफोर और शस्त्र बेचनेवालों का अन्न० कृते पालनेवालोंका अन्न० कलालोंका अन्न० चैलनिराजक घोड़ी आदि जो कपड़े धोनेका कामकरै तिनका अन्न० रजक छीपा रंररेज आदि जो रंगाई का

कामकर्त्त० तिनका अन्न० नृशंस हिंसक जो जीवहिंसा वाला कामकर्त्त० तिनका अन्न० जिसके घरमें उपपत्ति लगाईका जारयार भी रहितहो तिसका अन्न० जे कोई पुरुष अपने घर जारको आतेजाते देखि सहिलेतेहों तिनका अन्न० जो स्त्रियोंके जीते हुये उन्हींके वशमें रहितेहों अर्थात् जिस घरमें पुरुषकी वात न चलतीहो तिसका अन्न० प्रेतका अन्न जो मौतसे दशदिन भीतर काहों अतृष्टिकर अन्न जिसको देखने से मनमें श्लानि खड़ी होती हो० ये सब अन्न खाकर प्रायश्चित्त करना चाहिये सो आगे दशविंशे (मिताक्षराकार कहिते हैं कि इस व्यवस्था में जो कुछ पदार्थ कहे गये तिनकी व्याख्या पहिले भी जहां तहां अभिष्यकांडके पाठमें और आहकांडके पाठमें लिख चुकेहैं=मनुने इन सबके नाम दशानि पीठे सबका एकही प्रायश्चित्त कहिदिया सो देखी=यथा=भुक्ताऽतोऽन्यतमस्यान्नममत्यासपरांश्चइह मत्याभुज्जवा चरेत्कच्छूरेतोविरासूत्रमेवचेत्त=अर्थात्=इन सबमेंसे किसी एकही का अन्न बिना जाने खाकर तीन दिन क्षपसाक रूपी व्रतकरै जिसमें सबकान बंधे कोड़िके निराहार पैदना होताहै और जिसने जानिवृत्ति खायाहो सो पूरा कच्छत्रत आचरै या जिस ने राह सूत धीर्य धोखासे खायाहो सो भी कच्छ प्रायश्चित्त करै तब शुद्धहोय ॥०॥ धोखासे उक्तान्न खाइ लेने पर पैदनीसने भी तीनही दिनका व्रतकहा और अन्न भी कुछ औरभांतिके नियेव कियेहैं=तथाह पैदनीसि=कृतखोश्यावदन्तःपित्वाबिब दमानः स्त्रीजितःकुटीपिशुनः सोमविक्रयोवाग्निजकोग्रामयाजकोऽभिषस्तोऽवत्या मभिजातः परिवर्त्तिः परिविन्दानोदिवियुपतिः पुनर्भूषुचचौरः कांडपृष्टसेवकश्चेत्य भोड्यान्नाअपांक्त्या अयादार्हाःसयाभक्तवा दस्वावाऽविज्ञानात्स्विरावृत्तिः=अर्थात्=इसमें जो नाम कहे तिनके भी अर्थ पहिले प्रकरणोंमें जहां तहां द्योरेवार कहि चुके हैं तिससे यहां केवल उन्हींका अर्थ लिखे देतेहैं जो कोईसा विशेष नानहोय० विराड् नखवाला० श्यावदांत वाला० पित्तसे विरोध राखने वाला० स्त्रियों से हारा हुआ० कोड़ी० पिशुन चुगल खोर० सोमविक्रयी० वाग्निजक ब्राह्मण० ग्रामयाजक ब्राह्मण० अभिषस्त जिसको शाप या पाप लगाहो० वृथली में सन्तान जिसने पैदा करी० परिवर्त्ति० परिविन्दान० दिवियु का पति० पुनर्भूका पुत्र० चोर० जिसब्राह्मण के घर घनेनी उषकी भायां बनिके वैदी हो वह कांड पृष्टसेवी समझना इस वचन के प्रसारासे कि (स्वहृलंपृष्टः कृत्वायोर्वैपरकुलंव्रजेत तेनदुश्चरितेनासौकांडपृष्टइतिस्मृतः) इतने सभी पुरुषोंका अन्न खाने योग्य नहीं और ये पातितमें वैदारने योग्य नहीं और आह के योग्य नहीं इनका अन्न बिना जाने धोखासे खाकर

तीन दिन उपवास करै तत्र शुद्ध होय ॥ ० ॥ इन्हीं सबके नाम कुछ इनसे भी अधिक दर्शाये कर शंखजी ने इनका अन्न खाने वाले ब्राह्मण को चांद्रायण प्रायश्चित्त करना कहा है जो एक महीना भरमें होताहै सो अभ्यास पर समझना कि जिंमने अनेकवार इनका अन्न खाया हो वह चांद्रायण मंडो शुद्ध होगा=इसी प्रकार=गौतम ने जूठनि खवैया पंचली अभिशस्त आदि अभोज्यान्त्रों के नाम सब गिनाइकर उनका अन्न खानेवाले को पहिले वसन करिके घी चारना प्रायश्चित्त कहा है सो अति छोटा होने के हेतु से आपत्कालिक विषय समझना कि जिमने अन्नाकाल आदि आपत्तिमें उनका अन्न खायाहो सो इस छोटे प्रायश्चित्त से पवित्र हो सक्ता है ॥ जिसको जवदंस्ती से अभोज्य भक्षणा करवायागया हो तिसका प्रायश्चित्त नीचे ॥

(बलात्कारेणभोजितस्यप्रायश्चित्तं)

यस्तुबलात्कारेणभुज्यतेतस्यापस्तवेनविशेषोक्तः=यथा=बलाघानीकृतायेतु स्लेच्छचांडालदस्युभिःअशुभंकारिताः कर्मगवादिप्राणिद्विमतस उच्छिद्यमाजंनचैवतयोच्छिद्यस्यभोजनम खरोष्ट्रविडधरादाया सामियस्यचभक्षणात् तत्स्त्रीणांचतयासंगस्ताभिश्चसहभोजनम मसीयितेद्विजातानुप्राजापत्यंविगोवनस चांद्रायणात्यादिताग्नेःपराकस्त्ययवाभवेत् चांद्रायणांपराकश्चचरेत्संवत्सरोयितः संवत्सरोयितोगूढो मासाईयावकंपिबेत् सामसायितःशुद्धःकच्छपादेनशुद्धाति ऊर्ध्वसंवत्सरात्कल्पेप्रायश्चित्तंछिजोत्तमैः संवत्सरोत्त्रिभिश्चैवैतद्रायंसंनियच्छति-अर्थात्=जिस किसी को जवदंस्ती से न खाने की वस्तु कुछ खवाई जाय तिसके जुदे प्रायश्चित्त आपस्तंबने कहे हैं कि=जो कोई कहीं एकछि के जवदंस्ती से स्लेच्छ चण्डाल आदि शक्तियों ने दास बनाये और मज्जीन वा अशुभ काम इनमें करवाये या गाय बैल आदि जीवों का बध उनके हाथ से कराया हो और गदगा ऊँट घिया खाने वाला सुअर इनके मांस खयाये हो और उन चण्डाल स्लेच्छों की स्त्रियों से मद्रम इसका हुआहो या उनके माथ मिलिके भोजन करना पराहो=येसा द्विजाती तानोंवर्गों में कोई हो जो एक महीना भर तक उनमें नाय बसा फँसा रहाहो तिसको शुद्ध चारद दिन प्राजापत्य की विधि करने से होजाती है० परन्तु वह पुरुष जो आदिताग्नि अग्नि की पूजा करने वालाहो तो चांद्रायण करिके शुद्ध होगा अथवा महीना के भीतर कुछ थोड़े दिन चण्डालोंके माथ रहना पराहो तो इन अग्निमान्त्रों की शुद्ध चारद

गृहस्थधर्मवृत्तोद्योददातिपरिवर्जितः ऋयिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचःसंप्रकीर्तितः=अर्थात्-
लिखित नामा मुनि कहितेहैं कि=वाधु यिक जो अनृचित किश्तिजगानेकी उगाही
आदिप्रकारोंसे व्याजंखाता हो और अत्रत वह कि जिसकी किसी बातका नियम
सचा नहोय और असुत वह कि जिसके वेदा पोता पर पोता आदि नहोने में बारह
प्रकारके शास्त्रोक्त पुष्टों में भी कोई नहो और गूढ़वर्णोंमें कोईसी जाति हो- इनके
अन्न खाइके तीनदिन निराहार वृत्तकरै=तथा उन्हींने यहदूसरा वचन कहाहै कि=
परपाक निवृत्त=परपाकरत=अपच=इन तीनोंका अन्नखाकर ब्राह्मणकी चांद्रायणा
करना चाहिये(मिताक्षरा कार कहितेहैं कि यहइतना बड़ा प्रायश्चित्तकृष्णकवार
के भोजन पर नहीं किन्तु अनेकवार खाने का अभ्यास करनेवाले पर समझता=
अपने धरे तीनों नामके लससा भी लिखित मुनि आपही कहिते हैं कि=जो गृहस्थी
अग्नि कर्मको आरोपित करिके भी पंचयज्ञोंको न करै उसीको (परपाकनिवृत्त)
इसनामसे मुनीश्वरोंने कहाहै और जो पांचयज्ञोंको करिके भी नित्य निरन्तर प्रातः-
काल उतिके पराये अन्नेसे नौताखैंता खाकर जिन्दगी काटाहै वही(परपाकरत)
इस नामसे कहाता है और जो गृहस्थ के सब धर्मोंमें लगा हुआ तत्पर होते भी एक
दबाति कर्मसे खालीहै कि वह भिक्षा आदि किसीप्रकारसे भी दानमाद्य कुछ न क-
रताहो उसीको धर्मतत्त्वके जाननेवाले ऋयोश्वरोंने(अपच)इसनामसे जताया है ॥०॥
जोकि ब्रह्मचारी आदिका अन्नखाने पर यह प्रायश्चित्त है कि=यतिप्रचब्रह्मचारी
चपक्काजस्वामिनावुभौतयोरन्नंनभोक्तव्यं भुक्त्वाचांद्रायणांचरेदिति=अर्थात्-संन्यासी
और ब्रह्मचारी ये दोनों पक्काच के परिभोक्ता हैं परन्तु इनदोनोंका अन्न गृहस्थीकी
न खानाचाहिये कदाचित्त कोई खाद्य सो चांद्रायणा करै=और जो=पार्ष्णा याद
आदि न करनेवालोंका अन्नखानेपर भरडाजने प्रायश्चित्त कहाहै कि=पक्षेवायदि
वामासेयस्यनाशंतिदेवताः भुक्त्वादुरात्मवस्तस्यद्विजश्चांद्रायणांचरेदिति (तदुभय
मप्यभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्-हर पखवारे या हरमहीने जिसके घर दे-
वता नहीं जिमाये जातेहों ऐसे दुरात्माका अन्नखाकर ब्राह्मणकी चांद्रायणा करना
चाहिये (सो यह दोनों वचन की प्रायश्चित्त भी एकवार के भोजन पर नहीं किन्तु
अनेकवारके अभ्यासपर सबझना यह मिताक्षराकारने कहा ॥ ० ॥ पहिले सबकहे
गये नियिद्धों से उपराल जो नियिद्धाचरणावाले कुछ और हों तिनका अन्नखाने पर
यद्विंशन्मत के ग्रन्थमें प्रायश्चित्तहै सो देखी=यथा=निराचारस्यविप्रस्यनियिद्धा-
चरणास्यच अन्नं भुक्त्वाद्विजःकुर्याद्विनमेकमभोजनम्=अथात्रैवसंवत्सराभ्यासेयद्विं

शस्मतेरवोक्तं=यथा=उपपातकयुक्तस्य अन्धमेकं निरन्तरम् अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्यात् परा
 क्तुविशोधनमिति=अर्थात्=जिस ब्राह्मणमें ब्राह्मणात्त्वका आचार न होय तिसका
 अन्न और जो खोंदे आचरणसे संयुक्त होय तिसका अन्न जो कोई ब्राह्मण खाव सो
 एकदिन निराहार उपवास करै=इन्हींका अन्न जो एकसालभर निरन्तर खातार है
 तिसका प्रायश्चित्त भी यद्वांशस्मत्तहीमें कहा है कि=उपपातकसे संयुक्तका अन्न जो
 कोई ब्राह्मण एक वर्षभर निरन्तर खाव तिसको पराक नामका प्रायश्चित्त करना
 चाहिये (उपपातक अनेकधा होतेहैं परन्तु यहाँपर निराचार और नियिद्धाचरण
 इन दोहीका चर्चा है ॥ ० ॥ इतुं भक्ष्याभक्ष्यप्रायश्चित्तकांडगत विशेषोदितव्रतक
 दंबकं द्विजारयश्चैव सविद्यादीनां तु पादपादहान्याभवतीति मित्तासरा=विप्रेतसकल
 देयपादोत्सविधेस्मृतम् वैश्येऽर्द्धपादसकस्तु शूद्रजातियुगस्यते इति विष्णुस्मरणात्=
 अर्थात्=सितासराकार कहिते हैं कि यह भक्ष्याभक्ष्य वाले प्रायश्चित्तों के कांड में
 आकर जुदा एक व्रतोंका समूह दर्शाया गया सो ब्राह्मणकोही प्रयोजनपर आरुढ़
 है तथापि जो कदाचित् इन्हीं बातोंसे सजीका प्रयोजन आनिपरै तो उसको चौथाई
 कमकरिके यही प्रायश्चित्त पौने पौने बतायेजायँ एवं वैश्यको आधे आधे शूद्रको
 एक एक पाद बतायेजायँ इसका प्रमाण अग्रेको विष्णुका वचन है कि=ब्राह्मण
 में पूरा प्रायश्चित्त लगावै और सजीमें पौन और वैश्यमें आधा और शूद्रजातियोंमें
 एक पाद ठीक है परन्तु प्रकरणा के बीचमें जहाँ कहीं बिरली व्यवस्था तीनों वा
 चारो वर्गोंकी भिन्न भिन्न कहिचुकेहों तिसमें यह कम करनेका नियम नहीं लगाया
 जासक्ता है यह याद राखना ॥

(इत्यभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तप्रकरणं)

इस प्रकारमें ६६ अनुवृत्तिपरिच्छेदके प्रारम्भ से लेकर ७३ तिहत्तर के अंत
 तक पाँच परिच्छेद हैं पाँचों में सब तरहके अभक्ष्योंकी व्यवस्था कही गई है तिसमें
 अभक्ष्योंका प्रकरण इसका नाम ठहिरा ॥

अब नीचे ७४ के परिच्छेदमें दो किस्मके पापोंका जुदा जुदा प्रायश्चित्त लिखा
 जायगा- तहाँ यद्यपि जातिभ्रंशकर आदि नामोंकी किस्म एक जुदे है उसका परि-
 च्छेद भी जुदा होना चाहिये था परच उसका पाद अतिशय थोड़ा है उनके लिये
 जुदा घर नहीं बनाया जासक्ता-तिसमें प्रकीर्ण किस्मके परिच्छेद में उनको भी वि-
 राने घरमें जगह देनी परैगी ॥

दिन पराक व्रत की विधि करने से होजायगी० परन्तु जो महीनासे अधिक एकवर्ष तक चण्डालोंकेवशमें रहाहो चाहें अग्निमान् याअनग्निमान्कोईहो चांद्रायणऔर पराकभी दोनों प्रायश्चित्त करै तब शुद्धहोय यहसब द्विजातियोंकी व्यवस्था कही० कदाचिद कोई शूद्रही एक वर्ष तक ऐसा फँसा रहा हो तिसको एक पखवाराभर यावक पीके व्रत करने चाहिये (गोमूत्र में रँधे जी का दलिया यावक होता है० परन्तु जो शूद्र भी एकही महीना तक उनमें फँसा रहाहो सो छच्छ व्रत की चौथाई केवल तीन दिन यावक पीकर या छच्छ ही की रीति से व्रत करिके शुद्ध होजाय गा० परन्तु जहां कोई द्विजातीयाशूद्र एकवर्षसे जितना अधिक दिनोंतक चण्डालों में घिरा फँसा रहाहो उतनाही प्रायश्चित्त भी अधिक बढ़ाकर हिसाब से करवाना चाहिये सोभी यह कल्पना सिर्फ तीन वर्ष की भीतर में प्रायश्चित्त बढ़ाने की हो-सक्ती है किन्तु पूरे तीन वर्ष चण्डालों के साथ रहिते वीति जाने में यह पुत्तयभी उन्हीं के समान होजाताहै फिर प्रायश्चित्त नहीं लगता ॥ अब नीचे यह व्यवस्था लिखी जायगी कि जबकोई किसी सत्कर्मस्वाय तिसपर व्याप्रायश्चित्त चाहिये ॥

सत्रियाशौचेतथाकृच्छ्रोविवीयते वैश्याशौचेतथाभुक्ता महासांतपनचरेत् शूद्रपयैव
तथाभुक्ता द्विजश्चांद्रायणांचरेदिति—अर्थात्—ब्राह्मण किसी ब्राह्मण के सूतकों में
भोजन करे तिसके सांतपन करना चाहिये—सषीके सूतकों में भोजन करे सो कृच्छ्रव्रत
आचरे—वैश्य के सूतकों में भोजन करे सो महा सांतपन करे—शूद्र के सूतकों में कोई
द्विज भोजन करे सो चांद्रायणा करे तब शुद्ध होय ॥०॥ इनके सिवाय जिसने इच्छा
सहित बारम्बार सूतकों में खानेका अभ्यास किया हो तिसके लिये वह प्रायश्चित्त
है सो आगे देखो—तदाह शंखः—शूद्रस्यसूतकोभुक्त्वा यद्मासव्रतमाचरेत् वैश्यस्य
तुतयाभुक्त्वात्रिमासान्व्रतमाचरेत् क्षत्रियस्यतथाभुक्त्वाद्द्वौमासौव्रतमाचरेत् ब्राह्मणा
स्यतथा१२शौचेभुक्त्वामासव्रतंचरेत् (इदमभ्यासविययमितिमितासरा—अर्थात्—
शंख मुनि कहते हैं कि शूद्र के सूतकों में खाइके छमाही भर व्रत आचरे—वैश्य के
सूतकों में खाइके तीन महोने व्रतकरे—सषीके सूतकों में खाइके दो मासभर व्रत करे—
ब्राह्मण के सूतकों में खाइके एकमहीना भर व्रतकरे ॥ ० ॥ ऊपर चागल के वचनसे
आदि लेकर इसीपाठमें सूतकी आज्ञा खानेपर जो कुछ प्रायश्चित्त लिखेगये तिनका
प्रारंभ सूतक वीतिजानेके दूसरेदिनसे करनाहोताहै क्योंकि जितनेसूतको बिन बाकी
हैं उतने दिन खानेवालाभी सूतकी रक्षिता है उसकोभीज्ञानसाधकी आशौच विधि
करनी होती है—यह नियम देखो सब से पहिले परिच्छेदमें चौदहवीं अधिकोक्तिके
अन्त में गौतम का वचन है—फिर सबहमें १७ सूत श्लोक वाली अधिकोक्ति के
अन्त में देखो जहां सूतकान्न भोजन के नियम आदि नियम जो उसी अधिकोक्ति
के पूरे होने तक व्यवस्थित हो रहे हैं कि जिस वर्ण के सूतकमें शामिल होय यदा
अन्न खाय उसी वर्ण के समान सूतक माने—और यहांभी अशोक विष्णु का वाक्य
देखो कि (आशौच द्यपगमे प्रायश्चित्तकुर्यात्) सूतकी दिन वीति जानेपर प्राय-
श्चित्तकरे ॥ अपनीचे निषट् निषूते आदिका अन्न खानेपर प्रायश्चित्त कहेजायेंगे ॥

(अपुषादीनां भोजन प्रायश्चित्तं)

अथाह लिखितः—भुक्त्वावाहुंथिकस्यान्नमवतस्यासुतस्यच शूद्रस्यचतथाभुक्त्वा
विराजस्यादभोजनम्—तथा—परपाकानितृप्तस्यपरपाकरतस्यच अपचस्यतुभुक्त्वाच्चं
द्विजश्चांद्रायणांचरेत् (सत्तन्नाभ्यासविययमिति मितासरा—परपाकानितृप्तादेर्लक्ष-
णांचतेनेवाक्तं—गृहीत्वग्निंसमारोप्यपचयज्जाननिषेपेत् परपाकानितृप्तोऽसौमुनिभिः
परिकीर्तितः पचयज्ञांस्वयंकृत्वापराच्चाहुपजीवति सततंप्रातर्कृत्यायपरपाकरतस्तुसः

अथजातिभ्रंशकरसंज्ञकाद्युपपापानां प्रकीर्णसंज्ञरूपापानां चवहुविधानाप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽथपरिच्छेदः चतुःसप्ततितमः (७४) ॥

—*—

यह परिच्छेद अपनी प्रधानता से प्रकीर्ण पापों के प्रायश्चित्त पर आच्छाद है तथापि इसके प्रारम्भ में पहिले जातिभ्रंशकर १ सकरीकरणा २ अपात्रीकरणा ३ मलिन करणा ४ इस नामसे चारप्रकार के उपपातकों के प्रायश्चित्त संक्षेप रीति से कहिदिये जायेंगे—तिस्रें पीछे प्रकीर्णक पापोंको विस्तार दियाजायगा (क्योंकि प्रकीर्ण यह नाम यद्यपि एक है पर भेद इसके अनेक हैं) किन्तु (ददुक्त तत्प्रकी-
र्णक)जो जो उपपातक किसीप्रकरणा या परिच्छेदमें गिनती न कियेगयेहों सो सब ग्रहां हुंढने से मिलेंगे क्योंकि प्रकीर्णक उन्हींका नाम है जो पहिले कहेंनहींकहे ॥

(अथ जातिभ्रंशकरादिपातक प्रायश्चित्त)

यद्यपि सभी पातक उपपातकों के प्रायश्चित्त यथा क्रम से वर्णन होचुके हैं तथापि एक यह भेद समझना चाहिये कि जितने उपपातक दर्शाये गये उन्हीं में से बिरलों वा अनेकों के जुदे नाम जातिभ्रंशकर पाप सकरी करणा पाप अपात्री करणा पाप मलिन करणा पाप इत्यादि मनु आदि मुनीश्वरों ने जुदे नाम भेद किये हैं यह वृत्तांत २४२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्ति में देखी—जिन मुनीश्वरों ने ऐसे जुदे नाम धरे तिनको जुदे नामों के प्रायश्चित्त भी उसी तरह कहिने परे—ति-
नको भी इस स्थल पर लिखते हैं कि पढ़ने वालों को सन्देह न रहै तिनमें प्रथम मनु का वचन देखी— यथाह मनुः= जातिभ्रंशकरकर्मकृत्वाऽन्यतममिच्छया चरे-
त्सांतपनकृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया सकरापात्रकृत्येयुमासः शोधनमेदवः मलिनो करणीयेयुतप्तः स्याद्यावकस्यहमिति (अन्यतममिति सर्वत्रसवध्यते= अर्थात्—मनु कहिते हैं कि जिन अनेक पापोंका नाम जाति भ्रंशकर सैने धरा तिनमें से कोई एक कर्म इच्छा सहित जो कोई करे तिसको सांतपन कृच्छ्र करना चाहिये जि-
सने इच्छा के बिना कर्म किया हो तिसको प्राजापत्य चाहिये इसी तरह सकरी

करणा में से या अपात्रीकरणा में से कोई एक पाप कर्म करे तिसको एक सहीना
चांद्रायणा करना चाहिये इसी तरह सलिनी करणीय नामके कर्मों में से कोई एक
पाप करे तिसको तीन दिन गरम यावक पीकर व्रत करना चाहिये ॥०॥ इन्हीं पापों
पर यमने भी जुदे प्रायश्चित्त कहे हैं—यथाह यम—संकरीकरणां कृत्वा मासमश्रीत्या
वक्तुं कृच्छ्राति कृच्छ्रमथवा प्रायश्चित्तं समाचरेत् अपात्रीकरणां कृत्वा तत्तत्कृच्छ्रं
या शुद्ध्यति सांतकृच्छ्रे सायाशुद्धिर्द्वासांतपनेन वा सलिनी करणीये युतस्तत्कृच्छ्रं विशी-
घ्ननम्—वृद्धस्पतिनापि जातिभूशकरे विशेष उक्त—ब्राह्मणस्य स्रज कृत्वा रासभादि
प्रभाषणानि निन्दितेभ्यो धनादानं कृच्छ्रार्धव्रतमाचरेदिति (स्याज्जातिभूशकरादिप्रा-
यश्चित्तानां मन्वाद्युक्तानां जातिशक्त्यापेक्षया विययो विभजनीयः इति मिताक्षरा—
अर्थात्—यम ने से से कहा है कि संकरीकरणा पाप करिके एक सहीना भर यावक
भोजन करे अथवा कृच्छ्राति कृच्छ्र प्रायश्चित्त आचरे तथा अपात्रीकरणा पाप क-
रिके तत्तत्कृच्छ्र प्रायश्चित्त से पवित्र होता है या सांतकृच्छ्र से या नहा सांतपन से
शुद्धि उसकी होती है तथा सलिनी करणीय पापों में कोई कर्म जिसने किया हो
तिसके लिये तत्तत्कृच्छ्र नामक प्रायश्चित्त है—वृद्धस्पति ने भी जातिभूशकर पापों
के समूह पर जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि—ब्राह्मण के शरीरमें चोट लगाइके या
गदहा आदि पशुओं का प्राण बध करिके या निन्दित कर्म करने वालों से धन का
लेन करिके आधा कृच्छ्र व्रत साथै (मिताक्षराकार कहते हैं कि ये मनु आदि ऋषियों
के कहे जातिभूशकर आदि पापों के प्रायश्चित्त दोषी लोगों की जातिशक्ति
आदि की अपेक्षा पर यथायोग्य बांटे देने चाहिये—फिर कहते हैं कि—इस प्र-
कार से योगीन्द्र या जवलका जी के हृदय में उत्पन्नहुये अभद्र आदिके प्रायश्चित्त
संक्षेप से प्रदर्शित किये—किन्तु जो सर्वथा लिखते तो बहुत बड़ा बिस्तार होता
॥ ० ॥ इस बात पर ध्यान करो कि २६० दोसौवच्ये मूल श्लोक वाली अविर्कोक्ति
छूटे कितना अन्तर बोलि गया तबसे कोई योगीश्वर का मूल श्लोक नहीं आया
यद्यपि बीच के अनेक पाठ उसी अविर्कोक्ति के शेष पाठ में से लिखे गये क्योंकि
यहां तक सभी पाठ उसी मूल श्लोक की टीका में गिनती किये गये हैं तथापि
इस मूल श्लोक से या उसकी अविर्कोक्ति से कुछ भी संवन्ध इन पाठों का नहीं है
जो भेदयाभेद के प्रकरणा में अनेक भेदों से लिखे गये क्योंकि यह अनेक ग्रंथों
की व्यवस्था संग्रह करी गई है ॥ अब आगे योगीश्वर आपही अपनी व्यवस्था २८१
दोसौ श्रव्यासी मूल श्लोक से छेड़ेंगे ॥ जातिभूशकर आदि चारों नाम के विशेष

लसरा भेद जो देखने हों तो २४२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्तिमें ढूंढना ॥ इति जातिभृशकपाट्युपपाट्युनांप्रायश्चित्तचतुष्टयं ॥

यहां तक सर्वथा सहापातक पातक अनुपातक उपपातक इन सबके प्रायश्चित्त भेद वर्णन हो चुके—अब सबसे छोटे पाँचवीं छठी भाँति प्रकीर्णक नाम के पापों पर प्रायश्चित्त योगीश्वर आपही आगे छेड़ेंगे तिसको ग्रन्थान्तर स्मृतियों की व्यवस्था से विस्तार देकर पूरा किया जायगा=प्रकीर्णक पापों का प्रकरणा इन सबही पापों से निराला माना गया है कि जो कुछ यहां तक ऊपर वर्णन हो चुका निराला माना जाने का हेतु केवल यही है कि दिन रातिके आठों पहर में संसारी कामों की वर्तावासे छोटे छोटे पाप जो प्रत्येक समय पर अचानक उत्पन्न हो जाते हैं तिनके छोटे छोटे प्रायश्चित्त भी सब इसी परिच्छेद में ढूंढे मिल सकेंगे ॥

(अथ प्रकीर्णक प्रायश्चित्तानि)

प्राणायामजिह्वास्नात्वास्त्रयानोपूयानयः । नग्नःस्नात्वाचमुक्त्वाचगत्वाचैव दिवास्त्रियम् २९१
गुरुं हृत्य स्वकृत्य विप्रं निर्जित्य वा दत्तः । बद्ध्वा वा वातसाक्षिं प्रपृष्टाद्योपवसे दिनम् २९२
विप्रदंडोद्यमेकच्छ्रस्ववतिरुच्छ्रोत्रो निपातने । कच्छ्रातिरुच्छ्रोत्रो मुक्तातेरुच्छ्रोत्रं यन्तः शोषिते २९३

अर्थः—गदहा वा ऊँह के योगसे चलती गाड़ी आदि मचारी में जो बैठा हो या नंगा जल में नहाया हो या नंगा बैठि भोजन किया हो या अपनी ही भार्या साथ दिन में मैथुन किया हो सो नदी आदि में खूब स्नान और प्राणायाम करिके शुद्ध होता है ॥ २९१ ॥ गुरु को हूँ करिके तू करिके या किसी ब्राह्मण को वाद से जीति के या कपड़ा से बांधि के शीघ्र ही प्रसन्न करिके दिन भर उपवास करे=अर्थात्—पिता माता जेठा भाई आदि किसी गुरुजन को कदाचित् इस तरह बोले कि हूँ या तू ऐसा है इत्यादि किसी तरह एक वचन के साथ घुड़की या कुछ बात कहे तो यह दोषी होता है एवं किसी अपने से बड़े या छोटे या बराबर के ब्राह्मण को क्रोध के साथ ऐसा कहे कि हूँ चुप होजा बंके मत सेसे घुड़की के साथ बितंडा रूपी बातों से जीतै सो दोषी कहाता है या उसके गले में हाथ ही कोमल रीति से लगाकर वा रुमाल आदि कपड़ा से गला ढीली रीति से ही बांधि कर भी दोषी होता है इन सबका यही प्रायश्चित्त है कि जिनका अपमान किया तिनके पैरों पर सूह धरने आदि उपायों से उनको प्रसन्न करिके एक दिन भोजन न करे=गला थोभने या कपड़ों से ढीलाही लपेटने से उपरालू अपराधों को बड़े प्रायश्चित्त हैं सो

अगिले श्लोक में देखौ ॥ २६२ ॥ ब्राह्मणको मारना सोचि डंडा लकड़ी उगानेसाव
पर कृच्छ्र प्रायश्चित्त है० डंडा उसकी देह पर लगाने मध्ये अतिकृच्छ्र है० लोह च-
लि परने पर कृच्छ्राति कृच्छ्र प्रायश्चित्त है० अभ्यंतर शोणित में कि जहां लोह
टपकने नहीं पाया किन्तु खाल के भीतर उभरि के रहिगया हो तिसमें भी केवल
कृच्छ्र प्रायश्चित्त है ॥ तीनों श्लोकों की अधिकोक्तिभी जुदी जुदी देखौ ॥ २६३ ॥

२६१ अधिकोक्तिः=दोसौ इक्ष्वाणवे के श्लोकमें जो प्राणायाम सहित ज्ञान
कहा तिसको मितासरा कार इच्छा से किये कर्मों पर ठहराते है=क्योंकि मनु के
अप्रोक्त वचन में खुलासा यही तात्पर्य है=यथा=उत्प्यानंसमासह्यस्वरयानंतुकामतः
सवासाजलसास्तुय प्राणायामेन शुद्धति=अर्थात्=ऊँट या गदहा की जुड़ी सवारी
पर कामनासे बैठने वाला वस्त्रों सहित गोता लगाइके प्राणायाम करिके शुद्ध होता
है=तिससे कामना बिना बैच योग से बैठना परे तिसको प्राणायाम छोड़ि केवल
ज्ञान साध समझि लेना=और जो सासात गदहा ऊँटकी पीठपर बैठा हो तिसको
लिये पूर्वोक्त प्राणायाम सहित ज्ञान दो बार करना चाहिये क्योंकि यह दोय
उससे बड़ा है इति मितासराकारः ॥ २६१ ॥ दोसौ वानवे में जो ब्राह्मण को कि-
तंडा बाद से जीतने पर प्रायश्चित्त कहा तिसके ऊपर यम का यह वचन है कि=
वादेन ब्राह्मणां जित्वा प्रायश्चित्त विधित्तया विराजोपोयितः स्नात्वा प्रणिपत्य प्रसादये-
त् (इत्यभ्यासविययमिति मितासरा=अर्थात्=वितंडावादसे ब्राह्मण को जीति कै
प्रायश्चित्त की इच्छा करे तिसको यह चाहिये कि पहले तीन दिन उपवास करे
तिस पीछे स्नान करिके उस ब्राह्मण के समुख सायांग प्रणिपत्य से गिरिके उसे
प्रसन्न करे (मितासराकार कहिते हैं कि यह बड़ा प्रायश्चित्त कई बारके अभ्यास
पर समझना या कई बार की बराबर एकही बार जिसने अपमान किया हो तिसको
लिये ॥ २६२ ॥ तिरानवे श्लोक में डंडे आदि से मारने पर वृहस्पति ने जुदे प्राय-
श्चित्त कहे हैं=यथा=कायादिना ताडयित्वा त्वभेदे कृच्छ्रमाचरेत् अस्थिभेदे शतक-
च्छ्रः स्यात् पराकस्त्वं गकर्तने=पादप्रहारे यमः=पादेन ब्राह्मणां स्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तविधि-
त्तया दिवसोपोयितः स्नात्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत्=अर्थात्=लकड़ी आदि से मारिके
यदि खाल तोड़िदो हो तो कृच्छ्र व्रत आचरे जो हाड तोड़ि दिया हो तो अति
कृच्छ्र करे यदि कोई घंग भी कटि गया हो तो पराक व्रत करना चाहिये=ज्ञात
मारने मध्ये यमने कहा है कि=पैर से ब्राह्मण को छुइकर प्रायश्चित्तकी अपेक्षा में
एक दिन उपवास किया हुआ ज्ञान करि उस ब्राह्मण के समुख सायांग प्रणाम

से गिरिके उसे प्रसन्न करें ॥ अचिकीर्ति इतनी यही थी सो लिख चुको-परन्तु-इसी दोस्रो तिरानवे की टीका में कुछ लम्बा पाठ है जिसका संवन्ध मूल श्लोकसे कुछ नहीं है-तिससे उसकी जूदीस्थापना करी जायगी उनमें औरभी प्रकीर्ण संज्ञा वाले दोषों के प्रायश्चित्त विशेष कहे जायेंगे जिनको योगीश्वर ने इस हेतु से नहीं बर्णाया कि बहुधा अन्य स्मृतियों में उनके स्वरूप और प्रायश्चित्त भी वर्णन हुये हैं सो सब आगे देखना ॥ २६३ ॥

(अभ्यानिच प्रकीर्णक पापानां प्रायश्चित्तानि)

अचमनुः=विनाऽद्विरप्सुवाऽप्याऽऽर्तःशरीरसंनियेयतु सचैलौबहिराप्सुत्यगामा लभ्यविशुद्धतीति (विनाऽद्विरित्यसंनिहितास्तप्सुइत्यर्थः शरीरसूक्ष्मपुरीयादि-इदम कामविययसितिमिताक्षरा=अर्थात्-कहीं जलके मिलने विना या जलके होतेहुये भी कोई रोगी शुद्ध आदि ध्यं धोये विना शरीर में लगे मल मूत्र की किसी दिन सेवन करे सो तब शुद्ध होय जब सभी बखों सहित जलाशय के बाहर खूब स्नान करिके अपने शरीर को शाय के देह से कोली भरिके लगावै (मिताक्षराकार कहते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने कामना के विना मल सब भरी देह राखी हो-किन्तु जिसने इच्छा सहित ऐसी मलीनता लादी होय तिसके लिये अशुद्ध प्रायश्चित्त है-अदाह यमः=आपद्गतातोविनातोयं शरीरं योनि येवते सकाहं कपराहंत्वा सचैलौजलमाविशेत=अर्थात्-किसी आपत्ति में पैसाहुआ जलके विना शरीर के मल का सेवन जो कोई करे वह एक दिन निराहार रहिके सचैलस्नान करे ॥

जोकि समुत्त का यह वचन है कि (अष्टस्वर्गमीवाभेहतस्तत्तत्कष्टं मिति (तदनार्तं विषय मभ्यासविययवेति मिताक्षरा=अर्थात्-जलों में वा अग्नि में सूतने पर तप्त-कचक चाहिये (सो यह निरोगी का चर्चा या बारम्बार के अभ्यास का चर्चा है यह मिताक्षरा ने कहा ॥

नित्यश्रौतादिकर्मलोपेतु अनुः=वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ज्ञातक व्रतलोपेक्षप्रायश्चित्तनभोजनस्य (औत्तेयदर्श पूर्णामासादियु कर्मसु-स्मार्तैर्युनित्यहोमा-दियु प्रतिपदोक्तैर्यादप्रायश्चित्तैरुपवासस्यसमुच्चयः-ज्ञातकव्रतानिनजोरां मज्जव-द्वासाभवेच्चविभवेसतीत्येवमादीनिप्रायश्चित्तानि=अर्थात्-मनु ने कहा है कि वेदोक्त नित्य कर्मों का अतिक्रम होजाने में या ज्ञातक पुरुष के व्रत (नियम जो आचार

सर्वादा काण्ड में एक जुदे प्रकरणा के द्वारा वर्णन होचुके तिनमें किसी व्रत) का लोप होजाने पर भी एक दिन भोजन का न करना प्रायश्चित्त है (मिताक्षराकार कहते हैं कि अमावस पूर्णमासी आदि में वेदोक्त जो कर्मकरने कहेहैं तिनको नित्य कर्म जानना और स्मार्त जो स्मृतियों के अनुसार नित्यहोम किये जातेहैं तिनका लोप होने से अवोक्त एक दिन का उपवास ऐसी युक्ति से समझना कि उनके मध्ये जहां कहीं पहिले प्रकरणां में उनके नाम से प्रायश्चित्त रूपी इष्टि आदि करना कहिचुके हों तिसके साथ यह एक उपवास भी जोड़ि लेना—और स्नातक व्रत वेहैं कि जैसा पहिले आचार में वर्णन होचुके हैं कि धन के होते हुये फटे मैले वस्त्रों को न पहिरै इत्यादि बहुत नियम हैं ॥ ० ॥ ऋतु नाम के चर्याचर ने भी स्नातक व्रतों का स्वरूप दर्शाइ कर पीछे से यह कहा है= सतेयासाचाराणामेकैकस्यव्यति क्रमसो गायत्र्यशतजपकृत्वापूतोभवतीति=अर्थात्—ये स्नातक पुरुष के आचार जो कुछ कहे तिनमें किसी एकही का व्यतिक्रम होजाने पर आठ सौ गायत्री मंत्र का जप करिके पवित्र होता है ॥ ० ॥ नित्य कर्मों में पच महा यज्ञ भी गिनती और सबसे प्रधान हैं तिनका लोप होजाने मध्ये अश्रोक्त प्रायश्चित्तहै=यदाह दृढस्पर्तिः=अनिर्वर्त्यमहायज्ञान्वयोभुंक्तेऽस्त्यहंगृही अनातुरःसतिवनेकच्छूर्वेनसशुद्ध्यति आहिता ग्निरुपस्थानंनकुर्व्याद्यस्तुपूर्वाणि ऋतो न गच्छेद्वार्यावासोपिहच्छार्धमाचरेत्=जो कोई गृहस्थी रोगी न होते हुये या धनवात् होके रोग होने पर भी नित्यप्रति पाँच यज्ञों से निपटे बिना भोजन करै सोभी एक दिनकी वावत आवा कच्छ करै यद्वा पाँचने किसी एकही दो यज्ञ को करै दिन तक न करै सो आवा कच्छ करिके शुद्ध होता है=एवं आहिताग्नि होके जो पर्वों के रोज अपने उपस्थान कर्म को न करै या जो कोई द्विजाती ऋतु काल पर भार्या के साथ संगम न करै तिसको भी आवा कच्छ करना चाहिये (आवा कच्छ छः दिन में होता है ॥

जिसकी पहिली भार्याकेजीतेहुये दूसरीया तीसरीभार्या सरे और वहपुत्र्यअग्नि मानहोय तो उसअग्नि से छोटी स्त्रियोंको दाहदेनानियिदहै तिसके प्रायश्चित्तआगे कहितेहैं=द्वितीयादि भार्यापरमेदेवलः=मृताद्वितीयांयोभार्यादेहैतानिकारिणभिः जी वंस्यांप्रथमायांतु सुरापानसमाहितवः=अर्थात्—पहिली जैती भार्या जीवतेदूसरी लहुरी मरीकी वैतानिक अग्नियोसे जो कोई दाह कर्मकरै तो यह जैतीका भाग उसको दे दिया तिसके पाप में सुरापान के समान प्रायश्चित्त चाहिये यह देवलने कहा ॥

स्वभार्याभिश्चसनेत्यमः=स्वभार्यांतुयदाक्रोधा दग्ध्येतितरोचदेत् प्राजापत्यचरे

द्विप्रः सविरो दिवसान्नं यद्वा वृत्तचरे द्वैश्वर्यं चिराच्चंद्राचारं चेत्यर्थः—कोई अपनी शुद्ध भार्या को क्रोधमें आकर ऐसा दोष लगावे कि यह अगम्या है संगम के योग्य नहीं रही वह पुरुष जो ब्राह्मण हो तो बारह दिन प्राजापत्य करे सवो हो सो नौ दिन करे वैश्य हो सो छे दिन और शूद्र हो सो तीन दिन प्राजापत्य करे यह यमने कहा ॥

अस्नानभोजनादौ तु हारीतः—बहन्कमंडलुं रित्तं सस्नातोऽश्नन्श्च भोजनम् अहोरात्रे राशुद्धिः स्याद्विन जाप्ये न चैव हि—अर्थात्—स्नातक होकर जल से खाली लोटा साथ राखे या कोई हिजाती होकर स्नान किये बिना भोजन करे तिसकी शुद्धि एक दिन रातिका निराहार उपवास और दिनभर जप करने से होती है यह हारीत ने कहा ॥

इयोनारकी एकही पार्ष्णिमें अनेकोंके बैठेहुये वियमरीतिसे परोसे कि एकोंको प्रीतिसे कुछ अधिक या अच्छी चीज औरोंको और तरह परोसे या कोई कहिकर ऐसा करावे या कोई खानेवाला इसी रीति मांगे तिनको भी यमका कहा प्रायश्चित्त है—यथाह यमः—नपंत्यां वियमंदयान्नयाचेतनवापयेत् प्राजापत्येन कच्छेरा मुच्यन्ते कर्मरास्ततः—अर्थात्—पार्ष्णिमें वियम किन्तु ऊँच नीच रीतिसे न देवे न मांगे न कहिकर दिलावे क्योंकि ऐसे कर्मके पापसे प्राजापत्य कच्छूव्रत करिके शुद्ध होते हैं अन्यथा नहीं ॥

किसी जलका बांध या नदी नालेका पुल तोड़े या कन्याके विवाहवाले कामों में भांजी सारे या समतामें वियमताकरे तिनके भी लाचारी प्रायश्चित्त है—तदप्याह यमः—नदीसंक्रमहंतुश्च कन्याविधकरस्य च समे वियमकर्तुश्च निष्कृतिर्न विधीयते च यागामपि चेत्यां प्राजापत्यं तु मार्गसा भैक्ष्यलब्धेन चाक्षेन द्विजश्चांद्रायणां चरेत् (संक्रमत्तत्वावतरणमार्गः समे वियमकर्तृप्राजापत्यं निष्कृतिमिताक्षरा—अर्थात्—यमराजका वचन है कि जो हिजाती होकर नदीको बांध तोड़े या कन्याके विवाह आदि कामों में विध डारे या समतामें वियमताकरे तिसकी निष्कृति अर्थात् छुटकारा तो अगले जन्मों तक भी नहीं है किन्तु पापका फल भोगना तो अवश्य होगा तथापि लोकाचार के बर्तावा हेतुसे इन तीनोंको भी प्राजापत्यही करवाया जाय परन्तु जो दोयी पुरुष ब्राह्मण होय तो उसके लिये विशेषता है कि भिक्षासे मांगे मिले अन्नसे चान्द्रायण आचरे (समता में वियमता करना यह कि जहां बराबर की तिलक पूजा दक्षिणा आदिका प्रयोजन हो तहां न्यूनताधिकभेदकरे और इसीका दूसरा अर्थ यह भी है कि एकसार मार्ग आदि धरती पर गड्ढाहलाकरे अर्थात् अपना सकान बनाने आदि कारणांसे इतनी माटी खोदे जिससे सर्व साधारणों का रास्ता बिगड़जाय

जिसमें किसी गाड़ी बेल मनुष्य आदिकी टाँग टूटना सम्भव हो या वर्साती पानीभरि कार चालक बचे आदिका डूबना सम्भव होय तिसके पापका यह चर्चा है क्योंकि जैसा जलके उत्तरेआदिका संक्रम बांध काटनेका पापहै तैसाही यह पापहै जिसका व्योरा लिखा• तैसाही तीसरा कन्याके विवाह आदिमें विव्र करवाना बड़ा पाप है इसीसे इन तीनोंको एक साथही दर्शाकर ऐसा कहाहै कि इनकी मुक्ति नहीं होती है नरकोंमें अवश्य जाना होताहै परन्तु लोक व्यवहारके निमित्त से प्रायश्चित्त कराना चाहिये) इस व्यवस्थाके प्रयोजनसे २२६ दोसौछद्मीस मूलप्रलोकभीदेखो ॥

इन्द्रधनुर्दर्शनादौच्छ्रयग्रंथः=इन्द्रचापपलालागिन्यद्यन्यस्यप्रदर्शयेत्प्र।यश्चित्तम होराबंधनुर्दण्डप्रचक्षिणा=अर्थात्-इन्द्रधनुय जो सूर्य या चन्द्रमा के बिम्बको घेरा देकर कभी उदय हुआ देखि परताहै तिसको जो पुरुष देखिलेय तिसको यह चाहिये कि वह और किसीको न दिखलावै न चर्चिकरै• इसी प्रकार पलाल धान कोदो आदिका फूस पयार तिसकी अग्नि दूर जलती देखि दूसरेको नहीं दिखावै• कदाचित्त आप देखि दूसरेको दिखावै तिसपर यह प्रायश्चित्त है कि सक दिनराति उपवास करिके जो धनुय दिखायाहो तो सक धनुयदान करै जो अग्नि दिखाई होतो एक लाठी बानकरै यह श्रुंगीच्छयिने कहा (इसका हेतु कुछ होने पर भी नहीं कहा जासक्ता है तिससे वाचनिक व्यवस्था जाननी कि जो वचन सुनीचरोंके मुखसे निकसा वही प्रमाणा है क्योंकि तेजस्वी महात्माके मुखसे कोई वचन दृष्टा कभीनहीं निकसता है ॥

यतितादिभिः संभायरोतु गौतमः=नस्लेच्छाशुद्धैर्वास्मिकः सहसंभायेत संभाष्यपुण्य कृतो मनसा ध्यायेत् ब्राह्मणो न सहवासं भायेत्• भार्यान्निषक्तलाभवधं पृथग्भार्याणीति=अर्थात् जो मनुष्य धार्मिक धर्मवान् क्रायदेवान् है तिसको चाहिये कि वह स्लेच्छ सलीन अशुद्धोंके साथ प्रयोजनके विना और प्रयोजन से अधिक बात चीत न करै और प्रयोजनसे भी जितनी बात करनीपरै तिसको करनेके अनन्तर अच्छे पुण्यात्मा राजर्षी ब्रह्मर्षी आदि पुराने और नवीन वर्तमान तपस्वी लोगोंका ध्यान मनमें करै और मुखसे भी नाम उच्चारण करै अथवा गुण संयुक्त किसी ब्राह्मणसे बातचीत करे तब शुद्ध होय यह गौतम ने कहा ॥

स्वस्त्येव वनलाभादेर्विव्रकरणोपि गौतमः=भार्यान्निषक्तलाभवधं पृथग्भार्याणीति (भार्यान्निषक्तानां लाभस्य वधे विघ्नकरणोप्रत्येकं संवत्सरं ब्राह्मण्यं मिति मिताक्षरा= अर्थात्-अपने घर में निज भार्या के साथ कोईसा उपद्रव सार पीट आदि अनुचित

रोहिते उत्पन्न करें या घरके धनकी हानि दृष्टा करें या होते हुये लाभ की हानि करडारें कि जिनसे वह लाभ माराजाकर फिर न होसके तो इन तीनों पापके ऊपर भी जुदा जुदा एक एक वर्गका प्राकृत ब्रह्मचर्य करें तब शुद्धहोय यह गौतमनेकहा (यह तर्क न करना कि अपने लाभकी हानि कौन करताहै क्योंकि ऐसे बहुतहोते हैं जिनसे अपने लाभकी हानि सुखता से होजाती है और ऐसे भी होती है कि जहां भाई भतीजे वेदा वाप आदि में विरुद्ध होय तहां एक के द्वारा होते लाभ में दूसरा वैरभावसे जाकर उसमें विघटकरि आताहै इत्यादि और मूरतोसे भी होताहै तिनके प्रायश्चित्त कहे ॥

ब्रह्मसूत्र यज्ञोपवीत कंधेपर होने विना जो जल पान या भोजन या शक्ता लघु शक्तासे मलसूत्र करें तिसके प्रायश्चित्त स्मृत्यन्तरमे कहेहैं=यथा=विनायज्ञोपवीतेन यद्युच्छिष्टोभवेत्तद्विजः प्रायश्चित्तमहोरात्रं गायत्र्यष्टशतंतुवा (अबऊर्ध्वाच्छिष्टेउपवासः अबोच्छिष्टस्योदकपानादियु गायत्रीजप इतिमितासरा=अक्रामतस्तु=पिबतो मेहतश्चैवभुंजतोऽनुपवीतिनः प्राणायामत्रिकंयत्कंनक्तंवाञ्जितयंक्रमात् इतिस्मृत्यंतरी क्तंचद्वयव्य=अर्थात्-जनेऊ कन्धे पर होने विना कोई द्विजाती पुरुष यदि किसी तरह जुदा होजाय तहां एक दिन राति का उपवास या आठ सौ गायत्री का जाप प्रायश्चित्त है (इसमें यह व्यवस्था है कि जो ऊपर के चंगमें हाथ मुहसे जुदा हुआ सो उपवास करें जो नीचेके चंगमें गुदा लिंगसे जुदा हुआहो सो गायत्री जपे-यह व्यवस्था भी उसके लिये समझना जो अपनी बेपरवाहीसे जानिबूझि ऐसा भ्रष्टहुआ हो किन्तु=होशियारी साथ रहिते भी देवयोगसे ऐसा जिसपर होगया हो तिसको अन्य ग्रन्थका बचन आगे देखी कि=विना जनेऊ पानी पीना या मूतना या खाइ लेना जिसपर होजाय सो इन तीनों बात के यथा क्रम से तीन प्राणायाम और छे प्राणायाम और नक्तव्रत जुदे जुदे करें (नक्तव्रत उसका नामहै जो निर्जल व्रतकरिके चार घटी राति मधेके भीतर भोजन करें यह भी अभोजन की वरावर कहाता है ॥

भुंक्ताशौचाचमनमग्नत्वेत्यानेतु स्मृत्यन्तरे=यद्युच्छिष्टपानाचांतोभुंक्तेवाऽनाशना त्ततः सद्यःस्नानंप्रदूर्वातिसोऽन्यथापतितोभवेत्=अर्थात्-भोजन करनेमे यदि खाइ चूकने पर न खानेके वादिजल पीने विना आचमन लिये विना चौकीसे बाहर उठ जाय सो तत्कालही स्नानकरै अन्यथा जो न करै सो पतिततर्हिरे अर्थात् जातिपांति से बाहर करदिया जाय स्मृत्यन्तर की यह व्यवस्था है ॥

चौराद्युत्सर्गादीतु वशिष्ठः=दंड्योत्सर्गेराजैकरात्रमुपवसेत् विराट्पुरोहितःऊच्छ्र

मदंड्यदण्डने पुरोहितस्त्रिराक्षराजा=अर्थात्-दण्ड देने के योग्य चोर आदि अपराधी यदि छोड़ दिया जाय तो राजा एक दिन उपवास करे पुरोहित तीन दिन करे और जो मदंड्य किसी पुरुष को दण्ड दिया गया हो कि जिसका कुछ अपराध यथार्थ में नहीं था या वह पुरुष अपराध की दशा में भी दण्ड पाने से मुआफ़ था तिसको दण्ड दिया गया तहां पुरोहित को पूरा बारह दिन कष्ट करना चाहिये और तीन दिन राजा को (यहां पर अदालती पुरोहित का चर्चा है जो धर्म शास्त्र देखने का अधिकारी होय किन्तु कर्मकांडी पुरोहित का चर्चा यहां नहीं है-राज-द्वारों में दोहरे पुरोहित होते हैं ॥

जिस पति में कोई चोर या पतित आदि बैठा हो तिसमें भोजन करने मध्ये प्रायश्चित्त है=तदाह मार्कंडेयः=अर्पांक्तयस्ययः कथि वरपत्नीभुंक्ते द्विजोत्तमः अहोरात्रोयि तोभूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति=अर्थात्-कोई द्विजोत्तम ब्राह्मण जो अर्पांक्तय की पति में भोजन करे अथवा उस की करी ज्यौनार आदि पति में अर्थात् रसोई में भोजन करे सो एक दिन राति निराहार व्रत करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है यह मार्कंडेय जी ने कहा ॥

नीली वस्त्रादि विययेत् आपस्तम्बः-नीलीरक्तं यदावस्व ब्राह्मणो गेयुवारयेत् अहो रात्रौ यतोभूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति- रोमकूपैर्यदागच्छेद्ब्रह्मसोनीत्यास्तु कस्यचित् विद्यु वर्योयसामान्यंतस्तु कच्छं विशोधनम्- पालनविक्रयश्चैव तद्वृत्त्यात्पजीवनम् पातनत्तु भवेद्विप्रेषिभिः कच्छं ध्वंषोदति-नीलीदारुयथाभिग्राह्याह्मणस्य शरीरतः शोणितं दृश्य तेयवद्विजश्चांद्रायणाचरेत्- स्त्रीणां क्रोडादर्थसंभोगे शयनीयेन दुप्यतीति=अर्थात्-आपस्तम्बने कहा है कि ब्राह्मण जो अपने शरीर में नीला रंग कपड़ा ओढ़े या पहिरे तो एकही बार ऐसा करने पर एक दिन रातिभर निराहार व्रत करके पंचगव्यपीवै तब शुद्ध होय- परन्तु जिस द्विजाती ने इतनी देर तक नीला वस्त्र पहिरा हो कि उसके पसीना निकलने से रोम छिद्रों में कपड़े का पसेव जाकर लगे तो फिर तीनों वर्गों के लोगों को एक ही यह सामान्य प्रायश्चित्त है कि तप्त कच्छ करे और जो कोई द्विजाती नील का खेत बोवै या घर में धरै या बेचै या किसी तरह नील के काम से जीविका राखे तिसको जाती धर्म कर्मों से (पातन) गिराई देना यही दंड किया जाय परन्तु यह ऐसा पुरुष जो ब्राह्मण हो तो तीन कच्छ सावन कराइ के फिर जाति में मिलाया जाय एवं सत्री दो कच्छ करिके और वेश्य एकही कच्छ करिके जाति में मिलाया जासक्ता है (परन्तु शूद्रको इस काम का नियम नहीं है-

और नील को लकड़ी यदि ब्राह्मण के शरीर में आपही किसी तरह से खुसिजाय या कोई अन्य पुरुष मार देवे कि जिससे कुछ लोह का चिह्न उभरि आवैतौह ब्राह्मण चान्द्रायण करै तब शुद्ध होय—परंतु स्त्रियों के लिये इतना प्रतिप्रसव है कि उनके क्रीडा संभोग वाले निमित्तों में शयन काल के वस्त्र नीले होय तिसमें दोय नहीं लगाया जासक्ता है कि स्त्री के प्रसंग समय उसके पतिको भी उनवस्त्रों से ससग रह्य तथापि जो विवेकी और क्रियामान पुरुष होते हैं वे अपनी स्त्रियोंसे भी नील बचाते हैं (और वचन में जो शयनीय भोग समय का विशेषण दियागया तिसकी खसूसियत से यह तात्पर्यहै कि हर वक्त के ओढ़ने पहिरनेवाले कपडे स्त्रियोंके भी नीलेन होने चाहिये कि जिससे रसोई आदि कामांतक अशुद्धि पहुँचै इसीलिये वचनमें क्रीडार्थका निमित्त दियागया है किजिन स्त्रियोंको रसोई आदि से जिसवक्तपर संबंध कुछ न हो तिनको मगल कार्यके उत्सवोंमें भी उतने समयतक क्रीडाके अर्थसे नीले वस्त्र धारण करना दोय नहींहै॥ ० ॥ स्त्रियोंके सिवाय विरले पुरुष और विरले काम और विरले वस्त्रों के नाम से भी कुछ कुछ प्रतिप्रसव दिया गयाहै (प्रति प्रसव धर्मशास्त्रमें एक भयादाका नाम है कि जिस कामका नियेव किया गया हो उसी कामको थोडासा किसी जघेपर करनेकी फिर पीछेसे आज्ञा देदीजाय) तदाह भृगुः=स्त्रीधृताशयनेनीलीब्राह्मणस्थनदुष्यति नृपस्यदृष्टौवैश्यस्यपर्वर्जविधारणात्=तथावस्त्रविशेषकतप्रतिप्रसवः=कवलेपद्रुसूत्रेच नीलीरागोन दुष्यतीतिस्मरणात्=अर्थात्-भृगुजी का वचनहै कि स्त्रियोंके अंगमें बारणाकिया नीला कपडा ब्राह्मण को सीते समय दूयित नहीं करता है और राजा क्षत्री को वृद्धि में अर्थात् सेनाआदि समूह में रग विरो वस्त्रोंके कार्य में कुछ दोय नहीं है और वैश्य को शीत काल ॥ काले कवल वनात् आदि पर्वोंको छोड़िकर ओढ़ने में कुछ दोय नहीं है=इसीलिये विरले वस्त्र में नीला रंग होनेका यह प्रतिप्रसव दिया है कि=धानात् आदि ऊनी कपल में तथा रेगमी कपडे में नील रंग दूयित नहीं है (परन्तु ब्राह्मण को इन वस्त्रों का भी नियेव है यहप्रति प्रसव केवल वैश्य को शीत काल मध्ये कहा गया है सोी, पर्वों को छोड़िके और ब्राह्मण सदा आपही पर्वरूप और तीर्थरूप होता है उसके लिये शीतकाल में भी नहीं—और नीला कढ़िने से तद्रूप नीले वस्त्रों को समुक्तना किन्तु हरारग जो नीलके सयोगसे बनता है तेंसे हरारग की वानात् या रेगमी का नियेव ब्राह्मण के निमित्तमें भी नहीं है तथापि भोजन और भजन के सबवो हरे होने का नियेव तात्पर्यसे भी ससिद्ध है ॥

शंख ने विशेष कर ब्राह्मण के लिये दाखे की खाट आदि पर बैठना या राजा के रथ से भागना या पूजा आदि उत्तमकार्यों के बीच में निकसि जाना आदि और भी अनेक बातें एक साथ इकट्ठी मने करीं तिनके प्रायश्चित्त भी कहि दिये हैं—यथाह शंखः—अध्यक्ष्यशयनयानमासनपादुकेतथा द्विजःपालाशवृक्षस्यविराजंतुव्रती भवेत्• सचियश्चरसोपृथक्त्वाप्राणपरायणः सवत्सरव्रतकुर्याच्छ्रद्धावृत्तफलप्रदम्• द्वौविप्रौब्राह्मणानीषादपतीगोद्विजोत्तमौ अन्तरेणायदागच्छेत्कच्छ्रंसांतपन्नचरेत्• होमकालेतथादोहेस्त्राध्यायेदारसंग्रहे अन्तरेणायदागच्छेत् द्विजश्चांद्रायणाचरेदिति (दोहे साक्षादयंग्भाभूते•सुतस्त्राभ्यासचियत्र मितिमिताक्षरा=अर्थात्=शंखजी कहिते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण दाखे की लकड़ी से बनी खाट या सवारी का साचा या तखत पीढी आदि आसन या खट्वाऊँ पर चढ़िके बैठे खट्वाहोय सो तीन दिव व्रत करे=और कोई ब्राह्मण जो शस्त्रवाँध कर सचीपन की नौकरी किये हो सो उस राजा के रथमें अपने प्राणोंके भयसे पीठि दिखाकर उलटा भागै वह एक वर्ष भर ब्रह्मचर्य का व्रत करे और फलोंका देनेवाला कोई पेड़ जिसने काटाहो वहभी एक वर्ष भर व्रत करे=और दो ब्राह्मण कहीं बैठे हों या घात करते हुये मिले चले जाते हों या परस्पर पढ़ते और पढ़ाते हों तिनके बीच होकर जो कोई निकसि जाय सो बीच में बिसेप करने के प्राप में कच्छ्रं सांतपन प्रायश्चित्त करे• इसी प्रकार जो ब्राह्मण और अग्नि के बीच में जो चला जाय सोभी कच्छ्रं सांतपन करे (यहाँपर बड़ी अग्नि माननी जो उसी ब्राह्मण से किसी तरह का वास्ता रखती है अन्यथा जहां निरपेक्ष कोई अग्नि कहीं जलती या धरी हो तिसके निकट कोई निरपेक्ष ब्राह्मण चला जाता या बैठता हो तिनके बीच होकर निकसि जाने का यह दोष नहीं है) इसी प्रकार दंपती पति पत्नी कहीं बैठे या चले जाते हों तिनके बीच हो कर निकसि जाय सो भी कच्छ्रं सांतपन करे• इसी प्रकार गाय और ब्राह्मण इन दो के बीच निकसि जाने वाला कच्छ्रं सांतपन करे तब निर्दोषी होय=इसी प्रकार जहां कोई होम कर्म करता करवाता हो या गाय की दुहता दुहवाता हो और स्त्राध्याय नामक वेद पाठ आदि कोई सा पाठ करता करवाता हो या दार सग्रह विवाहकर्म करता करवाता हो और इनके उपलक्षणा से यज्ञोपवीत सर्व दीक्षा याह कर्मआदि भी सम्पन्न लेना इन कामों के बीचमे जो कोई निकसि जाय सो द्विजातो चांद्रायणा व्रत आचरे तब निर्दोषी रहै ॥

अचिद्वेशविशेषगमनेपि देवतः=सिधुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथाप्रत्यंतवासितः आंगवंग

कलिंगांधावरावासंस्कारमर्हति (सतचतुर्थयात्रान्यतिरेकेण द्रव्यमिति मिताक्षरा = अर्थात्—देवल कहिते हैं कि सिन्धुदेश सौवीर देश सौराष्ट्रदेश तथा (प्रत्यन्त देशों अर्थात्) स्तेच्छ देशों को जाइके और अंगदेश वंगदेश कलिंग देश अन्ध देशों को जाइके दुवारा जनेऊ करवाने योग्य होता है (परन्तु यह तीर्थ यात्रासे उपरालूजने का चर्चा है अर्थात् जगन्नाथ आदि बड़े तीर्थोंको जातेहुये जो निरिद्ध देश सभाने परें तिनके लिये पुनः संस्कार को जरूरत नहीं है ॥

सूर्य में छिद्र देख परना आदि अरिष्ट किन्तु खोंटे अयशक्नुन जो अनेक भाँति होते हैं तिनके भी प्रायश्चित्त हैं—तदाह शंखः—दुस्त्वप्नारिष्टदर्शनादौ धृतंसुवर्गाच्च दद्यादिति—यमोप्याह—प्रत्यादित्यं न मे हेत न पश्येदात्मनः शक्यं दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षेत ब्राह्मरागां मया पिबेति—शंखस्तु—पादप्रतापनं कृत्वा कृत्वा वह्निमवस्तया कुशोऽप्रमृज्य पादौ तु दिनमेकं त्रती भवेदिति—अर्थात्—खोंटास्त्वप्ना और खोंटे अरिष्ट देखपरने आदि में धी और सुवर्ग का दान करै तिससे फिर कल्याणाही होता है यह शंखने कहा—यम ने भी यह कहा है कि—सूर्य के सम्मुख न भूतें और अपना बिछा न देखे कदाचित्त विद्या देख लिया हो तो सूर्य के दर्शन करै और सूर्य बादलमें छिपे हो तो ब्राह्मण के दर्शन करै ब्राह्मण भी न मिले तो गाय के दर्शन करै—शंख ने भी कहा है कि—अग्नि में घेर तपावै या खाट के नीचे आगि बरि के सोवै या कुशाओं से घेर मारै सो एक दिन व्रत करै तब निर्दोषी ठहरै ॥

अथाभिवादननियमातिक्रमः—तत्र सविद्याद्युपसंग्रहो हारीतः—सविद्याभिवादाने ऽहोरात्रमुपवसेद वैश्याभिवादाने द्विरात्रम शूद्रस्याभिवादाने धिरात्रमुपवासः—तथाश्रम्याह पादुकीपातहा रोपित पादोच्छ्रियं कारस्य श्राद्धतश्च उपदेवपूजातिरस्ताभिवादाने त्रिरात्रमुपवासः स्यात् अन्यत्र निमज्जितेनाभ्यवभोजने पवित्रात्रमित्यपि हारीतः (समित्युष्णादिहस्तस्याभिवादाने प्येतदेवेति मिताक्षरायतः) (समित्युष्णकुशाज्या मृमुदुना ऽक्षतपाणिकच जपहोमचकुर्वाणांभिवाद्येतर्वा द्विजस इत्यापस्तंबीयेजयादिभिः समभिव्याहारात्—अर्थात्—अभिवादनके नियम छोड़कर जोकोई अतिक्रम से अभिवादन करै तिसके प्रायश्चित्त कहा चाहते हैं (अभिवादन का अर्थ है प्रणाम नमस्कार घेर छूना आदि प्रधान है और दूसरा अर्थ यहाँ पर यह भी है कि किसी की पहिले चिताइ के कुछ बात कहिना कि जिससे दूसरे की अवश्य ही बोलना परै—इस प्रकरणा में दोनों तरह के अर्थों से प्रयोजन लिया जायगा—इस तरह से कि बिरली जात में केवल प्रणामही का अर्थ और बहुधा बातोंमें दोनों

अर्थ माने जायेंगे केवल अभिवादन के शब्द से) सो सब आगे अपनी बुद्धि से यथा योग्य समझि लेना किन्तु अनेक बातें कही जायेंगी—तिसमें प्रथम सबों आदि को ब्राह्मण होकर अभिवादन करें अर्थात् भूल से नमस्कार आदि शब्द कहिये तिस के मध्ये हारीत जी कहिते हैं कि=सबोंको अभिवादन करें तिसको एक दिनराति भर उपवास करना चाहिये जो वैश्यको अभिवादन करें सो दो दिन उपवास करें जो शूद्रको अभिवादन करिये सो तीन दिन उपवास करें—तथा हारीतही यह दूसरी व्यवस्था कहिते हैं कि जोकोई अपनी सुखतासे अग्रोक्त पुरुषों को प्रणामरूपी अभिवादन या किसी और तरहका संबोधन करे कि एक जो खटपर लेटा या चढ़ता हो दूसरा जो खड़ा हो या जूताको पहिरने लगा हो जवतक न पहिन पावे तवतक उससे न बोलें—तीसरा जो जुटा होरहा हो—चौथा जो अँबरेमें बैठा हो—जो आइ करता हो—जप करता हो—देवताको पूजामें लगा हो—इनको भूल से अभिवादन करिये सो तीन दिन उपवास करें—और का नीता स्वीकार करिके और का भोजन करि आवें सो भी तीन दिन प्रायश्चित्त करें (यही तीन दिनका व्रत उसको भी चाहिये जो पत्र फूल आदिसे अटके हाथवालेको अभिवादन करे इससे हाथकी चीज बिरली गिरिजानेका खटका होता है बिरली देवताके निमित्तवाली जूती होजाती है क्योंकि अगिले थापस्तम्बके वचन में यही तात्पर्य है सो देखी कि) समिव या फूल या कुशा या घृत या जल या अक्षत जिसके हाथ में मृदुरीति से होले यंभे हों या जपमें लगावे या होम आदि कर्म करता हो ऐसे ब्राह्मणों में किसी को भी प्रणाम संबोधन कुछ न करें ॥ ० ॥ इसी प्रकार यही तीन दिन का व्रत उसको भी चाहिये कि जो पुस्त्य उक्त चीजों को लिये हुये किसी दूसरे को नमस्कार करें या दूसरेका नमस्कार सुनिके प्रत्यभिवादन के द्वारा स्वीकार करें—यथाह शंखः=नोदकुंभस्तोऽभिवाद्येत नभैर्यंचरन्न पुष्पाज्यादि हस्तेनाशुचिर्नजपत् न देवपितृकार्यं कुर्वन्नशयानः (इति शंखेन तस्यापि प्रतियेवादि तमितासरा=अर्थात्—पानी का घड़ा हाथ लिये हुये किसीको नमस्कार न करें न भिक्षा लेते हुये समय पर न अपने हाथ फूल घृत आदि कुछ थामे हुये न अशुद्ध होते (अर्थात् भोजन से उठिके वा हजामत कराते वा शंका लघु शंका से उठि कर हाथ पर मुह धोने बिना एवं प्रातःकाल के शौच से निपटे बिना) न जप करते हुये न देव पितरों का कुछ काम करते हुये न लेते हुये अभिवादन करें यह शंख जो ने दूसरे को भी उन्हीं बातों का नियेव किया है तिससे इसको भी वही प्रायश्चित्त चाहिये—तात्पर्य सबका यही है जो जो बातें नियेव करी गई सो

परस्पर सब दोनों को समझनी कि अभिवादन ऐसे समय पर करना चाहिये जब सर्वथा सावधान देखें जिससे दूसरे की क्रुद्ध हानि या उसके मन में कोड़सा सोभ न उत्पन्न होने पावे क्योंकि संसार में अभिवादन केवल मुलाकाती प्रीति का हेतु कायम किया गया है तिसमें भी यदि रंज या हानि पैदा हुई तो फिर यही पाप का चिह्न है ॥ • ॥ विज्ञानेश्वर मिताक्षरा द्वार कहते हैं कि इसी तरह और भी स्मृतियों के वचन जहां देखें परें तिनको भी स्वीकार करना क्योंकि ग्रन्थ बड़ा हो जाने के डर से यहां सब नहीं लिखे गये हैं ॥ २६५ ॥ इसी दोही तिराचवे मूल श्लोक से लेकर यहां तक संबन्ध मात्र से प्रकीर्ण प्रायश्चित्तों के अनेक पाठ भेद लिखे गये बल्कि प्रकीर्ण प्रायश्चित्तों का प्रारम्भ २६१ दो सौ श्लोकानवे मूल श्लोक से हो चुका था ॥

(हतिप्रकीर्णकप्रायश्चित्तप्रकरणसमाप्त)

इस प्रकरणा में एकही ७४ चौहत्तर का परिच्छेद है जिसमें जाति भंशकरादि पापों की व्यवस्था की छौह्विके प्रकीर्णक पापों की २१ इकोस व्यवस्था है जिनके सब जुदे जुदे पाठ यहां तक पूरेहुये ॥ इस प्रकरणा में और इससे पहिले बहुत बड़े भक्ष्या भक्ष्य के प्रकरणा में भी वेही बातें रक्तीगई हैं जो रोज रोजके वर्तवि में हर वक्त काम आती हैं—इनहीं का तीसरा भेद और है कि वह भी रोज रोज के वर्तवि में आता है वह चौथे परिच्छेद में तीसर्वे ३० मूल श्लोक से वर्णन होचुका तहां उसीकी अधि कीर्ति भर में देखी उसके प्रायश्चित्त इनसे भी अति छोटे हैं

यद्यपि इस ग्रंथ में प्रायश्चित्त कुछ और भी कहिने श्रेय रहे हैं परंतु यहां तक सभी पापों का निपटारा होचुका है प्रसिद्ध पातकों में कोई ऐसा नहीं रहा जिसका प्रायश्चित्त न कहिचुके हो—तथापि यह संसार अनंत है इसमें पापस्वपी निमित्तों के स्वरूप भी अनन्त हैं जो सब शकसाय गिने नहीं जासकते हैं कि जिनके प्रत्येक जुदे नामों से प्रायश्चित्त कहे जासकें • न जानिये किसकाल में किसी मनुष्य के द्वारा किसप्रकार का अपूर्व पाप उत्पन्न होय तिसका भी प्रायश्चित्त इन्ही के अनुकूल सोचिकर देना होता है जो यहाँतक वर्णन होचुके • परंतु उसमें सोच विचार से अन्याय होजाने की शंका भी सर्व्व लगी रहिती है • और जो प्रत्येक जुदे नामों से प्रायश्चित्त वर्णन होचुके लिखेभवजूद हैं तिनमें भी विचार किये बिना आदेशकर देने से प्रायश्चित्ती प्रसूय की दृष्टा प्राण हानि होजाना आदि अनेक शंका लगी

रहिती हैं • तिसके विचार की सुघडाई वनी रहिने के प्रयोजन से एक सामान्य मर्यादा आगे पचहत्तर ७५ परिच्छेद में योगीश्वर आपही दर्शावैंगे कि जिसका मर्मव संहारा लिये रहिने से अन्याय न होनेपावै ॥

अथ अनुक्तप्रायश्चित्तपापेष्वपि निष्कृतिकल्पनायुक्तिवि

चारोनामपरिच्छेदः पंचसप्रतिमः (७५)



इस परिच्छेद में विशेषकर ऐसे पापोंके प्रायश्चित्त विचारे जायेंगे कि जिनके नामसे कोई प्रायश्चित्त इसग्रन्थ भरमें कहीं भी न लिखा हो—इसके सिवाय जितने प्रायश्चित्त यहांसे आगे लिखेजायेंगे और जितने यहांतक पहिले से वर्णन होते रहे तिन सबहीका साधारण एक विचार है सोभी इसी परिच्छेदमें बिराय किया जायगा ॥

(प्रायश्चित्तच देशकालादिविचारैश्च)

देशकालवयःशक्तिपापंचावेक्ष्ययत्नतः । प्रायश्चित्तप्रकल्पं स्थापयन्नचोक्तानिष्कृतिः २९४

अर्थः—देश काल वयस् शक्ति पापकीभी देखिके यत्न से प्रायश्चित्त कल्पना किया जाय जहां निष्कृति न कही गई तहां भी—अर्थात्—जो कुछ प्रायश्चित्त यहां तक सब तरहसे वर्णन होचुके अथवा आगे जो कुछ कहेजायें तिनका बर्तावा जहां करना परै अथवा किसी ऐसे पाप का प्रायश्चित्त देना परै जिसके नामसे शास्त्र में न लिखागया हो तहां तहां सर्वव्रतनी बातों के विचारसे प्रायश्चित्त देना चाहिये कि—प्रथम देशका विचार फिर काल का विचार फिर अवस्था का विचार फिर उस प्रायश्चित्त की शक्ति सामर्थ्यका विचार और उस पापके स्वरूप का विचार करें कि जिसके ऊपर प्रायश्चित्त देना चाहलगया ऐसे पूरे यत्नों से प्रायश्चित्तकी कल्पना करनीयोग्य है कि जिससे कर्ता पुरुषके प्राणां की हानि दृष्टा न होजाय यही इसका तात्पर्य है और यहभी तात्पर्य है कि अतिशय छोटे पाप में बहुत बड़ा प्रायश्चित्त न होजाय ॥ २९४ ॥

२९४ अधिकोक्तिः—उक्त बातों का व्योरा यहां समझाते हैं कि जहां कर्ता पुरुष की प्राणांतिक प्रायश्चित्त की आज्ञा न होने परभी केवल व्रतमात्र के आ-

चरणाँ में किसी कठिनार्द्र से प्राण जाते रहें तहां उसके प्राण वृथा जानेके सिवाय
 एक यह भी दोय खड़ा होता है कि प्रायश्चित्त ही पूरा न होसका क्योंकि बीचही
 में उसकी कठिनता से प्राण चले गये—तिससे इन दृष्टान्तों को समझना चाहिये कि
 जैसा आगे ३१२ तीन सौ बारहवें मूल प्रलोक से योगीश्वर कहेंगे कि (दिन में
 वायु को पीता हुआ खड़ा रहि कर रात्रि को जल में बैठके बितावें फिर दूसरे दिन
 सूर्य निकसि आने पर एक हजार गायत्री जपिकर शुद्ध हो जाता है परन्तु जिसने
 ब्रह्महत्या करीहो वह इस प्रायश्चित्तसे नहीं शुद्ध होगा किन्तु यह अन्य पापोंका
 चर्चा है) ध्यान करी कि यही प्रायश्चित्त किसी से करवाया जाय तहां देश का
 विचार से होसकता है कि हिमालयके निकर वर्ती देशों में जलका निवास न कर-
 वाना चाहिये ऐसेही कालका विचार है कि अति शीत के ऋतु काल में जल का
 निवास वर्जित करै अर्थात् हिम देश और हिम काल को बचाइ कर जल का नि-
 वास कल्पित करै इत्यादि और बातें भी देश काल की अपेक्षा में समझनी— एवं
 वयस् अवस्था का विचार है कि जहां नवत्रे वय का बढ़ा या बारह वय के भीतर
 का बालक प्रायश्चित्तो ठहिरै तहां यदि बारह वय वाले प्रायश्चित्त उन पर
 आदेश किये जायें तौ प्राणों की विपत्ति आनि परैगी तिससे बीच को अवस्था
 वाले पर बारह वय का व्रत आरुढ किया जासकता है कि जिसका देह सर्वथा बल
 वाव होय। इसी लिये किसी स्मृति का यह वचन है (क्वचिद्वैक्वचित्पादः) कहीं
 आधा कहीं चौथाई प्रायश्चित्त बतावें इस वचनसे बूढ़े बालक आदिका हास्यपी
 निर्वाह दर्शाया है कि इनको पूरा व्रत न देना चाहिये सो यह न्याय पहिले भी
 जहां तहां बड़े प्रकरणाँ में बरान हो चुका—एवं शक्ति का यह विचार है कि जिस
 प्रायश्चित्त में धन का दान या तप का करना आदि कोई बात नियत होय सो भी
 उसकी शक्ति के अनुरूप कराना उचित है क्योंकि (पावेधनं वापयति) यह वचन
 कहीं लिख चुका है कि अच्छे पावों को खूब धन समर्पण करै यह नियम निर्धन
 के साथ नहीं चल सकता है—तथा उद्रिक्त अति अंश पाव पुस्त्योंके निमित्त में पराक
 आदि व्रतों का विचार है कि जैसे बारह दिन कोरा लंघन करवा यह पराक होता
 है जो किसी निमित्त पर करना लिखाहो और वही निमित्त किसी ऐसे पावपुस्त्य
 पर आरुढ होय जो जप तप करने में समर्थ हो तौ फिर पराक आदि व्रत करवाना
 कुछ न्यायात्मक नहीं बल्कि वेद की संहिता आदि के पाठ या साधना आदि जप
 करवाने योग्य ठहिरेंगे। एवं राजा आदि कोई जो ब्रूत या धन दान कर सकने में

समर्थ हो तिसपर भी पराक आदि व्रत का उपदेश देना अनुचित है। एवं जहां कोई स्त्री या शूद्र जाती पुरुष प्रायश्चित्त होय तहां उसके पाप का प्रायश्चित्त यद्यपि जप पाठ आदि शास्त्र में नियत होय जो विद्या से सर्वाधिक है तथापि स्त्री और शूद्र को इन कामों की आज्ञा देना न्याय नहीं है अर्थात् उनसे व्रतही करवाने चाहिये। इन्हीं कारणों से ५४ चौवन परिच्छेद में सब जीवों की हिंसा पर जुदे जुदे दानोंके स्वस्वप दानि पीछे दोसौ चौदत्तर मूल श्लोक से योगीश्वर ने यह कहा था कि (हाथी आदि की हिंसा पर लिखे दान देने में असमर्थ होय सो प्रत्येक दान के पल्लवमें कच्छू व्रत साथै) इसी प्रकार किसी और स्मृतिमें निरोगिनि स्त्री तथा रोगी पुरुषको भी तप करने में असमर्थ जानिके प्रायश्चित्तमें कमी करने की यह आज्ञा है कि (छियां तथा रोगी पुरुष भी नियत प्रायश्चित्त का आधा करवाने के योग्य हैं) इसी २६५ मूल श्लोक में पाप को भी सोचिके प्रायश्चित्त विचारना कहा गया तिसमें यह सोचना है कि प्रथम उस रीति से पापों के दर्जे कायम करें कि जैसा २४२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्ति में डील कहा गया था फिर उस प्राप्त किये दर्जा के भीतर यह सोचो कि यह पाप प्रत्यय सहित या बिना प्रत्यय के ठहिरा फिर यह सोचो कि सबसे प्रथम एकही बार का यह पाप है या इसीको बारबार करते बहुत काल बीति चुका है तिस पीछे ग्रंथ यत्नों से धर्म शास्त्र की समस्त आद्योपान्त देखि भाँलि के प्रायश्चित्त निकासैं कि जिससे कोईसा दूयण उसमें न रहिजाय—तिसमें एक यह भी डील विचारना कि इच्छा बिना धोखा से उत्पन्न हुये पापों पर जितना प्रायश्चित्त लिखा हो तिसको इच्छा से पाप करने घाले पर हुना ठहिराना चाहिये और उसी का चौगुना उसपर कि जिसने इच्छा सहित बार बार का अभ्यास किया हो यह अन्य स्मृतियों का सिद्धांत है ॥ ० ॥ तथैव ६० सांति परिच्छेद में २८६ दोसौ छियासी मूलश्लोक देखीं उसमें कहाथा कि (भूँठा कोई किसी को महा पापों से या गौहत्या आदि उपपापों से दोय लगावै सो एक सहीना भर जलके आहार से रहिकर जप करै तब शुद्ध होय) यह प्रायश्चित्त उस स्थल पर यद्यपि सामान्य रूप से एकही कहा गया था तौभी अशोक्त सत्यादा के विचार से उसमें यह सोचना चाहिये कि महा पाप और उपपाप का एकही प्रायश्चित्त होना अयुक्त है तिससे उसमेंभी हर एक दर्जाके पापोंपर व्यवस्था कल्पित करनी चाहिये अर्थात् जिसने बड़े बड़े पापोंका भूँठा दोय लगाया हो तिसको वही एक सहीनेका पूरा प्रायश्चित्त कराना किन्तु जिसने उपपापों का

भंडा दोय लगायाहो तिसके लिये महीना में कुछ कसो अपने न्याय रूपो विचार से करदेनी चाहिये तो यह भी एक पापहो का विचार है ॥ ० ॥ इसके उपराल विरले ऐसे भी वचन हैं कि (हसितजृभितास्कोटनानिनाकस्मात्कुर्यात्—तथा—नोद न्वतोऽभिसिन्नायान्नचश्मश्रादिकर्तयेत् अन्तर्वत्स्याःपतिःकुर्वन्नप्रजाभवतिधुःम्) इत्यादी प्रायश्चित्तनोपदिष्टं तत्वापिदेशाद्यपेक्षया प्रायश्चित्तकल्प्यं=अर्थात्—अकस्मात्ही निरर्थक हमना या जंभाना ऐंझाना ताज टोकना आदि आकारों को न करे यहनियेव कियागया है—तथा—गर्भवती नारी का पति समुद्रके जलमें न स्नान करे न दाही मूछ आदि कटावे क्योंकि ऐसा करने वाले को मृतान पैदा नहीं होती है यह निश्चय जानां) इत्यादि और भी अनेक ऐसे वचन हैं कि जिनमें विरले आचरणों का नियेव या उनका दोय भी दर्शाया गया है परन्तु प्रायश्चित्त कुछभी नहीं कहा है कदाचित् इन्हीं दोयों का प्रायश्चित्त कल्पित करना परै तहांभी देश काल आदि का विचार जैसा मूल श्लोक में कहिचुके सो सब करना चाहिये ॥ ० ॥ इस पर वादी प्रुण्य तर्कना खड़ी करता है कि पाप रूपी निमित्तमात्र कहीं भी कोई ऐसा नहीं दिखाइ देता है जिसका प्रायश्चित्त न कहा गया हो क्योंकि यदि कदाचित् किसी पापका प्रायश्चित्त लिखने से रहिभी गयाहो तिसका भी प्रायश्चित्त आगे ३०६ तीन खी छे सल श्लोक से योगीश्वर आपही कहा चाहते हैं और गौतम ने भी (गतान्येवानादेशैर्विकल्पेनक्रियेरन्नित्ये कादादयःप्रतिपादितः) एक दिवस आदिके व्रतरूपी प्रायश्चित्त दर्शाव कर पीछेसे कहि दिया है कि इन्हीं प्रायश्चित्तों को विकल्प से उन पापों परभी करै कि जिनपर कोई प्रायश्चित्त न कहागया हो—इसका समाधान क्रियाजाता है कि यह तर्कना तुम्हारी सची है और ३०६ सल श्लोक आदि में उपदेशभी सामान्य भाव किया जावेगा सोभी होउ उसमें कुछ विरोध यहां नहीं है क्योंकि यहाँ मूल श्लोक में सर्व देशकाल आदि को अपेक्षा पर इसवात को कल्पना का अवसर टोक दीक है और तुम्हारी तर्कना पर तर्कना सही यह उत्तर है कि अभी ऊपर जो हमने जंभाने आदि बातोंपर कल्पना करना कहिचुके जो वह नहीं कही जाती तो क्या ३०६ मूलश्लोक वाली आज्ञा से काम यहाँ चल सक्ता क्योंकि वहांपर ओ१०० प्राणायाम करने कहेगे सो हसित आदि छोटे छोटे दोयों पर सर्व्व इतना बड़ा प्रायश्चित्त अयुक्त है तिससे यहाँ को कल्पना से यह तात्पर्य है कि उन प्राणायामों को उपपाय आदि छोटे दर्जा के पापों से दोय लगाने वाले पर पूरा संस्कार न आखड करै अर्थात् जैसा पाप हो तैसीही

प्राणायामों की संख्या थोड़ी या बहुत मौके भीतरही कल्पित करें अथवा जिस दोषी की निर्गुणी होने आदि से प्राणायाम करने की योग्यता या सामर्थ्य न हो तिसके लिये अपने बुद्धिके विचारसे कोई और प्रायश्चित्त सोचें कि जिसकी वह करसके ॥ ० ॥ वारी पुरुष फिरभी एक प्रश्न खड़ी करता है • क्योंजो पापका छोटा-पन कैसे जानाजाय जिसके द्वारा प्रायश्चित्तमें कमीकरें या कुछ और कल्पनाकरें • इसमें यह उत्तर न देना चाहिये कि प्रायश्चित्त के छोटापन से पाप का छोटापन जानाजाता है क्योंकि मेरा केवल उन्हीं पापों का यह प्रश्न है जिनके लिये कुछ प्रायश्चित्त न कहागया हो — उत्तर • यह प्रश्न तुम्हारा सत्य है परन्तु ऐसे तुच्छ पापों का छोटापन या बड़ापन जानना स्वतः सुगमहोता है क्योंकि कुछ तो उनकेअर्थवाद की चर्चा कहिने सुनने मात्र सेही बोध होजाता है फिर यह भेद देखाजाता है कि उसने ज्ञानि ब्रह्म के यह दोष किया यथा • विनाजानेकिसी धोखा आदि से होरा-या—इसके सिवाय दंड के छोटापन बड़ापन सेही दोष का छोटापन बड़ापन समुक्ता जासक्ता है, उसीके अनुसार प्रायश्चित्त का छोटापन बड़ापन कल्पित होसक्ता है— इसका दृष्टांत देखो ७४ चौहत्तर परिच्छेद में २६१२६२॥२६३॥ इन्हीं तीनश्लोकों को अधिकोक्तों सहित विचारें कि उनमें ब्राह्मण को ब्राह्मण मात्र कोई डगडा उगावें या लगावें या अधिकचोट लगावें इत्यादि भेदों के अनुसार प्राजापत्यआदि छोटे बड़े प्रायश्चित्त कायम किये गये केवल सजाती सवर्णा के दोषपर दर्शायेगये सो वह एक नमूना है • कदाचित् वेही दोष ऐसे दृष्टसे उत्पन्न होयें कि ऊँचे वर्ण वाला नीचे वर्णको डगडाआदि उगावें तब उसके दण्डकीन्यूनताके अनुसार उन्हीं प्रायश्चित्तों में न्यूनता कल्पित करनी होगी अथवा नीचे वर्ण वाला ऊँचे वर्ण को बंडाआदि उगावें तहाँ उसके दण्डकी बढवारी अनुसार उन्ही प्रायश्चित्तों में वृद्धि कल्पित करनी होगी • दण्डके अनुसार जो विचार करता कहा गया सो व्यवहार सूर्यादि परिपारी में दंडविधान के स्थल पर जहाँ (प्रतिलोभ्यापवाधेयु डिगुरास्त्रि शुशोदनः) यही मूल श्लोक मिलें तहाँ इसकी अविकीर्ति पर्यन्त दशाख्या देखो तब यह बात समझमें आवैगी क्योंकि आचार सूर्यादि १ व्यवहार सूर्यादि २ प्रा-यश्चित्त सूर्यादि ३ ये तीनों कांड एकही वर्म शास्त्र के तीन अंग हैं सो तीनों यद्य-पि जुदे जुदे रक्खे गये हैं परन्तु तीनों का सबव परस्पर सबका मय से मिला हुआ एकही तात्पर्य है ॥ २६४ ॥

यहां तक सर्वथा पापी पुस्त्यों के प्रायश्चित्त वर्णान किये गये परन्तु इसमें यह

शंकाहै कि जो पापी अपने उद्धतपनेसे नकरना चाहै तब क्या करना चाहिये तिसका उपाय अगिले परिच्छेदमे दर्शावैगे और उसकाभी कि जिसने प्रायश्चित्त पूरा किया ॥

अथास्वीकृतप्रायश्चित्तपतितस्यपरित्यागकरणेस्वीकृत प्रायश्चित्तनस्यसत्कारकरणेचायंपरिच्छेदःषट्

संप्रतितमः(७६)

इस परिच्छेद में दो विद्वी जानी जायँगी कि जे कोई पतित पापी लोग प्रायश्चित्त करना नहीं चाहै तिनके भाई बन्धु इकट्ठे होकर इस रीतिसे जाति बाहर करें—दूसरे जो प्रायश्चित्त को स्वीकार करिके पूरा करिआवै तिनको इस रीतिसे फिर जाति में मिलावै० तिसमेंभी स्त्रियोंके निमित्त कोई जुदा प्रकार कहाजायगा० और बिरलों की कुछो दर्शाई जायगी कि अनुकामुकों से प्रायश्चित्त करि आने पर भी भेल मिलाप सत्कार आदि व्यवहार न करना चाहिये ॥

(दासीघटविधिः)

दासीकुंभेवहिर्गामाग्निनयेरन्यवांघवाः । पतितस्यवाहिःकुर्युःसर्वकायंयुचेवतम् २९५

अर्थ—दासी कुम्भको ग्रामसे बाहर पतितके लक्ष्मीय वांघव लेजावै तहां उसको सब कामोंसे बाहिरा करें=अर्थात्—पतितके जे कोई भाई बंधुआदि जातिसंबंधी हों सो सब इकट्ठे होकरसदा दासी को दूत बनाकर प्रथम उसीपतितकेपास खबर भेजें कि प्रायश्चित्त न करनेके हेतुसे आज ऐसा प्रबन्ध होता है (यदि वह दासीसे इस बातके समाचार सुनिकरभी अधीनीसे प्रायश्चित्तका स्वीकार न करै तो) (फिरउसी दासी के हाथ से भरवाये जलका भरा कुम्भ माटी का घड़ा उसी दासी के नुझपर धराकर उसे आगे लेकर सर्व भाई बंधु उसके पीछे पीछे साथ जाकर वस्तीसे बाहर किसी विख्यात तीर्थ आदि के स्थलपर धरिके लुटकावैये अर्थात् त्यागरूपसेफँक-वावै (यही दासी कुम्भ कहाता है ॥ २९५ ॥

२९५अधिकोक्तिः—दासी घटको त्यागनेकेसमय उसी जीवतेहुये पतितके नामसे मरेहुये प्रेतोंकीतरह जलदान कियाजाताहै और चतुर्थी नवमीआदि रिक्ता तिथियों

मे यह काम करना कहा है=तदाह मनुः=पतितस्योदककार्यसंपिडैर्वांधवैःसह निन्दितेऽहंनिसायाह्नेजात्यृत्विग्युस्तन्निधौ=अर्थात्-निन्दित खोंदेवार खोंटीतिथिकेरोज संध्या के समीपी कालमें दिनका पाँचवां भाग वर्तमान होनेपर समस्त जाती लोग जिनसे भाजी चाइन का व्यौहार हो तिनको इकट्ठेकरिके उनके मनुख और गुरु पुरोहित ऋत्विजआदिके मनुख पतितके सपिडलोग उसके बांधवोंको साथलेकर पतितके नामका जलदान करें यह मनुने कहा=और यहभी मनुने कहाहै कि=दासी घटसपांपूर्णापर्यस्येत्प्रेतवत्पदा अहोरात्र मुपासीरन्न शौचंवांधवैःसह=अर्थात्-जल के भरे घट को दासीअपने पैर से उलटा करें जैसे मरेप्रेतकेलिये कियाजाताहै उभीतरह लुटकावैऔर सब संबंधीजन बांधवोंसहित सकादिन रातिभर इकट्ठेरहिकारव्रतारखें और सुतक मार्गे=मिताक्षराकार कहिते हैं कि घट का फेंकवाना जलदान पिडदान आदि प्रेत कर्म कराने के बाद चाहिये क्योंकि आये गौतम के कहे विधान में यही देखि परता है ॥ ० ॥ यथा गौतमः= तस्यविद्यायोनिरुत्सवन्धाश्चसन्निपात्य सर्वा गृध्रदादीनि प्रेतकर्माणिशुद्ध्यःपाशंचास्यविपर्यस्येत् दासःकर्मकरोवापाशमानीय दासीघटानुपूरयित्वादक्षिणाभिमुखोयदाविपर्यस्येत् इदंअमुकमनुदकंकरोमीति नाम ग्रहांतंसर्वेन्वालभेरदप्राचीनावीतिनोमुक्तशिखाविद्यागुरवोयोनिसंबंधाप्रचवीश्येरन्न तोऽपःउपस्पृश्यग्रामंस्त्रिविशेयुरितिगौतमः=अर्थात्-उस पतित के विद्या संबन्धी लोग सहपाठी या पढने पढानेवाले और योनिसंबन्धीलोग जिनकी लडकियां व्याहिके उसकेघर आई हैं और गुरु पुरोहित आदि जो उसके कहलेंहैं तिनके इकट्ठेकरिके उसके सपिड लोग उदक दान आदि प्रेतकर्म जो कुछ दाह के दिन सकही रोजहोते हैं सो सब करें और इसके नामका पात्र अर्थात् दासी घटभी उलटवावै तिसकाजुदा यह विधान है कि उन्हीं सपिण्डों का दास टहलुआ या उसके न होने पर कोई और ही कर्म कर मजदूर मट्टी का घड़ा लाइकर उसमे दासी घट नामसे जल भरिके वही दास या दासी दक्षिणा दिशा की मुह किये उसी दासी घट को जब उलटा करें तभी सपिड और बांधव लोग पापी का नाम लेकर ऐसा मन्त्र बोलें कि (अमुकमनुदकं करोमि) फलाने की आज से अनुदक भागी में करता हूँ अर्थात् किसी से जल दान पाने का भागी वह नहीं रहा न किसी अपने कुटुम्बी को जल दान करनेमें शामिल होसकैगा० इस मंत्र को बोलते समय ये सब लोग जनेऊ की दाहिने कांधे पर बदलि के और चोरी की शिखा की खोलि के आपसव्य होकर सब बोलें फिर पीछे से सब लोग आपस में परस्पर यथा क्रम से मिलें भेटें और इसी मंत्र का बोध

सबको कराते जायें यह सब काम होते हुये पापी के विद्या गुरु और योनि संबंधी
 आदि सब नाते दार लोग देखें तिसके वादि जलमें स्नान करिके अपने ग्राम बसतों
 को चले जायें यह शौतम ने कहा ॥ ० ॥ परन्तु यह त्याग रूपी कर्म कराना उमो
 दशा में आवश्यक है कि जब बंसुओं से प्रेरणा किया हुआ भी प्रायश्चित्त न करे
 अर्थात् बन्धु जनों को यह उचित है कि पहिले बारम्बार प्रायश्चित्त कराने की
 प्रेरणा ताकीद उसपर करे—यदाह शंखः—तस्यगुरुवांधवानराजसमक्षदीयानभित्या
 प्यानुभादय पुनःपुनराचारंलभस्वेतिसयदेवमग्न्यनवस्थितमतिःस्यात् ततोऽस्यपात्रंवि
 पर्यस्थेदिति—अर्थात्—उस पापी के गुरुजन और बन्धुओं को राज अदालत के स-
 न्मुख पापीके दोषों को अच्छीतरह कहि समुभाइके कि अवहं प्रायश्चित्त करिके
 फिर अच्छे आचार को पकड़ौ—सेवा कहिने पर भी यदि वह अपनी समुझ को
 ठिकाने पर न लावें तब जाकर उसके नाम का दासीघट उलटा करवायें (यह शंख
 जीने कहा—दासी घट उलटा होचुकने के वादि ये सभी बांधव आदि उक्त पापी को
 सब कामों में बोलना चालना पास बैठारना आदि सस्कारों से बाहर करे—तदाह
 मनुः—निवर्तेरस्ततस्तस्मात्संभायणा सहासने दायद्यस्यप्रदानंच याथाचैवहिलौकि
 की—अर्थात्—दासी घट की विधि पूरी होजाने से अनन्तर उस पापीमें बोल चाल
 और पास बैठारना और पैदक घनका भागदेना या भाजी वाइने का व्योहार देना
 आदि बातें निवर्तित होजायें और भी जो कुछ संसारी व्यवहार देन लेन आदिहोते
 हों सो भी बन्द किये जायें—इसपर भी यदि कोई उसके साथ झेह आदि कारणाों
 से बोलें तिसको प्रायश्चित्त कराया जाय—यथा (अत ऊर्ध्वं तेनसंभाष्य तियेदेक
 राधंजपन्साविधीमज्ञानपूर्वं ज्ञानपूर्वचेत्विराषिसति) अर्थात्—त्याग होजानेके उपरांत
 उसके साथ कोई बिना जाने बात करे सो एक दिन राति भर गायत्री जप करते
 हुये वितायें यह उसका प्रायश्चित्त है पर जिसने उसका त्याग होना जानते हुये
 बात चीत करी हो सो तीन दिन राति भर गायत्री जप करते हुये एक ठिकाने पर
 बैठा रहे ॥ २६५ ॥

(अथकृतप्रायश्चित्तस्यप्रत्यावर्तनविधिः)

यह बात कहा चाहते हैं कि बंसुओंके त्याग देनेसे जिसको पछतावेसे वैराग्य
 आया तिससे त्याग होजानेके वादि जिसने प्रायश्चित्त किया अथवा दासीघट उल-
 टा होनेके बिनाही बंधुओंके समझानेसे प्रायश्चित्त किया अथवा किसीकी प्रेरणा

बिना आपही जिसने प्रायश्चित्त किया तिनकी साधना पूरी होने बादि क्याकरना चाहिये तिसकी आगे पांचश्लोकों में आपही योगीश्वर वर्णन करेंगे ॥

(नूतनघटविधिःनिवर्तितप्रायश्चित्तस्यसत्कारः)

चरितव्रतआयातेनिनयेरन्नबंधटम् । जुगुप्सेरन्नाऽप्येनसंविशेयुतचसर्वशः २१६

अर्थः—प्रायश्चित्त रूपी व्रतसाधन करिके लौटिआने पर सपिंड आदि बंधू लोग नवीन घटभरिके लेजावें और इसपुस्त्यकी किसीतरहसे कुछ बिन्दा न करें औरसब तरहसे उसमे अपनाहेलमेलभीकरें ॥ ध्यानकरो यहाँपरनवीन घटवतानेसेयहतात्पर्य दर्शाया है कि पूर्वोक्त दासीघट के विधानमें नवीनकी खसूसियत नहूँडनी ॥२१६॥

२१६ अर्थिकोक्तिः=घटके साथ सत्कारसे घर ले आना कहा- इसमें दो भेद हैं कि आगे योगीश्वरके ३०० तीनसौ मूलश्लोकमें (घटेऽपवर्जिते) इसपदसे घटका त्यागना भी प्रतीत होताहै और मनुकी श्यारहवें अध्याय मे १८६ । १८७ इनदोनों श्लोकसे भी त्यागना प्रतीत होता है फिर इन्हीं में अस धातुके अर्थ भेद से घट का साथ लेआनाभी सिद्ध होताहै तथैव आगे गौतमके विधानमें भी साथ लेआना सिद्ध होताहै-इसी प्रकार कहीं लोकमें समक्ष भी यह देखा गया है कि बंधूलोग,जलाशयसे घट भरिके उसके आगे आगे साथ लेकर घरको जातेहैं- तिससे निश्चितहूआ कि दोनों भेद ठीक ठीकहैं जहाँ जैसा सम्भव होय तहाँ तैसाही वर्ताव कियाजाय- और भी आचार मर्यादा परिपाटीमें सातवां मूलश्लोक तथा उसीका अभिप्रायार्थ देखो कि दो रीतों मे विकल्प से कोत्रे एक रीति अपनी इच्छा से अंगीकार करें ये सभी लक्षणा भेद आगे समझिलेना ॥ ० ॥ पवित्र जलाशयमें स्नान कराइके घट को साथ घर को ले आना चाहिये=अथाह मनु-प्रायश्चित्तेतुचरितेपुर्णाकुंभसपांनवध तेनैवसार्धंप्रास्येयुःस्नात्वापुशयेजलाशये१८६ ॥ सर्वश्रुतघटप्रास्यप्रविश्यभवनंस्तत्कम् सर्वग्राज्जातिकायांसायथापूर्वसमाचरेत् १८७=अर्थात्-प्रायश्चित्त करिके आने पर उसके सपिंड समानोदक आदि बंधूलोग उसी के साथ जाकर पुनीत जलाशय में सभी स्नान करिके जलके भरे नवीन घट को (प्रास्येयुः) जल में फेंकें या ग्रहणा करिके साथ लेजावें ये दोनों अर्थ ठीकहैं १८६ ॥ वह प्रायश्चित्ती पुस्त्य उसी घट को जलाशयमें (प्रास्य) फेंकिके या जल ग्रहणा करिके अपने घर को जाइ प्रवेश करिके जातिसवधीसव कार्य करनेलगें जैसे पहिले किया करता हो १८७ ॥ यद्यपि अर्थ दोनों ठीकहैं तथापि जल भरिके साथ लेआना अर्थ उत्तम है क्योंकि गौतम ने

इस बातपर एक जुदा विधान कल्पित किया है जिसमें भी यही अर्थ देखि परता है
 सो सब आगे देखो फिर इसकेमध्ये तीनसौ की अधिकोक्तिभी देखना ॥ ० ॥ अत्राह
 गौतमः=यस्तु प्रायश्चित्तेशुद्धो तस्मिन्कुम्भे शातकुम्भ मयपात्रंपुराय तमातद्वात्पूर
 यित्वा स्रवन्तीभ्यो वा ततएनमप उपस्पृशेयुरथास्मै तत्पात्रंदद्युस्तत्संप्रतिगृह्यते (शा
 ताद्योऽशान्तापृथिवी शान्तं शिवमन्तरिक्षं योरोचनस्त मिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिः पाप
 मानीभिस्तरत्समन्दीभिः कृष्णांडैश्चाज्यं जुहुयात् हिरण्यदद्यात् गां चाचार्याय) य
 स्य प्राणान्तिक प्रायश्चित्तं समृत शुद्धो त् • स तदेव शान्त्युदकसर्वेषूपपातकेष्वपि • तत
 एनकृतप्रायश्चित्तं तेनैव कृतस्येयुः सर्वकार्येषु क्रयविक्रयादियु तेन सहस्रव्यवहारेयुः=अ-
 र्थात्-यह सब गौतमने आपही कहा है कि-जो कोई प्रायश्चित्तसे शुद्ध हो जाय तिस
 पर कुम्भविधि करनेमें सुवर्ण का बना घट होय अथवा चाँदी आदि माली पर्यन्त
 किसी औरही धातुका पात्र होय तभी उसमें कुछ सोना डार देना चाहिये तिसको
 पवित्र तालाव कुराह या नदियों से भरके उस प्रायश्चित्त की आगे करके साथ
 साथ हो जावें किसी जलाशय पर अर्थात् अभी पहिले घरके भीतर वह न घुसै उसी
 जलाशयमें इसको स्नान करवावें इसके अनन्तर वही जलका भरापात्र उसके हाथों
 में समर्पण करें तिसको दोनों हाथसे अच्छे योंभिकर जपकरें अर्थात् यदि आपही
 वेदमन्त्रों के जपनेमें समर्थ हो तो आपही जपें अन्यथा किसी वेदपाठोकी अपने साथ
 प्रतिनिधि बनाकर उसके मुखसे जपकरावें और घोका होमकरें तिसके लिये (शा
 ताद्योऽशान्तापृथिवी आदि ऋचाओं के नाम चिह्न भी दे दिये हैं कि इत्यादि यजुर्वेद
 की पावमाली और तरत्समन्दी ऋचाओंसे जपकरें तथा कृष्णांड नामके वेदमन्त्रोंसे
 घृतका होम करें और सोना चाँदी तथा गाय भी आचार्य की दान करें कि जिसने
 यही जप होम करवाया हो) किन्तु जिसका प्राणान्तिक प्रायश्चित्त ठहिरा हो जैसा
 ब्रह्महत्या आदिके प्रकारगोमे कहाया कि अग्निमें जलिजाना आदि प्रायश्चित्तही
 सो भरणानेही शुद्ध होता यह घटको विधि उसके लिये नहीं है • यही शान्ति का
 उदक रूपी घट विधान सब तरह के उपपातकों में भी जानना • तिसके अनन्तर
 इस प्रायश्चित्त की पुरुषको वे वन्दूजन किसी प्रकारसे भी न कोसैं अर्थात् पहिले दोय
 घावत कोईसी निन्दा उसकी न करें और सब कार्यों तथा क्रय विक्रय आदि सौदा-
 गरी के व्यवहारोंमें भी उसके साथ अच्छी रीतिसे वर्तावा करें कि जो कुछ पहिले
 कृतिगयेये यह गौतम ने कहा (इसका विधान थोडासा और नास्ती रहा सो आगे
 ३०० के मूलश्लोकमें देखो ॥ २६६ ॥

इस परिच्छेद में यहाँ तक २६५ । २६६ दोसो पंचानवे छानवे को दोनों मूल श्लोकसे जो कुछ व्यवस्था पतित पुरुषको निमित्तपर कही गई सो सब नीचेके श्लोक से पतिता स्त्रियोंके निमित्त पर भी अतिदेश उतारा जायगा ॥

(स्त्रीष्वप्यतिदेशः)

पतितानामेपएवविधिःस्त्रीणांप्रकीर्तितः + वासोऽहंतिर्कंदेयमन्त्रेवासःसरक्षणम् २९७

अर्थः—पतिता स्त्रियोंकी भी यही विधि कही गई—अर्थात्—जैसा दोसो पंचानवे २६५ श्लोकसे पतित पुरुषोंका दासीघट उलटा करना या जलदान पिण्डदान करना आदि कहा गया वही सब स्त्रियोंकाभी समझलिया और जैसा दोसो छानवे २६६ श्लोकसे प्रायश्चित्तकिये पुरुषका सत्कार करना कहा गया वही सब स्त्रियोंकाभी जानना (यह अतिदेश धर्मका स्वरूप है) तथापि पुरुषोंकी अपेक्षा यहाँ स्त्रियोंकी निमित्तपर थोड़ीसी विशेषसर्यादा एक जुदा है सो उत्तरार्धमें देखो : घरके समीपवासदेना तथा अन्नवस्त्रभी रक्षासहित = अर्थात्—यही इतना नियम विशेष है कि जो कीर्ति स्त्रियाँ अत्यंत पतित ठहरेँ और प्रायश्चित्त को न करें तिनका दासीघट विधान आदि कर्म होजाने के बाद भी कहीं बाहर न जाने देवें परन्तु घर में भी घुसना उनका निषिद्ध है तिससे घरके समीप ही किसी फूस पत्ते आदि की बनाई कोपड़ीमें निवास करावें और प्राणवत् रहने योग्य मोटा अन्न और मैले पुराने वस्त्रदेते रहिकर ऐसे चौकसाई से राखें जो किसी पुरुषका समागम उसमें न होसके (इस अत्रोक्त नियम से यह बात भी आपही सिद्ध होती है कि जिन प्रायश्चित्तों की साधना पुरुषों की जंगल या वन विदेश में जाकर करनी कही थी • कदाचित्त वेही प्रायश्चित्त कहीं पर्देदार स्त्रियों पर आरुढ़ होयें तभी उनका बाहर जाना उचित न होगा किन्तु इसी रीति से घर के समीप जुड़े स्थान में रहिकर व्रतादिक साधन करैगी या घट पुरुषों की रक्षा साथ तीर्थ आदि के स्थान पर कि जैसा कुछ विवेकी विद्वानों के विचार से ठहरे • बल्कि ऐसे ही अटपटे विचारों के अर्थ में पछत्तर ७५ का परिच्छेद सबसे जुदा रक्त्वा गया है कि सब तरहकी टेढ़ स्पेड वाली बातोंकी गंजायश उसमें सीची जासक्ती है ॥ २६७ ॥

यहाँ यह सन्देह खड़ा होता है कि वे अत्यन्त पतिता स्त्रियाँ कौन हैं जिनके लिये यह जुदी विधि परित्याग मध्ये कही गई क्योंकि पतित अनेक भाँति की होती हैं तिनमें इनकी क्या पहिचान होगी सो अगिले मूल श्लोक से द्योति है ॥

(स्त्रीणांअतिपातित्यचिह्नानि)

नीचाभिगमनंगभपातनभर्तृहिंसनम् । विशेषपतनीयानिस्त्रीणामेतान्यपिपुनम् २९८

अर्थः—नीच से संगम० गर्भ का गिराना० भर्ता का वध करना० स्त्रियोंको ये भी तोन कर्म निश्चय पूर्वक विशेष पातित्य का हेतु हैं—अर्थात्—जो जो महा पातक आदि पुरुषों के पातित्य का हेतु कहे गयेये तिन कर्मों से स्त्रियां भी पतित होती हैं परन्तु स्त्रियों के अश्रेष्ठ तीन कर्म अधिक हैं जिनसे अत्यन्त पतित होजातीहैं० तिनका यह व्यौरा है कि एक जो हीन वर्ण आदि नीची जाति के पुरुष में गमन करे० दूसरा कर्म जो अपना या विराना किसी स्त्रीका गर्भ उसके कहिने या न कहिने आदि किसी तरह से गिराती फिरै और यह गर्भ चाहें ब्राह्मणों का यद्वा और ही किसी वर्ण की स्त्री का या अपनेही पेट का गिराया हो तो हर मरत में पतित होगी० तीसरा कर्म भर्ता का वध करना चाहें विय देकर या औरही किसी प्रकारसे मारना और यहां पर भर्ता शब्द से वह पुरुष जानना जो स्त्रीका भरण पालनकर्ता हो किन्तु चाहें उसका सजाती विवाहित या विजाती विवाहित या धृक्क आदि किसी प्रकार का पति हो तिसका ब्राह्मघात करना या करवाना भी भर्तृहिंसन कर्म कहाता है तिस कर्म के करने वाली पतिव्रती कहाती हैं ॥ २९७ ॥

२९७ अधिकोक्तिः—पुरुषों के पतित हो जाने मध्ये इतने कारणा प्रसिद्ध हैं १ महापातक २ अतिपातक ३ पातक ४ अनुपातक ये चार तौ एक ही एक बार होने से पतित बनाइ देते हैं पाँचवें ५ उपपातक कई बार होजाने पर पतित बनातेहैं ऐसे ही इनसे छोटे छठे दर्जे वाले पाप इच्छा सहित अनेक बार होने सेवेभी कर्ता पुरुष को पतित बनाते हैं येही सब स्त्रियों की भी पतित करते हैं (यह मूल श्लोक में अपि शब्द से ध्वन्यर्थ लिया गया) परन्तु स्त्रियोंको तीन पातक इन सबसे उपरालू भी होतेहैं—एवंशोनकोप्याह=पुरुषस्ययानिपतन निमित्तानिस्त्रीणामपितान्येव ब्राह्मणोहीनवर्णसेवायामधिकपततीति=अर्थात्—ऊपर की वार्ताको शोनकने भी दृढ़ कियाहै कि पतित होजानेके जितने कारणा पुरुषोंके लिखे कहेगये वेही सर्वास्त्रियों को भी होतेहैं परंच ब्राह्मणी स्त्री यदि अपनेसे हीन वर्णोंकी सेवा सर्गात में पहुँचै सो अत्यन्तही पतित होतीहै=वशियस्तु=जीसास्त्रियापातकानिलोकेवर्गविशेषविदुः भर्तृवधोभूरादृत्यास्वस्यगर्भस्यपातनम्=अर्थात्—भर्ता का वध० भूरा हत्या जो गौर स्त्रियोंका गर्भ गिरावै या किसी का छोटा बचा मार डारे० अपना गर्भ गिराना० ये

तीनमहापातक धर्मज्ञलोग स्त्रियोंके वृत्तातेहैं (इसवचनका यहतात्पर्यनहींहै किइन तीनोंसेउपरालुपातकस्त्रियोंकेनहींहैंक्योंकिउन्होंनेविशेषकाऔरभी वचनआगेदेखीं) पुनरेवविशेषः=चतस्रस्तुपरित्याज्याःशिष्यगायुर्गुणाचयापतिघ्नीचविशेषेताजुंगितोपगताचया—इतिचतस्रसामेवपरित्यागइत्युक्तवृत्तामांप्रायाःप्रचत्तमचिकीर्यतीनांसंध्ये चतस्रसामेवशिष्यगादीनां चैलाचगृहवासादिजीवनहेतुत्वाद्युच्छेदेनत्यागंकुर्यात् ना-
न्यासानित्यभिप्रायःअतश्चान्यासांपतितानां प्रायश्चित्तमकुर्वतीनामपिबामोर्गृहंति केदेयनित्यादिकंकार्तव्यमित्यवगम्यतेइतिमिताक्षरा=अर्थात्—वर्गिष्ठने यह भी कहा है कि•ये चार स्त्रियां तो अवश्यही त्यागिदने योग्य हैं—एक जो अपने भर्ताके शा-
गिर्द विद्यार्थी सेवक नौकर आदिसे संगमकरे•दूसरी जो गुरुओंसे अर्थात् अपने या-
पतिके वाप चचा मामा फूफा आदि रिश्ते से बड़े•बूढ़े गिनेजाते हों तिनमें किसी गुरुजनके साथ संगमकरे•तीसरी पतिजी जो भर्ताके प्राणा विनाश•चौथी जंगितोप-
गता जो अपनी जातिसे नीचीजातोंके पुरुषमें संगम करे•ये चार स्त्रियां विशेषकर जुदो कहीगईहै कि इनका त्यागही उचित होताहै—इस पर मिताक्षराकार कहितेहैं कि इन चारिहीका त्यागना कहा तिसका यह तात्पर्य है कि जहांतक सबतरहकी महापतित होती हैं तिनमें जो कोईसी स्त्रियां प्रायश्चित्त करने पर उताख न होयें तिनमेंसे केवल इन्हीं चारोंका परित्याग इसप्रकारसे करना चाहिये कि रहिनेको जगहभी न देवें और अन्नवलभी न देवें किन्तु ग्रामसे बाहर छोड़िचावें परन्तु इनसे उपरालु जो और ऐसी वाकी रहें जिन्होंने प्रायश्चित्त करना नहीं कुबल किया तिनको इसदंगे न छोड़ना चाहिये अर्थात् उनकी उसरीतिसे रखना चाहिये जैसा ऊपर २६७ मूलश्लोक उत्तरार्ध के अर्थमें कहिचुके हैं कि दामीघट विधान किया जानेके अनंतर उनकी घरहीके समीप जुदी भोपडी में बसावें और सोटा भोंटा अन्न वस्त्र भी देतारहें इत्यादि•यहतात्पर्य समझागया मिताक्षराकारने यहकहा॥२६८॥

अब अगिले मूलश्लोक में उभयार्थाका कुछ अपवाद भी योगीश्वर दशविंशे जो २६६ श्लोकसे वर्णन हुई थी अर्थात् सत्कार की संध्या जो कुछ उसमें कही थी वह सभी प्रायश्चित्ती पुरुषोंपर नहीं समझनी किन्तु विरलोंको छोड़िकर समझनी होगी यही उसमें अपवाद (छूट) का स्वरूप जानना ॥

(संविशेष्युरित्यस्यापवादश्च)

अर्थः—शरणागत • बालक • स्त्री • के हिंसकों कृतत्रु सद्वृत्तों के प्रति व्रताचरणा कियेहुयेकिंभी इनकेप्रति न संवेश करै=अर्थात्—शरणा आयेको मारनेमरवानेवाले • बालक वधेका वध करनेवाले • स्त्री मापका वधकरनेवाले • और कृतत्रु परायणिकया उपकार मरनेवाले सहित • ये सब पातकी यद्यपि प्रायश्चित्त भी करि आये जिससे निर्दोष दहर सक्तैहैं तथापि इनकेसाथ पास न संवेश करै (अर्थात् इनकेपास जाना आना बैठना उठना आदि या कोईसा व्यवहार इनके साथ रोपना आदि न करना चाहिये और यथार्थ यह तात्पर्य है कि यद्यपि प्रायश्चित्त करिआनेसे शुद्धिमानि गई और इसी से खाने खवाने मिलने मिलाने आदि व्यवहार भी जल्दोमात्र करने परैगे तथापि इनका पूराविश्वास न करना चाहिये ॥ इसीलिये मूलश्लोक में (ननु संविशेत्) यह कहागया कि सम्यक् अच्छेप्रकार से प्रवेश उनमें न करै ॥ २६६ ॥

२६६अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार इसअपवादद्वयीवार्ता कीवाचनिकप्रतियेवभी नामधरते हैं=यथा=नसंव्यवहारेदितवाचनिकोऽयंप्रतियेवः किमिदंबचनंकुर्यान्नहिब चनस्यातिभारोस्ति अतप्रचयद्यपिब्यभिचारिणीस्त्रीववेऽपिइदमेवप्रायश्चित्तंतथापि वाचनिकोऽयंव्यवहारप्रतियेवः=अर्थात्—उनकेसाथअच्छेव्यवहार न करै यहकहिता एक(वाचनिकनियेवहै) वाचनिकउसे कहितेहैं जो किसीमर्यादाके अनुसार तो नहीं सिद्धहोता हो केवल मुखहीके वचनसे नियेवकियाजाय जैसा दोसीछान्दो२६६मूल श्लोकवाली मर्यादा से व्यवहार करना सिद्ध होही चुका तो भी यहां वचन मापसे प्रतियेव कियागया तिससे (संव्यवहारकीमर्यादाहोते) वाचनिक प्रतियेव इसका नाम उद्धिरा • तिसपर यहतक खड़ी होतीहै कि यह वचन क्या चोज है जिसे कोई मर्ने कुछ इस वचनका बोझ किसीपर नहींहै जिससे मानाजाय • इसीलिये समझा कर समाधान देतेहैं कि ऐसे समझो एक दृष्टान्तहै कि जैसा इसी मूलश्लोक में स्त्री याती पुरुषका विश्वास मने कियागया स्त्री वच • भी दोभांतिकाहै कि एकने अपनी भार्या व्यभिचारिणी को लोकलज्जा से मारडारा और एकने निरपराध स्त्री को मारडारा जो व्यभिचारिणी नहीं थी केवल उसका भुयसा इरने आदि कारणां से घातकिया इस दृष्टांमें दोनों घाती पुरुष यदि प्रायश्चित्त करिके आवैं तब जिनने लोकलज्जासे वध किथथा तिसके साथ संव्यवहार करना और उसको विश्वासपाव जानना प्रत्यक्ष मूचित होताहै • दूसरेका विश्वास करना या उसके साथ संव्यवहार जोड़ना यह प्रत्यक्ष अनिष्ट है यथार्थ से ऐसेही अपघातियोंके साथ संव्यवहार बंठा उठो आदिका वाचनिक नियेव है कुछ उनके लिये नहींहै जिन्होंने लोकलज्जा से

लाचार होकर स्त्रीका वध किया यद्वा किसी धोखे आदि दैवयोगसे अपनी इच्छा बिना वध होगया जैसे किसी वाहन सवारीको लेजातेहुये मार्गमें कोई स्त्री दबिकर मर गई और आपही पापके भयसे प्रायश्चित्त करनेपर उताख शीघ्रहुआ हो तो यह उसके हृदयसे घर्मियलसरा पाया गया तिससे इसी एक दृष्टान्त के अनुसार बहुधा और भी दशाओंपर ध्यान सर्वदा देदेकर वाचनिक नियेवका वर्तवा करना होगा॥ इसी दृष्टान्त से योगीश्वर के मूल प्रलोकमें यह बातभी सविष्ट होतीहै कि दोषकार के स्त्री घातियों में जो कोई एक विश्वास के लायक समझा गया है तिसके लिये २६६ दोसौछात्रवे मूलप्रलोक पूर्वार्ध की मर्यादा से शांतिघटका विधान करवाना आदि कुछ भी मने नहींहै करवाना चाहिये परन्तु दूसरी भाँति का स्त्री घाती बालघाती शरणागत घाती और कृतघ्न भी यदि प्रायश्चित्त करिआवें तब उनकेलिये शांति घटलेजाना आदि कुछ भी योग्य नहींहै० तिससे यह २६६ प्रलोकवाला अपवाद भी वाचनिक प्रतियेव ठहिरायागया ॥ २६६ ॥

दोसौछात्रवे प्रलोकवाले विधानका जो कर्म शेषरहा था सो नीचे अब लिखतेहैं॥

(पूर्वोक्तविधावपिविशेषः)

षटेऽपवर्जितेज्ञातिमध्यस्थेष्वपवसंगवाम् । प्रदयात्प्रथमंगोभिः सत्कृतस्पृहिसत्क्रिया, ३००

अर्थः—घटके अपवर्जित होनेपर जातिके बीच बैठा हुआ प्रथम गौआँको सबसे प्रकर्य से देवै० गौआँसे सत्कार किये कीही सत्क्रिया होय=अर्थात्—जिसका शांति कुम्भरूपी कर्म समाप्त होगया किन्तु उसी कृतघ्न के साथ प्रायश्चित्त पुरुष घरमें आगया वह अपने जाति वन्धुके समाज में बैठाहुआ सबसे पहिले यह कामकरै कि गौआँके लिये घास अपने हाथसे छोड़ै कोकि प्रथम गौआँसे सत्कार पाचुकने पड़ी जाति वधू आदि करके सत्कार होना चाहिये ॥ ३०० ॥

३००अधिकोक्तिः—यहां वन्धु विरादरी से सत्कारहोना केवल यही अभिप्रेत है कि उसके साथ भोजन आदिका वर्तवा किन्तु उसकी सीहुई ज्योनारको स्वीकार करै परन्तु पहिले जब गौर्य उसकीदई घास आदिको स्वीकार करै अर्थात् बेतेसार प्रीतिसे खानेलेहीं यही उसका गौआँसे सत्कार होना सूचित कियाहै ॥ तात्पर्य इस का यह कि यदि गौर्य उसका दियाहुआ अन्न घास न भक्षणकरै तो फिर विरादरी भी ज्योनारका स्वीकार न करै और दुवारा प्रायश्चित्त करनेपर आछद करै=हारीतोप्याह=स्वशिरसायवसमादायगोभ्योदद्यात्पर्यस्ताः प्रतिपृष्टाण्युरग्रेन प्रवर्तयेयुः

रिति-इतरयानेत्यभिप्रेतम्-अर्थात्-हारीतने भी यह कहा है कि अपने सड़पर ला-
 दिकर घास गौओं के आगे छोड़ें जो गौयें खाने लगें तो इस प्रायश्चित्त की खाने
 पीने आदि व्यवहारों में बन्वूजन प्रवर्त करें • अन्यथा नहीं यह अभिप्राय सूचित
 किया है ॥ ॥ दोस्रो छान्दसे २६६ अधिकोक्ति के प्रारम्भ में जो बात लिखी गई थी
 उसपर भी ध्यान देना चाहिये कि अङ्गों के मूलश्लोक में (घटेऽपवर्जिते) यह पाठ है
 तिसका अर्थ यद्यपि त्यागहोका प्रत्यक्ष है कि घटके त्याग होजाने में अगिला कर्म
 कियाजाय तथापि मिताक्षराकारने जलाशयमें छोड़ि आना फेंकियाना अर्थ नहीं
 स्वीकार किया बल्कि यह स्वीकार लिखा है कि (घटेऽपवर्जितेहृदादुद्धृत्यपूर्णकृच
 तिनीते- असौचरितव्रतःसपिंडादिसमध्यस्योगोभ्योयवसंदद्यादितिमिताक्षरा) अर्थात्
 घटका अपवर्जित होना यह कि तालाब कुण्ड आदिसे भरिके पूरा कुम्भ साथ ले-
 जाने वादि-यह प्रायश्चित्त किया हुआ पुरुष अपने सपिंड आदि बन्धुओंके बीच में
 वैदिके प्रथम गौओं को घास छोड़ें-सो यही अर्थ सुन्दर जानो क्योंकि मूलश्लोकमें
 भी घटका अपवर्जन कहिये से यह तात्पर्य नहीं है कि जलमें फेंका जावे बल्कि यह
 ध्वन्यर्थ है कि घटका समस्त पूजा कर्म आदि निपटि जानेपर घासदेना आदिकर्म
 करें-और मनु का यह वचन जो पहिले भी लिख चुके हैं कि (उतु अप्सुतंघटं
 प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वर्क) सो इसका भी अर्थ व्यत्यस्त योजना से ऐसा होता है
 कि वह प्रायश्चित्त अपने घर में प्रवेश करिके फिर उस घटको जलमें छोड़वाइ
 के अगिले कामों का प्रारम्भ करें अर्थात् वहां जलाशय से भरिके जो घट उसके
 साथ घरको आया हो तिस जो उसी दिन या और कित्तीदिन उचितजानिके जला-
 शय पर सिराइ आये फिर और कासों का प्रारम्भ करें तो यह सिराइ आना सब
 तरह के यज्ञों में प्रसिद्ध है कि जिस घट का पूजा कर्म आदि सर्वथा निपटि जाता
 है वह अन्त की जलही में सिरायाजाता है कुछ इनवातों में विरोध नहीं है इसी से
 मनु मुक्तावली टीकाकार कुल्लुक भट्टने जलमेंफेंकना अर्थलिखा सोभी कुछविरोधी
 नहीं है ॥ ३०० ॥ अब अगिले परिच्छेदमें सभी प्रायश्चित्तोंका मिला भुला सझही
 सारा स्वीकार करना कहा जायगा ॥ ३०० ॥

अथसकलप्रकाशप्रायश्चित्तानांसाधारणधर्मविषये पर्वदाऽनुमतप्रायश्चित्तस्वीकरणविवेकोऽयं

परिच्छेदः सप्तसमाप्तितमः (७७)

—*—

इस परिच्छेद में पर्यंत सभा समाज के द्वारा ऐसे सभी पापों के प्रायश्चित्त, विचार होने का प्रकार जाना जायगा कि जो जो पाप करने के समय पर ही या कुछ काल पीछे भी प्रकाश हो जायें—क्योंकि—उनमें यद्यपि कर्ता पुरुष आपही जानी ध्यानी धर्मशास्त्र का विवेक्ता होय तौभी वह अपने मध्ये निर्णय करने का अधिकारी नहीं है—इसी लिये तरह तरह की सभाओं के स्वरूप होत आये दशविंशे और जिस रीति से सभा में जाना प्रश्न करना चाहिये सो भी ॥

(विख्यातदोषस्यायं विधिः)

विख्यातदोष कुर्यात्तपर्वदाऽनुमतव्रतम् ३०१ (पूर्वार्धेव)

अर्थः—विख्यात दोषो पुरुष पर्यंत का अनुमत व्रत करे=अर्थात्—जिस दोषीका पाप विख्यातहोगया हो उसको धर्मसभाके विचारसेही प्रायश्चित्त करना चाहिये चाहें वह धर्मशास्त्र आदि सर्वशास्त्रों के विचार करने में आपही अति चतुर हो तौभी अपनेलिये आप न विचारें किन्तु सभाकेद्वारा वृत्तिके करे वरन जिसअवसरमें सभासदों की अपेक्षा इस दोषी में शास्त्रज्ञता आदि कुछ विशेषता विद्यमान हो तहां उसी सभा के साथ मिलकर विचार करनेका अधिकार इसको सूचितहै सोकरे। तथापि प्रायश्चित्त के नियम उसी पर्यंत सभा के अनुमत के द्वारा कल्पित होंगे—और—दोष का विख्यात हो जाना यह कहता है कि जिस पापको उत्पन्न करनेवाला केवल वही पुरुष सकाकी हो तिसको अन्य पुरुषभी मालूम होजानेसे कहिने लगे या जिस पापको उत्पन्न करनेवाले कोई और भी दो चार सहायक हों वे अवश्यही जाना करतेहैं परन्तु उनका जानना मुख्यकर्ता के निकट कुछविख्याति में गिनती नहीं है अर्थात् सहायको से उपरालू मनुष्य जानि कर चर्चा करनेलगे सो विख्यात दोष कहता है ॥ ३०१ ॥ यह पूर्वार्ध श्लोक है ॥

३०१ अधिकोक्ति—धर्म सभा के पास जाने का जुदा प्रकार होता है=यथाहं

गिराः—कृतेनिःसंशयंपापे नभुंजीतानुपस्थितः भुंजानोवर्द्धयेत्पापंयावत्तास्यातिपर्यंदि
 सचैलंवारयतःस्नात्वास्त्रिचक्रवासाःसमाहितः पर्यदानुमतस्तत्त्वंसर्वंविख्यापयेत्ततः व्रत
 मादायभूयोपितथास्नात्वाव्रतंचरेदिति—अर्थात्—पाप करना निश्चय होजाने पर
 सभा में उपस्थित हुये बिना न भोजन करे क्योंकि जब तक सभामें जाकर प्रायश्चित्त
 नहीं मांगता है तब तक बीच में भोजन करते हुये किया हुआ पाप लुब्ध को प-
 हुंचता रहिता है तिससे शीघ्रही कण्ठे पहिने हुये सचैल स्नान करिके भोजे वस्त्र
 सहित अपने चित्त को ठिकाने रक्खे हुये जाकर सभा से अनुमत पाइकर दीयोननु-
 ष्य अपना सब यथार्थ व्योरा सुनावे और व्रत का उपदेश वहां से लेकर फिर उसी
 तरह दुबारा गोता लगा कर चला जाय अपने प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करे ॥ ० ॥
 पराशर ने यह भी नियम दर्शाया है कि पहिले कुछ पुण्य दान करिके तब सभा में
 ब्रह्मते जाय=यथा=पापविख्यापयेत्पापीदस्वाधेनुतथाद्ययस (सतघोषपातकविषयं
 महापातकादिष्वधिकं कल्प्यमिति मिताक्षरा)=अर्थात्—पराशर ने कहा है कि
 गाय और दृग्वध दान करिके पापी अपने पाप को सभा में सुनावे (मिताक्षराकार
 कहिते हैं कि यह सिर्फ उपपातकोंपर समभूता किन्तु महापातक आदि बड़े पापों
 पर इससे अधिक दान पापकी बड़ाई के अनुसार सोचना चाहिये) और यह अ-
 गिला जो वचन है कि=तस्माद्विज्ञःप्राप्त पापःसकृदाप्लुत्यवारिणा विख्यायपापं
 पर्यङ्म्यकिंचिद्वस्त्राव्रतंचरेदिति (तत्प्रकीर्णाक विषयमितिमिताक्षरा) अ-
 र्थात्—पूर्वाक्त कारणा से दिजाती जब किसी पाप से संयुक्त होय सो जलमें एक ही
 बार गोता लगाकर सभा के पण्डितों को कुछ देकर अपना पाप कहि सुनाय कर
 प्रायश्चित्त आचरे (इसपर मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह कुछेक देना जो कहा
 सो सबसे छोटे पाप प्रकीर्णाक नामसे ७४ के परिच्छेदमें जो कहे गये तिनपर सम-
 भूता) यहांपर सोचने का स्थल है कि पराशर के वचन को और इस वचन को
 मिलाकर एकही व्यवस्था मिताक्षरा ने कही तिसके उत्तम मध्यम आदि कई
 भेद किये सो यह कल्पना सुन्दर नहीं क्योंकि पतित के हाथ से पतित का दिया
 हुआ गाय दृग्वध रूपी महा दान लेना धर्म शास्त्री पण्डितों का यह काम नहीं वे
 आपही प्रायश्चित्ती हो जायेंगे अर्थात् असत्प्रतिग्रह का प्रायश्चित्त देखीं ६८ अ-
 रसदि परिच्छेद में २६० दोसौतब्बे मूल श्लोक से कहि चुके हैं— तिससे पराशर
 ने जो गाय दृग्वध का दान किये पीछे धर्मसभा में जाना कहा सो औरही किसी
 दान पात्र के निमित्त देना अर्थ ठीक है बल्कि पराशर को सोरह असर वाले अर्थ

श्लोक में कोई प्रयोगही ऐसा नहीं है जिससे धर्म सभा के परिहृत भी दान के संप्रदान भूत समझे जायें—और जो (तस्मात् द्विजः प्राप्तपाप इत्यादि) पिछले वचनमें साफ साफ कहा है कि (पर्यदभ्यः किञ्चिद्दत्त्वा) सभा के परिहृतों को कुछ देकर सो यह मिहनताने की रीति से दक्षिणा देनी सूचित करी है क्योंकि परिश्रम का वेतन मिले बिना किसी का तन मन किसी कार्य में अच्छे नहीं तत्पर होता और व्यवस्था का कोई सुगम काम ऐसा नहीं है जिसको हर कोई परिहृत घुघड़ भलाई में करि सकेगा वह परिश्रम का काम है और परिश्रम का हक लेना किसी दान प्रतिग्रह में गिनती नहीं है न उसको लेकर कोई दाय लगिसक्ता है क्योंकि यहांपर देने लेने की वाचनिक आज्ञा पाई गई—और जो पापों की बह्राई छोटाई के ऊपर बहुत या मध्यम या थोड़ा देना मिताक्षराने ठहिराया सो भी ठहिराना कुछ आवश्यक नहीं किन्तु दान वित्त समान यह नियम घराढायोय है कि जैसा कोई अधिक धनी या दरिद्री होगा उसी के अनुरूप दान बताया जासक्ता है—और दूसरे वचन में जहां ठेठ परिहृतों का परिश्रम देना कहा गया तिसमें भी किञ्चिद् शब्द का प्रयोग सिर्फ इसी आशय पर आरुढ़ है कि जैसा बड़ा छोटा परिश्रम उनका समझि परे तैसा थोड़ा या बहुत कुछ देकर व्यवस्था बूझें ॥ यहांतक तीनसौ एक मूलश्लोक पूर्वार्धकी अविकीर्ण पूरी हुई इसी टीकाकी शेषव्यवस्था नीचे लिखते हैं ॥३०१॥

(अथपर्यत्स्वरूपं)

पर्यत् सभा जिसमें प्रायश्चित्त बूझना कहा सो कैसी हो तिसके भी अनेक लक्षणा हैं सो देखो उनमें प्रथम मनुका कहा स्वरूप दर्शाते हैं—यदाहमनुः=बैबियो हेतुक स्तकीर्नैरुक्तो धर्मपाठकः प्रयश्चायमिहा पूर्वेण्येव्यादशावरः=अर्थात्—सभामें अच्छे पुरुष चाहें तितने जुड़ें परन्तु दश महात्मा इस प्रकारके होने चाहिये जिनमें कोई बैबिय कोई हेतुक कोई तर्की कोई नैरुक्त कोई धर्म पाठक हों और ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ इन तीनों आश्रम के सत्पुरुष होय संन्यासी नहीं (बैबिय वे कहाते हैं जो तीनों वेद की कुछ कुछ शाखायें अर्थात् संहित पट्टिकर समझे हों केवल स्वर के साथ ऋचाओं का गाना मात्र नहीं) हेतुक वह जानना जो हेतुखपो बाद मे रत हो अर्थात् हेतु जो कारणा होय तिसको एकद्वि के अतिपुक्ति के साथ बात कहिने का अभ्यास रखता हो सो हेतुक पुरुष कहाताहें पर यह भी शास्त्रसंपन्न होकर ऐसा होय इसीलिये मिताक्षराकार ने दोनों सीमांश का अर्थ तत्त्व जानने

वाला इसको कहा है क्योंकि विचार पूर्वक तत्व निर्णय करसकने का नाम है सीमांभा और इसीसे सीमांभा उस ग्रन्थ का भी नाम है जिसमें ऐसा तत्व निर्णय हो सक्ता हो। वह सीमांभा रूपी निर्णय भी दो भांतिका होता है इसीसे उसके ग्रन्थ भी दो भांति के प्रसिद्ध हैं पूर्वसीमांभा और उत्तरसीमांभा अर्थात् पहिली सीमांभा कर्म कांड है पहिली सीमांभा ब्रह्मज्ञान का विचार है। तहां जैमिनि के बनावेहुये ग्रन्थसंक्रमकांडके सदेह निरायहोते हैं उसीका नाम पूर्वसीमांभा भी कहाता है और ब्रह्म जो परमात्मा परमेश्वर है तपके जो मन्देह खंडेहोयें सो सब वेदान्त से निर्णय होसक्ते हैं जैसा इसी ग्रन्थ में सन्यास आश्रम के प्रसंग से अध्यात्म नामका प्रकरणा बहुत बड़ा वर्णन होचुका है इसी तरह वेदान्त के और बहुत ग्रन्थ ह सो सब उत्तर सीमांभा, किन्तु पहिली सीमांभाके नामसे कहातेहैं। यह तात्पर्य दर्शिरा हैतुक पुरुष का पर सामान्य अर्थ वही है कि जो वातकि तत्त्व को युक्तिसे निर्णय करसके सो हैतुक जानो (तर्की उसका नामहै जो तर्कशास्त्रमें कुशलहोय परन्तु न्यायशास्त्रपढा होने परभी उसकी तर्क ऐसी न हो कि श्रुति या स्मृतियोंसे विरुद्धहोय अर्थात् दोनो सीमांभा के अनुकूल उसका तर्क होनाचाहिये) नैरुक्त उसका नामहै जो व्याकरणा विद्या से प्रयोजनवाले शब्दो की निरुक्ति दर्शावै और वह भी नैरुक्त पुरुष होताहै जो वेदका एक अगहो निरुक्त कहाताहै तिसको पदाहो (धर्मपाठक जो धर्मशास्त्र की स्मृतियाँ आप सेभी पढा हो जिन्हें और को समुभाइकर पढासकें) ब्रह्मचर्य गार्हस्थ बानप्रस्थ इनतीन आश्रमो के सत्पुरुष उनको जानता जो अपने अपने आश्रम के नियम धर्मोका, वर्तवा ठीक ठीक आचरण करते हैं ॥ ० ॥ ऐसो सभा न मिलनेपर मनुने पर्यंतका दूसरा डोत दर्शाया है = यथा = ऋग्वेदविद्यजुर्विचिसामवेदविदेवच त्र्यवरापरियज्ञोयाधर्मसंशयान्साये = अर्थात् = ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद इनकी शाखाओंके जुदे जुदे भी अर्थोसहित जाननेवाले अर्थात् एक एक पुरुष एकहीसक वेदकी कोई शाखा विधि पूर्वक पढाहो, ऐसे तीनिही पुरुष जिस पौरुषधर्म शासित होयें सोभी धर्मका संदेह निर्णय करनेवाली सभा होतीहै ॥ ० ॥ इसके भी न मिलने पर मनुने कार्यके निर्वह का और डोत दर्शाया है = यथा = सकोपिधर्मविद्वर्मयद्वयव स्पेत्समाहितः सज्ञेय परमोधर्मोनाज्ञानासुद्वितीयुतैः = अर्थात् = धर्मशास्त्र का विज्ञाता यद्विसमाहित चित्तहोके जिस धर्मको एकही पुरुष विचार करै सोई परमधर्म जानी क्योंकि धर्मशास्त्र सबशास्त्रोके ऊपर अविद्याताहै धर्मकीसर्वादा इसीकेद्वारा जानी जातीहैपरच धर्मके न जाननेवाले दशद्वारामलिकेभी कहें सो धर्मकीगिलतीमेंनहीहै

(विज्ञानेश्वर कहते हैं कि इन बड़ी छोटी सभाओंका वर्त्तवा जैसा जहां सभवा हो
 तैसा तहां समझना अथवा महापातक आदि बड़े छोटे पापों के भेद से भी जानना
 अर्थात् बहुत बड़े पापका प्रायश्चित्त ब्रह्मने को बड़ी पर्यंत के भित्ति हुये छोटे में
 न जाना चाहिये ॥ ० ॥ एक यह स्मृत्यन्तर वचन है कि—पातकेयुशतपर्यंतसहस्रसह
 दादियु उपपापेषुपचाशत्स्त्रत्पत्स्त्रत्पेतथाभवेत् (तदपिमहापातकादिदोयानुसारेण
 पर्यंतोयुरुलघुभावप्रतिपादनपरत्पुनः सख्यानियमार्थमन्वादिमहास्मृतिविरोधप्रसंगा
 दितिमिताक्षरा)=अर्थात्—पातक नामके बड़े पापोंके तिये एकसौ सभासद की प-
 र्यंत में ब्रह्मना चाहिये और उनसेबड़े महापातक आदि पापोंकेलिये सहस्र सभासदों
 की पर्यंत होय और छोटे दर्जावाले उपपातक नामकेपापोंका प्रायश्चित्त ब्रह्मनेको
 ५० पचास मनुष्योंकी सभा चाहिये फिर इनसे भी छोटेपापोंके मध्ये इससे भी थोड़े
 पचीस आदि सभासद होय यह समझना (विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार कहते हैं कि
 यह वचन केवल इसलिये है कि दोयकी बड़ाई छोटाई के अनुसार सभाका बड़ापन
 या छोटापन होना चाहिये पर यह तात्पर्य इसका नहीं है कि जिसमें एकसौ बताये
 या हजार बताये तिसमें उतनेही पूरूपर मनुष्यचाहिये क्योंकि जो सेसातात्पर्यमाना
 जाय तौ फिर मनुआदि बड़ेबड़ी स्मृतियोंके नियमसे विरोधखड़ा होनेलगा जैसाऊपर
 दश या तीन वा एकही विद्वान्सभास्वरूप कहागयाहै)इसपर मर्यादा परिपाटी सपादक
 व्याख्याकार का यह विचार है कि यह बहुत बड़ी संख्या के लगभग अधिकता जो
 दहिराईगई सोभी सर्वसाधारण मनुष्योंकी संभन्नी किन्तु इसकेसाथ उतने विद्वानों
 काहोना आवश्यक है कि जैसा पहिले दश वा तीन वा एकही विद्वान् होनाकहाथा
 तौ फिर कुछ भी विरोध इसमें नहीं है अन्यथा उतनी संख्याओं के लगभग केवल
 विद्वानोंका संग्रह करना वा होसकना न आवश्यकहै न संभवहै बल्कि उक्त संख्याओं
 के नियम छोड़िकर लगभग वाला डील सर्वसामान्य सभासदों का दहिराया गया
 तिसमें भी पूर्वाक्त यथा सभव की युक्ति लगानी होगी कि जहां दोयो पुरुष बड़ा
 आदिमो होय जिसके दबावसे इतने अधिक सभासद एकट्टे होमके सिर्फ तहांकी यह
 व्यवस्था है सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ देवलने सभाके स्वरूप में एक जुदा डील दर्शाया है—
 यथा=स्वयत्तुब्राह्मणाब्रूयुरल्पदोयेयनिष्कृतिस् राजाचब्राह्मणाश्चैव महत्सुतुपरीक्षि-
 ताम्=अर्थात्—जो उपपातक आदि छोटे पापहो तिनमें परिणित ब्राह्मणा आपही प्राय-
 श्चित्त बतावें परच महापातक आदि बड़े पापोंमें राजा और ब्राह्मण भी मिलिकर
 सभा करें तिसमें दोयकी परीक्षा से प्रायश्चित्त करावें (इस वचन में यह तात्पर्य है

किं जिन अपराधों में राजवादी (राजमुदई) होसक्ता हो तिनको ब्राह्मण लोग केवल आपही प्रायश्चित्त कराइ के राजसे छिपावैं नहीं क्यों वैसे महादोषों में राजहार से जुसना आदि राजदंड होनेके अनन्तर प्रायश्चित्त कराना धर्म शास्त्र का सिद्धान्त है—तिससे यद्यपि किसी बिरले महादोषीके ऊपर कोई वादी बनि के राज में निन्दाकरने को न गया हो तौभी प्रायश्चित्तका बोझ उसपर धरनेवालों को यह सूचित कियाहै कि प्रथम प्रायश्चित्तही के बहाने से राजहारमें उस दोषका प्रकाश करें जिससे राजा उसी दोषका निराय ब्राह्मणोंकी पर्यत में शामिल होकर निराय किये पीछे यथायोग्य राजदंड लेकर प्रायश्चित्त विचारने की आज्ञा विद्वानों पर आरुढ करेगा यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ परन्तु यह भी एक धर्महै कि यदि कोई दोषी मनुष्य अपने पापसे दुःखमानि के आपही किसी पर्यत के पास जाकर प्रायश्चित्त बने तौ उस परिषदकी अवश्यही विचार करना और बताना योग्यहोताहै क्योंकि ऐसा न करने से परिषदकी भी दोष लगताहै—यथाहंगिराः=आर्तानामांगमागानां प्रायश्चित्तानियेद्विजाः जानंतोनप्रयच्छंतितेत्यातिसमतांतुतैः=अर्थात्—पीडितहुये बभूने आये हुयोंको जे कोई विद्वान् ब्राह्मण धर्मशास्त्र जानते हुये प्रायश्चित्त नहीं बतातेहैं वेभी उन्हीं पापियोंके समान दहिरतेहैं ॥ ० ॥ परन्तु किचोसभाका सभासद कोई धर्मके जानेबिना यदि प्रायश्चित्त बतावैं सो बतानेसे भी पापी और प्रायश्चित्ती भी होताहै=तदाहर्वाशयः=अज्ञात्वाधर्मशास्त्रागिप्रायश्चित्तं ददाति यः प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः कित्वपंपर्यदं व्रजेत=अर्थात्—धर्मशास्त्रों की आद्योपांत पढ़े समझे बिना जो कोई पंडित प्रायश्चित्त बताताहै तिसके करनेसे प्रायश्चित्ती शुद्ध होजाताहै परंच उस प्रायश्चित्ती का पाप उसी सभासद पर आरुढ होताहै ॥ ० ॥ यहाँ तक प्रायश्चित्त बताने की रीति जो कहिचुके सो ब्राह्मण आदि सभी वर्गोंको बतानेपर कहीगई कुछ भेदभाव नहींहै तथापि सबी आदिको बताने मध्ये अंगिराने एकजुदी रीति भी कही है—यथा=न्यायतो ब्राह्मणः सिप्रंसविद्यादेः क्लृतेन सः अंतरा ब्राह्मणानां त्वाव्रतसर्वसमादिशेत् तथा शूद्रसमासाद्य सदावर्मपुरःसरम् प्रायश्चित्तं प्रदात्तच्यं मंत्र होमविवाजंतमिति (तत्र यागाद्यनुष्ठानशीलानां जपादिकं वाच्यं इतरेयांतुतयः) कर्म निष्ठास्तपोनिष्ठाः कदाचित्पापमागताः अपहोनादिकं तेभ्यो विशेषेण प्रदीयते ये नाम धारका विप्रामुखा धनविवर्जिताः कृच्छ्रं चांद्रायणादीनितेभ्यो दद्याद्विशेषत इति=अर्थात्—सभी और वैश्य जहाँ पाप किये रहैं तहाँ धर्मज्ञ ब्राह्मण उनको न्याय के अनुसार शीघ्रही सम्पूर्ण व्रत भले प्रकार से बतावैं परन्तु बीचमें उनके श्रुत पुरोहित

आदि किसी प्रतियामान् ब्राह्मणको साक्षीभूत मध्यस्थ बनाकर व्रतका आदेश करें अर्थात् केवल एक पर एक बौद्धिके प्रायश्चित्त न बतावें कि जहाँ सिर्फ दोषी पुरुष और धर्मशास्त्री इन दोके सिवाय तीसरा न हो (सो यह नियम उस दशापर आवश्यक है कि जहाँ अनेक विद्वानों की सभा इकट्ठी न होसके केवल एक धर्मशास्त्रीही प्रायश्चित्तका आदेश करनेवाला होय जैसे (एकोपि धर्मवित् धर्म इत्यादि) मनुके वचन से ऊपर कहि चुके-तथैव किसी शूद्रको पापकिया पाइकर भी इसीरीतिसे पुरोहित आदि को बीच में मध्यस्थ बनाकर धर्म के अनुसार प्रायश्चित्त देना चाहिये परच शूद्रके निमित्त में सदा यही धर्म है कि उसको जप होम से रहित प्रायश्चित्त बतावें अर्थात् जिन दोषों पर जप होम करना कहीं लिखा हो तिनमें भी शूद्रको जप होम करनेकी आज्ञा न देनी चाहिये-शूद्रके सिवाय अन्य वर्गोंके मनुष्य ब्राह्मण आदि भी जे कोई निपट निरक्षर होय तिनको भी जप होम आदि न बताना चाहिये तहां सेसा करना चाहिये कि (जे कोई द्विजातीलोग यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान में सदा निरन्तर या जब तब लगे रहते हों तिनको जप होम आदिवाले प्रायश्चित्त बतावें औरोंको तप करना किन्तु व्रतादिक प्रायश्चित्त बतावें) क्योंकि यही नियम अगिले वचन में साफ कहे देते हैं कि-जे कोई द्विजाती कर्म करने में अभ्यास रखते हैं या तप करने में अभ्यास रखते हो वेही कभी पाप में फँसें तब उनके लिये विशेष कर जप होमादि रूपी प्रायश्चित्त दिया जाता और जे नामहीं साब के ब्राह्मण निरक्षर सुख धनसेहीन दरिद्री तिनको जुदे जुदे उनकी दशाके अनुसार कृच्छ्र और चांद्रायण आदि बतावें ॥ यह प्रायश्चित्त बतानेका डील केवल विख्यात पापोंके ऊपर कहा गया किन्तु छिपेहुये पापोंके प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेदमें वर्णन होगे ॥ इति परिच्छेद ॥

(इति प्रकाश प्रायश्चित्तानां सर्वसामान्यविधिनिर्णायकप्रकरण)

(त्रिपरिच्छेदमय)

इस प्रकरणा में ७५ । ७६ । ७७ पचहत्तर परिच्छेद के प्रारम्भ से सतहत्तरके अततक तीनि परिच्छेद हे तीनों में यद्यपि जुदे जुदे विषयों का वर्णन है परन्तु ये तीनों जुदे विषय सब तरह के पापों में आदि मध्य अंत के अवसर भेद से विचारने परतेहैं तिससे इन तीनों परिच्छेदका एकही प्रकरणा माना गया कि जब कभी किसी पापकी विख्याति होकर प्रायश्चित्त सोचना परे तब उस पापके विचारवाला जुदा प्रकरणा या परिच्छेद पहिले ढूँढकर उसके साथही इसप्रकरणाको देखा चाहिये ॥

परन्तु जिनसे कभी दैवयोग से कोई पाप होगया और शप्त होनेके हेतुसे खुल्लम न होने प्राया ऐसे पापी पुस्त्य जो अपने प्रापका छिपा हुआ प्रायश्चित्त करना चाहें तिनकी व्यवस्था आगे ७८ अर्थात् परिच्छेद से लेकर जानी जायगी ॥

**अथ रहस्यप्रायश्चित्तानां सर्वेषां साधारणधर्म विवे
कसहितः ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं**

परिच्छेदः अष्टसप्ततितमः (७८)

इसपरिच्छेदमें विशेषतासे दो बात जानीजायगी कि प्रथम तौ छिपेहुये पापोंका साधारण एक धर्म जो सर्वत्र काम आवेगा—दूसरे महापातकोमे से केवल एकब्रह्महत्या जो किसीने छिपीहुई करीहो जाहर न होनेपाई तिसकारहस्यप्रायश्चित्त कहाजायगा (रहसि) एकान्त मे छिपिकर जो काम कियागया वही रहस्य कहिलाता है चाहें पापहो या उस पाप का छिपा हुआ प्रायश्चित्तहो ॥

योगीश्वर याज्ञवल्क्य मुनि यहां से आगे आगे छिपे पापों को प्रायश्चित्तों का बिस्तार किया चाहते हैं कि जिससे शरीरमे घुसे हुये पापों को दुहिकर उस भांति से निकासि फेंके जैसे घनोंमे छिपाहुआ दूब बछरा के योग से निकासि जाता है (यहां पर प्रायश्चित्तों की बछरा के दृष्टांत में समझना प्रायश्चित्तों पुस्त्य की दोहने वाला समझना) इसी लिये योगीश्वर पहिले उन सभी प्रायश्चित्तों का साधारण धर्म दर्शाते हैं जो आगेआगे सभी व्रतों की आदि में सोचना होगा सो देखो निचले तीन सौ एक वाले उत्तरार्ध से ॥

(रहस्यप्रायश्चित्तविचारः)

अनभिरुयातदोषस्तुरहस्यं ब्रतमाचरेत् ३०१

अर्थः—अनभिरुयातदोषो रहस्य व्रत को आचरे—यर्थात्—जिस दोषी का पाप उसके सहायको से उपरालू मनुष्यों की जीभ तक न पहुंचे सो रहसि एकान्त में शप्त ही प्रायश्चित्त करे ॥ ३०१ ॥ उत्तरार्धोऽयं ॥

३०१ अधिकोक्ति—यहां यह शकाहै कि मनुष्यको सहायक मिलापी समीप

आदि अनेक भांति के होते और वेही किसी पाप को करते जानि सक्ते हैं तिनका जानता छोड़कर उपराल मनुष्य कहे इसमें नाना प्रकार के विरोध खड़े होते हैं क्योंकि जिस पाप को सहायकों ने देखा जाना तिसको सभी मनुष्य जानि सक्ते हैं फिर क्योंकि कोई पाप अनभिख्यात कहावै इत्यादि—इसका यह समाधान है कि पापी के सहायक सिर्फ वेही अभिप्रेत हैं जो उसको पाप कर्म करवाने में साथी हुये हों जैसा किसी स्त्री से उसका संदेश कहि आना ले आना बुलाइ लाना आदि ऐसाही सर्वत्र सभी पापों में समझि लेना कि जितने पुरुष वा स्त्रियाँ पाप कार्यके सहायक वा साक्षी बने हों वे सब यद्यपि पापी के पाप को जानते और परस्पर चर्चा करते हैं तथापि उनका जानना विख्याति में गिनती नहीं माना गया है अर्थात् उनसे उपराल चाहें पापी के सहायक हों वा असहायक हों तिनमें पाप की चर्चा नहीं फैली हो तो यह पाप अनभिख्यात कहा जाता है। ऐसे पाप को करने के बाद भी दोषी पुन्य पद्धति कर अपनी शुद्धि के लिये यदि प्रायश्चित्त करना चाहें सो द्विपौआ व्रत साथै—तहाँ—जो ऐसा पुरुष आपही धर्मशास्त्र में प्रवीण होय सो औरसे न कहिकर आपही अपने निमित्त पर यथा योग्य प्रायश्चित्त विचारें जो धर्मशास्त्र को न जानता हो सो अन्य धर्मज्ञों के पास जाकर अपना पाप सुनाये बिना किसी और के बड़ाना से प्रसंग छेड़िकर इस तरह बूझें कि जिसकिसी ने गुप्त पाप किया हो अर्थात् ब्रह्महत्या•बाल हत्या• माह भगिनी गमन• परदार, गमन• सुरापान आदि जो कुछ पाप किया हो तिसका नाम धरिके बूझें कि इसमें उसकी रहस्य प्रायश्चित्त क्या करना चाहिये या जिज्ञासुता की रीति से ही बूझें कि अमुकामुक पाप द्विपौआँ जिसपर होजाय तिनका गुप्त भावही से क्या क्या प्रायश्चित्त होता है ॥ ० ॥ इसी प्रकार से स्त्री और शूद्र भी ओरों से बूझिके रहस्य प्रायश्चित्त का स्वरूप ज्ञान कर सक्ते हैं इसीसे उनकी भी करने का अधिकार सिद्ध होगया। इसपर यह न कहिना चाहिये कि रहस्य प्रायश्चित्तों के स्वरूप प्रायस् जपादिकों की प्रधानता से निर्धारित हुये है तिससे स्त्री और शूद्रों को विद्या पढ़ने का अधिकार न होने से इन प्रायश्चित्तों का अधिकारही नहीं। क्योंकि इन प्रायश्चित्तों में जपादिकों की निर्विकल्प ही कुछ प्रधानता नहीं बल्कि उनमें दान करना आदि भी उपदेश किया जायगा और गौतम के कहे प्राणायाम आदि का भी करना सम्व है तिससे भी• बल्कि स्त्री शूद्रो से उपराल ओरों को भी जपादिक से पूरा अधिकार नहीं पाया जाता है क्योंकि मन्व और मन्वका देवता उसका ऋषि,

छन्द इनका अच्छा बोध होना भी अधिकार का उपयोगी है इनके बिना औरों का भी निर्विकल्प वियय नहीं है और भी यह सतर्क उत्तर है कि तद्वाग्वनवानेश्यादि में ज्योतिषोम आदि के वियय वाला विरोध नहीं जोड़ा जाता है तैसे यहां भी समझना कि स्त्री शूद्रों की पढ़ने का अधिकार न होने से प्रायश्चित्त करने का अधिकार नहीं ऐसा जासक्ता है ॥ ० ॥ परन्तु त्रैविर्गाक पुरुषों को देवता आदिका ज्ञान होना अवश्यही अपेक्षित है—यथाह न्यासः=अविदित्वाऋषिच्छंदोदैवतंयोगं मेवच योऽध्यापयेज्जपेद्वापिपापीयान्जायतेतुसः=अर्थात्—ऋषि और छन्द और देवता और मन्त्र का विनियोग नहीं जानि के जो कोई पाठ या जप करे सो पापी होता है ॥ ० ॥ व्रताहारादिनियमाः—रहस्य प्रायश्चित्त जो आगे सबदश्यादि जायेंगे उन्हीं का यह धर्म सामान्य वर्णान् होरहा है तिनमें इतना और भी यह जुदा नियम समझे रहिना कि यद्यपि जिन व्रतों में कुछ आहार करना न लिखा जाय तथापि उन में दूध पीना या पंचगव्य या यावक आदि जैसा प्रकाश प्रायश्चित्तों में कहि चुके तैसा यहां भी समझि लेना • जहां कोई काल विशेष न कहा जाय तहां संवत्सर आदि समझना • प्रायश्चित्त करने का ठिकाना जिनमें न कहा जाय तिनमें पर्वत के निकट शिला आदि का स्थल समझना जैसे प्रकाश प्रायश्चित्तों में गौतम आदि के कहे नियम हों तिनमें दूढ़ना चाहिये यह मिताक्षराकारों की दशार्थि हुई व्यवस्था है ॥ ३०१ ॥

यह सब इतना रहस्य प्रायश्चित्तों का साधारण धर्म दर्शाया जो सबही की आदि में विचारना होगा अब अगिले मूल प्रलोक से लेकर रहस्य प्रायश्चित्तों के स्वरूप सब जुदे जुदे ब्रह्महत्या आदि द्युक्त पापों पर उसी क्रम से दर्शवैगे कि जैसा पहिले खुल्लम पापों के प्रायश्चित्त ब्रह्महत्या आदि के क्रम में वर्णन हो चुके ॥

(ब्रह्मबध प्रायश्चित्त)

त्रिरात्रोपोषितोजपत्वा ब्रह्महत्यावधमर्षणम् । अन्तर्जले विमुञ्चेत्तद्वत्पागाञ्चपयस्तिनाम् ॥ ३०२ ॥

अर्थः—ब्रह्महा तीनरात्र उपास किया जलके भीतर अधमर्षणा को जपके पयस्त्विनी गाय देकर विशुद्ध होय—अर्थात्—छिपी हुई ब्रह्महत्या जिसपर हो गई सो ब्रह्महा पुरुष किसीसे जाहर किये बिनाही तीन दिन उपवास करे और उन्हीं तीनों दिवस तीर्थ के जलाशय पर जलके भीतर निसर्गन वेठाहुआ उस अधमर्षणानन्ध की जपे जो इसी नामके महर्षि ने अधमर्षणा सूक्त (ऋतंच सत्यंचेति) इत्यादि ऋचाओं

का अनुष्टुप् भाव और दृत और देवता के परिज्ञान सहित निश्चयकरिके प्रकाश किया है उसी सूक्तको जल में छिपिकर तीन बार जबै जितनी देरमें तीन आहूति पूरी होसक्तीहों उतने काल तक तीनों दिन जप किये पीछे चौथेदिन दूध देती हुई बिआनी अधिक दुधार गाय दान करिके शुद्ध होजाताहै ॥ ३०२ ॥

३०२ अधिकोक्तिः=ऊपर लिखे नियमोंका प्रमाणभी अत्रोक्तवचनहै=यथाह
सुमंतुः=देवद्विजगुरुहताप्सुनिसग्नोऽधमर्यगासूक्तविरावर्तयेत् सातरंभगिनीं गत्वा मातृ
पुत्रसारस्वत्यां सखीं चान्यद्वाऽगम्य गमनं कृत्वाऽधमर्यगामेवान्तर्जले त्रिरावर्त्य तदेतस्मा
त्पूतो भवतीति=अर्थात्-सुमन्तुने खुलासाही कहिदियाहैकि-देवद्विजगुरुइनका
हता पुत्र्य जलमें निसग्नहोके अधमर्यगासूक्तको तीनवार जबै किन्तु-माता-भगिनी
को गमनकरिके यमाताकी वहिन सावसीकी या पिताकी वहिन फूआकी या बेटा
की वधूकी या सखी कोभी गमनकरिके यद्वा और प्रकारका अगम्य गमनकरिके
अधमर्यगा सूक्तहीको जलके भीतर तीनवार जपिके बड़ पापी इनपापोंसे छुटिकर
शुद्ध होजाता है (अर्थात् अधमर्यगासूक्तही एक ऐसा परमतीव्र शस्त्रहै जिससे सब
तरहके पाप काटिजातेहैं) सुमंतुके इसवचनमें देवहता जो कहा सो दो तरहका सम-
भक्ता किन्तु जिसने गुप्तभावेसे कोई देवमूर्ति तोड़ीहो या छिपकरकहीं किसीराजा
का वध किया हो तहां राजा का वध भी दो तरह का समभक्ता किन्तु जिसने
किसी शस्त्र आदिसे वधकिया हो या तांत्रिक प्रयोगोंवाली कृत्यासे वध किया हो
ये सभी देवहता समभिलेने और द्विजहंता यद्यपि यहां पर ब्रह्महत्या की प्रधानता
से ब्राह्मण को मारनेवाला अभिप्रेतहै तथापि शब्द अर्थसे द्विजाती माधका मारने-
वाला समभक्ता किसी दोष और विरोध में गिनती नहींहै क्योंकि अधमर्यगासूक्त जो
ब्रह्महत्यापर्यन्त महापाप को भेटिसक्ता है उसको सभी वैश्यके वधका पाप भेटने में
न कुछ उज्जर है न कठिनहै है(इस दृष्ट्या में ऊपर जो खुलासा शब्द लिखागया
तिसको यावनी भाया के अनुसार सारार्थका बोधक न समभक्ता किन्तु देशी भाया
में खुल्लमको खुलासा कहिते है इष्टान्त जैसे ढंकासा या खुलासा-स्पष्टमिवेत्यर्थ
स्पष्टमेवेत्यभिप्रायः ॥ एतच्च कामकारविषयमिति मित्ताक्षरा=यत्तुमनुनोक्तं=सव्याह
तिप्रगावकाः प्राणायानास्तुयोद्धश अपिभूराइनमासात्पुनंत्यहरह कृता-तदप्यस्मि
न्नेवविषयेगोदानाशक्तस्यवेदित्यमिति मित्ताक्षरा=अर्थात्-मित्ताक्षराकार कहिते
हैं कि यह प्रायश्चित्त जो लिखि चुके सो सब उसके लिये समभक्ता जिसने इच्छा
सहित अत्रोक्त पाप किये हों=वल्कि जो मनुने यह कहाहै कि=सौरह प्राणायास

ओंकार प्रणव और न्याहृतियों सहित रोज रोज एक महीनातक साथै तो ये इतने प्राणायामभूराहृत्यारे को भी पवित्र करतेहैं अर्थात् किसीका गर्भ या बालक बच्चा तक बिनाश जिसने किया हो (इसके भीतर ऊपर कहे पापोंको भी समझना क्योंकि भूराहृत्या सबसे बड़ी होतीहै) सो भी इतने प्राणायामों से शुद्ध होजाताहै—मिताक्षराकार कहते हैं कि यह मनुका कहा एक महीने का प्रायश्चित्त इसी पूर्वोक्त वियथपर समझना कि जिसने इच्छा सहित पाप किया हो और योगीश्वर वाला अधमर्यगामूक तीनदिन जपने के पीछे यदि गोदान करने में असमर्थहो तो गोदानके पलटे यह एक महीनेका प्राणायाम अधिक साथै (ऐसेही महीने आदि के व्रतों में कि जहां जहां खाने पीनेका कुछ चर्चा नहीं किया जाय तहां तहां सर्वत्र वही नियम देखिलेना जो इससे पहिली अधिकोक्तिमें व्रताहार आदि नियम लिखचुकेहैं) इतिसकामकृतहृत्यादिप्रायश्चित्तं ॥ अथाकामकृतहृत्यादि विषयेसकामा कामभेदाः=यत्तुगौतमेन—यद्विंशदहोरात्रव्रतमुक्तोक्तं—तद्व्रतसेव ब्रह्महृत्यासुरापान सुवर्णस्तेय श्रुतस्वपेय प्राणायामैः स्नातोऽधमर्याजंयेदिति—तदकामतोऽसकृद्वियथ मिति मिताक्षरा=अर्थात्—गौतमने—छत्तीस दिनरातिका व्रत बयान करिके साथही उसके यह कहाहै कि• ब्रह्महृत्या• सुरापान• सुवर्णस्तेय• श्रुतस्वपानन• इन चारों प्रकारके महापातकोंपर वही ३६ दिनका व्रत करनेमें यह चाहिये कि नित्यप्रति स्नान करिके अधमर्यगामूकको जपै (स्थलहीमें जपना कहा जलके भीतर बैदना यहां पहिले कहेकी तरह मत समुझलेना) मिताक्षराकार कहतेहैं कि यह गौतम का कहा प्रायश्चित्त उसकोलिये समझना जिसने इच्छासे चाहेबिना कई बार पाप कियाहो=और=जिसने निषेध कामनासे चाहिकर पूर्वोक्त हृत्या आदि पाप कई बार छिपना कियेहैं। अथवा इच्छाके बिनाही पहिलोंसे बढ़िया पाप अर्थात् श्रोत्रियका वधकियाहो या आचार्यका वध कियाहो या यज्ञ करते वाह्यण आदिका वधकियाहो तिन सबकेलिये आगे ब्रीवायन का वचन देखो=यदाह्नव्रीवायनः=था मात्प्राचींचीदीचींदिशमुषनिष्कम्य स्नातशुचिवासाः उदकांस्तेष्विण्डितमुपतिष्ठ्य स कृत्स्नचवासाः सकृत्पूतेनपाणिना आदित्याभिमुखोऽधमर्यांस्वाध्यायमधीयात् प्रातःशतंमध्याह्ने शतंमपराह्ने शतमपरिमितंचोदितेषु नक्षत्रेषुप्रक्षतियाधकंप्राप्नोयात् ज्ञानतोऽज्ञानतःकृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः सप्तरात्रात्प्रमुच्यते द्वादशरात्रान्सहापातकेभ्योब्रह्महृत्यासुरापान सुवर्णस्तेयानिबर्जयित्वा सकाविंशतिरात्रेणा तान्यपितरतीति—तत्कामकारवियथ • अकामतःश्रोत्रियाचार्यं स्वनस्पवधवियथेति मिताक्षरा=

अर्थात्—बोधायन ने जो इस प्रकार से प्रायश्चित्त दर्शाया है कि—ग्राम से पूर्व और उत्तर की दिशा में घूमके उसी जगह स्नान किया हुआ शुद्ध वस्त्र पहिने जलाशय के समीप ही (स्पर्शडल) चबूतरा तुल्य वेदी बना कर एकही बार गोता लगाइ भीगा वस्त्र एक ही पहिरे हुये एकही बार पवित्र हाथ से स्पर्शडल को लीपि के उस पर सूर्य के सम्मुख बैठा हुआ अपना पाठ अधमर्यगा वेद मंत्र से पढ़े (इसकी कितनी आवृत्ति करनी चाहिये सो कहिते हैं कि) प्रातः कालिक संध्या के साथ एक सौ अधमर्यगा पढ़े संध्याह्न की सन्ध्या साथ एक सौ अधमर्यगा जपे सायंकाल की सन्ध्या से पहिले एक सौ अधमर्यगा के मन्त्र जपि चुके फिर सन्ध्या के साथ भी यथा शक्ति अधमर्यगा मन्त्रों का पाठ करे जिनका परिमान कुछ नहीं है किन्तु जितने होसके वही अपरिमित परिमान है तिस पीछे राति में नक्षत्रों का उदयहोने पर एक पसर अर्थात् आधी खँजुरी जो लेकर उन्हें गोमूत्र में रौंधि के यावत् बनारि तिसका भोजन करे ऐसा नियम सात दिन करने से उन पापों से छुटि जाता है कि जो कुछ गुप्त भाव से उपपातक भाव अपने ज्ञान सहित किया हो वा अज्ञानता से किया हो और बारह दिन ऐसा नियम साधने से महापातकों से भी छुटि जाता है पर (ब्रह्महत्या • मुरापान • चवर्गस्त्येय) इन तीनों को छोड़के शेष महापातकोंका यह नियम कहा गया और इक्कीस दिन उसी तरह अधमर्यगा का जप करने से उन तीनों से भी छुटि जाता है—मितासराकार कहिते हैं कि यह बोधायनका कहा प्रायश्चित्त कामना सहित किये पापों पर करना चाहिये अथवा बिना कामना केभी जिस किसीने श्रोत्रिय विद्या का वध किया यद्वा आचार्य का वध किया हो या किसी की यज्ञ करते मारडारा हो तिसको भी यह २१ इक्कीस दिन का प्रायश्चित्त चाहिये ॥ अथवा कामना सहित श्रोत्रिय आचार्य और यज्ञस्य का वध किया हो तिसके लिये अगोक्त मनुका वचन देखो—यथा= अरण्येवाग्निभ्यस्य प्रयतोवेदसंहिताव मुच्यतेपातकैः सर्वैः पराकैः शोभितैश्चिभिरिति—तत्कामतः श्रोत्रियादिवधवियमं इतरधत्तमतोऽभ्यासविययवेति मितासरा=अर्थात्—वन जंगल में तीन बार वेद की संहिता पाठ करिके जितेन्द्र होके रहिते हुये तीन पराकों से शोधे हुये सभी पातकों से छुटि जाता है अर्थात् चाहें कोईता पाप गुप्त किया हो पहिले तीन पराक व्रत करिके पीछे वेदकी संहिता तीन बार पढ़े—सोयइ बड़ा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने कामना सहित श्रोत्रिय आदि का वध किया हो अथवा श्रोत्रिय आदि से उपरालुओं का वध इच्छा सहित अनेक बार किया हो तिसके लिये भी

समभक्ता यह मिताक्षराकारनेकहा ॥ यत्तु वृहद्विद्यानोक्तं=ब्रह्महत्यां कृत्वा प्राप्तात्प्रा
 चोमुदीचींवा दिशमुपनिष्क्रम्य प्रभुतेन वनेनाग्निं प्रज्वालयाधमर्यागोनाधमहस्रमाहुतीर्जु
 हुयावततस्तस्मात्पूतो भवतीति-तान्निर्गुणावधविययमनुग्राहक विययवेति मिताक्षरा=
 अर्थात्- बड़े बिप्ला का जो कथन है कि-छिपी ब्रह्महत्या करिके ग्राम से बाहर
 पूर्वदिशा या उत्तर दिशामें निकसिके बहुत ढेर ईधनकी अग्नि जलायके अधमर्यागा
 मन्त्र से आठ हजारआहुतें होमैं तिससे इस पाप से छुटि जाता है-मिताक्षराकार
 कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त मुगम है तिससे उसके लिये समभक्ता जिसने निर्गुणा
 ब्राह्मणा को मारा हो अथवा गुरावाच को मारने वाले का अनुग्राहक जो कोई ब-
 ना हो तिसके लिये भी ॥ यत्तु यमेनोक्तं=अहंतृपवसेयुक्तश्चिरदोऽभ्युपयन्त्रयः शुच्यते
 पातकैः सर्वैश्चिर्जपित्वाऽधमर्यागाम-तद्गुरावतोदंतुर्निर्गुणावधविययं प्रयोजकानुमंदं
 विययवेति मिताक्षरा=अर्थात्-यम ने जो कहा है कि-तीन दिन उपवास करै जि-
 तेंद्री होके फिर तीन दिन जल के आहारसे रहै तहां तीन बार अधमर्यागा को नित्य
 जपता रहै तो सभीपातकों से छुटि जाता है-मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रा-
 यश्चित्त उससे भी मुगम है तिससे उसके लिये समभक्ता जो मारने वाला गुरावाच
 होकर उसने निर्गुणी ब्राह्मणा को मारा हो अथवा गुरावाच को मारने वाले के
 साथी सहायक प्रयोजक अनुमन्ता वने हों तिनके लिये भी ॥ यत्तु हारीतेनोक्तं=न
 हापातकातिपातकानुपपातकानामेकतः संपातेवाऽधमर्यागमेव चिर्जपेदिति-तन्निमित्त
 कर्तव्यविययमिति मिताक्षरा=अर्थात्- हारीत ने जो कहा है कि जब किसी पर एक
 साथ ही सब तरह के पाप आपरैं किन्तु महापातक अतिपातक अनुपपातक आदि
 एक साथ ही बनि परैं या इन में से कोई एक तरह का पाप आपरै तब अधमर्यागा
 को ही तीन तीन बार कुछ दिन अपरै-मिताक्षरा कार कहिते हैं कि-यह प्रायश्चित्त
 केवल निमित्त कर्ता पर आरुद्ध होना चाहिये (निमित्तकर्ता वही कहाया है
 जिसने हाथ से नहीं मारा परन्तु किसी तरह से हृदय को दुखाया जिससे वह आप
 ही बड़ि मरा या विय भक्षणा किया इत्यादि अनेक भेदहैं ॥ मिताक्षरा कार कहिते
 हैं कि जैसे दस पाँच मुनीश्वरों के वचन यहां पर में लिखे और उनके न्यूनाधिक
 भाव से वियय भेदपर विभागकर दिखलाया तैसे और भी स्मृतियों के वचन ढूंढि
 कर विभाग कर लेना चाहिये क्योंकि ग्रन्थ बड़ि जानेके डरसे यहां सब नहीं लिखे
 जाते हैं- फिर कहिते हैं-कि- यही प्रायश्चित्त रूपी व्रतों का समूह जिस जिस
 परिमाण से लिखा गया तिसमें से एक चौथाई कम करिके तीन पाद उसके लिये

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

६७१

समझना कि जिसने यज्ञ कार्य में लगी हुई स्त्री का वध किया हो या यागस्थसत्री पुरुष का या यागस्थ वैश्य पुरुष का या आत्रेयी का वध किया हो (आत्रेयी को लसरा तीसवें परिच्छेद में देखो) ॥ ३०२ ॥

योगीश्वर ने इसी ३०२ मूल श्लोक में ब्रह्महत्या पर तीन दिन का व्रत कहा था अगिले मूल श्लोक में विकल्प के लिये उसी ब्रह्महत्या पर एक ही दिन का व्रत कहेंगे परन्तु इन दोनों विधान को छोटा सब समझना क्योंकि दोनों में जल का निवास भी दर्शाया है जो सबसे बड़ा तप होता है ॥

(प्रायश्चित्तान्तरं ब्रह्मघस्यैव)

लोमभ्यः स्वाहेत्युपवादि वसंस्तुतवानः । जले स्थित्वा प्रिजुहुयाद्भृशतवारिं शतघृताहुती ३०३ ॥

अर्थः—अथवा दिन भर वायु भस्मण किये जलमें स्थिति करिके लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे घृतकी चालीस आहुतें अग्निमें होसै—अर्थात्—अथवा जो पहिले कहे प्रायश्चित्तकी न करना चाहै तो यह करै कि एक दिन रात भर उपवासरूपी व्रत किये हुये दिवस बीतिजाने पर संध्या समयसे लेकर तमाम रात्रिभर जलमें बैठे फिर प्रातःकाल जलमेंसे निकसिके अग्निको वेदीपर प्रज्वलित करै तिसमें चालीस आहुतियां घीसे होसै उन्हीं मंत्रोंसे कि जो पहिले (ब्रह्महत्यावाले प्रकरणाके बीच उनतीसवें २६ परिच्छेदके प्रारम्भसे २४७ दोसौसैतालिस के मूलश्लोक और उसी की अधिकोक्ति में) लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि आठ मंत्र लिखे गयेथे उन प्रत्येक से पांच२ आहुतें छोड़ें सो आठ पंजे चालीस होतीहैं—यद्यपि एकही दिन कहा तथापि इसकी पूर्वाक्तके बराबर समझना जलमें निवास एक राति भर करने के बद्दृष्टन से यह प्रायश्चित्त छोटा नहीं ॥ ३०३ ॥ इति ब्रह्मवधमहापातकस्य प्रायश्चित्तं ॥

अथ ब्रह्महत्याव्यतिरिक्तमहापातकत्रयरहस्यानां
तत्संसर्गिणोऽपिरहस्यप्रायश्चित्तविवेकोऽयं परि
च्छेदः कनाशीतितमः (७८)

—*—

इस परिच्छेद में ब्रह्महत्या से उपरालू महापातक तीनों भांति के जो
छिपिकर हुयेहों तिनके जुदेजुदे प्रायश्चित्त रहस्य और संसर्ग
के प्रायश्चित्त भी सब जाने जायेंगे ॥

(सुरापानप्रायश्चित्तं)

त्रिरात्रोपोषितो हृत्वा कूष्माण्डीभिर्वृतं शुचिः † ३०४ (पूर्वार्धेऽयं) ॥

अर्थः—तीन रात्रि उपवासकिये कूष्माण्डी ऋचाओं से वृत होमिके शुचिहोय=
अर्थात्—सुरा पीकर जो अशुचि हुआ हो वह भी चालीस आहुतों ऊपर के श्लोक
में दर्शाई हुई होमिके प्रविष्ट होता है परन्तु इसके संव जुदेहैं कि जैसा अधिकोक्ति
में देखी ॥ ३०४ ॥

३०४ अधिकोक्तिः—(कूष्माण्डीभिः यद्देवादेव हेडनमित्याद्याभिः कूष्माण्डद्वया
भिरनुष्टुभमंत्रालिंगदेवताभिश्च गृहिप्रचत्वारिंशत्तथ ताहुतीर्हृत्वा शुचिर्भवेदिति मिताक्षरा)
अर्थात्—सब श्लोकमें यद्यपि आहुतियोंकी संख्या कुछ नहीं कही परच कूष्मांडी
ऋचाओं से वृत होमना कहा तिसका निर्णाय मिताक्षराकार ने यह लिखा है कि
(यद्देवादेव हेडनं) इत्यादि ऋग्वेद की ऋचार्यों जो कूष्माण्डनाम ऋषिकी कही
कूष्मांडी कहाती हैं जिनका अनुष्टुभ मन्त्ररूप देवताकहाता है तिनसे चालीस आहुतें
घीकी होमिके वह पुरुष शुद्ध होजावें जिसने छिपमा सुरापान किया हो ॥ बौद्धा-
यनेनाप्युक्तं=अथ कूष्मांडद्वयाभिरनुष्टुभिर्बहुयाव योऽपूतस्वात्मानं सन्त्येत् यद्वर्वा
चीनमेनोऽध्वाहत्यायास्तस्मान्मुच्यते अथोनीवारेतः सित्काऽन्यत्स्वप्नात्=अर्थात्—
बौधायनजी प्रथम अध्यायसे अन्वादेश प्रकट करतेहैं कि यह प्रायश्चित्त चाहिये
किन्तु कूष्मांड की देखी विचारी अनुष्टुभ मन्त्ररूपो ऋचाओंसे वह पुरुष होम करे
जो अपने शरीर को अपविष्ट मानता हो अर्थात् जिसने सुरा आदि कोई अशुद्ध वस्तु

खाई पीहो और जो इसी जन्मका किया पाप कोई गर्भ इत्या बालहत्या सम्बन्धी होय तिससे छुटिजाताहै अथवा स्वप्नमें वीर्यपात होनेसे उपरालू जो बढिया पापहै कि जिसने अयोनिमें वीर्यपात कियाहो तिस पापसे भी छुटिजाताहै (यहाँपर अ- योनि कहिनेसे यह तात्पर्यहै कि योनिके बिनाही धरती आदि पर वीर्यपातकिया हो यद्वा पुंस्यके साथ सैद्युन करिके वीर्य शुद्धमे सींचाहो सो भी अयोनिमें सींचना कहाजासक्ताहै यद्वा चाराडालो वा शरानी आदि अग्न्या स्त्रियोंकी योनिहीमें सींचाहो सो भी अयोनिमें सींचना तात्पर्यहै क्योंकि वहयोनि उसकेवीर्य सींचनेयोग्य नहींहै तिससे अयोनि इसी शब्दसे उपलक्षित करी (परन्तु सोतेसमय स्वप्नमें किसी स्त्री के ध्यानसे अथवा बिना ध्यानके आपही वीर्य गिरजाय तिसकेलिये यहप्राय- श्चित्त नहींहै—अन्यथा स्वप्नात्—इसअपवाद रूपी छूटका यही तात्पर्यहै) और यह भी तात्पर्यहै कि जिसने सोते समय अपनी कामनासे किसी स्त्री का स्वस्वप ध्यान करिके उसकी योनि में वीर्य सींचा होय तो यह अयोनि ही में सींचना कहावेगा क्योंकि यथार्थसे कोई योनि वहाँपर साक्षात्कार नहींमौजूदहै तिससे अयोनिकही गई अर्थात् उसके मध्ये यही प्रायश्चित्त करना चाहिये जो बौधायन मुनिनेकहा— बौधायनके इस वचनमें (अयोगोवासेत.सिक्ता) इसी पदसे अनेक अर्थ जो उत्पन्न हुये तिसका यहीकारणहै कि उन्होंने वा शब्द इसी निमित्तपर दर्शायाहै कि सब तरहके अर्थ भेद समुभोजाय ॥ ० ॥ यत्तुमनुना=कौत्सजपद्वा२पइत्येतद्वाशिष्यं च प्र तीत्यृचम साहित्रशुद्धवत्यश्चसुरापो२पिविशुद्धाति—इतिमासप्रत्यहंयोडशकृतवो२पनः शोशुचदद्यमित्यादीनामनन्यतमस्यजपउक्तः सधिरात्रोपवासकूप्मांडहोमाशक्तस्यवेदि- तव्य इतिमिताक्षरा=अर्थात्—मिताक्षराकार ऊपरकी व्यवस्था कहिकर फिर क- हिनेलगे कि—मनुने जो कौत्स आदि प्रलोकमें (अपन.शोशुचदय) इत्यादि अनेक ऋचायें दर्शाइकर उनमेसे किसी एकही सत्रका जप एक महीनाभर प्रत्येक दिवस सोरह सोरह बार अपना कहा सो उसके लिये समुभक्तना कि जिसपर योगीश्वर का बताया तीन दिन उपवास और एक दिन कूप्मांडो सत्रो से चालीस आहुतें घी की न होसकें (यहाँ पर शोचना चाहिये कि तीन चार दिनकी अवधि के सन्मुख य- द्यपि एक महीना की अवधि बहुत बड़ी होती है तथापि आचार्य्यने उसको इतहेतु से छोटी ठहिराया है कि उसमें केवल सोरहसत्रो का जपही करना होगा किन्तु उसके सन्मुख तीन दिनका उपवास और चौथे दिन चालीस आहुतें देना बहुत कठिन प्रतीत होता है) इसीलिये जो कोई इस कठिनाई को न साधि सके सो

उसको करै यह कहा—परन्तु मनुके उस वचन का यह तात्पर्य नहीं है कि सौरह मन्त्रोंसे अधिक न जपै वल्कि यद्वा तात्पर्य है कि जितना अधिक जप होसके उतना करै पर कम से कम सौरह बार अवश्यही किसी एक मन्त्र का उच्चारण कियाकरै कि जिस मन्त्र का नियम प्रथम दिन से स्वीकार किया गया हो—अब=उस कौत्स आदि श्लोक वाली टीका यहां लिखिकर भाषा अर्थ भी दर्शाति है—यथा=कौत्स मिति=कौत्सेन ऋषिराण्यं अपनःशोशुचदद्यं इत्येतत्सुक्तं—वाग्धियं न ऋषिराण्यद्वयं च प्रतिस्तोमेभिरुयसंवाग्धिया इत्येवं ऋचं—महिर्बं—महिर्बोराणां सर्वोस्त्वित्येतत्सुक्तं—शुद्धवत्य सतानिद्रंस्तवाम इत्येतास्तिस्त्रयः । प्रकृतंमासमहरहः योऽश्नश्नश्नोऽपिपि-त्वासुरापोऽपिपिशुद्धति । अपिशब्दात् आतिदेशिक सुरापान प्रायश्चित्ताधिकृतो-पि २४६ श्लोक अध्यायः ११ मनुमुक्तावल्या मितिपाठः—अर्थात्—(अपनः शोशुच दद्यं) यही मन्त्र जो कौत्स ऋषि ने वेद में निश्चय किया था तिसको जपै—या—(प्रतिस्तोमेभिरुय संवाग्धिया) यह ऋक् मन्त्र जो वेद में वाग्धिय ऋषि ने प्रकाश किया था तिससे यह वाग्धिय नाम कहाता है तिसको जपै—या—(महिर्बोराणामवो स्तु) यह इतना मन्त्र जो महिर्ब ने प्रकाश किया था तिसको जपै—या—(शुद्धवत्य सता निद्रं स्तवाम) ये इतनी तीन ऋचार्ये जो शुद्धवतो नाम से कहाती हैं तिनको जपै=कितना जपै या कबतक जपै यह सम्यक् खड़ा रहा— तिसके लिये जैसा इससे पहिले श्लोक में मनु कहि चुके हैं वही एक महीना की अवधि तक सौरह सौरह मन्त्रों का जप रोज करना सूचित हुआ क्योंकि उसमें सौरह प्राणायाम करने कहे थे उतना जप करने से भी सुरा पान का पातक मिटि जाता है ॥ अब मिताक्षरा—सतत्वा कामतः पैय्याःसकृत्पाने—गौडीमाध्वोस्तु पानाद्युतौ वेदितव्यं—अर्थात्—इत पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसकोलिपे समझना जिसने पैसी सुरा जो अन्नके संयोगसे बनतीहै बिना इच्छाके एकहीबार पीलइहो और गौडी जो शुद्धसेवनतीहै माध्वी जो महुआसेवनतीहै इनको इच्छासहित अनेकवार पीलियाही तिसकोलिपेभी ॥०॥ फिरकहिहते हैं कि जिसनेकामनाकेसाथ सुरापानकिया तिसको अग्रेक मनुका कहा प्रायश्चित्त है—यथा—सर्वैःशाकलहोमीयैरन्वहुच्चाघृतंद्विजः सुगु र्वप्यपहंत्येनोजपत्वावानमइत्यृचस=अर्थात्—द्विजातो पुरुष शाकलहोमी नामको वेद संज्ञा से एक साल भर धी का होस करिके बड़े से बड़े भी पाप को विनाश करता है अथवा (नम इन्द्रश्च) इस ऋचा को एक साल भर जपि के पाप को धो देता है—अर्थात् (देव हतस्यैनस) इत्यादि आठ मन्त्र वेद में शाकल होमी कहिते हैं तिनसे

रोज रोज घी होमि के एक वर्ष पूरा करै अथवा (नम इदुयं नम आवि वास) इस ऋचा से जप करते हुये एक साल पूरा करै दोनों तरह से महापातक नाश होजाते हैं (यहां पर नम इत्यादि ऋचाका दो जगह बोहरा रूप मनु मुक्तावली और मिताक्षरा के पाठ भेदसे होगया है तिसका ठीक शोधन वेदहीसे होसका है ॥ ० ॥ मिताक्षरा-कार फिर कहिते हैं कि मनु का अशोक्त एक दूसरा जो वचन है कि (महापातक संयुक्ताऽनुगच्छेद्गमा समाहितः अन्यस्यावदंपावमानीर्भक्ष्याहारोविशुध्यति) सो इस वचन का प्रायश्चित्त उसके लिये समझना कि जिसने बारम्बार उसी महापापका अभ्यास किया हो यहा अनेक महापापों का समुच्चय एक साथ किया होय=और अर्थ इसका यही है कि यदि कोई द्विजाती महापातकों से संयुक्त होजाय सो एक साल भर अपने चित्त को लगाकर गौओं के पीछे पीछे फिरै और (पावमानीः) इस ऋचाका जप बारम्बार अभ्यास करतार है और भिसा मांगि भोजन किया करै तो यह शुद्ध होजाताहै (मुरापानका प्रायश्चित्तकिये पीछे एकदुधारगाय वेनीचाहिये सो ३०५ मूलश्लोक में देखना ॥ यहपूर्वार्ध मूलश्लोककी अधिकोक्ति पूरीहुई ३०४॥ उत्तरार्ध से सुवर्ण हरने का प्रायश्चित्त नीचे कहेंगे ॥

इतिसुरापान महापातकस्य प्रायश्चित्त ॥

(अथसुवर्णस्तेय प्रायश्चित्त)

ब्राह्मणस्वर्णहारीतु रुद्रजापीजलेत्थितः ३०४

अर्थः-तु-अथय के योग सेतीन रात्रि का उपवास जो पहले कर्हिचुके वह इसमें भी लगता है तिससे-ब्राह्मण का सुवर्ण हरने वाला महापातकी पूर्वोक्त तीन दिन का उपवास किये जल में वैठा हुआ रुद्र जप करने से विशुद्ध होता है अर्थात् (नमस्तेरुद्रमन्यव) इत्यादि शत रुद्रोंका जप तीनदिन जलमें बैठके करै ॥ ३०४ ॥

३०४अधिकोक्तिः-शातातपने एक जुदी विशेषताके साथ यहीकहा है=यथा =मद्यम्पीत्वागुरुदारांश्चगात्वास्तेयं कृत्वाब्रह्महत्यांचकृत्वा भस्माच्छन्नीभस्मशय्यां शमानोसद्ब्राध्यायीमुच्यतेसर्वपापैः=अर्थात्-मद्य पीके या गुरुदारा सरास करिके या चोरी करिके या ब्रह्महत्या करिके रुद्री पाठ करतेहुये सभी पापोंसे छुटिजाता है जो देहमें भस्म रमाये और भस्मही पर लोटिपेटि रहिकर पाठकिया करै=यहां भी तीनही दिन समुझने जो ऊपर कर्हिचुके और कितना जाप करै इस अपेक्षा

में ग्यारह आवृत्ति करनी चाहिये क्योंकि (एकादश गुराण्वापि स्रुद्रानावर्त्य धर्मवित् महापापैरपि स्पृष्टो मुच्यते नात्र संशयः) यह अत्रि मुनि का वचन प्रसारा है कि धर्म का जाननेवाला यदि महापापों से भी संयुक्त होजाय और उस से कोई और प्रकारका प्रायश्चित्त न होसके तो वह ग्यारहगुरास्रुद्रोंका पाठकरिके भी मुचि जाताहै इसमें संशय नहीं ॥ ० ॥ यत्तुमनुना=सकृज्जप्त्वाऽस्यवासीयं शिव सकल्पमेव च सुवर्णमपहृत्यापि स्राराद्भवति निर्मलः (इति द्विपचादृक् सख्याकस्य-अस्यवासस्य पलितस्य हेतुरिति सूक्तस्य-तथा-यज्जाग्रतो दूरमुदैतदैवमिति शिवसकल्पस्य वा-सकृज्जप उक्तः सोऽत्यन्त निर्गुण त्वात्मिक स्वर्ण हरणो गुरावतोऽपहर्तृश्च न्य सुवर्णान्पूज्य परिमारा विययोऽनुग्राहक प्रयोजक विययोवा-आवृत्तौ महा पातक सयुक्तोऽनुगच्छेदित्यादिनोक्तन्द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा=अर्थात्-मिताक्षरा-कार ऊपरकी व्यवस्थासे निपटिके फिर कहितेहै कि० जो मनुने सकृज्जप्त्वा आदि वचनमे दर्शाये मन्त्रके एकही बार जप करनेसे सरासात्रमे शुद्धहोजाना कहा सो उसके लिये समझना जो अत्यन्त निर्गुण अर्थात् नित्य नैमित्तिक यज्ञों को निपटही न करने वाले ब्राह्मण का सुवर्ण जिस किसी गुणवाच अर्थात् यज्ञादि कर्म करने वाले ने गुपतीअर हराही अथवा इन लक्षणां की बिना भी सुवर्णके मुख्य परिमाण से न्यून सोना हर लिया हो अथवा मुख्य चोर से उपराल जो कोई उस चोर का अनुग्राहक प्रयोजक आदि कोई सहायक हो तिसकेलिये भी समझना क्योंकि प्रायश्चित्त अति छोटा है-और जिसने कई बार सोना हरा हो तिसके लिये ऊपरली अधिकोक्ति के अन्त में महापातक सयुक्तो आदि मनु के वचन वाली व्यवस्था देखना-मिताक्षराकार ने प्रायश्चित्त की इस हेतु से अति छोटा कहा कि मनुने एकही बार मन्त्रका जपना और सरासात्र में पापीका निर्मल होजाना दर्शाया है-परन्तु-मनु सूक्तावली टीका में एक महीना भर हररोत्र एकबार मंत्र जपना कुल्लुका भट्टने दर्शायाहै-तिससे अब दोनों टीकाके भाया अर्थलिखने आवश्यक दहिरे-तहां पहिले मिताक्षरा की धर्तों जो ऊपर लिखि चुके तिनका यह अर्थ है कि मनु ने-सकृज्जप्त्वा आदि इस वचन में ५२ वाचन ऋचा की सख्या वाले-अस्यवासस्य पलितस्य इत्यादि सूक्त का जप एकही बार सकृज्जप शब्द से दर्शाया-तथा-यज्जाग्रतो दूरमुदैत इत्यादि शिवसकल्प नामक मंत्रका जप एकही बार सकृज्जप शब्द से दर्शाया और एक ही बार एक मंत्र जपने से उसी सरासात्र में पापी का निर्मल होजाना कहा=तथापि=इस व्याख्या की हरतरह अनुचित जानि के कुल्लुक भट्ट

ने यह व्याख्या लिखी है कि (प्रकृतत्वात् मासमेकं प्रत्यहमेकवारं (अस्यवाम-
स्येत्यादिक मस्यवामीयसूक्तं जपित्वा) शिव सकल्पं (यज्जामतोदूर मित्येतत्)
वाजसनेय के यत्पठितं तज्जपित्वा सुवर्णा सपहत्य क्षिप्रमेव निष्पापोभवति २५०)
अर्थात्—कुल्लुक भट्ट कहते हैं कि मनुके ग्यारहवें अध्याय का दो सौ पचासवां
यह श्लोक है और २४८ दोसौ अरत्तालिसके श्लोकमें एक महीना भर प्रायश्चित्त
करनेका प्रसंग आ चुका है उसी प्रकृत प्रसंगसे यहां भी एक महीना भर हररोज एक
वार अस्यवामीय नामक सूक्त जपना और शिव सकल्प नामक मंत्र भी जपना जो
यजुर्वेदकी शाखा वाजसनेयनामके बीच कहीं आया है । तो इस प्रायश्चित्तसे सुवर्णा
का अपहरता भी क्षमा हो जाता है अर्थात् पूरे महीना भर प्रायश्चित्त पूरा कर
चूकनेके समयसे लेकर शुद्ध हो जाता है यह तात्पर्य सरा शब्दका ठीक है—बढ़ नहीं
कि एक सायतभर में शुद्ध हो जाय जिससे प्रायश्चित्त अति छोटा समझा गया था
(सुवर्णास्तेय का प्रायश्चित्त किये पीछे एक दुवार गाय देने चाहिये सो ३०५
मूल श्लोकमें देखना ॥ ३०४ ॥

इतिसुवर्णस्तेयमहापातकस्यप्रायश्चित्तं ॥

(अथगुस्तल्पप्रायश्चित्तं)

सहस्रशीर्षाजपीतुमुच्यतेगुस्तल्पनः गौर्देयाकर्मणोऽस्यान्तेष्टपण्येभिः पशविवनी ३०५ ॥

अर्थः—सहस्रशीर्षा जपनेवाला गुस्तल्पगामी भी मुक्त होता है इन सबको इस
कर्मके अन्तमें पर्याखिनी गाय भी जुदी देनी चाहिये—अर्थात्—जिसने छिपसा गुरु
द्वारा गमन किया हो जिसका भेद नहीं खुलनेपाया तो यह पापी सहस्रशीर्षा आदि
सौरह ऋचाओंवाला सूक्त जो नारायणका प्रकाश किया कहाता है जिसका पुरुष
देवता है अनुयुभ छन्द है त्रिष्टुप्छन्द जिसका अन्त है तिसको जपतेहुये उस गुरु पाप
से छुटिजाता है—और (पृथक्पण्यः) गुस्तल्पगामी तथा पूर्वोक्त घ्राणकारी और
सुवर्णास्तेयी इन तीनोंको पृथक् जुदे अपने प्रायश्चित्त रूपी कर्मके समाप्त होनेपर
बहुत दुवार गाय दूध देतीहुई बच्छा सहित दान करनी चाहिये ॥ ३०५ ॥

३०५ अधिकोक्तिः—सहस्रशीर्षाजपी इसपदमे ताच्छील्य प्रत्यय होनेसे आठति
पाठ समुभा गया है कि बारम्बार जपता रहे किन्तु एकही बार जपिके न चुपका
हो जाय—इसीका प्रमाण भी इसका यह वचन है कि (पौरुषसूक्तमावर्त्यमुच्यतेसर्वं

किल्बिषात्) अर्थात्—पुरुष देवतावाला सूक्त जो सहस्रशीर्षा के नामसे कहि चुके
 तिसको बारम्बार जपिके सबतरह के पापोंसे मुचिजाता है ॥ आठत्तौचसंख्याऽपेसा
 यामधस्तनश्लोकागताचत्वारिंशत्संख्याऽनुमीयते—अत्रापिप्राक्तनश्लोकागतं विरात्रो
 पोयितइतिसम्बध्यते इतिचमिताक्षरा=अर्थात्—मिताक्षराकार यह भी कहितेहैं कि
 बारबार जपने मध्ये जो यह कहाजावै कि कितनी संख्यातक बारबार पाठ किया
 जाय और कितने दिन कियाजाय तौ फिर ३०३ तीनसौतीनके श्लोकमें ४० चा-
 लीसकी संख्या जो आहुतोंपर कही गई और ३०४ के श्लोकमें भी स्वीकार करो
 गई वही यहां भी पाठों पर अनुमान होतीहै और उसी ३०४ के श्लोकमें तीन रात्र
 उपवास करना कहाया सो भी यहां समुझिलेना कि तीन दिन तक उपवास किये
 हुये सहस्रशीर्षा आदि सूक्तके पाठकी आठत्तो करता रहे—इसबात का प्रमाण भी
 रुद्र विष्णाका यह वचनहै कि (विरात्रोपोयितःपुरुषसूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतत्पगः
 शुष्पेव) अर्थात्—तीन दिन व्रत कियेहुये पुरुष सूक्तका जप और होम इन दोकार्यों
 के करनेसे गुरु भार्या गामी शुद्ध होवै (तीनों पापियोंको गौदान करना ऊपर कहि
 चुकेहैं) मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह प्रायश्चित्त जो कहाया सो इच्छाविना
 स्वतः बनिपरे पातक पर समुझना और अगिले वचनसे मनुका कहा प्रायश्चित्त भी
 इच्छाविनाके बनिपरे पातकपर समुझना=यथाहमनुः=हविष्यन्तीयमभ्यस्यन्तमंह
 इतीतिच जपित्वापौरुष्यसूक्तमुच्यतेगुरुतत्पगः (इत्येकादशाध्याये २५१ श्लोकः=
 अर्थात्—हविष्यन्तीयनाम के वेदोक्त मंत्रको बारम्बार अभ्यास करिके या नतमंह
 इत्यादि नामके मंत्रको या इतिमेमनः इसमंत्रको या पौरुषसूक्तको जपिके गुरुभार्या
 गामी मुक्त होताहै (अक्षरार्थ केवल यहीहै सो लिखागया) परन्तु मनुमुक्तावली
 टीका और मिताक्षरामें इस वचनकी संस्कृतव्याख्या जैसी लिखीहै और उनमें कुछ
 थोड़ासा अन्तर भी प्रतीत होताहै तिससे उन दोनोंको तद्रूप यहां दर्शातेहैं=तत्राहङ्क
 र्तकभङ्गः—हवीति—हविष्यन्तमजरंस्त्रिर्विदामेकीनविंशतिस्त्रयः नतमंहोदुरितमित्यसौ
 हविष्यन्त इतिवा इतिमेमनः शिवसंकल्प इतिचसूक्तं सहस्रशीर्षा पुरुषइत्येतच्च यो-
 ऽग्रसूक्तानाममेकं प्रत्यहमभ्यस्येतिथयगात्प्रकृतत्वात्तयोद्देशाभ्यासेनजपित्वा गुरुद्वार
 गन्तस्मात्पापान्मुच्यते—इत्येकादशाध्याये २५१ श्लोकटीका=अथार्थमिताक्षरायथा—
 हविष्यन्तीयमजरंस्त्रिर्विदितं नतमंहोदुरितं इतिवा० इतिमेमनः—सहस्रशीर्षेत्येया
 मन्थतमस्य मासं प्रत्यहं योद्दश योद्दशकृच्चं चत्वारिंशत्संख्याकजपउक्ती मनुनासौ
 यकार्मावियस्रव=कामतस्तु=मंत्रेशाकलहोमीयैरितिमनूक्तन्द्रय्य=अर्थात्—प्रथम

कुल्लूकभट्टकृत व्याख्यामें यह तात्पर्यहै कि—जिन जिन ऋचाओं वा मुक्तोंकी समस्या मनुके वचनमें उपस्थितहै तिनकेसाथ अभ्यासकी आज्ञा लगीहोनेसे अनेकवार जप करना समुक्तागया और (कित्तक या कितने बार इस प्रश्नकी अपेक्षामें) पहिले २४४ के प्रलोकमें रोज रोज सोरहवारका नियम और एक महीने तक प्रायश्चित्त करनेका नियम जो मनुजी कहिचुकेहैं उसी प्रकृतआज्ञासे यहां भी एक महीनाभर हररोज सोरहवार कोई सा एक मंत्र निरन्तर जपलिया करै तौ गुरुद्वारागामी शुद्ध होजाताहै—इसी वचनकी व्याख्यामें मितासराकारने इतना भेद अधिक याज्ञवल्क्य जीके वचनके अनुसार और भी दर्शायाहै कि—उक्त मंत्रमें कोईसा एक मंत्र महीना भर तक सोरह सोरह चालीसकी संख्यासे गुणाकर जप किया करै क्योंकि योगीश्वरके ३०३ तीनसौतीनवाले मूलप्रलोकमें चालीसका नियम आचुकाहै तिससे सोरहकी चालीसगुणा करनेसे ६४० छःसौ चालीस मंत्र नित्यम्प्रति जपने ठहिराकर पीछेसे कहाहै कि यह प्रायश्चित्त भी उसीपर आरुद्ध होगा जिसपर विना इच्छा के पाप होगयाहो=किन्तु कामना से किये हुये पाप सध्ये=मनुका दूसरा वचन जो पहिले भी लिख चुके हैं सो देखौ=यथा=मंत्रैःशाकलहोमीयै रचंहुस्वाधृतं द्विजः सुगर्वप्यपहंत्येनोज्ज्वलवानमश्नुचक्ष (इत्येकादशाध्याये २५६ मनुः=अर्थात्—देवकृतस्य—इत्यादि वेदके मंत्र जो शाकल होमीय इस नामसे कहातेहैं तिनसे एक सालभर निरन्तर हररोज धी का होम करिके वह द्विजाती शुद्ध होजाताहै जिसने उपतोअर कड़ेसे बड़ा भी पाप इच्छा सहित कियाहो० अथवा इस होमकी न करसके सो (नम इन्द्रश्च इत्यादि) इस ऋचाकी एक सालभर जपिके बड़ेपापको धो दें ॥ ० ॥ मितासराकार फिर कहितेहैं कि जिसने उक्त पापकी इच्छा सहित कईबार कियाहो तिसकेलिये अयोक्त प्रायश्चित्त देखना कि जैसा यद्विंशन्मतवान के ग्रन्थका यह कथनहै=यथा=महाव्याहृतिभिर्होमस्ति लैः कार्यैः द्विजन्मना उपपातकशुद्ध्यर्थं सदस्य परिसंख्यया । महापातकसंयुक्तो लक्षहोमेन शुद्ध्यतीति (तदावृत्तिविषयमिति मितासरा=अर्थात्—जिसने सिर्फ उपपातक मात्र कियाहो ऐसे द्विजाती की उस पापकी शुद्धिकेलिये तिलोसे एकसहस्र आहुतियोंका होम महाव्याहृतियोंसे करना चाहिये जो गायत्रीके साथ होतीहै । परन्तु जिसने महापातक रूपी पाप कियाहो वह एक लाख आहुतियोंसे शुद्ध होताहै (सो यह एक लाख आहुतोंका होम उसीपर समुक्ता ना जिसने उसीपापको कईबार कियाहो यह मितासराने निर्णयसे निपटारा किया ॥ ० ॥ फिर कहितेहैं=यत्तु यमेनोक्तं=जपेदायस्यवाभोयंपावमानोरथापि वा कृत्वा

७८ अठ्तरिके परिच्छेद में रहस्यों की साधारण मिली भूली मर्यादा कहि-
कर केवल ब्रह्मइत्या के प्रायश्चित्त कहे गये फिर उनासी ७९ के परिच्छेद में सर्व
सहापातकों के प्रायश्चित्त कहे तिससे सहापातकों का निपटारा यद्यपि होचुका
परन्तु रहस्यों का प्रकरण अबतक नहीं पूरा हुआ किन्तु उपपातक आदि पापों
की अगिले परिच्छेदों में देखना तब इक्यासी परिच्छेद के अन्त में जाकर इसप्र-
करणा की समाप्ति होगी ॥

अथ उपपातकादीनां प्रकीर्णकपर्यंतानां भेदाविशेषा- नां च सर्वेषां रहस्य प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं परिच्छेदः अशीतितमः (८०)

— * —

इस परिच्छेद में सब तरह के उपपातक जो गोबध से आदि लेकर छप्पन
प्रकार के प्रकाश प्रायश्चित्तों के स्थल में दर्शाये गये तिनके रहस्य प्रा-
यश्चित्त यहां जाने जायेंगे और भी प्रकीर्ण पापों पर्यंत अति छोटे
पापों के प्रायश्चित्त इसी में मिल सकेंगे ॥

(सर्वोपपातकादीनां प्रायश्चित्त)

प्राणायामशतं कार्यं तर्वापापानुत्तये उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि ३०६ ॥

अर्थः—सब पापोंकी अपनुत्तिकेलिये उपपातकोंसे उपजेहुयों के और अनाविष्ट
केलिये भी प्राणायामोंका संकरा करना चाहिये—अर्थात्—गोबध आदि ५६ छ-
प्पनप्रकारके उपपातक जो २३४ दोसौ चौतीस मूल श्लोक से लेकर २४२ दोसौ
बयालिस तक दर्शायेगये उनमेंसे जिस किसी कर्मको छिपीअर कोड़े करें तिनसे
उपजे पापोंकी अपनुत्ति अर्थात् धोडारनेकेलिये एकसो प्राणायाम करने चाहिये-
तथा अनाविष्ट जिन पापोंके नामसे कोड़े रहस्य प्रायश्चित्त इसप्रकरणा में न कहा
गयाहो जैसे जातिधंशकर संकरी करणा मलिनी करणा आदि नामोंके पाप जो म-
न्वादिस्मृतियों में विदितहैं तिनदीकी छिपीअर कोड़े करिवैंते तिसके पाप धोनेके
लिये भी प्राणायामोंका संकरा करना चाहिये- तथैव सभी पापोंको धोडारने के

लिये भी प्राणायाम कियेजासकते हैं अर्थात् सर्व पाप कहिनेसे कोई पाप छूटा हुआ नहीं रहा किन्तु पूर्वोक्त महापातकों को आदि लेकर सबसे छोटे प्रकीर्णक पापों तक जितने पाप सृष्टिमें होते हैं तिनमेंसे चाहें कोईसा बड़ा या छोटा पाप जिस किसी ने छिपौआ किया हो और प्राणायाम करनेका अभ्यास जिसको अच्छीतरहसे हो रहा हो तिसको अन्य प्रायश्चित्त करनेकी अपेसा अधिकनहीं है वहकेवल प्राणायाम साधनकारिके शुद्ध होसकता है तहां इतनाभेदहै कि छोटेपापोंपर थोड़े और बड़े पापोंपर बहुत प्राणायामकरनेहोगे तिसका ब्यौरा अधिकोक्ति में देखो ॥ ३०६ ॥

३०६ अधिकोक्ति=महापातकोंमें कोईसा एक पातक छिपौआ जिसने किया हो तिसको चारसौ ४०० प्राणायाम करने चाहिये- जिसने अति पातकों में कोई पाप किया हो तिसको तीनसौ ३०० प्राणायाम करने चाहिये- जिसने अनुपातकों में कोई पाप छिपौआ किया हो तिसको दोसौ २०० प्राणायाम करने चाहिये उपपातकोंपर एकसौ १०० मूलमें कहिचुके सोईकरे- इसरीतिसे प्राणायामकी संख्या से कल्पना करनी चाहिये- क्योंकि-प्रकाश प्रायश्चित्तों में यह एक नियम कहा गयाथा कि जिस महापातक पर जितना प्रायश्चित्त करना कहाहो उसी पापकी यदि कोई ऐसे ढंगसे उत्पन्नकरे कि उपपातकोंकी गिनतीमें आजाय महापातकोंकी गिनतीमें न रहे तहां इस महापातकपर लिखा प्रायश्चित्त उसकी सिर्फ चौथाई करना चाहिये सब नहीं-उसी नियमके न्यायसे यहां भी यद्यपि उपपातकोंपर ठीक ठीक एकही सेकरा प्राणायामोंका लिखाहै तथापि पापोंके बहापनपर अधिकता होनी उचितहै- इसीप्रकार प्रकीर्णक नामके पाप जो सबसेछोटे गिनेजातेहैं जिनका स्वरूप ७४ चौदहतरिके परिच्छेद में वर्णन होचुकाहै कर्वाचव उनमेंसे कोई पाप छिपौआ किया हो तिसको सौ १०० प्राणायामसेभी कमतीकी कल्पनाकरनी चाहिये- इसीकल्पनाके अनुरूपआगे यमकीकही व्यवस्थादेखी=यथाहयमः=दशप्राग्व संयुक्तः प्राणायामैश्चतुःशतैः मुच्यते ब्रह्महत्यायाः किंपुनः श्रेयपातकैः=अर्थात्-दशसौ कारोंसे संयुक्त प्राणायाम चारसौ ४०० संख्या तक (जितने दिनोंमें होसकें) साधन करनेसे ब्रह्महत्या से भी छुटिजाताहै फिर और पापोंसे छुटिजाना क्या बड़ी बातहै कुछ नहीं- इसी व्यवस्थापर बौधायनमुनिने कुछ विशेष एक जुदाप्रकार भी दर्शाया है=यथा=अपिवाक्चक्षुःश्रोतृत्वग्धातुमनोव्यतिक्रमेयुर्विभिः प्राणायामैः शुद्धयति १ शुद्धस्त्रीगमनाच्चभोजनेयुष्टकपृथक्संज्ञाहंससप्तसप्तप्राणायामान्वारयेत् २ अभद्रयाभोग्यामेव्यप्राशनेयुतथावाग्परायविक्रयेयु मधुमांसघृततैल लासालवगारसान्नवर्जयेय-

७८ अतस्त्रिंशत्परिच्छेद में रहस्यों की साधारण मिली भुली मर्यादा कहि-
कर केवल ब्रह्मइत्या के प्रायश्चित्त कहे गये फिर उनासी ७९ के परिच्छेद में सर्व
महापातकों के प्रायश्चित्त कहे तिससे महापातकों का निपटारा यद्यपि होचुका
परन्तु रहस्यों का प्रकरणा अवतक नहीं पूरा हुआ किन्तु उपपातक आदि पापों
को अगिले परिच्छेदों में देखना तब इक्यासी परिच्छेद के अन्त में जाकर इसप्र-
करणा की समाप्ति होगी ॥

अथ उपपातकादीनां प्रकीर्णकपर्यंतानां भेदाविशेष- णानां च सर्वेषां रहस्य प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं परिच्छेदः अशीतितमः (८०)

— * —

इस परिच्छेद में सब तरह के उपपातक जो गोबध से आदि लेकर छप्पन
प्रकार के प्रकाश प्रायश्चित्तों के स्थल में दर्शाये गये तिनके रहस्य प्रा-
यश्चित्त यहाँ जाने जायेंगे और भी प्रकीर्ण पापों पर्यंत अति छोटे
पापों के प्रायश्चित्त इसी में मिल सकेंगे ॥

(सर्वोपपातकादीनां प्रायश्चित्तं)

प्राणायामज्ञातकार्यसर्वपापपनुत्तये उपपातकजातानामनादिरस्यैव हि ३०६ ॥

अर्थः—सब पापोंकी अपनुत्तिकेलिये उपपातकोंसे उपजेहुयों के और अनादिर
केलिये भी प्राणायामोका सँकरा करना चाहिये=अर्थात्—गोबध आदि ५६ क-
प्पनप्रकारके उपपातक जो २३४ दोसौ चौतीस मूल श्लोक से लेकर २४२ दोसौ
बयालिस तक दर्शायेगये उनमेंसे जिस किसी कर्मको छिपीअर कोई करे तिनसे
उपजे पापोंकी अपनुत्ति अर्थात् धोडारनेकेलिये सकसो प्राणायाम करने चाहिये-
तथा अनादिर जिन पापोंके नामसे कोई रहस्य प्रायश्चित्त इसप्रकरणा में न कहा
गयाहो जैसे जातिधंशकर सकरी करणा मलिनो करणा आदि नामोंके पाप जो म-
न्यादिस्मृतियों में चिदितहैं तिनहीकी छिपीआ कोई करिवेंडे तिसके पाप धोनेके
लिपे भी प्राणायामोका सँकरा करना चाहिये- तथैव सभी पापोंकी धोडारने के

लिये भी प्राणायाम कियेजासकते हैं अर्थात् सर्व पाप कहिनेसे कोई पाप छोटा हुआ नहीं रहा किन्तु पूर्वोक्त महापातकों को आदि लेकर सबसे छोटे प्रकीर्णक पापों तक जितने पाप सृष्टिमें होते हैं तिनमेंसे चाहें कोईसा बड़ा या छोटा पाप जिस किसी ने छिपीया किया हो और प्राणायाम करनेका अभ्यास जिसको अच्छीतरहसे हो रहा हो तिसको अन्य प्रायश्चित्त करनेकी अपेक्षा अधिकनहीं है वहकेवल प्राणायाम साधनकारिके शुद्ध होसकता है तहां इतनाभेदहै कि छोटेपापोंपर थोड़े और बड़े पापोंपर बहुत प्राणायामकरनेहोंगे तिसका व्यौरा अधिकोक्ति में देखो ॥ ३०६ ॥

३०६ अधिकोक्तिः—महापातकोंमें कोईसा एक पातक छिपीया जिसने किया हो तिसको चारसौ ४०० प्राणायाम करने चाहिये जिसने अति पातकों में कोई पाप किया हो तिसको तीनसौ ३०० प्राणायाम करने चाहिये जिसने अनुपातकों में कोई पाप छिपीया किया हो तिसको दोसौ २०० प्राणायाम करने चाहिये उपपातकोंपर एकसौ १०० मूलमें कहिचुके सोईकरे—इसरीतिसे प्राणायामकी संख्या सैंकड़पना करनी चाहिये—क्योंकि—प्रकाश प्रायश्चित्तों में यह एक नियम कहा गयाया कि जिस महापातक पर जितना प्रायश्चित्त करना कहाहो उसी पापको यदि कोई ऐसे ढंगसे उत्पन्नकरे कि उपपातकोंकी गिनतीमें आजाय महापातकों की गिनतीमें न रहे तहां इस महापातकपर लिखा प्रायश्चित्त उसको सिर्फ चौथाई करना चाहिये सब नहीं—उसी नियमके न्यायसे यहां भी यद्यपि उपपातकोंपर ठीक ठीक एकही सैंकरा प्राणायामोंका लिखाहै तथापि पापोंके बहापनपर अधिकता होनी उचितहै—इसीप्रकार प्रकीर्णक नामकेपाप जो सबसेछोटे गिनेजातेहैं जिनका स्वरूप ७४ चौदशरिके परिच्छेद में वर्णन होचुकाहै कर्वाचि उनमेंसे कोई पाप छिपीया कियाहो तिसको सौ १०० प्राणायामसेभी कमतीकी कल्पनाकरनी चाहिये—इसीकल्पनाके अनुरूपआगे यमकीकही व्यवस्थादेखी=यथाह्वयः=दशप्रणव संयुक्तः प्राणायामैश्चतुःशतैः मुच्यतेब्रह्महत्यायाः किंपुनःशेषपातके=अर्थात्—दशसौ कारोंसे संयुक्त प्राणायाम चारसौ ४०० संख्या तक (जितने दिनोंमें होसकें) साधन करनेसे ब्रह्महत्या से भी छुटिजाताहै फिर और पापोंसे छुटिजाना क्या बड़ी बात है कुछ नहीं—इसी व्यवस्थापर वीघायनश्रुतिने कुछ विशेष एक जुद्धप्रकार भी दर्शाया है=यथा=अपिवाक्चक्षुःश्रोत्रत्वग्धातुमनोव्यतिक्रमेयुजिभिः प्राणायामैः शुद्ध्यति १ शुद्धस्त्रीगमनाच्चभीजनेयुष्टकृष्टकृष्णाहंसप्लसप्तप्राणायामान्वारयेद २ अभद्रयाभो-इयामेव्यप्राशनेयुतथावाटपरायधिकयेयु मधुमांसघृततैल लासालवगारसान्नवर्जयेय-

आप्यन्यदेवयुक्ताद्वादशाहं द्वादशद्वादशप्राणायामान्वारयेत् ३ अथपातकोपपातकवर्ज्यचान्यदेवयुक्तां श्रद्धासां द्वादश २ प्राणायामान्वारयेत् ४ अथपातकपतनीयवर्ज्यचान्यन्यदेवयुक्तां समां द्वादश २ प्राणायामान्वारयेत् ५ अथपातकवर्ज्यचान्यन्यदेवयुक्तां द्वादशाहं समां द्वादश २ प्राणायामान्वारयेत् ६ अथपातकेयुसंवत्सरं द्वादश २ प्राणायामान्वारयेत् ७ इति बौधायनाः (अस्यचमिताक्षरायां व्यवस्था यथा) तत्र वाक्चक्षुरित्यादिना प्राणायामत्रयप्रकीर्णाकाभिप्रायं १ शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजनेत्यादि नोक्तासकोनपंचाशत्प्राणायामा उपपातकाविशेषाभिप्रायाः २ तथा अभक्ष्याभोज्येत्यादिनोक्ताश्चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्राणायामा अप्युपपातकविशेषाभिप्रायास्तत्र ३ अथपातकोपपातकवर्जमित्यादिनोक्ताः साशीतिशत प्राणायामाः शतभिन्नशकराद्यभिप्रायाः ४ अथपातकपतनीयवर्जमित्यादिनोक्ताः यद्यधिकशतत्रयप्राणायामाः गोवचाद्युपपातकाभिप्रायाः ५ अथपातकवर्जमित्यादिनोक्ताः यद्यधिकशतसहितद्विसहस्रसंख्याकाः प्राणायामा अतिपातकानुपातकाभिप्रायाः ६ अथपातकेष्वित्यादिनोक्ता विंशत्यधिकशतत्रययुक्ताश्चतुःसहस्रप्राणायामानुपातकविषया इति मिताक्षराकाराः ७ = अर्थात्—बौधायन का बहुत बड़ा वाक्य जिसके बीच बीच सात अंक देकर जुड़े सात भेद मर्यादा प्रिय लेखकने अर्थों की सुगमता चाहिके करबिये हैं प्राचीन ऋषि बाणी और दूरदेशी देशान्तर बोलचाल की तरासपर संस्कार उसका होनेके हेतुसे आधुनिक वा अस्त्य संस्कृत बाणीकी अन्वय परिपाटीसे अर्थलगाना उसका धामकहे क्योंकि अर्थ लगानेसे मुख्य प्रयोजनमें व्यतिक्रम आजाताहै—इसीहेतुसे मिताक्षराकारने एक निराली व्यवस्थाके साथ उसका गोल गोल फलादेश प्रकाश कियाहै उसीके भाषा अर्थ व्योरेवार दर्शातेहैं समझी कि—अपि वाक् चक्षू आदि प्रथम भेदके लेखमें सिर्फ तीन प्राणायाम करने जो बौधायनजीने कहे तिनको प्रकीर्णाक नामके अति तुच्छ पापोंपर समझना जिनका स्वरूप ७४ चौहत्तरिके परिच्छेद में दर्शाया गयाथा १॥ एवं शूद्रस्त्री गमनाच्च भोजन आदि द्वितीय भेदमें सात दिन सात सात ४६ उनचास प्राणायाम करने जो कहे तिनको सबसे छोटी किस्मके उपपातकों पर समझना क्योंकि (उपपातक मुख्य क्षयनभांतिके २३४ दोसौ चौतीसमूल श्लोक से लेकर कहे गये उन से उपरालू भी छोटे मोटे अनेक होते हैं) उनमें जो सब से छोटी किस्म समझी जाय तिसका यहां प्रयोजन देखि परता है २॥ एवं अभक्ष्या भोज्य आदि तृतीय भेद में बारह दिन बारह बारह १४४ एकसौ चबालिस प्राणायाम जो कहे तिनकोभी जुड़े उपपातकोंपर समझना अर्थात्

(छोटी किस्म को दूसरे भेदमें कटि चुके उनसे कुछ बड़े उपपातक यहाँपर समझे जाते हैं) जो मध्यम किस्म के होते हैं ३ ॥ अथ पातकोपपातक आदि चतुर्थ भेद में पन्द्रह दिन बारह बारह १८० एक सौ अस्सी प्राणायाम जो करने कहे तिनको जाति भ्रशंकर सकरी करण मलिनी करण आदि नामोंके कुछ बड़े उपपातकोंपर समझना (क्योंकि जैसे क्रमसे प्राणायाम अधिक होते आते हैं तैसेही पापोंमें वृद्धापन पाया जाता है ४ ॥ अथ पातक पतनीय आदि पाँचवें भेद के पाठ में तीस दिन बारह बारह ३६० तीन सौ सार्ध प्राणायाम जो कहे तिनको गोवध आदि बहुत बड़े उपपातकों पर समझना (केवल उपपातकों की चार किस्में छोटी बड़ी इस प्रयोजन पर करी गई ५ ॥ अथ पातक वर्ज आदि छठे भेदके पाठ में छः सहीने तक बारह बारह २१६० दो हजार एकसौ सार्ध प्राणायाम जो कहे तिनको अतिपातक और अनुपातक दोनों किस्म के पापोंपर समझना (ये दोनों किस्में यद्यपि सभी उपपातकों से बड़ी हैं तथापि महा पातकों से छोटे हैं) इन पातकों के सब जुदे दर्जा के नाम भेद समझने चाहिकर २४२ दोसौ व्याख्यस की अधिकोक्तिको देखीं ६ ॥ अथ पातकयुसंबत्सर आदि सातवें पाठ में सालभर पूरे तीन सौ सार्ध दिनतक बारह बारह प्राणायाम कुल ४३२० चार हजार तीनसौ बीसकरने जो कहे तिनको महापातकों पर समझना (क्योंकि यह सबसे बड़े पातक होते हैं इन्हीं पर इतनीबड़ी संख्या सूचित हुई ७ ॥ यह व्यवस्था मिताक्षराकार ने उसी बौधायन के वाक्यपर स्थापन करी ७ ॥ इसमें प्राणायामों की तादाद जो कुछ लिखी गई सो सब बौधायन की कही ठीक ठीक है और पातको की छोटाई बड़ाई का जैसा अनुक्रम यहाँ मिताक्षराकार ने व्यवस्थापित किया सो भी इसी प्रकार से न्यायात्मक देखि परता है क्योंकि इस क्रमके न होने से बौधायन के वचनों की मीजा नहीं मिल सकती थी—परन्तु—पाठक जनों को इतना सुदेह शयन कि यह गोलसगोल व्यवस्था जो कही गई तिसको बौधायन के मूल वचनों पर किस रीति से घटाये क्योंकि उनके अक्षरों पर इस गोल व्यवस्था की सुखला नहीं मिलती है जिसके मिलजाने बिना विश्वास नहीं आता—तिससे—सर्वादा परिपाटी सपादक उन दोनोंकी सुखला मिला कर आगे जुदो व्याख्या दर्शाते हैं जिससे जिज्ञासुओं का मनोरंजन होसके ॥ अथ द्रुयोः श्रु खलामेलन= बौधायन कहिते हैं कि (अपिवाक चक्षुः श्रोत्र स्वक् घ्राण मनो व्यक्तिकमेयु) अपि शब्द से यहाँ निन्दा की शक्ता रूपी सभावना अपने मतही में समुचित होने पर उन कारणों से कि वाक् वाणी का व्यक्तिकम रूपी पाप

जैसा किसी शिष्ट को एकान्त में माली देना या क्रूर वचन कहि देना या शत्रु को संमुख आते देखि प्रणाम शब्द कहिना योग्य था सो नहीं कहा गफलत से भूति-
 गया तो भी यह वारणो का व्यतिक्रम हुआ अथवा हाँसी मृदा आदि में निरर्थक
 असत्य बोला हो इत्यादि नाना भाँतिसे समझना और वारणो की सहचरी रसना
 जिह्वा भी मुखही में होती है तिसमें कुरीति का भोजन करना आदिभी उसका व्य-
 तिक्रम कहा जाता है सोभी तुच्छ पाप में समझना जैसे जलके साथ बाल आदि
 मुह में चला गया या खुला धरा पानी पीलिया हो इत्यादि किन्तु जूठा भोजन कर
 लेना आदि बड़े पापका चर्चा यहां नहीं है प्रायश्चित्त छोटा होनेके हेतुसे • एवं चक्षुस्
 नेत्रों का व्यतिक्रम जैसा अमेध्य विष्टा आदि पर दृष्टि परगई या पुष वधू आदि को
 कुदृष्टि से देखा अथवा कुदृष्टि किये बिना भी उनके किसी लज्जा वाले अंग पर
 अपनी दृष्टि धोखे से पर गई हो तोभी यह नेत्रोंका व्यतिक्रम ठहिरा इत्यादि नाना-
 भाँति से • एवं घोष कानों का व्यतिक्रम जैसा महात्मा की निन्दा आदि सुनि परी
 या कोई अपशक्तस्त्री शब्द किसी जीवका रोदन आदि सुनि परा हो इत्यादि • एवं
 त्वचा खालस्त्री इन्दीका व्यतिक्रम जैसा खाल सब देहभरमें होती है उसमें कहीं पर
 किसी मलीन वस्तुका छुड़जाना या पुष वधू आदिके हाथ पाओंसे अपना हाथ पावें
 आदि कोई अंग धोखासे भिड़जाना एकदोयहै सो यह त्वचाका व्यतिक्रम कहिलाता
 है • इत्यादि • एवं घ्राण इन्दी जो नाकहै तिसका व्यतिक्रम जैसे विष्टा वा मय आदि
 की दुर्गंध नासा के छिद्रों में घुसि गई हो इत्यादि • एवं मनोव्यतिक्रम जैसे मन सबही
 इन्द्रियों का अधियाता है उसके द्वारा ईश्वर का स्मरण और संसार की भलाईवाले
 विचार करने मनका मुख्य धर्म है तिसकी छोड़ि के दूसरों की बुराईवाला विचार
 करने लगा हो • इत्यादि नाना भाँतिके छोटे पाप प्रकीर्ण कहिलाते हैं • इन सात इन्द्रियों
 के व्यतिक्रम जो कहे गये तिनमें किसी एकही के होने पर तीन प्राणायाम करने
 कहे • इनसे उपरालू मिताक्षराकार के व्यवस्थापित किये प्रकीर्णक नामके प्राणभी
 इन्हीं सात इन्द्रियोंसे उत्पन्न होते हैं चौहत्तर ७४ परिच्छेद में २९१ दोसी इक्ष्वाकानवे
 मूलश्लोकसे आदि लेकर खूब सोचिके समझी किन्तु उनपरभी तीनही प्राणायाम
 सूचित हुये • तहां यह विचारभी करना चाहिये कि उनमें भी जो कुछ बड़े बड़े पाप देखि
 परे तिनकी जुदे खींचिके बिचले दूसरे भेदवाले पापोंके साथमें जोड़ना अर्थात् उनके
 ऊपर सिर्फ तीनही प्राणायाम नहीं बल्कि निम्नोक्त उवचार करने चाहिये • यहां
 तक पहिले भेदका मोलान हुआ ॥ १ ॥—बौधायन फिर कहिते हैं कि (शूद्रस्त्रीगमना

नभोजनेयुपयुक्तपृथक्) शूद्र जातिका दिया हुआ अन्न या शूद्रका हुआ अन्न पानी या शूद्रका देखा हुआ तैयार अन्न ये सब दूयित और निषिद्ध होते हैं तिसका भोजन करलेना० एवं स्त्रीके संगम समय भोजन करना या स्त्री के साथ भोजन करना० एवं राह चला भोजन या राह चलते भोजन करना० इन तीनों तरहके भोजनरूपी दोषों में जुदा जुदा प्रत्येक निमित्तपर सात रोज तक सात सात प्राणायाम करै कोकि ये एकप्रकारके छोटे उपपातकहै निदर्शनके निमित्तकहेगये किन्तु इन्हींके उपलक्षणा से और भी छोटे उपपातक समुभोजातेहैं—इसीलिये विज्ञानेश्वरने इनतीनोंसे उपरालू इनके समान छोटे उपपातकों पर उनचास ४६ प्राणायाम समुभाएये उनका स्वरूप हुंहे मिलसक्ताहै ७० । ७२ । ७३ सत्तर और बहत्तर और तिहत्तर परिच्छेदों में विस्तारसे वर्णन होचुका तहां देखौ ॥ २ ॥—बोधायन फिर कहते हैं कि (अभक्ष्य भोज्या मेध्य प्राशनेयु) तथावा (अपरायविक्रयेयु) मधु मांस घृत तैल लाक्षा लवण रसान्न वर्ज्येयु (यच्चाप्यन्यदेवंयुक्तं) अर्थात् (अभक्ष्य वह कि जो निषिद्ध खानेकेयोग्यही न हो जैसे पियाज आदि निषिद्ध चीजें० अभोज्य वह कि यद्यपि अन्न आदि पदार्थ खानेके योग्यहैं पर किसी अशुद्ध प्राणीके छुइजाने या मलीन वस्तु से भिड़ जाने आदि कारणोंसे भोजनकी योग्यता उसमें नहीं रही० अमेध्य वह कि जो अपने आप स्वरूप से देखने में भी अत्यन्त मलीन और अपवित्र हो जैसे विद्या राख पोख खंखार आदि० अषोक्त तीनों प्रकारमें कोईएक भी वस्तु मुहसंधरे या हलकमेंउतारै तिन पापोंमें) तथा वा पक्षान्तरमें और भी जो जो पाप इन्हींके समान होतेहैं तिन में भी (अपराय विक्रयके पापोंमें भी कि जिन चीजोंका बेचना हत्तीसमे मूलश्लोक से अस्तीसमेतक निषेध कियागयाथा उन्हींको यदि क्विपिकर बेचा हो तहां बारह दिनतक हररोज बारह बारह प्राणायाम करै) परन्तु मधु मांस घी तैल लाख नमक रस गोरस अन्न इनका भी बेचना सबकेसाथमें निषेध किया गयाथा तिनको यहां छोड़िके अपराय विक्रयका यहप्रायश्चित्त समुभूना क्योंकि चालीसमे मूलश्लोक से ये जुदे इतने पतनीय कहे गयेथे तिससे इनके बेचनेवाले को यह छोटासा प्रायश्चित्त बड़े अनर्थमें गिनती यह तात्पर्यहै (यच्चाप्यन्यतस्वयुक्तं) और भी जो कुछ पाप इसीप्रकार ठीक ठीक सगार में होताहो जो इन्हीं पापोंके समान समुभा जाय जिसका नाम यहां नहीं लिखा तिसमे भी यही प्रायश्चित्त समुभूना यह सब कथन बोधायनकाहै—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अषोक्त १४४ एकसौचत्वारिंश प्राणायामांको और भी मध्यम किस्मके उपपातकोंपर व्यवस्थापितकियाहै (भलाकिपको

जैसा किसी शिष्ट को एकान्त में माली देना या क्रूर वचन कहि देना या गुप्त को मन्दुख आते देखि प्रशाम शब्द कहिना योग्य था सो नहीं कहा गफलत से भूलि-
गया तो भी यह चारों का व्यतिक्रम हुआ अथवा हाँसी लट्ठा आदि में निरयंक
अस्त्य बोला हो इत्यादि नाना भाँतिसे समझना और, चारों की सहचरी रसना
जिह्वा भी मुखही में होती है तिसमें कुरीति का भोजन करना आदिभी उसका व्य-
तिक्रम कहा जाता है सोभी तुच्छ पाप में समझना जैसे जलके साथ बाल आदि
मुह में चला गया या खुला घरा पानी पोलिया हो इत्यादि किन्तु जूठा भोजन कर
लेना आदि बड़े पापका चर्चा यहां नहीं है प्रायश्चित्त छोटा होनेके हेतुसे • सर्ववस्तु
नेत्रों का व्यतिक्रम जैसा अमेध्य विद्या आदि पर दृष्टि परगई या पुत्र बध आदि को
कुदृष्टि से देखा अथवा कुदृष्टि किये बिना भी उनके किसी लज्जा वाले अंग पर
अपनी दृष्टि धोखे से पर-गई हो तोभी यह नेत्रोंका व्यतिक्रम ठहरा इत्यादि नाना-
भाँति से • एवं योत्र काशों का व्यतिक्रम जैसा महात्मा की निन्दा आदि सुनि परी
या कोई अपशक्त रूपी शब्द किसी जीवका रोदन आदि सुनि परा हो इत्यादि • एवं
त्वचा खालरूपी इन्द्रिका व्यतिक्रम जैसा खाल सब देहभरमें होती है उसमें कहीं पर
किसी मलीन वस्तुका छुँझना या पुत्र बध आदिके हाथ पाओंसे अपना हाथ पावें
आदि कोई अंग धोखासे भिड़ जाना एकदोय है सो यह त्वचाका व्यतिक्रम कहिलाता
है इत्यादि • एवं घ्राण इन्द्रि जो नाक है तिसका व्यतिक्रम जैसे विद्या वा मद्य आदि
की दुर्गंध, नासा के छिद्रों में घुसि गई हो इत्यादि • एवं मनोव्यतिक्रम जैसे मन सबही
इन्द्रियों का अधिष्ठाता है उसके द्वारा ईश्वर का स्मरण और संसार की भलाईवाली
विचार करने मनका मुख्य धर्म है तिसकी छोड़ि के दूसरों की बुराईवाला विचार
करने लगा हो • इत्यादि नाना भाँतिके छोटे पाप प्रकीर्ण कहिलाते हैं • इन सात इन्द्रियों
को व्यतिक्रम जो कहे गये तिनमें किसी एकही के होने पर तीन प्राणायाम करने
कहे—इनसे उपराल मिताक्षराकार के व्यवस्थापित किये प्रकीर्णक नामके प्राणभी
इन्हीं सात इन्द्रियोंसे उत्पन्न होते हैं चौहत्तर ७४ परिच्छेद में २६१ दोसौ इक्ष्वानवे
मूलश्लोकसे आदि लेकर खूब सोचिके समझो किन्तु उनपर भी तीनही प्राणायाम
सूचित हुये—तहां यह विचारभी करना चाहिये कि उनमें भी जो कुछ बड़े बड़े पाप देखि
परें तिनको जुदे खींचिके निकले दूसरे भेदवाले पापोंके साथमें जोड़ना अर्थात् उनके
ऊपर सिर्फ तीनही प्राणायाम नहीं बल्कि निम्नोक्त तनचास करने चाहिये • यहां
तक पहिले भेदका मीलान हुआ ॥ १ ॥—बोधायन फिर कहिते हैं कि (शूद्रस्त्रीगणना

नभोजनेयुष्यकपृथक्) शूद्र जातिका दिया हुआ अन्न या शूद्रका हुआ अन्न पानी या शूद्रका देखा हुआ तैयार अन्न ये सब दूयित और नियिद्ध होतेहैं तिसका भोजन करलना० एवं स्त्रीके सगम समय भोजन करना या स्त्रीके साथ भोजन करना० एवं राह चला भोजन या राह चलते भोजन करना० इन तीनों तरहके भोजनरूपी दोषों में जुदा जुदा प्रत्येक निमित्तपर सात रोज तक सात सात प्राणायाम करै क्योंकि ये एकप्रकारके छोटे उपपातकहै निदर्शनके निमित्तकहेगये किन्तु इन्हींके उपलक्षणा से और भी छोटे उपपातक समुभोजातेहैं—इसीलिये विज्ञानेश्वरने इनतीनोंसे उपरालू इनके समान छोटे उपपातकों पर उनचास ४६ प्राणायाम समुभाएथे उनका स्वरूप हुंदे मिलसक्ताहै ७० । ७२ । ७३ सत्तर और बहत्तर और तिहत्तर परिच्छेदों में विस्तारसे वर्णन होचुका तहां देखो ॥ २ ॥—बौधायन फिर कहते हैं कि (अभक्ष्या भोज्या मेध्य प्राशनेयु) तथावा (अपरायविक्रयेयु) मधु मांस घृत तैल लाक्षा लवण रसान्न वर्ज्येयु (यच्चाध्यन्यदेवयुक्तं) अर्थात् (अभक्ष्य वह कि जो निषिद्ध खानेकेयोग्यही न हो जैसे पियाज आदि नियिद्ध चीजें० अभोज्य वह कि यद्यपि अन्न आदि पदार्थ खानेके योग्यहैं पर किसी अशुद्ध प्राणीके छुड़जाने या मलीन वस्तु से भिन्न जाने आदि कारणोंसे भोजनकी योग्यता इसमें नहीं रही० अमेध्य वह कि जो अपने आप स्वरूप से देखनेमें भी अत्यन्त मलीन और अपवित्र हो जैसे विष्टा राखि घीव खंखार आदि० अघोक्त तीनों प्रकारमें कोईसक भी वस्तु मुहमेंधरै या हलकमेंउतारै तिन पापोंमें) तथा वा पक्षान्तरमें और भी जो जो पाप इन्हींके समान होतेहों तिन में भी (अपराय विक्रयके पापोंमें भी कि जिन चीजोंका बेचना कृत्तीसमे मूलश्लोक से अरतीसमेतक नियेध कियागयाथा उन्हींकी यदि छिपिकर बेचा हो तहां बारह दिनतक हररोज बारह बारह प्राणायाम करै) परन्तु मधु मांस घी तैल लाख नमक रस गीरस अन्न इनका भी बेचना सबकेसाथमें नियेध किया गयाथा तिनको यहां छोड़िके अपराय विक्रयका यहप्रायश्चित्त समुभूना क्योंकि चालीसमे मूलश्लोक से ये जुदे इतने पतनीय कहे गयेथे तिससे इनके बेचनेवाले को यह छोटासा प्रायश्चित्त बड़े अनर्थमें गिनती यह तात्पर्यहै (यच्चअपिअन्यतरसंबुक्तं) और भी जो कुछ पाप इसीप्रकार ठीक ठीक सभार में होताहो जो इन्हीं पापोंके समान समुभू जाय जिसका नाम यहां नहीं लिखा तिसमे भी यही प्रायश्चित्त समुभूना यह सब कथन बौधायनकाहै—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अघोक्त १४४सकसौचवालिस प्राणायामोंको औरभी मध्यम किस्मके उपपातकोंपर व्यवस्थापितकियाहै(भलाकिमको

मध्यम किस्मको समुभन्ना इसअपेक्षामें) ५३ वैपन परिच्छेदकी आदि से ६८ अरसदि परिच्छेदके अन्त तक जितने उपपातकों के प्रकाश प्रायश्चित्त कहेगयेहों तिनकी मध्यमसमुभन्ना परन्तु उनसवमेंसे जितका स्वरूपजातिभ्रशकरोंमें या संकरीकरणोंमें या अपात्रीकरणोंमें या मलिनीकरणोंमेंभी देखिपरै तिनकोछोड़िके यहनियमसमुभन्ना क्योंकि दोजधे गिनतीहोनेसे दोतरहका प्रायश्चित्त नहींकियाजायगा औरदो में जहां छोटा प्रायश्चित्त होय सोभीनहीं किन्तु बडाकियाजायगा तिसकोलिये यह छूट लिखी गई है सो समुभि लेना ॥ ३ ॥=बौवायन फिर कहते हैं कि (अयपात कोपपातकवर्ज्यचान्यदेवयुक्त) ऊपर कहे पापों से अनन्तर और जो कुछ बढिया पाप लगा हो तहां ऐसे उचित है कि पन्द्रह रोजतक बारह बारह प्राणायाम करें परन्तु पातक नामके पापों और बहुत बड़े उपपातक नामके पापोंकी बर्जितकरके उनसे निचले बढिया पापका यह नियमजानो—अर्थात्—बौवायन के इस कथन का यह तात्पर्य है कि मध्यम उपपातकों से कुछ बड़े हो पर उत्तमदर्जाके उपपातको से कुछ मध्यम हो तिनके लिये यह परबारे का प्रायश्चित्त जानो—इसीलिये विज्ञानेश्वर ने अबोक्त १८० एकसौअस्सी प्राणायामों को जातिभ्रशकर आदि पापों पर समुभन्ना या जिनके चारोंनाम अभी तीसरे पाठके अन्तमें लिखेगये देख लो—इनके प्रकाश प्रायश्चित्त ७४ चौहत्तर के परिच्छेद में कहिचुके हैं—इन्ही के अत्यन्त स्वरूप लक्षणा २४२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्ति में जाकर समुभ्नी ॥ ४ ॥=बौवायन फिर कहते हैं कि (अय पातक पतनीय वर्ज्यचान्यन्यदेवयुक्त) अयनाम ऊपरले पापों से अनन्तर जो और बडा पाप है उसमें पातक और पतनीयोंको छोड़िके ऐसा उचितहै—अर्थात्—पूरे पातक और पतनीयजो पातकसे कुछ नीचे दर्जामें होतेहैं इन दोभोंतिसे उपरालू जो इन दोनोंसे नीचे दर्जामें अन्यभोंतिके ऐसे पापहों जो ऊपरले चौथे पाठवालोंने कुछ बड़े समुभ्नेजायें तिनहीमें ऐसाकरना उचितहै कि एक महीनाभर हररोज बारह प्राणायाम साधें यह बौवायनका कथन है—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अबोक्त ३६० तीनसौसाठ प्राणायामोंको गोवध आदि बहुत बड़े उपपातकों के अभिप्राय पर समुभन्ना कहा क्योंकि इस प्रकार के वेही प्रतीत होतेहैं उनको स्वरूपों को समुभन्ना जिसको आवश्यक हो तो ४० चालीसवें परिच्छेद से लेकर ५२ वावन परिच्छेद की अत्य सीमातक देखो कि उन्ही तेरह परिच्छेदों में गोवधकी आदि लेकर जितने उपपातकोंके प्रकाश प्रायश्चित्त कहे गयेहों उन्हींकेरहस्य प्रायश्चित्त यहां तीनसौ साठ प्राणायामसे दर्शयितव्य॥५॥=

बौधायन फिर कहते हैं कि (अथपातकवर्जयचान्यदभ्येवमुक्तं) अथानन्तरं यच्चपापंअन्यदपिपातकवर्जस्याततत्रसर्वउक्तंइतियोजना) ऊर्ध्वोक्त पापों से ऊँचे चटिकर अनन्तर उनसे लगसायदिऔरही बढ़िया पापहोय जो पूरेपातकसे वर्जित होय तहाँ ऐसे कहाहै—अर्थात्—पाँचवें पातवाले पापों से कुछ ऊँचाहोय परच पूरे पातकोसे कुछ नीचा होय तिसमे ऐसा कहा है कि एक छमाही भर हररोज बारह प्राणायाम साथै(यहाँपर पातक या पूरे पातकसे महापातक समझा गयाहै क्योंकि पातके क्रमसे अर्थहीका क्रम चलवान् होताहै) (इसी न्याय से मिताक्षराकारने अ-
श्लोक्त २१६० इक्कीसवें साठ, प्राणायामों की अतिपातक और अनुपातकों के अ-
भिप्रायपर टहिराया है कि जिससे आगे सातवे पातसे विरोध न आनेपावै ॥ ६ ॥
बौधायन फिर कहते हैं कि (अथपातकेयुसवस्वर)ऊर्ध्वोक्तोंसे ऊँचे चटिकर उनसे अनन्तर जो सबसे बढ़ियापातक अर्थात् जिनसे ऊँचा कोई और पाप न होता हो तिनमें एक सालभर हररोज बारह प्राणायाम साथै—इसी लिये मिताक्षराकार ने अश्लोक्त ४३२० तैत्तलिसवेंबीस प्राणायामोंकी महापातकोंके विययपर टहिराया है क्योंकि उनसे बड़ा कोई और नहींहै ॥ ० ॥ महापातक० अतिपातक० पातक०अ-
नुपातक०उपपातक०इन सबके मुख्य स्वरूप २४२ दोबी वय्यालसकी अविकीर्ति मे देखौ वहाँ इनके एक एकमें कईकईभेद हैं परच महापातकोंसे बड़ा कोई नहीं है०
उपपातकोंमें परस्पर छोटाई बड़ाईके हेतुसे चारपाँचक भेदहोतेह ॥ ० ॥ विज्ञानेच्चर
अपना विचार कुछ और भी दर्शाते हैं कि(इदचाभस्याभोउधेत्यादिनोक्तप्रायश्चित्त
पचकअत्यन्ताभ्यासविययसमुचित्तविययवा (अर्थात् बौधायन के पहिले दो पात
भेद छोडिके शेष पाँच भेदोंके पातमें जो पाँचप्रकारके प्रायश्चित्त कहेगये तिनकी
अत्यन्त अभ्यासकिये पापोंपर समझना कि जिसने बारम्बार वही एकपाप किया
हो अथवा एकहीवार मिलेभुले कईपाप एकसाथ होगयेहों तिनपर भी इन प्राय-
श्चित्तों की योग्यता होगी ॥ फिर कहते हैं कि मनुके अश्लोक्त बचनवाला प्राय-
श्चित्त भी अभ्यासही की वियय पर समझना=यदाहमनु=एनसांस्थूलसूक्ष्माणांचि
कीर्थ्यचपनोदनस अवेत्युचत्रपेदब्दयत्किचिदमितोतिच=अर्थात्—महापातक आदि
स्थूल पापोंका तथा उपपातक आदि सूक्ष्म पापोंका अपनोदन करना चाहते हुये
यह प्रायश्चित्तकरै कि (अवर्ततिचद) अर्थात् अवर्तितहो वरुण इत्यादि ऋचाको
एक सालभर या (यत्किचिद) अर्थात् यत्किचिद वरुण देवोजल इत्यादि ऋचाकी
एक सालभर और (इतिइतिचद) अर्थात् इतिभेदनस इत्यादि ऋचावाले सूक्तको

सकवार नित्यप्रतिजपाकरै=अब मितासराकाराः (यत्तुमनुनाश्रुत्वंयावत्प्रत्यहमर्थान्तराविसृष्टेयकालेषु अवतेहेलेत्यादीनां ऋचांजपउक्तः सोप्यभ्यासविधयः) अर्थात् मनुने जो एक वर्षभर अवते आदि तीन ऋचाओंका जप इस ढंग से करता बताया है कि हररोज अपने अन्यजसूरी कामोंके हर्जवाले समयोंसे उपरालू फुर्सतके समयपर एक बार जपाकरै• सोभी यह बारवार के अभ्यासवाले पापोंका प्रयोजन देखपरता है क्योंकि सालभरका प्रायश्चित्त बहुत बड़ा है ॥ ० ॥ इन सब रहस्य प्रायश्चित्तों में यह एक शंका खड़ी रही है कि ऊपरकी व्यवस्था में सभीतरह के पाप दशदिगये जो जो प्रकाश प्रायश्चित्तों में आचुके थे उनमें बहुधा पाप ऐसे हैं जो हर्गिज प्रपत्तोंअर नहीं किये जासक्त हैं इसका इष्टान्त जैसे ४८ अङ्गतालिस के परिच्छेदमें परिषेदनके नामसे एक विवाहछपी पाप कहागया जिसमें विवाह ठहिरानेवाला कराने वाला औरनाईपुरोहित आदि अनेक मनुष्योंकीसहायतासे कार्य सिद्धहोताहै वे सभी उसको जानते हैं तो फिर क्योंकर शुपत्तोंअर पाप ठहिरै जिसका रहस्य प्रायश्चित्त कियाजाय जैसा यह एक इष्टान्त कहा तैसे और भी अनेक पापहैं जो किसी तरहसे छिपिनहीं सक्त=इसके समाधान भी अनेक हैं=प्रथम तो यहीउत्तर देनाचाहिये कि जोबात नहीं छिपसक्तीहै उसमेंरहस्य प्रायश्चित्तका संबंध क्यों जोडतेही उसमेंप्रकाश ही प्रायश्चित्त किया जायगा जो उसके लिये पहले से नियत होचुका• दूसरा यह उत्तर है कि बिरले स्थलमें बहीकर्म छिपाहुआ भी होजाता है (तहाँ रहस्यही प्रायश्चित्त की जखरत होगी) क्योंकि भाट पुरोहित आदिका जानना गिनती में इस लिये नहीं आताहै कि वे खुद भी कुछपाप भागी होते हैं अर्थात् सहायकों को भी प्रायश्चित्तकी योग्यता पहिले लिखचुके हैं इसीलिये यह नियम है कि जिस पाप के जितने सहायआविकर्ताके साथीहों तिनसेउपरालूलोगजानिपावें औरनिन्दासहित चर्चाकरै तभी प्रकाशकी पदवीतक पहुँचताहै अन्यथा सहायोंके जाननेसात्रसेनहीं• कदाचित्त यह कहिने में आवै कि भाट पुरोहित आदिसे उपरालू कुछ बराती भी अवश्य होगी तो भी यही उत्तर है कि वे बराती भी उसके सहायों में गिनती होसक्त हैं तिससे उनका भी जानना प्रकाशकी पदवी तक नहीं जासक्ताहै क्योंकि यदि उनको उसका अन्यायपाप स्वीकारठहिरा तभी उसकेसाथी याबराती बने अर्थात्प्रायश्चित्त भी तब होताहै कि यातों पापी आपही घमके डरसे मन में ग्लानि पैदा करै या पंच बिरादरी आदि कोई निन्दा करनेपर उताखहोयें• तहाँ जो साथी बरातीबने वे आपही प्रायश्चित्त के संसर्ग भागी होनेके डेरसे मुखिया की निन्दा नहीं करसके हैं और

उससे उपराल उसके विरादर आदि यद्यपि इस कर्मका होना मुनिकर जानैभी परन्तु धर्मके बोध बिना या और किसी हेतुसे निन्दा करने पर उताह न होयँ तौ यह पाप उसका अनेकों के जानने पर भी प्रकाश होनेकी गिनती में नहीं आया गुणतौअर में ठहिरा तिससे ऐसी दशामें यदि मुख्य पापी आपही पापके भयसे मनमें श्लानि को उत्पन्न करै तिसकी शुद्धि रहस्य प्रायश्चित्त से होसकी हे इसीलिये प्रकाश और अप्रकाश दो भौतिके प्रायश्चित्त निर्मित हुये हैं तिससे कोई भी स्थल शंका करने योग्य नहीं हे ॥ ३०६ ॥ यद्यपि योगीश्वर ने भी सबही उपपातकों पर एकसौ प्राणायामकरने कहे तथापि आपही उसका थोड़ासा अपवाद नीचे दर्शाविगे० अर्थात् अगिले मूल श्लोक से उसी की अधिकोक्ति में भी जितने उपपातकों पर जुदा प्रायश्चित्त दर्शाविगे तिनपर वही प्रायश्चित्त करना चाहिये किन्तु ऊर्ध्वोक्त प्राणायाम नहीं ॥ ३०६ ॥

(कचित्प्राणायामशतस्यापवादः)

ओंकाराभिप्लुतः सोमसन्धिलंपावनं पितृ । रुक्मातुरेतो विरामूतप्राशनं तु द्विजोत्तमः ३०७

अर्थः—रेतस् वीर्यधातु विद्या मूत्र द्विजोत्तम द्विजाती इनको मुह में चोखके यह प्रायश्चित्त करै कि सोमालता (एक घेल) का सलिल स्वरस निचोडि उसको ओंकार से अभिमन्त्रित करै वही पावन है अर्थात् शरीर का पवित्र करने वाला रस होता है तिसको पीलीवै ॥ ३०७ ॥

३०७ अधिकोक्तिः—विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त केवल उसके लिये समझना जिसने वीर्य विद्या आदि इच्छा बिना खोखा से चखिलिया हो—किन्तु चाहिकर चखने वालेको मुमन्तु का बताया करना चाहिये=यदाह मुमन्तुः=रेतो विरामूत्र प्राशनं कृत्वा लशुनपलांडुगृञ्चन कुम्भकादीनां मन्येयांचामभस्यादीनां भक्षणां कृत्वा हंसप्रासकुकुट चण्डालादिमांसभक्षणाकृत्वा ततः कराटमात्रमुदकं सवतीयं शुद्धिवतीभिः प्राणायामकृत्वा ब्रह्मव्याहृतिभि रुरोगमुदकं पीत्वा तदेतस्मात्पूतो भवति=अर्थात्—वीर्य विद्या मूत्र चाखि के या लहसुन प्याज गाजर कुम्भीसाग आदि अन्य अभक्ष्यों का भक्षण करिके या इस घरेलू मुर्गा कृत्ता सिआर आदि के मांस खाइके तिस पाप के हेतु से यह प्रायश्चित्त है कि गले के समान गरिरे जलमें गोता लगाइ उसी जल में खड़े होकर शुद्धवती नाम की ऋचाओं से प्राणायाम करिके फिर ब्रह्मव्याहृतियों से पढ़ि कर जल इतना पीवै जो हृदयतक पहुँचै अधि-

क नहीं तिस कर्म के करने से इस पाप से छुटि कर पवित्र हो जाता है ॥ ० ॥ मनु ने भी अभक्ष्य भक्षण और अस्त्रप्रतिग्रह के लिये एकजुदा प्रायश्चित्त देकर ऊर्ध्वोक्त प्राणायामोंका छुटकारा (अपवाद) दर्शाया है—अथवा=प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यभुक्ताचार्त्तविगर्हितस जपस्तरत्समदीयं पूयतेमानवस्यग्रहात्=अर्थात्—जोकोई वस्तु अनैतिक दान के द्वारा ग्रहणा करने योग्य नहो सो अप्रतिग्राह्य कहाती है जैसेविष शस्त्र मंदिरा हाड आदि या चण्डाल महापातकी आदि पतितों का कोईसा वनहो सोभी जिनका स्वरूप २६० दोसौ नब्बेकी अधिकोक्ति में कहिचुके उनमेंसे कोईवस्तु लेकर पाप भागी जो हुआ हो अथवा सात भोंतिके अभक्ष्य जो ६६ उनहत्तरि से तिहत्तरितक पांच परिच्छेदोंमें वर्णनहयेथे उनमेंसे कोई निन्दित अन्नआदि जिसने खाइ लिया हो वह दोयी पुरुष तीन दिन इन्हीं चार मन्त्रोंका जप करतेहुये शुद्ध होता है अर्थात् (तत्त समन्दी धावती) इत्यादि चिह्न वाली चारों ऋचाओं को यथाशक्ति के अनुसार या पाप की लघुता गुरुता के अनुसार थोडो या बहुत संख्या अपने तात्कालिक विचार से कल्पित करै कि इतना जप करना चाहिये=ध्यानकरो=अथोक्त पापों पर यह दूसरा प्रायश्चित्त आखंड होजाने से पूर्वोक्तप्राणायामों का निरादर होयाया इसी को धर्म शास्त्र में अपवाद नाम कहिते हैं इसी को भाषा में छूट या छुटकारा समझिलेना कि इतने पापों में प्राणायाम की जरूरत नहीं परन्तु यह विवेक इतना उपरालहे कि विवेकी पुरुष यदि अपने पाप दोषकी कुछ गहिरा समझै कि सिर्फ सोमलताका रस पीने मात्रसे संतुष्टि मेरी न होगी तिसको दोनो विधि करनी चाहिये अर्थात् इससे पहिली अधिकोक्ति में लिखे वीधायनवाले ४६ उनचास प्राणायाम या १४४ एकसी चवालिस प्राणायाम अथवा योगीश्वरके बताये सौ १०० प्राणायाम या इनमें से इच्छाके अनुरूप कसीदेकर साधना किये पीछे सोमलता का रस पीवै अथवा जहाँ सोमलता न मिलसके तहां भी अवश्य प्राणायामही करनेहोगे तिससे यह तात्पर्य नहींहै कि निषिद्ध प्राणायामोंका करना किसी नियेव में गिनती हो वल्कि उनकी साधना में कठिनता जानिके दूसरी सुगम रीति यहाँ कहीगई ॥ ० ॥ वीर्य बिष्टा मूत्र आदि शरीरके सैल जलमें छोड़ना सक पापहै यह औरोंके देखते कस होता वल्कि एपत्तीश्वर अधिक होताहै तिससे इसके मध्ये सक जुदा प्रायश्चित्त मनुने कहाहै (अप्रशस्तं कृत्वा प्लुमासनासीत भैक्ष्यभुक्) जलोंके भीतर बिष्टा वीर्य करनाआदि बुराकर्म करिके एकसहीना भीखमाँगि भोजन कियाकरै तब उन पूर्वोक्त प्राणायामोंको करिके शुद्धहोय अन्यथा प्रायश्चित्त

न करने से छिपे पाप की वृद्धि होती रहेगी कि जैसे स्रगा के ऊपर व्याजकी वृद्धि होती रहितो है ॥ ३०७ ॥

(अतितुच्छपापस्यप्रायश्चित्तं)

निज्ञापांवादिवावापियदज्ञानकृतंभवेत् । त्रैकाल्यसंध्याकरणात्तत्सर्वविप्रणश्यति ३०८

अर्थः—रातिमें या दिनमें जो अज्ञानसे किया होय—अर्थात्—अति छोटी किस्मके प्रकीर्णक पाप जो किये गयेहों राति या दिनमें पुरुषकी भूलसे और छोटी या बड़ी किस्म के उपपातक जो केवल मनके विचारही में उत्पन्न हुये हों या केवल मुहसे कहिडारने मात्रसे उत्पन्न हुयेहों सो सब तीनोंकाल की संध्या उपासन करने से विनाश होजातेहैं पर इनसे बड़े पाप संध्यासे नहीं मिटते हैं ॥ ३०८ ॥

३०८ अधिकोक्तिः—इस वार्तामें यमका वचन प्रसारण है—यथा—यदह्नाकृत्तपापं कर्मणा मनसागिरा आसीनः पश्चिमां संध्यां प्राणायामैर्निर्हति तद—अर्थात्—कर्म या मनसे या वाणीसे जो कुछ पाप दिनमें पुरुष करता है सो सब सौम्य की संध्यापर बैठि प्राणायामोंसे विनाश करदेता है—संवशातातपस्तु—अष्टतमद्यगन्धर्वचिदाभैद्यन मेवचपनातिवृत्तान्नचसंध्यैर्वह्निउपासिता—अर्थात्—असत्य बोलना या भविरात्रादि दुर्गंधें, सुघना या दिन में स्त्रीसे मैथुन करना आदि छोटे छोटे पाप यहाँतक कि शुद्ध का दियाहुआ अन्नभी खायाहो सबको संध्या ही उपासन करीहुई पवित्र करदेती है पर बड़िया पापों में नहीं (संध्या बहिरुपासिता) कहीं ऐसा भी पाद देखागया है तिससे यह अर्थ सिद्धहोताहै कि बहिर्देश वस्तीसे बाहर किसी मैदानके पुरणस्थान पर कूप तड़ागआदिका सहारालेकर संध्याकरीजाय जहाँ सूर्यका पूरा बिम्ब आसन के समुख और समस्त किरणों की प्रभास्वपी सूर्य की वृत्तियों अपने सब अंग पर आसकें और मनुष्योंका संघात जहाँ न होय ऐसे निर्द्वंद्व ठिकानेपर चित लगाकर अच्छी आराधनासे करीहुई संध्या अपने पूरे फलको देसकती है ॥ ३०८ ॥

अगले परिच्छेद में वेदों की स्रष्टा आदि समस्त मन्त्रोंका संग्रहकरिके एकत्र दर्शावेंगे कि जिनमंत्रों का प्रयोजन सर्वत्र प्रायश्चित्तों में जहाँ तहाँ आनि परताहै ॥ और विरले प्रायश्चित्तभी कहेंगे ॥

अथ सकलमहापातकादिपापहरसाधारणपवित्र
मन्त्रजपहोमानां नामचिह्नस्वरूपप्रकाशकोऽथ

परिच्छेदः एकाशीतितमः (५१)



इस परिच्छेद में उन सभी मन्त्रों के नाम चिह्न दर्शाये जायेंगे कि जिनका जप करना प्रायश्चित्तों में कहि चुके • वल्कि बहुधा मंत्र ऐसे इसमें मिलेंगे जिनका चर्चा कहीं नहीं आया तो भी उनके जपने से सर्व पापों का नाश होसक्ता है • इसी में वेदाभ्यासी पुस्तक का प्रायश्चित्त और पूरे ज्ञानी ध्यानी का प्रायश्चित्त सावरा सभी पापोंपर एकही रूप से दर्शावेंगे ॥

(सर्वपापहरा मंत्रः)

शुक्रियारण्यकजपोगायत्र्याश्वविशेषतः । सर्वपापहराहतेरुद्रैकादशीतथा ३०९

अर्थः—शुक्रिय • आरण्यक • गायत्री • इनका जुदा जुदाही जप तथा • रुद्रैकाद-
शिनी • ये सब जुदे जुदे सर्व पापों के हरने वाले होते हैं—अर्थात्—शुक्रिय इस नाम से
भी वेदहीका एक अंग है जिसका पता मिताक्षराकारने यह दिया है (विज्ञानिदेवस-
चितः—इत्यादि वाजसनेयके पठ्यते) इस पदको आदि लेकर यजुर्वेद की वाजसनेयी
शाखा में जिसका पाठ है • तथा आरण्यक भी वेदही का अंग है जिसका पता यह
दिया है (आरण्यकच—ऋचंवाचं प्रपद्ये मनोयज्ञः प्रपद्ये इत्यादि तत्र च पठ्यते) कि
आरण्यक भी ऋचं वाचं प्रपद्ये आदि कहता है उसका भी पूरापाठ उसी वाजसनेयी
शाखा में पढ़ा जाता है—इन दोनोंका जप ऐसा उग्र है कि महापातक आदि सकल
पापों का विनाश होता है तथा इनसे जुदा गायत्री का जप अत्यंत उग्र है तथा रुद्र-
कादशिनीका अर्थात् ११एकादश रुद्रों के रुद्रानु वाकस्त्रयी मन्त्र जो वेदही में प्रसिद्ध
हैं उन सबका यही एक नाम है तिनका जप सबसे अधिक उग्र है कि जिससे महा-
पातक आदि सभी पाप हरे जाते हैं और (मूल श्लोक में व्यासच इस चकार के ध्व-
न्यर्थ से अघमर्यादा आदि और भी अनेक मंत्र सर्व पापों के हरने वाले होते हैं तिन-
को भी समझ लेना उनके मध्ये वांछित का वचन अधिकोक्ति में देखना ॥ ३०९ ॥

३०६ अधिकोक्तिः—शुक्रिय आदि मन्त्रोंका जप कितना करे इस अपेक्षाने सर्वत्र यह समझिलेना कि जैसा बड़ा या छोटा पाप होय तैसा बहुत या थोड़ा जप अपनी बूढ़ से विचार किया जासक्ता है जैसा गावत्री के मध्ये मिताक्षराकार ने व्यवस्था नियत करी है कि=गायत्र्याश्च महापातकेयुलक्ष मितिपातकानुपातकयोर्दशसहस्र उपपातकेयुसहस्रप्रकीर्णकेयुशत मित्येवंविशेषतो जपः सर्वपापहरः=तथाच शंखेनोक्तं=शतजप्तातुसावित्री तुच्छपापविनाशिनी सहस्रजप्तातुतथापातकेभ्यः प्रमाचिनी दशसाहस्रजाप्येन सर्वकिल्बिषनाशिनी लक्षजप्तातुसावित्री महापातकनाशिनी—सुवर्गा स्तेयक्रदिप्रोब्रह्महाश्रुतरूपगः मुरापश्चविशुद्धान्ति लक्षजप्त्वा न सशयः=अर्थात्—मिताक्षराकार कहिते हैं कि गायत्री का जप महापातकों में एकलक्ष सखयाकरना कहा है इस हेतु से पातक तथा अनुपातकों पर दस हजार चाहिये और उपपातकों पर एक हजार और प्रकीर्णक पापों पर एकसौ संख्या रखनी चाहिये इस तरह जूदी जूदी विशेषता से सभी पाप हरेजाते हैं=यही क्रम शंखजी ने कहा है कि=सावित्री एक सौ सख्या मात्र जपी हुई तुच्छ पापों अर्थात् प्रकीर्णकों का विनाश करती है तथा एक हजार जपी हुई पातकों अर्थात् उपपातकों से छुटाइ देती है दश-हजार जाप करने से सर्वकिल्बिष अर्थात् पूरे पातक और अनुपातक नाशकरती है पुनि एक लक्ष जपी हुई वह गायत्री देवी महापातकोंका विनाश करती है—किन्तु—सुवर्गा का चुराने वाला ब्राह्मण और ब्रह्महत्या करने वाला और गुरु भार्या संगम करने वाला और मुरापान करनेवालाभीये चारों महापातकी होते हैं ये सब एकसक लाख जप करिके शुद्ध होजाते हैं सन्देह न करना ॥ ० ॥ यत्तु चतुर्विंशतिमतेनोक्तं=गायत्र्यास्तु जपेत्कीर्तिं ब्रह्महत्यां न्यपोहति लक्षाशीतिजपेद्यस्तु मुरापानाद्विमुच्यते पुनाति हेमहर्तारि गायत्र्या लक्षयद्यत्तु मुच्यते श्रुत रूपगः इति (तद्गुरुस्वात्प्रकाशवियय मिति मिताक्षरा=अर्थात्—चतुर्विंशति सत धातों ने जो कहा है कि—गायत्री का किरोड़ जप करे तिससे ब्रह्महत्या मिटि जाती है और जो अस्सी लाख मंत्र जपे वह मुरापान के पातक से छुटि जाय और गायत्री का सत्तरि लाख जप किया हुआ सुवर्गा चुराने वाले को पवित्र कर देता है और गायत्री के साठि लाख जप से गुरुतरूपगामी शुद्ध होता है यह कहा (मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त अति बड़े होने के हेतु से प्रकाश पापों के विशेषधन पर सम-भूना किन्तु यहाँ रहस्य पापोंपर नहीं ॥ ० ॥ रुद्रैकादशिनी के मध्ये यह वचन है=एकादशशृणान्वापि रुद्रानावर्त्य धर्मवित् महद्भय-सतु पापेभ्यो मुच्यते नात्र सशयः=

अथात्र—ग्यारह रुद्रमंत्रों को ग्यारह गुणा लौटि लौटि जपिके वह पुरुष महापापी से भी छुटि जाता है इसमें सन्देह नहीं (जबकि इसमें महापातकों पर ग्यारह गुणी आर्तति कही गई तो फिर इनसे छोटे अति पातक आदि पर कम कल्पना करनी चाहिये अथात्र चौथाई चौथाई यथा क्रमसे कमकरते चले आना यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ च शब्द के ध्वन्यर्थ से अधमर्यागा आदि अन्य मन्त्रोंका संग्रह समझिलेना जो कर्हिद्रुके तिनके मध्ये वशिष्टका अष्टोक्तवचन है—यथा—सर्ववेदप्रविवाशिवावध्या-
न्य इमतः परम येयां जपैश्च होमैश्च पूयते नान्न संशयः अधमर्यागादेव कृतं शुद्धवत्यस्तरत्स-
माः कूष्मांड्यः पावनान्यश्च दुर्गासावित्र्यैव च । अभियंताः पदस्तोमाः सामानि च्याह
तीस्तथा भासुं हानि च सामानि गायत्रैर्वतंतथा पुरुषव्रतंच भासंच तथा देवव्रतानि च
अवलिंगा बार्हस्पत्या वा वाक्सूक्तं मनुमत्तथा शतरुधाथर्वशिखिमुपर्णमहाव्रतम् गोमू-
क्तं चाश्वसूक्तचन्द्रशुधेवसानवी ॥ वीणयाऽयदोहानिरयंतरंच अग्नेर्ब्रतं वामदेव्यं वृ-
हचसतानि पृतानि पुनर्तजंतु च जातिस्मरत्स्वं लाभते यदिच्छेत्—अथात्र—यहां से वशिष्ट
जी उन मंत्रोंके नाममात्र दर्शाते हैं जो वेद में सर्वथा पवित्र गिनेजाते हैं जिनका जप
करिके या होम करिके पापी लोग पवित्र होते हैं तिनके नाम—अधमर्यागा•देवकृत-
शुद्धवन्ती•तरत्समादि•कूष्मांडियां•पावनानियो•दुर्गा•सावित्र्यः•अथ•अभियंताः•
पदस्तोमाः•सामानि•व्याहृतियां•भारुंडानि•चसामानि•गायत्रं•रैवतं•पुरुषव्रत-
भासं•देवव्रतानि च•अवलिंगाः•बार्हस्पत्यं•अंवा•वाक्सूक्तं•मनुमत्तं•शतरुदी•आथ
वशिखिमु•त्रिमुपर्णां•महाव्रतं•गोमूक्तं•अश्वसूक्तं•चन्द्रशुद्धिं•सामानी ॥ वीणयाऽयं दो-
हानि•रयन्तरं•अग्नेर्ब्रतं•वामदेव्यं•वृहच—ये इतनी सब सहायें ऐसी हैं कि जपने
से जीवोंको पवित्र करती हैं और जो जातिस्मरत्स्वको इच्छा करिके निरन्तर संबन
करें तो वह भी पावे ॥ ३०६ ॥

(गायत्र्या तिलहोमः सर्वपापेष्वेव)

यत्र यत्र च संकीर्णमात्रमन्यते हि जः । तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या वाचनं हि जेः ३१०

अर्थः—हिजाती पुरुष अपनेको जहां जहां संकीर्ण माने अथात्र ब्रह्मइत्या आदि
कोई महा पाप लगिजाने में उसके दोष से अपने को जदित समझे तहां तहां सर्वत्र
गायत्री से तिलों का होम करे और ब्राह्मणों से तिलों से वाचन करावे ॥ ३१० ॥

३१० अधिकोक्तिः= महापातकों पर गायत्री से पूरा एक लक्ष होम करना
चाहिये क्योंकि (गायत्र्या लक्षहोमेन मुच्यते सर्वपातके रितियमस्मरणां) यमका यह,

वचनहै कि गायत्री से एक लक्ष होम करने में सबतरङ्ग के पातकोंसे मुचि जाताहै—
 इससे नीचे अतिपातक आदिपर यथा क्रमसे एक एक चौथाई कमो देकर होमकर-
 ना चाहिये=तथा तिलोर्वाचनं कार्यं=तदाह रहस्याधिकारोवशिष्टः=वैशाख्यांपौरा-
 सास्यांच ब्राह्मणानपचमपन्न सौद्रयुक्तैस्तिलैःकृण्वी वाचयेदथवेतरेः (इतरैःशुक्तै-
 रित्यर्थः) प्रीयतान्धर्मराजोतिथद्वासनसिचर्तते यावज्जीवकृतं पापं तत्संसादेवनश्यात=,
 अर्थात्—योगीश्वर ने गायत्री से तिलों का होम या तिलोंसे वाचन कराना दो बात
 कहों तिनमें वाचन का विधान वशिष्ठ ने रहस्य प्रायश्चित्तों के रहस्याधिकार में
 कहा है कि=वैशाखी पूर्णमासी के रोज पाँच या सात ब्राह्मणों से सहत लगे काले
 तिलों से अथवा मुपेद ही तिलों से वाचन करावै किस मन्त्र से सो कहिते हैं कि
 (प्रीयतां धर्मराज) इस मन्त्र से अथवा जो कुछ कामना मन में होय तिसकामन्त्र
 बनावै जैसा (अमुक पापं धिनश्यतु) इत्यादि मन्त्रों से वाचन कराने में जहां तक
 जिन्दगी भरमें पाप किया हो सो सब उसी समय नाश हो जाता है (यद्यपि यो-
 गीश्वर की विवक्षा अनुसार सहत लगे तिलों से होम करावै यही अर्थ ठीक प्रतीत
 होता है) परन्तु विज्ञानेश्वर की अगिली विवक्षा से वशिष्ठके इसवचन में भी वाचन
 शब्द का अर्थ तिलदान करना समझा गया है तथा (ब्राह्मणान् पञ्चमपन्न) इस
 द्वितीया विभक्ति से भी यह तात्पर्य प्रकटहोता है कि सहत लगे तिल पाँच सात ब्रा-
 ह्मणों को दान देकर प्रीयतां धर्मराज यह वाचन करावै= इसीलिये विज्ञानेश्वर ने
 इसी वचन के अनन्तर ऐसा कहा है कि=अनियत कालं अपिदानते नैधोक्तं=अर्थात्-
 व—जिस वशिष्ठ ने पूर्णमासी के नियत काल पर यह दान बताया उसीने अनियत
 कालों में भी चाहें तब दान करना कहा है=यथा=कृष्णाजिनेतिलावकृत्वा द्विरपयं
 मधुसर्पिणी । ददाति यस्तु विप्राय सर्वतरति दुष्टकृतम्=अर्थात्—काले मृगद्वाला पर
 काले तिल धरिके और सोनाधरिके सहत धृतधरिके जो ब्राह्मणको देताहै वहसभी
 अपने बुरे पापों की भेटता है (दोनों वचन पर दृष्टि देकर यह विचारना चाहिये
 कि पहिले वचन में (सौद्रयुक्तैस्तिलैः) सहत लगे तिल कहिने से होम ही करना
 समझा जाताहै तथापि विज्ञानेश्वर की विवक्षा से यदि उसको दान करना समझि
 लियाजाय तो फिर युक्त शब्दसे भी सहत कालगाना तिलमें नहीं किन्तु साथ होना
 घर देना माना जायगा कि जैसा इस दूसरे वचन में कृष्णाजिन के ऊपर तिल सहत
 आदि अनेक चीजें धरनी कही गईं— तिससे जहां जैसा सम्भव हो तहां उसी प्रयो-
 जन वाले किसी एक अर्थ का स्वीकार करना योग्य होगा ॥ ॥ व्यासेनाप्युक्तं=

तिलधेनुचयोदद्यात्संयतात्माद्विजन्मने ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मर्च्यते नावसंशयः=अ-
 र्थात्-व्यासने भी कहा है कि जो कोई आप अपने इंद्रियादिक शरीर को तप के
 द्वारा शुद्ध करिके तिल धेनु रूपी दान ब्राह्मण को देता है सो ब्रह्महत्या आदि महा-
 पापों से छुट्तिजाता है (तिल धेनु वही कहाती है कि मृगछाला के ऊपर तिलधरिके
 सोना चाँदी सहित या शक्ति के अनुरूप सोने चाँदी के पात्र में या ताँबे के पात्र में
 या ढाक आदि पवित्र पत्तों परही यथाशक्ति काले तिल सोने चाँदी सहित धरिके
 उसी को धेनुरूप सानि के पाप मोचन के अर्थ से संकल्प करै) विज्ञानेश्वर कहिते
 हैं कि जैसे दोचार दान यहाँपर दर्शाये तैसे इनको आदि लेकर और भी अनेक दान
 हैं जो रहस्य काराड में और जहाँ तहाँ ग्रंथों में जाने जाते हैं सो सब उन्हीं द्विजाती
 लोगों के लिये समझना जो पढ़े पण्डित न होने से उप होम करने में समर्थ न हों
 तथा स्त्री साध और शुद्ध जाती पुस्त्योंके निमित्तमें समझना जो सदाही वेद मन्त्रोंके
 अधिकारी नहीं हैं=विज्ञानेश्वर फिर कहिते हैं कि=यत्तु यमेनोक्त=तिलान्दधाति
 यथातस्तिलान्स्पृशतिस्त्रादीति तिलस्त्रायीतिलाचजुह्वन्सर्वतरतिदुष्कृतस-तथा=द्वे
 चायभ्योतुमासस्यचतुर्दश्यांतथैवच अमावास्यापूर्णामासी सप्तमीढादशीद्वयस्य संवत्सर
 मभंजानः सततविजितेन्द्रियः मुच्यतेपातकैः सर्वैः स्वर्गलोकां च गच्छति=यथाविशोक्त=
 सीराध्वोशेयपथके आयाह्यासंविशेदरिः निद्रांत्यजति कार्ति क्यंतयोः संपूजयेदरिस
 ब्रह्महत्यादिकंपापं क्षिप्रमेवव्यपोहति-इत्यादि तत्सर्वं विद्या विरहिणामाकाशकाम
 सहस्रभ्यासविषयतयाव्यवस्थानियमितिमिताक्षरा=अर्थात्=यसने जोकहाहै कि-
 जो कोई अपने पाप की बग़ाई अनुसार किसी नियत करी अवधि तक रोज निरंतर
 प्रातःकाल तिलों का स्पर्श (हाथों से छुड़लें) किया करता और तिलों की पानी
 में पीसिके ज्ञान और तिलों का होम साधारण साध विना मन्त्रके भी और तिलोंका
 दानकरिके तिलोंको खाइके व्रत करताहै और तबतक इन्द्रियोंको जीति अपने वश
 में राखताहै सो सब तरहके पातकों से मुक्ति जाता और स्वर्गलोकमेंभी जाताहै=और
 जो अग्नि यहकहाहै कि=सीरलागर में शयनागरूपी शयनपर आयाहो पूर्णामासी
 के रोज विष्णुभगवाय निद्रालेनेको प्रवेशकरते हैं फिर कार्तिकी पूर्णामासमेंजाकर
 निद्रात्यागतेहैं इन दोनों पूर्णामासीके रोज हरिको यथा विधान से जो कोई अच्छी
 तरहपूजे सो ब्रह्महत्या आदि पाप को तत्काल विनाश करदेताहै=इत्यादि औरभी जो
 कुछ दान पूजन कहें लिखा देखो सो सब ऐसे लोगों के लिये जो विद्या से विहीन
 होय उनके पाप की मूरति एक बार या अनेक बार और कामना से चाहिकर पाप

करने या विना इच्छा पाप होजाने के जुदे जुदे भेदों पर व्यवस्था कल्पितकरलेनी चाहिये अर्थात् जैसा छोटा बड़ा पाप देखौ तैसा छोटा बड़ा दान पूजन आदि प्रायश्चित्त सोचौ ॥ ३१० ॥ विद्यावान् पुंस्य जो नित्य नैमित्तिक धर्म क्रियासे भी संपन्न होय उसपर यदि कोई पाप दगा धोखे से वनिजाय अर्थात् पाप से डरते बचते हुये भी देवगतिसे होजाय तिससे उसके चित्त की छिपी हुई अतिशय ग्लानि खड़ी होय तिसका जुदा नियम आगे कहिते हैं ॥ ३१० ॥

(सर्वधर्मनिरस्याज्ञानकृत पापस्यविशेषः)

वेदाभ्यासरतं क्षांतं पंचयज्ञक्रियापरम् । न स्पृशंतीह पापानि महापातकज्ञान्यपि ३११

अर्थः—वेद के अभ्यास में निरत समायुक्त पंचयज्ञों की क्रिया में तत्पर को इहाँ कोई पाप नहीं स्पर्श करते हैं महापातक से उत्पन्न हुये भी—अर्थात्—इहाँ समार में जो कोई पुंस्य वेदाभ्यास को रखते हुये समा से भी संयुक्त होय जो पीड़ा देनेवालों की पडा सहि कर प्रतिकार कुछ न करता होय और पंचयज्ञों की क्रिया में शास्त्रोक्त विधि से सदा लगा रहित हो तिसपर यदि कोई पाप कभी वैवयोग से वनि जाय तो वह उसको नहीं लगता है चाहे महापातक ही क्यों नही ॥ इसका विशेष तात्पर्य अगिले ३१२ के प्रालोक में देखना ॥ ३११ ॥

३१२ अधिकोक्तिः—वेदाभ्यासस्थलक्षणा (वेदस्वीकरणापूर्वं विचारोऽभ्यसनं तपः तद्धानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासोद्दिष्य च) अर्थात्—वेदाभ्यासी उसका नाम है जिसने प्रथम वेद आदि शास्त्र को पढा फिर मनन के प्रकार से विचार किया फिर उसके पाठ आदिका अभ्यास कई बार किया फिर उसमें लिखे तपको किया फिर शिष्यों को उस वेद का पढाने द्वारा दान किया हो तो यह पांच भौतिक वेदाभ्यास कहा जाता है तिसके होने पर भी पुरुष में समा होनी यह शर्त है—समा का लक्षणा पूरा यही है कि जिसमें दुखदाई को प्रतिकार करने की समर्थ विद्यमान हो तो भी समा करिके प्रतिकार कुछ न करने का स्वभाव जिसका होय और पंचयज्ञ जो नित्य किये जाते हैं यह सबसे बड़ा धर्म गृहस्थी का प्रसिद्ध है तिससे पंचमहायज्ञ उनका नाम है पाँचोंके जुदे नाम एक ब्रह्मयज्ञ जो ध्यान पाठयादि रूपोंसे होता है १ देवाग्नि यज्ञ जो देवपूजन स्मृतिपर्याग्नि होय आदि रूपों से कहाता है २ पितृयज्ञ जो नित्य ग्राह पितृतर्पणा आदिरूपों से विख्यात है ३ वृयज्ञ जो अतिथि अभ्यागतको पूज्य भोजनसे लेकर इष्टानि स्वायित भृत्यवर्ग जुद्वं अनाय

दीन दुखी आदिको सदनसे संबन्ध करने और स्वल्प भिक्षा देने पर्यंत अनेक रूपों से होता है ४ भयजन जो बलिबैद्यदेव स्वर्गकर्म से लेकर पशु पक्षी कृत्ता काग आदि चींटो पर्यंत जीवोंको भी यथाशक्ति चूगादेना आदि रूपों से होता है ५ ॥ ० ॥ मिताक्षरा-कार कहते हैं कि यद्यपि ऐसे पुस्त्यको महापातक भी होजाने पर नहीं लगते कहे परन्तु केवल उसीपापका यह चर्चाहि जो दाग धोखेसे होगया हो इसीलिये अगिले वर्णश्लोके वचनोंको देखो—यथा=वर्णश्लोके=यदाऽकार्यगतं साग्रं कृतं वेदश्च वार्यते । सर्वं तत्तस्य वेदाग्निर्दहत्यग्निरिवेक्ष्वनम् (इति प्रकीर्णाकाद्यभिप्रायेणाभिधायाभिहितं) न वेदवल्माशित्यपापकर्मरतिर्भवेत् अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दह्यते कर्मनेतरत्वं=अर्थात्-वर्णश्लोकी ने=जब किसीने सौ से भी अधिक न करने योग्य काम किये हों पर वह वेद की धारणा भी रखता हो तो उसका वह पाप सर्वथा वेद रूपी अग्नि जैसे ईंधन को जलाइ देती है अर्थात् पाप उसे लगने नहीं पाता (यह प्रकीर्णाक आदितुच्छ पापों के अभिप्राय से दशांशिके पिर अगिले वचन में कहा है कि) वेद पढ़े होने के बल को पाइकर इस नियम के सहारे से जानि वृत्ति पाप कर्मों में रति न करनी चाहिये क्योंकि वेद की अग्निसे केवल वही पाप जल सकते हैं जो अज्ञानता से होजाय या भूलमें होजाय किन्तु इनसे इतर जानिवृत्ति किये पापोंको नहीं जलाइसकता है ॥ ० ॥ योगीचर के मूल श्लोक में यह तात्पर्य नहीं है कि उसको पाप नहीं लगता है तिससे निपट प्रायश्चित्त ही न करना होगा किन्तु यह तात्पर्य है कि थोडा प्रायश्चित्त करिके शुद्धि होसकेगी भी अगिले मूलश्लोक में देखो ॥ ३११ ॥

(उध्वैक्तपुस्त्यस्य प्रायश्चित्तं)

वायुभक्षो दिवातिष्ठन् रात्रिनीत्वाप्तुर्मुषट्क । जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुद्धये हृद्वावभादते ३१२

अर्थः—दिनमें वायु भक्षी रहिके रात्रिको जलमें बिताकर सूर्य देखनेपर गायत्री का सहस्र जप करिके शुद्ध होय ब्रह्मवच से रहित=अर्थात्—वेदाभ्यासो पुस्त्य जिसका चर्चा ऊपरले मूलश्लोक में आयाथा उसी का यह छोटा प्रायश्चित्त है कि यद्यपि महापातक भी नहीं लगते कहेगये तो भी महापातकों में यह इतना अपवाद है कि एक ब्रह्मदत्ता के चिना कोई और महापातक भी जिसपर वैद्ययोग से व्रतगया हो तिसको यह प्रायश्चित्त करना चाहिये कि—एक दिनभर वायुभक्षी अर्थात् कुछ न खाकर उपवास किये देवा रादिकर संख्यासमयसे जलमें जावे वहाँ बैठेहुये रात्रिको बिताकर सूर्यका उदय होअनेपर उनके दर्शन किये पीछे एकसहस्र गायत्रीका जप

करै उसी जल में बैठे रहिकर (या जिसको बैठे रहिने की शक्ति श्रेय न रही हो सो जलसे बाहर निकसि किवारे बैठि सूर्य क समुख जपे) तो यह सब तरहके महा-पातकमे भी छुटिजाता है पर एक ब्रह्महत्या से नहीं= अब कि इतना करने से महा-पातक एकवार का मिटिजाया तो फिर उपपातक आदि छोटा पाप अनेकवार किया मिटिजायगा और छोटेकोटे अनेक पाप जो एकहीवार इकट्ठे एकसाधहुये हैं वेभी इतना करने से मिटि जायेंगे यह समझि लेना ॥ ३१२ ॥

३१२ अधिकोक्तिः=मिताक्षराकारस्तु= सावित्र्याः सहस्रं जपित्वा ब्रह्मवचन-तिरिक्त सकलमहापातकादिपापजातान्मुच्यते अतश्च उपपातकादिष्वभ्यासेऽनेक-बोयसमुच्चये वा वेदितव्यं विषयं विषयसमीकरणाभ्यान्वाह्यत्वात्= अर्थ इसकावही है जो अभी ऊपर लिख चुके उसपर मिताक्षराकार कहते हैं कि छोटे बड़े सभी पापों पर एक ही प्रायश्चित्त समझिलेने से सब छोटे बड़े बराबर दहरजाते सो अन्याय दहिरता तिससे बड़ी व्यवस्था ठीक है जो लिखी गई= इस प्रायश्चित्त से ब्रह्महत्या नहीं मुचती है इसका यह तात्पर्य है कि ब्रह्महत्या अज्ञानता से होजाने पर भी ऐसे वेद के अभ्यासीकोभी वही प्रायश्चित्त करना चाहिये जो ३०२ तीनसौ दो के मूल श्लोक से सबके लिये कहि चुके= और= राति भर जलमें जो बैठना कहा या दूसरे दिन गायत्री का जाप जलमें बैठके तिसके मध्ये शीत देश या शीतकाल आदि की व्यवस्था एक जुदी है सो सब ७५ पचहत्तर के परिच्छेदमें २६५ दो सो चौरानवे मूल श्लोक से वर्णन होचुकी तहां देखौ ॥

('अथवाशिष्टं विप्रैः प्रायश्चित्तं)

मिताक्षराकार ने यहां पर वशिष्ठ जी का कहा एक जुदा व्रत और भी प्रकाश किया है= यथा= यवानां प्रवृत्तिर्भलि वायव्यमासां घृतचाभिस्त्रयैव (यवाऽभि चान्धराजस्त्वं वासुतो भुवः युतः निरोदित्स्त्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतः) इत्यनेन- घृतं यवामधुयवाः पवित्रममृतं यवाः सर्वेषु दंतु मे पापं वाङ्मनः कायसमं= इत्यनेन वा) अग्नि कार्थेन कुर्वीते तेन भूतवर्लंतथा नाग्रं न भिक्षां नातिथ्यं न चोच्छ्रियं परित्यजेत् (ये- देवामनोजाता मनोयज्ञसदसादसपितरः तेनः पातुते अवनतुते भ्योनसः तेभ्यः स्वाहा इत्यनेनात्मनि जुहुयात्) विरावं मेवाभिरुद्धये पापक्षया य विराय सत्तराव ब्रह्महत्यादियु द्वादशरात्रं पतितो तपन्नश्च ॥ इत्येतद्दिगवलं वनेनान्यपि स्मृतिवचनानि विवेचनायानां तं मिताक्षरा= अर्थात्= एक पसर भर अथवा एक अँजुरी भर जो लेकर तपते हुये

घृत में छोड़िके (यवोसिवान्य आदि) अग्निलेदोमन्त्रों से अभिमन्त्रित करें अर्थात् घी में जौ भुनते रहें तब तक इन मन्त्रों को बारम्बार पढ़ता जाय पवित्र लकड़ी की प्रसिध से चलाता जाय और घी के नीचे अग्नि भी हवनीय कायकी जलावेँ जैसा दाख आदि हवनीय प्रसिद्ध है और गायका घृतभी केवल इतने अनुमान से चढ़ावेँ जो भुनते हुये जवों में खिपि जाय बचें नहीं) देव योग से कुछ बचि भी जाय तो भी उस घृत से या जवों से न होम आदि अग्नि का संबंधी कोई काम करें न भूतबलि कर्म करें न अन्न न भिक्षा न आतिथ्य करें न आप दसमें से जूठनि छोड़े (अर्थात् भिक्षा देनी एक ग्रास मात्र कहाती है तथा चारि ग्रास भर देना अग्रदान कहाताहै सो कुछ न करें और आतिथ्य यह कहाताहै कि नवीन किसी अग्न्यागतको आया देखि वैदारि के पेट भरि भोजन कराया जाता है सो भी उस घी जवों से न करें) तो फिर क्याकरना चाहिये सो कहिते हैं कि (ये देवामनो जाता आदि स्नाहा पर्यंत मन्त्र पठि पठि के अपनेही आत्मा में होम करें) कबतक करें सो कहिते हैं कि बृद्धि बढ़ाने की कामना से पवित्र बृद्धि के लिये तीन राति और प्रकीर्णक आदि छोटे उपपातकों का विनाश चाहि कर तीन रात्र और इनसे बड़े उपपातकों का क्षय करने के लिये सात रात्र पर्यन्त करें और ब्रह्महत्या आदि महा पातक या अर्थात् पातक या अनुपातक लगे हों तिनका क्षय करने के निमित्त पर बारह रात्र पर्यन्त करें और जो कोई पतित के वीर्यसे उत्पन्न देवयोग से होगया कदाचित् बड़ी वीर्य बोध को मिटा कर अपने शरीर का शुद्ध करना चाहै तो बारह दिन वह भी करें = अपने ही आत्मा में होम करें परन्तु जूठनि भी न छोड़ें = यह तत्त्व पहले कहि चुके हैं तहां यद्यपि वशिष्ठजी ने कुछ विशेष व्योरा नहीं खोला तथापि होम करने का डौल केवल यही देखिपरताहै कि एकएक जौ एक एक मंत्र पढ़ि कर हलकमें छोड़ें तहां जितने जो एकदिनके लिये भूनेगये उनमेंसे एकभी जौ न छोड़ें जौ जूठनिमें गिनती होसके—इसके सिवाय (घृतयवा मधुयवा) इस मन्त्रके ध्वन्यर्थसे यह भी सिद्ध होता है कि जौ को भुनने के बाद सहतमें लपटें तभी दूसरे मन्त्रको पढ़ें तिसके बाद तीसरे मन्त्रको पढ़ि पढ़ि मुंहमें छोड़ें और एक पसर या अंजुरीभर जौका विकल्प केवल आदमीके डीलडौल या पेटके अनुसूप समुभक्तना कुछ पापोंकी छोटाई बड़ाईपर नहीं कोकि जितने दिनों का प्रार्थशिचत्त होय उतने दिनों तक इसी आहार से रहिकर व्रत करनेहोंगे ॥०॥ विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार ने ३१२ तीनसोबारह के मूलश्लोक वाली टीकामें इस प्रार्थशिचत्त की स्थापना करी तिससे यह भी प्रतीत होता है कि

मूलश्लोकवाले प्रायश्चित्तसे जिस पुण्यकी ब्रह्महत्या नहीं मिटती कही गई तिसके लिये ३०२ तीनों दो के मूलश्लोकवाला प्रायश्चित्त बताया गया उसी पुण्यके निमित्त में अवोक्त बारह दिन का प्रायश्चित्त भी सूचित हुआ कि दोनों में जिस किसी के द्वारा अपनी श्रुति होसकनी दीकदीक समझें तिस एक ही को विकल्प से साथे किन्तु दोनों को नहीं ॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर पीछे से कहते हैं कि इसी मार्ग के अवलम्बसे और भी स्मृतियोंके वचन विवेचन करने चाहिये जो नवीन देखने में आवें ॥

इतिसकलरहस्यपापहरमंत्रहोमादीनांपरिच्छेदः ३१२

(इतिसर्वरहस्य प्रायश्चित्तानां प्रकरणं)

इस प्रकरणा में समस्त ४ चारि परिच्छेद हैं अर्थात् ७८ अक्षरि परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर यहां ८१ इकासी परिच्छेद के अन्त तक एकही प्रयोजनके चार भेद जुड़े किये गये हैं उन सब का प्रकरणा एक है ॥

विनियुक्तव्रतव्रातस्त्रयभेदेवभूतिसते कीदृशमितिसंक्षेपात्लक्षणावश्यतेऽधुना (तत्र तावत्सकल प्रकाशरहस्यव्रतांगभूतधर्मानाह) अर्थात्—मिताक्षराकार कहिते हैं कि जिन व्रतोंका समूह जिन पापोंपर जुदा जुदा विनियुक्त किया गया तिनके रूपभेदों की चाहना होनेके समय यदि ऐसा सन्देह खड़ा होय कि अशुक् नाम का व्रत कैसे होता है इसी लिये उक्त व्रतों के संक्षेप लक्षणा अब आगे कहे जाते हैं सो अगिले परिच्छेदों में यथा क्रमसे देखौ (तहां पहिले रहस्य और प्रकाश दोनों तरहके प्रायश्चित्तों में सर्वत्र उन व्रतों के अंग भूत धर्मों का स्वरूप दर्शाइ कर सान्त्वन आदि व्रतों के स्वरूप कहे जायेंगे ॥

अथ कृच्छ्रादिव्रतानां मध्ये-सांतपनकृच्छ्रस्यानेकभेद विधायकोऽयं परिच्छेदः दुशोतितमः (८२)

इस परिच्छेद में—कृच्छ्र आदि व्रतों का एक भेद जो—सांतपन या सान्तपन कृच्छ्र इस नामसे कहा जाता है तिसके स्वरूप भेद जाने जायेंगे कि ऐसे ऐसे विधानों से जुदे नाम भेद भी होजातेहैं—तहाँ पहिले (३१३—३१४) इन्हीं दो प्रतीकोंसे समस्त आद्योपांत प्रायश्चित्तोंके साधारण धर्म दर्शावेंगे जो प्रकाश तथा अप्रकाश दोनों तरहके प्रायश्चित्तों में कामआवें ॥

(सकलप्रायश्चित्तवृत्तगंधर्माः)

ब्रह्मचर्यदशाक्षांतिर्दानस्तपमकल्पता । अहिंसाऽस्तेयमाधुर्यं दमश्चेति यमाः स्मृताः ३१३
ज्ञानमौनोपवासस्वाध्यायोपस्यनिग्रहाः । नियमागुरुशुभ्रपाशौ चाक्रोधोऽप्रमादता ३१४
अर्थः—ब्रह्मचर्य • दया • क्षांति • दान • सत्य • अकल्पता • अहिंसा • अस्तेय • साधुर्य • दम • ये यम नामसे संयमरूपी धर्मकहे—और ज्ञान • मौन • उपवास • ईश्या • स्वाध्याय • उपस्यनिग्रह • गुरुकीशुश्रूषा • शौच • अक्रोध • अप्रमाद • ये आवश्यक नियमरूपी धर्मकहे—अर्थात्—समस्त प्रायश्चित्त कांड में यहाँतक जितने कुछ प्रायश्चित्तों के स्वरूप भेद चाहें प्रकाश पापों केहों या रहस्य पापोंके नियत कियेगये और विशेष लक्षण उनकोआगे कहेजायेंगे तिन सबही व्रतोंके साथ-इतने अज्ञेय धर्मोंका होना परम आवश्यकहै क्योंकि इनके होने बिना किसी भी कियेहुये व्रतकी संसिद्धि नहीं होतीहै—इनके बहुधा अर्थ तो मुख स्पष्ट हैं तथापि—ब्रह्मचर्य शेषरीरकी सब इंद्रियों का संयम समुत्तना और उपस्य लिंगेन्द्री सबके साथ में आगई तोभी उसका निग्रह जोतनाजुदाकहागया सो यह गोवलीवर्द न्यायसे निर्देश कियाहै कि जैसे गोशब्दके उच्चारणमें गाय बेल सब समुभोगये तोभी बेलके निमित्त में विशेष नियम कहने के अर्थसे उसका जुदा नाम बलीवर्दही लियाजाता है • अकल्पता कुदिलताका छोड़िदेना कहाताहै • दम कहिनेसे हाथ धर आदि बाहरली इन्द्रियोंको चंचलता रोकना सदुत्तना जाताहै • साधुर्य कोमलवाणी बोलना • अस्तेय चोरी न करना • अप्रमाद उचित कर्मकी उसकी समय पर न भूलना • वाकी सब सुगम हैं ॥ ३१३॥३१४ ॥

३१३ अघिकोक्तिः—मितासराकारः (यत्पुनर्मनुनेक—अहिंसासत्यमक्रोधमाजंघ्रसमाचरेत् इति) तदर्थ्येतेषामुपलक्षणां परिगणनाय (अवचदयासांत्यादीनां परुषार्थतया प्राप्तानामपि पुनर्विधानं प्रायश्चित्तान्तरार्थं) कचिद्विशेषोपस्थित्यथा विवाहादिष्वभ्यनुज्ञातस्याप्यनृत वचनस्य निरुत्यर्थं सत्यत्वविधानम् पुत्रशिष्यादिकर्मपितादनीयमपिनतादनीयमित्येवमर्थमहिंसाविधानमित्येवमादि—अथातः—मनुनेजो कहा है कि—अहिंसा० सत्य० अक्रोध० आर्जव सरलता० आचरै) मो यह योगीश्वर केही गिनावे धर्मों का उपलक्षणा है कुछ इसलिये नहीं कि इनकी जुदी गणना करी जाय या ऊपरलों के साथ मिला कर गिने जायें (और योगीश्वर के दर्शाये गणामें दया सांति आदि कितनों पर यह तर्क है कि प्रायश्चित्ती पुस्त्य के पुस्त्यार्थत्व सेही समझे जाते थे कि ये लक्षणा जो सभी मज्जनोंमें होते हैं उसमें होने चाहिये तथापि यहां जुदे लाकर लिखनेसे यह तात्पर्य है कि अवश्यही प्रायश्चित्तों का अंगभूत समझे जाय) और उन्हींमें बिरलों का जुदा भी कुछ तात्पर्य है कि जैसे विवाह आदि बिरले स्थितों पर असत्य बोलनेकी अनुज्ञा यद्यपि शास्त्रोक्त है तहां भी प्रायश्चित्ती को असत्य नबो जना चाहिये इसलिये सत्य बोलने का नियम यहां दर्शाया गया तथा पुत्र शिष्य आदि की ताड़ना यद्यपि शास्त्रोक्त है तत्तको भी प्रायश्चित्ती पुस्त्य न सारै इसी तात्पर्य के अर्थ से अहिंसा का नियम यहां जुदा भी दर्शाया गया इत्यादि कुछ और भी बिरलोंके जुदे तात्पर्य हैं तिससे इन दोनों प्रलोकमें सब धर्मोंका इकट्ठा लिखना उचित ठहिरा ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

(सांतपनाख्यव्रतं)

गोमूत्रगोमयक्षीरं दधितर्पिः कुशोदकम् । जग्ध्वा परेद्युरुपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं परम् ३१५ ॥

अर्थः—गोमूत्र गोबर गायका दूध दही घृत येभी गायके कृश भिजोकर उनका जल लेलना ये सब मिलेहुये खाकर दूसरेदिन कोरा उपवास करे तो यह दोदिनका व्रत सांतपन होछु नाम से परमउग्र है (पहिले दिनभी कुछ न खाकर गोमूत्र आदि मिली चीजोंका आहार करना कहा तिससे दोनोंदिन व्रतही में गिनती दें ॥ ३१५ ॥

३१५ अघिकोक्तिः—कितना गोमूत्र आदि लिया जाय यह परिमाण आगे कहेंगे—जवकि इन्हीं गोमूत्र आदि सब चीजों को इस रीतिसे कि पहिलेदिवस कोरा उपवास करे दूसरे दिन सन्ध्यापढ़िकर इनकी मिलावे और सन्ध्या पढ़िकर पीये तबयही ब्रह्मकूर्च नामका व्रत होता है जैसा आगे पराशर का कथन देखो—यवाह

पराशरः=गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिर्ऋशोदकम् निर्दिष्टं पंचगव्यं तु प्रत्येकं कायशोच-
नम् गोमूत्रं त्रायवर्णायाः श्वेतायाश्चापि गोमयस्य पयःकांचनवर्णाया नीलायाश्च
तथा दधि घृतं वक्रयावर्णायाः सर्वं कपिलमेव च आत्माभे सर्ववर्णानां पंचगव्येष्वर्थविधिः
गोमूत्रे मायकात्वस्यो गोमयस्य तु योद्धश क्षीरस्य द्वादशप्रोक्ता दध्नस्तु दशकीर्तिताः गो
मूत्रवत् घृतस्याष्टौ तर्ध्वतृकोदकाश्च पंचगव्यस्य चार्पणं तद्गोमये दग्निर्गन्धिर्गन्धोऽप्युपपाश्रये
दर्भाश्चिच्छन्नाश्चाशुचित्त्वयः सतैरुद्धृत्य होतव्यं पंचगव्यं यथाविधि इरावती इदं वि-
प्राग्मानं स्तोके च शब्दो रताभिश्चैव होतव्यं हुतश्रेयं पिबेत् द्विजः । प्रसावेन समाजोऽद्य प्र-
सावेनाभिर्मन्त्र्यचः । प्रसावेन समुद्धृत्य पिबेत् प्रसावेन तु मध्यमेन पलाशस्य पद्मपत्रेण वा
पिबेत् । स्वरूपेण तादृशेण वा ब्रह्मतीर्थे वा पुनः यत्पराशर्यगतं पापं देहेति युक्तिमानवे-
न्नह्यकूर्चोपवासस्तु दहत्यग्निं निवेदनञ्च= अर्थात्—गाय का मूत्र गोवर दूध दही घृत
ऋशोदक मित्राकर पचगव्य कहा गया है जिसकी प्रत्येक वस्तु जुदी जुदी कायाको
शोधने वाली होती है ॥ इन में गोमूत्र लाल गायका गोवर मुपेद का दूध मुनहरे
पर्यावालीका दही नीली गायका घृत काली गाय का और सब चीजें कपिल वर्ण
वाली कपिला की भी होयें जो ऐसी न मिल सकें तो सब रंगों वाली की ये सब चीजें
लेनी चाहिये यह तो पंचगव्यों की विधि समझ करने मध्ये कही ॥ परिमाण इस
रीति से कि गोमूत्र आठ मासे भर गोवर मोरह मासे दूध बारह मासे दही दशमासे
घृत भी गोमूत्र की बराबर आठ मासे ऋशोदक सबकी तेलसे आधाकेना यह ऐसा
पच गव्य बनाके ऋचा पंडितके पवित्र किया हुआ अग्नि के समीप होमें (किन्तु
अग्नि के बीचमें नहीं) किस प्रकार से कि सात पशोंवाले कुश लेकर जिनकी नीक
रही न हो जड़का वकला लुहाके शुद्ध किये होयें तिनसे उठाकर पचगव्य अयोक्तृजैसी
विधिहो तैसे अग्नि के समीप होमें किन्तु (इरावती इदं विष्णुः • मानस्तोके • शवती)
इतनी ऋचाओं के पूरे पूरे पाठ से एक एक बार होमना चाहिये इस होम से जो
बचे सो द्विजाती प्रायश्चित्तो पुनश्च पावै ॥ इस रीति से कि प्रसाव ओंकारसे घोल
के ओंकार सेही अभिमन्त्रित करिके ओंकार हीसे उठाकर ओंकारही पंडितकर पावै ॥
काहे से उठाकर पावै सो कहिते हैं कि दाख के तीन पत्तों में बिचले पत्रसे उठाकर
पावै या पत्र के पत्तसे या सोनेके पत्रसे या ताश्रके पात्र आचमनी आदि से अथवा
कुछ न हो तो डबेली पर ब्रह्मतीर्थ के द्वारा पावै ॥ तौ इस ब्रह्मकुर्च नामी उपवास
के करने से वह सभी पाप जैसे अग्नि से ईधन की तरह भस्म होजाता है जो कुछ
मनुष्य के देह में खाल हाडों तक पहुँच गया हो ॥ ० ॥ इसी पचगव्य की जब तीन

दिन अभ्यास किया जाय तिसकी यति सांतपन सत्ता होती है—तदाह शंखः (सतदेव
त्र्यहाम्यस्तंयदिसांतपनंस्मृतम्) यही सत्त चीजोंसे मिला हुआ पंचगव्यतीनदिनपिया
हुआ यतिसांतपन कहा जाता है ॥ १ ॥ जावाल मुनिने एकसक चीज रोज पीके सातवें दिन
कोराव्रतकरनेसे सप्ताहभरका सांतपन कहा है—यथा=गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोद-
कमसृक्केकं प्रत्यहं पीत्वा तत्र होराजमभोजनमकृच्छं सांतपनं नाम सर्वपापप्रणाशनम्=अ-
र्थात्—पंचगव्य और छटाकुशोदक यथाक्रमसे हररोज एकसक चीज पीके सातवें दिन
आठोपहरकोरा उपवास करती यह सातदिनका कृच्छ्र सांतपन व्रत सभोषापाका बिनाश
करनेवाला होता है (प्रायः कृच्छ्र शब्दसे विशेषण बहुधा व्रतोंमें इसलिये जोड़ि देते हैं कि
उसकी कदिनाई समुभोजाय क्योंकि कृच्छ्र नाम है कष्टका ॥ योगीश्वरने पहिले दिन
पंचगव्य दूसरे दिन कोराव्रत करना कहिकर कृच्छ्रसांतपन उसका नाम धरा १ उसीको
पराशर ने एकही दिन विधिके साथ पंचगव्य पीना कहिकर ब्रह्मकुर्वं उसका नाम
धरा परंतु सिताक्षरा ने इसके साथ भी पहिले दिन कोरा व्रत करना समुभोजाय तिस-
से इसमें भी दोही दिन ठहरे २ उसी पंचगव्य की तीन दिनतक पीना कहिकर शंखने
यतिसांतपन उसका नाम धरा ३ जावालने एकही एक चीज रोज पीना कहिकर सात
दिनका कृच्छ्र सांतपन व्रत नाम धरा ४ इन चारों कृच्छ्रव्रतोंका छोटापन बड़ापन प्राय-
श्चित्तो पुस्त्यकी शक्ति और पापका गहिरापन आदि सोचिके व्यवस्थानियतकर-
नी चाहिय जहाँपर कृच्छ्र व्रतकरना कहा गया हो—इसी प्रकार अगिंती अधिकोक्तों
में एकही व्रतके अनेक भेद होनेके स्थलोंपर व्यवस्था नियत करनी चाहिये ॥ ३ १ ॥

(महासांतपन व्रतलक्षण)

एष कसांतपनं द्रव्यैः पचइह तोपवासकः । तसाहेन तृच्छ्रं यमहासांतपनं स्मृतः २१६
अर्थः—एक उपवास सहित छ दिन जुदे गोमूत्र आदि चीजोंसे सांतपन जो किया
जाय (अर्थात् गोमूत्र आदि एकही एक द्रव द्रव्य पीकर सातवें दिन कोराव्रतकरे)
तो यह सात दिनका कृच्छ्रव्रत महासांतपन कहा गया है (जैसा ऊपरली अधिकोक्ति
में जावाल ने कहा था ॥ ३ १ ॥

३ १ ६ अधिकोक्तिः—महासांतपन कई भाँति के होते हैं उनमें एक पचइ दिनका=
तदाहयमः= इहपिवेतु गोमूत्रं त्र्यहं वै गोमयं पिवेत त्र्यहं दधिवज्रं क्षीरं त्र्यहं सर्पिस्ततः
शुचिः महासांतपनं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम्=अर्थात्—तीनदिन गोमूत्र पीवें तीन दिन
गावर पीवें तीन दिन दही तीन दिन दूध तीन दिन घी पीवें तिससे शुद्ध हो जायगा

यह सहा सान्तपन नाम का व्रत सर्व पापों का विनाश करने वाला है ॥ ० ॥ इसीस दिनका भी महासान्तपन होता है—तदाह जावालः=यथागामेकैकमेतेषां विराजमुपये जयेत्, इयहं चोपवसेदंत्यमहासान्तपनविदुः=अर्थात्—इन गोमूत्र आदि छः चीजों में एकएक को तीन तीनदिन पीवें तिसको क्वेतिया अदारह और पीछेसे तीनदिन कोरा उपवास करें तो यह २१ दिन का महासान्तपन कहिते हैं ॥ ० ॥ गोमूत्र आदि सां- तपन की सब चीजों में एक एकको दो दो दिन पीनेसे बारह दिनका भी सान्तपन होता सो अति सांतपन कहाता है—तदप्याहयमः=सतान्येव तथापेयादेकैकान्तुद्वयद्वय द्वयद्वय अतिसांतपननाम श्रवपाकमपिशोधयेत् (श्रवपाकमपिशोधयेदित्यर्थवादः =अर्थात्—इन्हीं कुशोदक पर्यंत छः चीजों को एक एक जूरीजूरी बंदो दिन पीवें तो यह अतिसान्तपन नाम कहावै चाराडाल को भी शुद्ध करें (सो यह अर्थवादरूपी एक प्रशंसा है कि चाराडाल से संसर्ग जिसका होजाय ऐसे दिजाती को शुद्ध कर सकता है ॥ ३१६ ॥) यहां भी महासान्तपन के छोटे बड़े जितने भेद हुयेवै तिनको वही व्यवस्था है जो ऊपर की अविकोक्ति में आचुकी ॥ ३१६ ॥

अथ पर्णकृच्छ्रपादकृच्छ्रतप्तकृच्छ्राद्यानां कृच्छ्र

व्रतभेदानां विशेषतस्त्वरूपविधायकोऽयं

परिच्छेदः च्यशीतितमः (५३)

इस परिच्छेदमें अनेक कृच्छ्रोंके स्वरूप और नाम भेद जाने जायेंगे। तिनमें प्रथम पर्ण कृच्छ्र आदि जो पत्ता या फलफूल आदि से होतेहैं। फिर पादकृच्छ्र आदि जो कर्शतरहके व्रत मिलिकर सकपाद माना जाता है उसीके प्रसंगमें दिवाभोजोव्रत नक्त भोजी व्रत अयाचित भोजी व्रतभी कहे जायेंगे। फिर कृच्छ्रार्च आवाकृच्छ्रभी। फिर पादोपपोतकृच्छ्रभी दर्शावेंगे। फिर तप्तकृच्छ्र शीतकृच्छ्र आदि भी अनेक छपसे दर्शावेंगे ॥

(पर्णकृच्छ्रव्रतलक्षण)

पर्णादुत्तरराजोवत्स्वपत्तकुशोदकैः । प्रत्येकं प्रत्यहं पीते-पर्णकृच्छ्र उदाहृतः ३१७

अर्थ—पर्ण (टाख. गूलर. कमल. बेल. कुश. इन पांचों के पत्तों का जल निचोड़िको यथाक्रमसे एकएक दिन एकएक जलको हररोज पीवें तो यह पांच दिन का व्रत पर्णकृच्छ्र नाम कहा है ॥ ३१७ ॥

३१७ अधिकोक्तिः=पर्याकृच्छ्रके अनेकभेदहैं जहाँ इनपत्तोंको मिलाकर काय बनाया हुआ तीनरात्रि कोराव्रत करने के वादि पियाजाय तहाँ पर्याकृच्छ्र नामहोता है=तदप्याहयसः=एतान्येवमस्ता निचिरात्रोपोयितः शुचिः कार्यश्चत्वापि वेदद्विः पर्या कृच्छ्राभिधीयते=अर्थात् येही सब चीजें जलसे काय करिके तीनरात्रि व्रत किये पीछे शरीरसे शुद्धहोकर पीवै तौ यह चारदिनका पर्याकृच्छ्र कहाता है ॥०॥ जहाँ बेल आदिके फलों मे प्रत्येक जुदे फलको या सबकी मिलाकर काय बनाया हुआ पियाजाय तहाँ फल कृच्छ्र कहाता है इसी तरह फूल आदि पिये जायें तहाँ उन्हीं केनामसे कृच्छ्र कहातेहैं, यहसब आगे मार्कंडेय के वचनों में देखौ=यथाह मार्क-
ण्डेयः=फलैर्मसिनकथितः फलकृच्छ्रो मनोयिभिः श्रीकृच्छ्रः श्रीफलैः प्रोक्तः पद्मक्षेत्रपर-
स्तथा सासेनामलकैरेवं श्रीकृच्छ्रमपरस्मृतस्य पर्यैर्मतः पद्मकृच्छ्रः पुष्पैस्तत्कृच्छ्र उच्यते मूल-
कृच्छ्रः स्मृतो मूलैस्तोयकृच्छ्रो जलनतः=अर्थात् उक्त एषोंके फलोंसे काय किया एक मास पीना बुद्धिमानों ने फल कृच्छ्रनाम व्रत कहाहै तथा केवल बेलके फलोसे श्री-
कृच्छ्रनाम कहाहै तथा कमलाद्वाग्रासे पद्मकृच्छ्र इत्यादि और इसी तरह एक मास आमलकों से भी दूसरा श्रीकृच्छ्र नाम होताहै जो पत्तों से कियाजाय सो पद्मकृच्छ्र नाम कहाता है पुष्पों से पुष्पकृच्छ्रनाम होता है मूलजड़ों से किया जाय सो मूल कृच्छ्र कहा जाता है जो केवल जल से किया जाय सो जलकृच्छ्र तोयकृच्छ्र कहा जाताहै ॥ ३१७ ॥

(तप्तकृच्छ्र व्रतलक्षणं)

तप्तक्षीरघृतांबूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत् ॥ एकरात्रोपवासः षततृणशुद्धाभूत ३१८ ॥

अर्थः—गरमदूध घृत जल इनमे एक एकको एक एकदिन तपाइके पीवै तिसपीछे एकदिन रातिका उपवासभी कोरा करै तौ यह चारदिन में तप्तकृच्छ्रव्रत होता कहा (इसको महातप्त कृच्छ्र भी कहिते हैं ॥ ३१८ ॥

३१८ अधिकोक्तिः=तप्तकृच्छ्र भी अनेक भौतिसे होताहै यथा (सभिरैवमस्तीः सोपवासैर्द्विरावसं पाद्यसांतपनवत् तप्तकृच्छ्रः इति मिताक्षरा) अर्थात्—उन्हीं गरम दूध आदि सब चीजोंको इकट्ठी एकदिन पीकर दूसरे दिन कोराव्रत करनेसे दोदिन में यह भी सांतपन की तरह तप्तकृच्छ्र कहलाता है यह मिताक्षराकारने कहा इसी लिये उन्हीं चारदिनके व्रतपर मूलके अर्थमें महातप्तकृच्छ्र नामकहा जो मूलश्लोक में नहीं है ॥ ० ॥ बारह दिन का भी तप्तकृच्छ्र होता है=तदाहमनुः=तप्तकृच्छ्र चर न्विप्रो जलक्षीरघृतानिलाच प्रतिव्यहं पिबेदुष्मान्सकृत्त्रायी समाहितः=अर्थात्—तप्त

कृच्छ्रकोआचरतेहुये ब्राह्मणा जल दूध घृत पवन इनमें एकएकको तीनतीनदिनगरम गरम पीवै और चित्तको सावधान रखकर एकहीवार स्नान कियाकरै तो यह ब्राह्मणका तप्तकृच्छ्र होताहै ॥०॥ पंचगव्य की चीजें जहाँ-जहाँ दूध आदि एकही दो पीवनी कही गईं तहाँ सर्ववक्तव्ये परिमानतक पीवनीचाहिये सो सब अगिली व्यवस्था में देखीं—यथाहपराशरः—अर्पापिवेतुत्रिपलं द्विपलंतुपयः पिवेतुपलमेकपिवे त्रिपलं चिरात्रं चोष्णामारुतम् (चिरात्रं चोष्णामारुतमिति चिरात्रस्य पर्यायः उष्णोदकं बाल्यं पिवेदित्यर्थ इति मिताक्षरा—अर्थात्—अलपोकेव्रतकरना लिखाहो तहाँ तीनपलपीवै और दूध लिखाहोतहाँ दोपलपीवै जहाँ घृत लिखाहो तहाँ एकपल पीवै और गरम दूध। तीनरात्रि (मिताक्षराकार कहिते हैं कि तीनरात्रि गरम दूध का कहिने का यह तात्पर्य है कि चिरात्र व्रतके परां होने पर थोड़ा सा गरम जलही विकल्प से पीवै) सो यह ऐसे स्थल का चर्चा है जिस किसी व्रत में उष्णमारुत पीना कहा हो ॥०॥ जहाँ ठंडादूध आदि पियाजाय तहाँ शीतकृच्छ्रनाम होताहै—यथा—अथ शीतपिवेतो यथाश्रीतंपयः पिवेत् अथ शीतं घृतं पीत्वा वायुभक्षणं परं अथ दध्म—अर्थात्—ठंडा जल तीन दिनपीवै फिर तीनदिन ठंडा दूध पीवै फिर तीनदिन ठंडा घृत पीके पीछेसे तीन दिन केवलवायुभक्षणाकरै औरकुछनहीं तोयह बारहदिनका शीतकृच्छ्रकहाताहै ॥३१४॥

(पादकृच्छ्रलक्षणा)

एकभक्तेन नक्तनतपैवापाचितेन च । उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ३१९

अर्थः—एकभक्तसे नक्तसे तयैव अर्थात् चित्त से भी उपवासकरनेसेभी यह पादकृच्छ्र कहाहै—अर्थात्—ये चारों व्रत मिलिके चारदिनमें एक पाद कृच्छ्र व्रत कहाता है—और एक भक्तकेनामसे दिवसमें थोड़ासा खूबामूखा भोजन घी दूध आदिको छोड़ि के समझना और नक्त के नाम से नक्तव्रत समझना जिसमें सिर्फ रातिही को स्वल्प भोजनकिया जाता है और अर्थात् चित्त व्रत इस ढंगसे होताहै कि न किसी से मांगें न किसीको समस्या करै यदि स्वतः कोई चाहें कईदिन बीतिजानिपर भोजनकी वस्तु आगे लाधरै तभी थोड़ासा खाइके बचा हुआ किसी जीवको देदेवै पास न रक्खे फिर इसी प्रकार जिस दिन कोई बिना मांगे लाकर आगे धरै उसी दिन थोड़ासा खाइ यदि कोई कुछ नलावै तो निपट कीरे व्रत करता रहे तिसका नाम अर्थात् चित्त व्रत कहाताहै और चौथा रूप उपवास कहा सोभी कई प्रकारकी उपवास होतेहैं इन सब चारों के विशेष व्योरे अविर्कीर्ति में देखी ॥ ३१६ ॥

३२६ अधिकोक्तिः—एकभक्तेन•यह मूल श्लोक में देखो तिसको लिये एकभक्त
व्रत का लक्षण यहां देखो (दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यतेनियमेनयत एकभक्तमितिप्रो
क्तरात्रौतत्तकदाचन) अर्थात् दिन का आधा दोपहर बीति जाने पर जो नियम से
थोड़ा भोजन किया जाय वही एक भक्त व्रत कहाता है परन्तु रात्रि में कदापि न
करै न दूसरी बार दिनमें करै परञ्च नियत समयपर थोड़े से खूबे भोजनका निषे
ध भी न करै इसका नियम यही है ॥ (एतच्चकृच्छ्रादीनांनूतस्त्वत्वात् पुरुषार्थ
भोजनपमुदासेन कृच्छ्रांगभूतं भोजनंविधीयते—तथा चापस्तंबः—अहमनक्ताश्चद्विवा
शीततस्वयमसयाचितव्रतः इतिमिताक्षरा=अर्थात्—खूबा भोजन दर्शाने के निमित्त
पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यद्यपि भोजन करना एक बार कहा परन्तु धी
दूध आदि पुष्टादिका भोजन करना यहां नियत है क्योंकि कृच्छ्र आदि व्रतोंकास्वप
एक यह भी पाद कृच्छ्र है तिससे वही भोजन सूचित किया है जिससे शरीर दुर्बल
बना रहै—तैसा आपस्तम्ब के इस वचन से भी तात्पर्य मिलता है कि—तीनदिन अन-
क्ताशी जो रात्रि में न खाय फिर तीन दिन अदिवाशी जो दिनमें नखाय तिसपीछे
तीन दिन अयाचित व्रत करै कि जो कुछ बिना मांगे सन्मुख आजाय तो थोड़ा सा
खाय यदि नहीं आवै तो नहीं) यह वचन आपस्तंब का यहांपर केवल दृष्टान्तके
लिये प्रासंगिक रीति से मिताक्षरा कारने लिखा है यह याव रखना• इसी प्रकार
गौतम का वचन आगे प्रासंगिक दशति है—यथा (गौतमेनापीदमेवस्पष्टीकृतं—इवि
ष्यंप्रातराशी भुक्तातिस्त्रोराशीनांशीयाविति• एवंनक्तभोजनविधावपि=अर्थात्—मि-
ताक्षरा कार कहिते हैं कि गौतमने भी यही खूबा भोजन दर्शाया है यह कहिकर
कि—प्रातराशी जो दिनमें भोजन करनेका व्रत रखता होय सो इविष्य नाम धी दूध
आदि सकही बार देवयोगसे यदि खाइ तिसको खाकर तीन रात्रि तक निषेध कुछ
न खाय यह इसका एक जुदा प्रायश्चित्त समझना• इसी प्रकार रात्रि की भोजन
विधि में भी समझि लेना तिससे सिर्फ खूबे भोजन की आता है चिकनाई आदि
नहीं यह सब (एकभक्तेन) इन्हीं पांच अक्षरोंकी व्यवस्था सिद्धहुई ॥ • ॥ नक्तो-
यह मूलश्लोक में देखो नक्त व्रतका जुदा विधान है सो यहां देखो=यथा= इविष्य
भोजनस्नानं सत्यमाहारलाघवम आग्निकार्यमवःशुद्ध्यां नक्तभोज्यडाचरेव ॥
नक्तन्निशायंजुर्वति गृहस्थोविधिसयुतः यतिप्रविविधवाचैव कुर्यात्तत्सदिवाकरम
सदिवाकरनाम्नाचे दत्तिमेधटिकाहये निशानक्ततुविज्ञेय यामार्द्धप्रथमेसदा—तथा—
दिवसस्याद्यमेभागे सन्दीभूतेदिवाकरे नक्ततच्चविजानीया न्ननक्तन्निशिभोजनम्

नक्षत्रदर्शनाच्चकं गृहस्थपुत्रविधीयते यतोदिनाष्टमेभागे रात्रौतस्यनियेधनात्=अस्थय
माहास्थयकारारायथा=देवैस्तुभुक्तपूर्वाह्णे सध्याह्नेऋषिभिस्तथा पराह्णेपितृभिर्भु
क्तंसंध्यायांगृह्यकादिभिः सर्वेवेलामतिक्रम्य नक्तभुक्तमभोजनम्=अर्थात्-नक्तभोजी
जो केवल रातिमें भोजन का नियम राखें सो इन छः बातों का आचरण करे कि
१ सत्यबोलना २ इविष्य भोजन अर्थात् पश्चिम अन्न का भोजन जैसे जो वान
सरा आदि देवान्न कहातेहैं किन्तु यहांपर इविष्य कहिनेसे धीदूव खीरि पूरी मेव
आदि मत समझि लेना जो हवन में काम आते हैं ३ आहारलाघव थोड़े भोजन का
स्वभाव ४ अरित में भी उसी अन्न की आहुति देना भोजन के समय पर पहिले और
इसी लिये इस भोजन को अलूनारखना चाहिये ५ चरतीपर प्रयत्नकरना ६ गृहस्थी
प्रसूय इन्हीं छः नियमों के साथ नक्त नाम के व्रत की रात्रि में साथ परन्तु यती
संन्यासी और विधवा स्त्रियांभी उसी नक्तव्रतको सिद्धिवांकर लक्षणके साथ साथ यदि
किसीको सिद्धिवाकर नामसे करना होय तो वह दिनके अन्तमें दोपही दिन शेररहे
परकरे और जिन गृहस्थों लोगोंको निशानक्त करना चाहिचुके तिनकी दिनमें नहीं
किन्तु सदाही रात्रि में पहिले पहरके अर्ध भीतर चारघड़ी राति गये तक जानना-
तैसाही दूसरा यह प्रमाण है कि-दिनके आठवें भागमें सूर्य मन्दहोनेपर जो भोजन
कियाजाय उसकी भी नक्तव्रत जानै किन्तु केवल उसीको न जानै जो रातिमें भोजन
करना कहा क्योंकि गृहस्थ धर्मके नक्तव्रत मध्ये तो नखत उरिग आनेपर नक्षत्रोंको
दर्शनकिये पीछे भोजन कहाहै और यतीके नक्तव्रतपर दिनके आठवें भागमें भोजन
करना सिद्ध किया गया क्योंकि यतीको उसके संन्यासधर्म से राति में भोजन का
पूरा पूरा नियेवहैं तिससे वह सिद्धिवाकर नक्तव्रत साथ और यतीके समान विधवाकी
भी समझना किन्तु उसको भी रातिमें भोजनका नियेध है-इस नक्त भोजनका महा-
त्म जिनकारणों से अधिकहै सोभी समझो=दिनमानकी तीनतिहाई संध्याकालकी
छोड़िके समझना-तहाँ पूर्वाह्ण की पहिलीतिहाई में देवता भोजन करते हैं उनके
साथमें न खाना चाहिये दूसरी तिहाई मध्याह्न में ऋषीभोजन करते हैं उनका भी
अद्वार खाना चाहिये तीसरी पराह्णकी तिहाईमें पितर भोजन करते हैं उनकेसाथ न
खाना चौथे निपट संध्याकाल में शुद्धक आदि भोजन करते हैं उनके भी समयपर
व्यतिक्रम न करना चाहिये तिससे सभी वलाओंको उल्लंघिके रातिमें भोजन करना
ठहिराया ॥ ० ॥ अथाचितेन-यह मूलश्लोक में देखी बिना मांगे भोजनसे व्रतकरना
कहा तिसकी व्योरेवार व्यवस्था यहाँ समझो कीट्रि साकाल उसके लिये नहीं

वताया कि अमुक समय भोजन करै तिससे दिनमें या रातिमें जिस किसी बेराबिना मांगा भोजन आपही आजाय तभी केवल एकहीवार थोड़ासा प्राणधारणामात्रभोगै किन्तु बारम्बार नहीं और पेट भरके भी न खाय क्योंकि सभी कृच्छ्रव्रतों में तप करनेकी प्रधानता है तिससे दुबारा या पेटभर खाना सिद्ध नहीं होता—और—यह भी तात्पर्य नहीं है कि गैरही से न मांगै किन्तु अपने भी सेवक भार्या आदिसे मांगनेका नियम है बल्कि इसीलिये अपने संबंधीसे इसकाभेद भी न कहिना चाहिये कि मैंने अयाचित व्रत धारण किया है क्योंकि ऐसा जानिके अपने संबंधी भार्या आदि थो-छतासे अवश्यही लेकर बौड़ेंगे और बहुतसी बिनती भी करें तो कुछ अच्छा नहीं है तिससे उसव्रतका स्वरूप भंगहीजाना सम्भव है और यहभी तात्पर्य नहीं है कि निपट अपनोंका दिया भोजन करनाही नहीं किन्तु यह तात्पर्य है कि दिनको बिताऊ समझि या व्रतका अभिप्राय स्वतः जानिपानेपर भार्या आदि आपही बिनामांगे यदि भोजन पहुंचावै तो फिर थोड़ासा भोगना उचित है परन्तु यदि अपने या बिराने भी नहीं कोईलावै तहों सकृदोदिनका कोराव्रत करने में धैर्यराखें फिर अवश्यही कोई लावेंगा संदेह इसमें नहीं है—बल्कि इसी अभिप्राय से गौतम ने यह कहा है कि (अथापरिग्रहं कंचनया चेत) इसके अनन्तर तीनदिन किसी पर याचना न करै ॥०॥ ये सब तीनप्रकार के भोजन कोई दिनमें कोई रातिमें कोई बिनामांगे चाहें तब आने पर खाने कहे यद्यपि यह कह चुके हैं कि थोड़ा भोजनकरै तथापि थोड़ेका परिमाण कुछ नहीं समझागया तिससे अगिली पराशरकी व्यवस्था देखी—अथाह पराशरः=सायंतुद्वादश्यासाः प्रातःपंचदशस्मृताः चतुर्विंशतिरायाच्याः परनिरशनस्मृतम्=अर्थात्—जिसको संध्यासे रात्रितक भोजन करनापरै सो बारहग्रास भोगै जिसकी एकभक्त नामके व्रतमें प्रातःकाल से लेकर दिनमें किसी बेरा भोजनका नियम होय तिसकी पन्द्रहग्रास भोगने चाहिये जिसकी अयाचित भोजन चाहे किसीबेरा करनाहोय सो चौबीसकोर भोगै तो यह तीनों विधिका भोजन भी परम निराहार व्रत कहाता है=आपस्तंबने=इन्हीं ग्रासोंका परिमाण और तरइसे कहा है • यथा=सायं द्वाविंशतिग्रासाः प्रातः यद्विंशतिस्मृताः चतुर्विंशतिरायाच्याः परनिरशनाच्चयः कुकुटाण्डप्रमाणस्तु यथावा १२ स्थविरोऽस्वस्वम्=अर्थात्—सायंकाल के भोजन वाला द्वात्रिंशग्रास भोगै प्रातःकालिक भोजनवाला छद्बीसकोर भोगै अयाचित भोजनवाला चौबीस कवल भोगै तो ये तीनों व्रत परम निराहार में गिनतो हैं और कवल या ग्रास उसका नाम है कि मुर्गाके छडे बराबर अन्न अथवा जिस किसी के मुहमें जितना अन्न एकबार

अथ प्राजापत्य कृच्छ्रादीनां बहुभेदानां स्वरूपनामलक्षण

भेदविधायकोऽयं परिच्छेदः चतुरशीतितमः (८४)



इसपरिच्छेद में प्राजापत्य कृच्छ्र इस नाम की आदि लेकर अनेक भांतिके कृच्छ्रों का रूप नाम लक्षणा पहिँचानि जाने जायँगे— तिनमें सबसे प्रथम प्राजापत्यही के लक्षणा भेद (उनके बीच में शिशुकृच्छ्र भी) फिर अतिकृच्छ्रके लक्षणा भेद० फिर कृच्छ्रातिकृच्छ्र के लक्षणा भेद० फिर पराक नामकृच्छ्र० फिर सौम्यकृच्छ्र० फिर तुलापुस्त्यनाम कृच्छ्र० सबइसी क्रमसे कहेजायँगे ॥

(प्राजापत्य कृच्छ्रस्य लक्षणां)

यथाकथंचित्त्रिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते ३२० (पूर्वार्धे)

अर्थः—जैसे हो किसी अति प्रयत्नसे तिगुना व्रत यही प्राजापत्य कहाजाता है= अर्थात्—यहीव्रत पादकृच्छ्र वाला जोपहिले कहिचुके (३१६ मूलप्रलोकसे देखी) सो जैसेचाहो तैसे किसी प्रकारके प्रयत्नछपी विधानसे तिगुनाकरी वही प्राजापत्य कहाबै(जैसे चाहो तैसे किसी प्रकारसेकरी० इसकथनका यहतात्पर्य है कि तिगुना कई प्रकारों से होता है उनमें से कोईसा एक प्रकार जिसको तुम अपनी इच्छा से मनोज्ञ जानो उसीके योग्य जतन जैसा होता हो तिसके द्वारा तिगुना करो) सोइस गोल मोलवात का व्योरा बहुत लम्बा है अधिकोक्ति में ॥ ३२० ॥

३२० अधिकोक्तिः= तीनसो उन्नीस ३१६ मूल प्रलोक में जिस रीति से चार दिन का पाद कृच्छ्र व्रत समझाइ चुके उसी की तिगुना करि बारह दिनका पूरा प्राजापत्य कहा तिगुना करने के भी कई ढंग हैं तिनका व्योरा मिताक्षराकार यहाँ समझाते हैं कि (अथमेवपादकृच्छ्रः यथाकथंचित् दण्डकालितवदावृत्त्यात्यस्थानविदृष्ट्यावातनाभ्यानुलोम्येन प्रतिलोम्येनवा तथावस्यसाराजपादियुक्तान्तरहितंवा विरभ्यस्तः प्राजापत्यविधीयते) अर्थात् यही पूर्वोक्त पादकृच्छ्र दण्ड कालित न्याय की तरह आवृत्तियां वढाकर अथवा अपने अपने स्थान ही की वृद्धि से तिनमेंभी अनुलोम नूये क्रम से या प्रतिलोम उलटे क्रम से वृद्धिकरै ये दो भेद औरहैं तयैव जी आगे कहा चाहते हैं सो जपादिक भी साथहों या उनके बिनाभी तीनवार अभ्यास

कियाहु आ पूरा प्राजापत्य कहाता है) इतने भेदोंमें कोईसा एक भेद करनेवाले के विचार वाली इच्छा पर आच्छेद है सो इन भेदों के ठीकठीक लक्षणा भी यथा क्रम से आगे जुदे जुदे ग्रन्थों के प्रमाण से दशति हैं—तितनमें एक रंड कालित की तरह वाले पक्ष को वशिष्ठ ने प्रकाश किया है—यथा=अहंप्रातरहर्नक्त सहरेकमयाचित म अहःपराकृत्यैकमेवंचतुरहोपरौ अनुग्रहार्थविप्राणामनुधर्मभूतांवरः बालवृद्धातुरे प्लेवशिशुकृच्छ्रमुवाचह=अर्थात्—एक रोज दिन के भोजन वाला व्रत एक रोज राति में भोजन वाला एक रोज बिना मांघे भोजन का चौथे रोज विषद निराहार व्रत करिके फिर इसीप्रकार चार चार दिनों के दो फेर पिछले जानौ अर्थात् पौ-चर्वे दिन से वही एक एक रोज वाला क्रम साथै फिर नवमे रोज से उसी प्रकार साथै तौ यह बारह दिन में शिशुकृच्छ्र नाम का प्राजापत्य पूरा होता है जो धर्मज्ञ मनुने ब्राह्मणों पर अनुग्रह के लिये और बालक बूढ़े आतुरों के निमित्त पर कहा था (यहां इतना भेद जुदा समुक्ते रहिना कि बालक बूढ़े रोगियों के लिये शिशुकृच्छ्र कहा सो केवल चार दिन में होगा उसी की तिथना करने से प्राजापत्य नाम सुवेकस से स्वस्थान की लुटिवाला पक्ष भी मनुने आपही प्रकाश किया है—यथा=अहंप्रातस्त्र्यहंसायं ज्यहमद्यादयाचितस परंयहंचनाश्रीयात्प्राजापत्यंचरेत् द्विजः=अर्थात्—निरन्तर तीन रोज तक दिन में भोजन फिर तीन दिन राति में भोजन वाला नक्त व्रत करिके तीन दिन अयाचित बिना मांघे भोजन का व्रत करे फिर सब से पीछे तीन दिन कीरा निराहार करे तौ भी यह बारह दिन का प्राजापत्य होगा ॥ इसीको उलटे क्रमसे प्रातिलोस्यावृत्तिके नामसे वशिष्ठने प्रकाशकिया है—यथा=प्रातिलीन्यंचरेद्विप्रःकृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरस=अर्थात्—ब्राह्मण इसीप्राजापत्यकृच्छ्रको उलटे क्रमसे आचरे चान्द्रायण करनेकेवाद अर्थात् पहिले चांद्रायण करे फिर इस प्राजापत्य को उलटे मार्गसे साथै किन्तु पिछले कीरे निराहार वाले तीनि व्रतोंको सबसे पहिले फिर अयाचित व्रतोंको फिर नक्तव्रतोंको फिर दिन के भोजनवालोंको यही उलटा क्रमठहिरा ॥ जपादिकोंकोबिना केवल कृच्छ्रही करना जो ऊपर चर्चा करचुकेहैं तिसका पक्ष अगिराने स्त्री और शूद्र आदि के निमित्त में प्रकाशकिया है—यथा=तस्माच्छूद्रंसमासाद्यसदावर्त्मपथेस्थितस प्रायश्चित्तंप्रदातन्यं जपहोमादिवर्जितस=अर्थात्—पूर्वोक्त कारणासेसदा निर्व्विकल्प यहीनियम है कि प्रायश्चित्त करनेकी इच्छासे धनके पन्थ पर आच्छेद हुये शूद्रको पाइकर जप होन आदिमन्त्रवालेविधानोंकोछोडिकेप्रायश्चित्तवतानाचाहिये—॥अन्नजपादिनियमाः—

मुखपूर्वकजासके (इनदोनो आपस्तंब तथा पराशरके कहे कल्पों में जो कुछ छोड़े बहुतका अन्तर है तिसकी मनुष्य की देहशक्ति या पेटकी बड़ाई छोटाईपर भेद करिके जोड़िलेना तिससे विरोध बाकी न रहेगा ॥०॥ प्राजापत्य नामका व्रत भी छच्छू कहाताहै तिससे यहाँछच्छूपादके प्रसंगमें उसकाभी चर्चाकरना आवश्यक ठहिरा किन्तु आपस्तंबहीने प्राजापत्य प्रायश्चित्तकी चारतरहविभागकरिकेउन्हींकीचारि ४पाद छच्छू कहिकर चारोवर्गोंके अनुरूपव्यवस्था करी है=तथाच आपस्तंबः=अथं निरशनपादः पादश्चायाचितस्त्रयहम सायंयह तथापादः पादः प्रातस्तथात्रयहम ॥ प्रातः पादंचरेच्छुः सायंवेश्यस्य पादयेत् अयाचितंतुराजन्ने विराजन्नाह्नयोः स्मृतम्=अर्थात् प्राजापत्यछच्छूका एकपाद वह समझना जो सिर्फ तीनदिन निराहार व्रत किया जाय फिर एकपाद वह समझना जोतीनदिन अयाचित भोजनसे व्रत किया जाय फिर एकपाद वह समझना जो सायंकाल आदि नक्तभोजनतीनदिन किया जाय फिर एकपाद वह समझना जो तीनदिन प्रातर्भोजन अर्थात् जिसको एक भक्त के नामसे कहिचुके तैसा व्रत तीनदिन किया जाय • ये सभी बारह दिनके व्रत निरन्तर एकसाथ किये जायें तहाँ पूरा प्राजापत्य या पूराछच्छू कहाताहै ॥ इन चारों जुड़े पादोंको बंधों पर इस तरह बाँटि दियाहै कि शुद्ध प्रातःपाद व्रतकी करें और सायंपाद व्रतकी करें और अयाचित पाद छच्छू की सत्री करें और कोरे निराहार वाले तीन व्रतका छच्छूपाद ब्राह्मणा की करना चाहिये ॥ जब इनमेंसे कोरे निराहार और अयाचित वाले दोनों पाद मिताकर छे दिनका व्रत एक साथ कि याजाय तब आधाछच्छू होताहै जब संध्याके भोजन वाला पाद छोड़ि शेष तीनों पाद एकसाथ नौ दिनमें साधन किये जायें तहाँ पौन छच्छू कहाता है क्योंकि (सायंप्रातर्विनाशस्यात्पादो न तत्त्वर्जितमिति तेनैवोक्त) उन्हीं आपस्तंबने पीछे से कहिदिया है कि सांभ और सकारे वाले भोजनके दोपादोंको छोड़िके शेष दो पादों का अनुष्ठान किया जाय तिस की आवा छच्छू जानना • जहाँ नक्त भोजनवाले पादके बिना तीनों कियेजायें तहाँ पौन प्राजापत्य जानना=उन्हीं आपस्तम्बने=आधे छच्छूका दूसराभी प्रकार दर्शायाहै=यथा=सायंप्रातस्तथैकेक दिनद्वयमयाचितम् दिनद्वयं न चास्तीयात् छच्छुर्वाः सोऽभिवायते=अर्थात्=एक दिन रात्रि भोजनका व्रत करें दूसरे रोज दिन के भोजन वाला व्रत करें तीसरे और चौथे रोज अयाचित व्रत करें फिर पांचवें छडे दो दिन कोरा व्रतकरें तो इसप्रकारसेभी आधा छच्छू होउाहै ॥ • यह शंका खड़ी होती है कि आपस्तम्ब के वचन में तीन तीन दिनों का एक एक पाद कहा सो ती दीक

प्रतीत होता है क्योंकि उसी हिसाबसे छे दिनका अर्द्ध कृच्छ्र कहा उसी लेखसे नौ दिनका पौन कृच्छ्र कहा उसी लेखसे बारह दिनका पूराभी होता है परन्तु योगी-
चरते तीनसौ उन्नीस ३१६ के श्लोक मूलमें चार दिनका पादकृच्छ्र बताया उसकी
बिधि क्योंकर मिलाईजाय क्योंकि उसलेखमें सोरह दिनका पूराकृच्छ्र होना चाहिये
अथवा उन्हीं चार दिनोंको पादकृच्छ्र नाम छोड़ि व्यंशकृच्छ्र कहना चाहिये था—
इसका—यही समाधान है कि उसमें लेखाजोखा लगानेकी अपेक्षा कुछनहीं है क्योंकि
उन चार दिवसोंका नामही पादकृच्छ्रत्रय जुही, विधेयतासे रक्खा गया है इसीलिये
उसे तिथिना करिके बारह दिनका प्राजापत्य नामसे पूरा कृच्छ्रवतावेये (तीनसौबीस
का मूल श्लोक देखो) इसके सिवाय कृच्छ्रों के अनेक रूप होते हैं सबही में बारह
दिनका नियमनहीं है सो सबआगे तीनसौबीसकी अभिकोक्तिमें विस्तारसे आवेंगे तब
समुझिलेना ॥ ० ॥ उपवास भी चौथे व्रतका स्वस्व मूलश्लोकमें कहागया तिसके
लक्षण भी अनेकहैं सो यहां देखो (उपावृत्तस्य पापेभ्यो यत्तु वासो गुराः सह उपवासः
सर्वज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः) अर्थात् उप-वास ये दो शब्द मिलाके नाम धरा है इस
हेतुसे कि पाप कर्मोंसे मनको उपावृत्त करना इटाइ लेना उप शब्दसे दर्शाया फिर
उस पुरुषका ठहरना वास कहाता है परन्तु गुराँके साथ वास होय तो उपवास ठीक
समुझाजाय यहां गुराभी वही समझने जो उदयसीके परिच्छेदमें (३१३-३१४)
इन्हीं श्लोकोंसे ब्रह्मचर्य आदि लिखि चुके हैं उन्हीं सब गुराँका सेवन और सब तरह
के भोग छपी आरामकी छोड़िके एक ठिकाने पर बैठने का उपवास नाम जानौ—सर्व
भोगोंका छोड़ना यहां तक अभिप्रेत है कि निषिद्ध कुछअन्नभी न खाना पीना चाहिये
(तपनोदयसारम्य यासाष्टकमभोजनस्य उपवासः सर्वज्ञेयः प्रायश्चित्ते विधीयते)
अर्थात् सूर्यनारायण के उदयसे लेकर पूरे आठ प्रहरोंभर न खाना सो उपवास जा-
नना जो प्रायश्चित्तों में कियाजाता है परंच ऊर्ध्वोक्तगुरा भी सबहोने चाहिये तथा
अप्रोक्त कान करनेका त्याग राखे (उपवासफलं नश्येद्विवास्तृप्ताचमैथुनाद् स्त्रीणां
संप्रेक्षणादस्पर्शात्ताभिसक्तयनादपि) क्योंकि उपवास किये हुयेका भी फल नाश
होजाता है दिनमें सोइ रहने से या सैथुन करनेसे तथा स्त्रियोंको पूरी निगाह भर
देखनेसे या उनकी छुइलेनेसे या बिना छुये ॥ उनके निकट बैठ परस्पर बात चीत
बहुत करनेसे भी उपवासोंका फल नष्ट होजाता है ॥ ३१६ ॥

प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंके अनेक भेद अगिले परिच्छेद में देखना ॥

रहै तथा रातिमें भी जो शीघ्र अपने पाप मोचनकी कामना रखताहो तो ये नियम साधै मृत्युबोलीं दुर्जनो से बातचीत न करै और सामवेदोक्त रौरवयोध नामका साम जप होताहै तिसको नित्य दिनमें उचित समय पर वैदिके जपै और सर्वदा नित्यही विक्तालस्नानकरै और आपोहिष्टा इत्यादि पवित्रवती तीन ऋचाओंसे मार्जन करै फिर इसके अनन्तर (हिरण्यवर्णा शुचयःपात्रकाः) इत्यादि आठ ऋचाओंसे जलका तर्पणा करै इसके अनन्तर ऐसे चिह्न से आगे नमोहमाय आदि लेकर कृत्तिवास से नमः पर्यन्त जितने संव ऊपर लिखे मौजूद हैं उन सबको पढ़िकर आदित्यका उपस्थान करै अर्थात् सूर्यके सन्मुख खड़े होकर दृष्टिमिलाकर इतने मंत्रोंसे स्तुति करै और जलमें तर्पणा इन मंत्रोंसे भी करै अर्थात् जैसा हिरण्यवर्णा आदि आठऋचाओं से करना कहि चुके तैसा उपस्थानके मंत्रोंसे जुदा तर्पणाभी करना चाहिये और इन्हीं उपस्थानवाले जुदे जुदे मंत्रोंसे घृतकी आहुति भी एकसक देनी चाहिये यह रोजरोज की साधना विधिकहीगई ऐसे बारहदिन किये पीछे होमकेलिये चरु पकाइके इतने देवताओं के अर्थहोम करै किन्तु जो (अग्नयेस्वाहा आदि मंत्रों तिनसे आहुतेंदेकर पूर्वोक्त उपस्थान और तर्पणाके मंत्रोंसेभी होमकरना फिर पीछेसे ब्रह्मभोजकराना ॥०॥ यद्यपि यथाक्रमसे समस्तविधानके अर्थलिखेगये परन्तु बीचमें (तिष्ठेदहनिराश्रवासी तस्मिप्रकाशः) ये चौदह अक्षर जो प्रारंभके समीपही आचुकेहैं तिनका विशेष व्यौरे वारअर्थ सबसे नीचे आकर सिताक्षराकार जुदाभी दर्शातेहैं कि-स्मिप्रकाश उसपुरुष का नामहै जो मनसे अपने हृदयसे कामना रखताहो कि मैं शीघ्र अपने पापसे छूटों अर्थात् एकही कृच्छ्र करिके शुद्ध होसकौं इसको चाहिये कि दिनमें पूजा कर्म के अवरोधी उचित कालोंमें वैदे वा उपस्थान आदि सभ्ये सूर्यके मध्य समयपर खड़ा होय एवं रात्रिमें जहां जैसा उचित हो उसीपर स्थितहोय (तिससे यह सिद्धांत ठहिरा कि रौरवयोध नामका जप और नमोहाय आदि मंत्रोंसे तर्पणा तथा इन्हींसेसूर्यका उपस्थान आदि जो कुछ लिखि चुके था स्वीर पकानाआदि और जो कुछ कहागया कि जिनबातोंको योगीश्वर आदिने प्राजापत्यके साथमें नहीं दर्शाया सो सब उसको करना चाहिये जो शीघ्र अपने काम की सिद्धि चाहै-इसी से यहभी तात्पर्य ठहिरा कि योगीश्वर आदिकेवताये दोप्राजापत्योंके स्थानपर इसगीतमकीकर्त्तव्यता सहित विचारकरै क्योंकि गौतम औरभी अनेकोने ऐसाही कहाहै ॥ ३२०॥ यह तीनसौबीस के पूर्वार्द्ध श्लोकवाली अधिकांश पुरी हुई इसमें केवल प्राजापत्यही के लक्षणा भेद कहेगए ये सबकच्छूही कहातेहैं इससे आगे अंतिकच्छू के लक्षणा कहेजायेंगे ॥

(अतिकृच्छ्रस्वरूपं)

अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ३२०

अर्थः—यही अति कृच्छ्र होय यदि पाणिपूर अन्न भोजन होय=अर्थात्—यही प्राजापत्य जो ऊपर कहि चुके सो अतिकृच्छ्र नाम कहाने लगे जो एक मुट्ठी भर अन्न खाकर किया जाय—इसका भी यह तात्पर्य है कि प्राजापत्य सर्वथा उसी रीति से किया जाय जैसा लसरा उसका कहि चुके हैं परन्तु इतनी विधेयता होनी चाहिये कि उसमें जहां जहां दिन के या रात के भोजनों में बारिस या चौबीस या छब्बीस को भोजन करना लिखा हो तिसको छोड़ केवल एक मुट्ठी भर अन्न भोजन किया जाय इतनी विधि बदलने से अतिकृच्छ्र कहाता है और अन्त के दिवसों में जहां कोरा उपवास कहि चुके सो यहां भी उसी तरह किया जायगा उसमें मुट्ठी भर अन्न की अपेक्षा नहीं है और वहां पर प्राजापत्य के चारजु देपाद या तीन ही पाद जैसे कहि चुके तिनकी उलटा पलटी अर्थात् अनुलोम या प्रतिलोम क्रम जैसा कुछ कहा गया था सो सब यहां भी उसी प्रकार समझे रहिना ॥ ३२० ॥

३२० अधिकोक्तिः=यत्सन्नुनोक्तं=सकैकं प्रास सभोयात्तत्र्यहाराविशिष्टापूर्ववत् इयं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्दिजः=अर्थात्—सन्नुने यह कहा है कि तीन दिनो के तीन फेर कुल नौ दिन तक सकही एक प्रास भोजन करे सो उसी पहिली रीति से (कि जैसा कृच्छ्रव्रत में तीन दिन सबेरे तीन दिन सांभको तीन दिन बिना मांगे जब कोई ले आवे तभी खाय यही प्राजापत्य में कहि चुके हैं उसीको अनुसार यहां नौ दिन भर एक एक प्रास रोज खाकर) पीछे से तीन दिन कोरे उपवास करे तो यह द्विजातीका अतिकृच्छ्रव्रत कहावे—अर्थात्—पहिला प्राजापत्य जो कहि चुके सो कृच्छ्रही कहा जाता यह अतिकृच्छ्र कहावे और कृच्छ्र अतिकृच्छ्र इससे आगे कहा जायगा वह ३२१ तीन सौ इक्कीस मूलप्रलोक में देखना इन तीनों में यह भेद है कि पहिला छोटा दूसरा उससे बड़ा और तीसरा इन दोनों से बड़ा होगा (मितासराकार कहिते हैं कि अति कृच्छ्र में योगी करने मुट्ठी भर अन्न खाना कहा और सन्नुने एक प्रास भर अन्न खाना कहा तिससे यह कठिन प्रतीत होता समर्थ पुस्तक को बताना चाहिये) यथार्थ में ये दोनों बात बराबर हैं कुछ भेद नहीं क्योंकि एक प्रास भी मोर के अड़े बराबर कहि चुके हैं वह अण्डा एक मुट्ठी भर होता है तिससे यह भी न कहिना चाहिये कि यह समर्थ को बताना वह असमर्थ को ॥ ३२० ॥

(कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्यपराकस्यचरूप)

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसादिवसानेकविंशतिम् + द्वादशाहोपवासेनपराक परिकीर्तित ३२१

अर्थ—एकविंश २१ दिनपर्यन्त दूधपीकर व्रतकियाजाय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्रनाम कहाताहै—कितना दूधपीकर इसअपेक्षासे ३१८ तीनसौ अठारहको अविकीर्तितपराशरका वचन देखो—तौतम ने केवल जल पीकर बारह दिनका कृच्छ्राति कृच्छ्र व्रत बताया है (अद्वैतसंस्कृतसूक्तकृच्छ्रः) अर्थात् पहिले दो भोजन के रूप कहिकर पीछेसे कहाहै कि तीसरा वह जो सिर्फ जलखाके होय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र नाम जानो ॥ + ॥ बारहदिनकोरा उपवास करनेसे पराक व्रत कहाता है ॥ ३२१ ॥

(सौम्यकृच्छ्रस्यरूप)

पिण्याचामतक्रां वसुसप्तूना प्रतिवासरम् + एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्र तौम्योऽयमुच्यते ३२२

अर्थ—पिरायाक० आचाम० तक्र० अबु० सक्तू० इनका प्रतिवासर सक सकसावन करिके पीछेसे सक दिन कोरा उपवास भी करें—अर्थात्—प्रथम दिन तिलोका पीना खली • दूसरे दिन आचाम अर्थात् भात का साढ़ • तीसरे दिन मट्ठा • चौथे दिन जल • पांचवे दिन सत्तुआ धानके बने अथवा जौ के बने छठे दिन कोरा उपवास करिके छे दिनका यह सौम्यकृच्छ्रव्रत कहाताहै (कितनी कितनी ये चीजें खाय इस अपेक्षामें यह समझिलेना कि जितना थोड़ा खानेसे प्राणोंकी रक्षा बनी रहेगी उतना खाय बहुत नहीं ॥ ३२२ ॥

३२२अधिकोक्तिः—जावालमुनिने चारिही दिनका सौम्यकृच्छ्रकहाहै—यथा= पिरायाकसक्तवस्तक्रचतुर्थेहन्यभोजनसवासोवैदक्षिणादद्यात्सौम्योऽयंकृच्छ्रउच्यते= अर्थात्—एक दिन पीना • दूसरे सत्तु • तीसरे मट्ठा • चौथे दिन कोरा उपवास और एक वस्त्रकी दक्षिणादान करें तो यह सौम्यकृच्छ्र कहाजाताहै ॥ ३२२ ॥

(तुलापुरुषकृच्छ्रस्यरूप)

एपात्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्ययथाक्रमम् । तुलापुरुषइत्येपज्ञेय षष्ठदशाहिक ३२३

अर्थ—इन पाचोंका तीन रात्रि सक सकका अभ्यास यथा क्रम करने से यह षष्ठद्वह दिनका तुला पुरुषनाम कृच्छ्र व्रत कहाताहै—अर्थात्—यथा क्रमसे यह कि उन्हीं पूर्वोक्त तिलखली आदि पांचोंमें पहिलेतीनदिन फिर दूसरी

को तीन दिन फिर तीसरोको तीन दिन फिर चौथीको तीन दिन फिर पाँचवींको तीन दिन खाकर पन्द्रह दिन परे करै (इसमें पन्द्रह दिनका नियम कहि देनेसे छठे दिन कोरे व्रतकी समाप्ती ठहरी ॥ ३२३ ॥

३२३ अधिकोक्तिः—यसने इक्कीस दिनका तुला पुरुष बताया है—यथा=आचा समयपिपायाकंतकंचोदकसक्तुकाव व्यहंयहं प्रयुं जानोवायुभक्षस्तु व्यहंयहं एकविंशतिरावस्तुतुलापुरुषवच्यते (इतिहारीतोक्तेऽतिर्कृतव्यताग्रन्यगौरवभयान्नलिख्यते इति मिताक्षरा=अर्थात्—साहू•पीना•मठा•जल•सक्तु• इनको तीन तीन दिन खाता हुआ बाबि पन्द्रह दिनके छे दिन वायु भक्षोद्दोष अर्थात् कोराव्रतकरै तो यह इक्कीस रात्रिका तुला पुरुषव्रत कहावे (मिताक्षराकार कहतेहैं कि हारीत के वनास ग्रन्थ में यह बात बहुत बड़ी कर्त्तव्यतासे वर्त्तमान है हम ग्रन्थ ब्रह्मजानेके भयसे उसे नहीं लिखतेहैं ॥ ३२३ ॥ अब आगे परिच्छेदमें चान्द्रायणव्रतोंके भेद और उनके साथ भी थोड़ासा कर्त्तव्यों का बरान किया जायगा ॥ ३२३ ॥

अथचान्द्रायण सोमायन मासिकव्रतभेदानां नामलक्षण

विधिप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पञ्चाशीतितमः (८५)

इस परिच्छेदमें चान्द्रायण मासिक व्रतके अनेक लक्षणा भेद उनकी विधि और नामों सहित प्रकाश किये जायेंगे तिनमें प्रथम• यवसंध्यचान्द्रायण• पिपीलिकासंध्यचान्द्रायण फिर सबका विधान फिर साधारणचान्द्रायण• यतिचान्द्रायण• शिशुचान्द्रायण• ऋषिचान्द्रायण• सोमायन के विधान• ये सब इसी क्रमसे लिखे जायेंगे ॥

(चान्द्रायण व्रत रूपः)

तिपिष्टुक्षयचरेत्पिण्डान्शुकोऽस्थिण्डसाम्भितान् । एकैकं द्वाप्तयेत्कृष्णेपिंडं चान्द्रायणं चरन् ३२४

अर्थः—चान्द्रायणको करतेहुये शुक्लपाखमें शिखीमोरके आड़े समान पिण्डों का तितिकी छिदसे बढ़ते हुये चरै भक्षणा करै फिर कृष्णपाख में एक एक पिण्ड घटाताजाय=अर्थात्—शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे प्रारम्भकरै उस दिन छिपीहुई चन्द्रमा की एकही कलाहोतीहै तिसमें एक गोला दालि चावल आदि अन्नका मोरके छंद

बराबर बनाके खाय फिर द्वितीयाको दो पिण्ड तृतीया को तीन इसी रीतिसे पूर्णा-
मासीको पन्द्रह पिण्ड खाइके अंधेरी प्रतिपदा को १४ चौदह पिण्ड खाय दौज
को १३ तेरह पिण्ड तीजको १२ बारह पिण्ड इसीप्रकार कृष्णाचतुर्दशीको एकही
ग्रास खाकर अमावास्यामें निपट कोई कला चन्द्रमाके नहीं रहती है उसदिन कोरा
उपवास करें तो यह चान्द्रायण व्रत कहाता है ॥ ३२४ ॥

३२४ अधिकोक्तिः=वशिष्टः=एकैकं वर्धयेत्पिण्डशुक्ले कृष्णो च ह्रासयेत् इन्दुक्षयेन ।
भुंजीतस्य चान्द्रायणो विधिः=अर्थात्-वशिष्टने साफ यही कहा है कि शुक्लपाख में
एक एक पिण्ड रोज बढ़ावें और कृष्णपाखमें एक एक रोज घटावें परन्तु इन्दुक्षय
नाम जो अमावास्या है तिसके रोज कुछ भी न खाय यह चान्द्रायणको विधि जानौं
(चन्द्रमाके अयनका बढ़ना घटना जैसा होता है तैसाही आचरण इस व्रतके कर्म
का होता है तिससे चान्द्रायण इसका नाम ठहरा) जैसा यह कहा गया तिसका
विशेषनाम यवमध्य चान्द्रायण भी कहाता है क्योंकि जौ के दोनों छोर नोकें और
बीचमें मोटापन होता है उसीप्रकार इस चान्द्रायणमें दोनों छोर एकही एक पिण्ड खाने
से नोकें पतरी और बीचमें पूर्णमासीके ठिकाने पन्द्रह पिण्डोंकी बहुत मुड़ाई फिर
दोनों तरफ जौ के समान ढाल होता है-इतियवमध्यचान्द्रायण ॥ अथ पिपीलिका-
कामध्यचान्द्रायणविधिः=अर्थात्-यही चान्द्रायण जहां कृष्णपक्षकी प्रतिपदा से
होकर एक एक पिण्ड खाकर किया जाय जिसमें लौटकर पूर्णमासीका कोरा व्रत
करना हो जो कृष्ण प्रतिपदासे एक दिन पहिले आती है तो फिर इसका विशेषनाम
भी पिपीलिका मध्य कहा जाय कि जैसे चींटा चींटी बीचमें खाली और दोनों छोर
मोगरीसे मोटे हुआ करते हैं तैसाही डील इस चान्द्रायणका होजाता है (प्रकार इस
का यही है कि अंधियारी परिवार में एक एक ग्रास बढ़ाते अमावसको पन्द्रह
ग्रास खाकर उजियारी परिवार को चौदह फिर इसीतरह एक एक घटाते चौदस
में एकही खाकर पूर्णमासी निपट एक भी नहीं तिससे चींटोके आकार बीचमें
खाली ठहरा क्योंकि पूर्णमासी नहीनाके बीच में होती है) तथापि आचार्यों ने
इसप्रकारका स्वीकार नहीं किया क्योंकि अमावास्यामें निपट चित्सुख होनेसे को-
रा व्रत करना सिद्ध हो चुका है तिसमें पन्द्रह ग्रास खानेका व्योत आकर परता है यह
विरोध अच्छानहीं-तिससे-इसी पिपीलिका मध्य चान्द्रायणका दूसरा व्योत क-
रनापरा मो दर्शाते हैं कि पूर्वाक्त यवमध्य चान्द्रायण के दसमें केवल इतना भेद क-
रना चाहिये कि अंधियारी परिवारसे प्रारम्भ करें परन्तु प्रथम दिन चौदह ग्रास भोगें

जो उसी पूर्वोक्त सार्वांशे खोरहवें दिवस खातेपरये फिर दूसरेदिन द्वितीया को तेरह तृतीयाको बारह उमीप्रकार घटाते जाकर चौदसको एकही ग्रास खाकर अमावस में कोरा व्रतकरै फिर दूसरेदिन उजियारी परिव्राको एक दीयजको दो तीजको तीन ग्रास इसी प्रकार बढ़ाते जाकर पूर्णमासी को पन्द्रहग्रास खाकर उतीदिन व्रत को समाप्तकरै तो यह ठीक ठीक पिपीलिकासध्य कहाजायगा कि बीचों बीच अमावस में कोराव्रत किया गया और ग्रास भी दोनों ओर एक एक दो दो आदि बढ़ते जाकर दोनों ओर मोटे होगये—और इसी व्योतका प्रमाण आगे वशिष्ठके वचनोंसे मिलता है—यथाहर्षशिष्यः=सासत्यकृत्पापसाधौ ग्रासानद्याचतुर्दश ग्रासापचयभोजीसत्पक्ष श्रेयंसमापयेत् तथैवशुक्लपक्षादौगासंभुजोतचापरस ग्रासोपचयभोजीसत्पक्षश्रेयंस सापयेत्=अर्थात्—वशिष्ठजीने खुलासा कहिविया है कि महीना के अंधरे पाख की आदि में परिव्रा के रोज घौरह ग्रास भोगै फिर दूसरे दिन से एक एक घटाकर भोगते हुये पाख पूराकरै (इस व्योतमें अमावस कोरी रहिजातीहै) तैसेही उजाते पाख की आदि में परिव्रा के रोज एक और ग्रास भोगै फिर दूसरे दिनसे एक एक रोज बढ़ाकर भोगतेहुये बाकी पक्षको पूराकरै यहां पूर्णमासी में पूरे पन्द्रहकोर होजायेंगे यह ठीक पिपीलिका मध्य चांद्रायणाका स्वल्पहै जिसकी अमावस में नहीं खाना परा ॥ ० ॥ यह शंका खड़ी रहिगईहै कि जब किसी पाखमें कोई तिथिघटिजाय या बढिजाय तब इनग्रहोंकी नोजाव कैसे दीक आवेगी• तिसके लिये इन्हीं वशिष्ठ के वचनोंपर ध्यान करना चाहिये कि अंधरे उजरे दोनों पाखवाले जुदे जुदे प्रलोकों में (पक्षश्रेयंसमापयेत्) यही एकपाद आरोपित किया इसका यही तात्पर्य है कि पाखमें जितने दिन बाकी हों उनमें चाहें कोई तिथि घटी या बढीहो तो भी पक्ष का बाकी भाग समाप्त करै अर्थात् अमावस और पूर्णमासी ये दोनों पक्ष की सीमारूपी हई होतीहैं इन्हीं हईों तक ग्रासोंका घटाना या बढ़ाना समाप्त करदेना चाहिये किन्तु एकपाखवाले कबलोंका हिसाब दूसरे पाखतकन जाने देवै इसका इसीमें समाप्तकरै—इस व्याख्यासे भी यह ध्वन्यर्थ निकसा कि तिथिके बढिजानेसे कबल भी बढ़ाये जाय घटिजानेसे कोर भी घटाये जाय—इसका दृष्टान्त जैसे उजाते पाखवाली तीजको तीनग्रास खाने होतेहैं यदि उसी तृतीयाको वृद्धिहोकर दोतीजें होजायें तहां दोनों तीजोंको तीन तीन ग्रास खानेचाहिये• इसप्रकार जहां पंचमी को हानिहोय तहां उसके नामके पांचकोर न खाने होंगे अर्थात् चौथिमें चारग्रास खाकर दूसरे रोज यही आपरने में छेग्रास होंगे इन्हीं दोनों दृष्टान्तसे सर्वथ समझि

हेना—क्योंकि (तिथिवृत्त्यापिंडान्चरेत्) यह ३२४ मूलश्लोक में पहिला पादहे
योगीश्वर का तिसरे भी यही नियम सिद्ध होता है कि तिथियोंके आधीन पिंड हो-
ते हैं ॥ ० ॥ उपयोगिविधान—चांद्रायणाका उपयोगी विधान भी गौतमने पिपी-
लिका मध्यकी प्रधानता से कहिकर यवमध्यपर भी अतिदेश उसका किया है
बल्कि वही विधान सबतरह के चांद्रायणोंपर समझना=तदाहगौतमः=अथातप्रचां
द्रायणांतस्योक्तोविधिः कृच्छ्रवपनव्रतंचरेत् प्रवोभूतांपौराणामसोपवसेद् आप्यायस्व
संतप्यांसिनवोचव इति चेताभिस्तर्पणा माज्यहोमौहवियश्चातुमंत्राणोपस्थानंचन्द्र-
मसः॥ यदेवादेचहेडनमिति चतसृभि राश्यंजुहूयात् देवकृतस्येति चतिसमिन्निः (उंभः उं
भुवः उंस्त्रः उंमहः उंजनः उंतपः उंसत्यंशः योऊर्कइद्-उंजः तेजःपुरुषःप्रसंशिवः)
इत्येतैर्ग्रासानुमन्त्रां—प्रतिमन्त्रंमनसानमःत्वाह इति वा सर्वानेतैरेव ग्रासान्भंजीत॥ तद्-
ग्रासप्रमाणमा२२स्याविकारेण चरु भैक्ष्य सक्तु कण्ठं यावत् शान्तं पयो दधि घृतमूत्र
फलोदकानि हवींश्च उत्तरोत्तरं प्रशस्तानि ॥ पौराणस्यापंचदशग्रासान्भुक्त्वा एके
कापचयेनापरपक्षसञ्जीयात्—अमावास्यायामुपोष्यै कैकोपचयेन० पूर्वपक्षावपरीत
मेकेयामेव चांद्रायणोमासः इति=अथचमितासरा—अथग्रासप्रमाणं चास्याविकारेण
ति यदुक्तं बालाभिप्रायं शिख्यंडपरिमितपंचग्रासभोजनाशक्तेः—क्षीरादिद्वहवियं
शिख्यंडपरिमितत्वंतु परांपुटकादिना सम्पादनीयं—तथाकृच्छ्रां डाद्रिमलकादीनि तु ग्रा-
सपरिमाणानि स्मृत्यंतरोक्ता निश्चितविययाणि शिख्यंडपरिमाणा लघुत्वात्तेयां-
यत्पुनरुक्तं प्रवोभूतांपौराणामसोपवसेदित्यत्र चतुर्दश्यामुपवासमभिधाय पौराणस्यापंच-
दशग्रासान्भुक्त्वादिना द्वाविंशदहरात्मकत्वं चांद्रायणास्योक्तं तत्पश्चांतरं प्रदर्शना
र्थनसार्वत्रिकं योगीश्वर वचनानुरोधेन त्रिंशदहरात्मकस्य दर्शितत्वात् यद्येतत्सार्वत्रिकं
स्यात् तदानेन तदर्थे ग्रासं वत्सरे चांद्रायणानुष्ठानानुपपत्तिः स्यात् चन्द्रगत्यनुवर्तनानुप-
पत्तिश्च=अर्थात्—गौतमका कथन है कि अब यहां से चान्द्रायणा कहिना है तिसके
विधानका यह अनुक्रम है कि एक चांद्रायणा क्या बल्कि सभी कृच्छ्रमास में पहिले
हुंन कराइ के व्रतका आरम्भ करै तहां आरम्भसे एकदिन पहिले (वपनव्रतंचरेत्)
वपनके निमित्त व्रतआचरे अर्थात् जहां पौराणामासीसे चान्द्रायणा आरम्भकरना स्वीकार
हो तहां दूसरेदिन सबेरे पौराणामासी आल वाली देखि पहिले दिन मुगडनकराइकोउसी
दिन मुंडनके निमित्त कोरा उपवासकरै (इसीप्रकार अन्यकृच्छ्रोंमें समझिलेना) पुरा-
णामासीसे रोजका यह कृत्यकार्य है कि (आप्यायस्व सन्ते पर्याप्ति चवोचव) इत्यादि
चिह्नवाली इतनी ऋचाओंसे तर्पणा और धीका होम और जिस किसी अन्नके ग्रास

विशेष वचन घंटाघोष है और प्रायश्चित्त का स्थलभी एक प्रकारका तीर्थ गिना जाता क्योंकि तीर्थके लक्षण शास्त्रोक्त भी अनेक हैं तिससे प्रायश्चित्तके निर्मित होने चतुर्दशी में भी वचनका कुछ दोष नहीं है यह समझिलेना ॥ ३२४ ॥

अगले मूलश्लोक से दूसरी भांति के चांद्रायणा कहे जायेंगे ॥

(साधारणचांद्रायणा)

यथाकथंचित्पिंडानांचस्वार्जितान्छतद्वयम् । मातेनैवोपभुंजीतचांद्रायणमथापरम् ३२५

अर्थः—यह और चांद्रायणा है कि जैसे किसी प्रकार के प्रयत्नसे हो दोसौचालीस पिंडोंका व्योत लगाकर एकहीमास भरमें भोगें—अर्थात्—ऊपर जो तीसदिन का चांद्रायणा योगोचर ने कहा तिसमें समस्त २२५ दोसौ पचीसग्रास महीनाभरके होतेहैं उससे उपरालू गौतम के कहे विधान में दूसरी पूर्णमासी को पन्द्रहग्रास बढ़ि-जानेसे २४० दोसौचालीसकौर होजातेहैं उन दोनों प्रकारसे जुदा यह प्रकार कहा चाहते हैं इसलिये २४० दोसौचालीसपिंड तीसही दिनमें भोगेजायें तिनके व्योतका कोईसा नियत लेखा एकहीसा नहीं है अर्थात् इसके लेखे में अपनी इच्छाके अनुसार युक्ति लगानी होतीहै इसीसे यह कहा गया कि जैसे किसी प्रकार से होसके तैसे बारहवीसी पिण्डोंका व्योत एक महीना के दिनों पर फैलावै—उस फैलावा की इतने डौल हैं कि रोज मध्याह्न के समय आठग्रास खानेका नियम राखें अथवा चारकौर दिनमें चार कवल रातिमें खानेका नियम साधें तौ भी तीसदिनमें दोसौचालीस होजायेंगे अथवा एकदिन चारपिण्ड दूसरे दिन बारहपिण्ड इस डौलसे भी हिसाब दीक आवेंगा अथवा एकदिन कोरा उपवास फिर दूसरे दिन सोरह पिण्ड इकट्ठे या दिनराति में दोवार भोगें तौभी वही लेखाहै—इसीतरह अन्यप्रकार भी कल्पना किये जासकतेहैं तिनमें कोईसा एक प्रकार अपनी इच्छा और शक्ति संभव आदि के अनुकूल सोचिके जैसा कुछ पहिलेदिन संजूरकरें वही डौल तीसदिनतक चलाजाय तौ यह पूर्वाक्त व्यवमध्य और पिपीलिकासम्य दोनोसे जुदा प्रकार (साधारणा) इस नामसे कहाता है (यत्तिचांद्रायणा शिशुचांद्रायणा आदि इनके नाम भेद भी होतेहैं सो अधिकोक्ति में मनुके वचनों से देखना ॥ ३२५ ॥

३२५ अधिकोक्तिः—जितने डौल यहां दर्शाये सो नामसहित मनुने भी कहेहैं—यथा—अष्टावष्टीसमश्रीयावृषिंडान्मध्यदिनेस्थितेनियतात्माहविग्रस्ययत्तिचांद्रायणां चरेत् ॥ चतुराश्रतरोऽप्योयात्पिंडावविग्रसमाहितः चतुरोऽश्रमस्मितेसूर्येशिशुचांद्रायणां

चरन् ॥ यथा कथंचित्पिडानांतिस्त्रोऽशीतिःसमाहितः सासेनाग्नहविष्यश्चन्द्रस्यै
 तिसलोक्तताम=अर्थात्-मनुने यह कहा है कि जो कोई ब्राह्मण यतिचांद्रायण क-
 रनाचाहै सो ठीक दुपहरके समय अपने शरीरको बग़मे राखे हुये आठपिंड हविष्य
 के अर्थात् पवित्र अन्नोके रोज रोज एक महीना भर भोगें तो यही यति चांद्रायण
 कहाताहै ॥ फिर कहिते हैं कि यदि कोई विप्र शिशुचांद्रायण कियाचाहै सो अ-
 पने शरीर और चित्तको सावधान राखे हुये चारकोर प्रातःकाल और चारकवल
 सूर्य अस्तहोते समय भोगें तो यही शिशु चांद्रायण कहाजाता है ॥ फिर कहिते हैं
 कि हविष्य जो पवित्र अन्नहैं नीवार-सामा आदि तिसके तीनअस्सी अर्थात् बारह
 बीसी पिंड जो २४० दोसीचालीस होतेहैं सो चाहें किसी प्रकारसे जैसे होसके तैसे
 एकही मासमे भोगें (अर्थात् जैसे ऊपर योगीश्वर के प्रबोक्त में कहिचुके तैसे यहाँ
 भी समझने) तो इसरीतिसे करनेवाला भी चन्द्रमा के लोकमें जाकर जन्म लेताहै
 अर्थात् जिस किसीने यद्यपि कोई पाप नहीं किया जिसके प्रायश्चित्त की जरूरत
 हो बिना जरूरत के भी ऐसा व्रत करनेवाला ऐसाफल पावैगा यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥
 ऋषिचांद्रायण-मूल प्रबोक्तमें पीछेसे अपर यहशब्द जो लगाया तिसका अर्थ जो
 कुछ उसीजघे लिखोगया सो भी ठीक है पर उसी अपर शब्दका यह भी तात्पर्य है
 कि अपरनाम और चांद्रायण जो नहीं कहे तिनको भी ग्रन्थान्तर में समझिलेना=
 यथाहयन=वींस्त्रीवपिडान्समशीयान्नियतात्मादुद्व्रतःहविष्यान्नस्यवैसासमृयिचां-
 द्रायणास्तृतस=अर्थात्-जो कोई ऋषि चांद्रायण किया चाहै सो एक मास अपने
 शरीरको अच्छे नियम से जीतिके सचाव्रत साथे हुये हविष्यान्न के तीन तीन पिंड
 रोजखाय (इसमें सिर्फ ६० नव्वे पिंडोंका हिसाब जुड़ता है ॥ ० ॥ मिताक्षराकार
 कहिते हैं कि-योगीश्वर तथा मनुके कहे-यतिचांद्रायण-शिशुचांद्रायण आदि
 अनेक और यमका कहा ऋषि चांद्रायण-इन सबही में यह समझिलेना कि परि-
 वाको आदि लेकर चन्द्रमाकी गतिके अनुसार साधना करनेकी अपेक्षा इनमें नहीं
 है तिससे सिर्फ तीसदिनका महीना चाहै तिस किसी तिथिसे मानिके प्रारभ किया
 जासकता है अर्थात् तिथियोंकी घरी बढी आदि किसी कारणासेपूरे तीसदिन मानने
 कोलिये यदि चौथि पचमी आदिकिसी औरही तिथिसे प्रारभ करनापरै तो भी कुछ
 दोयनहीं-परंतुयदिद्विती वारुजरी परिवासेप्रारभहोसकै तोबहुअधिक श्रेष्ठजानो॥ ० ॥
 अथ सोमायन-सोमायन इसनामसेभी एक महीनेका व्रतजुदे प्रकारसेहोताहै=
 तदाहमार्कडियः=गोक्षीरसप्लरावतृ पिवेत्स्तनचतुष्टयात् स्तनत्रयात्सप्लराव सप्लरावस्तन

चलानेहों उसका नामहविष्य होताहै उसीहविष्य का अनुमन्त्रणा अर्थात् मन्त्र पढ़िके
 पवित्रकरण और चन्द्रमाका उपस्थान उसकेसामने खड़े होकर मन्त्रोंसे स्तुतिकरना
 और ॥यद्देवादेवहेडनं आदि चारकण्डवाओंसे घृत होमैं और हे।मके अन्तमें देवकृतस्य
 इत्यादि वेद मन्त्र से समियों ॥ घृत लेकर होमैं ॥ फिर (उँभूः आदिसे शिवःपर्यंत)
 इतने मन्त्रों से पढ़िकर अपने रोजके सामली ग्रासोंको पवित्र करें—तिससे अनन्तर
 फिर एक एक ग्रास हाथ में लेकर उन्हीं उँभूः आदि सर्व मन्त्रों को बोलिकर पीछे
 से नमःस्वाहा यह मनमें कहिकर ग्रास मुहमें धरें इसी विधिसे सब ग्रासों को भोगैं ॥
 उन ग्रासों का यह प्रसारा है कि जितना सुख पूर्वक मुहमें चलाजाय किन्तु मुखप-
 सारना आदि विकार न करने परें (किन चीजों के ग्रास होयें सो कहिते हैं) चरु
 अर्थात् पकाया भात वा खीरि•भैर्य अर्थात् भिक्षावे मांगिलाया मिलाभूजाअन्न•
 सुतुआ•कनकी तन्दुल की• यावक जों का दलिया• शाक जो बथुआ सरसों आदि
 का इस काम के योग्य समझि परें• दूध• दही• घृत•मूल अर्थात् आलू घुइयांसकर-
 कन्द आदि जो नित्यिद्ध नहों•फल जोजो इस काम योग्य समझिपरें जैसे बेल खर-
 बूजा आदि• उदक गंगाजल आदि जो अतिशय पवित्र हों•इस कामके निमित्तमें ये
 सभी हविष्य कहाते हैं इनमें पहिलेकी अपेसा पिछले पिछले अधिक ग्रहजाने यह
 रोज रोज का विधान कहिके गौतम जी ग्रासों को प्रारम्भ करने का प्रकार अब
 कहिते हैं कि ॥ प्रथम पूर्णमासी के रोज पन्द्रह ग्रास खाइके अगिले दिन दूसरे
 पाख की परिवा से एक एक घटाते हुये रोज खाया करें—फिर अमावस में कोरा
 उपवास करिके परिवासे एकसक ग्रास रोज बढ़ावैं तो यह पूर्णमासी दूसरी पर्यंत
 फिर पन्द्रह ग्रास खाकर एक नास चान्द्रायणा कहाता है (इसीका विशेष नाम
 पिपीलिका मध्य पहिले कहिचुके हैं) गौतम कहिते हैं कि बिरले एक आचाद्यर्थों
 के सत्से यही चान्द्रायणा पहिला पाख उलटा करदेने से भी होता है (जिसका
 नाम यवमध्य कहासया और विधान भी योगीश्वर आदिने कहा) यह सब गौतम
 का कथन पूरा होचुका—इसपर मितासरा कार कहिते हैं कि—गौतम के विधानमें
 ग्रास का प्रसारा जो यह कहा गया कि जितना सुख से मुहमें जासके सो बालक
 प्रायश्चित्तियों के अभिप्राय पर समझना क्योंकि सोर के अगड़े बराबर उन्हीं के
 मुह में नहीं जासक्ता है और बालक उनको समझना जो सोर के अड़े बराबर पांच
 ग्रास एक दिनमें न खाइसकें—और दूध आदि पतरी ढरकनी चीजें जो हविष्यमें गि-
 नतीकरैं तिनके ग्रास सोरके अगड़े समान क्योंकर होसकेंतहां उतने परिमानवाली

पत्ते की दोनी आदि से नाप तोल करनी चाहिये— और इन्हीं प्राप्ते के परिमाण किसी ग्रन्थ में मुर्गाके अराडे समान किसीमें बहुत बड़े हरे आवरे के समान इत्यादि भेद जहां देखिपरें तिनको भी मनुष्यों की शक्ति के भेद पर समझि लेना क्योंकि मोरके अराडा से ये सब छोटे हैं—और जो गौतम ने चौदसि का उपवास फिर पूर्णमासी से पन्द्रह प्रास का प्रारम्भ लेकर महीनाकी दूसरी पूर्णमासी तक चान्द्रायणा की समाप्ति कही तिसमें चौदसि पूर्णों के दो दिन बढ़ि जाने से बत्तीस दिन होगये सो यह एक दूसरा पक्षांतर समझि लेना कि जहां कोई बत्तीस दिनकी विशेषता से करना चाहै सिर्फ तहांका यह नियमहै सर्वत्र नहीं क्योंकि सर्वत्रका सामान्यवही नियम है जोकि याज्ञवल्क्य आदि अनेकों ने तीस दिनका चांद्रायणा उद्दिष्टाया कदाचित्त बत्तीस दिन वाला भी सर्वत्र के निमित्त माना जाय तौ यह विरोध खड़ा होता है कि जब कोई कहीं एक सम्बत्सर में निरन्तरबारह चांद्रायणा की साधना किया चाहै तहांपूरे बारह न होसकें तथापि यदि ऐसा समाधान दिया जावै कि बारह पूरे करने के लिये एक सम्बत्सर से उपरालू दिन बढ़ाये जासकें जितसे बारहमहीने और चौबीस दिनमें प्रयोग पूरा होगा तहां यह सबसे बड़ा व्यतिक्रम है कि चांद्रायणा चन्द्रमा की गतिके ऊपर होता है वह गतिभी इतने दिन बढ़ानेसे सर्वत्र छूटि जायगी कि जिसके छूटिजानेसे मुख्य क्रमका व्यतिक्रम होजायगा इति मिताक्षरा कारा॥॥ एक यहवार्ता यादिरखनी चाहिये कि विधिमें चन्द्रमाका उपस्थान आदि कहिचुके हैं सो वह चन्द्रमा का उदयहुये बिना असंगत है तिससे रोज रोज चन्द्रोदय के समय पर विधान और पीछेसे उक्त प्राप्ते का भोजन किया जायगा चाहै किसी बेरा उदयहोय इसीकारण चांद्रायणा व्रत सबसे कठिन कहाता और इसीसे अनावस को एकभी प्रास नहीं खायाजाता क्योंकि उमदिन बिल्कुल उदय नहीं होता है—परन्तु ऐसा नियमभी इन्हींकी समझना जो साक्षर सज्जन विद्वान् होते संपूर्ण विधिके साथ साथ अन्यथा सर्व जन उदय होने बिनाभी रात्रिमें किसी एक नियत समयपरप्रास खाकर व्रत करते हैं क्योंकि जो चन्द्रोदयके आश्रीन करना चाहै तो फिर निपट व्रत का होनाभी उनसे रहिजाय तिससे उत्तम कल्पको उपेक्षासे मन्द कल्पका स्वीकार कराया जाता है (सोतन की कही विधि के प्रारम्भ में पूर्णमासी पहिले जो मुडन कराना कहा यद्यपि चतुर्दशी में क्षीर कर्मका नियम है तथापि वाचनिक विधि के विशेष वाक्यसे कुछ दोय नहीं है) सामान्य वाक्यसे विशेष वाक्य बलवाच होता है इसी लिये (तीर्थक्षीर चतुर्दश्यां) तीर्थमें चतुर्दशी को क्षीर कराना योग्य है यह

इथातस्तनेनैकेनयद्वात्रिंश्रवायुभ्रमवेत यत्तत्सोमायननाममहाकल्मषनाशनस=अ-
 र्थात्—गायकादृषपातदिनपी वैचारयनोसे फिर सानदिन तीनयनोसे पीवै फिरसात
 दिन दोधनोसे पीवै फिरछे बिनतक सकथनसेपीवै फिर तीनदिनकेवल वायुपीकरहे
 तो यह तीसदिनका सोमायन व्रत महापातकोंका विनाशकरने वालाहोताहै (इसमें
 चार वा तीन आदि धनोसे दूधपीनाकहागया तिसका तात्पर्यकेवलयही संभवहै कि
 यनको सुटोमें दाविके दूधकी धारें मुहमें लीजायँ अर्थात् वासन में दुहिकरन पीना
 चाहिये ॥ इसीप्रकार ग्रन्थान्तर में चारौ सप्ताह बराबर कहिकर इकतीस दिनका
 सालव्रत कहा सोभी कुछबिलइनहीं क्योंकि इकतीसदिनकाभी महीना बिरलाहोता
 है—तथाश्वचनं (सप्ताहंचेत्येतदगोस्तनमखिलमयवीनस्तनानुवौतथैकंज्ञयतिवीप्रवो
 पवासाद्यदिभयतितदामासिषोनायनंतत)अर्थात् सातसातदिन गायके स्तनइउक्रमसे
 यदिपीवै कि पहले सप्ताह भर अखिलसमस्त अर्थात् चारौयन दूसरे सप्ताहमेंतीनयन
 तीसरे सप्ताहमें दोहीयनचौथेसप्ताहमेंएकहीयन पीकर पीछेसे तीनदिन कोरे उपवास
 भी क्रियेजायँ तो यह इकतीस दिनकेमहीनामेंसोमायन व्रतहोताहै—तदपिचांद्रायणा
 धर्मक्रमेवेतिमिताक्षरा) अर्थात् मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह सोमायन इसनामसे
 भीचांद्रायणाकेकायदेतुल्यसमभूना—क्योंकि—हारीतनेपहिलेयहकहिकरकिअबहम
 चांद्रायणाका अनुक्रम कहेंगे और वह ऐसे होताहै तैसा चांद्रायणाही समझाइके सो-
 मायनका भी अतिदेश किया तिससे=अइ कहिकर मिताक्षराकार फिर कहिते हैं
 कि=उन्हीं हारीतने दूसरा एक सोमायन भी जुदा दर्शायाहै=सौ देखो=यदाहमिता-
 क्षराकारः—यत्पुनस्तेनकयाचतुर्थीमारभ्यशुक्लषादशीपर्यन्तसोमायनमुक्तं—यथा—च-
 तुर्यीप्रभृति चतुस्तनेनत्रिंश्रं त्रिस्तनेनत्रिंश्रं द्विस्तनेनत्रिंश्रं एकस्तनेनत्रिंश्रं=सब
 मेकस्तनप्रभृतिपुनश्चतुस्तनांतं यातेसोमचतुर्थीतनूस्तयानःपाहितस्यैतमःस्वाहा या
 तेसोमपंचमी यथैत्येवं यथार्थास्तिथिहोमा एकमासे सनोभ्यः पूतश्चंद्रमसः समान
 तांसलोकतां सायुज्यं चगच्छति इतिचतुर्विंशतिदिनात्मकं सोमायनमुक्तं तदशक्त
 विययमितिमिताक्षरा=अर्थात्—हारीत के कथन को मिताक्षराकार दर्शाते हैं कि
 हारीतने ऋषियारी चतुर्थीसे प्रारम्भ करिके उजियारी द्वादशोत्तक चौबीस दिनका
 सोमायन कहाहै कि—चौथीसे लेकर तीन दिनतक चारौयनो से दूधपीवै तीन दिन
 तानयनोसे तीनदिन दोहीयनोसे तीनदिन एकही धनसे= इसीप्रकार फिर एकधनसे
 लेकर चारयन पर्यन्त करै अर्थात् पहिले तीनदिन एकधनसे फिर तीनदिन दोधनोसे
 फिर तीन दिन तीन धनोसे फिर तीन दिन चारौ धनो से (ये सब दोनां फरे जोड़िके

चौबीसदिन होते हैं इसमें कुछ सदेहनहीं परन्तु इन्हीं सबदिनोंमें रोजरोज तिथियोंके नामसे तिथिहोम करना भी बताते हैं कि) पहिलेदिन चौथिमें चौथिके नामसे यह मंत्रबोले (यातेसोमचतुर्थीतनःतयानःपाहि तस्यैनमःस्वाहा) दूसरेदिन पचमी तिथि में उसीके नामसे यह मंत्र बोले (यातेसोमपंचमीतनःतयानःपाहितस्यैनमःस्वाहा) इसी प्रकारयथीआदिके नाम जोड़ि जोड़ि इसीमंत्रसे रोज होमकरें। येहीतिथि होमकहाते हैं एकमास करनेसे पाषोसे शुद्धहोकर मनुष्य चन्द्रमाके बराबरी दर्जेको पहुंचताहै उसको चन्द्रलोकमें रहने पाताहै बल्कि चन्द्रमाके शरीरहीमें संयुक्तहोकर रहताहै—इतना सुनाइके मिताक्षराकारकहिते हैं कि हारीतनेयहचौबीसदिनका भी सोमायन बताया सो उनकोलिये समझना कि जिनलोगोंसेपूर्वाक्त इकतीस या तीसदिनकानही सके (इसमें जोतिथियोंके होमकरहे तिनमें केवल मन्त्रही कहिकर सामग्री कुछनहीं बताइ न कोइसा विशेष लक्षणकहा तिससेभी प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि दूधकीधारें मुहमें लेते समय मुखसे और हृदय सेभी उन मन्त्रोंका उच्चारण करें यही स्वरूपहोम का बताया किन्तुअग्नि में नहीं) परप (इसवातका समाधान कुछनहीं पायाआता और मिताक्षरा ने इसवातपर एकइभी न स्वीकरी कि साफ चौबीसदिनका वर्णित बताकर हारीतने वाक्य पूरा करनेके अन्तमें एक महीना क्यों कहि दिया—तथापि सर्वादा प्रियके विचार से हारीतके वाक्य में हेतु गर्भित ध्वन्यर्थ देखि परताहै कि बारह दिन धनों का दूध पीनेके पहिले तीन दिन कोरा उपवास करें फिर दुबारा बारह दिन धनोंकी पीकर अन्तमें तीनदिन कोरा उपवास करें (इसमें विशेष भेद इतना है किऊपर मार्कंडेय आदिकोंने महीना भरमें एकहीबार तीन दिन वायुभक्षी होना कहाथा हारीतने उसके दो भाग बनाकर दोनों पखवारे के आवि अन्तमें तीन तीन दिवस वायु भक्षी होना दर्शाया) तिससे छःदिन उन्हीं चौबीस दिनमें जुड़िकर पूरा महीना ठहरा कदाचित् यह ध्वन्यर्थ न होता तो हारीतके मुखसे एक महीने का शब्द भी नहीं निकसता और ऊपर जो चौबीस दिनका नाम आया सो यह व्याख्या मिताक्षरा की प्रत्यक्ष है कि उसने बारह बारह दिनों का जोड़ समझाया कुछ हारीत के मुहका शब्द नहींहै—बल्कि हारीतने इसीलिये कृपा पात्र के तीन दिन छोड़िके चतुर्थीसे धनपीनेका आरम्भ करना बताया फिर इसीलिये शुक्तपात्र की द्वादशीतक धनोंकोपीकर पीछेके तीनदिन उपवासोंके अर्थवाक्यी रखवा दिये और छः उपवासोंका कराना यह महीना भरका नाम रख देनेसे आपही सिद्धहोता है कुछ खुल्लम कहने की जरूरत नहींरही ॥ ३२५ ॥

यहां तक चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि सभी व्रत भेदों के लक्षणों का कहेंगे—
अब योगीश्वर अगिले परिच्छेद में इन सबके साथ जो कुछ विधान करना शेष रह
सो दर्शावेंगे ॥

अथ सर्वेषां पूर्वोक्तव्रतादीनामनुष्ठानसमयोपयोगक्रिया

विधिप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः षडंशोत्तमः (८६)



इस परिच्छेद में चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि साधारण सभी व्रत भेदों की क्रिया
विधि एकही कही जायगी कि जो सबके साथ काम आवें— अर्थात् जितने
व्रत होम आदि प्रायश्चित्तों के स्वरूप पहिले कह चुके उनमें से जिस किसी
का अनुष्ठान कोई करना चाहें तिसके साथ रोजरौत्र क्या क्या क्रिया
करनी चाहिये सो सब यहां एक साथ इकट्ठी कहेंगे ॥

(साधारणी कर्तव्यता)

कुर्यात्त्रिपवणस्त्रायीकृच्छ्रचान्द्रायणतथा । पवित्राणि जपेत्पिंडान्गायत्र्याचाभिमन्त्रयेत् ३२६

अर्थ:— त्रिपवणस्त्रायी बनिकर कृच्छ्र करें तथा चान्द्रायण भी और पवित्र
मन्त्रों को जपें तथा गायत्री से भी पिंडों को अभिमन्त्रित करें—अर्थात्—कृच्छ्र या चान्द्रायण
को दिवसों में पवित्र मन्त्रों को जपें और (उसमें जो पिंड नाम से गिनना प्रास खागे
कहे गये उन्हीं) पिंडों पर भी वेद के पवित्र मन्त्र पढ़ें तथा गायत्री से भी उन्हीं पिंडों
को पवित्र करें—इन बातों का व्यौरेवार निर्णय अधिकोक्ति में देखना ॥ ३२६ ॥

३२६ अधिकोक्ति—योगीश्वर ने इस वचन में कृच्छ्र और चान्द्रायणों का मिला
भुला साधारण एकही वर्ग दर्शाया है कि अधिक उत्तम फल चाहने वाला इस
रीति से करें (किन्तु यह तात्पर्य नहीं है कि दोनों को मिलाकर एक साथ करें)
तहां कृच्छ्र जो प्राजापत्य आदि वर्ण हो चुके प्रतिबद्ध उनमें से जो कुछ कोई क्रिया
चाहे यदा चान्द्रायण क्रिया चाहे उसीका यह वाको रहा विधान है जो सर्वत्र नहीं
कहा जासکتा या अब कहिते हैं कि—त्रिपवणस्त्रायी का नियम लेकर उन व्रतों को
करें—परन्तु मितासराकार इस पर यह अनुमत खड़ा करते हैं कि ३२८ तीसरी
अठारह मूलश्लोक में जो तत्रकृच्छ्र कहा गया था तिसको छोड़िके यह नियम जानना

कोकि उसके मध्ये मनुने सकही बार स्नानका नियम साफ खोलिकर कहि दिया है (तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रोजलसीर्यूतानिलाय प्रतिव्यर्हपिबेदुष्यान्सकृत्स्नायोसमाहितः) यह वचन उसी अविकोक्ति में आचुका तहां देखो—तिससे वैकालिक स्नान तप्तकृच्छ्र में न करै वाकी और सब तरहके व्रत विधानोंमें करै—क्योंकि—मनुने इस का प्रकार भी इस तौरसे कहा है (विरहस्त्रिर्निशायांच सवासजलमाविशेत् स्त्रीषू द्रपतितांश्चैयनाभिभायेतकहिंचित्) अर्थात्—कृच्छ्रादिव्रत करने वाला पुरुष तीन बार दिनके आदि अन्त मध्यमें और तीनबार राति के आदि अन्त मध्य में स्नान के निमित्तसे वस्त्रों सहित जलाशयमें कूदिकर सोते लगावै (इस वचन का यह तात्पर्य है कि जिस किसी व्रतके विधान का प्रयोजन विशेषकर दिनमें होता हो तिस के मध्ये बिनहीमें त्रिकाल स्नान करै या जिस किसी व्रतका विधान प्रायः रात्रि में करना परै तहां रात्रिही में तीनबार और बिनसं मामूली एकबार स्नानकरै अथवा किसी स्त्री शुद्ध आदिसे स्पर्शही अनायास होजाय या उनसे बात चीत करनी/परी हो तब उसके निमित्तसे चाहै रात्रिही या दिनहीय तत्काल स्नान करिके शुद्ध होजाय इसी लिये दूसरे अर्थश्लोकमें कहिदिया है कि स्त्री और शुद्ध और पतितों से बातचीत न करै इसी ध्वन्यर्थके आशयसे छे बारका स्नान बताया कि एक दो बार से लेकर चाहै छेबार तक नहाना परै पर अपने शरीर को प्रत्येक समय शुद्ध बना रखै और यही आशय अगिले अन्य वचनोंसे भी देखिलेना किन्तु आगे चलिकर कोइ वचन दोही बारका स्नान बतावेंगे—तिससे छेबारका निर्विकल्प नियम नहीं है कदाचित् इसका निर्विकल्प मानाजाय तो फिर जहां दशदश हजार जपोंका आरंभ होय तिसमें पहर पहर प्रति स्नानके हेतुसे बड़ा भारी एक बिस्म खड़ा होजाय कि उस मामूली जप आदि कर्मको करने भी न देवे—हां—यह ठीकहै कि जो कोइ अति मुख हेतुसे जप मंत्र आदि क्रियार्थको न करना जानै तिसकी बारम्बार स्नानका अवकाश भी मिलसक्ता है तथा अन्य कर्मोंके अभावमें छे बारके स्नानही का यदि नियमसाधै तो यह उसकोलिये सक तपसे गिनतो होसक्ता है—इसीलिये—मितासरा कारने अपना यह अनुमत खड़ाकिया है कि यह राति और दिनमें भी तीनतीनबार का स्नान सिर्फ उसके लिये जानना जो अति समय होके नियम साधिसके किन्तु सबके लिये नहीं =मितासरा कार फिर कहितेहैं कि—वैशंपायन मुनिने दोबार भी स्नान बताया है सो उसकोलिये जानना जिसपर वैकालिक न होसके—तथाच वैशंपायनः=स्नानत्रिकालमेवस्यावधिकालंवादिजन्मनः (इतितत्त्वियवशास्नाशक्तस्यवेदित

व्यसितिमितासरा=अर्थात्-कच्छोंमें द्विजाती को तीनों कालमें स्नान चाहिये अथवा दोही कालकरै=और जो=गार्ग्य मुनिने (एकवासाश्चरेद्द्वैत्यं स्नात्वा वा सोनपीडयेत्-तदतिशक्तस्यैव-एकवासा आर्द्रा वासा-लब्ध्वांशीस्थंडिलेशय इत्येकवस्त्रताया अपि शंखेन पाक्षिकत्वाभिधानादिति मितासरा) ऐसा नियम कहा है कि एकही दोतीसे स्नान करिके भिसामांगै किन्तु भीजी धारणा किये रहिके, मांगै वस्त्र निचोड़ै नहीं। यह भी नियम शक्ति वालेका समुभन्ना जिसकी देहमें बलहो-एकही वस्त्र राखने मध्ये शंखने भी यह कहिकर दर्शाया है कि थोड़ासा हलुका भोजन करिके स्थंडिल परसोवै अपाति ऊंची माटी रेत आदिकी चबूतरा बनाके उसपर लोहिरहै कपडानहीं बिछावै॥ स्नानविधानं-स्नान करनेका पुराविधान हारीतने बताया है कि ऐसे करना= यथा=अथ बंशुद्वतीभिः स्नात्वा घर्मय गां तर्जले जपित्वा धौतमऽहंत वासः परिधाय सास्ना सौम्येनादित्यमुपतिष्ठेत्=अर्थात्-तीनवार तीनों काल में स्नान करिके अथवा यथा संभवहो दोही कालमें स्नान करिके जल के भीतर अघर्मयसूक्त को जपिके पश्चात् धुलाहुआ वस्त्र जो फटा पुराना न हो सो पहिन के (सवेसौम्येदमग्र आसीत्) इत्यादि सामवेदीय सौम्य मंत्रों को पढ़ते हुये सूर्यके सन्मुख खड़े होकर उपस्थान कर्म करै (यह तो केवल स्नान करने की विधि कही चाहें तीन या दो अथवा एक ही बार का स्नानहो स्नान के साथही इतना करै ॥ अथ पवित्रमंत्रविधानं-फिर योगीश्वरने जैसा मूलश्लोकमें पवित्र मंत्र जपने कहे तिनको आसनपर बैठिके जपे। इसमें यह सन्देह रहा कि वे पवित्रमंत्र कौनहैं तिनको जपे सो सब आगे मितासरा कार समुभाते हैं देखौ=पवित्राणि च=अघर्मयगादेवकृतः शुद्धवत्यस्तरत्समा इत्यादि वशिष्ठादि प्रतिपादिताना मन्यतमान्यथा विरुद्धेयुं कालेयुं जपेत्-सावित्रीं वा-सावित्रीं वाजपेक्षितं पवित्राणि च शक्तितः सर्वेष्वेव व्रतेष्वेव प्रायश्चित्तार्थमाहृतः इति मनुस्मरणादिति मितासरा=अर्थात्-पवित्र मंत्रोंके लक्षणा ८१ इत्यासीके परिच्छेद में वर्णन हुयेथे तहां ३०-६ तीनसौ नौकी अधिकोक्तिमें वशिष्ठ के भी छे श्लोक देखौ (सर्वं वदपवित्राणि) इसको आदि लेकर लिखे होगे उनमें अघर्मयगा देवकृत आदि अनेक मंत्रोंके नाम लक्षणा जैसे वशिष्ठजीने कहे तैसे और भी ऋषियों ने जहां कहीं पवित्र मंत्र दर्शाएहों तिन सबहीको पवित्र जानो उनमें जे कोई सन्ध जिसके प्रयोजन वाले समझिपरै उसकी उन्हींका जप करना चाहिये परंच ऐसे समयोंपर करना चाहिये कि जिस बेरा प्रायश्चित्त संबंधी किसी मुख्य कामका कोई सा नियत समय न हो अर्थात् मुख्य कार्यसि उपरालू जो फालत समय वचते दीखै तिनमें जप करना चा-

हिये जिससे मुख्यकामोंका विरोध न होसके यह तात्पर्य है—अथवा—इन मंत्रों का बोध जिसकी न होय वह सावित्री गायत्री को जपे क्योंकि मनुने भी यही नियम दर्शाया है कि चान्द्रायण और प्राजापत्य आदि ऋच्छोंमें भी सदा गायत्री जपे या अघमर्या आदि पवित्र मंत्रोंको या गायत्री और पवित्रोंको भी अपनी शक्तिके अनुसार चाहें दोनों तरह के जप करें—और भी—चौरासी परिच्छेद में ३२० तीनसौ बीस वाली अधिकोक्तिमें (अवजपादिनियमाः) इसी नामका पाठ देखो उसमें गौतमने यह लिखाहै कि (रौरवयोषांजपेक्षित्यं प्रयुंजीत० इति तदपि पविष्टत्वादेवोक्तं न पुनर्नियमाय) प्राजापत्यादिमें रौरवयोष नाम का सामवेदोक्त जप रोज करें। सो यह गौतमका कथन भी उस जघे केवल इसी अभिप्राय से समझना कि वह रौरव योष जप भी पवित्र मंत्रोंमें गिनतीहै जैसे यहां पर दर्शाए हुये अन्य मंत्रहैं तैसा वह भी एक पवित्र मंत्रहै अर्थात् उस आज्ञासे नियमात्मक यह तात्पर्य नहींहै कि उसी को जपना चाहिये और मंत्रोंको नहीं बल्कि उससे एक निदर्शन पाया जाताहै कि प्राजापत्योंके प्रयोगमें चाहें उसको जपे चाहें किसी औरही पवित्र मन्त्रको जपे अथवा गायत्री जपे। तिससे जो कोई सामवेदको न पढाहो तिसको रौरवयोषके बदले गायत्री आदिका जप करना नियम नहींहै—और जो—उन्हीं गौतमने उसी विधिके प्रसंगमें (न मोहमाय मोहमाय) इत्यादि मन्त्रोंको दिखाइके यह कहाहै कि इतनी ही आहुतें धोकी चाहिये। सो इस बातको भी नियमात्मक न समझिलेना कि प्राजापत्योंमें सर्वत्र उन्हीं मन्त्रोंसे होम होता होगा सो कुछ नियम नहींहै—क्योंकि—मनु ने महाव्याहृतियोंसे भी होम करना कहाहै—यथाहमनु—महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम् अहिंसासत्यमक्रोध मार्जवंचसमाचरेत्—अर्थात्—कोच्छ सावना के दिनों तक रोज रोज किसीकी सहायता विना अपने आपही (उभः उंभुवः उंस्वः उंमहः उंजनः उंतपः उंसत्यं) इन महाव्याहृतियोंसे धृतका होम करें—धृतही से क्योंकि (आज्यंहविरनादेशे नृहोतिष्ठुविधीयते० इति परिग्रहवचनात्) परिशिष्टमें यह आज्ञा लिखी गईहै कि जहां कहीं होम करने कहेहो पर कोई हवि का नाम नहीं बतायाहो तहां धृतहीसे होम किया जावे—यादि करे कि यहांपर पवित्र मन्त्रों का वर्णन होरहाहै तिसमें महाव्याहृतियोंकी पवित्रता और उनका साधारण मंत्रत्व मनुकेवचनसे समझाया गया—उन्हीं व्याहृतियोंका साधारण मन्त्रत्व और पवित्रत्व भी यद्विंशन्मतके ग्रन्थमें साफ साफ कहाहै—यथा—जपहोमादित्यत्किंचित्कच्छोक्तं संभवेन्नचेत् सर्वव्याहृतिभिः कुर्याद्गायत्र्या प्रसावेन च (आद्यिहयादुक्ततर्पणा

द्वितीयोपस्थानादेश इरां=अर्थात्—जप होम आदि और इसी आदि शब्दसे जलतर्पण सूर्यका उपस्थान आदि जो कुछ कृच्छ्रोंमें कहा हो तिसका जानना या करना जहाँ सम्भव न देखिपरै तहाँ उन मन्त्रोंके बिना भी वही जप होम आदि सब काम कृत्वा-
 हतियों से गायत्रीसे और प्रणव ओंकारसे भी करै अर्थात् पूर्वोक्त मन्त्रोंके न मिलने से कामकी न रोकै—इसीसे वैशम्पायनने ऐसा भी कहा है कि (स्नातोपतिष्ठेदादि
 त्यं सौरोभिस्तुक्तांजलिः) अर्थात् स्नान करिके सूर्यके सन्मुख सौरो नामकी ऋ-
 चाओंको पढ़ते अंजली बाँधि खड़ा होय (इसमें सूर्यकी ऋचाओंसे उपस्थान बताया
 और पहिले इसी अधिकोक्तिमें हारोतने सोमकी ऋचाओंसे सूर्यका उपस्थान करना
 कहा था • तौ इन दोनोंका विरोध छोड़ि विकल्प सिद्ध होता है कि चाहे इनसे करौ
 या उनसे करौ तुम्हारी इच्छा पर आख्य है—इसी प्रकार और भी जे कोई पदार्थ
 इसमें कहीं पर विरोध देखिपरै तिन सबही का विकल्प मानि लेना और जो
 अविरोध देखिपरै तिनके समस्त भेदोंका समुच्चय मानिलेना कि यह भी और वह भी
 करना चाहिये—जैसे एक टुकड़की अनेक शाखा उस टुकड़की एकही मूलपर आरुढ़
 होनेसे परस्पर भेदवाली नहीं कहाती है—तैसे उसी शाखान्तराधिकरणा न्यायसे सब
 स्मृतियोंका मूल एकही धर्मशास्त्र रूपी टुकड़ा कहाता है तिसकी अनेक शाखास्त्री
 स्मृतियाँ प्रसिद्ध हैं सबका एकही प्रत्यय होनेसे उन्हीं वैशम्पायन मुनिने कृच्छ्रोंके
 कर्मकी और उनमें जपकी संख्या की विरोधता तथा जप करने का प्रकार भी जुदे
 प्रकारसे कहा है कि=ऋथमंबिरुजं चैव तथा चैवार्धमर्थगाव गायत्रीं वाजपेहे दीपविर्वा
 वेदमातरम् शतमष्टशतं वापि स इत्यनयवाऽपरम् उपांशुमनसा वापि तर्पयेत्पितृदेवताः स
 नुष्यांश्चैव भूतानि प्रणाम्य शिरसा ततः=अर्थात्—ऋथम नाम के मन्त्रकी और विरुज
 नामके मन्त्रकी तथा अर्धमर्थगा की या धेदोंकी माता अतिपवित्रा गायत्रीदेवी की
 जपे • रोज रोज कितना जपे सो कहिते हैं कि एकवरी या आठवरी या एकसहस्र या
 इससे भी अधिक अपनी शक्तिके अनुसार • किध रीतिसे जपे सो कहिते हैं कि उ-
 पांशु रीतिसे जपे या मनके भीतर जपे • उपांशुजप उसका नाम है जो कृच्छ्रेकी जीभ
 और ओठ हिलते भालूम होय पर शब्द उसका किसीको न सुनिपरै किन्तु अपना
 शब्द अपनेको समझि परताहो और मनकी वृत्ति देवता में लगी हो • इससे दूसरा
 जप मनके भीतर वह जानना जिसके ओठ बन्द होय तिनके भीतर नोचे ऊपर की
 दाँत परस्पर न भिड़ने पावै और घाँटीमें जीभकी जड़से जप होताजाय मनकी वृत्ति
 देवताके रूपमें लगी रहै • जप करनेके बादि देवता और पितरोंका तर्पणकरै मनुष्यों

का भी तर्पण और भूतों का भी तर्पण करै सबको पीछे शिर भुंकाइ के प्रणाम करै—योगीश्वर ने मूलश्लोकमें पवित्रसंव जपने कहेथे तिनका व्योरा सब यहां तक निराश हो चुका ॥ ० ॥ पिण्डाभिमंत्रणं च—गायत्री पठिकर पिंडोंको अभिमंत्रित करनेवा भी कहाया सो करना चाहिये—इसके मध्ये यमने एकजुदी विशेषता दर्शाई है कि=अष्टत्यग्रे स्थितपिंडं गायत्र्या चाभिमंत्रितसः प्राश्याचम्य पुनः कुर्यादभ्यर्चयत्यभिमंत्रणं=अर्थात्—पिंडोंको इसरीतिसे कि हाथकी अंगुलियों के अग्रभागमें एक पिंड थाँभिके एक संव गायत्रीका पढ़ै तिसको खाइके आचमन करिके दूसरापिंड उसी प्रकार थाँभिके अभिमंत्रित करै पुन उसकोभी खाइके आचमन करै इसीक्रम से जितनेप्रास जिसदिन के सामूली बनेहों सबको भोगै=पूर्वाक्तं निराशके अनुसार यहाँ भी यह बात ठहरी कि पिंडोंके अभिमंत्रण को मंत्र जो गौतमने (३२५ तीन सौ चौबीसकी अधिकोक्ति में चान्द्रायण के विधानपर) दर्शाये थे कि (उंभूः उं भूवः उंस्तः उं महः उं जगः उंतपः उं सत्यं यशः श्रीं कर्कड् उंजः तेजः पुस्त्यः धर्मः शिवः—इत्येतेर्ग्रासानुमंत्राप्रतिसंजनमानमः स्वाहा इति वा सर्वानितरेव प्रासान् भुंजीत) सो इनसे गायत्रीका विकल्प ठहिरा कि चाहै गायत्री से भोगै या इन मंत्रोंसे भोगै=और जो=इन मंत्रोंमें पहिले गौतमने प्रास बचानेसे प्रथम उस हविष्यहीकों अभिमंत्रित करना इससंभव बताया था कि (आप्यायस्व संतेपयांसिनवोनव—इति चैताभिर्हविष्यैश्चानुमंत्रां) सो यह एक जुदाकार्य होनेसे समुच्चय नहीं किया जाता है करने वालीकी इच्छारही स्वीकार करी या मत करी ॥ ० ॥ मुण्डनविधिश्च—कच्छ और चांद्रायण आदि व्रतोंकी यदि कोई पाप कियेबिना केवल अपने अभ्युदयस्वरूपी कल्याणकी अभिलाषा से प्रारम्भ करै तिसको मुंडन कराने की अपेक्षा नहीं है—परन्तु जब कोई पापों के प्रायश्चित्त मध्ये इन्हींका प्रारम्भ करै तब आरम्भ करते समय प्रथम मुंडन कराना चाहिये क्योंकि (वपनव्रतं चरेदिति गौतमः) गौतम को इसवचन से यह भी कर्मोंकी विधिका एक ग्रंथ है—इसका व्योरा वशिष्ठने दर्शाया है=यथा=कच्छाणां व्रतरूपाणां प्रमथुके प्रादिवापयेत् कक्षिरोमांश्च खावर्जं नितिकच्छाणां व्रतरूपाणां व्रतरूपाणां वापपनादीन्यंगानि वक्ष्यते इति शेषः=अर्थात्—प्रायश्चित्तों में व्रतरूपी जो जो कच्छ करने होय तिनके आरम्भ में दाढ़ी मुखवालों आदिका वपन करावै परन्तु काँछ और देहके रोमा तथा शिखाके बाजोंकी छोविके मुड़ावै—किन्तु वपन कराना भी व्रतके अंगोंमें गिनती है कि इसको बिना व्रतके था नहीं पूरे होते है ॥ ० ॥ यह वर्णन पहिले ७७ मतहत्तर परिच्छेदमें आ चुका है ३०१ तीनसी एक मूल

प्रलोक पूर्वार्धसे देखो० सभाके द्वारा प्रायश्चित्तका व्रतलेना कहा था तिसका लेना भी सिर्फ एकदिन पहिले सूचित हुआ है कि जिसदिन से प्रारम्भ करना चाहे तिसके पूर्वदिवस तीसरे पहर सभाके सम्मुख जाकर व्रतकी आज्ञा स्वीकार करे—यदाहवशि-
 य=सर्वपापेभ्युर्मर्त्यां व्रतानां विधिपूर्वकम् ग्रहणां संप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तोचिकीर्षिते
 दिनां तेन खरोमा दीव प्रवाप्य स्नानमाचरेत् भस्मगोमयमृदा र्पि पंचगव्यादिकल्पितैः स
 लापकर्मणां कार्यवाह्यशौचोपासदये संतपावनपूर्वेषां पंचगव्येन संपुतम् व्रतं निशामुखे
 ग्राह्यं वहिस्तारकदर्शने आचम्यात् परं मौनी ध्यायन् दुष्कृतसात्मनः सन् संतापनंतीव
 मुहुरेच्छोक्तमंततः=अर्थात्—प्रायश्चित्त करनेका विचार उत्पन्न होतेसमय सर्वत्र सभी
 उपायोंमें सबही व्रतोंका ग्रहण करना विधिके सहित कहिके समुष्काङ्गा—अर्थात्
 दिनके अन्तमें सोभी जोर प्रायश्चित्ती पुरुष अपने शरीरके बाहरले अंगोंका शौच
 सिद्ध होनेके लिये बीसौनख और देहके रोमा तथा दाढ़ी मूछ आदि अच्छे मुद्गावृक्ष
 ज्ञान करे० तहाँ राख गोबर मट्टी जल पंचगव्य आदि से बनाये हुये उबलनों करके
 मलाप कर्मणा करना चाहिये किन्तु देहमें इसप्रकारकी चीजोंसे मालिश कराइके
 मैल छुतवाना चाहिये० तिससे पहिले दाँत भी धोकर पीछे शुद्ध ज्ञानकरे तिस पीछे
 पंचगव्य से आचमन लेकर निपट संध्यारमय तारे देखिपरने लगे तभी व्रतका स्वी-
 कार करे फिर ग्राम बसती से बाहर जाके शुद्ध जलका आचमन करिके इससे आगे
 मौन साधिकर अपने किये पापको याद करते हुये मनमें बारबार संताप और शोक
 भी लातेहुये उनआचरणोंका निर्वाहकरे कि जो जो काम जिस व्रतमें जपतप आदि
 करने कहे हैं—इसीप्रकार—स्त्रियों को भी व्रतोंका परिग्रह लेना चाहिये—परन्तु
 इतना भेद है कि स्त्रियों के बाल मूछ रोमा नखोंका छुटाना कटवाना नहीं चाहिये
 क्योंकि बौधायन की स्मृति में यह कहा है कि चांद्रायणा आदि क्षत्र्य व्रतों में जो
 पुरुषकी विधि कही गई यही स्त्रियों को भी होती है घर मूछ बाल आदिका वपन
 मुंडन कर्म छोड़िके बाकी सब होता है—यथा (चांद्रायणादिष्वेतदेवस्त्रियाः प्रमथुके
 शवपनवर्जमिति बौधायनस्मरणां—यहाँ—इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि जिनके
 मितासरा रूपी दीपक से इस दीपक जोड़ते हैं उन्होंने बशिय और बौधायन के व-
 चनोंसे स्यवस्या खड़ी करी है कि जैसा वशिष्ठ के वचन में नखरोमा आदि पुरुषों
 को मुडाने कहे हैंसा बौधायनके वचनसे स्त्रियोंको नियोजनानों—परन्तु उन्होंने अपने
 लिखे वशिष्ठकी दूसरे वचन में कुछ एकड़भी न खड़ी करी कि (क्षत्र्याणां व्रतरूपा
 णां शमथुके शादिवापयेत् कक्षिरोमणिखावर्जमिति) यही वशिष्ठका पहिला वचन है

इसमें पुरुषों को शिखा मुड़ाने का अपवाद किया सो भी सत्यप्रतीत होता है बल्कि काँक के बाल और खालसाव के रोमोंका अपवाद किया सो भी सत्य प्रतीत होता है तथापि दूसरे वचन में उन्हीं वशिष्ठने पुरुषोंको इन्हीं कर्मोंकी विधि कही तो यह एकही कर्त्तव्ये पक्षापर वाक्यसे विरोध पायागया इसका कुछ समाधानभी न किया गया न इसपर ऐसे विरोध की एकड़ खड़ी करी गई—तथापि—सर्वादा प्रियके विचारसे यह समाधान प्रतीत होता है कि जब एकही मुखसे विधि और अपवाद दोनों कहेगये तो फिर मुड़ानेकी विधि उनके लिये समझना जो अतिशय दुराचारी अति दुर्बलको पापही में बद्ध लागी राखते हैं—और रोमा आदि मुंडाके अपवाद उनके लिये समझना जिनसे वैधाधीन पाप होगया हो तो फिर कुछ भी विरोध नहीं है और यही ध्वन्यर्थ अगले वचनों से मिलसक्ता है देखो ॥ ० ॥ पवन कर्म के बावत एक जुदाभी न्याय कहा गया है—यथाहारीतः = राजावाराजपुत्रोवात्रा-ह्यगोवावहुश्रुतः केशानांबपनंकृत्वाप्रायश्चित्तसमाचरेवकेशानांरक्षणार्थतुद्विगुणं ब्र-ह्मचर्येद्विगुणोत्तरेतत्तुद्विगुणं दक्षिणाद्विगुणाभावेत(सतच-महापातकादिवैद्यैर्वैद्यैर्वाभि-प्रायेणादृष्टव्यं) विद्वद्विप्रनृपस्त्रीणांनेत्येतकेशवापनम ऋतेमहापातकिनोऽगोहान्तुश्चा-वकीर्तिनः—इतिमनुस्मरणात्—अर्थात्—हारीतने कहाहै कि जहाँ प्रायश्चित्ती पुरुष कीइराजाहोय अथवा राजाकापुत्रहोय (यहाँपुत्रके उपलक्षणमें ब्रह्मचा जारीदार भी राजाकी पुत्रही कहातेहैं सो समझनाय) अथवा बहुदुत विद्वान् ब्राह्मणहोय तो किसी का भी नहींहै परंतु यदिइनमें कोई केशोंका बचावा चाहै सो केशों की रक्षा हेतुसे इना व्रत आचरे जहाँ कहीं दुगुना व्रत किया जाय तहां व्रतको २ रे होने वाली दक्षिणा भी दूनी होय(परंतु यह नियम केवल महापातक आदि वडे दोषपरसमझना क्योंकि अगले मनुवचनका साफ यही प्रयोजनहै कि) विद्वान् ब्राह्मण तथा राजा तथा स्त्रियोंके बालमुड़ाने नहींचाहिये परंतु महापातकी और गोहंता औरअवकीर्णी तथा द्विषोंके बालमुड़ाने नहींचाहिये परंतु महापातकी और गोहंता औरअवकीर्णी ब्रह्मचारी को छोड़ि के यह नियम समझना अर्थात् वही तीनों विद्वान् विप्र वा राजा वा स्त्री यदि महापातकी हुये हों या गोहत्या करी हो या ब्रह्मचर्य लेकर अवकीर्णी हुये हों तिनको प्रायश्चित्त के आरंभमें अवश्य सूत्रमुड़ाना होगा किंतु मुड़ाने का नियम इन पापोंसे उपरालू में समझना ॥ ० ॥ जावाल मुनिने इस बातपर कुछ और भी जुदा प्रकार कहाहै—यथा—आरभेसर्वकृच्छ्राणांसमाप्तौचदिवशेतः आग्नेनवह्निःशालाग्नीजुहुयाद्याहती-पृथक् यादकुर्याद्व्रतंतेतुगोहिरण्यादिवसणा

=अर्थात्—सर्व कृच्छ्रों के आरम्भ समय और समाप्ति के समय भी जुदा करके उस अग्नि में घीसे व्याहृतियाँ जुदी जरी होमैं जो घरकेबाहर की अग्नि घरसे बाहर होय किंतु ऐसा होम घरमें नहीं होता और व्रतकी समाप्ति होजाने पीछे आदमीकरे और गाय सुवर्ण आदि उत्तम वस्त्रियांभी देवें ॥ ० ॥ यमने इसपर और कुछ विशेषता दर्शाई है=यथा=पश्चात्तापोनिवृत्तिश्चजानांचांगतयोदितष नैमित्तिकानां सर्वे यान्तयाचैवानुकीर्तनम्= अर्थात्—सब तरह के प्रायश्चित्तों का अंग प्रत्यंग खूपी वे काम, कहेगये हैं जिनके होनेसे व्रतोंकी सिद्धि हुआ करती है। तिनमेंसक, पश्चात्ताप है कि मुझसे ऐसा कर्म होगया धिक्कार है इत्यादि। उन्हीं में, दूसरा संक निवृत्ति है कि फिर ऐसा काम कभी न मुझसे होना चाहिये अनुक प्रकारोंसे निवृत्त रहिसक्ता हूँ इत्यादि। तीसरा, ज्ञान है कि जहांतक होसके बार बार किया करे रहिरे जल में बहुत से गोता लियाकरे मन्त्रों के विधान से ज्ञान किया करे (इसीलिये त्रियवरा का विधि पहिले कहचुकेहैं) इत्यादि। चौथा अनुकीर्तन है कि अपने, किये पापको बारम्बार सबको, सुनाया करे तिससे भी पापकी हानि, होतीरहती है अर्थात् सुनने वालोंको थोड़ा थोड़ा बंटि जाता है [इसमें सन्देह न करता जैसे कथा पाठ पूजा के मन्त्र आदि सुनिके कुछ अच्छा फल मिलता है उसी प्रकार पापकी बात सुनिकेभी अवश्य उसका फल भाग सुनने वालों को पहुँचताहै जैसे वायुके योगसे सुगन्धि और दुर्गन्धि दोनों का कुछ कुछ फलभाग सबको नाकोंमें बिना चाहे पहुँचि जाताहै तैसे अच्छी बुरी दोनों भीति की वाणी के खरसे कानोंके द्वारा असर पहुँचता है—इसी लिये—मनुने इनवातोंके जुदेजुदे वचन कहिकर सबका व्यौरा समझाया है=यथा=स्वापनेनानुतपेनतपसाऽध्ययनेनच पापकृन्मुच्यतेपापात्तथावानेतचापदि ॥ अथायथानरोऽधर्मस्वयंज्ञस्वानुभायते तथातथाह्यचेवाहिस्तेचाधर्मणमुच्यते ॥ यथायथामनस्तस्यदुःकृतकर्मगर्हति तथातथाशरीरतत्तेनाधर्मं गामुच्यते ॥ कृत्वापापहिनतप्यतस्मात्पापात्प्रमुच्यते नर्वर्ज्यपुनरितिनिवृत्याप्यतेतुम् ॥=अर्थात्—मनुकाहितेहैं किपापी अपना पाप सुनाते रहने सेभी शुद्ध होता तथा अपने मनमें धिक्कार आदि प्रकारों से पछतावा करते रहिकर भी शुद्ध होता है और कठिन तपकरने सेभी तथावेदपाठ गायत्री आदि मन्त्रोंका जप करने से भी शुद्ध होताहै तथैव दानकरने सेभी शुद्ध होता है ॥ मनुइय अपने अधर्मको जैसे जैसे आपही अधिक लोगोंको सुनाता है तैसे तैसे संपर्को तरह पुरानी खाल भी छोटिके शुद्ध होजाता है ॥ जैसे जैसे पापीका अन्तःकरणा अपने किये खोटे कर्मकी निन्दा अपने मनको भीतर करताहै तैसे तैसे उसका

शरीर उसअवर्षसे वचताहै उसवचनेसेभी पहिला पाप क्षीयहोताहै इसीलियेपूर्वाक्त यमके वचनमें ये बातेंभी प्रायश्चित्तका अगठिहराईगई ॥ पाप होजाने पर सन्ताप करिके वह पापी शुद्धहोताहै जो सन्तापकेसाथ ऐसीप्रतिज्ञारोपै कि फिर आगे को नया पाप कभी न करूँ इस प्रकार अपने चित्तको दृढकर शुद्धहोताहै तिससे प्रायश्चित्तोंका यहभी एकझंगहै ॥ यहाँ ये मनुकेवचन इसप्रसंगसे स्थापनकियेगयेहे कि प्रायश्चित्तोंकाअंग इनबातोंको समझिके रोजरोजको विधिकेसाथ साधना इनको भी करी ॥ इनकोसिवाय बहुधा बातोंका त्यागभी ब्रह्मवर्षके हेतुसे कर्तव्य है=तदाह यम.=गात्राभ्यंगंशरीरभ्यगतं वृत्तमनुलेपनमव्रतस्योवर्जयेत्सर्वयज्ञान्यहलरागक्रुत=अर्थात्-देहकाउबटना तेलका लगावना शिरकेश नमज्जाचूषण पानखाना सुगन्धोंका लगाना और कोईचीज ऐसी जो लगाने या खानेसेशरीरमें रागरागवत् या बलउत्पन्न करतीहो तिसकासेवन इनबातोंको बंदपुस्त्य नकरै जो व्रतमें लगाहो (मितासराकार कहिते ह कि इत्यादि और भौतिकी कर्तव्यता जो अन्य स्मृतियों में देखिपरै सो भी आननी चाहिये)ऊपर कहो विविधों के अनुसार व्रतको धारण करिके अवश्य पूरा करना चाहिये- अन्य था दीयभागी भी होताहै यदि नहीं पूराकरै=तदाह छागले-य=पर्वव्रतं गृहीत्वा तु नाचरेत्कामतोदियः जीवन्भवति चांडालो मृतः याचैव जायते= अर्थात्-पहिले व्रतको लेकर पीछे जो कोई अपनी इच्छा से नहीकरै वह जीवता हुआ चांडाल कहाताहै और मरे पर कृता होके जन्मता है-यह विस्तार केवल संक्षेप के निमित्तसे दर्शाया गया (इस परिच्छेदके विचारों में सर्वत्र ७५ पचहत्तरि परिच्छेदका संबंध मिलारहेगा कि इसके साथ उसकी भी विचारना ॥ ० ॥ इस परिच्छेदकी व्यवस्था में चिकित्त और यदकाल क्षातोंकी विविध यद्यपि प्रवृत्तता सहित कही गई है तथापि इसके साथमें ७५ पचहत्तरि परिच्छेदवाली व्यवस्था का विचार करना आवश्यकहै कि उसके द्वारा देशकाल क्षतओंके अनुकूल विविकर-वाइजाय अर्थात् जहाँ गरमीका देश या गरमीकी अनुवर्तमान हो तहाँ अवश्यभाव से यदकाल या चिकित्तका वर्तना कि प्राजाय इससेविपरीत जहाँ शीतदेश या शीत क्षत फैलीहो तहाँ अति बलवान् देहवालेके निवाय साधारण प्रायश्चित्तकोज्ञान की आवश्यकता मे अधिक मन्यों पर भी चाहिये अन्यथा एक दो कालका खान चाहिये कि जिससे प्रवाण कर्मोंका अवरोध न होने पावे-इसीलिये इसअधिकारिक के प्रारम्भ में तत्परच्छेदके प्रसंगसे चर्चा इसका आचुकाहै वदभी देखो ॥ ३२६ ॥

इति सर्वव्रतांगभूतविधिरूपनपरिच्छेदः ॥

इतिसर्वकृच्छ्रादिव्रतभेदानां दानजपहोमादीनां च

स्वरूपविधायकंप्रकरणम्

• पंचपरिच्छेदसमं



इसप्रकरण में समस्त पाँच परिच्छेदों अर्थात् ८२३व्यापी परिच्छेदके प्रारम्भसे लेकर ८६६ वृहासी परिच्छेदके अन्तमें आकर यहाँ तक पाँचपरिच्छेदोंसे प्रकरणापूरा भया • क्योंकि एकही प्रयोजन के पाँच भेद जुड़े किये गये इनमें भी सबसे पिछला रक वृहासीका परिच्छेद अपने संधाती चारों परिच्छेदों पर अधिष्ठाता है तिससे सबही को साथ इसका विचार करना चाहिये ॥

अगिले परिच्छेद में यह युक्ति निकासी जायगी कि सभी व्रतदान आदि सभी पापोंपर आखड़ होसक्ते हैं परन्तु आखड़ करसकना बहुत कठिन है तिसका विचार बहुधा प्रकारों से दशावेंगे ॥

अथ अनादिष्टपापिष्वपिचांद्रायणादिकैः सर्वैरपिव्रतभेदैः

समस्तैर्व्यस्तैवाऽऽत्मैरनात्मैर्वाशुद्धिर्भवतीत्यादिव्रत

होमजपदानादीनां सर्वसाधारणविचारप्रधानोऽयं

परिच्छेदः संप्राशोतितमः (८७)



इस परिच्छेदमें प्रधानता उस बातपर आखड़ है कि जिन पापों पर किसी व्रत का आदेश नहीं कियाहो उनमें भी येही सब कृच्छ्र और चान्द्रायणा आदि प्रायश्चित्त बताये जासक्ते हैं—दूसरा—यह भी तात्पर्य है कि जिन प्रायश्चित्तों का जिन पापोंपर आदेश किया तिनमें और जिनपर उनका नहीं आदेश किया तिनमें भी सब सभीसे सयुक्त किये जासक्ते हैं—इसका व्यौरा नीचे परिच्छेद विवेकसे देखीं ॥

अनुवादकारने यह कथा निरूपणा करी अब इस कथाके अवलम्ब से उसको भी हर एक पाठक समझने अन्यथा यदि यह फालत कथा नहीं लिखी जाती तो फिर उसमेंसे कोई बात समझिपाना भाया अनुवाद होते हुये भी महासमुद्रकी गोटहखोरी से कम न होता • क्योंकि महाशय मिताक्षराकारने ऐसी अटपटी अनवेष्टे व्यवस्था धरी है कि बुद्धिमान भी समझिपावै और नहीं समझिपावै पछिताताही रहिजाय • यह नहीं कि वे उसको सुगम रीतिसे नहीं समझाइ सकतये या उमवातका कोई नागही और नहीं था क्योंकि ग्रन्थकार पुस्त्योंको लिखने समझानेकी कल्पनामधे नाना प्रकारकी रीतें मालूम होतीहैं परन्तु (कर्तुरिच्छागरीयसी) अपनी इच्छाके आधीन जहाँपर जैसा चाहें तहाँ तैसाही लिखते हैं यहाँ पर उनको यही स्वीकार था • इसारा केवल यह तात्पर्यहै कि ऐसी कोई लपेट की आइ बाकी न रहिजाय जिससे मुख्य प्रयोजनके समझनेमें भ्रांति खड़ीहोय अन्यथा यही बातें ऊपर चक्र में देखी कि चार पांच पक्षियोंमें कड़िचूके उसोका इतना बड़ा व्योरा कहा • तथापि यह सन्देह अभी खड़ाहै कि जब सभी पापोंपर सभी प्रायश्चित्तों का अवल बल होसकताहै तो फिर छोटे बड़ोंकी वियमता वाला विरोध कोंकर शांत होगा कि जिन प्रायश्चित्तोंका स्वरूप छोटाहो वे कोंकर बड़े प्रायश्चित्तों के स्थान पर शोभित होंगे इत्यादि सन्देह सब अपने अपने ठिकाने पर निपटाये जायेंगे ॥

(अनादिष्टानामपयोगः)

अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिर्वाप्यनेन च † ३२७ (पूर्वार्ध)

अर्थः—अनादिष्ट पापोंमें चान्द्रायणसे शुद्धि चपनः अन्य व्रतोसे भी (तथाच तार स्योभयवयोगोऽर्थातरसिद्धिस्तु) चकारको पापों के साथ भी संयुक्त करने से दूसरा भी अर्थ सिद्ध होता है कि अनादिष्ट पापों से भी चान्द्रायण से तथैव अन्य व्रतादि कोंसेभी शुद्धि होतीहै—अर्थात्—चान्द्रायणसेभी तथैव अन्य भौतिके सब प्रायश्चित्तों से भी अनादिष्ट और आदिष्ट सबतरह के पापोंकी शुद्धि होसकती है यदि येच विचारसे कार्य कियाजाय (आदिष्ट उन पापोंको जानना जिनपर किसी प्रायश्चित्त का आदेश कियागयाहो • यहाँ यह तर्क है कि सभी पापोंपर किसी न किसी प्रायश्चित्तका आदेश लिखा होताहै • तिससे ऐसा अर्थ लगाना कि उन्हीं प्रायश्चित्तों के मुकाबिल उनको आदिष्ट कहिना चाहिये जिनका आदेश जिन पापों के ऊपर लिखाहो • इसी रीतिसे उन प्रायश्चित्तोंके मुकाबिल अनादिष्ट पाप समझने जिन

का आदेश जिनपर नहो • और उनको भी अनादिष्ट पाप जानना जिन पर निषिद्ध किसी भी प्रायश्चित्तका नाम न धरागयाहो ऐसे देवयोगने कदाचित् हाथ आसक्तो हैं इसी लिये इनका भी इशारा जाहर किया गया (इन बातों का विस्तार ऊपर लिखिचुके तहाँ देखो) यदि ग्रैय विचारसे कार्य कियाजाय यह कहा सो उस ग्रैय विचारको अधिकोक्ति में सीखना । ॥ ३२७ ॥ (पूर्वार्धश्लोक) ॥

३२७ अधिकोक्ति—योगीश्वर के मूलश्लोक पूर्वार्धके अन्तमें चकार है तिसके अर्थ जो कुछ ऊपर कहि चुके उनसे उपरालू भी कुछ और तात्पर्य केवल उसी चकारसे समुच्चय मानागया है कि (च शब्दात् प्राजापत्यादिभिः कृच्छ्रैर्देवसहितैस्तत्त्रिपेक्षैर्वाशुद्धिः) प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंसे एक एक जुदे जुदे भी शुद्धि होती है या कईको मिलाकर एक साथ भी करनेसे होती है इसका दुर्धात जैसे चान्द्रायण और प्राजापत्य और अतिहृच्छ्र तीनों आगे पीछे क्रमसे किये जायँ या इनमेंसे एक ही कोई कियाजाय यथा सम्भव होय=इसका प्रमाण भी यद्विश्राम्त का वचन है कि=यानिकानिचपापानिधुरोर्गुरुतराणिच कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तुशोधयन्तेमनुरत्र वीत=अर्थात्=बड़े से बड़े भी जे कोई पापहो तिनको मनुने सुभायाहै कि • कृच्छ्र • अतिहृच्छ्र • चान्द्रायण • इन तीनोंका क्रमसे एक साथ साधन होय तो सुचिजाते हैं • (यहाँ इन तीनोंका समुच्चय कहागया जैसा इन तीनोंका समुच्चय तैसा और जप दान होम आदि का भी समुच्चय होसक्ता समझिलेना चहों जैसा अचित जानि परै) यही नियम नहीं कि पूरे तीनों का समुच्चय होताहो किन्तु उशना ने दोही का समुच्चय दर्शाया है कि=दुरितानांदुरिष्टानांपापानांमहतामपि कृच्छ्र चान्द्रायणाच्चैव सर्वपापप्रयाशनम्=अर्थात्=उपपातक रूपी दुरितोदा और पातकरूपी दुरिष्टों का और महापापोंका भी सबका नाश करनेवाला कृच्छ्र और चान्द्रायणको जानो जो आगे पीछे लगमा कियाजाय (जैसा इन दोनोंका समुच्चय कहा तैसा औरों का भी परस्पर दो मिलिके समुच्चय होना समझि लेना जहाँ जैसा प्रयोजन होय=इतना कहिकर मिताक्षराकार लिखतेहैं कि (गौतमेनतु • कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्त समासकरणैर्नन्दव निरपेक्षताकृच्छ्रातिकृच्छ्रयो सूचिता चान्द्रायणा स्यचतत्रिपेक्षता इतिशब्देन त्रयाणांसमुच्चय) अर्थात्=गौतम ने सर्व प्रायश्चित्तों की समस्या करिके चांद्रायणको कृच्छ्र अतिहृच्छ्र इन दोनोंसे मगाथर (निरपेक्ष) वेवास्ते ठहिराया और इन दोनों को उसी चान्द्रायण का निरपेक्ष ठहिराया और भी इति शब्दसे तीनोंका समुच्चय=फिर कहिते हैं कि (लघुसंयत्त्वनादिष्वेप्राजापत्य

समाचरेत्) इस वचनमें चतुर्विंशति मतवालोंने केवल प्राजापत्यही का नैरपेक्ष्य (वे वास्तवी) सबसे जुदापन अनादित्य पापके मध्ये दर्शाया किन्तु • इस वचन का यह अर्थ है कि लघुदोष स्त्री अनादित्य पापके मध्ये प्राजापत्य आचरें (यह वचन इस ध्वनिपर कहा गया है कि अनादित्य प्रायश्चित्त वाला पाप जब कभी उत्पन्न होगा तो प्रायः अतिछोटे पापोंमें गिनती होगा क्योंकि बड़े पापोंसे लेकर छोटे तक सब हीके जुदे जुदे नाम कहिकर उनके साथ प्रायश्चित्त भी कहे गये तिससे बड़े पापों में कोई भी अनादित्य कभी नहीं पैदा होसका है—मिताक्षराकार फिर कहिते हैं कि— गौतमने भी प्राजापत्य आदिकोंका परस्पर सबका नैरपेक्ष्य अर्थात् जुदापन भी दर्शाया है—यथा=प्रथमचरित्वाऽशुचिपतः कर्मण्यो भवति द्वितीयचरित्वा यदन्यन्महा पातकेभ्यः पापकृते तस्मान्मुच्यते तृतीयचरित्वा सर्वस्मादेन सो मुच्यते • इति महा पातकादपीत्यभिप्रेत=अर्थात्—इसमें निरपेक्षता जुदाई का यही एक चिह्न है कि किसी व्रतका नाम नहीं धरा चाहें कोईसा सकही तिसको पहिली बार उसको अर्वाध भर आचरित करिके अशुद्धतासे पवित्र होकर सुकर्म करने के योग्य होजाता है फिर शुद्ध होके दूसरी बार आचरित करने से जो महापातकों के उपराल उनसे नीचे दर्जेमें बड़ा पाप किया हो तिससे क्षुद्रि जाता है एवं तीसरी बार करने से सभी पाप मुचिजाता है अर्थात् बड़ेसे बड़ा महापातक भी मिटि जाता है=मनुने भी यह कहा है (पराकीनामकृच्छ्रोऽयसर्वपापापनोदनः) यह पराक नाम कृच्छ्र है सोई सब पापोंका विनाश करनेवाला है (अर्थात् छोटे पापोंपर एक बार बड़े पापों पर दो तीन बार बहुत बड़े पापोंपर अनेक आठवीं साधन करनेसे अकेलाही सबतरह के पापोंपर काम देसक्ता है किसी दूसरे व्रत का शामिल करना कुछ आवश्यक नहीं यह तात्पर्य है कि पराक व्रत भी सब तरहके पापोंपर किया जासक्ता है कुछ बड़ी नियम नहीं कि जिसपर उसका नाम धरा हो=हारीतने भी सर्वपापों पर अनेक प्रायश्चित्तों का जुदा जुदा वर्तवा करना कहा है—यथा=चांद्रायणायावकश्च तुलापु रुधस्ववा गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम्—तथा—गोमूत्रगोमयक्षीर दधिसर्पि क शोदकस सक्ताचोपवासप्रवृत्तपाकसपिशोषयेत्=अर्थात्—चांद्रायणा या यावकव्रत सक महीने गोमूत्रके रेंवे जो खाकर किया जाता है या तुला पुरुष नामका व्रत ब- र्गान होचुका है वही या गोमूत्रके पीछे फिरते रहने का व्रत बर्गान होचुका है वही अपने पापको हँसियत के बराबर साधन करने से सर्वपापों के नाश करने हार ये सब सकही सक होते हैं—तथा—गोमूत्र• गोबर• दूध• दही• घृत• कशोदक पीना और सक

दिन कोरा उपवास करना यह चांडाल को भी शूद्र करसकाहै फिर अन्य पापोंकी क्या गिनती रही (तात्पर्य इसका भी वही है कि पाप की बड़ाई अनुसार आठत्तीं साधीजाय कुछ एकहीबार करनेसे बड़े पाप नहीं मिलतेहैं यह सर्वत्र समझे रहिना= जैसा उन्होंने हारीत ने तप्तकृच्छका रूप समुभाकर उसका फल इसरीति से कहाहै कि=स्यकृच्छ्रोद्विरभ्यस्तःपातकेभ्यःप्रमोचयेत् त्रिरभ्यस्तोयथान्यायंशूद्रहत्यान्यपो हति=अर्थात् यह तप्त नामा कृच्छ्र दो बार साधन कियाहुआ उपपातकोसे छुड़ाता है सेसेही यथा न्याय तीनबार साधन कियाजाय तो यह शूद्र मारेकी इत्यासे छुड़ाताहै (सेसेही बहिया पातकों पर तीनसे भी अधिक आठत्ती कल्पित करोजाय समुभिलेना कोकि यथा न्यायका ध्वन्यर्थ यहीहै=उशनाने भी यही तात्पर्य दर्शायाहै कि कहे विनकहे सर्व पापोंपर हरकोईसा प्रायश्चित्त लगाया जासक्ताहै =यथा=यत्रोक्तंयज्ञानोक्तं महापातकनाशनम् प्राजापत्येनकृच्छ्रेणशौचयेचाश्रमं यः=अर्थात्-जहाँ उसकानाम कहिके जतायाहो या जहाँ कहीं नहीं भी कहाहो तो भी महापातक पर्यन्त नाशकरताहै तिससे जहाँचाहें वहाँ प्राजापत्यनामी कृच्छ्र से पापोंका विशेषण करे कुछ सन्देह नहीं (सर्वत्र कहिनेका वही तात्पर्य है कि जैसा पाप हो तैसी आठत्ती बढावै=मिताक्षरा कार कहिते हैं कि प्राजापत्य आदि जिन व्रतोंके नाम अच्छे प्रसिद्ध हैं तिनको अनादिष्ट उपपातक आदि सभी में एक बार पापहोनेकी अपेक्षा यथा बारम्बारकिये अभ्यासोंकी अपेक्षा यथा संभवचाहें जुदे किसी एकही प्रायश्चित्तकी लगावै अर्थात् एकहीकी अनेक आठत्तीं जितनी चाहै तितनी बढावै अथवा प्रसिद्धमात्र सबही प्रायश्चित्त लगातारजोड़े अर्थात् एक पुरश्चरणा इसका एक उसका एक तीसरेका इत्यादि सबका वत्तीया लगातारकरै तो भी कुछ दोष या विरोध कभी नहीं है-तथैव-जिन महापातक आदि में विरले व्रतोंका आदेश लिखा होय तिन आदियों में भी यदि पाप का अभ्यास बारम्बार कियागयाहो तो फिर पापकी बढवारी अनुसार चाहें उसी आदिष्ट प्रायश्चित्तकी आठत्ति बढावै चाहै जुदे नामवाले व्रतोंको लेकर उस आदिष्टकेसाथ जोड़ि लेवै= फिर कहितेहैं कि इसीलिये यमने भी (यत्रोक्तयज्ञानोक्त) इत्यादि वचन जैसा उग्रनाका लिखागया तैसा कहाहै और=गौतमने भी उक्त निष्कृति पापोंके संग्रहात्थ ही सर्व प्रायश्चित्त ऐसा पद कहाथा-तथा-जो कि उन्होंने गौतमने (प्रथमंचरित्वा द्वितीयचरित्वा इत्यादि वचनमें यहकहाथा कि तीसरापुरश्चरणा करके सभी पाप मुचिजाताहै) सो यहसभी पापकहिना भी महापातकोंके अभिप्रायपरज्ञानना किन्तु

सबकहिनेसे तुच्छपापोंका प्रयोजनसतसमुत्तिलेना औरयह भी शोचौ कि महापातक
 ऐसा कोई नहीं जिसका प्रायश्चित्त न कहागयाहो तिससे उन्हींपापोंकायहप्रसंगहै
 कि जिनके ऊपर कोईसा प्रायश्चित्त भी यद्यपि लिखाहो तो भी प्राजापत्य आदि
 अन्य प्रायश्चित्तभी यथा सम्भवकिरी प्रयोजनकी जरूरतमें समस्त व्यस्त इकारों से
 जोड़े जासके हैं ॥ ० ॥ संप्रयोजनप्रकारः—अनन्तरोक्तव्रतादि प्रायश्चित्त किसी
 कार्यान्तरमेंजोड़ेजानेके प्रकारभी अनेक हैं सो यथा क्रमसे यहां दर्शते हैं कि—जिन
 पापोंपर बारहवर्षका प्रायश्चित्त लिखाहो तिनमें प्राजापत्य इस प्रकार से जोड़ा
 जासक्ताहै कि उन्हीं बारह वर्षों की अवधिमें अनेक प्राजापत्य साधन किये जायें तो
 यह परम उत्कृष्ट फल देने वालो एक विशेषता जानो सो पापके अतिशय गहिरापन
 में यह प्राजापत्य का आदेश करना सूचित होताहै—तिसका यहलेखाहै किप्राजापत्य
 नियमसे बारह दिनका प्रसिद्धहै तिससे एकमासमें आठहैं होतेहैं साक्षभरके पूरे तीस
 ह्रुयेबारहवर्षोंके ३६० तीनसौ साठ प्राजापत्य होतेहैं जहां पर इनका होना आव-
 प्रयकर्तारहैं तहां भी चिकित्से कियेजासक्तेहैं अर्थात् पराशक्तिभाव पृथक् करसकेगा
 अन्यथा जिसमें इतनी शक्ति न होय सो इतनी तीनसौसाठ धेनुका गोदानकरै अर्थात्
 बारह बारह दिनपीछे एकगोदान दूधदेतीहुई सबत्साका बारहवर्ष पर्यन्त करतारहैं
 तो भीउतने प्राजापत्य करनेका फल प्राप्त होताहै—यदि इसकाभीवानक असम्भवहो
 तो सौरह मासे सुवर्णाकी अशर्फीही तीन सौ साठ देनी चाहिये—जैसा यहस्मृत्यन्तर
 वचनहै—प्राजापत्यक्रियाऽशक्तौधेनुंदद्याद्विचक्षणः धेनोरभावेदातव्यंमूल्यंतुल्यमंसंश
 यत्—अर्थात्—जिसको प्राजापत्य करनेकीशक्ति न हो सेशा त्रिचक्षुरा पुरुष धेनुका
 दानकरै धेनुके अभावमें धेनुका मूल्यहीदेवै परन्तु निस्सन्देह धेनुके बराबर मूल्यहो
 जितनेमें आसक्तीहो—अथवा—जिसको बराबर भी देनेकी समर्थनहीं सो आधामूल्य
 देवै यद्वा सामान्यरीति से एक निठक अशर्फी धेनुका मूल्य समुभौ जैसा यह वचन
 है कि(गवामभावेनिठकस्यातदर्धपादमेववा) गीर्वाँके अभावमें निठकमूल्य कायम
 कियाजाय यद्वा उससे आधा वा चौथाई अपनी शक्तिकेसमान देवै—यदि कोई पृथक्
 मूल्य भी न देखके तिसको उतने दिन जलमें बासकरना चाहिये अर्थात् जितने प्रा-
 जापत्यों की जरूरतहो एक एक प्राजापत्य के बदले एक एक दिन जलमें बास करै
 (जलमें बैठनेका प्रकार ३०४ तीनसौ चौथे मूलश्लोकसे कहाथा उसी जघे समुत्ति
 लेना परन्तु वहां पर शत पापों के हेतु से थोड़े दिन कहे गए सो नियमात्सक नहीं
 किन्तु यहां प्रकाश पापोंके प्रसंगसे प्राजापत्यों की गिनतीसे कहागया) जल में भी

बैठना जिसपर न होसके सो गायत्रीका जपकरे कितना करे इसप्रश्नके उत्तरमें परा-
शरके अगिला वचनसे एक प्राजापत्यके बदले दशहजार गायत्री बारहदिनके कृच्छ्र
की बराबर सिद्ध होतीहै उस लेखसे ३६० प्राजापत्योंके स्थानपर ३६००००० कृ-
त्तीसलाख जप करना चाहिये जहां इनसे थोड़े प्राजापत्योंका बदल करनाहो तहां
भी इसी हिसाबसे एकही एक प्राजापत्य के बदले दशहजारका लेखा जोड़िलेना
क्योंकि बदला उन्हीं चीजोंसे होताहै जो आपसमें बराबरहों जिन बातोंका बदला
करना कष्टिके तिनकी तुल्यताका प्रमाण अगिला वचनदेखो=यदाहपराशरः=
कृच्छ्रोऽप्युत्तुगायत्र्याउद्वासस्तथैवच धेनुप्रदानंविप्रायसममेतच्चतुष्टयम्=अर्थात्-
प्राजापत्य नामी कृच्छ्र १ अयुत जप गायत्रीका २ एक दिनरातिजलमेंबैठना ३ दूधदेतो
हुई सवत्सागायत्राह्नगकोदेना ४ ये चारों परस्पर सब सबके बराबरकहातेहैं ॥ ० ॥
जो कि चतुर्विंशति मत ग्रन्थमें गायत्रीका जप कृत्तीसलाखसे बहुत बढकर बताया
गयाहै सो कुछ अशक्त पुरुषके नामसे नहीं किन्तु उसका जुदा तात्पर्य है=यथा=
गायत्र्यास्तुजपन्कोटिं ब्रह्महत्यांन्यपोइति लक्षाशीतिजपेष्टुष्टरापानादिमुच्यतेपु-
नातिहेमहत्तरं गायत्र्यालक्षसप्ततिः गायत्र्याःयष्टिभिर्लक्षैर्मुच्यतेयुरुत्तपगः (इतिहो-
दशवार्यिकतुल्यविधानतथोक्तं न पुनरशकवियर्यमिति न विरोध इति मितासरा=
अर्थात्-सौलाख गायत्री जप करनेसे ब्रह्महत्या सिटिजातीहै अस्सीलाख जपिकर
सुरापानके दोषसे छुटिजाताहै सत्तरिलाख जपिकर सवर्णाका इरनेवाला शुद्धहोता
है सार्विलाख जपिके गुरुवार गामी शुद्ध होताहै-इसमें चारों महापातकपर चतुर्विं-
शति मतवालोंने जुदी जुदी संख्याकहीं जो कृत्तीसलाखसे सब चारों संख्या बड़ी हैं
कोई भी कृत्तीसलाखके बराबर नहीं (इसकेमध्ये मितासराकार कहितेहैं कि जैसा
बारहवर्षका विधान कियाजाताहै तैसा एक यह भी जुदाविधानहै पर इसमें बारह
वर्षोंका कुछ नियम नहीं केवल जपकी संख्याकाही नियमहै चाहें कितनीहोवर्षों
में होसके और इसीसे यह ब्रह्मिया संख्या किसी अशक्त पुरुष के विषय पर नहीं
माना जासक्ती किन्तु ऊर्ध्वोक्त कृत्तीसलाखवाली थोड़ी संख्या सिर्फ अशक्त पुरुष
की अपेक्षापर बारहवर्षवाले प्राजापत्योंके बदले कायमहुईहैं तिससे इसमें बारहवर्ष
की अवधिवा भी नियम साथ लगाहैं कि उन्हीं वर्षोंमें जाकर जपकी संख्या पूरी
होय तिससे दोनोंकी ऊंचनीचसे कुछ विरोध नहींहै-इसीप्रकार औरभी प्रायश्चित्तों
के बदलहैं=कृच्छ्रोदेव्ययुतचैवप्राणायामशतहयसतिलहोमसहस्रंतुवेदपारायणतया=
अर्थात्-प्राजापत्य नाम कृच्छ्र जो बारहदिनका प्रसिद्धहै तिनकी एकही आट्टति १

देवी गायत्री दशहजारसंव २ प्राणायाम दोसौ ३ तिलकाहोम एकहजार आहुति ४ वेदसंहिता जो मंत्र ब्राह्मणारूप होतीहैं तिसकी एकहीपारायणा—ये पांचो परस्पर सब एकसेएक बराबर मानेगयेहैं तिससे इनका भी बदल आपसमें होताहै कि एक के बदले दूसरा किया जाय (इत्यादि चतुर्विंशति और मनु आदि शास्त्रोंके कहे आदेशरूपी प्रत्याम्नाय अनेक हैं) इन सब प्रत्येक जुदे जुदेको महापातकोंपर ० तीन सौसाठि ३६० से गुणाकर समझिलेना कि इतने चाहिये अर्थात् उक्त पांचोंमें सब से प्रथम कछ्छ एकही कहा तिसको तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो भी ३६० ही धंकर रहेंगे सोई तीनसौ साठि प्राजापत्यकरने पहिले भी कहिचुके हैं १ एवंगायत्री केदशहजार कहे तिन्हें यदि तीनसौसाठिसे गुणाकरोगे तो बेही ३६०००००० छत्तीस लाखहोंगे जो पहिले भी कहिचुके २ एवं प्राणायाम दोसौको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो ७२००० बहत्तर हजार प्राणायाम करने ठहिरेंगे ३ एवं तिलहोम एकहजारको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो ३६०००० तीन लाख साठिहजार आहुतें करनी ठहिरेंगे ४ एवं वेदकी पारायणा एकहीको यदि तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो ३६० तीनसौसाठि पारायणा करनी ठहिरेंगी ५—यह व्यवस्था यहाँतक परे महापातकोंपर कहोगई ॥ ० ॥ कदाचित् अतिपातकोंके प्रायश्चित्त पर लेखा करना होय जिनमें बारह वर्गके जगह नौवर्गका प्रायश्चित्त कहा गया था तिनमें प्राजापत्य भी चौथाई घटाकर तीनसौसाठि के जगह २७० दोसौसत्तर कियेजायेंगे तिनके बदलेमें जो चीजें कायमहोंगी वेभी चौथाईघटाकर मानीजायें अर्थात् जलमें बैठनाभी २७० दोसौसत्तर दिनकारहिजायगा या इतनीधेनुदेनी ठहिरेंगी याइतनी अशर्फी देनी यागायत्रीके संवृत्तीसलाखकेजगह २७००००० सत्ताइसलाख रहि जायेंगे याप्राणायाम बहत्तरहजारकेजगह ५४००० चौवनसहस्ररहिजायेंगे यातिल कीआहुतें तीनलाखसाठि हजारकेस्थान २७०००० दोलाख सत्तरहजार बाकीरहि जायेंगोया वेदकीपारायणा तीनसौसाठिकेस्थान चौथाई कटिकर २७० दोसौसत्तर बाकीरहिजायेंगे ॥ ० ॥ कदाचित् पातकनामके पापोंपरलेखा करनापर जिनमें बारह वर्गके जगहछः वर्गकेअर्थात् कहोगई थो तिनमें प्राजापत्य भी आधीसख्या घटाकर सिर्फ आधेके १८० एकघो अस्सी रहिजायेंगे उनके बदलको चीजें भी धेनु याअशर्फी या वेदके पाठ या जल में बैठने के दिवस उतनेही एकघो अस्सी अरबो माने जायेंगे या गायत्री का जप अठारह लाख १८००००० या प्राणायाम बहत्तर हजारके स्थान ३६००० छत्तीस हजार करने होंगे या तिलकी आहुतें तीन लाख साठिहजार

के स्थान १८०००० एकलाख अस्सी हजार करनी होंगी=इन बातोंका प्रमाण आगे चतुर्विंशति मत का वचन भी देखो=यथा= जन्मप्रभृतिपापानिवहृतिविविधानिच कृत्वावर्गब्रह्महत्यायाः यद्वन्द्वन्तमाचरेत् प्रत्याम्नायेगवादेयं साशीतिवनिनाशतम तथाष्टादशलक्षारिणा गायत्र्यावाजपेधः= अर्थात्-जन्म से लेकर बहुत पाप अनेक भोंतिसेभी कियेहों परन्तु ब्रह्महत्यासे उधर समझनातौ उनपापोंकी शुद्धि चाहिकर छः वर्षभर प्राजापत्य आदि व्रतका आचरण करै यदि व्रतोंकी प्रक्रिया जिसपर न होसके सो आदेश हृषी (प्रत्याम्नाय) बदलमें १८० एकसौ अस्सी गौर्ये धनवाह होने से देवै यथा धनी नहै सो बदलेमें अठारह लाख गायत्री जपे जो पण्डित होय अन्यथा यहभी नहीं तो फिर जलमें बास करना आदि जो कुछ पहिले कहा वही बदला दियाजाय (ब्रह्महत्यासे उधर कहा उसका यही तात्पर्यहै कि ब्रह्महत्याआदि महापातक जिसने कियाहो वह छः वर्ष नहीं परे वारहवर्षका व्रतकरै और बदले की सब चीजें दूनी करै जिनसे उसे प्रयोजन परै ॥ ० ॥ कदाचिद्व उपपातक नामके सेसे पापों पर लेखा करना परै कि जिनके लिये वैवर्षिक प्रायश्चित्त का नियम कहा गयाहो० तिनमें प्राजापत्य भी तीनसौ साठिकी चौथाई सिर्फ १० नव्वे रहि जायेंगे इसी प्रकार इनके बदलकी सब चीजें चौथाई चौथाई रहि जायेंगी जोसब से ऊपर जितनी तीनसौ साठि प्राजापत्यां के साथ कही गईयों ॥ कदाचिद्व तीन सहीना के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर लेखा करना परै तहां एक सहीनेमें अठ्ठाई प्राजापत्य के हिसाब से सादेसात प्राजापत्य ठहरे उनके बदल में उतनेही घेनुदान या उतनी ही अशर्फी सोरह मासे वाली या उतनेही वेद पाठ करने होंगे या उतने सादे सात रोज जल में बास करने होंगे और ७५००० पचहत्तरि हजार गायत्री मन्त्र या १५०० पन्द्रह सौ प्राणायाम या तिल होमकी आहुति ७५०० साढ़े सात हजार करनी चाहिये ॥ ० ॥ कदाचिद्व ऐसे उपपातकोंपर लेखा करना होय जिनमें एकही मासका व्रत करना कहागयाहो तहां यह स्पष्ट है कि वारह दिनके प्राजापत्य अठ्ठाई करने होंगे अथवा उनके बदल में अठ्ठाई घेनु या अठ्ठाई घेनुका मन्त्र यथा अठ्ठाई वेद पारायण या अठ्ठाई दिन जल में बास करना अथवा २५००० पचीस हजार जप गायत्री का यथा ५०० पाँच सौ प्राणायाम या तिल होमकी आहुति २५०० अठ्ठाई हजार ॥ अथचांद्रायण स्थानेप्रत्याम्नायः-जहां प्रायश्चित्त इस व्योरा साथ लिखाहो कि एक सहीना चान्द्रायण करै तहां उस चांद्रायण के बदले यदि प्राजापत्य किया चाहै तो फिर

देवी गायत्री दशहजारमंत्र २ प्राणायाम दोसौ ३ तिलकाहोम एकहजार आहुति ४ वेद संहिता जो मंत्र ब्राह्मणारूप होती हैं तिसकी एकही पारायणा—ये पांचों परस्पर सब एकसे एक बराबर मानेगये हैं तिससे इनका भी बदल आपसमें होता है कि एक के बदले दूसरा किया जाय (इत्यादि चतुर्विंशति और मनु आदि शास्त्रों के कहे आदेशरूपी प्रत्यास्नाय अनेक हैं) इन सब प्रत्येक जुदे जुदे को महापातकोंपर ० तीन सौसाठि ३६० से शुद्धाकर समझिलेना कि इतने चाहिये अर्थात् उक्त पांचोंमें सब से प्रथम कुछ एकही कहा तिसको तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो भी ३६० हो छक रहेंगे सोई तीनसौ साठि प्राजापत्य करने पहिले भी कहि चुके हैं १ एवं गायत्री के दशहजार कहे तिन्हें यदि तीनसौसाठिसे गुणा करोगे तो वेही ३६००००० छत्तीस लाख होंगे जो पहिले भी कहि चुके २ एवं प्राणायाम दोसौको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो ७२००० बहत्तर हजार प्राणायाम करने ठहिरेंगे ३ एवं तिलहोम एकहजारको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो ३६०००० तीन लाख साठि हजार आहुतें करनी ठहिरेंगी ४ एवं वेदकी पारायणा एकहीको यदि तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो ३६० तीनसौसाठि पारायणा करनी ठहिरेंगी ५—यह व्यवस्था यहोतब पर महापातकोंपर कही गई ॥ ० ॥ कदाचित् अतिपातकों के प्रायश्चित्त पर लेखा करना होय जिनमें बारह वर्षके जगह नौवर्षका प्रायश्चित्त कहा गया था तिनमें प्राजापत्य भी चौथाई घटाकर तीनसौसाठि के जगह २७० दोसौसत्तर क्षिपे जायेंगे तिनके बदलेमें जो चीजें कायम होंगी वेभी चौथाई घटाकर मानी जायें अर्थात् जलमें बैठना भी २७० दोसौसत्तर दिनकारहि जायगा या इतनी धेनु देनी ठहिरेंगी या इतनी अग्रणी देनी या गायत्री के मंत्र छत्तीस लाख के जगह ३७००००० सत्ताइस लाख रहि जायेंगे या प्राणायाम बहत्तर हजार के जगह ५४००० चौवन सहस्र रहि जायेंगे या तिल की आहुतें तीन लाख साठि हजार के स्थान ३७००० दो लाख सत्तर हजार बाकी रहि जायेंगी या वेदकी पारायणा तीनसौसाठि के स्थान चौथाई कटि कर ३७० दोसौसत्तर बाकी रहि जायेंगे ॥ ० ॥ कदाचित् पातकनाम के पापों पर लेखा करना परे जिनमें बारह वर्षके जगह छः वर्षके अर्थात् कही गई थी तिनमें प्राजापत्य भी आधी संख्या घटाकर सिर्फ आधे के १८० एकसौ अस्सी रहि जायेंगे उनके बदलकी चीजें भी धेनु या अग्रणी या वेदके पाठ या जल में बैठने के दिवस उतनेही एकसौ अस्सी अस्ती माने जायेंगे या गायत्री का जप अठारह लाख १८००००० या प्राणायाम बहत्तर हजार के स्थान ३६००० छत्तीस हजार करने होंगे या तिलकी आहुतें तीन लाख साठि हजार

के स्थान १८०००० एकलाख अस्सी हजार करनी होंगी=इन बातोंका प्रमाण आगे चतुर्विंशति मत का वचन भी देखो=यथा= जन्मप्रभृतिपापानिवहृतिविविधानिच कृत्वावर्गाग्रहहत्यायाः यद्वन्द्वन्तमाचरेत् प्रत्याम्नायेगवादेयं साशीतिवर्तिनाशतम तथाष्टादशलक्षारिणा गायत्र्यावाजपेहधः= अर्थात्-जन्म से लेकर बहुत पाप अनेक भोंतिसेभी कियेहों परन्तु ब्रह्महत्यासे इधर सम्भजनातौ उनपापोंकी शुद्धि चाहिकर छः वर्षभर प्राजापत्य आदि व्रतका आचरण करै यदि व्रतोंकी प्रक्रिया जिसपर न होसके सो आदेशरूपी (प्रत्याम्नाय) बदलमें १८० एकसौ अस्सी गौर्य धनवाह होने से देखै यद्वा धनी नहो सो बदलेमें अठारह लाख गायत्री जपै जो पण्डित होय अन्यथा यहभी नहीं तौ फिर जलमें बास करना आदि जो कुछ पहिले कहा वही बदला दियाजाय (ब्रह्महत्यासे इधर कहा उसका यही तात्पर्यहै कि ब्रह्महत्या आदि महापातक जिसने कियाहो वह छः वर्ष नहीं पूरे बारहवर्षका व्रतकरै और बदले की सब चीजें दूनी करै जिनसे उसे प्रयोजन परै ॥ ० ॥ कदाचित् उपपातक नामके ऐसे पापों पर लेखा करना परै कि जिनके लिये वैवार्यिक प्रायश्चित्त का नियम कहा गयाहो । तिनमें प्राजापत्य भी तीनसौ साठकी चौथाई सिर्फ १० नब्बे रहि जायेंगे इसी प्रकार इनके बदल की सब चीजें चौथाई चौथाई रहि जायेंगी जोसब से ऊपर जितनी तीनसौ साठ प्राजापत्यों के साथ कही गईथी ॥ कदाचित् तीन सहीना के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर लेखा करना परै तहां एक सहीनेमें अठ्ठाई प्राजापत्य के हिसाब से सादेसात प्राजापत्य ठहरे उनके बदल में उतनेही धेनुदान या उतनी ही अशर्फी सोरह मासे वाली या उतनेही वेद पाठ करने होंगे या उतने सादे सात रोज जल में बास करने होंगे और ७५००० पचहत्तर हजार गायत्री मन्त्र या १५०० पन्द्रह सौ प्राणायाम या तिल होम की आहुति ७५०० सादे सात हजार करनी चाहिये ॥ ० ॥ कदाचित् ऐसे उपपातकोंपर लेखा करना होय जिनमें सकही मासका व्रत करना कहागयाहो तहां यह स्पष्ट है कि बारह दिनके प्राजापत्य अठ्ठाई करने होंगे अथवा उनके बदल में अठ्ठाई धेनु या अठ्ठाई धेनुका मन्त्र यद्वा अठ्ठाई वेद पारायण या अठ्ठाई दिन जल में बास करना अथवा २५००० पचीस हजार जप गायत्री का यद्वा ५०० पाँच सौ प्राणायाम या तिल होमकी आहुति २५०० अठ्ठाई हजार ॥ अथचांद्रायण स्थानेप्रत्याम्नायः-जहां प्रायश्चित्त इस व्यौरा साथ लिखाहो कि एक सहीना चान्द्रायण करै तहां उस चांद्रायण के बदले यदि प्राजापत्य किया चाहे तो फिर

(अर्द्धाई नहीं) तीन प्राजापत्य करने चाहिये जो इसमें असमर्थ हो सो तीनही तीन कोईसा प्रत्याम्नाय उसके बदले करै अर्थात् चाहें तीन धेनुदान या उनका मूल्य या तीन दिन जलमें बास या वेदकी संहिताके तीन पाठ या ६०० ऋषी प्राणायाम या तीसहजार ३००० गायत्रीमन्त्र या तीन हजार ३००० तिलहोमकी आहुतें— इसव्यवस्थापर—मितासराकार कहितेहैं कि (अष्टौचान्द्रायणोदेव्याः प्रत्याम्नायविधौ सदा) यह चतुर्विंशति मत ग्रंथमें जो कहाहै कि० चान्द्रायणाके बदलारूपी प्रत्याम्नाय की विधिमें सदाही गायत्री देवीके आठहजार चाहिये—तर्पण (धनिः पिपीलिका मधादिचान्द्रायणविययसितिमितासरा) अर्थात्—वह चतुर्विंशति मतका कहा भी धनीकेलिये पिपीलिकासम्य आदि नामोंके चान्द्रायणपर प्रत्याम्नाय बदलाकरनेका विषय जानना यह मितासरा ने कहा ॥ ० ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्यप्रत्याम्नायः— किन्तु मितासराकार कहितेहैं कि जब कभी ऐसे उपपातकों में प्राजापत्यका लेखा करनापरै जिनमें एकमहीनाभर अतिकृच्छ्र करनेकी आज्ञालिखी होयतहाँ (तीनमहीना भरमें) साढ़ेसात प्राजापत्यकरने चाहिये—परन्तु—मर्यादा प्रियके विचारसेजहाँ एक महीनाभर कृच्छ्राति कृच्छ्र करना लिखा हो तिसकेबदले जबकिसीकी प्राजापत्य करने स्वीकार हैं तहाँ साढ़े सात प्राजापत्य करने चाहिये जो तीन महीना में पूरे होंगे (बल्कि इसीका प्रमाण आगे चतुर्विंशतिके वचनमें भी देखिलेना) और जो अति कृच्छ्र एक महीनाभर करने की आज्ञा लिखी हो तहाँ दोमहीना भर पाँचही प्राजापत्य करने चाहिये क्योंकि अति कृच्छ्र प्राजापत्य से दूने दर्जे में होताहै तिथने में नहीं और कृच्छ्राति कृच्छ्र प्राजापत्य से तिथने दर्जेमें होताहै अर्थात् जितनी कठिनाई बारह दिनकी प्राजापत्य में होती है तिससे द्विगुणा कठिनता बारह दिनके अति कृच्छ्रमें होतीहै इसका निर्णाय आगेफिर भी किया जायगा—जब कि प्राजापत्य से अति कृच्छ्र की प्रतिष्ठा दूनी ठहरी तो फिर कृच्छ्राति कृच्छ्र की प्रतिष्ठा प्राजापत्य से आपही तिथनी ठहरी क्योंकि उसमें व्रतके दिवसोंकी संख्या अधिक होनेसे बह्मापनप्रत्यसहै—जिसकी कृच्छ्रातिकृच्छ्रके स्थानीभूतसात साढ़ेआठप्राजापत्य की सामर्थ्य न हो सो बदले में साढ़ेसात धेनु दान या उनका मूल्य की अशर्फी साढ़े सात या साढ़ेसात रोजतक जलमें बास करै या साढ़े सात वेद की पारायणा पाठ या पचहत्तर हजार ७५०० गायत्रीके मंत्रजपै या पन्द्रहसौ १५०० प्राणायाम करै या तिल होमकी आहुतें साढ़ेसात हजार ७५०० होमैं—इसीप्रकार—जिसकी अतिकृच्छ्र के स्थानापन्न पाँचप्राजापत्योंकी सामर्थ्य न हो वह बदले में पाँचधेनु दान या मूल्य

की अशर्फी पाँच या पाँच रोजतक जलमें बासकरै या वेदकी पारायणा पाँचपडै या गायत्री का जपही ५०००० पंचास हजार या प्राणायाम १००० एक हजार करै या तिलहोमकी आहुतै ५००० पाँचहजार होमै ॥ ० ॥ प्राजापत्य आदि व्रतोंके परस्पर जो छोटाई या बड़ाई होतीहै तिसका कारण उनके दिवसोंकी संख्यासेभी होताहै परन्तु जहाँ परस्पर दोनोंके दिवस बराबरहों तहाँ जिसमें कठिनता अधिक होतीहै सो बड़ा उद्दिष्टहै। तहाँ कितनी बड़ाई या कितनी छोटाई किसकी मानी जाय इस भेदका समझानेवाला चतुर्विंशतिका अग्रोक्त वचन देखौ—यथा=प्राजापत्युत्तुगामेकांदयात्सांतपनेद्वयं पराकतप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रे तिसस्तुगास्तथा=अर्थात्—प्राजापत्यके बदले एक गोदानकरै सांतपनके बदले दोगायदेवै पराक व्रतके बदले और तप्तव्रतके बदले और कृच्छ्राति कृच्छ्रके बदले तीनतीन गोदानकरै तब उनकी बराबर बदला उद्दिष्ट और अति कृच्छ्रका नाम यद्यपि चतुर्विंशति के वचन में नहीं आया तौ भी उसके बदले में उद्दिष्ट जहाँ समझी जाय तहाँ से साथ देनीचाहिये क्योंकि कृच्छ्रातिकृच्छ्र से वह छोटा और प्राजापत्य से बड़ा है मध्यम न्याय उसका यही सिद्ध होताहै—यहाँ—प्राजापत्य की अपेक्षा सांतपन में दूना बड़ापन पायागया क्योंकि दोगाय देनीकहीं (और सांतपन छोटे वडे कई दर्जोंके होतेहैं) तिससे ३१६ तीनसौसौरहकी अधिकोक्तिमें उसकेवचनसे १५पंद्रहदिनका और जाबालके वचन से २१ इक्कीस दिनका महासांतपन कहागया था उनके मध्ये यह दोगायवाला बदल समझना क्योंकि प्राजापत्य की अपेक्षा दूनापन उन्हीं में पायागया—और तीन सौ पंद्रह ३१५की अधिकोक्ति में जाबाल के वचनसे सातदिनका तथा ३१६तीनसौ सौरह मूलश्लोक में योगीश्वर के वचन से भी सातदिन का सांतपन कहा गया था तिसके बदले में एकही गोदान समझिलेना क्योंकि वह अपने प्रभावसे एक प्राजापत्यकी बराबर मानाजाताहै—और तीनसौ पंद्रह ३१५ मूल श्लोक में योगीश्वरके वचन से तथा उसकी अधिकोक्ति में शखजीके वचन से तीन दिनका यति सांतपन भी कहाथा इनदोनोंमें आधगोदान समझिलेना क्योंकि ये अर्धप्राजापत्यकी बराबर मानेजाते हैं इस आधेका प्रमाण आगे यद्विंशन्मत के वचन में देखना जहाँ (सांतपनस्यचाप्यर्थ) यही पाद आवैगा (ऊर्ध्वोक्तचतुर्विंशति के वचन में दद्यात्सांतपनेद्वयं यह पाद जो आया था तिसकी व्याख्या मिताक्षरा में कुछ नहीं यद्यपि लिखीथी तौभी इतना बिस्तार उसका सिद्ध भया सो स्थापन कियागया और यही व्याख्या निर्विकार जानौ (अत्रनिष्प्रयोजनीयाचव्याख्या) इसकीछोटिके सि-

ताक्षराकारने भी कुछ व्याख्या जो दर्शाई तिसमें एक बोखाहे कि उन्होंने (पराक तप्त कृच्छ्रातिकृच्छ्र) इसीचतुर्विंशति के वचन में ऐसा पदच्छेद (पराक० तप्तकृच्छ्र० अतिकृच्छ्र) माना तिससे कई विरोध खड़ेहुये बल्कि कृच्छ्रातिकृच्छ्र के न रहनेसे अति कृच्छ्रही के दोषभेद उनको माननेपर जो अर्थार्थ में कुछ भेद नहीं है—यथाहुमिं ताक्षराकाराः (एतच्चैकैकग्रासमशीयादित्यैकैकग्रासपक्षेर्वेदितव्यं० पाणिपूराक्षपक्षे पुनर्धेनुद्वयमेव) अर्थात् वे कहिते हैं कि अतिकृच्छ्रके नामसे यह तीन गायवाला नियम उस अतिकृच्छ्र पर जानना जो नौदिन एक कीर खाने और तीनदिन कोरे उपवास करनेसे बारह दिनमें होता है—दूसरा एक मुट्ठीभर नौरोज अन्न खाकर ती- नि उपवासों सहित बारहदिनमें होता है तिसके बदले दोही गाय देनेचाहिये क्योंकि यह उससे कुछ सुगम देखि परता है—यहां भी—मर्यादा प्रियके विचारसे इन दोनोंमें बड़ापन छोटापन का कुछभेद नहीं है न दिवसों की संख्यामें कुछ भेद है दोनों प्रकार बारहदिनमें सिद्धहोतेहैं तहां योगीश्वरने मुट्ठी भर भात आदि कोई सा अन्न खाना कहा और सनुने एक ग्रासभर अन्नखाना कहा यह कुछभी भेद नहीं है क्योंकि एक ग्रास भी मयूर के आण्डे बराबर पहिले सिद्ध हो चुका है वही औरका आण्डा कुछ मुट्ठी भरसे कम नहीं होता अथवा जितना अन्न जिसके मुहमें एकवार में समाये सो भी ग्रास का परिमाण कहा गया था इस प्रकार से भी कुछ भेद नहीं पाया जाता है क्योंकि जिसके मुहमें जितना अन्न जामकैगा उसके हाथकी मुट्ठीमें भी उतनाही आसकैगा कुछ अधिक नहीं कि जिसके हेतुसे तीन और दो गायका बदला दोतरह माना जासकै (बल्कि इसी भेद की चाहना से मिताक्षराकार ने उस व्याख्या में एक ग्रास एक आँठरे भरका लिख दिया है कि जिससे मुट्ठी भरके सम्मुख उसमें छोटापन संसक्तिपरै सो इसलिये नहीं माना जासकता है कि सनुने जिस वचन में एक एक ग्रास खाना कहा तिसमें आमलक भरकी समस्या भी कुछ नहीं है) और जो मिताक्षरा कार ही के बर्णन का प्रमाण मानै कि जो कुछ लिखा सोई सही तौभी यह प्रश्रयखा होता है कि जब ऐसे अतिकृच्छ्र में तीन गोदान माने तौफिर कृच्छ्रातिकृच्छ्र जो सबसे बड़ा बाकी रहा तिसमें कितने गोदान किये जायँ इस- का कुछ भी उत्तर नहीं है—इतिप्रसंगादेवनिरर्थकव्याख्यानं—अथप्रकृतंप्रयोजनं—इन्हीं बहुधा विरोधोंकीदृष्टिसे ऊपरली व्याख्या जो मर्यादाप्रियनोंसबकरी सो निर्विघ्न जानौ कि—एकग्रासवाले और मुट्ठीभर भोजनवाले दोनों अति कृच्छ्र को वरावर मानिके दोनोंमें दोहीदो गाय दानकरनेका ठीक बदलहोगा और कृच्छ्राति

कृच्छ्र के बदले में तीनगोदान करनेहोगे जैसे चतुर्विंशति के वचन में स्पष्ट लिखे देखिले। उसी वचनमें पराक परभी तीनही गोदान करने कहेगये यद्यपि पराक भी बारहदिनका होताहै दिवसोंकी बड़ाई उसमें नहींहै परन्तु कठिनताका बड़ापन उसमें अधिक है कि बारहदिन कोरे उपवास करनेसे होताहै। उसीवचनमें तप्तनाम के व्रतपर भी तीनही गाय देनी कही गई और तप्तकृच्छ्र का विधान भी ३१८ तीनसौ अठारह मूलश्लोक आदि में सिर्फ चारदिनका फिर मनुके वचन से बारह दिनका भी कहा था इससे अधिक नहीं परन्तु वह अपनी कठिनता से बड़ा माना गया है कि उसमें बहुत गरम तपाये हुये घों दूध जल पीने होते हैं तिससे उसके बदले में तीनगाय देनी कहीं कुछ विरोध इसमें नहींहै। उसी चतुर्विंशतिके वचन में कृच्छ्रातिकृच्छ्र के बदले जो तीनगाय देनी कहीं तिसका बड़ापन दिवसों की अधिकतासे भी प्रत्यक्ष है कि तीनसौ इक्कीस ३२१ मूलश्लोक में योगोच्चरने २१ इक्कीस दिन थोड़ासा दूधपीकर साधन करना कहा और उसी जघे अधिकोक्ति में गौतमने बारहदिन जलपीके रहना कहा तो ये बारह भी इक्कीस के बराबर ठहरे क्योंकि उसमें नौदिनकी संख्या अधिक है परन्तु थोड़े दूधका सहारा देखि परताहै। गौतम के विधान में यद्यपि दिवसोंकी अर्वाध केवल बारह दिनकी है परन्तु केवल जल पीके बारहदिन काटने बड़े कठिन हैं कि जैसे पराकमें बारहदिन कोरे उपवास किये जातेहैं इसी कठिनतासे पराकपर तीनगायदेनी कहीयीं तैसे दोनोंतरहके कृच्छ्रातिकृच्छ्रों में तीन गाय न्यायात्मक ठहरीं—अतिकृच्छ्र बाकीरहा कि जिसका नाम चतुर्विंशतिके वचन में नहींहै तथापि उसके बदले में दोगाय देनी इस हेतुसे न्यायात्मक ठहरीं कि प्राजापत्य और कृच्छ्रातिकृच्छ्र दोनोंके बीच वाला दर्जा उसका प्रसिद्ध है और इसीलिये प्राजापत्यसे हियुगा उसकोमानतेहैं क्योंकि यद्यपि दिवसों की तादाद प्राजापत्य और अतिकृच्छ्र में भी बराबर बारह की होती है परन्तु सुगमता कठिनता के भेदसे आपस में छोटापन बड़ापन होताहै अर्थात् अति कृच्छ्र में नौदिन तक एकही ग्रास वा एकही मुट्ठी खाकर पीछे से निरन्तर तीनदिन कोरा उपवास करना होताहै तिससे पूरे बारह दिन उपवासही ठहरे और प्राजापत्य में तीनतीनदिन बाईस चौबीस आदि ग्रासोंको खाते हुये बीच बीच कोरा उपवास हर चौकड़ी में एकही करना होताहै अर्थात् तीन उपवास तीनजघे बँटिजाने से कठिनता नहीं रहती है तिससे येही तीन उपवास और नौदिन थोड़ा खाना परा तिसके भी तीनही उपवास के बराबर मानेगये इसप्रकारसे छदिनके बराबरकठिनता सिद्धहुई

और ऊपर अतिक्वच्छ्रमें बारहदिनकी कठिनता सिद्धहुई इसीसे देने आवेकामेद इन में होताहै इसीसे यहवात सिद्धहोतीहै कि छेदिनकी कठिनतावाले प्राजापत्य क्वच्छ्र में रुकनेनुदेनीकही तो फिर बारहदिनकी कठिनतावाले अतिक्वच्छ्रमें दोबेनुदेनीसिद्ध होगई कुछ सन्देह नहीं रहा ॥ ० ॥ एकादशगोदानस्यप्रत्याम्नायाः कदाचित् उस प्रायश्चित्त से प्राजापत्यका बदल करना परै जो चालीसवें परिच्छेद में दोसौ दोसति २६४ मूलश्लोक उत्तरार्ध से बताया था कि तीनदिन उपवास करिके दश गाय और एक आड़ू दृष्यभ दान करै—तहाँ इतने सब कृत्यके बदले साद्वेग्यारह प्राजापत्य करने चाहिये इस लेखसे कि दशप्राजापत्य दशगायके और एक दृष्यभ तथा तीन उपवास दोनो मिलाकर इसको बदले डेढ़ प्राजापत्य चाहिये जो इनको न करसके तिसके लिये पूर्वोक्त रीति से अन्यद्विकारके बदल बताये जायँ कि इतनेही साद्वेग्यारहदिन जलमें निवासकरै या वेदसंहिताकीपारायणा साद्वेग्यारह आवृत्ति करै अथवा एकलाख पन्द्रह सहस्र ११५००० गायत्री के मन्त्र जपै या ११५०० साद्वेग्यारह सहस्र तिलकी आहुत करै तोभी उसके बराबर प्रायश्चित्त मानाजाता है ॥ ० ॥ मासपयोव्रतस्यप्रत्याम्नायः कदाचित् उस प्रायश्चित्तसे प्राजापत्यों का लेखा करना होय जो दोसौपैसति २६५ मूलश्लोक में योगीश्वरने (पयसावापि मासेन) इसी तीसरे पादसे यह कहा था कि एक महीना दूधपीके व्रतकरै—तहाँ इस महीने भरमें दूध पीना छोड़ि के बदले में अढ़ाई प्राजापत्य किये जासक्ते हैं अथवा इन्हीं अढ़ाई के अनुसार अन्य बदल भी पूर्वोक्त रीतिके लेखे सहित कियेजासक्ते हैं ॥ ० ॥ पराकस्यप्रत्याम्नायः जिन उपपातकोंपर पराकव्रत करना लिखाहो जो बारहदिन कोरे उपवास करने से होताहै तिसको यदि कोई करना न चाहै तो बदलेमें तीन प्राजापत्य करने चाहिये जो बारह बारहदिनके हिसाब से छत्तीसदिन में पूरे होंगे परन्तु इनमें बाईस चौबीस आदि ग्रास खाकर करने की सुगमता कुछ होताहै इसीसे छत्तीसदिन बारहदिनके बराबर समझे जायँगे क्योंकि यही बराबरी पहिले चतुर्विंशतिके उस वचनसे भी सिद्ध हुईयो कि जहाँपराक व्रतकेस्थानपर तोनिगाय देनीकहीं तीनिगायकी न होनेमें तीन प्राजापत्य आदि अनेक बदल सिद्ध हुयेये क्योंकि एक गायकादान एक प्राजापत्य की बराबर होताहै—यही पराक व्रत की बराबरी आगे यद्विंशन्मत के वचन से प्रत्यक्ष देखि परती है—यथा=पराकव्रत क्वच्छ्रातिक्वच्छ्र क्वच्छ्रयचरेतसांतपनस्यचाप्यर्धमशक्तैव्रतमाचरेत्=अर्थात्-पराक-व्रत-क्वच्छ्रातिक्वच्छ्र-क्वच्छ्रयचरेतसांतपनस्यचाप्यर्धमशक्तैव्रतमाचरेत्=अर्थात्-पराक-

अर्थात् प्राजापत्य करै और सांतपनके न करसकनेमें अर्ध प्राजापत्यकरै (यहाँआधा प्राजापत्य बतानेसे गोदान भी आधाही बदले में करना विद्व होगा। तिससे सांतपन में छोटापन पाया गया। इसी लिये यहाँ पर उसी सांतपन की समझना जो सिर्फ दोही दिनमें या तीनदिनमें होना कहा था उसीकेबदले छेदिनमें आधाकच्छ करना ठीक जानी (वल्कि इसी मूल कारण से पूर्वोक्त चतुर्विंशति के वचन में भी जहाँ सांतपनके बदले दोगाथ देनोकहीं तहाँ प्राजापत्य भी दो ठहरे तहाँ इस छोटे सांतपनपर न समुझा चाहिये किन्तु वहाँपर बदलके बड़ापनसे ही सांतपन में बड़ापन पायागयाथा—इसीलिये पन्द्रह वा इसीस दिनके महासांतपनोंपर दोगाथोंका दान-या दो प्राजापत्य करने कहेये। फिर इन्हीं दोमेदोंके बीचमें जो सातदिनवाले सांतपन होतेहैं तिनपर एक पूरा गोदान या पूरा एक प्राजापत्य करना ठीक समुझना। किन्तु न्याय वही कहाताहै कि आवश्यक पदार्थोंका विभाग यथायोग्य होजाय जिनके परस्पर कुछविरोध बाकी न रहे॥ तत्पक्षच्छेत्सन्देहनिवारणं-तप्तनामो कृच्छ्रमें सन्देह बाकीरहा कि जिसकेबराबर बदलमें तीन गोदान या तीन प्राजापत्य रूपी कृच्छ्र करने कहेगये सो किस तप्तके बदले किये जाय क्योंकि तप्तकृच्छ्र भी छोटे बड़े कई प्रकारके देखिपरते हैं जैसा ३१८ तीनसी अठारह मूल श्लोक में योगीश्वरने चार दिनमें होनाकहा (उसीकी दूना करिके आठदिनमें भी होता कहीं सुनाहै) उसीका आधा दो दिनमें भी मितासराकारने उसी अधिकोक्तिमें दर्शायाहै कि गरम दूध धी जल तीनोंकी एकही दिन एकदौरे पीकर दूसरेदिवस कोरा उपवास करनेसे दोदिनका भी तप्तकृच्छ्र होताहै—फिर उसी अधिकोक्तिमें मनुके वचन से बारह दिन का तप्त कहागया उसका भी स्वरूप केवल वही है कि योगीश्वर के बताये चारदिन वाले की लगातार तीन बार करनेसे बारह दिन होतेहैं—इन्हीं बारह दिनका प्रमाण अत्रोक्त गौतमके वचनसे भी मिलता है कि (पयोधृतमुदकं वायु तप्तं प्रतिव्यहपिचेत्सतप्तकृच्छ्र इति गौतमः) अर्थात्—दूध धृत जल वायु इन चारोंकी गरम गरम तीन तीनदिन पीवै सो बारह दिनका तप्तकृच्छ्र कहाताहै यह गौतम ने कहा। परन्तु इससे अधिक दिन किसी ने भी नहीं कहे तिससे सबसे बड़ा बारह दिनका ठहिरा उसीके बदल मध्ये तीन गोदान या तीन प्राजापत्य ठहरे क्योंकि उसकी कठिनताके बड़ापनसे प्राजापत्योंकेद्वारा तिगुने छत्तीस दिन बदलमें देनेपर अन्त्यथा आठ दिन वालेपर दोही प्राजापत्य समझने और चार दिनवालेपर एकही प्राजापत्य समुझना और दोदिनके तप्तकृच्छ्रपर अर्ध ही प्राजापत्य जानना।

यह सन्देहका निपटारा भया अब इन सबही की तुल्यता समुभी चाहिये सो देखो
 ॥ ० ॥ तुल्यानां व्रतभेदानां तुल्यत्वनिरूपणं—ऊपरही व्यवस्थाओंपर सर्वत्र
 ध्यान करना चाहिये कि यद्यपि बारह दिनवाले प्राजापत्य एकही महीना में अ-
 द्वाइ सिद्ध होते हैं और इसीलिये हर एक महीने भरके व्रतोंपर अद्वाइ प्राजापत्योंका
 आदेश किया गया परन्तु चान्द्रायण एकमहीनामें कतिनाइसे होता है तिसके मध्ये
 उस कतिनाइ के बढ़ापन से तीन प्राजापत्यों का आदेश किया गया—उसके बाबि
 चतुर्विंशतिका वचन देखो जिसमें बारह दिनका पराक भी तीन प्राजापत्यों की
 बराबर ठहिरा—और उसी जय बारह दिनका तप्त कच्छ भी तीन प्राजापत्यों की
 बराबर ठहिरा—और उसी वचनमें इक्कीस दिनका कच्छातिकच्छ भी तीन प्राजा-
 पत्योंकी बराबर तथा जलपीकर बारह दिनवाला भी कच्छातिकच्छ तीन प्राजा-
 पत्यों के बराबर ठहिरा बल्कि अभी थोड़ी दूर ऊपर यदत्रिंशन्मत के वचन में भी
 उसीका उपाय समुक्ताया गया कुछ सन्देह शेष नहीं रहा—तिससे—सर्वथा यह नि-
 र्णय सिद्ध हो चुका है कि चान्द्रायण पराक तप्तकच्छ कच्छातिकच्छ ये चारों
 व्रत परस्पर बराबर माने गये और प्राजापत्यनामका कच्छ इनकी बराबर तब होवे
 कि जब उसकी निरन्तर तीन आठतियां पूरे छत्तीस दिनमें साधी जायें यह भी
 ऊपर सिद्ध हो चुका ॥ ० ॥ अथ प्राजापत्यानां च प्रत्याम्नायाः (प्राजापत्यानां
 स्थानेषु प्राजापत्यैस्तुलितानां निवेशनमित्यर्थः) अनन्तर लेख में तुल्यत्व निष्पत्ति
 होनेका फल यही है कि जहां कहीं जितने प्राजापत्योंकी जरूरत ठहिरै तहां उनके
 बहुत दिनोंवाली अवधिमें किफाईत शोचिकी अर्थात् थोड़े दिनोंमें निपटारा करना
 चाहिके चान्द्रायण आदि चारोंव्रत भेदमेंसे किसी एकहीका आदेश होसकता है कि
 जितने प्राजापत्योंकी संख्या होय तिससे तिहाई संख्या इनकी रक्की जाय—इसका
 दृष्टान्त जैसे बारह वर्यकी व्रत पर ३६० तीनसी साठि प्राजापत्य नियत हो चुके हैं
 तिनकी तिहाई संख्या १२० एकसीबीस चाहें चान्द्रायण करी चाहें पराक चाहें
 तप्तकच्छ चाहें कच्छातिकच्छ करी सबहीका बराबर फल होता है—तस्मादाहुर्मि-
 ताक्षराकाराः (चान्द्रायणपराकतप्तकच्छातिकच्छास्तु प्राजापत्यव्यात्मका द्वादश
 वार्यिकव्रतस्थाने विंशत्युत्तरशतसंख्यका अनुयेयाः तत्प्रत्याम्नायास्तु चेन्वादशत्रिंश
 याः पूर्वाक्ता एवेति मिताक्षरा) अर्थात्—ये चारों जुदे २ ही तीन प्राजापत्यों की
 बराबर होते हैं तिस से बारह वर्य वाले प्रायश्चित्त के स्थान पर इनकी एकसी
 बीस १२० ही संख्याका अनुष्ठान आदेश किया जावे परन्तु प्राजापत्य के बदल

वाली चीजें धेनु दान आदि इतनी संख्या से तिगुने करने होंगे अर्थात् जितने प्राजापत्यों के साथ पहिले (प्रत्यान्वायच्छपी) बदल कहेगये थे कि धेनु दान या वेद के पाठ आदि तिनकी तिहाई न होगी किन्तु वे उतनेही करने होंगे जिस पर चान्द्रायणा आदि न होसकें यह आशय यहाँसे आगे भी सर्वत्र समझे रहिना=इनी प्रकार=अति पातकों पर कि जहाँ २७० दोसौ सत्तर प्राजापत्य बताये थे उनकी भी तिहाई संख्या नब्बे ९० होती है इतनेही चान्द्रायणा आदि चारों में कोई एक प्राजापत्योंके स्थानपर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=पातक नाम के पाप जो अति पातकोंसे कुछ नीचे उनके समान कहे जातेहैं=जनपर १८० एकसौअस्सी प्राजापत्य बतायेये उनकी भी=तिहाई संख्या ६० तीनवीसी होतीहै इतनेही चान्द्रायणा आदि चारोंमें कोई एक प्राजापत्यों के स्थान पर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=तीनि वर्ग के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर कि जहाँ नब्बे ९० प्राजापत्य दहिराये थे उनकी भी तिहाई संख्या ३० डेढ़वीसी होतीहै इतनेही चान्द्रायणा आदि चारोंमें कोई एक प्राजापत्योंके स्थान पर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=गौ वध प्रायश्चित्तके स्थलपर जहाँ तीनि महीनेका गोव्रत कहा गयाहो तहाँ (गोसंडल नरिहाईके पीछे फिरना गोचर्म ओढ़ना गोव्रजमें रातिको रहिकर गौओं की सेवा चौकसी आदि करना गोमूत्र आदि पंचगव्यों का संप्रद करना इत्यादि बहुत बड़े भगव्दोंके हेतुसे उस व्रतको नहीं करना चाहे या किसी कारणसे वानक उसका न बनता दीखै (और साढ़े सात प्राजापत्यों का आदेश न करना चाहै तिससे उम्हीं तीन महीनोंमें चान्द्रायणा व्रतका आदेश करै जो पूरे तीनिही चान्द्रायणा किये जायें अथवा यदि इसमें भी कुछ दिवसोंकी कृपाइत चाहे तो फिर पराक या बारहदिन वाला तप्तकच्छ या कच्छाति कच्छ इन्हींमें से किसी को तीनि आठवीं आदेशकरै क्योंकि ये चारोही एकसे बराबर मानेगये हैं परस्पर इनके दिवसों की कसो बेशो पर कुछ तर्क नहींहै केवल कियाकी कठिनता या सुगमतासे न्याय इनका होताहै= इसी प्रकार=रुद्धा उपपातकों पर जहाँ एक महीने व्रत करना लिखा हो तहाँ भी एकही चान्द्रायणा योगीश्वरका कहा करना चाहिये कि जिसका डोल ३२४-३२५ तीनवी चौबीस और पचीस मूल श्लोकोंमें दो भाँति से योगीश्वरने कहा था=इनी प्रकार=सबसे छोटे प्रकीर्णक नामके पापों पर जहाँ जहाँ जित्त पाप के नाम साथ जो कुछ प्रायश्चित्त लिखाहो सो अवश्य छोटा होगा तिसके अनुसार समस्तभूषक के प्राजापत्यका एक पाद या दोपाद या पूराही प्राजापत्य आदेश कि राजासत्ताह

उभोके अनुसार प्राजापत्यके बदल भी जो जो पड़िले लिखे सो सब यथायोग्य लेखे सहित किये जासकते हैं—परन्तु जो उसी एक छोटेसे पापकी आठुति अनेकवार करी गईहों तो वह भी बड़ेपापों की गणना में आजाताहै तिससे चान्द्रायणा आदि चारो बड़े प्रायश्चित्तोंमें से भी कोई एक एकही बार या दो बार आदि लगातार कियाजा-सकताहै=मितासराकार कहिते हैं कि=इसी न्याय मार्गके अवलम्बसे औरभी जहाँ कहीं सदेह खड़ा होय तहाँ सेसीही कल्पना करनी चाहिये ॥ ० ॥ फिर कहिते हैं कि अथोक्त एक वृहस्पतिका वचन है तिसका भी उत्तान्त समझना चाहिये=यथा वृहस्पतिः=जन्मप्रभृतियत्किंचित्पातकंचोपपातकम् तावदावर्तयेत्कृच्छ्रं यावत्प्रष्टिशृणुभवेत्-इति (तर्हि द्वेऽवधेपरदारे उतिगौतमोक्तं वैचार्यिक समानविययं तथात्रै सासिक्तादिवियय भूतोपपातकावृत्तिविययवा० पातकपरामिधेयेचांडालादिस्त्रोगमे द्विरभ्यासविययंच) तत्र (ज्ञानात्कृच्छ्राब्दशुद्धिमज्ञानादेन्दवहयमिति सक्तद्विपूर्व गमनेकृच्छ्राब्दविधानात् तदभ्यासेद्विवर्यतुल्यंयत्किंचकृच्छ्रं विधानंयुक्तमेवेति मिता-सरा=अर्थात्-जन्म से लेकर जो कुछ पातक और उपपातक हुआहो तहाँ प्राजा-पत्य नामी कृच्छ्र को बारम्बार आठुती से घुमाकर लगातार तब तक साथे जब तक साठ कृच्छ्र पूरे होयें-वृहस्पति ने यह कहा इस पर मितासराकार कहिते हैं कि (यह साठ कृच्छ्रों का परिमान भी पातक मध्ये गौतम के कहे दो वर्य वाहो वियय के समान जानी जैसा गौतम ने कहा था कि साता भगिनी आदि अपने संबंधकी छोड़िके पराई दारा ओ कहातीहों तिनमें संगम करनेवाला दोवर्ष भर व्रत करै तैसा साठ कृच्छ्र भी पराई दारा एकवार गमन करनेके पातकपरजान-ना क्योंकि दोही वर्य में साठ प्राजापत्य पूरे होते हैं • तथा उपपातक उस भाँति के कि जिनके ऊपर तीन महीने या इससे भी थोड़ा दो महीने आदि का प्रायश्चित्त लिखा गयाहो उन्हीं पापोंको अनेक बार जिसने अभ्यास किया हो तहाँ भी अ-भ्यास की थोड़ी बहुत सीमा के अनुरूप साठ कृच्छ्रों तक प्रायश्चित्त की अवधि कल्पित होजाय यह तात्पर्य वा शब्दके विकल्प से समझि लेना • और इनसे बड़े पातक नामके पाप जो कहाते हैं तिनमें भी यह साठ कृच्छ्रोंकी पहुँच इस तीर से पाई जाती है कि चांडाली आदि स्त्रियोंमें दोबार संगम कियाहो तो इस पातकपर साठकृच्छ्र करने चाहिये क्योंकि) तहाँ चांडाली गमनका प्रायश्चित्त (ज्ञानात्कृच्छ्राब्द ज्ञानि द्विक इच्छा सहित संगम करनेसे एकवर्ष कृच्छ्र करना और बिना ज्ञाने धोखामें संगम करनेसे दो महीनेके चान्द्रायणा करना कहाहै • तो उस ज्ञानि

बुझि एकवार के संगम पर एक वर्ष भर कच्छ व्रत को विधानसेही यह बात सिद्ध होतीहे कि जब कोई पुंस्य चांडालीमें दुबारा आदि संगम का अभ्यास करे तिस को दोवर्ष के बराबर कच्छ करने चाहिये जो बारह दिन के हिसाब से दो वर्ष में साठि ६० कच्छ होतेहैं • तिससे बृहस्पतिके वचनमें साठि कच्छोंका विधान कछ अयोग्य नहीं ठहिरा ॥ ० ॥ और जो सुसन्तुका यह वचन है कि=प्रदप्यसकृदभ्य स्तंवाह्निपूर्वमघम्महत् तच्छुद्धत्यन्दकच्छे गामहतःपातकाहते-इति (तदप्युपपातका द्यावृत्तिविययं • तथा अज्ञानादेन्दवद्वर्यामिति यमोक्तैस्त्वद्वयविययभूतपातकावृत्तिवि- ययवेतिमितासरा=अर्थात्-जो पाप चाहें बड़ा भो हो और जानिके भी किया हो यहा अनेक बार उसका अभ्यास किया हो तो भी एक वर्ष भर निरन्तर लगातार कच्छ करनेसे वह पाप सब शुधि जाताहै पर महापापके बिना किन्तु एकसालभर के तीस प्राजापत्यसे महापातक नहीं नष्ट होसक्ताहै उसके लिये बढिया प्रायश्चित्त चाहिये-यह सुमन्तुने कहा (मितासराकार कहितेहैं कि यह अनेकबारका अभ्यास किया पाप जो तीसही प्राजापत्यसे मिटिजाना कहा सोभी उपपातक आदि छोटे पापोंका प्रयोजन समझिलेना • तथा बिनाजाने किये पाप के ऊपर दो चांद्रायणा यह यम के कहे दो चांद्रायणाके योग्य जे कोई पातक ठहिरें तिनकी कड़े आवृत्ति जिसपर बिना जाने होगई हों तिसके लिये भी यह तीस कच्छों वाला प्रायश्चित्त विकल्पसे समझना अर्थात् जहां किसी दूसरे प्रायश्चित्तकी मर्यादासे विरोध खड़ा होता हो तहां तो नहीं परन्तु जहां दूसरी मर्यादा से विरोध नहीं देखी तहां येही तीस कच्छ कराये जासक्ते हैं अन्यथा दूसरी मर्यादा जो प्रधानतासे उस पापके ऊ- पर आरुद्ध हुईहो उसीका बर्तावा करना होगा इसीलिये वा शब्दसे विकल्प रक्खा गयाहै ॥ ० ॥ असमवे-ब्राह्मणभोजन-एक यह विशेषता भी समझनी श्रेय रही कि जब कोई पुंस्य या स्त्री रोगग्रस्त होने आदि कारणों से जप तप करनेमें अस- मर्थहो परन्तु धन धान्यसे संपन्न होय तो वह अपने करने योग्य कच्छ आदि व्रतों के स्थानपर श्रेय विधान ब्राह्मणोंकी सद्भोजन देकर उक्त व्रतोंका फल पाता है सो करे • इसके मध्ये अग्रोक्त वचन देखी=यथा स्मृत्यन्तर=कच्छे पचातिहच्छे चिगुणा महरहस्त्रिंशद्वेवंतृतीयेचत्वारिंशत्तप्ते चिगुणितगुणितविंशति स्यात्पराके कच्छे सांतपनाख्येभवतियद्विधिकाविंशतिःसैवहीना हाम्यांचांद्रायणस्यात्पसिकृश्वलो भोजयेद्विप्रमुख्यान् (अहरहरितिसर्ववसवधनीय • तृतीयःकच्छातिकृच्छः अथ प्राजापत्य दिवसकल्पनया विद्वद्विप्राणां ययिभोजनभवतीति मितासरा=अर्थात्-

प्राजापत्य नामी कृच्छ्र के न कर सकने में बारह दिनतक पाँच ब्राह्मणों को नित्य
 म्रति उत्तम भोजन देता रहे • इसी प्रकार अति कृच्छ्र के न करने में तिथिने किंतु
 पंद्रह ब्राह्मणोंको नित्यजिमावै • इसीप्रकार तीसरे कृच्छ्रातिकृच्छ्र के न करने में तीस
 विद्वानों को जिमाता रहे • और तत्कृच्छ्रमें चालीस विप्रों को नित्य जिमावै • और
 पराक नामी कृच्छ्रमें नित्य प्रति एक बीसो तीनि शुनो गानकर जो संख्या होतीहो
 अर्थात् तीनिबीसो ब्राह्मणोंको जिमायाकरै • और बारह दिनवाले सांतपन नाम के
 कृच्छ्र में छब्बीस विप्रोंको नित्य जिमाया करै • और चांद्रायण के न करसकने में
 चौबीस विप्रोंको नित्यजिमावै वह प्रायश्चित्ती जो तपकरनेमें दुर्बलहोय (यहाँ सब
 सेपहिलेप्राजापत्यमें जोपाँचकहे सो बारह पंजेसाठि सब होतेहैं सेसेही औरों में स-
 मझलेना ॥०॥ एक चतुर्विंशति सतके वचनमें उक्त ब्राह्मणोंकी संख्या इससे थोड़ी
 देखि परतीहै कि=विप्राद्वादश वाभोज्याःपावकेष्टिस्तथैवच अन्यावापावनीकाचि
 त्सामान्याहुर्मनीयिराः इति प्राजापत्यस्थानेद्वादशविप्राणां भोजनमुक्तं तन्निर्वनविधय
 निर्तिमिताक्षरा=अर्थात्-प्राजापत्य या उसकेकोई बदल भी न कर सकै सो बारह
 विप्रोंको भोजनकरावै या पावकेष्टि जो पावक अग्निकेताससे वेदोक्त कर्म होता है
 वहीकरै या औरही कोई पावनीक्रिया होय इनकी मनोयी लौग बराबर बताते हैं
 (इसमें प्राजापत्य के स्थानपर एकही एक रोज अथवा एकही दिन इकट्ठे बारह
 जिमानेकहे सो यह अतिनिर्धन प्रायश्चित्तीके निमित्तपरजानना यह मिताक्षराकार
 ने समझाया ॥ ० ॥ और उसी चतुर्विंशति सतमें एक दूसरे वचनसे चांद्रायण के
 स्थान भूत आदेश भी कहेहैं=यथाचांद्रायणोमृगारिष्टिःपावनेष्टिस्तथैवच मित्र विंदा
 पशुश्चैव कृच्छ्रं मासं प्रत्यया नित्यनैमित्तिकानांच काम्यानांचैव कर्म्मणाम् इत्यानां
 पशुबन्धानामभावे चरद्भ्युग-इति (तदपि चांद्रायणाशक्तस्य=यत्कृच्छ्रं मासं प्रत्य
 तथैति कृच्छ्रायकंप्रत्याग्यातं तदपि बतरसखीविषयं चांद्रायणाधिभिः कृच्छ्रैरिति
 दर्शितत्वाद्बलमतिप्रसंगेनेति मिताक्षरा=अर्थात्-चांद्रायण के स्थानमें मृगारि इष्टि
 नामका वेदोक्त कर्म्म या पावन इष्टि कर्म्म जो अग्निके पावन इस नामसे कहाता
 है या मित्रविन्दा पशु नामका कर्म्म या तैसाही तीन महीने का कृच्छ्र व्रत जानौ-
 इसकोसिवाय-नित्यकर्म्मोंके या नैमित्तिकोंके या काम्य कर्म्मों के भी या पशुबन्ध
 नाम की इष्टियों के अभाव में (अर्थात् इनमें से कोई कर्म्म जिसे करना चाहिये
 उससे वह न होसके तो यह न होनाही अभाव कहाता है तिस अभाव के स्थान में
 (चरवःस्पृताः) खीरि आदि साकल्य करने कहे इसका यही तात्पर्य है कि उन

कासोंके बदले होम करदियेजायँ—यह चतुर्विंशति मत्तका कथनहै। इसमें मिता-
सराकार केवल एक चान्द्रायणको प्रयोजनपर कहिते हैं कि (यह नियम सिर्फ उ-
सकेलिये जो चान्द्रायणको न करसके और जो चान्द्रायण के स्थानपर तीनसहीना
के आठ वा साढ़े सात कृच्छ्र करने कहे सो उसके लिये जो विस्तृत मूर्ख और श-
रीरसे मज्जतहो क्योंकि पहिली मुख्य व्यवस्था में कहिचुके हैं कि चान्द्रायण के
स्थानपर तीनकृच्छ्र कियेजायँ तो यहतीन और आठके अन्तरसे बड़ा विरोधआवे
सो भी उस विरोधके दूराने हेतु चर्चा माव कियागया कुछ आठसे प्रयोजन यहाँ
नहींहै ॥ ० ॥ ध्यान करो कि यह परिच्छेद बहुत बड़ाहै और यह भी ठीकहै कि
इतना विस्तार नहीं किया जाता तो इस बातोंका समुझपाना दुर्घट होता—परन्तु
इतने विस्तारका तात्पर्य केवल वहीहै जो परिच्छेद के प्रारम्भ और चक्रमें कहि
चुके और इतने बड़े विस्तारका सारमात्र योगोच्चरने सिर्फ सोरह अक्षरोंसे जताया
था देखो तीनसौ सत्ताईसका पूर्वार्ध मूलश्लोक ॥ ३२७ ॥ इसीका उत्तरार्ध अगिले
परिच्छेदमें जाकर काम आवेगा अर्थात् उसमें विषय दूसरा जानो ॥

इतिप्रत्याम्नायानांपरिच्छेदः समाप्तः ॥

(प्रकरणांचासौ)

इत्यनादित् प्रायश्चित्तोपायभेदेषु आदेशि-
कप्रत्याम्नायानांयुक्तिप्रकरणं ॥

इस प्रकरणा में केवल एकही ८७ सत्तासीका परिच्छेद है अर्थात् इतने लम्बे
परिच्छेदमें एकही प्रयोजनकी वार्त्ता वर्णन करोगई तिससे यह आपही परिच्छेद
और आपही प्रकरणाका रूप मानागया है ॥

अथ धर्मार्थेपिचान्द्रायणकृच्छ्रादीनामुभयत्रफलसाध

नत्वम्भवतीतिगुणप्रकाशकोयंतथास्यचशास्त्रस्यफ

लप्रदर्शकोयंपरिच्छेद अष्टाशीतितमोऽंतिमश्च(८८)

सबसे पहिला यही परिच्छेदहै—इस परिच्छेद अत्तासीमें यह बात जानीजायगी
कि चान्द्रायण कृच्छ्र आदि की मावना कुछ प्रायश्चित्तहो के निमित्त नहीं होती

ब्रह्मिक जन्मान्तर के पापों का उदय रूप दुर्भाग्य आदि शोचन करना चाहिके भी होती और केवल पारलौकिक पुण्य रूपी धर्म चाहिके भी होती है या केवल इसी लोकमें प्रतिष्ठा आदि श्रेष्ठ फलको चाहिकर भी होती है या दोनों लोक में साधारण फलकी चाहसे भी होती है या केवल अपने मोक्षफलकी चाहसे भी होती है इत्यादि—इनके सिवाय—सर्व धर्म शास्त्र के पढ़ने और सुनने और घर में पुस्तक राखने आदि यद्वासे जो कुछ फल होते हैं सो भी सब इसी परिच्छेदमें ॥

(चान्द्रायणस्यधर्मार्थत्वं)

धर्मार्थयश्चरेदेतच्चंद्रस्येति सलोकताम् ३२७

अर्थः—यही चान्द्रायण जो कोई अपने अभ्युदयकी कामनासे धर्महीके निमित्त साधनकरे सो चन्द्रलोक में पहुंचता है ॥ ३२७ ॥

३२७अधिकोक्तिः—तात्पर्य इसका यही है कि प्रायश्चित्तको जल्दतर होने विना भी यदि अपना पुण्यफल प्राप्त होना चाहिके साथे सो चन्द्रलोक में अर्थात् चन्द्रलोक भी एक प्रकारका स्वर्गही जुदा होता है तहाँ पहुँचै—सो यह फलभी एक वर्ष भर साधना करनेमध्ये जानना क्योंकि अग्रोक्त गौतम की वचन में यही तात्पर्य है—यदाहगौतमः= एकमाप्त्वाविषापोविषाप्मासर्वमेनोहंति द्वितीयमाप्त्वादशपूर्वाद् दशपराद्आत्मानंचैकविंशंप्रतिचपुनरिति संवत्सरंचाप्त्वाद्द्वयमसः सलोकतां प्रजति= अर्थात्—श्रेष्ठ विधिकेसाथ एकचान्द्रायण पूराकरिपाइके उनपापोंसे रहितहोजाता है जो उसके संचितहोयें—पापरहित पुरुष आगामी सबतरह के पापोंको हराता है—फिर दूसरे चान्द्रायणकी ठीक ठीक साधिके अपने दश पहिले पुरुषा और दश अगिली संतानोंको और बीचमें इसीसर्वे निज आपेको भी पवित्र करता है इसीप्रकार तीसरे आदि चान्द्रायणों से फलकी वृद्धि होते होते वर्ष भर में बारह चान्द्रायण अच्छे साधिके चन्द्रमाके लोकमें स्वर्ग सुख भोगता है ॥ ३२७ ॥

(कृच्छ्राणामपिधर्मार्थत्वं)

कृच्छ्रकृद्दर्मकामस्तुमहतींश्रियमाप्नुयात् । तथागुरुकृतफलंप्राप्नोतुसुसमाहितः ३२८

अर्थः—धर्मकी कामनासे कृच्छ्र करनेवालाबड़ी शी प्रतिष्ठा आदि लक्ष्मीको पावे जैसे गुरु यज्ञोंका कर्ता समाहित होके अपने फलको पाता है—अर्थात्—जैसे राजसूय आदि बड़े बड़े यज्ञोंका करने वाला यज्ञोंका फल (अर्थात् अपने राज्य आदि रूपों

से बड़े फलकी) पाता है तैसे यह पुरुष भी पाजापत्य आदि कई भांतिके कृच्छ्रोंको
अथवा एकही किमी कृच्छ्रको समाहित होके संपूर्ण व्रतके अंग प्रत्यंगों सहित साथे
जिसमें कोईसा किन्तु श्रेय न रहिजाय कि अमुक विधि की हीनता रही तो उस
किये हुये कृच्छ्रका फल यही है कि उसके कुलजातिके संबंध वाली लक्ष्मीकी वृद्धि
बहुत होती है अर्थात् जो कुछ व्यापार उसके कुल में या जातिमें होता हो या जिस
वातकी कामना उसके हृदयमें मौजूद हो उसही की संपत्तों में अत्यंत समृद्धि होती
रहती है और शोभा और सुकीर्ति और सुवृद्धि आदिकी प्रतिया चित्र जाती है—
इसमें—सुसमाहित का अर्थ ऊपर लिखा गया तिससे यहभी तात्पर्य है कि शास्त्रार्थ
से व्रतोंके अंग जैसे सिद्ध होचुके हैं तैसे पूरे अंगों विना साधना करनेसे भी फल
की सिद्धि नहीं मिलती है और यहभी तात्पर्य है कि प्रायश्चित्तों के प्रयोजनमें जैसा
इन्हीं व्रतोंके प्रत्याग्नाय रूपों आदेश और बदलभी दर्शाये गये तैसा यहाँ धर्मकी
कामना मध्ये साधन करनेमें न होगा किन्तु यहाँ जिस व्रतका संकल्प किया जाय
वही पूरे अंगोंसे कर्तव्य होगा तैसेही बदल वाले कर्मभी निज अपनेही नामोंसे जुड़े
किये जायेंगे—बल्कि यह भी तात्पर्य है कि जहाँ किसी व्रत की एक दो आवृत्ति
करनेसे फलकी उत्पत्ति देखने में न आवे तहां उसी व्रतकी अनेक आवृत्तों लगातार
करनी चाहिये अर्थात् निराश होके मन को न हटावै किन्तु आशा लगी रखकर
निरन्तर उसमें रगड़ किये जावें तिसकी अवश्य फलकी प्राप्ति होती है (अतिसंघर्षण
करैजुकोई। अनलप्रकटचन्दनतेहोई॥ ३२८ ॥ इतिचांद्रायणादीनांप्रायश्चित्तवि
नापिधर्मार्थस्वम् ॥

अथच

(अस्यैवधर्मशास्त्रस्य सेवनकर्तृणांफलम्)

(तत्रप्रार्थनाच अपिभिःकृतावरदानार्थरूपैव)

श्रुत्वेतानृपयोधमन्त्र्याज्ञवलक्येनभाषितान् । इदमचर्महात्मानंयोगीन्द्रममितौजसम् ३२९ य
इदंधारयिष्यंतिधर्मशास्त्रमतंद्रिताः । इहलोकेयज्ञाःप्राप्यतेपास्यंतित्रिविष्टपम् ३३० विद्यार्थी
प्राप्नुयाद्विद्यापनकामोपनंतथा । आयुःकामस्तथावाऽऽयुःश्रीकामोमहर्ताभिरयम् ३३१ इलोक
त्रयमपिह्यसमाद्यःश्राद्धेभ्रातृपिप्यति । पितृणांतस्यतृप्तिःस्यादसृज्यानात्रतंशयः ३३२ ब्राह्मणः
पात्रतायातिक्षत्रियोविजयीभवेत् । वैश्यश्चधन्यधनवानस्यशास्त्रस्यधारणात् ३३३ यद्वंश
वये द्विद्वानृद्विजानपर्वसुपर्वसु । अश्वमेधफलंतस्यतद्रवाननुमन्यताम् ३३४ श्रुत्वेतयाज्ञवलक्यो
पिप्रीतात्मानुनिभाषितम् । एवमस्त्वितिहोवाचनमस्त्वत्वास्वयंभुवे ३३५ ॥

=अर्थात्-ऋषिलोग याज्ञवल्क्य से कहे इतने सब धर्मोंको मुनिकर (जो आचार अध्याय से लेकर यहां तक तोनि कांडों में योगीश्वर ने कहे तिनको अच्छे समुभि पाने पीछे) ऋषय यह कहने लगे उन अपार शक्तिमान् महात्मा योगीन्द्र को कि ॥ ३२९ ॥ जो कोई इस धर्मशास्त्र को निरालस होके धारणा करे तो वे पुरुष इस लोक में यशको पाइके स्वर्गमें जावेंगे ॥ ३३० ॥ विद्यार्थी वनिके यदि इसको धारणा करे सो पूरी विद्या की शक्ति पावै तथा जो धनकी कामना से पढ़े सो धनको पावै जो आयु की कामनासे इसका अभ्यास करे तिसकी आयु बढ़जाय श्रीशोभा संपत्ति प्रतिष्ठा आदिकी कामना राखे तिसको वही प्राप्तहीय ॥ ३३१ ॥ जो कोई याद कर्मके बीच इसका पाठ करावै अथवा इसके तीनिही श्लोकमात्र पढ़िकर निमंत्रित विप्रों की मुनावै तिसके पितरों की असय हृत्ति होय इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३२ ॥ ब्राह्मण होके जो इसका अभ्यास करे सो ब्राह्मणों में सत्पात्र रहिरै सबो इसकी धारणासे विजयमान् होय वैश्य इसको पढ़े सो धन धान्यशान् होय ॥ ३३३ ॥ इतनी प्रार्थना करिके ऋषिलोग एक और प्रार्थना करते हैं कि जो कोई विद्वान् होके प्रत्येक पर्वोंमें हिजातियों को मुनावै तिसको अश्वमेध यज्ञ कियेका फल होय यह सब जितनी प्रार्थना हम सामग्र्य आदि ऋषियों ने पांच श्लोकों द्वारा आप से प्रकाशकारी सो सब तद्रूप आप स्वीकार करें अर्थात् अपने कहे शास्त्ररूपी वचनोंमें ऐसाही प्रभाव अपनी अपार शक्तिसे आच्छाद करें (यह मुनिके आगे वरदान देतेहैं ॥ ३३४ ॥ इतनी मुनि लोगों की प्रार्थना मुनि के याज्ञवल्क्य भी प्रसन्न हृदय होकर स्वयंभू नाम विधाताको ध्यानमात्रसे प्रणाम करिके प्रसन्नमुखसे उत्तर वरदान देकर बोले कि यह सब इसी प्रकार होउ जो कुछ तुमने चाहा ॥ ३३५ ॥

(ग्रन्थ समाप्तिः)

—*—

समाप्तोऽयं महाश्रंघो धर्मशास्त्रानुवादतः मर्यादापरिपाठ्याभ्यो वेदवेदनवेन्दुके (१९४४) वि
 क्रानार्कस्य भूपस्य रूपाते संवत्सरोचमे १ श्रीमर्यादाप्रियस्यैव स्वाऽऽयासेनावितः खलु आचारो व्यव
 हारश्च प्रायश्चित्तमिति त्रयः कांडा यत्र विशेषेण तृतीयस्तेष्वयं जनाः २ परिच्छेदमयाः सर्वेषु प्रकाश्या
 नुरोधतः कांडाः सच्छ्रीप्रयोधाय संतिकर्तुः क्रियागुणैः ३ तत्रादिभोक्तृकांडो पूर्वमेव हि मुद्रितो कर्तुः
 स्वातंत्र्यभावेन सप्त वर्षपरिश्रमेः आर्गल्लाख्ये पुरवरे स्थितिः कर्तुर्हि यत्र वै ४ तृतीयोऽयं धनाभावकार
 णैः सुविलंबितः पंचवर्षततः सोपि सिद्धिं प्राप्नोयथापुना ५ सर्वपापमुपकाराय विहतां सुज्ञभाय च मुं
 शीनवल्लकिशोरैर्धनं दत्त्वा स्वकीयकम् कर्तुः संतुष्टिं पर्यन्तमौदार्येण वरीयसा ६ नियोजितः पुनर्वारं म
 योदाप्रियपंडितः प्रायश्चित्ताभिधस्यास्य निमो गेह्नि एकमर्णे ७ स्थितोऽप्यागलसंज्ञि पत्तनप्र
 वरे ह्यहम् शुद्धादुर्गाप्रसादाख्ये नियुक्तस्तेन मुंशना वर्षद्वितयकालेन सिद्धं तु कृतवानिमम् ८ पां
 ङुलेखेऽथ संपूर्णमया वत्तचक्षोः स्थितः सक्षमणा पुरितं प्राप्ता जपनज इति शब्दिते ९ नगरे सर्वतः
 रूपाते साकेतापि पठितस्थितो मुद्रांकलिपिगेहंतु यत्र रूपातं महत्तमम् १० (गीतिः) मुंशीनवल्लकिशोरैः
 श्रीनवल्लकिशोरैः स इति नाम्ना तस्मिन् ग्रंथं तृतीयः कांडो मुद्रितः कर्तुरसमक्षम् ११ यदा तु मुद्रितः
 प्राप्नोमया कर्तव्यं लोकोक्तिः आर्गले हि पुरेति पुनर्ज्ञातः शोधनकर्मणा १२ कर्तुरेवास तमक्षत्वात् यत्र
 दोषा विचारणैः यत्र चैतनिकानां च प्रमादात् विशेषतः १३ संक्षिप्तेष्वपि वाक्पेपु गलितानि पदानि
 च बहूनि हृदि मायाति तानि शेषानि पाठकैः १४ किंच तच्छोधनाय तु शुद्धा शुद्धिविवेचनम् अ
 शुद्धशुद्धप्राख्यं यत्र मध्येऽभिधीयते १५ पांङ्गुलेखानुसारेण पुस्तके कंच शोधितम् स्वस्यैव वर्तनार्था
 यतन्ममोपस्थितं जनाः १६ एवं चतुर्दशैर्षत्रयः कांडाः सुसज्जिताः (१९४४) सत्वरसरे विक्र
 मस्य वेदवेदनवेन्दुके १७ मुंशीनवल्लकिशोरैस्त्वत्सर्वान् पुनः स्वयम् सुद्रियं यतिभूयोपि स्वातंत्र्ये
 ष्वेव वेत्तुतः १८ पतस्तेनास्य ग्रथस्य कर्तुः पूर्वकृतापि च प्रतिज्ञा पूरिता इति निजोदाख्येण सज्जनाः १९
 सो आई ई त्रिभिः शब्दैर्ष्यनाम अलंकृतम् सार्वभौमप्रदं चैश्वर्यं स्तोपामयं जनाः २० भारतस्याधि
 राष्ट्रस्य सुहृत्तमसौ महान् मुंशीनवल्लकिशोरैः सर्वसज्जनसम्मतः २१ येन गलपुरे स्म्यं भार्गवा
 नादितापतु विद्याश्रम इति रूपाता पाठशाला निरूपिता २२ प्रतिज्ञायादृशी पूर्वप्रयाकर्त्रा निरू
 पिता व्यवहारमर्यादायाः समाप्तो चेहृदयताम् २३ (सायणा—प्रायश्चित्ताभिधेः कांडेन प्रति
 ज्ञामया कृता द्रव्यादिप्रतिबंधानां कारणानि विलोक्य च गुरुकांडः स एवास्ति भूरि द्रव्यव्ययेन तु
 सिद्धिस्तस्य च संभावीन सहायः प्रदृश्यते प्रतिज्ञाय दिवा कश्चिद्धारिणी श्च करिष्यति तदा ह मुच्यते भू
 त्वा करिष्यामि न संशयः—इति तस्याः स्वरूपं) एषा हि मुंशीनवल्लेन नूनं किशोरकाव्याननभूषितेन दे
 शे विदेशेषु च पूजितेन प्रसाधिताऽहं च कृतार्थः २४ जन्मभूमिश्च भूगंगापाददेशे विशेषतः हर्षे ई
 मंडलाधीनि प्रविभगि गृहचमे २५ साकेतविषये शाहावा द्रव्याते पुरोचमे इति वाजारा के स्थाननो
 रातीरे गृहं नम २६ भयसंदिग्धिरित्यात शिवालय समीपम् वसतिः कान्यकुब्जानां यत्र रूपाता

मही तले २७ अभूद्ररद्वाजमहार्पणोत्रैशुक्तेतिविख्यातकुलेविशुद्धे विद्यावरःश्रीहरिवंशशर्मायस्ये
 ष्टदेवःखलुसिंहयाना २८ वेशीरामइतिप्रोक्तःपुत्रस्तद्गुणसन्निभःतस्यपुत्राख्यौजातास्तेचधर्मविशा
 रदाः २९ ज्येष्ठःठाकुरनाथस्तुंगंगारामश्चमध्यमः चोक्षेज्जालइतिप्रोक्तःकनिष्ठोमत्पिताचतः ३०
 कूपारामादिपूरतानानिर्मातामध्यमोधनी प्रातिभाव्यकरश्चासीत्प्रत्यर्पानांचराजानि ३१ दुर्गाप्र
 सादशर्माऽहंमर्यादाप्रियसत्तमः वात्पादेवत्यजन्देशंविचरन्नगलेपुरे ३२ आगराइतिविख्यातेपट्टन
 प्रवरोस्थितःअत्रासीनोहृदिस्थान्तुमर्यादापरिपाटिकाम् ३३ कृतवान्सुखबोधायसज्जनानांचप्रीतये
 धर्मार्थस्तुतवमोक्षाणामर्यादायाःप्रवृद्धये ३४ ॥

प्रगट है। कि इस पुस्तक को मतवे ने निच खर्च से उत्था करकर छपवाया है इसलिये
 धिना आच्छ। इस छापखाने के कोई छापने का अधिकारो नहोहे

मुशो नवलकिशोर के छापेखाने में छपो मार्च सन् १८८८ ई० ।

इस पुस्तक को पण्डित रामविहारी व पण्डित बदोदीन ने शुद्ध किया ।

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकाण्ड का शुद्धशुद्धापत्र ।

१

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	यथा	यथा	३०	३०	चिन्तेषु	चिन्तेषु
२	२०	अवधारः	अवधारः	३०	३०	योग्य	योग्य
४	२०	जन्मतक	जन्मतक	३०	३५	शुद्धदोषक्रिया	शुद्धदोषक्रिया
०	२२	दक्षिणाग्निजन्म	दक्षिणाग्निजन्म	३०	२६	ब्रह्माग्निरा	ब्रह्माग्निरा
५	२४	मुदलेजाय	मुद न लेजाय	३६	१४	मृतत्वयसुत	मृतत्वयसुत
६	२५	भिराच	भिराच	३६	१०	नकरै-परतु =	नकरै-परतु =
६	१०	दिमुखाः	दिमुखाः	४०	१२	यमियपे	यमियपे
१०	३	नोदुपयेयु	नोदुपयेयु	४०	१०	अपादद्या	अपादद्या
१०	१४	यथा	यथा	४०	२०	अपरहै	अपरहै
११	३	पाचमेकोधिकोक्तिमे	पाचमेकोधिकोक्तिमे	४१	२१	मिताक्षराका	मिताक्षराका
१३	२६	अगिरा	अगिरा	४१	२३	गर्भस्तुत्या	गर्भस्तुत्या
१३	२०	गौव	गौव	४२	१८	गर्भेगिरनेमे	गर्भेगिरनेमे
१६	०	मास	मास	४२	२१	अचतुर्धा	अचतुर्धा
१६	२०	गर्भिया	गर्भिया	४३	२४	मृतकाज्ञाधि	मृतकाज्ञाधि
२०	२८	काश्चिद्वरव	काश्चिद्वरव	४४	२	शौचकापध	शौचकानिपध
२१	२०	तिनका	तिनका	४५	२	अग्निज्ञाचार्य	अग्निज्ञाचार्य
२३	३	चिन्त्यामि	चिन्त्यामि	४५	६	जवताजी	जवताजी
२३	३	चिन्त्यामि	चिन्त्यामि	४५	०	तवताजी	तवताजी
२३	१२	मातापितागति	मातापितागति	४५	६	रात्रिभिर्मसितु	रात्रिभिर्मसितु
२४	२३	पिडपानीय	पिडपानीय	४५	२६	हस्य सतो	हस्यसतो
२४	२४	सवकोपयत्तुदेव	अर्थानुसवकोद्वेदेव	४६	८	चिरात्रिमशु	चिरात्रिमशु
२५	०	अविभक्तधन	अविभक्तधन	४६	१०	ककिचि	ककिचि
२६	५	पठे	पठे	४६	२५	अटलेकर	अटलेकर
२८	१०	यावज्जीव	यावज्जीव	४६	१६	विशोदधन	विशोदधन
३१	६	मत्करे	मत्करे	४६	१४	भवेर्येव	भवेर्येव
३१	१०	मोक्तुदेष	मोक्तुदेष	५०	१३	धराना	धराना
३१	१८	सिद्धिक्रिये	सिद्धिक्रिये	५०	१६	दत्तजामि	दत्तजामि
३२	२६	बहुतकाल	बहुतकाल	५६	१०	विशोपनम्	विशोपनम्
३६	२८	त	त	६०	१०	य-वै	यानैव
३०	१५	पुत्रवर्ती	पुत्रवर्ती	६१	१०	धरान	पयधव
३०	१८	सम्पत्तिमतिपिप्यते	सम्पत्तिमतिपिप्यते	६२	६	अविगीत	अविगीत
३०	१८	सम्पत्तिमतिकायास्तु	सम्पत्तिमतिकायास्तु	६२	२१	सोमो	सोम
३०	२४	द्विजोद्विजय	द्विजोद्विजय	६३	४	अरनयन	अरनयन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	५	दानध्ययने	दानाध्ययने	६६	१४	तातवरत्ना	तातवरत्न
६३	१०	निवहिवले	निवाहिवले	६६	१४	तद्यौषधी	तद्यौषधीः
६३	१४	दानस्ययने	दानाध्ययने	६७	७	योग्यहै	योग्यहै
६३	१८	होतीवहा	होतीवहो	६७	८	पतनीया	पतनीय
६३	२०	चिराचमाहु	चिराचमाहु	६८	४	श्चबिष्टाया	श्चबिष्टाया
६४	५	पक्षिणी	पक्षिणी	१००	१४	विपणि दुकान	विपणिदुकान
६६	२१	शुद्धास्यु	शुद्धास्यु	१००	१४	दुकानखेती	दुकान खेती
६७	१	पिष्टल	पिष्टले	१००	२२	दुरेत	दुरेत
६६	११	कुच्छपादो	कुच्छपादो	१००	२३	कुटुम्बच	कुटुम्बच
६६	१३	कुच्छकद्रायणव्रत	कुच्छनामकव्रत	१०१	१३	यस्यगत्र	यस्यगत्र
७३	१०	पुरोस्त	पुरोहित	१०१	१४	तद्राष्ट्रन्दु	तद्राष्ट्रन्दु
७५	१७	क्षतुस्मरण	क्षतुस्मरण	१०३	११	नग्नोश्चैवावि	नग्नोश्चैवावि
७६	१३	शब्दकउपल	शब्दकेउपल	१०५	१२	होसके	होसके
७७	५	स्नायास्सस्पृष्ट	स्नायास्सस्पृष्ट	१०५	१५	वानाप्रस्थ	वानाप्रस्थ
७७	१५	खानम्वपाक	खानश्वपाक	१०५	१६	वित्तदेव	वित्तदेव
७७	२६	स्पृष्टा	स्पृष्टा	१०५	२०	करताहै	करताहै
७७	२६	छुईचढा	छुईचढी	१०५	२०	भीकरता	भीकरताहै
७७	२२	भासवायसमाजरी	भासवायसमाजरी	१०६	२०	वित्तकुल	वित्तकुल
७७	७	करोमुक्ता	करोमुक्ता	१०६	१३	यद्वाग्निसे	यद्वाग्निसे
७७	१२	करोमुक्ता	करोमुक्ता	१०६	१६	फलीकोमीगसे	फलीकोमीगसे
७७	१६	पकोईट	पकोईट	१०६	२०	वाऽनिवागते	वाऽनिवागते
७७	२८	प्रचालित	प्रचालित	१०६	३	सप्रदेखे	सप्रदेखे
७७	२६	तोसरायहभौ	तोसरायहभौ	१०६	१७	पूरपूर	पूरपूर
७७	५	स्पृश्यमानव	स्पृश्यमानव	१०६	३०	हृत्यराक्तिः	हृत्यराक्तिः
७७	१०	अच्छायायण	अच्छायायण	११०	२	विकल्प	विकल्प
७७	२१	निवहिकरै	निवाहिकरै	११०	१६	भोजोवस्त	भोजोवस्त
७७	२२	होनयणका	होनयणको	१११	१५	उसे	उसे
७७	१६	नीचकेदोर्कर्म	नीचकेदोर्कर्म	१११	२०	प्राणयात्रा	प्राणयात्रा
७७	१६	कर्मको	कर्मको	११२	१०	आरोपित	आरोपित
७७	२३	जीवन	जीवन	११२	२४	मीनसाधे	मीनसाधे
७७	३०	यकर	यकर	११२	२८	मूलप्रलोकमि	मूलप्रलोकमि
७७	११	मीर्यानि	मीर्यानि	११३	२८	इमाप्रस्थान	इमाप्रस्थान
७७	११	वदरेगुदे	वदरेगुदे	११५	१५	(की)	(कि)

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धशुद्धपत्र ।

३

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६	५	मोटेमुट्टे	मोटेमुट्टे	१४६	१४	सतारी	चराचरसतारी
११६	२०	गृहस्थी	गृहस्थी	१४६	१०	गर्भमे	वृक्षादिकत्यावर या
१२१	२	तर्कनाकरनी	तर्क न करनी				नरादिक अगम देखिके
१२१	२५	भर अन्यथा	भार है अन्यथा				गर्भमे
१२१	२५	विरीधापति	विरीधापति	१४८	१०	कहा प्राते	कहै प्राते
१२२	११	वनिपर	वनिपरै	१४८	२१	याकभूमयः	याकभूमयः
१२२	३०	मानपैवक्त	मानपैवक्त	१४६	२	महापच	पचमहा
१२३	२२	प्राप्ताय प्रव्रजति	प्राप्ताय प्रव्रजति	१४६	०	अन्य	अन्य
१२४	२५	तीन ड	तीनदंड	१४६	२२	इंद्रियादि	इंद्रियादि
१२४	२०	प्राजापत्ये	प्राजापत्ये	१४३	११	परिभाषा	परिभाषा
१२४	२६	विशवाद्	विशवान्द	१४३	१२	विषक्तता	विषक्तता
१२४	३६	प्रमाणद्	प्रमाणान्द	१४३	१०	यद्यवेदिभिः	यद्यवेदिभिः
१२५	२१	यच मुनिः	यचरेन्मुनिः	१४३	२२	देखै	देखै
१२५	२८	देवस्थन	देवस्थन	१४४	६	करायेन	करायेन
१२६	१०	कथामात्रः	कथामात्रः	१४४	४	उदेवै	उदेवै
१२८	२१	समागाराय	समागाराय	१४५	२०	हृत्कटन	हृत्कटन
१३१	२	परच	परच	१४०	५	योगिद्वयी	योगिद्वयी
१३१	७	यज्ञविक्र्याभि	यज्ञविक्र्याभि	१४०	७	उधर	उधर
१३१	१३	रन्ध्रगार	रन्ध्रगार	१४०	११	टीकव्यास	टीकव्यास
१३१	२४	धर्षणासुद्ध	धर्षणासुद्ध	१४८	२	सातपुत्र	सातपुत्र
१३३	५	समूह	समूह	१४६	८	अगार	अगार
१३३	१६	राग	राग	१४६	२	नहोकरै	नहोकरै
१३४	४	चतुष्टय	चतुष्टय	१०५	२३	दापक	दापक
१३४	११	धारणादि	धारणादि	१००	१६	अनत्रै	अनत्रै
१३८	१	यत्न	यत्न	१००	२२	सधोना	सधोना
१३८	१०	मेकुलमही	मेकुलमेदनही	१०८	८	चालोसऔर इक	चालोस और एक
१४१	१०	आकीयो	आकीयो			तालिश	इकतालिश
१४१	१६	दृष्टिमायाचाही	दृष्टिमायाचाही	१०८	१४	मुड-ने	मुड
१४१	२५	वपुषा	वपुषा	१०८	१०	पाद	पाद
१४३	६	सकाम	सकाम	१०८	२६	कातर	कालातर
१४३	२४	प्रलोकदेखी	परिदेखिचाही	१०६	२४	निजदिक्कने	निजनिजदिक्कने
१४४	८	मूलप्रलोकी	मूलप्रलोकी को	१००	३	स्वेदययथा	स्वेदययथा
१४४	२१	प्रक को	प्रक को	१०१	१४	इससथ	इन सथ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८१	२२	मैत्रादित्यसे	मैत्रादित्यसे	२२६	२२	है तिसै	हेतिसै
१८३	११	पहुच	पहुच	२२६	२४	वाशब्दसेके	वाशब्दके
१८३	२१	यागभूति	यागभूत	२२७	१२	परमेश्वर	परमेश्वरने
१८३	२६	मजोरा	मंजोरा	२२७	२१	नामहो कभी	नामहैजोकभी
१८७	३	सन्तर्प्य	सन्तर्प्य	२३१	४	डकार	इन्कार
१८६	३०	करना ऊर्ध्वाक्त	करना/ऊर्ध्वाक्त	२३१	१६	मेवतुः	मेवतु
१९०	२१	समवायः	समवाय)	२३१	२०	येकाई	जेकाई
१९१	५	स्वभावहोसे	स्वभावहोसे	२३२	८	ततस्मान्	ततस्तान्
१९१	१६	विगडतेहुये	विगडतेहुये	२३२	२३	स्वर्गाजितो	स्वर्गाजिता
१९१	२४	परिच्छेदः ॥	परिच्छेदः ॥ १४ ॥	२३६	२२	किञ्चिसे	किञ्चिसे
१९२	४	(वः युष्मान्प्रति	(वः युष्मान्प्रति)	२३७	३०	यागसाधना	योगसाधना
१९४	२०	खोटे	खोटे	२४४	७	मनुष्योत्तर	मनुष्येत्तर
१९५	२०	ज्यातिशोम	ज्यातिशोम	२४६	१६	कुडासी	कुडासी
१९६	२४	जातोहै जव	जातोहै कि जव	२४६	२	वनरः	वानरः
२०१	०	जानी	जानी	२४६	२	म्माजिरः	म्माजिरः
२०१	१५	जानौ	जानौ	२४६	२	खट्यातः	खट्यातः
२०५	३	उत्पन्नभुई	उत्पन्न भई	२४६	६	गयनाः	गमनाः
२०५	४	होय)	होय)	२४६	१८	कन्याद्रूप	कन्याद्रूपक
२०७	१८	वयसवाले	वयसवाले	२५०	४	निरासः	मिरासः
२१०	२३	भवेत्)	भवेत्)	२५०	२०	करनेवाल	करनेवाले
२१२	३१४	योगमिलाप	योगमिलाप	२५१	१३	पापों के	पापोंके
२१६	१४	रचो तिनमें	रचो तिनमें	२५२	२३	नि दितस्य	नि दितस्य च
२१६	१४	विद्वान्	विद्वान्	२५३	२६	कहतीहै	कहातीहै
२१६	११	है अर्थात्	है अर्थात्	२५४	१०	वाक्यात	वाक्यात
२१७	१२	ये मुनीप्ररी	य मनीप्ररी	२५४	२१	नाबर	नाबरः
२१७	१३	जानी	जानी	२५५	१३	अशुभनाति	अशुभजाति
२१७	१३	समझे	समुझे	२५५	२२	देखाहुआ	काटाहुआ
२१७	१८	मत्स्यजानौ	मत्स्यजानौ	२५६	५	प्रायश्चित्तो	प्रायश्चित्तो
२१८	२२	देखिपरते	देखिपरते	२५७	६०	लियेउचित	लियेउचित
२२२	२१	अप्रतक	अप्रतकनहीं	२६०	५	स्वजानान्	त्वज्ञानान्
२२३	२६	यन्धतन्मात्र	यन्धतन्मात्र	२६०	८	व्रतसाधे	व्रतसाधे
२२४	१५	येथोता,	अयेथोता	२६०	२५	फलभी	फलभी
२२७	२	जानी	जानी	२६१	८	नेष्टवा	नेष्टवा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६१	२६	नहीं देखोगई	नहीं देखोगई	२६०	२०	पट्टे वेदका	पट्टे वेदका
२६२	१०	सोपतितात्याग	सोपतितात्याग	२६६	२	प्रियकीस्त्रीवहिन	प्रियकीस्त्री० वहिन
२६२	३६	समार	समारो	२६०	११	मेपातकौका	मेपातकौका दोभातिसे
२६२	३७	जाराहो	जाराहो	२६०	२५	लेभागे	लेभागे
२६४	१५	उसकहते	उसकहने	२६१	११	खोंखो	खोंखो
२६४	१०	इतने	इतने	२६२	१८	मूल कमें	मूलश्लोकमें
२६४	०	कहाता है	कहाता है	२६२	२६	यानियिगाना	यानियिगाना
२६६	१०	बनसे उसे	बनसे उसे	२६५	१०	नहीं है	नहीं है
२६०	८	अपराधी	अपराधी	२६५	१४	होती है	होती है (औरवेभीअम
२६०	८	अर्थात्	अर्थात्				त्यास्त है किजिनमेंअ
२६०	१५	विप्रयोजित	विप्रयोजित,				भिचार ध्यभिचारो को
२६०	२६	न्याय	न्याय =				शिक्षाशे)
२६६	१४	अनुमन	अनुमन	२६१	२०	जातिधन्य	जातिधन्य
२६६	२४	उकहुये	उकहुये	२६६	११	वाध्य	वाध्याय
२६६	२६	कारणकोठोक	कारणकोठोक	२६६	११	पितृया	पितृया
२६६	२०	उसकेकार्य	उसकेकार्य	२६६	२३	अन्यकराणि	अन्यकराणि
२६६	३०	रयभिचारसे	रयभिचारसे	२६६	३०	सिकुछनोचे	सिकुछनोचे
२६०	४	किसीदुबना	किसीकादुबना	२६०	१४	अपनेधरो	अपनेकोधरो
२६०	१३	आवध	आवध	२६६	२६	वचनप्रभाव	वचनके प्रभाव
२६०	१४	उप	उप	२६०	१०	उद्धतसेनाभेद	उद्धतसे नामभेद
२६०	२०	तर्जामा	तर्जामा	२६०	१४	आवेगी	आवेगी
२६०	२६	अकाररातु	अकाररातु	२६०	२२	भिचायो	भिचायो
२६२	८	वेदों का	वेदों की	२६१	१५	गीतमनेउन्हाँगीतमने	उन्हाँगीतमने
२६२	१०	भियमन	भियमन	२६१	२१	उनके यस्तों	उनके यस्तों
२६३	४	पात का	पात की	२६२	८	निवृत्तकरै	निवृत्तकरै
२६४	२६	सिद्धि	सिद्धि	२६२	८	प्रविशेत्स	प्रविशेत्स
२०४	२०	अग्निजोउभे	अग्निजोउभे	२६२	२१	उद्भागपाणिद्वादय	उद्भागपाणिद्वादय
२०५	१३	तौद्वैगुण्य	तौद्वैगुण्य	२६३	१४	नित्यप्रति	नित्यप्रति
२०१	६	मिलना	मिलना	२६४	६	प्रकृतिवाता	प्रकृतवाता
२०५	२०	किसीयेही	किसीकोयेही	२६६	१	भी न है	भीनहीं
२०८	१२	कामाखनु	कामाखनु	२६६	१०	पायागया	पायागया
२००	२२	प्रायश्चन	प्रायश्चन	२६०	३	उगुना	उगुना
२००	२६	प्रत्योक्तता	प्रत्योक्तता	२६८	२३	कदाचन	कदाचन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६६	१०	हुये को	हुयेकी	३२१	१६	वाध्यात्मक	वाध्यात्मक
२६६	१०	करता है	करताहै	३२२	३	जहामात्रा	जहायात्रा
३००	८	मताने	मताने	३२२	१६	तामनेधर्मः	तामनेधर्मः
३०१	२५	नपुनःसर्व	नपुन सर्वा	३२३	२	द्योपदस्तु	द्योपदस्तु
३०३	२६	योग्यपात्रिका	योग्यपात्रिका	३२३	१०	घातककरै	घातकरैय
३०५	११	साधना च	साधनाकी च	३२३	१२	छत्रोन्नता	छत्रोन्नता
३०५	१०	कियाजा	कियाजाय	३२४	२२	य यती	या यती
३०५	२४	अप्राप्त्यस्तु	अप्राप्त्यास्तु	३३१	५	सबमन्या	सबनन्या
३०५	२४	आदोराकभूत	आदोराकभूत	३३२	५	घातयै	घातयै
३०६	॥	शौच्य वा	शौच्य वा	३३२	१६	जपय	जपय
३०६	६	तुच्छासा	तुच्छासा	३३३	६	मुखनिय	मुखनियम
३०६	१३	करै	करै	३३४	८	मरणच्छुद्धि	मरणाच्छुद्धि
३०६	२४	पाये०	कितपसेछुटकारापाये	३३५	२५	मद्योको	मद्योको
३०७	६	सममप्राप्त	सममप्राप्त	३३६	३०	उद्दिष्टा	उद्दिष्टा
३०७	२३	नहोसके	नहोसके	३३७	२०	मात्रवच्छेन	मात्रवच्छेदेन
३१०	२	अश्वमेधमेधोय	अश्वमेधमेधय	३३८	८	हविर्निर्गम	हविर्निर्गम
३११	१०	भूत	भय	३३८	२६	देवना	देवाना
३१२	८	करनासपदधामे	करनाकहाउनसबदधामे	३३९	५	हटै फिरै	हटैफिरै
३१२	१०	योग्यहै कि	योग्यहै कि—	३४०	१५	दातव्य	दातव्यः
३१४	४	दातव्यहै	दातव्यहै	३४०	२१	कुर्यान्माता	कुर्यान्माता
३१४	१२	प्रकार से	प्रकार से	३४०	३	चैनी	चैनी
३१६	१२	स्नायुनि	स्नायुनि	३४०	२०	करणांवापि	करणांवापि
३१६	१२	स्नायुभि	स्नायुभि	३४०	२०	भक्षयेत्त्रि	भक्षयेत्त्रि
३१७	६	अदेय	पादश	३४२	१०	करै या	करैया
३१८	६	अशिराः	अशिराः	३४२	१०	पिये या	पियेया
३१८	२६	वैठे	वैठे	३४२	२	चौकेका	चौकेकाल
३१८	२४	वाचिभूता	वाचिभूता	३४३	२	यादभाजन	यादभाजन
३१८	२१	हरकोई	हरकोई	३४३	१५	पिण्याकवा	पिण्याकवा
३१८	२८	मुद्रिष्टोतेहै	मुद्रिष्टोतेहै	३४३	१६	पचोहुई	पचोहुई
३१८	३०	अश्वमेधका	अश्वमेधका	३४५	१३	मुराकिभाड	मुराकिभाड
३२०	१०	तर्कमी	यज्ञतर्कमी	३४५	२६	मर्पयत	मर्पयत
३२१	३	स्वतोम्	स्वतोम्	३४५	२४	मर्पयत	मर्पयत
				३४२	१६	यालादितकाय	यालादितकाय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५३	१२	मरणावजीव	मरणावजीव	३६०	१६	उदरपूर्ण	उदरपूर्णा
३५३	१०	कोईजातिवर्ण	कोईहोजातिवर्ण	३६०	२०	इसीमान्यता	इसीसेमान्यता
३५४	०	न मारे	नमारै	३६८	२४	जातकर्ण	जातकर्ण
३५४	६	देखो	देखौ	३६८	३०	कारणोपेक्षा	कारणोपेक्षतनेसाफ
३५४	२२	होवेहो	होवेहो	३६६	१८	नहीं अचोक्त	नहीं ॥ ० ॥ अचोक्त
३५५	६	राजासकृद्भ्या	राजासकृद्भ्या	३६६	२०	बहीदोनो	बहीदोनो
३५५	६	और कि	और है कि	३७०	२	जननी	जननी
३५५	२०	लिख्या	लिखा	३७३	१०	सुनी	सुनी
३५६	२	जहाकहो	जहाकहो	३७३	१०	और जो	और जो
३५६	६	नहींहिती	नहींहोता	३७३	१८	करावभूति	करावभूति
३५६	१६	दलुहो	दड लु	३७५	१०	वि छिपुके	लिखिपुकेतबा३६६ पृष्ठ
३५६	१०	सावधान	सावधान हो				कीपकीधर्मापत्तिसे दे
३५६	२५	कामिधान	का विधान				खी ॥ ० ॥
३५६	२६	लिख्यामात्रे	लिख्यामात्रे	३७५	१०	प्राप्त्योका	प्राप्त्योका
३५६	३०	साविचा	साविचा	३७५	२०	दिनसेरहे	दिनसेरहे
३५७	२	प्रायश्चित्त	प्रायश्चित्त	३७५	२६	जातकर्ण	जातकर्ण
३५७	५	ब्रह्मज्ञाप्रत	ब्रह्मज्ञाप्रतम्	३७६	५	कहिपुके	कहिपुके
३५७	५	इदच	इदच				कहिपुकेहीतीनहीतिह
३५८	३	हरचादेय	हरचादेय				त रिपुमें दूसरीपत्तिसे
३५८	१३	औदुम्बरतासमय अस्त	तत्रगुलिकामयमानेय	३७६	२०	यहनहीती	यहनहीती
		मितिमिताचरा	यस्तमिति मर्यादाप्रिय	३७६	२०	बचनदूही	बचनदूहीतीतीनहीचीह
			विचार (तुपचाइतिभा				तारि३७६ पृष्ठमेंसातवौ
			पाया, लडुकरफलसदृश				पत्तिसे चौदहवौ तक
			गुलिकाया स्यात्—				देखी
३५८	१८	गोमयाग्नि	गोमयाग्नि	३७६	२६	त्रिपदयो	त्रिपदयो
३५९	२	सुवर्णपद्म	सुवर्णपद्म	३७८	६	मास चरेत्	मासचरेत्
३६०	५	नहींसभव	नहींसभव	३७८	१२	रुग्णो	रुग्णो
३६०	२४	इदमनसापाप	मनसापाप	३७८	२०	सुसज्यते	सुसज्यते
३६१	५	सुवर्ण	सुवर्ण	३७८	१५	शयनयोगिनस्त्री	शयनयोगिनस्त्री
३६१	६	पुरुष	पुरुष	३८०	६	भोजनाशन	भोजनाशन
३६१	०	अथवा	अथवा	३८२	२	मदवा	मदवा
३६१	८	वार वर्ष	वारवर्ष	३८२	२	दुग्ध	दुग्ध
३६०	१६	गुरुयामातृ	गुरुयामातृ	३८२	१३	काष्ठतय	कराष्टतय

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धशुद्धपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०१	१८	तुल	कुल्ल	४३१	२८	युष्णीऽपिच	युष्णीऽपिच
४०२	१९	लेकर २४३	लेकर २४२	४३१	३०	वाहिरोयाविसको	वाहिरोयाजिसको
४०३	२०	गौयें	गौयें	४३३	१४	उचितहोंगी	उचितहोंगी
४१०	२२	कामारतुद्विगु	कामातुद्विगु	४३३	२५	अवकोण	अवकोण
४१०	३०	रचित में	रचितमें	४३५	१३	करना और	करना
४११	०	अधिसनौ	अधिसनानौ	४३६	१०	सजिकं	मयिखं
४१५	३०	सातिव	सावित	४३८	१६	जाने हूयेये	जाने हूयेये
४१६	५	मिहना	मिहना	४३८	२८	आकपसे	आकपसे
४१६	११	अधि	अधिस	४३९	२	गुठकठ	गुठकठ
४१६	२०	किन्तुह-हों	किन्तुह-हों	४३९	५	स्तेयोउपपा	स्तेयोपपा
४१६	२४	कृच्छ्रपादो	कृच्छ्रपादो	४४०	५	अठगुण	अठगुण
४१८	३	देवावध्या	देवावध्या	४४१	८	विपसमुभन	विपसमुभन
४१९	२४	तद्व यवहित	तद्वयवहित	४४२	५	कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र	कृच्छ्रातिकृच्छ्र
४२०	६	पैदाकिया	पैदाकियाकिया	४४२	१०	तापवाद	तापवाद
४२०	१६	काहिके	काहिके	४४२	२०	होरिका	होरिका
४२०	१०	कनाके	कनाके	४४३	२६	तत्रिगुण	तत्रिगुण
४२०	२०	मौडनै	मौडनै	४४४	०	अपहारि	अपहारि
४२३	०	योक्तव	योक्त	४४५	२	अनाहितमिनतामिनता	अनाहितामिता
४२५	२	वतसि	वनावासि	४४५	०	अधिकारसो	अधिकारहोसो
४२५	११	कार्या	कार्या	४४६	१८	प्रवृत्त	प्रवृत्ति
४२६	१६	कुगैः कायैः	कुगैः कायैः	४४७	४	वासवामान्य	वासवामान्य
४२६	१०	वनोरम्भसे	वनोरम्भसे	४४७	१२	यजोभ	यजोभ
४२६	२०	जंजोरके	जंजोरके	४४७	१८	पुण्यमुक्कम	पुण्यमुक्कम
४२७	६	दुहिते	दुहिते	४४७	२०	अचार मंत्र	अचार उकारमंत्र
४२७	१६	स्माच्छ्रपादे	स्माच्छ्रपादे	४४७	२३	मोलवस्तु	मोलको वस्तु
४२७	२४	लुनेमरी	लुनेमरी	४४७	२४	इसप्रकार	इसप्रकार
४२८	३	अपालतवान	अपालतवान	४४७	३	अधिकारके	अधिकारके
४२८	५	गुवाये	गुवाये	४४९	१२	तिसे	तिसे
४२८	८	धारिचक्रि	धारिचक्रि	४४९	१३	जेठोछोटी	जेठोको छोटी
४२८	१४	गौयें	गौयें	४४९	२०	तादृश्यायव	तादृश्यायव
४२८	१४	मरजायें यहाँ	मरजायें यहाँ	४४९	२४	को दारामे	को दारामे
४३०	२	दत्तवगायां	दत्तवगायां	४४९	१६१०	कृच्छ्रानिर्गत धर्मकर्म	कृच्छ्रानिर्गत धर्मकर्म
४३०	२०	विरयेधंपद	विरयेधंपद			गोति (कृच्छ्रदति)	गोति (कृच्छ्रदति)

पृष्ठ	पाठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पाठ	अशुद्ध	शुद्ध
५१०	०	तद्वा	तद्वां	५५०	१६	ध्यानकरो	ध्यानकरी
५१०	१८	तभीकोड़	तभीकोड़े	५५१	३०	कहोसे	कहोसै
५१८	१३	देवे	देवै	५५३	२	अथयाज्य	अथयाज्य
५१८	१३	गिरावे	गिरावै	५५३	१३	संप्राजापत्य	संप्राजापत्य
५१८	२६	मान	माना	५५४	१५	मन्थमैत्य	मन्थक्रमैत्य
५२२	६	ब्रह्मचारिदीनां	ब्रह्मचर्यादीनां	५५०	८	संपर्ययनकुल	संपर्ययनकुल
५२२	१५	आयम	आयम	५५६	०	तद्वागाराम	तद्वागाऽऽराम
५२२	२५	परागया	धरागया	५६२	१६	प्रक्षोभकता	प्रक्षोभकता
५२३	४	मोचवकीचं	मोचवकीर्षी	५६३	१२	तिसकसातमा	तिसकोसातमा
५२३	२०	होमती	होवती	५६३	३०	करै	करै
५२३	३०	देवताभ्यः	देवताभ्यः	५६५	१२	स्तोत्रिंशदिभिर्जायन	स्तोत्रिंशदिभिर्जायन
५२४	३	मन्त्रमैत्रिलिखिदिये	मन्त्रमैत्रिलिखिदिये	५६५	१४	च्छेदः (शृच	च्छेदः शृच
५२४	३	गखलिखितौ	गखलिखितौ	५६६	३	पट	पट
५२६	१०	चांद्रायण	चांद्रायणे	५६०	१६	नचचा	नचच
५३६	१४	योचिच्छुभोजनोयं	योचिच्छुभोजनोयं	५६०	१६	दशार्ध	दशार्ध
५३८	२	चातुर्तिर्बुधो	चातुर्तोर्बुधो	५६८	२५	ब्राह्मजीवी	ब्राह्मजीवी
५३८	२१	हिन्मा	हिन्मा	५६८	३०	नहर्निकतय	नहर्निकतय
५३६	२	हिन्मा	हिन्मा	५६६	१६	लेलेने	लेलेने
५४०	११	कर्तस्माभूतवादीको	कर्तस्माभूतवादीसे	५७०	१३	मयापराधै	मयापराधै
५४३	२०	मपंतयानां	मपंतयानां	५७०	१५	भ्यामिरहत	भ्यामिरहत
५४३	२०	अपतयते	अपंतयते	५७०	१८	परांमुख	पराङ्मुख
५४४	२	छटैदिन	छटैकालकितु रात्रिष-	५७३	१२	ममाचरे	ममाचरे
५४४	१५	तानिपथे	मयतोमरेदिन	५७४	४	विरोधयां	विरोधयां
५४४	२६	केसामार	तोमपथे	५७५	१५	देखी	देखी
५४८	१६	गुदुध्यतो	केसममपर	५७५	१०	अन्धौ	अन्धौ
५४८	२१	गुदुमाप्रो	गुदुध्यतो	५७५	१४	अन्धत्	अन्धत्
५४६	२८	गुदुको	गुदुमाप्रो	५७५	१२	लोमाचि	लोमाचि
५४०	८	पान्तिवाभतया	गुदुको	५७८	२६	नित्यपति	नित्यपति
५४८	११	जिनावता	जिनावतया	५७६	८	रेष्टया	रेष्टया
५४६	१४	रजन्वगाप्रो	जिनावतया	५७०	२०	निउन्हे	निउन्हे
५४०	१२	रमपिकय	रजन्वगाप्रो	५७०	२८	प्रासमिको	प्रासमिको
			रमपारच्येदमेस्त वि	५७१	२०	समुभो	समुभो
			कय	५७२	६	पत्रादि	पत्रादि

पृष्ठ	पात	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पात	अशुद्ध	शुद्ध
			स्वत प्राप्नोस्योखाङ्के				नेहोर्दिनीं तक उक्तत
			स्थाडिलपरसोवै				प्यारोज रीज जिमावै
०३६	१६	चैवाघमपणम्	चैवाघमपणम्				दृष्टतजैसे चाद्राण मे
०३६	१६	छुटकारा	छुटकारा				तोसदिनतक चौवीस
०३६	२०	जुहुयाद्याहृतो.	जुहुयात्वाहृतो				प्राप्त्यथा॥
०४४	२२	अनादिप्रापौ	आदिप्रापौ	०६२	१६	नेसमुभाया ॥	नेसमुभाया- परतुजैसा
०४५	६	त्यादिभि०	त्यादिभि.				अतिनिर्धन को प्राप्ताप
०४८	२३	एकानिठक	एकानिठक				त्यक्त बदलेधारहवाह्य
०४९	२५	चातसाडे	साडेसात				कहेतैसाअन्यप्रतीके उ-
०४९	२६	उनकमूल्य	उनकमूल्य				परलोहसायसे कित ने
०४५	२५	तीनदिनकारा	तीनदिनकोरा				हो'सके उतनेउनमे भी
०४६	२	चारहदिनकी	पूरेचारहदिनकी				निजनिजलेखे से इन्हां
०४८	२८	जुदेरही	जुदेजुदेही				कारहकेअनुकूप समुभि
०४६	२३	कमीविथी	कमीनेथी				लेना ॥०॥
०६०	२६	चछाद	चछाद।	०६२	२०	हयानभूत	स्यानीभूत
०६२	१९	समुभलेना	समुभलेनाअथत्तजिस०६३	४		औरजो	और जो
			व्रतकोसाधना जितने०६३	५		बिस्कुल	बिस्कुल
			दिनहोतीहोउसमेउत०६४	२५		प्राप्तोतु	प्राप्तोतै

इति

नामकिताय	नामकिताय	नामकिताय	नामकिताय
पदासग्रह (व) वृहज्जातक वृहत्संहिता विनयपत्रिका मूल व टीका सहित ब्रजविलास ब्रजविलाससारावली तन्नीतरखण्ड विष्णुपुराणभाषा वाराहपुराण वीजकक्योरदास वीजगणितदोभाग वैतालपञ्चोसो घकावलीसुमन वेद्यजीवन वैद्यमनोत्सव वेद्यप्रिया पालशिक्षा दो भाग (भ) भक्तमाल भक्तिपुराण भोजप्रस्थसार भाषाव्याकरण भाषातत्त्वदीपिकाव्या० भूगोलतत्त्व भाषाचन्द्रोदय भूगोलवर्णन (म) मार्कण्डेयपुराणसटीक माधवनिदान मुहूर्तचक्रदीपिका	मुहूर्तचिन्तामणिस्टोक मुहूर्तमार्तण्डसटीक मुहूर्तगणपति मुहूर्तदीपक महाभारतदर्पण तथाफलगरउबीसोंपर्व महाभारतसकलसिद्धि कोवनाई मिश्रितमाहात्म्य मनमोहनी मनमोहन महारामायण मनुस्मृति मंगलकोष (य) याज्ञवल्क्यस्मृति योगवासिष्ठ युगलसयाद्वेधप्रकाश यमुनालहरी युगलविलास (र) रेखागणितदोभाग रघुवर्मसंस्कृतवभाषादो जिन्दोमें रामायणमूलतुलसीकृत मोटेश्वरीकी रामायणतुलसीकृतमूल छोट अक्षरों की तथा मोटे औरचिक्के कागजकी रामायणतु०द्रापाटीय रामायणतुलसीकृतस०	रामायण शुक्रदेवी की टीका सहित मै काड रामायणटीकारामचरण की मैकाड रामायणकीमानसप्रवा० रामायण तुलसीकृतका शब्दार्थकोष रामायणतु०कादरतिहास रामायण तुलसीकृतकी मानसदीपिका रामायणकवितावलीतु- लसीकृतमूलवसटीक तथा श्रीवैद्यनाथजीकी टीकासहित रामायणगीतायलीमूल तथा सटीक श्रीमद्वाल्मीकीयरामा- यणभाषामैकाड रामचन्द्रिका सटीक रामायणरामविलास अद्भुत रामायण रामायणअध्यात्मरिचार राम शिवाहोत्म्य रामलीला रामगीता रमचन्द्रोदय व रसगुष्टि रामप्रसन्न रामग्रन्थ रामिस्तुक्रमकोकाडतिहास रामनूपा रामायणप्रकाश राजनीति	(ल) लघुसिद्धांत कौमुदी लघुचन्द्रिका लिपिपुस्तकसंस्करण०तक लिङ्गपुराण लोधरपरमाहात्म्यउद्गुं व नागरी लक्ष्मी सरस्वती सयाद दोनोंभाग (श) शार्ङ्गधरभाषाटी०सहित शिवसङ्गनाम शनिश्चरकी कथा शिवविषाहवपशापली शकर दिग्विजय शिवपुराण भाषा शकरचरित्रनुधा शङ्करलतिका शिवसिंहमराज शङ्करवतीसी शुक्रवहरी शिक्षापत्र शालागीतचन्द्रिका शङ्करी तभाषा शिक्षाप्रस्थ शिक्षावली शिवयोग शगरमूपाकर श्रीयोगीश्वर मनमयीकटीकनिहारोलामकृ० इत्यादि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६४२	१६	हामरूपो	ह्रासद्वयो	६०२	२२	न्ययत्न	न्यय
६४५	२४	प्रतिलोभ्या	प्रतिलोभ्या	६०३	२०	योगुचदय	योगुचदध
६४६	१६	अधीनी	अधीनी	६०४	४	सकमन्व	एकमच
६४७	२५	सेसामन्व	सेनामन्व	६०४	५	जिसमन्व	जिसमच
६४७	५	प्रतिगृह्यपेत्	प्रतिगृह्यजपेत्	६०४	७	ददा	दधं
६५०	६	जुर्मिपाप	जुर्मिपाव	६०४	८	मधी	मधी
६५१	१२	दखी ॥ घर	देखी ॥ ॥ घर	६०४	१०	आतिदेशिक	आतिदेशिक
६५२	५	तोनकर्म	तोनकर्म	६०४	१२	दद्य	दध
६५२	१०	चाइ	चाइ	६०४	१३	मन्व	मच
६५२	२०	सगति	सगति	६०४	२६	शाकल	सकल
६५४	१४	चारिणोस्त्री	चारिणोस्त्री	६०६	२१	मनुमे	मनुमे
६५४	२०	जिसकोई	जिसकोई	६०७	२३	(पृथकराभि)	(पृथकराभि)
६५५	१६	साप	साय	६०८	३०	यकाम	यकाम
६५५	२६	गृहपायु	गृहपायु	६०८	३०	जपेद्वारयस्य	जपेद्वारयस्य
६५६	६	पुणकुच	पुणकुच	६०८	३०	कुताप	कुताप
६६०	१२	पर	पर	६०९	२	निविस्ते पान्	निविस्ते पान्
६६१	५	सहस्र	तहस्र	६०९	५	निविस्ते पान्	निविस्ते पान्
६६२	३	अयवैसे	ज्याकवैसे	६०९	१५	सर्वोपपात	सर्वोपपात
६६५	२५	निमण्डुये	निमण्डुये	६०९	४	मृष्टिमे	मृष्टिमे
६६८	१३	मुक्तोक्त	मुक्तोक्त	६०९	३०	उयामेध्याप	उयामेध्याप
६०१	३	किया हो	किया हो	६०९	३०	उपरायविक्रये	उपरायविक्रये
			होत्रोकीपानी वधकरी	६०९	३	द्वादश २	द्वादशद्वादश
			यागभोगीके विज्ञात	६०९	४	द्वादश २	द्वादशद्वादश
			गर्भकाविनाशकिया हो	६०९	५	द्वादश २	द्वादशद्वादश
			अविज्ञातकायह अयवै	६०९	५	द्वादश २	द्वादशद्वादश
			एकदसगर्भसे लडकाहो	६०९	२२	मोजा	मोजा
			नायालडकीय नपुंसक	६०९	२६	अन्यतएव	अन्यतएव
			वेदाहीतायह योराजव	६०९	६	प्रोक्त	प्रोक्त
			नकनसमुभावायतभी	६०९	२४	शुद्धिवतो	शुद्धिवतो
			तकपिनाशकियाहो	६०९	६	धनातिक	धनातिक
			आचयेकि	६०९	४	बुद्धि	बुद्धि
६०१	१०	घृताहुतो	घृताहुतो	६०९	७	प्रमाचिनी	प्रमाचिनी
६०१	१८	कूपमायद	कूपमायद	६०९	७	महापपा	महापपा

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धाशुद्धपत्र ।

१३

पृष्ठ	पात	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पात	अशुद्ध	शुद्ध
६६६	१३	पुतानिपुनति	मोतानिपुनति	७१०	१५	नाममूधेक्रम	नाम॥मूधेक्रम
६६७	४	तिलैवाचन	तिलैवाचन	७१८	२२	नमोहायेत्यादि	नमोहमायेत्यादि
६६८	१४	य प्रातः स्तिला	य प्रातःस्तिला	७१८	२४	व्यंतरेत्तामि	व्यंतरोत्तानि
६६९	१०	बीराध्यौष	बीराध्यौष	७१६	१३	की साधना	की साधना
६६६	६	तिससेउसकोचितकी	तिससेउसकोचितको	७१६	२१	कालोमैठे	कालोमैठे
६६६	१३	पडासाहि	पोडासाहि	७२०	२६	प्रतोतहोता	प्रतोतहोताहै
७००	१२	पापउसे	पापउसे	७२१	२१	इनपाचो	इनपाचो
७००	२२	राचको	राचको	७२२	४	दिनकोरव्रतको	नीन कोरव्रतकी
७०१	२८	विवेचनीयाना	विवेचनीयानो	७२२	११	उसनहीं	उसनहीं
७०३	७	आषे ॥	आषे ॥ ३१२ ॥	७२२	२४	कातिथिकी	कातिथिकी
७०३	८	परिच्छेद ३१२	परिच्छेद ॥	७२४	१०	यासमंजोत	यासमंजोत
७०४	१६	मुधेस्पष्ट	मुधेस्पष्ट	७२५	१५	बिकारो	बिकारो
७०५	१६	कोताडना	कोताडना	७२५	१०	कुकुटाडाद्रामल	कुकुटा डाद्रामल
७०६	४	सर्वकापिल	सर्वकापिल	७२५	२६	कृत्यकार्य	कृत्यकार्य
७०६	२०	कुणलकर	कुणलकर	७२६	१६	श्रुतजानो	श्रुतजानो
७०६	२२	प्रवतो)	प्रवतो)	७२७	२०	पुण्यमाधोपहिले	पुण्यमाधोसिपहिले
७०६	२४	वचे	वचे	७३०	२	भुगभवेत	भुगभवेत
७०७	२	सज्ञा	सज्ञा	७३२	१६	गिननायास	गिनमायास
७०७	५	कोरा	कोरा	७३३	३०	स्नायकस्य	स्नायकस्य
७०७	८	आठी	आठी	७३४	४	चाद्रवासा०लघ्याथो	चाद्रवासा०लघ्याथो
७०७	२६	सान्त्वपन	सान्त्वपन	७३४	४	लघ्याथो +	लघ्याथो०लघ्याथो-
७०७	२७	न्यह्वे	न्यह्वे				इतिषपापाठतत्रोभय
७०८	८	दुय्य हम्	दुय्यह				मुदर (अथात् न-धाथो
७०८	१३	तिनको	तिनको				पाठहोनेधेवैःकुट्ट डि-
७०८	२१	कृच्छार्थ	कृच्छार्थ				कानेपरबैठेआपहो आ-
७०६	१०	मासेनकाथित	मासेनकाथितः				करमिलेवहो भोजनक-
७०६	२०	एकराचोप	एकराचोप				रै-लघ्याथोधाद्रामल-
७१४	२	इनदीनों	इनदीनों				नकरै-इनोचयठोक है
७१४	६	पादचरेच्छुद्र	पादचरेच्छुद्र	७३४	८	कहिकरदर्याया	कहिकरनियम दर्याया
७१४	६	वैश्यस्यपादयेत्	वैश्यस्यपादयेत	७३४	८	भोजनकरिके	भोजनकारिके-या-ल-या-
७१४	१२	एकपादउसे	एकपादउसे				थो येसापाठतर होने
७१५	६	उसेतिगुना	उसेतिगुना				म-उसेतिहाने ठिजे
७१६	२२	प्रातिलोभ्यनवा	प्रातिलोभ्यनवा				कुट्ट अथकनमूलआदि